☐ प्रकाशक :
आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५ स्थानकवासी सोसायटी
नारायणपुरा क्रोसिंग
अहमदाबाद-१३

☐ संपर्क सूत्र :
श्री हिम्मत लाल एस० शाह
अमर निवास, सोहराबजी कम्पाउन्ड
वाड़ज, अहमदाबाद-१३

☐ प्रथम संस्करण :
वीर निर्वाण संवत् २५०९
विक्रम संवत् २०४०
ईस्वी सन् १९८३ मई

☑ प्रकाशन पर्व :
१५ मई १९८३
अक्षय तृतीया

☐ मूल्य :
१५१ रुपये

☐ मुद्रक :
श्रीचन्द सुराना 'सरस' के लिए
मयंक प्रिन्टर्स, आगरा

DHAMMA-KAHĀṆUOGO

(Original text with Hindi Translation)

(Part I & II)

Compilers

Anuyoga-Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalal 'Kamal'

&

Dalsukhbhai Malvania

Translator

Devakumar Jain

Managing Editor

Srichand Surana 'Saras'

Publishers

Agama Anuyoga Trust

AHMEDABAD-13

□ Agama Anuyoga Publication No. 1

□ *Compilers :*
Anuyoga Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalal 'Kamal'
&
Dalsukhbhai Malvania

□ *Managing Editor :*
Sri Chand Surana 'Saras'

□ *Translator :*
Devakumar Jain

□ *Contact :*
Sri Himmat Lal S. Shah
Amar Nivas
Sorabji Compound
Wadaz, AHMEDABAD-13

□ *First Edition :*
Vir Nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2040, (Akshaya Tritiya)
May 15, 1983

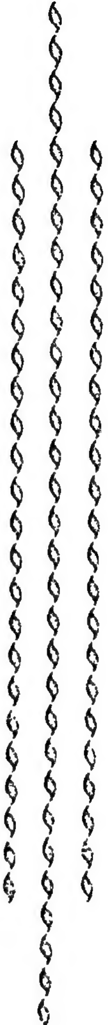
□ *Publishers :*
Agama Anuyoga Trust
15, Sthanakvasi Society
Narayanapura Crossing
Ahmedabad-13

□ *Printers :*
Mayank Printers, Agra-2
under the guidance of Srichand Surana 'Saras'

□ *Price :*
Rs. 151/-







गुरुदेव !

सर्वप्रथम अक्षर-बोध के पश्चात् आगम-अध्ययन एवं आगम अनुयोग संकलन के आप ही प्रबल प्रेरक रहे हैं। इस अनन्त उपकार के लिए यह अन्तेवासी सदैव आप-श्री का कृतज्ञ रहेगा।

गुरुदेव !

प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का संकलन आपकी ही असीम कृपा का प्रसाद है। यदि यह संकलन आपके ही कर-कमलों में समर्पित कर पाता तो असीम आनन्द की अनुभूति होती, [illegible]ब आपकी स्मृति में समर्पित करके ही सन्तुष्ट हो रहा हूँ।

वीर संवत् २५०९
अक्षय तृतीया पर्व
श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
आबू पर्वत, राजस्थान।

अन्तेवासी
मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

प्रकाशन योजना

हिन्दी अनुवाद सहित गणितानुयोग का द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण आगरा में मुद्रित हो रहा है।

धर्म कथानुयोग का गुजराती अनुवाद एक विद्वान् कर रहे हैं।

अंग्रेजी अनुवाद का कार्य प्रारम्भ करवाने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है।

आभार प्रदर्शन

अनेक ग्रन्थों के लेखक मूर्धन्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी म० शास्त्री ने प्रस्तुत ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है।

आपने वैदिक, बौद्ध एवं जैन आगम कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके शोध निवन्ध लेखकों के लिए प्रशस्त मार्गदर्शन किया है। अतः ट्रस्ट मण्डल आपका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

श्री विनयमुनिजी "वागीश" अनुयोगप्रवर्तक श्री जी की सेवा में अहर्निश रत रहकर भी अनुयोग संकलन कार्य को वेग प्रदान करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं।

पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया, पं० श्री अमृत भाई भोजक आदि विद्वान् समय-समय पर योग्य मार्ग-दर्शन करते रहते हैं।

इस महान् ज्ञानयज्ञ की सफलता के लिए अनेक आगम प्रेमी सज्जन आगम-अनुयोग ट्रस्ट को उदार हृदय से अर्थ सहयोग देते रहते हैं।

श्री हिम्मत भाई सामलदास शाह आगम अनुयोग प्रकाशन सम्वन्धी व्यवस्थाओं में सदैव उत्साह-पूर्वक सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

मुद्रण कला के आचार्य श्रीमान् श्रीचन्दजी सुराणा आगरा निवासी ने धर्म कथानुयोग के अनुवाद तथा प्रूफ संशोधन एवं मुद्रण आदि से सम्वन्धित सभी प्रकार की व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व स्वीकार करके कार्यभार हलका कर दिया तथा इसे गतिशील वनाया है।

ये सभी उपकारी एवं सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं, ट्रस्ट-मण्डल आप सबका हृदय से कृतज्ञ हैं एवं आभार मानता है।

प्रकाशन में विलम्ब के कारण

धर्म कथानुयोग के अनुवाद की पाण्डुलिपि कराना, प्रेस कर्मचारियों की हड़तालें, विजली की कटौती का होना आदि प्रकाशन में विलम्ब के प्रमुख कारण हैं। इस विवशता के लिए अनुयोग प्रकाशनों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने वाले महानुभावों से क्षमा चाहते हैं। और अव प्रसन्नतापूर्वक यह प्रथम ग्रन्थ सेवा में प्रस्तुत है।

ट्रस्ट प्रमुख
बलदेव भाई पटेल

प्राक्कथन

अनुयोग—प्राचीन और अर्वाचीन व्याख्या पद्धतिः

अतीत में आगमों के प्रत्येक गद्य-पद्य सूत्र की व्याख्या अनुयोगचतुष्टय के अनुसार चार प्रकार से की जाती थी, इस प्रकार की गई क्लिष्ट व्याख्याओं की वाचनायें विशिष्ट प्रज्ञासम्पन्न श्रुतधर ही दे सकते थे और उन्हें विचक्षण विनयी ही ग्रहण कर सकते थे अतः यह प्राचीन पद्धति दुर्गम थी।

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से धारणा शक्ति का क्रमशः ह्रास होता गया और इससे चतुर्विधा अनुयोग व्याख्या की निपुणता एवं क्षमता तथा विनेयजनों की ग्रहणशीलता भी क्रमशः क्षीण होती गई, शेष रह गई थी केवल प्रत्येक सूत्रगत प्रमुख अनुयोगानुसार व्याख्या की जाने वाली अर्वाचीन सुगम पद्धति।

आगमों में अन्तर्निहित प्रमुख अनुयोगः

उपलब्ध आगमों में से किन-किन आगमों में कितने-कितने अनुयोग अन्तर्निहित हैं अर्थात् किस-किस में एक, दो, तीन या अनुयोग चतुष्टय है यह जानने के लिए सामान्यतया यह वर्गीकरण पर्याप्त एवं उपयोगी होगा।

आगम-अनुयोग-वर्गीकरण

१ चरणानुयोग	२ द्रव्यानुयोग	३ गणितानुयोग	४ धर्मकथानुयोग
१ व्यवहार सूत्र	१ प्रज्ञापना	१ चन्द्रप्रज्ञप्ति	१ ज्ञाताधर्मकथा
२ बृहत्कल्प सूत्र	२ नन्दीसूत्र	२ सूर्यप्रज्ञप्ति	२ उपासकदशा
३ दशाश्रुतस्कन्ध	३ जीवाभिगम	३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	३ अन्तकृद्दशा
४ निशीथसूत्र	४ अनुयोगद्वार		४ अनुत्तरोपपातिकदशा
५ प्रश्नव्याकरण			५ विपाकदशा
६ दशवैकालिक			६-१० निरयावलिका आदि ५ उपांग
७ आवश्यक-सूत्र			११ राजप्रश्नीय

शेष सात आगमों में से किसी आगम में दो किसी में तीन और किसी में चारों अनुयोग हैं।

अनुयोग वर्गीकरण : एक समस्या

(१) ग्यारह आगमों में से प्रत्येक आगम के प्रत्येक गद्य-पद्य सूत्र का अनुयोगानुसार पृथक्करण कर के उनका विषयानु क्रम से वर्गीकरण करना

(२) विभिन्न प्रकाशन संस्थानों से प्रकाशित प्रत्येक आगम की प्रतियों में सूत्रांकों की विभिन्नता,

(३) "जाव" आदि सांकेतिक वाक्यों के प्रयोग से संक्षिप्त कृत पाठों की प्रचुरता,

—सांकेतिक वाक्यों के असमान प्रयोग और अव्यवस्थित प्रयोग

—सांकेतिक वाक्य से सूचित पाठ के स्थल निर्देश का अभाव

(४) वाचनाभेद के पाठ और पाठान्तरों की प्रचुरता,

(५) आगमों के सर्वथा शुद्ध संस्करणों का अभाव,

अनेक हाथ : अनेक अशुद्धियाँ:

एक युग था, हजारों लिपिक लेखन-व्यवसाय में संलग्न थे। धार्मिक-दार्शनिक तथा व्यावसायिक पुस्तकें पत्राकार एवं पुस्तकों के विविध आकारों में लिखी जाती थी, आवश्यकतानुसार आगम भी लिखे......लिखवाये जाते थे।

उस युग के श्रमण अपने लिये और अभ्यासियों के लिए आगम आदि की प्रतियां लिखते थे, किन्तु आवश्यकता की पूर्ति के लिये लेखकों से भी लिखवाना पड़ता था।

किसी भी ग्रन्थ की प्रतिलिपि करना ही लिपिक का काम होता था। जो प्रति प्रतिलिपि के लिए दी जाति थी उसी के अनुसार लिखने का ही वह अपना उत्तरदायित्व मानता था; "**नकल में अकल का क्या काम**" यह लोकोक्ति उसी युग की देन लगती है।

जिस लिपिक की लिपि सुन्दर एवं सुवाच्य होती थी उसी का लेखन व्यवसाय समृद्ध होता था क्योंकि उस युग में अक्षर-सौन्दर्य का प्राधान्य था, शुद्ध लेखन गौण हो गया था।

किसी एक आगम के लेखन में एक लिपिक के हाथ से जितनी अशुद्धियां होती थी उन सबकी पुनरावृत्ति उसी आगम की प्रतिलिपि करने वाले के हाथ से तो होती ही थी, तथा प्रतिलिपिक के हाथ से हुई कुछ नई अशुद्धियां उनमें सम्मिलित हो जाती थी, इस प्रकार अशुद्धियों का अंबार लगते रहने से संशोधन दुरूह होता जा रहा था। यदि कोई संशोधन के लिए प्रयत्न करता तो अनेक लिपिकों के हाथ से लिखी गई अनेक प्रतियों का संशोधन तो सर्वथा असंभव था अतः एक दो प्रतियों का ही संशोधन हो पाता था।

अशुद्ध प्रतियों की अधिक उपलब्धि होने से स्वाध्याय एवं पठन-पाठन आदि में उनका ही अधिक उपयोग होता था। प्राचीन ज्ञान भण्डारों में भी असंशोधित प्रतियां अधिक और संशोधित प्रतियां अल्प उपलब्ध होती हैं।

मुद्रणकला और अशुद्धियाँ:

विकसित मुद्रणकला के इस युग में भी सर्वथा शुद्ध मुद्रण प्रूफरिडिंग करने वालों की कर्त्तव्यनिष्ठा पर निर्भर है।

लिपिक युग और मुद्रण युग में अन्तर केवल इतना ही है कि लिपिक युग में अनेक हाथों से अनेक अशुद्धियाँ होती थीं। मुद्रण युग में एक हाथ से अनेक अशुद्धियाँ होती है।

लिपिक युग में हजार प्रतियाँ हजार प्रकार की होती थी। मुद्रण युग में हजार प्रतियां समान होती हैं।

संशोधन कार्य पहले जैसा ही वर्तमान में भी दुरूह है।

लिपिक युग में प्रत्येक प्रतिका शुद्धिपत्रक भिन्न भिन्न होता था। मुद्रण युग में हजार प्रतिका शुद्धिपत्रक एक होता है किन्तु शुद्धिपत्रक का उपयोग करके शुद्ध प्रति पर स्वाध्यायादि करने वाले विरल होते हैं।

अशुद्धियों के अभिशापः

मेघकुमार मुनि को संयममें स्थित करने के लिए उसके पूर्वभव का वर्णन सुनाते हुये भगवान महावीर ने कहा—

"हे मेघ ! तुम उस बैचेन कर देने वाली यावत्-दुस्सह वेदना को सात दिन-रात तक भोगकर एकसौ बीस वर्ष की आयु पूर्ण होने पर अत्यधिक आर्तध्यान के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए, मृत्यु के समय मरण प्राप्त करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भारत में, गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विंध्यगिरि की तलहटी में एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गंधहस्ती से एक श्रेष्ठ हस्तिनी की कुक्षि में हाथी के वच्चे के रूप में उत्पन्न हुए।

"तएणं सा गयकलभिया नवण्हं मासाणं, वसंतमासंमि तुमं पयाया।"

—ज्ञाता धर्मकथा. अ० १ मेघकुमार वर्णन

तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौमास पूर्ण होने पर वसंत मास में तुम्हे जन्म दिया।

इस मूल पाठ में कहा गया है कि मेघकुमार का जीव हथिनी के गर्भ में नौ मास रहकर हाथी के वच्चे के रूप में उत्पन्न हुआ।

यह प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन आगम में कैसे आ गया ? क्योंकि जिस काल का यह कथन है उस काल में राजाओं के यहां चार प्रकार की सेनायें होती थीं, उनमें हाथियों की भी एक सेना होती थी अतः उस युग में हाथियों के सामान्य जीवन का ज्ञान प्रायः अनेक लोगों को होता था; अतः प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन का पाठ लिपिको की असावधानी से ही आया है—यह मानना सर्वथा उचित लगता है।

भ० महावीर राजवंश में जन्मे थे, वे हाथियों के जीवन से परिचित थे और जिस समय मेघकुमार को दीक्षित किया था उस समय तो वे सर्वज्ञ थे, उनके मुख से प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन सर्वथा असंभव था।

वर्तमान में उपलब्ध सभी प्रतियों में नौ मास वाला पाठ ही मिलता है क्योंकि सभी लिपिक "मक्षिकास्थाने मक्षिका" इस लोकोक्ति के अनुसार ही लेखन करते रहे हैं इसलिए किस प्रतिका आधार लेकर संशोधन किया जाय ? यह एक समस्या है और इस समस्या का समाधान असंभव नहीं है : आधुनिक प्राणिविज्ञान की पुस्तकें देखकर निर्णय किया जा सकता है।

मानव जाति की स्त्री के गर्भ काल में और हथिनी के गर्भ काल में समानता नहो है। यह निश्चित है अन्तर भी इतना अधिक है कि किसी प्रकार से समानता सिद्ध नहीं कि जा सकती है। आशा है स्वाध्यायशील आगमपाठी प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन का संशोधन करने के लिए प्रयत्न करेंगे।

अविवेकपूर्ण उत्तरः

कुछ विद्वान् सहसा यह कह देते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य स्त्री का गर्भस्थिति काल सामान्यतया नौ मास और कुछ अधिक दिनों का होता है किन्तु अपवादरूप ७ या ८ मास बाद भी प्रसव हो जाता है; पूर्ण सशक्त न होने पर भी जीवित रहता है। इसी प्रकार ६ मास बाद उस हाथी के बच्चे का जन्म हो गया होगा।

इस प्रकार के उत्तर प्रायः पर्याप्त ज्ञान के अभाव के ही सूचक हैं, क्योंकि अपवाद रूप में एक-दो मास पूर्व प्रसव होना संभव है किन्तु पूर्ण गर्भस्थिति काल का आधा समय बीतने पर या इसके पूर्व ही यदि भ्रूण बाहर आ जाय तो क्या वह पूर्ण विकसित होगा ? स्वस्थ एवं जीवित रह सकेगा ?

हथिनी का गर्भस्थिति काल जितना होता है उसके आधे काल से भी कम नौ मास होते हैं अतः उक्त अविवेकपूर्ण उत्तर सर्वथा असंगत है।

सामान्य विज्ञान के ज्ञान से शून्य वर्तमान के परम्परावादी श्रुतधर तो ऐसे प्रत्यक्ष-विरोधी पाठों के सम्बन्ध मे ऊहापोह करना ही नहीं चाहते।

आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान में प्रकाशित हो रहे जैनागमों के नए संस्करणों में और अद्यावधि बने आगम-मन्दिरों में भी यही प्रत्यक्ष-विरोधी पाठ स्थान पा चुका है।

संकलन पद्धतिः

सभी आगमों के शुद्ध संस्करण तैयार करके धर्मकथानुयोग का संकलन करना हमारे लिए सम्भव नही था। क्योंकि सभी आगमों के शुद्ध संस्करण तैयार करना चिरकालसाध्य एवं श्रमसाध्य कार्य है।

क्या सभी आगमों की प्रतियाँ अशुद्ध है ? यह प्रश्न कोई भी व्यक्ति कर सकता है। इसका समाधान नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव स्वयं अपने अनुभव से अपने ही शब्दों में दे गये हैं। देखिए—

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगतः ।
सर्वस्व-पर-शास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥ १ ॥

वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः ।
सूत्राणामतिगाम्भीर्याद्, मतभेदाश्च कुत्रचित् ॥ २ ॥

१. सत् सम्प्रदाय प्राप्त नही होने से अर्थात् सूत्रार्थ के सम्यक् ज्ञाता गुरुजनों की परम्परा न रहने से
२. यथार्थ तर्क-संगत अर्थ प्राप्त न होने से

३. अनेक वाचनायें होने से

४. पुस्तकें अशुद्ध होने से

५. सूत्रों के अति गम्भीर होने से

६. अर्थ विषयक मतभेद होने से

ऐसी स्थिति में पं. दलसुखभाई मालवणिया के परामर्श के अनुसार प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का पाठ संकलन सुत्तागमे की तथा अंगसुत्ताणि की मुद्रित प्रतियों के कटिंग लेकर किया गया है।

इस पद्धति के अपनाने का मुख्य हेतु यह था कि अल्पकाल में अधिक कार्य सम्पन्न हो। वास्तव में इसके अतिरिक्त सरल एवं सुविधा वाली अन्य कोई पद्धति थी भी नही। किन्तु इस पद्धति से प्रस्तुत धर्मकथानुयोग के संकलित मूल पाठों में कुछ त्रुटियां भी रही हैं, जिसका अनुभव हमें बाद में हुआ है।

त्रुटियाँ रहने का प्रमुख कारण हैं सुत्तागमे और अंगसुत्ताणि की मुद्रित प्रतियाँ

आगमों का परिशीलन करने वाले कतिपय विद्वानों ने यह अनुभव किया होगा कि सुत्तागमे में दोनों भागों में पूरे वत्तीस आगमों के सम्पूर्ण मूल पाठ हैं।

उनके सम्पादक श्रीपुप्फभिक्खू अपनी एक स्वतन्त्र विचारधारा के व्यक्ति थे। उन्हें अपनी मान्यता से विपरीत जितने पाठ जैनागमों में दिखाई दिये उन सब पर कैंची चलाकर मूल से अलग कर दिया।

अन्यान्य संस्थानों से प्रकाशित आगमों के मूलपाठ और सुत्तागमे के मूलपाठ इसी कारण से अक्षरशः नहीं मिलते हैं।

अंगसुत्ताणि के सम्पादन की पद्धति भी एक स्वतन्त्र पद्धति है। अतः धर्मकथानुयोग में संकलित मूलपाठ अन्य प्रतियों के मूलपाठों से अक्षरशः नहीं मिलते हैं।

सुत्तागमे और अंगसुत्ताणि के उपयोग का मुख्य हेतुः

वर्तमान में सुत्तागमे का ही एक ऐसा संस्करण है जिसमें सम्पूर्ण वत्तीस आगमों का मूलपाठ केवल दो पुस्तकों में उपलब्ध है। यह लघुकाय ग्रन्थराज आगमों का अभूतपूर्व संस्करण है—यदि ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

अंगसुत्ताणि के तीन पुस्तकों में ग्यारह अंग है; इनके अतिरिक्त एक भी ऐसा संस्करण उपलब्ध नहीं है जिसमें सभी आगम उपलब्ध हो सके।

अनुयोगों के सँकलन एवं वर्गीकरण के लिए ये दो संस्करण ही सुलभ थे अतः इनका ही अधिक से अधिक उपयोग किया गया है।

अनुवाद का परिशीलन

सम्पूर्ण धर्मकथानुयोग का अनुवाद पं० देवकुमार जी जैन ने किया है। वे दिगम्बर जैन विद्वान है। पं० दलसुख भाई मालवणिया के निर्देशानुसार धर्मकथानुयोग के अनुवादक नियुक्त किये गये थे।

स्वास्थ्य प्रतिकूल होने से अनुवाद का वाचन न मैं कर सका और न पं० दलसुख भाई मालवणिया ही कर सके।

मुझे आशा है, उन्होंने पूरी निष्ठा से कार्य किया है, फिर भी आगमों के स्वाध्यायशील पाठक अनुवादका वाचन करते समय कहीं कोई संशोधन योग्य स्थल देखें तो ट्रस्ट के पतेपर सूचित करें जिससे द्वितीय संस्करण के सम्पादक संशोधन करने का प्रयत्न कर सकेंगे।

दृष्टिवाद का विच्छेद : धर्मकथानुयोग का ह्रासः

बारहवें अंग दृष्टिवाद के ५ विभाग हैं, उनमें चौथे विभाग का नाम अनुयोग है। इसके दो विभाग हैं १ मूल प्रथमानुयोग और २ गण्डिकानुयोग।

नंदीसूत्र में मूल प्रथमानुयोग की विषय-सूची दी हुई है जिस समय यह सूची दी गई उस समय मूल प्रथमानुयोग कितना विच्छिन्न हुआ और कितना अवशिष्ट रहा था यह जानने का साधन आज अनुपलब्ध है।

प्रथमानुयोग धर्मकथानुयोग का ही अपर पर्यायवाची है, चारों अनुयोगों में प्रथम अनुयोग धर्मकथानुयोग है। मूल विशेषण इस बात का सूचक हैं कि धर्मकथाओं का मूल अरिहन्त भगवन्तों की कथायें हैं।

मूल प्रथमानुयोग की विषय सूची:

१ अरिहन्त भगवन्तों के पूर्वभव २ देवलोक में जाना ३ देवभव का आयु. ४ देवलोक से च्यवन. ५ तीर्थंकर भवका जन्म ६ अभिषेक. ७ राज्यश्री. ८ प्रव्रज्या. ९ उग्रतप. १० केवल ज्ञान की उत्पत्ति. ११ तीर्थप्रवर्तन. १२ शिष्य समुदाय. १३ गण व गणधर १५ आर्यायें. १६ प्रवर्तनियां. १७ चतुर्विध संघ का प्रमाण. १८ जिनकल्पी, १९ मन.पर्यवज्ञानी. २० अवधिज्ञानी. २१ सम्यक् श्रुत-ज्ञानी. २२ वादी. २३ अनुत्तरविमानों में उत्पन्न होने वाले. २४ उत्तर वैक्रिय करने वाले मुनि २५ सिद्ध होने वाले. २६ सिद्धि पथ के देशक. २७ पादोपगमन का काल. २८ जितने भक्तों का छेदनकर अन्त करने वाले. २९ अज्ञानान्धकार से सर्वथामुक्त अनुत्तर मोक्ष सुख प्राप्त करने वाले। ऐसे अन्य अनेक भाव मूल प्रथमानुयोग में कहे गये हैं।

इस विषय सूची के अनुसार एक भी अरिहन्त भगवन्त की जीवन कथा उपलब्ध आगमों में नहीं हैं।

गण्डिकानुयोग की विषय सूची:

१ कुलकरगंडिका. २ तीर्थंकरगंडिका. ३ चक्रवर्तीगंडिका. ४ दशारगंडिका. ५ बलदेवगंडिका. ६ वासुदेव गंडिका. ७ गणधर गंडिका. ८ भद्रबाहु गंडिका. ९ तपःकर्म गंडिका. १० हरिवंश गंडिका ११ उत्सर्पिणी गंडिका. १२ अवसर्पिणी गंडिका. १३ चित्रान्तर गंडिका, देव. मनुष्य. तिर्यञ्च और नरकगति. इन चारों गतियों में परिभ्रमण तथा विविध प्रकार से संसार में पर्यटन,।

विषय सूची में व्युत्क्रम

१ गणधर गंडिका का नाम तीर्थंकर गंडिका के बाद ही आना चाहिए.

२ हरिवंश गंडिका का नाम दशार गंडिका के पूर्व होना चाहिए.

३ वासुदेव गंडिका के बाद प्रतिवासुदेव गंडिका का नाम होना चाहिए.

प्रतिवासुदेव गंडिका का नाम इस सूची में से सर्वथा लुप्त कैसे हो गया ? यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं हैं.

मेरा अनुमान यह है कि ये व्युत्क्रम लिपिकयुग के हैं। आगम होने के कारण सामान्य पाठक इन व्युत्क्रमों के सम्बन्ध में कुछ सोच ही नहीं पाता और प्रबुद्ध पाठक इन की उपेक्षा कर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं इनका यथाक्रम होना अब असंभव है।

धर्मकथानुयोग कृश हो गया

समवायांग और नन्दी सूत्र में आगमों का संक्षिप्त परिचय है। उसमें छठा अंग ज्ञाताधर्मकथा का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—इस अंग के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उन्नीस अध्ययन हैं. उन्नीस उद्देशक हैं इत्यादि।

धर्मकथा के दस वर्ग हैं, प्रत्येक धर्मकथा में पांच सौ पांच सौ आख्यायिकायें हैं, प्रत्येक आख्यायिका में पांचसौ पांचसौ उपाख्यायिकाये हैं। प्रत्येक उपाख्यायिका में पांच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकायें हैं।

इस प्रकार साढ़े तीन करोड़ कथायें इस अंग में थी। कालप्रभाव से यह कथा कोश आज कितना कृश हो गया है ? पाठक अनुमान लगा सकते हैं।

इस परिचय पाठ में एक भी वाक्य ऐसा नहीं हैं जो प्रत्येक श्रुतस्कन्ध के पृथक्-पृथक् अध्ययनों का सूचक हो। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दश वर्गों का परिचय देकर बादमें प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययनों का निर्देशन हैं. इस व्युत्क्रम को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि इस संक्षिप्त परिचय पाठ के कुछ वाक्य आगे पीछे हो गये हैं। अतः ऐसा हुआ है।

समवायांग में संकलित ज्ञाताधर्मकथा के परिचय पाठ में द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अन्तर्गत धर्मकथाओं के दस वर्ग का पाठ क्रमानुसार है, और नन्दी में यही पाठ व्युत्क्रम से लिखा हुआ है।

इस प्रकार व्युत्क्रम से लिखे गये अनेक पाठ आगमों में हैं। श्रद्धालु स्वाध्यायशील पाठकों के लिए इनका संशोधन अत्यावश्यक है।

जैनागमों के पद और वेद मंत्रोंका परिमाणः

ज्ञाताधर्मकथा के आठवें अध्ययन में भगवती मल्ली का कथानक है।

एक दिन राजमहलों में चोखा परिव्राजिका आई। वह ऋग्-यजु आदि चारों वेदो की ज्ञाता थी। अन्य अनेक कथानकों में भी चारों वेदों के नामों का उल्लेख है किन्तु वे सभी कथानक भगवती मल्ली के कथानक के बाद के हैं। भगवती मल्ली का काल वर्तमान काल से ६५, ८६, ७५० वर्ष पूर्व का है इससे यह स्वतः सिद्ध है कि इतने वर्षो पहले भी वेद थे, यदि भगवान ऋषभदेव के समय में ही अन्य अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हो गया था तो वेदों का भी प्रादुर्भाव हो गया होगा ? इसका फलितार्थ यह होगा कि वेद भी जैनागम जितने ही प्राचीन है।

इस पर से यह जिज्ञासा जागृत होती है कि जिस प्रकार जैनागमों में दृष्टिवाद तथा ग्यारह अंगों के बहुसंख्यक पद काल प्रभाव से विच्छिन्न हुए हैं क्या उसी प्रकार वेदमंत्र भी विच्छिन्न हुए हैं या एक भी वेदमंत्र विच्छिन्न नहीं हुआ ? पहले थे जितने ही अब हैं ? इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

भगवान् ऋषभ देव के समय में होने वाले उनके ही पौत्र मरीचि के जीवन काल में ही अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हो गया था; उनमें चारों वेदों के नाम हैं या नहीं ? यह अन्वेषणीय है।

सूर्यप्रज्ञप्ति में भी कृत्तिका नक्षत्र से प्रारम्भ में होने वाले नक्षत्र मण्डल का कथन है। यह नक्षत्र मण्डल कितने वर्ष पूर्व था यह भी अन्वेषणीय है। सूर्यप्रज्ञप्ति में प्ररूपित कृत्तिका से प्रारम्भ होने वाला नक्षत्र मण्डल यदि शाश्वत है तो सूर्यप्रज्ञप्ति आगम भी गणिपिटक के समान शाश्वत है, यदि अशाश्वत है तो सूर्य प्रज्ञप्ति की संकलना का काल उसी कृत्तिका से प्रारम्भ होने वाला नक्षत्रमण्डल काल है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है ?

आगम-मन्दिर बने : आगमों के शुद्ध संस्करण नहीं बनेः

शासन-प्रभावना की अनेक योजनाओं में प्रतिवर्ष उदारमन से अर्थराशि का जहां सदुपयोग होता है, वहाँ आगमों के लिए कोई कमी नही है।

आगम तो जैनदर्शन के हार्द हैं उनके स्थायित्व के लिये आगम-मन्दिरों का निर्माण एक महत्वपूर्ण आयोजन है, इसी प्रकार ताम्रपटों पर आगमों का आलेखन भी उपयोगी है, अब तक कितने आगममन्दिर बने हैं इस की पूरी सूची मेरे पास नहीं हैं किन्तु आगम-मन्दिर के निर्माण में जितनी अर्थराशिका उपयोग किया जाता है उतनी ही अर्थराशि से आगमों के शुद्ध संस्करण भी सम्पन्न हो सकते हैं, प्रकाशन व्यवस्था विशेषज्ञों का यह अभिमत है।

यदि शुद्ध की गई प्रतियों के पाठ ही आगम-मन्दिरों में अंकित किये गये हों तो उनका आयोजन सफल है, उनके ही आधार पर शुद्ध संस्करण भी सम्पन्न हो सकते हैं।

स्वर्गीय मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज ने आगमों के शुद्ध संस्करणों के लिए भगीरथ प्रयत्न किया था और आगमो के शुद्ध संस्करण प्रकाशित भी हुये थे, किन्तु शासन देवों के औदासिन्य से कार्य अधूरा रह गया। अब उसे पूरा करने के योग्य श्रुतधर का प्रयत्न कब प्रारम्भ होगा ? यह तो कोई दैवज्ञ ही जान सकता है।

यह केवल संकलन हैः

इस धर्मकथानुयोग में अंग उपांगादि आगमों में से केवल धर्मकथाओं का, कथांशों का, रूपकों का, उदाहरणों का, जीवन-प्रसंगों का तथा घटनाओं आदि का संकलन मात्र है।

धर्मकथाओं के गद्य-पद्य मूल पाठों का तथा अनुवाद के संशोधन का संकल्प प्रारम्भ से ही नहीं था, क्योंकि यह कार्य समूहगत श्रमसाध्य था।

प्रथम संस्करण प्रायः सर्वथा व्यवस्थित नहीं हो पाता, संकलित ग्रन्थों के सम्बन्ध में सर्वत्र ऐसा ही अनुभव हुआ है, विद्वज्जन देखते हैं, मौलिक संशोधन सुझाव देते हैं। तदनुसार परिष्कृत परिमार्जित संस्करण सम्पन्न होते रहते हैं।

अनुवादक विद्वान को मूलानुसारी अनुवाद देने का कहा गया था, इसमें वे कितने सफल हुये हैं यह निर्णय तो स्वाध्याय शील पाठक ही करेंगे।

प्रस्तावना लेखनः

वर्तमान युवा श्रमणों में श्री देवेन्द्रमुनि जी शास्त्री अद्वितीय साहित्य स्रष्टा हैं, अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों के लेखक हैं, अनेक आगमों के एवं सन्दर्भ ग्रन्थों के भूमिका लेखक हैं, आपके कई शोधनिवन्ध प्रकाशित हुए हैं फिर भी उपाधियों से विरत हैं। आपकी लेखन शैली अप्रतिम हैं। आपने ही प्रस्तुत धर्मकथानुयोग की समीक्षात्मक भूमिका लिखकर आगम कथाओं का अमृत पान कराया हैं, स्वाध्यायशील साधक आपकी इस कृपाके लिये सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

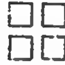
संकलन सहयोगः

धर्मकथानुयोग का छह स्कंधों में विभाजन-तथा श्रमण-श्रमणियों का एवं श्रावक श्राविकाओं का, तीर्थंकरों के शासन काल का क्रमानुसार वर्गीकरण का श्रेय सुविख्यात विद्वान् पं० श्रीदलसुख भाई मालवणिया को है, इस आत्मीयभाव से किया सहयोग के लिए मैं उनका सदैव कृतज्ञ हूं।

श्री विनयमुनि "वागीश' ने इस संकलन कार्य में सभी संभव सहयोग प्रदान किये हैं, अतएव वह भी धन्यवाद का पात्र है।

—अनुयोग प्रवर्तक

मुनि कन्हैयालाल 'कमल'



प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का संक्षिप्त परिचय

धर्मकथानुयोग का यह संकलन और वर्गीकरण अभूतपूर्व है। इसमें छ स्कन्ध है।

प्रथम स्कन्ध में उत्तम पुरुषों के कथानक हैं। इस स्कन्ध के ग्यारह अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन में कुलकरों का संक्षिप्त वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन में भगवान ऋषभदेव का संक्षिप्त वर्णन है।

तृतीय अध्ययन में भगवती मल्ली का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्थ अध्ययन में भगवान अरिष्टनेमी का संक्षिप्त वर्णन है।

पंचम अध्ययन में भगवान पार्श्वनाथ का संक्षिप्त वर्णन है।

छठे अध्ययन में भगवान महावीर का संक्षिप्त वर्णन है।

सप्तम अध्ययन में भावी चौवीसी के प्रथम तीर्थंकर महापद्म का संक्षिप्त वर्णन है।

अष्टम अध्ययन में आगमों में उपलब्ध तीर्थंकरों से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

नवम अध्ययन में भरतचक्रवर्ती का विस्तृत वर्णन है।

दशम अध्ययन में आगमों में उपलब्ध चक्रवर्तियों से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

ग्यारहवें अध्ययन में आगमों में उपलब्ध बलदेव और वासुदेवों से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

द्वितीय स्कन्ध में श्रमण कथानक के सैंतालीस अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन में महबल श्रमण का संक्षिप्त वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन से बारहवें अध्ययन पर्यन्त भगवान् अरिष्टनेमि के धर्मशासन में होने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन है।

तेरहवें और चौदहवें अध्ययन में भगवान पार्श्वनाथ के धर्म शासन में होने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन है।

पन्द्रहवें से सैंतालीसवे अध्ययन पर्यन्त भगवान् महावीरके धर्मशासन में होने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन हैं।

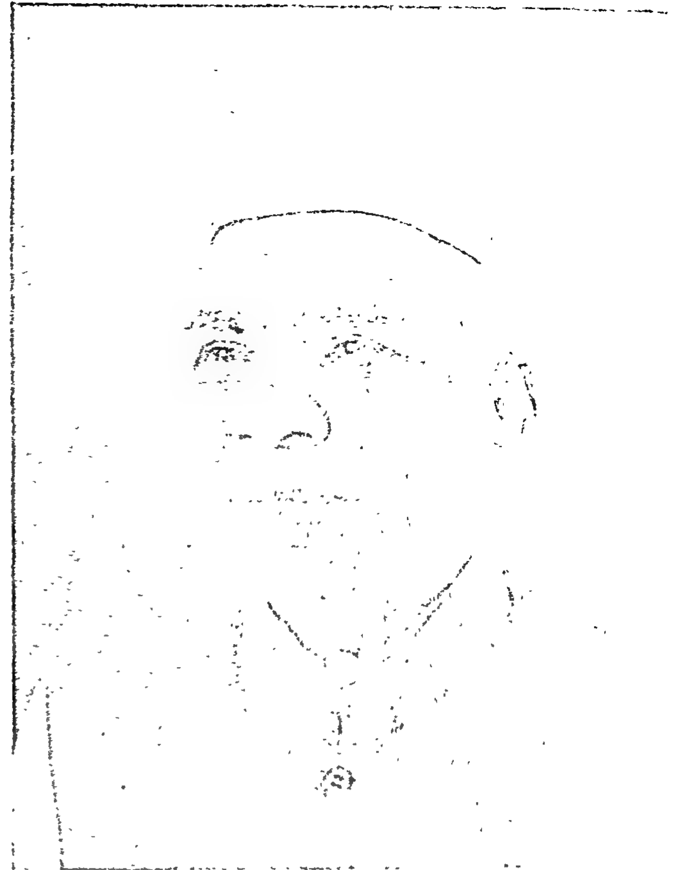
विशेष सूचना

धर्मकथानुयोग के इस प्रथम विभाग में दो स्कन्धों का ही संक्षिप्त परिचय दिया गया है।



प्रथम श्रेणी

श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद



आप मूलतः साणंद (गुजरात) के निवासी हैं। बहुत वर्षों से अहमदाबाद में ही व्यापार व्यवसाय कर रहे हैं। व्यापारी समाज में आपकी महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। आपके कोटन का बहुत बड़ा काम है, आप गुजरात व्यापारी महामंडल के प्रमुख भी रहे हुए हैं। आप अखिल भारतीय शास्त्रोद्धार समिति के प्रमुख हैं एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। लोककल्याण के कार्यों में सदा आप तत्पर रहते हैं। अनेक वर्षों से आप ब्रह्मचर्य व्रत एवं रात्रि में चौविहार आदि का पालन करते हैं। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही आपकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है। आप दृढ़ धर्मी, उदार हृदयी श्रावक हैं अतः स्थानीय समाज के अग्रणी माने जाते हैं। कालूपुर बैंक के आप चेयरमेन हैं।

अनुयोग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालालजी म० 'कमल' के सम्पर्क में सन् 1976 में आये। उनके अनुयोग लेखन कार्य से प्रभावित होकर आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट की स्थापना की, इस समय ट्रस्ट के प्रमुख भी आप ही हैं। आपकी धर्मपत्नि श्रीमती रुक्मणी बहिन भी धार्मिक भावना वाली हैं, आपके सुपुत्र बच्चूभाई, बकुलभाई में धर्म के सुसंस्कार दृढ़ हैं।





श्री हिम्मतलाल शामलभाई शाह, अहमदाबाद

आप बहुत ही उत्साही कार्यकर्ता हैं। शामलभाई अमरशी के आप सुपुत्र हैं। आपके घर पर एक विशाल पुस्तकालय है, उसमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह है। शोध निबन्ध लेखकों के लिए यह संग्रह अत्यन्त उपादेय है। आप साधु-साध्वियों की ज्ञान वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं। प्रकाशनों की प्रगति में आपका महत्वपूर्ण सक्रिय योगदान रहता है। वृद्धावस्था में भी आपका पुरुषार्थ, धर्म एवं स्वाध्याय की रुचि अनुकरणीय है।







श्री रमणलाल माणेकलाल शाह, अहमदाबाद



आप नवरंगपुरा अहमदाबाद के निवासी हैं। आपके मातुश्री लहरी बहन तथा धर्मपत्नी सुभद्रा बहन बहुत ही धार्मिक भावना वाली श्राविका हैं। आपने स्था० जैन उपाश्रयों में बहुत बड़ा योगदान दिया है। अभी पूज्य गुरुदेव के दीक्षा अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर श्री वर्धमान महावीर बाल निकेतन के उद्घाटन पर भी आपने बहुत बड़ा योगदान दिया है। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। अनेक बार व्यापार के कारण विदेश जाना होता है परन्तु वहां भी धर्म के प्रति वही दृढ़ श्रद्धा रहती है। मानव राहत कार्यों में अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग विशेष रूप से करते रहते हैं।

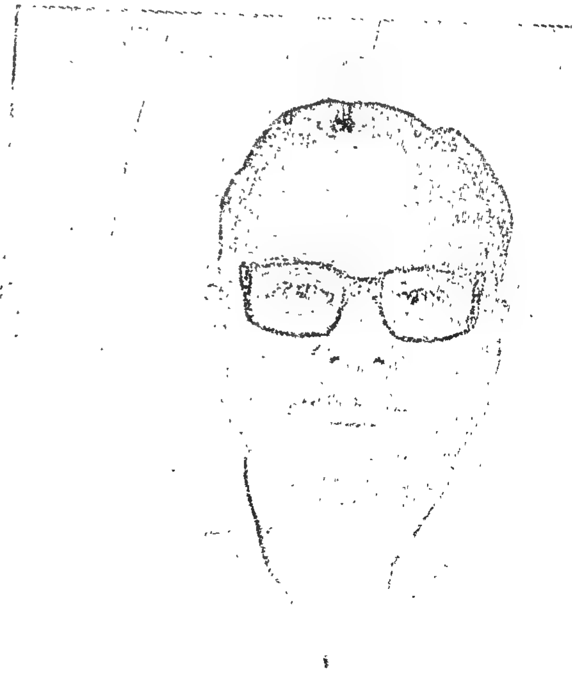


श्री बलवन्तलाल शान्तीलाल शाह, अहमदाबाद



आप अहमदाबाद में रूई के प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। आपके आत्माराम माणेकलाल नाम का बहुत बड़ा फर्म है। बहुत ही धार्मिक, उदार, गुप्तदानी श्रावक हैं। दरियापुरी स्थानकवासी जैन संघ छीपापोल एव अनेक संस्थाओं के आप सक्रिय कार्यकर्ता हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।







स्व० श्री राजमल रिखबचन्द मेहता
एवं
स्व० श्रीमती मणीबेन राजमल मेहता
पालनपुर

पू० मातुश्री तथा पिताजी;

आपका हमारे ऊपर बहुत उपकार है। क्योंकि संस्कार सिंचन करने वाले एवं जीवन में धर्म का पाया डालने वाले माता पिता ही होते हैं। हम आपके बहुत-२ ऋणी हैं।

लि० रमणिकलाल राजमल
सौ० सुशीला बहन रमणिकलाल

[श्रीमती सुशीला बहन मेहता —पालनपुर स्था० समाज की अग्रणी महिला हैं। वर्तमान में वालकेश्वर संघ की प्रमुख हैं। बहुत ही उदार दानवीर महिला हैं। उपाश्रय आदि के लिए आपका विशेष योगदान रहता है।]

श्री नवनीत भाई चुन्नीलाल पटेल, अहमदाबाद



आपने अनेक स्थानकों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तपस्वियों का सम्मान करने में आपकी विशेष रुचि रही है। पार्श्वनाथ कॉर्पोरेशन के आप मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। बरवाला संप्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनि जी म० के अनन्य भक्त हैं। हरसिद्ध कोपरेटिव बैंक के आप चेयरमेन हैं। अपनी जन्मभूमि सुणाव में हॉस्पिटल के लिए पांच लाख का महत्वपूर्ण दान दिया है। नवरंगपुरा, नारायणपुरा, नवावाडज आदि अनेक संघों के एवं संस्थाओं के ट्रस्टी एवं प्रमुख है।

आपके पिता श्री चुन्नीलाल भाई, माता सूरजबेन भी बहुत ही धर्मपरायण हैं। साधु साध्वी जी की वैयावच्च हेतु अग्रणी रहते हैं।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।



अब्भंगेत्ता, गंधकसाएहिं उल्लोलेति, उल्लोलित्ता सुद्धोदएणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता जस्स जंतपलं सयसहस्सेणं तिपडोलतित्तएणं साहिएणं सरसीएण गोसीस-रत्त-चंदणेणं अणुलिंपति, अणुलिंपित्ता ईसिणिस्सासवातवोज्झं वरणगरपट्टणुग्गयं कुसलणरपसंसितं अस्सलालापेलवं छेयायरियकणगखचियंतकम्मं हंसलक्खणं पट्टजुयलं णियंसावेइ,

मालिश करता है, मालिश करके सुगन्धित उबटनों से उबटन करता है, उबटन करके शुद्ध-स्वच्छ जल से स्नान कराया, स्नान कराके जिनका एक लाख सुवर्णमुद्रा से भी अधिक मूल्य है, ऐसे बहुमूल्यवान अत्यन्त शीतल गोशीर्ष रक्तचन्दन का लेप करता है, लेप करके अल्पतम प्राणवायु-धीमी सी श्वास-प्रश्वास से कंपित होने वाले, प्रसिद्ध नगर में निर्मित, प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अश्व की जैसी लाल झाँई मारने वाले, विशिष्ट कारीगरों द्वारा स्वर्ण तारों से कशीदा निकाला गया है, ऐसे हंस के समान श्वेत धवल वस्त्र युगल को पहनाया।

णियंसावेत्ता हारं अद्धहारं उरत्थं एगावलिं पालंबसुत्तं-पट्ट-मउड-रयणमालाइं आविंधावेति, आविंधावेत्ता गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघातिमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समालंकेति,

पहनाकर गले में हार अर्धहार एकावली—इकलड़ी, लटकती हुई मालायें झूमकों वाली तथा कटिसूत्र, मुकुट, रत्न मालाएँ पहनाईं, पहनाने के पश्चात् ग्रन्थिम, वेष्टिम, पुरिम और संघातिम इन चार प्रकार की मालाओं द्वारा कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत करता है।

२९१. समालंकेत्ता दोच्चंपि महया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता एगं महं चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणिं विउव्वइ, तं जहा—

२९१. इस प्रकार से समलंकृत करने के पश्चात् महान् वैक्रिय समुद्घात की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके एक विराट सहस्र-वाहिनी चन्द्रप्रभ नामक शिविका की विकुर्वणा की अर्थात् बनाई, वह शिविका इस प्रकार की है—

ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मकर-विहग-वाणर-कुञ्जर-रुरु-सरभ-चमर-सद्दूल-सीह-वणलय-विचित्तविज्जाहर-मिहुण-जुयल-जंत-जोग-जुत्तं, अच्चीसहस्समालिणीयं, सुणिरूवित-मिसिमिसित-रूवगसहस्सकलियं, ईसिभिसमाणं, भिब्भिसमाणं, चक्खुल्लोयणलेस्सं, मुत्ताहलमुत्तजालंतरोवियं तवणीय-पवरलंबूसपलंबंतमुत्तदामं, हारद्धहार-भूसणसमोणयं, अहियपेच्छणिज्जं, पउमलयभत्तिचित्तं, असोगलयभत्तिचित्तं, कुन्दलयभत्तिचित्तं, णाणालयभत्ति-विरइयं सुभं चारुकंतरूवं णाणामणिपंचवण्णघंटा-पडाग-परिमंडियग्गसिहरं पासादीयं दरिसणीयं सुरूवं।[1]

उसमें ईहामृग, वृषभ, अश्व, मगरमच्छ, पक्षी, बन्दर, हाथी, रुरु—मृग विशेष बारहसिंगा, शरभ-अष्टापद, चमरी गाय, शार्दूलसिंह आदि के तथा वनलताओं अनेक विद्याधरों के युगल यंत्र, मनुष्य युगल के चित्राम बने हुए हैं तथा जो सहस्र रश्मि सूर्य प्रभा के समान तेजवाली, रमणीय, जगमगाती हुई, हजारों रूपकों-चित्रों से युक्त, दीप्यमान, देदीप्यमान है। जिससे देखते ही, पलक झपक जाती हैं, मोतियों की मालायें और मोतियों के जाल—पर्दे झूल रहे हैं, श्रेष्ठ सुवर्ण के मणकों से गुन्थी हुई मोतियों की मालायें लटक रही हैं, हार, अर्धहार आदि भूषणों से जिसे शृंगारित किया गया है, अत्यधिक दर्शनीय, पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता तथा इसी प्रकार और दूसरी लताओं से चित्रित है, शुभ, चारु, कांतरूप, विविध प्रकार—अनेक घाट की रंग-विरंगी मणियों, घंटों, पताकाओं से जिसका शिखर भाग परिमंडित है, आकर्षक, दर्शनीय एवं परम सुन्दर है।

---

१ संगहणी-गाहाओ—

सीया उवणीया, जिणवरस्स जरमरणविप्पमुक्कस्स। ओसत्तमल्लदामा, जलथलयंदिव्वकुसुमेहिं॥
सिवियाए मज्झयारे, दिव्वं वररयणरूवचेवइयं। सीहासणं महरिहं सपादपीढं जिणवरस्स॥
आलइयमालमउडो, भासुरबोंदी वराभरणधारी। खोमयवत्थणियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं॥
छट्ठेण भत्तेणं, अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो। लेसाहिं विसुज्झंतो, आरुहई उत्तमं सीयं॥
सीहासणे णिविट्ठो, सक्कीसाणा य दोहिं पासेहिं। वीयंति चामराहिं मणिरयणविचित्तदंडाहिं॥
पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्ठरोमकूवेहिं। पच्छा वहंति देवा, सुरअसुरगरुलणागिंदा॥
पुरओ सुरा वहंती, असुरा पुण दाहिणम्मि पासम्मि। अवरे वहंति गरुला, णागा पुण उत्तरे पासे॥

पडिवज्जइ[1], सामाइयं चरित्तं पडिवज्जेत्ता देवपरिसं च मणुयपरिसं च आलिक्ख-चित्तभूयमिव ट्ठवेइ ।[2]

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१२

करने के समय देव परिषद और मनुष्य परिषद भींत पर लिखे हुए चित्र की भांति अवस्थित हो गई अर्थात् उपस्थित सभी देव और मनुष्य चित्रवत निश्चेष्ट-निस्तब्ध हो गये ।

---

१ संगहणी गाहाओ

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण । खिप्पामेव णिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ।
पडिवज्जित्तु चरित्तं, अहोणिसि सव्वपाणभूतहितं । साहट्टुलोमपुलया, पयया देवा निसामिति ।।

२ समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी—

"जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा ! बुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई ति" कट्टु जय-जयसद्दं पउंजंति ।

पुव्विं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाण-दंसणे होत्था ।।
तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं नाण-दंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ,

अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चेच्चा हिरण्णं,-जाव- दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं पढमे मासे, पढमे पक्खे, मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिय-चक्किय-नंगलिय-मुहमंगलिय-वद्धमाणगपूसमाणा-घंटियगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिसंथुवमाणा य एवं वयासी—

"जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अभग्गेहिं णाणदंसणचरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं ।

जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं, बहूइं पक्खाइं, बहूइं मासाइं, बहूइं उऊइं, बहूइं अयणाइं, बहूइं संवच्छराइं, अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ ति" कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ।।

तए णं समणे भगवं महावीरे—

नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे,
वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे,
हिययमालासहस्सेहिं अभिनंदिज्जमाणे अभिनंदिज्जमाणे,
मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे,
कंतिरूवसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे,
अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे,
दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे,
भवणपंतिसहस्साइं समतिच्छमाणे समतिच्छमाणे,

तंती-तल-ताल-तुडिय-गीय-वाइयरवेणं महुरेण य मणहरेण जयजयसद्दघोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूतीए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं सव्वपगतीहिं सव्वणाडएहिं सव्वतालायरेहिं सव्वोरोहेणं सव्व-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडियसद्दसन्निणादेणं महता इड्ढीए महता जुतीए महता बलेणं महता वाहणेणं महता समुदएणं महता वरतुडित-जमग-समग-प्पवादितेणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि खरमुहि-हुडुक्क-दुंदुभि-निग्घोस-नादियरवेणं कुण्डपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ।

पडिवज्जइ[1], सामाइयं चरित्तं पडिवज्जेत्ता देवपरिसं च मणुयपरिसं च आलिक्ख-चित्तभूयमिव ठुवेइ ।[2]

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१२

करने के समय देव परिषद और मनुष्य परिषद भींत पर लिखे हुए चित्र की भांति अवस्थित हो गई अर्थात् उपस्थित सभी देव और मनुष्य चित्रवत निश्चेष्ट-निस्तब्ध हो गये ।

---

१ संगहणी गाहाओ

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण । खिप्पामेव णिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ।
पडिवज्जित्तु चरित्तं, अहोणिसि सव्वपाणभूतहितं । साहट्ठुलोमपुलया, पयया देवा निसामिंति ।।

२ समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेह-जच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंति-एहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी—

"जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा ! बुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुह-निस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई ति" कट्टु जय-जयसद्दं पउंजंति ।

पुव्विं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाण-दंसणे होत्था ।।
तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं नाण-दंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ,

अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चेच्चा हिरण्णं,-जाव- दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं पढमे मासे, पढमे पक्खे, मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिय-चक्किय-नंगलिय-मुहमंगलिय-वद्धमाणग-पूसमाणा-घंटियगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिसंथुवमाणा य एवं वयासी—

"जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अभग्गेहिं णाणदंसणचरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समण-धम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं ।

जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं, बहूइं पक्खाइं, बहूइं मासाइं, बहूइं उऊइं, बहूइं अयणाइं, बहूइं संवच्छराइं, अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ ति" कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ।।

तए णं समणे भगवं महावीरे—

नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे,
वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे,
हिययमालासहस्सेहिं अभिनंदिज्जमाणे अभिनंदिज्जमाणे,
मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे,
कंतिरूवसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे,
अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे,
दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे,
भवणपंतिसहस्साइं समतिच्छमाणे समतिच्छमाणे,

तंती-तल-ताल-तुडिय-गीय-वाइयरवेणं महुरेण य मणहरेण जयजयसद्दघोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे पडि-बुज्झमाणे, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूतीए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं सव्वपगईहिं सव्वणाडएहिं सव्वतालायरेहिं सव्वोरोहेणं सव्व-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडिय-सद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडित-जमग-समग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-दुंदुभि-निग्घोस-नादियरवेणं कुण्डपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ।

मणपज्जवणाणोप्पत्ति—

२९६. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खाओवसमियं चरित्तं पडिवन्नस्स मणपज्जवणाणे णामं णाणे समुप्पन्ने-अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहि य समुद्दहिं सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ ॥

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१५

मनःपर्यवज्ञानोत्पत्ति—

२९६. तदनन्तर क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही श्रमण भगवान् महावीर को मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ जिसके द्वारा वे अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त व्यक्त मन वाले जीवों के मनोगत भावों को जानने लगे।

तेरसमासाणंतरं अचेले—

२९७. समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं-जाव-चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेले पाणपडिग्गहए ॥

—कप्प० सु० ११५

तेरह मासानन्तर अचेल—

२९७. श्रमण भगवान् महावीर एक मास अधिक एक वर्ष तक-यावत्-चीवरधारी (वस्त्र को धारण करने वाले) थे, उसके बाद अचेल-निर्वस्त्र एवं पाणिपात्र हुए।

अणगाररूवपसंसणं—

२९८. तए णं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाए १ इरिया-समिए, २ भासासमिए, ३ एसणासमिए, ४ आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिए, ५ उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए, ६ मणसमिए, ७ वइसमिए, ८ कायसमिए, १ मणगुत्ते, २ वयगुत्ते, ३ कायगुत्ते, गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी अकोहे अमाणे अमाए अलोभे संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नगंथे निरुवलेवे, १ कंसपाई इव मुक्कतोए (२१) जीवो व्व अप्पडिहय-गइ त्ति।[1]

—कप्प० सु० ११७

अनगाररूप प्रशंसा—

२९८. उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर अनगार हुए १—ईर्या समिति, २—भाषासमिति, ३—एषणा समिति, ४—आदान भांडमात्र निक्षेपणा समिति, ५—उच्चार पासवणखेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति, ६—मनः समिति, ७—वचन समिति ८—कायसमिति, १—मनगुप्ति, २—वचनगुप्ति, ३—कायगुप्ति इन सबसे समित एवं गुप्त तथा गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारी, क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित हुए शांत, प्रशान्त, उपशांत और संताप से मुक्त हुए, आश्रव रहित, ममता रहित, परिग्रह रहित, अकिंचन निर्ग्रन्थ हुए, निर्लेप हुए, १ जल से भी लिप्त न होने वाले श्रेष्ठ निर्मल कांस्य पात्र की तरह -यावत् - (२१ उपमाएँ कहना) जीव की तरह अप्रतिहत गति वाले हुए।

पडिबंधाभावो—

२९९. नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधो भवति। से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ दव्वओ, २ खेत्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ।

१. दव्वओ णं सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु।

२. खेत्तओ णं गामे वा-जाव-णहे वा।

३. कालओ णं समए वा-जाव-अण्णयरे वा दीहकालसंजोगे वा।

प्रतिबंधाभाव—

२९९. उन भगवान् को कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था, वे अप्रतिबन्ध विहारी थे। प्रतिबन्ध चार प्रकार का होता है, यथा—

१—द्रव्य, २—क्षेत्र, ३—काल, ४—भाव।

१—द्रव्य से—सचित्त, अचित्त और मिश्र।

२—क्षेत्र से—ग्राम में—यावत्—आकाश।

३—काल से—समय में—यावत्—अन्य किसी भी दीर्घ काल का संयोग।

जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, अहे सीयं ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आहरणमल्लालंकारं ओमुयइ, आहरणमल्लालकारं ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगे अबीए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कप्प० सु० ११०-११४

१ एतेसिं पदाणं इमातो दुन्नि संगहणी गाहाओ—

१ कंसे २ संखे ३ जीवे, ४ गगणे ५ वायु य ६ सरयसलिले य। ७ पुक्खरपत्ते ८ कुम्मे, ९ विहगे १० खग्गे य ११ भारंडे ॥१॥
१२ कुञ्जर १३ वसभे १४ सीहे, १५ णगराया चेव १६ सागरमखोभे। १७ चंदे १८ सूरे १९ कणगे, २० वसुन्धरा चेव २१ हुयवहे ॥२॥

४. भगवओ णं कोहे [illegible] वा।
तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ।

—[illegible] सु० ११८

[illegible] [illegible] प्रकार का [illegible] नहीं होता है।

महावीरस्स अभिग्गहो—

३००. तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइए समाणे मित्त-णाति-सयण-संबंधिवग्गं पडिविसज्जेति, पडिविसज्जेत्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—

"बारसवासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा—दिव्वा वा, माणुसा वा तेरिच्छिया वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे अणाइले अव्वहिए अद्दीणमाणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि अहियासइस्सामि।"

—आया० सु० २, अ० १५ सु० १०१६

महावीर का अभिग्रह—

३००. [illegible]

[illegible]

महावीरस्स विहारो—

३०१. तओ णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हेत्ता वोसट्ठकाए चत्तदेहे दिवसे मुहुत्तसेसे कम्मारं गाम समणुपत्ते।

तओ णं समणे भगवं महावीरे वोसट्ठचत्तदेहे अणुत्तरेणं णाणेणं जाव-अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं, अणुत्तरेणं वीरिएणं अणुत्तरेणं संजमेणं, अणुत्तरेणं पग्गहेणं, अणुत्तरेणं संवरेणं, अणुत्तरेणं तवेणं, अणुत्तरेणं बंभचेरवासेणं, अणुत्तराए खंतीए, अणुत्तराए मोत्तीए, अणुत्तराए तुट्ठीए, अणुत्तराए समितीए, अणुत्तराए गुत्तीए, अणुत्तरेणं ठाणेणं, अणुत्तरेणं कम्मेणं, अणुत्तरेणं सुचरियसोवचियफलपरिणिव्वाणमुत्तिमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

—आया० सु० २, अ० १५ सु १०१७

महावीर का विहार—

३०१. [illegible]

[illegible] अनुत्तर कायोत्सर्ग, अनुत्तर कर्म, अनुत्तर [illegible] और [illegible] से [illegible] मुक्ति मार्ग से युक्त होकर आत्मा को भावित करते हुए विहार करते हैं।

परीसहजयो—

३०२. एवं विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुपज्जिसु—दिव्वा वा माणुसा वा तेरिच्छिया वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे अणाइले अव्वहिए अदीण-माणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१८

परिषहजय—

३०२. इस प्रकार से विहार करते हुए जो कोई भी उपसर्ग उत्पन्न हुए—देवकृत—मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी—सभी— उन सब उपसर्गों के प्राप्त होने पर अकलुषित, अव्यथित, अदीनमना होकर, मन, वचन, काय से गुप्त होकर सम्यक्‌भावपूर्वक क्षमा, सहिष्णुता और स्थिर भावों से सहन करते रहे।

दससुविणाणं फलं—

३०३. समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा—

१. एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे।

२. एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

दस स्वप्नों का फल—

३०३. श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था में किसी एक रात्रि के अन्तिम प्रहर में यह दस महा स्वप्न देखकर जागे, वे इस प्रकार—

१. एक महाभयंकर और तेजस्वी रूप वाले ताड़ जैसे पिशाच को पराजित किया, ऐसा स्वप्न देखकर जागे।

२. एक बड़े श्वेत धवल पंख वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर जागे।

३. एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

३. एक बड़े चित्र-विचित्र पंख वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर जागे।

४. एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

४. एक महान् सर्व रत्नमय मालायुगल को स्वप्न में देखकर जागे।

५. एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

५. एक बड़े और श्वेत गोसमूह को स्वप्न में देखकर जागे।

६. एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

६. एक विशाल चौतरफ से कुसुमित-आच्छादित हुए पद्म सरोवर को स्वप्न में देखकर जागे।

७. एगं च णं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्सकलियं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

७. हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को भुजाओं से तैरकर पार किया, ऐसा स्वप्न देखकर जागे।

८. एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

८. तेज से चमचमाते हुए एक बड़े सूर्य को स्वप्न में देखकर जागे।

९. एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

९. एक विशाल मानुषोत्तर पर्वत को हरे वैडूर्य के रंग जैसे अपनी अंतड़ियों द्वारा चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ ऐसा स्वप्न देखकर जागे।

१०. एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

१०. एक महान मन्दर (मेरु) पर्वत की मन्दर चूलिका के ऊपर सिंहासन पर स्वयं को बैठा देखकर स्वप्न से जागे।

३०४. (१) जण्णं समणे महावीरे एगं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलाओ उग्घाइए।

३०४. (१) श्रमण भगवान् महावीर जो एक बड़े भयंकर, तेजस्वी रूप वाले ताड़ जैसे पिशाच को पराजित किया हुआ देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय-कर्म को मूल से नष्ट किया।

(२) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरति।

(२) श्रमण भगवान् महावीर जो एक बड़े श्वेत पंखों वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर शुक्ल-ध्यान को प्राप्त करके विचरण करते हैं।

(३) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तिविचित्त-पक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे विचित्तं ससमयपरसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेत्ति दंसेति निदंसेति उवदंसेति, तं जहा—आयारं सूयगडं-जाव-दिट्ठिवायं।

(३) श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में जो एक बड़े चित्र-विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को देखकर जागे, उसका फल है कि श्रमण भगवान् महावीर ने विचित्र स्वसमय, परसमय के विचारों से युक्त द्वादशांग गणिपिटक का सामान्य कथन, विशेष कथन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन करते हैं, यथा—आचारांग, सूत्रकृतांग—यावत्—दृष्टिवाद।

(४) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेति, तं जहा—अगारधम्मं वा, अणगार धम्मं वा।

(४) श्रमण भगवान् महावीर ने जो एक महान् सर्व रत्नमय माला युगल देखा और देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा की, यथा—आगार धर्म और अनगार धर्म।

(५) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे समणसंघे, तं जहा—समणा, समणीओ, सावया सावियाओ।

(५) श्रमण भगवान् महावीर जो एक सफेद गायों के समूह को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर का चार प्रकार का संघ हुआ, वह इस प्रकार है—१. श्रमण २. श्रमणी ३. श्रावक ४. श्राविका।

(६) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं

(६) श्रमण भगवान् महावीर एक विशाल पद्म-सरोवर को सब तरफ से कुसुमित हुआ देखकर स्वप्न से जागे, उससे

महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, तं जहा—१ भवणवासी, २ वाणमंतरे, ३ जोतिसिए, ४ वेमाणिए।

श्रमण भगवान् ने १—भवनवासी २—वाणव्यंतर ३—ज्योतिष्क ४—वैमानिक इन चार प्रकार के देवों को प्रतिबोधित किया।

(७) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं उम्मीवीयी सहस्सकलियं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं अणादीए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारे तिण्णे।

(७) श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक विशाल महासागर को अपने हाथों से तैरकर पार किया हुआ देखा और जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने अनादि, अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कांतार भवाटवी को पार किया।

(८) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने।

(८) श्रमण भगवान् महावीर तेज से चमचमाते एक महान् सूर्य को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर को अनन्त, अनुत्तर, निराबाध, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

(९) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलिय-वण्णाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोया सदेवमणुयासुरे लोए परितुवंति—इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे।

(९) श्रमण भगवान् महावीर एक विशाल मानुषोत्तर पर्वत को नीलवैडूर्यमणि के रंग जैसी अपनी अंतड़ियों द्वारा चारों ओर से आवेष्टित परिवेष्टित किया हुआ देखा और देखकर स्वप्न से जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर की उदार कीर्ति, स्तुति सम्मान और यश देव, मनुष्य और असुरलोक में परिव्याप्त हुआ कि 'यह श्रमण भगवन्त महावीर हैं।'

(१०) जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवली धम्मं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति निदंसेति उवदंसेति।[1]

(१०) श्रमण भगवान् महावीर ने अपने को स्वप्न में मंदर (मेरु) पर्वत की चूलिका के ऊपर सिंहासन पर बैठा देखा और देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर देव मनुष्य और असुर युक्त परिषद में केवली प्रज्ञप्त धर्म का सामान्य कथन, विशेष कथन, प्ररूपण दर्शन, निदर्शन उपदेश करते हैं।

सुविण-फलं—

स्वप्न फल—

३०५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हयपंतिं वा गयपंतिं वा नरपंतिं वा किन्नरपंतिं वा किंपुरिसपंतिं वा महोरगपंतिं वा गंधव्वपंतिं वा वसभपंतिं वा पासमाणे पासति, दूरूहमाणे दूरूहति, दूरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।

३०५. कोई भी स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ी अश्वपंक्ति, गजपंक्ति, मनुष्यपंक्ति, किन्नरपंक्ति, किंपुरुषपंक्ति महोरगपंक्ति, गंधर्वपंक्ति अथवा वृषभपंक्ति को देखे और उसके ऊपर चढ़े और उस पर स्वयं चढ़ा है ऐसा अपने को माने तथा इस प्रकार देखकर यदि तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं दामिणिं पाईणपडिणायतं दुहओ समुद्दे पुट्ठं पासमाणे पासति, संवेल्लेमाणे संवेल्लइ, संवेल्लियमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।

कोई भी स्त्री या पुरुष यदि स्वप्न के अन्त में समुद्र के दोनों छोरों से अड़ा हुआ और पूर्व तथा पश्चिम तरफ लम्बा एक बड़ा दामण देखे और उसे लपेटे तथा स्वयं ने उसे लपेटा है ऐसा स्वयं को माने तथा इस प्रकार देखकर कोई शीघ्र जागता है तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं रज्जुं पाईणपडिणायतं दुहओ लोगंते पुट्ठं पासमाणे पासति, छिंदमाणे छिंदति, छिन्नमिति

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में लोक के दोनों छोरों को स्पर्श किया हुआ और पूर्व व पश्चिम लम्बा एक बड़ा रस्सा

१ [illegible]

अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं किण्हसुत्तगं वा नील-सुत्तगं वा लोहियसुत्तगं वा हालिद्दसुत्तगं वा सुक्किलसुत्तगं वा पासमाणे पासति, उग्गोवेमाणे उग्गोवेति, उग्गोवितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं अयरासिं वा तंबरासिं वा तउयरासिं वा सीसगरासिं वा पासमाणे पासति, दुरुहमाणे दुरुहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हिरण्णरासिं वा सुवण्णरासिं वा रयणरासिं वा वइररासिं वा पासमाणे पासति, दुरुहमाणे दुरुहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं तणरासिं वा कट्ठरासिं वा पत्तरासिं वा तयरासिं वा तुसरासिं वा भुसरासिं वा गोमय-रासिं वा अवकररासिं वा पासमाणे पासति, विक्खिरमाणे विक्खि-रति, विक्खिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सरथंभं वा वीरणथंभं वा वंसीमूलथंभं वा वल्लीमूलथम्भं वा पासमाणे पासति, उम्मूलेमाणे उम्मूलेति, उम्मूलितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं खीरकुम्भं वा दधिकुम्भं वा घयकुम्भं वा मधुकुम्भं वा पासमाणे पासति, उप्पाडेमाणे वा उप्पाडेति उप्पाडितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सुरावियडकुम्भं वा सोवीरवियडकुम्भं वा तेल्लकुम्भं वा वसाकुम्भं वा पासमाणे पासति, भिंदमाणे भिंदति, भिन्नमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

देखे और उसे काट डाले तथा स्वयं ने उसे काट दिया है, ऐसा स्वयं को माने तथा इस तरह से देखकर तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ा लम्बा काला सूत या नीले सूत या लाल सूत या पीले सूत या सफेद सूत का धागा देखें और उसे उकेले और स्वयं ने उसे उकेला है ऐसा स्वयं को माने और ऐसा देखकर वह तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक बड़े लोहे के ढेर को, तांबे के ढेर को, रांगे के ढेर को, सीसे के ढेर को देखे और स्वयं उस पर चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा ऐसा देखकर शीघ्र जागे तो वह दो भव में सिद्ध होता है—यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक विशाल हिरण्य-चांदी के ढेर को, सुवर्ण के ढेर को, रत्न के ढेर को, वज्र के ढेर को देखे और उस पर स्वयं चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा उसी क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े घास के ढेर को या लकड़ियों के ढ़ेर को या पत्तों के ढेर को या वृक्ष की छाल या तुरु के ढेर को, या भूसे के ढेर को या गेहूँ के ढेर को, या कूड़ा कचरा के ढेर को देखे और उसे बिखेरे और स्वयं ने उसे बिखेरा है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े शरस्तम्भ को अथवा वीरण स्तम्भ को अथवा वंशी मूल स्तम्भ को अथवा वल्लीमूल स्तम्भ को देखे और उसे उखाड़े और स्वयं ने उसे उखाड़ा है, ऐसा स्वयं को माने और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक बड़े क्षीर कुम्भ को या दधि कुम्भ को या घृत कुम्भ को मधु-कुम्भ को देखे और उसे उठावे और उसे उठाया है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में बड़ा सुरा के विकट कुम्भ को, सौवीर के विकट कुम्भ को, या तेलकुम्भ को या वसाकुम्भ को देखता है और देखकर भेदन करता है, फोड़ता है, और स्वयं ने उसे फोड़ा है ऐसा स्वयं को मानता है और तत्काल जागता है तो दूसरे भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं पउमसरं कुसुमियं पासमाणे पासति, ओगाहमाणे ओगाहति, ओगाढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति,-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक विशाल कुसुमित पद्मसरोवर को देखता है, देखकर उसमें प्रवेश करता है और प्रवेश करके और स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है, ऐसा अपने को मानता है और तत्काल जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्सकलियं पासमाणे पासति, तरमाणे तरति, तिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को देखता है, देखकर तैरता है और तैरकर उसे तैर चुका है ऐसा स्वयं माने और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं भवणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, अणुप्पविसमाणे अणुप्पविसति, अणुप्पविट्ठमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक विशाल रत्नों से बना हुआ भवन देखे, देखकर उसमें प्रवेश करें, प्रवेश करके स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है ऐसा स्वयं मानता है और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं विमाणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, दुरुहमाणे दुरुहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

—भग० स० १६, उ० ६, सु० २०-३५

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में सर्व रत्नमयी एक विशाल विमान को देखता है, देखकर उस पर चढ़ता है, चढ़कर स्वयं उस पर चढ़ा ऐसा स्वयं मानता है और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

भगवओ दीहतवो

भगवान का दीर्घ तप

भगवओ चरिया—

३०६. १. अहासुयं वदिस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीयत्था ॥

भगवान की चर्या—

३०६. (आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बूस्वामी से कहते हैं——)
१—जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर की चर्या का श्रवण किया है, वैसा ही मैं कहूँगा । जिस प्रकार उन्होंने कर्मक्षय के लिये उद्यत होकर और तत्व को जानकर उस हेमन्त ऋतु में तत्काल ही प्रव्रजित होकर विहार किया था ।

२. णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमंते ।
से पारए आवकहाए, एयं खु अणुधम्मियं तस्स ॥

२—मैं इस वस्त्र से हेमन्त काल में शरीर को ढकूँगा, इस अभिप्राय से उसे ग्रहण नहीं किया था । क्योंकि वे तो संसार से पारगामी थे और यावज्जीवन इसी वृत्ति को धारण करने वाले थे । किन्तु पूर्ववर्ती अन्य तीर्थंकरों ने भी ग्रहण किया था, इसीलिये उन्होंने भी ग्रहण किया ।

३. चत्तारि साहिए मासे, बहवे पाण-जाती आगम्म ।
अभिरुज्झ कायं विहरिंसु, आरुसियाणं तत्थ हिंसिंसु ॥

३—उनके शरीर से निकलने वाली सुवास से आकर्षित होकर बहुत सी जातियों के प्राणी उनके शरीर पर बैठने एवं रहने लगे । चार मास से अधिक समय तक मांस एवं रुधिर का आस्वादन करने के लिए शरीर पर चढ़कर डंक मारते रहे ।

४. संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं ।
अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ॥

४—वे अनगार भगवान् एक मास अधिक एक वर्ष अर्थात् तेरह महीने तक वस्त्र को धारण किये हुए रहे, तत्पश्चात् उसे छोड़कर वस्त्र त्यागी अचेलक हो गये ।

३०७. ५. अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं, चक्खुमासज्ज अंतसो झाइ।
अह चक्खु-भीया सहिया, तं "हंता हंता" बहवे कंदिसु ॥

३०७. ५—वे पुरुष प्रमाण आगे के मार्ग को अर्थात् रथ की धुरी प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमिति में तल्लीन हो चलते थे। उनको इस प्रकार चलते देख बहुत से बालक डरकर धूलि आदि फैंकते हुए हो-हल्ला मचाकर कोलाहल करते थे।

६. सयणेहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिण्णाय।
सागारियं ण से सेवे, इति से सयं पवेसिया झाति ॥

६—यदि गृहस्थों एवं अन्यतीर्थिकों से मिश्रित वस्तियों में विश्राम हेतु ठहरने पर वहाँ की स्त्रियाँ कामेच्छा प्रगट करतीं तो वे मैथुन क्रीड़ा के परिणाम को जानकर उसका सेवन नहीं करते थे किन्तु आत्मा में रमण करते हुए सदा धर्म एवं शुक्ल ध्यान में संलग्न रहते थे।

७. जे के इमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति।
पुट्ठो वि णाभिभासिसु, गच्छति णाइवत्तई अंजू ॥

७—वे ऋजु परिणामी भगवान् इस प्रकार से विचरते थे कि यदि कभी गृहस्थों से युक्त स्थान पर ठहरने का अवसर आ जाता था तो इनकी ओर लक्ष्य न रखकर ध्यान में लीन रहते थे। पूछने या न पूछने पर भी वे बोलते नहीं थे किन्तु अपने अभीप्सित लक्ष्य प्राप्ति के लिये गमन करते थे।

८. णो सुगरमेतमेगेसिं, णाभिभासे अभिवायमाणे।
हयपुव्वो तत्थ दंडेहिं, लूसियपुव्वो अपुण्णेहिं ॥

८—विहार के प्रसंग में यदि कोई पुण्यहीन पुरुष डंडों से घायल करते, बालों या शरीर के हाथ पैर आदि अंगों को पकड़कर खींचते या अन्य तरह से कष्ट देते अथवा कोई नमस्कार करता तो उन दोनों प्रकार की वृत्ति वालों से बात नहीं करते (अर्थात् पीड़ा देने वाले पर न तो क्रोध करते और न वन्दना करने वाले से प्रसन्न होते) किन्तु समभाव पूर्वक मान-अपमान सहन करते थे। इस प्रकार की साधना सामान्य साधक के लिए सुगमन नहीं हैं।

९. फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अतिअच्च मुणी परक्कममाणे।
आघाय - णट्ट - गीताइं, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ॥

९—दुष्ट अनार्य पुरुषों द्वारा कहे हुए अत्यन्त तीक्ष्ण कटु एवं असहनीय कठोर वचनों को सुनकर भी वे महामुनि उन पर ध्यान नहीं देते थे। नृत्य, गीतों को सुनकर एवं दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध देखकर हर्षित व विस्मित नहीं होते थे।

१०. गढिए मिहो-कहासु, समयंमि णायसुए विसोगे अदक्खू।
एताइं सो उरालाइं गच्छइ णायपुत्ते असरणाए ॥

१०—जब कभी या जहाँ कहीं लोगों को विषय विकार में गृद्ध करने वाली कथाओं को कहते व करते हुए देखते तो उन्हें ऐसा देखकर भी उन ज्ञातपुत्र के मन में किसी प्रकार का हर्ष व शोक नहीं होता था। किन्तु इन अनुकूल और प्रतिकूल उत्कृष्ट परीषहों को दुःख का स्मरण न करते हुए या दुःखों से घबराकर दूसरे की शरण न लेते हुए अपनी संयम साधना में निमग्न रहते थे।

३०८. ११. अवि साहिए दुवे वासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते।
एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिण्णायदंसणे संते ॥

३०८. ११—दो वर्ष से भी कुछ अधिक समय तक सचित्त-जल को पिये बिना दीक्षित हुए थे तथा जिन्होंने एकत्व भावना से अपने अन्तःकरण को भावित किया था, क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी ऐसे वे ज्ञान दर्शन संपन्न भगवान् इन्द्रियों एवं अन्तः-करण का उपशमन दमन करते हुए विचरण करते थे।

१२. पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च।
पणगाइं बीय-हरियाइं, तसकायं च सव्वसो णच्चा ॥

१२—वे श्रमण भगवान् महावीर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और सेवाल आदि व बीज और नाना प्रकार की हरी वनस्पतियों एवं त्रसकाय इन सबको भली प्रकार से जानकर यतनापूर्वक विचरण करते थे।

१३. एयाइं संति पडिलेहे, चित्तमंताइं से अभिण्णाय।
परिवज्जियाण विहरित्था, इति संखाए से महावीरे॥

१३—ये पृथ्वीकाय आदि के जीव सजीव हैं, इनमें चेतना है, इस प्रकार विचार कर तथा इनके स्वरूप को भली प्रकार से अधिगत कर वे भगवान् इनके आरम्भ समारम्भ का त्याग करके विचरते थे।

३०९. १४. अदु थावरा तसत्ताए, तसजीवा य थावरत्ताए।
अदु सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला॥

३०९. १४—स्थावर जीव त्रसकायरूप में और त्रसकाय जीव स्थावरपने से उत्पन्न होते हैं। अथवा संसारीप्राणी सब योनियों में आवागमन करने वाले हैं, तथा अज्ञानी जीव अपने-अपने कर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से संसार में स्थित हैं अर्थात् स्वकृत कर्मानुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हैं।

१५. भगवं च एवं मन्नेसि सोवहिए हु लुप्पती बाले।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, त पडियाइक्खे पावगं भगवं॥

१५—उन भगवान् ने यह जान लिया था कि ममत्व युक्त अज्ञानी जीव कर्म से पीड़ित होता है और सब प्रकार के कर्म के स्वरूप को समझकर भगवान् ने उस पाप कर्म का परित्याग कर दिया था।

१६. दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेलिसि णाणी।
आयाण-सोयमतिवायं-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा॥

१६—उन मेधावी-बुद्धिमान सर्वभाव ज्ञाता भगवान् ने दो प्रकार की क्रियाओं (सांपरायिक और ईर्याप्रत्यय) को सम्यक् प्रकार से जानकर दूसरी को अनुपम कहा है तथा उन ज्ञानी ने पहली को कर्मों के आने का स्रोत बताया है। अतः इसको और अतिपात-हिंसा स्रोत एवं योगरूप स्रोत को सब प्रकार से कर्म-बन्धन का कारण जानकर उनसे निवृत्त होने एवं संयमानुष्ठान का प्रतिपादन किया है।

३१०. १७. अइवातियं अणाउट्टे, सयमण्णेसिं अकरणयाए।
जस्सित्थीओ परिण्णाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खु॥

३१०. १७—पाप से अतिक्रान्त होने से निर्दोष अहिंसा का उन्होंने स्वयं आचरण किया था और दूसरों को हिंसा न करने का उपदेश दिया था, तथा स्त्रियों के यथार्थ स्वरूप और उनके साथ भोगे जाने वाले भोगों के परिणाम से परिज्ञात थे कि काम-भोग समस्त पाप कर्मों के मूल कारण हैं, ऐसा जानकर भगवान् ने स्त्री-संसर्ग का परित्याग कर दिया था।

३११. १८. अहाकडं न से सेवे, सव्वसो कम्मुणा य अदक्खू।
जं किंचि पावगं भगवं, तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था॥

३११. १८—सब तरह से कर्मबन्ध का कारण जानकर भगवान् ने आधाकर्म आहार का सेवन नहीं किया था तथा भविष्य में जो आहार अल्पतम—थोड़े से पाप का कारण हो, उसको भी न करते हुए प्रासुक निर्दोष आहार को ग्रहण करते थे।

१९. णो सेवती य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था।
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छति संखडिं असरणाए॥

१९—और उन्होंने दूसरे व्यक्ति के वस्त्र का भी सेवन नहीं किया अर्थात् शरीर पर नहीं पहना और न दूसरे के पात्र में भोजन ही किया। वे मान-अपमान को छोड़कर बिना किसी का सहारा लिये भिक्षार्थ गृहस्थ की भोजनशाला में जाते थे।

२०. मायण्णे असण-पाणस्स, णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे।
अच्छिंपि णो पमज्जिया, णोवि य कंडूयये मुणी गायं॥

२०—वे मुनि—महावीर—अन्न-पानी के परिमाण को जानने वाले थे, रसों में गृद्ध न होकर और सरस आहार प्राप्ति के लिये बिना किसी प्रकार की धारणा आकांक्षा के जैसा भी नीरस रूखा सूखा मिल जाता था, ग्रहण करते थे, आँखों में रजकण आदि पड़ जाने पर भी उसे दूर करने के लिए आँख को पोंछते नहीं थे और न खाज आने पर शरीर को खुजलाते थे।

३१२. २१. अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्ठओ उपेहाए।
अप्पं बुइए पडिभाणी, पंथपेही चरे जयमाणे॥

३१२. २१—वे चलते हुए न तो तिरछे देखते थे, न खड़े होकर या मुड़कर पीछे की ओर देखते थे और न किसी के बुलाने पर या पुकारने पर बोलते थे, किन्तु यतनापूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे।

२२. सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने, तं वोसज्ज वत्थमणगारे।
पसारित्तु बाहुं परक्कमे, णो अवलंबियाण कंधंसि॥

२२—वे अनगार शीतकाल में मार्ग में चलते हुए उस वस्त्र (इन्द्रप्रदत्त देवदूष्य) को छोड़कर भुजाओं को पसार कर चलते थे अर्थात् शीत से संतप्त होकर भुजाओं को सिकोड़ते नहीं थे और कन्धों पर हाथ रखकर खड़े ही होते थे।

३१३. २३. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयं ति त्ति बेमि॥
—आया० सु० १, अ० ६, उ० १

२३—मतिमान् महर्षि माहण महावीर ने सर्वथा निदान कर्म से रहित होकर इस प्रकार की विहारचर्या विधि का आचरण-अनुसरण किया था। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

भगवओ सेज्जा—

भगवान की शैया—

३१४. १. चरियासणाइं सेज्जाओ, एगतियाओ जाओ बुइयाओ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरे॥

३१४. १—किसी एक समय भगवान् महावीर ने विहार के समय जिस शैया और आसन का सेवन किया था, उसके सम्बन्ध में (जम्बूस्वामी के) पूछने पर आर्य सुधर्मा ने उस शैया और आसन के बारे में इस प्रकार कहा—

२. आवेसण-सभा-पवासु, पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियट्ठाणेसु, पलालपुञ्जेसु एगदा वासो॥

२—किसी समय तो उन भगवान् महावीर ने शून्य घर में, सभाभवन में, प्याऊ में, दुकानों में निवास किया। अथवा कभी लुहार की शाला में या पलालघास का ढेर रखा हुआ था, ऐसे स्थान में निवास किया।

३. आगंतारे आरामागारे, गामे णगरे वि एगदा वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगदा वासो॥

३—किसी समय पन्थागार (धर्मशाला, गाँव के बाहर पथिकों के ठहरने के लिये बने स्थान) में, उद्यानगृह में, ग्राम में, नगर में निवास किया। किसी समय श्मशान में अथवा शून्यगृह में अथवा वृक्ष के नीचे वास किया।

४. एतेहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी पतेरसवासे।
राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति॥

४—श्रमण भगवान् महावीर इन पूर्वोक्त स्थानों में तपःसाधना में निमग्न रहते हुए बारह वर्ष छः मास और पन्द्रह दिन तक रात-दिन यतना पूर्वक प्रमाद रहित और समाधियुक्त होकर ध्यानस्थ रहे।

३१५. ५. णिद्दं पि णो पगामाए, सेवया भगवं उट्ठाए।
जग्गावती य अप्पाणं, ईसिं साई य पि अपडिण्णे॥

३१५. ५—भगवान् निद्रा का सेवन नहीं करते थे, यदि कभी नींद का झोंका आता तो उठकर अपनी आत्मा को जागृत करते, उसकी झलक भी देखते तो सावधान होकर चलने लगते, वे निद्रा लेने की आकांक्षा से अतीत थे अर्थात् रहित थे।

६. संबुज्झमाणे पुणरवि, आसिसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ, बहिं चंकमिया मुहुत्तागं॥

६—फिर भी निद्रा के स्वभाव को जानने वाले भगवान् संयमानुष्ठान में व्यवस्थित होकर अप्रमत्त भाव से विचरण करते थे। यदि कभी रात में झपकी आने लगती तो बाहर निकलकर मुहूर्त भर तक भ्रमण करके पुनः आत्म-चिन्तन में लीन हो जाते थे।

३१६. ७. सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति॥

३१६. ७—उन शून्य स्थानों में सर्पादि विषैले जन्तुओं अथवा गृध्रादि मांसाहारी पक्षियों द्वारा उन पर अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग हुए।

८. अदु कुचरा उवचरंति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगतिया पुरिसा य ॥

८—इसके अतिरिक्त उन एकाकी विचरने वाले भगवान् महावीर को चोर सशस्त्र ग्रामरक्षक अथवा विषय-वासना में मत्त गांव की स्त्रियाँ या दुष्ट पुरुष भी आकर उपसर्ग—कष्ट देते थे।

९. इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भि-गंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं ॥

९—भगवान् इस लोक के मनुष्य, तिर्यंचों द्वारा और परलोक के देवों आदि द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रकार के उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करते थे एवं सुगंधित, दुर्गन्धित पदार्थों से आने वाली सुगंध व दुर्गन्ध के लिये और अनेक प्रकार के कटु-मधुर शब्दों को सुनकर भी हर्ष-विषाद नहीं करते थे।

१०. अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभिभूय, रीयई माहणे अबहुवाई ॥

१०—वे पांचों समितियों से युक्त रहते हुए विविध प्रकार के दुःख रूप स्पर्शों, उपसर्ग, परीषहों को सहन करते थे। भगवान् महावीर अत्यल्प प्रमाण में बोलने वाले थे और रति-अरति पर विजय प्राप्त करके संयमानुष्ठान में स्थित रहते थे।

११. स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु, एगचरा वि एगदा राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥

११—वे भगवान् महावीर लोगों के पूछने पर कि तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़े हो? अथवा कभी रात्रि में एकान्त स्थान की तलाश में घूमने वाले व्यभिचारी व्यक्तियों के द्वारा भी उक्त प्रश्न पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं देते। जिससे वे क्रोधित होकर उन्हें मारने पीटने लगते, फिर भी भगवान् समाधिस्थ शांत रहते किन्तु उनसे प्रतिशोध—बदला लेने की भावना नहीं रखते थे।

३१७. १२. अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए सकसाइए झाति ॥

३१७. १२—इस स्थान में यह कौन हैं? ऐसा पूछने पर भगवान् कहते कि 'मैं भिक्षु हूँ' यह सुनकर यदि वे चले जाने को कहते तो वहाँ से चले जाते और जाने की न कहकर उन पर क्रोधित होते तो आत्म-चिन्तन और सहिष्णुता उत्तम—श्रेष्ठ धर्म है यह चिन्तन कर वे उनके क्रोधित होने पर भी मौन रहकर आत्मध्यान से विचलित नहीं होते थे, उसमें लीन रहते थे।

१३. जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते।
तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए णिवायमेसंति ॥

१३—जिस शिशिर ऋतु में ठंडी हवा चलती है, तब कई एक साधु कांपने लगते हैं और उस शीतकाल में हिम-वर्षा के पड़ने पर निर्वात-वायु रहित स्थान की खोज करते हैं।

१४. संघाडीओ पविसिस्सामो, एहा य समादहमाणा।
पिहिया वा सक्खामो, अतिदुक्खं हिमग-संफासा ॥

१४—अत्यन्त दुःख देने वाले उस हिमजन्य शीत स्पर्श के कारण कई व्यक्ति सोचते हैं कि ठंड से बचने के लिये कपड़े पहनेंगे और वे अग्नि जलाने के लिये ईंधन खोजते हैं और शरीर को ढांकने के लिये कंबल ओढ़ते हैं।

१५. तंसि भगवं अपडिण्णे, अहे वियडे अहियासए दविए।
णिक्खम्म एगदा राओ, चाएइ भगवं समियाए ॥

१५—ऐसे समय में भी भगवान् वायु रहित स्थान आदि की वांछा से रहित होकर चारों तरफ की दीवारों से रहित केवल ऊपर से आच्छादित निर्जनवन स्थान में ठहरकर कभी रात्री में बाहर निकलकर और वहाँ कुछ समय ठहरकर शीत-परिषह को समभाव पूर्वक सहन करते थे।

३१८. १६. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयं ति त्ति बेमि ॥
—आया० सु० १, अ० ९, उ० २

३१८. १६—मतिमान् माहन भगवान् महावीर ने सर्वथा निदान रहित होकर अनेक बार इस विधि का परिपालन किया था। ऐसा मैं कहता हूँ।

भगवओ परीसह-उवसग्गा—

३१९. १. तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंस-मसगे य।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥

२. अह दुच्चर-लाढमचारी, वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च।
पंतं सेज्जं सेविंसु, आसणगाणि चेव पंताइं ॥

३. लाढेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूहदेसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवतिंसु ॥

४. अप्पे जणे णिवारेइ, लूसणए सुणए दसमाणे।
छुछुकारंति आहंतु, समणं कुक्कुरा डसंतु त्ति ॥

५. एलिक्खए जणे भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी।
लट्ठिं गहाय णालीयं, समणा तत्थ एव विहरिंसु ॥

६. एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं।
संलुंचमाणा सुणएहिं, दुच्चरगाणि तत्थ लाढेहिं ॥

७. निधाय दंडं पाणेहिं, तं वोसज्जकायमणगारे।
अह गामकंटए भगवं, ते अहियासए अभिसमेच्चा ॥

८. णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो ॥

३२०. ९. उवसंकमंतमपडिण्णं, गामंतियं पि अप्पत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिंसु, एत्तातो परं पलेहि त्ति ॥

भगवान् को परीषह उपसर्ग—

३१९. १—समिति-गुप्ति से युक्त श्रमण भगवान् महावीर तृण-स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशकस्पर्श तथा इनके अतिरिक्त और दूसरे विविध प्रकार के स्पर्शों को सदा समभाव पूर्वक सहन करते थे।

२—जब भगवान् महावीर ने दुर्गम्य लाढ़ देश के वज्रभूमि और शुभ्रभूमि नामक दोनों विभाग में विहार किया तो वहाँ उन्होंने प्रान्त शैया (अति तुच्छ) व प्रान्त आसन का सेवन किया।

३—उस लाढ देश में उनको बहुत से उपसर्ग हुए। बहुत से लोग मारते-पीटते थे। अत्यन्त रूक्ष अन्न पानी का सेवन किया। वहाँ के कुत्ते भगवान् को कष्ट देते और लोग उन्हें काटने के लिये छोड़ जाते थे।

४—वहाँ के अनार्य और असंस्कारी लोगों में से कोई एक उन कष्ट देते हुए और काटने के लिए दौड़ते हुए कुत्तों को रोकता था। शेष लोग तो कुतूहल से छू-छू करके उन कुत्तों को काटने के लिए प्रेरणा करते। वे अनार्य लोग भगवान् को दण्डादि से मारते भी थे।

५—उस वज्रभूमि में तामसी भोजन करने के कारण ऐसे कठोर स्वभाव वाले बहुत से लोग थे जो भिक्षुओं के पीछे कुत्ते छोड़ देते थे। जिससे भिक्षु (बौद्ध) लाठी या नालिका लेकर वहाँ विचरते थे। फिर भी ऐसे अनार्य क्षेत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने अकेले बार-बार विहार किया था।

६—इस प्रकार लकड़ी रखकर विचरने पर भी कुत्ते उनके पीछे लगे रहते और उन्हें काट खाते थे। उस लाढ प्रदेश में विचरना आर्यों, साधु सन्तों के लिए बड़ा विकट था।

७—अनगार भगवान् महावीर प्राणियों में मन, वचन, कायरूप दण्ड एवं शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर विचरण करते थे। जिससे ग्रामीणों के उन कंटक रूप वाक्यों को निर्जरा हेतु जानकर समभाव पूर्वक सहन किया था।

८—अथवा जैसे हाथी संग्राम को जीतकर पारगामी होता है इस प्रकार भगवान् महावीर भी उस लाढ प्रदेश में परिषह रूपी शत्रु सेना को जीतकर पारगामी हुए। एक बार उस लाढ देश में ग्राम के न मिलने पर वे वन में ही ध्यानस्थ हो गये।

३२०. ९—जब अप्रतिबद्ध विहारी भगवान् भिक्षा या स्थान के लिये ग्राम के समीप पहुँचते अथवा नहीं पहुँचते या गाँव से बाहर निकलते तो पहले वे उन्हें मारते पीटते और फिर कहते कि तुम यहाँ से दूर चले जाओ।

१०. हयपुव्वो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा फलेणं ।
अदु लेलुणा कवालेणं, हंता हंता बहवे कंदिसु ॥

१०—उस लाढ़ देश में पहले तो बहुत से लोग डण्डों से मुक्कों से, कुन्तों से, फलकों से, पत्थरों से, ठोकरों से मारते और बाद में शोर मचाते कि अरे लोगो आओ, देखो (यह नंगा व्यक्ति कौन है ?)

११. मंसूणि छिन्नपुव्वाइं, उट्ठभियाए एगया कायं ।
परीसहाइं लुंचिसु, अहवा पंसुणा अवकिरिंसु ॥

११—वहाँ के लोगों ने किसी समय ध्यान मुद्रा में खड़े उन भगवान् को पकड़कर उनके शरीर का माँस काटा; नाना प्रकार के कष्ट दिये, अनेक तरह से दुःखित किया और धूल की वर्षा की थी।

१२. उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु ।
वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे ॥

१२—कभी-कभी वे लोग ऊपर उठाकर जमीन पर पटक देते थे अथवा आसन से बैठे हुए भगवान् को धक्का देकर आसन से दूर फेंक देते थे, परन्तु भगवान् अपने शरीर का ममत्व छोड़कर परीषहों को सहन करने में सावधान थे। परीषह जन्य दुःख को सहन करने वाले एवं निदान कर्म से रहित अप्रतिबद्ध विहारी थे।

१३. सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे ।
पडिसेवमाणे फरुसाइं, अचले भगवं रीइत्था ॥

१३—जिस प्रकार कवच से सुसज्जित वीर-सुभट युद्ध के अग्रभाग पर रहता हुआ भी शस्त्रों से छिन्न-भिन्न नहीं होता है इसी प्रकार धैर्य से सुरक्षित भगवान् भी परीषहों को झेलते हुए तनिक भी विचलित न हुए।

३२१. १४. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णे णं भगवया एवं रीयंति त्ति बेमि ॥
—आया सु० १, अ० ९, उ० ३

३२१. १४—काश्यप गोत्री मतिमान् माहन भगवान् महावीर ने निदान कर्म से रहित (अप्रतिज्ञ) होकर इस विधि के अनुसार विहार किया—ऐसा मैं कहता हूँ।

भगवओ तिगिच्छाइवज्जणं—

भगवान् का चिकित्सादि वर्जन (त्याग)—

३२२. १. ओमोदरियं चाएति, अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं ।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा, णो से सातिज्जति तेइच्छं ॥

३२२. १—भगवान् रोगों का स्पर्श न होने पर भी ऊनोदरी तप करने में समर्थ थे। रोग के होने पर या न होने पर भी औषधि सेवन चिकित्सा की इच्छा नहीं करते थे।

२. संसोहणं च वमणं च, गायब्भंगणं सिणाणं च ।
संबाहणं ण से कप्पे, दंतपक्खालणं परिण्णाए ॥

२—शरीर को अशुचिमय जानकर भगवान् रोग की शान्ती के लिए शरीर संशोधन हेतु विरेचन (जुलाब) लेना, वमन करना, शरीर पर तेल-मर्दन करना, स्नान करना, चंपी कराना, दन्त मञ्जन करना इत्यादि कार्यों को नहीं करते थें।

३. विरए गामधम्मेहिं, रीयति माहणे अबहुवाई ।
सिसिरंसि एगदा भगवं, छायाए झाइ आसी य ॥

३—वे श्रमण भगवान् इन्द्रियों के धर्मों—विषयों से विरक्त रहते थे और अल्पभाषी होकर विचरते थे। कभी-कभी शीत-काल में भी छाया में ध्यानस्थ रहते थे।

भगवान् की आहार-चर्या—

३२३. ४—वे ग्रीष्म-ऋतु में उत्कटु आसन से सूर्य के सन्मुख होकर आतापना लेते थे और धर्म साधना के कारण रूप शरीर को टिकाये रखने के लिए चावल, बेर का चूर्ण, उड़द आदि नीरस आहार लेकर अपना निर्वाह करते थे।

५—भगवान् ने तीन वस्तुओं का सेवन करके आठ मास तक का निर्वाह किया, समय यापन किया। एक बार कभी-कभी भगवान् अर्द्ध मास या एक मास तक निराहार-निर्जल रहे अर्थात् आहार-पानी कुछ नहीं लेते थे।

६. अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता।
रायोवरायं अपडिण्णे, अन्नगिलायमेगया भुञ्जे ॥

६. कभी-कभी दो मास से भी अधिक समय तक और कभी-कभी छह-छह मास तक आहार पानी का सर्वथा त्याग कर भगवान् महावीर रात-दिन निरीह होकर विचरते थे। एक वार अचलित रस वाले वासे आहार का सेवन किया था।

७. छट्ठेणं एगया भुञ्जे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेण एगया भुञ्जे, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥

७—वे भगवान् कभी दो-दो दिन के अन्तर से, कभी तीन तीन दिन के अन्तर से, कभी चार-चार दिन के अन्तर से, कभी पाँच-पाँच दिन के अन्तर से, कभी छह-छह दिन के अन्तर से आहार करते थे। वे उपवास के पारणे में वासी आहार करते थे। इस तरह से आत्मा का पर्यालोचन करते हुए निदान रहित होकर समाधि में लीन रहते थे।

३२४. ८. णच्चाणं से महावीरे, णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वि ण कारित्था, कीरंतं पि णाणुजाणित्था ॥

३२४. ८—वे महावीर भगवान् हेय-ज्ञेय और उपादेय रूप पदार्थों को जानकर न तो स्वयं पापकर्म करते थे, न दूसरों से कराते थे और न करने वालों की अनुमोदना भी करते थे।

९. गामं पविसे णयरं, वा, घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयत-जोगयाए सेवित्था ॥

९—वे भगवान् महावीर ग्राम या नगर में प्रवेश करके दूसरों के द्वारा वनाय शुद्ध आहार की गवेपणा करते और उस शुद्ध आहार की गवेपणा करके विवेकपूर्वक सयतयोग से उस आहार का सेवन करते थे।

१०. अदु वायसा दिगिंछत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठंते, सययं णिवतिते य पेहाए ॥

१०—जव भगवान् महावीर भिक्षा के लिए पधारते तव मार्ग में क्षुधा से आर्त्त कौवा आदि पक्षियों को या पान की अभिलापा वाले प्राणियों को भूमि पर एकत्रित हुए देखकर विवेकपूर्वक चलते थे कि जिससे उनके आहार में विघ्न न पड़े।

११. अदु माहणं व समणं वा, गामपिंडोलगं च अतिहिं वा।
सोवागं मूसियारं वा, कुक्कुरं वा वि विट्ठियं पुरतो ॥

११—अथवा ब्राह्मण को या शाक्यादि भिक्षुओं को अथवा गाँव के भिखारियों को और अतिथियों, चांडाल को, बिल्ली को, कुत्ते को अथवा दूसरे प्राणियों को आगे खड़ा देखते तो

१२. वित्तिच्छेदं वज्जंतो, तेसप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥
(त्रिभिः कुलकम्)

१२—उनकी आजीविका में बाधा न डालते हुए उनके लिये अप्रीतिकर न होते हुए, धीरे-धीरे चलते एवं किसी भी जीव की हिंसा विराधना न करते हुए आहार-पानी की गवेपणा करते थे।

१३. अवि सूइयं व सुक्कं वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धए दविए ॥

१३—दही आदि से मिश्रित आहार, शुष्क आहार, वासा, आहार, पुराने कुल्माप का आहार अथवा पुराने जीर्ण धान्य का आहार, जौ आदि का आहार, स्वादिष्ट आहार आदि मिलने पर अथवा नहीं मिलने पर हर्ष-विषाद नहीं करके अपनी साधना में दत्तचित्त रहते थे।

३२५. १४. अवि झाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं।
उड्ढमहे य तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे ॥

३२५. १४—वे भगवान् महावीर स्थिर आसन से बैठकर और निश्चल मन होकर धर्म-शुक्ल ध्यान ध्याते थे। वे उस ध्यान में ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् लोक के स्वरूप का चिन्तन करते थे। वे सदा निदान कर्म से रहित होकर आत्मस्वरूप को देखते हुए समाधिस्थ रहते थे।

१५. अकसाई विगयगेही, य सद्दरूवेसुऽमुच्छिए झाति ।
छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमायं सइं पि कुव्वित्था ॥

१५—वे भगवान् महावीर कषाय रहित होकर, रसगृद्धि को त्यागकर, शब्द रूप आदि इन्द्रिय-विषयों में अमूर्च्छित होकर ध्यान करते थे। छद्मस्थ होने पर भी सदनुष्ठान में पराक्रम करते हुए उन्होंने एक बार भी प्रमाद नहीं किया।

१६. सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए ।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समिआसी ॥

१६—भगवान् महावीर स्वयं ही तत्व-लोकस्वरूप को जानकर आत्मशुद्धि के द्वारा मन, वचन, काया आदि तीनों योगों को वश में करके यावज्जीवन के लिए कषायों से निवृत्त हो गये थे और माया रहित होकर वे समिति-गुप्ति के परिपालक थे।

३२६. १७. एस विही अणुक्कंतो, माहणेणं मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयति —त्ति बेमि ॥

—आया० सु० १, अ० ९, उ० ४

३२६. १७—काश्यपगोत्री अप्रतिबद्धविहारी मतिमान महर्षि भगवान् महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए उक्त विधी का आचरण किया था। ऐसा मैं कहता हूँ।

केवलणाण-दंसणुप्पत्ति—

३२७. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स बारसवासा वीइक्कंता, तेरसमस्स य वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे—वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं, सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगतेणं, पाईणगामिणीए छायाए, वियत्ताए, पोरिसीए, जंभियगामस्स णगरस्स वहिया णईए उजुवालियाए उत्तरे कूले, सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि, वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, सालरुक्खस्स अदूरसामंते, उक्कुडुयस्स, गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स, छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं[1], उड्ढंजाणु अहोसिरस्स, धम्मज्झाणोवगयस्स, झाणकोट्ठोवगयस्स, सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स, निव्वाणे, कसिणे, पडिपुण्णे, अव्वाहए, णिरावरणे, अणंते, अणुत्तरे, केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे।[2]

केवलज्ञान—दर्शन-उत्पत्ति—

३२७. श्रमण भगवान् महावीर को इस प्रकार विचरते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर तेरहवें वर्ष के मध्यभाग में ग्रीष्मऋतु के दूसरे मास, चौथे पक्ष अर्थात् वैशाख शुक्ल पक्ष में, वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन सुव्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त में हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर दिन के पिछले प्रहर में वियत नाम की पौरुषी में अर्थात् पिछली पौरुषी में जृम्भक ग्राम नाम के नगर के बाहर ऋजुवालिका नदी के उत्तर तट पर श्यामाक नामक गाथापति के खेत में वैयावत्त चैत्य के उत्तर-पूर्व दिशा-ईशान कोण में शाल वृक्ष के अदूरसामन्त—न अति दूर और न अति पास अर्थात् कुछ दूरी पर ऊपर को घुटने और नीचे को सिर करके गोदुहासन से बैठे आतापना लेते हुए निर्जल षष्ठभक्त (दो उपवास) तप पूर्वक धर्म ध्यान में लीन, ध्यान कोष्ठ में उपगत शुक्ल ध्यानान्तरिका में आरूढ़ भगवान् को निर्दोष, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याधातरहित, निरावरण, अनन्त, अनुत्तर-सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

---

१. ठाणं अ० ६, सु० ५३१ ।

२. तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेण, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरित्तेणं, अणुत्तरेणं आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं, अणुत्तरेणं वीरिएणं, अणुत्तरेणं अज्जवेणं, अणुत्तरेणं मद्दवेणं, अणुत्तरेणं लाघवेणं, अणुत्तराए खंतीए, अणुत्तराए मुत्तीए, अणुत्तराए गुत्तीए, अणुत्तराए तुट्ठीए, अणुत्तरेणं सच्च-संजम-तव-सुचरिय-सोवचइय-फलपरिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं। तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीएं पक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स वहिया उजुवालियाए नईए तीरे वियावत्तस्स चेईयस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुयनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहि नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने ॥

—कप्प० सु० १२०

से भगवं अरिहं जिणे णए, केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी, सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा—

आगतिं गती ट्ठितीचयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवितं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे, एवं च णं विहरइ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०२०

वे भगवान् अर्हत्, जिन, ज्ञात (ज्ञानी), केवली, सर्वभावदर्शी, देव, मनुष्य, असुर तथा लोक की समस्त पर्यायों को जानने वाले हो गये, यथा—

जीवों की आगति—गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, भुक्त, पीत (पिया हुआ) कृत, प्रतिसेवित, प्रकट कर्म, गुप्त बात को, जीव के मन के भावों को, सर्व लोक को, सब जीवों के सभी भावों को जानते देखते हुए विचरण करते हैं।

देवागमणं—

३२८. जण्णं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स णिव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए णिरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे तण्णं दिवसं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहि य देवीहि य ओवयंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देव-सण्णिवाते देव-कहक्कहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०२२

देवागमन—

३२८. जिस समय श्रमण भगवान् महावीर को निर्दोष, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याघातरहित निरावरण, अनन्त, अनुत्तर प्रधान केवल-ज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, उस समय भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव और देवियों के आवागमन से वहाँ का वातावरण एक महान दिव्य देवोद्योत से, देव समूह से, देवों के कहकहों से व्याप्त हो रहा था,

भवणवासी देवा आगया—

३२९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था, काल-महाणील-सरिस-णील-गुलियगवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियसयवत्तमिव पत्तलनिम्मला ईसीसिय-रत्त-तंबणयणा गरुलायय-उज्जुतुंग-णासा ओयविय-सिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्ठा पंडुर-ससि-सयल-विमल-णिम्मल-संख-गोखीर-फेण-दगरय-मुणालिया-धवल-दंत-सेढी हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घण-कसिण-रुयग-रमणिज्ज-णिद्धकेसा वामेगकुण्डल-धरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता ईसी-सिलिंध-पुप्फ-प्पगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया वयं च पढमं समइक्कंता बिइयं च असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा तलभंगय-तुडिय-पवर-भूसण-निम्मल-मणि-रयण-मंडियभुया दस-मुद्दा-मंडियग्ग-हत्था चूलामणि-चिंधगया सुरूया महिड्ढिया महज्जुइया महाबला महायसा महासोक्खा महाणुभागा हारविराइयवच्छा कडग-तुडिय-थंभिय-भुया अंगयकुण्डलमट्ठगंडतल—

भवनवासी देवों का आगमन—

३२९. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर की सेवा में बहुत से असुरकुमार देव आये, जैसे—काल, महानील, नील, गुलिक, भैंस के सींग, अलसी के फूल के सदृश कृष्ण शरीर वर्ण वाले, सुन्दर पक्ष्मल—सूक्ष्मबरौनी से कलित, कुछ श्वेत, कुछ रक्त-लाल, विकसित कमल के समान नेत्र वाले, गरुड के सदृश सरल एवं ऊँची नासिका वाले, संस्कारित शिलाप्रवाल—मूंगा एवं बिम्ब फल के समान अतीव अरुण ओष्ठ वाले, श्वेत-धवल चन्द्र, विमल, निर्मल शंख गोक्षीर-फेन जलकण, मृणाल के समान शुभ्र दन्त पंक्तिवाले आग में तपाये गये, पश्चात् क्षार पदार्थों से धोये गये और पुनः अग्नि में तपाकर उज्ज्वल किये गये सुवर्ण के समान रक्ताभा से युक्त तालु जिह्वा वाले, अंजन एवं काले मेघ के जैसे एवं रुचकर (मणि विशेष) के समान स्निग्ध केशवाले, बायें कान में कुण्डल को धारण करने वाले, आर्द्र चन्दन से लिप्त शरीर वाले, सिलीन्ध्र पुष्प के वर्ण जैसे कुछ लाल निर्दोष, महीन, वस्त्रों को पहनने वाले, प्रथम वय का उल्लंघन कर दिया और अभी तरुणावस्था को प्राप्त नहीं हुए ऐसे किशोरावस्था, अर्थात् अभिनव यौवनावस्था वाले, तलभंगक (हाथों में पहनने का आभूषण विशेष) त्रुटित आदि निर्मल, मणिरत्नों से बने हुए श्रेष्ठ आभूषणों से सुशोभित भुजाओं वाले, हाथों की दसों अंगुलियों में मुद्रिकाओं-अंगूठियों को धारण करने वाले, चूडामणि चिन्ह के धारक, सुन्दर महान ऋद्धि के धारक महाद्युति, बल, यश कीर्ति, सौख्य अचिन्त्य प्रभाव वाले, हार आदि से शोभित वक्ष स्थल वाले, कटक त्रुटित आदि से स्तंभित भुजाओं वाले अंगद कुण्डल आदि से घर्षित कपोल — [illegible]

फण्णपविवारी[1] विचित्तवत्थाभरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिया कल्लाणग-पवर-मल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंब-वण-मालधरा दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा—

एवं अन्य कर्णाभूषणों को धारण करने वाले, हाथों में विविध प्रकार के आभरणों—आभूषणों को धारण करने वाले, विविध प्रकार की मालाओं एवं मुकुट से शोभित कल्याणकारी श्रेष्ठ-उत्तम वस्त्रों के धारक आनन्दप्रद उत्तम गन्ध और विलेपनों से सुवासित शरीर वाले, विशिष्ट आभावाले प्रलंबमान वन मालाओं के धारक अनेक असुरकुमार देव दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य रूप से एवं इसी प्रकार के दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य कांति से, दिव्य तेज से, लेश्या से, दशों दिशाओं को उद्योतयुक्त, प्रभायुक्त करते हुए—

समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेन्ति करित्ता वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता साइं साइं णामगोयाइं सावेन्ति णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥

—आव० सु० २२

श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित हुए। वारम्वार श्रमण भगवान् महावीर के समीप आ आकर बड़ी भक्ति के साथ श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके अपने-अपने नाम और गोत्रों का उच्चारण करके न तो अति निकट और न अति दूर सेवा शुश्रूषा नमस्कार करते हुए विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर सामने बैठ जाते हैं।

३३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था णाग-पइणो सुवण्णा विज्जू अग्गी य दीवा उदही दिसाकुमारा य, पवणथणिया य, भवणवासी णागफडा-गरुल-वइर-पुण्णकलस-सीह-हयवर-गयवर वर-मउड-वद्धमाण-णिज्जुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्ढिया सेसं तं चेव-जाव-पज्जुवासंति।

—ओव० सु० २३

३३०. उस काल उस समय में असुरेन्द्र (असुरकुमार) जाति के भवनवासी देवों को छोड़कर नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत-कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, पवन-कुमार, स्तनितकुमार जाति के भवनवासी देव जिनके मुकटों में क्रमशः नागफल गरुड, वज्र, पूर्णकलश शोभायमान भयंकर सिंह, अश्व, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वास्तिक) के विचित्र चिन्ह अंकित हैं, स्वरूपवान महती ऋद्धि से युक्त होकर श्रमण भगवान् महावीर के सामने—पास उपस्थित हुए, शेष वर्णन पूर्वानुसार—यावत्—सेवा करते हैं।

वाणमंतरा देवा आगया—

३३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था पिसाया भूया य जक्ख-रक्खस किंनर-किंपुरिस-भुयगपइणो य महाकाया गंधव्व-णिकायगणा णिउण-गंधव्व-गीयरइणो अणवण्णिय-पणवण्णिय-इसिवादिय-भूयवादिय-कंदिय-महाकंदिया य कुहंड-पययदेवा चंचल-चवल-चित्त-कीलण-दवप्पिया गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-गीय-णच्चण-रई वणमालामेल-मउड-कुण्डल-सच्छंद-विउव्विया-हरण-चारु-विभूसणधरा सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलंब-सोभंत-कंत-वियसंत-चित्त-वणमाल-रइय-वच्छा कामगमा काम-रूवधारी णाणाविह-वण्णरागवर-वत्थ-चित्त-चिल्लय-णियंसणा विविह-देसी-णेवच्छ-गहियवेसा पमुइय-कंदप्प-कलह-केली-कोलाहल-

वाणव्यंतर देवों का आगमन—

३३१. उस काल एवं उस समय श्रमण भगवान् महावीर के पास अति चंचल, चपल चित्त वाले, क्रीड़ा, हास-परिहास, प्रिय स्मित हास्य वचनोच्चार प्रिय अर्थात् हँसी मजाक, गपशप करने में चतुर, गीत, नृत्य के अनुरागी, वन के पुष्पों से निर्मित माला, मुकुट कुण्डल एवं अपनी इच्छानुसार निष्पादित और दूसरे सुन्दर आभूषणों से सुशोभित, सभी ऋतुओं के सुगन्धित कुसुमों से सुरचित लम्बी-लम्बी शोभित, मनोहर विकसित चित्र-विचित्र वनमालाओं द्वारा शोभायमान वक्षस्थल वाले, इच्छानुसार गमन एवं इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, रंग बिरंगे तथा चित्र-विचित्र प्रभा वाले भड़कीले, चमकते हुए वस्त्रों को पहनने वाले, विविध देशों के शृंगार प्रसाधनों एवं वेषभूषा से अपने शरीर

पिया हासबोलबहुला अणेगमणि-रयण-विविह-णिज्जुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्ढिया -जाव-पज्जुवासंति ।

—ओव० सु० २४

को श्रृंगारित करने वाले, प्रमोद जन्य कंदर्प प्रधान कलह क्रीड़ा जन्य कोलाहल प्रिय, हंसी मजाक में रत रहने वाले, विविध प्रकार के मणिरत्नों से निष्पादित चित्र-विचित्र चिन्ह वाले, सुन्दर पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष भुजगपति (महोरग) तथा नाट्य गीत एवं सामान्य गीतों में रति रखने वाले सुन्दर विशाल शरीर धारी गंधर्व निकाय—जाति के और अप्रज्ञप्तिक, पंचज्ञप्तिक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दिल महा-क्रन्दित कुष्माण्ड पतगदेव आदि अनेक प्रकार के वाणव्यंतर देव महाऋद्धि वैभव के साथ आये—यावत्—सेवा करते हैं ।

जोइसिया देवा आगया—

३३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स (वद्धमाणस्स) जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था, विहस्सती चंद-सूर-सुक्क-सणिच्छरा राहू धूमकेतू- बुहा य अंगारका य तत्त-तवणिज्ज-कणग-वण्णा जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति केऊ य गइरइया अट्ठावीसतिविहा य णक्खत्तदेवगणा णाणासंठाण-संठियाओ य पंचवण्णाओ ताराओ ठियलेसा चारिणो य अविस्सा-ममंडलगई पत्तेयं णामंक-पागडिय-चिंधमउडा महिड्ढिया-जाव-पज्जुवासंति ।

—ओव० सु० २५

ज्योतिष्क देवों का आगमन—

३३२. उस काल उस समय में तप्त तपनीय-रक्तसुवर्ण और कनक-पीतसुवर्ण के सदृश वर्ण वाले बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध और अंगारक-मंगल नामक ज्योतिषी देव तथा इनके अतिरिक्त और जो सदा गतिशील ग्रह ज्योतिष चक्र में भ्रमण करते हैं, ऐसे जलकेतु आदि केतुग्रह एवं अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवता और विविध प्रकार के आकार-प्रकार संस्थान वाले, पंचवर्ण वाले, स्थिर लेश्या-शरीर प्रभा वाले, निरन्तर ज्योतिषमण्डल में संचरणशील ऐसे तारामण्डल के ज्योतिष्क देव अपने-अपने नामों से युक्त स्पष्ट चिन्हों से अंकित मुकुटों को धारण करके महाऋद्धि वैभव के साथ श्रमण भगवान् महावीर के पास आये—यावत्—पर्युपासना करते हैं ।

वेमाणिया देवा आगया—

३३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था । सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्साराणयपाणयारण-अच्चुयवई सा-माणियतायत्तीससहिया सलोगपालअग्गमहिसिपरिसाणीअअप्प-रक्खेहिं संपरिवुडा समणुगम्मंतसस्सिरीया सव्वायरभूसिया सुरस-मूहणायगा सोम्मचारुरूवा देवसंघजयसद्दकयालोया मिग-महिस-वराह-छगल-दद्दुर-हय-गयवइ-भुयग-खग्ग-उसभंकविडिमपागडिय-चिंधमउडा पालग-पुप्फग-सोमणस-सिरिवच्छ-णंदि-यावत्त-कामगम-पीइगम-मणोगम-विमल-सव्वओभद्दणाम-धेज्जेहिं तरुणदिवागरक-रातिरेगप्पहेहिं मणिकणगरयणघडियजालुज्जलहेमजालपेरंत-परिगएहिं सपयरवरमुत्तदामलंबंतभूसणेहिं, पचलियघंटावलि-

वैमानिक देवों का आगमन—

३३३. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में (वन्दना के लिए) वैमानिक देव उपस्थित हुए । (वे) सौधर्म-ईशान- सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार आनत, प्राणत, आरण, अच्युत नामक कल्प के अधिपति (स्वामी) सामानिक, त्रायस्त्रिंशक देवों के साथ, लोकपाल, पट-रानियाँ परिषदा, सेना और आत्म-रक्षक देवों से घिरे हुए थे । अपनी सम्पूर्ण श्री—कान्ति, वैभव से भूषित, सुर समूह के नायक सौम तथा चारु—सुन्दर रूप वाले थे । देव संघ के द्वारा जय जयकार के शब्दोच्चारण से गगन मण्डल गुंजाते हुए, मृग, महिष, वराह, छगल (बकरा) दर्दुर, अश्व, गज, सर्प, खड्ग, वृषभ के स्पष्ट चिन्हों से अंकित मुकुटों को मस्तक पर धारण किये हुए थे । पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, काम-गम, प्रीतिगम, मनोगम, विमल, सर्वतोभद्र, नामक विमानों में (बैठकर आये) (वे विमान—) मध्याह्न के सूर्य की किरणों से भी अधिक प्रभा वाले थे, और जिनमें [illegible] मणियों, रत्नों एवं सुवर्ण निर्मित जगमगाती [illegible] लटके रहे हैं, उनमें मोतियों की मालायें, [illegible] आदि आभूषण [illegible] है तथा उन विमानों की [illegible] हुई घंटिकाओं से मधुर शब्द

महुरसद्दवंसतंतितलतालगीयवाइयरवेगं महुरेणं पूरयंता अंबरं, दिसाओ य सोभेमाणा संपट्ठिया विरायंता वेंविंदा। हट्ठतुट्ठ-मणसा सेसा वि य कप्पवरविमाणाहिवा सविमाणविचित्तचिंध-नामंकविगडपागडमउडाडोवसुभदंसणिज्जा समग्गिंति। लोयंत-विमाणवासिणो यावि देवसंघाया पत्तेयविरायमाणविरइयमणि-रयणकुण्डलभिसंतनिम्मलनियगंकियविचित्तपागडियचिंधमउडा दा-यंता अप्पणो समुदयं, पेच्छंता वि य परस्स रिद्धीओ जिणिंदवंद-णनिमित्तभत्तीए चोइयमई जिणदंसणुस्सुयागमणजणियहासा विउलबलसमूहपिंडिया संभमेणं गयणतलविमलविउलगमणग-इचवलचलियमणपवणजइणसिग्घवेगा णाणाविहजाण-वाहणगया, उच्छियधवलायवत्ता विउव्वियजाणवाहणविमाणदेहरयणप्पभारा उज्जोएंता नहं वितिमिरं करेंता सव्विड्ढीए हुलियं (पयाया)। पहिट्ठा देवा पसिढिल-वर-मउड-तिरीड-धारी कुण्डलउज्जो-वियाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउम-पम्हगोरा सेया सुभव-ण्णगंधफासा उत्तमवेउव्विणो विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धरा महिड्ढिया-महज्जुलिया-जाव-पंजलिउडा पज्जुवासंति॥

—ओव० सु० २६

एवं वंशी, वीणा, मृदङ्ग, गीत वाद्यों की मधुर ध्वनियों से गगन मण्डल और दिशाएँ गूँज रही थीं। उनकी चमक से दिशाएँ शोभित हो रही थीं। उन विमानों में आये देव हृष्ट-तुष्ट मन वाले (भगवान् महावीर के पास आये) इसी प्रकार और दूसरे सामानिक देव आदि उत्तम कल्पविमानों के अधिपति देव भी मस्तकों पर विविध चिह्नों से अंकित मुकुटों को धारण किये हुए, जो शुभ दर्शनीय थे, वे आये। इसी प्रकार लोकान्त विमानवासी देव संघ भी आये, उनमें प्रत्येक देव के कानों में मणिरत्नों से विरचित देदीप्यमान कुण्डल शोभित हो रहे थे और जो अपने-अपने मस्तकों पर नामादि स्पष्ट चिह्नों से अंकित मुकुटों को धारण किये हुए थे। अपने-अपने वैभव का प्रदर्शन करते हुए और दूसरों की ऋद्धि को देखते हुए जिनेन्द्र भगवान को वन्दना भक्ति के निमित्त प्रेरित बुद्धि वाले, जिन दर्शन के लिए उत्सुकतापूर्वक आने से आनन्दित, विपुल सैन्य समूह के साथ भक्ति की प्रबलता से सम्भ्रमित, विस्तृत विमल गगनतल में अत्यधिक चपल गति से, मन और पवन की गति से भी अधिक तीव्र गति वाले विविध यान, वाहन, विमान आदि में, (जिन विमानों पर) विमल श्वेत छत्र लगे हुए हैं, (बैठकर) विकुर्वणा द्वारा बनाये हुए यान, वाहन, विमान, शरीर और रत्नों की प्रभा से आकाश को प्रकाशमान करते हुए, अंधकार रहित करते हुए समस्त ऋद्धि वैभव के साथ, शीघ्र प्रयाण करते हुए आये। (वे देव) प्रशिथिल केश विन्यास से शोभित मस्तक वाले, मुकुट की कांति से दीप्तिमान केशराशि वाले, रक्ताभ, पद्मराग सदृश गौर एवं शुक्ल वर्ण वाले' शुभ वर्ण-गंध-स्पर्श वाले, उत्तम वैक्रिय शक्ति वाले, विविध वस्त्र-गंधमाला को धारण किये हुए महान ऋद्धि एवं महान द्युति वाले थे। वे देव अंजलि बद्ध होकर (दोनों हाथ जोड़े) भगवान की सेवा में उपस्थित हुए।

अच्छरगणसंघाया आगया—

३३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अच्छरगणसंघाया अंतियं पाउब्भवित्था।

ताओ णं अच्छराओ धंतधोय-कणग-रुयग-सरिसप्पभाओ समइक्कंताओ य बालभावं अणइवरसोम्मचारुरूवाओ निरुवहय-सरस-जोव्वण-कक्कस-तरुणवयभावं उवगयाओ निच्चं अवट्ठिय-सहावाओ सव्वंगसुन्दरीओ इच्छिय-नेवच्छ-रइय-रमणिज्ज-गहिय-वेसाओ,

किं ते?

अप्सरागणसंघात का आगमन—

३३४. उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के संन्निकट अप्सराओं के अनेक समूह आये।

वे अप्सरायें अग्नि से तपाकर जल से धोये गये सुवर्ण की प्रभा के समान रमणीय प्रभा वाली थीं, अर्थात् गौरवर्णा थीं, शैशवावस्था का अतिक्रमण करके युवावस्था को प्राप्त कर चुकी थीं, अनुपम सौम्य सुन्दर रूप से सम्पन्न थीं, निरोग, शृंगार रस से समन्वित यौवन-सम्पन्न थीं, उनके अंग-प्रत्यंग में तारुण्य छलक रहा था, वे चिरयौवना थीं, सर्वांग सुन्दरी थीं, इष्ट वस्त्राभूषणों द्वारा रमणीय वेशभूषा से विभूषित थीं,

वे वस्त्राभूषण कौन से? (उनके नाम इस प्रकार हैं—)

हारद्धहार-पाउत्त-रयण-कुण्डल-वामुत्तग-हेमजाल-मणिजाल-कणगजाल-सुत्तगउरितिय-कडगखुड्डग-एगावलि-कंठसुत्तमगहग-धरऽच्छ-गेवेज्ज-सोणिसुत्तग-तिलग-फुल्लग-सिद्धत्थिय-कण्णवालिय-ससि-सूर-उसभ-चक्कय-तलमंगय-तुडिय-हत्थमालय-हरिस-केऊर-वलय-पालंब-पलंब-अंगुलिज्जगवलक्खदीणारमालिया-चंद-सूर-मालिया-कंचिमेहल-कलाव-पयरग-परिहेरग-पायजाल-घंटिया-खिखिणि-रयणोरुजाल खुड्डियवर-नेउर-चलणमालियाकणग णिगलजालग-मगरमुह-विरायमाण-नेउर-पचलियसद्दाल-भूसणधरीओ।

हार, अर्धहार, रत्नों से बने हुए कुण्डल, लटकते हेमजाल, मणिजाल, कनकजाल, (सुवर्ण आदि से बने आभूषण विशेष) सूत्र तिलड़ी, कंगन, खुड्डग—अंगूठी विशेष एकावलि, कंठसूत्र, मगधक, धराक्ष, ग्रैवेयक श्रोणिसूत्र—कटिसूत्र, तिलक, पुष्पक, सिद्धार्थिका, कर्णवालिका, शशि, सूर्यऋषभ, चक्रक, तलभंगक त्रुटिक, हस्तमालक, हर्षि, केयूर, वलय, प्रालंब—झूमका, प्रलंब—गले का आभूषण, अंगूठी, वलाक्ष, दीनारमालिका, चन्द्रमालिका, सूर्यमालिका, कांची—मेखलाकटिका आभूषण, कलाप, प्रतरक, परिहेरक, पादजालघंटिका, किंकिणी, रत्नोरुजाल—रत्नों से बना जंघाओं का आभरण विशेष, क्षुद्रिका—जिसमें लटकती हुई साँकलों में छोटी-छोटी घंटिकायें लगी रहती हैं, नूपुर, चलन-मालिका—पैरों का आभूषण, कनकनिकर—पैरों में पहनने का आभूषण, जालक-मछली आदि के मुख जिनमें बने हैं ऐसे नूपुर आदि आभूषणों को धारण किये हुई थीं।[1]

दसद्धवण्ण-रागरइय-रत्तमणहरे हयलालापेलवाइरेगे धवले कणग-खचियंतकम्मे आगासफालियसरिसप्पहे अंसुएणियत्थाओ आयरेणं-तुसार-गोक्खीर-हार-दगरय-पंडुर-दुगुल्ल-सुकुमाल-सुकय-रमणिज्ज-उत्तरिज्जाइं पाउयाओ, वरचंदणचच्चियाओ वराभरण-भूसियाओ सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-रइय-विचित्त-वरमल्लधारिणीओ सुगंध-चुण्णंगराग-वरवास-पुप्फ-पूरगविराइयाओ अहियसस्सिरीयाओ उत्तमवर-धूव-धूवियाओ सिरीसमाणवेसाओ दिव्व-कुसुम-मल्लदाम-पब्भंजलिपुडाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंद-द्धसमललाडाओ चंदाहिय-सोम्मदंसणाओ उक्काओ विव उज्जोए-माणाओ विज्जुघणमिरीइसूरदिप्पंततेयअहियतरसन्निगासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-

उनमें बहुत सी मन को आकर्षित करने वाले घोड़े की लार से भी अधिक सुकुमाल तथा जिनके किनारों पर सोने के तारों के द्वारा वेलबूटे बने हुए हैं, ऐसे पंचरंगे वस्त्र पहने हुई थीं, तो किसी ने गहरे लाल रंग के किसी के श्वेत और किसी ने स्वच्छ आकाश की प्रभा जैसे नीले वस्त्र पहन रखे थे और उन पर हिम-वर्फ गोक्षीर—गाय के दूध के फेन जल कणों के समान श्वेत धवल, सुकोमल और जिन पर बेलबूटे कसीदा निकला हुआ है, ऐसे बहुत ही बारीक वस्त्रों के उत्तरीय-ओढ़ना ओढ़ रखे थे, जिनके शरीर पर उत्तम चन्दन का लेप लगा हुआ था, सुन्दर श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित थीं, सभी ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से सुरचित मालायें धारण कर रखी थीं, सुगन्धित अंगराग से देह को रंजित करने के कारण उत्तम सुगन्धमयी थीं, विविध प्रकार के पुष्पों से बने आभूषणों द्वारा विशेष रूप से सजी हुई थीं, अधिक शोभा-सम्पन्न थीं, उत्तम श्रेष्ठ धूप से धूपायमान होने से सुगन्धमयी हो रही थीं, लक्ष्मी के समान वेषधारिणी थीं और जो अपनी-अपनी अंजलियों—मुट्ठियों में दिव्य कुसुम, सुगन्धित मालायें आदि लिये हुई थीं, जिनके मुख चन्द्र के समान थे, चन्द्र के सदृश जिनकी कांति थी, अर्धचन्द्र सरीखा जिनका ललाट था, चन्द्रमा से बढ़कर भी जिनका सौम्यदर्शन था, उल्का की तरह उद्योतमान थीं, विद्युत की चमचमाहट और सूर्य के प्रकाश से भी अधिक दीप्तिमान थीं, अपने सुन्दर वेशभूषा से शृंगार के घर जैसी प्रतीत होती थीं, अथवा शृंगारगृह के सदृश जिनकी सुन्दर वेशभूषा थी, [illegible]-पूर्वक चलने, बोलने, चेष्टा—देखने आदि की प्रवृत्ति, विलास

१ तत्कालीन लोक व्यवहार में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। वर्तमान में इन आभूषणों के क्या नाम हैं, [illegible] मिलती है।

सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसलाओ सुन्दर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूवजोव्वण-विलास-कलियाओ सुर वधूओ सिरीस-नवणीय-मउय-सुकुमालतुल्लफासाओ ववगयकलि-कलुस-धोयनिद्धंतरयमलाओ सोमाओ कंताओ पियदंसणाओ सुरूवाओ जिणभत्तिदंसणाणुरागेणं हरिसियाओ ओवइयाओ यावि जिणसगासं दिव्वेणं सेसं तं चेव नवरं ठियाओ चेव।

—ओव० सु० ३३-३८

सुमधुर सलाप—आपस में वार्तालाप करना, यथोचित आदर, मान सम्मान करने में निपुण थीं, सुन्दर स्तन, कटि प्रदेश, मुख, हाथ, पैर, नेत्र आदि अंगोपांगों एवं सलौने रूप यौवन, हाव-भाव-विलास आदि से युक्त थीं, शिरीष पुष्प और मक्खन से भी मृदु-नरम एवं सुकुमाल जिनका स्पर्श था, वैर विरोध कलह आदि का जिनमें सर्वथा अभाव था, अपनी स्वच्छन्दता और निर्मलता से देखने में सौम्य कान्त प्रियदर्शनी और सुन्दर प्रतीत होती थीं, ऐसी वे देवांगनायें जिन भक्ति जनित दर्शनानुराग से हर्षित हो जिन भगवान् के सन्निकट आईं, शेष वर्णन देवों के आगमन की तरह आकाश में अधर स्थित होने तक जानना चाहिए।

भगवओ महावीरस्स वण्णओ—

३३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे सहसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुन्डरीए पुरिसवरगंधहत्थी अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधरे वियट्टछउमे

भगवान् महावीर का वर्णन—

३३५. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर (जो निम्नलिखित विशेषणों से सम्पन्न है)—वे आदिकर हैं—स्व-शासन की अपेक्षा श्रुत चारित्र धर्म की आदि करने वाले—प्रारम्भक हैं, तीर्थंकर हैं, स्वयं संबुद्ध हैं, पुरुषोत्तम हैं, पुरुषों में सिंह के समान हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक (श्वेत कमल) के समान हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्ध हस्ती के समान हैं, अभयद हैं, ज्ञानरूपी नेत्र के दाता हैं, मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं, शरण-प्रदायक हैं, जीवदय हैं अर्थात् जीव मात्र के प्रति करुणाशील हैं, भवसागर में द्वीप के समान, त्राणरूप, शरणरूप, आश्रयरूप हैं, चातुर्गतिकरूप संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती हैं, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, विगत छद्म-घाति कर्मों से रहित हैं।

जिणे जाणए, तिण्णे तारए, मुत्ते मोयए, बुद्धे बोहए, सव्वण्णू सव्वदरिसी सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तगं सिद्धिगइ-णामधेज्जं ठाणं सपाविउकामे।

राग-द्वेष को जीतने से जिन हैं, दूसरों को जिताने वाले हैं, तीर्ण—तिरे हुए हैं, दूसरों को तारने वाले हैं, कर्म मुक्त हैं, दूसरों को मुक्त कराने वाले हैं, बुद्ध हैं, दूसरों को बोध देने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, शिव-कल्याण रूप, अचल, अरुज-रोग-रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावर्तन रूप ऐसी सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वाले हैं।

३३६. अरहा जिणे केवली सत्तहत्थुस्सेहे समचउरंस-संठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणी कवोयपरिणामे सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणए, पउमुप्पल-गंध-सरिस-निस्सास-सुरभिवयणे, छवी निरायंक-उत्तम-पसत्थ-अइसेय-निरुवमपले, जल्लमल्ल-कलंक-सेय-रय-दोस-वज्जिय-सरीर-निरुवलेवे, छाया-उज्जोइयंगमंगे

३३६. वे केवलज्ञान सम्पन्न अर्हत् जिन महावीर सात हाथ ऊँचे हैं, समचतुरस्र संस्थान एवं वज्र ऋषभ नाराच संहनन युक्त शरीर वाले हैं, शरीरान्तर्वर्ती वायु के अनुकूल वेग से सम्वन्धित हैं, कंकपक्षी के गुदाशय के समान गुदाशय वाले हैं, कपोल के समान जठराग्नि वाले हैं, शकुन पक्षी के गुदाशय की तरह पुरीषसंसर्ग से रहित (गुदाशय वाले) एवं सुन्दर पृष्ठ पार्श्व भाग तथा जंघा वाले हैं, पद्म एवं नील कमलों की गंध के सदृश सुगन्धित श्वासोच्छ्वास युक्त मुख वाले हैं, कांति युक्त रोग मुक्त उत्तम, प्रशस्त श्वेत, निरुपम मांस वाले हैं, पसीना, मैल, तिल; मसा आदि कलंक, स्वेद, प्रस्वेद रज-धूलि के दोष से वर्जित निर्मल शरीर वाले हैं, कांति से चमचमाते अंगोंपांग वाले हैं।

घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागार-निभ-पिंडियग्गसिरए सामलि-बोंड-घण-निचिय-च्छोडिय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-सुगंध-सुन्दर-भुयमोयग-भिंग-नेल-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण-णिद्ध-निकुरंब-निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्तमुद्धसिरए

अतिनिविड़, स्पष्ट रूप से प्रकटित शुभ लक्षण सम्पन्न, उन्नत, कूटाकार तुल्य निर्माण नामकर्म द्वारा सुरचित मस्तक वाले हैं, सेमल रुई के समान मृदु अतिनिविड़ (घने) स्निग्ध, प्रशस्त, सूक्ष्म, सुलक्षण युक्त, सुगंध सम्पन्न, सुन्दर नीलरत्न विशेष, भ्रमर, नीले, कज्जल उल्लसित भ्रमर समूहवत् कृष्णवर्ण, चिकने घुंघराले बालों वाले हैं,

दालिमपुप्फ-प्पगास-तवणिज्ज-सरिस-निम्मल-सुणिद्ध-केसंतकेस भूमी-घण (निचिय) छत्तागारुत्तिमंगदेसे

दाडिम (अनार) पुष्प तथा तप्त सुवर्ण की प्रभा के समान लाल चिकनी मस्तक की त्वचा वाले, छत्र के समान गोलाकार मस्तक वाले अर्थात् जिनका मस्तक छत्र के सदृश गोल था,

णिव्वण-समलट्ठ-मट्ठ-चंदद्ध-सम-णिडाले

व्रण-फोड़ा फुन्सी आदि के चिन्ह से रहित समतल, अष्टमी के चन्द्र के समान ललाट है,

उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणे

मुखमण्डल शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान है,

अल्लीणपमाणजुत्तसवणे सुस्सवणे

प्रमाणोपेत कान होने से सुन्दर कान वाले हैं,

पीणमंसलकवोलदेसभाए

पुष्ट मांसल भरे हुए सुन्दर कपोल हैं।

आणामिय-चाव-रुइलकिण्हब्भराइ-तणु-कसिण-णिद्ध-भमुहे

वक्रित धनुष के सदृश रुचिर एवं कृष्ण मेघ राशि के समान काली, पतली चिकनी भौंहें हैं,

अवदालिय-पुण्डरीय-णयणे कोयासियधवलपत्तलच्छे

विकसित कमल के समान श्वेत नेत्र हैं, जो विकसित स्वच्छ एवं पक्ष्मल पतली पोपणी से आच्छादित है,

गरुलायय-उज्जु-तुंगणासे

गरुड़ की चोंच के समान दीर्घ सरल एवं उन्नत नासिका है,

उवचियसिलप्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्ठे

संस्कारित शिल प्रवाल मूंगा एवं बिम्बफल के समान लाल ओष्ठ हैं,

पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्खीर-फेण-कुन्द-दगरय मुणालियाधवलदंतसेढी, अखंडदंते अप्फुडियदंते अविरलदंते सुणिद्धदंते सुजायदंते एगदंतसेढी विव अणेगदंते

श्वेत चंद्र के समान विमल, निर्मल शंख, गोदुग्ध—फेन, कुन्दपुष्प, जलकण, मृणाल के समान धवल दंत पंक्ति है अखण्ड दंत, अस्फुटित (एक से एक सटे हुए) दंत, एक दन्त श्रेणी के समान जो दंत पंक्ति मालूम होती हैं,

हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्ततल-तालुजीहे

अग्नि से तप्त पश्चात् जल आदि से धोये गये और पुनः तपाये गये सुवर्ण के समान तालु और जिह्वा है,

अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमंसू

अवर्द्धनशील एवं दो भागों में विभक्त दाढ़ी मूंछ है,

मंसल-संठिय-पसत्थसद्दूल-विउल-हणुए

पुष्ट सुन्दर आकार युक्त अतिरमणीय सिंह के समान चिबुक (दाढ़ी) है,

चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवे

स्वअंगुली की अपेक्षा चार अंगुल प्रमाण वाली एवं शंख के समान ग्रीवा है,

वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-उसभ-नागवर-पडिपुण्ण-विउलक्खंधे

श्रेष्ठ महिष, वराह, सिंह, शार्दूल, वृषभ, श्रेष्ठ हाथी के स्कंध के समान पूर्ण विपुल कन्धे थे,

जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-सुसंठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण-थिर-सुबद्ध-संधिपुरवर-फलिह-वट्टियभुए

भुयगीसर-विउल-भोग-आयाण-पलिह-उच्छूढ-दीहबाहू

वांछित वस्तु की प्राप्ति के लिए सर्पराज द्वारा फैलाये गये अपने विशाल देह के समान दीर्घ बाहू हैं,

रत्ततलोवइय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्दजाल-पाणी

तल भाग में लाल, पृष्ठ भाग में उन्नत, मृदुल, मांसल-पुष्ट, शुभ लक्षण चिन्हों से युक्त, प्रशस्त छिद्र रहित हाथ हैं,

पीवरकोमलवरंगुली

पुष्ट कोमल एवं सुन्दर उत्तम अंगुलियां हैं,

आयंबतंबतलिणसुइरुइलणिद्धणखे

कुछ लाल पतले, शुद्ध, रुचिर, चिकने नख हैं,

चंदपाणिलेहे सूरपाणिलेहे संखपाणिलेहे चक्कपाणिलेहे दिसासोत्थियपाणिलेहे चंद-सूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे

हाथों में चन्द्र रेखा हैं, सूर्य रेखा है, शंखरेखा हैं, चक्र रेखा है, दक्षिणावर्त स्वास्तिक रेखा है, इस प्रकार चंद्र, सूर्य, शंख, चक्र दिशा स्वस्तिक की रेखाओं से सुशोभित हाथ हैं,

कणग-सिलायलुज्जलपसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-पिहुल-वच्छे, सिरिवच्छंकियवच्छे

कनक शिला के सदृश उज्ज्वल-देदीप्यमान, प्रशस्त लक्षणों युक्त, समतल, विस्तीर्ण अति विशाल वक्षस्थल है, वह वक्षस्थल श्रीवत्स के चिन्ह से अंकित हैं।

अकरंडुय-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहयदेहधारी अट्ठसहस्स-पडिपुण्ण-वर-पुरिस-लक्खणधरे

अदृश्यमान रीढ़ की हड्डीयुक्त सुवर्ण के जैसा निर्मल, सुप्रमाणोपेत, निरोग शरीर है, जो प्रतिपूर्ण एक हजार आठ पुरुषों के योग्य श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हैं,

सण्णयपासे संगयपासे सुन्दरपासे सुजायपासे मियमाइयपीण-रइयपासे

शरीर का पार्श्व भाग क्रमिक अवनत, उचित प्रमाणयुक्त, सुन्दर, शोभन, दर्शनीय, परिमित मात्रा वाला पुष्ट एवं रम्य हैं,

उज्जुय-समसहिय-जच्चतणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-रमणिज्जरोमराई

रोमराजि सरल, सम-मिलित, उत्तम, पतली, काली, चिकनी आदेय, ललित, रमणीय हैं, मत्स्य एव पक्षी के समान सुन्दर और पुष्ट कुक्षि वाले हैं, उदर मत्स्य के जैसा सुन्दर है, इन्द्रियाँ स्वच्छ निर्लेप हैं, पद्मकोश के समान गहरी, तथा गंगा से उठने वाली लहरों के समान अर्थात् अन्दर की ओर छोटी और बाहर क्रमशः फैलती हुई, तरंग के समान भंगुर मध्यान्ह के सूर्य की किरणों के समान उत्तरोत्तर फैली हुई, विकसित पद्म के समान गंभीर एवं विशाल नाभि है, कटि-प्रदेश त्रिकाष्ठिका के मध्य भाग समान मूसल के मध्य भाग समान, दर्पण के दण्डे के मध्य भाग समान-श्रेष्ठ सोने की खड्ग मुष्टि के मध्यभाग समान और वज्र के मध्यभाग समान पतला है तथा वह कटिप्रदेश रोगादिक रहित होने से प्रसन्न श्रेष्ठ घोड़े के समान एवं सिंह के समान गोल है,

झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी झसोयरे सुइकरणे पउमवियडणाभे गंगावत्तग-पयाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-तरुणबोहिय-अकोसायंत-पउमगंभीर-वियडणाभे साहयसोणंदमुसल-दप्पण-णिकरिय-वर-कणगच्छरु-सरिसवरवइर-वलियमज्झे पमुइयवरतुरगसीह-वरवट्टियकडी

वरतुरगसुजायसुगुज्झदेसे आइण्णहउव्व णिरुवलेवे

गुह्य प्रदेश सुन्दर घोड़े के गुह्य प्रदेश के समान हैं तथा वह गुह्य प्रदेश आकीर्ण जाति के घोड़े के गुह्यप्रदेश के समान निरुपलेप है,

वरवारणतुल्ल-विक्कम-विलसियगई

पराक्रम एवं गति उत्तम हाथी के समान सुन्दर है,

गय-ससण-सुजायसन्निभोरू

हाथी की सूंड के समान सुन्दर जंघायें हैं,

समुग्ग-णिमग्ग-गूढजाणू

डिबिया के समान ढकनी से गुप्त गूढ़ घुटने हैं,

एणीकुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंघे

हरिणी की जंघा के समान और कुरुविन्द-तृण विशेष और डोरी के वल सदृश अथवा कुरुविन्दावर्त्त नामक भूषण के समान गोल पतली ऊपर से मोटी नीचे की ओर चढ़ाव उतार की पतली दोनों जंघायें हैं,

संठियसुसिलिट्ठ गूढगुप्फे

सुन्दर आकार युक्त, अच्छी तरह से मिलित गूढ-मांसल पैरों के गुल्फ हैं,

सुप्पइट्ठियकुम्मचारुचलणे

ग्रीवा को सिकोड़कर अंदर किये कछुए के समान पांव हैं,

अणुपुव्वसुसंहयंगुलीए,

पैरों की अंगुलियां अनुक्रम से उचित आकार वाली संहत सम्मिलित हैं,

उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खे रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतले

जिनके नख समुन्नत प्रतल—पतले रक्त और चिकने हैं, रक्त कमल के दल के समान सुकुमाल कोमल तलवे हैं.

अट्ठसहस्स-वरपुरिस-लक्खणधरे, नग-नगर-मगर-सागर-चक्कंक-वरंग-मंगलंकिय-चलणे, विसिट्ठरूवे, हुयवह-निद्धूम-जलिय-तडितडिय-तरुण-रवि-किरण-सरिसतेए

एक हजार आठ श्रेष्ठ पुरुष लक्षण युक्त हैं, पर्वत, नगर, मकर, सागर, चक्र इनके शुभ चिन्हों तथा स्वास्तिक आदि शुभ चिन्हों तथा मंगल चिन्हों से शोभित चरण हैं असाधारण अनुपम रूप सौंदर्य हैं, निर्धूम अग्नि के समान, चमकती हुई विद्युत और मध्याह्न कालिक सूर्य सदृश तेज है।

३३७. अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नसोए निरुवलेवे ववगयपेम-रागदोसमोहे निग्गंथस्स पवयणस्स देसए, सत्थनायगे पइट्ठावए समणगई समणगविंदपरिअट्टए चउतीसबुद्धवयणाइसेसपत्ते पणतीस-सच्चवयणाइसेसपत्ते

३३७. वे कर्मास्रव से रहित हैं, ममत्वरहित हैं, अकिंचन-परिग्रह रहित हैं, उन्होंने भव परम्परा के कारण को नष्ट कर दिया है, उपलेप—द्रव्य भाव रूप मलिनता का क्षय कर दिया है, राग-द्वेष मोह को नष्ट कर दिया है, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेशक हैं, सार्थनायक-मोक्षाभिलाषि भव्य पुरुषों के समूह के नेता हैं, धर्म संस्थापक हैं, श्रमणों के स्वामी हैं श्रमण आदि रूप चतुर्विध संघ के वर्द्धक—बढ़ाने वाले हैं तीर्थंकरों के चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं, पैंतीस वचनातिशयों से युक्त हैं।

३३८. आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं चामराहिं आगासफालियामएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं धम्मज्झ-एणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जिया-साहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे....।

—ओव० सु० २०

३३८. आकाशगत चक्र से, आकाशगत छत्र से, आकाशगत चामरों से, आकाशगत स्फटिक मणिमय एवं पादपीठ सहित सिंहासन, आगे-आगे चलने वाले अर्ध अष्टमी के चन्द्रमा के समान धर्मध्वज युक्त हैं एवं चौदह हजार श्रमणों तथा छत्तीस हजार आर्यिकाओं के समूह के साथ संपरिवृत....

महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो—

३३९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया भोगपव्वइया राइण्ण-णाय-कोरव्वखत्तियपव्वइया भडा जोहा सेणावई-पसत्थारो सेट्ठी इब्भा अण्णे य बहवे एवमाइणो उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय-विण्णाण-वण्ण-लावण्ण-विक्कम-पहाण-सोभग्ग-कंति जुत्ता।

बहुधण-धण्ण-णिचय-परियाल-फिडिया णरवइगुणाइरेगा इच्छियभोगा सुहसंपललिया किंपागफलोवमं च मुणिय विसय-सोक्खं जलबुब्बुयसमाणं कुसग्गजलबिंदुचंचलं जीवियं य णाऊण अद्धुव-

महावीर के अनेक अन्तेवासी श्रमण भगवन्त—

३३९. उस काल एवं उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अनेक अंतेवासी श्रमण भगवंतों में कितनेक उग्रवंशी, प्रव्रजित हुए थे, भोगवंशी प्रव्रजित हुए थे, राजन्य ज्ञात, कौरव क्षत्रिय वंश के तथा कितनेक सुभट, योद्धा, सेनापति, प्रशास्ता मंत्री, सेठ, इभ्य प्रव्रजित हुए थे, वे सभी उत्तम जाति कुल, रूप, विनय, विज्ञान, वर्ण, लावण्य, विक्रम, प्रधान श्रेष्ठ सौभाग्य कांति सम्पन्न थे।

इनके अतिरिक्त इन श्रमण भगवंतों में कितनेक पूर्व में [illegible] जो दीक्षित होने के पूर्व प्रचुर धन धान्य, दास-दासी आदि परि-वार से युक्त होकर राजसी ठाठ-बाट वाले थे और इन्द्रिय शब्द रूप आदि इन्द्रिय विषयों से [illegible] थे [illegible] और सुख-सामग्री एवं वैभव के बीच [illegible] हुए थे। वे सभी इन्द्रिय-विषयों को किंपाकफल के समान [illegible]

मिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं, चइत्ता हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं-एवं धण्णं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं रज्जं रट्ठं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्त-रयणमाइयं संतसार-सावतेज्जं, विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया,

परिणाम वाले, जीवन को पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर एवं कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जल बिन्दु के समान चंचल, अध्रुव जानकर कपड़े पर लगी हुई धूलि के झटकारने के समान हिरण्य-चाँदी, सुवर्ण, धन-धान्य, बल, वाहन कोष, कोष्ठागार, राज्य, राष्ट्र, पुर, अन्तःपुर का परित्याग कर एवं विपुल धन, कनक-सुवर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल, रक्तरत्न—पद्मराग मणियों एवं सारभूत सुरक्षित सम्पत्ति आदि को छोड़कर उस पर से ममत्व का परित्याग कर, प्रकट करके उदारतापूर्वक दान देकर, स्वजनों में बाँटकर मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर आनगारिक साधना के लिए प्रव्रजित हुए थे,

अप्पेगइया अद्धमासपरियाया, अप्पेगइया मासपरियाया,—एवं दुमास तिमास - जाव - एक्कारस मासपरियाया अप्पेगइया वासपरियाया, दुवास तिवास - जाव - अप्पेगइया अणेगवासपरियाया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

—ओव० सु० १४

इनमें से कितनेक ऐसे थे जिन्हें दीक्षा के लिये अर्धमास हुआ था, कितनेक एक मास एवं दो मास, तीन मास—यावत्—की दीक्षा पर्याय वाले अनेक मास की दीक्षा पर्याय वाले थे अर्थात् इन श्रमण भगवन्तों ने भिन्न-भिन्न समय में दीक्षा ली थी और संयम एवं तप साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

३४०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे निग्गंथा भगवंतो—अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी--जाव-केवलणाणी

३४०. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के उन अनेक अन्तेवासी निर्ग्रन्थ भगवन्तों में से कितनेक आभिनिबोधिक ज्ञानी —यावत्—केवलज्ञानी थे,

अप्पेगइया मणबलिया वयबलिया कायबलिया णाणबलिया दंसणबलिया चारित्तबलिया

कितनेक मनोबलधारी, वचनबलधारी, कायबलधारी, ज्ञानवान, दर्शन सम्पन्न चारित्रवान थे,

अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गहसमत्था एवं वएणं काएणं

कितनेक मन से ही शरणानुग्रह करने में समर्थ एवं इसी प्रकार वचन और काय से भी

अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता एवं जल्लोसहि विप्पोसहि आमोसहि सव्वोसहि,

कितनेक ऐसे थे जिन्हें खेलौषधिरूप लब्धि प्राप्त थी एवं जल्लौषधिरूप, विप्रौषधि, आमर्षौषधिरूप, सर्वौषधिरूप लब्धियां प्राप्त थीं ।

अप्पेगइया कोट्ठबुद्धी एवं बीयबुद्धी, पडबुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी,

कितनेक ऐसे थे जिन्हें कोष्ठबुद्धि प्राप्त थी, इसी प्रकार बीजबुद्धि, पटबुद्धि प्राप्त थी, कितनेक पदानुसारी बुद्धि सम्पन्न थे,

अप्पेगइया संभिन्नसोया, अप्पेगइया खीरासवा, अप्पेगइया महुयासवा, अप्पेगइया सप्पियासवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया,

कितनेक सम्भिन्नश्रोता थे, कितने ही क्षीराश्रवलब्धि सम्पन्न थे, कितने ही मधुरास्रवा, कितने ही सर्पिरास्रवा, कितने ही अक्षीणमहानस लब्धियों से सम्पन्न थे ।

अप्पेगइया उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई, विउव्वणिड्ढिपत्ता, चारणा विज्जहारा, आगासाइवाइणो,

कितने ही ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानधारी, कितने ही विपुलमतिमनःपर्यवज्ञानधारी थे, कितने ही चारणलब्धिधारी, विद्याधर आकाशगामी थे ।

३४१. अप्पेगइया कणगावलितवोकम्मं पडिवण्णा

एवं एगावलिं, खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, अप्पेगइया महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, एवं भद्दपडिमं, महाभद्दपडिमं, सव्वओभद्दपडिमं,[1] आयंबिलवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा,

३४१. कितने ही कनकावलि तपोकर्म में तल्लीन थे, इसी प्रकार एकावलि तप को तपते थे, कितनेक क्षुल्लक (लघु) सिंह निष्क्रीडित तप की आराधना करते थे, कितनेक महासिंह निष्क्रीडित तप करते थे, इसी प्रकार भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा, आयंबिल वर्द्धमान तप करते थे ।

१ भद्दपडिमं सुभद्दपडिमं महाभद्दपडिमं सव्वओभद्दपडिमं भद्दुत्तरपडिमं....पाठान्तर ।

वणभूया परवाइपमद्दणा चोद्दसपुव्वी[1] -दुवालसंगिणो समत्तगणिपिडगधरा सव्वक्खरसण्णिवाइणो सव्वभासाणुगामिणो अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

—ओव० सु० २६

कमलवन से पूर्ण परिचित थे। निरन्तर धारावाहिकरूप से—अविच्छिन्नतया प्रश्नों का उत्तर देने में निपुण थे। कुत्रिकापण (सभी प्रकार की वस्तुयें मिलने का बाजार, दुकान) तुल्य थे, रत्नकरण्डक (मंजूषा) के समान थे, प्रतिवादी का मानमर्दन करने में समर्थ थे, चौदह पूर्वों के पाठी, द्वादशांग के वेत्ता, समस्त गणिपिटक के धारक, सर्वाक्षर संयोग वेदी, सर्वभाषाविज्ञ, जिन नहीं, किन्तु जिनसदृश सर्वज्ञ जिन की तरह अवितथ—याथातथ्यरूप से व्याख्या करने वाले थे। ये सभी संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

३४५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवंतो इरियासमिया-जाव-पारिट्ठावणियासमिया, १ मणगुत्ता, २ वयगुत्ता, ३ कायगुत्ता, गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी, अममा अकिंचणा अकोहा अमाणा अमाया अलोभा संता पसंता उवसंता परिणिव्वुया अणासवा अग्गंथा छिण्णगंथा छिण्णसोया निरुवलेवा विमल-वरकंसभायणं व मुक्कतोया -जाव- जीवो व्व अप्पडिहयगइया....तेयसा जलंता।

३४५. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अन्तेवासी अनगार भगवन्त् ईर्यासमिति—यावत्—परिष्ठापनिका-समिति से युक्त थे, १—मनोगुप्त, २—वचनगुप्त, ३—कायगुप्त होने से अशुभयोग निग्रहरूप गुप्तियुक्त थे. गुप्तेन्द्रिय, गुप्तब्रह्मचारी, ममत्वरहित, अकिंचन, क्रोधरहित, मानरहित, माया रहित, लोभरहित, शांत, प्रशांत, उपशांत, कर्मविकार रहित, आस्रवरहित, ग्रन्थि,मूर्च्छा रहित—निर्ग्रन्थ, छिन्नग्रन्थ, छिन्नस्रोत—संसार के कारणभूत कर्मरहित, रागादिलेपरहित, निर्मल श्रेष्ठ कांसे का बर्तन पानी से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही संसार में लिप्त होने के कारणों से मुक्त—यावत्—जीव की तरह अव्याहत अप्रतिहतगति तेजस से जाज्वल्यमान दीप्त थे....।

३४६. नत्थि णं तेसिं णं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे भवइ। से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ दव्वओ, २ खेत्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ।

दव्वओ णं—सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु,

खेत्तओ णं—गामे वा -जाव- णहे वा,

कालओ णं—समए वा -जाव-अण्णयरे वा दीहकालसंजोगे।

भावओ णं—कोहे वा, माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा एवं तेसिं ण भवइ।

३४६. उन भगवन्तों को किसी के प्रति कहीं पर भी प्रतिबंध नहीं था। वह प्रतिबंध चार प्रकार का है—यथा—

१—द्रव्यतः २—क्षेत्रतः ३—कालतः ४—भावतः।

द्रव्य से—सचित्त अचित्त, मिश्र द्रव्य में।

क्षेत्र से—ग्राम में अथवा—यावत् - आकाश में।

काल से—समय में अथवा—यावत्—अन्य किसी दीर्घकाल के संयोग में।

भाव से—क्रोध में, मान में, माया में, लोभ में, भय में, हास्य में। इस प्रकार उनको प्रतिबंध नहीं था।

३४७. ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतियाणि मासाणि गामे एगराइया, णयरे पंचराइया वासीचंदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकंचणा समसुहदुक्खा इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धा संसार-पारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरंति।

३४७. वे भगवन्त वर्षावास को छोड़कर ग्रीष्म और हेमन्त (शीत) ऋतु के आठ मासों में ग्राम में एक रात और नगर में पाँच रात्रि पर्यन्त, वसूला से छीलने वाले और चंदन से चर्चित करने वाले (अपकारी और उपकारी) दोनों पर समभाव रखते हुए, पाषाण और सुवर्ण को समान मानते हुए, सुख-दुःख में तुल्य परिणाम रखते हुए, इहलोक-परलोक सम्बन्धी वांछा से विहीन होकर, संसार पारगामी, कर्म निर्जरा के लिये संयमाराधान में तत्पर होकर विचरते थे।

१ [illegible] अन्नउत्थिएहिं अणोद्धंसिज्जमाणा विहरंति अप्पेगइया आयारधरा -जाव- विवागसुयधरा चोद्दसपुव्वी।

अण्णाण-भमंत-मच्छपरिहत्थ-अणिहुयिंदिय-महामगर-तुरिय-चरिय-खोखुब्भमाण-नच्चंत-चवल-चंचल-चलंत-घुम्मंत-जलसमूहं, अरइ-भय-विसाय-सोग-मिच्छत्त-सेल-संकडं अणाइसणतां-कम्मबंधण-किलेस-चिक्खल्लसुदुत्तारं अमर-णर-तिरिय-णरयगइ-गमण-कुडिल-परियत्तविउलवेलं चउरंतं महंतमणवयग्गं रुंदं संसारसागरं भीम-दरिसणिज्जं तरंति ।

अज्ञान ही घूमते हुए मत्स्य और परिहस्त—जलजन्तु विशेष हैं, अनुपशांत इन्द्रियाँ ही महासागर हैं और इन्द्रियरूपी महा-मगरों की चंचल चेष्टाओं से अज्ञानियों का समूहरूप जलसमूह क्षुब्ध हो रहा है, नाच रहा है, विद्युद्वेग से घूम रहा है—चक्कर मार रहा है, अरति, भय, विषाद, शोक और मिथ्यात्वरूप प्रच्छन्न पर्वतों से यह संसार समुद्र अत्यन्त विकट बना हुआ है; अनादिकाल से जीव के साथ संबद्ध कर्मों से उद्भूत रागादि परिणामरूप कीचड़ से भरा हुआ होने के कारण जिससे तिरना—निकलना दुष्कर है, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकगति, इन चार गतियों में जीव का परिभ्रमण होना इसकी वक्र चारों ओर फैली हुई विस्तृत वेला है जो चारों गतिरूप चारों दिशाओं के विभाग से विभक्त हैं, यह बड़ी विशाल है, उसका उलांघना कठिन है, विकराल रुद्र स्वरूप वाला है जिसका देखना ही भय-भीत बना देता है, ऐसे संसारसागर को संयमीजन पार करते हैं ।

३५०. धिइधणियनिप्पकंपेण तुरियचवलं संवर-वेरग्ग-तुंग-कूवय-सुसंपउत्तेणं णाण-सिय-विमलभूसिएणं सम्मत्त-विसुद्ध-लद्धणिज्जा-मएणं धीरा संजम-पोएण सीलकलिया पसत्थज्झाण-तव-वाय-पणोल्लिय-पहाविएणं उज्जम-ववसाय-ग्गहिय-णिज्जरण-जयण-उवओग-णाणदंसणचरित्त-विसुद्धवयभंडभरियसारा जिणवर-वयणोवदिट्ठ-मग्गेण अकुडिलेण सिद्धिमहापट्टणाभिमुहा समण-वरसत्थवाहा सुसुइसुसंभाससुपण्हसासा

३५० (संयमीजन कैसे पार करते हैं ? इसको स्पष्ट करते हैं)—धृतिरूपी रज्जुबंधन से जो अत्यन्त निष्प्रकम्प है, जिसकी गति अत्यन्त शीघ्रगामी है, संवर और वैराग्य—ये दोनों ही जिसके बीच के दोनों ऊँचे कूपक—स्तम्भ हैं, जिन पर ज्ञानरूपी श्वेत विमल वस्त्र का पाल तना हुआ है, जिसमें विशुद्ध सम्यक्त्व नियामक—कर्णधार हैं—मल्लाह, खेवटिया है, प्रशस्त ध्यानरूपी तपो वायु से प्रेरित होकर जो आगे-आगे बढ़ता रहता है, उद्यम-शील—अप्रमादी एवं व्यवसायी मोक्ष प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चय वाले हैं तथा जिन्होंने निर्जरा यतना उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी पदार्थों से भरे हुए विशुद्ध महाव्रतरूप भांडोप करणों को लिया है, जिनवरवचनोपदिष्ट सीधे सरल मार्ग से सिद्धगतिरूपी पत्तन—बन्दरगाह की ओर जाने वाले संयम पोत के द्वारा शील के अठारह हजार भेदों को धारण करने वाले हैं, श्रमणश्रेष्ठ जिनके सार्थवाह हैं और जो स्वयं सत् सिद्धांतों में पारंगत हैं, मनोमुग्धकारी भाषा बोलने वाले हैं प्रमाणोपेत प्रश्न करते हैं, सुप्रणीत इच्छा वाले हैं, अर्थात् मोक्षाभिलाषी हैं, ऐसे धीरवीर मुनिराज इस संसार सागर को पार करते हैं ।)

गामे गामे एगरायं णगरे णगरे पंचरायं दूइज्जंता जिइंदिया णिब्भया गयभया सचित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु विरागयं गया संजया विरता मुत्ता लहुया णिरवकंखा साहू णिहुया चरंति धम्मं ।

—ओव० सु० २१

ये श्रमण भगवन्त ग्रामों में एक रात और नगरों में पाँच रात निवास करते थे, जितेन्द्रिय थे निर्भय होने से वीतभय सचित्त, अचित्त और सचिताचित्त (मिश्र) द्रव्यों में वैराग्य युक्त, संयमी, विरत, मुक्त लोभ रहित लाघव गुण सम्पन्न, आकांक्षा रहित साधु मदरहित होने के कारण विनीत होकर धर्म की आराधना करते थे ।

महावीरेण एगनिसज्जाए चउपण्णाइं वागरणाइं—

३५१. समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनिसेज्जाए चउप्प-ण्णाइं वागरणाइं वागरित्था ।

—सम० स० ५४, सु० ३

महावीर के द्वारा एक निषद्या से चउवन वागरण (उत्तर)

३५१. श्रमण भगवान् महावीर ने एक दिन में एक निषद्या (आसन) से चउवन प्रश्नों का व्याकरण किया था, चउवन प्रश्नों के उत्तर कहे थे ।

महावीरकया पज्जुवासणा—

३५२. समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीतिक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ[1]।।

—सम० स० ७०, सु० १

महावीरकृत पर्युवासना—

३५२. श्रमण भगवान् महावीर वर्षा ऋतु का एक मास और बीस रात्रि व्यतीत होने पर और सत्तर दिन रात शेष रहने पर वर्षावास रहे।

वासावासगणणा—

३५३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे—

अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए।

चंपं च पिट्ठिचंपं च निस्साए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए।

वेसालिं नगरिं वाणियगामं च निस्साए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए।

रायगिहं नगरं नालंदं च बाहिरियं निस्साए चोद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए।

छ म्मिहिलाए,

दो भद्दियाए,

एगं आलंभियाए,

एगं सावत्थीए,

एगं पणीयभूमीए,

एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसहाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए।

—कप्प० सु० १२२

वर्षावास गणना—

३५३. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने—

अस्थिक ग्राम की निश्राय में प्रथम वर्षावास किया।

चम्पा और पृष्ठचम्पा नगरी में तीन वर्षावास (चातुर्मास) किये।

वैशाली नगरी में और वाणियग्राम में भगवान् का बारह बार चातुर्मासार्थ पदार्पण हुआ।

राजगृह नगर में और उसके बाहर नालन्दा की निश्राय में चातुर्मास करने हेतु भगवान् चौदह बार पधारे।

मिथिला नगरी में छह बार।

भद्दिया नगरी में दो बार।

आलंभिका नगरी में एक बार।

श्रावस्ती नगरी में एक बार।

प्रणीत भूमि (वज्रभूमि) में एक बार चातुर्मास हेतु भगवान् का पदार्पण हुआ, और

अंतिम चातुर्मास करने के लिए मध्यम पावा के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में भगवान् पधारे।

---

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ?

जत्तो णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खातनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कयाइं परिभोत्ताइं परिणामियाइं भवंति।

से एतेण ट्ठेणं एवं वुच्चइ—समण भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते वासावासं पज्जोसवेति।

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति।

जहा णं गणहरा वासाणं - जाव - पज्जोसवेंति तहा णं गणहरसीसा वि वासाणं - जाव - पज्जोसविंति।

जहा णं गणहरसीसा वासाणं-जाव-पज्जोसविंति तहा णं थेरा वि वासाणं - जाव - पज्जोसविंति।

जहा णं थेरा वासाणं - जाव - पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए वि णं वासाणं - जाव - पज्जोसविंति।

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं अम्हं पि आयरियउवज्झाया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेंति।

जहा णं अम्हं आयरियउवज्झाया वासाणं - जाव - पज्जोसवेंति तहा णं अम्हे वि अज्जो ! वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो। अंतरा वि य से कप्पइ पज्जोसवित्तए नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए।

—कप्प० सु० २२४-२३१

णिव्वाणं देवेहिं उज्जोयकरणं य—

३५४. एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराणं चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—ठाणं० अ० १, सु० ५३

३५५. तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए, तस्स ण अंतरावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे, सत्तमे पक्खे, कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमा रयणी तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्न-जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खपहीणे,

३५६. चंदे नामं से दोच्चे संवच्छरे, पीतिवद्धणे मासे, नंदिवद्धणे पक्खे, सुव्वयग्गी नामं से दिवसे, उवसमि त्ति पवुच्चइ, देवाणंदा नामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ, अच्चे लवे, मुहुत्ते पाणू, थोवे सिद्धे, नागे करणे, सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते, साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।

३५७. जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवेहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि होत्था।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे सा ण रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगमाणभूया कहकहगभूया यावि होत्था।

महावीरस्सायुकालगणणा अंतिमोवदेसो य—

३५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणं भगवं महावीरे—
तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता[1],
साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता,
देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता,

बायालीसं वासाइं सामन्न-परियायं पाउणित्ता[2],

निर्वाण और देवों द्वारा उद्योतकरण—

३५४. इस अवसर्पिणी के चौवीस तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत सब दुःखों का क्षय करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

३५५. मध्यम पावा नगरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा में अन्तिम चातुर्मास करने के लिये भगवान् रहे हुए थे, उस वर्षावास के चतुर्थ मास, सातवें पक्ष अर्थात् कार्तिक कृष्ण पक्ष में अमावस्या के दिन जब रात्रि का अन्तिम प्रहर था तब श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, संसार का त्याग कर दिया, जन्म-जरा-मरण के बंधन को छिन्न-भिन्न करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। सब दुःखों का अन्त करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

३५६. जिस समय भगवान् कालधर्म को प्राप्त हुए, संसार का त्याग कर चले गय—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये थे, तब उस समय चन्द्र नाम का द्वितीय संवत्सर चल रहा था प्रीतिवर्धन नामक मास था, नन्दिवर्द्धन पक्ष था, अग्निवेश नामक दिन था, जिसको 'उवसम' भी कहते हैं, देवानन्दा नामक रात्रि थी, जिसका दूसरा नाम 'निरइ' कहा जाता है। उस रात्रि में अर्थ नामक लव था, मुहूर्त नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामक करण था, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त था और स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आया हुआ था।

३५७. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आगमन और ऊपर गमन अर्थात् आवागमन से वह रात्रि उद्योतमयी हो गई थी।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, उस रात्रि में बहुत से देव और देवियाँ आ-जा रही थीं जिससे वह अत्यधिक कोलाहल एवं शब्दमय हो रही थी।

महावीर की आयुकाल गणना और अन्तिम उपदेश—

३५८. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर—
तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर,
कुछ अधिक समय बारह वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहकर,
उसके पश्चात् तीस वर्ष से कुछ कम समय तक केवली पर्याय को प्राप्त कर,
इस प्रकार कुल बयालीस वर्ष तक श्रमण पर्याय को प्राप्त कर,

१ सम० स० ३०, सु० ७।

२ सम० स० ४२, सु० १।

बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता[1], खीणे वेयणिज्जाउय-नाम-गोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसएहिं[2] पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुगसभाए एगे[3] अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं[4] साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने-

कुल बहत्तर वर्ष का आयु पूर्ण कर वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्मों का क्षय होने के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल का दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरे का बहुत सा समय व्यतीत होने पर तथा उस आरे के तीन वर्ष एवं साढ़े आठ मास शेष रहने पर मध्यम पावा नगरी में हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा में एकाकी निर्जल षष्ठ भक्त तप के साथ स्वातिनक्षत्र का योग होते ही प्रत्यूषकाल के समय (प्रातः सूर्योदय होने से पूर्व चार घटिका रात्रि शेष रहने पर—भोरानभोर) पद्मासन से बैठे हुए—

पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं,[5]

कल्याणफलविपाक के पचपन अध्ययन और पापफलविपाक के पचपन अध्ययन,

छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पधाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए वितिक्कंते समुज्जाए छिन्न-जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्व-दुक्खप्पहीणे।

—कप्प० सु० १४६

अपुट्ठ वागरणा (किसी के द्वारा प्रश्न न किये जाने पर भी, उनके समाधान करने वाले) के छत्तीस अध्ययनों का विवेचन करके प्रधान नामक अध्ययन को कहते-कहते कालगत हुए, संसार को त्याग कर चले गए, जन्म-जरा-मरण के बंधन को छिन्न-भिन्न करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, सम्पूर्ण कर्मों का अन्त करने वाले हुए, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

गोयमस्स केवलं—

गौतम को केवलज्ञान—

३५९. जं रयणिं च णं भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्ख-प्पहीणे तं रयणिं च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पेज्जबंधणे वोच्छिन्ने अणंते अणुत्तरे -जाव-केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने।

—कप्प० सु० १२६

३५९. जिस रात्रि में भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—सर्व दुःखों को नष्ट कर चुके, उस रात्रि में ज्येष्ठ (प्रथम) अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम अनगार का भगवान् महावीर के साथ जो प्रेम बंधन था, वह विच्छिन्न हो गया और अनन्त, अनुत्तर—सर्वोत्तम—यावत्—केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

गणरायकयोज्जोओ—

गणराजा कृत उद्योत—

३६०. जं रयणिं च णं समणे -जाव- सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं नव मल्लई नव लिच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गण-रायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोयं करिस्सामो।

—कप्प० सु० १२७

३६०. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—सर्व दुःखों को नष्ट कर चुके, उस रात्रि में काशी देश के मल्लवीवंशी नौ और कौशल देश के लिच्छवी वंशी नौ, इस प्रकार कुल अठारह गणराजा अमावस्या के दिन आठ प्रहर का प्रोषधोपवास करके वहाँ रहे हुए थे, उन्होंने विचार किया कि वह भावोद्योत अर्थात् तीर्थंकररूपी ज्ञान उद्योत—प्रकाश चला गया है अतः अब द्रव्योद्योत करेंगे।

---

१ सम० स० ७२, सु० ३।
२ सम० स० ८९, सु० २।
३ ठाणं, अ० १, सु० ७६।
४ ठाणं, अ० ६, सु० ५३१।
५ सम० स० ५५, सु० ४।

निव्वाणाणंतरं भासरासीग्गहो तप्पभावो य—

३६१. जं रयणिं च णं समणे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं खुड्डाए भासरासी महग्गहे दो वाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते।

—कप्प० सु० १२८

३६२. जप्पभिइं च णं से खुड्डाए भासरासी महग्गहे दो वाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तति।

—कप्प० सु० १२९

३६३. जया णं से खुड्डाए-जाव-जम्मनक्खत्ताओ वीतिक्कंते भविस्सइ तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तिस्सति।

—कप्प० सु० १३०

निर्वाणानन्तर भस्मराशि ग्रह और उसका प्रभाव—

३६१. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, उस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर क्षुद्र क्रूर स्वभाव का दो हजार वर्ष तक रहने वाला भस्मराशि नामक महाग्रह संक्रान्त हुआ था—आया था।

३६२. दो हजार वर्ष तक रहने वाला यह क्रूर स्वभाव वाला भस्मराशि नामक महाग्रह जब से श्रमण भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर आया, तब से श्रमण (भगवान् महावीर) निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों की पूजा और सत्कार में उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं होती है।

३६३. जब यह क्षुद्र क्रूर स्वभाव वाला भस्मराशि ग्रह भगवान् के जन्म नक्षत्र से हट जायगा तब श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों की पूजा सत्कार में उत्तरोत्तर दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि होगी।

निव्वाणाणंतरं संजमदुराराहणा—

३६४. जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ,

जा अठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जं पासित्ता बहूहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहिं य भत्ताइं पच्चक्खायाइं।

से किमाहु भंते!

अज्जप्पभिइ दुराराहए संजमे भविस्सइ।

—कप्प० सु० १३१-१३२

निर्वाणानन्तर संयम दुराराधना—

३६४. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हुए, उस रात्रि में बचाई न जा सके ऐसी कुन्थुवा नामक सूक्ष्म जीवराशि उत्पन्न हो गई, यदि वे जीव स्थिर हों, हलन-चलन न करते हों तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों को दृष्टिगोचर नहीं होते,

जब वे जीव चलते-फिरते तब छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों को दिखलाई देते थे। इस प्रकार जीवों की उत्पत्ति को देखकर बहुत से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों ने अनशन स्वीकार कर लिया।

हे भदन्त! यह क्या सूचित करता है?

यह अनशन सूचित करता है कि आज से संयम का पालन करना अत्यन्त कठिन होगा।

महावीरस्स समणाइसंपया—

३६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं—

समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामोक्खाओ चोद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपया होत्था[1]

समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था[2]।

समणस्स भगवओ महावीरस्स संख-सयगपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयाणं संपया होत्था।

महावीर को श्रमण सम्पदा—

३६५. उस काल उस समय में—

श्रमण भगवान् महावीर के इन्द्रभूति आदि चौदह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण-संपदा थी।

श्रमण भगवान् महावीर की आर्या चंदना प्रमुख छत्तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-संपदा थी।

श्रमण भगवान् महावीर की शंख शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक-संपदा थी।

---

१ सम० स० १४, सु० ४।

२ सम० स० ३६, सु० ३।

समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा-रेवईपामोक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ अट्ठारस य सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर की सुलसा, रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका-संपदा थी ।

३६६. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्न सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिण-संकासाणं सव्वक्खर-सन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था [1] ।

३६६. श्रमण भगवान् महावीर की जिन नहीं तथापि जिन के समान, सर्वाक्षर सन्निपाती, जिन के समान अवितथ स्पष्टीकरण करने वाले चौदह पूर्व ज्ञाताओं की तीन सौ चतुर्दश पूर्वधरों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया होत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर के विशेष प्रकार की लब्धिवाले तेरह सौ अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया केवलनाणीणं संभिन्न-वरनाणदंसण-धराणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया होत्था ।[2]

श्रमण भगवान् महावीर के सम्पूर्ण उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त ऐसे सात सौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

३६७. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था ।[3]

३६७. श्रमण भगवान् महावीर की देव नहीं, किन्तु देवों की ऋद्धि को प्राप्त ऐसे सात सौ वैक्रिय लब्धिवाले श्रमणों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सण्णीणं पंचिदियाणं पज्जत्तगाणं जीवाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमईसंपया होत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर की ढाई द्वीप में और दो समुद्रों में रहने वाले, मनवाले, पर्याप्त पंचेन्द्रिय प्राणियों के मनोभावों को जानने वाले, पाँच सौ विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी श्रमणों की उष्कृष्ट संपदा थी ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेव-मणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ।[4]

श्रमण भगवान् महावीर की देव, मनुष्य और असुरों वाली परिषदाओं में वाद करते हुए अपराजित रहने वाले ऐसे चार सौ वादियों की उत्कृष्ट वादि संपदा थी ।

३६८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं -जाव- सव्वदुक्खप्पहीणाइं, चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं ।

३६८. श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ अन्तेवासी सिद्ध हुए —यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, चौदह सौ आर्यिकायें सिद्ध हुई ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ।[5]

—कप्प० सु० १४४

श्रमण भगवान् महावीर के भविष्य में कल्याण प्राप्त करने वाले, वर्तमान में कल्याण अनुभव करने वाले और आगामी समय में भद्र प्राप्त करने वाले ऐसे आठ सौ अनुत्तरोपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

महावीरस्स अणुत्तरदेवलोयगामिणो सिस्सा—

भगवान् महावीर के अनुत्तर देवलोकगामी शिष्य—

३६९. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्न अणगारा संवच्छर-परियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना ।

—सम० स० ५३, सु० ३

३६९. श्रमण भगवान् महावीर के तिरेपन अनगार शिष्य एक वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले होकर महामहिमाशाली पांच अनुत्तर महाविमानों में देव उत्पन्न हुए ।

---

१ सम० स० ३००, सु० ४ । ठाणं, अ० ३, उ० ४, सु० २३० ।
२ सम० स० ७००, सु० २ ।
३ सम० स० ७००, सु० ३ ।
४ सम० स० ४००, सु० ५ । ठाणं, अ० ४, उ० ४, सु० ३८२ ।
५ सम० स० ८००, सु० ३ । ठाणं, अ० ८, सु० ६५३ ।

महावीरस्स अंतगडभूमी—

३७०. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा—

जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य - जाव - तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ।

—कप्प० सु० १४५

भगवान् महावीर की अन्तकृत भूमियाँ—

३७०. श्रमण भगवान् महावीर के समय में दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि थीं । यथा—

१—युगान्तकृत भूमिका २—पर्यायान्तकृत भूमिका—यावत् —उनसे तीसरे युगपुरुष तक युगांतकृत भूमिका चलती रही और चार वर्ष बाद पर्यायान्तकृत भूमि का अंत आया । अर्थात् भगवान् को केवलज्ञान होने के चार वर्ष बाद उनके शिष्यों का मुक्तिगमन प्रारम्भ हुआ ।

महावीरदिक्खियरायाणो—

३७१. समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुण्डे भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वाइया, तं जहा—

संगहणी-गाहा—

वीरंगए वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी ।

सेये सिवे उद्दायणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥१॥

—ठाणं, अ० ८, सु० ६२१

भगवान् महावीर द्वारा दीक्षित राजा—

३७१. श्रमण भगवान् महावीर से मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर आठ राजाओं ने अनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार की, यथा—

१ वीरागंद, २ क्षीर (वीर) यश, ३ संजय, ४ एणेयक । ५ श्वेत, ६ शिव, ७ उदायन, ८ शंख (काशिवर्धन) ॥

महावीरतित्थे तित्थयरकम्मबंधया—

३७२. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णर्वाहं जीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, तं जहा—

सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा, संखेणं, सतएणं, सुलसाए सावियाए, रेवतीए ।

—ठाणं, अ० ९, सु० ६९१

भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर कर्मबंधक—

३७२. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया, यथा—

१—श्रेणिक, २—सुपार्श्व, ३—उदायन, ४—पोटिल अणगार, ५—दृढ़ायु, ६—शंख, ७—शतक, ८—सुलसा श्राविका, ९—रेवती ।

महावीरतित्थे पवयण-णिण्हगा—

३७३. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयण-णिण्हगा पण्णत्ता, तं जहा—

बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया ।

एएसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था, तं जहा—

जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिले ।

एतेसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त उप्पत्तिणगरा हुत्था, तं जहा—

संगहणी-गाहा—

सावत्थी उसभपुरं, सेयविया मिहिल उल्लगातीरं ।

पुरिमंतरंजि दसपुर णिण्हगउप्पत्तिणगराइं ॥१॥

—ठाणं, अ० ७, सु० ५८७

महावीर-तीर्थ में प्रवचन निह्नव—

३७३. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निन्हव हुए, यथा—

१—बहुरत, २—जीवप्रदेशिका, ३—अव्यक्तिका, ४—सामुच्छिदेका, ५—दो क्रिया, ६—त्रैराशिका, ७—अबद्धिका, ।

इन सात निन्हवों के सात धर्माचार्य थे, यथा—

१—जमाली, २—तिष्यगुप्त, ३—आषाढ़, ४—अश्वमित्र, ५—गंग, ६—षड्लुक (रोहगुप्त) ७—गोष्ठामाहिल ।

इन सात प्रवचन निन्हवों के सात उत्पत्ति नगर थे, यथा—

१—श्रावस्ती, २—ऋषभपुर, ३—श्वेताम्बिका, ४—मिथिला, ५—उल्लुकातीर, ६—अंतरंजिका, ७—दशपुर ।

॥ इइ महावीर जिण चरियं ॥

॥ महावीर चरित्र समाप्त ॥



७. महापउमचरियं

सेणियस्स नरकगमणं—

३७४. एस णं अज्जो ! सेणिए राया भिंभिसारे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए नरए चउरासीइ-वास-सहस्स-ट्ठिइयंसि निरयंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तत्थ नेरइए भविस्सइ काले कालोभासे - जाव - परम-किण्हे वण्णेणं, से णं तत्थ वेयणं वेदिहिइ उज्जलं - जाव - दुरहि-यासं ।

सेणियस्स नरकाओ आगामि-उस्सप्पिणीए कुलकरगिहे जम्मो—

३७५. से णं तओ नरयाओ उव्वट्टेत्ता आगमेस्साए उस्सप्पिणीए इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले पुण्डेसु जणवएसु सतदुवारे नयरे संमुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुमत्ताए पच्चायाहिइ।

तए णं सा भद्दा भारिया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजण - जाव - सुरूवं दारगं पयाहिइ ।

३७६. जं रयणिं च णं से दारए पयाहिई तं रयणिं च णं सतदुवारे नगरे सब्भितरबाहिरए भारग्गसो य कुम्भग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिइ ।

महापउमनामकरणं—

३७७. तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते - जाव - बारसाहे दिवसे अयमेयारूवं गोण्णं गुण-णिप्फण्णं नामधिज्जं काहिंति—जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि जायंसि समाणंसि सयदुवारे नगरे सब्भिंतरबाहिरए भारग्गसो य, कुम्भग्गसो य, पउमवासे य, रयणवासे य वासे वुट्ठे, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधिज्जं महापउमे ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधिज्जं काहिंति महापउमे त्ति ।

रज्जाभिसेओ—

३७८. तए ण महापउमं दारगं अम्मापियरो साइरेगं अट्ठवास-जायगं जाणित्ता महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिहिंति ।

से णं तत्थ राया भविस्सइ महता हिमवंतमहंतमलयमंदरराय-वण्णओ - जाव - रज्जं पसाहेमाणे विहरिस्सइ ।

७. महापद्म चरित्र

श्रेणिक का नरक गमन—

३७४. हे आर्य ! यह श्रेणिक राजा (बिंबिसार) मर कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमंतक नरकावास में चौरासी हजार वर्ष की नारकीय स्थिति वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगा ।

नरक में वह अत्यन्त कृष्णवर्ण वाला होगा और वहाँ अति तीव्र—यावत्—असह्य वेदना भोगेगा ।

आगामी उत्सर्पिणी में नरक से च्यवकर श्रेणिक का कुलकर गृह में जन्म—

३७५. यह नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी में इसी जम्बू-द्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत के समीप पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर में संमति कुलकर की भद्रा भार्या की कुक्षी में पुत्र रूप में उत्पन्न होगा ।

नौ मास और साढ़े सात अहोरात्र बीतने पर सुकुमार हाथ पैर, प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर और उत्तम लक्षण—व्यंजनयुक्त—यावत्—सुरूपवान पुत्र पैदा होगा ।

३७६. जिस रात्रि में यह पुत्र रूप पैदा होगा उस रात्रि में शत-द्वार नगर के अन्दर और बाहर भाराग्र तथा कुम्भाग्र प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा होगी ।

महापद्म नामकरण—

३७७. तत्पश्चात् उसके माता-पिता इग्यारवां दिन बीतने पर—यावत्—बारहवें दिन उसका गुणसम्पन्न नाम देंगे । क्योंकि उस बालक के जन्म होने पर शतद्वार नगर के अन्दर और बाहर भार एवं कुम्भ प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा होने से इस पुत्र का महापद्म नाम देंगे ।

इसलिए उस बालक के माता-पिता उसका 'महापद्म' नाम-करण करेंगे ।

राज्याभिषेक—

३७८. तत्पश्चात् महापद्म के माता-पिता महापद्म को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर राज्याभिषेक का महोत्सव करेंगे ।

अनन्तर वह गुणवान राजा महाराजा के समान—यावत्—राज्यशासन करेगा ।

३७९. तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णया कयाइ दो देवा महिड्ढिया - जाव - महेसक्खा सेणाकम्मं काहिंति तं जहा—पुण्णभद्दए, माणिभद्दए।

३७९. उसके राज्यकाल में पूर्णभद्र और महाभद्र नाम के दो देव महर्धिक—यावत्—महान् ऐश्वर्य वाले उनकी सेना का संचालन करेंगे।

देवसेणे त्ति दुतीयं नाम—

'देवसेन' यह द्वितीय नाम—

३८०. तए णं सतदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भसेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभियओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति एवं वइस्संति।

जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढिया - जाव - महेसक्खा सेणाकम्मं करेंति तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य। तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे 'देवसेणे'।

तए णं तस्स महापउमस्स दोच्चे वि नामधेज्जे भविस्सइ देवसेणे देवसेणे त्ति।

३८०. उस समय शतद्वार नगर के बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह आदि (तलवर, मांडलिक, कौटुम्बिक, इभ्यसेठ, सेनापति) परस्पर बातें करेंगे।

हे देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा की सेना का संचालन महर्धिक—यावत्—महान् ऐश्वर्य वाले दो देव (पूर्णभद्र और मणिभद्र) करते हैं, इसलिए हे देवानुप्रियो! महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' हो।

उस समय से महापद्म का दूसरा नाम देवसेन भी होगा।

३८१. तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाइ सेयसंखतल-विमलसण्णिकासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिइ।

तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतलविमलसण्णिकासं चउद्दंतं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे सतदुवारं नगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं अभिक्खणं अइज्जाहि य निज्जाहि य।

३८१. कुछ समय पश्चात् उस देवसेन राजा को श्वेत शंख जैसा श्रेष्ठ निर्मल, श्वेत चार दांत वाला हस्तिरत्न प्राप्त होगा।

तब वह देवसेन राजा उस श्वेत शंखतल जैसे निर्मल चतुर-दन्त हस्तिरत्न पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के मध्य भाग में से बार-बार आव-जाव करेगा।

विमलवाहणे त्ति नाम—

विमलवाहन नाम—

३८२. तए णं सतदुवारे नगरे बहवे राईसरतलवर - जाव - अण्णमण्णं सद्दाविति एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेए संखतलविमलसण्णिकासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पण्णे तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया! देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे विमलवाहणे।

तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे भविस्सइ विमलवाहणे विमलवाहणे।

३८२. तब शतद्वार नगर के अनेक राजेश्वर तलवर—यावत्—परस्पर मिलने पर एक-दूसरे से इस प्रकार वार्तालाप करेंगे—हे देवानुप्रियो! हमारे देवसेन राजा को शंखतल जैसा निर्मल श्वेत चार दांत वाला हस्तिरत्न प्राप्त हुआ है, इसलिये हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम "विमलवाहन" हो।

उस समय से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन भी होगा।

महापउमस्स पव्वज्जा—

महापद्म की प्रव्रज्या—

३८३. तए णं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुण्णाए समाणे उउम्मि सरए संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं धण्णाहिं सिवाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीआहिं वग्गूहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिथुव्वमाणे य बहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसमादाय मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिइ।

३८३. पश्चात् वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष गृहस्थावास में रहेगा और माता-पिता के स्वर्गवासी होने पर गुरुजनों की आज्ञा लेकर शरद् ऋतु में स्वयं बोध को प्राप्त होगा तथा अनुत्तर मोक्ष मार्ग में प्रस्थान करेगा। उस समय लोकान्तिकदेव इष्ट—यावत्—कल्याणकारी वाणी से उनका अभिनन्दन एवं स्तुति करेंगे। नगर के बाहर स्थित सुभूमिभाग उद्यान में एक देवदूष्य वस्त्र ग्रहण करके वह प्रव्रज्या लेगा।

उवसग्गसहणं—

उपसर्ग-सहन—

३८४. तस्स णं भगवंतस्स साइरेगाइं दुवालस वासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिस्संति तं जहा—दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पण्णे सम्मं सहिस्सइ, खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ, अहियासिस्सइ।

३८४. शरीर का व्युत्सर्जन करने वाले, शरीर पर ममत्व न रखने वाले उन भगवान् को साधिक बारह वर्ष तक देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जो उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन्हें वे समभाव पूर्वक सहन करेंगे, क्षमा एवं सहिष्णुता से सहन करेंगे—यावत्—अकम्पित रहेंगे।

तए णं से भगवं इरियासमिए भासासमिए - जाव - गुत्तबं-भयारी अममे अकिंचणे छिण्णगंथे निरुवलेवे कंसपाइ व मुक्कतोए जहा भावणाए - जाव - सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते ।

पश्चात् वे विमलवाहन भगवान् ईर्या समिति, भाषा समिति —यावत्—ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, वे निर्मल निष्परिग्रही कांस्य पात्र के समान अलिप्त होंगे—यावत्—भावना अध्ययन में कहे गये भगवान् महावीर के वर्णन के समान कहें, यावत् घृता-हुति से प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी होंगे। (वे विमल-वाहन भगवान्)—

गाहाओ—कंसे संखे जीवे, गगणे वाए य सारए सलिले ।
पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारंडे ॥१॥
कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सागरमखोभे ।
चंदे सूरे कणगे, वसुन्धरा चेव सुहुयहुए ॥२॥

गाथा—१—कांस्यपात्र के समान अलिप्त, २—शंख के समान निर्मल, ३—जीव के समान अप्रतिहतगति, ४—गगन के समान आलम्बन रहित, ५—वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी, ६—शरद्-ऋतु के जल के समान स्वच्छ हृदय वाले, ७—पद्म पत्र के समान अलिप्त, ८—कूर्म के समान गुप्तेन्द्रिय, ९—पक्षी के समान एकाकी, १०—गेंडा के सींग के समान एकाकी, ११—भारंड पक्षी के समान अप्रमत्त, १२—हाथी के समान धैर्यवान, १३—वृषभ के समान बलवान, १४—सिंह के समान दुर्धर्ष, १५—मेरु के समान निश्चल, १६—समुद्र के समान गम्भीर, १७—चन्द्र के समान शीतल, १८—सूर्य के समान उज्ज्वल, १९—शुद्ध सुवर्ण के समान सुन्दर, २०—पृथ्वी के समान सहिष्णु, २१—आहुति के समान प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञानादि गुणों से तेजस्वी होंगे।

पडिबंधविरहो—

३८५. नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे भवइ । से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा—

अंडएइ वा, पोयएइ वा, उग्गहिएइ वा, पग्गहिएइ वा ।

जं णं जं णं दिसं इच्छइ तं णं तं णं दिसं अपडिबद्धे सुचिभूए लहुभूए अणप्पगंथे संजमेणं अप्पाणं भावेमाणं विहरिस्सइ तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरिएणं एवं आलएणं विहारेणं अज्जवे मद्दवे लाघवे खंती मुत्ती गुत्ती सच्च-संजम-तव-गुणसुचरियसोवचियफलपरिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए -जाव - केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिति ।

प्रतिबन्ध अभाव—

३८५. उन विमलवाहन भगवान् का किसी में प्रतिबन्ध (ममत्व) नहीं होगा। प्रतिबंध चार प्रकार के हैं यथा—

१—अण्डज, २—पोतज, ३—अवग्रहिक, ४—प्रग्रहिक

वे विमलवाहन भगवान् जिस-जिस दिशा में विचरना चाहेंगे उस-उस दिशा में स्वेच्छापूर्वक शुद्धभाव से, गर्वरहित तथा सर्वथा ममत्व रहित होकर संयम से आत्मा को पवित्र करते हुए विहार करेंगे। उन विमलवाहन भगवान् को ज्ञान-दर्शन, चारित्र, वसति और विहार की उत्कृष्ट आराधना करने से सरलता, मृदुलता, लघुता, क्षमा, निर्लोभता, मन, वचन, काया की गुप्ति सत्य, संयम, तप, शौच और निर्वाण मार्ग की विवेक-पूर्वक आराधना करने से शुक्ल ध्यान ध्याते हुए अनन्त, सर्वोत्कृष्ट बाधा रहित—यावत्—केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न होगा तब वे भगवान् अर्हन्त एवं जिन होंगे।

केवलनाणं दंसणं च—

३८६. तए णं से भगवं अरहा जिणे भविस्सइ केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स परियागं जाणइ पासइ सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणोमाणसियं भुत्तं कडं परिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं मणस-वयस-काइए जोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

केवलज्ञान और दर्शन—

३८६. वे केवली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी देव, मनुष्यों और असुरों से परि-पूर्ण लोक के समस्त पर्यायों को जानने और देखने वाले होंगे तथा सम्पूर्ण लोक के सभी जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन (मरण) उपपात (जन्म) तर्क, मानसिक भाव, मुक्त, कृत, सेवित, प्रकट कर्मों और गुप्त कर्मों को जानेंगे अर्थात् उनसे कोई कार्य छिपा नहीं रहेगा।

वे पूज्य भगवान् सम्पूर्ण लोक में उस समय के मन-वचन-कायिक योग में वर्तमान सर्व जीवों के सर्व भावों को जानते और देखते हुए विचरण करेंगे।

तए णं से भगवं तेणं अणुत्तरेणं केवलवरनाण-दंसणेणं सदेव-मणुआसुरलोगं अभिसमिच्चा समणाणं निग्गंथाणं [३८४ तमसूत्रा-दारभ्य ३८७ तमसूत्रगत'पंच'पदपर्यन्तपाठसन्दर्भस्थाने वाचनान्तरे इत्थं पाठ उपलभ्यते—

"से ण भगवं जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता -जाव- पव्वयाही तं चेव दिवसं सयमेतारूवमभिग्गहं अभिगिण्हिहिति—जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति त जहा-दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्ख जाणिया वा त सव्वे सम्मं सहेज्जा, खमेज्जा, तितिक्खिज्जा, अहियासिज्जा

तए णं से भगवं अणगारे भविस्सइ इरियासमिए भासासमिए एवं जहा- वद्धमाणसामी तं चेव निरवसेसं - जाव - अव्वावार-विउसजोगजुत्ते ।

३८७. तस्स ण भगवतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसहिं संवच्छरेहिं विइक्कंतेहिं तेरसहि य पक्खेहिं तेरसमस्स णं संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेणं नाणेणं जहा भावणाए केवलवरनाणदंसणं समुप्पज्जिहिंति जिणे भविस्सइ केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइए - जाव - पच"] पंच महव्वयाइं सभावणाइं छच्च जीवनिकायधम्मं देसेमाणे विहरिस्सइ ।

उस समय वे भगवान् केवल ज्ञान, केवल दर्शन से समस्त लोक को जानकर श्रमण निर्ग्रन्थों को पच्चीस भावना सहित पांच महाव्रतों तथा छजीवनिकाय धर्म का उपदेश देंगे [वाचनान्तर पाठ—सूत्र ३८४ से ३८७ तक]

वे भगवान् जिस दिन मुण्डित होकर—यावत्—प्रव्रज्या स्वीकार करेंगे, उसी दिन स्वयमेव इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करेंगे कि—जो कोई भी देव मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न होंगे उन सबको वे सम्यक्रीति से समभाव पूर्वक, सहिष्णुता से पूर्णरूपेण सहन करेंगे।

पश्चात् वे भगवान् अनगार होकर ईर्यासमिति, भाषासमिति, का पालन करेंगे, इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन वर्धमान महावीर स्वामी की तरह—यावत्—

३८७. तब उन भगवान् को इस प्रकार विहारचर्या करते हुए बारह वर्ष, तेरहवां पक्ष (साढे छ मास) व्यतीत होने पर तेरहवें वर्ष के मध्य वर्तते हुए अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होगा। जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी नैरयिक सहित समस्त जीवाजीव को जानने वाले होंगे जैसा भावनाध्ययन में वर्णन कहा, वैसा जानना।

महावीरस्स महापउमस्स य देसणासामण्ण—

महावीर और महापद्म की देशना में साम्य—

३८८. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं, निग्गंथाणं एगे आरंभठाणे पण्णत्ते,[1]

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं एगं आरंभ-ठाणं पण्णवेहिइ ।

३८८. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने निर्ग्रन्थों का एक आरम्भ स्थान (प्रमाद) कहा है;

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का एक आरम्भ स्थान कहेंगे।

३८९. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं दुविहे बंधणे पण्णत्ते तं जहा - पेज्जबंधणे, दोसबंधणे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं दुविहं बंधणं पण्णवेहिइ तं जहा - पेज्जबंधणं च, दोसबंधणं च ।

३८९. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के दो बन्धन कहे हैं;

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के दो बन्धन कहेंगे यथा—राग बन्धन और द्वेष बन्धन।

३९०. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं तओ दंडा पण्णत्ता तं जहा - मणदंडे - जाव - कायदंडे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं तओ दंडे पण्णवेहिइ तं जहा - मणदंडं - जाव - कायदंडं ।

३९०. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन दण्ड कहे हैं,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन दण्ड कहेंगे यथा—१—मनदण्ड, २—वचनदण्ड, ३—कायदण्ड।

३९१. से जहा णामए एएणं अभिलावेणं चत्तारि कसाया पण्णत्ता तं जहा -

कोहकसाए - जाव - लोहकसाए ।

३९१. इसी प्रकार उनके नामोल्लेख पूर्वक जैसे मैंने चार कषाय कहे यथा—

क्रोधकषाय—यावत्—लोभकषाय।

---

१ आवसगस्स चउत्थे पडिक्कमणज्झयणे "पडिक्कमामि एगविहे असंजमे" एयारूवं सुत्तमत्थि ।

३९२. पंच कामगुणे पण्णत्ते तं जहा - सद्दे - जाव - फासे ।

३९३. छज्जीवनिकाया पण्णत्ता तं जहा - पुढविकाइया - जाव - तसकाइया,

एवामेव पुढविकाइया - जाव - तसकाइया ।

३९४. से जहा णामए एएणं अभिलावेणं सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा -

इहलोगभए - जाव - असिलोगभए,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणा पण्णवेहिइ ।

३९५. एवं अट्ठ मयट्ठाणे नव बंभचेरगुत्तीओ दसविहे समण-धम्मे, एवं - जाव - तेत्तीसमासातणाउ त्ति ।[1]

३९६. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं नग्गभावे, मुण्डभावे, अण्हाणए, अदंतवणे, अच्छत्तए, अणुवाहणए, भूमिसेज्जा, फलगसेज्जा, कट्ठसेज्जा, केसलोए, बंभचेरवासे, परघरपवेसे - जाव - लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णत्ताओ,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं नग्गभावं - जाव - लद्धावलद्धवित्तीओ पण्णवेहिइ ।

३९७. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं आधाकम्मिएइ वा, उद्देसिएइ वा, मीसज्जाएइ वा, अज्झोयरएइ वा, पूइए, कीए, पामिच्चे, अच्छेज्जे, अणिसिट्ठे, अभिहडे वा, कंतारभत्तेइ वा, दुब्भिक्खभत्तेइ वा, गिलाणभत्तेइ वा, वद्दलिया-भत्तेइ वा, पाहुणभत्तेइ वा, मूलभोयणेइ वा, कंदभोयणेइ वा, फलभोयणेइ वा, बीयभोयणेइ वा, हरियभोयणेइ वा पडिसिद्धे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं आधाकम्मियं वा - जाव - हरियभोयणं वा पडिसेहिस्सइ ।

३९८. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं पंचमहव्वइए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं पंचम-हव्वइयं - जाव - अचेलगं धम्मं पण्णवेहिइ ।

३९९. से जहा णामए अज्जो ! मए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए दुवालसविहे सावगधम्मे पण्णत्ते ।

एवामेव महापउमे वि अरहा पंचाणुव्वइयं - जाव - सावग-धम्मं पण्णवेस्सइ ।

३९२. पाँच कामगुण कहे, यथा शब्द—यावत्—स्पर्श ।

३९३. छह जीवनिकाय कहे, यथा—पृथ्वीकाय—यावत्—त्रस-काय ।

उसी प्रकार पृथ्वीकाय—यावत्—त्रसकाय ।

३९४. इसी प्रकार उनके नामोल्लेख पूर्वक सात भय स्थान कहे यथा—

इहलोक—यावत्—परलोक भय ।

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमणों के सात भय स्थान कहेंगे ।

३९५. इसी प्रकार आठ मद स्थान, नो ब्रह्मचर्य गुप्ति, दश श्रमण धर्म—यावत्—तेतीस आशातना पर्यन्त कहें ।

३९६. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का नग्न भाव, मुण्ड भाव, अस्नान, अदन्तधावन, छत्ररहित रहना, जूते न पहनना, वाहन का उपयोग न करना, भू-शय्या, फलक शय्या, काठ शय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्य पालन गृहस्थ के घर से आहार आदि लाना, मान अपमान में समान रहना आदि बतलाया है ।

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के नग्नभाव—यावत् मान अपमान में समान भाव की प्ररूपणा करेंगे ।

३९७. हे आर्यो ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को आधाकर्म, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूर्वक, पूतिक, क्रीत, अपमित्यक, आच्छेद्य, अनिसृष्ट अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्ष भक्त, ग्लान भक्त, वद्दलिका भक्त, प्राघूर्णक, मूल भोजन, कन्द भोजन, फल भोजन, हरित भोजन लेने का निषेध किया है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को आधा कर्म—यावत्—हरित भोजन लेने का निषेध करेंगे ।

३९८. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत अचेलक धर्म कहा है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित—यावत्—अचेलक धर्म कहेंगे ।

३९९. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म कहा है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी पाँच अणुव्रत—यावत्—श्रावक धर्म कहेंगे ।

---

१ आव० अ० ४ सु० २०-२६ ।

४००. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं सेज्जायरपिंडेइ वा, रायपिंडेइ वा पडिसिद्धे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं सेज्जायरपिंडेइ वा रायपिंडेइ वा पडिसेहिस्सइ।

४०० हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर पिंड और राजपिंड लेने का निषेध किया है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर पिंड और राजपिंड लेने का निषेध करेंगे।

संपत्तिसामण्णं—

४०१. से जहा णामए अज्जो ! मम नव गणा, एगारस गणधरा।

एवामेव महापउमस्स वि अरहओ नव गणा, एगारस गणधरा भविस्संति।

संपत्तिसाम्य—

४०१. हे आर्यो ! जिस प्रकार मेरे नौ गण और इग्यारह गणधर हैं, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त के भी नौ गण और इग्यारह गणधर होंगे।

आयुसो सामण्णं—

४०२. से जहा णामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता - जाव - पव्वइए- दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइ केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, सिज्झिस्सं - जाव - सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं,

एवामेव महापउमे वि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता - जाव - पव्वहिइ, दुवालस संवच्छराइं - जाव - बावत्तरिवासाइ सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिहिइ - जाव - सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ

गाहा—जं सीलसमायारो, अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तस्सीलसमायारो, होइ उ अरहा महापउमे ॥१॥

—ठाणं अ० ६, सु० ६६३

आयुष्य साम्य—

४०२. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैं तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय में रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुआ, बारह वर्ष और तेरह पक्ष न्यून तीस वर्ष का केवली पर्याय, बियालीस वर्ष का श्रमण पर्याय और बहत्तर वर्ष का पूर्णायु भोगकर, सिद्ध होऊँगा—यावत्—सब दुःखों का अन्त करूंगा, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी तीस वर्ष गृहस्थावास में रहकर—यावत्—सब दुःख का अन्त करेंगे।

गाथा—जो शील समाचार (कार्यकलाप) अर्हंत तीर्थंकर महावीर का था वह शील समाचार महापद्म अर्हंत का होगा।

अरहया महापउमेण अट्ठरायाणो दिक्खिया भविस्संति—

४०३. अरहा णं महापउमे अट्ठ रायाणो मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वावेस्सति, तं जहा -

१ पउमं, २ पउमगुम्मं, ३ णलिणं ४ णलिणगुम्मं, ५ पउमद्धयं, ६ धणुद्धयं, ७ कणगरहं, ८ भरहं।

—ठाणं० अ० ६, सु० ६२५

अर्हंत महापद्म आठ राजाओं को दीक्षा देंगे—

४०३. महापद्म अर्हंत आठ राजाओं को मुण्डित करके तथा गृहस्थ का त्याग करा करके अणगार प्रव्रज्या देंगे। यथा—

१—पद्म, २—पद्मगुल्म, ३—नलिन, ४—नलिनगुल्म, ५—पद्मध्वज, ६—धनुध्वज, ७—कनकरथ, ८—भरत।

॥ इइ महापउम जिण चरियं ॥

॥ महापद्म जिन-चरित्र समाप्त ॥



८. तित्थयर-साण्मणं

८. तीर्थंकर-सामान्य

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु अरहंताइवंससमुप्पत्ती—

४०४. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंतवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४०५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टिवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४०६. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।।

—ठाणं० अ० २, उ० ३, सु० ८९

४०७. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीए तओ वंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे ।

४०८. एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ।

—ठाणं० अ० ३, उ० १, सु० १४३

अढाई द्वीपों में अरहंतादिवंश-समुत्पत्ति—

४०४. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो अर्हत् वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४०५. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो चक्रवर्ती वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४०६. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो दशार वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४०७. जम्बूद्वीप वर्ती भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में यह तीन वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे । यथा—अर्हन्तवंश, चक्रवर्ती-वंश और दशार्ह-वंश ।

४०८. इसी तरह—यावत्—पुष्करवर द्वीपार्ध, पूर्वार्ध एवं पश्चिमार्ध के लिये भी समझना चाहिए ।

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु अरहंताईणमुप्पत्ती—

४०९. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४१०. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४११. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४१२. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

—ठाणं० अ० २, उ० ३, सु० ८९

४१३. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीए तओ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा ।

४१४. एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ।

—ठाणं० अ० ३, उ० १, सु० १४३

अढाई द्वीपों में अरहंतादि की उत्पत्ति—

४०९. जम्बूद्वीप के भरत ऐरावत वर्ष में एक समय एक युग में दो अर्हन्त उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४१०. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४११. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो बलदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४१२. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४१३. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । वे इस प्रकार—अरहंत, चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव ।

४१४. इसी प्रकार—यावत्—पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध के बारे में भी समझना चाहिये ।

जंबुद्दीवे भरहेरवएसु उत्तमपुरिसा—

४१५. जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए एगमेगाए उस्सप्पिणीए चउप्पण्णं-चउप्पण्णं उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा-चउवीसं तित्थकरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।

—सम० स० ५४, सु० १

जम्बूद्वीप के भरत ऐरावत में उत्तम पुरुष —

४१५. जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में चोपन-चोपन उत्तम पुरुष उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए हैं और उत्पन्न होंगे, यथा—चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलदेव और नव वासुदेव।

धायइसंडे उत्तमपुरिसा—

४१६. धायइसंडे णं दीवे उक्कोसपए अट्ठसट्ठि अरहंता समुप्पज्जिंसु वा समुप्पज्जेंति वा समुप्पज्जिस्संति वा।

४१७. एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

—सम० स० ६८, सु० १-३

धातकीखंड में उत्तम पुरुष—

४१६. धातकीखंड द्वीप में उत्कृष्टतः अड़सठ अरिहंत समुत्पन्न हुए हैं, समुत्पन्न होते हैं और समुत्पन्न होंगे।

४१७. इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी।

पुक्खरवरदीवड्ढे उत्तमपुरिसा—

४१८. पुक्खरवरदीवड्ढे णं उक्कोसपए अट्ठसट्ठि अरहंता समुप्पज्जिंसु वा समुप्पज्जेंति वा समुप्पज्जिस्संति वा।

४१९. एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

—सम० स० ६८, सु० ०४

पुष्करवर द्वीपार्ध में उत्तम पुरुष—

४१८. पुष्करवर द्वीपार्ध में उत्कृष्टतः अड़सठ अरहंत समुत्पन्न हुए हैं, समुत्पन्न होते हैं और समुत्पन्न होंगे।

४१९. इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी।

जंबुद्दीवे महाविदेहे अरहंताईणमुप्पत्ती—

४२०. जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहण्णपए चत्तारि अरहंता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि बलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

—ठाणं० अ० ४, उ० २, सु० ३०२

४२१. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए उत्तरेणं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

—ठाणं० अ० ८, सु० ६३८

जम्बूद्वीप के महाविदेह में अरहंतादि की उत्पत्ति—

४२०. जम्बूद्वीप के महाविदेह में जघन्य चार अरिहंत, चार चक्रवर्ती, चार बलदेव, चार वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

४२१. जम्बूद्वीपवर्ती सुमेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर में, उत्कृष्ट आठ अर्हन्त, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव, आठ वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।

जंबुद्दीवे एरवए तित्थयरा—

४२२. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तं जहा—

चंदाणणं सुचंदं च, अग्गिसेणं च नंदिसेणं च।
इसिदिण्णं वयधारिं, वंदिमो सोमचंदं च ॥१॥
वंदामि जुत्तिसेणं, अजियसेणं तहेव सिवसेणं।
बुद्धं च देवसम्मं, सययं निक्खित्तसत्थं च ॥२॥
असंजलं जिणवसहं, वंदे य अणंतयं अमियणाणिं।
उवसंतं च धुयरयं, वंदे खलु गुत्तिसेणं च ॥३॥
अतिपासं च सुपासं, देवेसरवंदियं च मरुदेवं।
निव्वाणगयं च धरं, खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥४॥
जियरागमग्गिसेणं, वंदे खीणरयमग्गिउत्तं च।
वोक्कसियपिज्जदोसं, च वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥५॥

—सम० सु० १५८

जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में तीर्थंकर—

४२२. जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में इस (वर्तमान) अवसर्पिणी में चौवीस तीर्थंकर हुए, यथा—

१—चन्द्रानन, २—सुचन्द्र, ३—अग्निसेन, ४—नंदिसेन, ५—ऋषिदत्त, ६—व्रतधारी, ७—सोमचन्द्र, ८—युक्तिसेन, ९—अजितसेन, १०—शिवसेन, ११—देवशर्म, १२—निक्षिप्त शस्त्र, १३—असंज्वल, १४—अनन्तक, १५—उपशांत, १६—गुप्तिसेन, १७—अतिपार्श्व, १८—सुपार्श्व, १९—मरुदेव, २०—धर, २१—श्यामकोष्ठ, २२, अग्निसेन, २३—अग्निपुत्र, २४—वारिषेण।

जंबुद्दीवे एरवए भावी तित्थयरा—

४२३. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवएवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीसं तित्थकरा भविस्संति तं जहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥१॥
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥२॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥३॥
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ॥४॥
सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंतविजए, आगमिस्साण होक्खइ ॥५॥
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥६॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली ।
आगमिस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥७॥

—सम० सु० १५८

जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष के भावी तीर्थंकर—

४२३. जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौवीस तीर्थंकर होंगे, यथा—

१—सुमंगल, २—सिद्धार्थ, ३—निर्वाण, ४—महायश, ५—धर्मध्वज, ६—श्रीचन्द्र, ७—पुष्पकेतु, ८—महाचन्द्र, ९—श्रुतसागर, १०—पुण्यघोष, ११—महाघोष, १२—सत्यसेन, १३—शूरसेन, १४—महासेन, १५—सर्वानन्द, १६—देवपुत्र, १७—सुपार्श्व, १८—सुव्रत, १९—सुकोशल, २०—अनन्तविजय, २१—विमल, २१—उत्तर, २३—महाबल, २४—देवानन्द ।

जंबुद्दीवे तित्थयरा—

४२४. जंबुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे जहण्णपए वा उक्कोसपए वा केवइया तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णपए चत्तारि, उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

—जंबु० व० ७, सु० १७३

जम्बूद्वीप में तीर्थंकर—

४२४. हे भदन्त ! जम्बूद्वीप में जघन्यतः और उत्कृष्टतः कुल मिलाकर कितने तीर्थंकर होते हैं।

हे गौतम ! सब मिलाकर जघन्य चार और उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर होते हैं।

जंबुद्दीवतित्थयराणं उक्किट्ठा संखा—

४२५. जंबुद्दीवे णं दीवे उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थकरा समुप्पज्जंति ।

—सम० स० ३४, सु० ४

जम्बूद्वीप के तीर्थंकरों की उत्कृष्ट संख्या—

४२५. जम्बूद्वीप में उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं।

जंबुद्दीवे भारहे वासे तित्थयराण नामाइं—

४२६. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए कति तित्थगरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउवीसं तित्थगरा पण्णत्ता, तं जहा—

उसभ-अजिय-सम्भव-अभिनंदण-सुमति-सुप्पभ-सुपास-ससि-पुप्फदंत-सीयल-सेज्जंस-वासुपुज्ज-विमल-अणंत-धम्म-संति-कुन्थु-अर-मल्लि-मुणिसुव्वय-नमि-नेमि-पास-वद्धमाणा ।

—भग० स० २०, उ० ८, सु० ७
—सम० स० २४, सु० १

जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में तीर्थंकरों के नाम—

४२६. हे भदन्त ! जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी में कितने तीर्थंकर कहे हैं ?

हे गौतम ! चौवीस तीर्थंकर होते हैं, यथा—

१—ऋषभ, २—अजित, ३—संभव, ४—अभिनन्दन, ५—सुमति, ६—पद्मप्रभ, ७—सुपार्श्व, ८—चंद्रप्रभ, ९—सुविधि, १०—शीतल, ११, श्रेयांस, १२—वासुपूज्य, १३—विमल, १४—अनंत, १५—धर्म, १६—शांती, १७—कुंथु, १८—अर, १९—मल्लि, २०—मुनिसुव्रत, २१—नमि, २२—नेमि, २३—पार्श्व, २४—वर्धमान ।

पियरो—

४२७. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं पियरो होत्था, तं जहा—

संगहणीगाहाओ—

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संवरे इ य।
मेहे धरे पइट्ठे य, महसेणे य खत्तिए ॥१॥
सुग्गीवे दढरहे विण्हू, वसुपुज्जे य खत्तिए।
कयवम्मा सीहसेणे य भाणू विस्ससेणे इ य ॥२॥
सूरे सुदंसणे कुम्भे, सुमित्तविजए समुद्दविजये य।
राया य आससेणे य, सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए ॥३॥
उदितोदितकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया।
तित्थप्पवत्तयाणं, एए पियरो जिणवराणं ॥४॥

पिता—

४२७. जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों के पिता इस प्रकार थे—

संग्रहणी गाथा—

१—नाभि, २—जितशत्रु, ३—जितारि, ४—संवर, ५—मेघ, ६—धर, ७—प्रतिष्ठ, ८—महासेन, ९—सुग्रीव, १०—दृढ़रथ, ११—विष्णु, १२—वसुपूज्य, १३—कृतवर्मा, १४—सिंहसेन, १५—भानु, १६—विश्वसेन, १७—सूर, १८—सुदर्शन, १९—कुम्भ, २०—सुमित्र, २१—विजय, २२—समुद्रविजय, २३—अश्वसेन, २४—सिद्धार्थ।

तीर्थ प्रवर्तक जिनवरों के ये पिता सभी उच्च तेजस्वी कुल एवं गुणोपेत विशुद्ध वंश वाले थे।

मायरो—

४२८. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं मायरो होत्था, तं जहा—

संगहणीगाहाओ—

मरुदेवा विजयसेणा, सिद्धत्था मंगला सुसीमा य।
पुहवी लक्खण रामा, नंदा विण्हू जया सामा ॥१॥
सुजसा सुव्वय अइरा, सिरिया देवी पभावई।
पउमा वप्पा सिवा य, वामा तिसला देवी य जिणमाया ॥२॥

माता—

४२८. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी में होने वाले तीर्थंकरों की माता के नाम इस प्रकार थे—

संग्रहणी गाथा—

१—मरुदेवी, २—विजया, ३—सेना, ४—सिद्धार्था, ५—मंगला, ६—सुसीमा, ७—पृथ्वी, ८—लक्ष्मणा, ९—रामा, १०—नन्दा, ११—विष्णु, १२—जया, १३—श्यामा, १४—सुयशा, १५—सुव्रता, १६—अचिरा, १७—श्री, १८—देवी, १९—प्रभावती, २०—पद्मा, २१—वप्रा, २२—शिवा, २३—वामा, २४—त्रिशला।

पुव्वभवा—

४२९. एएसिं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पुव्वभविया णामधेज्जा होत्था, तं जहा—

संगहणी गाहाओ—

पढमेत्थ वइरणाभे, विमले तह विमलवाहणे चेव।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्ते तह धम्ममित्ते य ॥१॥
सुन्दरबाहू तह दीहबाहू जुगबाहू लट्ठबाहू य।
दिण्णे य इंददत्ते, सुन्दर माहिंदरे चेव ॥२॥
सीहरहे मेहरहे, रुप्पी य सुदंसणे य बोद्धव्वे।
तत्तो य नंदणे खलु, सीहगिरी चेव वीसइमे ॥३॥
अदीणसत्तु संखे, सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे।
ओसप्पिणीए एए, तित्थकराणं तु पुव्वभवा ॥४॥

—सम० सु० १५७

पूर्वभव—

४२९. इन चौवीस तीर्थंकरों के पूर्वभव में ये चौवीस नाम थे (इन चौवीस तीर्थंकरों के पूर्वभव में क्रमशः चौवीस नाम इस प्रकार थे)—

१—वज्रनाभ, २—विमल, ३—विमलवाहन, ४—धर्मसिंह, ५—सुमित्र, ६—धर्ममित्र, ७—सुन्दरबाहु, ८—दीर्घबाहु, ९—युगबाहु, १०—लष्टबाहु, ११—दिन्न, १२—इन्द्रदत्त, १३—सुन्दर, १४—माहेन्द्र, १५—सिंहरथ, १६—मेघरथ, १७—रूपी, १८—सुदर्शन, १९—नन्दन, २०—सिंहगिरि, २१—अदीनशत्रु, २२—शंख, २३—सुदर्शन, २४—नन्दन।

पुव्वभवसुयणाणं—

४३०. जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थकरा पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था, तं जहा—

पूर्वभव में श्रुतज्ञान—

४३०. जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में इग्यारह अंग के ज्ञाता थे, यथा—

—अजिए संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुन्थू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य।

—अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्थू, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान।

उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था।

कौशलिक अर्हंत ऋषभदेव चौदह पूर्व के ज्ञाता थे।

पुव्वभवा—

४३१. जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थगरा पुव्वभवे मंडलियरायाणो होत्था, तं जहा—अजिए संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुन्थू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य।

उसभे णं अरहा कोसलिए चक्कवट्टी होत्था।

—सम० स० २३, सु० ३४

पूर्वभव—

४३१. जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में मांडलिक राजा थे, यथा—

अजित; संभव—यावत्—वर्धमान।

अरहंत ऋषभदेव कौशलिक पूर्वभव में चक्रवर्ती थे।

तित्थयराणं वण्णो—

४३२. दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मुणिसुव्वए चेव, अरिट्ठणेमी चेव।

दो तित्थगरा पियंगुसामा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मल्ली चेव, पासे चेव।

दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—पउमप्पहे चेव, वासुपुज्जे चेव।

दो तित्थगरा चंदगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—चंदप्पभे चेव, पुप्फदंते चेव।[1]

—ठाणं० अ० २, उ० ४, सु० १०८
—ज्ञाता० अ० ८

तीर्थंकरों का वर्ण—

४३२. दो तीर्थंकर नील-कमल के समान वर्ण वाले थे यथा—

मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि।

दो तीर्थंकर प्रियंगु (वृक्ष-विशेष) के समान वर्ण वाले थे, यथा—मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ।

दो तीर्थंकर पद्म के समान गौर (लाल) वर्ण वाले थे, यथा—पद्मप्रभ और वासुपूज्य।

दो तीर्थंकर चन्द्र के समान गौर वर्ण—शुक्ल वर्ण वाले थे, यथा—चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)।

उच्चत्तं—

४३३. अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ४५०, सु० १

संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ४००, सु० १

अभिनंदणे णं अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ३५०, सु० २

सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ३००, सु० १

उच्चत्व (ऊँचाई)—

४३३. अजित अरहन्त साढ़े चार सौ धनुष ऊँचे थे।

अरहन्त संभवनाथ चार सौ धनुष ऊँचे थे।

अरहंत अभिनन्दन साढ़े चार सौ धनुष ऊँचे थे।

अरहंत सुमतिनाथ तीन सौ धनुष ऊँचे थे।

---

१ पउम-वसुपुज्जरत्ता, ससि-सुविहि सेत्र नेमि-मुणि काला। मल्ली पासो नीला, कणयनिहा सोलसेस जिणा ॥१॥

—सत्त० ठा० ४६, गा० १२५

पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० २५०, सु० १

अरहन्त पद्मप्रभ ढाई सौ धनुष ऊँचे थे।

सुपासे णं अरहा दो धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० २००, सु० १

अरहन्त सुपार्श्वनाथ दो सौ धनुष ऊँचे थे।

चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुसय उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० १५०, सु० १

अरहन्त चन्द्रप्रभ डेढ़ सौ धनुष ऊँचे थे।

सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० १००, सु० ३

अरहन्त सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) एक सौ धनुष ऊँचे थे।

सीयले णं अरहा नउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ९०, सु० १

अरहन्त शीतलनाथ की ऊँचाई नब्बे धनुष की थी।

सेज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ८०, सु० १

अरहन्त श्रेयांसनाथ अस्सी धनुष ऊँचे थे।

वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरि धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ७०, सु० ३

अरहन्त वासुपूज्य सत्तर धनुष ऊँचे थे।

विमले णं अरहा सट्ठिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ६०, सु० ३

अरहन्त विमलनाथ साठ धनुष ऊँचे थे।

अणंते णं अरहा पण्णासं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ५०, सु० २

अरहन्त अनंतनाथ पचास धनुष ऊँचे थे।

धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ४५, सु० ५

अरहन्त धर्मनाथ पैंतालीस धनुष ऊँचे थे।

संती णं अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ४०, सु० ३

अरहन्त शांतिनाथ चालीस धनुष ऊँचे थे।

कुन्थू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ३५, सु० २

अरहन्त कुन्थुनाथ पैंतीस धनुष ऊँचे थे।

अरे णं अरहा तीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ३०, सु० ४

अरहन्त अरनाथ तीस धनुष ऊँचे थे।

मल्ली णं अरहा पणवीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० २५, सु० २

अरहन्त मल्लिनाथ पच्चीस धनुष ऊँचे थे।

मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० २०, सु० २

अरहन्त मुनिसुव्रत बीस धनुष ऊँचे थे।

णमी णं अरहा पण्णरस धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० १५, सु० २

अरहन्त नमिनाथ पन्द्रह धनुष ऊँचे थे।

णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, होत्था।[1]

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

अरहन्त अरिष्टनेमी दस धनुष ऊँचे थे।

---

[1] सम० स० १०, सु० ४।

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए नव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं [हो]त्था ।

—सम० स० ९, सु० ४

अरहन्त पार्श्वनाथ नौ हाथ ऊँचे थे ।

समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।[1]

—सम० स० ७, सु० ३

श्रमण भगवान महावीर सात हाथ ऊँचे थे ।

[अ]गारवासो—

आगारवास—

[४]३४. उसभे णं अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगार-[वा]समज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ८३, सु० १

४३४. अरहन्त कौशलिक ऋषभदेव तियासी लाख पूर्व गृहवास में रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अजिते णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे [व]सित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७१, सु० ३

अरहन्त अजितनाथ इकहत्तर लाख पूर्व गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

संभवे णं अरहा एगूणसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे [व]सित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ५९, सु० २

अरहन्त सम्भवनाथ उनसठ हजार पूर्व गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

सीतले णं अरहा पण्णत्तरिं पुव्वसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता [मु]ंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७५, सु० २

अरहन्त शीतलनाथ पचहत्तर हजार पूर्व गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

संती णं अरहा पण्णत्तरिं वाससहस्साइं अगारवासमज्झे [व]सित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७५, सु० ३

अरहन्त शांतिनाथ पचहत्तर हजार वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरिट्ठनेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे [व]सित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ३००, सु० २

अरहन्त अरिष्टनेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता [मुण्डे [भ]वित्ता ?] अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ३०, सु० ६

अरहन्त पार्श्वनाथ तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित हुए ।

समणं भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता [मु]ण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ३०, सु० ७

श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित हुए ।

कुमारकालो—

कुमारकाल—

४३५. पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं जहा—वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे ॥

४३५. पाँच तीर्थंकर कुमारावस्था में मुण्डित—यावत् प्रव्रजित हुए, तथा—१. वासुपूज्य, २. मल्ली, ३. अरिष्टनेमी ४. पार्श्व-नाथ, ५. महावीर ।

---

१ ठा० अ० ७, सु० ५६ । ओव० सु० १६ ।

अगारवासकालो—

४३६. एगूणवीसं तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइआ।[1]

—सम० स० १९, सु० ५

आगारवास काल—

४३६. उन्नीस तीर्थंकर गृहवास का त्यागकर मुण्डित हुए अर्थात् —उन्होंने राज्यभोगकर अनगार प्रव्रज्या स्वीकार की।

सव्वायू—

४३७. उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्व-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—सम० स० ८४, सु० २

चंदप्पभे णं अरहा दस-पुव्व-सत्तसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—ठाणं० अ० १०, सु ७३५

सेज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वास-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्तो अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—सम० स० ८४, सु० ३

सर्वायु—

४३७. अरहंत कौशलिक ऋषभदेव चौरासी लाख पूर्व का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

चन्द्रप्रभ अरहन्त दस लाख पूर्व का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—मुक्त हुए।

अरहन्त श्रेयांसनाथ चौरासी लाख वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

---

१ तित्थयराणं कुमारत्तं रज्जं च :

गाहाओ : १ उसभस्स कुमारत्तं, पुव्वाणं वीसई सयसहस्सा। तेवट्ठी रज्जंमी, अणुपालेऊण णिक्खंतो ॥१॥
२ अजिअस्स कुमारत्तं, अट्ठारस पुव्वसयसहस्साइं। तेवण्णं रज्जंमी, पुव्वंगं चेव बोद्धव्वं ॥२॥
पण्णरस सयसहस्सा, कुमारवासो अ संभवजिणस्स ३। चोआलीसं रज्जे, चउरंगं चेव बोद्धव्वं ॥३॥
अद्धतेरसलक्खा, पुव्वाणंऽभिणदणे ४ कुमारत्तं। छत्तीसा अद्धं चिअ, अट्ठंगा चेव रज्जंमि ॥४॥
५ सुमइस्स कुमारत्तं, हवंति दस पुव्वसयसहस्साइं। अउणातीसं रज्जे, बारस अंगा य बोद्धव्वा ॥५॥
६ पउमस्स कुमारत्तं, पुव्वाणऽद्धट्ठमा सयसहस्सा। अद्धं च एगवीसा, सोलस अंगा य रज्जंमि ॥६॥
पुव्वसय सहस्साइं, पंच सुपासे ७ कुमारवासो उ। चउदस पुण रज्जंमी, वीसं अंगा य बोद्धव्वा ॥७॥
अड्ढाइज्जा लक्खा, कुमारवासो ससिप्पहे ८ होइ। अद्धं छच्चिय रज्जे, चउवीसंगा य बोद्धव्वा ॥८॥
पण्णं पुव्वसहस्सा, कुमारवासो उ पुप्फदंतस्स ९ तावइअं रज्जंमी, अट्ठावीसं च पुव्वंगा ॥९॥
पणवीससहस्साइं, पुव्वाणं सीअले१० कुमारत्तं। तावइअं परिआओ, पण्णासं चेव रज्जंमि ॥१०॥
वासाण कुमारत्तं, इगवीसं लक्ख हुन्ति सिज्जंसे ११। तावइअं परिआओ, बायालीसं च रज्जंमि ॥११॥
गिहवासे अट्ठारस, वासाणं सयसहस्स निअमेणं। चउपण्ण सयसहस्सा, परिआओ होइ वसुपुज्जे १२ ॥१२॥
पण्णरस सयसहस्सा कुमारवासो अ तीसई रज्जे। पण्णरस सयसहस्सा, परिआओ होइ विमलस्स १३ ॥१३॥
अद्धट्ठमलक्खाइं, वासाणमणतई १४ कुमारत्ते। तावइअं परिआओ, रज्जंजमी हुन्ति पण्णरस ॥१४॥
१५ धम्मस्स कुमारत्तं, वासाणड्ढाइआइं लक्खाइं। तावइअं परिआओ, रज्जे पुण हुन्ति पंचेव ॥१५॥
१६ संतिस्स कुमारत्तं, मंडलिअ चक्कि परिआअ चउसु पि। पत्तेअं पत्तअं, वाससहस्साइं पणवीसं ॥१६॥
एमेव य कुन्थुस्स १७ वि, चउसु वि ठाणेसु हुन्ति पत्तेअं। तेवीस सहस्साइं, वरिसाणद्धट्ठमसया य ॥१७॥
एमेव अरजिणिंदस्स १८, चउसु वि ठाणेसु हुन्ति पत्तेअं। इगवीस सहस्साइं, वासाणं हुन्ति णायव्वा ॥१८॥
१९ मल्लिस्स वि वाससयं, गिहवासे सेसयं तु परिआओ। चउप्पण्णसहस्साइं, नव चेव सयाइं पुण्णाइं ॥१९॥
अद्धट्ठमा सहस्सा, कुमारवासो उ सुव्वयजिणस्स २०। तावइअं परिआओ, पण्णरससहस्स रज्जंमि ॥२०॥
नमिणो २१ कुमारवासो, वास सहस्साइं दुण्णि अद्धं च। तावइअं परिआओ, पंचसहस्साइं रज्जंमि ॥२१॥
तिण्णेव य वाससया, कुमारवासो अरिट्ठनेमिस्स २२। सत्त य वाससयाइं, सामण्णे होइ परिआओ ॥२२॥
पासस्स २३ कुमारत्तं, तीसं परिआओ सत्तरी होई। तीसा य वद्धमाणे २४, बायालीसा उ परिआओ ॥२३॥

धम्मे णं अरहा दस वास-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—ठाणं०, अ० १०, सु० ७३५

धर्मनाथ अरहन्त दश लाख वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

कुन्थू णं अरहा पंचाणउइं वास-सहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—सम० स० ९५, सु० ४

अरहन्त कुन्थुनाथ पंचानवे हजार वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

मल्ली णं अरहा पणपण्णं वास-सहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—सम० स० ५५, सु० १

अरहन्त मल्लिनाथ पचपन हजार वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

णमी णं अरहा दस-वास-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

अरहन्त नमिनाथ दश हजार वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

णेमी णं अरहा दस वास-सयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

अरहन्त नेमनाथ एक हजार वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—मुक्त हुए।

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वास-सयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।

—सम० स० १००, सु ४

पुरुषादानी अरिहन्त पार्श्वनाथ एक सौ वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।[1]

—सम० स० ७२, सु० ३

श्रमण भगवान महावीर बहत्तर वर्ष आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

चंदप्पभस्स छउमत्थकालो—

४३८. चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था[2]।

—ठाणं० अ० ६, सु० ५२०

चन्द्रप्रभु का छद्मस्थ काल—

४३८. चन्द्रप्रभ अरहन्त छह मास पर्यन्त छद्मस्थ रहे।

कल्लाणगाणि—

४३९. पउमप्पहे णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—

कल्याणक—

४३९. पद्मप्रभ अरहन्त के पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए हैं। यथा—

---

१ तित्थयराणं सव्वाउ—

गाहाओ—

चउरासीइ१ बिसत्तरि२ सट्ठी३ पण्णासमेव लक्खाइं४। चत्ता५ तीसा६ वीसा७ दस८ दो९ एगं च पुव्वाणं१० ॥१॥

चउरासीइ११ बावत्तरी१२ य सट्ठी य होइ वासाणं१३ ॥ तीसा१४ य दस१५ य एगं च एवमेए सयसहस्सा१६ ॥२॥

पंचाणउइ सहस्सा१७, चउरासीई१८ य पंचपण्णा१९ य ॥ तीसा२० य दस२१ य एगं२२, सय२३ च बावत्तरी२४ चेव ॥३॥

२ गाहाओ—वाससहस्सं१ बारस२ चउदस३ अट्ठार४ वीसवरिसा५ य ॥ मासा६ छन्नव७ तिन्नि८ य, चउ९ तिग१० दुग११ मिक्कग१२ दुगं१३ च ॥१॥ तिय१४ दुग१५ इक्कग१६ सोलस, वासा१७ तिन्नि१८ य तहेवहोरत्तं१९ ॥ मासिक्कारस२० नवगं२१, चउपण्ण दिणाइं२२ चुलसीइं२३ ॥२॥ पक्खऽहिय सड्ढ बारस२४, वासा छउमत्थ-कालपरिमाणं ॥

१. चित्ताहिं चुत्ते चइत्ता गब्भं वक्कंते । २. चित्ताहिं जाते । ३. चित्ताहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए । ४. चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । ५. चित्ताहिं परिणिव्वुते ।

१. चित्रा नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में उत्पन्न हुए । २. चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ । ३. चित्रा नक्षत्र में प्रव्रजित हुए । ४. अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ । ५. चित्रा नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त हुए ।

पुप्फदंते णं अरहा पंचमूले हुत्था, तं जहा—मूलेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

२. पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) अरहन्त के पाँच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए, यथा—१. मूल नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में उत्पन्न हुए, २—५. मूल नक्षत्र में जन्म—यावत्—निर्वाण कल्याणक रहे ।

सीयले णं अरहा पंचपुव्वासाढे हुत्था, तं जहा—पुव्वासाढाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

३. शीतल अरहन्त के पाँच कल्याणक पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में हुए ।

विमले णं अरहा पंचउत्तराभद्दवए हुत्था, तं जहा—उत्तराभद्दवयाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

४. विमल अरहन्त के पाँच कल्याणक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हुए ।

अणंते णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

४. अनन्त अरहन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में हुए ।

धम्मे णं अरहा पंचपूसे हुत्था, तं जहा—पूसेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

६. धर्मनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक पुष्य नक्षत्र में हुए ।

संती णं अरहा पंचभरणीए हुत्था, तं जहा—भरणीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

७. शान्तिनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक भरणी नक्षत्र में हुए ।

कुन्थू णं अरहा पंचकत्तिए हुत्था, तं जहा—कत्तियाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

८. कुन्थुनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक कृत्तिका नक्षत्र में हुए ।

अरे णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

९. अरनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में हुए ।

मुणिसुव्वए णं अरहा पंचसवणे हुत्था, तं जहा—सवणेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

१०. मुनिसुव्रत अरहन्त के पाँच कल्याणक श्रवण नक्षत्र में हुए ।

णमी णं अरहा पचआसिणीए हुत्था, तं जहा—आसिणीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

११. नमि अरहंत के पाँच कल्याणक अश्विनी नक्षत्र में हुए ।

णेमी णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, त जहा—चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

१२. नेमिनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए ।

पासे णं अरहा पंचविसाहे हुत्था, तं जहा—विसाहाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते० ॥

१३. पार्श्वनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए ।

समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा—

१४. श्रमण भगवान महावीर के पाँच कल्याणक हस्तोत्तरा (चित्रा) नक्षत्र में हुए । यथा—

१. हत्थुत्तराहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते । २. हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिते

१. भ० महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में देवलोक से नक्षत्र में गर्भ में उत्पन्न हुए । २. भ० महावीर हस्तोत्तरा च्यवकर देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये ।

३. हत्थुत्तराहिं जाते ।[1] ४. हत्थुत्तराहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए। ५. हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल- वरणाणदंसणे समुप्पण्णे ॥[2]

—ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११

३. भ० महावीर हस्तोत्तर नक्षत्र में जन्म हुआ। ४. भ० महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में दीक्षित हुए। ५. भ० महावीर को हस्तोत्तरा नक्षत्र में केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ।

सीया सीयावाहया य—

४४०. एएसि णं चउवीसाए तित्थकराणं चउवीसं सीयाओ होत्था, तं जहा—

सीया सुदंसणा सुप्पभा सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य।
विजया य वेजयंति, जयंति अपराजिया चेव ॥१॥
अरुणप्पभ चंदप्पभ, सूरप्पह अग्गिसप्पभा चेव।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥२॥
अभयकर णिव्वुतिकरा, मणोरमा तह मणोहरा चेव।
देवकुरु उत्तरकुरा, विसाल चंदप्पभा सीया ॥३॥
एयातो सीयाओ, सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं।
सव्वजगवच्छलाणं, सव्वोतुयसुभाए छायाए ॥४॥
पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्टरोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदनागिंदा ॥५॥
चलचवलकुण्डलधरा, सच्छंदविउव्वियाभरणधारी।
सुरअसुरवंदियाणं, वहंति सीयं जिणिंदाणं ॥६॥
पुरओ वहंति देवा, नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि।
पच्चत्थिमेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासे ॥७॥[3]

शिविका और शिविकावाहक—

४४०. इन चौवीस तीर्थंकरों की चौवीस शिविका (पालखी) थी, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सुदर्शना, २. सुप्रभा, ३. सिद्धार्थो, ४. सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९. अरुण-प्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्नि, १३. सुप्रभा, १४. पंचवर्णा, १५. सागरदत्ता, १६. नागदत्ता, १७. अभयकरा, १८. निर्वृत्तिकरा, १९. मनोरमा, २०. मनोहरा, २१. देवकुरा, २२. उत्तरकुरा, २३. विशाला, २४. चन्द्रप्रभा।

सर्व जगत वत्सल इन सभी जिनवरों (तीर्थंकरों) की पाल-खियाँ सभी ऋतुओं के योग्य छायावाली होती हैं।

आगे हर्षोत्फुल्ल मनुष्य तथा पीछे स्वविक्रिया रचित द्वारा विकुर्वित चंचल कुण्डलों और आभूषणों को धारण करने वाले सुर असुरों द्वारा वंदित असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र इन पाल-खियों को वहन करते हैं।

पूर्व में देव दक्षिण में नाग, पश्चिम में असुर और उत्तर में गरुड़ उनका वहन करते हैं।

---

१ दु चउत्थ नवम वारस, तेरस पन्नरस सेस गब्भठिइ। मासा अड नव तदुवरि, उसहाइकमेणिमे दिवसा ॥१॥
चउ पणवीसं छद्दिण, अडवीसं छच्च छच्चिगुणवीसं। सगछव्वीसं छ च्छ य, वीसिगवीसं छ छव्वीसं ॥२॥
छ पण अड सत्त अट्ठय, अट्ठडट्ठ छ सत्त हुन्ति गब्भ दिणा।

२ (क) गाहाओ—
एवमेएण अभिलावेणं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ—
पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुण होइ पुप्फदंतस्स। पुव्वाई आसाढा, सीयलस्सुत्तर विमलस्स भद्दवया ॥१॥
मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि नमिणो य नेमिणो चित्ता। पासस्स विसाहाओ, पंच य हत्थुत्तरो वीरो ॥२॥
रेवइया अणंतजिणो, पूसो धम्मस्स संतिणो भरणी। कुन्थुस्स कत्तियाओ, अरस्स तह रेवइओ य ॥३॥
(ख) उत्तरसाढा१ रोहिणि२, मियसीस३ पुणव्वसू४ महा५ चित्ता६ ॥ वइसाह७ऽणुराहा८ मूल९, पुव्व१० सवणो११ साअयभिसा१२ य ॥१॥
उत्तरभद्दव१३ रेवइ१४, पुस्स१५ भरणि१६ कत्तिया१७ य रेवइ१८ य ॥ अस्सिणि१९ सवणो२० अस्सिणि२१ चित्त२२ विसाहु२३ तरा२४ रिक्खा ॥२॥

३ तित्थयराणं दिक्खाकालो—
गाहाओ : उसभस्स पुव्वलक्खं, पुव्वंगूणमजिअस्स तं चेव। चउरंगूणं लक्खं, पुणो पुणो जाव नुविहित्ति ॥१॥
पणवीस तु सहस्सा, पुव्वाण सीअलस्स परिआओ। लक्खाइं इक्कवीसं, सिज्जंस जिणस्स वासाणं ॥२॥
चउपण्णं पण्णरस, तत्तो अद्धट्ठमाइ लक्खाइं। अड्ढाइज्जाइं तओ, वाससहस्साइं पनवीसं ॥३॥
तेवीस च सहस्सा, सयाणि अद्धट्ठमाणि अ हवंति। इगवीस च सहस्सा, वाससऊणा य पणसऊणा ॥४॥
अद्धट्ठमा सहस्सा, अड्ढाइज्जा य सत्त य सयाइं। सयरी बिचत्तवासा, दिक्खाकालो जिणिंदाणं ॥५॥

दिक्खानगराइं—

४४१. उसभो य विणीयाए, बारवईए अरिट्ठवरणेमी ।
अवसेसा तित्थयरा, निक्खंता जम्मभूमीसु ॥१॥

दीक्षा नगरियाँ—

४४१. तीर्थंकर ऋषभ अरहंत ने विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि अर्हंत ने द्वारका नगरी से और शेष तीर्थंकरों ने अपनी-अपनी जन्म-भूमि नगरियों से आनगारिक प्रव्रज्या हेतु अभिनिष्क्रमण किया था।

दिक्खाकाले एगदूस—

४४२. सव्वे वि एगदूसेण, णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं ।
ण य णाम अण्णलिंगे ण य गिहिलिंगे कुलिंगे य ॥१॥

दीक्षाकाल में एक दूष्य (वस्त्र)—

४४२. सभी चौवीस तीर्थंकरों ने एक दूष्य (वस्त्र) के साथ दीक्षा ली थी, किन्तु अन्यलिंग, गृहस्थलिंग अथवा कुलिंग अवस्था में किसी ने दीक्षा नहीं ली ।

सहदिक्खियाणं संखा—

४४३. एक्को भगवं वीरो, पासो मल्ली य तिहिं-तिहिं-सएहिं[1] ।
भयवंपि वासुपुज्जो, छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ॥१॥

उग्गाणं भोगाणं, राइण्णाणं च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो, सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥२॥

सहदीक्षितों की संख्या—

४४३ भगवान महावीर ने अकेले, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ ने तीन सौ-तीन सौ, भगवान वासुपूज्य ने छह सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली थी । तथा—

ऋषभदेव तीर्थंकर ने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय कुलों के चार हजार एवं शेष तीर्थंकरों ने एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली थी ।

दिक्खापुव्वं तवो—

४४४. सुमइत्थ णिच्चभत्तेण, णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं ।
पासो मल्ली वि य, अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥१॥
—सम० सु० १५७

दीक्षा पूर्व के तप—

४४४. तीर्थंकर सुमतिनाथ ने नित्य भोजन (उपवास के बिना) पूर्वक, वासुपुज्य ने चतुर्थभक्त (एक उपवास) करके, पार्श्व और मल्लि ने अष्ट भक्त (तीन उपवास) करके और शेष तीर्थंकरों ने षष्ठ भक्त (दो उपवास) करके दीक्षा ली थी ।

पढमभिक्खादायगा—

४४५. एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं पढमभिक्खादायारो होत्था, तं जहा—

सेज्जंसे बंभदत्ते, सुरिंददत्ते य इंददत्ते य ।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्ते तह धम्ममित्ते य ॥१॥
(पाठान्तर) [पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह सोमदत्ते य]
पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद, सुणंदे जये य विजये ण ।
पउमे य सोमदेवे, महिंददत्ते य सोमदत्ते य ॥२॥
(पाठान्तर) [तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे अ]
अपराजिय वीससेणे, वीसतिमे होइ उसभसेणे य ।
दिण्णे वरदत्ते, धणे बहुले य आणुपुव्वीए ॥३॥
एते विसुद्धलेसा, जिणवरभत्तीए पंजलिउडा य ।
त कालं तं समयं, पडिलाभेई जिणवरिंदे ॥४॥

प्रथम भिक्षा दाता—

४४५. इन चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस प्रथम भिक्षा दातार थे, यथा—

श्रेयांस, ब्रह्मदत्त, सुरेन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, धर्मसिंह, सुमित्र, धर्ममित्र ।

पुष्य, पुनर्वसु, पूर्णनन्द, सुनन्द, जय, विजय, पद्म, सोमदेव, महेन्द्रदत्त, सोमदेव,

अपराजित, विश्वसेन, ऋषभसेन, दिन्न, वरदत्त, धन्य, बहुल—यों क्रमशः जानना चाहिए ।

जिनेन्द्रों को प्रथम भिक्षा दातार ये सभी विशुद्ध अध्यवसाय वाले होकर सभक्ति हाथ जोड़कर (नमस्कार करके) उन्हें भिक्षा देते हैं ।

---

१ ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० २२९ ।
(क) मल्ली णं अरहा अत्पसत्तमे मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा—मल्ली विदेहरायवरकण्णगा, पडिबुद्धी इक्खागराया, चंदच्छाये अंगराया, रुप्पी कुणालाधिपती, संखे कासीराया, अदीणसत्तु कुरुराया, जितसत्तु पंचालराया ॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५६४
(ख) नायाधम्मकहाए (८) पुण अट्ठराजकुमारेहिं सह मल्ली दिक्खियति ।

पढमभिक्खाकालो—

४४६. संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण लोगणाहेण ।
सेसेहिं बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥१॥

उसभस्स पढमभिक्खा, खोयरसो आसि लोगणाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं, अमयरसरसोवमं आसि ॥२॥

सव्वेसिं पि जिणाणं, जहियं लद्धाओ पढमभिक्खातो ।
तहियं वसुधाराओ, सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ॥३॥

प्रथम भिक्षा काल—

४४६. लोकनाथ ऋषभ प्रभु को दीक्षा लेने के पश्चात् एक वर्ष बाद और शेष तीर्थंकरों को दो दिन के पश्चात् प्रथम भिक्षा मिली।

लोकनाथ ऋषभ को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला और शेस तीर्थंकरों को अमृत के समान सरस खीर (परमान्न) मिली थी।

सभी जिनेश्वरों को जब प्रथम भिक्षा मिली, तब शरीर ढक जाये उतनी धन वर्षा हुई।

चेइयरुक्खा—

संगहणी गाहाओ—

४४७. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था, तं जहा—

णग्गोह-सत्तिवण्णे, साले पियए पियंगु छत्ताहे ।
सिरिसे य णागरुक्खे, माली य पिलंखुरुक्खे य ॥१॥
तेंदुग पाडल जंबू, आसोत्थे खलु तहेव दधिवण्णे ।
णंदीरुक्खे तिलए अंबयरुक्खे असोगे य ॥२॥
चंपय बउले य तहा, वेडसरुक्खे य धायईरुक्खे ।
साले य वड्ढमाणस्स, चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥३॥
वत्तीसं धणुयाइं, चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स ।
णिच्चोउगो असोगो, ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ॥४॥
तिण्णेव गाउयाइं, चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा, सरीरतो वारसगुणा उ ॥५॥

सच्छत्ता सपडागा, सवेइया तोरणेहिं उववेया ।
सुरअसुरगरुलमहिया, चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥६॥

चैत्य वृक्ष—

संग्रहणी गाथाएँ—

४४७. इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चैत्यवृक्ष थे, वे इस प्रकार—

न्यग्रोध, सक्तिवर्ण, शाल, प्रियक, प्रियंगु, छत्राभ, शिरीष, नागवृक्ष, मालि, पिलंखुवृक्ष (पलाश),

तिंदुक, पाटल, जम्बू, अश्वत्थ, दधिवर्ण, नन्दीवृक्ष, तिलक, आम्रवृक्ष,

अशोक, चंपक, वकुल, वेतस, धातकी और शाल। वर्धमान भगवान् का दर्शनीय, शोकहारी, शोभासम्पन्न शाल चैत्यवृक्ष वत्तीस धनुष ऊँचा था।

ऋषभ जिनका चैत्यवृक्ष तीन कोस ऊँचा था और शेष तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष उन उनके शरीर प्रमाण से बारह गुने ऊँचे जानना चाहिए।

सभी तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष ध्वजा, पताका, वेदिका तथा तोरणों से सजाये हुए एवं सुर असुर और गारुड़ देवों से पूजित होते हैं।

पढमसिस्सा—

४४८. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसीसा होत्था, तं जहा—

पढमेत्थ उसभसेणे, बीए पुण होइ सीहसेणे उ ।
चारू य वज्जणाभे, चमरे तह सुव्वय विदब्भे ॥१॥
दिण्णे य वराहे पुण, आणंदे गोथुभे सुहम्मे य ।
मंदर जसे अरिट्ठे, चक्काह सयंभु कुम्भे य ॥२॥
इंदे कुम्भे य सुभे वरदत्ते दिण्ण इंदभूती य ।
उदितोदितकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥३॥

प्रथम शिष्य—

४४८. इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस प्रथम शिष्य थे, यथा—

ऋषभसेन, सिंहसेन, चारु, वज्रनाभ, चमर, सुव्रत, विदर्भ।

दिन्न, वराह, आनन्द, गोस्तुभ, सुधर्म, मंदर, यश, अरिष्ट, चक्राह, स्वयंभु, कुम्भ और

इन्द्र, कुम्भ, शुभ, वरदत्त, दिन्न और इन्द्रभूति।

तीर्थप्रवर्तक जिनेश्वर के ये सभी प्रथम शिष्य उच्चकुल, उच्चवंश, विशुद्धवंश वाले एवं गुणसम्पन्न होते हैं।

पढमसिस्सिणीओ—

४४९. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसिस्सिणीओ होत्था, तं जहा—

प्रथम शिष्या—

४४९. इन चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस प्रथम शिष्याएँ थीं, यथा—

वंभी फग्गु सामा अजिया कासवी रई सोमा ।
सुमणा वारुणि सुलसा, धारिणि धरणी य धरणिधरा ।।१।।

पढम सिवा सुई तह अंजुया, भावियप्पा य रक्खिया ।
वंधू-पुप्फवती चेव, अज्जा धणिला य आहिया ।।२।।
(पाठान्तर)
[रक्खी य बंधुवती पुप्फवती अज्जा अमिला य अहिया]

जक्खिणी पुप्फचूला य, चंदणज्जा य आहिया ।
उदितोदितकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, पढमा सिस्सी जिणवराणं ।।३।।

—सम० सु० १५७

ब्राह्मी, फल्गु, श्यामा, अजिता, काश्यपी, रति, सोमा, सुमना, वारुणी, सुलसा, धारिणी, धरणी और धरणीधरा,

प्रथमा, शिवा, शुचि, अंजुका, भावितात्मा, रक्षिका, बंधुमती, पुष्पवती, और धनिला ।

यक्षिणी, पुष्पचुला और चंदना ।

तीर्थप्रवर्तक जिनेश्वर की ये सभी प्रथम शिष्यायें उच्चकुल, उच्चवंश, विशुद्धवंश की एवं गुणवती होती हैं ।

केवलनाण-दंसणोप्पत्तिकालो—

४५०. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाण सुरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे ।।

—सम० स० २३, सु० २

केवलज्ञान-दर्शन-उत्पत्तिकाल—

४५०. जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में तेइस जिन भगवान् को सूर्योदय के समय केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था ।

तित्थयराणं अतिसेसा—

४५१. चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—

१. अवट्ठिए केसमंसुरोमनहे ।
२. निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी ।
३. गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ।
४. पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे ।
५. पच्छन्ने आहारनीहारे, अद्दिस्से मंसचक्खुणा ।
६. आगासगयं चक्कं ।
७. आगासगयं छत्तं ।
८. आगासगयाओ सेयवरचामराओ ।
९. आगासफालियामयं सपायपीढं सीहासणं ।
१०. आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडिआभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ ।
११. जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं जक्खा देवा संछन्नपत्त-पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ ।
१२. ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ, अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ ।
१३. बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे ।
१४. अहोसिरा कंटया जायंति ।

तीर्थंकरों के अतिशय—

४५१. बुद्धातिशय चौंतीस हैं, यथा—

१. मस्तक के केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम और नखों का मर्यादा से अधिक न बढ़ना ।
२. शरीर का स्वस्थ एवं निर्मल रहना ।
३. रक्त और मांस का गाय के दूध के समान श्वेत रहना ।
४. पद्मगंध के समान श्वासोच्छ्वास का सुगंधित होना ।
५. आहार और शौच क्रिया का प्रच्छन्न होना ।
६. तीर्थंकर देव के आगे आकाश में धर्मचक्र रहना ।
७. उनके ऊपर तीन छत्र रहना ।
८. दोनों ओर श्रेष्ठ चंवर रहना ।
९. आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणी का बना हुआ पादपीठ वाला सिंहासन होना ।
१०. तीर्थंकर देव के आगे आकाश में इन्द्रध्वज का चलना ।
११. जहाँ-जहाँ अरिहंत भगवंत ठहरते हैं या बैठते हैं वहाँ-वहाँ उसी क्षण पत्र, पुष्प और पल्लव से सुशोभित छत्र, ध्वज, घंट एवं पताका सहित अशोकवृक्ष का उत्पन्न होना ।
१२. कुछ पीछे मुकुट के स्थान पर तेजोमण्डल का होना तथा अन्धकार होने पर दस दिशाओं में प्रकाश होना ।
१३. जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ के भूभाग का समतल होना ।
१४. जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ कंटकों का अधोमुख होना ।

१५. उउविवरीया सुहफासा भवंति।

१६. सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जति।

१७. जुत्तफुसिएण य मेहेण निहय-रय-रेणुयं कज्जइ।

१८. जल-थलय-भासुर-पभूतेणं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे कज्जइ।

१९. अमणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं अवकरिसो भवइ।

२०. मणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं पाउब्भावो भवइ।

२१. पच्चाहरओवि य णं हिययगमणीओ जोयणनीहारी सरो।

२२. *भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।*

२३. सावि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खिसिरीसिवाणं अप्पणो हिय-सिव-सुहदभासत्ताए परिणमइ।

२४. पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति।

२५. अण्णउत्थिय-पावयणिया वि य णमागया वंदंति।

२६. आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति।

२७. जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवइ।

२८. मारी न भवइ।

२९. सचक्कं न भवइ।

३०. परचक्कं न भवइ।

३१. अइवुट्ठी न भवइ।

३२. अणावुट्ठी न भवइ।

३३. दुब्भिक्खं न भवइ।

३४. पुव्वुप्पण्णावि य णं उप्पाइया वाही खिप्पामेव उवसमंति।[1]

—सम० स० ३४, सु० १

१५. जहाँ जहाँ पधारे वहाँ वहाँ ऋतुओं का अनुकूल होना।

१६. जहाँ जहाँ पधारे वहाँ वहाँ संवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यंत क्षेत्र का शुद्ध हो जाना।

१७. मेघ द्वारा रज का उपशान्त होना।

१८. जानुप्रमाण देवकृत पुष्पों की वृष्टी होना एवं पुष्पों के डंठलों का अधोमुख होना।

१९. अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श का न रहना।

२०. मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श का प्रकट होना।

२१. योजन पर्यन्त सुनाई देने वाला हृदयस्पर्शी स्वर होना।

२२. *अर्धमागधी भाषा में उपदेश करना।*

२३. उस अर्धमागधी भाषा का उपस्थित आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, और सरिसृपों की भाषा में परिणत होना तथा उन्हें हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होना।

२४. पूर्वभव के वैरानुबन्ध से बद्धदेव, असुर, नाग, सुपर्णन, यक्ष, राक्षस, किंनर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, और महोरग का अरहंत के समीप प्रसन्नचित्त होकर धर्म सुनना।

२५. अन्यतीर्थिकों का नत मस्तक होकर वंदना करना।

२६. अरहंत के समीप आकर अन्यतीर्थिकों का निरुत्तर होना।

२७. जहाँ जहाँ अरहंत भगवंत पधारें वहाँ वहाँ पच्चीस योजनपर्यंत चूहे आदि का उपद्रव न होना।

२८. प्लेग आदि महामारी का उपद्रव न होना।

२९. स्व सेना का विप्लव न करना।

३०. अन्य राज्य की सेना का उपद्रव न होना।

३१. अधिक वर्षा न होना।

३२. वर्षा का अभाव न होना।

३३. दुर्भिक्ष न होना।

३४. पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियों का उपशान्त होना।

---

१ पउत्तीसाइसयगाहाओ—

रयरोगसेयरहिओ, देहो१ धवलाइं मंस-रुहिराइं२। आहारा नीहारा, अदिस्सा३ सुरहिणो सासा४ ॥१॥

जम्माउ इमे चउरो, एक्कारस कम्मखयभवा इण्हिं। खेत्ते जोयणमेत्ते, तिजयजणो माइ बहुओवि५ ॥२॥

नियभासाए नर-तिरि-सुराण धम्मावबोहया वाणी६। पुव्वभवा रोगा उवसमंति७ न य हुन्ति वेराइं८ ॥३॥

दुब्भिक्ख९ डमर१० दुम्मारि ११, ईई१२ अइवुट्ठि१३ अणभिवुट्ठीओ१४।

हुन्ति न बहु जिणवरंमी, पसरइ भामंडलुज्जोओ१५ ॥४॥ (क्रमशः पृष्ठ १७२)

४५२. पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता[1]

—सम० स० ३५, सु० १

४५२. सत्य-वचनातिशय पैंतीस हैं।

चाउज्जामधम्मोवदेसगा तित्थयरा—

४५३. भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिम-पच्छिम-वज्जा मज्झिमगा बावीसं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—

सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं॥

—ठाणं० अ० ४, उ० १, सु० २६६

चातुर्याम धर्मोपदेशक तीर्थंकर—

४५३ भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोड़कर मध्य के बावीस अरहंत भगवान चातुर्याम (चार महाव्रत रूप) धर्म की प्ररूपणा करते हैं, यथा—१. सब प्रकार की हिंसा से निवृत होना, २. सब प्रकार के झूठ से निवृत होना, ३. सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत होना, ४. सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत होना,

सब महाविदेहों में अरहंत भगवान चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करते हैं, यथा—

सब प्रकार के प्राणातिपात से निवृत होना—यावत्—सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत होना।

कण्हाइभावीतित्थयरा चाउज्जामधम्मोवएसगा—

४५४. एस णं अज्जो! कण्हे वासुदेवे, रामे बलदेवे, उदए पेढालपुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावती, दारुए णियंठे, सच्चई णियंठीपुत्ते, सावियबुद्धे अंब[म्म?]डे परिव्वायए, अज्जावि णं सुपासा पासावच्चिज्जा आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवइत्ता सिज्झिहिंति बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति परिणिव्वाइहिंति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिंति॥

—ठाणं० अ० ९, सु० ६९२

चातुर्याम धर्मोपदेशक कृष्ण आदि भावी तीर्थंकर—

४५४. हे आर्य! कृष्ण वासुदेव, राम बलदेव, उदक पेढाल पुत्र, पोटिलमुनि, शतक गाथापति, दारूक निर्ग्रन्थ, सत्य की निर्ग्रन्थीपुत्र, सुलसाश्राविका से प्रतिबोधित अम्बड़ परिव्राजक, भगवान पार्श्वनाथ की प्रशिष्या सुपार्श्वा आर्या। ये आगामी उत्सर्पिणी में चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा करके सिद्ध होंगे—यावत्—सब दुःखों का अन्त करेंगे।

(पृष्ठ १७१ का शेष)

सुररइया इगुवीसा, मणिमयसीहासणं सपयवीढं१६। छत्तत्तय१७ इदज्झय१८, सियचामर१९ धम्मचक्काइं२०॥५॥
सह जगगुरुणा गयणट्ठियाइं पंच वि इमाइं वियरंति। पाउब्भवइ असोओ२१, चिट्ठइ जत्थ प्पहू तत्थ॥६॥
चउमुहमुत्तिचउक्कं२२, मणि-कंचण-तार-रइय,सालतिगं२३। नवकणयपंकयाइं२४, अहोमुहा कंटया हुन्ति२५॥७॥
निच्चमवट्ठियमित्ता, पहुणो चिट्ठंति केस-रोम-नहा२६। इंदिय अत्था पंचवि, मणोरमा२७ हुन्ति छप्पि रिऊ२८॥८॥
गंधोदयस्स वुट्ठी२९, कुसुमाणं पंचवन्नाणं३०। दिंति पयाहिण सउणा३१, पहुणो पवणोऽवि अणुकूलो३२॥९॥
पणमंति दुमा३३ वज्जंति दुन्दुहीओ गहीरघोसाओ३४। चउतीसाइसया णं, सव्वजिणिंदाण हुन्ति इमा॥१०॥

—प्रव० गा० ४४१—४५०।

१ वयणगुणा सग सट्ठे, अत्थे अडवीस मिलिअ पणतीसं। तेहिं गुणेहिं मणुन्न, जिणाण वयणं कमेण इमं॥१॥
वयणं सक्कार-गभीर-घोस-उवयारुदत्तयाजुत्तं। पडिनायकर दक्खिन्नसहिअमुवणीअराय च॥२॥
सुमहत्थं अव्वाहयमसंसयं तत्तनिट्ठिअं सिट्ठं। पत्थावुचियं पडिहयपरुत्तरं हियपीईकरं॥३॥
अनुन्नसाभिकंखं, अभिजायं अइसिणिद्धमहुरं च। ससलाहापरनिंदावज्जिअमपइन्नपसरजुअं॥४॥
पयडक्खरपयवक्कं सत्तपहाणं च कारगाइजुअं। ठविअविसेसमुआरं अणेगजाई विचित्तं च॥५॥
परमम्मविब्भमाईविलंववुच्छेयखेयरहिअं च। अदुअं धम्मत्थजुयं, सलाहणिज्जं च चित्तकरं॥६॥

—सत्त० स्था० ९८, गा० २०३-२०७।

आगामि-उस्सप्पिणीए तित्थयरा—

तित्थयरनामाइं)

५५. जंबुद्दीवे णं द्दीवे भरहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए उवीसं तित्थगरा भविस्संति, तं जहा—

गहणी गाहाओ—

महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयंपभे।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खति ॥१॥
उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सत्तकित्ती य।
मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभावविदू जिणे ॥२॥
अममे णिक्कसाए य, निप्पुलाए य निम्ममे।
चित्तउत्ते समाही य, आगमिस्साए होक्खइ ॥३॥
संवरे अणियट्टी य, विजए विमलेति य।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए ति य ॥४॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली।
आगमेस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥५॥

आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थंकर—

(तीर्थंकरों के नाम)

४५५. जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर होंगे, यथा—

संग्रहणी गाथाएँ—

१. महापद्म, २. सूरदेव, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. सर्वानुभूति, ६. देवश्रुत, ७. उदय, पेढालपुत्र, ६. पोट्टिल, १०. शतकीर्ति, ११. मुनिसुव्रत, १२. अमम, १३. निष्कषाय, १४. निष्पुलाक, १५. निर्मम, १६. चित्रगुप्त, १७. समाधि, १८. संवर १६. अनिवृत्ति, २०. विजय, २१. विमल, २२. देवोपपात, २३. अनन्त विजय, २४. भद्रजिन।

ये धर्म तीर्थ की देशना करने वाले चौवीस तीर्थंकर आगामी उत्सर्पिणी में होंगे।

पुव्वभवनामाइं—

४५६. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं पुव्वभविया चउवीसं नामधेज्जा भविस्संति, तं जहा—

सेणिय सुपास उदए, पोट्टिल अणगार तह दढाऊ य।
कत्तिय संखे य तहा, नंद सुनंदे सतए य बोद्धव्वा ॥१॥
देवई च्चेव सच्चइ, तह वासुदेव बलदेवे।
रोहिणि सुलसा चेव, तत्तो खलु रेवई चेव ॥२॥
तत्तो हवइ सयाली, बोद्धव्वे खलु तहा भयाली य।
दीवायणे य कण्हे, तत्तो खलु नारए चेव ॥३॥
अंबडे दारुमडे य, साईबुद्धे य होइ बोद्धव्वे।
भावीतित्थगराणं नामाइं पुव्वभवियाइं ॥४॥

पूर्वभव के नाम—

४५६. उक्त चौवीस तीर्थंकरों के पूर्वभव में चौवीस नाम इस प्रकार होंगे, यथा—

१. श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदक, ४. पोट्टिल, अनगार ५. दृढायु, ६. कार्तिक, ७. शंख, ८. नंद, ६. सुनंद, १०. शतक, ११. देवकी, १२. सत्यकी, १३. वासुदेव, १४. बलदेव, १५. रोहिणी, १६. सुलसा, १७. रेवती, १८. सियाली, १६. भयाली, २०. द्विपायन, २१. कृष्ण, २२. नारद, २३. अंबड, २४. स्वातिबुद्ध—भावी तीर्थंकरों के ये पूर्वभव के नाम हैं।

तित्थयरअम्मा-पियरे—

४५७. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पियरो भविस्संति, चउवीसं मायरो भविस्संति, चउवीसं पढमसीसा भविस्संति, चउवीसं पढमसिस्सिणीओ भविस्संति, चउवीसं पढमभिक्खादायगा भविस्संति, चउवीसं चेइयरुक्खा भविस्संति॥

—सम० सु० १५८

तीर्थंकरों के माता-पिता—

४५७. इन चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस पिता होंगे, चौवीस माता होंगी, चौवीस प्रथम शिष्य होंगे, चौवीस प्रथम शिष्यायें होंगी; चौवीस प्रथम भिक्षा दाता होंगे और चौवीस चैत्यवृक्ष होंगे।

तित्थयरस्स उवदेसस्स दुग्गम-सुगमता—

४५८. पंचहिं ठाणेहिं पुरिम-पच्छिमगाणं जिणाणं दुग्गमं भवति, तं जहा—

दुआइक्खं, दुव्विभज्जं, दुपस्सं, दुतितिक्खं, दुरणुचरं॥

तीर्थंकरों के उपदेश की दुर्गम-सुगमता—

४५८. पांच कारणों से प्रथम और अन्तिम जिन का उपदेश उनके शिष्यों को उन्हें समझने में कठिनाई होती है। यथा—

१. दुराख्येय—आयास आदर व्याख्या दुष्कर २. दुर्विभज्य—विभाग करने में कष्ट होता है। ३. दुर्दर्श—कठिनाई से समझ में आता है। ४. दुस्सह—परीषह सहन करने में कठिनाई होती है। ५. दुरनुचर—जिनाज्ञानुसार आचरण करने में कठिनाई होती है।

पंचहिं ठाणेहिं मज्झिमगाणं जिणाणं सुगमं भवति, तं जहा—

सुआइक्खं सुविभज्जं, सुपस्सं, सुतितिक्खं, सुरणुचरं ।।

—ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ३९६

पाँच कारणों से मध्य के २२ जिनका उपदेश उनके शिष्यों को सुगम होता है, यथा—

१. सुआख्येय—व्याख्या सफलतापूर्वक करते हैं। २. सुविभाज्य—विभाग करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। ३. सुदर्श—सरलतापूर्वक समझ लेते हैं। ४. सुसह—शांतिपूर्वक परीषह सहन करते हैं। ५. सुचर—प्रसन्नतापूर्वक जिनाज्ञानुसार आचरण करते हैं।

समण-संपया—

श्रमण-संपदा—

४५९. उसभस्स णं कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ होत्था ।।

—सम० स० ८४, सु० १६

४५९. अरहन्त कौशलिक ऋषभदेव के ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार श्रमण थे।

विमलस्स णं अरहओ अट्ठसट्ठिं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ।।

—सम० स० ६८, सु० ५

अरहन्त विमलनाथ के अड़सठ हजार उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी।

पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपदा होत्था ।।

—सम० स० १६, सु० ४

पुरुषों में प्रख्यात पार्श्वनाथ अरिहंत की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा सोलह हजार थी।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ।।[1]

—सम० स० १४, सु० ४

श्रमण भगवान महावीर के चौदह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी।

समणी-संपया—

श्रमणी-संपदा—

४६०. संतिस्स णं अरहओ एगूणणउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था ।। —सम०स० ८९, सु० ४

४६०. अरहन्त शान्तिनाथ की आर्या संपदा उत्कृष्ट नवासी हजार थी।

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था ।

—सम० स० ५०, सु० १

अरहत मुनिसुव्रत की पचास हजार आर्या थीं।

नमिस्स णं अरहओ एक्कचत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था । —सम० स० ४१, सु० १

अरहंत नमिनाथ की इगतालीस हजार आर्या थीं।

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था । —सम० स० ४०, सु १

अरहंत अरिष्टनेमि के चालीस हजार आर्या थीं।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठतीसं अज्जिया-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ।।

—सम० स० ३८, सु० १

पुरुषादानी अरहंत पार्श्वनाथ के उत्कृष्ट अड़तीस हजार आर्या सपदा थी।

---

१ गाहाओ—

चुलसीइं च सहस्सा१, एगं च दुवे३ य तिण्णि लक्खाइं४ ।। तिण्णि य बीसऽहियाइं५, तीसऽहियाइं६ च तिन्नेव७ ।।१।।
तिन्नि य अड्ढाइज्जा८, दुवे९ य एगं च सयसहस्साइं १० ।। चुलसीइं च सहस्सा११, बिसत्तरि१२ अट्ठसट्ठि च १३ ।।२।।
छावट्ठि१४ चोवट्ठि१५, बावट्ठि१६ सट्ठिमेव१७ पन्नासा१८ । चत्ता१९ तीसा२० वीसा२१, अट्ठारस२२ सोलस सहस्सा२३ ।।३।।
चोद्दस य सहस्साइं२४, जिणाण जइसीसपमाणं ।
अट्ठावीसं लक्खा, अडयालीसं च तह सहस्साइं । सव्वेसिं पि जिणाणं, जइप्पमाणं विणिदिट्ठं ।।१।।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था ॥[1]

—सम० स० ३६, सु० ३

श्रमण भगवान महावीर के छत्तीस हजार आर्या थी।

साविया-संपया—

४६१. पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया साविया-संपया होत्था ॥

—सम० सु० १२६

श्राविका-संपदा—

४६१. अरहंत पार्श्वनाथ के संघ में उत्कृष्ट श्राविका संपदा तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की थी।

वाइ-संपया[2]—

४६२. सुपासस्स णं अरहओ छलसीइं वाइसया होत्था ॥

—सम० स० ८६, सु० २

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठ सयाइं वाईण सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥[3]

—सम० स० ८००, सु० १११

पासस्स णं अरहओ छ सया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥[4]

—सम० स० ६००, सु० १०६

वादी संपदा—

४६२. अरहन्त सुपार्श्वनाथ के छियासी सौ वादी मुनि थे।

अरहन्त अरिष्टनेमि के देव, मनुष्य, असुरलोकों से वाद में पराजित नहीं होने वाले आठ सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

देव, मनुष्य और असुरलोकों से वाद में पराजित न होने वाले छः सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा अरहंत पार्श्वनाथ के थी।

---

१ गाहाओ—

तिण्णेव य लक्खाइं१, तिण्णि य तीसाइं२ तिन्नि छत्तीसा३ ॥ तीसा य छच्च४ पंच य, तीसा५ चउरो य वीसाइं६ ॥१॥
चत्तारि य तीसाइं७, तिण्णि असीयाद य तिण्णि मित्तो९ य । वीसुत्तरं१० छलऽहियं११, ति-सहस्सऽहियं च लक्ख११ च ॥२॥
लक्खं१३ अट्ठसयाणि य१४, वासट्ठिसहस्स चउसयसमग्गा१५ ॥ एगट्ठी छच्च सया१६, सट्ठिसहस्सा सया छच्च१७ ॥३॥
सट्ठि१८ पणपन्न१९ पन्नेगर२० चत्तर२१ चत्त२२ सहऽट्ठतीसं२३ च । छत्तीसं च सहस्सा२४, अज्जाणं संगहो एसो ॥४॥
अओ अणंतरं सावय-संपया परूविगाओ इमाओ गाहाओ—

पढमस्स तिन्नि लक्खा, पंचसहस्सा दुलक्ख जा संती (२-१६) ॥ लक्खोवरि अडनउई२, तेणउई३ अट्ठसीई४ य ॥१॥
एगासी५ छावत्तरि६, सत्तावन्ना७ य तह य पन्नासा८ ॥ एगुणतीस९ नवासी१०, इगुणासी११ पन्नरसऽट्ठे य१३ ॥२॥
छ च्चिय सहस्स१४ चउरो, सहस्स१५ नउई सहस्स संतिस्स१६ ॥ तत्तो एगो लक्खो, उवरि (१७-२४) गुणसीय१७ धुलसी१८ य ॥३॥
तेयासी१९ बावत्तरि२०, सत्तरि इगुणत्तरी१२ य चउसट्ठी२३ ॥ एगुणसट्ठिसहस्सा२४, य सावगाणं जिणवराणं ॥४॥

२ गाहाओ—

नउइ छ सया दुवालस१, सहस्स बारस य चउसयऽब्भहिया२ । चत्तारि-सहस्सा३,४, दस सहस्सा छ सय पन्नासा५ ॥१॥
छन्नउई६ धुलसीई७, छहत्तरी८ सट्ठि९ अट्ठपन्ना१० य । पन्नासा य सयाणं११, चोयाला [illegible]१२ ॥२॥
बत्तीसा१३ बत्तीसा१४, अट्ठावीसा१५ सयाण चउवीसा१६ । [illegible]१७ [illegible]१८, [illegible]२० [illegible]२१ ॥३॥
अट्ठसया२२ छच्च सया२३, चत्तारि सयाइं [illegible]२४ । [illegible] ॥४॥

३ ठाणं० अ० ८, सु० ६५१ ।

४ ठाणं० अ० ६, सु० ५५०

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥[1] —सम० स० ४००, सु० १०६

देव, मनुष्य और असुरलोकों में वाद में पराजित न होने वाले चार सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा श्रमण भगवान महावीर के थी।

वेउव्विय-संपया—

वैक्रियलब्धि-संपदा—

४६३. पासस्स णं अरहओ इक्कारससयाइं वेउव्वियाणं होत्था ॥ सम० स० ११००, सु० ११४

४६३. अरहन्त पार्श्वनाथ के ग्यारह सौ शिष्य वैक्रियलब्धि वाले थे।

समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था ॥[2] —सम० स० ७००, सु० ११०

श्रमण भगवान महावीर के सात सौ वैक्रियलब्धि सम्पन्न मुनि थे।

चोद्दस-पुव्वि-संपया—

चतुर्दश पूर्वी सम्पदा—

४६४. संतिस्स णं अरहओ तेणउइं चउद्दसपुव्विसया होत्था ॥ —सम० स० ९३, सु० २

४६४. अरहन्त शान्तिनाथ के तिरानवे सौ चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता मुनि थे।

अरहतो ण अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणमजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो इव अवितथं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था ॥ —ठाणं० अ० ४, उ० ४, सु० ३८१

अरहंत अरिष्टनेमि—(नेमिनाथ) के चार सौ चौदह पूर्व धारी श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। वे जिन न होते हुए भी जिनसदृश थे। जिन की तरह पूर्ण यथार्थ वक्ता थे और सर्व अक्षर संयोगों के पूर्ण ज्ञाता थे।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धट्ठायाइं चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था ॥ —सम० स० ३५०, सु० १०५

पुरुषादानी अरहन्त पार्श्वनाथ के साढ़े तीन सौ चौदह पूर्वी मुनि थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था ॥[3] —सम० स० ३००, सु० १०४

श्रमण भगवान महावीर के तीन सौ चौदह पूर्वी मुनि थे।

ओहिनाणि-संपया—

अवधिज्ञानी-सम्पदा—

४६५. अजियस्स णं अरहओ चउणउइं ओहिनाणिसया होत्था ॥ —सम० स० ९४, सु० २

४६५. अरहंत अजितनाथ के चौरानवे सौ (नौ हजार चार सौ) अवधिज्ञानी मुनि थे।

कुन्थुस्स णं अरहओ एक्काणउई आहोहियसया होत्था ॥ —सम० स० ९१, सु० ३

अरहंत कंथुनाथ के एक्कानवे सौ (नौ हजार एक सौ) अवधिज्ञानी मुनि थे।

---

१ ठाणं अ० ४, उ० ४, सु० ३८।

२ गाहाओ—

वेउव्वियलद्धीणं, वीस-सहस्सा य सयछगऽब्भहिया१। वीस-सहस्सा चउसय२, इगुणीस-सहस्स अट्ठसया३ ॥१॥
इगुणिस-सहस्स४-अट्ठार, चउसया५ सोल-सहस्स अट्ठसया६। सतिसय-पनरस७-चउदस८,-तेरस९-बारस-सहस दसमे१० ॥२॥
इक्कारस११-दस१२-नव१३-अट्ठ१४, सत्त१५-छ-सहस्स१६, एगवन्न-सया१७। सत्त-सहस्स सतिसया१८, दुन्नि य सहस्स नवसयाइं १९ ॥३॥
दुन्नि सहस्सा२० पंच य, सहस्स२१ पनरस सयाइं नेमिम्मि२२। इक्कारस सय पासे२३, सयाइं सत्तेव वीरजिणे२४ ॥४॥

३ गाहाओ—

चउदसपुव्विसहस्सा, चउरो अद्धऽट्ठमाणि य सयाणि१। वीसऽहिय सत्ततीसा२, इगवीससया य पन्नासा३ ॥१॥
पनरस४-चउवीससया५, तेवीससया६ य वीससय तीसा७। दो सहस८ पनरस सया, सय चउदस१० तेरस-सयाइं११ ॥२॥
सय बारस१२ इक्कारस१३, दस१४, नव१५ अट्ठेव१६ छच्च सय सयरी१७। दसऽहिय छच्चेव सया१८, छच्च सया अट्ठसट्ठऽहिया१९ ॥३॥
सय पंच२० अद्धपंचम२१, चउरो२२ अद्धऽहिय२३ तिन्नि य सयाइं २४। उसभाइजिणिंदाणं, चउदस पुव्वीस परिमाणं ॥४॥

मल्लिस्स णं अरहओ अगूणसट्ठिं ओहिनाणिया होत्था ॥
—सम० स० ५९, सु० ३

अरहंत मल्लिनाथ के उनसठ सौ (पाँच हजार नौ सौ) अवधिज्ञानी मुनि थे।

नमिस्स णं अरहओ अगूणचत्तालीसं आहोहियसया होत्था ॥[1]
—सम० स० ३९, सु० १

अरहंत नमिनाथ के उनचालीस सौ (तीन हजार नौ सौ) अवधिज्ञानी मुनि थे।

मणपज्जवनाणि-संपया—

मनःपर्यवज्ञानी-सम्पदा—

४६६. कुन्थुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणपज्जवनाणिसया होत्था ॥
—सम० स० ८१, सु० २

४६६. अरहंत कुन्थुनाथ के इक्यासी सौ (आठ हजार एक सौ) मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे।

मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावण्णं मणपज्जवनाणिसया होत्था ॥[2]
—सम० स० ५७, सु० ४

अरहंत मल्लिनाथ के सत्तावन सौ (पाँच हजार सात सौ) मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे।

तित्थयराणं जिण-संपया—

तीर्थंकरों की जिन-सम्पदा—

४६७ सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पण्णत्तरिं जिणसया होत्था।
—सम० स० ७५, सु० १

४६७. अरहन्त सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के पचहत्तर सौ सामान्य केवली थे।

कुन्थुस्स णं अरहओ बत्तीसहिया बत्तीसं जिणसया होत्था।
—सम० स० ३२, सु० ३

अरहन्त कुन्थुनाथ के बत्तीस सौ बत्तीस सामान्य केवली थे।

पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था ॥
—सम० १०००, सु० ११३

अरहंत पार्श्वनाथ के एक हजार शिष्य केवलज्ञानी हुए थे।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था ॥[3]
—सम० स० ७००, सु० ११०

श्रमण भगवान महावीर के सात सौ शिष्य केवली हुए थे।

---

१ गाहाओ—

अह ओहिनाणि नवई१, चउनवई२ छण्णवइ ३ अट्ठणवई४य। एयाइं सयाइ तओ, इगार५ दस६ नव७ अउसहस्सा८ ॥१॥
चुलसी९ विसयरि१० सट्ठी११, चउपन्न१२ऽडयाल१३ तह य तेयाला१४। छत्तीसं१५ तीससया१६, पण१७ वी छव्वीस१८ बावीसा१९ ॥२॥
अट्ठार२० सोल२१ पनरस२२, चउदस२३ तेरस सया२४ अवधिनाणी। लक्खेक तित्तिस सहस चत्तारि सयाइ सव्वंके (—१३३४००), ॥३॥

२ गाहाओ—

बारस-सहस्स तिण्हं, सपसड्ढा सत्त१ पंच२ य दिवड्ढं३। इगदस सड्ढं छस्सय४, दस-सहस्सा चउसया सड्ढा५ ॥१॥
दस-सहसा तिन्नि सया६, नवदिवड्ढ-सया७ य अट्ठ-सहस्सा८य। पचसय सत्त-सहस्सा, सुविहिजिणे९ सीयले१० चेव ॥२॥
छसहस्स दोण्हमित्तो११-१२, पंच सहस्सा य पंच य सयाइं१३। पच-सहस्सा१४ चउरो, सहस्स सय पंच पंचाभहिया१५ ॥३॥
चउरो सहस्स१६ तिन्नि य, तिन्नेव सया हवंति चालीसा१७। सहसदुगं पंचसया, इगवन्ना अरजिणिदस्स१८ ॥४॥
सत्तर सयाइ पन्ना१९, पच दस सया२० य बार सय सट्ठी२१। सहसो२२ सय अद्धट्ठम२३, पंचेव सया उ वीरस्स२४ ॥५॥
....सव्वे मणनाणि एगलक्खा य ॥ पणयालीस सहस्सा, पचसया इगनवइअहिया ॥६॥

३ गाहाओ—

वीससहस्सा उसहे१, वीसं बावीस अहव अजियस्स२। पनरस३ चउदस४ तेरस५, बारस६ इक्कारस७ दसेव८ ॥१॥
अद्धनुम९ नसेव१० य, छस्सड्ढा११ छच्च१२ पंच सड्ढा य१३ य। पंचेव१४ अद्धपंचम१५, चउ सहसा तिन्नि य सया१६ ॥२॥
बत्तीस सया अहवा, बावीस सयाइं हुंति कुन्थुस्स१७। अट्ठावीस१८ बावीस१९, तह य अट्ठारस सया२० ॥३॥
सोलस२१ पनर२२ दस सय२३, सत्तेव सया हवंति वीरस्स२४ ॥
एवं केवलिनाणं ॥

अणुत्तरोववाइय-संपया—

४६८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था ।।

—ठाणं०, अ० ८, सु० ६५३

अनुत्तरोपपातिक सम्पदा—

४६८. श्रमण भगवान महावीर के उत्कृष्ट ८०० ऐसे शिष्य थे जिनकी कल्याणकारी अनुत्तरोपपातिक देवगति—यावत्—भविष्य में (भद्र) मोक्ष गति निश्चित है।

तित्थयराणमंतरकालो—

४६९. उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।।

—सम० स० (अगको०) सु० १३५

संभवाओ णं अरहतो अभिणंदणे अरहा दसहिं सागरोवमकोडिसतसहस्सेहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे ।।

— ठाणं० अ० १०, सु० ७३०

अभिणंदणाओ णं अरहओ सुमती अरहा णवहिं सागरोवमकोडिसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे ।।

—ठाणं० अ० ९, सु० ६६४

धम्माओ णं अरहओ संती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवमऊणएहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे ।।[1]

—ठाणं० अ० ३, अ० ४, सु० २२८

तीर्थंकरों का अंतर काल—

४६९ भगवान श्री ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर वर्धमान का अव्यवहित अन्तर एक कोटा-कोटि सागरोपम का है।

सम्भवनाथ अरहन्त की मुक्ति के पश्चात् दस लाख क्रोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर अभिनन्दन अरहन्त उत्पन्न हुए।

अभिनंदन अरहंत के पश्चात् सुमतिनाथ अरहंत नव लाख क्रोड़ सागर के पश्चात् उत्पन्न हुए।

श्री धर्मनाथ तीर्थंकर के पश्चात् त्रिचतुर्यांश (पौने) पल्योपम न्यून सागरोपम व्यतीत हो जाने के बाद श्री शांतिनाथ भगवान् उत्पन्न हुए।

उसहाइतित्थयरेहिंतो पज्जोसवणाकप्पनिज्जूहणसमयनिरूवणं—

४७०. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कालगयस्स - जाव - सव्वदुक्खप्पहीणस्स तिन्नि वासा अद्धनवमा य मासा विइक्कंता, तओ वि परं एगा सागरोवमकोडाकोडी तिवासअद्धनवमासाहिएहिं

ऋषभादि अरहन्तों का पर्यूषण कल्प निर्यूहण समय निरूपण—

४७०. कौशलिक अरहंत ऋषभदेव को निर्वाण हुए—यावत्—सब दुःखों से मुक्त हुए जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत हो गये और उसके पश्चात् बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े

---

१ एत्तो जिणंतराइं वोच्छं किल उसभसामिणो अजिओ। पण्णासकोडिलक्खेहिं सायराणं समुप्पण्णो ।।१।।
तीसाए संभवजिणो, दसहि उ अभिनंदणो जिणवरिंदो। नवहि उ सुमइजिणिंदो, उप्पण्णो कोडिलक्खेहिं ।।२।।
नउईह सहस्सेहिं कोडीणं वोलियाण पउमाभो। नवहिं सहस्सेहिं तओ सुपासनामो समुप्पण्णो ।।३।।
कोडिसएहिं नवहि उ जाओ चंदप्पहो जणाणंदो। नउईए कोडीहिं सुविहिजिणो देसिओ समए ।।४।।
सीयलजिणो महप्पा, तत्तो कोडीहिं नवहिं निद्दिट्ठो। कोडीए सेयंसो ऊणाइ इमेण कालेण ।।५।।
सागरसएण एगेण, तह य छावट्ठिवरिसलक्खेहिं। छव्वीसइसहसेहिं तओ पुरो अंतरेसु त्ति ।।६।।
चउपण्णाअयरेहिं वसुपुज्जजिणो जगुत्तमो जाओ। विमलो विमलगुणोहो, तीसहि अयरेहि रयरहिओ ।।७।।
नवहिं अयरेहऽणंतो, चउहि उ धम्मो उ धम्मधुरधवलो। तिहिं ऊणेहिं संती, तिहि चउभागेहिं पलियस्स ।।८।।
भागेहि दोहिं कुन्थू पलियस्स अरो उ एगभागेणं। कोडिसहस्सेगेणं वासाण जिणेसरो भणिओ ।।९।।
मल्ली तिसल्लरहिओ जाओ वासाण कोडिसहस्सेण। चउपण्णवासलक्खेहिं सुव्वओ सुव्वओ सिद्धो ।।१०।।
जाओ छहिं नमिनाहो, पंचहिं लक्खेहिं जिणवरो नेमी। पासो अद्धट्ठमसयसमहियतेसीइसहसेहिं ।।११।।
अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं वीरो जिणेसरो जाओ। दूसमअइदूसमाणं दोण्हंपि दुचत्तसहसेहिं ।।१२।।
पुज्जइ कोडाकोडी उसहजिणाओ इमेण कालेण। भणिअं अन्तरदारं, एयं समयाणुसारेणं ।।१३।।

- प्रव० द्वा० ३५, गा० ३९३-४०५ ।।

बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता, एयम्मि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे, तओ वि परं नव वाससया वीइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरकाले गच्छइ।

—कप्प० २००

आठ मास कम एक कोटा कोटि सागरोपम का समय बीत चुका, तब श्रमण भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, तदनन्तर भी नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये हैं और अभी दसवीं शताब्दी का अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है।

अजियस्स णं - जाव - प्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं।

—कप्प० १८९

अजितनाथ अरहन्त को—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए पचास लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत हो गये, शेष सभी वृतान्त जैसा शीतलनाथ अरहंत के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही जानना चाहिए, इस सम्बन्ध में बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास न्यून समय इत्यादि सभी पूर्ववत् समझना चाहिए अर्थात् उक्त समय को कम करके जो समय आता है, उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए।

संभवस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स वीसं सागरोवमकोडिसयसहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं।

—कप्प० १८८

संभवनाथ अरहन्त को—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए बीस लाख करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया है, शेष वर्णन शीतलनाथ अरहन्त के सम्बन्ध में कहे गये वृतान्त के अनुसार समझना चाहिए, अर्थात् बीस लाख करोड़ सागरोपम जितने समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास को कम करके जो समय आता है इत्यादि—उस समय महावीर का निर्वाण हुआ।

अभिनंदणस्स णं - जाव - प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीसयसहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं।

—कप्प० १८७

अरहन्त अभिनन्दन को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस लाख करोड़ सागरोपम का समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन शीतलनाथ अरहन्त के प्रसंग में कहे गये अनुसार जानना चाहिये, अर्थात् उक्त दस लाख करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम करने पर जो समय आता है, इत्यादि सभी पूर्ववत् समझना चाहिये।

सुमइस्स णं - जाव - प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसयसहस्से वीइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं।

—कप्प० १८६

अरहन्त सुमतिनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक लाख करोड़ सागरोपम जितना समय बीत गया, शेष सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिए यथा—एक लाख करोड़ सागरोपम जितने समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करने से जो समय आता है, उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि।

पउमप्पभस्स णं - जाव - प्पहीणस्स दससागरोवमकोडिसहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइयं।

—कप्प० १८५

अरहन्त पद्मप्रभ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सर्ववृत्त शीतलनाथ अरहन्त के प्रसंगानुसार समझना चाहिए अर्थात् इस दस हजार करोड़ सागरोपम समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय भगवान महावीर का निर्वाण हुआ इत्यादि।

सुपासस्स णं - जाव - प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसहस्से वीइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइ ।

—कप्प० १८४

अरहन्त सुपार्श्व को—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए एक हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन अरहंत शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये, अर्थात् उस एक हजार करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

चंदप्पहस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं वीइक्कंतं, सेसं जहा सीअलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिगामिच्चाइ ।

—कप्प० १८३

अरहंत चन्द्रप्रभ को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक सौ करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये, अर्थात् इन सौ करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर जो समय आता है, उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

सुविहिस्स णं अरहओ पुप्फदंतस्स काल - जाव - सव्वदुक्खप्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीओ वीइक्कंताओ, सेसं जहा सीअलस्स, तं च इमं-तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइ ।

—कप्प० १८२

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस करोड़ सागरोपम का समय व्यतीत हो गया, अन्य सभी वर्णन अरहंत शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये, वह इस प्रकार—उक्त दस करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम करने पर जो समय आता है, उस समय भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ इत्यादि ।

सीयलस्स णं - जाव - प्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं उणिया वीइक्कंता एयम्मि समए वीरे निव्वुए, तओ वि य णं परं नव वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १८१

अरहंत शीतलनाथ को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ और उसके पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उसके बाद यह दशवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष चल रहा है ।

सेज्जंसस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे सागरोवमसए वीइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १८०

अरहंत श्रेयांसनाथ को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक सौ सागरोपम समय व्यतीत हो चुका है, उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी वर्णन भगवान् मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये ।

वासुपुज्जस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं, वीइक्कंताइं सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७९

अरहंत वासुपूज्य को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए छयालीस सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ और उसके बाद शेष सभी वृतान्त अरहंत मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये ।

विमलस्स णं - जाव - प्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं वीइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस ।

—कप्प० १७८

अरहंत विमलनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णरूपेण मुक्त हुए सोलह सागरोपम व्यतीत हो गये हैं, और उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए इत्यादि शेष सभी वर्णन अरहन्त मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये ।

अणंतस्स णं - जाव - प्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं वीइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स।

—कप्प० १७७

अरहंत अनन्तनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए सात सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, उनके बाद पैंसठ लाख वर्ष बीतने पर इत्यादि पूर्व में जैसा अरहन्त मल्लिनाथ के सम्बन्ध में कहा है वैसे ही समझना चाहिये।

धम्मस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स तिन्नि सागरोवमाइं वीइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स।

—कप्प० १७६

अरहन्त धर्मनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए तीन सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ, उनके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे भगवती मल्लि के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही यह भी समझना चाहिये।

संतिस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे चउभागूणे पलिओवमे वीइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स।

—कप्प० १७५

अरहंत शांतिनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए चार भाग कम एक पल्योपम अर्थात् अर्धपल्योपम जितना समय व्यतीत हो गया, उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि सभी वृतान्त जैसा भगवती मल्लि के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही समझना चाहिए।

कुन्थुस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे चउभागपलिओवमे वीइक्कंते पंचसट्ठिं च सयसहस्सा, सेसं जहा मल्लिस्स।

—कप्प० १७४

अरहंत कुन्थुनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक पल्योपम का चतुर्थ भाग जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी कथन भगवती मल्लिनाथ के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही सब समझना चाहिये।

अरस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे वासकोडिसहस्से वीतिक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स। तं च एवं—पंचसट्ठिं लक्खा चउरासीइसहस्सा वीइक्कंता तम्मि समए महावीरो निव्वुओ, ततो परं नव वाससया वीइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरेकाले गच्छइ। एवं अग्गओ - जाव - सेयंसो ताव दट्ठव्वं।

—कप्प० १७३

अरहंत अरनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके। यहां सम्पूर्ण पूर्ववत् मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा वैसा ही समझना और जानना चाहिए। वह इस प्रकार कहा है—"अरहंत 'अर' के निर्वाण गमन के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष में भी अरहंत मल्लि का निर्वाण हुआ, और अरहंत मल्लि के निर्वाण के बाद, पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके निर्वाण के बाद नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर यह दसवीं शताब्दी का अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है। इसी प्रकार श्रेयांसनाथ तक समझना चाहिए।

मल्लिस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स पन्नट्ठिं वाससयसहस्साइं चउरासीइं वाससहस्साइं नव य वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ॥

—कप्प० १७२

अरहंत मल्लिनाथ को—यावत्—सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये। अब उस पर दसवीं शताब्दी का अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है।

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एक्कारस वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे गच्छइ।

—कप्प० १७१

अरहंत मुनिसुव्रत को—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ग्यारह लाख चौरासी हजार और नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर दसवीं शताब्दी का अस्सीवाँ वर्ष का समय चल रहा है।

नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स - जाव - प्पहीणस्स पंच वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १७०

अरहंत नमि को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए पाँच लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर दशवीं शताब्दी का यह अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है ।

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स कालगयस्स - जाव - सव्वदुक्खप्पहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं वीइक्कंताइं, पंचासीइमस्स य वाससहस्सस्स नव वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १६९

अरहंत अरिष्टनेमि को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए, चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये। और उस पर पचासीवें हजार वर्ष के नौ सौ वर्ष भी व्यतीत हो गये। उस पर दशवीं शताब्दी का यह अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है। अर्थात् अरहन्त अरिष्टनेमि को कालगत हुए चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष व्यतीत हो गये ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स कालगतस्स - जाव - सव्वदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइं वीइक्कंताइं, तेरसमस्स य वाससयस्स अयं तीसइमे संवच्छरकाले गच्छइ ।

—कप्प० १६०

पुरुषादानीय पार्श्व अरहंत को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णरूप से मुक्त हुए बारह सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अब यह तेरह सौवें वर्ष का समय चल रहा है ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स - जाव - सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरकाले गच्छइ। वायणंतरे पुण — अयं तेणउए संवच्छरकाले गच्छइ इति दीसइ ।

—कप्प० १४७

श्रमण भगवान महावीर को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तत्पश्चात् यह हजारवें वर्ष के अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है। (वाचनांतर से तिरानवें वर्ष का समय चल रहा है)

गणा गणहरा य—

गण और गणधर—

४७१. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा, गणहरा चउरासीइं होत्था । —सम० स० ८४, सु० २

४७१. कौशलिक अरहंत ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे ।

अजियस्स णं अरहओ नउइं गणा, नउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९०, सु० २

अजितनाथ अरहन्त के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे ।

सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइं गणा, पंचाणउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९५, सु० १

अरहन्त सुपार्श्वनाथ के पंचानवे गण तथा पंचानवे गणधर थे ।

चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा, तेणउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९३, सु० ३

अरहंत चन्द्रप्रभ के तेरानवे गण और तेरानवे गणधर थे ।

सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ सलसीइं गणा, सलसीइं गणहरा होत्था । —सम० स० ८६, सु० १

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के छियासी गण और छियासी गणधर थे ।

सीयलस्स णं अरहओ तेसीति गणा, तेसीति गणहरा होत्था ॥ —सम० ८३

अरहन्त शीतलनाथ के तेरासी गण और तेरासी गणधर थे ।

सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठि गणा, छावट्ठि गणहरा होत्था। —सम० ६६

अरहन्त श्रेयांसनाथ के छियासठ गण और छियासठ गणधर थे ।

वासुपुज्जस्स णं अरहओ बावट्ठि गणा, बावट्ठि गणहरा होत्था । —सम० स० ६२, सु० २

अरहंत वासुपूज्य के बासठ गण और बासठ गणधर थे ।

विमलस्स णं अरहओ छप्पण्णं गणा, छप्पण्णं गणहरा होत्था। —सम० स० ५६, सु० २

अरहन्त विमलनाथ के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ।

अणंतस्स णं अरहओ चउप्पण्णं गणा, चउप्पण्णं गणहरा होत्था । —सम० स० ५४, सु० ४

अरहन्त अनन्त के चउवन गण और चउवन गणधर थे।

धम्मस्स णं अरहओ अडयालीसं गणा, अडयालीसं गणहरा होत्था । —सम० स० ४८, सु० २

अरहंत धर्मनाथ के अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर थे।

संतिस्स णं अरहओ नउइं गणा, नउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९०, सु० २

अरहंत शांतिनाथ के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे।

कुन्थुस्स णं अरहओ सत्तत्तीसं गणा, सत्तत्तीसं गणहरा होत्था । —सम० स० ३७, सु० २

अरहंत कुन्थुनाथ के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स अट्ठ गणा, अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—

सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य ।
सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इय ।।१।।[1]

—सम० स० ८, सु० ८ । कप्प० १५६

प्रख्यात पुरुष अरहंत पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर थे, यथा—

१. शुभ, २. शुभघोष, ३. वशिष्ट, ४. ब्रह्मचारी, ५. सोम, ६. श्रीधर, ७. वीरभद्र, ८. यश।

समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्था, तं जहा—गोदासगणे, उत्तर—बलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्ढियगणे, माणवगणे, कोडियगणे ।। —ठाणं० अ० ९, सु० ६८०

श्रमण भगवान महावीर के नौ गण थे, वे इस प्रकार हैं—गोदास गण, उत्तर बलिस्सह गण, उद्देह गण, चारण गण, उर्ध्ववातिक गण, विश्ववादी गण, कामर्द्धिक गण, मानव गण, कोटिक गण।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था, तं जहा—इंदभूती अग्गिभूती वायुभूती विअत्ते सुहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाया मेतज्जे पभासे ।[2] —सम० स० ११, सु० ४

श्रमण भगवान महावीर के इग्यारह गणधर थे, यथा—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य, प्रभास।

महावीरस्स गणा-गणहरा य—

महावीर के गण और गणधर

४७२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एक्कारस गणहरा होत्था ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एक्कारस गणहरा होत्था ?

४७२. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।

भगवन् ! यह किस दृष्टि से कहा जाता है कि श्रमण भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।

---

१ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभचारी, सोमे, सिरिधरिते, वीरिए, भद्दजसे ।।

—ठाण अ० ८, सु० ६१७।

२ गाहाओ—

पुव्वाणं १ पंचनउई २ बिउत्तरं सोलसुत्तर सय ३, ४, ५ च । सत्तहियं ६ पणनउई ७ तेणउई ८ अट्ठासीई ९ य ।।१।।
एक्कासीई १० छावत्तरी ११ य, छावट्ठि १२ सत्तवण्णा १३ य । पन्ना १४ तेयालीसा १५ छत्तीसा १६ चेव पणतीसा ।।२।।
तित्तीस १८ अट्ठावीसा १९ अट्ठारस २० चेव तहय सत्तरस २१ ।
एक्कारस २२ दस २३ नवग २४, गणाण माणं जिणिंदाणं ।।३।।

—आव० नि० गा० २६६-२६८

एक्कारस उ गणहरा, जिणस्स वीरस्स सेसयाणं तु । जावइया जस्स गणा, तावइया गणहरा तस्स ।।४।।

—आव० नि० गा० २६९

समणस्स भगवओ महावीरस्स—१ जेट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

१. श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते थे।

२ मज्झिमे अणगारे अग्गिभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

२. द्वितीय शिष्य अग्निभूति नामक गौतम गौत्रीय अनगार ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी।

३ कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेण गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

३. तृतीय शिष्य लघु अनगार वायुभूति गौतम गोत्रीय ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी।

४ थेरे अज्जवियत्ते भारद्दाये गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

४. चतुर्थ शिष्य आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीय स्थविर ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी।

५ थेरे अज्जसुहम्मे अग्गिवेसायणे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

५. पाँचवें शिष्य आर्य सुधर्मा नामक अग्निवेशायन गोत्रीय स्थविर ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी।

६ थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठे गोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ,

६. छट्ठे शिष्य मण्डितपुत्र नामक वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी।

७ थेरे मोरियपुत्ते कासवगोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ,

७. सातवें शिष्य मौर्यपुत्र नामक काश्यप गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी।

८-९ थेरे अकंपिए गोयमे गोत्तेणं, थेरे अयलभाया हरियायणे गोत्तेणं ते दुन्नि वि थेरा तिन्नि तिन्नि समणसयाइं वाइंति,

८. आठवें शिष्य अकंपित नामक गौतम गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी।

९. नौवें शिष्य अचलभ्राता नामक हरितायन गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी।

१०-११ थेरे मेयज्जे, थेरे य पभासे एए दोन्नि वि थेरा कोडिन्ना गोत्तेणं तिन्नि तिन्नि समण-सयाइं वाएंति,

१०. दशवें शिष्य मेतार्य नामक कौडिन्य गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी।

११. ग्यारहवें शिष्य प्रभास नामक कौडिन्य गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी।

से एतेणं अट्ठेणं अज्जो! एवं वुच्चइ-समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एक्कारस गणहरा होत्था।

—कप्पसुत्तं

एतदर्थ हे आर्यो! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।

महावीरगणहराणं अगारवासकालो—

महावीर के गणधरों का गृहवास काल—

४७३. थेरे णं अग्गिभूई सत्तचालीस वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—सम० स० ४७, सु० २

४७३. स्थविर अग्निभूति सैंतालीस वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित एवं प्रव्रजित हुए।

थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—सम० स० ६५, सु० २

स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए।

मंडियपुत्तस्स सामण्णपरियाओ—

मण्डितपुत्र की श्रामण्यपर्याय—

४७४. थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे। —सम० स० ३०, सु० २

४७४. मण्डितपुत्र गणधर तीस वर्ष तक श्रमण जीवन में रहकर सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

महावीरगणहराणं सव्वाऊ—

४७५. थेरे णं इंदभूती बाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे। —सम० स० ९२, सु० २

थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-दुक्खप्पहीणे।

—सम० स० ७४, सु० १

थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे। —सम० स० ८३, सु० २

थेरे णं मोरियपुत्ते पंचाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० स० ९५, सु० ४

थेरे णं अकंपिए अट्ठहत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे। —सम० स० ७८, सु० २

थेरे णं अयलभाया बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।[1] —सम० स० ७२, सु० ४

महावीर के गणधरों की सर्व-आयु—

४७५. स्थविर इन्द्रभूती बानवे वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

स्थविर अग्निभूति गणधर चोहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

स्थविर मण्डितपुत्र तिरासी वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

स्थविर मौर्यपुत्र पंचानवे वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

स्थविर अकंपित अठहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

स्थविर अचलभ्राता बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

भगवओ महावीरस्स गोयमगणहरे—

रायगिहे महावीरस्सागमणं—

४७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं णयरे होत्था, वण्णओ, तस्स णं रायगिहस्स णगरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए णामं चेइए होत्था।४।

४७७ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे सहसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुण्डरीए पुरिसवरगंधहत्थीए लोगुत्तमे लोगनाहे लोगप्पदीवे लोगपज्जोयगरे अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए [धम्मदए] धम्मदेसए धम्मसारहीए धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे वियट्टछउमे जिणे जावए बुद्धे बोहए मुत्ते मोयए सव्वण्णू सव्वदरिसी सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तियं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामे -जाव- समोसरणं ॥५॥

भगवान् महावीर के गौतम गणधर—

राजगृह में महावीर का आगमन—

४७६. उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था, जिसका वर्णन करने वाला पाठ कहना चाहिए। उस राजगृहनगर के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग—ईशानकोण—में गुणशिलक नाम का उद्यान था, श्रेणिक राजा और चेलना रानी थी।४।

४७७. उस काल उस समय आदिकर, तीर्थंकर, स्वयंबुद्ध, पुरुषोत्तम पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में उत्तम कमल के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्तिसदृश लोकोत्तम लोकनाथ, लोकप्रद्योतकर, अभयदातार, चक्षु (ज्ञाननेत्र) दातार मार्ग (मोक्षमार्ग) दातार, शरणदातार (शरणभूत, धर्मदातार, धर्म-देशक, धर्मरूप रथ के सारथी, चतुर्गतिरूप संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म चक्रवर्ती अथवा धर्म के विषय में उत्तम चातुरंत (चारों ओर) चक्रवर्ती के समान, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारक, विगतछद्म (घातीकर्म आदि चार घातियों का नाश करने वाले) जिन, ज्ञाता, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक (मुक्ति के उपाय बताने वाले) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं शिव (कल्याणकारी) अचल (अविचल एवं स्थिर अरुज रोग रहित) अनन्त अक्षय अव्याबाध बाधा रहित, पुनरागमन रहित सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की अभिलाषा वाले श्रमण भगवान् महावीर विहार करते थे—यावत्—समवसरण का वर्णन करना चाहिए।५।

४७८. परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया ॥६॥

४७८. परिषदा निकली, धर्मोपदेश दिया पश्चात् परिषदा वापस लौटी अर्थात् राजगृह नगर के सभी जन दर्शनार्थ गये, धर्मदेशना सुनी और पुनः अपने घरों को लौटे ॥६॥

इन्दभूती गोयमो—

इन्द्रभूति गौतम—

४७९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे गोयमसगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगणिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेसे चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

४७९. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ (प्रथम) शिष्य, गौतम गोत्रीय, समचतुरस्रसंस्थान सम्पन्न, सात हाथ की ऊँचाई वाले, वज्रऋषभ संहनन वाले, विशुद्ध सुवर्ण की चमचमाती कांति वाली कमल केसर के समान गौर वर्ण वाले उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्ततपस्वी (यथाविधि तपस्या करने वाले) महान तपस्वी, उदार, घोर घोर गुण सम्पन्न, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, उत्कृष्ट शरीरी (शरीर के प्रति ममत्व का सर्वथा त्याग करने वाले) अन्तर्हित विशिष्ट-तपस्या से प्राप्त विपुल तेजो लेश्या वाले, चतुर्दश पूर्वों के ज्ञाता चार ज्ञानों से सम्पन्न (मति आदि मनः पर्यवज्ञान पर्यन्त चार ज्ञानों से युक्त) सर्व अक्षर संनिवेश संयोगवेदी इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर के अदूर-सामन्त में—न अति दूर और न अति निकट—यथायोग्य स्थान में घुटनों को ऊँचा करके और मस्तक को नमित करके ध्यानरूपी कोष्ठक में विराजमान—ध्यानस्थ—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ॥७॥

४८०. तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोऊहल्ले समुप्पन्नसड्ढे समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोऊहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं—

४८०. तत्पश्चात् जातश्रद्धा—तत्व निर्णय करने के लिए उत्पन्न वांछा वाले, जात संशय वाले—तत्व निर्णय हेतु जिज्ञासु, जात कुतूहल—उत्पन्न उत्कंठा उत्सुकता वाले, उत्पन्न श्रद्धा, उत्पन्न संशय, उत्पन्न कुतूहल संजात श्रद्धा, संजात संशय, संजात कुतूहल, समुत्पन्न श्रद्धा, समुत्पन्न संशय, समुत्पन्न कुतूहल वाले वे भगवान गौतम अपने स्थान से उठे, उठकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर को;

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदई नमंसइ, नमंसित्ता णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी।

—भगवई स० १, उ० १, सु० ४

—ओव० सु० ६२, ६३

तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं, नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर सेवा उपासना एवं नमस्कार करके विनय से नमित मस्तक हो हाथ जोड़ बैठकर इस प्रकार बोले।

४८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥१॥

४८१. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ॥१॥

४८२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था? ॥२॥

४८२. हे भदन्त! यह किस दृष्टि से कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे? ॥२॥

४८३. समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अग्गिभूई

४८३. श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, मध्यम

अणगारे गोयमेगुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेणं गोयमेगुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्ज-वियत्ते भारद्दाए गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्जसुहम्मे अग्गिवेसायणे गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठे गुत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे मोरियपुत्ते कासवगुत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अकंपिए गोयमे-गुत्तेणं—थेरे अयलभाया हारियायणे गुत्तेणं, एए दुण्णि वि थेरा तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति, थेरे अज्ज मेयज्जे—थेरे अज्जपभासे, एए दुण्णि वि थेरा कोडिन्ना गुत्तेणं तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति।

(द्वितीय) अग्निभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, कनिष्ठ (तृतीय) गौतम गोत्रीय वायु-भूति नामक अनगार पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, चतुर्थ आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीय स्थविर पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, पंचम अग्निवैशायन गोत्रीय स्थविर आर्य सुधर्मा पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, षष्ठ वासिष्ठ गोत्रीय मण्डितपुत्र नामक स्थविर तीन सौ पचास श्रमण शिष्यों को वाचना देते हैं, सप्तम मौर्यपुत्र नामक काश्यप गोत्रीय स्थविर साढ़े तीन सौ शिष्यों को वाचना देते हैं, अष्टम, नवम स्थविर अकंपित गौतम गोत्रीय एवं स्थविर अचलभ्राता हारितायन गोत्रीय ये दोनों स्थविर तीन-तीन सौ श्रमणों को वाचना देते हैं, दशम, एकादश कौडिन्य गोत्रीय आर्य मेतार्य और स्थविर आर्य प्रभास, ये दोनों ही स्थविर तीन सौ तीन सौ श्रमणों को वाचना देते हैं।

४८४. से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥३॥

४८४. एतदर्थ हे आर्यों ! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ॥३॥

४८५. सव्वे एए समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारस वि गणहरा दुवालसंगिणो चउद्दसपुव्विणो समत्तगणिपिडगधरा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया -जाव- सव्वदुक्ख-प्पहीणा।

४८५. श्रमण भगवान महावीर के ये सभी ग्यारह गणधर द्वाद-शांग के ज्ञाता, चतुर्दश पूर्व के वेत्ता थे, और समग्र गणिपिटक के धारक थे। ये सभी राजगृह नगर में एक मास तक पानी रहित अनशन कर कालधर्म को प्राप्त हुए, सर्व दुःखों से रहित हुए।

इइ गणहराइथेरावली समत्ता ।।[1] —कप्पं० सु० २०१-२०५

इस प्रकार गणधरादि स्थविरावली समाप्त होती है।

अच्छेरगा—

अच्छेरक (आश्चर्य, अपूर्व घटना)—

४९२. दस अच्छेरगा पण्णत्ता, तं जहा—गाहाओ—

१. उवसग्ग

२. गब्भहरणं

३. इत्थीतित्थं

४. अभाविया परिसा

५. कण्हस्स अवरकंका

६. उत्तरणं चंदसूराणं ।।१।।

७. हरिवंसकुलुप्पत्ती

८. चमरुप्पाओ य

९. अट्ठसयसिद्धा ।

१०. अस्संजएसु पूआ

दस वि अणंतेण कालेणं ।।२।।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७७७

४९२. आश्चर्य दस प्रकार के हैं, यथा—

१. उपसर्ग—भगवान महावीर की केवली अवस्था में भी गोशालक ने उपसर्ग किया।

२. गर्भहरण—हरिणगमेषी देव ने भगवान महावीर के गर्भ को देवानन्दा की कुक्षी से लेकर त्रिशला माता की कुक्षी में स्थापित किया।

३. स्त्री-तीर्थंकर—भगवान मल्लीनाथ स्त्रीलिंग में तीर्थंकर हुए।

४. अभावित परिषदा—केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् भगवान महावीर की देशना निष्फल गई, अर्थात् किसी ने संवररूप धर्म स्वीकार नहीं किया।

५. कृष्ण का अपरकंका गमन, कृष्ण वासुदेव द्रौपदी को लाने के लिए अपरकंका नगरी गये।

६. चन्द्र-सूर्य का आगमन—कौशाम्बि नगरी में भगवान महावीर की वन्दना के लिए शाश्वत विमान सहित चन्द्र-सूर्य आये।

७. हरिवंश कुलोत्पत्ति—हरिवर्ष क्षेत्र के युगलिये का भरत क्षेत्र में आगमन हुआ और उससे हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई। युगलिये का निरूपक्रम आयु घटा और उसकी नरक में उत्पत्ति हुई।

८. चमरोत्पात—चमरेन्द्र का सौधर्म देवलोक में जाना।

९. एक सौ आठ सिद्ध—उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में एक सौ आठ सिद्ध हुए।

१०. असंयत पूजा—आरम्भ और परिग्रह के धारण करने वाले असंयतजनों की पूजा होना।

ये दस आश्चर्य अनन्त काल के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल में हुए।

।। तित्थयर सामण्णं समत्तं ।।

।। तीर्थंकर-सामान्य समाप्त ।।

□ □

१ "अम्हाणमइपाईणायरिसे एत्तिओ चेव पाढो लब्भइ जो 'अज्जभद्दबाहुणा इमस्स रयणा कया' अस्स पुट्ठिं करेइ।"
इति मुनिवरश्रीपुप्फभिक्खुसम्पादिते 'कप्पसुत्त' ग्रन्थे टिप्पनकम् ।।

९. भरहचक्कवट्टिचरियं

भरहचक्कवट्टिस्स वण्णओ—

४६३. तत्थ णं विणीयाए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था, महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

बिइओ गमो रायवण्णगस्स इमो—

४६४. तत्थ असंखेज्जकालवासंतरेण उप्पज्जए जसंसी उत्तमे-अभिजाए सत्त-वीरिय-परक्कम-गुणे पसत्थ-वण्ण-सर-सार-संघयण तणुग-बुद्धि-धारण-मेहा-संठाण-सील-प्पगई पहाण-गारव-च्छायागइए अणेग-वयण-प्पहाणे तेय-आउ-बल-वीरियजुत्ते अझुसिरघण-णिचिय-लोह-संकल-णाराय-वइर-उसह-संघयण-देहधारी

९. भरतचक्रवर्ती चरित्र

भरत चक्रवर्ती का वर्णन—

४६३. उस विनीता नगरी में भरत नामक चातुरंत चक्रवर्ती राजा हुआ, वह महाहिमवन्त यावत् महामलय मेरु [illegible] समान अचल प्रतापशाली था।

राजा के वर्णन का द्वितीयगम इस प्रकार है—

४६४. वहां (विनीता राजधानी में) असंख्य वर्षों का समय बीतने के पश्चात् यशस्वी, उत्तम और अभिजात कुल वाला, सत्त्व वीर्य और पराक्रम गुण युक्त, प्रशंसनीय वर्ण स्वर, सुदृढ़ बलवान [illegible] संहननवाला, सूक्ष्म (कुशाग्र) बुद्धि, धारणा मेधा युक्त [illegible], दर्शनीय शरीर संस्थान उत्तम शीलवान एवं प्रकृतिवाला, प्रधान मनोहर गौरव, कान्ति गतिवाला, अनेक प्रकार के प्रभावशाली वचन बोलने वाला, तेज-आयु-बल-वीर्य युक्त [illegible] लोहे की सांकल के समान सुदृढ़ वज्र ऋषभनाराचसंहनन युक्त शरीर धारण करने वाला.

१ झस, २ जुग, ३ भिंगार, ४ वद्धमाणग, ५ भद्दासण, ६ संख, ७ छत्त, ८ वीयणि, ९ पडाग, १० चक्क, ११ णंगल, १२ मुसल, १३ रह, १४ सोत्थिय, १५ अंकुस, १६-१७ चंदाइच्च, १८ अग्गि, १९ जूव, २० सागर, २१ इंदज्झय, २२ पुहवि, २३ पउम, २४ कुंजर, २५ सीहासण, २६ दंड, २७ कुम्म, २८ गिरिवर, २९ तुरगवर, ३० वरमउड, ३१ कुंडल, ३२ णंदावत्त, ३३ धणु, ३४ कोंत, ३५ गागर, ३६ भवणविमाण-[illegible]-सुविभत्त-चित्त-कर-चरण-देसभाए, उद्धामुह-लोमजाल-सुकुमाल-णिद्ध-मउआवत्त-पसत्थ-लोम-विरइय-सिरिवच्छ-च्छण्ण-विउलवच्छे,

तुल्लगंधी छत्तीसाहिय-पसत्थ-पत्थिवगुणेहिं जुत्ते, अव्वोच्छिण्णाय-वत्ते, पागड-उभय-जोणी, विसुद्ध-णियग-कुलगयण-पुण्णचंदे, चंदे इव सोमयाए णयण-मण-णिव्वुइकरे, अक्खोभे सागरो व थिमिए धणवइ व्व भोग-समुदय-सद्दव्वयाए समरे अपराइए परम-विक्कम-गुणे अमरवइ-समाण-सरिसरूवे, मणुयवई भरहे-चक्कवट्टी भरहं भुञ्जइ पणट्ठसत्तू ॥४२॥

मोगरा का पुष्प) जाई (मालती) जूही चंपक केतक पुन्नाग नागकेशर मारुत (कस्तूरी) की गंध के समान है, राजाओं के योग्य प्रशंसनीय छत्तीस गुणों से युक्त अविच्छिन्न प्रभुत्व, भरतक्षेत्र (जिसकी आज्ञा का उल्लंघन कोई करना सम्भव नहीं है), एक छत्र राज्य का स्वामी, प्रशस्त उभय कुल वाला (जिसका मातृ-पितृ पक्ष विख्यात है), अपने विशुद्ध कुलरूपी गगनमंडल में पूर्ण चंद्र के सदृश सौम्य, नेत्र और मन को आनन्ददायक, समुद्र के समान निश्चल स्थिर, दिग्दिगन्त, विजिगीषु, कुबेर के समान सभी प्रकार की भोगोपभोग सामग्री और सम्पत्ति का भोग करने वाला, युद्ध में सदैव अपराजित, पराक्रम गुणयुक्त इन्द्र के समान रूप वाला, सोमवंशी, नराधिप (राजा) प्रनष्ट शत्रु (जिसका कोई शत्रु न हो) भरत क्षेत्र का शासनकर्ता भरत नामक चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ था।

चक्करयणुप्पत्ती—

४९५. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ आउह-घर-सालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था ।

तए णं से आउह-घरिए भरहस्स रण्णो आउह-घरसालाए दिव्वं चक्करयणं समुप्पण्णं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए जेणामेव दिव्वे चक्करयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता करयल-जाव-कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ, करित्ता आउह-घरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्ख-मित्ता जेणामेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणामेव भरहे राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-जाव-जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—

चक्ररत्न की उत्पत्ति—

४९५. राज्य करते समय उस भरत राजा की आयुधशाला में किसी एक दिन दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ।

तब भरत राजा की आयुधशाला के रक्षक ने समुत्पन्न चक्ररत्न को देखा, देखकर हर्षित, तुष्ट, आनंदित एवं नन्दित हुआ प्रीतियुक्त मन वाला होने से उसके चित्त में खूब ही प्रसन्नता हुई और हर्ष के कारण उसका रोम-रोम खड़ा हो गया अर्थात् हर्षातिरेक से सारा शरीर रोमांचित हो गया। रोम-रोम में हर्ष की लहर दौड़ गई. हृदय हर्ष से व्याप्त हो गया और जहां दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था, उस ओर आया, वहां आकर उस चक्ररत्न की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके हाथ जोड़कर नम्रभाव से चक्ररत्न को प्रणाम किया, प्रणाम करके आयुधशाला से बाहर आया, बाहर आकर जहां बाह्य उपस्थान शाला (राजा के बाहर बैठने का स्थान) थी, जहां भरत राजा बैठा था वहां उसके पास गया, जाकर हाथ जोड़—यावत्—जय विजय घोष से बधाई देता है और बधाई देकर इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं आउहघरसालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पण्णे तं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेएमि, पियं भे भवउ।"

'हे देवानुप्रिय ! आपकी आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, यह बात आप देवानुप्रिय को प्रीतिदायक हो, प्रिय लगे, इसीलिये मैं यह प्रिय बात आपसे निवेदन करता हूँ।'

४९६. तए णं से भरहे राया तस्स आउहघरियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-जाव-सोमणस्सिए वियसिय-वर-कमल-णयण-वयणे, पयलिअ-वर-कडग-तुडिअ-केऊर-मउड-कुण्डल-हार-

४९६. तब राजा भरत आयुधशाला के रक्षक से इस बात को सुनकर समझकर अत्यन्त हर्षित हुआ—यावत्—विशेष प्रसन्न हुआ जिससे उसके कमल जैसे नेत्रयुगल एवं मुख विकसित हो गये तथा हाथों में पहने हुए श्रेष्ठ कटक त्रुटित केयूर, मस्तक का मुकुट कानों के कुण्डल आदि आभूषण चंचल हो गये,

चिरायंत-रइअ-वच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउआओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ करित्ता अंजलि-मउलियग्गहत्थे चक्करयणाभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु करयल-जाव-अंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ, करित्ता तस्स आउहघरियस्स अहामालियं मउडवज्जं ओमोयं दलयइ, दलइत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

कुण्डलिक से ढंके हुए हार से वक्षस्थल विशेष रूप से सुशोभमान हो गया, गले में लटकती हुई [illegible] चंचल हो गई—हिलने लगी, इस प्रकार के आभूषणों को धारण किए हुए भरत राजा ससंभ्रम (उत्कंठा [illegible]) और [illegible] सिंहासन से खड़ा हुआ, उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा, नीचे उतरकर पादुकाओं (खड़ाऊओं) को उतारा, और पादुकाओं को उतारकर दुपट्टे का उत्तरासंग (जनेऊ) जैसा धारण किया, धारण करके [illegible] अर्थात् [illegible] चक्ररत्न के अभिमुख [illegible] गया, [illegible] बायें घुटने को [illegible] और [illegible] जमीन पर स्थापित करके दोनों [illegible]—यावत् [illegible] चक्ररत्न को प्रणाम करता है, प्रणाम करके आयुधशाला के रक्षक को अपने मुकुट को छोड़कर शेष सब [illegible] को उतारकर दान में देता है, आभूषणों [illegible] पश्चात् उसके ऊपर विशेष प्रसन्न होकर [illegible] भरण पोषण की व्यवस्था [illegible] और दान देता है, ऐसा प्रीतिदान देकर उसका सत्कार-सम्मान करता

पडिसुणंति, पडिसुणित्ता भरहस्स० अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता विणीयं रायहाणि-जाव-करेत्ता कारवेत्ता य तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

कहकर उस आज्ञा को एव वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके भरत राजा के पास से वाहर आते हैं, वाहर आकर विनीता राजधानी को आज्ञानुसार सुशोभित करके एवं करवाके आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं।

४९८. तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजाला-कुलाभिरामे विचित्त-मणिरयण-कुट्टिम-तले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयण-भत्ति-चित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे, सुहोद-एहि गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुण्णे कल्लाणग-पवर-मज्जण-विहीए मज्जिए तत्थ कोउय-सएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंध-कासाइय-लूहियंगे, सरस-सुरहि-गोसीस-चंदणाणुलित्तंगत्ते, अहय-सुमहग्घ-दूस-रयण-सुसंवुडे, सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्ध-मणि-सुवण्णे कप्पिय-हारद्ध-हार-तिसरिय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्त-सुकयसोहे,

४९८. इसके वाद भरत राजा मज्जणगृह (स्नान घर) है उस ओर गया, उस ओर जाकर मज्जनगृह में प्रविष्ट हुआ, उसमें प्रविष्ट होकर मुक्ताजालों से युक्त गवाक्षों से दर्शनीय एवं अनेक मणि रत्नों से मंडित रमणीय कुट्टिमतल (फर्श) वाले स्नान मंडप में रखे हुए अनेक प्रकार के मणि रत्नों से निर्मित चित्र-विचित्र चित्रामों से श्रृंगारित स्नान पीठ पर सुखपूर्वक वैठता है, सुखपूर्वक वैठकर वह राजा भरत शुभ उदक (उत्तमजल) से गंधोदक से, पुष्पोदक से और शुद्ध उदक से पूर्ण कल्याणकारी, उत्तम मज्जन विधि से स्नान करता है, तव उस समय उसे सैंकड़ों कौतुक दिखाये गये, कल्याण कर श्रेष्ठ स्नान करने के पश्चात् पक्ष्मल सदृश सुकुमाल काषायिक गंध से सुगन्धित वस्त्र खण्ड (तौलिया) से शरीर को पोंछा, पोंछने के वाद सरस सुरभित गोशीर्ष चंदन का लेप किया, अखंड-महामूल्यवान दूष्य रत्न (श्रेष्ठ उत्तम वस्त्र) से उसे ढाँका अर्थात् सुन्दर वस्त्र पहने, शुचि पवित्र माला पहनी तथा कुंकुम आदि वर्तकों का विलेपन किया गया, मणि-सुवर्ण से निर्मित हार, अर्धहार, तिस-रिक हार, पैरों तक लटकने वाला पालव (झूमका), कटिसूत्र (करधौनी, कंदोरा) आदि आभूषण यथास्थान शरीर पर धारण किये,

पिणद्ध-गेविज्जग-अंगुलिज्जग-ललियगय,ललिय-कयाभरणे, णाणा-मणि-कडग-तुडिय-थंभियभुए-अहिय-सस्सिरीए, कुण्डल-उज्जो-इयाणणे मउड-दित्तसिरए, हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे, पालंब-पलंबमाण-सुकय-पड-उत्तरिज्जे, मुद्दिया-पिंगलंगुलीए, णाणा-मणि-कणग-विमल-महरिह-णिउणोयविय-मिसिमिसित-विरइय-सुसि-लिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्य-आविद्ध-वीरवलए।

गले में ग्रैवेयक (कंठा) अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनीं मस्तक के वालों में आभरण रूप पुष्प धारण किये, नाना प्रकार की मणियों से खचित कटक (कड़ा) त्रुटित (वाजूवन्द) आदि आभूषण हाथों में पहने जिससे उसकी शोभा-कांति द्विगुणित हो गई, कुण्डलों की मनोहर कांति से उसका मुखमंडल चमचमाने लगा, मुकुट की दीप्ति से मस्तक दैदीप्यमान हो गया, हारों से आच्छादित उसका वक्षस्थल दर्शकजनों को आनन्दप्रद वन गया, लम्वे और लटकते हुए सुन्दर वस्त्र से निर्मित उत्तरीय (दुपट्टा) कन्धों पर शोभित है, मुद्रिकाओं से जिसकी अंगुलियाँ पिंगलवर्णी (पीले रंग की) दिखती हैं, अनेक मणियों से खचित, महामूल्य-वान, कुशल कारीगरों के द्वारा वनाया हुआ अत्यन्त मजवूत सुन्दर घाट (आकार) वाला, प्रशस्त सुवर्ण का वीरवलय हाथ में पहिना।

किं वहुणा ?, कप्परुक्खए चेव अलंकिए-विभूसिए णरिंदे सकोरंट - जाव - चउ-चामर-वाल-

इससे अधिक और विशेष क्या कहा जाये ? कल्पवृक्ष की तरह अलंकारों से विभूषित राजा भरत के ऊपर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र—यावत्—दोनों पार्श्वों में (आजूवाजू में) चार चामर ढोरे जा रहे थे, जिनके वाल उसका स्पर्श करते

बोद्दयंगे मंगल-जय-जयसद्द-कयालोए, अणेग-गणणायग-दंडणायग - जाव - दूय-संधिवाल-सद्धि संपरिवुडे, धवल-महामेह-णिग्गए इव - जाव - ससिव्व पियदंसणे, णरवई धूव-पुप्फ-गंध-मल्ल-हत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव आउहघरसाला जेणेव चक्करयणे तेणामेव पहारेत्थ गमणाए।

थे, दर्शकजन [illegible] और अनेक गणनायक, दण्डनायक—यावत्—दूत, [illegible] से घिरा हुआ था, उस समय वह ऐसा शोभित [illegible] श्वेत घने [illegible] महामेघों के मध्य [illegible] [illegible] हाथों में [illegible] पुष्पों [illegible] मालाओं को धारे हुए स्नानगृह से [illegible] निकल कर जिस ओर आयुधशाला थी और [illegible] था उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ।

४२९. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसर-पभिईओ अप्पेगइआ पउमहत्थगया अप्पेगइया उप्पलहत्थगया- जाव-अप्पेगइआ सय-सहस्स-पत्त-हत्थगया भरहं रायाणं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

४२९. जब वह राजा भरत [illegible] उद्यत हुआ [illegible] ईश्वर आदि अनेक राजपुरुष, जिनमें [illegible] लिये हुए थे, कितने ही उत्पल लिये हुए थे—यावत् [illegible] शत-सहस्र पत्तोंवाले कमलों को लिये हुए थे, [illegible] पीछे पीछे चलने लगे।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहुईओ—

जब राजा भरत उन राजपुरुषों के [illegible]

(गाहाओ) खुज्जा चिलाइ वामणिवडभीओ बब्बरी बउसिया
जोणिय-पल्हवियाओ ईसिणिय-थारुगिणियाओ
लासिय-लउसिय-दमिली सिंहलि तह आरबी पुलिंदी
पक्कणि बहलि मुरुंडी सबरीओ पारसीओ य

अप्पेगइआओ तालिअंटहत्थगयाओ, अप्पेगइयाओ धूवकडु-च्छुअ-हत्थगयाओ भरहं रायाणं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

कितनीक दासियों के हाथों में तालपत्र (पंखा) था, कितनीक दासियाँ धूपदान लिये हुए थीं—भरत राजा के पीछे-पीछे चल रही थीं।

५००. तए णं से भरहे राया सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूसाए सव्वविभूईए सव्व-वत्थ-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए - जाव - महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव,पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-मुरय-मुइंग-दुन्दुहि-णिग्घोस-णाइ-एणं जेणेव आउह-घरसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए चक्करयणस्स पणामं करेइ, करित्ता जेणेव चक्करयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, परामुसित्ता चक्करयणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहिं अ अच्चिणइ, पुप्फारुहणं मल्ल-गंध-वण्ण-चुण्ण-वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं सेएहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं चक्करयणस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ, तं जहा—

५००. इस प्रकार राजा भरत अपनी समस्त ऋद्धि, समस्त द्युति, समस्त सेना, समस्त समुदाय, आदरणीयजनों, शृंगार, वैभव, समस्त वस्त्र, पुष्प, गंध, अलंकारों की शोभा, सभी प्रकार के वाद्यों के शब्द निनाद, महान ऋद्धि-समृद्धि—यावत्—एक साथ बड़े जोर से बजाये जा रहे श्रेष्ठ शंख प्रणव (ढोल) पटह (नगाड़ा) भेरी, झल्लरी (झालर) खरमुख (एक प्रकार का वाद्य विशेष) मुरज, मृदंग, दुन्दुभि आदि की ध्वनियों के साथ चलते हुए जहाँ आयुधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर चक्ररत्न के देखते ही प्रणाम किया, प्रणाम करके जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छ हाथ में ली, मयूरपिच्छ को लेकर चक्ररत्न को पोछा, पोंछकर दिव्य जलधारा द्वारा उसका सिंचन किया, सिंचन करके, श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन से लेप किया, अनुलेप करके, श्रेष्ठ नूतन गंधमालाओं से उसकी पूजा की, पुष्प चढ़ाये, मालायें, सुगन्धित द्रव्य, वर्णक, चूर्ण, वस्त्र चढ़ाये, आभरण चढ़ाये, पुष्पादि चढ़ाकर उस चक्ररत्न के समक्ष स्वच्छ, स्निग्ध, श्वेत, रत्नमय अक्षत तंदुलों—चावलों से अष्ट मंगल द्रव्यों का आलेखन किया, यथा—

१ सोत्थिय, २ सिरिवच्छ, ३ णंदिआवत्त, ४ वद्धमाणग, ५ भद्दासण, ६ मच्छ, ७ कलस, ८ दप्पण। अट्ठमंगलए आलि-हित्ता काऊणं करेइ उवयारंति किं ते—

१. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्दावर्त, ४. वर्धमान, ५. भद्रासन, ६. मत्स्य, ७. कलश, ८. दर्पण। अष्ट मंगल द्रव्यों का आलेखन करके योग्यकृत्य पूर्वक उपचार किया, वह इस प्रकार—

पाडल-मल्लिअ-चंपग-असोग-पुण्णाग-चूअमंजरि-णवमालिअ-बकुल-तिलग-कणवीर-कुन्द-कोज्जय-कोरंटय-पत्त-दमणयवर-सुरहि-सुगंध-गंधिअस्स कयग्गह-गहिअ-करयल-पब्भट्ठ-विप्पमुक्कस्स दस-द्धवण्णस्स कुसुमणिगरस्स तत्थ चित्तं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहि-निगरं करेत्ता चंदप्पभ-वइर-वेरुलिअ-विमलदंडं कंचण-मणि-रयण-भत्तिचित्तं कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-गंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिअमयं कडच्छुअं पग्गहेत्तु पयते धूवं दहइ, दहित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं अंचेइ - जाव - पणामं करेइ, करित्ता आउहघरसालाओ

पाडल (गुलाब), मल्लिका (मालती), चम्पक, अशोक, पुन्नाग (सुपारी), आम्रमंजरी, नवमल्लिका, बकुल, तिलक, कनेर, कुन्द (मोगरा), कुब्जक, कोरंट, पत्र (मरुवा), दमनक इन सभी के सुगन्धित एवं उत्तम रंग बिरंगे वर्ण वाले पुष्पों को हाथ में लेकर चढ़ाया और इतनी अधिक मात्रा में चढ़ाया कि इन हाथों चढ़ाये पचरंगी पुष्पों का चक्ररत्न के सामने आश्चर्य-कारी जानु प्रमाण (घुटनों जितना ऊँचा) ढेर बना दिया, तदनन्तर निर्मल चन्द्रकांत. वज्र (हीरा) वैडूर्य मणियों से निर्मित दण्ड वाले एवं जिसमें सुवर्ण मणिरत्नों द्वारा अनेक प्रकार के चित्र बनाये गये हैं और जो श्रेष्ठ कालागुरु, कुन्दुरुष्क, तुरुष्क से बनी हुई धूप की गन्ध से व्याप्त हैं एवं जिस धूप की सुवास लहरें सर्वत्र सुगन्ध फैला रही थीं ऐसे वैडूर्य मणि से बने हुए धूप कडुच्छ (धूपदान) को हाथ में लेकर आदरपूर्वक धूप को जलाया, धूप दहन कर सात-आठ पग पीछे खिसका पीछे खिसककर अपने बांये घुटने को मोड़कर ऊँचा किया—यावत्—प्रणाम किया, प्रणाम करके आयुधशाला से बाहर निकलता है,

आभिसेक्कहत्थिरयणारूढस्स भरहस्स चक्करयणाणुगमण—

५०२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहं पयायं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ - जाव - हियए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, पडिकप्पेत्ता हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं ते कोडुम्बिय - जाव - पच्चप्पिणंति ।

तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाभिरामे तहेव - जाव - धवल-महामेह-णिग्गए इव - ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता हय-गय-रह-पवर-वाहण-भड-चडगर-पहगर-संकुलाए सेणाए पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरि-कडय-सण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे ।

५०३. तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे, कुण्डल-उज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुय-राय-वसभकप्पे, अब्भहिय-रायतेय-लच्छीए दिप्पमाणे, पसत्थ-मंगल-सएहिं संथुव्वमाणे जय-जय-सद्दकयालोए हत्थिखंध-वरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं जक्ख-सहस्स-संपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई—

आभिषेक्य हस्तिरत्नारूढ़ भरत द्वारा चक्ररत्नानुगमन—

५०२. भरत राजा ने जब उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिण दिशा के तट से पूर्व दिशा में विद्यमान मागध तीर्थ की ओर जाते हुए देखा तो देखकर हृष्ट, तुष्ट—यावत्—हृदय में आनन्दित होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य (अभिषेक योग्य —प्रधान) हस्तिरत्न को सुसज्जित करो सुसज्जित करके श्रेष्ठ अश्व-गज-रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो, तैयार करके पश्चात् आदेश पूर्ति होने की मुझे सूचना दो ।"

तब वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं ।

तत्पश्चात् वह भरत राजा जहाँ स्नान घर था वहाँ गया, जाकर स्नानघर में प्रविष्ट होकर मोतियों से खचित गवाक्षों वाले, अभिराम (मनोहर) आदि पूर्व वर्णनानुसार—यावत्—शरद ऋतु के धवल महामेघों से निर्गत चन्द्रमा की तरह—यावत्—चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन वाला वह नराधिप मज्जन-गृह से बाहर निकला, बाहर निकलकर अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ वाहन, भट-सुभट आदि के समूह से सुसज्जित सेना द्वारा जिसकी कीर्ति फैल रही है ऐसा भरत राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी और उसमें भी जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया, वहाँ आकर अंजनगिरि के समूह जैसे अत्यन्त श्याम हस्तिरत्न पर सवार हुआ ।

५०३. हस्तिरत्न पर आरूढ़ उस भरताधिपति नरेन्द्र का वक्षस्थल श्रेष्ठ रीति से सुघड सुवर्णकारों द्वारा बनाये गये हारों से आच्छादित था, कुण्डलों की दीप्ति से मुख दैदीप्यमान हो रहा था, मुकुट से मस्तक दीप्तिमान था अपनी शूरवीरता से पुरुषों में सिंह के समान था, नरपति था, नरेन्द्र था, पुरुषों में वृषभ के समान था, भरत राजाओं (व्यन्तर आदि देवों के इन्द्रों) में वृषभ के समान श्रेष्ठ उत्तम था, अव्यवहित राजतेज की लक्ष्मी (राज्य की अधिक तेजस्विनी लक्ष्मी) से उज्जवलित था, वन्दिजनों द्वारा उच्चारित प्रशस्त मंगल वचनों से जिसकी स्तुति हो रही थी, दर्शकजनों द्वारा जिसके लिये जय जय शब्द घोष किया जा रहा था, ऐसा वह राजा हाथी के उत्तम स्कन्ध—पीठ पर बैठा । उस समय उस पर कोरंट पुष्प की मालाओं से शोभित छत्र धारियों ने तान रखा था, दोनों पार्श्वों में चामरधारियों द्वारा श्वेत श्रेष्ठ चामर ढोरे जा रहे थे, जिससे यक्षसहस्र से घिरा हुआ धनपति वैश्रमण (कुबेर) जैसा प्रतीत हो रहा था,

आभिसेक्कहत्थिरयणारूढस्स भरहस्स चक्करयणाणुगमण—

५०२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहं पयायं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ - जाव - हियए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, पडिकप्पेत्ता हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं ते कोडुम्बिय - जाव - पच्चप्पिणंति ।

तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाभिरामे तहेव - जाव - धवल-महामेह-णिग्गए इव - ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता हय-गय-रह-पवर-वाहण-भड-चडगर-पहगर-संकुलाए सेणाए पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरि-कडय-सण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे ।

५०३. तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे, कुण्डल-उज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुय-राय-वसभकप्पे, अब्भहिय-रायतेय-लच्छीए दिप्पमाणे, पसत्थ-मंगल-सएहिं संथुव्वमाणे जय-जय-सद्दकयालोए हत्थिखंध-वरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं जक्ख-सहस्स-संपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई—

आभिषेक्य हस्तिरत्नारूढ़ भरत द्वारा चक्ररत्नानुगमन—

५०२. भरत राजा ने जब उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिण दिशा के तट से पूर्व दिशा में विद्यमान मागध तीर्थ की ओर जाते हुए देखा तो देखकर हृष्ट, तुष्ट—यावत्—हृदय में आनन्दित होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य (अभिषेक योग्य—प्रधान) हस्तिरत्न को सुसज्जित करो सुसज्जित करके श्रेष्ठ अश्व-गज-रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो, तैयार करके पश्चात् आदेश पूर्ति होने की मुझे सूचना दो ।"

तब वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं ।

तत्पश्चात् वह भरत राजा जहाँ स्नान घर था वहाँ गया, जाकर स्नानघर में प्रविष्ट होकर मोतियों से खचित गवाक्षों वाले, अभिराम (मनोहर) आदि पूर्व वर्णनानुसार—यावत्—शरद ऋतु के धवल महामेघों से निर्गत चन्द्रमा की तरह—यावत्—चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन वाला वह नराधिप मज्जन-गृह से बाहर निकला, बाहर निकलकर अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ वाहन, भट-सुभट आदि के समूह से सुसज्जित सेना द्वारा जिसकी कीर्ति फैल रही है ऐसा भरत राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी और उसमें भी जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया, वहाँ आकर अंजनगिरि के समूह जैसे अत्यन्त श्याम हस्तिरत्न पर सवार हुआ ।

५०३. हस्तिरत्न पर आरूढ़ उस भरताधिपति नरेन्द्र का वक्षस्थल श्रेष्ठ रीति से सुघड सुवर्णकारों द्वारा बनाये गये हारों से आच्छादित था, कुण्डलों की दीप्ति से मुख दैदीप्यमान हो रहा था, मुकुट से मस्तक दीप्तिमान था अपनी शूरवीरता से पुरुषों में सिंह के समान था, नरपति था, नरेन्द्र था, पुरुषों में वृषभ के समान था, भरत राजाओं (व्यन्तर आदि देवों के इन्द्रों) में वृषभ के समान श्रेष्ठ उत्तम था, अव्यवहित राजतेज की लक्ष्मी (राज्य की अधिक तेजस्विनी लक्ष्मी) से उज्जवलित था, वन्दिजनों द्वारा उच्चारित प्रशस्त मंगल वचनों से जिसकी स्तुति हो रही थी, दर्शकजनों द्वारा जिसके लिये जय जय शब्द घोष किया जा रहा था, ऐसा वह राजा हाथी के उत्तम स्कन्ध—पीठ पर बैठा । उस समय उस पर कोरंट पुष्प की मालाओं से शोभित छत्र धारियों ने तान रखा था, दोनों पार्श्वों में चामरधारियों द्वारा श्वेत श्रेष्ठ चामर ढोरे जा रहे थे, जिससे यक्षसहस्र से घिरा हुआ धनपति वैश्रमण (कुबेर) जैसा प्रतीत हो रहा था,

अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं गामागरणगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संवाह-सहस्स-मंडियं थिमिय-मेइणीयं वसुहं अभिजिण-माणे अभिजिणमाणे अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे पडिच्छ-माणे तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे जोयणंतरि-याहिं वसहीहिं वसमाणे वसमाणे जेणेव मागहतित्थे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता मागहतित्थस्स अदूरसामंते दुवालस-जोयणा-यामं णवजोयण-विच्छिण्णं वर-णगर-सरिच्छं विजय-खंधावारणि-वेसं करेइ, करित्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावइत्ता एवं वयासी—

अमराधिपति—इन्द्र के समान ऋद्धि से जिसकी प्रशस्त कीर्ति चतुर्दिग् व्याप्त हो रही थी, ऐसा वह राजा भरत गंगा महानदी के दक्षिण दिग्वर्ती तट पर स्थित हजारों गाँव, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संवाह आदि से मण्डित ऐसी स्थिर वसुन्धरा और प्रजाजनों से युक्त मेदनी (पृथ्वी) को जीतते-जीतते एवं वहाँ-वहाँ के अधिपतियों से भेंट नजराने के रूप में उत्कृष्ट रत्नों को स्वीकार करते हुए उस दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए, योजन-योजन के अन्तराल से अर्थात् एक-एक योजन पर विश्राम करते हुए जहाँ मागध तीर्थ था, वहाँ आया, वहाँ आकर मागध तीर्थ के अदूर सामन्त प्रदेश में—न अति दूर और न अति निकट ऐसे प्रदेश में—बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े विस्तार वाले उत्तम नगर के जैसे विजय स्कन्धावार (छावनी) की स्थापना की अर्थात् अपनी विजयी सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर वर्धिकीरत्न (सूत्रधारों के प्रमुख) को बुलाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ममं आवसहं पोसहसालं च करेहि, करेत्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि"

'हे देवानुप्रिय ! अतिशीघ्र ही तुम मेरे लिये एक आवास स्थान और पौषधशाला का निर्माण करो और निर्माण करके मुझे इस आदेश पूर्ति होने की सूचना दो।'

तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे - जाव - अंजलिं कट्टु 'एवं सामी ! तह'त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ, करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ।

तब वह वर्धिकीरत्न हृष्ट तुष्ट होता हुआ चित्त में आनंदित होता हुआ प्रीतिमना होता हुआ—यावत्—अंजलि करके 'हे स्वामिन ! आप की आज्ञानुसार करूँगा' इस प्रकार कहकर उसने विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया और स्वीकार करके आदेशानुरूप भरत राजा के लिये योग्य निवास स्थान और पौषधशाला बनाता है और बनाकर शीघ्र ही यथावत आज्ञा-पालन होने की सूचना देता है।

भरहेण मागहतित्थे अट्ठमभत्त-पोसहकरणं—

५०४. तए णं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहई दुरुहित्ता मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे णिक्खित्त-सत्थमुसले दब्भसंथारोवगए एगे अबीए अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ।

मागध तीर्थ में भरत द्वारा अष्टम भक्त-पौषधकरण—

५०४. तत्पश्चात् वह भरत राजा अभिषेक योग्य—पट्ट—प्रधान हस्तिरत्न से नीचे उतरा, उतरकर जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ जाता है, वहाँ जाकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके पौषधशाला का प्रमार्जन—सफाई—करता है, प्रमार्जन करके दर्भ संस्तारक (आसन) बिछाया, बिछाकर दर्भासन पर बैठता है, आसन पर बैठकर मागधतीर्थ कुमार देव की साधना के लिये अष्टमभक्त (तीन उपवास) करता है अर्थात् तीन उपवास तप का प्रत्याख्यान धारण करता है, धारण करके पौषधशाला में पौषधव्रती की तरह ब्रह्मचारी रहता है, मणि-सुवर्ण को छोड़ देता है, माला, शृंगार विलेपन का त्याग कर देता है तथा मूसल एवं अन्य शस्त्रों को छोड़ देता है और दर्भासन पर अकेला बैठकर अद्वितीय अष्टमभक्त और धर्म जागरणा आराधना करते हुए रहता है।

आसरहारूढस्स भरहस्स लवणसमुद्दे ओगाहणं—

५०५. तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियं, चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पेह" त्ति कट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्त-तहेव-जाव धवल-महामेह-णिग्गए-जाव-मज्जण-घराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता हय-गय-रह-पवर-वाहण -जाव- सेणाए पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आस-रहं दुरूढे।

अश्वरथारूढ़ भरत का लवण समुद्र में अवगाहन (प्रवेश)—

५०५. अष्टमभक्त तप की आराधना करने के पश्चात् वह भरत राजा पौषधशाला से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला (बैठक) थी वहाँ आता है, वहाँ आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो तथा जिसमें चार घंटे लगे हुए हैं ऐसे अश्वरथ को सज्जित करो', ऐसा कहकर मज्जनगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके मोतियों से युक्त गवाक्ष आदि पूर्ववत्—यावत्—धवल महामेघों में से निर्गत चन्द्र के समान—यावत्—मज्जनगृह से बाहर निकलता है, निकलकर अश्व, गज, रथ श्रेष्ठ वाहन—यावत्—जिसकी कीर्ति फैल रही है ऐसा वह भरत राजा जहाँ बाहरी उपस्थान-शाला है, जहाँ चार घंटों से युक्त अश्व रथ है, वहाँ आया और वहाँ आकर चातुर्घंटक अश्व रथ पर बैठता है।'

५०६. तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आस-रहं दुरूढे समाणे हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरि-वुडे महया-भड-चडगर-पहगर-वंद-परिक्खित्ते-चक्करयण-देसिय-मग्गे, अणेग-राय-वर-सहस्साणुयाय-मग्गे, महया उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेणं पक्खुभिय-महासमुद्द-रव-भूयं पिव करेमाणे करेमाणे पुरत्थिम-दिसाभिमुहे मागह-तित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ, -जाव- से रहवरस्स कुप्परा उल्ला, तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हइ, निगिण्हइत्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता धणुं परामुसइ।

५०६. तत्पश्चात् चार घंटों वाले अश्वरथ पर आसीन, उत्तम अश्व, गज, रथ, योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ, उत्कृष्ट सिंहनाद घोषों के कल-कल शब्दारवों के द्वारा प्रक्षुभित महासमुद्र की गर्जना के समान आकाश मण्डल को गुंजाता हुआ अनुगामी हजारों श्रेष्ठ राजाओं के साथ विविध महाभटों—सुभटों के समूहों द्वारा परिरक्षित चक्ररत्न के द्वारा दिखाये गये मागधतीर्थ से पूर्व दिशा के मार्ग पर चलता हुआ राजा भरत लवण समुद्र में प्रवेश करता है—यावत्—उसके उत्तम रथ के पहिये मध्य भाग तक भीग गये, तब वह राजा भरत घोड़ों को रोकता है, रोककर रथ को खड़ा करता है और खड़ा करके धनुष को हाथ में लेता है।

भरहनिसट्ठसरस्स मागहतित्थाहिवइदेवभवणे निवडणं—

५०७. तए णं तं अइरुग्गय-बालचंद-इंद-धणु-संनिकासं, वर-महिस-दरिय-दप्पिय-दढ-घण-सिंग-रइय-सारं, उरगवर-पवरगवल-पवर-परहुय-भमर-कुल-णीलि-णिद्धंत-धोयपट्टं, णिउणोविय-मिसिमिसिंत-मणि-रयण-घंटिया-जाल-परिक्खित्तं, तडितरुण-किरण-तव-णिज्ज-बद्ध-चिंधं दद्दर-मलयगिरि-सिहर-केसर-

भरत द्वारा निःसृष्ट शर का मागधतीर्थाधिपति देव भवन में निपतन—

५०७. वह धनुष अर्थात् उस धनुष का आकार अचिरोद्गत तत्काल ही उदित हुए बालचंद्र (द्वितीया का चन्द्र) इन्द्र धनुष के समान वक्र था, मदोन्मत्त गर्वीले श्रेष्ठ महिष (भैंसा) के सुदृढ़ निगड़ सींगों के मध्यभाग से बनाया गया था, तथा श्रेष्ठ नाग, श्रेष्ठ महिष, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमरों के समूह, नीलराशि के समान अत्यन्त श्यामल (कृष्ण वर्णी) उस धनुष का पृष्ठभाग तेजस्वी, निर्मल और स्निग्ध था, निपुण शिल्पियों द्वारा सजाये जाने से वह चमचमाहट करता था, मणि रत्नों की घंटिकाओं (घुंघरुओं) से वेष्टित था, उस पर बिजली के समान चमचमाहट करने वाली सुनहरी किरणों के चिन्ह लगे हुए थे, दद्दर पर्वत, मलयपर्वत, के शिखरों पर वास करने वाले सिंह के केशर

चामर-वालद्ध-चंदचिंधं काल-हरिय-रत्त-पीय-सुक्किल्ल-बहु-ण्हारुणि-संपिणद्धजीवं जीवियंत-करणं चलजीवं धणुं गहिऊण से णरवई, उसुं च वरवइर-कोडियं वइर-सारतोंडं, कंचण-मणि-कणग-रयण-धोइट्ठ-सुकय-पुंखं, अणेग-मणि-रयण-विविह-सुविरइय-णाम-चिंधं वइसाहं ठाइऊण ठाणं आयय-कण्णाययं च काऊण उसुमुदारं इमाइं वयणाइं तत्थ भाणीअ से णरवई—

(गर्दन के बाल) चमरी गाय की पूंछ के बाल तथा अर्धचन्द्र के चिन्ह से अंकित थे, काले, हरे, लाल, पीले और श्वेत रंगों वाले अनेक स्नायुओं से बनी हुई प्रत्यंचा (डोरी) से सज्जित था, शत्रुओं के जीवन का अन्त करने वाला तथा जिसका टंकार मन को कंपकपा देने वाला था ऐसे धनुष को लेकर और उस धनुष पर जिसके दोनों सिरे श्रेष्ठ वज्रमणि (हीरा) से बने हुए हैं, अगला सिरा वज्र के सार भाग द्वारा बनाया गया है और जिस पर सुवर्ण, मणिरत्नों द्वारा अपने नाम का चिन्ह बना हुआ है, इस प्रकार के बाण को चढ़ाकर वैशाख नामक आसन विशेष में स्थित होकर और धनुष की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर वह राजा भरत इन वचनों को बोला—

गाहाओ—हंदि सुणंतु भवंतो, बाहिरओ खलु सरस्स जे देवा।
णागासुरा सुवण्णा, तेसिं खु णमो पणिवयामि ॥१॥

'हे देवगण! आप सब ध्यानपूर्वक सुनें जो देवगण मेरे बाण के बाह्य स्थान में रहे हुए हैं अर्थात् उनके रक्षक हैं, तथा नाग, असुर, सुवर्णकुमार आदि इन सभी देवताओं को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥

हंदि सुणंतु भवंतो अब्भिंतरओ सरस्स जे देवा।
णागासुरा सुवण्णा सव्वे मे ते विसयवासी ॥२॥

हे देवगण! आप ध्यानपूर्वक सुनें कि नाग, असुर, सुवर्णकुमार आदि जो देव बाण के आभ्यन्तर भाग के अधिष्ठायक हैं और मेरे देश में वास करने वाले हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

इति कट्टु उसुं णिसिरइ त्ति।

ऐसा कहकर राजा भरत ने बाण छोड़ा।

(उस समय राजा भरत कैसा दिख रहा था, उसका वर्णन निम्नलिखित दो गाथाओं में इस प्रकार किया है—)

परिगरणिगरियमज्झो वाउद्धुयसोभमाणकोसेज्जो।
चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदो व्व पच्चक्खं ॥३॥

युद्ध के समय जैसे योद्धा अपने शरीर के मध्य भाग को मजबूत बाँधता है, वैसे ही राजा भरत ने अपने शरीर के मध्य-भाग को मजबूती से बांध रखा है, मन्द-मन्द बहती पवन की लहरों से शरीर पर धारण किया हुआ कौशेय वस्त्र लहलहा रहा है, दर्शनीय श्रेष्ठ धनुष को हाथ में लिये हुए वह राजा भरत ऐसा शोभित हो रहा है कि मानो साक्षात इन्द्र ही हो ॥३॥

तं चंचलायमाणं पंचमिचंदोवमं महाचावं।
छज्जइ वामे हत्थे, णरवइणो तंमि विजयंमि ॥४॥

पंचमी के चन्द्रमा के समान अत्यन्त चंचल विजय का साधन वह महाधनुष राजा भरत के बायें हाथ में शोभित हो रहा है ॥४॥

तए णं से सरे भरहेणं रण्णा णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव दुवालस जोयणाइं गंता मागहतित्थाहिवइस्स देवस्स भवणंसि निवइए।

जब राजा भरत ने वह बाण छोड़ा तो छूटते ही बारह योजन की दूरी पर स्थित मागधतीर्थ के अधिपति देव के भवन में आकर पड़ा।

णामंकियसरं दट्ठूण मागहतित्थाहिवइणो भरहसम्मुह-मब्भुवगमणं—

नामांकित शर को देखकर मागधतीर्थाधिपति का भरत के सम्मुख अभ्युपगमन—

५०८. तए णं से मागहतित्थाहिवई देवे भवणंसि सरं णिवइयं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए—

५०८. तदनन्तर वह मागधतीर्थाधिपति देव भवन में गिरे हुए बाण को देखता है, देखकर अत्यन्त क्रोधित—क्रोध से आग-बबूला हो गया, रुष्ट, प्रचण्ड चंडिकायन्—कुपित हो गया और

मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं णिडाले साहरइ, साहरित्ता एवं वयासी—

"केस णं भो ! एस अपत्थियपत्थए दुरंत-पंत-लक्खणे हीण-पुण्ण-चाउद्दसे हिरि-सिरि-परिवज्जिए जे णं मम इमाए एयाणुरूवए दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए देवजुईए दिव्वेणं देवाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पि अप्पुस्सुए भवणंसि सरं णिसिरइ" त्ति कट्टु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं णामाहयंकं सरं गेण्हइ, गेण्हित्ता णामंकं अणुप्पवाएइ, णामंकं अणुप्पवाएमाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

क्रोध के कारण दाँतों को मिशमिसाते हुए, ललाट को त्रिवली (तीन सलें, रेखायें) युक्त करके भ्रकुटि को तानकर—टेढ़ी करके इस प्रकार बोला—

'अरे ऐसा कौन है यह ! जो अप्रार्थितप्रार्थी है अर्थात् जिसकी प्रार्थना नहीं की गई है, ऐसी मृत्यु का अभिलाषी है, अपनी मौत को बुला रहा है ? जिसका लक्षण अशुभ परिणाम वाला तथा तुच्छ है ऐसा यह कौन है ? अर्थात् दुःखद अन्त का आकांक्षी यह कौन है ? कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जन्म लेने वाला यह अभागा कौन है ? तथा श्री ह्री से रहित अर्थात् कंगाल और निर्लज्ज यह कौन है ? जो मेरी इस प्रत्यक्ष में अनुभूयमान दिव्य देवर्द्धि दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव से उपार्जित अर्थात् जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से उपार्जित, प्राप्त, अधिकृत—अधीन की हुई, सम्पत्ति वैभव की प्राप्ति का इच्छुक ईर्ष्यालु होकर मेरे भवन में बाण फेंक रहा है; ऐसा सोचकर सिंहासन पर से उठता है, उठकर जहाँ वह नामांकित बाण पड़ा हुआ था, उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर उस नामांकित बाण को हाथ में लेता है, बाण को लेकर नामांकन (नाम का निशान) को बाँचता है। नाम के चिह्न अक्षर को पढकर उस मागधतीर्थ के अधिपति देव के मन में इस प्रकार का विचार, चिंतन, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

५०६. "उप्पण्णे खलु भो ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागयाणं मागह-तित्थकुमाराणं देवाणं राईणमुवत्थाणियं करेत्तए। तं गच्छामि णं अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमि" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता हारं मउडं कुण्डलाणि य कडगाणि य तुडियाणि य वत्थाणि य आभरणाणि य सरं च णामाहयंकं मागह-तित्थोदगं च गेण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ,

५०६. 'अरे ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में सार्वभौम चक्रवर्ती भरत नाम का राजा उत्पन्न हुआ है तो अतीत, वर्तमान और भविष्य काल में होने वाले प्रत्येक मागधतीर्थवासी देवकुमारों का यह परम्परागत आचार है कि वे राजाओं का सत्कार करें अर्थात् राजाओं की सेवा में भेंट—नजराना उपस्थित करके उनका सम्मान करें। तो मैं भी जाऊँ और भरत राजा का सत्कार करूँ" ऐसा विचार करता है, विचार करके हार-मुकुट, कुण्डल, कटक (कड़ा) त्रुटित (बाजूबंद) वस्त्र और आभरण एवं नामांकित बाण तथा मागधतीर्थ का जल आदि लेता है, लेकर उत्कृष्टगति से, त्वरितगति से, चपलगति से, वेगवाली गति से, सिंह जैसी गति से, शीघ्र गति से विशेष वेगवाली गति से, दिव्य देवगति से चलते-चलते जहाँ भरत राजा है वहाँ आया।

५१०. उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिर-जाव-अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—

५१०. वहाँ आकर घुंघरुओं से युक्त पंचरंगी उत्तम वस्त्रों को धारण करके, दसों अंगुलियों से सुशोभित हाथों को जोड़ मस्तक पर—यावत्—अंजलि करके आकाश में अधर स्थित होकर वह देव भरत राजा को जय विजय शब्दों से बधाता है, बधाकर इस प्रकार बोला—

"अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे पुरत्थिमेणं मागहतित्थमेराए, तं अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी,

'हे देवानुप्रिय ! आपने समग्र भारतवर्ष के मागधतीर्थ तक के पूर्व दिशावर्ती क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली है अर्थात् जीत

अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तीकिंकरे, अहण्णं देवाणुप्पियाणं पुरत्थिमिल्ले अंतेवाले, तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! ममं इमेयारूवं पीइदाणं" ति कट्टु हारं मउडं कुण्डलाणि य कडगाणि य-जाव-मागहतित्थोदगं च उवणेइ ।

लिया है, जिससे मैं भी आप देवानुप्रिय देश का निवासी बन गया हूँ, मैं भी आप देवानुप्रिय का आज्ञाकारी किंकर-दास, नौकर बन गया हूँ, मैं भी आप देवानुप्रिय के पूर्व दिग्वर्ती क्षेत्र का अन्तपाल बन गया हूँ, तो हे देवानुप्रिय ! आप मेरी ओर से सेवा में उपस्थित इस प्रकार के प्रीतिदान (भेंट, नजराना) को स्वीकार करो, यह कहकर हार, मुकुट, कुण्डल, कटक आदि—यावत्—मागधतीर्थ का जल भेंट करता है ।

तए णं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मागहतित्थकुमारं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।

तब वह राजा भरत मागधतीर्थ के कुमार देव द्वारा दिये जा रहे इस प्रकार के प्रीतिदान को स्वीकार (ग्रहण) करता है, स्वीकार करके मागधतीर्थाधिपति देवकुमार का सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदा करता हैं ।

भरहस्स अट्ठमभत्तपारणं मागहतित्थाहिवदेवमुद्दिस्स अट्ठाहिय-महिमकरणादेसो य—

भरत द्वारा अष्टमभक्त का पारणा और मागधतीर्थाधिपति के लक्ष्य से अष्टदिवसीय महामहोत्सव करने का आदेश—

५११. तए णं से भरहे राया रहं परावत्तइ, परावत्तित्ता मागहतित्थेणं लवणसमुद्दाओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरे अणुपविसइ, अणुपविसित्ता-जाव-ससि-व्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ, पारित्ता भोयणमंडवाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

५११. तत्पश्चात् वह भरत राजा रथ को लौटाता है, लौटकर मागधतीर्थ से होता हुआ लवणसमुद्र से वापस भरत क्षेत्र में उतरता है, उतरकर जहाँ विजय स्कन्धावारनिवेश यानी सेना का पड़ाव है और उसमें जहाँ बाह्य उपस्थानशाला है, वहाँ आता है, वहाँ आकर घोड़ों को रोकता है, घोड़ों को रोककर रथ को खड़ा करता है, खड़ा करके रथ से उतरता है, रथ से उतरकर जिस ओर मज्जनगृह है, उस ओर आता है वहाँ आकर मज्जनगृह में प्रवेश होता है, प्रवेश करके—यावत्—चन्द्र के समान प्रियदर्शन वाला वह नरपति भरत राजा स्नानघर से बाहर निकलता है, बाहर आकर जिस ओर भोजन मण्डप (भोजनशाला या रसोई घर) है, वहाँ आता है, भोजन मण्डप में आकर श्रेष्ठ सुखासन पर बैठकर अष्टमभक्त का पारणा करता है, पारणा करके भोजन मण्डप से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जिस तरफ बाहर की बैठक (दीवानखाना) है, जहाँ सिंहासन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर सिंहासन के ऊपर पूर्व-दिशा को मुख करके सुखपूर्वक बैठता है, बैठकर अठारह श्रेणी-प्रश्रेणियों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं- उक्करं - जाव - मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियं महामहिमं करेह, करित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही नगर को शुल्क और करमुक्त आदि करके—यावत्—मागधतीर्थकुमार देव के सम्मान में महामहिमा वाला अष्ट दिवसीय महोत्सव करो—मनाओ और ऐसा करके मुझे सूचना दो ।'

तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्ठ - जाव - करेंति, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तब वे अठारह श्रेणियां-प्रश्रेणियां भरत राजा के इस आदेश को सुनकर हर्षित हुई—यावत्—महामहोत्सव करती हैं, करके वापस महामहोत्सव सम्पन्न होने की सूचना देती हैं ।

चक्करयणस्स वरदामतित्थाभिमुहप्पयाणं—

चक्ररत्न का वरदामतीर्थाभिमुख प्रयाण—

५१२. तए णं से दिव्वे चक्करयणे वइरामयतुम्बे लोहियक्खामया-

५१२. तदनन्तर वह दिव्य चक्ररत्न जिसका निवेश स्थान वज्रमय

रए जंबूणयणेमीए, णाणा-मणि-खुरप्प-थाल-परिगए, मणि-मुत्ता-जाल-भूसिए, सणंदिघोसे सखिखिणीए दिव्वे, तरुण-रवि-मंडल-णिभे, णाणा-मणि-रयण-घंटियाजाल-पदिक्खित्ते, सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-आसत्त-मल्लदामे अंतलिक्ख-पडिवण्णे-जक्ख-सहस्स-संपरि-वुडे, दिव्व-तुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं, पूरेंते चेव अंबरतलं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउह-घरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं वरदाम-तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था ॥

हैं जिसके आरे लोहिताक्ष (मणि विशेष) नामक लाल रत्नों से बने हैं, जिसकी नेमि (मध्यभाग) जाम्बूनदसुवर्ण (लाल झांई मारने वाला सुवर्ण) से बनी हुई है, अनेक मणियों से निर्मित अन्तःपरिधिरूप स्थल से युक्त है, मणिमुक्ताओं के जाल से विभूषित हैं तथा जो नंदिघोष (भंभा, मृदंग आदि बारह प्रकार के वाद्यों के शब्द समूह) सहित है, घुंघरुओं से शोभित हैं, दिव्य, मध्यान्ह के सूर्यमण्डल के समान तेजस्वी हैं, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों की घंटियों के समूह के चारों तरफ से व्याप्त हैं, सर्व ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से निर्मित, मालाओं से आकर्षक हैं, आकाश में अधर ठहरा हुआ है, हजारों यक्षों से परिवृत्त हैं अर्थात् हजारों यक्षों द्वारा रक्षा की जाती है, रक्षा के लिए हजारों यक्ष नियुक्त हैं, अपने दिव्य वाद्यों की ध्वनि से आकाश-मण्डल को गुंजायमान कर रहा है और जिसका नाम सुदर्शन है, मागधतीर्थ कुमारदेव के सम्मानार्थ किये जाने वाले अष्टदिवसीय महामहोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् नराधिप भरत की आयुधगृहशाला से निकलता है, बाहर निकलकर दक्षिण-पश्चिम दिशा नैॠत्य कोण में स्थित वरदाम नामक तीर्थ की ओर प्रयाण करने लगा।

भरहस्स वरदामतित्थाणुगमणाइं—

५१३. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं दाहिणपच्च-त्थिमं दिसिं वरदाम-तित्थाभिमुहं पयायं चावि पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय-गय-रह-पवर चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह" त्ति कट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता तेणेव कमेणं-जाव-धवल-महामेह-णिग्गए-जाव-सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमा-णीहिं माइय-वर-फलय-पवर-परिगर-खेडय-वरवम्म-कवय-माढी सहस्स-कलिए उक्कड-वर-मउड-तिरीड-पडाग-झय-वेजयंति-चामर-चलंत-छत्तंधयार-कलिए, असिखेवणिखग्ग-चाव,णाराय-कणय-कप्प-

भरत का वरदाम तीर्थानुगमन—

५१३. तब वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न का दक्षिण-पश्चिम दिशावर्ती वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण करके देखता है, देखकर हृष्ट तुष्ट होकर—यावत्—कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनको ऐसा आदेश देता है—

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, अभिषेक योग्य हस्तिरत्न को सुसज्जित करो।' और ऐसा कहकर स्नानगृह में प्रवेश करता है, प्रवेश करके पूर्व वर्णन की तरह स्नान करके—यावत्—धवल महामेघों से निर्मित चन्द्र के समान स्नानगृह से निकलता है—यावत्—दोनों बाजुओं में श्वेत-धवल श्रेष्ठ चामरों का ढोरना प्रारम्भ कर दिया। उस समय वह भरत राजा जिन्होंने अपने हाथों में वरफलक—लकड़ी से बनी हुई उत्तम ढाल ले रखी है, श्रेष्ठ कमरबंद से जिनकी कटि—कमर बंधी हुई है, खेटक—बांस की सलाइयों से बने बाण, उत्तम बख्तर, कवच तथा माढ़ी को सुरक्षा के लिए शरीर पर धारण किये हुए है, ऐसे हजारों योद्धाओं से युक्त था, उत्कृष्ट उत्तम मुकुट किरीट (शिरोभूषण रूप मुकुट विशेष) पताकाओं, ध्वजाओं, वैजयन्तियों (दोनों भुजाओं में दो छोटी-छोटी पताकाओं से युक्त पताकाओं), चामरों और छत्रों की छाया से उसका मार्ग आच्छा-दित ढका हुआ था जिससे सूर्यास्तकालीन अन्धकार की प्रतीति होती थी, असि—विशेष प्रकार की तलवार, खेव—गोफन,

णिसूल-लउड-भिंडिमाल-धणुह-तोण-सर-पहरणेहि य काल-णील-रुहिर-पीय-सुक्किल्ल-अणेग-चिंध-सय-सण्णिविट्ठे अप्फोडिय-सीहणाय--छेलिय-हयहेलिय-हत्थिगुलुगुलाइय-अणेगरह--सयसहस्स-घणघणेंत-णीहम्ममाण-सद्दसहिएण, जमगसमग-भंभा-होरंभ-किणित-खरमुहि-मुगुन्द-संखिय-परिलि-वच्चग--परिवाइणि-वंसवेणु-विपंचि-महइकच्छभिरिगिसिगिय-कलताल-कंसताल-करधाणुत्थिएण महया सद्द-सण्णिणाएण सयलमवि जीवलोगं पूरयंते बल-वाहण-समुदएणं एवं जक्ख-सहस्स-परिवुडे वेसमणे चेव धणवई अमरवइ-सण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती गामागर-णगर-खेड-कब्बड तहेव सेसं - जाव - विजयखंधावारणिवेसं करेइ, करित्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खड्ग, धनुष, बाल, कणक—बाण विशेष, कल्पधुरी, शूल, लगुड़—लाठी विशेष वल्लम धनुष, तूणीर—तरकश, शर आदि प्रहरणों शस्त्रों से, जिन पर काले, नीले, लाल, पीले, श्वेत रंगों से चिन्ह बनाये गये थे, वह युक्त था तथा जिसके कितने ही योद्धा ताल ठोक रहे थे, कोई सिंह जैसी गर्जना कर रहे कोई थे, हर्षोल्लास से खिलखिला रहे थे, कोई घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की बलबलाहट जैसी ध्वनियाँ कर रहे थे, साथ ही लाखों रथों की घनघनाहट, घोड़ों को ठीक प्रकार से रोकने, खड़े रखने के लिए फटकारी जाने वाली चाबुकों के सड़-सड़ शब्द ध्वनियाँ गूंज रही थीं, तथा एक साथ बजाये जा रहे भंभा—ढाक—होरंभ—ढपला वीणा—खरमुखी, मुकुन्द—विशेष प्रकार का नगाड़ा, शंख, परली, वच्चक, परिवाहिनी, बाँसुरी, वेणु, विपंची, महती, कच्छपी, रिगिसिगि, करताल, कंसताल, करधनी आदि विविध वाद्यों से धमधमाहट ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो समस्त जीवलोक में व्याप्त हो। इस प्रकार की साज-सज्जा हजारों यक्षों से घिरे हुए वैश्रमण धनपति जैसा और ऋद्धि सम्पन्नता से अमरपति इन्द्र जैसा, प्रख्यात कीर्ति वाला वह राजा भरत बल-सेना, वाहन रथ आदि के समुदाय के साथ सैकड़ों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट आदि से युक्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता हुआ आदि सब पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—विजय स्कन्धावार निवेश करता है अर्थात् पड़ाव डालता है, पड़ाव डालकर वर्धकी-रत्न (श्रेष्ठ सुतार) को बुलाता है और बुलाकर यह आदेश देता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मम आवसहं पोसहसालं च करेहि, करेत्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि"।

'हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही मेरे लिये आवास और पौषधशाला का निर्माण करो, निर्माण करके आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न होने की सूचना दो।

५१४. तए णं से आसम-दोणमुह-गाम-पट्टण-पुरवर-खंधावार-गिहावण-विभागकुसले एगासीइपएसु सव्वेसु चेव वत्थूसु णेगगुण-जाणए पंडिए विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं वत्थुपरिच्छाए णेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणीसु य वासघरेसु य विभागकुसले छेज्जे वेज्झे य दाणकम्मे पहाणबुद्धी जलयाणं भूमियाण य भायणे जल-थल-गुहासु जंतेसु परिहासु य कालनाणे तहेव सद्दे वत्थुप्पएसे

५१४. वह वर्धकीरत्न आश्रम, द्रोणमुख, ग्राम, पत्तन, उत्तमपुर, स्कन्धावार, घर, आपण—दुकान—इन सबकी विभागपूर्वक रचना करने में कुशल, वास्तु के सब इक्यासी पदों में से अनेक गुणों को जानने में पण्डित, देवयानों की पैंतालीस प्रकार की वास्तु परीक्षा में कुशल, नेमि, पार्श्वों, भक्तशालाओं—रसोईघरों कोट्टनियों और शयनगृहों आदि इन सभी की विभागपूर्वक रचना करने में कुशल छेद्य—छेदन करने योग्य वेध्य—वेधन करने योग्य, दानकर्म लकड़ी आदि को चेरने के लिए गेरु आदि से सूत को गीला करके काष्ट पर निशान करना आदि में प्रख्यात बुद्धि वाला, जलयान, भूमियान आदि साधनों को बनाने में कुशल, जलगत, स्थलगत गुफाओं-सुरंगों का जानकार तथा उनको बनाने के लिए प्रयोग में आने वाले यन्त्रों के निर्माण में कुशल, परिखाओं के निर्माण में कुशल, निर्माण योग्य समय का जानकार अथवा बनाये जा रहे गृहादि के प्रशस्त, अप्रशस्त शब्दों का

पहाणे गब्भिणि-कण्णरुक्ख-वल्लि-वेढिय-गुण-दोस-वियाणए, गुणड्ढे, सोलस-पासाय-करणकुसले चउसट्ठि-विकप्प-वित्थियमई णंदावत्ते य वद्धमाणे सोत्थिय-रुयग तह सव्वओ भद्दसण्णिवेसे य बहुविसेसे उद्दंडिय-देव-कोट्ठ-दारु-गिरि-खाय-वाहण-विभागकुसले ।

जानकार तथा इसी प्रकार शब्द के परमार्थ का जानकार, वास्तु प्रदेश का विधान करने मे प्रवीण—प्रधान गर्भिणी वेलों फलाभिमुखवेलों, कन्यारूपवेलों अर्थात् वर्तमान में कौन-कौन सी वेलें फल बिना की हैं अथवा भविष्य में फल देने वाली हैं, वृक्षवेलों—किस-किस वृक्ष से कौन-कौन सी वेल लिपटी हुई है, इत्यादि प्रकार के वृक्षों और वेलों के गुणदोषों का जानकार, गुण सम्पन्न, सोलह प्रकार के प्रासादों का निर्माण करने में कुशल, वास्तुशास्त्र प्रसिद्ध चौंसठ प्रकार के गृहों को बनाने में विशिष्ट विपुलज्ञान अनुभव वाला और नन्दावर्त, वर्धमान, स्वास्तिक, रुचक आदि नामक प्रासादों तथा सर्वतोभद्र सन्निवेश इन सबके निर्माण कार्य में विशेष निपुण, ध्वज, देवगृह (मन्दिरों) कोष्ट, काष्ठ—इमारती लकड़ी, गिरि—किला, खात—खाई, वाहन आदि इन सभी के विभागों में कुशल था ।

गाहाओ—इय तस्स बहुगुणड्ढे थवईरयणे णरिंदचंदस्स ।
तवसंजमणिव्विट्ठे 'किं करवाणी'वुवट्ठाई ॥१॥

पूर्वोक्त प्रकार के अनेक गुणरत्नों से सम्पन्न एवं तप संयम से युक्त अथवा जिसे भरत चक्रवर्ती ने तप और संयम साधना से प्राप्त किया है ऐसा वह स्थपितरत्न (वर्धकीरत्न—सुतार) मैं क्या करू ऐसा कहते हुए भरत राजा के समक्ष उपस्थित हुआ ।

सो देवकम्मविहिणा खंधावारं णरिंदवयणेणं ।
आवसह-भवण-कलियं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥

राजा की सेवा में उपस्थित उस वर्धकीरत्न ने देवकर्मविधि द्वारा अर्थात् जैसे देवों द्वारा समय मात्र में कार्य सम्पन्न किया जाता है उसी प्रकार से एक मुहूर्त में आवास, भवन, स्कन्धावार आदि की रचना कर दी ।

करेत्ता पवरपोसहघरं करेइ, करित्ता जेणेव भरहे राया - जाव - एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ, सेसं तहेव - जाव - मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ ॥

उनकी रचना करके उत्तम पौषधशाला का निर्माण करवा है, पश्चात् जहाँ राजा भरत था—यावत्—शीघ्र ही आज्ञापूर्ति की सूचना देता है, इसके बाद का शेष कथन पूर्वोक्तवत समझ लेना चाहिए—यावत्—स्नानगृह में से निकलता है, निकलकर जिस ओर बाह्य उपस्थानशाला थी जहाँ चार घंटों वाला रथ था, वहाँ आता है ।

५१५. तए णं तं धरणितल-गमणलहुं तओ बहुलक्खण-पसत्थं हिमवंत-कंदरंतर-णिवाय-संवड्ढिय-चित्त-तिणिस-दलियं जंबूणय-सुकयकूवरं, कणय-दंडियारं, पुलय-वरिंदणील-सासग-पवाल-फलिह-वर-रयण-लेट्ठु-मणि विद्दुम-विभूसियं, अडयालीसार-रइय-तवणिज्ज-पट्ट-संगहिय-जुत्त-तुम्बं, पघसिय-पसिय-णिम्मिय-णव-पट्ट-पुट्ठ-परिणिट्ठियं, विसिट्ठ-लट्ठ-णव-लोह-बद्धकम्मं, हरि-

५१५. वह रथ पृथ्वीतल पर चलने में अत्यन्त शीघ्र गतिवाला है, अनेक शुभ लक्षणों से प्रशस्त—सुन्दर है, हिमवन्त पर्वत की कंदराओं गुफाओं में पवन बिना के (निर्वात) स्थान में उत्पन्न एवं संवर्धित आश्चर्यकारी तिनिस वृक्ष विशेष के काष्ठ से बनाया गया है, जम्बूनद जाति के सुवर्ण से निर्मित जिसका कूबर—जुआ है, पहिओं के अर (डाँडियाँ) व डाँडे सोने से बने हुए हैं तथा पुलक, श्रेष्ठ इन्द्र नीलरत्न, सासक, प्रवाल, स्फटिक, उत्तमरत्न, लेष्ठ—विजातीय रत्न, मणि विद्रुम आदि रत्नों से विभूषित है, उसमें अड़तालीस आरे हैं, जिनके तुम्बे सोने से बने हैं, भली प्रकार से घिस-घिसकर चिकनी की गई और चमचमाती हुई पुंठी पर बराबर दृढ़ता से रखे हैं, विशिष्ट लष्ठ—विशेष प्रकार से अति मनोहर नवीनतम लोहे की कीला-कीलियों से जोड़ा गया है अर्थात् मजबूती के लिये जगह-जगह

पहरण-रयण-सरिसचक्कं, फक्केयण-इंदणील-सासग-सुसमाहिय वद्धजाल-कडगं, पसत्थ-विच्छिण्ण-समधुरं पुरवरं च गुत्तं, सुकिरण-तवणिज्ज-जुत्त-कलियं, कंकटय-णिजुत्त-कप्पणं, पहरणाणुजायं, खेडग-कणग-धणु-मंडलग्ग-वरसत्ति-कोंत-तोमर-सरसय-बत्तीसतोण-परिमंडियं, कणग-रयण-चित्तं, जुत्तं हलीमुह-बलाग-गयवंत-चंद-मोत्तिय-तण-सोल्लिय-कुन्द-कुडय-वरसिंदुवार-कंदल-वर-फेण-णिगर-हारकासप्पगास-धवलेहिं अमर-मण-पवण-जइण-चवल-सिग्घ-गामीहिं चउहिं चामरा-कणग-विभूसियंगेहिं, तुरगेहिं, सचछत्तं सज्झयं सघंटं सपडागं सुकयसंधिकम्मं, सुसमाहिय-समर-कणग-गंभीर-तुल्लघोसं—

कीलें पत्ती आदि लगाई गई हैं। वासुदेव के शस्त्र-प्रहरणरत्न—चक्ररत्न जैसे गोल जिसके पहिये हैं, जिसके जाली झरोखे कर्केतनरत्न, इन्द्रनीलमणि, सासक आदि रत्नों द्वारा सुन्दर रीति से बनाये गये हैं, जिसकी धुरी प्रशस्त है, विस्तीर्ण है और सम-वक्रतारहित है, श्रेष्ठ पुर (नगर) की तरह चारों ओर से सुरक्षित है, सुन्दर किरणों वाले तपनीय सुवर्ण से बनी हुई घोड़ों की लगामें हैं, बख्तरों से ढका हुआ है, प्रहार करने के साधन अस्त्र-शस्त्र आदि जिसमें रखे हैं, खेड—ढाल कनक—विशेष प्रकार के बाण, धनुष मण्डलाग्र तलवार, वरशक्ति—त्रिशूल, कुन्ता—भाला, तोमर विशेष प्रकार का बाण सैकड़ों सामान्य शर—बाण जिनमें रखे हैं ऐसे बत्तीस तूणीर—तरकस आदि यथास्थान रखे हैं, सुवर्ण और मणियों के चित्राम बने हैं, अथवा सुवर्ण और मणियों की चित्रकारी से चित्र जैसा प्रतीत होता है, इसमें हलीमुख—एक प्रकार का श्वेत पदार्थ, बगुला, हाथीदांत, चन्द्र, मोती, तृण—मालती पुष्प, कुन्दपुष्प, कुटजपुष्प, उत्तम सिंदुवार निगुण्डीपुष्प, कलन्द वृक्ष विशेष—पुष्प उत्तम फेन समूह, हार, कांस के सदृश धवल—श्वेत और देव, मन, पवन के वेग से भी अधिक वेगवाले, चपल, शीघ्रगामी तथा चामर और सुवर्ण के आभूषणों से शृंगारित, अश्व जुते हुए हैं तथा जिस पर छत्र ताना गया है, ध्वजा लहरा रही है, घंटा लगे हुए हैं, पताका फहरा रही हैं, जिसकी संधियों को मजबूती से जोड़ा गया है, युद्ध के योग्य समर करणक नामक वाद्य के घोष के सदृश गम्भीर घोष वाला है,

वरकुप्परं सुचक्कं वरणेमीमंडलं, वरधुरातोंडं, वरवइरबद्ध-तुम्बं, वरकंचण-भूसियं वरायरिय-णिम्मियं, वरतुरग-संपउत्तं, वरसारहि-सुसंपग्गहियं, वरपुरिसे वरमहारहं दुरूढे आरूढे पवर-रयण-परिमंडियं कणय-खिंखिणीजाल-सोभियं, अउज्झं सोयामणि-कणग-तविय-पंकय-जासुयण-जलण-जलिय-सुय-तोंडरागं, गुंजद्ध-बंधुजीवग-रत्तहिंगुलग-णिगरसिंदूररुइल-कुंकुम-पारेवग-चलण-णयणकोइला-दसणावरण-रइयाइरेग-रत्तासोगकणग-केसुय-गयतालु-सुरिंदगोवग-समप्पभप्पगासं, बिंबफल-सिलप्पवाल-उट्ठिंतसूर-सरिसं, सव्वोउय-सुरहि-कुसुम-आसत्त-मल्लदामं, ऊसिय-सेय-ज्झयं,

जिसके दोनों कूपर—रथ के अवयव विशेष उत्तम हैं, सुन्दर चक्र—पहिये हैं, नेमिमण्डल—पहियों का मध्यभाग, उत्तम है धुरा के दोनों कोने उत्तम हैं, अग्रभाग उत्तम वज्ररत्न से बंधे हुए हैं, उत्तम सुवर्ण से विभूषित हैं, श्रेष्ठ शिल्पी द्वारा निर्मित हैं, श्रेष्ठ घोड़े जुते हुए हैं जो उत्तम सारथी के द्वारा चलाये जाते हैं, उत्तम पुरुषों के बैठने के योग्य उत्तम महारथ है तथा जो श्रेष्ठ रत्नों से सुशोभित है, सुवर्ण निर्मित घुंघरुओं से शोभाय-मान है, अयोद्ध है अर्थात् जिसका सामना कोई योद्धा नहीं कर सकता है, जिसका रंग सौदामिनी—बिजली के समान तपाये हुए सोने, पंकज, जपा पुष्प, ज्वाला और तोते की चोंच के समान लाल है, रथ की कांति आधी गुम्मची, बंधुजीवक, रक्त-हिंगुलक के समूह, सिंदूर, रुचिर, कुंकुम, कबूतर के पैर कोयल की आंख, अधरोष्ठ, रतिद, अत्यधिक लाल अशोक वृक्ष कनक—तपाया हुआ सुवर्ण, किंशुक पलाशपुष्प गजतालु, इन्द्रगोप, इन सभी पदार्थों, तथा बिम्बफल शिलाप्रवाल—मूंगा, उगते हुए सूर्य जैसी लाल प्रभाव वाली है, जिस रथ पर सब ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों की मालायें लटक रही हैं, उन्नत श्वेत

महामेह- रसिय-गंभीर-णिद्ध-घोसं, सत्तु-हियय-कंपणं, पभाए य सस्सिरीयं णामेणं पुहवि-विजय-लंभं ति विस्सुयं लोगविस्सु-यजसोऽहयं चाउग्घंटं आसरहं पोसहिए णरवई दुरूढे।

फहरा रहा है, महामेघ की गर्जना जैसा गम्भीर और स्निग्ध जिसका घोष है, शत्रुओं के हृदय में कंपकपी मचा देने वाला है, पृथ्वी विजय लाभ के नाम से प्रसिद्ध है तथा लोक में जिसका यश फैला हुआ है, सब अवयवों से युक्त है, चार घंटाओं से जोयुक्त है ऐसे अश्व रथ पर प्रातःकाल में वह शोभा सम्पन्न राजा भरत आरूढ़ हुआ।

तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सेसं तहेव दाहिणाभिमुहे वरदामतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ - जाव - से रहवरस्स कुप्परा उल्ला - जाव - पीइदाणं से। णवरं चूडामणिं च दिव्वं उरत्थगेविज्जगं सोणियसुत्तगं कडगाणि य तुडियाणि य - जाव - दाहिणिल्ले अंतेवाले - जाव - अट्ठाहियं महामहिमं करेंति, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

इसके बाद का समग्र वर्णन पूर्व में उल्लिखितवत् समझना चाहिए कि चातुर्घंटक रथ पर आरूढ़ हुआ राजा भरत वरदामतीर्थ से दक्षिण दिशावर्ती लवण समुद्र में उतरा—यावत्—उस उत्तम रथ के कूपर—धुरी तक का अवयव विशेष—भीग गये—यावत्—प्रीतिदान ग्रहण किया। लेकिन इतना विशेष समझना कि चूड़ामणि—मुकुट वक्षस्थल पर पहनने का दिव्य आभूषण कटिसूत्र—कंदोरा, कडा, तोडा—यावत्—दक्षिण दिशा का अन्तपाल—यावत्—आठ दिन का महोत्सव करता है, उत्सव करके आदेशानुसार कार्य सम्पन्न होने की सूचना देता है।

भरहस्स पभासतित्थविजयो—

भरत का प्रभासतीर्थ विजय—

५१६. तए णं से दिव्वे चक्करयणे वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे - जाव - पूरेंते चेव अंबरतलं उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं पभासतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

५१६. वरदामतीर्थ कुमार देव के सम्मान में किये गये अष्ट-दिवसीय महोत्सव सम्पन्न होने के पश्चात् वह दिव्य रत्न चक्ररत्न आयुधगृहशाला में से बाहर निकला, बाहर निकलकर आकाश में अधर स्थित—यावत्—आकाश मण्डल को गुंजाता हुआ उत्तर पश्चिम दिशा—वायव्य दिशा में अवस्थित प्रभासतीर्थ की ओर चलने लगा।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं - जाव - उत्तर-पच्चत्थिमं दिसिं तहेव - जाव - पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पभासति-त्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहेइ, ओगाहित्ता - जाव - से रहवरस्स कुप्परा उल्ला - जाव - पीइदाणं से। णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणि य तुडियाणि य आभरणाणि य सरं च णामा-हयंकं पभासतित्थोदगं च गिण्हइ, गिण्हित्ता - जाव - पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी - जाव - पच्चत्थिमिल्ले अंतवाले। सेसं तहेव - जाव - अट्ठाहिया णिव्वत्ता।

तत्पश्चात् वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न को—यावत्—उत्तर पश्चिम दिशा में आदि पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—पश्चिम दिशा की ओर सन्मुख होकर प्रभासतीर्थ से लवण समुद्र में प्रवेश करता है, प्रवेश करके—यावत्—उसके उत्तम रथ के कूपर भीग गये—यावत्—प्रीतिदान को स्वीकार किया। यह है कि माला, मुकुट, मुक्ता विशेष राशि, सुवर्ण राशि, कड़ा तोड़ा आभरण नामांकितशर और प्रभासतीर्थ का जल इन सबको ग्रहण करता है, ग्रहण करके—यावत्—प्रभासतीर्थ तक के पश्चिम दिशावर्ती क्षेत्र पर विजय प्राप्त करली है, इसलिए इस प्रभासतीर्थ मर्यादा से मैं भी आप देवानुप्रिय का देशवासी बन गया हूँ—यावत्—पश्चिम दिशा का अंतवाल (सीमारक्षक) हो चुका हूँ। शेष वर्णन पूर्ववत्—यावत्—अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हुआ।

भरहस्स सिन्धुदेवीकयं उवत्थाणियं—

भरत का सिन्धुदेवीकृत उपस्थान—

५१७. तए णं से दिव्वे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता - जाव - पूरेंते चेव अंबरतलं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्ले णं कूलेणं पुरच्छिमं दिसिं सिंधुदेवी-भवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

५१७. प्रभासतीर्थकुमार देव के सम्मानार्थ किये जाने वाले आष्टान्हिक महामहोत्सव के सम्पन्न होने के अनन्तर वह दिव्य चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकलता है, निकलकर—यावत्—अपने निनाद से आकाश मण्डल को व्याप्त करता हुआ सिंधु-महानदी के दक्षिण तट से होता हुआ पूर्व दिशा की ओर सिंधुदेवी के भवन की ओर चला।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं सिंधूदेवीभवणाभिमुहं पयायं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए तहेव - जाव - जेणेव-सिंधूए देवीए भवणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिंधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णवजोयणविच्छिण्णं वर-णगर-सारिच्छं विजयखंधावार-णिवेसं करेइ - जाव - सिंधुदेवीए अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव - दब्भसंथारोवगए अट्ठमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

तब वह राजा भरत उस दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण कूल से होते हुए पूर्व दिशा में स्थित सिंधुदेवी के भवन की ओर जाते हुए देखता है, देखकर मन में हृष्ट तुष्ट आनन्दित होता है आदि शेष सभी पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—जिस ओर सिंधुदेवी का भवन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर सिंधुदेवी के भवन से अदूर सामन्त में—न अति दूर और न अति पास में बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा श्रेष्ठ नगर जैसा विजय स्कन्धा-वार का निवेश करता है—यावत्—सिंधुदेवी के निमित्त अष्टम-भक्त तप स्वीकार करता है, स्वीकार करके पौषधशाला में पौषधव्रतधारी की तरह ब्रह्मचारी—यावत्—दर्भ के आसन पर बैठकर अष्टमभक्त वाला वह सिंधुदेवी को मन में करते हुए अर्थात् उसका ध्यान करते हुए रहता है।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सिंधूए देवीए आसणं चलइ, तए णं सा सिंधुदेवी आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भरहं रायं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

तत्पश्चात् जब भरत राजा द्वारा किया गया अष्टमभक्त तप पूर्णरूपेण परिणमान अर्थात् पूरा होता है तो इस तप के पूर्ण होते ही सिंधुदेवी का आसन कंपायमान होता है, तब वह सिंधु-देवी अपने आसन को कंपायमान होता देखती है, देखकर अवधि-ज्ञान का प्रयोग करती है, प्रयोग करके अवधिज्ञान द्वारा भरत राजा को देखती है, देखकर उसको इस प्रकार का विचार चिन्तन, प्रार्थित और मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ—

"उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्ण-मणागयाणं सिंधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणियं करेत्तए। तं गच्छामि णं अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमि" त्ति कट्टु कुम्भट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणा-मणि-कणग-रयण-भत्ति-चित्ताणि य दुवे कणग-भद्दासणाणि य कडगाणि य तुडियाणि य - जाव - आभरणाणि य गेण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए - जाव - एवं वयासी—

'जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भरत नामक राजा चातुरंत चक्र-वर्ती उत्पन्न हुआ है तो अतीत, वर्तमान और अनागत में होने वाले सिंधुदेवियों का यह परम्परागत आचार है कि वे भरत राजाओं का उपस्थान—सम्मान करें।' तो मैं भी जाऊं और भरत राजा का आदर—सम्मान करूँ ऐसा विचार करके रत्नों से बने हुए एक हजार आठ कलश और जिन पर अनेक प्रकार के मणि-सुवर्ण रत्नों से चित्रकारी की गई है ऐसे दो भद्रासन, कड़ा, तोड़ा—यावत्—आभरण लेकर उत्कृष्ट गति से आकर—यावत्—इस प्रकार बोली—

"अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासिणी, अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्ति-किंकरी, तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! मम इमं एयारूवं पीइ-दाणं" ति कट्टु कुम्भट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणि-कणग-कड-गाणि य - जाव - सो चेव गमो - जाव - पडिविसज्जेइ।

'आप देवानुप्रिय ने केवलकल्प भरतवर्ष को जीत लिया है, जिससे हे देवानुप्रिय! मैं भी आपकी देशवासिनी हो चुकी हूँ अर्थात् आपकी प्रजा हूँ आप देवानुप्रिय की आज्ञाकारिणी किंकरी—सेविका हूं तो हे देवानुप्रिय आप मेरी यह भेंट स्वीकार करो', रत्नों द्वारा चित्रित एक हजार आठ कलश विविध मणियों से खचित सुवर्ण के कड़ा आदि स्वीकार करो—यावत्—पूर्वोक्त पाठानुसार सब वर्णन करना चाहिए—यावत्—विदा करता है।

५१८. तए णं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडि-णिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए, कयबलिकम्मे सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडि-

५१८. तत्पश्चात् वह भरत राजा पौषधशाला से बाहर निकलता है, निकलकर जिस ओर स्नानगृह था, वहाँ आता है वहाँ आकर स्नान करता है, बलिकर्म करता है, शुद्ध पवित्र मंगलकारी श्रेष्ठ वस्त्रों—पोशाक को पहनता है, अल्पतम महामूल्यवान आभरणों

पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी-जाव-कयमालगं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

तप स्वीकार करता है, स्वीकार करके पौषधशाला में पौषधयुक्त की तरह ब्रह्मचारी हो—यावत्—कृतमालदेव को मन में करते हुए वहाँ रहता है।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ, तहेव-जाव-वेयड्ढगिरिकुमारस्स।

णवरं पीइदाणं हत्थीरयणस्स तिलगचोद्दसं भंडालंकारं कडगाणि य -जाव- आभरणाणि य गेण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ-जाव-भोयणमंडवे। तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् जब उस भरत राजा का अष्टमभक्त सविधिपूर्ण होता है तब कृतमाल देव का आसन चलायमान होता है, उसी प्रकार—यावत्—वैताढ्यगिरि कुमार के वर्णन की तरह समझना चाहिए। लेकिन यहाँ इतना विशेष है कि प्रीतिदान हस्तिरत्न का तिलक नामक चौदहवाँ आभरण भांड और अलंकार, कटक—यावत्—आभरणों को लेता है, लेकर वह उत्कृष्ट गति—यावत्—सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदा करता है—यावत्—भोजन मण्डप में आता है। उसी प्रकार महामहोत्सव करता है, कृतमाल देव की आज्ञा वापस सौंपता है।

भरहस्स सुसेणसेणावइणा ससेणं चम्मरयणनावाभूएण सिंधुनईसमुत्तीरणं—

भरत के सुसेन सेनापति द्वारा ससैन्य नौकाभूत चर्मरत्न द्वारा सिंधुनदी समुत्तीरण—

५२१. तए णं से भरहे राया कयमालस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिया! सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुडं ससिंधु-सागर-गिरि-मेरागं, सम-विसम-णिक्खुडाणि य ओअवेहि, ओअवेत्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि, अग्गाइं० पडिच्छित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

५२१. कृतमाल देव का महामहिमावाला अष्टाह्निक उत्सव सम्पन्न होने के अनन्तर भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और सिंधुमहानदी के पश्चिम दिशावर्ती निष्कुट को—कोने को—सिंधु सागर गिरि की मर्यादा—सीमा—तक के जो सम विषम निष्कुट प्रदेश हैं, उसको अधीन करो। अधीन करके अग्र और उत्तम रत्नों को लाओ, अग्र आदि रत्नों को लाकर मेरे पास आकर आदेश पूर्ति होने की मुझे सूचना दो।

५२२. तए णं से सेणावई बलस्स णेया भरहे वासंमि विस्सुय-जसे महाबलपरक्कमे महप्पा ओयंसी तेय-लक्खणजुत्ते मिलक्खु-भासा-विसारए चित्तचारुभासी भरहे वासंमि णिक्खुडाणं णिण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाण य वियाणए अत्थ-सत्थ-कुसले रयणं सेणावई सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए-जाव-करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हय-गय-रह-पवर-जाव-चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह" त्ति

५२२. इसके बाद वह सेना का अधिपति, बल का नेता, भरतवर्ष में विश्रुत यशवाला, महान बल एवं पराक्रम वाला महात्मा, ओजस्वी, तेजस्—लक्षणों से युक्त, म्लेच्छ भाषा विशारद, मनोरमणीय भाषी, भरतवर्ष के निष्कुट प्रदेशों, नीचारणों और दुर्गम और दुष्प्रवेश स्थानों का जानकार, अर्थ-शास्त्र में कुशल, सेनापति रत्न सुसेन सेनापति भरत राजा की इस बात को सुनकर हृष्ट तुष्ट आनंदित हुआ—यावत्—जिनमें दस नख इकट्ठे हो जायें इस तरह करतलों को जोड़ मस्तक पर लगाकर अंजलि करके बोला—'हे स्वामिन्! तथास्तु—जैसी आज्ञा दी वैसा ही होगा, विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार करता है, स्वीकार करके भरत राजा के पास से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ अपना आवास था, वहाँ आता है, आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सुसज्जित करो, अश्व, गज, रथ, उत्तम योद्धाओं से युक्त—यावत्—चतुरंगिणी सेना को तैयार करो', ऐसा कहकर वह

करेत्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअ-मंगलपायच्छित्ते सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए, पिणद्ध-गेविज्ज-बद्ध-आविद्ध-विमल-वर-चिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे अणेग-गणणायग-दंडणायग-जाव-सद्धिं संपरिवुडे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मंगलजय-जय-सद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढे।

स्नानगृह था वहाँ आया, आकर स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित करके सन्नद्ध हुआ अर्थात् युद्ध में जाने के लिए तैयार हुआ, शरीर रक्षा के लिए कवच धारण किया, ग्रीवा की रक्षा के लिए ग्रीवा पर ग्रीवाबंद पहना, विमल और उत्तम चिह्न पट्ट शरीर पर सजा लिये, प्रहार करने के साधन ले लिये तथा अनेक गणनायकों, दण्डनायकों आदि से परिवृत होकर, कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र को धारण करके, लोगों द्वारा मंगल सूचक जय-जय शब्द किये जा रहे हैं, स्नानगृह से निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (बैठक) थी, जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ़ हुआ।

तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महया-भड-चडगर-पहगर-वंदपरिक्खित्ते, महया उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकल-सद्देणं, समुद्दरव-भूयं पिव करेमाणे करेमाणे सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्व-बलेणं-जाव-निग्घोसनाइएणं जेणेव सिंधू महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चम्मरयणं परामुसइ।

तत्पश्चात् वह सुसेन सेनापति, जो हाथी पर बैठा हुआ और सिर पर कोरंट पुष्पमालाओं वाला छत्र लगाये हुए अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धाओं वाली चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त, बड़े-बड़े सुभटों के समूह से घिरा हुआ था, महान गगनभेदी सिंहनाद आदि अनेक प्रकार के कोलाहलों द्वारा समुद्र गर्जना जैसा वातावरण सर्जित करता हुआ सर्व प्रकार की ऋद्धि, द्युति, समस्त बल के साथ—यावत्—निर्घोष नादपूर्वक जहाँ सिन्धु महानदी थी, वहाँ आया, आकर चर्मरत्न को हाथों में लेता है।

तए णं तं सिरिवच्छसरिसरूवं मुत्त-तारद्ध-चंद-चित्तं अयल-मकंपं अभेज्जकवयं जंतं सलिलासु सागरेसु य उत्तरणं दिव्वं चम्मरयणं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वावियाइं, वासं णाऊण चक्कवट्टिणा परामुट्ठे दिव्वे चम्मरयणे दुवालस जोयणाइं तिरियं पवित्थरइ, तत्थ साहियाइं।

उस चर्मरत्न का आकार श्रीवत्स के आकार जैसा है और उसमें मोती जैसे, आधे तारे जैसे और चन्द्र जैसे चित्र बने हुए हैं तथा जो अचल एवं अकंप बन जाता है, अभेद्य कवच है ऐसा यंत्ररूप बन जाता है जिससे नदियों और समुद्रों को पार करने में सहायभूत—समर्थ बन जाता है, ऐसे इस दिव्य चर्मरत्न पर सत्तर धान्य उग सकते हैं, जिनमें शण सत्तरवाँ धान्य है जो बोने पर एक ही दिन में उग जाता है, वर्षा की आशंका होने पर चक्रवर्ती द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह दिव्य चर्मरत्न तिरछा कुछ अधिक बारह योजन लम्बा फैल जाता है।

तए णं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव णावाभूए जाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् सुसेन सेनापति के द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह दिव्य चर्मरत्न शीघ्र ही नाव के जैसा बन गया।

तए णं से सुसेणे सेणावई सखंधावार-बलवाहणे णावाभूयं चम्मरयणं दुरुहइ, दुरुहित्ता सिंधु महाणइं विमलजलतुंगवीचिं णावाभूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे समुत्तिण्णे।

तब वह सुसेन सेनापति नाव के समान बने हुए इस दिव्य चर्मरत्न पर अपने स्कन्धावार, बल, वाहन सहित चढ़ जाता है, चढ़कर निर्मल पानी की जिसमें तरंगें उछल रही हैं ऐसी सिंधु महानदी को इस नौकारूप बने हुए चर्मरत्न के द्वारा बल वाहन और सेना के साथ पार करता है।

सुसेणसेणावइणा सिंहलाइविजयो—

५२३. तओ महाणइमुत्तरित्तु सिंधुं अप्पडिहयसासणे सेणावई अ कहिंचि गामागर-णगर-पव्वयाणि खेड-कब्बड-मडंबाणि पट्टणाणि सिंहलए बब्बरए य सव्वं च अंगलोयं बलायालोयं च

सुसेन सेनापति द्वारा सिंहलादि विजय—

५२३. महानदी को पार करके सिंधु प्रदेश पर अप्रतिहत शासन स्थापित करने के पश्चात् कितने ही ग्रामों, आगारों, नगरों, पर्वतों के ऊपर बसे खेटों, कर्बरों, मण्डवों और पट्टनों पर तथा सिंहल देश, बर्बर देश एवं समस्त अंगलोक, बलाया लोक और

परम-रम्मं जवणदीवं च पवर-मणि-रयण-कणग-कोसागार-समिद्धं आरवए रोमए य अलसंड-विसयवासी य पिक्खुरे कालमुहे जोणए य उत्तरवेयड्ढ-संसियाओ य मेच्छजाई बहुप्पगारा दाहिणअवरेण-जाव-सिंधुसागरंतो त्ति सव्वपवरकच्छं च ओअवेऊण पडिणियत्तो बहुसमरमणिज्जे य भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे,

उत्तम मणि, रत्न सुवर्ण के कोष्टागारों से समृद्ध परम रमणीय यवनद्वीप को तथा अरब, रोम और अलसण्ड देशवासी, पिक्खुर देश के लोगों को तथा काले रंग वाले लोगों को, जोण (यवन) लोगों को, तथा उत्तम वैताढ्य पर्वत के किनारे बसी हुई समस्त म्लेच्छ जातियों आदि सभी प्रकार की प्रजाओं को तथा दक्षिण पश्चिम में—नैऋत्यकोण में—यावत्—सिंधु सागर के अन्तर-वर्ती द्वीपों की प्रजाओं को और समस्त प्रवर कच्छ को अधीन करके सुसेन सेनापति वापस लौटा और बहुत ही समतल, रमणीय कच्छ प्रदेश में आकर विश्राम करने के लिए बैठा है।

ताहे ते जणवयाण णगराण पट्टणाण य जे य तहिं सामिया पभूया आगरवई य मंडलवई य पट्टणवई य सव्वे घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि य भूसणाणि रयणाणि य वत्थाणि य महरिहाणि अण्णं च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छियव्वं एयं सेणावइस्स उवणेंति मत्थय-कयंजलि-पुडा, पुणरवि काऊण अंजलिं मत्थयंमि पणया तुब्भे अम्हेऽत्थ सामिया देवयं व सरणागया मो, तुब्भं विसयवासिणो त्ति विजयं जंपमाणा सेणावइणा जहारिहं ठविय सक्कारिय विसज्जिया णियत्ता सगाणि णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा।

उस समय उन-उन देशों, नगरों और पट्टनों के जो-जो स्वामी थे, वे सब तथा आकरपति, मण्डलपति और पट्टनपति थे, वे सब भेंटों को लेकर, आभरणों को लेकर, भूषणों को लेकर, रत्नों को लेकर, मूल्यवान वस्त्रों को लेकर तथा और दूसरी-दूसरी उत्तम वस्तुओं एवं राजाओं को देने योग्य पदार्थों को लेकर, राजाओं को अभीष्ट चीजों को लेकर सेनापति के सामने उपहार स्वरूप उपस्थित करते हैं और बारम्बार मस्तक पर अंजलि करके तथा नतमस्तक होकर इस प्रकार बोले—

आप हमारे स्वामी हैं और जैसे देव की शरण लेते हैं, वैसे ही आपकी शरण में आये हैं, हम आपके देशवासी हैं अर्थात् प्रजा हैं और सेनापति की जय-जयकार करने लगे तब सुसेन सेनापति के योग्यतानुसार उनको उनकी राजगादी स्थापित कर, सत्कार कर, ससम्मान विदा किया और वे सब अपने नगरों, पट्टनों आदि को लौट गये।

पच्चागयसुसेणसेणावइकयं भरहसमक्खं पाहुडऽप्पणं—

प्रत्यागत सुसेन सेनापतिकृत भरत के समक्ष प्राभृत (उपहार) अर्पण—

५२४. ताहे सेणावई सविणओ घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य पुणरवि तं सिंधुणामधेज्जं उत्तिण्णे अणहसासण-बले, तहेव भरहस्स रण्णो णिवेएइ, णिवेइत्ता य अप्पिणित्ता य पाहुडाइं सक्कारियसम्माणिए सहरिसे विसज्जिए सगं पडमंडवमइगए।

५२४. तत्पश्चात् अप्रतिहत शासन एवं बल वाले सुसेन सेनापति ने सविनय प्राप्त उपहारों, आभरणों, आभूषणों, रत्नों आदि को लेकर पुनः उस सिंधु नामक स्थान को पार किया, यह सब वर्णन पूर्वानुसार समझना, आकर अपना सारा वृत्तान्त भरत राजा से निवेदन किया, निवेदन करके प्राप्त सब उपहारों को अर्पित किया, सत्कारित, सम्मानित एवं सहर्ष विदा होकर वह अपने पटमण्डप में आया।

तए णं सुसेणे सेणावई ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते जिमियभुत्तुत्तरागए समाणे -जाव- सरस-गोसीस-चंदणुक्खित्त-गायसरीरे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे उवणच्चिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालि(अभि)ज्जमाणे उवलालि(लभि)ज्जमाणे महया हय-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-

तत्पश्चात् सुसेन सेनापति ने स्नान किया, बलिकर्म कौतुक, मंगल तथा प्रायश्चित्त करके भोजन किया—यावत्—उसके शरीर पर सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया ऐसा वह सुसेन सेनापति उत्तम प्रासाद में गया, और बज रहे हुए मृदंगों के साथ उत्तम तरुणियों द्वारा किये जा रहे बत्तीस प्रकार के नाटकों को देखता हुआ, संगीत को सुनता हुआ तथा जोर-जोर से बजाये जा रहे नाट्य, गीत, वाद्य, तंत्री तल-ताल,

तुडिय-घणमुइंग-पडुप्पवाइय-रवेणं इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरइ।

तूर्य, मृदंग आदि की ध्वनियों के साथ इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ आनन्द करता है।

सुसेणसेणावइकयं तिमिसगुहादारुग्घाडणं—

सुसेन सेनापति कृत तिमिस्र गुफा द्वारोद्‌घाटन—

५२५. तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

गच्छ णं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि विहाडित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि त्ति।

तए णं से सुसेणे सेणावई भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए - जाव - करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु - जाव - पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भसंथारगं संथरइ - जाव कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी - जाव - अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे धूवपुप्फगंधमल्लहत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् अन्य किसी एक दिन भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही जाओ और तिमिस्रगुफा की दक्षिण बाजू के द्वार के किवाड़ों को उघाड़ दो, उघाड़कर मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् द्वार खोलने की सूचना दो।

तदनन्तर भरत राजा के इस आदेश को सुनकर वह सुसेन सेनापति हृष्ट तुष्ट आनन्दित हुआ—यावत्—दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्तकर और मस्तक पर अंजलि करके—यावत्—स्वीकार करता है, स्वीकार करके भरत राजा के पास से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ अपना आवासगृह था, जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर दर्भ के संथारे (आसन) पर बैठता है—यावत्—कृतमाल देव के निमित्त अष्टमभक्त तप करता है, पौषधशाला में पौषधव्रती की तरह ब्रह्मचर्य धारण कर—यावत्—अष्टमभक्त तप के पूर्ण रूप से परिणत होने पर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया, आकर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुकमंगल प्रायश्चित करके शुद्ध स्वच्छ मंगलरूप वस्त्र पहने, अल्प किन्तु महामूल्यवान आभरणों से शरीर को अलंकृत किया तथा हाथ में धूप, पुष्प, सुगंधी मालाओं को लेकर स्नानगृह से बाहर निकला, निकलकर जहाँ तिमिस्रगुफा के दक्षिण दिग्वर्ती द्वार थे उस ओर गमन कर दिया।

तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय - जाव - सत्थवाहप्पभियओ अप्पेगइया उप्पलहत्थगया - जाव - सुसेणं सेणावइं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति।

तब उस सुसेन सेनापति के बहुत से राजा, ईश्वर, कोतवाल, मांडलिक—यावत्—सार्थवाह प्रभृति जिनमें से कितने ही हाथों में कमल लिये हुए थे—यावत्—सुसेन सेनापति के पीछे-पीछे अनुगमन करते हैं।

तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहुईओ खुज्जाओ चिलाइयाओ - जाव - इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाओ णिउणकुसलाओ विणीयाओ, अप्पेगइयाओ कलसहत्थगयाओ - जाव - अणुगच्छंती।

तत्पश्चात् उस सुसेन सेनापति की बहुत सी कुब्जा, चिलात देश आदि की दासियाँ - यावत्—इंगित, चिन्तित, इच्छित बात को समझने में निपुण, कुशल, विनीत कुछ एक के हाथों में कलश थे—यावत्—पीछे-पीछे चलती हैं।

५२६. तए णं से सुसेणे सेणावई सव्विड्ढीए सव्वजुईए - जाव - णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ करित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ,

५२६. तत्पश्चात् समस्त ऋद्धि, समस्त द्युति—यावत्—वाद्यों के निर्घोष नादों के साथ वह सुसेन सेनापति जहाँ तिमिस्र गुफा के दक्षिण भाग का द्वार है, वहाँ आता है, वहाँ जाकर किवाड़ों को देखते ही प्रणाम करता है, प्रणाम करके लोमहस्तक—पींछी हाथ में लेता है, लोमहस्तक को हाथ में लेकर तिमिस्र गुफा के दक्षिण दिग्वर्ती द्वार के किवाड़ों को प्रमार्जित करता है, प्रमार्जित कर दिव्य जलधारा के द्वारा उनका अभिषेक करता है,

अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितले चच्चए दलइ, दलित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं अ मल्लेहिं अ अच्चिणेइ, अच्चिणित्ता पुप्फारुहणं -जाव- वत्थारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविपुलवट्ट - जाव - करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ,

अभिषेक करके सरस गोशीर्षचन्दन के पाँचों अंगुलियों के द्वारा थापे लगाता है, थापे लगाकर उत्तम श्रेष्ठ गंध और मालाओं द्वारा अर्चना-पूजा करता है, पूजा करके पुष्प चढ़ाता है—यावत्—वस्त्र चढ़ाता है, वस्त्र आदि अर्पित करके आसिंचन, उत्सिंचन, विपुलवट्ट—यावत्—करता है, ऐसा करके स्वच्छ स्निग्ध, रजत सदृश अक्षरस तंदुलों द्वारा तिमिस्रगुफा के दक्षिण भाग के द्वार के किवाड़ों के सामने आठ-आठ मंगलों का आलेखन करता है,

तं जहा—सोत्थिय सिरिवच्छ - जाव - कयग्गह-गहिअकर-यलपब्भट्ठचंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं -जाव- धूवं दलयइ, दलइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता करयल - जाव - मत्थए अंजलिं कट्टु कवाडाणं पणामं करेइ, करित्ता दंडरयणं परामुसइ, तए णं तं दंडरयणं पंचलइयं वइरसारमइयं विणासणं सव्वसत्तुसेण्णाणं खंधावारे णरवइस्स गड्ड-दरि-विसम-पब्भार-गिरिवर-पवायाणं समीकरणं संतिकरं सुभकरं हियकरं रण्णो हिय-इच्छिय-मणोरह-पूरगं दिव्वमप्पडिहयं दंडरयणं गहाय सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे दंडरयणेणं महया महया सद्देणं तिक्खुत्तो आउडेइ ।

यथा—स्वस्तिक, श्रीवत्स—यावत्—हाथ में पकड़ा हुआ करतल प्रमृष्ट चन्द्र के जैसा प्रभाव वाला तथा वज्र और वैडूर्यमणि से निर्मित जिसका हाथा है, ऐसा धूपदान लेकर—यावत्—धूप खेता है धूप खेकर बाँया घुटना ऊँचा कर और दाहिना घुटना नीचा कर दोनों हाथ जोड़—यावत्—मस्तक पर अंजलि करके किवाड़ों को प्रणाम करता है, प्रणाम करके दण्डरत्न को हाथ में लेता है, तत्पश्चात् पांच लता वाले, वज्र के सारभाग से निर्मित होने के कारण विशेष मजबूत समस्त शत्रुसेना का विनाशक राजा का स्कन्धावार करना हो तो वहाँ जमीन पर यदि कहीं खड्डे हों, गुफायें हों, विषम भूमि हो, बड़े-बड़े पर्वत हों तो उन सबको दूर करके समतल मैदान बनाने वाला है, शांतिकर है, शुभ-कर है, हितकर है, राजा का हितैषी है, मनोरथ पूर्ण करने वाला है, दिव्य है, अप्रतिहत है ऐसे उस दण्डरत्न को हाथ में लेकर सात-आठ डग पीछे हटता है, हटकर तिमिस्र गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों को उस दण्डरत्न के द्वारा बड़ी जोर की आवाज करके तीन बार ताड़ित करता है ।

तए णं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणावइणा दंडरयणेणं महया महया सद्देणं तिक्खुत्तो आउडिया समाणा महया महया सद्देणं कोंचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था ।

तब तिमिस्र गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ सुसेन सेनापति द्वारा दण्डरत्न द्वारा जोर-जोर की आवाज के साथ तीन बार ताड़ित किये जाने पर क्रौंचपक्षी की आवाज जैसी आवाज करते हुए बड़े जोर की आवाज के साथ अपने-अपने स्थान पर सरक जाते हैं अर्थात् अपना स्थान छोड़ देते हैं ।

तए णं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ, विहाडित्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता - जाव - भरहं रायं करयलपरिग्गहियं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी —

तत्पश्चात् वह सुषेण सेनापति तिमिस्र गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों को विघटित कर देता है—उघाड़ देता है, उघाड़ कर जहाँ भरत राजा था, वहाँ आता है, आकर—यावत्—दोनों हाथ जोड़ कर विजय शब्दों से भरत राजा को बधाता है, बधाकर इस प्रकार कहता है—

विहाडिया णं देवाणुप्पिया ! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा, एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमि, पियं भे भवउ ।

हे देवानुप्रिय ! तिमिस्र गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों को उघाड़ दिया है, यह समाचार आपको प्रिय है, आपको निवेदित करता हूँ, यह समाचार आपको प्रिय हो ।

मणिरयणसहियस्स भरहस्स तिमिसगुहादारे पयाणं—

५२७. तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए-जाव-हियए सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हय-गय-रह-पवर तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवरं णरवई दुरूढे ।

५२८. तए णं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ तोतं चउरंगुलप्पमाणमित्तं च अणग्घं तंसियं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणिरयणपइसमं वेरुलियं सव्वभूयकंतं जेण य मुद्धागएणं दुक्खं ण किंचि - जाव - हवइ आरोग्गे य सव्वकालं तेरिच्छियदेव-माणुसकया य उवसग्गा सव्वे ण करेंति तस्स दुक्खं, संगामेऽवि असत्थवज्झो होइ णरो मणिवरं धरेंतो ठियजोव्वण-केस-अवट्ठिय-णहो हवइ य सव्वभयविप्पमुक्को ।

तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुम्भीए णिक्खिवइ ।

तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे - जाव - अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती मणिरयणकउज्जोए चक्करयणदेसियमग्गे अणेगरायसहस्साणुयायमग्गे महया उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणे करेमाणे जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससि व्व मेहंधयारणिवहं ।

मणिरत्नसहित भरत का तिमिस्र गुफा द्वार की ओर प्रयाण—

५२७. तत्पश्चात् सुसेन सेनापति द्वारा निवेदित समाचार को सुनकर और समझकर भरत राजा हृष्ट तुष्ट आनंदित हुआ—यावत्—हर्षित होकर सुसेन सेनापति का सत्कार सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाओ—तैयार करो, अश्व, हाथी, रथ, प्रवर योद्धाओं की चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित करो आदि वर्णन पूर्व की तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिए—यावत्—अंजनगिरिकूट सदृश श्रेष्ठ हाथी पर नरपति आरूढ़ हुआ ।

५२८. तत्पश्चात् भरत राजा मणिरत्न को हाथ में लेता है, वह मणिरत्न तोत—अंकुश के समान है, चार अंगुल लम्बा है और अनर्घ—अमूल्य है, तिरछा छह कोने वाला है, जिसकी द्युति अनुपम है, दिव्य है, मणिरत्नों के प्रति समान है अर्थात् सर्व प्रकार के मणिरत्नों में प्रधान है, वैडूर्यमणि की आभा जैसी आभावाला है, सभी प्राणियों के कान्त—प्रिय है और मस्तक पर धारण करने पर किसी भी प्रकार के दुःख की सम्भावना नहीं रहती अर्थात् दुःख फटक ही नहीं सकता—यावत्—सदैव आरोग्य ही रहता है, इस मणिरत्न को धारण करने वाले को तिर्यंचकृत, देवकृत और मनुष्यकृत उपसर्ग किंचिन्मात्र भी दुःखी नहीं कर सकते हैं, संग्राम में निःशस्त्र होने पर भी इस मणिरत्न को धारण करने वाले मनुष्य को कोई मार नहीं सकता, घायल नहीं कर सकता, मणिरत्न को धारण करने वाला मनुष्य सदा युवा रहता है, उसके केश व नख बढ़ते नहीं हैं, किन्तु जितने हों उतने ही रहते हैं और वह समस्त भयों से मुक्त रहता है ।

उस मणिरत्न को लेकर वह नरपति हस्तिरत्न के कुम्भ स्थल के दक्षिणी भाग में रखता है ।

तत्पश्चात् वह भरताधिपति नरेन्द्र जिसका वक्षस्थल रति उत्पन्न करने वाले हार से शोभित हो रहा है—यावत्—अमरपति—इन्द्र के समान ऋद्धि के द्वारा प्रथित कीर्ति वाला होकर, जिस मार्ग में मणिरत्न द्वारा प्रकाश किया जा रहा है और चक्ररत्न द्वारा जिसको मार्ग बतलाया जा रहा है और जिसके पीछे-पीछे अनेक हजारों राजा चल रहे हैं, महान् उत्कृष्ट सिंहनादों एवं कलकल ध्वनि द्वारा गगन मण्डल को समुद्र की ध्वनि के समान करता हुआ जहाँ तिमिस्र गुफा के दक्षिणी भाग द्वार थे, वहाँ आता है, आकर मेघ समूह से अंधकारमय बने हुए आकाश में जैसे शशि—चन्द्र प्रवेश करता है, वैसे ही तिमिस्र गुफा के द्वार द्वारा उस स्थान में प्रवेश करता है ।

कागणिरयण-सहियस्स भरहस्स तिमिसगुहापवेसो—

५२९. तए णं से भरहे राया छत्तलं दुवालसंसियं अट्ठकण्णियं अहिगरणिसंठियं अट्ठसोवण्णियं कागणिरयणं परामुसइ त्ति ।[1] तए णं तं चउरंगुलप्पमाणमित्तं अट्ठसुवण्णं च विसहरणं अउलं चउरंससंठाणसंठियं समतलं माणुम्माणजोगा जओ लोगे चरंति सव्वजणपण्णवगा । ण इव चंदो ण इव तत्थ सूरे ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं णासेंति अंधयारे । जत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोयणाइं तस्स लेसाओ विवड्ढंति तिमिर-णिगर-पडिसेहियाओ । रत्तिं च सव्वकालं खंधावारे करेइ आलोयं दिवसभूयं जस्स पभावेण चक्कवट्टी तिमिसगुहं अईइ सेण्णसहिए अभिजेत्तुं बिइयमद्धभरहं रायवरे कागणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरत्थिमिल्ल-पच्चत्थिमिल्लेसुं कडएसुं जोयणंतरियाइं पंचधणु-सयविक्खंभाइं जोयणुज्जोयकराइं चक्कणेमीसंठियाइं चंदमंडल-पडिणिकासाइं एगूणपण्णं मंडलाइं आलिहमाणे आलिहमाणे अणुप्पविसइ ।

तए णं सा तिमिसगुहा भरहेणं रण्णा तेहिं जोयणंतरिएहिं-जाव- जोयणुज्जोयकरेहिं एगूणपण्णाए मंडलेहिं आलिहिज्जमाणेहिं आलिहिज्जमाणेहिं खिप्पामेव आलोगभूया उज्जोयभूया दिवसभूया जाया यावि होत्था ।

काकणीरत्न सहित भरत का तिमिस्र गुफा प्रवेश—

५२९. तत्पश्चात् वह भरत राजा छह तल वाला, बारह कोने वाला, आठ कर्णिकावाला, एरण को पाट वाला, आठ सुवर्ण प्रमाण वजन वाला काकणीरत्न को हाथ में लेता है। वह काकणी-रत्न प्रमाण में मात्र चार अंगुल है, आठ सुवर्ण जितने भार वाला है, विष का हरण करने वाला है, दूसरा रत्न जिनकी तुलना नहीं कर सकता, आकार में समचतुरस्रसंस्थान वाला है, समतल है, मानोन्मानपेत है अर्थात् इस रत्न को ध्यान में रखकर माप और उन्मान यानी दीवाल आदि बनाने के माप का व्यव-हार लोक में प्रचलित है जिससे सर्व जन प्रज्ञापक है, जैसे चन्द्र ही न हो, सूर्य ही न हो, अग्नि ही न हो, वैसे ही वह मणि अंधकार का नाश कर देता है। वह काकणीरत्न दिव्य भाव युक्त होने से उसकी लेश्यायें—किरणें बारह योजन तक व्याप्त हो जाती हैं और ये किरणें घनांधकार को दूर करने वाली हैं। रात्रि में समस्त स्कंधावार को आलोकमय कर देती है जिससे वह ऐसा हो जाता है कि मानो दिन ही न हो, जिसके प्रभाव प्रकाश से चक्रवर्ती अर्धभरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी सेना के साथ तिमिस्र गुफा में प्रवेश करता है तथा वह उत्तम राजा काकणीरत्न को लेकर तिमिस्र गुफा के पूर्व और पश्चिम के भाग में आगत कटकों में एक-एक योजन के अन्तर से पांच सौ धनुष चौड़े और एक योजन तक प्रकाश फैलाने वाले चक्र की नेमि के आकार के तथा चन्द्रमण्डल के जैसे प्रकाश फैलाने वाले उनचास माण्डलाओं का आलेख करता हुआ प्रवेश करता है।

तत्पश्चात् भरत राजा द्वारा एक-एक योजन के अन्तर से प्रकाश की व्यवस्था किये जाने के लिये उनचास मांडलों का आलेखन किये जाने पर वह तिमिस्र गुफा शीघ्र ही तत्काल एक दम प्रकाशमय, उद्योतमय होने से दिन जैसी बन गई।

तिमिसगुहामज्झदेसे उम्मग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ—

५३०. तीसे णं तिमिसगुहाए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणईओ पण्णत्ताओ, जाओ णं तिमिस-गुहाए पुरत्थिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ, पवूढाओ समाणीओ पच्च-त्थिमेणं सिंधुं महाणइं समप्पेंति ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ ?

तिमिस्र गुफा के मध्य भाग में उन्मग्न निमग्नजला महानदियां—

५३०. उस तिमिस्र गुफा के ठीक मध्य भाग में उन्मग्नजला और निमग्नजला नामक दो महा नदियां हैं, जो तिमिस्र गुफा के पूर्व के भित्तिप्रदेश से प्रवाहित होती हुई पश्चिम में सिंधु महानदी में आकर मिल जाती हैं।

हे भगवन् ! उन महानदियों को उन्मग्नजला और निमग्न-जला क्यों कहा जाता है ?

"गोयमा ! जण्णं उम्मग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा आसे वा हत्थि वा रहे वा जोहे वा मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं उम्मग्गजला महाणई तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय एगंते थलंसि एडेइ।

जण्णं णिमग्गजलाए महाणईए तणं वा, पत्तं वा, कट्ठं वा, सक्करं वा-जाव-मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं णिमग्गजला महाणई तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय अंतोजलंसि णिमज्जावेइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ।"

हे गौतम ! उन्मग्नजला महानदी में जो कोई तृण अथवा पत्र, अथवा काष्ठ, अथवा कंकर, अथवा अश्व, अथवा हाथी, अथवा रथ, अथवा योद्धा, अथवा मनुष्य डाला जाये या गिर जाये तो उन्मग्नजला महानदी तीन बार घुमा-घुमाकर दूर एकान्त में फेंक देती है।

यदि निमग्नजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ट, कंकर, अश्व, हाथी, रथ, योद्धा, मनुष्य गिर जाये तो निमग्नजला महानदी तीन बार घुमा-घुमाकर अपने पानी में निमग्न कर देती है इसलिये हे गौतम ! यह कहा जाता है कि ये दोनों उन्मग्नजला और निमग्नजला महानदियां हैं।

उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महानईसु वड्ढइरयणेण सुहसंकम-निम्माणंससेणस्स भरहस्स उत्तरणं च—

५३१. तए णं से भरहे राया चक्करयण-देसियमग्गे अणेगराय महया उक्किट्ठ-सीहणाय-जाव-करेमाणे करेमाणे सिंधूए महाणईए पुरित्थिमिल्लेणं कूलेणं जेणेव उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महाणईसु अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठे अयलमकंपे अभेज्जकवए सालंबणबाहाए सव्वरयणामए सुहसंकमे करेहि, करेत्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि।

तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए-जाव-विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता खिप्पामेव उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महाणईसु अणेग खंभ-सय-सण्णिविट्ठे-जाव-सुहसंकमे करेइ, करित्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव-एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

तए णं से भरहे राया सखंधावारबले उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ तेहिं अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठेहिं-जाव-सुहसंकमेहिं उत्तरइ।

उन्मग्न निमग्नजला महानदियों पर वर्धकीरत्न द्वारा सुख-संक्रम निर्माण और ससैन्य भरत का उत्तरण—

५३१. तत्पश्चात् चक्ररत्न जिसका मार्ग प्रदर्शित कर रहा है ऐसा वह भरत राजा अनेक राजाओं आदि के साथ उत्कृष्ट सिंहनाद द्वारा—यावत्—करता हुआ सिंधु महानदी के पूर्वी किनारे से होता हुआ जहाँ उन्मग्नजला महानदी है, वहाँ आया, आकर वर्धकीरत्न को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! उन्मग्न निमग्नजला महानदियों पर सैकड़ों खंभों से सन्निविष्ट अचल, अकंप जिसका कवच अभेद्य हो, दोनों बाजुओं आलम्बन व सुरक्षा के लिए बाड़ लगाई गई हो, सबका सब रत्नों का बना हुआ सुसंक्रम (पुल) बनाओ, बनाकर मेरे आदेश पूर्ति की शीघ्र ही मुझे सूचना दो।

तत्पश्चात् वह वर्धकीरत्न भरत राजा के इस आदेश को सुनकर हृष्ट तुष्ट आनन्दित हुआ—यावत्—विनयपूर्वक आदेश को स्वीकार किया, स्वीकार करके शीघ्र ही उन्मग्न निमग्न-जला महानदियों पर सैकड़ों खम्भों से संनिविष्ट—यावत्—सुसंक्रम (पुल) बनाता है, बनाकर जहाँ भरत राजा था वहाँ आया, आकर—यावत्—आदेश पूर्ति होने की सूचना देता है।

तत्पश्चात् भरत राजा स्कन्धावार एवं सेना सहित सैकड़ों खम्भों के ऊपर बनाये गये—यावत्—सुसंक्रमों (पुलों) द्वारा उन्मग्नजला और निमग्नजला महानदियों को पार करता है।

तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडेहिं सयमेव मग्गदाणं—

५३२ तए णं तीसे तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया महया कोंचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था।

तिमिस्र गुफा के उत्तरी द्वार के किवाड़ों द्वारा स्वयमेव मार्गदान—

५३२. इसके बाद उस तिमिस्र गुफा के उत्तर बाजू के द्वार के किवाड़ स्वयमेव क्रौंचपक्षी की आवाज जैसी आवाज करते हुए अपने-अपने स्थान को छोड़ देते हैं अर्थात् द्वार खुल जाता है।

उत्तरड्ढभरहे सुसेणसेणावइकओ आवाडचिलाय-पराजओ—

५३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरड्ढभरहे वासे बहवे आवाडा

उत्तरार्ध भरत में सुसेन सेनापति कृत आवाड़ चिलात पराजय—

५३३. उस काल उस समय में उत्तरार्ध भरतवर्ष बहुत से आवाड़ा

णामं चिलाया परिवसंति। अड्ढा दित्ता वित्ता वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णा बहुधण-बहुजायरूवरयया आओग-पओगसंपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा, बहुदासी-दास-गोमहिस-गवेलग-प्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया सूरा वीरा विक्कंता वित्थिण्ण-विउल-बलवाहणा बहूसु समर-संपराएसु लद्धलक्खा यावि होत्था।

चिलात (आवाड़ा जाति के भील अथवा आवारा—इधर-उधर परिभ्रमण करने वाले भील) बसते थे। जो धनाढ्य, अभिमानी, अपने आपको श्रेष्ठ, विख्यात मानते थे, जिनके पास विशाल भवन थे, अनेक शयन थे, आसन थे, यान-रथ, वाहन थे तथा बहुत सा धन था, बहुत सा सोना था, जवाहरात था, और धन को बढ़ाने के लिए धीरधार करते थे, व्यापार में धन लगाते थे, उनके पास पानी और अन्न के बड़े-बड़े भण्डार थे तथा दूसरे लोगों को खिलाते थे जिससे उनके भवनों के आस पास जूठन बहुत अधिक पड़ा रहता था, तथा बहुत सी दासी दास, गायें, बैल-भैंसें, भेड़ें आदि थीं, ये लोग इतने बलशाली थे कि उनको बहुत से लोग मिलकर भी पराजित नहीं कर सकते थे, शूरवीर पराक्रमी थे, इनके पास विस्तीर्ण और विपुल सेना तथा वाहन थे और बड़े-बड़े समरांगणों में अपना लक्ष्य प्राप्त किया था अर्थात् बड़े-बड़े युद्धों में विजय प्राप्त की थी।

५३४. तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अण्णया कयाई विसयंसि बहूइं उप्पाइय-सयाइं पाउब्भवित्था, तंजहा-अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुया, अकाले पायवा पुप्फंति, अभिक्खणं अभिक्खणं आगासे देवयाओ णच्चंति।

तए णं ते आवाडचिलाया विसयंसि बहूइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं विसयंसि बहूइं उप्पाइय-सयाइं पाउब्भूयाइं तंजहा—अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुया, अकाले पायवा पुप्फंति, अभिक्खणं अभिक्खणं आगासे देवयाओ णच्चंति, तं ण णज्जइ णं देवाणुप्पिया! अम्हं विसयस्स के मन्ने उवद्दवे भविस्सइ" त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा चिंतासोगसागरं पविट्ठा करयल-पल्हत्थ-मुहा अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठिया झियायंति।

५३४. तत्पश्चात् उन आवाड़ चिलातों के देश में अन्य किसी एक समय सैकड़ों उत्पात उत्पन्न हुए, यथा—अकाल में मेघ-गर्जना, अकाल में बिजली चमकना, अकाल में वृक्षों में फूलों का पैदा होना, बार-बार आकाश में देवताओं का नाचना।

तब वे आवाड़ चिलात अपने देश में सैकड़ों उत्पातों को प्रादुर्भूत होता हुआ देखते हैं, उत्पातों को देखकर एक दूसरे को बुलाते हैं, बुलाकर आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं—

'हे देवानुप्रियों! मालूम होता है कि हमारे देश में सैकड़ों उत्पात उत्पन्न हो गये हैं, यथा—असमय में मेघगर्जना होना, असमय में बिजली का चमकना, असमय में वृक्षों में फूलों का लगना, बार-बार आकाश में देवताओं का नाचना, सो न मालूम हमारे देश में कौन सा उपद्रव होने वाला है, ऐसा सोचकर जिनकी मानसिक शक्ति क्षीण हो गई, वे चिन्ता, फिक्र व शोक सागर में डूब गये और शोकातुर होकर हथेली पर मुख को टेककर आर्तध्यान में डूब गये और जमीन में दृष्टि गड़ाकर चिन्ता मग्न हो गये।

५३५. तए णं से भरहे राया चक्करयण-देसियमग्गे-जाव-समुद्द-रवभूयं पिव करेमाणे करेमाणे तिमिसगुहाओ उत्तरिल्लेणं दारेणं णीइ ससि व्व मेहंधयारनिवहा।

५३५. तदनन्तर चक्ररत्न द्वारा निर्देशित मार्ग पर चल रहा है, ऐसा वह भरत राजा—यावत्—समुद्र की गर्जना के समान कोलाहल पैदा करता हुआ तिमिस्र गुफा के उत्तर दिशा के द्वार से वैसे ही निकला जैसे मेघों के अन्धकार समूह से चन्द्र निकलता है, वैसे निकलता है।

"एस णं देवाणुप्पिया ! केइ अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरि-सिरि-परिवज्जिए जे णं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ, तं तहा णं घत्तामो देवाणुप्पिया ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएण णो हव्वमागच्छइ" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सण्णद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेविज्जा बद्धआविद्धविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहप्पहरणा जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भरहस्स रण्णो अग्गाणीएण सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

'हे देवानुप्रियो ! यह कौन अनिष्ट की प्रार्थना करने वाला, दुरंतपंत लक्षणवाला, भाग्यहीन, कृष्णाचतुर्दशी को जन्म लेने वाला, ह्री (लज्जा) श्री विहीन है जो हमारे देश पर आक्रमण करने के लिये तेजी से बढ़ा चला आ रहा है, तो हे देवानुप्रियो ! हम उसे इस तरह पीछे भगा दें कि जिससे वह अपने देश पर अपने पराक्रम द्वारा आगे न बढ़े—आक्रमण न कर सके,' ऐसा विचार कर वे भील एक दूसरे की बात को स्वीकार करते हैं, बात स्वीकार करके युद्ध के लिए सन्नद्ध होते हैं, शरीर पर वर्म और कवच बाँधते हैं, शरासन—बाण की पट्टिका को बांधते हैं, गले की रक्षा के लिये गलाबन्द बांधते हैं अपने-अपने होदा के अनुरूप विमल और उत्तम चिह्न पट्टक पहनते हैं, आयुधों और प्रहारों के साधनों को लेते हैं और इस प्रकार युद्ध के लिए तत्पर होकर जिस ओर भरत राजा का आगे आने वाला सेना दल था, वहां आते हैं और वहां आकर भरत राजा के उस आगे आने वाले सैन्यदल के साथ लड़ने लगते हैं।

तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं हय-महिय-पवर-वीरघाइय-विवडिय-चिंध-द्धयपडागं किच्छप्पाणोव-गयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति।

तत्पश्चात् वे आवाड़ चिलात भरत राजा के उस आगे आने वाले सैन्यदल को आहत करके, मथित करके, उत्तमवीर योद्धाओं को घायल करके और उनके चिन्ह वाली ध्वजा पताकाओं को नष्ट भ्रष्ट—फाड़ फूड़ कर एवं गले में प्राण अटके हुए के समान करके दिश विदिशाओं में भगा देते हैं।

५३६. तए णं से सेणाबलस्स णेया वेढो-जाव-भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं आवाडचिलाएहिं हयमहियपवरवीर-जाव-दिसोदिसिं पडिसेहियं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे कमलामेलं आसरयणं दुरूहइ, दुरूहित्ता तए णं तं असीइमंगुलमूसियं णवणउइमंगुलपरिणाहं अट्ठसयमंगुलमाययं बत्तीसमंगुलमूसियसिरं चउरंगुलकण्णागं वीसइअंगुलबाहागं चउरं-गुलजाणूकं सोलसअंगुलजंघागं चउरंगुलमूसियखुरं मुत्तोलीसंवत्त-वलियमज्झं ईसिं अंगुलपणयपट्ठं संणयपट्ठं संगयपट्ठं सुजाय-पट्ठं पसत्थपट्ठं विसिट्ठपट्ठं एणीजाणुण्णयवित्थयथद्धपट्ठं वित्तलयकस-णिवाय-अंकेल्लणपहारपरिवज्जियंगं तवणिज्जथास-

५३६. तत्पश्चात् सैन्यबल का नेता वेढो,—यहां का वर्णन पूर्व के अनुसार समझना—यावत्—भरत राजा के आगे चलने वाले सैन्यदल को आवाड़ चिलातों (भीलों) द्वारा आहत, मथित और उत्तम वीर योद्धाओं को घायल किया जाना—यावत्—दिशा-विदिशाओं में भागते हुए देखता है, देखकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट, प्रचण्ड और कुपित होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए काल (यम-राज) जैसा होकर कमलामेल नामक अश्वरत्न पर सवार होता है। वह अश्वरत्न अस्सी अंगुल ऊंचा था निन्यानवें अंगुल प्रमाण उसका विस्तार था एक सौ आठ अंगुल लम्बा था, उसका सिर बत्तीस अंगुल ऊँचा था अर्थात् घोड़े के मस्तक का नीचे का भाग और घुटनों से ऊपर का भाग बत्तीस अंगुल ऊंचा था, उसके कान चार अंगुल के थे, बाहू मस्तक के नीचे का भाग और घुटनों से ऊपर का भाग बीस अंगुल का था, घुटने चार अंगुल के थे, जंघायें सोलह अंगुल की थीं और चार अंगुल की क्षुर थी, घोड़े के पेट का नीचे और ऊपर का भाग सांकड़ा, मध्यभाग और बीच में थोड़ा चौड़ा और मुड़ने के स्वभाव वाली कोठी जैसा था, पलान रखने का भाग कुछ अंगुल नमा हुआ था, जिससे सवार को सुखकर था, उसकी पीठ संनत, सुजात और प्रशस्त थी विशिष्ट प्रकार की थी, पीठ हरिणी के घुटने जैसी विशाल और उन्नत थी, उसके अंग प्रत्यंग प्रहार वर्जित थे यानी इसको चलाने के लिए चाबुक आदि मारने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, घोड़े

गाहिलाणं, वर-कणग-सुफुल्ल-थासग-विचित्त-रयण-रज्जुपासं, कंचण-मणि-कणग-पयरग-णाणाविह-घंटियाजाल-मुत्तिया-जालएहिं परिमंडिएणं, पट्ठेण सोभमाणेण सोभमाणं कक्केयण-इंदणील-मरगय-मसारगल्ल-मुहमंडण-रइयं, आविद्ध-माणिक्क-सुत्तग, विभूसियं, कणगामय-पउम-सुकय-तिलयं, देवमइ-विकप्पियं, सुरवरिंद-वाहणजोग्गावयं सुरूवं, दूइज्जमाण-पंच-चारुचामरामेलगं धरेंतं अणब्भवाहं अभेलणयणं कोकासिय-बहलपत्त-लच्छं सयावरण-णव-कणग-तविय-तवणिज्ज-तालुजीहासयं सिरिआभिसेयघोणं पोक्खर-पत्तमिव सलिलबिंदुजुयं अचंचलं चंचलसरीरं चोक्खचरगपरिव्वायगो विव

का शरीर सोने के आभूषणों से शृंगारित था, सब विविध प्रकार के रत्नों और सोने के फूलों से जड़ित थी, [illegible] मणियों से बनी तथा सोने के पत्तरों से बनी हुई अनेक प्रकार की घंटियों के समूह और मोतियों के झूमकों से पीठ सुशोभित थी, कर्केतनरत्न, इन्द्रनीलरत्न, मरकत मणि मसार [illegible] से मण्डित मुख रतिकर था, मणि जड़े हुए [illegible] से विभूषित था, कनकमय पद्म का जिस पर तिलक था और जो [illegible] की बुद्धि द्वारा बनाया गया था, इन्द्र के वाहन के समान [illegible] वाला था, रूपवान था, पाँच अवयवों पर [illegible] का धारण करने वाला था, अनक्षरा था, अर्थात् [illegible] पर चलने वाला था, जिसके निर्दोष नेत्र थे [illegible] पलकों वाले थे, शरीर पर ओढ़ाया जाने [illegible] और चाँदी से मढ़ा हुआ था, तालू जीभ और [illegible] जैसा रंगवाला था, नासिका लक्ष्मी के अभिषेक [illegible] थी, कमल पत्र पर जैसे जल बिन्दु होते हैं, वैसे [illegible] शरीर पर निशान बने हुए थे, अचंचल था किन्तु शरीर से [illegible] थी, चरक परिव्राजक की तरह चोखा था अर्थात् [illegible] शंका रहित, साफ स्वच्छ था।

हिलीयमाणं हिलीयमाणं खुरचलणचच्चपुडेहिं धरणियलं अभिहणमाणं अभिहणमाणं दोवि य चलणे जमगसमगं मुहाओ विणिग्गमंतं व सिग्घयाए मुणाल-तंतु-उदगमवि णिस्साए पक्कमंतं, जाइकुल-रूव-पच्चय-पसत्थ-बारसावत्तग-विसुद्ध-लक्खणं सुकुलप्पसूयं, मेहाविभद्दयविणीयं, अणुय-तणुय-सुकुमाल-लोम-णिद्धच्छविं, सुजाय-अमर-मण-पवण-गरुल-जइण-चवल-सिग्घगामिं इसिमिव खंतिखमए सुसीसमिव पच्चक्खयाविणीयं उदग-हुयवह-पासाण-पंसु-कद्दम-ससक्कर-सवालुइल्ल-तडकडग-विसम-पब्भार-गिरिदरी-सुलंघण-पिल्लण-णित्थारणासमत्थं अचंडपाडियं दंडपाइं अणंसुपाइं अकालतालुं च कालहेसिं जियणिद्दं गवेसग जियपरिसहं जच्चजाईयं मल्लिहाणिं सुगपत्तसुवण्णकोमल मणाभिरामं कमलामेलं

चलते समय जमीन पर खुरों के लगने से टप-टप की ध्वनि होती थी तथा दोनों पैरों को मुख के पास ले जाता था, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि एक साथ ही दोनों पैरों को मुख से निकाल रहा है अर्थात् ठुमक ठुमक कर चलता था, [illegible] अपनी तेज गति के द्वारा कमल के तन्तुओं और पानी का [illegible] लेकर गति कर सकता था अर्थात् सरपट चाल से दौड़ता था, जाति, कुल रूप आदि की अपेक्षा प्रशस्त, [illegible], विशुद्ध लक्षण, उत्तम कुल में उत्पन्न, [illegible], भद्र, विनीत था, रोम राजि अतिशय स्पर्शी और सुकुमार थी, [illegible] सुन्दरता [illegible], मन, पवन, गरुड़ के [illegible] चपल और शीघ्रगामी था, ऋषि के समान [illegible] वाला, [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

णामेणं आसरयणं सेणावई कमेण समभिरूढे कुवलयदलसामलं च रयणियर-मंडलणिभं सत्तुजण-विणासणं कणगरयणदंडं णवमालियपुप्फसुरहिगंधि णाणामणि-लयभत्तिचित्तं च पहोय-मिसिमिसित-तिक्खधारं दिव्वं खग्गरयणं लोए अणोवमाणं तं च पुणो वंस-रुक्ख-सिंग-ट्ठि-दंत-कालायस--विउल--लोहदंडय-वरवइर-भेयगं -जाव- सव्वत्थअप्पडिहयं किं पुण देहेसु जंगमाणं।

कमलामेल नामक अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर और नीलकमल के समूह के समान श्यामल, चन्द्रमण्डल सदृश चमचमाता, शत्रुजनों का विनाशक कनक और रत्नों से जिसकी मूठ मण्डित है जो नवमल्लिका के पुष्प जैसी गंधवाली है तथा जिस पर अनेक प्रकार के मणिरत्नों द्वारा भाँति-भाँति के चित्र बने हुए हैं, जिसकी तीक्ष्ण धार सान पर रखे जाने से चमचमा रही है और जो लोक में अनुपम है तथा कठिन से कठिन गांठ वाले वंशवृक्ष के सींग को, हड्डी को, हाथी दांत को, फौलाद से बने मोटे लोह दण्ड को और उत्तम वज्र को भेदने वाला—यावत्—सर्वत्र अप्रतिहत गतिवाला वह दिव्य खड्ग रत्न है तो फिर जंगम प्राणियों को भेदने में कैसे कुण्ठित हो सकता है। उस दिव्य खड्गरत्न का माप इस प्रकार है—

गाहा—पण्णासंगुलदीहो, सोलस से अंगुलाइं विच्छिण्णो।
अद्धंगुलसोणीको, जेट्ठपमाणो असी भणिओ ॥१॥

पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा है। खड्गरत्न (तलवार, असि) का अधिक से अधिक यह माप होता है।

असिरयणं णरवइस्स हत्थाओ तं गहिऊण जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आवाडचिलाएहिं सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था।

ऐसे खड्गरत्न को नरपति (भरत राजा) से लेकर वह सेनापति जहाँ आवाड़ किरात थे वहाँ पहुँचता है और पहुँचकर आवाड़ किरातों के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गया।

तए णं से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिलाए हयमहियपवरवीरघाइय-जाव-दिसोदिसिं पडिसेहेइ ॥

तत्पश्चात सुसेन सेनापति ने उन आवाड़ किरातों को आहत करके, मथित करके, बड़े-बड़े सुभटों को घायल करके—यावत्—दिशा विदिशाओं में भगा दिया।

आवाडचिलायपत्थणाए भरहसेणोवरिं नागकुमारदेवकयं महामेहवरिसणं—

आवाड़ किरातों की प्रार्थना से भरत सेना पर नागकुमार कृत महामेघवर्षण—

५३७. तए णं से आवाडचिलाया सुसेणे-सेणावइणा हयमहिय-जाव-पडिसेहिया समाणा भीया तत्था वहिया उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अवीरिया अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु अणेगाइं जोयणाइं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता एगयओ मिलायंति, मिलइत्ता जणेव सिंधु महाणई तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वालुयासंथारए संथरेंति, संथरित्ता वालुयासंथारए दुरूहंति, दुरूहित्ता अट्ठमभत्ताइं पगिण्हंति, पगिण्हित्ता वालुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिया जे तेसिं कुलदेवया मेहमुहा णामं णागकुमारा देवा ते मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठंति।

५३७. तत्पश्चात् सुसेन सेनापति द्वारा आहत, मथित—यावत् भगा दिये गये वे आवाड़ किरात भयग्रस्त, त्रसित, व्यथित, उद्विग्न हो गये और भयभीत होकर आत्मविश्वास—विहीन हो गये, बलहीन हो गये, वीर्य-रहित हो गये, पुरुषार्थ और पराक्रम विहीन हुए वे अब सामना करना शक्य नहीं है ऐसा सोचकर अनेक योजन दूर-दूर चले गये अर्थात् सैकड़ों योजन दूर भाग गये, भागने के बाद वे एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर जिस ओर सिंधु महानदी है वहाँ आते हैं, आकर वालु रेती की शैया बनाते हैं, बनाकर उस पर बैठते हैं, बैठकर अष्टमभक्त तप करते हैं, बालु के संथारे पर अवस्थित ऊपर को मुख किये निर्वस्त्र (अथवा निर्व्यसन) अष्टमभक्त तप धारक वे अपने कुल देवता मेघमुखनायक नागकुमार देवों का मन में स्मरण करते हुए समय व्यतीत करते हैं।

५३८. तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं आसणाइं चलंति, तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा आसणाइं चलियाइं पासंति, पासित्ता ओहिं

५३८. तत्पश्चात् जब आवाड़ किरातों का अष्टमभक्त तप पूर्ण हुआ तब मेघमुख नामक नागकुमार देवों के आसन चलायमान होते हैं, तदनन्तर वे मेघमुख नामक नागकुमार देव अपने अपने आसनों को चलायमान होते देखते हैं, देखकर कारण को

पउंजंति, पउंजित्ता आवाडचिलाए ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

जानने के लिए अवधिज्ञान का प्रयोग करते हैं, [illegible] अवधिज्ञान द्वारा आपाड़ किरातों को देखते हैं, देखकर एक दूसरे को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहते हैं—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे आवाडचिलाया सिंधूए महाणईए वालुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठंति, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं आवाडचिलायाणं अंतिए पाउब्भवित्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए-जाव-वीइवयमाणा वीइवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे जेणेव सिंधू महाणई जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्ख-पडिवण्णा सखिखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिया ते आवाडचिलाए एवं वयासी—

'हे देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में सिंधु महानदी के किनारे, बालू के संथारे पर [illegible] किये हुए, निर्वस्त्र अष्टमभक्त तप के धारक आपाड़ किरात अपने कुल देवता रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देवों का मन में धारण करते हुए—ध्यान करते हुए बैठे हैं, [illegible] देवानुप्रियो ! अपने लिए यही श्रेयस्कर है कि हम उन आपाड़ किरातों के पास जाकर प्रगट हों अर्थात् उनके सामने आवें, ऐसा विचार कर उन्होंने एक दूसरे की इस बात को स्वीकार किया, स्वीकार करके वे अपनी उत्कृष्ट गति से [illegible] गमन करते-करते जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप का उत्तरार्ध भरत नामक क्षेत्र है, जहाँ सिंधु महानदी है और जहाँ भी आपाड़ किरात हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर अन्तरिक्ष में [illegible] घुंघरुओं वाले पंचरंगी वस्त्रों को [illegible] आपाड़ किरातों से इस प्रकार कहते हैं—

"हं भो आवाडचिलाया ! जण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! वालुया-संथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेह-मुहे णागकुमारे देवे मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठह । तए णं अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुब्भं कुलदेवया तुम्हं अंतियण्णं पाउब्भूया, तं वदह णं देवाणुप्पिया ! किं करेमो ? [किं आचिट्ठामो] के य मे मणसाइए ।"

'अहो आपाड़ किरातो ! तुम लोग बालू के संथारे पर [illegible] ऊपर की ओर मुख किये हुए वस्त्र रहित तथा अष्टमभक्त [illegible] धारण किये कुल देवता रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देवों को मन में धारण करके बैठे हुए हो, इसलिये तुम्हारे [illegible] रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देव तुम्हारे सामने प्रकट हुए हैं, तो हे देवानुप्रियो ! तुम कहो कि हम तुम्हारा कौन सा कार्य करें, अथवा मन में क्या विचार कर रहे हो ?

५३९. तए णं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-हियया उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठित्ता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं-जाव-मत्थए अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी—

५३९. तत्पश्चात् वे आपाड़ किरात उन मेघमुख नामक नागकुमार देवों की इस बात को सुनकर, [illegible] हृष्ट तुष्ट और मन में आनंदित हुए—यावत्—प्रसन्न हृदय वाले हुए और अपने स्थान से उठे, उठकर जिस ओर मेघमुख नामक नागकुमार देव थे, वहाँ आये, आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—[illegible] अंजलि करके और मेघमुख नागकुमार देवों को [illegible] से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—

"एस णं भो देवाणुप्पिया ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी महिड्ढिए महज्जुए -जाव- महासोक्खे, णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, किण्णरेण वा, किंपुरिसेण वा महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, सत्थप्पओगेण वा, अग्गिप्पओगेण वा, मंतप्पओगेण वा, उद्दवित्तए पडिसेहित्तए वा, तहा वि य णं तुब्भं पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गं करेमो" त्ति कट्टु तेसिं आवाडचिलायाणं अंतियाओ अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति समोहणित्ता मेहाणीयं विउव्वंति, विउव्वित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खंधावारणिवेसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता उप्पिं विजयक्खंधावारणिवेसस्स खिप्पामेव पतणतणायंति, पतणतणाइत्ता खिप्पामेव विज्जुयायंति, विज्जुयाइत्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिउं पवत्ता यावि होत्था।

'हे देवानुप्रियो ! यह तो पृथ्वी की चारों दिशाओं में राज्य करने वाला महाऋद्धि—वैभव, महाद्युति—तेज—यावत्—महान सुख सम्पन्न भरत नामक चक्रवर्ती राजा है, जिसे कोई यहाँ से हटा सके, उद्विग्न कर सके ऐसा कोई देव शक्तिशाली नहीं है, दानव नहीं है, किन्नर नहीं है, किंपुरुष नहीं है, महोरग या गंधर्व नहीं है तथा शस्त्र-प्रयोग द्वारा, अग्नि-प्रयोग द्वारा अथवा मंत्र-प्रयोग द्वारा भी कोई उपद्रव कर सके, रोक सके, ऐसा नहीं है, ऐसी स्थिति होने पर भी तुमको जो प्रिय है—इष्ट है—उसके लिए भरत राजा पर उपसर्ग करते हैं अर्थात् हटाने के लिए कुछ न कुछ उपाय तो करते हैं, ऐसा कहकर वे आवाड़ किरातों के पास से एक-दूसरे स्थान पर चले गये, वहाँ जाकर उन देवों ने वैक्रियसमुद्घात द्वारा समुद्घात किया, समुद्घात करके मेघसेना की विकुर्वणा की और विकुर्वणा करके जिस ओर भरत राजा का विजय स्कन्धावार निवेश था, वहाँ आये, वहाँ आकर विजय स्कन्धावार निवेश के ऊपर तत्काल तण-तण इस प्रकार की ध्वनि करते हुए मेघ वर्षा करने लगे, चारों ओर विजलियाँ चमकाने लगे और बिजलियाँ चमकाकर अर्गला जैसी मूशल जैसी धाराओं में मेघ बरसाने लगे। एक धारा बरसाने लगे और इस प्रकार मेघ की घटाओं को सात रात्रि तक बरसाने में प्रवृत्त हो गये।

भरहेण छत्तरयणपवित्थरणं—

५४१. तए णं से भरहे राया उप्पिं विजयक्खंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ, पासित्ता चम्मरयणं परामुसइ। तए णं तं सिरिवच्छसरिसरूवं वेढो भाणियव्वो-जाव-दुवालसजोयणाइं तिरियं पवित्थरइ, तत्थ साहियाइं।

तए णं से भरहे राया सखंधावारबले चम्मरयणं दुरूहइ, दुरूहित्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ।

तए णं णवणउइ-सहस्स-कंचण-सलाग-परिमंडियं महरिहं अउज्झं णिव्वण-सुपसत्थ-विसिट्ठ-लट्ठ-कंचण-सुपुट्ठदंडं, मिउरायवट्ट-मट्ठ-अरविंद-कण्णिय-समाणरूवं; वत्थिपएसे य पंजरविराइयं, विविहभत्तिचित्तं, मणि-मुत्त-पवाल-तत्ततवणिज्ज-पंच-

भरत द्वारा छत्ररत्न प्रविस्तरण—

५४१. तत्पश्चात् वह भरत राजा विजय स्कन्धावार पर अर्गला, मूशल और मुष्टिप्रमाण जैसी धाराओं द्वारा मेघ मण्डल को सात रात तक बरसता देखता है, उस प्रकार देखकर चर्मरत्न को हाथ में लेता है, हाथ में लेने से वह चर्मरत्न श्रीवत्स के स्वरूप जैसा आकार धारण करता है, आदि वेढो—वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिए—यावत्—वह चर्मरत्न तिरछा बारह योजन से अधिक प्रमाण तक फैल जाता है।

तब वह भरत राजा स्कन्धावार की सेना सहित चर्मरत्न पर चढ़ जाता है, चढ़कर दिव्य छत्ररत्न को हाथ में ग्रहण करता है।

वह छत्ररत्न निन्यानबे हजार सोने की ताड़ियों से परिमण्डित—सुशोभित है, महामूल्यवान है, अयोध्य है, अर्थात् जिसके पास यह छत्ररत्न है उससे कोई युद्ध नहीं कर सकता है, इस छत्र का डण्डा किसी भी प्रकार की दरार, गांठ आदि से रहित है, प्रशस्त है, विशिष्ट प्रकार का है, सुन्दर है और अच्छी तरह पुष्ट मजबूत है तथा जो घिसकर खूब चिकना स्निग्ध बनाया गया है और सुन्दर रजत कमलों के किनारों जैसा है, छत्र के ठीक बीच में दण्ड लगा होने से पिंजरे के घाट जैसा दिखता है, विविध प्रकार के चित्र उस पर बने हैं, मणि, मुक्ता, प्रवाल तपे हुए सोने पाँच प्रकार के रत्नों, चमचमाते रत्नों के

तउस-तुम्ब-कालिग-कविट्ठ-अंब-अंबिलिय-सव्वणिप्फायए सुकुसले गाहावइरयणे त्ति सव्वजणवीसुयगुणे ।

तरबूज, तुम्बा, कालिंग कलींदा (तरबूज की एक जाति), कैथ, आम, इमली आदि सब शाक सब्जियों को पैदा करने में विशेष कुशल और सर्व जन समूह में प्रसिद्ध गृहपति (भण्डारी) रत्न है ।

गाहावईरयणकओ भरहसेणाए सत्तदिणणिव्वाहो—

गृहपतिरत्न कृत भरत सेना का सप्तदिन निर्वाह—

५४२. तए णं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्दिवस-प्पइण्ण-णिप्फाइय-पूइयाणं सव्वधण्णाणं अणेगाइं कुम्भसहस्साइं उवट्ठवेइ ।

५४२. तत्पश्चात् भरत राजा का वह गृहपति रत्न जिस दिन बोये उसी दिन पैदा हुए सभी प्रकार के धान्यों को अनेक हजार कुम्भों—घड़ों में भरकर भरत राजा के सामने रखता है ।

तए णं से भरहे राया चम्मरयण-समारूढे-छत्तरयण-समोच्छण्णे मणिरयण-कउज्जोए समुग्गयभूएणं सुहंसुहेणं सत्तरत्तं परिवसइ ।

तदनन्तर चर्मरत्न पर आरूढ़ छत्ररत्न से बराबर आच्छादित और मणिरत्न द्वारा किये गये प्रकाश के कारण मानो करंडिया रूप बने उस स्थान में वह भरत राजा सुखपूर्वक सात रात तक वास करता है ।

गाहा—ण वि से खुहा ण विलियं, णेव भयं णेव विज्जए दुक्खं ।
भरहाहिवस्स रण्णो, खंधावारस्स वि तहेव ॥१॥

(गाथा—) भरताधिप उस भरत राजा को तथा उसके स्कन्धावार को न भूख का, न अनिष्ट का, न भय का दुःख है और न किसी दूसरे प्रकार का दुख है ॥१॥

देवसहस्सेहिं नागकुमारं पइ भरहसरणगमणोवएसो—

देव सहस्रों द्वारा नागकुमारों को भरतशरणगमनोपदेश—

५४३. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

५४३. तत्पश्चात् जब सात दिन पूर्ण हो गये तब उस भरत राजा को इस प्रकार का विचार आया, ऐसा चिन्तन पैदा हुआ और मन में संकल्प उत्पन्न हुआ—

"केस णं भो ! अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे-जाव-परिवज्जिए जे णं ममं इमाए एयाणुरूवाए-जाव-अभिसमण्णागयाए उप्पिं विजयखंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि-जाव-वासं वासइ ।"

'कौन है वह अनिष्ट की अभिलाषा करने वाला, दुष्ट लक्षण वाला—यावत्—ह्री श्री से परिवर्जित—विहीन है जो इस प्रकार की विघ्नकारी प्रवृत्ति द्वारा मेरे विजय-स्कन्धावार के ऊपर अर्गला जैसी, मूशल जैसी, मुष्टि जैसी धाराओं द्वारा वर्षा करने के लिये मेरे सामने खड़ा हुआ है ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो इमेयारूवं अज्झत्थियं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता सोलस देवसहस्सा सण्णज्झिउं पवत्ता यावि होत्था ।

तत्पश्चात् उस भरत राजा के इस प्रकार के समुत्पन्न विचार चिंतन और मनोगत संकल्प को जानकर सोलह हजार देव सहायता करने के लिये तैयार हो गये ।

तए णं ते देवा सण्णद्धबद्धवम्मियकवया-जाव-गहियाउहप्पहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मेहमुहे णागकुमारे देवे एवं वयासी—

इसके बाद वे देव जो अस्त्रशस्त्र से सज्जित होकर युद्ध के लिए तैयार हैं, जिन्होंने शरीर पर बख्तर पहन लिये हैं, कवच धारण कर लिये हैं—यावत्—आयुध और प्रहरण—प्रहार करने के साधन ले लिये हैं, जहाँ मेघमुख नागकुमार देव हैं, वहाँ आये, आकर मेघमुख नागकुमार देवों से इस प्रकार कहा—

"हं भो मेहमुहा णागकुमारा देवा ! अपत्थियपत्थगा-जाव-परिवज्जिया किण्णं तुब्भे ण जाणह भरहं रायं चाउरंतचक्कवट्टिं महिड्ढियं-जाव-उद्दवित्तए वा, पडिसेहित्तए वा, तहा

हे भो मेघमुख नागकुमार देवो ! अपने अनिष्ट के अभिलाषी—यावत्—ह्री, श्री विहीन क्या तुम नहीं जानते हो कि तुम महान ऋद्धिशाली चतुरदिग्व्यापी पृथ्वी के स्वामी भरत राजा के सामने—यावत्—उपद्रव करने के लिये तैयार हुए हो अथवा उसे रोकने पीछे हटाने के लिए तत्पर हो रहे हो तथा

वि णं तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पि जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासह, त एवमवि गए इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह, अहव णं अज्ज पासह चित्तं जीवलोगं।"

तुम भरत राजा के विजय स्कन्धावार के ऊपर जुआ जैसी, मूसल जैसी, मुष्टि जैसी मोटी-मोटी जल धाराओं की वर्षा सात रात तक बरसा रहे हो। सो तुमने जो कुछ कर लिया सो ठीक, इसे रोक कर शीघ्र ही पीछे हट जाओ अन्यथा आज ही विचित्र जीव लोक को देखोगे अर्थात् मरकर दूसरे लोक में जाना पड़ेगा।'

णागकुमारोवएसेण चिलायेहिं भरहसरणगमणं—

५४४. तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा भीया तत्था वहिया उव्विग्गा संजायभया मेहाणीयं पडिसाहरंति, पडिसाहरित्ता जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता आवाडचिलाए एवं वयासी—

नागकुमारों के उपदेश से किरातों का भरत-शरण गमन—

५४४. तत्पश्चात् उन देवों की धमकी को सुनकर वे मेघमुख नामक नागकुमार देव भयभीत, त्रसित, व्यथित और उद्विग्न हो गये और भयभीत होकर मेघ सैन्य को वापस लौटाते हैं अर्थात् मेघवर्षा को बंद कर देते हैं, जहाँ पर आपात किरात रहते थे, वहाँ आते हैं और आकर आपात किरातों से इस प्रकार कहा—

'एस णं देवाणुप्पिया! भरहे राया महिड्ढिए-जाव-णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा-जाव-अग्गिप्पओगेण वा-जाव-उद्दवित्तए वा पडिसेहित्तए वा। तहावि य णं अम्हेहिं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गे कए, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणियच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिया भरहं रायाणं सरणं उवेह। पणिवइय-वच्छला खलु उत्तमपुरिसा, णत्थि भे भरहस्स रण्णो अंतियाओ भयमिति कट्टु" एवं वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

'हे देवानुप्रियो ! यह भरत राजा महान वैभवशाली है—यावत्—उसे कोई देव अथवा दानव—यावत्—अथवा अग्नि के प्रयोग द्वारा —यावत्— उपद्रव करने अथवा रोकने में समर्थ नहीं है। तो भी हे देवानुप्रियो ! तुम्हारा प्रिय करने, हेतु हमने भरत राजा पर उपसर्ग किया, लेकिन उससे कोई लाभ होने वाला नहीं है, इसलिए हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र लौट जाओ और स्नान करके पूजा आदि करके तथा कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित करके पहने हुए गीले वस्त्रों का पल्लूदार से फटोटा लगाकर उत्तम रत्नों को लेकर हाथ जोड़, पैरों में गिरकर भरत राजा की शरण लेवो, उत्तम पुरुष नम्र हुए शरणागतों के प्रति वात्सल्य भाव धारण करने वाले होते हैं, भरत राजा की ओर से भय होने की आशंका मत करो। इस प्रकार जिस दिशा से वे प्रादुर्भूत हुए थे अर्थात् आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

पढम-णरीसर ईसर हियईसर महिलियासहस्साणं।
देवसयसाहसीसर चोद्दसरयणीसर जसंसी ॥३॥
सागरगिरिमेरागं उत्तरवाईणमभिजियं तुमए।
ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥

'हे प्रथम नरेश्वर, ईश्वर, हजारों स्त्रियों के हृदय के ईश्वर, लाखों देवों के ईश्वर, चौदह रत्नों के ईश्वर, यशस्वी ।३।
समुद्र और पर्वतों की सीमा तक का उत्तर और पश्चिम का क्षत्र तुमने सब जीत लिया है। इसलिये हे देवानुप्रिय ! अब हम आपके देश में निवास करते हैं ।४।

अहो णं देवाणुप्पियाण इड्ढी जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए। तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी एवं चेव-जाव-अभिसमण्णागए, तं खामेमु णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए त्ति" कट्टु पंजलिउडा पायवडिया भरहं रायं सरणं उविंति।

अहो आप देवानुप्रिय का वैभव-ऋद्धि आपकी द्युति, आपका यश, आपका बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम, आपकी देवों जैसी दिव्यद्युति, आपका देव जैसा दिव्य प्रभाव आदि सब आपको लब्ध है, प्राप्त है, और सब तरह से समन्वित है अर्थात् पूर्णरूप से मिला हुआ है। आप देवानुप्रिय की वह सब ऋद्धि आदि पूर्वोक्त सब—यावत्—सब तरह से अधिगत किया है, हमने अपनी आंख से देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हम आपसे क्षमा याचना करते हैं, आप देवानुप्रिय हमें क्षमा कीजिये। आप देवानुप्रिय ! क्षमा प्रदान करने में समर्थ हैं, अब हम पुनः ऐसा करने वाले नहीं हैं, ऐसा कहकर हाथ जोड़कर पगों में पड़कर भरत राजा की शरण में गये।

५४६. तए णं से भरहे राया तेसिं आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी—

"गच्छह णं भो ! तुब्भे ममं बाहुच्छायापरिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसह, णत्थि मे कत्तो वि भयमत्थि त्ति" कट्टु सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

५४६. इसके बाद वह भरत राजा उन आवाड़ किरातों द्वारा लाये गये अग्र उत्तम रत्नों की भेंट स्वीकार करता है, भेंट स्वीकार करके उन आवाड़ किरातों से इस प्रकार कहता है—

'हे भाइयो ! अब तुमने हमारे बाहुओं की छाया स्वीकार करली हो इसीलिए अब तुम सब प्रकार से निर्भय हो, उद्वेग रहित हो, सुखपूर्वक आनंद से रहो, किसी प्रकार का भय रखने की जरूरत नहीं है, इस प्रकार कहकर उनका सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदा करता है।

५४७. तए णं से भरहे राया सुसेणं सेणावइं, सद्दावइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

"गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिया ! दोच्चंपि सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमेरागं सम-विसम-णिक्खुडाणि य ओअवेहि, ओअवित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि, पडिच्छित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि।

५४७. तत्पश्चात् भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और पुनः दूसरी बार भी पश्चिम तरफ के सिन्धु सागर और पर्वत की मर्यादा तक के भू-भाग के सम विषम निष्कूटों को अपने अधिकार में कर लो और अधिकार में लेकर वहाँ के शासन करने वालों से अग्र और उत्तम रत्नों आदि को प्राप्त करो, प्राप्त करके शीघ्र ही आज्ञा पूर्ति होने की मुझे सूचना दो।

जहा दाहिणिल्लस्स ओअवणं तहा सव्वं भाणियव्वं-जाव-पच्चणुभवमाणे विहरइ।

यहाँ पर जैसे दक्षिण भाग को अधीन किया, वह समस्त वर्णन यहाँ भी समझ लेना चहिए —यावत्—कामभोगों का अनुभव करता हुआ आनंद से रहता है।

चुल्लहिमवंतगिरिकुमारविजयो—

क्षुल्ल हिमवंत गिरिकुमार विजय—

५४८. तए णं दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे-जाव-उत्तरपुरच्छिमं दिसिं चुल्लहिमवंतपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

५४८. इसके बाद अन्य किसी एक दिन वह दिव्य चक्ररत्न आयुधघरशाला से बाहर निकलता है, निकलकर अन्तरिक्ष में अधर होकर—यावत्—उत्तर पूर्व दिशा— वायव्यकोण—में स्थित क्षुल्ल हिमवन्त पर्वत की ओर गमन करने लगा।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं-जाव-चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं-जाव-चुल्लहिमवंत-गिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, तहेव जहा मागहतित्थस्स-जाव-समुद्दरवभूयं पिव करेमाणे करेमाणे उत्तर-दिसाभिमुहे जेणेव चुल्लहिमवंत-वासहरपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ, फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता तहेव-जाव-आयय-कण्णाययं च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ भाणीअ से णरवई-जाव-सव्वे मे ते विसयवासि त्ति कट्टु उड्ढं वेहासं उसुं णिसिरइ परिगरणिगरियमज्झे-जाव-तए णं से सरे भरहेणं रण्णा उड्ढं वेहासं णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव बावत्तरिं जोयणाइं गंता चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवइए।

तब वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न के पीछे—यावत्—चुल्ल हिमवन्त पर्वत से न अति दूर और न अति निकट बारह योजन लंबा—यावत्—चुल्ल हिमवन्त गिरिकुमार देव के निमित्त अष्टमभक्त तप ग्रहण करता है, यह सब कथन मागध तीर्थ के सम्बन्ध में किये गये वर्णन के अनुसार समझ लेना चाहिए —यावत्—समुद्र की गर्जना के समान वातावरण को [illegible] करता हुआ उत्तर दिशा के अभिमुख जहाँ चुल्ल हिमवन्त वर्षधर पर्वत है वहाँ आता है, वहाँ आकर चुल्ल हिमवन्त वर्षधर पर्वत को तीन बार रथ के शिखर से (अग्रभाग से) स्पर्श करता है, स्पर्श करके रथ के घोड़ों को खड़ा करता है, खड़ा करके [illegible] की तरह—यावत्—कान तक लम्बा खींचकर एक विशाल बाण का, यह सब वर्णन यहाँ कहना चाहिए, वह नरपति—यावत्—वे सब मेरे देशवासी हैं अर्थात् मेरी प्रजा हैं, ऐसा कहकर ऊपर आकाश में एक बाण छोड़ता है, परिकरबद्ध मध्य से—यावत्—उस बार भरत राजा ने ऊपर आकाश में छोड़ा कि वह बाण शीघ्र ही बहत्तर योजन आगे जाकर चुल्ल हिमवन्त गिरिकुमार देव की मर्यादा में आकर गिरा।

५४९. तए णं से चुल्लहिमवंतगिरिकुमारे देवे मेराए सरं णिवइयं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे-जाव पीइदाणं सव्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं च कडगाणि-जाव-दहोदगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव उत्तरेणं चुल्लहिमवंतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी-जाव-अहण्णं देवाणुप्पियाणं उत्तरिल्ले अंतवाले-जाव-पडिविसज्जेइ ॥

५४९. तत्पश्चात् चुल्ल हिमवन्त गिरिकुमार देव अपनी सीमा में गिरे हुए बाण को देखता है, देखकर क्रोधाभिभूत हो रुष्ट हुआ —यावत्—प्रीतिदान, सर्व औषधियाँ, माला, गोशीर्ष चन्दन और कड़े—यावत्—द्रहजल को ग्रहण करता है, ग्रहण करके वह उत्कृष्ट गति से—यावत्—उत्तर में चुल्ल हिमवन्त गिरि की मर्यादा में (आकर) आप देवानुप्रिय का मैं देशवासी हूँ—यावत्—मैं आप देवानुप्रिय का उत्तर दिशा का अंतपाल—सीमा रक्षक हूँ—[illegible]—यावत्—विदाई दी।

कागणिरयणपरामुसणेण भरहेण उसहकूडे चक्कवट्टिनामलिहणं—

भरत द्वारा [illegible] चक्रवर्ती नाम [illegible]—

५५०. तए णं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता रहं परावत्तेइ, परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसहकूडं पव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ, फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता छत्तलं दुवालसंसियं अट्ठकण्णियं अहिगरणिसंठियं सोवण्णियं कागणिरयणं परामुसइ, परामुसित्ता उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि कडगंसि णामगं आउडेइ।

५५०. तत्पश्चात् वह भरत राजा अपने घोड़ों को खड़ा करता है, खड़ा करके रथ को वापस मोड़ता है, रथ को मोड़कर जहाँ ऋषभकूट पर्वत है वहाँ आता है, वहाँ आकर रथ के शिखर से (अग्रभाग से) तीन बार ऋषभकूट पर्वत का स्पर्श करता है, स्पर्श करके घोड़ों को खड़ा करता है, खड़ा करके [illegible] छह तल वाले, बारह किनारे वाले, आठ कर्णिकाओं वाले, अधिकरणी के आकार वाले, सोने के काकिणी रत्न को ग्रहण करता है, ग्रहण करके ऋषभकूट पर्वत के पूर्व [illegible] कटक पर [illegible]

चक्काणुमग्गेणं भरहस्स वेयड्ढउत्तरणियंबे गमणं—

५५१. णामगं आउडित्ता रहं परावत्तेइ, परावत्तित्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव-चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता-जाव-दाहिणदिसिं वेयड्ढपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था।

चक्रानुगामी भरत का वैताढ्य के उत्तर नितंब में गमन—

५५१. नाम लिखने के बाद रथ को लौटाता है, लौटाकर जिस ओर विजय स्कन्धावार था, जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी, वहाँ आता है, वहाँ आकर—यावत्—चुल्ल हिमवन्त गिरिकुमार देव का आष्टाह्निक महामहोत्सव सम्पन्न होने के बाद दिव्य चक्ररत्न आयुधघरशाला में से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर—यावत्—दक्षिण दिशा की तरफ वैताढ्य पर्वत के सामने की दिशा मे चल दिया।

५५२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं-जाव-वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णियंबे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णियंबे दुवालसजोयणायामं-जाव-पोसहसालं अणुपविसइ-जाव-णमि-विणमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए-जाव-णमि-विणमि-विज्जाहररायाणो मणसी-करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ।

५५२. उसके बाद वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न को यावत्—वैताढ्य पर्वत के उत्तर के भाग की तरफ आता है, वहाँ आकर वैताढ्य पर्वत के उत्तर के भाग में बारह योजन लंबा यावत्—पौषधशाला में प्रवेश करता है—यावत्—नमि और विनमि नामक विद्याधर राजाओ की आराधना के लिए अष्टम-भक्त तप ग्रहण करके पौषधशाला मे—यावत्—नमि और विनमि विद्याधर राजाओं को मन में धारण करते हुए रहता है।

विज्जाहररराएहिं णमि-विणमीहिं भरहस्स रयणाइ-इत्थिरयण—समप्पणं—

५५३. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि णमि-विणमिविज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइयमई अण्णमण्णस्स अंतियं पाउब्भवंति, पाउब्भवित्ता एवं वयासी—

"उप्पण्णे खलु भो देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्ण-मणागयाणं विज्जाहरराईणं चक्कवट्टीणं उवत्थाणियं करेत्तए, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! अम्हेवि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमो त्ति" कट्टु विणमी-णाऊणं चक्कवट्टि दिव्वाए मईए चोइयमई माणुम्माणप्पमाण जुत्तं तेयस्सि रूवलक्खणजुत्तं ठियजुव्वणकेसवट्ठियणहं सव्वरोगणासणि बलकरि इच्छियसीउण्हफासजुत्तं।

गाहा—तिसु तणुयं तिसु तंबं तिवलीगइउण्णयं तिगंभीरं।
तिसु कालं तिसु सेयं तियाययं तिसु य वित्थिण्णं ॥१॥

विद्याधर राजा नमि-विनमि द्वारा भरत को रत्नादि-स्त्रीरत्न-समर्पण—

५५३. तदनन्तर भरत राजा का जब अष्टमभक्त तप पूर्ण होता है तब नमि और विनमि नामक दो विद्याधर राजा अपनी दिव्य मति द्वारा प्रेरित होने से वे दोनो एक-दूसरे के पास प्रादुर्भूत होते हैं अर्थात् आपस में मिलते हैं, मिलकर इस प्रकार कहते हैं—

'हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में चतुर्दिक् व्यापिनी पृथ्वी का अधिपति भरत नामक चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है, अतएव अतीत, वर्तमान और अनागत काल के विद्याधर राजाओं का यह परंपरागत आचार-व्यवहार है कि चक्रवर्ती का आदर सम्मान करना चाहिये, तो हे देवानुप्रिय ! चलो हम भी भरत राजा का आदर-सम्मान करें,' ऐसा विचार कर दिव्यमति द्वारा जिसकी मति प्रेरित हुई है, ऐसा विनमि विद्याधर चक्रवर्ती की समृद्धि को जानकर मानोन्मान प्रमाण शरीर धारिणी अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर के अंग प्रत्यगों वाली, तेजस्वी रूप लक्षणों से संपन्न स्थिर यौवनवाली अर्थात् सदैव युवा रहने वाली, कभी वृद्ध नहीं होने वाली जिसके केश और नख सदैव एक जैसे रहने वाले हैं, जिसका सहवास समस्त रोगों का नाश करने वाला है एवं बल-पुष्टिदायक है, इच्छित शीत एवं उष्ण स्पर्श धारण करने वाली है अर्थात् इष्ट स्पर्श वाली है।

(गाथा) जिसके शरीर के तीन अवयव—कटिप्रदेश, उदर, हनु-काठी शरीर की बनावट पतली है अर्थात् जो तन्वंगी है, तीन अग लाल रंग के हैं, मध्य भाग तीन रेखाओं युक्त है, तीन अंग उन्नत हैं, तीन अंग गंभीर है, तीन अंग श्याम वर्ण के है, तीन श्वेत हैं तीन लंबे हैं, तीन विस्तार वाले है।१।

णवरं णट्टमालगे देवे पीइदाणं से आलंकारियभंडं कडगाणि य, सेसं सव्वं तहेव-जाव-अट्ठाहिया महामहि० ।

कि नट्टमालक देव है, प्रीतिदान, अलंकार की सब सामग्री कटक आदि शेष पूर्व के समान समझना—यावत्—महामहिमा वाला आठ दिन का उत्सव हुआ ।

तए णं से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्ठाहियाए म० णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ, सद्दावित्ता-जाव-सिंधुगमो णेयव्वो-जाव-गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं सगंगासागर-गिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि य ओअवेइ, ओअवित्ता अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छइ, पडिच्छित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोच्चंपि सक्खंधावारबले गंगामहाणइं विमलजलतुंगवीइं ,णावाभूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलप-रिग्गहियं- जाव-अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेइ ।

तत्पश्चात् नट्टमालक देव का आठ दिन का महोत्सव होने के बाद वह भरत राजा सुसेन सेनापति को बुलाता है, बुलाकर —यावत्—यहाँ भी पहले सिन्धु नदी के सम्बन्ध में जो वर्णन किया है तदनुसार पूर्वोक्त पाठ समझ लेना चाहिए—यावत्—गंगा महानदी के पूर्व भाग के निष्कुट प्रदेश को गंगासागर और पर्वत की मर्यादा तक जो सम विषम निष्कुट क्षेत्र हैं, उन पर अधिकार करो, अधीन करके अग्र उत्तम रत्नों को स्वीकार करता है स्वीकार करके जहाँ गंगानदी है, वहाँ आता है, वहाँ आकर दूसरी बार अपने स्कन्धावार के बल—सेना के साथ नौका के समान बने हुए चर्मरत्न के द्वारा विमल जल की ऊँची-ऊँची तरंगों वाली गंगा महानदी को पार करता है, पार करके जिस ओर भरतराजा का विजय स्कन्धावार निवेश था, जहाँ बाहरी उपस्थानशाला—बैठने का स्थान है, वहाँ आता है, वहाँ आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरता है, उतरकर अग्र उत्तम रत्नों को लेकर जहाँ भरत राजा है, वहाँ आता है, आकर दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—अंजलि करके भरत राजा को जय विजय शब्दों से बधाता है, बधाकर अग्र उत्तम रत्नों को सामने रखता है ।

सुसेणसेणावइस्स भरहेण सक्कारो—

५५६. तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से सुसेणे सेणावई भरहस्स रण्णो सेसं पि तहेव-जाव-विहरइ ।

भरत द्वारा सुसेन सेनापति का सत्कार—

५५६. तदनन्तर वह भरत राजा सुसेन सेनापति के अग्र, उत्तम रत्नों को स्वीकार करता है, स्वीकार करके सुसेन सेनापति का सत्कार-सम्मान करता है, सत्कार-सम्मान करके विदा करता है ।

तब वह सुसेन सेनापति भरत राजा के पास से निकलता है, इत्यादि शेष वर्णन पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये—यावत्—आनन्दोपभोग करता है।

अओ परं आगमणकमेण पडिगमणं भरहस्स—

५५७. तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

गच्छ णं भो देवाणुप्पिया ! खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि, विहाडित्ता जहा तिमिसगुहाए तहा भाणियव्वं-जाव-पियं मे भवउ । सेसं तहेव-जाव-भरहो उत्तरि-ल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिव्व मेहंधयारणिवहं तहेव पविसंतो मंडलाइं आलिहइ ।

तीसे णं खंडगप्पवायगुहाए बहुमज्झदेसभाए-जाव-उम्मग्ग-णिमग्गलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव । णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ

अथानन्तर आगमन क्रम से भरत का प्रतिगमन—

५५७. तत्पश्चात् किसी एक समय भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और खंडप्रपात गुफा के उत्तर के द्वार के किवाड़ों को खोल डालो—अलग अलग कर दो, खोलकर जैसा तिमिस्र गुफा के वर्णन में कहा है, वैसा यहाँ भी समझ लेना चाहिये—यावत्—आपको प्रिय हो । शेष वर्णन पूर्ववत्—यावत्—भरत उत्तर के द्वार से प्रवेश करता है जैसे चन्द्र मेघ घटाओं के अन्धकार को दूर कर देता है वैसे प्रवेश करके राजा भरत मंडलों का आलेखन करता है ।

उस खंडकप्रपात गुफा के ठीक बीच में—यावत्—उन्मग्नजला और निमग्नजला नामक दो नदियाँ बहती हैं, यहाँ भी पूर्व कथन-वत् वर्णन समझना चाहिए । लेकिन अन्तर इतना है कि ये दोनों

रयणाइं सव्वरयणे चउदसवि वराइं चक्कवट्टिस्स ।
उप्पज्जंते एगिंदियाइं पंचिंदियाइं च ॥४॥

समस्त रत्नों में सर्वोत्तम ऐसे चक्रवर्ती राजा के चौदह रत्न इस चौथी निधि में हैं। इन रत्नों में कितने ही एक इन्द्रिय वाले और कितने ही पंचेन्द्रिय हैं।४।

वत्थाण य उप्पत्ती णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं ।
रंगाण य धोव्वाण य सव्वाएसा महापउमे ॥५॥

पांचवीं महापद्म निधि है जो सभी प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति करती है तथा सभी तरह के रंगों और धोने की पद्धति की रीति बतलाती है।५।

काले कालण्णाणं सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ।
सिप्पसयं कम्माणि य तिण्णि पयाए हियकराणि ॥६॥

काल नामक निधान में काल, ज्ञान का जनक है और समस्त ज्योतिष विद्या की ज्ञापक है, तीर्थंकरों, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव वंशों के भूत, वर्तमान और भविष्य की सूचक और उनके शुभाशुभ की ज्ञापक है तथा सौ प्रकार के शिल्पों की परिचायक है।६।

लोहस्स य उप्पत्ती होइ महाकाले आगराणं च ।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य मणि-मुत्त-सिलप्पवालाणं ॥७॥

महाकाल नामक महानिधि लोहे की उत्पत्ति बतलाती है तथा आकरों-खानों की, चांदी की, सोने की मणियों की, मोतियों की स्फटिक मणियों की और प्रवालों-मूंगों की उत्पत्ति की बोधक है।७।

जोहाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य जुद्धणीई, माणवगे दंडणीई य ॥८॥

माणवक नामक आठवीं महानिधि योद्धाओं की, शूरवीरों की उत्पत्ति की सूचक है तथा कवच, प्रहरण, प्रहार करने के साधन एवं सभी तरह की युद्ध नीति और दंडनीति की ज्ञापक है।८।

णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स य चउविहस्स उप्पत्ती ।
संखे महाणिहिम्मी तुडियंगाणं च सव्वेसिं ॥९॥

नाट्यविधि, नाटकविधि चार प्रकार के काव्यों तथा सभी प्रकार के वाद्यों और उनके अंगों की उत्पत्ति की दर्शक शंख नामक नौवीं महानिधि है।९।

[1]चक्कट्ठपइट्ठाणा अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभा ।
बारसदीहा मंजूससंठिया जण्हवीइ मुहे ॥१०॥

यह प्रत्येक महानिधि आठ आठ पहियों—चक्रों पर स्थित है, प्रत्येक आठ आठ योजन ऊंची, नौ-नौ योजन चौड़ी और बारह बारह योजन लम्बी है, मंजूषा पेटी की जैसी उनकी आकृति-घाट है और गंगानदी के मुख के आगे रही हुई है अर्थात् जहाँ गंगा नदी समुद्र में मिलती है, वहाँ रही हुई है।१०।

वेरुलिय-मणिकवाडा कणगमया विविह-रयण-पडिपुण्णा ।
ससि-सूर-चक्क-लक्खण अणुसमवयणोववत्ती या ॥११॥

इन निधियों के किवाड वैडूर्य मणि से बने हुए हैं, जो सुवर्णमय हैं तथा विविध प्रकार के रत्न उनमें जड़े हुए हैं और उन पर सूर्य, चन्द्र, चक्र आदि के चिन्ह बने हुए हैं एवं दरवाजे सर्वथा अविषम अर्थात् सम चौरस हैं।११।

पलिओवमट्ठिईया णिहिसरिणामा य तत्थ खलु देवा ।
जेसिं ते आवासा अक्किज्जा आहिवच्चा य ॥१२॥

इन निधियों की स्थिति पल्योपम जितनी है, इन निधियों के रक्षक देवों के नाम भी निधि के नाम समान हैं और वह निधि उस अधिष्ठाता देव की आवास रूप है, ये निधियाँ महामूल्यवान् हैं जिनको कोई खरीद नहीं सकता है और उस देव के आधिपत्य में ही रहती हैं।१२।

एए णव णिहिरयणा पभूय-धण-रयण संचय-समिद्धा ।
जे वसमुवगच्छंति भरहाहिचक्कवट्टीणं ॥१३॥[2]

ये नौ निधियाँ निधिरत्न हैं अर्थात् निधियों में रत्न के समान हैं तथा धन और रत्नों के संचय से समृद्ध हैं, जो भरताधिप-भरत क्षेत्र के स्वामी भरत चक्रवर्ती राजा के अधीन होती हैं।१३।

---

१ एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठऽट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते ।

—ठाणं अ० ८, सु० ६०२

२ एगमेगे णं महाणिही णव-णवजोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते । एगमेगस्स । रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहियो पण्णत्ता, तं जहा—णेसप्पे पंडुयए जाव सव्वेसिं चक्कवट्टीणं ॥

—ठाणं अ० ९, सु० ६७३

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा—

सोत्थियसिरिवच्छ-जाव-दप्पणे।

तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगार दिव्वा य छत्तपडागा-जाव-संपट्ठिया।

तयणंतरं च णं वेरुलिय-भिसंत-विमलदंडं-जाव-अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

तयणंतरं च णं सत्त एगिंदियरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तं जहा—१ चक्करयणे २ छत्तरयणे ३ चम्मरयणे ४ दंडरयणे ५ असिरयणे ६ मणिरयणे ७ कागणिरयणे।

५६१. तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तं जहा– णेसप्पे पंडुयए-जाव-संखे,

तयणंतरं च णं सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तयणंतरं च णं बत्तीसं रायवरसहस्सा। पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तयणंतरं च णं सेणावइरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए। एवं गाहावइरयणे वड्ढइरयणे पुरोहियरयणे।

तयणंतरं च णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए।

तयणंतरं च णं बत्तीसं उडुकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं बत्तीसं जणवयकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं बत्तीसं बत्तीसइबद्धा णाडग-सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं तिण्णि सट्ठा सूयसया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया[1] तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं चउरासीइं हत्थि-सयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं चउरासीइं रह-सयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स-कोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयणंतरं च णं बहवे राईसर-तलवर-जाव-सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

जब भरत राजा आभिषेक्य हस्तिरत्न पर सवार हुआ कि उसके आगे ये आठ-आठ मंगल अनुक्रम से चलने लगे, यथा—

स्वस्तिक, श्रीवत्स—यावत् दर्पण।

तदनन्तर पूर्ण कलश, झारी (भृंगार), दिव्य छत्र और पताका—यावत्—चलने लगे।

तदनन्तर वैडूर्यरत्न का चमचमाता विमल दंड—यावत्—अनुक्रम से चलने लगा।

तदनन्तर एक इन्द्रियवाले सात रत्न अनुक्रम से आगे चलने लगे।

यथा—१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चामररत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणिरत्न, ७. काकणीरत्न।

५६१. तदनन्तर अनुक्रम से नव महानिधियाँ आगे चलने लगीं। यथा—नेसर्प, पांडुक—यावत्—शंख।

तदनन्तर अनुक्रम से सोलह हजार देव आगे चलने लगे।

तदनन्तर बत्तीस हजार राजा अनुक्रम से आगे चलने लगे।

तदनन्तर सेनापति रत्न अनुक्रम से आगे चलने लगे। इसी प्रकार गृहपति रत्न, वर्द्धकी रत्न, पुरोहित रत्न, आगे आगे चलने लगे।

तदनन्तर स्त्री रत्न अनुक्रम से आगे आगे चलने लगा।

तदनन्तर बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकों—राजा के लिए प्रत्येक ऋतु कल्याणकारी हो, इस तरह का आशीर्वाद देने वाले अनुक्रम से आगे आगे चलने लगे। तदनन्तर अनुक्रम से बत्तीस हजार जनपद कल्याणिको आगे आगे चलने लगे। तदनन्तर बत्तीस-बत्तीस का एक समूह जिनमें हैं ऐसी बत्तीस हजार नाटक मंडलियाँ अनुक्रम से आगे आगे चलने लगीं। तदनन्तर तीन सौ साठ सूत-स्वस्ति मंगल वाचक अनुक्रम से आगे-आगे चलने लगे। तदनन्तर अनुक्रम से अठारह श्रेणियाँ प्रश्रेणियाँ आगे-आगे चलने लगीं। तदनन्तर चौरासी लाख घोड़े पंक्तिक्रम से आगे चलने लगे। तदनन्तर चौरासी लाख हाथी अनुक्रम से आगे चलने लगे। तदनन्तर अनुक्रम से चौरासी लाख रथ आगे चलने लगे। तदनन्तर छियानवे करोड मनुष्य अनुक्रम से आगे चलने लगे। तदनन्तर अनेक राजा, ईश्वर, तलवर—कोतवाल—यावत्—सार्थवाह प्रभृति अनुक्रम से आगे चलने लगे।

---

१ इमाओ अट्ठारस सेणि-पसेणीओ—

कुम्भार१ पट्टइल्ला२, सुवण्णकारा३ य सुवकारा य। गंधव्वा५ कासवगा६, मालाकारा७ य कच्छकरा८ ॥१॥
तंबोलिया य एए, नवप्पयारा य नारुआ भणिया। अह णं णवप्पयारे, कारुअवण्णे पवक्खामि ॥२॥
चम्मयर जंतपीलग, गंछिय३ छिंपा य कंसकारे य। सीवग६ गुआर७ भिल्ला८ धीवर९ वण्णाइ अट्ठदस ॥३॥
—जम्बु० व० ३, सू० ४३ टीका।

५६५. तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसह-सालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता तहेव-जाव-अंजणगिरि-कूड-सण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे। तं चेव सव्वं जहा हेट्ठा।

५६५. अष्टमभक्त तप की आराधना सम्पन्न होने के पश्चात् वह भरत राजा पौषधशाला से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर यहाँ का शेष वर्णन पहले के अनुसार समझ लेना चाहिए—यावत्—अंजनगिरि के शिखर के समान गजपति पर नरपति आरूढ हुआ। यहाँ भी पूर्व वर्णन के अनुसार शेष सब वर्णन समझ लेना चाहिए।

णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति। सेसो सो चेव गमो-जाव-णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवर-वडिंसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

अन्तर इतना है कि नौ महानिधियाँ और चार सेनायें प्रवेश नहीं करती हैं। बाकी का वर्णन पूर्व पाठ के अनुसार समझना—यावत्—निर्घोषनाद द्वारा आकाश मण्डल को गुंजाते हुए विनीता राजधानी के बीचों बीच से होता हुआ जिस ओर अपना घर आवास है, जहाँ उत्तम विशाल ऊंचे भवन का प्रतिद्वार—प्रवेशद्वार है उस ओर गमन किया।

५६६. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणिं मज्झं-मज्झेणं अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीयं रायहाणिं सब्भंतरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं करेंति। अप्पेगइया देवा मंचाइमंचकलियं करेंति। एवं सेसेसु वि पएसु अप्पेगया देवा णाणाविह-राग-वसणुस्सिय-धयपडागा-मंडियभूमियं करेंति। अप्पेगइया देवा लाउल्लोइयमहियं करेंति, अप्पेगइया वा-गंधवट्टिभूयं करेंति, अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासिंति, सुवण्ण-रयण-वइर-आभरण-वासं वासेंति।

५६६. जब वह भरत राजा विनीता राजधानी के बीचोंबीच प्रवेश कर रहा था तब कितने ही देव विनीता राजधानी के अन्दर बाहर पानी को सींच रहे थे, साफ कर रहे थे उपलिप्त कर रहे थे अर्थात् चुना कलई से पोत रहे थे, कितने ही मार्गों को मंचों से युक्त कर रहे थे—दर्शकों को देखने के लिए मंच बना रहे थे। इसी प्रकार का शेष वर्णन समझ लेना चाहिए कि कितने ही देव अनेक प्रकार की रंगबिरंगी कपड़ों की ध्वजा पताकाओं को ऊपर आकाश में फहराकर नगरी की भूमि को शोभित कर रहे थे। कितने ही देव चाँदनियाँ बाँधकर सजावट कर रहे थे, कितने ही देव गन्धवर्तिका के समान सुगंधमय कर रहे थे, कितने ही देव चाँदी की वर्षा कर रहे थे, कितने ही सुवर्ण, रत्न, वैडूर्य, मणि, हीरा, आभूषणों की वर्षा बरसा रहे थे।

५६७. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसमाणस्स सिंघाडग-जाव-महापहपहेसु बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया इड्ढिसिया किब्बिसिया कारोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया णंगलिया मुहमंगलिया पूसमाणया वद्धमाणया लंख-मंखमाइया ताहिं ओरालाहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हियय-गमणिज्जाहिं हियय-पल्हायणिज्जाहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभियुणंता एवं वयासी—

५६७. जब वह भरत राजा विनीता राजधानी के मध्यातिमध्य में प्रविष्ट हो रहा था तब शृंगाटकों—यावत्—बड़े-बड़े राजमार्गों में बहुत से धनार्थी—धन की इच्छा रखने वाले, कामार्थी—रूप, रस आदि इन्द्रिय विषयों के इच्छुक, भोगार्थी, लाभार्थी, ऋद्धि-वैभव के अभिलाषी, किल्विषिक—हँसी मश्करी करने वाले, भांड आदि कोरोटिका—तबोली, कारवाहिक—राज्यकर से पीड़ित शांखिको—शंखवादक, चाक्रिक—चक्रधारी, हलधारी, मुखमंगलिक—मंगलवाचक, पूसमाणव, वद्धमाणव—वर्धमानक रनवास में काम करने वाले पौरुषहीन पुरुष लख-मंख आदि लोग अपनी अपनी उदार, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम शिव, धन्य धन्यरूप, मंगलरूप शोभा सम्पन्न, हृदय-अनुकूल—हृदय को आनन्द देने वाली वाणी द्वारा अनवरत—निरन्तर अभिनंदन करते हुए स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"जय जय णंदा! जय जय भद्दा! भद्दं ते अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि इंदो विव देवाणं, चंदो विव

'हे नंद! तेरा जय हो, हे भद्र! तेरा जय हो, हे भद्र जो अभी तक नहीं जीता है, उसको जीत लो, जिसको जीत लिया है

पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहि इट्ठाहिं-जाव-एवं वयासी—

जय जय नंदा, जय जय भद्दा, भद्दं ते—जाव-जय जय सद्दं पउंजंति।

—कप्प० सु० १५२

वर्ष तक गृहवास में रहे। उसके पश्चात् अपनी परम्परा का पालन करते हुए लोकांतिक देवों ने आकर के इष्टवाणी के द्वारा इस प्रकार कहा—

'हे नन्द ! (आनन्दकारी) तुम्हारी जय हो, विजय हो ! हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो ! —यावत्—इस प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग करते हैं।

२५८. पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए तं चेव सव्वं-जाव-दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले, तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकाल समयंसि विसालाए सिबियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव सव्वं। नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता, जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं[1] विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[2] एगं देवदूसमायाय[3] तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए[4]।

—कप्प० सु० १५३

२५८. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म से पहले (गृहवास में) भी उत्तम आभोगिकज्ञान (अवधिज्ञान) था। वह सारा वर्णन पूर्व वर्णन के समान यहाँ समझना चाहिये—यावत्—वर्षी दान दे करके हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पोष मास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व भाग के समय विशाला शिविका में बैठकर देव, मानव और असुरों के विराट् समूह के साथ (पूर्वोक्त वर्णन के समान) वाराणसी नगरी के मध्य में होकर निकलते हैं। निकलकर जिस ओर आश्रमपद नामक उद्यान है, जहाँ पर अशोक का उत्तम वृक्ष है, उसके निकट जाते हैं। निकट जाकर के शिविका को खड़ी रखवाते हैं। शिविका खड़ी रखवाकर के शिविका के नीचे उतरते हैं। नीचे उतरकर, अपने ही हाथों से आभूषण, मालायें, और अलंकार उतारते हैं। अलंकार आदि उतारकर, स्वयं के हाथ से पंच-मुष्टि लोच करते हैं। लोच करके निर्जल अष्टम भक्त पूर्वक विशाखा नक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर दूसरे तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहवास से निकलकर अनगार अवस्था को स्वीकार करते हैं।

उवसग्गसहणं—

२५९. पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा—दिव्वा वा, माणुस्सा वा, तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा, पडिलोमा वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने-जाव-सम्मं सहइ तितिक्खइ खमइ अहियासेइ।

—कप्प० सु० १५४।

उपसर्ग सहन—

२५९. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी दिन तक नित्य शरीर की ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किए हुए थे। अर्थात् उन्होंने शरीर को त्याग दिया हो इस प्रकार रहे, इस साधनाकाल में जो कोई भी उपसर्ग हुए, जैसे देव अथवा मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आते, उनको सम्यक् प्रकार से सहन करते, तितिक्षा पूर्वक, (सहिष्णुता से अन्य किसी की अपेक्षा के बिना) क्रोधरहित, मन को स्थिर कर सहन करते।

केवलनाणं—

२६०. तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए ईरियासमिए-जाव-अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायइपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स

केवलज्ञान—

२६०. इसके पश्चात् भगवान् पार्श्व अनगार हुए,—यावत्—ईर्यासमिति से युक्त हुए और इस प्रकार आत्मा को भावित करते-करते तिरासी रात्रि-दिन व्यतीत हो गये। चौरासीवां दिन चल रहा था। ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आया, उस चैत्र की चतुर्थी को, पूर्वाह्न में आंवले (धातकी) के वृक्ष के नीचे षष्ठ तप किये हुए, शुक्लध्यान

१. [illegible] सू० १२०, [illegible]
२. [illegible]
३. सम० सू० १५७, सु० ११।
४. सम० सू० १५७, सु० २३।

अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे-जाव-केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने-जाव-जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कप्प० सु० १५५।

में लीन थे। उस समय विशाखा नक्षत्र का योग प्राप्त होने पर उन्हें उत्तमोत्तम केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ—यावत्—वे सम्पूर्ण लोकालोक के भावों को देखते हुए विचरने लगे।

गणहराइसंपया—

२६१. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—गाहा—

सुम्भे य अज्जघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य[1]।—कप्प० सु० १५६

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्ण-पामोक्खाओ सोलस्स समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था[2]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूला-पामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपदा होत्था[3]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंद-पामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था[4]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदा-पामोक्खाणं समणोवासिगाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था[5]।

२६२. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया चोद्दस-पुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-जाव-चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था[6]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दस सया ओहिनाणीणं[7]।

दस सया केवलनाणीणं[8]।

२६३. एक्कारस सया वेउव्वियाणं[9], अद्धट्ठमसया विउलमईणं[10], छस्सया वाईणं[11], छ सया रिउमईणं[12],

२६४. बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था[13]।

—कप्प० सु० १५७

गणधरादि (शिष्य) संपदा—

२६१. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में आठ गणधर थे। वे इस प्रकार हैं—

गाथार्थ १—शुम्भ, २—अज्जघोष आर्यघोष, ३—वसिष्ठ ४—ब्रह्मचारी, ५—सोम, ६—श्रीधर, ७—वीरभद्र ८—यश।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में अज्जदिण्ण (आर्यदत्त) आदि सोलह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट—श्रमण—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में पुष्पचूला आदि अड़तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्द आदि एक लाख चौंसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका—सम्पदा थी।

२६२. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में साढ़े तीन सौ जिन नहीं, किन्तु जिनके सदृश सर्वाक्षर संयोगों को जानने वाले—यावत्—चौदह—पूर्वधारियों की सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में चौदह सौ अवधिज्ञानियों की सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में एक हजार केवल-ज्ञानियों की सम्पदा थी।

२६३. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिवालों की तथा छह सौ ऋजुमति ज्ञान वालों की सम्पदा थी। साढ़े सात सौ विपुलमतियों की (विपुलमति मनः पर्यव ज्ञान वालों की) (संपदा थी)

२६४. छह सौ वादियों की और बारह सौ अनुत्तरौपपातिकों की अर्थात् अनुत्तर विमान में जाने वालों की सम्पदा थी।

---

१ ठाणं अ० ८, सु० ६१७। सम० स० ८, सु० ८।
२ सम० सम० १६ सु० ४।
३ सम० सु० ३८, सु० १।
४ सप्त० स्या० ११४ गा० २४२।
५ सम० स० १२६ सु० १।
६ सम० १०५, सु० १।
७ सप्त० स्या० ११८ गा० २५७।
८ सम० स० ११३, सु० ८।
९ सम० स० ११४, सु० २।
१० सत्त० स्या० ११७, गा० २५४।
११ (क) ठाण० अ० ६ सु० ५२०।
(ख) सम० स० १०९, सु० ४।
१२ सत्त० स्या० ११७, गा० २५४।
१३ सत्त० स्या० १२३, गाथा० २६९।

अंतकड भूमी—

२६५. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा–

जुयंतकडभूमी य, परियायंतकडभूमी य। -जाव-चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकडभूमी

तिवासपरियाए अंतमकासी।[1]

—कप्प० सू० १५८।

अन्तकृत भूमि—

२६५. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समय में अन्तकृतों की भूमि दो प्रकार की थी। यथा—

१—युगान्तकर भूमि (युग-अंतकृत् भूमि) २—पर्यायान्तकर भूमि (पर्याय-अन्तकृत् भूमि। यावत् अर्हत् पार्श्व से चतुर्थ युग पुरुष तक युगान्तकर भूमि थी।

अर्हत् पार्श्व का केवलीपर्याय तीन वर्ष का होने पर अर्थात्—उनको केवलज्ञान हुए तीन वर्ष व्यतीत होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की। वह उनके समय की पर्यायान्तकर भूमि हुई।

अगारवासाइं निव्वाणं य—

२६६. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं-वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता[2], तेसीतिं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता[3], देसूणाइं सत्तरिं वासाइं केवलिपरियायं पाउणित्ता[4], बहुपडिपुन्नाइं सत्तरिं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता[5], एक्कं वाससयं सव्वाउयं[6] पालित्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचोत्तीसइमे[7] मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं[8] विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि[9] वग्घारियपाणी कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।[10]

—कप्प० सु० १५९

आगारवासादि और निर्वाण—

२६६. उस काल उस समय में पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर तिरासी रात्रिदिन तक छद्मस्थ पर्याय में रह करके, पूर्ण नहीं, किन्तु कुछ कम सत्तर (७०) वर्ष तक केवलीपर्याय में रहकर, इस प्रकार पूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके, कुल सौ वर्ष तक सम्पूर्ण आयु भोगकर वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर दुषम—सुषम नामक अवसर्पिणी काल के बहुत व्यतीत हो जाने पर, वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष अर्थात् जब श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, तब श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन सम्मेदशिखर पर्वत पर अपने सहित चौंतीस पुरुषों के साथ मासिक भक्त का अनशन कर पूर्वाह्न के समय, विशाखा नक्षत्र का योग आने पर दोनों हाथ लम्बे किये हुए इस प्रकार ध्यान मुद्रा में अवस्थित रहकर काल धर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

॥ इइ पास-जिण-चरियं ॥

॥ पार्श्व चरित्र समाप्त ॥

□ □ □

१ सत्त० स्था० १५८-५९, गा० ३२३-२४।
२ सम० स० ३०, सु० ६।
३ आव० नि० चु० गा० २३९।
४ आव० नि० चु० गा० ३०२।
५ सम० स० ७०, सु० १।
६ प्रव० द्वा० ३२, गा० ३८७।
७ आव० नि० चु० गा० ३०८।
८ सत्त० स्था० १५३, गा० ३१७।
९ ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
१० सत्त० स्था० १५५, गा० ३२२।

६. महावीर-चरियं

पुव्वभवे पोट्टिलो—

२६७. समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठे विमाणे देवत्ताए उववण्णे[1]।

—सम० स० १३४।

कल्लाणयाणि—

२६८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था—

१. हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते,

२. हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए,

३. हत्थुत्तराहिं जाए,

४. हत्थुत्तराहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,

५. हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पण्णे।

साइणा भगवं परिनिव्वुए।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९८८

—कप्प० सु० १।

देवाणंदागब्भागमणं—

२६९. समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए—सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमाए समाए वीतिक्कंताए, सुसमदुसमाए समाए वीतिक्कंताए, दुसमसुसमाए समाए बहु वीतिक्कंताए—पण्णत्तरीए वासेहिं, मासेहिं य अद्धणवमेहिं सेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे—आसाढसुद्धे, तस्स णं

६. महावीर-चरित्र

पूर्वभव में पोट्टिल—

२६७. श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर भव से पूर्व छट्ठे पोट्टिल के भव में एक करोड़ वर्ष का श्रामण्य पर्याय पालकर सहस्रार कल्प में सर्वार्थ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

कल्याणक—

२६८. उस काल उस समय भगवान महावीर के पाँच (कल्याण) हस्तोत्तर (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र में हुए।

१—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् च्युत हुए, च्यवन कर गर्भ में आये।

२—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् एक गर्भ से दूसरे गर्भ में संहरण किये गये।

३—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् जन्मे।

४—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् गृहवास त्यागकर मुण्डित होकर अनगार बने।

५—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् को अनन्त, अनुत्तर, अव्याबाध, निरावरण समग्र और परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

स्वाति नक्षत्र में भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

देवानन्दा के गर्भ में आगमन—

२६९. इस अवसर्पिणी काल में सुषमा-सुषम काल व्यतीत हो चुका था, सुषम समय व्यतीत हो चुका था, सुषम-दुषमा समय व्यतीत हो चुका था और दुषम-सुषम नामक आरा भी प्रायः समाप्त हो गया था। केवल पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ मास शेष रह गये थे तब श्रमण भगवान् महावीर ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास, आठवें

---

१ वीरस्स पुव्वभवा :—

'ओसप्पिणी इमीए, पढमं चिय गामचिंतग-भवंमि१ ॥ नीसेस सोक्खमूलं, सम्मत्तमणुत्तमं पत्तो ॥१॥-१७॥
तत्तो पाविय देवत्तमुत्तमं२ भरहचक्कवट्टिस्स ॥ मिरिइति सुओ३ होउं, काउं जिणदेसियं दिक्खं ॥२॥-१८॥
दुस्सहपरिसहनिम्महियमाणसो पयडिउं तिदंडिवयं ॥ मिच्छत्तविलुत्तमई, कविलस्स कुदेसणं काउं ॥३॥-१९॥
तद्दोसेणं अयराणं४, वड्ढिउं कोडकोडि संसारं ॥ १८ छब्भवगणे पुणरवि, पारिवज्जं पवज्जित्ता ॥४॥-२०॥
दीहं संसारं हिंडिऊण, रायगिहंमि रायसुओ ॥ होऊण विस्सभूई१९, घोरं संजममणुचरित्ता ॥५॥-२१॥
मरणे नियाणबंधं, निव्वतिय सुरसुहं१० च भोत्तूणं ॥ पोयणपुरे तिविट्ठ२१, परिपालिय वासुदेवत्तं ॥६॥-२२॥
मूयाए पियमित्तो२२ चक्कित्तं२३ संजमं च अणुचरिअं ॥ छत्तग्गाए नंदण२४, नरनाहत्तं२५ च पव्वज्जं ॥७॥-२३॥
परिपालिय वीसइकारणेहिं, तित्थाहिवत्तमज्जिणिउं ॥ पाणयकप्पा चविउं२६, कुण्डग्गामंमि नयरंमि ॥८॥-२४॥
सिद्धत्थरायपुत्तो२७, होउं जंतूणमुद्धरणहेउं ॥ सव्वविरइं पवज्जिय, दुव्विसहपरीसहे सहिउं ॥९॥-२५॥

—गुणचंदरइयं महा० प० १ गा० १७-२५

आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, महाविजयसिद्धत्थ - पुप्फुत्तर - पवर-पुण्डरीय- दिसासोवत्थिय - वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवे, दीवे भारहे वासे, दाहिणड्ढभरहे दाहिणमाहणकुण्ड–पुरसन्निवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायण-सगोत्ताए सीहोब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिसि गब्भं वक्कंते।[1] —आया० सु० २, अ० १५, सु० ९८९

पक्ष अर्थात् आषाढ़ शुक्ल छट्ठ के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में महाविजयसिद्धार्थ, पुष्पोत्तर प्रवर, पुण्डरीक, दिशा सौवस्तिक वर्धमान महाविमान से बीस सागरोपम की आयुष्य भोगने के पश्चात् आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर च्यवकर इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत के दक्षिण माहणकुण्ड संन्निवेश (नगर) में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थानभूत कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुए।

---

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे, तस्स णं आसाढ-सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुण्डरीयाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमट्ठियाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएण अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणद्धभरहे इमीसे ओसप्पिणीए—

सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमदुस्समाए विइक्कंताए।

दुस्समसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए पंचहत्तरीए वासेहिं अद्धनव-मेहिं य मासेहिं सेसेहिं

इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं

दोहि य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोतमसगुत्तेहिं,

तेवीसाए तित्थयरेहिं वीइक्कंतेहिं-समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थकरे पुव्वतित्थकरनिद्दिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा—

१गय, २वसह, ३सीह, ४अभिसेय, ५दाम, ६ससि, ७दिणयरं, ८ झयं, ९कुम्भं।
१० पउमसर, ११ सागर, १२ विमाण-भवण, १३ रयणुच्चय, १४सिहिं च॥

तए णं सा देवाणंदा माहणी इमेतारूवे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिया पीइमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबुयं पिव समुस्ससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता आतुरियमचवलमसंभंताए रायहंससरिसीए गईए जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं जहा—गय-जाव-सिहिं च।

एएसि णं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं-जाव-चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?।

तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए धाराहयकलंबुयं पिव समुस्ससियरोमकूवे सुमिणोग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणुपविसइ ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धि-विन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, करित्ता देवाणंदा-माहणिं एवं वयासी—

"ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा एवं सिवा धन्ना मंगल्ला ! सस्सिरीया आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा। तं जहा—
अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोग लाभो देवाणुप्पिए !
पुत्त लाभो देवाणुप्पिए ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए !

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमाल-पाणि-पायं अहीण-पडिपुन्न-पंचिंदिय-सरीरं लक्खण वंजणगुणोववेयं माणुम्माण-पमाण-पडिपुण्णं सुजाय-सव्वंग-सुन्दरंगं ससि-सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते १ रिउव्वेय, २ जउव्वेय, ३ सामवेय, ४ अथव्वणवेय, इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं, संगोवगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अण्णेसु य बहुसु बंभन्नएसु परिव्वायएसु नएसु परिनिट्ठिए यावि भविस्सइ ।

तं ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-मंगल-कल्लाणकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ।"

तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी—

"एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह"— त्तिकट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरन्दरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पाकसासणे दाहिणड्ढ-लोगाहिवई बत्तीसविमाण-सय-सहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबर-वत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेम-चारु-चित्तचंचल-कुण्डल-विलिहिज्जमाणगंडे भासुर-बोंदी पलंब-वणमालधरे सोहम्मकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सुहम्माए सभाए सक्कंसि सीहासणंसि निसण्णे ।।

से ण तत्थ बत्तीसाए विमाणावास-सयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिय-सहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं, सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीए आयरक्ख-देवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मकप्प-वासीणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्टगीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घड-मुइंग-पडुपडह-वाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरई ।।

इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ विहरइ ।

तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे माहणकुण्डग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ ।

पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए परमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणसिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए धाराहय-नीव-सुरहि कुसुम-चंचुमालइय-ऊससियरोमकूवे वियसिय-वर-कमल-नयण-वयणे पयलिय-वर-कडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुण्डल-हार-विरायंत-वच्छे पालंब-पलंबमाण-घोलंत-भूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ ।

सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलिय-वरिट्ठ-रिट्ठ-अंजण-निउणोविय मिसिमिसिंत-मणि-रयण-मंडियाओ पाउयाओ ओमुयइ ।

ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ ।

एगसाडियं उत्तरासंगं करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ ।

अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ ।

पच्चुण्णमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं ।
आइगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं
पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं

गब्भगयस्स तिण्णि णाणाइं—

२७०. समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था।

चइस्सामि त्ति जाणइ, चुएमि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणेइ, सुहुमे णं से काले पण्णत्ते।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९८९।

गर्भस्थ तीनज्ञान—

२७०. श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे।

वे यह जानते थे कि मैं च्यवन करूंगा, च्युत होकर गर्भ में आ गया हूँ यह जानते थे, किन्तु च्यवन समय को नहीं जानते थे। क्योंकि वह काल अत्यन्त सूक्ष्म कहा गया है।

गब्भ-साहरणं—

२७१. तओ णं समणे भगवं महावीरे अणुकंपएणं देवेणं "जीयमेयं," ति कट्टु जे से वासाण तच्चे मासे, पंचमे पक्खे-आसोयबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहि नक्खत्तेहिं जोगमुवागएणं बासीतीहिं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं[1] तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे[2] दाहिणमाहणकुण्डपुर-सन्निवेसाओ उत्तरखत्तियकुण्डपुर-सन्निवेसंसि णायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठ-सगोत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करेत्ता, सुभाणं पुग्गलाणं पक्खेवं करेत्ता कुच्छिंसि गब्भं साहरइ।

गर्भ—साहरण—

२७१. तदनन्तर श्रमण भगवान् का हित और अनुकंपा करने वाले देव ने 'यह जीत आचार है' ऐसा कहकर वर्षा काल के तीसरे मास पाँचवें पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्ण पक्ष और उस अश्विन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग प्राप्त होने पर बियासी रात-दिन के बीतने और तेरासीवें दिन की रात्रि के समय दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर संन्निवेश से उत्तरक्षत्रिय कुंडपुर संन्निवेश में ज्ञातवंशीय काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वासिष्ठ गोत्री त्रिशला रानी के अशुभ पुद्गलों का अवहरण करके अर्थात् उनको दूर करके शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षि में गर्भ को प्रतिष्ठित किया तथा—

लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं
अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं
धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं
दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा, (णं) अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं वियट्टछउमाणं
जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं
सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुनरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं।

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरिमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स-जाव-संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगये, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं,"-ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने॥

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

—न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं नं अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, भिक्खायकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा।

एवं खलु अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा, खत्तियकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा, अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्ध-जाति-कुल-वंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा।

अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीहिं वीइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं जन्नं अरहंता वा, -जाव-माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा, वक्कमंति वा, वक्कमिस्संति वा।

नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा, निक्खमंति वा, निक्खमिस्संति वा।

अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे माहणकुण्डग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते॥ —कप्प० सु० २१४-१९

1 सम० स० ८२, सु० २।

2 सम० स० ८३, सु० १।

जे वि य से तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भे, तंपि य दाहिणमाहणकुण्डपुर-सन्निवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्सकोडाल-सगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायण-सगोत्ताए कुच्छिसि साहरइ ।

जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ था उसको दक्षिण ब्राह्मण कुंडपुर संन्निवेश में ले जाकर कोडाल गोत्री ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीय देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित किया ।

२७२. समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था। साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिएमि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ, समणाउसो ![1]

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९८९।९९० ।

२७२. हे आयुष्मन् श्रमणो ! श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान युक्त थे । मैं संहरण किया जाऊँगा यह जानते थे, मेरा संहरण हो रहा है, यह जानते थे और मैं संहृत किया जा चुका हूँ यह भी जानते थे ।

---

१ क—भग० स० ५, उ० ४, सु० ७६, ७७ ।

ख—तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो वा-जाव-किविणकुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा-जाव-अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु वा साहरावित्तए । तं सेयं खलु मम वि समणं भगवं महावीरं चरिमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुण्डग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरावित्तए, जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए, जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरावित्ताए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ, हरिणेगमेसिं पायत्ताणिया-हिवइं देवं सद्दावित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जन्नं अरहंता वा-जाव-भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ।

एवं खलु अरहंता वा-जाव-हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ।

अत्थि पुण एस भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं जन्नं अरहंता वा- जाव-भिक्खागकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा, निक्खमंति वा, निक्खमिस्संति वा ।

अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे माहणकुण्डग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो वा, अंतकुलेहिंतो वा -जाव-हरिवंसकुलेसु वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु साहरावित्तए ।

तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुण्डग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पमेव पच्चप्पिणाहि ॥

तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठे-जाव-हयहियए करयल-जाव-त्ति कट्टु एवं जं देवो आणावेइ त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ ।

वयणं पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ ।

पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरच्छिमदिसीभागं अवक्कमइ ।

अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ ।

वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता, संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तं जहा—

रयणाणं वयराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोइरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं रययाणं जायरूवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियादियति ।

जम्म-कल्लाणयकालो—

२७३. तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसला खत्तियाणी अह अण्णया कयाइ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं, अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीतिक्कंताणं, जे से गिम्हाणं पढमे मासे, दोच्चे पक्खे-चेत्तसुद्धे, तस्स णं चेत्तसुद्धस्स तेरसीपक्खेणं, हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगोवएणं समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया।[1]

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९९१।

जन्म-कल्याणक काल—

२७३. उस काल उस समय में त्रिशला क्षत्रियाणी ने अन्य किसी समय नव मास साढ़े सात दिन रात व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष-चैत्र शुक्ल, उस चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को हस्तोत्तर नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर स्वस्थ माता ने श्रमण भगवान् महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया।

परियादित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ।

समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ।

उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीयीवयमाणे वीतीवयमाणे तिरियमसंखेज्जाणं दीवासमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव माहणकुण्डग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ,

तेणेव उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ,

करित्ता देवाणंदाए महाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ,

ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पोग्गले अवहरइ,

अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ,

सुहे पोग्गले पक्खिवइत्ता 'अणुजाणउ मे भगवं!' ति कट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव खत्तियकुण्डग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ,

ओसोवणिं दलयित्ता असुहे पोग्गले अवहरइ,

असुहे पोग्गले अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ,

सुहे पोग्गले पक्खिवइत्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ। जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जइणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेण जोयणसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देवराया तेणामेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि होत्था। साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिए मि त्ति जाणइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले, तस्स णं ओसायबहुलस्स तेरसीपक्खेणं बासीइराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयणसंदिट्ठेणं माहणकुडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए महाणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिसि साहरिए।

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए आवि होत्था, साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिएमि, त्ति जाणइ।

—कप्प० सु० २०—३१।

१. जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए हडे त्ति पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं

जहा—गाहा—गय-वसह-सीह-अभिसेय, दाम-ससि-दिणयरं झयं-कुम्भं ।
पउमसर-सागरं-विमाण-भवण-रयणुच्चय-सिहिं च ॥१॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे विचित्तउल्लोयतले मणि-रयण-पणासियंधयारे बहुसम-सुविभत्त-भूमिभागे पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फ-पुंजोवयारकलिए कालागरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-मघमघेंत गंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधगंधिए गंधवट्टिभूए तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोयणे उभओ उन्नये मज्झे णयगंभीरे गंगा-पुलिण-वालु-उद्दाल-सालिसए-तायविय-खोमिय-दुगुल्ल-पट्ट-पडिच्छन्ने सुविरइय-रयत्ताणे रत्तंसुय-संवुए सुरम्मे आयीणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगंध-वर-कसुम-चुण्णसयणोवयारकलिए पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धा, तं जहा—गाहा—गय-वसह-जाव सिहिं च ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए-तओ य चउद्दंतमूसिय-गलिय-विपुल-जलहर-हार-निकर-खीरसागर ससंक-किरण-दगरय-रयय-महासेल-पंडरतरं समागय-महुयर-सुगंध-दाणवासियं कवोलमूलं, देवराय-कुंजरं वरप्पमाणं पेच्छइ, सजलघण-विपुल जलहर-गज्जिय-गंभीर-चारु-घोसं इमं सुभं सव्वलक्खणकयंवियं वरोरु ।१।

तओ पुणो धवल-कमलपत्त-पयराइरेगरूवप्पभं पहासमुदओवहारेहिं सव्वओ चेव दीवयंतं अइसिरिभर-पिल्लणा-विसप्पंत-कंत-सोहंत-चारु-ककुहं तणुसुइ-सुकुमाल लोमनिद्धच्छविं थिर-सुबद्ध-मंगलोवचिय-लट्ठ-सविभत्त-सुन्दरंगं पेच्छइ, घण-वट्ट-लट्ठ-उक्किट्ठ-विसिट्ठ-तुप्पग्ग-तिक्खसिंगं दंतं सिवं समासोभंतसद्धदंतं वसभं अमियगुण-मंगलमुहं ।२।

तओ पुणो हार-निकर-खीरसागर-ससंक-किरण-दगरय-रयय-महासेल-पंडरगोरं रमणिज्ज-पेच्छणिज्जं थिर-लठ्ठ-पउट्ठं वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्ख-दाढा-विडंवियमुहं परिकम्मिय-जच्च-कमल-कोमल-माइय-सोभंत-लट्ठउट्ठं रत्तोप्पल-पत्त-मउय-सकुमाल तालु-निल्लालियग्गजीहं मूसागय-पवर-कणग-ताविय-आवत्तायंत-वट्ट-विमल-तडिसरिसनयणं विसाल-पीवर-वरोरुं पडिपुन्न-विमलखंधं मिउविसय-सुहुम-लक्खण-पसत्थ-विछिन्न-केसराडोवसोहियं ऊसिय-सुनिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-लंगूलं सोम्मं सोम्माकारं लीलायंतं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवणमइवयंतं पेच्छइ सा गाढ-तिक्खनहं सीहं वयणसिरी-पल्लव-पत्त-चारु-जीहं ।३।

तओ पुणो पुण्णचंद-वयणा उच्चागय-ठाण-लट्ठसंठियं पसत्थरूवं सुपइट्ठिय-कणग-कुम्म-सरिसोवमाणचलणं अच्चुन्नय-पीण-रइय-मंसल-उन्नय-तणु-तंब-निद्धनहं कमल-पलास-सुकुमाल-कर-चरण-कोमल-वरंगुलि कुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंघं निगूढ-जाणुं गयवर-कर-सरिस-पीवरोरुं चामीकर-रइय-मेहला-जुत्त-कंत-विच्छिन्न-सोणि-चक्कं जच्चंजण-भमर-जलय-पकर-उज्जुय-सम-संहिय-तणुय-आदेज्ज-लडह-सुकुमाल-मउयरमणिज्ज-रोमराइं नाभी-मंडल-विसाल-सुन्दर-पसत्थ-जघणं करयलमाइय-पसत्थ-तिवलीय-मज्झं नाणा-मणि-रयण-कणग-विमल-महातवणिज्जाहरण-भूसण-विराइयंगमंगिं हारविरायंत-कुन्दमाल-परिणद्ध-जलजलिंत-थणजुयल-विमल-कलसं आइय-पत्तिय-विभूसिएण य सुभग-जालुज्जलेण मुत्ता-कलावएणं उरत्थ-दीणारमालियविरइएणं कंठमणिसुत्तएण य कुंडल-जुयलुल्लसंत-अंसोवसत्त-सोभंत-सप्पभेणं, सोभागुण-समुदएणं आणण-कुडुंविएण कमलामल-विसाल-रमणिज्ज-लोयणं कमल-पज्जलंत-करगहिय-मुक्कतोयं लीलावाय-कय-पक्खएणं सुविसय-कसिण-घण-सण्ह-लंबंत-केसहत्थं, पउमद्दह-कमल-वासिणिं सिरिं भगवइं पिच्छइ हिमवंत-सेलसिहरे दिसागइंदोरु-पीवर-कराभिसिच्चमाणिं ।४।

तओ पुणो सरस-कुसुम मंदार-दाम-रमणिज्जभूयं चंपगासोग-पुन्नाग-नाग-पियंगु-सिरीस-मोग्गरग-मल्लिया-जाइ-जूहिय-कोल्ल-कोज्ज-कोरिंट-पत्त-दमणय-णवमालिय-बउल-तिलय-वासंतिय-पउमुप्पल-पाडल-कुंदाइमुत्त-सहकार-सुरभिगंधि अणुवम-मणोहरेण गंधेणं दस दिसाओ वि वासयंतं सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-मल्ल-धवल-विलसंत-कंत-बहुवन्न-भत्तिचित्तं छप्पय-महुयरि-भमरगण-गुमुगुमायंत-निलिंत-गुंजंत-देसभागं दाम पेच्छइ नभंगण-तलाओ ओवयंतं ।५।

ससिं च गोखीर-फेण-दगरय-रयय-कलस-पंडरं-सुभं हियय-नयणकंतं पडिपुन्नं तिमिर-निकर-घणगुहिर-वितिमिरकरं पमाण-पक्ख-तराय-लेहं कुमुद-वण-विबोहयं निसासोभगं सुपरिमट्ठ-दप्पण-तलोवमं हंसपडुवन्नं जोइसमुहमंडगं तमरिपुं मयणसरापूरं समुद्द-दगपूरगं दुम्मणं जणं दइयवज्जियं पायएहिं सोसयंतं पुणो सोम्मचारुरूवं पेच्छइ सा गगण-मंडल-विसाल-सोम्म-चंकम्ममाण-तिलगं रोहिणि-मण-हियय-वल्लहं देवी पुन्नचंदं समुल्लसंतं ।६।

तओ पुणो तमपडलपरिप्फुडं चेव तेयसा पज्जलंतरूवं रत्तासोग-पगास-किंसुय-सुग-मुह-गुंजद्ध-राग-सरिसं कमलवणालंकरणं अंकणं जोइसस्स अंबरतलपईवं हिम-पडल-गलग्गहं गहगणोरुनायगं रत्तिविणासं उदयत्थमणेसु मुहुत्तसुहदंसणं दुन्निरिक्खरूवं रत्तिमुद्धा-यंतदुप्पयार-पमद्दणं सीयवेगमहणं पेच्छइ मेरुगिरि-सयय-परियट्टयं विसालं सूरं रस्सी-सहस्स-पयलिय-दित्त-सोहं ।७।

तओ पुणो जच्च-कणग-लट्ठि-पइट्ठियं समूह-नील-रत्त-पीय-सुक्किल्ल-सुकुमालुल्लसिय-मोरपिच्छ-कयमुद्धयं धयं अहियससिरीयं फालिय-संखंक-कुंद-दगरय-रयय-कलसपंडरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणेणं रायमाणं भेत्तुं गगणतलमंडलं चेव ववसिएण पेच्छइ सिव-मउय-मारुय-लया-हय-पकंपमाणं अतिप्पमाणं जणपिच्छणिज्जरूवं ।८।

तओ पुणो जच्च-कंचणुज्जलंतरूवं निम्मल-जल-पुन्नमुत्तमं दिप्पमाणसोहं कमल-कलावपरिरायमाणं पडिपुण्ण-सव्वमंगल-भेय-समागमं पवररयणपरायंतकमलट्ठियं नयण-भूसणकरं पभासमाणं सव्वओ चेव दीवयंतं सोमलच्छी-निभेलणं सव्वपावपरिवज्जियं सुभं भासुरं सिरिवरं सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-आसत्त-मल्लदामं पेच्छइ सा रययपुन्नकलसं ।९।

तओ पुणो रविकिरण-तरुण-बोहिय-सहस्सपत्त-सुरहितर-पिंजरजलं जलचर-पहगर-परिहत्थग-मच्छ-परिभुज्जमाण-जलसंचयं महंतं जलंतमिव कमल-कुवलय उप्पल-तामरस-पुण्डरीय-उरुसप्पमाण-सिरिसमुदएहिं रमणिज्ज-रूवसोभं पमुइयंत-भमरगण मत्तमहुकरिगणोक्करोलिब्भमाण-कमलं कादंबग-बलाहग-चक्काक-कलहंस-सारस-गव्विय-सउणगण-मिहुण-सेविज्ज-माण-सलिलं पउमिणिपत्तोवलग्ग-जलबिंदुमुत्तचित्तं च पेच्छइ सा हियय-णयणकंतं पउमसरं नाम सरं सररुहाभिरामं ।१०।

तओ पुणो चंदकिरणरासि-सरिस-सिरिवच्छसोहं चउगमण-पवड्ढमाण-जलसंचयं चवल-चंचलुच्चायप्पमाण-कल्लोल-लोलंततोयं पडुपवणाहय चलिय-चवल-पागड-तरंग-रंगंत-भंग-खोखुब्भमाण-सोभंत-निम्मल-उक्कड-उम्मीसह-संबंध-धावमाणोनियत्त-भासुर-तराभिरामं महामगर-मच्छ-तिमितिमिंगिल-निरुद्ध-तिलितिलियाभिघायकप्पूर-फेण-पसर-महानई-तुरियवेग-समागयभम-गंगावत्त-गुप्पमाणुच्चलंत-पच्चोनियत्त-भमाण-लोलसलिलं पेच्छइ खीरोय-सागरं सरय-रयणिकर-सोम्मवयणा ।११।

तओ पुणो तरुणसूर मंडलसमप्पभं उत्तम-कंचण-महामणि-समूह-पवर-तेय-अट्ठसहस्स-दिप्पंत-नभप्पईवं कणग-पयर-पलंबमाण-मुत्तासममुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-ससत्त-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं गंधव्वोपवज्जमाण-संपुण्णघोसं निच्चं सजलघण-विउल-जलहर-गज्जिय-सद्दाणुणादिणा देवदुन्दुहि-महारवेणं सयलमवि जीवलोयं पपूरयंत कालागरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-मघमघंत गंधुद्धुयाभिरामं निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पिच्छइ सा सातोवभोग विमाणवर-पुण्डरीयं ।१२।

तओ पुणो पुलग-वेरिंदनील-सासग-कक्केयण-लोहियक्ख-मरगय-मसारगल्ल-पवाल-फलिह-सोगंधिय-हंसगब्भ-अंजण-चंदप्पभ-वरदयण-महियलपइट्ठिय गगनमण्डलांत पभासयंत तुंगं मेरुगिरि-सन्निगासं पिच्छइ सा रयणनियररासिं ।१३।

सिहिं च सा विउलुज्जल-पिंगल-महु-घय-परिसिच्चमाण-निद्धूम-धगधगाइय-जलंत-जालुज्जलाभिरामं तरतमजोगेहिं जालपयरेहिं अण्णमण्णमिव अणुपइण्णं पेच्छइ जालुज्जलणगं अंबरं व कत्थइपयंतं अइवेगचंचलं सिहिं ।१४।

एमेते एयारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुरूवे सुविणे दट्ठूण सयणमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयणा हरिसपुलइयंगी ।

गाहा—एए चोद्दस सुमिणे, सव्वा पासेइ तित्थयरमाया । जं रयणिं वक्कमई, कुच्छिसि, महायसो अरहा ।।१।।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठ-जाव-हयहियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ,

सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ,

सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढातो पच्चोरुहइ,

पच्चोरुहित्ता अतुरियं अचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं हिययगमणिज्जाहिं हियय-पल्हायणिज्जाहिं मिय-महुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुण्णया समाणी नाणामणि रयण-भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि [तारिसयंसि सयणिज्जंसि वन्नओ-जाव-पडिवुद्धा । तं जहा—गाहा—गयवसह-जाव-सिहिं च ।....तं एतेसिं सामी ! ओरालाणं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणसिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए धाराहय-नीव-सुरहि-कुसुम-चंचुमालइय-रोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हति,
ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसइ,

ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएण बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ,

अत्थोग्गहं करित्ता तिसलं खत्तियाणीं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-मंगल्लाहिं मियमहुरस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—
"ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ! तं जहा—

अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं अम्हं कुल-दीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिययं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलदिणयरं कुलआहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमाल-पाणिपायं अहीण-संपुन्न-पंचेंदियसरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं माणुम्माण-पमाण पडिपुन्न-सुजाय-सव्वंग-सुन्दरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियं सुदंसणं दारयं पयाहिसि" ॥

से वि य णं दारिए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्न-विउल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, तं जहा—

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! समिणा दिट्ठा-जाव-दोच्चं पि तच्चं पि अणुवूहइ ।
तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हिया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिमेयं सामी ! इच्छियमेयं सामी ! पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी !

सच्चे णं एसमट्ठे स जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ । ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-रयण-भत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंस-सरिसीए गईए, जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला महासुमिणा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्संति" त्ति कट्टु देवय-गुरु-जणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं समिणजागरियं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूस-कालसमयंसि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ कोडुंबियपुरिसे सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरिज्जं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्त-सम्मज्जिओवलित्तं सुगंध-वर-पंचवन्न-पुप्फोवयार-कलियं कालागरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत धूव-मघमघेंत गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता य सीहासणं रयावेह, सीहासणं रयावित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-जाव-हियया करयल-जाव-कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति,

एवं सामि ! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति,
पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छंति,

तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्त-जाव-सीहासणं रयावेंति,
सीहासणं रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति,

तेणेव उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिल्लियम्मि अहा पंडुरे पभाए रत्तासोग-प्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-राग-सरिसे कमलायर-संडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ।

सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ,
पायपीढाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ,
अट्टणसालं अणुपविसित्ता अणेग-वायाम-जोग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते सयपाग-सहस्सपागेहिं सुगंधवरतेल्ल-माइएहिं पीणणिज्जेहिं जिघणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्विंदिय-गाय-पल्हायणिज्जेहिं अब्भंगिए समाणे तेल्लचम्मंसि णिउणेहिं पडिपुन्न-पाणि-पाय-सुकुमाल-कोमल-तलेहिं पुरिसेहिं अब्भंगण-परिमद्दणुव्वलण-करण-गुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेधावीहिं जियपरिस्समेहिं १ अट्ठिसुहाए, २ मंससुहाए, ३ तयासुहाए ४ रोमसुहाए, चउव्विहाए सुहपरिकम्मणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ।
अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ,
तेणेव उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ,

अणुप्पविसित्ता समुत्तजालकलावाभिरामे विचित्त-मणि-रयण-कोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणा-मणि-रयण-भत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसन्ने पुप्फोदएहि य गंधोदएहि य उण्होदएहि य सुहोदएहि य सुद्धोदएहि य कल्लाण-करण-पवर-मज्जण विहीए मज्जिए।

तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंध-कासाइय-लूहियंगे अहय-सुमहग्घ-दूसरयण-सुसंवुए
सरस-सुरहि-गोसीस-चंदणाणुलित्त-गत्ते सुइमालावन्नगविलेवणे
अविद्धमणिसुवन्ने कप्पिय हारद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्तय-कयसोहे पिणद्धगेविज्जे अंगुलिज्जग-ललिय-कयाभरणे वरकडग-तुडिय-थंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुण्डलउज्जोइयाणणे मउडदित्तसिराए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे मुद्दियापिंगलंगुलीए पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे नाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-निउणोविय-मिसिमिसिंत-विरइय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-आविद्ध-वीरवलए।

किं बहुणा ? कप्परुक्खते चेव अलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्व-माणीहिं मंगलजयसद्दकयालोए अणेग-गणनाग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-णगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिपालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेह-निग्गए इव गहगणदिप्पंत-रिक्ख-तारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ।

मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,
तेणेव उवागच्छित्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ,
निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठभद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थय-कय-मंगलोवयाराइं रयावेई, रयावित्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणामणि-रयण-मंडियं अहियपेच्छणिज्जं महग्घवर-पट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसचित्तमाणं ईहामिय-उसह-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं अब्भितरियं जवणियं अंछावेइ अंछावेत्ता नाणामणि-रयण भत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगोत्थयं सेयवत्थपच्चत्थुयं सुमउयं अंगसुह-फरिसगं विसिट्ठं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेइ।

भद्दासणं रयावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंग-महानिमित्त सुत्तत्थपारए-विविह-सत्थ कुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह।

तएणं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठा-जाव-हयहियया करयल-जाव-पडिसुणेंति पडिसुणित्ता सिद्ध-त्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता कुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुमिण-लक्खण-पाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सुविण-लक्खण-पाढए सद्दाविंति।

तए णं ते सुविण-लक्खण-पाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया ण्हाया कयबलि

कम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया अप्प-महग्घाभरणालंकिय-सरीरा सिद्धत्थक-हरियालिय-कय-मंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति।

निग्गच्छित्ता खत्तियकुण्डग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सिद्धत्थस्स रन्नो भवण-वर-वडिंसग-पडिदुवारे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भवण-वर-वडिंसग-पडिदुवारे एगयओ मिलंति।

एगयओ मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता करतलपरिग्गहियं-जाव-कट्टु सिद्धत्थं खत्तियं जएण विजएणं वद्धावेंति।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थेणं रन्ना वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।
तए णं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलं खत्तियाणिं जवणियंतरियं ठावेइ,
ठावित्ता, पुप्फ-फल-पडिपुन्न-हत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणलक्खणपाढए एवं वयासि—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जतिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि-जाव-सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले-जाव-चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं जहा—गाहा—गय उसभ-जाव-सिहिं च।

तं एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया! ओरालाणं-जाव-के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?
तए णं ते सुमिणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-जाव-हियया ते सुविणे ओगिण्हंति,
ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति,
ईहं अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संलावेंति,
संलावित्ता तेसिं सुविणाणं लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रन्नो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सुविणसत्थे बायालीसं सुविणया, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा,
तत्थ णं देवाणुप्पिया! अरहंतमातरो वा, चक्कवट्टिमायरो वा, अरहंतंसि वा, चक्कहरंसि वा, गब्भं वक्कममाणंसि एतेसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा—गाहा—गयवसह -जाव-सिहिं च।
वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णतरे सत्त महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

बलदेवमायरो वा, बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्ह महासुविणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति।

मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भ वक्कंते समाणे एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरं एगं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति।
[भग० स० १६, उ० ६, सु० ७६-८०।]

इमे य णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा,-जाव-मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा, तं जहा—

अत्थलाभो देवाणुप्पिया! -जाव- सुक्खलाभो देवाणुप्पिया! रज्जलाभो देवाणुप्पिया!
एवं खलु देवाणुप्पिया! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं-जाव- दारयं पयाहिइ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिन्न-विउल-बलवाहणे चाउरंत-चक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ, जिणे वा तिलोगनायए धम्मवरचक्कवट्टी,
तं ओराला णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगलकारगा णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा।

तए णं से सिद्धत्थे राया तेसिं सुमिणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए करयल-जाव- ते सुमिणलक्खणपाढगे एवं वयासी—

"एवमेयं देवाणुप्पिया ! -जाव- इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया !

सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति"—कट्टु ते सुविणे सम्मं विणएणं पडिच्छइ,

ते सुविणे पडिच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए णं विउलेणं पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयति, विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणियंतरिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलं खत्तियाणिं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा -जाव-एगं महासुविणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ।

इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए ! चोद्दस महासुविणा दिट्ठा, तं जहा —गाहा—गयवसह-जाव-सिहिं च । ओराला णं तुमे-जाव-जिणे वा तेलोक्कनायए धम्मवरचक्कवट्टी ।"

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा-जाव-हियया करयल-जाव- ते सुविणे सम्मं पडिच्छइ ।

सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-रयण भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियं अचवलं असंभंताए अविलंबियाए रायहंस-सरिसीए गईए जेणेव सते भवणे उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा ।

जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तं नायकुलं साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुण्डधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तं जहा—

पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगोत्तागाराइं उच्छन्नसामियाइं उच्छन्नसेउकाइं उच्छन्नगोत्तागाराइं गामाऽऽगर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सन्निवेसेसु सिंघाडएसु वा, तिएसु वा, चउक्केसु वा, चच्चरेसु वा, चउम्मुहेसु वा, महापहेसु वा, गामट्ठाणेसु वा, नगरट्ठाणेसु वा, गामनिद्धमणेसु वा, नगरनिद्धमणेसु वा, आवणेसु वा, देवकुलेसु वा, सभासु वा, पवासु वा, आरामेसु वा, उज्जाणेसु वा, वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाण-सुन्नागार-गिरिकंदर-संति-सेलावट्ठाण-भवण-गिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था, सुवण्णेणं वड्ढित्था, एव धणेणं, धन्नेणं, रज्जेण, रट्ठेणं, बलेणं, वाहणेणं, कोसेणं, कोट्ठागारेणं, पुरेणं, अंतेउरेणं, जणवएणं, जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव अईव अभिवड्ढित्था ।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च ण अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवन्नेणं वड्ढामो, एवं धणेणं, धन्नेण, रज्जेणं, रट्ठेणं, बलेण, वाहणेणं, कोसेणं, कोट्ठागारेणं, पुरेणं, अंतेउरेणं, जणवएणं, जसवाएणं वड्ढामो विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पिइसक्कारसमुदएणं अतीव अतीव अभिवड्ढामो ।

तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो 'वद्धमाणो' त्ति ।

तए णं समणे भगवं महावीरे माउ-अणुकंपणट्ठाए निच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीण-पल्लीणगुत्ते यावि होत्था ।

तए णं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"हडे मे से गब्भे, मडे मे से गब्भे, चुए मे से गब्भे, गलिए मे से गब्भे, एस मे गब्भे पुव्विं एयति, इयाणिं नो एयति त्ति" कट्टु ओहतमणसंकप्पा चिंतासोगसायरं संपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियायइ । तं पि य सिद्धत्थरायभवणं उवरय-मुइंग-तंती-तल-ताल-नाडइज्ज-जणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ।

जम्म-काले देवकयोज्जोयाइं—

२७४. जण्णं राइं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं राइं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहिं य देवीहिं य ओवयंतेहि य उप्पयंतेहि य संपयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देव-सण्णिवाते देवकहक्कहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

—आया सु० २, अ० १५, सु० ९९२

—कप्प० सु० ९४

जन्मकाल में देवकृत उद्योत—

२७४. जिस रात्रि में निरोग त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्वस्थ श्रमण भगवान् महावीर को जन्म दिया, तब वह रात्रि भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियों के आगमन और गमन से एक महान दिव्य देवोद्योत एवं देवों के एकत्रित होने के कारण, देवों के कोलाहल के कारण, अट्टहास और उद्योत युक्त हो गई।

देवकय-अमयाइवासाइं—

२७५. जण्णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च, गंधवासं च, चुण्णवासं च, पुप्फवासं च, हिरण्णवासं च, रयणवासं च वासिंसु।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९९३

—कप्प० सु० ९५

देवकृत अमृतवर्षा—

२७५. जिस रात्रि को त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान् महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों ने अमृत की, सुगन्धित द्रव्यों की, सुगन्धित चूर्णों की, फूलों की और चांदी-सोने की और रत्नों की बहुत भारी वर्षा की।

देवकयतित्थयरजम्माभिसेओ—

२७६. जण्णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं रयणिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स कोउगभूइकम्माइं तित्थयराभिसेयं च करिंसु।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ९९३।

देवकृत तीर्थंकर जन्माभिषेक—

२७६. जिस रात्रि में नीरोग (स्वस्थ) त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान् महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव-देवियों ने कौतुकभूति-कर्म आदि और तीर्थंकराभिषेक किया।

क्रमश :

तए णं समणे भगवं महावीरे माउए अयमेयारूवं अज्झत्थियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं विजाणित्ता एगदेसेणं एयइ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया एवं वयासि —

"नो खलु मे गब्भे हडे-जाव-नो गलिए, मे गब्भे पुव्विं नो एयइ इयाणिं एयइ त्ति कट्टु हट्ठतुट्ठ - जाव - एवं विहरइ।"

तए णं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—

"नो खलु मे कप्पइ अम्मापिएहिं जीवंतेहिं मुण्डे भवित्ता अगारवासाओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

तए णं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं नाइउण्हेहिं नाइतित्तेहिं नाइकडुएहिं नाइकसाएहिं नाइअंबिलेहिं नाइमहुरेहिं नाइनिद्धेहिं नाइलुक्खेहिं नाइउल्लेहिं नाइसुक्केहिं उउभयमाणसुहेहिं भोयण-च्छायण-गंध-मल्लेहिं ववगय-रोग-सोग-मोह-भय-परिस्समा जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणोणुकूलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला सम्माणियदोहला अविमाणियदोहला वोच्छिन्नदोहला विणीयदोहला सुहंसुहेणं आसयइ सयइ चिट्ठइ निसीयइ ...

सिद्धत्थकयजम्मुस्सवो—

२७७. तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइ-वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूस-कालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ नगरगुत्तिए सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कुण्डपुरे नगरे चारगसोहणं करेह, चारगसोहणं करित्ता, माणुम्माणवद्धणं करेह, माणुम्माणवद्धणं करित्ता कुण्डपुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जियोवलेवियं सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियज्झयपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दरदिण्णपंचंगुलितलं उवचियचंदसंणकलसं चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभागं आसत्तोसत्त-विपुल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदाम-कलावं पंचवन्न-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फपुञ्जोवयार-कलियं कालागुरु पवर-कुन्दरुक्क-तुरुक्क - डज्झंत-धूव- मघमघि-तगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-पवग-कहग-पढक-लासक-आइंखग-लंख - मंख-तूण-इल्ल-तुम्बवीणिय-अणेगतालायराणुचरियं करेह कारवेह,

सिद्धार्थकृत जन्मोत्सव—

२७७. तदनन्तर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों द्वारा तीर्थंकर जन्माभिषेक महोत्सव सम्पन्न होने पर वह सिद्धार्थ क्षत्रिय प्रातःकाल नगर रक्षक को बुलाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही कुण्डपुर नगर के कारागृह को खाली कर दो अर्थात् सब बन्दियों को मुक्त कर दो। तोल माप को बढ़ाओ, (अर्थात् व्यापारियों से कहो कि घृत अन्नादि पदार्थ सस्ते बेचो और नुकसान की पूर्ति राज्य कोष से की जायेगी) मानोन्मान की वृद्धि माप तोल में वृद्धि करके कुण्डपुर नगर के अन्दर बाहर सुगन्धित जल का छिड़काव कराओ, साफ कराओ, लेपन कराओ, शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चौकों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, सामान्यमार्गों आदि सभी स्थानों पर पानी का छिड़काव कराओ, उन्हें स्वच्छ और पवित्र बनाओ, गलियों और बाजारों में स्वच्छ करके दर्शकों के बैठने के लिये मंच बनाओ, विविध रंगों से सुशोभित ध्वजा और पताकाएँ बँधाओ, सारे नगर को लिपा-पुताकर स्वच्छ बनाओ, नगर के भवनों की भीतों पर गोशीर्ष चंदन के, सरस रक्त चन्दन के, दर्दर (मलय) चंदन के पाँचों अंगुलियाँ उभरी हुई दृष्टिगोचर हों इस प्रकार थापे लगाओ। घरों के भीतर चौक में चन्दन-कलश रखाओ, द्वार-द्वारों पर चन्दन घटों के सुन्दर तोरण बँधाओ, जहाँ तहाँ सुन्दर प्रतीत होने वाली एवं पृथ्वी को स्पर्श करती लम्बी गोल मालायें लटकवाओ, पंचवर्णों के सुन्दर सुगन्धित सुमनों को विकीर्ण कराओ, उनके ढेर लगवाओ, गुलदस्ते रखवाओ, उत्तम कृष्ण-अगर कुन्दरु, तुरुष्क लोमान तथा धूप की सुगन्ध से सम्पूर्ण नगर को सुगन्धित करो। सुगन्ध से सारे नगर को सुगन्धित करो, सुगंध से सारा नगर महक उठे, ऐसा करो। सुगंध की अत्यधिकता के कारण सारा नगर गंध-गुटिका के समान प्रतीत हो ऐसा बनाओ। जन-रंजन के लिये स्थान-स्थान पर नट नाटक करें, नृत्य करने वाले नृत्य करें, रस्सी पर खेल बताने वाले खेल बतायें, मल्ल कुश्ती करें, मुष्टि से कुश्ती करने वाले मुष्टि से कुश्ती करें, विदूषक लोगों को हँसावे, कूदने वाले कूदकर अपने खेल बतायें, कथावाचक कथा कर जन-मन को प्रसन्न करें, सुभाषित बोलने वाले पाठक सुभाषित बोले। रास क्रीड़ा करने वाले रास क्रीड़ा करें, भविष्य कहने वाले भविष्य कहें, लम्बे वांस पर खेलने वाले बांस पर खेल करें, मंख-चित्र दिखाने वाले चित्र दिखाये, तान पूरा बजाने वाले तान पूरा बजायें, बीन बजाने वाले बीन बजायें, ताल देकर नाटक दिखाने वाले नाटक दिखायें इस प्रकार जन रंजन हेतु व्यवस्था करो और दूसरों से करवाओ।

करेत्ता, कारवेत्ता य जूयसहस्सं च, मुसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह।

ऐसा करके और करवाके हजारों गाड़ी के जुए और हजारों मूसल ऊँचे स्थान पर खड़े करवाओ, खड़े करवाके अर्थात् उत्सव की पूरी व्यवस्था करके आज्ञानुसार कार्य किये जाने की मुझे सूचना दो।

तए णं ते णगरगुत्तिया सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया करयल-जाव-पडिसुणित्ता खिप्पामेव कुण्डपुरे नगरे चारगसोहणं-जाव-उस्सवेत्ता जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल-जाव- कट्टु सिद्धत्थस्स रन्नो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तदनन्तर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा को सुनकर नगररक्षकों ने हर्षित, संतुष्ट होकर—यावत्—हर्षितमन होकर—यावत्—अंजलि करके—यावत्—स्वीकार किया, स्वीकार करके कुण्डपुर नगर के कारागृहों को खोलते हैं, बंदियों को मुक्त करते हैं—यावत्—उत्सव की सभी व्यवस्था करने के पश्चात् जहाँ सिद्धार्थ राजा है, वहां आते हैं, आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके सिद्धार्थ राजा को उनका यह आदेश पुनः अर्पित करते हैं अर्थात् आदेशानुसार कार्य किए जाने की सूचना देते हैं।

२७८. तए णं से सिद्धत्थे राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता-जाव-सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फगंध-वत्थमल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुतीए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरव-मुइंग-दुंदुहि निग्घोसणादितरवेणं उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं अडंडकोडंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदामं पमुइयपक्कीलियसपुरजणजाणवयं दसदिवसट्ठिइपडियं करेइ।

२७८. उसके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा जहां अट्टनशाला—व्यायामशाला, अखाड़ा है, वहां आता है, आकर के—यावत्—अपने अन्तःपुर के साथ सभी प्रकार के पुष्प, गन्ध, वस्त्र, मालायें आदि अलंकारों से अलंकृत होकर, सभी प्रकार के बाजों को बजवा करके, बड़े वैभव के साथ, महती द्युति के साथ, महान् लश्कर के साथ, बहुत से वाहनों के साथ, वृहद् समुदाय के साथ और एक साथ बजते हुए अनेक वाद्यों की ध्वनि के साथ अर्थात् शंख, पणव, भेरी, झल्लरी खरमुखी हुडूक, ढोल, मृदंग और दुन्दुभी आदि वाद्यों के निर्घोष से निर्गत मधुर शब्द ध्वनि के साथ, राज्य को शुल्कमुक्त, करमुक्त, अदेय—बिना मूल्य दिये वस्तु को लेना, अमेय—माप-तौल बंद करना, अभट प्रवेश-जप्ती करने के लिये राजपुरुषों का घर में प्रवेश निषेध, अदंड कुदंड—जुर्माना आदि न करना, अधरिम—राज की ओर से ऋण चुकाना आदि की व्यवस्था करके एवं उत्तम गणिकाओं और नाट्यकारों के नृत्य व नाटकों के साथ निरन्तर मृदंग बजाने की ध्वनियों के साथ घरों और दूसरे-दूसरे स्थानों पर लटकती हुई ताजी मालाओं सहित, प्रमुदित एवं क्रीड़ा रत नगर और जनपद निवासियों के साथ दस दिन का उत्सव (स्थितिपतित) करता है।

तए णं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइवडियाते वट्टमाणीए सइए य, साहस्सिए य, सयसाहस्सिए य, जाए य, दाए य, भाए य, दलमाणे य, दवावेमाणे य, सइए य, साहस्सिए य, सयसाहस्सिए य, लंभे पडिच्छमाणे य, पडिच्छावेमाणे य एवं विहरइ।

दस दिन का उत्सव संपन्न होने के समय में वह सिद्धार्थ राजा सैकड़ों, हजारों और लाखों प्रकार के यागों (पूजा सामग्रियों) को, दानों और भोगों को देता हुआ, दिलवाता हुआ और सैकड़ों-हजारों और लाखों प्रकार की भेंट स्वीकार करता और करवाता हुआ रहता है।

२७९. तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो—
पढमे दिवसे ठिइवडियं करेंति,
तइए दिवसे चंदसूरस्स दंसणियं करेंति,
छट्ठे दिवसे जागरियं करेंति,
एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्वत्तिए असुइजम्मकम्मकरणे

२७९. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता—
प्रथम दिन कुल परम्परागत अनुष्ठान करते हैं।
तृतीय दिन चन्द्र और सूर्य दर्शन का उत्सव करते हैं।
छठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव करते हैं।
ग्यारहवें दिन [illegible] होने के अनन्तर बारहवें [illegible]

इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे भवणवरवडिंसगं अईइ जहा कुवेरो व्व देवराया केलास-सिहरि-सिंगभूयं ति ।

इसके बाद स्त्री रत्न के साथ, बत्तीस हजार ऋतु कल्याणिकों के साथ, बत्तीस हजार जनपद कल्याणिकों के साथ, बत्तीस बत्तीस की संख्या वाली ऐसी बत्तीस हजार नाटक मण्डलियों के साथ अपने उत्तम और सब भवनों में शिखर के समान और कैलाश पर्वत के शिखर के समान ऊँचे ऐसे भवन में जैसे देवराज कैलाश पर्वत के शिखर पर प्रवेश करता है, वैसे प्रवेश करता है ।

तए णं से भरहे राया मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधिपरियणं पच्चुवेक्खइ, पच्चुवेक्खित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता - जाव - मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ, पारित्ता उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं उवलालिज्जमाणे उवालालिज्जमाणे उवणच्चिज्जमाणे उवणच्चिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे महया-जाव-भुंजमाणे विहरइ ।।

इसके बाद वह भरत राजा मित्रों का, ज्ञातिजनों का, अपने स्वजनों का, सम्बन्धियों का और पारिवारिकजनों अथवा सम्बन्धियों के परिवार का निरीक्षण करता है अर्थात् उनसे मिलता है, मिलकर जिस ओर स्नानगृह है, उस ओर जाता है, वहाँ जाकर—यावत् स्नानगृह से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ भोजनमण्डप है, वहाँ आता है, वहाँ आकर भोजनमण्डप में सुखासन पर बैठकर अष्टमभक्त का पारणा करता है, पारणा करके ऊपर आये हुए अपने उत्तम प्रासाद में बैठकर बजते हुए मृदंगों—ढोलकों के साथ बत्तीस बत्तीस के समूह वाले बत्तीस प्रकार के नाटकों को देखते देखते, सुनते सुनते, आनन्द करते हुए, आनन्द करते हुए ऐसे महान भोगों को भोगते हुए आनन्द से रहता है ।

भरहस्स रायाभिसेयसंकप्पो—

५६६. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ रज्जधुरं चिंतेमाणस्स इमेयारूवे-जाव-समुप्पज्जित्था—

"अभिजिए णं मए णियग-बलवीरिय-पुरिसक्कारपरक्कमेण चुल्लहिमवंत-गिरिसागरमेराए केवलकप्पे भरहे वासे, तं सेयं खलु मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएणं अभिसिंचावित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए - जाव - जलंते जेणेव मज्जणघरे-जाव-पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता सोलस देवसहस्से, बत्तीसं रायवरसहस्से सेणावइरयणे-जाव-पुरोहियरयणे तिण्णि सट्ठे सूयसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे य बहवे राईसरतलवर-जाव-सत्थवाहप्पभियओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"अभिजिए णं देवाणुप्पिया ! मए णियय-बलवीरिय -जाव- केवलकप्पे भरहे वासे तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ममं महया-रायाभिसेयं वियरह ।"

भरत का राज्याभिषेक संकल्प—

५६६. तत्पश्चात् अन्य किसी एक समय राज्य धुरा—राज्य शासन का चिन्तन करते हुए राजा भरत को इस प्रकार का—यावत्—(संकल्प) समुत्पन्न हुए—

'मैंने अपने बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम द्वारा क्षुल्ल हिमवंत पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त की सीमा में आगत सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली है, अतएव अब मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि बड़े धूमधाम के साथ राज्याभिषेक द्वारा अभिसिंचन करवाया जाये अर्थात् प्रजा मेरा राज्याभिषेक करे' ऐसा राजा भरत विचार करता है और ऐसा विचार करके कल (आगामी दिन) के प्रातःकाल में ही—यावत्—चमचमाते सूर्य का उदय होते ही जिस ओर मज्जनघर है—यावत्—बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ बाहर के बैठने की शाला है, उसमें जहाँ सिंहासन है, उस ओर आता है, आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है, बैठकर सोलह हजार देवों को, बत्तीस हजार राजाओं को, सेनापति रत्न को—यावत्—पुरोहित रत्न को, तीन सौ साठ चारण भाटों को, अठारह श्रेणियों प्रश्रेणियों को और दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर, कोटवाल,—यावत्—सार्थवाह आदि को बुलाता है, उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रियो ! मैंने अपने बल, वीर्य द्वारा—यावत्—भरत क्षेत्र को जीत लिया है, अतः हे देवानुप्रियो ! तुम सब मिलकर धूमधाम के साथ मेरे राज्याभिषेक का प्रबन्ध करो ।'

५७०. तए णं ते सोलस देवसहस्सा-जाव-पभिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ ० करयल ० मत्थए अंजलिं कट्टु भरहस्स रण्णो एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेंति।

५७०. तत्पश्चात् भरत राजा की इस आज्ञा को सुनकर वे सोलह हजार देव—यावत् सार्थवाह आदि सभी लोग हृष्ट तुष्ट हुए दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर अंजलि करके भरत राजा के इस आदेश को अच्छी तरह से विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं।

तए णं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव- अट्ठमभत्तिए पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ।

उसके बाद वह भरत राजा जिस ओर पौषधशाला है, वहाँ जाता है, वहाँ जाकर—यावत्—अष्टमभक्त तप की सावधानीपूर्वक आराधना करता है।

देवेहिं अभिसेयमण्डवकरणं—

देवों द्वारा अभिषेक मण्डपकरण—

५७१. तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

५७१. अष्टमभक्त तप के पूर्ण होने के अनन्तर वह राजा भरत आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एगं महं अभिसेयमण्डवं विउव्वेह, विउव्वित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

'हे देवानुप्रियो! विनीता राजधानी की उत्तर पूर्व दिशा—ईशान कोण—में शीघ्र ही एक विशाल अभिषेक मण्डप की विकुर्वणा करो अर्थात् अभिषेक मण्डप बनाओ, बनाकर अभिषेक मण्डप बनने की सूचना मुझे दो।'

तए णं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ- जाव - 'एवं सामि'त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता, संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसिरंति, तं जहा—

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव भरत राजा के इस आदेश को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए—यावत्—'हे स्वामिन् इसी प्रकार होगा' कहकर आदेश को विनयपूर्वक सुनते और स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके विनीता राजधानी के उत्तरपूर्व दिग्भाग—ईशानकोण—में चले गये, वहाँ जाकर वैक्रियसमुद्घात की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके संख्यात योजन लम्बा दण्ड बनाया जिसका वर्णन इस प्रकार है—

रयणाणं-जाव-रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेंति, परिसाडित्ता अहासुहुमे पुग्गले परियादियंति, परियादिइत्ता दुच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं - जाव - समोहणंति, समोहणित्ता बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वंति।

रत्नों का—यावत्—रिष्टरत्नों का, यथाबादर—स्थूल—पुद्गलों को दूर करते हैं, और यथासूक्ष्म—जैसे चाहिए वैसे सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके दूसरी बार भी वैक्रियसमुद्घात करते हैं, समुद्घात करके बहुत ही समतल, रमणीय भूमिभाग की रचना करते हैं।

से जहाणामए—आलिंगपुक्खरेइ वा०।

जैसे कि ढोलक के ऊपर का भाग अथवा लबालब भरे हुए सरोवर के समान।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेयमण्डवं विउव्वंति, अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठं - जाव - गंधवट्टिभूयं, पेच्छाघरमंडव-वण्णगो त्ति।

उस समतल और रमणीय भूभाग के बीचोंबीच एक विशाल अभिषेक के लिए मण्डप की रचना करते हैं जिसमें अनेक स्तम्भ लगे हुए हैं—यावत्—सुगन्धमय कर दिया—सुगन्ध की वटिका जैसा बना दिया, यहाँ प्रेक्षागृह—नाट्यशाला का वर्णन समझ लेना चाहिए।

५७२. तस्स णं अभिसेयमण्डवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेयपेढं विउव्वंति अच्छं सण्हं०।

५७२. उस अभिषेक मण्डप के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा अभिषेक पीठ बनाया जो अत्यन्त स्वच्छ और चिकना कोमल था।

तस्स णं अभिसेयपेढस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवए विउव्वंति।

उस अभिषेक पीठ की तीन दिशाओं में तीन सोपानों की रचना की।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते - जाव - तोरणा।

इन तीन सोपानों का वर्णन इस प्रकार समझना—यावत्—उसके ऊपर तोरणों की रचना की।

तस्स णं अभिसेयपेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

उस अभिषेक पीठ का भूभाग बहुत ही सम और रमणीय है।

सीहासणं—

५७३. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं सीहासणं विउव्वंति।

तस्स णं सीहासणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते - जाव - दामवण्णगं समत्तं ति।

तए णं ते देवा अभिसेयमंडवं विउव्वंति, विउव्वित्ता जेणेव भरहे राया - जाव - पच्चप्पिणंति।

सिंहासन—

५७३. उस बहुत ही सम और रमणीय भूभाग के बीचोंबीच एक विशाल सिंहासन की विकुर्वणा करते हैं।

उस सिंहासन का वर्णन इस प्रकार है—यावत्—मालाओं का वर्णन समाप्त होता है।

तत्पश्चात् वे देव अभिषेक मण्डप की रचना करते हैं, रचना करके जहाँ भरत राजा है—यावत्—आदेशानुसार कार्य संपन्न होने की सूचना देते हैं।

भरहेण अभिसेअ मंडवपवेसो—

५७४. तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, पडिकप्पित्ता हयगय -जाव- सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह-जाव-पच्चप्पिणंति। तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ-जाव - अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे।

भरत का अभिषेक मण्डप प्रवेश—

५७४. तत्पश्चात् आभियोगिक देवों की बात सुनकर और समझकर वह भरत राजा हृष्ट तुष्ट होता है—यावत्—पौषधशाला से बाहर निकलता है, निकलकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उन्हें इस प्रकार आदेश देता है—

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो, हस्तिरत्न को तैयार करके घोड़ा, हाथी—यावत्—तैयार करने के बाद मुझे सूचना दो कि सब तैयार हो गया है—यावत्—वे देव वापस में आदेश पूर्ति होने की सूचना देते हैं तब वह भरत राजा मज्जनगृह में प्रवेश करता है—यावत्—अंजनगिरि के शिखर जैसे गजपति पर नरपति भरत राजा आरूढ़ हुआ।

५७५. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगला जो चेव गमो विणीयं पविसमाणस्स सो चेव णिक्खममाणस्स विजाव-पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमेदिसीभाए अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयमंडवदुवारे आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठावेइ, ठावित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्सेहिं, बत्तीसाए जणवयकल्लाणियाहस्सेहिं, बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहि णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेयमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव अभिसेयपेढे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयपेढं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण-पडिरूवएणं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव, उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

५७६. तत्पश्चात् जब वह भरत राजा आभिषेक्य—अभिषेक में उपयोग में आने वाले हस्तिरत्न पर आरूढ़ हो चुका तो उसके आगे-आगे ये आठ मंगल चलने लगे, यहाँ इस शोभा यात्रा का समस्त वर्णन पहले विनीता राजधानी में प्रवेश के प्रसंग में किया गया है, वही इस निष्क्रमण के सन्दर्भ में भी समझना चाहिए—यावत्—प्रतिबुध्यमान होता हुआ विनीता राजधानी के बीचोंबीच से निकलता है, निकलकर जिस ओर विनीता राजधानी का उत्तरपूर्व दिग्भाग में अभिषेक मण्डप है, वहाँ आता है, वहाँ आकर अभिषेक मण्डप के द्वार पर अभिषेक हस्तिरत्न को ठहराता है, ठहराकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरता है, उतरकर स्त्रीरत्न के साथ, बत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकों के साथ, बत्तीस हजार जनपद कल्याणिकों के साथ, बत्तीस बत्तीस की समूह वाली बत्तीस हजार नाट्य मण्डलियों के साथ अभिषेक मण्डप में प्रवेश करता है, प्रवेश करके जिस तरफ अभिषेक पीठ है, उस ओर आता है, उस तरफ आकर अभिषेक पीठ की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ—आगे पीछे की प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्व तरफ के त्रि-सोपान जैसे सोपान पर चढ़ता है, इस सोपान पर चढ़कर जिस ओर सिंहासन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर

पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे त्ति।

पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठा।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा जेणेव अभिसेय-मण्डवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अभिसेयमंडवं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता अभिसेयपेढं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा अणुप्पयाहिणीकरेमाणा उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल-जाव-अंजलि कट्टु भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा -जाव- पज्जुवासंति।

इसके बाद उस राजा भरत के बत्तीस हजार राजा जिस ओर अभिषेक मंडप है उस ओर आते हैं, उस ओर आकर अभिषेक मण्डप में प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके अभिषेक पीठ की अनुप्रदक्षिणा करते हुए उत्तर की ओर के त्रिसोपान जैसे सोपान द्वारा जिस तरफ राजा भरत है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—मस्तक पर अंजलि करके भरत राजा को 'जय विजय हो' ऐसे बोलों द्वारा बधाते हैं, बधाकर भरत राजा के न तो अति दूर और न अति पास, इस तरह उसकी सेवा करते हुए—यावत्—पर्युपासना करते हैं अर्थात् बैठते हैं।

भरहस्स महारायाभिसेओ—

भरत का महाराज्याभिषेक—

५७६. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे-जाव-सत्थवाह-प्पभिइओ ते वि तह चेव। णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाण-पडिरूवएणं - जाव - पज्जुवासंति।

५७६. तत्पश्चात् उस भरत राजा का सेनापति रत्न—यावत्—सार्थवाह आदि भी उसी प्रकार प्रवेश करते हैं। लेकिन विशेषता यह है कि सभी दक्षिण बाजू के त्रिसोपान जैसे सोपान द्वारा प्रवेश करते हैं—यावत्—पर्युपासना करते हैं।

तए णं से भरहे राया आभिओगे देवे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तदनन्तर वह भरत राजा आभियोगिक देवों को बुलाता है और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! ममं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवट्ठवेह।"

'हे देवानुप्रियो! अब शीघ्र ही मेरा महाअर्थरूप, महर्घ, महापुरुषों के आदर योग्य ऐसा महाराज पद सम्बन्धी अभिषेक करो।'

तए णं ते आभिओइया देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्त -जाव- उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति।

तब वे आभियोगिक देव भरत राजा की इस बात को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए—यावत्—उत्तरपूर्व दिशा—ईशान कोण की तरफ गये, उस ओर जाकर वैक्रिय समुद्घात करते हैं।

एवं जहा विजयस्स तहा इत्थं पि-जाव-पंडगवणे एगओ मिलायंति, एगओ मिलाइत्ता जेणेव दाहिणड्ढभरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विणीयं रायहाणिं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा अणुप्पयाहिणीकरेमाणा जेणेव अभिसेयमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवट्ठवेंति।

जैसा वर्णन विजय देव के प्रसंगों में किया गया है, वह सब यहाँ भी समझना चाहिए—यावत्—वे पण्डकवन में एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर जिस ओर दक्षिणार्ध भारतवर्ष है, जिस ओर विनीता राजधानी है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर विनीता राजधानी की प्रदक्षिणा करते करते जहाँ अभिषेक मण्डप है और वहाँ भी जहाँ भरत राजा है, वहीं आते हैं, आकर महाअर्थरूप अर्थात् जिसमें बहुत अधिक धन व्यय किया जा रहा है, महर्घ—महामूल्यवान—अनूठा, महापुरुषों के लायक महाराज्याभिषेक की तैयारी करते हैं।

तए णं तं भरहं रायाणं बत्तीसं रायसहस्सा सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-णक्खत्त-मुहुत्तंसि उत्तरपोट्ठवयाविजयंसि तेहि साभाविएहि य उत्तरवेउव्विएहि य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभि-वर-वारि-पडिपुण्णेहिं -जाव- महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचंति, अभिसेओ जहा विजयस्स,

तत्पश्चात् शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र, मुहूर्त आदि पर उत्तर प्रोष्ठपाद के विजय मुहूर्त में स्वाभाविक हुए [illegible] उत्तम कमलों पर रखे हुए एवं उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए उन स्वाभाविक एवं विक्रिया द्वारा बनाए हुए कलशों द्वारा—यावत्—बड़ी धूमधाम से राजा भरत का अभिषेक करते हैं, अभिषेक सम्बन्धी सभी वर्णन जैसा पहले विजय देव के अधिकार के प्रसंग में पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ [illegible] समझ लेना चाहिए।

अभिसिंचित्ता पत्तेयं पत्तेयं -जाव-अंजलिं कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जहा पविसंतस्स भणिया-जाव-विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति।

अभिषेक करके प्रत्येक—यावत्—अंजलि करके इष्ट-प्रिय वाणी द्वारा जैसा विनीता राजधानी में प्रवेश करते हुए राजा भरत की शोभा यात्रा वर्णन पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिए—यावत्—आनन्द से रहो ऐसा कहकर जय-जय शब्दों का प्रयोग करते हैं।

नयरे दुवालससंवच्छरियपमोयघोसणं—

नगर में द्वादशवर्षीय प्रमोद घोषणा—

५७७. तए णं तं भरहं रायाणं सेणावइरयणे -जाव- पुरोहियरयणे तिण्णि य सट्ठा सूयसया अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे य बहवे -जाव- सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिंचंति, तेहिं वरकमल-पइट्ठाणेहिं तहेव -जाव- अभिथुणंति य सोलस देवसहस्सा एवं चेव। णवरं पम्हलसुकुमालाए -जाव- मउडं पिणद्धेंति। तयणंतरं च णं दद्दरमलयसुगंधिएहिं गंधेहिं गायाइं अब्भुक्खेंति दिव्वं च सुमणोदामं पिणद्धेंति। किं बहुणा ?, गंठिम-वेढिम -जाव- विभूसियं करेंति।

५७७. इसके बाद उस राजा भरत का सेनापति रत्न—यावत्—पुरोहितरत्न तीन सौ साठ सुत—मागध, चारणभाट, अठारह श्रेणियाँ प्रश्रेणियाँ तथा और भी बहुत से—यावत्—सार्थवाह आदि इसी प्रकार अभिषेक करते हैं, उन उत्तम कमलों पर रखे हुए कलशों द्वारा अभिषेक करते हैं—यावत्—स्तुति करते हैं और सोलह हजार देव भी इसी तरह अभिषेक करते हैं। किन्तु विशेषता यह है कि पद्म के समान सुकोमल कपड़े द्वारा—यावत्—मुकुट पहनाते हैं। तदनन्तर दद्दर, चंदन आदि सुगन्धित पदार्थों को गात्रों पर छिड़कते हैं और दिव्य ऐसे सुन्दर पुष्पों की माला पहनाते हैं यहाँ और अधिक विशेष क्या कहें ? गूंथकर वेष्टित की गई मालाओं द्वारा—यावत्—विभूषित करते हैं।

तए णं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिए समाणे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

बड़े धूमधाम से किये गये राज्याभिषेक से अभिषिक्त हो जाने के पश्चात् वह भरत राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उन्हें इस प्रकार का आदेश देता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हत्थिखंधवरगया विणीयाए रायहाणीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर -जाव- महापहपहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं -जाव- सपुरजण-जाणवयं दुवालस-संवच्छरियं पमोयं घोसेह, घोसित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणह त्ति।"

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हाथी के उत्तम स्कन्ध पर आरूढ़ होकर अर्थात् हाथी पर बैठकर शीघ्र ही विनीता राजधानी के श्रृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्क, चच्चर—चौक—यावत्—बड़े-बड़े मार्गों, गलियों आदि में जाकर बहुत ही ऊँची आवाज में उद्घोषणा करते करते यह घोषित करो कि आज से बारह वर्षीय प्रमोद उत्सव प्रारम्भ होता है, इससमय में विनीता राजधानी एवं समस्त साम्राज्य उत्शुल्क, उत्कर, उत्कृष्ट, अदेय, अमित रहेगा एवं भट के प्रवेश और दण्ड कोदण्ड रहित रहेगा —यावत्— पुरजनपद सहित इस बारह वर्षीय प्रमोद उत्सव को मनाया जाये, यह घोषणा करके वापस आदेशानुसार कार्य किये जाने की मुझे सूचना दो।'

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा० हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया -जाव- घोसेंति, घोसित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष भरत राजा की इस बात को सुनकर हर्षित, तुष्ट, एवं मन में आनन्दित एवं हर्षविभोर हुए और हर्ष के कारण जिनके हृदय खिल उठे हैं ऐसे वे कौटुम्बिक पुरुष विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके तत्काल हाथी के स्कन्ध पर बैठकर—यावत्—घोषणा करते हैं, घोषणा करके आज्ञा वापस लौटाते हैं अर्थात् आज्ञानुसार कार्य पूर्ति की सूचना देते हैं।

पासायं पडिगमणं—

५७८. तए णं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता इत्थिरयणेणं -जाव-णाडग-सहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेय-पेढाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता अभिसेय-मंडवाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव आभिसेक्के हत्थि-रयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरि-कूड-सण्णिभं गयवइं-जाव-दुरूढे ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अभिसेय-पेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे -जाव- सत्थवाह-प्पभिइओ अभिसेयपेढाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ -जाव- संपट्ठिया । जो चि य अइगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेयव्वो - जाव - कुबेरो व्व देवराया केलासं सिहरि-सिंगभूयं ति ।

५७९. तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता -जाव- भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ, पारित्ता भोयणमंडवाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं -जाव- भुञ्जमाणे विहरइ ।

तए णं से भरहे राया दुवालस-संवच्छरियंसि पमोयंसि णिव्वत्तंसि समाणंसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता -जाव- मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला-जाव-सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता सोलस देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ पडिविसज्जेत्ता बत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता-जाव-पुरोहियरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं तिण्णि सट्ठे सूयारसए

प्रासाद प्रतिगमन—

५७८. ससमारोह राज्याभिषेक सम्पन्न होने के पश्चात् वह भरत राजा सिंहासन से उठता है, उठकर स्त्री रत्न के साथ—यावत्—हजारों नाटकों से परिवृत अभिषेक पीठ से पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा नीचे उतरता है, उतरकर अभिषेक मण्डप से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ आभिषेक्य हस्ति-रत्न है, वहाँ आता है, वहाँ आकर अंजनगिरि के शिखर समान गजपति पर—यावत्—आरूढ़ हुआ ।

तत्पश्चात् उस भरत राजा के बत्तीस हजार राजा अभिषेक पीठ के उत्तर दिशावर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा नीचे उतरते हैं ।

तदनन्तर उस भरत राजा का सेनापति रत्न—यावत्—सार्थवाह प्रभृति अभिषेक पीठ के दक्षिण बाजु के त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा नीचे उतरते हैं ।

तत्पश्चात् जब वह भरत राजा आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आसीन हो गया तब ये आठ-आठ मंगल आगे—यावत्—प्रस्थान करने लगे । सत्कार के पाठ के अतिरिक्त प्रवेश के समय का जो वर्णन पहले किया गया है, वही पाठ और उसका अर्थ यहां भी समझना चाहिए तथा कुबेर के वर्णन के अन्तिम अंश तक का सभी सूत्र पाठ भी यहां जानना चाहिए—यावत्—कैलाश पर्वत के शिखर के ऊपर कुबेर के समान वह भरत राजा अपने प्रासाद सुख का अनुभव करता है ।

५७९. तत्पश्चात् वह भरत राजा स्नानगृह में प्रवेश करता है, स्नानगृह में प्रवेश करके—यावत्—भोजन मण्डप में सुखासन पर बैठकर अष्टमभक्त का पारणा करता है, पारणा करके भोजन मण्डप से बाहर आता है, बाहर आकर उत्तम प्रासाद के ऊपरी भाग में ढोलक आदि वाद्य बज रहे हैं—यावत्—आनंद भोगता हुआ रहता है ।

इसके बाद जब बारह वर्ष का प्रमोद प्रसंग पूर्ण हो चुका तब वह भरत राजा जिस ओर मज्जनगृह है, वहाँ आता है, वहाँ आकर—यावत्—स्नानगृह से बाहर निकलता है, निकलकर जिस तरफ बाहरी उपस्थानशाला है—यावत्—सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख कर बैठता है, सिंहासन पर बैठकर सोलह हजार देवों का सत्कार करता है, सम्मान करता है सत्कार सम्मान करके उन्हें विदाई देता है, उन्हें विदाई देने के बाद बत्तीस हजार राजाओं का सत्कार सम्मान करता है, राजाओं का सत्कार सम्मान करके सेनापति रत्न का सत्कार करता है सम्मान करता है, सेनापति रत्न का सत्कार सम्मान करके —यावत्— पुरोहित रत्न का सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके इसी प्रकार तीन सौ साठ सूपकारों—

अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता अण्णे य बहवे राईसरतलवर-जाव-सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता उप्पिं पासायवरगए-जाव-विहरइ ।

चारण भाटों, अठारह श्रेणियों-प्रश्रेणियों का सत्कार करता है, सम्मान करता है, उनका सत्कार सम्मान करने के अनन्तर और भी दूसरे बहुत से राजाओं, ईश्वरों, तलवरों—कोटवालों—यावत्—सार्थवाहों आदि का सत्कार करता है, सम्मान करता है और सत्कार सम्मान करके सबको विदाई देता है, विदाई देकर उत्तम प्रासाद के ऊपरी भाग में पहुँचकर—यावत्—आनन्द में विचरण करता है ।

रयणमहाणिहीणं उप्पत्तिठाणं—

५८०. भरहस्स रण्णो चक्करयणे १ दंडरयणे २ असिरयणे ३ छत्तरयणे ४ एए णं चत्तारि एगिंदियरयणा आउहघरसालाए समुप्पण्णा,

१ चम्मरयणे २ मणिरयणे ३ कागणिरयणे णव य महाणिहओ एए णं सिरिघरंसि समुप्पण्णा,

१ सेणावइरयणे, २ गाहावइरयणे, ३ वड्ढइरयणे, ४ पुरोहियरयणे एए णं चत्तारि मणुयरयणा विणीयाए रायहाणीए समुप्पण्णा ।

१ आसरयणे २ हत्थिरयणे एए णं दुवे पंचिंदियरयणा वेयड्ढगिरिपायमूले समुप्पण्णा ।

सुभद्दाइत्थीरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पण्णे ।

रत्नों और महानिधियों का उत्पत्ति स्थान—

५८०. भरत राजा के १—चक्ररत्न, २—दण्डरत्न, ३—असिरत्न, ४—छत्ररत्न ये चार एकेन्द्रियरत्न आयुधशाला में उत्पन्न हुए,

१—चर्मरत्न, २—मणिरत्न, ३—काकणीरत्न, और नौ महानिधियां श्रीगृह में उत्पन्न हुईं ।

१—सेनापतिरत्न, २—गृहपतिरत्न, ३—वर्धकिरत्न, ४—पुरोहितरत्न ये चार मनुष्य-रत्न विनीता राजधानी में पैदा हुए ।

१—अश्वरत्न, २—हस्तिरत्न, ये दो पंचेन्द्रियरत्न वैताढ्य पर्वत के पादमूल अर्थात् वैताढ्य पर्वत की तलहटी में उत्पन्न हुए ।

सुभद्रा नामक स्त्री रत्न उत्तर दिशावर्ती विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न हुआ ।

भरहस्स सासणं—

५८१. तए णं से भरहे राया चउद्दसण्हं रयणाणं, णवण्हं महाणिहीणं, सोलसण्हं देवसाहस्सीणं, बत्तीसाए रायसहस्साणं, बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्साणं, बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं, बत्तीसाए बत्तीसइबद्धाणं णाडगसहस्साणं, तिण्हं सट्ठीणं सूयारसयाणं, अट्ठारसण्हं सेणिप्पसेणीणं, चउरासीईए आससयसहस्साणं, चउरासीईए दंतिसयसहस्साणं, चउरासीईए रहसयसहस्साणं, छण्णउईए मणुस्सकोडीणं, बावत्तरीए पुरवरसहस्साणं,[1] बत्तीसाए जणवयसहस्साणं, छण्णउईए गामकोडीणं[2] णवणउईए दोणमुहसहस्साणं, अडयालीसाए पट्टणसहस्साणं,[3] चउव्वीसाए कब्बडसहस्साणं, चउव्वीसाए मडंबसहस्साणं, वीसाए आगरसहस्साणं, सोलसण्हं खेडसहस्साणं, चउदसण्हं संवाहसहस्साणं, छप्पण्णाए अंतरोदगाणं, एगूणपण्णाए कुरज्जाणं, विणीयाए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स अण्णेसिं च बहूणं राईसर-तलवर-जाव-सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं

भरत का शासन—

५८१. तत्पश्चात् चौदह रत्नों, नौ महानिधियों, सोलह हजार देवताओं, बत्तीस हजार राजाओं, बत्तीस हजार ऋतुओं में कल्याण वांछा के इच्छुक ऋतु कल्याणिकों, बत्तीस हजार जनपद कल्याणिकों, बत्तीस बत्तीस के समूह वाले बत्तीस हजार नाटकों, तीन सौ साठ सूतकारों, अठारह श्रेणियों, प्रश्रेणियों अर्थात् अठारह वर्णों, चौरासी लाख घोड़ों, चौरासी लाख हाथियों, चौरासी लाख रथों, छियानवे करोड़ मनुष्यों, बहत्तर हजार उत्तम पुरों, बत्तीस हजार जनपदों, छियानवे करोड़ गांवों, नवासी हजार द्रोणमुखों, अड़तालीस हजार पट्टनों, चौबीस हजार कर्बटों, चौबीस हजार मण्डबों, बीस हजार आकरों, सोलह हजार खेड़ों, चौदह हजार सम्बाधों, छप्पन हजार जलान्तर्वर्ती स्थानों, उनचास कुराज्यों—भील अथवा जंगली प्रजा के राज्यों, विनीता राजधानी तथा चुल्ल-हिमवंत पर्वत से लेकर समुद्र की मर्यादा तक के भरत क्षेत्र एवं और भी दूसरे बहुत से राजाओं, ईश्वरों, तलवरों—यावत्—सार्थवाह आदि

---

१ सम० ७२, सु० ६ ।

३ सम० ४८, सु० १ ।

२ सम० ९६, सु० १ ।

पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओहयणिहएसु कंटएसु उद्धियमलिएसु सव्वसत्तुसु णिज्जिएसु भरहाहिवे णरिंदे वरचंदणचच्चियंगे वरहार-रइय-वच्छे, वर-मउड-विसिट्ठए, वर-वत्थ-भूसण-धरे, सव्वोउय-सुरहि-कुसुमवर-मल्ल-सोभिय-सिरे, वर-णाडग-णाडइज्ज-वरइत्थिगुम्मसद्धिं संपरिवुडे सव्वोसहि-सव्वरयण-सव्वसमिइसमग्गे संपुण्णमणोरहे हयामित्त-माणमहणे पुव्वकय-तवप्पभाव-णिविट्ठसंचियफले भुञ्जइ माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जे त्ति।

का आधिपत्य, पुरपतिपना, भर्तापना, स्वामित्वना, महत्तरत्वना, मुखियापना और इन सब पर आज्ञा करने की सत्ता, सेनापतिपना करता कराता, इन सबका पालन रक्षण करता हुआ तथा अपने समस्त शत्रुरूप कंटकों का उखाड़ फेंकने के बाद अर्थात् शत्रुओं का नाश करने के बाद, जड़ मूल से उखेड़ कर देने के बाद, समस्त शत्रुओं को जीत लेने के बाद भरत क्षेत्र का अधिपति राजा, जिसका समस्त शरीर उत्तम चन्दन के लेप से चर्चित है, उत्तम हार आदि आभूषणों से जिसका वक्षस्थल शोभित हो रहा है, मस्तक पर उत्तम मुकुट धारण कर रखा है, शरीर पर उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण किए हुए है, जिसके सिर पर सभी ऋतुओं के उत्तम पुष्पों की मालायें शोभित हो रही हैं, उत्तम नाटकों और नाटिकाओं तथा उत्तम स्त्रियों के समूह से घिरा हुआ है, सभी ओषधियों, सभी प्रकार के रत्नों तथा अपनी समस्त सभाओं से सम्पन्न, जिसके सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं, अपने विरोधियों के मान का मर्दन करने वाला है तथा अपने अभिमान का नाश कर दिया है, पूर्व जन्म में किए हुए तप के प्रभाव के विशिष्ट प्रकार के सुसंचित फल का जिसने संचय किया है, ऐसा वह भरत नाम का राजा मानव सुखों का भोगोपभोग करते हुए विचरता है।

भरहस्स आयंसघरंसि केवलनाणं—

५८२ तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता -जाव- ससि व्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमई, पडिणिक्खमित्ता जेणेव आयंसघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता आयंसघरंसि अत्ताणं देहमाणे देहमाणे चिट्ठइ।

भरत को आदर्श गृह में केवलज्ञान—

५८२. तदनन्तर वह भरत राजा दूसरे कोई एक दिन जिस ओर मज्जनघर है, उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर—यावत्—चन्द्रमा के समान प्रिय दर्शन वाला ऐसा वह नरपति मज्जनघर से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ आदर्शगृह शीशों द्वारा निर्मित—आरिसा भवन है, उसमें जहाँ सिंहासन है, वहाँ जाता है, उस तरफ जाकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर बैठता है, बैठकर आरीसा भवन में अपने आपको निरखता हुआ रहता है अर्थात् अपने शरीर की कांति, शोभा, लावण्य आदि को निहारता है।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं विसुज्झमाणीहिं ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्म-रयविकिरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर-नाण-दंसणे समुप्पण्णे।

तत्पश्चात् अपने आपको देखते देखते शुभ मानसिक परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों के कारण विशुद्ध होती हुई लेश्याओं के फलस्वरूप ईहा—विचार—मार्गणा—गवेषणा—आत्म निरीक्षण करते हुए ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षय होने से कर्मरूपी रज—मैल को दूर करने वाले अपूर्वकरण नामक भूमिका में प्रविष्ट उस भरत राजा को अनन्त, अनुत्तर, सर्वोत्कृष्ट, निर्व्याघात, निरावरण, सकल, परिपूर्ण एवं उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

भरहस्स अट्ठावयपव्वए सव्वण्णे निव्वाणं य—

५८३. तए णं से भरहे केवली सयमेवाभरणालंकारं ओमुयइ,

भरत का अष्टापद गमन और मुक्ति निर्वाण—

५८३. केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न होने के पश्चात् वह भरत केवली शरीर पर धारण किए हुए सभी आभरण अलंकारों को

ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता आयंसघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अंतेउरमज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरइ, विहरित्ता जेणेव अट्ठावए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्ठावयं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेघघणसण्णिगासं देवसण्णिवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्त-पाण-पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे अणवकंखमाणे विहरइ।

डालता है, उन्हें उतार कर स्वयमेव पंचमुष्टि केशलोच करता है, लोच करके आदर्शगृह से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर अन्तःपुर के बीचोंबीच से होकर निकलता है और निकलकर दस हजार राजाओं के साथ विनीता राजधानी के ठीक बीचोबीच में होता हुआ निकलता है और निकलकर मध्य देश में—कोशल देश में सुखपूर्वक विहार करता है, विचरण करने के बाद जिस तरफ अष्टापद पर्वत है उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर शनैः-शनैः अर्थात् यतनापूर्वक अष्टापद पर्वत पर चढ़ता है, अष्टापद पर्वत पर चढ़कर उस पर्वत के ऊपर मेघ जैसे श्याम वर्ण के देवों के वास स्थान जैसे एक शिलापट्ट की प्रतिलेखना करता है अर्थात् उसको भली प्रकार से देखता है कि इसमें कोई सूक्ष्म जीव-जन्तु तो नहीं है इस प्रकार से निरीक्षण-परीक्षण करने के बाद संल्लेखना में तत्पर होकर, आहार-पानी का सर्वथा त्याग कर पादोपगमन आसन में स्थिर होकर, सभी प्रकार की शंका आकांक्षाओं का निःशेष रूप से त्याग कर विचरण करता है।

५८४. तए णं से भरहे केवली सत्तत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता[1], एगं वाससहस्सं मंडलियरायमज्झे वसित्ता, छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्झे वसित्ता[2], तेसीइ-पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता[3], एगं पुव्वसयसहस्सं देसूणगं केवलिपरियायं पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता चउरासीइपुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पाउणित्ता[4] मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेयणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्ण-जाइ-जरामरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुडे अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

५८४. तत्पश्चात् सतहत्तर लाख पूर्व वर्ष तक कुमारावस्था में रहकर, उसके बाद एक हजार वर्ष तक मांडलिक राज्य पद का भोगकर, एक हजार वर्ष न्यून छह लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद—चक्रवर्ती पद का भोगकर इस प्रकार कुल मिलाकर तेरासी लाख पूर्व वर्ष तक गृहस्थावास में रहकर और कुछ कम एक लाख पूर्व वर्ष तक केवली पर्याय का भोग कर और उतनी ही श्रामण्य पर्याय का भोगकर और इस प्रकार चौरासी लाख पूर्व वर्ष का अपना पूर्ण आयुष्य भोगकर और एक मास का निर्जल अनशन व्रत पालकर श्रवण नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होते ही वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के क्षीण—क्षय होते ही भरत केवली कालधर्म को प्राप्त हुए, इस संसार से व्यतिक्रमण कर चुके, सम्यक् प्रकार से ऊर्ध्वगमन हुआ, जन्म—जरा—मरण के बन्धन से छिन्न-भिन्न हो गये, टूट गये, छेदन हो चुका, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, समस्त सांसारिक दुःखों का अन्त करने वाले हुए और इस प्रकार वे सब तरह के दुःखों का नाश करने वाले हुए अथवा उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये।

---

१ सम० ७७, सु० १।

२ भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं महाराया हुत्था। —ठाणं० अ० ६, सु० ५१६।

भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं रायमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। —सम० सु० १२९।

३ सम० ८३ सु० ४।

४ (क) सम० ८४, सु० २। (ख) चक्कीणं सव्वाउ—

गाहाओ—चउरासीती बावत्तरी य, पुव्वाण सयसहस्साइं। पंच य तिन्न य एगं च, सयसहस्सा उ वासाणं ॥१॥

पंचाणउतिसहस्सा चउरासीती य अट्ठमे सट्ठी। तीसा य दस य तिन्नि य, अपच्छिमे सत्त वाससया ॥२॥

—आव० नि० गा० ३९५, ३९६।

इइ भरहचक्किचरियं समत्तं ।

—जंबु० व० ३, सु० ४१-७०

इस तरह भरत चक्रवर्ती का चरित्र समाप्त हुआ ।

भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठपुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणाइं तं जहा—

सार्वभौम चक्रवर्ती भरत राजा के पश्चात् आठ युग प्रधान पुरुष अनुक्रम से व्यवधानरहित सिद्ध हुए—यावत्—सर्व दुःख रहित हुए—यथा—

१ आइच्चजसे, २ महाजसे, ३ अइबले, ४ महाबले, ५ तेयवीरिए, ६ कित्तविरिए, ७ दंडवीरिए, ८ जलवीरिए ।

—ठाणं अ० ८, सु० ६१६

१—आदित्ययश, २—महायश, ३—अतिबल, ४—महाबल, ५—तेजोवीर्य, ६—कार्तवीर्य, ७—दण्डवीर्य, ८—जलवीर्य ।

॥ अथ भरहचक्कवट्टि चरियं सम्मत्तं ॥

॥ भरत चक्रवर्ती चरित्र समाप्त ॥



१०. चक्कवट्टिसामण्णं

१०. चक्रवर्ती सामान्य

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु चक्कवट्टिविजया—

ढाई द्वीप में चक्रवर्ती विजय—

५८५. जंबुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

बत्तीसं महाविदेहे, दो भरहेरवए ।

—सम० स० ३४, सु० २

५८५. जम्बूद्वीप में चौंतीस चक्रवर्ती विजय है, यथा—

महाविदेह में बत्तीस, भरत में एक, एरवत में एक ।
इस प्रकार कुल मिलाकर चौंतीस हुए ।

५८६. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, मंगलावत्ते, पुक्खले, पुक्खलावती ।

५८६. जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर किनारे पर आठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—कच्छ, २—सुकच्छ, ३—महाकच्छ, ४—कच्छगावती, ५—आवर्त, ६—मंगलावर्त, ७—पुष्कल, ८—पुष्कलावती ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

वच्छे, सुवच्छे, महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे, मंगलावती ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण में आठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—वत्स, २—सुवत्स, ३—महावत्स, ४—वत्सकावती, ५—रम्य, ६—रम्यक, ७—रमणीय, ८—मंगलावती ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

पम्हे, सुपम्हे, महापम्हे, पम्हगावती, संखे, णलिणे, कुमुदे, सलिलावती ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—पद्म, २—सुपद्म, ३—महापद्म, ४—पद्मकावती, ५—शंख, ६—नलिन, ७—कुमुद, ८—सलिलावती ।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

वप्पे, सुवप्पे, महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गंधिले, गंधिलावती ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर में आठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—वप्र, २—सुवप्र, ३—महावप्र, ४—वप्रकावती, ५—वल्गु, ६—सुवल्गु, ७—गंधिल, ८—गंधिलावती ।

५८७. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

खेमा, खेमपुरी, रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मंजुसा, ओसधी, पुण्डरीगिणी।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

सुसीमा, कुण्डला, अपराजिया, पभंकरा, अंकावई, पम्हावई, सुभा, रयणसंचया।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

आसपुरा, सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अरया, असोया, वीतसोगा।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

विजया, वेजयंति, जयंती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा, अवज्झा, अउज्झा।

—ठाणं अ० ८, सु० ६३७

—जंबु० व० ४, सु० ९३, ९४, ९५, ९६

—जंबु० व० ४, सु० १०२

५८७. जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—क्षेमा, २—क्षेमपुरी, ३—रिष्टा, ४—रिष्टपुरी, ५—खड्गी, ६—मंजूषा, ७—औषधि, ८—पुण्डरीकिणी।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—सुसीमा, २—कुण्डला, ३—अपराजिता, ४—प्रभंकरा, ५—अंकावती, ६—पद्मावती, ७—शुभा, ८—रत्नसंचया।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—अश्वपुरा, २—सिंहपुरा, ३—महापुरा, ४—विजयपुरा, ५—अपराजिता, ६—अरजा, ७—अशोका, ८—वीतशोका।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—विजया, २—वैजयन्ती, ३—जयंती, ४—अपराजिता, ५—चक्रपुरा, ६—खड्गपुरा, ७—अवध्या, ८—अयोध्या।

५८८. एवं धायइसंडदीवे वि।

५८९. एवं पुक्खरवरदीवड्ढे वि।

—ठाणं अ० ८, सु० ६४१

५८८. इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप में भी।

५८९. इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध में भी।

५९०. धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठि चक्कवट्टिविजया, अडसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ। —सम० स० ६८, सु० १

पुक्खरवरदीवड्ढे अडसट्ठि चक्कवट्टिविजया, अडसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ। —सम० स० ६८, सु० ४

५९०. धातकीखण्ड नामक द्वीप में अड़सठ चक्रवर्ती विजय और अड़सठ राजधानियाँ हैं।

पुष्करवर द्वीपार्ध में अड़सठ चक्रवर्ती विजय, अड़सठ राजधानियाँ हैं।

जंबुद्दीवे भरहवासे बारसण्हं चक्कवट्टीणं तप्पिउ-माउ इत्थिरयणाणं च नामाइं—

जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के बारह चक्रवर्तियों और उनके माता-पिता-स्त्रीजनों के नामादि—

५९१. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिपियरो होत्था तं जहा—

उसभे सुमित्तविजए समुद्दविजए य अस्ससेणे य।
विस्ससेणे य सूरे, सुदंसणे कत्तवीरिए य ॥१॥
पउमुत्तरे महाहरी, विजए राया तहेव य।
बम्हे बारसमे वुत्ते, पिउनामा चक्कवट्टीणं ॥२॥

जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिमायरो होत्था, तं जहा—

१ सुमंगला २ जसवती, ३ भद्दा ४ सहदेवी ५ अइर ६ सिरि ७ देवी।
८ तारा ९ जाला १० मेरा, ११ वप्पा १२ चुलणी अपच्छिमा ॥१॥

५९१. जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्ती-पिता थे, यथा—

१—ऋषभ, २—सुमित्रविजय, ३—समुद्रविजय, ४—अश्वसेन, ५—विश्वसेन, ६—सूर, ७—सुदर्शन, ८—कृतवीर्य, ९—पद्मोत्तर, १०—महाहरि, ११—विजय, १२—ब्रह्म।

जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्ती-मातायें हुईं, यथा—

१—सुमंगला, २—यशोवती, ३—भद्रा, ४—सहदेवी, ५—अचिरा, ६—श्री, ७—देवी, ८—तारा, ९—ज्वाला, १०—मेरा, ११—वप्रा, १२—चुल्लनी।

५६२. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेवासे इमाये ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टी होत्था तं, जहा—

भरहो सगरो मघवं, सणंकुमारो य रायसद्दूलो ।
संती कुन्थू य अरो, हवइ सुभूमो य कोरव्वो ॥१॥
नवमो य महापउमो, हरिसेणो चेव रायसद्दूलो ।
जयनामो य नरवई, बारसमो बंभदत्तो य ॥२॥

५६२. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्ती हुए, यथा—

१—भरत, २—सगर, ३—मघवा, ४—सनत्कुमार, ५—शान्ति, ६—कुन्थु, ७—अर, ८—सुभूम, ९—महापद्म, १०—हरिषेण, ११—जय, १२—ब्रह्मदत्त ।

५६३. एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस इत्थिरयणा होत्था तं जहा—

पढमा होइ सुभद्दा, भद्द सुणंदा जया य विजया य ।
कण्हसिरी, सूरसिरी पउमसिरी वसुन्धरा देवी ॥१॥
लच्छिमई कुरुमई, इत्थिरयणाण नामाइं ।

—सम० सु० १५८

५६३. इन बारह चक्रवर्तियों के बारह स्त्रीरत्न थे, यथा—

१—सुभद्रा, २—भद्रा, ३—सुनन्दा, ४—जया, ५—विजया, ६—कृष्णश्री, ७—सूर्यश्री, ८—पद्मश्री, ९—वसुन्धरा, १०—देवी, ११—लक्ष्मीमती, १२—कुरुमती ।

जंबुद्दीवे भरहे वासे आगमेस्सुस्सप्पिणीए चक्कवट्टि-नामाइं—

जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती नामादि—

५६४. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेवासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टी भविस्संति, तं जहा—

संगहणीगाहा—

भरहे य दीहदंते, गूढदंते य सुद्धदंते य ।
सिरिउत्ते सिरिभूई, सिरिसोमे य सत्तमे ॥१॥
पउमे य महापउमे, विमलवाहणे विपुलवाहणे चेव ।
वरिट्ठे बारसमे वुत्ते, आगमेस्सा भरहाहिवा ॥२॥

५६४. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे, यथा—

१—भरत, २—दीर्घदन्त, ३—गूढदन्त, ४—शुद्धदन्त, ५—श्रीपुत्र, ६—श्रीभूति, ७—श्रीसोम, ८—पद्म, ९—महापद्म, १०—विमलवाहन, ११—विपुलवाहन, १२—रिष्ठ ।
ये आगामी भरताधिप है ।

५६५. एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति ।

—सम० सु० १५८

५६५. इन बारह चक्रवर्तियों के बारह पिता होंगे, बारह माताएं होंगी, बारह स्त्रीरत्न होंगे ।

जंबुद्दीवे आगमेस्सुस्सप्पिणीए एरवए वासे चक्कवट्टिआईणं संखा—

जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती आदि की संख्या—

५६६. जंबुद्दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए—

बारस चक्कवट्टी भविस्संति, बारस चक्कवट्टिपियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति ।

—सम० सु० १५८

५६६. जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे, बारह चक्रवर्ती पिता होंगे, बारह चक्रवर्ती माताएं होंगी, बारह स्त्रीरत्न होंगे ।

जंबुद्दीवे चक्कवट्टी आई—

जम्बूद्वीप में चक्रवर्ती आदि—

५६७. जंबुद्दीवे णं भंते ! केवइया जहण्णपए वा उक्कोसपए वा चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णपए चत्तारि,[1] उक्कोसपए तीसं चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता इति । बलदेवा तत्तिया चेव जत्तिया चक्कवट्टी वासुदेवा वि तत्तिया चेव त्ति ।

—जंबु० व० ७, सु० १५६

५६७. हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में जघन्य और उत्कृष्ट कुल मिलाकर कितने चक्रवर्ती होते हैं ?

गौतम ! कुल मिलाकर जघन्य से चार उत्कृष्ट से तीस चक्रवर्ती होते हैं । बलदेव भी इतने ही होते हैं जितने चक्रवर्ती । वासुदेव भी उतने ही होते हैं ।

१ ठाणं अ० ४ उ० १, सुत्त [illegible] ।

तिण्हं तित्थयराणं चक्कवट्टित्तं—

५९८. तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था तं जहा—संती, कुन्थू, अरो। —ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० २३१

तीन तीर्थंकरों का चक्रवर्तीत्व—

५९८. तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती थे, यथा—

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ।

सुभूम-बंभदत्ताणं नरयगमणं—

५९९. दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा—

सुभूमे चेव, बंभदत्ते चेव।[1]

—ठाणं, अ० २, उ० ४, सु० ११२

सुभूम ब्रह्मदत्त का नरक गमन—

५९९. काम-भोगों का त्याग नहीं करने वाले दो चक्रवर्ती मरणकाल में मरकर नीचे सातवीं नरक—पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नारक रूप से उत्पन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं, यथा—सुभूम और ब्रह्मदत्त।

६००. जंबुद्दीवे दीवे भरहेवासे दसरायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

गाहा—चंपा महुरा वाराणसी य, सावत्थि तह य साएयं।
हत्थिणउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं।

६००. जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ कही हैं, यथा—

१—चम्पा, २—मथुरा, ३—वाराणसी, ४—श्रावस्ती, ५—साकेत, ६—हस्तिनापुर, ७—कांपिल्यपुर, ८—मिथिला, ९—कोशाम्बि, १०—राजगृह।

६०१. एयासु णं दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुण्डा भवेत्ता-जाव-पव्वइया, तं जहा—

१ भरहो, २ सागरो, ३ मघवं, ४ सणंकुमारो, ५ संती, ६ कुन्थू, ७ अरे, ८ महापउमे, ९ हरिसेणे, १० जयणामे।[2]

—ठाणं अ० १०, सु० ७१८

६०१. इन दस राजधानियों में दस राजा मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए, यथा—

१—भरत, २—सगर, ३—मघव, ४—सनत्कुमार, ५—शांतिनाथ, ६—कुन्थुनाथ, ७—अरनाथ, ८—महापद्म, ९—हरिषेण, १०—जयनाथ।

सगरो चक्कवट्टी—

६०२. एवं सागरो वि राया चाउरंतचक्कवट्टी एक्कसत्तरिं पुव्व-जाव-पव्वइए त्ति॥ —सम० सु० ७१

सगर चक्रवर्ती—

६०२. इसी प्रकार चातुरंत चक्रवर्ती राजा सगर भी इकहतर लाख पूर्व वर्ष—यावत्—प्रव्रजित हुए।

हरिसेणे चक्कवट्टी—

६०३. हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एगूणनउइं वाससयाइं महाराया होत्था। —सम० सु० ८९

हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वाससयाइं अगारमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं-जाव-पव्वइए॥१७५॥

—सम० सु० ९७

हरिषेण चक्रवर्ती—

६०३. हरिषेण चक्रवर्ती नवासी सौ वर्ष महाराजा रहे।

हरिषेण चक्रवर्ती कुछ कम सत्तानबे सौ वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए।

भरहाईणं सरीरुस्सेहो—

६०४. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था,[3] बाहुबली णं अणगारे एवं चेव। बंभी णं अज्जा एवं चेव, एवं सुन्दरी वि।

—ठाणं अ० ५, उ० २, सु ४३५

भरतादि का शरीरोत्सेध—

६०४. चातुरंत चक्रवर्ती राजा भरत पांच सौ धनुष ऊँचे थे, बाहुबली अनगार भी इतने ही ऊँचे थे, इसी प्रकार ब्राह्मी और सुन्दरी भी इतनी ही ऊँची थीं।

---

१ बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं सत्त य वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववण्णे। —ठाणं, अ० ७, सु० ५६२

२ उत्त० अ० १८, गा० ३८-४१।

३ क. चक्कीणं उस्सेहो :

गाहाओ—पंच सत अद्धपंचम, बायाला चेव अद्धधणुयं च। चत्ता दिवड्ढधणुयं च, चउत्थे पंचमे चत्ता॥१॥
पणुतीसा तीसा पुण, अट्ठावीसा य वीस धणुयाणि। पन्नरस बारसेव य, अपच्छिमा सत्त य धणूणि॥२॥

ख. सम० स० ५००, सु० ४।

सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। —सम० ४५०, सु० २

सगर चक्रवर्ती साढ़े चार सौ धनुष ऊँचे थे।

चक्कवट्टिस्स हारे—

६०५. सव्वस्स वि य णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउसट्ठि-लट्ठीए महग्घे मुत्तामणिमए हारे पण्णत्ते। —सम० स० ६४, सु० ६

चक्रवर्ती का हार—

६०५. सभी चक्रवर्तियों का मुक्ता-मणिमय हार महा मूल्यवान एवं चौसठ लड़ियों वाला होता है।

चक्कवट्टिस्स गाम-पुर-पट्टणसंखा—

६०६. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स छण्णउइं छण्णउइं गामकोडीओ होत्था। —सम० स० ९६, सु० १

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स बावत्तरिं पुरवर-साहस्सीओ पण्णत्ताओ॥ —सम० स० ७२, सु० ६

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टण-सहस्सा पण्णत्ता। —सम० स० ४८, सु० १

चक्रवर्ती के ग्राम-पुर-पट्टन संख्या—

६०६. प्रत्येक चक्रवर्ती के छानवे छानवे करोड़ ग्राम हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती के बहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती के अड़तालीस हजार पट्टन हैं।

निहिरयणा—

६०७. जंबुद्दीवे दीवे केवइया निहिरयणा सव्वग्गेणं पण्णत्ता?

गोयमा! तिण्णि छलुत्तरा णिहिरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जंबुद्दीवे दीवे केवइया णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमा-गच्छंति?

गोयमा! जहण्णपए छत्तीसं, उक्कोसपए दोण्णि सत्तरा णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। —जम्बु० व० ७, सु० १७३

६०८. एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठट्ठ-जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। —ठाणं अ० ८, सु० ६०२

एगमेगे णं महाणिही णव-णव जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहिओ पण्णत्ता। —ठाणं अ० ९, सु० ६७३

निधिरत्न—

६०७. जम्बूद्वीप में सब कितने निधिरत्न हैं?

गौतम! सब तीन सौ छह निधिरत्न हैं।

जम्बूद्वीप में कितने सौ निधिरत्न परिभोग में आते हैं?

गौतम! जघन्य से छत्तीस और उत्कृष्ट से दो सौ सत्तर निधिरत्न परिभोग में आते हैं।

६०८. प्रत्येक महानिधि आठ चक्रों पर प्रतिष्ठित है, आठ योजन ऊँचा है।

प्रत्येक महानिधि नौ-नौ योजन विष्कम्भ वाली है, यथा? नौ योजन चौड़ी है।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा की नौ महानिधियाँ होती हैं।

चक्कवट्टिस्स चउद्दस-रयणाइं—

६०९. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदिय-रयणा पण्णत्ता, तं जहा—

१ चक्करयणे, २ छत्तरयणे, ३ चम्मरयणे, ४ दंडरयणे, ५ असिरयणे, ६ मणिरयणे, ७ काकणिरयणे।

६१०. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदिय-रयणा पण्णत्ता, तं जहा—

१ सेणावइरयणे, २ गाहावइरयणे, ३ वड्ढइरयणे, ४ पुरोहियरयणे, ५ इत्थिरयणे, ६ आसरयणे, ७ हत्थिरयणे।[1]

—[illegible]

चक्रवर्ती के चौदह रत्न—

६०९. प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं, यथा—

१—चक्ररत्न, २—छत्ररत्न, ३—चर्मरत्न, ४—दण्डरत्न, ५—असिरत्न, ६—मणिरत्न, ७—काकणीरत्न।

६१०. प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पंचेन्द्रिय रत्न होते हैं यथा—

१—सेनापति रत्न, २—गाथापति रत्न, ३—वर्धकी रत्न, ४—पुरोहित रत्न, ५—स्त्री रत्न, ६—अश्व रत्न, ७—हस्ति रत्न

१ [illegible]

काकिणिरयणागिई—

६११. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकिणिरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अधिकरणिसंठिते पण्णत्ते। —ठाणं अ० ८, सु० ६३३

काकिणी रत्नाकृति—

६११. प्रत्येक चातुरंत चक्रवर्ती राजा के काकिणी रत्न आठ सुवर्ण प्रमाण, छह तले, बारह अस्रि (कोना) और आठ कर्णिकाओं वाले होते हैं। काकिणी रत्न का संस्थान एरण के समान होता है।

जंबुद्दीवे एगिंदियरयणाणं संखा-परिभोगनिरूवणं—

६१२. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया एगिंदियरयणसया, परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपए अट्ठावीसं, उक्कोसेणं दोण्णि दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

जम्बूद्वीप में एकेन्द्रिय रत्नों की संख्या-परिभोग निरूपण—

६१२. हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में सब कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न हैं ?

गौतम ! सब मिलाकर दो सौ दस एकेन्द्रिय रत्न हैं।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न परिभोग में आते हैं ?

गौतम ! जघन्यतः अट्ठाईस और उत्कृष्टतः दो सौ दस एकेन्द्रिय रत्न उपभोग में आते हैं।

जंबुद्दीवे पंचिंदियरयणाणं संखा-परिभोगनिरूवणं—

६१३. जंबुद्दीवे दीवे केवइया पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता।

जंबुद्दीवे दीवे जहण्णपदे वा उक्कोसपदे वा केवइया पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपदे अट्ठावीसं, उक्कोसपए दोण्णि दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। —जंबु० व० ७, सु० १७३

जम्बूद्वीप में पंचेन्द्रिय रत्नों की संख्या-परिभोग निरूपण—

६१३. जम्बूद्वीप में कितने सौ पंचेन्द्रिय रत्न हैं ?

गौतम ! सब दो सौ दस पंचेन्द्रिय रत्न हैं।

जम्बूद्वीप में जघन्य से और उत्कृष्ट से कितने सौ पंचेन्द्रिय रत्न परिभोग में आते हैं।

गौतम ! जघन्य से अट्ठाईस और उत्कृष्ट से दो सौ दस पंचेन्द्रिय रत्न मनुष्यों के परिभोग में आते हैं।

॥ अथ चक्कवट्टि सामण्णं सम्मत्तं ॥

॥ चक्रवर्ती सामान्य समाप्त ॥

□ □

११. बलदेव-वासुदेवसामण्णं

बलदेव-वासुदेवाणं पिउ-माउयाइ—

६१४. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेवपियरो होत्था, तं जहा—

गाहा—पयावती य बंभो सोमो रुद्दो सिवो महसिवो य।
अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वसुदेवो ॥१॥

६१५. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव वासुदेवमायरो होत्था, तं जहा—

११. बलदेव-वासुदेव सामान्य

बलदेव-वासुदेव के पिता-माता—

६१४. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में नौ बलदेव वासुदेव-पिता हुए, यथा—

१—प्रजापति, १—ब्रह्म, ३—रुद्र, ४—सोम, ५—शिव, ६—महाशिव, ७—अग्निशिख, ८—दशरथ, ९—वसुदेव।

६१५. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में नौ वासुदेव—मातायें हुई, यथा—

मत्तगयवरिंद-ललिय-विक्कम-विलसियगई सारय-नवथणियमधुर-गंभीर-कोंचनिग्घोस-दुन्दुभिसरा कडिसुत्तगनील-पीय-कोसेज्ज-वाससा पवरदित्त-तेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा मरुय-वसभकप्पा अब्भहिय राय-तेय-लच्छीए दिप्पमाणा नीलग-पीतग-वसणा दुवे-दुवे रामकेसवा भायरो होत्था, तं जहा—

संगहणी-गाहाओ—

तिविट्ठू य दुविट्ठू य, सयंभू पुरिसुत्तमे ।
पुरिससीहे तह पुरिसपुण्डरीए, दत्ते नारायणे, कण्हे ।।१।।
अयले, विजए भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंदे णंदणे, पउमे रामे यावि अपच्छिमे ।।२।।

समान जिनकी गति होती है, क्रौंच पक्षी के मधुर एवं गंभीर शरद स्वर जैसा जिनका निनाद है, जो नील एवं पीत कौशेय वस्त्र पहनते हैं अर्थात् बलदेव नील और वासुदेव पीत वर्ण के वस्त्र पहनते हैं, वे सूर्य के समान तेजस्वी, नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र, नरवृषभ और देवराज इन्द्र जैसे हैं, अप्रतिहत राज्य तेज लक्ष्मी से दीप्तिमान ये राम और केशव दोनों भाई-भाई होते हैं।

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, दत्त, नारायण, कृष्ण तथा अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन पद्म, और राम ये दशार मण्डल में क्रमशः नौ वासुदेव और नौ बलदेव हुए थे।

६१८. एतेसि णं णवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया नव-नव नामधेज्जा होत्था, तं जहा—

विस्सभूई पव्वयए, धणदत्त समुद्दत्त इसिवाले ।
पियमित्त ललियमित्ते, पुणव्वसू गंगदत्ते य ।।१।।
एयाइं नामाइं, पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं ।
एत्तो बलदेवाणं, जहक्कमं कित्तइस्सामि ।।२।।
विसनंदी सुबंधू य, सागरदत्ते असोगललिए य ।
वाराह धम्मसेणे, अपराइय रायललिए य ।।३।।

६१८. इन नौ वासुदेव और नौ बलदेव के पूर्वभव के नौ नाम थे, जो इस प्रकार हैं—

विश्वभूति, पर्वतक, धनदत्त, समुद्रदत्त, ऋषिपाल, प्रियमित्र, ललितमित्र, पुनर्वसु, गंगदत्त—

वासुदेवों के पूर्वभव में ये नाम थे और बलदेवों के नाम इस प्रकार हैं—

विश्वनन्दी, सुबन्धु, सागरदत्त, अशोकललित, वराह, धर्मसेन, अपराजित, राजललित।

६१९. एतेसि णं नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविणा नव धम्मायरिया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—संभूत सुभद्द सुदंसणे, य सेयंसे कण्ह गंगदत्ते य ।
सागरसमुद्दनामे, दुमसेणे य णवमेए ।।१।।
एते धम्मायरिया, कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे आसिण्हं, जत्थ निदाणाइं कासी य ।।२।।

६१९. इन नौ वासुदेवों के पूर्वभव के नौ धर्माचार्य थे, यथा—

गाथा—

संभूत, सुभद्र, सुदर्शन, श्रेयांस, कृष्ण, गंगदत्त, सागर, समुद्र, द्रुमसेन। कीर्तिपुरुष वासुदेवों के पूर्वभव में ये धर्माचार्य हुए थे, अब जहाँ निदान किया था, उन निदान-भूमियों को बतलाते हैं।

६२१. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव नियाणभूमीओ होत्था, तं जहा—

महुरा य कणगवत्थू, सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कायंदी कोसंबी, मिहिलपुरी हत्थिणपुरं च ।।१।।

एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव नियाणकारणा होत्था, तं जहा—

गावी जुवे य संगामे इत्थी पराइयो रंगे ।
भज्जाणुराग गोट्ठी, पराइड्ढी माउयाइ य ।।१।।

६२०. इन नौ वासुदेवों की पूर्वभव में नौ निदान भूमियाँ थीं, यथा—

मथुरा, कनकवस्तु, श्रावस्ती, पोतनपुर, राजगृह, काकंदी कौशांबी, मिथिलापुरी, हस्तिनापुर।

इन नौ वासुदेवों के नौ निदान कारण थे, यथा—

गाय, द्यूत, संग्राम, स्त्री, रंग में पराजय, भार्यानुराग, गोष्ठी, पर-ऋद्धि, माता।

६२१. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव पडिसत्तू होत्था, तं जहा—

अस्सग्गीवे तारए, मेरए महुकेढवे निसुम्भे य ।
बलि पहराए तह रावणे य नवमे जरासंधे ।।१।।
एए खलु पडिसत्तू, कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे वि चक्कजोही सव्वे वि हया[1] सचक्केहिं ।।२।।

६२१. इन नौ वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु थे, यथा—

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रह्लाद, रावण, जरासंध, कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये सभी प्रतिशत्रु उनके साथ चक्रयुद्ध करते हैं और अन्त में स्वचक्र से मारे जाते हैं।

---

१ ठाणं० अ० ९, सु० ६७२।

आवाए एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा। एवं दोसु वि आगमिस्साए भाणियव्वा ॥

—सम० सु० १५९

बलदेवाणमुच्चत्तं सव्वाउयं च—

६२५. अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ८०, सु० ३

६२६. विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० स० ७३, सु० २

६२७. सुप्पभे णं बलदेवे एकावण्णं वाससयसहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० स० ५१, सु० ४

६२८. नंदणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ३५, सु० ४

६२९. रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० १०, सु० ६

६३०. रामे णं बलदेवे दुवालसवाससयाइं सव्वाउयं[1] पालित्ता देवत्तं गए।

—सम० स० १२, सु० ५

६३१. तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं वाससयसहस्साइं महाराया होत्था।

—सम० स० ८०, सु० ४

वासुदेव-पइण्णगं—

६३२. तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ८०, सु० २

६३३. तिविट्ठे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववण्णे।

—सम० स० ८४, सु० ४

६३४. सयंभुस्स णं वासुदेवस्स णउइवासाइं विजए होत्था।

—सम० स० ९०, सु० ४

६३५. पुरिसुत्तमे णं वासुदेवे पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० स० ५०, सु० ३

यह सब ऐरावत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल में कथन करना चाहिए। इस प्रकार दोनों द्वीपों के आगामी उत्सर्पिणी काल के लिये भी कहना चाहिए।

बलदेवों का उच्चत्व और सर्वायु—

६२५. अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊंचा था।

६२६. विजय बलदेव तिहत्तर लाख वर्ष की सर्वायु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, सब दुखों का क्षय कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ।

६२७. सुप्रभ बलदेव इक्यावन लाख वर्ष की आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और सब दुखों का नाश कर निर्वाण को प्राप्त हुआ।

६२८. नन्दन बलदेव पैंतीस धनुष ऊँचा था।

६२९. राम बलदेव दस धनुष ऊंचा था।

६३०. राम बलदेव ने बारह सौ वर्ष की सर्वायुका भोगकर देवत्व प्राप्त किया।

६३१. त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अस्सी लाख वर्ष राज्य किया।

वासुदेव-प्रकीर्णक—

६३२. त्रिपृष्ठ वासुदेव की ऊँचाई अस्सी धनुष की थी।

६३३. त्रिपृष्ठ वासुदेव चौरासी लाख वर्ष की सर्वायुका भोगकर अप्रतिष्ठान नामक नरक में नारक रूप में उत्पन्न हुआ।

६३४. स्वयंभू वासुदेव का विजय काल नब्वे वर्ष का था।

६३५. पुरुषोत्तम वासुदेव पचास धनुष ऊंचा था।

---

१ बलदेवानं सव्वाउं :

गाहाओ—पंचासीई१ पण्णत्तरि२ य, पण्णट्ठि३ पंचवण्णा४ य।
सत्तरस५ सयसहस्सा, पंचमए आउयं होइ ॥१॥
पंचासीइ सहस्सा६, पण्णट्ठी७ तह य चेव पण्णरस८।
बारस सयाइं आउं, [illegible] जहासंखं ॥२॥

—आव० नि० चू० गा० ४०६, ४०७।

६३६. पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पंचमाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे ।

—सम० सु० १३२

६३६. पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्ष की सर्वायु भोगकर पांचवीं नरक पृथ्वी में नारक हुआ ।

६३७. पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे ।

—ठाणं अ० १०, सु० ७३५

६३७. पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्ष की सर्वायु भोगकर छट्ठी तमा पृथ्वी में नारक उत्पन्न हुआ ।

६३८. दत्ते णं वासुदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ३५, सु० १

६३८. दत्त वासुदेव पैंतीस धनुष ऊँचा था ।

६३९. कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं[1], दस य वाससयाइं सव्वाउयं[2] पालइत्ता तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

६३९. कृष्ण वासुदेव दस धनुष ऊँचा था, और दस सौ वर्ष की सर्वायु को भोगकर तीसरी वालुका प्रभा पृथ्वी में नारक हुए ।

॥ पढमो खंधो समत्तो ॥

॥ प्रथम स्कन्ध समाप्त ॥



धम्मकहाणुओगो

[धर्मकथानुयोग]

बितियो खंधो

[द्वितीय स्कन्ध]

धम्मकहाणुओगे

बितियो खंधो

धर्मकथानुयोग

द्वितीय स्कन्ध

प्राथमिक

☐ जैन आगमों में वर्णित चरित्र कथाओं का समग्र संकलन धर्मकथानुयोग में किया गया है।

☐ इसके प्रथम स्कन्ध में शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया तथा अब द्वितीय स्कन्ध में 'श्रमण' (मुनि) चरित्रों का संकलन है।

☐ भगवान ऋषभदेव के युग के श्रमणों का वर्णन विस्तृत रूप में वर्तमान में किसी आगम में उपलब्ध नहीं है। जो सबसे प्राचीन श्रमण चरित्र उपलब्ध है, वह है विमलनाथ (१३वें) तीर्थंकर के समय में महाबल राजकुमार—श्रमण का। अतः हमने कालक्रम से यहां श्रमणों का चरित्र कथानक संकलित किया है।

☐ इस द्वितीय स्कन्ध में विमलनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ एवं महावीर-तीर्थ—यों पाँच तीर्थंकरों के युग में हुए श्रमणों का चरित्र लिया है।

☐ इस द्वितीय स्कन्ध में विमल-तीर्थ के १, मुनिसुव्रत-तीर्थ के २, अरिष्टनेमि-तीर्थ के ६ पार्श्व-तीर्थ के २ तथा महावीर-तीर्थ के ३४—यों सर्व ४८ मुख्य चरित्र (अध्ययन) तथा उनसे सम्बन्धित सम-सामयिक अन्य चरित्र संकलित हैं; जिनका कि वर्णन आगम में सम्बद्ध है।

☐ स्थविरावली में कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्रगत वर्णन है, जो चरित्र नहीं, किन्तु नाम सूची मात्र ही प्राप्त होता है।

☐ यह वर्णन अनेक आगमों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है, यहाँ पर सभी आगमों से मूल रूप में संकलन किया गया है। चरित्र में प्रायः समग्रता लाने के लिए अनेक स्थलों के सन्दर्भ लिये हैं। कथा चरित्रों के वर्णन में विविधता होते हुए भी कथानक का रस भंग नहीं हुआ है। कथा सूत्र को प्रायः सम्बद्ध रखने का ही प्रयत्न किया है।



प्राथमिक

☐ जैन आगमों में वर्णित चरित्र कथाओं का समग्र संकलन धर्मकथानुयोग में किया गया है।

☐ इसके प्रथम स्कन्ध में शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया तथा अब द्वितीय स्कन्ध में 'श्रमण' (मुनि) चरित्रों का संकलन है।

☐ भगवान ऋषभदेव के युग के श्रमणों का वर्णन विस्तृत रूप में वर्तमान में किसी आगम में उपलब्ध नहीं है। जो सबसे प्राचीन श्रमण चरित्र उपलब्ध है, वह है विमलनाथ (१३वें) तीर्थंकर के समय में महाबल राजकुमार—श्रमण का। अतः हमने कालक्रम से यहां श्रमणों का चरित्र कथानक संकलित किया है।

☐ इस द्वितीय स्कन्ध में विमलनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ एवं महावीर-तीर्थ —यों पाँच तीर्थंकरों के युग में हुए श्रमणों का चरित्र लिया है।

☐ इस द्वितीय स्कन्ध में विमल-तीर्थ के १, मुनिसुव्रत-तीर्थ के २, अरिष्टनेमि-तीर्थ के ६ पार्श्व-तीर्थ के २ तथा महावीर-तीर्थ के ३४—यों सर्व ४८ मुख्य चरित्र (अध्ययन) तथा उनसे सम्बन्धित सम-सामयिक अन्य चरित्र संकलित हैं; जिनका कि वर्णन आगम में सम्बद्ध है।

☐ स्थविरावली में कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्रगत वर्णन है, जो चरित्र नहीं, किन्तु नाम सूची मात्र ही प्राप्त होता है।

☐ यह वर्णन अनेक आगमों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है, यहां पर सभी आगमों से मूल रूप में संकलन किया गया है। चरित्र में प्रायः समग्रता लाने के लिए अनेक स्थलों के सन्दर्भ लिये हैं। कथा चरित्रों के वर्णन में विविधता होते हुए भी कथानक का रस भंग नहीं हुआ है। कथा सूत्र को प्रायः सम्बद्ध रखने का ही प्रयत्न किया है।



बितियो खंधो

द्वितीय स्कन्ध

समणकहाणगाणि

श्रमण कथानक

अज्झयणा

अध्ययन

१९. महावीरतित्थे	अइमुत्तए कुमारसमणे	१९. महावीरतीर्थ में	अतिमुक्तक कुमार श्रमण
२०. महावीरतित्थे	अलक्कराया	२०. महावीरतीर्थ में	अलक्ष्य राजा
२१. महावीरतित्थे	मेहकुमारेसमणे	२१. महावीरतीर्थ में	मेघकुमार श्रमण
२२. महावीरतित्थे	मकाईआईसमणा	२२. महावीरतीर्थ में	मकाई आदि श्रमण
२३. महावीरतित्थे	अज्जुणमालागारे	२३. महावीरतीर्थ में	अर्जुन मालाकार
२४. महावीरतित्थे	कासवाई समणा	२४. महावीरतीर्थ में	काश्यपादि श्रमण
२५. महावीरतित्थे	सेणियपुत्ता जालिआई समणा	२५. महावीरतीर्थ में	श्रेणिकपुत्र जालि आदि श्रमण
२६. महावीरतित्थे	धण्णे सत्थवाहपुत्ते अणगारे	२६. महावीरतीर्थ में	सार्थवाहपुत्र धन्य अनगार
२७. महावीरतित्थे	सुणक्खत्ताइसमणा	२७. महावीरतीर्थ में	सुनक्षत्रादि श्रमण
२८. महावीरतित्थे	सुबाहुकुमारसमणे	२८. महावीरतीर्थ में	सुवाहुकुमार श्रमण
२९. महावीरतित्थे	भद्दनंदीआइ समणकहाणगाणि	२९. महावीरतीर्थ में	भद्रनंदि आदि श्रमण कथानक
३०. महावीरतित्थे	सेणियनत्तू पउमसमणो	३०. महावीरतीर्थ में	श्रेणिकनप्तृ (पौत्र) पद्म श्रमण और अन्य चरित्र
३१. महावीरतित्थे	हरिएसबलो	३१. महावीरतीर्थ में	हरिकेशबल
३२. महावीरतित्थे	अणाही महानियंठो	३२. महावीरतीर्थ में	अनाथी महानिर्ग्रन्थ
३३. महावीरतित्थे	सुमुद्दपालीयस्स कहाणय	३३. महावीरतीर्थ में	समुद्रपालीय का कथानक
३४. महावीरतित्थे	मियापुत्ते बलसिरीसमणे	३४. महावीरतीर्थ में	मृगापुत्र वलश्री श्रमण
३५. महावीरतित्थे	संजयराया	३५. महावीरतीर्थ में	गर्दभालि और संजय राजा
३६. महावीरतित्थे	उसुयाररायाई छ समणा	३६. महावीरतीर्थ में	इषुकार राजादि छह श्रमण
३७. महावीरतित्थे	खंदए परिव्वायगे	३७. महावीरतीर्थ में	स्कन्दक परिव्राजक
३८. महावीरतित्थे	मोग्गलपरिव्वायगे	३८. महावीरतीर्थ में	मुद्गल परिव्राजक
३९. महावीरतित्थे	सिवरायरिसी	३९. महावीरतीर्थ में	शिवराजर्षि
४०. महावीरतित्थे	उद्दायणरायकहाणयं	४०. महावीरतीर्थ में	उदायनराज कथानक
४१. महावीरतित्थे	जिणपालिय-जिणरक्खिय-णायं	४१. महावीरतीर्थ में	जिनपालित जिनरक्षित ज्ञात
४२. महावीरतित्थे	कालासवेसियपुत्ते	४२. महावीरतीर्थ में	कालास्यवेषिपुत्र
४३. महावीरतित्थे	उदए पेढालपुत्ते	४३. महावीरतीर्थ में	उदक पेढालपुत्र
४४. महावीरतित्थे	नंदीफलणायं	४४. महावीरतीर्थ में	नन्दीफल ज्ञात
४५. महावीरतित्थे	धणसत्थवाहकहाणयं	४५. महावीरतीर्थ में	धन्य सार्थवाह कथानक
४६ महावीरतित्थे	कालोदाई कहाणयं	४६. महावीरतीर्थ में	कालोदायी कथानक
४७. महावीरतित्थे	पुण्डरीय-कण्डरीय-कहाणयं	४७. महावारतीर्थ में	पुण्डरीक-कण्डरीक कथानक
४८. महावीरतित्थे	थविरावली	४८. महावीरतीर्थ में	स्थविरावली

१. विमलतित्थे महब्बलो

१. विमल तीर्थ में महाबल

वाणियग्गामे भगवओ महावीरस्सागमणं—

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्गामे नामं नगरे होत्था—वण्णओ।

दूतिपलासे चेइए—वण्णओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ।

तत्थ णं वाणियग्गामे नगरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

२. सामी समोसढे-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

सुदंसणसेट्ठिणा धम्मसवणं—

३. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार-विभूसिए साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं पायविहारचारेणं महयापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते वाणियग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव दूतिपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—सचित्ताणं दव्वाणं जहा उसभदत्तो-जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ।

४. तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स सेट्ठिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ—जाव आणाए—आराहए भवइ।

वाणिज्यग्राम में भगवान महावीर का आगमन—

१. उस काल में, उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—वर्णन (उववाई सूत्र से जानना चाहिये)।

दूतिपलाशचैत्य था—वर्णन—यावत्—पृथ्वीशिलापट्ट था।

उस वाणिज्यग्राम नगर में सुदर्शन नाम का सेठ रहता था—वह आढ्य-धनिक-यावत्-अपरिभूत-बहुत से मनुष्यों से पराभव को प्राप्त न करने वाला, जीवाजीव तत्व का जानकार श्रमणोपासक था—यावत्—यथापरिगृहीत-विधिपूर्वक ग्रहण किए हुए तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करता था।

२. वहाँ महावीर स्वामी समवसृत हुए—अर्थात् भगवान महावीर का पदार्पण हुआ—यावत् पर्षदा—जनसमुदाय पर्युपासना करता है।

सुदर्शन सेठ द्वारा धर्मश्रवण—

३. तत्पश्चात भगवान महावीर स्वामी के पदार्पण होने की बात को सुनकर वह सुदर्शन सेठ हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, स्नान करके बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त कर सर्व अलंकारों से विभूषित होकर अपने घर से बाहर निकला, निकलकर कोरंट पुष्प की माला वाला छत्र मस्तक पर धारण किये हुए पैदल चलकर बहुत से मनुष्यों के समुदाय से घिरा हुआ वाणिज्यग्राम नगर के बीचोबीच होकर निकलता है, निकलकर जिस ओर दूतिपलाश चैत्य है, जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं वहाँ आता है, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर के पास पाँच प्रकार के अभिगमों द्वारा जाता है, यथा—सचित्त द्रव्यों को छोड़ता है आदि विशेष—जैसा ऋषभदत्त के प्रकरण में कहा है—यावत्—तीन प्रकार की पर्युपासना द्वारा पर्युपासना-सेवा करता है।

४. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस सुदर्शन सेठ और उस महा विशाल परिषदा को धर्मकथा कही—यावत्—आज्ञा का आराधक होता है।

सुदंसणसेट्ठिणा कालविसए पुच्छा—

५. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

६. 'कतिविहे णं भंते ! काले पण्णत्ते ?

सुदंसणा ! चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा—

१ पमाणकाले, २ अहाउनिव्वत्तिकाले, ३ मरणकाले, ४ अद्धाकाले ।[1]

७. से किं तं पमाणकाले ?

पमाणकाले दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ दिवसप्पमाणकाले य २ राइप्पमाणकाले य । चउपोरिसिए दिवसे, चउपोरिसिया राई भवइ ।[2]

उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ,

जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

८. जदा णं भंते ! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी-परिहायमाणी जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

जदा णं जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

सुदंसणा ! जदा णं उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीससयभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी-परिहायमाणी जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

जदा वा जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीससयभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

९. कदा णं भंते ! उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ? कदा वा जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

सुदर्शन सेठ द्वारा कालविषयक पृच्छा—

५. उसके बाद वह सुदर्शन सेठ श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर हर्षित और संतुष्ट होकर स्थान से खड़ा होता है, खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहता (पूछता) है—

६. हे भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा है ?

हे सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार—

१ प्रमाणकाल, २ यथायुनिर्वृत्तिकाल, ३ मरणकाल, अद्धाकाल ।

७. हे भगवन् ! वह प्रमाणकाल कितने प्रकार का कहा है ?

प्रमाणकाल दो प्रकार का कहा है, यथा—१ दिवस प्रमाण काल और २ रात्रि प्रमाण काल । चार पौरुषी का—प्रहर का दिवस होता है, चार पौरुषी की—प्रहर की रात्रि होती है ।

उत्कृष्टतः साढ़े चार मुहूर्त की पौरुषी दिन की और रात्रि की होती है और—

जघन्यतः तीन मुहूर्त की दिवस की और तीन मुहूर्त की रात्रि की पौरुषी होती है ।

८. हे भगवन् ! जब दिवस की अथवा रात्रि की साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है, तब उस मुहूर्त के कितने भाग घटते-घटते दिवस और रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ?

और जब दिवस या रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है तब उस मुहूर्त के कितने भाग बढ़ते-बढ़ते दिवस और रात्रि की साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है ?

हे सुदर्शन ! जब दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है, तब उस मुहूर्त का एक सौ बाईसवाँ भाग घटते-घटते दिवस और रात्रि में जघन्य तीन मुहूर्त की पौरुषी होती है ।

और जब दिवस अथवा रात्रि की तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है तब मुहूर्त का एक सौ बाईसवाँ भाग बढ़ते-बढ़ते दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है ।

९. हे भगवन् ! दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी कब होती है ? और दिवस और रात्रि में कब तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ?

---

१ ठाणं अ० ४, उ० १, सु० २६४ ।

२ उत्त० अ० २६, गा० ११ और गा० १७ ।

सुदंसणा ! जदा णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, तदा णं उक्कोसिया अद्ध-पंचममुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ, जहण्णिया तिमुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ ।[1]

हे सुदर्शन ! जब अठारह मुहूर्त्त का उत्कृष्ट दिवस होता है और बारह मुहूर्त की छोटी रात्रि होती है, तब साढ़े चार मुहूर्त्त की दिन की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और रात्रि में तीन मुहूर्त्त की जघन्य पौरुषी होती है ।

जदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्तिया राई भवई, जहिण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तदा णं उक्कोसिया अद्धपंचममुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ, जहण्णिया तिमुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ ।[2]

और जब अठारह मुहूर्त्त की बड़ी रात्रि होती है एवं बारह मुहूर्त्त का छोटा दिन होता है, तब रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और तीन मुहूर्त्त की दिवस की जघन्य पौरुषी होती है ।

१० कदा णं भंते ! उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? कदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ?

१० हे भगवन् ! अठारह मुहूर्त का बड़ा दिन कब होता है और बारह मुहूर्त्त की छोटी रात्रि कब होती है ? तथा अठारह मुहूर्त्त की बड़ी रात्रि कब होती है और बारह मुहूर्त्त का छोटा दिन कब होता है ?

सुदंसणा ! आसाढपुण्णिमाए उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ।

पोसपुण्णिमाए णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ।[3]

हे सुदर्शन ! आषाढ़ पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त्त का बड़ा दिन होता है और बारह मुहूर्त्त की छोटी रात्रि होती है ।

पौष मास की पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त की बड़ी रात्रि होती है और बारह मुहूर्त का छोटा दिवस होता है ।

११ अत्थि णं भंते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

११ हे भगवन ! दिवस और रात्रि ये दोनों समान समय वाले भी होते हैं ?

हंता अत्थि ।

हाँ होते हैं ।

कदा णं भंते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

हे भगवन् ! दिवस और रात्रि दोनों कब समान समय वाले होते हैं ?

सुदंसणा ! चेत्तासोयपुण्णिमासु, एत्थ णं दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति—पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ । चउभागमुहुत्तभागूणा चउमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

हे सुदर्शन ! चैत्र और आसोज मास की पूर्णिमायें होती हैं तब दिवस और रात्रि ये दोनों समान काल वाले होते हैं तब पन्द्रह मुहूर्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है । उस दिवस अथवा रात्रि में मुहूर्त का चौथा भाग न्यून चार मुहूर्त की पौरुषी होती है ।

से त्तं पमाणकाले ।[4]

इस प्रकार प्रमाण काल है ।

१२ से किं तं अहाउनिव्वत्तिकाले ?

१२ हे भगवन् ! वह यथायुर्निर्वृत्ति काल क्या है अर्थात् यथा-युर्निर्वृत्ति काल किस प्रकार से बतलाया है ?

अहाउनिव्वत्तिकाले—जण्णं जेणं नेरइएण वा तिरिक्खजोणिएण वा मणुस्सेण वा देवेण वा अहाउयं निव्वत्तियं से त्तं अहाउ-निव्वत्तिकाले ।

जिस किसी नारक ने अथवा तिर्यंचयोनिक ने अथवा मनुष्य ने अथवा देव ने अपना जैसा आयुष्य बाँधा है, उस प्रकार उसका पालन करे वह यथायुर्निर्वृत्ति काल कहलाता है ।

१३ से किं तं मरणकाले ?

१३ हे भगवन् ! मरण काल क्या है ?

मरणकाले—जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ । से त्तं मरणकाले ।

शरीर से जीव का अथवा जीव से शरीर का वियोग होना, मरणकाल कहलाता है ।

---

१ सम० १८, सु० ८ ।
२ सम० १२, सु० ८ ।
३ सम० २४, सु० ४ । २७, सु० ६ । ३७, सु० ५ । ३६, सु० ४ । ४०, सु० ६, ७ ।
४ सम० १५, सु० ५ ।

१४ से किं तं अद्धाकाले ?

अद्धाकाले अणेगविहे पण्णत्ते—से णं समयट्ठयाए आवलियट्ठयाए-जाव-उस्सप्पिणिअट्ठयाए ।

एस णं सुदंसणा ! अद्धा दोहारच्छेदेणं छिज्जमाणी जाहे विभागं नो हव्वमागच्छइ, से त्तं समए समयट्ठयाए ।

असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा आवलियत्ति पवुच्चइ ।

संखेज्जाओ आवलियाओ ।

जहा सालिउद्देसए-जाव-तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परीमाणं ।[1]

१४ हे भगवन् ! यह 'अद्धाकाल' क्या है ?

अद्धाकाल—यह समयरूप, आवलिकारूप-यावत्—उत्सर्पिणी रूप में अनेक प्रकार का कहा है ।

हे सुदर्शन ! काल के दो भाग करने पर भी जब उसके दो भाग न हो सकें वह (अविभाज्य) काल समय रूप में समय कहलाता है ।

असंख्यात समयों का समुदाय मिलने से एक आवलिका होती है ।

संख्यात आवलिका का (एक उच्छ्वास) होता है—इत्यादि जैसा शालि उद्देशक (शतक ६, उ० ७, सूत्र ४-७ महावीर वि० संस्करण) में कहा है—यावत्—सागरोपम का, एक भव का प्रमाण तक परिमाण जानना ।

१५. एएहिं णं भंते ! पलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं ?

सुदंसणा ! एएहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं नेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवाणं आउयाइं मविज्जंति ।

१५ हे भगवन्! इस पल्योपम और सागरोपम रूप का क्या प्रयोजन है ?

हे सुदर्शन ! इस पल्योपम और सागरोपम द्वारा नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवों की आयुष्यों का प्रमाण किया जाता है ।

१६. नेरइया णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?[2]

एवं ठिइपदं निरवसेसं भाणियव्वं-जाव अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।[1]

१६ हे भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

यहाँ सम्पूर्ण स्थिति पद (प्रज्ञापना सूत्र का) कहना चाहिये—यावत्—सर्वार्थ सिद्ध के देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्टतः (मध्यम) ऐसी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है ।

सुदंसणसेट्ठिणा पलिओवमादि खयावचयविसए पुच्छा—

सुदर्शन सेठ द्वारा पल्योपमादि की क्षयापचय विषयक पृच्छा—

१७. अत्थि णं भंते ! एएसिं पलिओवम-सागरोवमाणं खए ति वा अवचए ति वा ?

हंता अत्थि ।

१८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थि णं एएसिं पलिओवम-सागरोवमाणं 'खएति वा' अवचएति वा ?

१७. हे भगवन् ! इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है ?

हाँ होता है ।

१८. हे भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है ?

भगवया महावीरेण सुदंसणसेट्ठिणो पुव्वभववण्णणे महब्बल-कहा-कहणं—

भगवान महावीर द्वारा सुदर्शन सेठ के पूर्वभव के वर्णन में महाबल कथा-कथन—

१९. एवं खलु सुदंसणा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था-वण्णओ ।

१९. हे सुदर्शन ! वह इस प्रकार, उस काल उस समय में हस्तिनापुर नाम का नगर था—(नगर) वर्णन ।

---

१ (क) अणु० सु० ३६३—३६८ । (ख) भग० स० ६, उ० ७, सु० ४—७ ।
(ग) ठाणं० अ० २, उ० १, सु० ६७, ७४ । अ० २, उ० ४, सु० ९९ । अ० ८, सु० ६१७ ।
(घ) भग० स० २५, उ० ५, सु० २—१९

२ अणु० सु० ३८२ ।

३ (क) अणु० सु० ३८३—३९१ (ख) पण्ण० प० ४, सु० ३३५-३४२ ।

सहस्संबवणे उज्जाणे-वण्णओ। तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे बले नामं राया होत्था—वण्णओ।

वहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, (उद्यान का) वर्णन। उस हस्तिनापुर नगर में बल नामक राजा था, (राजा का) वर्णन।

तस्स णं बलस्स रण्णो पभावई नामं देवी होत्थासुकुमाल-पाणिपाया-वण्णओ-जाव-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभव-माणी विहरइ।

उस बल राजा की प्रभावती नाम की रानी थी—उसके हाथ पग सुकुमाल थे—वर्णन—यावत्-पांच प्रकार के मानवीय काम-भोगों का प्रत्यनुभव करते हुए विचरती थी।

पभावई-देवीए सुमीणे सीह-दंसणं—

प्रभावती देवी का स्वप्न में सिंह-दर्शन—

२०. तए णं सा पभावई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिस-गंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरतो दूमियघट्ठमट्ठे विचित्तउल्लोगचिल्लियतले मणिरतणपणासियंधकारे बहुसमसुवि भत्तदेसभाए पंचवण्णसरससुरभिमुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलिए कालागरुपवर कुंदुरुक्क धूयमघमघेंतगंधु—द्धुताभिरामे सुगंधवर-गंधिए गंधवट्टिभूते तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टीए उभओ बिब्बोयणे दुहओ उन्नए मज्झे णय-गंभीरे गंगापुलिणवालुय उद्दाल सालिसए ओयविय खोमिय दुगुल्लपट्टपलिच्छायणे सुविर-इयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगंधवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं-कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं-सस्सिरियं महासुविणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा।

२०. उसके बाद अन्य किसी एक दिन उस प्रकार के वासगृह में जो भीतर से चित्र युक्त था, बाहर से सफेदी किया हुआ और घिसकर कोमल बनाया हुआ था। जिसका उपरिभाग विविध चित्रों से सज्जित था और नीचे का भाग भी सुशोभित था। वह मणि-रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित, बहु समान सुविभक्त भाग वाला पाँच वर्ण के सरस और सुरभित पुष्प पुञ्जों के ढेर सहित, उत्तम काला-गुरु-कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) के धूप से चारों ओर से सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एवं सुगन्धी द्रव्य की गुटिका के समान था। ऐसे वास भवन में जो शय्या थी, उसके सिरहाने और पगोतिये—दोनों ओर तकिये लगे थे अतः दोनों ओर से उन्नत मध्य में कुछ नमी (झुकी) हुई, विशाल, गंगा के किनारे की रेती के अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने) के समान कोमल, क्षौमिक—रेशमी दुकूल पट से आच्छादित, रजस्त्राण—(धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आजनिक, रुई, बूर, नवनीत और अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्शवाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प चूर्ण और अन्य शयनोपचार (शयन सामग्री से) युक्त शय्या में सोती हुई प्रभावती रानी ने अर्धरात्रि के समय में कुछ सोती और कुछ जागती सी निद्रा लेती; वह प्रभावती रानी इस प्रकार (निम्न प्रकार) का उदार-यावत्-शोभा युक्त महास्वप्न (सिंह) को देखकर जागी।

हार-रयय-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहासेल-पंडुर तरोरु-रमणिज्ज-पेज्ज-पेच्छणिज्जं थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठ-विसिट्ठतिक्ख दाढाविडंबितमुहं परिकम्मियजच्चं कमलकोमलमाइय सोभंतलट्ठउट्ठं रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहं मूसागयपवरकण-गतावित आवट्टायंतवट्टतडिविमलसरिसनयणं विसालपीवरोरु-पडिपुण्णविमलखंधं मिउविसदसुहुमलक्खणपसत्थवित्थिण्ण केसर-सडोवसोभियं ऊसियसुनिमितसुजातअप्फोडितणंगूलं सोमं सोमाकारं

(वह सिंह) हार, रजत, क्षीर सागर, चन्द्र की किरण, जल-बिन्दु और रजत (चांदी) के विशाल पर्वत जैसा धवल, विशाल, रमणीय, प्रिय तथा दर्शनीय था। उसके प्रकोष्ठ स्थिर एवं सुन्दर थे। वह गोल, सुपुष्ट, सुश्लिष्ट विशिष्ट तथा तीक्ष्ण दाढाओं से युक्त मुख को फाड़े हुए था। उसके ओष्ट संस्कारित श्रेष्ठ कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत और सुशोभित थे। उसका तालु और जीभ रक्त कमल के समान लाल व कोमल थी। उसकी आंखें ऐसी रक्त वर्ण थी, जैसे—मूस में रहे हुए एवं अग्नि से तपाये हुए तथा गोल घूमते हुए शुद्ध स्वर्ण का कड़ा होता है। वे गोल और बिजली के समान निर्मल तेजोदीप्त थी। उसकी जंघाएँ विशाल और पुष्ट थी। उसके स्कन्ध विशाल और परिपूर्ण थे। उसकी केशरा कोमल, विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षणवाली थी। वह अपनी उन्नत तथा सुन्दर पूंछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ सौम्य, सौम्य आकार वाला लीला करता हुआ, जंभाई लेता हुआ आकाश

लीलयंतं जंभायंतं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवयणकमलसर-मतिवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा।

२१. तए णं सा पभावती देवी अयमेयारूवं ओरालं-जाव-सस्सिरियं महासुविणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्टतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव—हिदया धाराहयकलंबगं पिव समूसियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव बलस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं मियमहुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहेत्ता बलेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीयित्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवर-गया बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए तं चेव-जाव-नियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरा-लस्स-जाव-महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

बलेण रण्णा सुविणफलकहणं—

२२. तए णं से बले राया पभावईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वसविसप्पमाणहयहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-चंचुमालइयतम-णूए ऊसवियरोमकूवे तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ, करेत्ता पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं-जाव-मंगल्लाहिं मिय-महुर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे-संलवमाणे एवं वयासी—

[illegible]

ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे ... पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं ... सुरूवं देवकुमारसप्पभं दारगं पयाहिसि। [illegible]

[illegible] में प्रवेश करता हुआ [illegible] देखकर रानी प्रभावती प्रति-बुद्ध—जागृत हुई।

२१. तदनन्तर वह प्रभावती देवी इस प्रकार के उदार—यावत्—शोभायुक्त महास्वप्न को देखकर जागी और हृष्ट-तुष्ट आनन्दित [illegible] से विकसित हुए कदंब पुष्प की तरह रोमांचित हुई वह (प्रभावती देवी) उस स्वप्न का स्मरण करती है, स्मरण करके अपनी शैया से उठती है, उठकर त्वरारहित, चपलतारहित, असंभ्रान्त, अविलम्बित, राजहंस की गति के समान गति से चलती हुई जहाँ बल राजा का शयन गृह था, वहाँ आती है, वहाँ आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मन को अच्छी लगने वाली मन को सुख देने वाली उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, सुन्दर शोभायुक्त, मित, मधुर और मंजुल वाणी द्वारा बोलती हुई बल राजा को जगाती है, जगाने के बाद, बल राजा की अनुमति से विविध मणि रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन पर बैठती है, सुखासन में बैठी हुई स्वस्थ और शान्त हुई उनसे इष्ट यावत्-मधुर वाणी से बोलते-बोलते इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैं आज उस तरह की और [illegible]-वाली शैया में (इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार से जानना) यावत्-अपने मुख में प्रवेश करते हुए सिंह को स्वप्न में देखकर जागी, तो हे देवानुप्रिय ! इस उदार-यावत्-महास्वप्न का दूसरा कौन-सा कल्याणप्रद फल अथवा वृत्ति विशेष होगा ?

बल राजा द्वारा स्वप्न फल-कथन—

२२. उसके बाद वह बल राजा प्रभावती देवी के मुख से इस बात को सुनकर और अवधारित कर हर्षित, तुष्ट, आह्लाद युक्त हृदय वाला, आनन्दित, प्रीतिमन परम सौमनस्य मन वाला हर्षा-तिरेक से विकासमान हृदय वाला मेघधारा से विकसित हुए सुगंधित कंदब पुष्प की तरह जिसका शरीर रोमांचित है और जिसकी रोमराजि खड़ी हुई है ऐसा वह बल राजा उस स्वप्न के बारे में अवग्रह (सामान्य-विचार) करता है, अवग्रह करके उसके सम्बन्ध में ईहा (विशेष विचार) करता है, वैसा करके अपने स्वाभा-विक, मति पूर्वक बुद्धि विज्ञान से उस स्वप्न के फल का निश्चय करता है, निश्चय करके इष्ट, कान्त-यावत-मंगल युक्त मित, मधुर, शोभायुक्त वाणी से प्रभावती देवी के साथ संलाप करते-करते इस प्रकार कहा—

हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है,.....................

हे देवानुप्रिये ! पुत्र लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! राज्य का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! तुम अवश्य ही नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने के बाद अपने कुल में ध्वजा के समान.......सुरूप देवकुमार जैसा प्रभा वाले पुत्र को जन्म दोगी।

२३. से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ । तं ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे-जाव—आरोग्ग-तुट्ठि दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं दोच्चं पि तच्चं पि अणुवूहति ।

२३. और वह बालक बाल्यकाल को व्यतीत करके विज्ञ और परिणत होकर युवावस्था को प्राप्तकर शूर, वीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल-वाहन वाला, राज्य का अधिपति राजा होगा। हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा-यावत्—हे देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु कल्याणप्रद, मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर इष्ट-यावत्-वाणी से उस प्रभावती देवी की दूसरी बार, तीसरी बार भी इसी प्रकार प्रशंसा करता है।

२४. तए णं सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

२४. तदनन्तर वह प्रभावती देवी बल राजा के पास से इस बात को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट हुई और दोनों हथेलियों को जोड़ मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोली—

एवमेयं देवाणुप्पिया ! ''''से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेण रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निसीयति, निसीयित्ता एवं वयासी—

हे देवानुप्रिय ! तुमने जो कुछ कहा, वह ऐसा ही है,''''ऐसा कहकर स्वप्न को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है, स्वीकार करके बल राजा की अनुमति लेकर अनेक प्रकार के मणि-रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है, उठकर त्वरारहित, चपलता रहित, संभ्रम रहित, विलम्ब रहित राजहंस-जैसी गति (चाल) से जहाँ अपनी शैया है वहाँ आई, वहाँ आकर शैया पर बैठती है, बैठकर उसने इस प्रकार कहा (सोचा)—

'मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ त्ति कट्टु देवगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ ।

'यह मेरा उत्तम, प्रधान मंगल रूप स्वप्न और दूसरे पाप स्वप्नों से खंडित नहीं होवे इस प्रकार कहकर वह देव गुरु सम्बन्धी, प्रशस्त मंगल रूप धार्मिक कथाओं से स्वप्न जागरण करती हुई विहार (समय यापन) करती है।

सुविणलक्खणं-पाढगेहिं सुविणफलकहणं—

स्वप्न-लक्षण पाठकों द्वारा स्वप्न—फल कथन—

२५. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

२५. तदनन्तर उस बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं-जाव-गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य सीहासणं रएह, रएत्ता ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

हे देवानुप्रियो ! आज तुम शीघ्र ही बाहर की उपस्थान शाला को—यावत-गंध वर्तिभूत—सुगंध की गुटिका के समान-करो और कराओ, वैसा करके और कराके वहाँ सिंहासन रखो, सिंहासन रखकर मेरी यह आज्ञा वापस मुझे लौटाओ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा-जाव-पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं-जाव-गंधवट्टिभूयं करेत्ता य कारवेत्ता य सीहासणं रएत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष-यावत-आज्ञा स्वीकार करके शीघ्र ही विशेष रूप से बाह्य उपस्थान शाला को यावत्-गंधवर्तिभूत करके और कराके और सिंहासन रखकर आज्ञा वापस लौटाते हैं (कार्य समाप्ति की सूचना देते हैं)।

२६. तए णं से बले राया पच्चूसकालसमयंसि सयणिज्जाओ समुट्ठेइ, समुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, जहा ओववाइए तहेव अट्टणसाले तहेव मज्जणघरे-जाव-ससिव्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अप्पणो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीयित्ता

२६. उसके बाद वह बल राजा प्रातःकाल के समय शैया से उठता है, उठकर पादपीठ से नीचे उतरता है, उतरकर जहाँ व्यायाम शाला है वहाँ आता है आकर व्यायामशाला में प्रवेश करता है जैसा औपपातिक सूत्र में वर्णन है, वैसा ही यहाँ भी व्यायाम शाला एवं स्नानघर आदि का वर्णन जानना चाहिये,—यावत-चन्द्रमा के समान प्रिय दर्शन ऐसा वह नराधिप स्नानघर से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला हैं, वहाँ

उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थगकयमंगलोवयाराइं रयावेइ, रयावेत्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणा-मणि-रयण-मंडियं-जाव—जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणा-मणिरयणभत्तिचित्तं'''सुमउयं पभावतीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

आता है; वहाँ आकर पूर्व दिशा की ओर जिसका मुँह है, ऐसे उत्तम सिंहासन पर बैठता है, बैठकर अपनी उत्तर पूर्व दिशा में—ईशान कोण में—श्वेत धवल वस्त्रों से आच्छादित और सरसों द्वारा जिनका मंगलोपचार किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है, रखवाकर अपने से न अति दूर और न अति निकट अनेक मणि-रत्नों से मंडित—यावत्-यवनिका (पर्दा) लटकवाता है, लटकवाकर अनेक प्रकार की मणि-रत्नों की रचना से चित्र विचित्र..........सुकोमल ऐसा एक भद्रासन प्रभावती देवी के लिये रखवाता है, रखवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा-जाव-पडिसुणेत्ता बलस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता'''हत्थिणपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति ।

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टांग महानिमित्त के सूत्र और अर्थ के धारण करने वाले और विविध शास्त्रों के मर्मज्ञ स्वप्न लक्षणों के पाठकों को बुलवाओ । उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष-यावत्-आज्ञा को स्वीकार करके बल राजा के पास से निकलते हैं, निकलकर'''हस्तिनापुर नगर के बीचों-बीच होते हुए जहाँ स्वप्न लक्षण-पाठकों के घर थे वहाँ आते हैं वहां आकर उन स्वप्न लक्षण पाठकों को बुलाते हैं ।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया-समाणा-जाव-सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता हत्थिणपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव बलस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भवणवरवडेंसगपडिदुवारंसि एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बलं रायं जएणं विजएणं बद्धावेंति ।

तत्पश्चात् वे स्वप्न लक्षण पाठक बल राजा के कौटुम्बिक पुरुषों के बुलाये जाने पर यावत-अपने-अपने घरों से निकलते हैं, निकलकर हस्तिनापुर नगर के बीच में से होते हुए जिस तरफ बल राजा का उत्तम महालय है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर श्रेष्ठ महालय के द्वार के पास एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला है, जहाँ बल राजा है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्तक कर और अंजलि करके जय-विजय शब्दों द्वारा बल राजा को बधाते हैं ।

२७. तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलेणं रण्णा वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

२७. उसके बाद बल राजा के द्वारा वंदित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित हुए वे स्वप्न लक्षण पाठक पहले से रखे हुए भद्रासनों पर बैठते हैं ।

तए णं से बले राया पभावतिं देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल-पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह बल राजा यवनिका के अन्दर प्रभावतीदेवी को बैठाता है बैठाकर फल और पुष्प से परिपूर्ण हाथ वाला यह बल राजा अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्न लक्षण पाठकों से इस प्रकार बोला—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! पभावती देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि-जाव-सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स-जाव-महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार आज प्रभावतीदेवी उस प्रकार के वास गृह में यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जागी है तो हे देवानुप्रियो ! ऐसे इस उदार-यावत्-महास्वप्न का दूसरा क्या कल्याण रूप फल और वृत्ति विशेष होगा ?

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म'''बलस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा, उच्चारेमाणा एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन स्वप्न लक्षण पाठकों ने बल राज की इस बात को सुनकर (और अवधारित करके) बल राजा के समक्ष स्वप्न शास्त्र का उच्चारण करते हुए इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुविण सत्थंसि मंडलियमायरो मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं णं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरं एगं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति । इमे य णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउ-जाव-देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिति । से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा ।

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार हमारे स्वप्न शास्त्र में मांडलिक राजा की मातायें जब मांडलिक राजा गर्भ में प्रवेश करता है तब इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागती हैं। हे देवानुप्रिय ! इस प्रभावती देवी ने एक महास्वप्न देखा है, हे देवानुप्रिय ! प्रभावतीदेवी ने उदार स्वप्न देखा है—यावत्-आरोग्य-तुष्टि दीर्घायु, कल्याणरूप, मंगलकारक स्वप्न देखा है, हे देवानुप्रिय ! अर्थ लाभ होगा, हे देवानुप्रिय ! तुम्हें भोग लाभ होगा, हे देवानुप्रिय ! तुम्हें पुत्र का लाभ होगा, हे देवानुप्रिय ! राज्य का लाभ होगा, हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार नौ मास सम्पूर्ण होने के बाद और साढ़े सात दिवस बीतने के पश्चात् प्रभावतीदेवी तुम्हारे कुल में ध्वजा के समान-यावत् देवकुमार के सदृश कांति सम्पन्न पुत्र को जन्म देगी और वह पुत्र भी बाल्यावस्था को पार कर विज्ञ और परिणत-बुद्धि सम्पन्न होकर युवावस्था को प्राप्त कर शूर, वीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल-वाहन वाले राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा ।

तं ओराले णं देवाणुप्पिया ! पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए पभावतीए देवीए सुविणे दिट्ठे ।

इसलिये हे देवानुप्रिय ! प्रभावतीदेवी ने उदार स्वप्न देखा है—यावत्—आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष, कल्याण करने वाला, मंगल कारक स्वप्न प्रभावतीदेवी ने देखा है ।

पभावईए बलेण रण्णा पुणो सुविणफल-कहणं—

२८. तए णं से बले राया सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एवं वयासी—

एवमेयं देवाणुप्पिया-जाव-से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविणलक्खणपाढए पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जेत्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव पभावती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-मिय-महुर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे-संलवमाणे एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिए ! इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए ! एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे-जाव-रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा, तं ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठेत्ति कट्टु पभावतिं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-मिय-महुर-सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं दोच्चं पि तच्चं पि अणुबूहइ ।

बल राजा का पुनः प्रभावती से स्वप्न-फल-कथन—

२८. उसके बाद वह बल राजा स्वप्नलक्षण पाठकों की इस बात को सुनकर और समझकर हर्षित और संतुष्ट हो हाथ जोड़ अंजलि पूर्वक उन स्वप्न लक्षण पाठकों से इस प्रकार बोला—

हे देवानुप्रियो ! यह बात ऐसी ही है—यावत् जो तुम कहते हो—इस प्रकार कह कर स्वप्न लक्षण पाठकों को विदाई देता है, उन्हें विदा करके सिंहासन से उठता है, उठकर जहाँ प्रभावतीदेवी है, वहाँ आता है, आकर प्रभावतीदेवी से उसने उस प्रकार की इष्ट-यावत्-मित, मधुर, शोभायुक्त वाणी से संलाप करते-करते इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार निश्चित रूप से हे देवानुप्रिये ! इनमें से तुमने एक महास्वप्न देखा है, हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है—यावत्-राज्याधिपति राजा होगा, अथवा भावितात्मा अनगार होगा, हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है—यावत्-आरोग्य-तुष्टि, दीर्घायुष्य, कल्याण करने वाला, मंगलकारक स्वप्न तुमने देखा है, इस प्रकार कहकर प्रभावती देवी की उस प्रकार को इष्ट-यावत्-मित-मधुर शोभा सम्पन्न वाणी द्वारा दुबारा और तिबारा भी प्रशंसा करता है ।

बलं पडि महब्बलस्स जम्मनिवेयणं—

२९. तए णं सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा करयल परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

बल को महाबल का जन्म निवेदन—

२९. उसके बाद वह प्रभावतीदेवी बल राजा से इस बात को सुनकर और अवधारित कर हर्षित और सन्तुष्ट हुई, हाथ जोड़ अंजलि करके इस प्रकार बोली—

एवमेयं देवाणुप्पिया !—जाव-तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणा-मणि-रयण-भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणमणुपविट्ठा ।

हे देवानुप्रिय ! यह इसी प्रकार ही है—यावत्-उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करती है, ग्रहण करके बल राजा की अनुमति पूर्वक अनेक प्रकार के मणि और रत्नों की रचना द्वारा चित्र विचित्र बने हुए भद्रासन से उठी, उठकर त्वरा रहित, चपलता रहित, विलम्ब रहित राजहंस जैसी चाल से चलती हुई जहाँ अपना भवन है, वहाँ आई, वहाँ आकर अपने भवन में प्रवेश किया ।

३०. तए णं सा पभावती देवी ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं……सुहंसुहेणं-परिवहति ।

३०. उसके बाद वह प्रभावतीदेवी स्नानकर, बलिकर्म-देव पूजाकर-यावत्-सर्व अलंकारों से विभूषित हो…………उस गर्भ को सुख पूर्वक धारण करती है ।

तए णं सा पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरं लक्खण-वंजणगुणोववेयं माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंग ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाया ।

तत्पश्चात उस प्रभावतीदेवी ने नौ मास पूर्ण होने के पश्चात और साढ़े सात रात्रि दिन बीतने के बाद सुकुमाल हाथ-पैर और दोष-रहित प्रतिपूर्ण पंच इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले तथा लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त मानोन्मान प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग सुन्दर चन्द्र के समान सौम्य कांत प्रियदर्शन, सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया ।

३१. तए णं तीसे पभावतीए देवीए अंगपडियारियाओ पभावतिं देविं पसूयं जाणेत्ता जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बलं रायं जएणं विजएणं बद्धावेंति, बद्धावेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सुरूवं दारगं पयाया । तं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं निवेदेमो । पियं ते भवतु ।

३१. उसके बाद प्रभावतीदेवी की अंगपरिचर्या करने वाली परिचारिकायें दासियाँ प्रभावतीदेवी के प्रसव हुआ जानकर, जहाँ बल राजा है वहाँ आईं, वहाँ आकर हाथ-जोड़ नतमस्तक पूर्वक अंजलि करके बल राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! प्रभावतीदेवी ने नौ मास सम्पूर्ण होने के बाद-यावत्—सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया है । तो देवानुप्रिय के लिये प्रिय रूप इस बात का हम निवेदन करते हैं और वह आपको प्रिय हो ।

३२. तए णं से बले राया अंगपडियारियाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-चंचुमालइयतणूए ऊसवियरोम-कूवे तासिं अंगपडियारियाणं मउडवज्जं जहामालियं ओमोयं दलयइ, दलयित्ता सेतं रययामयं विमलसलिलपुण्णं भिंगारं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता मत्थए धोवइ, धोवित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

३२. तत्पश्चात वह बल राजा शरीर की सुश्रूषा करने वाली दासियों के पास से इस बात को सुनकर और अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट, हर्षोल्लास चित्त वाला आनन्दित, प्रीतिमन, परम सौमनस वाला, हर्षातिरेक से विकासमान हृदय वाला, मेघ धारा से सिंचित कदंब पुष्प की तरह रोमांचित शरीर वाला और ऊर्ध्वमुखी रोमराजि वाला होकर उन अंगरक्षिका दासियों को मुकुट के सिवाय पहने हुए सम्पूर्ण अलंकारों को देता है, देकर श्वेत रजतमय और निर्मल जल से भरे हुए कलश को लेता है, कलश को लेकर उन दासियों के मस्तक धोता है, धोकर जीविका के योग्य उचित विपुल प्रीतिदान देता है, प्रीतिदान देकर सत्कार सम्मान देता है, सत्कार सम्मान करके विसर्जित करता है ।

जम्ममहुस्सवो—

३३. तए णं से बले राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेई, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

जन्म महोत्सव—

३३. तत्पश्चात वह बल राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है—बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हत्थिणापुरे नयरे चारगसोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माणवड्ढणं करेह, करेत्ता हत्थिणापुरं नगरं सब्भितरबाहिरियं आसिय-संमज्जिओवलित्तं-जाव-गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य जूवसहस्सं वा चक्कसहस्सं वा पूयामहामहिमसंजुत्तं उस्सवेह, उस्सवेत्ता ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही हस्तिनापुर नगर में कैदियों को मुक्त करो, मुक्त करके मानोन्मान (माप-तोल) में वृद्धि करो; वृद्धि करके हस्तिनापुर नगर के अंदर-बाहर भाग में छिड़काव करो; साफ-सुथरा करो, सम्मार्जित करो, लेपन करो-यावत्-गंधवर्ति भूत करो और करवाओ, वैसा करके और कराके सहस्रयूपों की, सहस्र चक्रों की पूजा, महामहिमा सहित सत्कार करो, इस प्रकार करके मेरी यह आज्ञा वापस मुझे लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा बलेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष बल राजा की इस बात को सुनकर हर्षित संतुष्ट होकर-यावत्-उसकी आज्ञा को वापस लौटाते हैं । (सूचित करते हैं)

तए णं से बले राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं चेव-जाव-मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालाचराणुचरियं अणुद्धयमुइंगं अमिलायमल्लदामं पमुइयपक्कीलियं सपुरजणजाणवयं दसदिवसे ठिइवडियं करेति ।

उसके बाद वह बल राजा जहाँ व्यायामशाला है, वहाँ आता है, वहाँ आकर—इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये—यावत्-स्नानगृह से निकलता है निकल कर नगर और जनपदवासियों सहित दस दिन तक उत्शुल्क—जकात रहित, कर रहित, प्रधान-उत्कृष्ट (बिक्री का निषेध किया होने से) अदेय, अमेय, सुभट के प्रवेश रहित, दण्ड और कुदण्ड रहित, अधरिमयुक्त, उत्तम गणिकाओं और नाटककारों युक्त, अनेक तालानुचरों से युक्त, निरन्तर बजते हुए मृदंगों सहित ताजे पुष्पों की माला युक्त प्रमोद और क्रीड़ायुक्त ऐसी स्थिति-पतित—(कुल क्रमानुगत पुत्र जन्म-महोत्सव की परम्परा के अनुसार) पुत्र जन्म महोत्सव मनाता है ।

३४. तए णं से बले राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए सयए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य, सयए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य लाभे पडिच्छेमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं विहरइ ।

३४. उसके बाद जब वह दस दिवस का स्थिति-पतित पुत्रजन्मोत्सव चालू था तब वह बल राजा सौ रुपये, हजार रुपये और लाख रुपये के खर्च वाले दानों और भागों को देते और दिलाते और सौ रुपये के, हजार रुपये के और लाख रुपये के लाभ को लेते हुए लिवाते हुए विचरता है ।

महब्बल त्ति नामकरणं अण्णे य सक्कारा—

महाबल यह नामकरण और अन्य संस्कार—

३५. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो-जाव-अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए बलस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं 'महब्बले महब्बले' । तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति महब्बले त्ति ।

३५. तत्पश्चात उस बालक के माता-पिता-यावत्-इस प्रकार का गुण-युक्त और गुणनिष्पन्न नामकरण करते हैं—जिससे हमारा यह बालक बल राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिये हमारे इस पुत्र का नाम 'महाबल महाबल' हो उसके बाद उस बालक के माता-पिता उसका 'महाबल' ऐसा नामकरण करते हैं ।

३६. तए णं से महब्बले दारए पंचधाईपरिग्गहिए, तं जहा-खीरधातीए एवं जहा दढपइण्णस्स-जाव-निव्वाय-निव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढति ।

३६. उसके बाद उस महाबल नामक पुत्र का पाँच धायों द्वारा पालन कराया । जैसे खीर धाय आदि—इस प्रकार यह सब वर्णन दृढ़प्रतिज्ञ[1] की तरह जानना-यावत-वायु रहित, व्याघात रहित स्थान में सुख-पूर्वक वृद्धिगत होता है ।

१. दृढ़प्रतिज्ञ का वर्णन उववाई सूत्र में है । यह पूर्व जन्म में अम्बड़ परिव्राजक था ।

तए णं तस्स महब्बलस्स दारगस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं वा चंदसूरदंसावणियं वा जागरियं वा नामकरणं वा परंगामणं वा पयचंकमावणं वा जेमामणं वा पिंडवद्धणं वा पजंपावणं वा कण्णवेहणं वा संवच्छरपडिलेहणं वा चोलोयणगं वा उवणयणं वा, अण्णाणि य बहूणि गब्भाधाण-जम्मणमादियाइं कोउयाइं करेंति ।

तत्पश्चात् उस महाबल बालक के माता-पिता अनुक्रम से स्थिति पतिता-जन्मोत्सव, सूर्य-चन्द्र के दर्शन धर्मजागरण, नामकरण, घुटनों चलना, पैरों से चलना, अन्नप्राशन, कवलवर्धन, बोलना, कर्णछेद, वर्ष गांठ, चूड़ा-शिखा-कर्म, उपनयन और इसके सिवाय दूसरे अनेक से गर्भाधान, जन्म आदि कौतुक करते हैं।

सिक्खागहणं पाणिग्गहणं य—

३७. तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति, एवं जहा दढप्पइण्णे-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

शिक्षाग्रहण और पाणिग्रहण—

३७. उसके बाद उस महाबल कुमार को माता-पिता कुछ अधिक आठ वर्ष की उम्र का जानकर शुभ, तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजते हैं इत्यादि यह सब वर्णन दृढ़प्रतिज्ञ की तरह कहना चाहिए—यावत्—विषयोपभोग करने में समर्थ हुआ।

३८. तए णं तं महब्बलं कुमारं उम्मुक्कबालभावं-जाव-अलंभोगसमत्थं विजाणित्ता अम्मापियरो अट्ठ पासायवडेंसए कारेंति—अब्भुग्गयमूसिए-पहसिए इव वण्णओ जहा—रायपसेणइज्जे-जाव-पडिरूवे । तेसि णं पासायवडेंसगाणं बहुमज्झदेसभागे, एत्थ णं महेगं भवणं कारेंति-अणेगखंभसयसंनिविट्ठं वण्णओ जहा रायपसेणइज्जे पेच्छाघरमडवंसि-जाव-पडिरूवे ।

३८. तत्पश्चात् उस महाबल कुमार को बाल्यावस्था बीतने-यावत्-विषयोपभोग करने के योग्य जानकर उसके माता-पिता आठ प्रासादावतंसकों का निर्माण कराते हैं—वे प्रासाद अत्यन्त ऊँचे हैं, मानों हंसते ही हों इत्यादि वर्णन-राजप्रश्नीयसूत्र में कहे गये अनुसार जानना-यावत्-वे प्रासाद अत्यन्त सुन्दर हैं। उन प्रासादों के ठीक मध्यभाग में एक विशाल भवन तैयार करवाते हैं—जो सैकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट है इत्यादि वर्णन करना चाहिये जैसा राजप्रश्नीय सूत्र में किया है, प्रेक्षागृह और मण्डप के वर्णन की तरह-यावत्-सुन्दर था।

तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो अण्णया कयाइ सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं पमक्खणग-ण्हाण-गीय-वाइय-पसाहण-अट्ठंगतिलग-कंकण-अविहववहुउवणीयं मंगल-सुजंपिएहि य वरकोउयमंगलोवयार-कयसंतिकम्मं सरिसियाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेयाणं विणीयाणं कयकोउय-मंगलपायच्छित्ताणं सरिसएहिं रायकुलेहिंतो आणितेल्लियाणं अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु ।

तत्पश्चात माता-पिता ने अन्यदा किसी एकदिवस शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र, मुहूर्त में जिसने स्नान, बलिकर्म-पूजा-कर्म, कौतुक और मंगल रूप प्रायश्चित किया है ऐसे उस महाबल कुमार को सर्व अलंकारों से विभूषित कर, प्रमार्जन स्नान, गीत वादित्र, प्रसाधन, आठ अंगों में तिलक और कंकण पहनाकर मंगल और आशीर्वाद पूर्वक उत्तम रक्षा आदि कौतुक रूप और मंगल रूप उपचारों के द्वारा शांति कर्म करके योग्य, समान रंग रूप वाली समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त, विनीत और जिन्होंने कौतुक और मंगल रूप प्रायश्चित किया हुआ है ऐसी समान राजकुल से लाई गई आठ उत्तम राजकन्याओं के साथ उसका एक दिवस में पाणिग्रहण कराया।

३९. तए णं तस्स महाबलस्स कुमारस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं पीइदाणं दलयंति, तं जहा—

अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ—

अट्ठ मउडे मउडप्पवरे, अट्ठ कुंडलजोए कुंडलजोयप्पवरे, अट्ठ हारे हारप्पवरे, अट्ठ अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, अट्ठ एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ, एवं रयणावलीओ—

३९. उसके बाद उस महाबल कुमार के माता-पिता इस प्रकार का यह प्रीतिदान देते हैं, वह इस प्रकार है—

आठ कोटि हिरण्य, आठ कोटि सुवर्ण—

मुकुटों में उत्तम आठ मुकुट, कुण्डल युगल में उत्तम आठ कुण्डलों की जोड़ी, हारों में उत्तम ऐसे आठ हार, अर्धहारों में उत्तम ऐसे आठ अर्ध हार, एकावलिकाओं में उत्तम ऐसी आठ एकावलियाँ, इसी प्रकार मुक्तावलियाएँ कनकावलियाएँ, रत्नावलियाएँ जानना चाहिये।

अट्ठ कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए।

कड़ा युगल में उत्तम ऐसी आठ कड़ों की जोड़ी इसी प्रकार त्रुटित जोड़ी-वाजूबंदों की जोड़ी।

अट्ठ खोमजुयलाइं खोमजुयलप्पवराइं।

रेशमी वस्त्र युगल में उत्तम ऐसी आठ रेशमी वस्त्रों की जोड़ी।

एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं।

इसी प्रकार सूती वस्त्रों की जोड़ियों में, इसी प्रकार पट्ट-युगलों की जोड़ियों में, इसी प्रकार दुकूलयुगलों की जोड़ियों में समझना चाहिये।

अट्ठ सिरीओ, अट्ठ, हिरीओ।
एवं धिईओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ।

आठ श्री, आठ ह्री, इसीप्रकार धी, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मीदेवी की प्रतिमायें जानना।

अट्ठ नंदाइं, अट्ठ भद्दाइं, अट्ठ तले तलप्पवरे सव्वरयणामए, नियगवरभवणकेऊ अट्ठ झए झयप्पवरे, अट्ठ वए वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

आठ नन्द, आठ भद्र, ताड़ में उत्तम ऐसे आठ-ताड़ वृक्ष इन सवको रत्नमय जानना, अपने भवन के केतु रूप-चिन्ह रूप-ध्वज में उत्तम ऐसे आठ ध्वज, दस हजार गायों का एक व्रज-गोकुल होता है ऐसे व्रज में उत्तम आठ व्रज।

अट्ठ नाडगाइं नाडगप्पवराइं, वत्तीसइवद्धेणं नाडएणं।

नाटकों में उत्तम और वत्तीस पात्रों द्वारा जो किये जा सकते हैं ऐसे आठ नाटक।

अट्ठ आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए।

घोड़ों में उत्तम ऐसे आठ घोड़े, ये सव रत्नमय और भांडागार के समान जानना।

अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए,

हाथियों में उत्तम ऐसे आठ रत्नमय हाथी—जो सर्व रत्नों से अलंकृत हैं और कोपागार के सदृश हैं।

अट्ठ जाणाइं जाणप्पवराइं, अट्ठ जुगाइं जुगप्पवराइं, एवं सिवियाओ, एवं संदमाणियाओ, एवं गिल्लीओ, थिल्लीओ।

यानों में उत्तम ऐसे आठ यान, युग्मों में उत्तम ऐसे आठ युग्म (विशेष प्रकार का यन्त्र) इसी प्रकार शिविकायें, इसी प्रकार स्यन्दमानिकायें, इसी प्रकार गिल्लियां (हाथी पर रखे जाने वाले हौदा, अंबाड़ी) इसी प्रकार थिल्लियां (घोड़ों के पलाण)।

अट्ठ वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइं, अट्ठ रहे पारिजाणिए, अट्ठ रहे संगामिए, अट्ठ आसे आसप्पवरे, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे।

विकटयानों में प्रधान ऐसे आठ विकटयान (खुले वाहन) आठ परियानिक (क्रीडायान) रथ, संग्राम के योग्य आठ रथ, अश्वों में प्रधान ऐसे आठ अश्व, हाथियों में उत्तम ऐसे आठ हाथी।

अट्ठ गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं।

जिसमें दस हजार कुल रहते हैं, वह एक गाँव कहलाता है, अतः ग्रामों में उत्तम ऐसे आठ ग्राम।

अट्ठ दासे दासप्पवरे, एवं दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए।

दासों में उत्तम ऐसे आठ दास, इसी प्रकार दासियाँ, किंकर, कंचुकी, वर्षधर और इसी प्रकार महत्तर।

अट्ठ सोवण्णिए ओलंवणदीवे, अट्ठ रुप्पामए ओलंवणदीवे, अट्ठ सुवण्णरुप्पामए ओलंवणदीवे। अट्ठ सोवण्णिए उक्कंचणदीवे, एवं चेव तिण्णि वि,

आठ सुवर्ण के, आठ रजत के आठ सुवर्ण रजत के अवलंवनदीप। आठ सुवर्ण के उत्कंचन दीप, इसी प्रकार तीनों ही, जाति के प्रकार के।

अट्ठ सोवण्णिए पंजरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि।

आठ सुवर्ण के पंजर दीप, इसी तरह तीनों ही जाति के।

अट्ठ सोवण्णिए थाले, अट्ठ रुप्पामए थाले, अट्ठ सुवण्णरुप्पामए थाले।

आठ सुवर्ण के थाल, आठ रजत के थाल, आठ सुवर्ण-रजत के थाल।

अट्ठ सोवण्णियाओ पत्तीओ ३, अट्ठ सोवण्णियाइं थासगाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाओ तलियाओ ३।

आठ सुवर्ण की पत्रियां ३, आठ सुवर्ण की तासक ३, आठ सुवर्ण के मल्लक ३, आठ सुवर्ण की तलिका-तस्तरियां ३।

अट्ठ सोवण्णियाओ कविचियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए अवए-उए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ अवपक्काओ, ३, अट्ठ सोवण्णिए पायपीढए ३।

आठ सुवर्ण की [illegible] ३, आठ सुवर्ण के [illegible] ३, आठ सुवर्ण के [illegible] ३, आठ सुवर्ण के पादपीठ ३।

अट्ठ सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पल्लंके ३, अट्ठ सोवण्णि-याओ पडिसेज्जाओ ३।

आठ सुवर्ण की [illegible] ३, आठ सुवर्ण की करोडिका, ३ आठ [illegible] ३, आठ सुवर्ण की [illegible] छोटी शैयायें ३।

अट्ठ हंसासणाइं, अट्ठ कोंचासणाइं, एवं गरुलासणाइं, उन्नयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दासणाइं पक्खासणाइं, मगरासणाइं, अट्ठ पउमासणाइं, अट्ठ उसभासणाइं अट्ठ दिसासोवत्थियासणाइं।

आठ हंसासन, आठ क्रौंचासन, [illegible] उन्नत आसन, नीचा आसन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्षासन, मकरासन, आठ पद्मासन, आठ [illegible]।

अट्ठ तेल्ल-समुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे।

आठ तेल [illegible] समुद्गक [illegible] सूत्र के [illegible]।

अट्ठ कोट्ठ-समुग्गे, एवं पत्त-चोयग-तगर-एल-हरियाल-हिंगुलय-मणोसिल-अंजण-समुग्गे, अट्ठ सरिसव-समुग्गे।

आठ [illegible] समुद्गक [illegible], [illegible], हिंगुल, मैनसिल, अंजन समुद्गक, आठ [illegible] समुद्गक।

अट्ठ खुज्जाओ जहा ओववाइए-जाव-अट्ठ पारसीओ।

आठ कुब्जा दासियाँ [illegible] सूत्र के [illegible] अनुसार जानना [illegible] पारसिक देश की दासियाँ।

अट्ठ छत्ते, अट्ठ छत्तधारीओ चेडीओ, अट्ठ चामराओ, अट्ठ चामरधारीओ चेडीओ।

आठ छत्र, आठ छत्र [illegible] दासियाँ, आठ चामर, आठ चामर ढोरने वाली दासियाँ।

अट्ठ तालियंटे, अट्ठ तालियंटधारीओ चेडीओ, अट्ठ करो-डियाधारीओ चेडीओ,

आठ पंखा, आठ पंखा धारण करने वाली दासियाँ, आठ करोटिकायें-- [illegible], आठ करोटिका [illegible] वाली दासियाँ।

अट्ठ खीरधाईओ, अट्ठ मज्जणधाईओ, अट्ठ मंडणधाईओ अट्ठ खेल्लावणधाईओ, अट्ठ अंकधाईओ, अट्ठ अंगमद्दि-याओ, अट्ठ उम्मद्दियाओ अट्ठ ण्हावियाओ, अट्ठ पसा-हियाओ,

आठ क्षीर धात्रियाँ, आठ स्नान [illegible] वाली धात्रियाँ, आठ आभूषण पहनाने वाली धात्रियाँ। आठ क्रीड़ा कराने वाली धात्रियाँ, आठ अंक धात्रियाँ, आठ अंगमर्दिकायें---[illegible] करने वाली दासियाँ, आठ उन्मर्दिकायें (अधिक मर्दन करने वाली-मालिश करने वाली दासियाँ) आठ स्नान कराने वाली दासियां, आठ प्रसाधन करने वाली दासियां।

अट्ठ वण्णगपेसीओ, अट्ठ चुण्णगपेसीओ, अट्ठ कीडागारीओ, अट्ठ दवकारीओ,

आठ चंदन घिसने वाली, आठ चूर्ण पीसने वाली, आठ क्रीड़ा कराने वाली, आठ परिहास कराने वाली।

अट्ठ उवत्थाणियाओ, अट्ठ नाडइज्जाओ, अट्ठ कोडुंबिणीओ, अट्ठ महाणसिणीओ,

आठ सभा में उपस्थित रहने वाली—सदा पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक—साथ में जाने वाली, आठ रसोई करने वाली।

अट्ठ भंडागारिणीओ, अट्ठ अब्भाधारिणीओ, अट्ठ पुप्फ-धरणीओ, अट्ठ पाणिधरणीओ, अट्ठ बलिकारियाओ, अट्ठ सेज्जाकारीओ, अट्ठ अब्भितरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ बाहिरियाओ पडिहारीओ,

आठ भांडागार का रक्षण करने वाली, आठ आदर-सत्कार (आतिथ्य) करने वाली, आठ पुष्प धारण करने वाली—लाने वाली आठ पानी पिलाने वाली, आठ बाहर की, आठ शैया बिछाने वाली, आठ अन्दर की प्रतिहारी, आठ बाहर की प्रतिहारी।

अट्ठ मालाकारीओ, अट्ठ पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तियसंख-सिल-प्पवाल-- रत्तरयण - संतसारसाव-

आठ माला बनाने वाली, आठ प्रेषण करने वाली (दूत कर्म करने वाली) दासियाँ और इनके सिवाय और बहुत हिरण्य-सुवर्ण, कांस्य वस्त्र तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती,

एज्जं,[1] अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं,पकामं परिभोत्तुं, पकामं परियाभाएउं।

४०. तए णं से महव्वले कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्ण-कोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउड-प्पवरं दलयइ, एव तं चेव सव्वं-जाव-एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसारसाव-एज्जं, अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं परिभोत्तुं, पकामं परियाभाएउं।

तए णं से महव्वले कुमारे उप्पिं पासायवरगए जहा जमाली-जाव-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

धम्मघोसाणगारागमणं—

४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे जाइसंपन्ने वण्णओ जहा केसिसामिस्स-जाव-पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे, जेणेव सहसंववणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हिइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शंख, मूँगा, रक्त रत्न-माणिक आदि सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छा पूर्वक देने, इच्छा पूर्वक भोगने और इच्छानुसार परिभोग करने के लिये परिपूर्ण था—पर्याप्त था।

४०. उसके बाद वह महावल कुमार प्रत्येक भार्या को एक एक हिरण्य कोटि देता है, एक एक सुवर्ण कोटि देता है, मुकुटों में उत्तम ऐसा एक एक मुकुट देता है, इसी प्रकार वह सभी यावत-एक एक प्रेषण करने वाली दासी देता है तथा इसके अलावा और दूसरा भी बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूँगा माणिक आदि सार-भूत धन वैभव दिया जो सात पीढ़ी तक इच्छानुसार देने, भोगने और इच्छानुकूल परिभोग करने पर भी कम नही होने वाला था अर्थात सात पीढ़ी तक के लिये पर्याप्त—काफी था।

तत्पश्चात वह महावल कुमार उत्तम प्रसाद में ऊपर बैठकर जमाली की तरह पांच प्रकार के मनुष्य सम्वन्धी काम–भोगों को भोगता हुआ विचरण करता है।

धर्मघोष-अनगार आगमन—

४१. उस काल, उस समय में विमलनाथ अर्हन्त तीर्थंकर का प्रपौत्र प्रशिष्य धर्मघोप नामक अनगार था, वह जातिसम्पन्न था इत्यादि वर्णन केशीस्वामी की तरह जानना-यावत-पाँच सौ अनगारों के साथ अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जहाँ हस्तिनापुर नगर है, जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान है वहाँ आता है, वहाँ आकर यथायोग्य अवग्रह धारण कर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता है।

---

१ पीइदाणं :—गाहाओ :—

अट्ठहिरण्ण-सुवन्नयकोडीओ मउडकुण्डलाहारा। अट्ठट्ठहार एकावली उ, मुत्तावली अट्ठ ॥ १॥
कणगावलि-रयणावलि-कडगजुगा तुडियजोयखोमजुगा। वडजुग-पट्टजुगाइं, दुकूलजुगलाइ अट्ठट्ठ ॥ २॥
सिरि-हिरि-धिइ-कित्तीओ वुद्धी लच्छी य होंति अट्ठट्ठ। नंदा भद्दा य तला, झय-वय-नाडाइं आसेव ॥३॥
हत्थी जाणा जुग्गाओ, सीया तह संदमाणी गिल्लीओ। थिल्ली इ वियड जाणा, रह गामा दास-दासीओ ॥४॥
किंकर-कंचुइ-मयहर, वरिसधरे तिविह दीव थाले य। पाई थासग पल्लग, कतिविय अवएड अवपक्का ॥५॥
पावीढ भिसिय करोडियाओ पल्लंकए य पडिसिज्जा। हंसाईहिं विसिट्ठा, आसणभेया उ अट्ठट्ठ ॥६॥
हंसे कुञ्चे गरुडे ओणय पणए य दीहभद्दे य। पक्खे मयरे पउमे, होइ दिसा सोत्थिए क्कारे ॥७॥
तेल्ले कोट्ठसमुग्गा पत्ते चोए य तगर एला य। हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासवसमुग्गे ॥८॥
खुज्जा चिलाइ वामणि वडभीओ वव्वरीओ वसियाओ। जोणिय पल्हवियाओ, इसिणिया धोरुणिया य ॥९॥
लासिय लउसिय दमिणी, सिंहली तह आरवि पुलिंदी य। पक्कणि वहणि मुरंडी, सबरीओ पारसीओ य ॥१०॥
छत्तधरी चेडीओ, चामरधर-तालियंटधरीओ। सकरोडियाधरीओ, खीराति पंचधावीओ ॥११॥
अट्ठंगमद्दियाओ उम्मद्दिग-विगमंडियाओ य। वण्णय-चुण्णय-पीसीय कीलाकारी य दवगारी य ॥१२॥
उच्छाविया उ तह, नाडइल्ल कोडुम्विणी महाणसिणी। भडारि अज्जधारि, पुप्फधरी पाणीयधरी य ॥१३॥
वलकारि य सेज्जाकारियाओ, अब्भंतरी उ वाहिरिया। पडिहारी मालारी, पेसणकारी उ अट्टट्ठ ॥१४॥

—णाया० सु० १, अ० १, सु० २१ टीका।

तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जणसद्देइ वा-जाव परिसा पज्जुवासइ ।

तब हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि में बहुत से लोग आपस में बातचीत करते हैं-यावत्-परिषद् उपासना करती है ।

महब्बलकुमारेण धम्मसवणं—

४२. तए णं तस्स महब्बलस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं वा जणवूहं वा जाव-जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा एवं जहा जमाली तहेव चिंता, तहेव कंचुइज्ज-पुरिसं सद्दावेति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

किण्णं देवाणुप्पिया ! अज्ज हत्थिणापुरे नयरे इंदमहे इ वा-जाव-निग्गच्छंति ।

तए णं से कंचुइ-पुरिसे महब्बलेणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे धम्मघोसस्स अणगारस्स आगमणगहियविणिच्छिए करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज हत्थिणापुरे नगरे इंदमहे इ वा—जाव निग्गच्छंति । एवं खलु देवाणुप्पिया ! विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते बहवे उग्गा, भोगा-जाव-निग्गच्छंति ।

महाबलकुमार द्वारा धर्म-श्रवण—

४२. तत्पश्चात वह महाबल कुमार बहुत से मनुष्यों के शब्दों को और जन कोलाहल को सुनकर-यावत-जनसमूह को देखकर इत्यादि जमाली की तरह समझना चाहिये, उसी प्रकार वह महाबल कुमार कंचुकी-पुरुष को बुलाता है उसे बुलाकर इस प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रिय ! आज क्या हस्तिनापुर नगर में इन्द्र महोत्सव है अथवा अन्य कोई उत्सव-यावत-निकलता है ?

तत्पश्चात् वह कंचुकी पुरुष महाबलकुमार की इस बात को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट होकर धर्मघोष अनगार के आगमन को निश्चित रूप से जानकर दोनों हाथ जोड़ अंजलि करके महाबल कुमार को जय-विजय शब्दों से बधाता है, बधाकर इस प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रिय ! आज हस्तिनापुर नगर में इन्द्र मह अथवा अन्य दूसरा उत्सव नहीं है—यावत—निकलते हैं । हे देवानुप्रिय ! विमलनाथ तीर्थंकर के प्रशिष्य धर्मघोष नामक अनगार हस्तिनापुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं, इसीलिये ये बहुत से उग्रकुल के भोगकुल के आदि—यावत—निकलते हैं ।

महब्बलेण पव्वज्जाभिलासकहणं—

४३. तए णं से महब्बले कुमारे तहेव रहवरेणं निग्गच्छति । धम्मकहा जहा केसिसामिस्स ।

सो वि तहेव अम्मापियरं आपुच्छइ, नवरं—धम्मघोसस्स अणगारस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । तहेव वुत्तपडिवुत्तिया, नवरं—इमाओ य ते जाया ! विउलरायकुलबालियाओ कलाकुसलसव्वकाललालिय-सुहोचियाओ सेसं तं चेव-जाव-ताहे अकामाइं चेव महब्बलकुमारं एवं वयासी—

तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए ।

तए णं से महब्बले कुमारे अम्मापिउ-वयणमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

महाबल द्वारा प्रव्रज्याभिलाष कथन—

४३. तत्पश्चात वह महाबल कुमार केशीस्वामी की तरह राय प्रसेणी सूत्र में केशी स्वामी के आगमन के वर्णन की तरह जानना । उत्तम रथ में बैठकर निकलता है, धर्मकथा सुनता है ।

वह भी उसी प्रकार माता-पिता से पूछता है, आज्ञा माँगता है, किन्तु इतना अन्तर है कि धर्मघोष अनगार के पास मुण्डित होकर गृहवास त्याग आनगारिक प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ । उसी प्रकार की उक्ति-प्रत्युक्ति, लेकिन अन्तर यह है कि तुम्हारी ये पत्नियाँ विपुल ऐसे राजकुलों में उत्पन्न हुई बालायें हैं, कलाओं में कुशल हैं, सदैव यथोचित सुख-साधनों द्वारा जिनका लालन-पालन किया गया है अथवा जो सदा ही सुख साधनों का भोगोपभोग करती रही हैं इत्यादि सब पूर्व वर्णन के अनुसार जानना—यावत—अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार से इस प्रकार कहा—

हे पुत्र ! एक दिन के लिए भी हम तुम्हारी राज्य श्री—राज्यलक्ष्मी देखने के लिए उत्सुक आतुर-इच्छुक हैं ।"

तब वह महाबल कुमार माता-पिता के वचन का अनुसरण करके चुप रहा ।

४४. तए णं से बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, एवं जहा सिवभद्दस्स तहेव रायाभिसेओ भाणियव्वो-जाव अभिसिंचंति, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महव्वलं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

भण जाया ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव—

महव्वलपव्वज्जा देवभवो सुदंसणरूवेणं जम्म य—

४५. तए णं से महव्वले अणगारे धम्मघोसस्स अणगारस्स अंतियं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवालस-वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूओ जोयण-कोडीओ, बहूओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण सणंकुमार-माहिंदे कप्पे वीईवइत्ता बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववन्ने।

तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

तत्थ णं महव्वलस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

४६. से णं तुमं सुदंसणा ! बंभलोगे कप्पे दस सागरोवमाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्ता तओ चेव देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव वाणियग्गामे नगरे सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाए।

तए णं तुमे सुदंसणा ! उम्मुक्कबालभावेणं विण्णय-परिणयमेत्तेणं जोव्वणगमणुप्पत्तेणं तहारूवाणं थेराणं अंतियं केवलि-पण्णत्ते धम्मे निसंते, सेवि य धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए।

तं सुट्ठु णं तुमं सुदंसणा ! इदाणिं पि करेसि।

४७. से तेणट्ठेणं सुदंसणा ! एवं वुच्चइ— अत्थि णं एतेसिं पलिओवम-सागरोवमाणं खएति वा अवचएति वा।

सुदंसणस्स जातीसरण णाणं पव्वज्जाइ य—

४८. तए णं तस्स सुदंसणस्स सेट्ठिस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं अज्झवसाणेणं

४४. तत्पश्चात् वह बल राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है इत्यादि सब शिवभद्र की तरह राज्याभिषेक जानना—यावत—राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक करके और दोनों हाथ-जोड़ नतमस्तक पूर्वक अंजलि करके महाबल कुमार को जय विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—

हे पुत्र ! कहो कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हें क्या अर्पित करें ? इत्यादि शेष जमालि की तरह जानना— यावत—

महाबल प्रव्रज्या, देवभव और सुदर्शन के रूप में जन्म—

४५. उसके बाद वह महाबल अनगार धर्मघोष अनगार के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ भक्त, षष्ठ, अष्ठ, दशम, द्वादशभक्त, मास अर्ध-मास खमण आदि विचित्र तप कर्म द्वारा आत्मा को भावित करके सम्पूर्ण बारह वर्ष श्रमण पर्याय का पालन करता है, पालन करके मासिक संल्लेखना द्वारा आत्मा को अत्यन्त निर्मल बनाता हुआ निराहार साठ भक्तों को पूर्ण करता है, पूर्ण कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो मरण समय में कालकर ऊर्ध्वलोक में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, ताराओं से भी ऊपर बहुत से योजनों, सैकड़ों योजन, हजारों योजन, लाखों योजन, करोड़ों योजन, कोटिकोटि योजना से ऊपर दूर जाकर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्पों को उलांघ कर ब्रह्मलोक कल्प में देव रूप उत्पन्न हुआ।

वहाँ कितने ही देवताओं की स्थिति दस सागरोपम की कही है।

वहाँ महाबल देव को भी दस सागरोपम की स्थिति कही है।

४६. हे सुदर्शन ! तू उस ब्रह्मलोक कल्प में दस सागरोपम पर्यन्त दिव्य भोग्य भोगों को भोगकर उस देवलोक से आयु क्षय होने पर, भवक्षय होने पर और स्थिति क्षय होने पर तत्काल च्यवित होकर यहीं वाणिज्य ग्राम नगर में श्रेष्ठि कुल पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ है।

तत्पश्चात हे सुदर्शन ! तुमने बचपन को बिताने के बाद विज्ञ और परिणत युवावस्था प्राप्त होने पर तथारूप स्थविरों के पास से केवलि प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण किया और वह धर्म भी तुम्हें इच्छित स्वीकृत और रुचिकर हुआ।

हे सुदर्शन ! इस समय में भी जो तुम कर रहे हो वह अच्छा है।

४७. इसलिए हे सुदर्शन ! ऐसा कहा जाता है कि इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय और अपचय होता है।

सुदर्शन को जाति स्मरण ज्ञान और प्रव्रज्यादि—

४८. उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुनकर और समझकर उस सुदर्शन सेठ को शुभ अध्यवसायों, शुभ परिणामों

सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णी-पुव्वेजाईसरणे समुप्पन्ने, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेति।

और विशुद्ध लेश्याओं द्वारा तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए संज्ञी रूप शोभन जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे भगवान् कथित बात को अच्छी तरह जानता है।

४९. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणेणं भगवया महावीरेणं संभारियपुव्वभवे दुगुणाणीयसड्ढसंवेगे आणंदंसुपुण्णनयणे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भंते !—से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु उत्तर पुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, सेसं जहा उसभदत्तस्स जाव-सव्व-दुक्खप्पहीणे, नवरं—चोदस पुव्वाइं अहिज्जइ, बहुपडिपुण्णाइं दुवालस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, से संतं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भग० स० ११, उ० ११।

४९. तत्पश्चात् सुदर्शन सेठ को श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्वभव का स्मरण कराये जाने से दुगुनी श्रद्धा और संवेग उत्पन्न हुआ, नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूरित हो गये और तब उसने श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—हे भगवन् ! तुमने जो कहा है, वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! उसी प्रकार है, हे भगवन् ! अवितथ सत्य है, हे भगवन् ! यह असंदिग्ध है, हे भगवन् ! यह इच्छनीय है, हे भगवन् ! यह स्वीकार करने योग्य है। हे भगवन् ! यह इच्छनीय और स्वीकार करने योग्य है—इस प्रकार कहकर उत्तर पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में गया, शेष सभी वर्णन ऋषभदत्त की तरह जानना—यावत्—वह सुदर्शन सर्व दुःखों से रहित हुआ, परन्तु विशेष यह है कि वह चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है और सम्पूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करता है, शेष सभी पूर्व प्रमाणानुसार समझना।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी तरह है। इति।

२. मुणिसुव्वयतित्थे कत्तियसेट्ठिआईणं कहाणयं

सक्कस्स महावीरसमोसरणे नट्टविही—

५०. तेणं कालेणं तेणं समएणं विसाहा नामं नगरी होत्था—वण्णओ। बहुपुत्तिए चेइए—वण्णओ। सामी समोसढे-जाव-पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे एवं जहा सोलसमसए बिइए उद्देसए तहेव दिव्वेणं जाणविमाणेणं आगओ। नवरं—एत्थ अभियोगा वि अत्थि-जाव बत्तीसइविहं नट्टविहिं उवदंसेति उवदंसेत्ता-जाव-पडिगए।

२. मुनिसुव्रत तीर्थ में कार्तिक श्रेष्ठि आदि का कथानक

शक्र द्वारा महावीर समवसरण में नाट्य विधि—

५०. उस काल, उस समय में, विशाखा नामक नगरी थी—वर्णन। बहुपुत्रिक नाम का चैत्य था—वर्णन। महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ—यावत्—परिषद् पर्युपासना करती है।

उस काल, उस समय में, शक्र, देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर इत्यादि सोलहवें शतक के दूसरे उद्देशक में श्री शक्र की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार दिव्य यान विमान में बैठकर आया; विशेष यह है कि इस प्रसंग में आभियोगिक देव भी होते हैं—यावत्—बत्तीस प्रकार की नाट्य विधि दिखाता है दिखाकर—यावत्—वापस चला गया।

सक्कस्स पुव्वभव-पुच्छा—

५१ भंते त्ति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"जहा तइयसए ईसाणस्स तहेव कूडागार-दिट्ठंतो, तहेव पुव्वभवपुच्छा-जाव अभिसमन्नागया ?"

शक्र के पूर्वभव की पृच्छा—

५१. हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदना, नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'जैसे तीसरे शतक में ईशानेन्द्र के सम्बन्ध में कूटागारशाला का दृष्टान्त और पूर्वभव की पृच्छा है, उसी प्रकार यहाँ भी—यावत—उसे ऋद्धि अभिसमन्वित हुई वहाँ तक सभी समझना चाहिए।

सक्कस्स पुव्वभवो कत्तिय सेट्ठी—

५२ गोयमादि ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ। सहसंबवणे उज्जाणे—वण्णओ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे कत्तिए नामं सेट्ठी परिवसति अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए नेगमपढमासणिए, नेगमट्ठसहस्सस्स बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कोडुम्बेसु य-एवं जह रायप्पसेणइज्जे चित्ते-जाव-चक्खुभूए, नेगमट्ठसहस्सस्स सयस्स य कुडुम्बस्स आहेवच्चं-जाव-करेमाणे पालेमाणे, समणोवासए, अहिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शक्र का पूर्वभव कार्तिक श्रेष्ठी—

५२. हे गौतम ! इस प्रकार कहकर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

हे गौतम ! उस काल, उस समय में, जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में हस्तिनापुर नामक नगर था—वर्णन ! सहस्राम्रवन नामक उद्यान था—वर्णन।

उस हस्तिनापुर नगर में आढ्य-धनिक—यावत—किसी से पराभव को प्राप्त न करे ऐसा, व्यापारियों में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला, एक हजार आठ व्यापारियों के बहुत से कार्यों और कारणों में और कुटुम्बों में—यावत्—चक्षुरूप ऐसा कार्तिक नामक श्रेष्ठी रहता था, जैसा राजप्रश्नीयसूत्र में चित्त का वर्णन किया है, वैसा यहां सभी वर्णन करना चाहिए तथा एक हजार आठ व्यापारियों और अपने कुटुम्ब का आधिपत्य—यावत्—पालन करता हुआ रहता था, वह श्रमणोपासक और जीवाजीव तत्व का जानकार था—यावत—विधिपूर्वक तप कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करता था।

हत्थिणापुरे मुणिसुव्वयागमणं—

५३ तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे जहा सोलसमसए तहेव-जाव-समोसढे-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे एवं जहा एक्कारसमसए सुदंसणे तहेव निग्गओ-जाव-पज्जुवासति।

तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियस्स सेट्ठिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया।

हस्तिनापुर में मुनिसुव्रत-आगमन—

५३. उस काल, उस समय में धर्म के आदिकर इत्यादि वर्णन जैसा सोलहवें शतक में किया गया है वैसा सभी वर्णन यहाँ करना चाहिए, मुनि सुव्रत अर्हन्त का पदार्पण हुआ—यावत—पर्षदा पर्युपासना करती है।

उसके बाद वह कार्तिक श्रेष्ठी इस बात (भगवान के पदार्पण की बात) को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुआ इत्यादि जैसा ग्यारहवें शतक में सुदर्शन सेठ के प्रसंग में कहा है, वैसा सब यहां समझना चाहिए, वैसे ही निकला-यावत-पर्युपासना करता है।

तत्पश्चात् मुनिसुव्रत अर्हन्त ने कार्तिकश्रेष्ठी और उस विशाल पर्षद को धर्मोपदेश दिया-यावत-परिषद वापिस गई।

कत्तियस्स पव्वज्जा-संकप्पो—

५४ तए णं से कत्तिए सेट्ठी मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

कार्तिक का प्रव्रज्या संकल्प—

५४. तत्पश्चात वह कार्तिक श्रेष्ठी मुनिसुव्रत अर्हन्त से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर स्थान से उठता है उठकर मुनि सुव्रत अर्हन्त को वन्दना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

एवमेयं भंते !-जाव-से जहेयं तुब्भे वदह जं, नवरं-देवाणुप्पिया ! नेगमट्ठसहस्सं आपुच्छामि, जेट्ठपुत्तं च कुडुम्बे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं पव्वयामि ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है—यावत्—आप जैसा कहते हैं, परन्तु हे देवानुप्रिय ! एक हजार आठ वणिकों से पूछकर और ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब व्यवस्था में स्थापित करके आप देवानुप्रिय के पास दीक्षित होना चाहता हूं ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो, प्रतिबंध—विलम्ब मत करो ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी-जाव-पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गेहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नेगमट्ठसहस्सं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

उसके बाद वह कार्तिक श्रेष्ठी—यावत्—निकलता है, निकलकर जहां हस्तिनापुर नगर है, जहां अपना घर है, वहां आता है आकर एक हजार आठ वणिकों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए ।

तएणं अहं देवाणुप्पिया-संसारभयुव्विग्गे जाव-पव्वयामि, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! किं करेह, किं ववसह, के भे हियइच्छिए, के भे सामत्थे ?'

'हे देवानुप्रियो ! मैंने मुनिसुव्रत अर्हन्त से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म मुझे इष्ट, विशेष इष्ट और रुचिकर है तथा हे देवानुप्रियो ! उस धर्म को सुनकर मैं संसार-भय से उद्विग्न हुआ हूँ—यावत—प्रव्रजित होने की इच्छा है, इसलिए हे देवानुप्रियो ! तुम क्या करना चाहते हो, क्या प्रवृत्ति करना चाहते हो, तुम्हारे हृदय को क्या इष्ट है और तुम्हारा सामर्थ्य क्या है ?

५५ तए णं तं नेगमट्ठसहस्सं तं कत्तियं सेट्ठिं एवं वयासी—

५५. उसके बाद उन एक हजार आठ वणिकों ने उस कार्तिक श्रेष्ठी से इस प्रकार कहा—

जइ णं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गा-जाव-पव्वइस्संति ।

अम्हं देवाणुप्पिया ! के अण्णे आलंबणे वा, आहारे वा, पडिबंधे वा ?

हे देवानुप्रिय ! यदि तुम संसार भय से उद्विग्न होकर—यावत्—प्रव्रज्या ग्रहण करोगे तो हे देवानुप्रिय ! हमारा दूसरा कौनसा आलंबन है, कौन आधार है और दूसरा कौन प्रतिबन्ध है ?

अम्हे वि णं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं देवाणुप्पिएहिं सद्धिं मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामो ।

हे देवानुप्रिय ! हम लोग भी संसार भय से उद्विग्न हुए हैं, जन्ममरण से भयभीत हैं, अतएव आप देवानुप्रिय के साथ मुनिसुव्रत अर्हन्त के पास मुण्डित होकर गृहवास का त्यागकर अनगारत्व अंगीकार करेंगे ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी तं नेगमट्ठसहस्सं एवं वयासी—

तत्पश्चात् कार्तिक श्रेष्ठी ने उन एक हजार आठ वणिकों से इस प्रकार कहा—

जदि णं देवाणुप्पिया ! संसारभयुव्विग्गा मए सद्धिं मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वाह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएसु गिहेसु, विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह, मित्त-नाइनियग-सयण-संबंधि-परियण विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेह सम्माणेह, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग सयण-संबंधि-परिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्ते कुडुंबे ठावेह, ठावेत्ता तं मित्त-नाइनियग-सयण-संबंधि-परियण जेट्ठपुत्ते आपुच्छह. आपुच्छिता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहह, दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेण य समणुगम्ममाणमग्गा सव्वि-

हे देवानुप्रियो ! यदि आप लोग संसार भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भयभीत हैं और मेरे साथ ही मुनिसुव्रत अर्हन्त के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण करने के इच्छुक हैं तो हे देवानुप्रियो ! तुम अपने-अपने घर जाओ और विपुल, अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाओ, तैयार करवाकर मित्रों जाति जनों, पारिवारिक जनों, सम्बन्धियों और परिजनों को आमन्त्रित करो, आमन्त्रित करके उन मित्रों जाति जनों कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, गंध, माला अलंकारों द्वारा सत्कार सम्मान करो और उन्हीं मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को मुखिया रूप में स्थापित करो, स्थापित कर उन मित्रों, जाति

ड्ढीए-जाव-दुन्दुहि, निग्घोसनादियरवेणं अकालपरिहीणं चेव मम अंतियं पाउब्भवह।

जनों कुटुम्वी जनों, सम्वन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से पूछो, पूछकर सहस्र पुरुषों द्वारा जिसका वहन किया जा सके ऐसी शिविका में बैठो, बैठकर मित्रों, जातिजनों, कुटुम्वी जनों, सम्वन्धियों परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए सर्व-ऋद्धि—यावत—वाद्यों के घोपपूर्वक अविलम्ब मेरे पास आओ।

५६. तए णं तं नेगमट्ठसहस्सं पि कत्तियस्स सेट्ठिस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेति पडिसुणेत्ता जेणेव साइं-साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असणपाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्ते कुडुम्बे ठावेति, ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्ते य आपुच्छइ, आपुच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहति, दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयग-संबंधि-परिजणेणं जेट्ठपुत्तेहि य समणुगम्ममाणमग्गा सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-निग्घोसनादियरवेणं अकालपरिहीणं चेव कत्तियस्स सेट्ठिस्स अंतियं पाउब्भवति।

५६. उसके वाद वे एक हजार आठ वणिक् कार्तिक श्रेष्ठी के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके जहाँ अपने-अपने घर हैं, वहाँ आते हैं, आकर विपुल परिमाण में अशन, पान-खादिम, स्वादिम भोजन वनवाते हैं, वनवाकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्वन्धियों, परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन द्वारा और वस्त्र, गंध, माला अलंकारों से सत्कार सम्मान करते हैं और उन्हीं मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्वन्धियों और परिजनों के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्व के प्रमुख पद पर स्थापित करते हैं, स्थापित करके उन मित्रों, जाति जनों, स्वजनों सम्वन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से आज्ञा लेते हैं, आज्ञा लेकर पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं पर आरूढ़ होते हैं, आरूढ़ होकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्वन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के घोपपूर्वक विना विलम्व किये वे कार्तिक श्रेष्ठी के पास उपस्थित होते हैं।

५७. तए णं से कत्तिए सेट्ठी विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेति जहा गंगदत्तो-जाव-सीयं दुरुहिति, दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयग-संबंधि-परिजणेणं जट्ठपुत्तेणं नेगमट्ठसहस्सेण य समणुगम्ममाणमग्गे सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-निग्घोसनादियरवेणं हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, जहा गंगदत्तो-जाव-आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते! लोए-जाव-आणुगामियत्ताए भविस्सति, तं इच्छामि णं भंते! नेगमट्ठसहस्सेण सद्धिं सयमेव पव्वावियं-जाव-धम्ममाइक्खियं।

५७. तत्पश्चात वह कार्तिक श्रेष्ठी गंगदत्त की तरह[1] पुष्कल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम, तैयार करवाता है—यावत्—शिविका में बैठता है, बैठकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्वन्धियों, परिजनों, ज्येष्ठ पुत्र और एक हजार आठ वणिकों द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के घोपपूर्वक हस्तिनापुर नगर के मध्य में से गंगदत्त की तरह निकलता है—यावत्—हे भगवन्! यह संसार चौ तरफ से सुलग और प्रज्वलित हो रहा है—यावत्—आपका अनुगमन करना श्रेय रूप होगा, इसलिये हे भगवन्! इन एक हजार आठ वणिकों के साथ मैं आपके पास स्वयमेव प्रव्रजित होने—यावत्—धर्म श्रवण करने के लिए इच्छुक हूँ।

नेगमट्ठसहस्सेणं सद्धिं कत्तियस्स पव्वज्जा—

५८. तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियं सेट्ठिं नेगमट्ठसहस्सेणं सद्धिं सयमेव पव्वावेति-जाव-धम्ममाइक्खइ—एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं-जाव-संजमियव्वं।

अष्टाधिक सहस्रवणिकों सहित कार्तिक की प्रव्रज्या—

५८. तत्पश्चात् मुनिसुव्रत अर्हन्त ने उस कार्तिक श्रेष्ठी को एक हजार आठ वणिकों के साथ स्वयमेव प्रव्रजित किया—यावत्—धर्मोपदेश दिया—हे देवानुप्रियो! इस प्रकार चलना, इस प्रकार वैठना—यावत्—इस प्रकार संयम का पालन करना।

---

1. गंगदत्त का वर्णन भगवती सूत्र शतक १६ उ० ५ में अगले प्रसंग ३ में देखें।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी नेगमट्ठसहस्सेण सद्धिं मुणिसुव्वयस्स अरहओ इमं एयारूवं धम्मियं उवदेसं संपडिवज्जइ, तमाणाए तहा गच्छति-जाव-संजमति।

तदनन्तर वह कार्तिक श्रेष्ठी एक हजार आठ वणिकों के साथ मुनिसुव्रत अर्हन्त द्वारा निरूपित इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है और उनकी आज्ञा प्रमाण उसी रीति से उसका आचरण करता है—यावत्—संयम का पालन करता है।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी नेगमट्ठसहस्सेणं सद्धिं अणगारे जाए—ईरियासमिए-जाव-गुत्तबंभयारी।

तत्पश्चात् वह कार्तिक श्रेष्ठी एक हजार आठ वणिकों के साथ अनगार हुआ—ईर्यासमितियुक्त—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी।

कत्तियस्स सक्कत्तं भावीकाले सिद्धी य—

५९. तए णं कत्तिए अणगारे मुणिसुव्वयस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं अंतियं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेइ, झोसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए सक्के देविंदत्ताए उववन्ने।

कार्तिक का शक्रत्व और भावीकाल में सिद्धि—

५९. उसके बाद वह कार्तिक अनगार मुनिसुव्रत अर्हन्त के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्ट, दशम, द्वादश, मास अर्धमास आदि विविध तप कर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ परिपूर्ण बारह वर्ष की श्रामण्य पर्याय का पालन करता है, पालन करके संलेखना द्वारा आत्मा को प्रीतिपूर्वक सेवा करता है, सेवा करके साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन करता है, छेदन करके आलोचना, प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक मरण समय में मरण करके सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक विमान में आगत उपपात सभा में देवदूष्य से आच्छादित देव शैया में अंगुल के असंख्यातवां भाग प्रमाण अवगाहना से शक्र देवेन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ।

६०. तए णं से सक्के देविंदे देवराया अहुणोववण्णमेत्तए सेसं जहा गंगदत्तस्स-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति, नवरं-ठिती दो सागरोवमाइं, सेसं तं चेव।

६०. उसके बाद तत्काल उत्पन्न हुआ वह देवेन्द्र देवराज शक्र इत्यादि समस्त कथन गंगदत्त की तरह कथन करना चाहिये—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा, परन्तु विशेष यह है कि स्थिति दो सागरोपम प्रमाण है, शेष सभी कथन पूर्व प्रमाणवत् जानना।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भग० स० १८, उ० २।

हे भगवान् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवान् ! वह इसी प्रकार है।

३. मुणिसुव्वयतित्थे गंगदत्तो

३. मुनिसुव्रत तीर्थ में गंगदत्त

गंगदत्तस्स पुव्वभव-पुच्छा

६१. अहो णं भंते ! गंगदत्ते देवे महिड्ढिए महज्जुइए महब्बले महायसे महेसक्खे—

गंगदत्तेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती किणा लद्धा-जाव-जं णं गंगदत्तेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव-अभिसमण्णागया ?

गंगदत्त की पूर्वभव-पृच्छा—

६१. हे भगवन् ! यह गंगदत्त देव महान ऋद्धि, महाद्युति, महान बल, महान यश और महान सुख वाला है।

हे भगवन् ! गंगदत्त देव ने वह दिव्य देवऋद्धि और दिव्य देवद्युति कैसे लब्ध-प्राप्त की—यावत् गंगदत्त देव को वह दिव्य देव-ऋद्धि—यावत् अभिसमन्वित हुई ?

६२. गोयमा ! दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ। सहसंबवणे उज्जाणे—वण्णओ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे गंगदत्ते नाम गाहावती परिवसति—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

६२. हे गौतम ! ऐसा कहकर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—

हे गौतम ! उस काल, उस समय इसी जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में हस्तिनापुर नाम का नगर था—वर्णन। सहस्राम्रवन नामक उद्यान था—वर्णन।

उस हस्तिनापुर नगर में आढ्य—यावत्—बहुत से मनुष्यों से अपरिभूत ऐसा गंगदत्त नाम का गृहपति रहता था।

हत्थिणाउरे मुणिसुव्वयागमणं, गंगदत्तेणं य धम्मसवणं—

हस्तिनापुर में मुनि सुव्रत का आगमन और गंगदत्त द्वारा धर्म श्रवण—

६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे-जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव पकड्ढिज्जमाणेणं पकड्ढिज्जमाणेणं सीसगणसंपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेण विहरमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जणेव सहसंबवणे उज्जाणे-जाव-विहरति। परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासति।

६३. उस काल, उस समय आदिकर—यावत्—सर्वज्ञ सर्वदर्शी मुनिसुव्रत नामक अर्हन्त—यावत्—जिनके आगे आकाश में धर्म चक्र चलता है और देव धर्मध्वज लिये चलते रहते हैं ऐसे, शिष्यगण से संपरिवृत होकर पूर्वानुपूर्वी विचरण करते हुए ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जिस ओर सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था—यावत्—विहार करते हैं। पर्षदा निकली—यावत्—पर्युपासना करती है।

६४. तए णं से गंगदत्ते गाहावती इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकिय सरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं हत्थिणापुर नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे, जेणेव मुणिसुव्वए अरहा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मुणिसुव्वयं अरहं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ-जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति।

६४. तत्पश्चात् वह गंगदत्त नामक गृहपति इस बात को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, स्नान किया, बलिकर्म किया—यावत्—मात्रा में अल्प किन्तु महा मूल्यवान आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर पैदल चलकर हस्तिनापुर नगर के मध्य में से होता हुआ जिस तरफ सहस्राम्रवन उद्यान है और उसमें जहाँ मुनिसुव्रत अर्हन्त हैं, वहाँ आता है, वहाँ आकर मुनिसुव्रत अर्हन्त की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है—यावत्—तीन प्रकार की पर्युपासना द्वारा पर्युपासना करता है।

तए णं मुणिसुव्वए अरहा गंगदत्तस्स गाहावतिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया।

तदनन्तर मुनिसुव्रत अर्हन्त ने उस गंगदत्त गृहपति और उस विशाल पर्षदा को धर्मोपदेश दिया—यावत्—पर्षदा वापस लौटी।

तए णं से गंगदत्ते गाहावती मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए, उट्ठेति, उट्ठेत्ता मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

उसके बाद वह गंगदत्त गृहपति मुनिसुव्रत अर्हन्त से धर्म श्रवण कर और अवधारण करके हर्षित एवं संतोषयुक्त होकर खड़ा हुआ, खड़े होकर मुनिसुव्रत अर्हन्त को वंदन नमन करता है, वंदन नमन करके इस प्रकार बोला—

सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हूँ—यावत्—आप जिस प्रकार, जैसा कहते हैं, उसे वैसा ही मानता हूँ, विशेष यह है कि हे देवानुप्रिय ! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब के [illegible] रूप में स्थापित करके आप देवानुप्रिय के पास गृहवास का त्यागकर आनगारिक दीक्षा लूँ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो, विलम्ब मत करो।

गंगदत्तस्स पव्वज्जा, देवत्तं य—

गंगदत्त की प्रव्रज्या और देवत्व—

६५. तए णं से गंगदत्ते गाहावई मुणिसुव्वएणं अरहया एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए जहा पूरणे जाव-जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेति ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहति, दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं जेट्ठपुत्तेण य समणुगम्ममाणमग्गे सव्विड्ढीए-जाव-दुंदुहि-निग्घोसनाइयरवेणं हत्थिणागपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तातिते तित्थगरातिसए पासति। एवं जहा उद्दायणे जाव-सयमेव आभरणं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेति, करेत्ता जेणेव मुणिसुव्वए अरहा एवं जहेव उद्दायणे तहेव पव्वइए, तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ-जाव-मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि-जाव-गंगदत्तदेवत्ताए उववन्ने।

६५. तब वह गंगदत्त गाथापति मुनिसुव्रत अर्हन्त के ऐसा कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर मुनिसुव्रत अर्हन्त को वन्दना नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके मुनिसुव्रत अर्हन्त के पास से, सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकलता है, निकलकर जहाँ हस्तिनापुर है, जहाँ अपना घर है, वहाँ आता है, आकर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार सामग्री तैयार करवाता है, तैयार करवा के मित्र, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों को आमन्त्रित करता है, आमंत्रित करके बाद स्नान करके पूरण की तरह—यावत्—ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करता है, स्थापित करके उन मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से पूछता है, पूछकर हजार पुरुष उठावें ऐसी शिविका—पालकी में आरूढ़ होता है, आरूढ़ होकर मित्र ज्ञातिजनों, कुटुम्बियों, स्वजनसम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ सर्व ऋद्धि—यावत्—दुंदुभि शब्दों के घोषपूर्वक हस्तिनापुर के मध्य में से निकलता है, निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन है, वहाँ आता है, आकर तीर्थंकर के छत्रादि अतिशयों को देखता है। उदायन राजा की तरह—यावत्—स्वयमेव आभरणों को उतारता है, उतारकर अपने ही हाथ से पंचमुष्टिक लोच करता है, लोच करके जहाँ मुनिसुव्रत अर्हन्त हैं आदि उदायन राजा की तरह प्रव्रजित होता है, उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है—यावत्—मासिक संलेखना द्वारा आत्मा में रमण करता है, आत्मा को सेवा करता है, सेवा करके साठ भक्तों को अनशन रूप में व्यतीत करता है, व्यतीत करके आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक मरण समय में मृत्यु प्राप्त कर महाशुक्र कल्प में महा सामान्य नामक विमान में उपपात सभा में देव शैया में—यावत्—गंगदत्त देव रूप में उत्पन्न हुआ।

तए णं से गंगदत्ते देवे अहुणोववन्नमेत्तए समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छति, तं जहा—

आहारपज्जत्तीए-जाव-भासा-मणपज्जत्तीए।

तत्पश्चात्, तत्काल उत्पन्न हुआ वह गंगदत्त देव पांच प्रकार की पर्याप्तियों द्वारा पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ, यथा—आहार पर्याप्ति—यावत्—भाषा; मनःपर्याप्ति।

६६. एवं खलु गोयमा ! गंगदत्तेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती से दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागया।

६६. इस प्रकार हे गौतम ! उस गंगदत्त ने वह दिव्य देव ऋद्धि दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वित किया है।

गंगदत्तस्स णं भंते ! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

हे भगवन् ! उस गंगदत्त देव की स्थिति कितने काल की कही है ?

गोयमा ! सत्तरस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

हे गौतम ! उसकी स्थिति सत्रह सागरोपम की कही है।

गंगदत्तस्स सिद्धी—

६७. गंगदत्ते णं भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भग० स० १५, उ० ५

गंगदत्त की सिद्धि—

६७. हे भगवन् ! वह गंगदत्त देव आयु क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा—यावत्—दुःखों का अन्त करेगा।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है।

४. अरिट्ठनेमितित्थे चित्तसंभूइज्जकहाणयं

४. अरिष्टनेमि तीर्थ में चित्र संभूतीय कथानक

बंभदत्त-चित्त संभूआणं जम्मकहणं—

६८. जाईपराजिओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि।
चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ।१।

कंपिल्ले संभूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ।२।

ब्रह्मदत्त-चित्र-सम्भूत का जन्म कथन—

६८. जाति से पराजित हुये संभूत मुनि ने हस्तिनापुर में चक्रवर्ती होने का निदान किया था। वहाँ से मरकर वह पद्मगुल्म विमान में देव हुआ और फिर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में चुलनी की कुक्षि से जन्म लिया।१।

संभूत कांपिल्य नगर में और चित्र पुरिमताल नगर में विशाल श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न हुआ और वह धर्म श्रवण कर प्रव्रजित हो गया।२।

कंपिलम्मि चित्तसंभूयाणमागमणं पुव्वभवकहणं य—

६९. कंपिलम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्तसंभूया।
सुह-दुक्ख-फलविवागं, कहेंति ते एक्कमेक्कस्स।३।

चक्कवट्टी महिड्ढीओ, बंभदत्तो महायसो।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी।४।
आसीमु भायरा दोवि, अन्नमन्नवसाणुगा।
अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्न-हिएसिणो।५।

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे।
हंसा मयगतीराए, सोवागा कासिभूमिए।६।

देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा।७।

कांपिल्यनगर में चित्र-संभूत का आगमन और पूर्वभव कथन—

६९. कांपिल्य नगर में चित्र और संभूत दोनों आये और मिले। उन्होंने परस्पर एक-दूसरे से सुख और दुःख रूप कर्म फल के विपाक सम्बन्ध में वार्तालाप किया।३।

महान् ऋद्धि सम्पन्न और महान यशस्वी ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने बहुत ही आदर के साथ अपने भाई को इस प्रकार कहा—

इसके पूर्व हम दोनों परस्पर एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त-वशवर्ती और परस्पर हितैषी भाई-भाई थे।४-५।

हम दोनों दशार्ण देश में दास, कालिंजर पर्वत पर मृग, मृतगंगा के किनारे हंस और काशी देश में चाण्डाल हुए थे।६।

हम दोनों देवलोक में महान ऋद्धि से सम्पन्न देव थे। यह हमारा छठा भव है जिसमें हम एक-दूसरे को छोड़कर पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए हैं।७।

कम्मफलचिंता—

७०. कम्मा नियाणपयडा, तुमे राय ! विचिंतिया ।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओगमुवागया ।८।

सच्च-सोय-प्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ? ।९।

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए ।१०।

जाणाहि संभूय ! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं ! इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ।११।

महत्थरूवावयणप्पभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहज्जयंते समणो म्हि जाओ ।१२।

बंभदत्तेण चित्तं पडिभोगा सेवणामंतणं

७१. उच्चोयए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्तधणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ।१३।

नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाइं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू ! मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ।१४।

चित्तमुणिणा कामभोगस्स निन्दणं—

७२. तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ।१५।

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ।१६।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ।१७।

नरिंद ! जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेसा, वसीय सोवागनिवेसणेसु ।१८।

तीसे अ जाईइ उ पावियाए, वुत्थामु सोवागनिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं ।१९।

कर्मफल चिन्ता—

७०. हे राजन् ! तूने निदान कृत कर्मों का विशेष रूप से चिन्तन किया, उसी कर्मफल के विपाक से हम अलग-अलग पैदा हुए हैं ।।८।।

हे चित्त ! पूर्व जन्म में मेरे द्वारा किये गये सत्य और शुद्ध कर्मों के फल को जैसे आज मैं भोग रहा हूँ, क्या तुम भी वैसे ही भोग रहे हो ? ।९।

मनुष्यों द्वारा समाचरित सब सत्कर्म सफल होते हैं, किये हुए कर्मों के फल को भोगे बिना मुक्ति नहीं होती है । मेरी आत्मा भी उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्य फल से युक्त रही है ।१०।

हे संभूत ! जैसे तुम अपने आपको भाग्यशाली, महान ऋद्धि से सम्पन्न और पुण्यफल से युक्त समझते हो, वैसे ही चित्र को भी समझो । राजन् ! उसके पास भी प्रचुर ऋद्धि और द्युति रही हुई है ।११।

स्थविरों ने जन्म समूह में अल्पाक्षर किन्तु महार्थ-सारगर्भित गाथा कही थी जिसे शील और गुणों से युक्त भिक्षु यत्न से प्राप्त करते हैं । उसे सुनकर मैं श्रमण हो गया हूँ ।१२।

ब्रह्मदत्त का चित्र को प्रतिभोग सेवन-आमंत्रण—

७१. उच्चादेय, मधु, कर्क और ब्रह्म ये प्रधान प्रासाद तथा और दूसरे भी अनेक रमणीय प्रासाद हैं । पांचाल देश के अनेक गुणों से युक्त एवं प्रचुर तथा विविध धनधान्य से परिपूर्ण इन गृहों को स्वीकार करो ।१३।

हे भिक्षु ! तुम नाट्य, गीत और वाद्यों के साथ स्त्रियों के द्वारा घिरकर इन भोगों का भोग करो । मुझे यही प्रिय है, प्रव्रज्या निश्चय से दुःखप्रद है ।१४।

चित्र मुनि द्वारा काम-भोगों की निन्दा—

उस राजा के हितैषी, धर्म में स्थित चित्र मुनि ने पूर्वभव के स्नेह से अनुरक्त होने से काम-भोगों में आसक्त उस राजा को इस प्रकार कहा—।१५।

सब गीत-गान विलाप हैं, समस्त नाट्य विडम्बना हैं, सब आभरण भार है और समग्र काम-भोग दुःखप्रद हैं ।१६।

बाल जीवों को सुन्दर दिखने वाले किन्तु यथार्थतः दुःखप्रद कामभोगों में वह सुख नहीं है जो सुख शील गुणों में रत, कामनाओं से विरक्त तपोधन भिक्षुओं को है ।१७।

हे नरेन्द्र ! मनुष्यों में जो चांडाल जाति अधम मानी जाती है, उसमें हम दोनों उत्पन्न हो चुके हैं, चांडालों की बस्ती में हम दोनों रहते थे, जहाँ सभी लोग हमसे द्वेष करते थे ।१८।

निन्दनीय चांडाल जाति में हमने जन्म लिया था और उन्हीं की बस्ती में हम रहते थे तब सभी लोग हमसे घृणा करते थे । अतः यहाँ जो श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल है ।१९।

सो दाणिसि राय ! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि।२०।

हे राजन् ! पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप इस समय तू महानुभाग, महान ऋद्धि वाला राजा बना है। अतः तू क्षणिक भोगों को छोड़कर आदान—चारित्रधर्म की आराधना के हेतु अभिनिष्क्रमण कर।२०।

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो।
से सोयइ मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसि लोए।२१।

हे राजन् ! इस अशाश्वत मानव जीवन में जो विपुल पुण्य कर्म नहीं करता है वह मृत्यु के आने पर पश्चात्ताप करता है और धर्म न करने के कारण परलोक में भी पश्चात्ताप करता है।२१।

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा भवंति।२२।

जैसे यहाँ सिंह मृग को पकड़कर ले जाता है, वैसे ही अंतकाल में मृत्यु मनुष्य को ले जाती है। मृत्यु काल में माता-पिता और भाई बन्धु कोई भी मृत्यु दुःख में अंशधर—हिस्सेदार नहीं होते हैं।२२।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं।२३।

उसके दुःख को न जाति के लोग और न मित्र, पुत्र तथा बंधु जन ही बांट सकते हैं। वह स्वयं अकेला ही प्राप्त दुःखों को भोगता है, क्योंकि कर्म कर्त्ता के ही पीछे-पीछे चलता है।२३।

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं।
सकम्मवीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावगं वा।२४

द्विपद-सेवक, चतुष्पद-पशु, खेत, घर, धन-धान्य आदि सब कुछ छोड़कर यह पराधीन जीव अपने कृत कर्मों को साथ लिये हुए शुभ—पुण्य रूप अथवा अशुभ—पाप रूप परभव में जाता है।२४।

तं एक्कगं तुच्छसरीगं से, चिईगयं दहिय उ पावगेणं।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमंति।२५।

जीव रहित उस एकाकी तुच्छ शरीर को चिता में अग्नि से जलाकर भार्या, पुत्र और जाति-जन किसी दूसरे आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं।२५।

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइ महालयाइं।२६।

हे राजन् ! कर्म किसी प्रकार का प्रमाद किये बिना जीवन को प्रतिक्षण मृत्यु के निकट ले जा रहा है और यह जरा वृद्धावस्था मनुष्य की कांति का हरण कर रही है। हे पांचालराज ! मेरी इस बात को सुनो, प्रचुर पापकर्म मत करो।२६।

वंभदत्तेण अप्पणो नियाणकरणवण्णणं—

ब्रह्मदत्त द्वारा अपना निदान करण वर्णन—

७३. अहं पि जाणामि जहेह साहू,जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति जे दुज्जया अज्ज ! अम्हारिसेहिं।२७।

७३. हे साधो ! जैसा तुम बता रहे हो वैसा मैं भी जानता समझता हूं कि ये काम-भोग बंधन रूप है, किन्तु हमारे जैसे लोगों के लिए तो ये दुर्जय हैं।२७।

हत्थिणपुरम्मि चित्ता ! दट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं।
कामभोगेसु गिद्धेणं नियाणमसुहं कडं।२८।

हे चित्र ! हस्तिनापुर में महान ऋद्धि सम्पन्न चक्रवर्ती नरपति राजा को देखकर काम-भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान किया था।२८।

तस्स मे अप्पडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ।२९।

उस निदान का मैंने प्रतिक्रमण नहीं किया था, जिसका यह फल है कि धर्म को जानते हुए भी मैं काम-भोगों में मूर्च्छित हूं,इनको त्यागने में असमर्थ हूं।२९।

"नागो जहा" पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो।३०।

जैसे—पंक-जल—दलदल में फँसा हुआ हाथी स्थल को देखकर भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता है, वैसे ही हम काम-भोगों में आसक्त जन जानते हुए भी भिक्षु मार्ग का अनुसरण नहीं कर पाते हैं।३०।

चित्तमुणिणा अज्जकम्मकरणोवएसो—

७४. अच्चेइ कालो तूरंति राइओ,

न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा।

उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥३१॥

जइ ता सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि राय!

धम्मे ठिओ सव्व-पयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥३२॥

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धोसि आरंभ-परिग्गहेसु।

मोहं कओ एत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं! आमंतिओसि ॥३३॥

बंभदत्तस्स निरयवासो—

७५. पंचालराया वि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।

अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥३४॥

चित्तस्स सिद्धी—

७६. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्गचारित्ततवो महेसी।

अणुत्तरं संजमं पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ ॥३५॥

त्ति बेमि।

—उत्त० अ० १३

चित्रमुनि द्वारा आर्य कर्म करने का उपदेश—

७४. हे राजन्! [illegible] ॥३१॥

हे राजन्! [illegible] ॥३२॥

[illegible] ॥३३॥

ब्रह्मदत्त का नरकवास—

७५. [illegible] ॥३४॥

चित्र की सिद्धि—

७६. [illegible] हुए ॥३५॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

५. अरिट्ठनेमितित्थे निसढो

निसढाइया दुवालस समणा—

७७. निसढे, माअणि, वह, वहे, पगया, जुत्ती, दसरहे, दढरहे य।
महाधणू, सत्तधणू, दसधणू नामे, सयधणू य।

बारवईए कण्हो वासुदेवो—

७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था दुवालस जोयणायामा-जाव-पच्चक्खं देवलोयभूया पासादीया-जाव-पडिरूवा।

तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवए नामं पव्वए होत्था तुंगे गगणतलमणुलिहन्तसिहरे नाणाविह-रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लया-वल्ली-परिगयाभिरामे हंस-मिय-

५. अरिष्टनेमि तीर्थ में निषध

निषधादि द्वादश श्रमण—

७७. १ निषध, २ मअनी, ३ वह, ४ वेह, ५ पगता, ६ ज्योति, ७ दशरथ, ८ दृढ़रथ, ९ महाधनु, १० सप्तधनु, ११ दशधनु, १२ शतधनु, यह बारह नाम वाले श्रमण थे।

द्वारावती में कृष्ण वासुदेव—

७८. उस काल और उस समय में द्वारावती नामक नगरी थी, जो बारह योजन लम्बी—यावत्—प्रत्यक्ष-साक्षात् देवलोक सदृश मन को प्रसन्न करने वाली—यावत्—प्रतिरूप थी।

उस द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिशा—ईशानकोण में ऊँचा आकाश को स्पर्श करने वाले शिखरों से युक्त, अनेक प्रकार के वृक्ष गुच्छ, गुल्म, लता, वल्लियों से अभिराम-मनोहर,

मयूर-कोञ्च-सारस-काग-मयणसाला-कोइल-कुलोववेए तड-कडग-वियर-उज्झर-पवाय-सिहर-पउरे अच्छर-गण-देवसंघ-विज्जाहर-मिहुण-संनिचिण्णे निच्चच्छणए दसार-वर-वीर-पुरिस-तेलोक्क-बलवगाणं सोमे सुभए पियदंसणे सुरूवे पासादीए-जाव-पडिरूवे ।

हंस, मृग, मयूर, क्रौञ्च, सारस, कौआ, मैना, कोयल आदि पक्षिवृन्द से सुशोभित, तट, कटक, विवर-गुफा, झरने, प्रपात, शिखर आदि की प्रचुरता— अधिकता से शोभायमान, अप्सरागण देव समूह, और विद्याधर युगलों द्वारा अधिष्ठित, रैवत नामक पर्वत था, जिस पर प्रतिक्षण उत्सव समारोह होते रहते थे तथा तीनों लोकों में श्रेष्ठ बलवान वीर दसारों को वह पर्वत सोम-आल्हाद उत्पन्न करने वाला, शुभ, प्रिय दर्शन, सुरूप-सुहावना प्रासादीय-मनोहर-यावत्-प्रतिरूप था ।

तस्स णं रेवयगस्स पव्वयस्स अदूर सामन्ते एत्थ णं नन्दणवणे नामं उज्जाणे होत्था सव्वोउयपुप्फ-जाव-दरिसणिज्जे । तत्थ णं नन्दणवणे उज्जाणे सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था चिराईए-जाव-बहुजणो आगम्म अच्चेइ सुरप्पियं जक्खाययणं ।

उस रैवतक पर्वत के समीप नन्दन वन नामक उद्यान था, जो सभी ऋतुओं के पुष्पों से युक्त—यावत—दर्शनीय था । उस नन्दन वन उद्यान में सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जो अति प्राचीन था—यावत्—बहुत से लोग आकर उस सुरप्रिय यक्षायतन की अर्चना करते थे ।

से णं सुरप्पिये जक्खाययणे एगेणं महया वणसण्डेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते जहा पुण्णभद्दे-जाव-सिलावट्टए ।

वह सुरप्रिय यक्षायतन सभी दिशाओं—चारों तरफ से एक बड़े वन खण्ड से घिरा हुआ था, जैसे पूर्णभद्र यक्षायतन घिरा हुआ था—यावत्—एक शिलापट्टक था ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था-जाव-पसासमाणे विहरइ ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं
बलदेवपामोक्खाण पंचण्हं महावीराणं,
उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं राइसाहस्सीणं,
पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं,
सम्बपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दन्तसाहस्सीणं,
वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं,
महासेणपामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवसाहस्सीणं
रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं,
अणङ्गसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं

अन्नेसिं च बहुणं राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईणं वेयड्ढगिरि-सागरमेरागस्स दाहिणड्ढभरहस्स आहेवच्चं-जाव-विहरइ ।

उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव नामक राजा थे—यावत्—प्रशासन—करते हुए विचरते थे ।

वे वहाँ समुद्रविजय प्रमुख दस दसारों का,
बलदेव प्रमुख पाँच महावीरों का,
उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं का,
प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमारों का,
शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त शूरों का,
वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरों का,
महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवानों का,
रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देवियों—रानियों का,
अनंगसेना प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं का ।

तथा और भी बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति का तथा वैताढ्य गिरि और सागर से मर्यादित दक्षिणार्ध भरत का आधिपत्य करते हुए—यावत्—विचरते थे ।

बारवईए बलदेवेराया—

७९. तत्थ णं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, महया-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

द्वारावती में बलदेव राजा—

७९. उस द्वारावती नगरी में बलदेव नामक राजा थे, जो महान—यावत् राज्य का शासन करते हुए विचरते थे ।

बलदेवस्स रेवईदेवीए पुत्तो निसढकुमारो—

८०. तस्स णं बलदेवस्स रन्नो रेवई नामं देवी होत्था सोमाला-जाव-विहरइ । तए णं सा रेवई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिस-गंसि सयणिज्जंसि-जाव-सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा एवं सुमिणदंसणपरिकहणं, कलाओ जहा महाबलस्स, पन्नासओ दाओ,

बलदेव की रेवतीदेवी का पुत्र निषधकुमार—

८०. उस बलदेव राजा की रेवती नामक देवी—रानी थी, जो सुकोमल—यावत्—विचरती थी । तत्पश्चात् वह रेवती देवी अन्यदा किसी समय अपने योग्य शैया पर—यावत्—स्वप्न में सिंह को देखकर प्रतिबुद्ध हुई—जागी और अपने स्वप्न दर्शन के वृत्तान्त को बलदेव राजा को सुनाकर [illegible]

पन्नासरायकन्नगाणं एगदिवसेणं पाणिग्गहणं····नवरं निसढे नामं-जाव-उप्पिंपासायगओ विहरइ ।

कलाओं में प्रवीण हो गया । पचास दात—प्रीतिदान प्राप्त हुए, पचास राज कन्याओं के साथ एक दिन में पाणिग्रहण हुआ······· विशेष यह है कि उसका नाम निषध जानना चाहिए—यावत्—ऊपर प्रासाद में विचरता है ।

अरिट्ठनेमितित्थयरागमणं-कण्हस्स पज्जुवासणं च—

अरिष्टनेमि तीर्थंकर का आगमन और कृष्ण द्वारा पर्युपासना—

८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी आइगरे दस धणूइं····वण्णओ-जाव-समोसरिए । परिसा निग्गया ।

८१. उस काल, उस समय में अर्हन्त अरिष्टनेमि जो धर्म को आदि करने वाले, दस धनुष ऊँचे·······वर्णन करना—यावत्—पधारे । परिषद उनके दर्शनार्थ निकली ।

८२. तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडुम्बियपुरिसं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

८२. तत्पश्चात् कृष्ण-वासुदेव ने इस इष्ट समाचार को प्राप्त कर हर्षित और संतुष्ट होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाणियं भेरिं तालेहि" ।

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही जाकर सुधर्मा सभा की सामुदानिक भेरी को बजाओ ।'

तए णं से कोडुम्बियपुरिसे-जाव-पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाणिया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाणियं भेरिं महया-महया सद्देणं तालेइ ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष-यावत्-सुनकर जहाँ सुधर्मा सभा और सामुदानिक भेरी थी, वहाँ आये, आकर सामुदानिक भेरी को जोर-जोर से बजाते हैं ।

तए णं तीसे सामुदाणियाए भेरीए महया-महया सद्देणं तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दसारा, देवीओ भाणियव्वाओ जाव-अणङ्गसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा अन्ने य बहवे राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईओ ण्हाया-जाव-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया जहाविभव-इड्ढी-सक्कारसमुदएणं अप्पेगइया हयगया-जावपुरिसवग्गुरा-परिक्खित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता करयल कण्हं वासुदेवं जएण विजएणं वद्धावेन्ति ।

इसके अनन्तर उस सामुदानिक भेरी को अत्यधिक जोर-जोर से बजाये जाने पर समुद्रविजय प्रमुख दशार देवियों आदि कहना चाहिए—यावत्—अनंगसेना प्रमुख अनेक सहस्र गणिकाओं और दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह आदि ने स्नान किया—यावत्—कौतुक प्रायश्चित करके सभी अलंकारों से विभूषित होकर यथा विभव—अपने-अपने वैभव के अनुरूप ऋद्धि सत्कार, सामग्रियों के साथ, कितने ही हाथ में हल लिये हुए—यावत्—अनुचरों के समूह के साथ जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आये, आकर हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव को जय-विजय शब्दों से बधाया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी-"खिप्पामेव, भो देवाणुप्पिया, आभिसेक्कहत्थिं कप्पेह हयगयरहपवर"—जाव-पच्चप्पिणन्ति ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो !' शीघ्र ही आभिषेक्य हस्ती को एवं अन्य हाथी, घोड़े और रथों को सजाओ,—यावत्—वापस आज्ञा पूर्ति की सूचना देते हैं ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे मज्जणघरे जाव दुरूढे, अट्ठट्ठ मङ्गलगा, जहा कुणिए, सेयवरचामरेहिं उद्धुव्वमाणेहिं समुद्दविजय-पामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं-जाव-सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं बारवइ नयरिं मज्झंमज्झेणं····सेसं जहा

तदनन्तर वे कृष्ण वासुदेव स्नानगृह में स्नान करने गये—यावत्—आभिषेक्य हाथी पर आरूढ़ हुए, आठ-आठ मांगलिक द्रव्य दिखाई गई और आगे रखी गई और इसके बाद कोणिक के सदृश डुलाये जाते हुए श्रेष्ठ श्वेत चामरों से सुशोभित और समुद्र विजय प्रमुख दसों दशार्ह—यावत्—सार्थवाह प्रभृति के समुदाय के साथ सभी प्रकार के ऋद्धि वैभवपूर्वक—यावत्—शब्द ध्वनियों से मुखरित करते हुए द्वारावती नगरी के बीचों बीच

कूणिओ-जाव-पज्जुवासइ ।

होते हुए……शेष कथन कोणिक के समान जानना चाहिए—यावत्—पर्युपासना करते हैं ।

निसढेण सावयधम्मगहणं—

८३. तए णं तस्स निसढस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं च……जहा जमाली,-जाव-धम्मं सोच्चा निसम्म वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-"सद्दहामि णं, भन्ते ! निग्गन्थं पावयणं," जहा चित्तो-जाव-सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता पडिगए ।

निषध द्वारा श्रावक धर्म ग्रहण—

८३. तत्पश्चात् श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर सुखानुभव करने वाले उस निषधकुमार ने उस जन कोलाहल को सुना और……जमाली के सदृश—यावत्—धर्म सुनकर और हृदय में अवधारित कर वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं' चित्त प्रधान के समान—यावत्—श्रावक धर्म को स्वीकार करता है, स्वीकार करके वापस लौट आया ।

वरदत्तेण निसढस्स पुव्वभवपुच्छा-अरिट्ठनेमिणा पुव्वभवकहणं च—

८४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अन्तेवासी वरदत्ते नामं अणगारे उराले-जाव-विहरइ ।

तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढं पासइ, जायसड्ढे-जाव-पज्जुवासमाणे एवं वयासी—"अहो णं, भन्ते, निसढे कुमारे इट्ठे इट्ठरूवे कन्ते कन्तरूवे, एवं पिए मणुन्नए, मणामे मणामरूवे सोमे सोमरूवे पियदंसणे सुरूवे ।

निसढेण, भन्ते ! कुमारेण अयमेयारूवा मणुयइड्ढी किण्णा लद्धा, किण्णा पत्ता ?" पुच्छा जहा सूरियाभस्स ।

वरदत्त द्वारा निषध की पूर्वभव पृच्छा और अरिष्टनेमि द्वारा पूर्वभव कथन—

८४. उस काल और उस समय में अर्हन् अरिष्टनेमि के अन्तेवासी वरदत्त नामक श्रेष्ठ अनगार—यावत्—विचरते हैं ।

तत्पश्चात् उन वरदत्त अनगार ने निषध को देखा, देखकर जिज्ञासा उत्पन्न हुई—यावत्, पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा—'हे भगवन् ! यह निषध कुमार इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्त रूप है। इसी प्रकार प्रिय, मनोज्ञ, मणाम मणामरूप, सोम, सोमरूप, प्रियदर्शन और सुरूप है ।

हे भदन्त ! इस निषधकुमार को यह और इस प्रकार की मनुष्योचित ऋद्धि कैसे मिली है, कैसे प्राप्त हुई है ?" जैसे गौतम ने सूर्याभदेव की ऋद्धि के बारे में श्रमण भगवान महावीर से पूछा था, (उसी प्रकार वरदत्त अनगार ने अर्हत अरिष्टनेमि से पूछा ।)

निसढस्स पुव्वभवो-वीरंगअ कुमारो—

८५. "एवं खलु वरदत्ता" !

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे रोहीडए नामं नयरे होत्था, रिद्ध……। मेहवण्णे उज्जाणे । माणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे । तत्थ णं रोहीडए नयरे महब्बले नामं राया, पउमावई नामं देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सीहं सुमिणे……, एवं जम्मणं भाणियव्वं जहा महाबलस्स, नवरं वीरङ्गओ नामं, बत्तीसओ दाओ, बत्तीसाए रायवरकन्नगाणं पाणि-जाव-ओगिज्जमाणे ओगिज्जमाणे पाउसवरिसारत्तसरयहेमन्तगिम्हवसन्ते छ प्पि उऊ जहाविभवे समाणे इट्ठे सद्दे-जाव-विहरइ ।

निषध का पूर्वभव—वीरंगद कुमार—

८५. 'हे वरदत्त ! वह इस प्रकार—(है)

उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में रोहीतक नामक नगर था, जो धन-धान्यादि समृद्धि से सम्पन्न था……। वहाँ मेघवर्ण नामक उद्यान था और उसमें मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था। उस रोहीतक नगर में महाबल नामक राजा था और उसकी रानी का नाम पद्मावती था, अन्यदा किसी समय उस सुख शैया पर सोती हुई उसने स्वप्न में सिंह को देखा……उसके गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। जन्म आदि का वर्णन महाबल के समान जानना चाहिए, विशेष यह कि उसका नाम वीरंगद था, बत्तीस दहेज दिये, बत्तीस उत्तम राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ……यावत्—पावस, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त इन छह ऋतुओं सम्बन्धी इष्ट शब्दादि विषयों के भोग भोगते हुए आनन्दपूर्वक समय बिताता हुआ विचरण करता था ।

सिद्धत्थायरिओवएसेण वीरंगअस्स पव्वज्जा बंभलोए उप्पत्ती य—

८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-संपन्ना जहा केसी; नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडए नयरे, जेणेव मेहवण्णे उज्जाणे, जेणेव माणिदत्तस्स जक्खायणे, तेणेव उवागए अह.पडिरूवं-जाव-विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स वीरङ्गयस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं....जहा जमाली, निग्गओ। धम्मं सोच्चा....जे, नवरं, देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि जहा जमाली, तहेव निक्खन्तो-जाव-अणगारे जाए-जाव-गुत्तबम्भयारी।"

८७. तए णं से वीरंगए सिद्धत्थाणं आयरियाणं अन्तिए सामाइय-माइयाइं-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बहूइं-जाव-चउत्थ-जाव-अप्पाणं भावेमाणे बहूपडिपुण्णाइं पणयाली-सवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता दो मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडि-क्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बम्भलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं देवाणं दससागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं वीरंगयस्स वि देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पन्नत्ता।

बंभलोगाओ चइता निसढकुमारो जाओ—

८८ से णं वीरङ्गए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं-जाव-अणन्तरं चयं चइत्ता इहेव बारवइए नयरीए बलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताये उववन्ने। तए णं सा रेवई देवी तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं,-जाव-उप्पिं पासा-यवरगये विहरइ।

८९. तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवा उराला मणुयइड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

९०. पभू णं, भन्ते ! निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अन्तिए-जाव-पव्वइत्तए ?"

हन्ता, पभू।

से एवं, भन्ते ! इइ वरदत्ते अणगारे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

सिद्धार्थ आचार्य के उपदेश से वीरंगद की प्रव्रज्या और ब्रह्मलोक में उत्पत्ति—

८६. उस काल उस समय में केशी श्रमण के समान जातिसम्पन्न··· बहुश्रुत और बड़े शिष्य परिवार से युक्त सिद्धार्थ नामक आचार्य जहाँ रोहीतक नगर था, जहाँ मेघवर्ण उद्यान था, उसमें जहाँ मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था वहाँ पधारे और यथाप्रतिरूप—यावत् विचरते हे। परिषदा (धर्म सुनने) निकली।

तत्पश्चात् उत्तम प्रासाद के ऊपर रहने वाले उस वीरंगद कुमार ने मनुष्यों के महान कोलाहल को सुना·······जमाली के समान वह धर्म श्रवण करने के लिये निकला, धर्म को सुनकर··· जो विशेषता है, वह इस प्रकार है कि—हे देवानुप्रिय ! माता-पिता से पूछकर जमाली के समान अभिनिष्क्रमण करके—यावत् —वह अनगार हो गया—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

८७. तत्पश्चात् उस वीरंगद अनगार ने उन सिद्धार्थ आचार्य के पास सामायिक आदि से लेकर—यावत्—ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करने के अनन्तर बहुत से—यावत्—चतुर्थ—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए पूरे पैंतालीस वर्ष पर्यन्त श्रामण्य पर्याय का पालन कर दो मास की संलेखना से आत्मा की आराधना कर एक सौ बीस भक्तों को अनशन से त्यागकर आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो काल मास में काल करके वह ब्रह्मलोक कल्प के मनोरम विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ कई एक देवों की स्थिति दस सागरोपम की बताई है। वहाँ इस वीरंगद देव की भी दस सागरोपम की स्थिति थी।

ब्रह्मलोक से च्युत होकर निषधकुमार हुआ—

८८. वह वीरंगददेव उस देवलोक से आयुक्षय के—यावत्—अनन्तर शरीर से च्युत होकर इसी द्वारावती नगरी में बलदेव राजा की रेवती रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह रेवती रानी उस शयनीय शैया पर सोती हुई स्वप्न देखती है—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर सुखपूर्वक रहते हुए विचरता है।

८९. हे वरदत्त ! इस प्रकार से निषधकुमार ने इस प्रकार की उदार मनुष्य ऋद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है।

९०. 'हे भदन्त ! क्या यह निषधकुमार आप देवानुप्रिय के पास—यावत्—प्रव्रजित होने में समर्थ है ? वरदत्त अनगार ने पूछा।

हाँ, समर्थ है, (अर्थात् वह अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा —अर्हत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया।)

हे भदन्त ! आप जो कहते हैं, वह इसी प्रकार है अर्थात् वह सत्य है, और ऐसा कहकर वरदत्त अनगार—यावत्— आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

९१. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी अन्नया कयाइ बारवईओ नयरीओ जाव-बहिया जणवयविहारं विहरइ। निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे-जाव-विहरइ।

निसढस्स अरिट्ठनेमिदंसणेच्छा—

९२. तए णं से निसढे कुमारे अन्नया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता-जाव-दब्भसंथारोवगए विहरइ।

तए णं तस्स निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"धन्ना णं ते गामागर-जाव-संनिवेसा जत्थ णं अरहा अरिट्ठणेमी विहरइ। धन्ना णं ते राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईओ जे णं अरहं अरिट्ठणेमिं वन्दन्ति, नमंसन्ति-जाव-पज्जुवासन्ति। जइ णं अरहा अरिट्ठणेमी पुव्वाणुपुव्विं....नन्दणवणे विहरेज्जा, तए णं अहं अरहं अरिट्ठणेमिं वन्दिज्जा-जाव-पज्जुवासिज्जा।

निसढेच्छं णाऊण अरिट्ठनेमिस्सागमणं—

९३. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवमज्झत्थियं-जाव-वियाणित्ता अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं—जाव-नन्दणवणे समोसढे। परिसा निग्गया।

निसढस्स पव्वज्जा समाहिमरणं च—

९४. तए णं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० चाउग्घण्टेणं आसरहेणं निग्गए जहा जमाली,-जाव-अम्मापियरो आपुच्छित्ता पव्वइए, अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-गुत्तबम्भयारी।

९५. तए णं से निसढे अणगारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता, बहूइं चउत्थ-छट्ठ-जाव-विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं नववासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

वरदत्तपुच्छिएण अरिट्ठनेमिणा निसढस्स सव्वट्ठसिद्ध विमाणगमणपरूवणं—

९६. तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढं अणगारं कालगयं [illegible]

९१. तत्पश्चात् अर्हन् अरिष्टनेमि अन्यदा किसी समय द्वारवती नगरी से—यावत्—बाहर जनपदों में विहार करने लगे। निषध-कुमार श्रमणोपासक हो गया और जीवाजीव आदि का ज्ञाता हो गया—यावत्—विचरता है।

निषध की अरिष्टनेमि दर्शनेच्छा—

९२. तत्पश्चात् वह निषधकुमार अन्यदा कदाचित् जहाँ पौषध-शाला थी, वहाँ आया, आकर—यावत्—दर्भ के आसन पर बैठकर धर्म ध्यान करते हुए विचरने लगा।

इसके बाद मध्य रात्रि के समय में धर्म जागरणा में जागते रहते हुए उस निषधकुमार के मन में यह इस प्रकार का विचार—यावत्—उत्पन्न हुआ—

'वे ग्राम, आकर—यावत्—संनिवेश धन्य हैं, जहाँ अर्हन् अरिष्टनेमि विचरण करते हैं। वे राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह आदि धन्य हैं जो अर्हन् अरिष्टनेमि को वंदन—नमस्कार करते हैं—यावत्—पर्युपासना—सेवा करते हैं। यदि अर्हन् अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए……नन्दनवन में विहार करें तो मैं भी अर्हन् अरिष्टनेमि को वंदन करूँ—यावत्—सेवा करूँ।

सिद्धत्थायरिओवएसेण वीरंगअस्स पव्वज्जा बंभलोए उप्पत्ती य—

८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-संपन्ना जहा केसी; नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडए नयरे, जेणेव मेहवण्णे उज्जाणे, जेणेव माणिदत्तस्स जक्खाययणे, तेणेव उवागए अह.पडिरूवं-जाव-विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स वीरङ्गयस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं....जहा जमाली, निग्गओ। धम्मं सोच्चा....जं, नवरं, देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि जहा जमाली, तहेव निक्खन्तो-जाव-अणगारे जाए-जाव-गुत्तबम्भयारी।"

सिद्धार्थ आचार्य के उपदेश से वीरंगद की प्रव्रज्या और ब्रह्मलोक में उत्पत्ति—

८६. उस काल उस समय में केशी श्रमण के समान जातिसम्पन्न··· बहुश्रुत और बड़े शिष्य परिवार से युक्त सिद्धार्थ नामक आचार्य जहाँ रोहीतक नगर था, जहाँ मेघवर्ण उद्यान था, उसमें जहाँ मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था वहाँ पधारे और यथाप्रतिरूप—यावत् विचरते हैं। परिषदा (धर्म सुनने) निकली।

तत्पश्चात् उत्तम प्रासाद के ऊपर रहने वाले उस वीरंगद कुमार ने मनुष्यों के महान कोलाहल को सुना······जमाली के समान वह धर्म श्रवण करने के लिये निकला, धर्म को सुनकर··· जो विशेषता है, वह इस प्रकार है कि—हे देवानुप्रिय! माता-पिता से पूछकर जमाली के समान अभिनिष्क्रमण करके—यावत्—वह अनगार हो गया—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

८७. तए णं से वीरंगए सिद्धत्थाणं आयरियाणं अन्तिए सामाइय-माइयाइं-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बहूइं-जाव-चउत्थ-जाव-अप्पाणं भावेमाणे बहूपडिपुण्णाइं पणयाली-सवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता दो मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बम्भलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं देवाणं दससागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं वीरंगयस्स वि देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पन्नत्ता।

८७. तत्पश्चात् उस वीरंगद अनगार ने उन सिद्धार्थ आचार्य के पास सामायिक आदि से लेकर—यावत्—ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करने के अनन्तर बहुत से—यावत्—चतुर्थ—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए पूरे पैंतालीस वर्ष पर्यन्त श्रामण्य पर्याय का पालन कर दो मास की संलेपना से आत्मा की आराधना कर एक सौ बीस भक्तों को अनशन से त्यागकर आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो काल मास में काल करके वह ब्रह्मलोक कल्प के मनोरम विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ कई एक देवों की स्थिति दस सागरोपम की बताई है। वहाँ इस वीरंगद देव की भी दस सागरोपम की स्थिति थी।

बंभलोगाओ चइता निसढकुमारो जाओ—

८८. से णं वीरङ्गए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं-जाव-अणन्तरं चयं चइत्ता इहेव बारवइए नयरीए बलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताये उववन्ने। तए णं सा रेवई देवी तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं,-जाव-उप्पिं पासा-यवरगये विहरइ।

८९. तं एवं खलु वरदत्ता! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवा उराला मणुयइड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

९०. पभू णं, भन्ते! निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अन्तिए-जाव-पव्वइत्तए?"

हन्ता, पभू।

से एवं, भन्ते! इइ वरदत्ते अणगारे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

ब्रह्मलोक से च्युत होकर निषधकुमार हुआ—

८८. वह वीरंगददेव उस देवलोक से आयुक्षय के—यावत्—अनन्तर शरीर से च्युत होकर इसी द्वारावती नगरी में बलदेव राजा की रेवती रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह रेवती रानी उस शयनीय शैया पर सोती हुई स्वप्न देखती है—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर सुखपूर्वक रहते हुए विचरता है।

८९. हे वरदत्त! इस प्रकार से निषधकुमार ने इस प्रकार की उदार मनुष्य ऋद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है।

९०. 'हे भदन्त! क्या यह निषधकुमार आप देवानुप्रिय के पास—यावत्—प्रव्रजित होने में समर्थ है? वरदत्त अनगार ने पूछा।

हाँ, समर्थ है, (अर्थात् वह अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा—अर्हत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया।)

हे भदन्त! आप जो कहते हैं, वह इसी प्रकार है अर्थात् वह सत्य है, और ऐसा कहकर वरदत्त अनगार—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

९१. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी अन्नया कयाइ बारवईओ नयरीओ जाव-बहिया जणवयविहारं विहरइ। निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे-जाव-विहरइ।

९१. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि अन्यदा किसी समय द्वारावती नगरी से—यावत्—बाहर जनपदों में विहार करने लगे। निषध-कुमार श्रमणोपासक हो गया और जीवाजीव आदि का ज्ञाता हो गया—यावत्—विचरता है।

निसढस्स अरिट्ठनेमिदंसणेच्छा—

निषध की अरिष्टनेमि दर्शनेच्छा—

९२. तए णं से निसढे कुमारे अन्नया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता-जाव-दब्भसंथारोवगए विहरइ।

तए णं तस्स निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"धन्ना णं ते गामागर-जाव-संनिवेसा जत्थ णं अरहा अरिट्ठणेमी विहरइ। धन्ना णं ते राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईओ जे णं अरहं अरिट्ठणेमिं वन्दन्ति, नमंसन्ति-जाव-पज्जुवासन्ति। जइ णं अरहा अरिट्ठणेमी पुव्वाणुपुव्विं....नन्दणवणे विहरेज्जा, तए णं अहं अरहं अरिट्ठणेमिं वन्दिज्जा-जाव-पज्जुवासिज्जा।

९२. तत्पश्चात् वह निषधकुमार अन्यदा कदाचित जहाँ पौषध-शाला थी, वहाँ आया, आकर—यावत्—दर्भ के आसन पर बैठकर धर्म ध्यान करते हुए विचरने लगा।

इसके बाद मध्य रात्रि के समय में धर्म जागरणा में तत्पर रहते हुए उस निषधकुमार के मन में यह इस प्रकार का विचार—यावत्—उत्पन्न हुआ—

'वे ग्राम, आकर—यावत्—सन्निवेश धन्य हैं, जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि विचरण करते हैं। वे राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थ-वाह आदि धन्य हैं जो अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन—नमस्कार करते हैं—यावत्—पर्युपासना—सेवा करते हैं। यदि अर्हत अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए·······नन्दनवन में विचरण करें तो मैं भी अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन करूँ—यावत्—सेवा करूँ।

निसढेच्छं णाऊण अरिट्ठनेमिस्सागमणं—

निषध-इच्छा ज्ञात कर अरिष्टनेमि का आगमन—

९३. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवं-मज्झत्थियं-जाव-वियाणित्ता अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं—जाव-नन्दणवणे समोसढे। परिसा निग्गया।

९३. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि निषधकुमार के यह, इस प्रकार के मानसिक विचार को—यावत्—जानकर अठारह हजार श्रमणों के साथ—यावत्—नन्दनवन में पधारे। परिषदा निकली।

निसढस्स पवज्जा समाहिमरणं च—

निषध की प्रव्रज्या और समाधिमरण—

९४. तए णं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० चाउग्घण्टेणं आसरहेणं निग्गए जहा जमाली,-जाव-अम्मापियरो आपुच्छित्ता पव्वइए, अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-गुत्तबम्भयारी।

९४. तत्पश्चात् निषधकुमार इस सुखद वृतान्त को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाला होकर चार घंटे वाले अश्व रथ पर आरूढ़ होकर निकला और जमाली के समान—यावत्—माता-पिता से पूछकर प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया ईर्या-समिति वाला—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

९५. तए णं से निसढे अणगारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता, बहूइं चउत्थ-छट्ठ-जाव-विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूपडिपुण्णाइं नववासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

९५. तत्पश्चात् वह निषधकुमार अर्हत अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ—यावत्—विविध प्रकार के तप कर्म से आत्मा की भावना करते हुए परिपूर्ण नौ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करता है, पालन करके बयालीस भक्तों को अनशन से छेदन करके आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो आनुपूर्वी से काल प्राप्त हुआ।

वरदत्तपुच्छिएण अरिट्ठनेमिणा निसढस्स सव्वट्ठसिद्ध विमाणगमणकहणं—

वरदत्त के पूछने पर अरिष्टनेमि द्वारा निषध का सर्वार्थ-सिद्ध विमान कथन—

९६. तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढं अणगारं कालगयं जाणित्ता

९६. तत्पश्चात् वरदत्त अनगार निषधकुमार को कालगत जान-

जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए। से णं, भन्ते ! निसढे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने ?

कर जहाँ अर्हत् अरिष्टनेमि विराजते थे, वहाँ आये, आकर उन्होंने इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी निषध अनगार प्रकृति भद्रक—यावत्—विनीत था। सो हे भदन्त ! वह निषध अनगार काल करने के अवसर पर काल करके कहाँ गया और कहाँ उत्पन्न हुआ है ?

"वरदत्ता" ई अरहा अरिट्ठणेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी—"एवं खलु, वरदत्ता ! ममं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए ममं तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं नव वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चन्दिम-सूरिय-गह-गण-नक्खत्ततारारूवाणं तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता सव्वट्ठसिद्धविमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।"

'हे वरदत्त !' इस प्रकार से वरदत्त अनगार को सम्बोधित करके अर्हत् अरिष्टनेमि ने कहा—'हे वरदत्त ! मेरा अन्तेवासी निषध नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत था, मेरे तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर परिपूर्ण नौ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, बयालीस भक्तों को अनशन से पूर्ण कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि प्राप्त हो—समाधिस्थ हो काल मास में—मरण काल आने पर काल करके ऊर्ध्व दिशा में चन्द्र, सूर्य, ग्रह-गण नक्षत्र और तारामंडल से भी ऊपर सौधर्म, ईशान आदि कल्पों और तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानवासों का भी उल्लंघन कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

तत्थणं णिसढस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमा ठिई पण्णत्ता।

वहाँ निषधदेव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

निसढस्स महाविदेहे सिद्धी भावि ति अरिट्ठनेमिकहणं—

९७. "से णं, भन्ते ! निसढे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणनन्तरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

निषध की महाविदेह में सिद्धि होगी : अरिष्टनेमि कथन—

९७. 'हे भदन्त ! वह निषधदेव आयु क्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?'

"वरदत्ता ! इहेव जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नगरे विसुद्धपिइवंसे रायकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिए। तए णं से उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहारूवाणं थेराणं अन्तिए केवलबोहिं बुज्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ।

'हे वरदत्त ! इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उन्नात नगर में विशुद्ध पितृ वंश वाले राजकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। उसके बाद बाल्यकाल के बीतने पर, सज्ञान अवस्था को प्राप्त होने—होश सँभालने पर और युवावस्था को प्राप्त करने—जवान हो जाने पर तथारूप स्थविरों के समीप केवल बोधि—शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त कर गृह त्यागकर अनगारत्व में प्रव्रजित होगा।'

से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ इरियासमिए-जाव-गुत्तबम्भयारी। से णं तत्थ बहूइं चउत्थ-छट्ठ-ऽट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मास-द्धमासखमणेहिं विचित्तेहि तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणिस्सइ। पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेहिइ, झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइहिइ, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुण्डभावे अण्हाणए अदन्तवणए अछत्तए अणोवाहणए फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बम्भचेर-वासे-

वह ईर्यासमिति आदि से युक्त—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी अनगार होगा। तब वह बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्ठ, दशम, द्वादश मास, अर्धमासखमण, रूप विचित्र तपकर्म से आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों की श्रामण्य पर्याय का पालन करेगा। पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना करेगा, आराधना करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन करेगा, जिस अर्थ—मोक्ष प्राप्ति के लिए नग्नभाव, मुंडभाव,

परघरवेसे पिण्डवाउलद्धावलद्धे उच्चावया य गामकण्टगा अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहेइ। आराहित्ता चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणं अन्तं काहिइ।

—वण्हि० अ० १

स्नान त्याग, दंतधावन-त्याग, छत्रत्याग, उपानह—जूता मोजा आदि का त्याग, फलक शैया पाट पर सोना, काष्ठशैया, केश लोच, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षार्थ, पर गृह-प्रवेश, भिक्षा ग्रहण, लाभ और अलाभ में समभाव तथा इन्द्रियों के अनुकूल और प्रतिकूल शब्दादि को वीतराग भाव से सहन आदि किया जाता है, उस मोक्ष रूप की आराधना करेगा। आराधना करके चरम उश्वास—निःश्वास में सिद्ध होगा—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त होगा।

६. अरिट्ठनेतित्थे गोयमाइया अणगारा

६. अरिष्टनेमि तीर्थ में गौतमादि अनगार

संगहीणा-गाहा—

९८. गोयम, समुद्द, सागर, गंभीरे चेव होइ, थिमिए य।
अयले, कंपिल्ले खलु, अक्खोभ, पसेणई, विण्हू ।१।

संग्रहणी गाथा—

९८. १ गौतम, २ समुद्र, ३ सागर ४ गंभीर ५ स्तिमित ६ अचल ७ काम्पिल्य ८ अक्षोभ ९ प्रसेनजित और १० विष्णुकुमार।

बारवईए कण्हो वासुदेवो—

९९. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था-दुवालसजोयणायामा नवजोयणवित्थिण्णा धणवति-मइ-निम्माया चामोकर पागारा नाणामणि-पंचवण्ण-कविसीसगमंडिया सुरम्मा अलकापुरिसंकासा पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया -जाव-पडिरूवा।

द्वारावती में कृष्ण वासुदेव—

९९. उस काल, उस समय में द्वारावती नामक नगरी थी—जो बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी, जिसका निर्माण स्वयं कुबेर ने अपनी बुद्धि कौशल द्वारा किया था तथा सुवर्ण के परकोटे और अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों से जटित कंगूरों से सुसज्जित, शोभनीय थी, जिसकी उपमा अलकापुरी से की जाती थी, क्रीड़ा प्रमोद आदि की समस्त सामग्रियों से परिपूर्ण होने से साक्षात् देवलोक स्वरूपा थी और देखने वालों का मन सहज ही आनंदित एवं आकर्षित हो जाता था यावत्—ऐसी वह सर्वांग सुन्दर सर्वोत्तम थी।

तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था-वण्णओ।

तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था-वण्णओ।

उसी द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग में रैवतक नामक पर्वत था—वर्णन। उस रैवतक पर्वत पर नंदनवन नामक उद्यान था—वर्णन।

तस्स णं उज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था चिराइए पुव्वपुरिस-पण्णत्ते पोराणे से णं एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

उस उद्यान के ठीक मध्य भाग में सुरप्रिय नामक यक्षायतन था, जिसे पूर्व पुरुषों ने बहुत समय का प्राचीन कहा था। वह एक वनखण्ड से घिरा हुआ था।

तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे असोगवरपायवे।

उस वनखण्ड के बीचोबीच एक श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था।

१००. तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ महया, राय-वण्णओ।

१०० उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव नामक महान राजा राज्य करते थे, जिनके राज्य का वर्णन करना।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव-पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धट्ठाणं कुमारकोडीणं, संवपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं, महासेण-पामोक्खाणं छप्पणाए बलवगसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एग-वीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाह-स्सीणं, रुप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं अणंगसेणा-पामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं, राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समंतस्स आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

वे उस द्वारावती नगरी में समुद्रविजय आदि दस दशार, बलदेव आदि पांच महावीर, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होने वाले शंब आदि साठ हजार शूर, महासेन आदि छप्पन हजार सैनिक वर्ग, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा, रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियां, अनंगसेना आदि हजारों गणिकायें तथा उनके अतिरिक्त बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर (नगर रक्षक) मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्यश्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि निवास करते थे। ऐसी द्वारावती नगरी और आधे भरत क्षेत्र का आधिपत्य, प्रभुत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व महत्तरत्व, आज्ञैश्वर्यत्व और सेनापतित्व करते हुए पालन—शासन करते हुए विचरते थे।

१०१. तत्थ णं बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ ।

१०१. उसी द्वारावती नगरी में महाहिमवान, महान मंदर पर्वत एवं महेन्द्र के समान राजाओं में श्रेष्ठ अंधक वृष्णि नामक राजा निवास करते थे—वर्णन ।

अंधगवण्हिरण्णो गोयमो कुमारो—

तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—वण्णओ ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि-जाव-णियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा एवं जहा महब्बले ।

सुमिणदंसण कहणा जम्मं बालत्तणं कलाओ य ।
जुव्वण पाणिग्गहणं कंता पासाय भोगा ।१।

नवरं—गोयमो नामेणं । अट्ठण्हं रायकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति । अट्ठट्ठओ दाओ ।

अन्धक वृष्णि राजा का गौतम कुमार—

उन अंधक वृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी—वर्णन । तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी किसी एक समय पुण्यजनों के शयन योग्य शैया पर सो रही थी—यावत्—अपने मुख में सिंह को प्रवेश करने वाले स्वप्न को देखकर जाग्रत हुई । जैसा महाबल का वर्णन है वैसा ही स्वप्न दर्शन, फल-कथन, जन्म, बाल्यकाल, कला शिक्षण तथा यौवन एवं पाणिग्रहण करके कान्त, प्रिय भोग भोगने तक का सर्व वर्णन यहाँ करना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है—नाम गौतम है । एक ही दिन में आठ राजकन्याओं से पाणिग्रहण करवाया । आठ-आठ वस्तुओं के दहेज प्राप्त हुए ।

अरिट्ठनेमिस्स धम्मोवएसो, गोयमपव्वज्जा य—

१०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आदिकरे-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । चउव्विहा देवा आगया । कण्हे वि निग्गए ।

तए णं तस्स गोयमस्स कुमारस्स तं महाजणसद्दं च जण-कलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था । जहा मेहे तहा निग्गए । धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० जं नवरं—देवाणुप्पिया ! अम्मा-पियरो आपुच्छामि । तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

तए णं गोयमे कुमारे एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए—

अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश और गौतम प्रव्रज्या—

१०२. उस काल उस समय धर्म के आदिकर अर्हत अरिष्टनेमि-यावत-संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे । चारों निकाय के देवगण आये । कृष्ण भी निकले ।

तत्पश्चात उस गौतम कुमार के मन में जन समूह के शब्दों और जन कोलाहल को सुनकर और देखकर इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ । मेघकुमार की तरह यह गौतम भी निकला । धर्म श्रवण कर और मन में समझकर हृष्ट तुष्ट हुआ विशेष केवल इतना है कि हे देवानुप्रिय ! माता पिता से आज्ञा लूँगा, तत्पश्चात आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करूँगा ।

तत्पश्चात् वह गौतम कुमार भी मेघकुमार की तरह अनगार

इरियासमिए जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

हुआ-ईर्या समिति-यावत्-इसी निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आगे रखकर अर्थात् जिन आज्ञा के अनुसार साधना करते हुए विहार करने लगा।

तए णं से गोयमे कुमारे अण्णया कयाइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् उस गौतम अनगार ने किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि के तथारूप (गीतार्थ) स्थविरों के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया; अध्ययन करके वह अनेक चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, अर्धमास और मासक्षपण आदि विविध प्रकार के तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

गोयमस्स सेत्तुंजे सिद्धी—

गौतम की शत्रुंजय पर्वत पर सिद्धि—

१०३. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइ बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ पडिणिक्खमइ, बहिया जणवयविहारं विहरइ।

१०३. तत्पश्चात् किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि ने द्वारावती नगरी के नंदनवन से विहार किया और बाह्य जनपदों में विचरने लगे।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ फासेत्ता गुणरयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं। जहा खंदओ तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ।

उसके बाद वह गौतम अनगार किसी एक समय जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर अर्हत् अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मासिक भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करना चाहता हूँ। स्कंदक की तरह बारह प्रतिमाओं की आराधना की, आराधना करके गुणरत्न तपोकर्म की साधना भी की। जिस तरह स्कन्दक ने विचार किया था और पूछा था उसी तरह गौतम ने भी विचार किया और आज्ञा ली तथा उसी प्रकार स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर आरोहण किया।

तए णं से गोयमे अणगारे बारस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे।

तत्पश्चात् वह गौतम अनगार बारह वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल बनाकर साठ भक्तपान का अनशन द्वारा त्याग कर यावत् सर्वोत्तम केवलज्ञान दर्शन प्रगट कर सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

समुद्दादि—

समुद्रादि—

१०४. एवं जहा गोयमो तहा सेसा।

अंधगवण्ही पिया, धारिणी माया। समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई, विण्हू, एए एगगमा।

—अंत० व० १ अ० १-१०

१०४. जैसा गौतम अनगार का वर्णन किया गया है, उसी तरह शेष समुद्र आदि का भी वर्णन जानना चाहिये।

इन सबके पिता का नाम अंधकवृष्णि और माता का नाम धारिणी है तथा इनके नाम समुद्र, सागर, गंभीर स्तिमित अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णुकुमार है। इन सबका वर्णन एक समान है।

अक्खोभाइ कुमारा अणगारा—

संगहणी-गाहा—

१०५. अक्खोभ सागरे खलु समुद्द हिमवंत अचलनामे य।
धरणे य पूरणे या, अभिचंदे चेव अट्ठमए ॥१॥

अक्षोभादि कुमार अनगार—

[संग्रहणी गाथा]

१०५. १ अक्षोभ २ सागर ३ समुद्र ४ हिमवन्त ५ अचल ६ धरण ७ पूरण और ८ अभिचन्द्र ये आठ राजकुमार थे।

१०६. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी। अंधगवण्ही पिया। धारिणी माया। गुणरयणं तवो-कम्मं। सोलस वासाइं परियाओ। सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए सिद्धा।

—अंत० व० २. अ० १-८

१०६. उस काल उस समय द्वारावती नगरी थी। पिता का नाम अन्धकवृष्णि और माता का नाम धारिणी था। गुणरत्न तपोकर्म की साधना की। सोलह वर्ष श्रमण पर्याय पालन की। शत्रुंजय पर्वत पर मासिक संलेखना करके सिद्ध पद को प्राप्त किया।

७. अरिट्ठनेमितित्थे अणीयसो कुमारो अण्णे य

७. अरिष्टनेमि तीर्थ में अणीयस कुमार और अन्य—

१०७. १ अणीयसे, २. अणंतसेणे, ३. अजियसेणे, ४. अणिहयरिऊ ५. देवसेणे ६. सत्तुसेणे ७. सारणे ८. गए, ९. समुद्दे, १०. दुम्मुहे, ११. कूवए १२. दारुए, १३. अणाहिट्ठी।

१०७. १ अणीयस २ अनन्तसेन ३ अजितसेन ४ अनिहतरिपु ५ देवसेन ६ शत्रुसेन ७ सारण ८ गज ९ समुद्र १० दुर्मुख ११ कूपक १२ दासक और १३ अनादृष्टि।

भद्दिलपुरे नागगाहावई तस्स य पुत्तो अणीयसो—

भद्दिलपुर में नाग गृहपति और उसका पुत्र अणीयस—

१०८. तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ।

तस्स णं भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सिरिवणे नामं उज्जाणे होत्था—वण्णओ, जियसत्तू राया।

तत्थ णं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए। तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था—सूमाला-जाव-सुरूवा।

१०८. उस काल उस समय में भद्दिलपुर नामक नगर था—वर्णन।

उस भद्दिलपुर के उत्तर पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में श्रीवन नामक उद्यान था—वर्णन, जितशत्रु नामक राजा था।

उस भद्दिलपुर नगर में नाग नामक गृहपति निवास करता था—धनाढ्य-यावत्-किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला था। उस गृहपति की सुकुमाल-यावत सुन्दर सुलसा नाम की भार्या थी।

१०९. तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नामं कुमारे होत्था—सूमाले-जाव-सुरूवे पंच-धाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे-जाव-गिरिकंदरमल्लीणे विव चंपग-वरपायवे णिव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

तए णं तं अणीयसं कुमारं सातिरेगअट्ठवासजायं जाणित्ता अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंति-जाव-भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तए णं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाणं सरिव्वयाणं सरित्तयाणं सरिसलावण्ण रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसएहिंतो इब्भकुलेहिंतो आणिए-ल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति।

तए णं से नागे गाहावई अणीयसस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा—

बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महाबलस्स-जाव-उप्पिंपासाय-

१०९. उस नाग गृहपति का पुत्र सुलसा भार्या का आत्मज अणीयस नामक कुमार था—जो सुकुमाल-यावत-सुरूप पांच धाय माताओं से परिवेष्टित दृढ़प्रतिज्ञ के समान-यावत-गिरिगुफा में स्थित उत्तम चंपक पादप के समान बिना किसी विघ्न-बाधा के सुखपूर्वक वृद्धिगत-परिवर्धित होने लगा।

तत्पश्चात उस अणीयसकुमार को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर माता-पिता ने कलाचार्य के पास भेजा-यावत-भोग भोगने में समर्थ हो गया। तब उस अणीयसकुमार को बाल्यकाल का अतिक्रमण किया हुआ जानकर माता पिता ने एक ही दिन उसका सदृश रंग समान वय, समान त्वचा, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त सदृश इभ्य श्रेष्ठी कुलों से लाई गई बत्तीस श्रेष्ठ इभ्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया।

तत्पश्चात उस नाग गाथापति ने अणीयसकुमार को यह इस प्रकार का प्रीतिदान दिया, वह इस प्रकार है। यथा—

बत्तीस हिरण्य कोटियां जैसा महाबल के लिये उसके माता-

वरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

पिता ने दिया था यावत्-श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपरी भाग मे निरंतर बजते हुए मृदंगों की ध्वनियों पूर्वक भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचरता था।

अरिट्ठनेमिसकासे अणीयसपव्वज्जा सत्तुंजे सिद्धी य—

११०. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जेणेव भद्दिलपुरे नयरे जेणेव सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स अणीयसस्स कुमारस्स तं महाजणसद्दं च जणकलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था। जहा गोयमे तहा अणगारे जाए, नवरं—सामाइयमाइयाइं चोद्दस-पुव्वाइं अहिज्जइ। बीसं वासाइं परियाओ। सेसं तहेव-जाव-सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे।

—अंत० व० ३-अ० १

अरिष्टनेमि के समक्ष अणीयस की प्रव्रज्या और शत्रुञ्जय पर सिद्धि—

११०. उस काल, उस समय अर्हत अरिष्टनेमि जहाँ भद्दिलपुर नगर था, जहाँ श्रीवन उद्यान था, वहाँ पधारे, पधार कर यथा विधि अवग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। परिषदा निकली।

तत्पश्चात विशाल जन-समूह के शब्दों और कोलाहल को सुनकर और जन समूह को देखकर उस अणीयसकुमार को यह इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतित प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। गौतम के समान अनगार हो गये, विशेष केवल इतना है कि सामायिक से प्रारम्भ कर चौदहपूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया। शेष वर्णन पूर्व की तरह-यावत-शत्रुंजय पर्वत पर मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध—पवित्र करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्यागकर-यावत-श्रेष्ठ केवल ज्ञान-दर्शन को प्रगट किया, उसके बाद सिद्ध हुए।

अणंतसेणकुमाराई अणगारा—

१११. एवं जहा अणीयसे। एवं सेसा वि अणंतसेण-जाव-सत्तुसेणे छ अज्झयणा एक्कगमा। बत्तीसओ दाओ। वीसं वासा परियाओ। चोद्दस पुव्वा। सेत्तुंजे सिद्धा।

—अंत० व० ३, अ० २-६

अनन्तसेन कुमारादि अनगार—

१११. इसी प्रकार जैसा अणीयस का वर्णन है, उसी प्रकार शेष का भी वर्णन जानना चाहिये। अनन्तसेन यावत् शत्रुसेन तक के ६ अध्ययन एक समान समझना। बत्तीस प्रीतिदान प्राप्त हुए। वीस वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए।

सारणकुमारसमणो—

११२. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा अणीयसे नवरं-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासओ दाओ। चोद्दस पुव्वा। वीसं वासा परियाओ। सेसं जहा गोयमस्स-जाव-सेत्तुंजे सिद्धे।

—अंत० व० ३, अ० ७

सारण कुमार श्रमण—

११२. उस काल उस समय वारावती नगरी में, अणीयस के वर्णन के समान, किन्तु विशेष यह है कि वसुदेव राजा थे। धारिणी देवी थी। स्वप्न में सिंह को देखा। नाम सारण कुमार रखा गया। पचास दहेज प्राप्त हुए। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। वीस वर्ष दीक्षा पर्याय पालन की। शेष वर्णन गौतम के समान-यावत-शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए।

□

८. अरिट्ठनेमितित्थे गजसुकुमालाइसमणा

८. अरिष्टनेमि तीर्थ में गजसुकुमालादि श्रमण

११३. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे।

११३. उस काल, उस समय में द्वारावती नगरी थी, अर्हन् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ।

छण्हं अणगाराणं तव-संकप्पस्स अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णा—

११४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था—सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकिय-वच्छा कुसुम-कुण्डलसद्दलया नलकूवरसमाणा।

तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदति णमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

छण्हं पि देवईए गिहे कमसो पवेसो—

११५. तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणवत्थाइं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जंति पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेंति, उग्गाहेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणाए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।'

अहासुहं देवाणुप्पिया !

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता

छह अनगारों के तप-संकल्प की अरिष्टनेमि द्वारा अनुमति—

११४. उस काल, उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि के छह सहोदर भाई अनगार शिष्य थे—वे सभी समान आकृति वाले समान रूप और समान वय वाले थे, उनकी शरीर कांति नीलकमल, भैंसे के सींग के आन्तरिक भाग एवं अलसी के फूल के समान नीलवर्ण की थी और उनका वक्षस्थल श्रीवत्स नामक चिन्ह विशेष से अंकित था, सिर पर फूलों के समान कोमल और कुण्डल के समान घूमे हुए घुंघराले बाल शोभायमान होते थे, सौन्दर्य और गुणों में नल-कूबर के समान थे।

तत्पश्चात् वे छहों अनगार जिस दिन मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारत्व में प्रव्रजित हुए उसी दिन उन्होंने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना, नमस्कार किया और वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! हम आपसे आज्ञा प्राप्त कर जीवन पर्यंत निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तपकर्म द्वारा संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने की इच्छा करते हैं।

हे देवानुप्रियो ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, विलंब—प्रमाद न करो।

तत्पश्चात वे छहों अनगार अर्हत अरिष्टनेमि से आज्ञा प्राप्त कर यावज्जीवन के लिये निरंतर षष्ठ-षष्ठ तपकर्म द्वारा संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

छहों का क्रमशः देवकी के गृह में प्रवेश—

११५. तत्पश्चात वे छहों अनगार किसी एक दिन षष्ठ भक्त के पारणे के समय प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर में ध्यान ध्याते हैं, तीसरे प्रहर में शीघ्रता न कर, धीरे-धीरे बिना उतावली के मुखवस्त्रिका की पडिलेहना करते हैं, पडिलेहना करके उपकरणों और वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं, उनकी प्रतिलेखना करके पात्रों को पोंछते हैं, पोंछकर पात्रों को उठाते हैं, उठाकर जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि विराजमान हैं, वहाँ आते हैं, आकर अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर षष्ठ भक्त पारणा के लिये तीन संघाटकों में द्वारावती नगरी के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के निमित्त परिभ्रमण करना चाहते हैं।'

जैसा सुख हो, वैसा करो—भगवान ने उत्तर दिया—

तत्पश्चात वे छहों अनगार अर्हत अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना, नमस्कार करते हैं,

अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहसंववणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियमचवलमसंभंता जुगंतर-पलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव, बारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडंति।

११६. तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहं अणुप्पविट्ठे।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइ, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया, सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

११७. तयणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइ, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता पडिविसज्जेइ।

११८. तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

देवईए एगस्सेव पुणरागमणसंका—

११९ तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइ, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

वंदना नमस्कार करके अर्हंत अरिष्टनेमि के पास से, सहस्राम्रवन से निकलते हैं,—निकलकर तीन संघाटकों में अत्वरित गति, चपलता रहित और लाभालाभ के उद्वेग रहित होकर युग प्रमाण भूमि को दृष्टि से देखते हुए अर्थात् ईर्यासमिति पूर्वक गमन करते हुए जहाँ द्वारावती नगरी है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षार्थ पर्यटन करते हैं।

११६. उनमें से एक संघाटक (सिंघाड़ा) द्वारावती नगरी के उच्च—नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा के लिये घूमता हुआ वसुदेव राजा और रानी देवकी के घर में प्रविष्ट हुआ।

तत्पश्चात् उस देवकी देवी ने उन अनगारों को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त वाली, प्रीतिमना, परम उल्लास पूर्वक, हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाली होकर आसन से उठी उठकर सात-आठ पग सामने गई; तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की; प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ भोजनशाला थी, वहाँ आई, सिंहकेशर मोदकों का थाल भरा और उन अनगारों को प्रतिलाभित किया, फिर वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके विनयपूर्वक प्रति विसर्जित किया अर्थात् विदा किया।

११७. तदनन्तर दूसरा सिंघाड़ा भी द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुल गृह में गृह सामुदानिक भिक्षा के निमित्त घूमता हुआ वसुदेव राजा की देवकी रानी के घर में आया।

तब उस देवकी रानी ने उन अनगारों को आते देखा, हृष्ट तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर सात-आठ पद सामने गई, तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ भोजनगृह था, वहाँ आई, सिंहकेशर मोदकों का थाल भरा और उन अनगारों को प्रतिलाभित किया, फिर वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके प्रतिविसर्जित किया।

११८. तदनन्तर तीसरा सिंघाड़ा भी द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा चर्या से घूमता हुआ वसुदेव राजा की रानी देवकी के घर में प्रविष्ट हुआ।

देवकी को एक ही घर में हो पुनरागमन शंका—

११९. तत्पश्चात् उस देवकी रानी ने उन अनगारों को आते देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर सात आठ पद सामने गई, तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार कर जहां भोजन गृह-रसोईघर था वहां आकर सिंह केशर मोदकों को थाल में रखा, उन अनगारों को प्रतिलाभित किया और प्रतिलाभित करके इस प्रकार कहा—

"किण्णं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति ?"

हे देवानुप्रिया ! क्या कृष्ण वासुदेव की इस नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी [illegible] द्वारका नगरी में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में एक सामुदानिक भिक्षा चर्या में भ्रमण करते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को आहार पानी नहीं मिलता है, जिससे उन्हीं कुलों में आहार-पानी के लिए उन्हें बार-बार आना पड़ता है ?

देवईए संका-समाधाणं—

देवकी की शंका का समाधान—

१२० तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी—

१२०. तत्पश्चात् उन अनगारों ने देवकी रानी से इस प्रकार कहा—

"नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव देवलोग-भूयाए समणा निग्गंथा उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, णो चेव णं ताइं चेव कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्त-पाणाए अणुपविसंति ।

"हे देवानुप्रिये ! कृष्ण वासुदेव की यावत् देवलोक सदृश इस द्वारका नगरी में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में एक सामुदानिक भिक्षा चर्या के लिए परिभ्रमण करते हुए श्रमण निर्ग्रन्थों को आहार-पानी नहीं मिलता है—ऐसी बात नहीं है। और न वे उन्हीं कुलों में दुबारा या तिबारा आहार-पानी के निमित्त प्रवेश करते हैं।

एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नगरे नागस्स गाहा-वइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरि-सया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकिय-वच्छा कुसुम-कुण्डलभद्दलया नलकूवर-समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं, मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया ।

हे देवानुप्रिये ! (फिर भी पुनः पुनः आने का कारण यह है कि) हम भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति के पुत्र और उसकी भार्या सुलसा के अंगजात समान आकृति वाले, समान रूप वाले और समान वय वाले, नील कमल, भैंसे के सींग के अन्दर के भाग अथवा अलसी के पुष्प के समान नील वर्ण वाले श्रीवत्स-अंकित वक्षस्थल वाले और फूलों के समान कोमल और कुण्डलों के समान घुंघराले बालों वाले, कुबेर-नलकूबर के समान इन छहों सहोदर भाइयों ने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण कर संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म मरण से भयभीत होकर मुण्डित हो गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण की है ।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइआ तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो, इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-माणा विहरित्तए ।

तत्पश्चात् हम लोगों ने जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना-नमस्कार करके यह इस प्रकार का अवग्रह ग्रहण कर लिया है कि हे भगवन ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर जीवन पर्यन्त के लिये निरन्तर षष्ठ-षष्ठ तप कर्म पूर्वक संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहते हैं ।

अहासुहं देवाणुप्पिया !

हे देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो—(भगवान ने उत्तर में कहा ।)

तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्ख-मणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइत्ता, तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्च-

तब से हम अर्हत अरिष्टनेमि से आज्ञा प्राप्त करके यावज्जीवन के लिये षष्ठ-षष्ठ भक्त की तपस्या करते हुए विचरते हैं । आज षष्ठ भक्त का पारणा होने से हमने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान ध्याया और तीसरे प्रहर में अर्हत अरिष्टनेमि से आज्ञा लेकर तीन सिंघाड़ों में द्वारा-

नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा।

तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे। अम्हे णं अण्णे-देवइं देविं एवं वदंति; वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।"

वती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हुए तुम्हारे घर में प्रवेश किया है।

इसलिये हे देवानुप्रिये ! जो पहले आये थे वे हम नहीं हैं। हम अन्य ही हैं—दूसरे ही हैं—'देवकी देवी को इस प्रकार कहा, कहकर जिस दिशा से आये थे उसी ओर लौट गये।'

देवईमणम्मि अइमुत्तकुमारवयणे संका—

१२१ तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए""संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अतिमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ—"तुमण्णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नलकूबर-समाणे नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति।" तं णं मिच्छा। इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ-भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि, वंदित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामीति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

देवकी के मन में अतिमुक्त कुमार के वचन में शंका—

१२१ तत्पश्चात उस देवकी को यह इस प्रकार का अध्यवसाय""संकल्प उत्पन्न हुआ कि "जब मैं छोटी थी, उस समय पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने मुझसे कहा था—'हे देवानुप्रिये ! तुम समान आकृति रूप रंग—यावत नलकूबर के समान आठ पुत्रों को जन्म दोगी, इस भारतवर्ष में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी। उक्त कथन मिथ्या सिद्ध हुआ। क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष ही दिख रहा है—भारतवर्ष में अन्य दूसरी माता ने भी इस प्रकार के पुत्रों को जन्म दिया है। इसलिये मैं अर्हंत अरिष्टनेमि के पास जाऊँ और वंदना करूँ, वंदना करके यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछूँ—इस प्रकार का विचार करती है, विचार करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह।" ते वि तहेव उवट्ठवेंति। जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ।

'हे देवानुप्रिये ! उत्तम धार्मिक रथ को जोतकर शीघ्र ही लाओ।' वे भी उसी प्रकार लाते हैं। देवनन्दा की तरह-यावत-पर्युपासना करती है।

अरिट्ठनेमिण सुलसाचरियकहणेण संका-समाधाणं—

अरिष्टनेमि द्वारा सुलसाचरित्र कथन करके शंका-समाधान—

१२२. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवइं देविं एवं वयासी—

"से नूणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झित्थिए""संकप्पे समुप्पण्णे—"एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ तं चेव जाव निग्गच्छित्ता मम अंतियं हव्वमागया।" से नूणं देवई ! अट्ठे समट्ठे ?

हंता अत्थि।

एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे जाव अपरिभूए।

तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था।

१२२. तत्पश्चात् अर्हत् अरिष्टनेमि ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवकी ! आज तुम्हें इन छह अनगारों को देखकर यह इस प्रकार का मानसिक विकल्प पैदा हुआ है कि पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने मुझसे बचपन में कहा था""इत्यादि, तदनुसार-यावत-निकलकर शीघ्र ही मेरे निकट आई हो।' हे देवकी ! मेरा यह कथन सत्य है ?

हाँ है—देवकी ने कहा—

हे देवानुप्रिये ! इसका समाधान यह है कि उस काल उस समय में भद्दिलपुर नगर में नाग नामक गाथापति रहता था—जो धन धान्य से पूर्ण एवं दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था। उस नाग गाथापति की सुलसा नामक भार्या थी।

१२३. तए णं सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव नेमित्तिएणं वागरिया—"एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ।"

१२३. वह सुलसा गाथा पत्नी जब बालिका थी तभी नैमित्तिकों ने इस प्रकार कहा था कि 'यह बालिका णिंदू (मृत बच्चों को जन्म देने वाली) होगी।

तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसिभत्तया यावि होत्था। हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करेत्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा चरइ वा।

तत्पश्चात् वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणैगमेषी देव की भक्त बन गई। उसने हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा बनाई, बनाकर प्रातःकाल में ही स्नानकर बलिकर्म कर, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त करके गीली साड़ी पहने हुए देवता के योग्य पुष्पार्चन करती, पुष्पार्चन करके घुटने झुकाकर प्रणाम करती और प्रणाम करने के बाद आहार—निहार विहार आदि क्रियाएँ करती थी।

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था।

तत्पश्चात् उस सुलसा गाथापत्नी की भक्ति, बहुमान और शुश्रूषा से हरिणैगमेषी देव आराधित-प्रसन्न-सिद्ध हो गया।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणिं, तुमं च 'दो वि समउउयाओ' करेइ।

तए णं तुब्भे दो वि समामेव गब्भे गिण्हह, समामेव गब्भे परिवहह, समामेव दारए पयायह।

तत्पश्चात् वह हरिणैगमेषी देव सुलसा गाथा पत्नी की अनुकम्पा के लिये सुलसा गाथा पत्नी और तुमको समकाल में ही ऋतुमती करता। जिससे तुम दोनों समान काल में गर्भधारण करती, साथ ही गर्भ का पालन करती और साथ ही तुम दोनों एक समय में बालक को जन्म देती।

तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ।

तब वह सुलसा गाथा पत्नी मृत बालकों को जन्म देती।

१२४. तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए विणिहाय-मावण्णे दारए करयलसंपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ। तं समयं च णं तुमं पि नवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि। जे वि य णं देवाणुप्पिए! तव पुत्ता ते वि य तव अंतिआओ करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ।

तं तव चेव णं देवई! एए पुत्ता। णो चेव सुलसाए गाहावइणीए।

१२४. तत्पश्चात् वह हरिणैगमेषी देव सुलसा गाथा पत्नी की अनुकम्पा के लिये मृत बालक को हथेलियों में लेता, लेकर तुम्हारे पास ले आता। उसी समय तुम भी नौ मास बीतने पर सुकुमाल बालक को जन्म देती, हे देवानुप्रिये! जो भी तुम्हारे पुत्र होता उसको तुम्हारे पास से करतल संपुट से ग्रहण करता, ग्रहण करके सुलसा गाथा पत्नी के समीप रख देता।

इसलिये हे देवकी! ये सभी तुम्हारे पुत्र हैं। किन्तु सुलसा गाथापत्नी के नहीं है।

छ सहोदरा अणगारा देवईए एव पुत्त त्ति णच्चा देवईए हरिसो—

छह सहोदर अनगार देवकी के ही पुत्र हैं—यह जानकर देवकी को हर्ष—

१२५. तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परम-सोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता आगयपण्हया पप्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तया दरियवलय-बाहा धाराहय-कलंबपुप्फगं विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ,

१२५. तत्पश्चात् वह देवकी देवी अर्हंत् अरिष्टनेमि से इस बात को सुन और मन में धारण कर हृष्ट तुष्ट, आनंदित प्रीतिमना, परम सौमनस, और हर्षवश विकसित हृदयवाली होकर अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके जहाँ वे छहों अनगार थे, वहाँ आई, आकर उन छहों अनगारों को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके स्तनों से दूध प्रस्रवण करने वाली हर्षाश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रवाली हो गई, पुत्र प्रेम के अतिरेक से उसकी कंचुकी के बंधन ढीले हो गये और भुजाओं के आभूषण तंग हो गये एवं मेघधारा के बरसने से विकसित कदम्ब पुष्प की तरह रोमांचित होती हुई वह उन छहों अनगारों को अपलक दृष्टि से देखती-देखती बहुत समय निरखती रही, निरखने के बाद वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ अर्हंत् अरिष्टनेमि विराज रहे थे, वहाँ आई, आकर

वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ ।

अर्हंत अरिष्टनेमि की तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके, उसी धार्मिक यान प्रवर पर वैठी, वैठकर जहाँ द्वारावती नगरी थी, वहाँ आई, आकर द्वारावती नगरी में अनुप्रविष्ट हुई, अनुप्रविष्ट होकर जहाँ अपना भवन था, जहाँ वाह्य सभा-स्थान था, वहाँ आकर उत्तम धार्मिक यान से नीचे उतरी, उतरकर जहाँ अपना स्नानगृह था, जहाँ अपनी शैया थी, वहाँ आई, वहाँ आकर अपनी शैया पर वैठ गई ।

देवईमणम्मि पुत्तस्स लालनपालनाभिलासो चिंता य—

१२६. तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए.....संकप्पे समुप्पण्णे—

"एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकूवर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुब्भूए । एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ । तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जासिं मण्णे णियग-कुच्छि-संभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुर-समुल्लावयाइं मम्मण-पजंपियाइं थण-मूला-कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए । अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता-ओहयमणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ ।"

देवकी के मन में पुत्र का लालन-पालनाभिलाप और चिन्ता—

१२६. तत्पश्चात् उस देवकीदेवी को यह मानसिक.......संकल्प उत्पन्न हुआ—

मैंने समान आकृति, रूप-रंग-यावत्-नलकूवर के समान सातपुत्रों को जन्म दिया, किन्तु एक के भी वाल्यत्व का मैंने अनुभव नहीं किया है—आनन्द नहीं लिया है । यह कृष्ण वासुदेव भी छह छह महीने के वाद मेरे पास पाद वंदना के लिये आता है । इसलिये मैं मानती हूँ कि वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी है, वे मातायें कृतपुण्या हैं, वे मातायें कृतलक्षणा है जिन्हें अपनी कुक्षि से पैदा हुए वालक स्तन-पान के लिए इच्छुक होकर अपनी मधुर तोतली वोली से आकर्षित करते और मम्मण रूप अव्यक्त शब्द ध्वनी से गुनगुनाते हुए स्तन मूल से लेकर कांख तक के भाग में अभिसरण करते रहते हैं और फिर वे मुग्ध वालक अपनी माँ के द्वारा कमल सदृश कोमल हाथों से उठाये जाकर गोदी में वैठाये जाने पर दूध पीते हुए अपनी माँ से तोतले शब्दों में वातें करते हैं और मीठी-मीठी वोली वोलते हैं । लेकिन मैं अधन्या हूँ, अपुण्या हूँ, मैंने सुकृत नहीं किया जिससे मैं एक वार भी ऐसा अवसर प्राप्त नहीं कर सकी—अर्थात् एक वार भी अपनी संतान की वाल-क्रीड़ा के आनन्द का अनुभव नही कर सकी ।' इस प्रकार वह देवकी भग्नमनोरथ वाली होकर हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्त्तध्यान में डूव गई ।

कण्हस्स चिंताकारणपुच्छा—

१२७. इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता देवइं देविं एवं वयासी—

"अण्णया णं अम्मो ! तुब्भे ममं पासेत्ता हट्ठतुट्ठा जाव भवह, किण्णं अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह ?"

कृष्ण द्वारा चिन्ता-कारण पृच्छा—

१२७. इसी समय कृष्ण वासुदेव स्नान कर,वलिकर्म, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित करके वस्त्राभूषणों से विभूषित हो, देवकी देवी के पाद-वंदन करने के लिये आये—शीघ्र ही उपस्थित हुए ।

तव उन कृष्ण वासुदेव ने चिन्तित देवकी देवी को देखा, देखकर देवकी देवी के चरणों में वंदन किया और वंदन करके वे देवकी देवी से इस प्रकार वोले—

'हे माता ! जव कभी मैं आता तो तुम मुझे देखकर हृष्ट-तुष्ट आनन्दित हो उठती थी, लेकिन आज क्या कारण है कि संकल्प विकल्पों में डूवी हुई चिन्ताग्रस्त दिखलाई देती हो ।'

देवईए चिंताकारण-निवेदणं—

१२८. तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव नलकूबर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुब्भूए। तुमं पि य णं पुत्ता ! छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

देवकी का चिन्ता-कारण निवेदन—

१२८. तत्पश्चात् देवकी देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

"हे पुत्र ! कारण यह है कि मैंने आकृति, वय और कान्ति में सदृश-यावत् नल कूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया, किन्तु एक की भी बाल क्रीड़ा के आनन्द का मैंने अनुभव नहीं किया है। हे पुत्र ! तुम भी मेरे पास चरण वंदन करने के लिए छह-छह महीनों में आते हो। इसलिए मैं मानती हूं कि वे मातायें धन्य हैं"-यावत्-उदासीन हो आर्त्तध्यान कर रही हूं।

कण्हस्स देवाराहण देवेण य कणीयसभायरभवणकहणं—

१२९. तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी—

मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह। अहण्णं तहा घत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं समासासेइ समासासेत्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हई पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी हरिणेगमेसिं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।

कृष्ण का देवाराधन और देवद्वारा लघु भ्राता होने का कथन—

१२९. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—

हे माता ! तुम अपने मनोरथ के पूर्ण न होने के कारण इस प्रकार आर्त्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरा सहोदर एक छोटा भाई हो"—इस प्रकार कहकर उन्होंने देवकी देवी को इष्ट-यावत्-वचनों द्वारा धीरज बँधाया। उसके बाद वे वहां से निकले, निकलकर जहां पौषधशाला थी, वहां आये, वहां आकर पौषधशाला को साफ किया, उच्चार-प्रस्रवण भूमि की पडिलेहना की, दर्भासन बिछाया, बिछाकर उस पर बैठे, बैठकर अष्टम भक्त को स्वीकार किया, स्वीकार करके पौषधशाला में पौषधव्रती की तरह ब्रह्मचर्यपूर्वक हरिणैगमेषी देव की आराधना करने लगे।

१३०. तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे हरिणेगमेसिस्स देवस्स आसणं चलइ जाव अहं "इहं हव्वमागए संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलयामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हियइच्छियं ?"

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसिं देवं अंतलिक्खपडिवण्णं पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।"

१३०. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव का अष्टम भक्त तप संपन्न होने पर हरिणैगमेषी देव का आसन चलायमान हुआ-यावत्-(वह बोला)—'मैं यहाँ शीघ्र उपस्थित हुआ हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय ! आदेश दीजिये कि मैं क्या करूँ ? क्या दूँ ? क्या अर्पित करूँ ? आपका अभिलाषित क्या है ?"

तत्पश्चात् वे कृष्ण वासुदेव उस हरिणैगमेषी देव को आकाश में खड़ा हुआ देखकर हृष्ट-तुष्ट हुए और पौषध को पूर्ण किया, पूर्ण करके दोनों हाथ-जोड़ और मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! मेरे एक सहोदर लघु भ्राता का जन्म हो यह मेरी इच्छा है।'

१३१. तए णं से हरिणेगमेसी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ

१३१. तब उस हरिणैगमेषी देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! देवलोक से एक देव आयुष्य पूर्ण होने पर च्यवित होकर तुम्हारे सहोदर कनीयस भ्राता के रूप में जन्म लेगा और वह बाल्यावस्था के बीतने पर विनय आदि गुणों से

अणगारियं पव्वइस्सइ"—

सम्पन्न होकर युवावस्था के प्राप्त होते ही अर्हंत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हो, गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करेगा।'

कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

उस हरिणैगमेषी देव ने कृष्ण वासुदेव से दुबारा-तिबारा भी पूर्वोक्त प्रकार से कहा और कहकर जिस दिशा में प्रगट हुआ था, उसी दिशा में वापस लौट गया।

कण्हेण देवईए आसासणं—

१३२. तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"होहिइ णं अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं आसासेइ, आसासेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।"

कृष्ण द्वारा देवकी को आश्वासन—

१३२. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव पौषधशाला से बाहर निकले, निकलकर, जहाँ देवकी देवी थीं, वहाँ आये, आकर उन्होंने देवकी देवी को चरण-वंदन किया, चरणों में नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे माता ! मेरे एक सहोदर कनीयस भ्राता (छोटा भाई) होगा, आप चिन्ता न करें," ऐसा कहकर इष्ट-यावत्-वचनों से देवकी देवी को आश्वासन दिया, आश्वासन देकर जिस ओर से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

गयसुकुमालस्स जम्मो—

१३३. तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा जाव गब्भं परिवहइ।

तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं जासुमणा रत्तबंधुजीवय-लक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवायर-समप्पभं सव्वणयणकंतं सुकुमालपाणिपायं जाव सुरूवं गयतालुसमाणं दारयं पयाया। जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारए गयतालु-समाणे, तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेंति—गयसुकु-मालो त्ति।

गजसुकुमाल का जन्म—

१३३. तत्पश्चात् किसी एक दिन देवकी देवी ने अपने शयन कक्ष में पुण्यशालियों के योग्य शैया पर सोते हुए-यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जागी-यावत्-गर्भ को धारण किया।

तत्पश्चात् नौ मास पूर्ण होने पर—बीतने पर देवकी देवी ने जपा पुष्प बंधूक-पुष्प, लाक्षारस, सरस पारिजात और उदय होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले और सब जनों के नयनों को सुख देने वाले, सुकुमाल हाथ पैर वाले—यावत्-सुन्दर गज के तालु के समान सुकोमल बालक को जन्म दिया। जिस प्रकार मेघकुमार के जन्म के समय उसके माता-पिता ने महोत्सव किया था, उसी प्रकार देवकी और वासुदेव ने जन्म महोत्सव किया था और उन्होंने विचार किया कि यह बालक हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकोमल है इसलिए इसका नाम गजसुकुमाल हो। ऐसा विचारकर माता पिता ने उस बालक का नाम गजसुकुमाल रखा।

सेसं जहा मेहे जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

गजसुकुमाल का बाल्यकाल से लेकर यौवन तक का वृत्तान्त मेघकुमार के समान जानना चाहिये-यावत्-वह भोग भोगने में समर्थ हो गया।

गयसुकुमालभारिया भविस्सइ त्ति सोमिलमाहणधूयाए कण्णंतेउर-पक्खेवो—

१३४. तत्थ णं बारवईए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ—अड्ढे—जाव—अपरिभूए रिउव्वेय—जाव—बंभण्णएसु य सत्थेसु सुपरि-निट्ठिए यावि होत्था।

गजसुकुमाल की भार्या होगी, अतः सोमिल ब्राह्मण-पुत्री का कन्यान्तःपुर में प्रक्षेप—

१३४. उसी द्वारावती नगरी में समृद्धिशाली-यावत्-अपराभव तथा ऋग्वेद-यावत्-ब्राह्मण शास्त्रों में पारंगत सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था।

तस्त सोमिल-माहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था— सूमालपाणिपाया–जाव–सुरूवा ।

तस्स णं सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था—सूमालपाणिपाया जाव सुरूवा, रूवेणं जोव्वणेणं लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था ।

तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव विभूसिया, बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरविंद-परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिंदूसएणं कोलमाणी चिट्ठइ ।

१३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे । परिसा निग्गया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए निग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य-जाव-विम्हिए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह । तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ ।"

तए णं कोडुम्बियपुरिसा तहेव पक्खिवंति ।

१३६. तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ ।

अरिट्ठनेमिणा धम्मदेसणा—

१३७. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा—

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहातो वेरमणं ।

उस सोमिल ब्राह्मण की अत्यन्त सुकुमार अंगों वाली-यावत्-सुन्दर सोमश्री नाम की पत्नी थी । उस सोमिल की पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नाम की कन्या थी— जो सुकुमार-यावत्-रूपवती थी तथा रूप, यौवन, लावण्य में उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर शोभा वाली थी ।

तत्पश्चात् किसी एक समय वह सोमा बालिका स्नान कर-यावत्-वस्त्राभूषणों से विभूषित हुई अनेक कुब्जादासियों-यावत्-महत्तर वृन्द से घिरी हुई अपने घर से निकली, निकल कर राजमार्ग पर आई, आकर राजमार्ग पर सोने की गेंद से खेलने लगी ।

१३५. उस काल, उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि का द्वारावती नगरी में पदार्पण हुआ । परिषद् (जनसमूह) निकली ।

तत्पश्चात कृष्णवासुदेव ने भगवान् के पधारने के वृत्तान्त को सुनकर स्नान किया-यावत-आभूषणों से विभूषित हो गजसुकुमाल कुमार के साथ श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर कोरंट पुष्प मालाओं युक्त छत्र और विजाते हुए श्रेष्ठ श्वेत चामरों से सुशोभित होकर अर्हंत अरिष्ट नेमि की वंदना के निमित्त द्वारावती नगरी के मध्य से निकलते हुए सोमा बालिका को देखा, देखकर सोमा बालिका के रूप, यौवन, और लावण्य से विस्मयान्वित हुए, यावत् उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और इस सोमाबालिका की याचना करो, तत्पश्चात् उस कन्या को अन्तःपुर में पहुंचा दो । यह कन्या गजसुकुमाल कुमार की भार्या होगी ।'

तत्पश्चात कौटुम्बिक पुरुष आज्ञानुसार कन्या की याचना करके उसे (कन्याओं के) अन्तःपुर में पहुंचा देते हैं ।

१३६. तत्पश्चात् वे कृष्ण वासुदेव द्वारावती नगरी के मध्य में से निकले, निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, जहाँ अर्हंत अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आये, आकर अर्हंत अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके अर्हंत अरिष्टनेमि से न अति दूर और न अति निकट पहुँचकर शुश्रूषा एवं नमस्कार करते हुए सविनय नत मस्तक हो पर्युपासना करने लगे ।

अरिष्टनेमि द्वारा धर्म-देशना—

१३७. तत्पश्चात् अर्हंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, गजसुकुमाल और उस विशाल परिषदा के लिये चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया । यथा—

सर्व प्राणातिपात विरमण, सर्वमृषावाद विरमण,
सर्व अदत्तादान विरमण, सर्व परिग्रह विरमण ।

कण्हे पडिगए।

उपदेश श्रवण कर कृष्ण वापस लौटे।

गयसुकुमालस्स पव्वज्जासंकप्पो—

१३८. तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं,⋯⋯से जहेयं तुब्भे वयह।

नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तओ पच्छा मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

गजसुकुमाल का प्रव्रज्या संकल्प—

१३८. तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर अर्हत् अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना और नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ⋯⋯वह वैसा ही है जैसा आप निरूपण करते हैं।

यहाँ पर विशेष यह है कि—हे देवानुप्रिय ! माता-पिता से आज्ञा लूँगा। तत्पश्चात् मुण्डित हो गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा।'

हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो किन्तु प्रमाद मत करो—भगवान् ने कहा।

गयसुकुमालस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

१३९. तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव हत्थिरयणं तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधवरगए महया भड-चडगर-पहकरेणं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव सए अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छए, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।"

गजसुकुमाल का माता-पिता से निवेदन—

१३९. तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ हस्तिरत्न था, वहाँ आये, आकर श्रेष्ठ हस्तिस्कन्ध पर बैठ सुभटों के समूह के साथ द्वारावती नगरी के मध्य में से होते हुए जहां अपना भवन था, वहाँ आये, आकर हाथी से नीचे उतरे, उतरकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आये, आकर माता-पिता के चरणों में वंदना की, वंदना करके इस प्रकार कहा—

'हे माता पिता ! मैंने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण किया है और मैं उस धर्म का इच्छुक हूँ, विशेष इच्छुक हूँ; मुझे वह रुचिकर है।'

१४०. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

"धन्नोसि तुमं जाया ! संपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्थोसि तुमं जाया ! कयलक्खणोसि तुमं जाया। जण्णं तुमे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।"

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

१४०. तब गजसुकुमाल के माता-पिता ने उससे कहा—

'हे लाल ; तुम धन्य हो ! पुण्यशाली हो, कृतार्थ हो- कृत लक्षण हो, कि तुमने अर्हत अरिष्टनेमि से धर्म का श्रवण किया और वह धर्म तुम्हें, इष्ट, विशेष इष्ट एवं रुचिकर प्रतीत हुआ है।' तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने पुनः दूसरी बार माता-पिता से इस प्रकार कहा—

'हे माता पिता ! मैंने अर्हत अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म मुझे इष्ट, विशेष इष्ट एवं रुचिकर प्रतीत हुआ है। अतएव हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर मैं अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर आनगारिक दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं।'

देवइए सोगाकुलदसा—

१४१. तए णं सा देवई देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी⋯⋯सव्वंगेहिं

देवकी की शोकाकुल दशा—

१४१. तत्पश्चात् वह देवकी देवी उन अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय अमनोज्ञ, अमनाम, अश्रुतपूर्व कठोर वचनों को सुनकर एवं बोध समझकर इस एवं इस प्रकार के पुत्र-वियोग रूप महान् मान-

धस त्ति पडिया ।

सिक दुःख से दुखी होकर पछाड़ खाकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी ।

देवईए गयसुकुमालस्स य परिसंवादो—

१४२. तए णं सा देवई देवी····विलवमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे 'पुत्ते' इट्ठे ··· नो खलु जाया ! अम्हे, इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्मेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।"

देवकी और गजसुकुमाल का परिसंवाद—

१४२. तत्पश्चात वह देवकी देवी····विलपती हुई गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार बोली—

'हे लाल ! तुम हमारे इकलौते बेटे हो, इष्ट हो, हे पुत्र ! एक क्षण के लिये भी हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिये हे पुत्र ! तब तक तुम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगो जब तक हम जीवित हैं। उसके बाद जब हम काल को प्राप्त हो जायें और तुम भी प्रौढ़ हो जाओ, वंश बेल की भली-भांति वृद्धि हो जाये, लौकिक कार्यों की अपेक्षा न रहे अर्थात् अपने गार्हस्थिक दायित्वों से निवृत्त हो जाओ तब अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हो, गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना ।'

१४३. तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—"तुमं सि णं जाया ! अहं 'एगे पुत्ते' इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदिजणणे उंवरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो । तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।"

१४३. तब माता पिता की इस बात को सुनकर गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता ! आपने मुझसे जो कुछ कहा सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते बेटे हो, हमारे लिये इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थैर्य और आशा विश्वास के केन्द्र बिन्दु हो, प्रत्येक कार्य के लिये माने हुए, विशेष रूप में माने हुए और अनुमत हो, आभूषणों की पेटी के समान हो, रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न समान हो, जीवन की श्वासा हो, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाले हो, गूलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फि देखने की तो बात ही क्या है ? अर्थात् देखना तो और भी दुर्लभ है ? इसलिये हे पुत्र ! क्षण मात्र का भी वियोग हमारे लिये असह्य है । अतः हे पुत्र ! तब तक मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगो जब तक हम जीवित हैं । उसके बाद हमारे कालगत हो जाने पर और स्वयं भी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर लो, कुल परंपरा की बेल वृद्धिगत हो जाये, अपने गार्हस्थिक दायित्वों से निवृत हो चुको तब अर्हत् अरिष्टनेमि भगवन्त के पास मुण्डित हो गृहवास त्याग आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना ।'

एवं खलु अम्मयाओ ! 'माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुय समाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे ।'

लेकिन हे माता पिता ! यह मनुष्यभव अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, विनश्वर आपदाओं से व्याप्त है, विद्युत की चमक के समान चंचल है, जल के बुदबुदे के समान अनित्य है, कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान, संध्या की लालिमा और स्वप्नदर्शन के सदृश क्षणस्थायी हैं, सड़न, गलन और विध्वंसनशील है, पहले या बाद में अवश्य ही त्यागने योग्य है ।'

से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए

हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि पहले कौन और बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा

समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

लेकर अरिष्टनेमि अर्हत के पास मुण्डित होकर और गृह त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ।

१४४. तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संखसिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल-वंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

१४४. गजसुकुमाल के उक्त कथन को सुनने के बाद माता-पिता ने गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार कहा—

'हे लाल ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह की पीढ़ियों से चली आ रही यह बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र, मणि, मोती, शंख शिला प्रवाल, माणिक आदि रूप सारभूत धन सम्पत्ति इतनी अधिक विद्यमान है कि जिसे सात पीढ़ियों तक इच्छानुसार दिया जाय, भोगा जाये और बाँटा जाये तो भी पूरी होने वाली नहीं है। इसलिये हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धि सत्कार समुन्नति का अनुभोग करो और उसके बाद सर्व सुखानुभोगी होकर अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुंडित हो कर गृहस्थावस्था का त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना।'

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—"इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

माता-पिता की बात को सुनने के पश्चात् इस गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता पिता ! आपने मुझसे जो यह कहा कि—'हे पुत्र ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह की परम्परा से चली आ रही यह बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण कांस्य, वस्त्र, मणि, मोती, शंख, मूंगा, माणिक आदि रूप सारभूत धन संपत्ति इच्छानुसार देने, भोगने और बांटने पर भी सात पीढ़ी तक समाप्त होने वाली नहीं है। इसलिये हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल समृद्धि सत्कार सम्मान का अनुभोग करो। उसके बाद जब सब प्रकार के भोगों का भोग कर चुको अर्थात् कोई भी आकांक्षा अभिलाषा वांछा शेष न रहे तब अर्हत अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुण्डित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या धारण करना—'सो ठीक है।'

एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गि-साहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गि-सामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

लेकिन हे माता-पिता ! यह हिरण्य आदि सारभूत धन संपत्ति अग्नि साध्य, चोर साध्य, राज्यसाध्य, दाय साध्य, मृत्यु साध्य अर्थात् इस धन संपत्ति को अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकते हैं, राजा अपहरण कर सकता है, स्वजन सम्बन्धी बांट सकते हैं, और मृत्यु आने पर यहीं रह जाने वाली है तथा सड़न पतन एवं विध्वंसन स्वभाव वाली है, पहले या बाद में अवश्य ही नष्ट होने वाली है तथा यह कौन जानता है कि पहले कौन जायेगा और बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर गृहत्यागकर अनगार प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।

१४५. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएन्ति गयसुकुमालं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य

१४५. तत्पश्चात् माता-पिता, जब आख्यापना (सामान्य वाणी) प्रज्ञापना (विशेष वाणी) संज्ञापना (संबोधित करने वाली वाणी)

पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजमभउव्वेयकारियाहि पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एवं वयासी—

और विज्ञापना (अनुनय विनय भरी वाणी) द्वारा समझाने बुझाने संबोधन करने और अनुनय विनय करने पर भी गजसुकुमाल कुमार को विषयाभिमुखी करने में सफल नहीं हुए तो विषयों के प्रतिकूल और संयम के प्रति भय एवं उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना वाणी से इस प्रकार बोले—

"एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहि दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं ।

'हे लाल ! निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, सर्वोत्कृष्ट, अद्वितीय, परिपूर्ण, निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त कराने वाला, अत्यन्त शुद्ध, शल्यनाशक, सिद्धिमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्याणमार्ग, निर्वाण मार्ग और सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है, सर्प के समान लक्ष्य के प्रति निश्चल एकान्त दृष्टि वाला है, छुरे के समान एक धार वाला है, लोहे के जौ चबाने जैसा है, बालु के ग्रास जैसा निस्सार है, गंगा महानदी के प्रतिस्रोत धार में तैरने जैसा है, भुजाओं द्वारा महासमुद्र को पार करने जैसा है, तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा है, गले में वजन को लटकाने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है ।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

हे पुत्र ! श्रमण निर्ग्रन्थों को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत, स्थापित (साधु के निमित्त रखा हुआ) रचित (साधु के निमित्त पहले रखे हुए मोदक आदि को पुनः तैयार करके रखा हुआ) दुर्भिक्ष भक्त, कान्तार भक्त, वर्दलिका भक्त, ग्लान भक्त (रोगी के निरोग होने की कामना से साधु को दिया जाने वाला भोजन) मूल, कंद, फल, बीज, और हरी वनस्पति का भोजन लेना और खाना नहीं कल्पता हैं ।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए । भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।"

हे पुत्र ! तुम सुख में पलने के कारण सुख भोगने योग्य हो, दुख सहने योग्य नहीं हो, सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास सहन करने लायक नहीं हो और न वात, पित्त, श्लेष्म (कफ) के उद्रेक जनित रोगों और सन्निपात आदि विविध रोगातंकों को ऊँचे-नीचे इन्द्रिय प्रतिकूल वचनों व कार्यों को, बाईस परीषहों और उपसर्गों को अदीन होकर भली प्रकार से सहने के लायक हो। अतः हे पुत्र ! मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का भोगोपभोग करो और भुक्त भोगी होने के पश्चात् अर्हंत अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार-दीक्षा स्वीकार करना।

१४६. तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्माताओ ! जं णं तुब्भे मम इमं वयह—"एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहि दुत्तरे,

१४६. तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार ने माता-पिता की उक्त बात को सुनकर माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता-पिता ! आपने मुझसे जो कुछ कहा सो ठीक है कि 'हे पुत्र ! निर्ग्रंथ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, परिपूर्ण निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त कराने वाला सम्यक प्रकार से शुद्ध शल्यनाशक सिद्धिमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जरामार्ग, निर्वाण मार्ग, और सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है तथा सर्प के सदृश लक्ष्य के प्रति एकाग्र दृष्टि वाला, छुरे के समान एक धार वाला, लोहे

तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं। नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

के जौ चबाने जैसा, बालू के कवल जैसा नीरस, गंगा महानदी के प्रतिस्रोत में तैरने जैसा, भुजाओं से महासमुद्र पार करने जैसा, तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा, गले में भार को लटकाने जैसा और तलवार की धार पर चलने जैसा है। इसके साथ ही यह भी कहा है कि ! हे पुत्र ! श्रमण निर्ग्रन्थों को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीत-कृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्षभक्त, कांतारभक्त, वर्दलिकाभक्त, ग्लानभक्त, मूल, कन्द, फल, बीज हरी वनस्पति का खाना और लेना नहीं कल्पता है।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे। तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

हे पुत्र ! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुख भोगने लायक नहीं हो, और न सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, वात, पित्त, कफजन्य रोगों और सन्निपात आदि जैसे विकट रोगांतकों, ऊँचे, नीचे इन्द्रिय-विषयों व वचनों, बाईसपरीषहों, उपसर्गों को अदीन मना होकर सम्यक् प्रकार से सहन करने में समर्थ हो। अतएव हे पुत्र ! पहले मनुष्य सम्बन्धी भोगों का भोग करो और भोगों को भोगने के बाद अर्हत अरिष्टनेमि भगवान के पास मुंडित हो गृहस्थावस्था का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना।'

एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुचरे पायजणस्स, नो चेव णं धीरस्स। निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

लेकिन हे माता-पिता ! यह निर्ग्रंथ प्रवचन नपुंसकों, कायरों कापुरुषों, इस लोक सम्बन्धी विषय-सुखों की अभिलाषा करने वालों, परलोक में सुख की आकांक्षा रखने वालों, सामान्य जनों के लिये दुष्कर है लेकिन धीर वीर पुरुषों के लिये नहीं है, दृढ़ संकल्पी और अध्यवसाय करने वालों-पुरुषार्थियों को इसका पालन करने में कठिनाई क्या है ? इसलिये हे माता पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके अर्हत अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।

कण्हस्स गयसुकुमालं पइ रज्जगहणपत्थावो—

१४७. तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं आलिंगइ आलिंगित्ता उच्छंगे निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—

कृष्ण का गजसुकुमाल से राज्य ग्रहण प्रस्ताव—

१४७. तत्पश्चात् इस समाचार को पाकर (गजसुकुमाल के दीक्षित होने के समाचार को जानकर) कृष्णवासुदेव जहां गजसुकुमाल थे, वहां आये, आकर गजसुकुमाल का आलिंगन किया (हृदय से लगाया) आलिंगन करके गोद में बैठाया और गोद में बैठाकर इस प्रकार कहा—

'तुमं णं ममं' सहोदरे कणीयसे भाया। तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इआणिं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वाहि। अहण्णं तुमे बारवईए नयरीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि।

हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर कनिष्ठ भ्राता हो अतः अभी अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर गृहत्याग कर दीक्षा नहीं लो। मैं तुम्हारा द्वारावती नगरी में महान महोत्सव के साथ राज्याभिषेक करूंगा।

तए णं से गयसुकुमाले कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से गयसुकुमाले कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं एवं वयासी—

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कृष्ण वासुदेव की इस बात को सुनकर मौन रह गये। तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने कृष्ण वासुदेव और माता-पिता से दूसरी तीसरी बार इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामभोगा असुई वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुय-उस्सास-

हे देवानुप्रियो ! मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का आधार यह शरीर अशुचि का स्थान है, पित्त का स्थान है, कफ का स्थान है, शुक्र का स्थान है, शोणित का स्थान है, दुर्गंध

नीसासा दुरुय-मुत्तपुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजहणिज्जा ।

युक्त श्वासोच्छ्वास, मल, मूत्र, पीप आदि से परिपूर्ण है, मल, मूत्र, कफ, नाक मैल, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित का भंडार है, और अध्रुव अनित्य, अशाश्वत है, सड़ने, पड़ने और नष्ट होने रूप धर्मों से युक्त होने के कारण आगे पीछे अवश्य ही नष्ट होने वाला है।

से के णं जाणइ देवाणुप्पिया ! के पुव्विं गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

हे देवानुप्रिय ! कौन जानता है कि पहले कौन जायेगा और पीछे बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा लेकर अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के पास मुंडित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।

गयसुकुमालस्स एगदिवसरज्जं—

गजसुकुमाल का एकदिवस राज्य—

१४८. तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएइ बहुयाहिं विसयाणुलोमाहिं य विसयपडिकूलाहिं य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामाइं चेव गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए !

१४८. तत्पश्चात् जब कृष्ण वासुदेव और माता-पिता गजसुकुमाल को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत सी आख्यापना, प्रज्ञापना, संज्ञापना और विज्ञापना वाणी द्वारा समझाने बुझाने, सम्बोधन करने, विज्ञप्ति करने में सफल नहीं हुए तब मन मारकर लाचार होकर गजसुकुमाल से इस प्रकार बोले—

हे पुत्र ! हम एक दिन के लिये भी तुम्हारी राज्य श्री देखना चाहते हैं अर्थात् तुम एक दिन के लिये भी इस राज्य लक्ष्मी को स्वीकार करो।

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरं च अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तब गजसुकुमालकुमार कृष्ण वासुदेव और माता-पिता के इस अनुरोध का मान करते हुए मौन रह गये।

तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।"

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही गजसुकुमाल के राज्याभिषेक के लिये महान अर्थ वाली, महामूल्यवान एवं महान पुरुषों के योग्य सामग्री लेकर आओ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेंति ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष गजसुकुमाल कुमार के राज्याभिषेक के लिये महान अर्थ वाली, बहुमूल्य और महान पुरुषों के योग्य सामग्री लाकर उपस्थित करते हैं।

तए णं से कण्हे वासुदेवे गयसुकुमालं कुमारं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरस वत्तं मत्थए अर्जलिं कट्टु एवं वयासी—

"जय-जय नंदा ! जय-जय भद्दा ! जय-जय नंदा भद्दं ते, अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं भरहो इव मणुयाणं बारवईए नयरीए अण्णेसिं च बहूणं गामागर-नगर-खेड-कव्वड-दोणमुह-मडंब-पट्टण- आसम-निगम-संवाह-सण्णि-वेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव महान राज्याभिषेक द्वारा गजसुकुमाल कुमार का अभिषेक करते हैं, अभिषेक करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

'हे आनन्दकर ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय-जयकार हो, हे नंद ! एवं कल्याण कर ! तुम्हारी जय-जय हो, न जीते हुए को जीतो-विजय प्राप्त करो, जीते हुओं का पालन करो, अथवा कुलाचार का पालन करो, विजय के बीच तुम्हारा आवास-निवास हो, देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, तारामंडल में चन्द्र के समान, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान द्वारावती नगरी और अनेक दूसरे ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्वट, द्रोणमुख, मंडव, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेशों, आदि का आधिपत्य-प्रमुखत्व,

ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय-जय-सद्दं पउंजति ।

स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व आज्ञा, ईश्वरत्व और सेनापतित्व करते हुए, पालन करते हुए जोर-जोर से बजाये जा रहे नृत्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन मृदंग, ढोल, नगाड़े आदि के कोलाहल-घोषों पूर्वक विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए विचरण करो, ऐसा कह कर जय-जयकार किया ।

तए णं से गयसुकुमाले राया जाए जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात गजसुकुमाल राजा हो गये-यावत-राज्य शासन करते हुए विचरते हैं ।

तए णं तं गयसुकुमालं रायं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य एवं वयासी—

उसके बाद कृष्ण वासुदेव और माता-पिता ने उन गजसुकुमाल राजा से इस प्रकार कहा—

भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते हिए-इच्छिय सामत्थे ?"

हे लाल ! बताओ कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे इष्ट प्रिय जनों को क्या भेंट दें ? और तुम्हारी हार्दिक आकांक्षा-इच्छा क्या है ?

गयसुकुमालस्स पव्वज्जा—

गजसुकुमाल की प्रव्रज्या—

१४९. तए णं से गयसुकुमाले राया कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य एवं वयासी—

१४९. तत्पश्चात गजसुकुमाल राजा ने कृष्ण वासुदेव और माता-पिता से यह कहा—

इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च आणियं कासवियं च सद्दावियं । निक्खमणं जहा महब्बलस्स ।

हे देवानुप्रिय ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगाना और काश्यप (नाई) को बुलवाना चाहता हूँ । महाबल के समान दीक्षा के लिये अभिनिष्क्रमण किया ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए इमं एयारुवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिवज्जइ—तमाणाए तह गच्छई तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमइ ।

तत्पश्चात गजसुकुमाल कुमार ने अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु से यह इस प्रकार का धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया 'भगवान की आज्ञानुरूप गमन करते, खड़े होते, बैठते, उठते, आहार करते बोलते और अप्रमत्त होकर सावधानी पूर्वक प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों की यतना करने के लिये संयम साधना करने लगे ।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जाए—इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार अनगार हो गये—ईर्यासमिति आदि से युक्त-यावत-गुप्त ब्रह्मचारी हो गये ।

तए णं से गयसुकुमाले जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे गजसुकुमाल जिस दिन प्रव्रजित हुए उसी दिन के चौथे प्रहर में जहां अर्हत् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहां आये आकर अर्हत अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।"

हे भदन्त ! आपकी आज्ञा लेकर महाकाल श्मशान में एक-रात्रि की महाप्रतिमा धारण कर विचरना चाहता हूँ ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसा [illegible] भगवान ने कहा ।

गजसुकुमालस्स महापडिमोवसंपज्जण—

१५०. तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं वग्घारियपाणी अणिमिसनयणे सुक्कपोग्गल-निरुद्धदिट्ठी दो वि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

गजसुकुमाल द्वारा महाप्रतिमा-उपसंपादन-धारण—

१५०. तत्पश्चात उन गजसुकुमाल अनगार ने अर्हत अरिष्टनेमि से आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके अर्हत अरिष्टनेमि के पास से और सहस्राम्रवन से निकले, निकलकर जहाँ महाकाल श्मशान था, वहाँ आये, आकर प्रासुकभूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करने के बाद उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके काया को कुछ नमाकर, भुजाओं को लम्बा लटका कर और दोनों पैरों को कुछ सिकोड़कर अपलक नेत्रों से शुष्क पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित करके एकरात्रि की महाप्रतिमा को स्वीकार करके ध्यान मग्न हो गये ।

सोमिल-कय-उवसग्गो—

१५१. इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए । समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थियपत्थिए, दुरंतपंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्तिपरिवज्जिए जेणं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहेत्ता मुण्डे जाव पव्वइ । तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए—

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चियाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीऐ तत्थे तसिऐ उविग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

सोमिल-कृत उपसर्ग—

१५१. इसी समय वह सोमिल ब्राह्मण समिधा आदि सामग्री लाने के लिये द्वारावती नगरी से बाहर गया हुआ था । उसने समिधा, दर्भ, कुश और पत्तों को लिया, लेकर वहाँ से वापस लौटा, तब निर्जन-मनुष्यों आवागमन से रहित संध्या काल के समय महाकाल श्मशान के समीप से गुजरते हुए उसने गजसुकुमाल अनगार को देखा, देखकर उसके हृदय में वैर-भाव जागृत हुआ और वैरभाव के कारण क्रोधित, रुष्ट कुपित और चंड रूप होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए इस प्रकार बोला—

अरे ! यह तो वही अप्रार्थित-प्रार्थित-अकालमरण का इच्छुक, दुरंत पंत लक्षण, अभागा, चातुर्दशिक, श्री ह्री, धृति, कीर्तिविहीन गजसुकुमाल कुमार है । जो मेरी पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा निर्दोष और नवयौवना सोमालिका को छोड़कर मुंडित-यावत-प्रव्रजित हो गया है । इसलिये मुझे उचित है कि इस गजसुकुमाल कुमार से वैर का बदला लूँ ।

ऐसा विचार किया, विचार करके चारों दिशाओं की प्रतिलेखना की अर्थात् चारों ओर देखा कि कोई आ तो नहीं रहा है, देखकर गीली मिट्टी ली, लेकर जहाँ गजसुकुमाल अनगार थे, वहाँ आया, आकर गजसुकुमाल कुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बांधी, बाँधकर जलती हुई चिता से फूले हुए पलाश पुष्प जैसे लाल-लाल खैर की लकड़ी के अंगारों को किसी फूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों में लिया, लेकर उन्हें गजसुकुमाल कुमार अनगार के मस्तक पर रखा, रखने के बाद, मुझे कोई देख न ले इस डर से भयभीत; त्रसित और उद्विग्न होता हुआ-शीघ्र ही वहाँ से चल दिया और जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया ।

गयसुकुमालस्स सिद्धी—

१५२. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया—उज्जला-जाव-दुरहियासा ।

गजसुकुमाल की सिद्धि—

१५२. तत्पश्चात उन गजसुकुमाल अनगार के शरीर में अत्यन्त दारुण दुखदायक-यावत-असह्य महावेदना उत्पन्न हुई ।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेइ ।

तब वे गजसुकुमालकुमार अनगार सोमिल ब्राह्मण के प्रति मन में लेशमात्र भी द्वेष भाव न रखते हुए उस जाज्वल्यमान-यावत-असह्य महावेदना को सहन करने लगे ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्यज्झवसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे-जाव-समुप्पण्णे । तओ पच्छा सिद्धे सव्व-दुक्खप्पहीणे ।

तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार ने उस दुःख रूप जाज्वल्यमान यावत-असह्य महावेदना को वीतराग भाव से सहन करते हुए शुभपरिणामों और प्रशस्त अध्यवसाय एवं तदावरणीय कर्मों के क्षय होने से कर्मरज के विनाशक निवारक अपूर्वकरण में प्रवेश किया, जिससे उन्हें अनन्त, अनुत्तर यावत-सर्वोत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए। उसके बाद सिद्ध पद को प्राप्त हुए-यावत सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

तत्थ णं 'अहासंनिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहिए' त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए; चेलुक्खेवे कए; दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्या ।

उस समय वहाँ समीप में रहने वाले देवों ने 'इन्होंने सम्यक् प्रकार से आराधना की है' ऐसा विचार कर दिव्य सुगंधित जल की वर्षा की, पंचरंगे फूलों को उछाल-उछाल कर सर्वत्र बिखेर दिया, दिव्यवस्त्रों की वर्षा की और दिव्य गीतों और वाद्यों के निनाद से आकाश को गुंजा दिया ।

कण्हेण वुड्ढस्स साहिज्जकरणं—

कृष्णद्वारा वृद्ध का साहाय्यकरण—

१५३. तए णं कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड-चडगर-पहकर-वंद-परिक्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

१५३. तत्पश्चात रात्रि के बीतने के बाद सूर्योदय-यावत-सहस्र-रश्मि दिनकर सूर्य के जाज्वल्यमान तेज के साथ उदित होने पर स्नान करके-यावत-आभूषणों से अलंकृत हो, श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारण करते हुए तथा विजाते हुए श्वेत उत्तम चामरों से युक्त होकर कृष्ण वासुदेव महान् सुभटों के समूह के साथ द्वारावती नगरी के मध्य में से होते हुए जहाँ अर्हन् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ जाने के लिये उद्यत हुए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं—जुण्णं जरा जज्जरिय-देहं आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ ।

तब द्वारावती नगरी के बीचों बीच से जाते हुए उन कृष्ण वासुदेव ने बाहर सड़क पर ईंटों की विशाल राशि में से एक-एक ईंट उठाकर अपने घर के अन्दर रखते हुए एक जीर्ण वृद्धावस्था के कारण जर्जर शरीर वाले दुःखी, भूखे प्यासे, दुर्बल, थके और रोगी पुरुष को देखा—

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ ।

तत्पश्चात उन वृद्ध पुरुष पर अनुकम्पा करके कृष्ण वासुदेव ने हाथी के ऊपर बैठे-बैठे ही एक ईंट भी ओर लेकर बाहर सड़क से उठाकर घर के अंदर रख दिया ।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

तब कृष्ण वासुदेव द्वारा एक ईंट को लेकर घर में रखा हुआ देखकर साथ में आये हुए अनेक पुरुषों ने भी एक-एक ईंट उठाकर उस विशाल ईंटों की राशि को बाहर सड़क से घर के अन्दर पहुँचा दिया ।

कण्हस्स गयसुकुमाल-दंसणाभिलासा—

कृष्ण की गजसुकुमाल-दर्शनाभिलाषा

१५४. तए णं कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए,

१५४. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारवती नगरी के मध्य में से निकले, निकलकर जहाँ [illegible]

उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

थे वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँचकर अर्हत अरिष्टनेमि को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करने के बाद गजसुकुमाल अनगार को न देखकर पुनः अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया और वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले —

"कहि णं भंते ! से ममं सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे 'जं णं' अहं वंदामि नमंसामि ?"

'हे भदन्त ! मेरे सहोदर कनिष्ट भ्राता गजसुकुमाल अनगार कहाँ है ? मैं उनको वंदना नमस्कार करना चाहता हूं।

अरिट्ठनेमिणा गयसुकुमालस्स सिद्धीकहणं—

अरिष्टनेमि द्वारा गजसुकुमाल का सिद्धि कथन—

१५५. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

१५५. तत्पश्चात अर्हत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे।

हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने अपना अर्थ साध लिया है।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—कहण्णं भंते ! गयसूमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?

तब कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछा-हे भदन्त ! गजसुकुमाल अनगार ने अपना अर्थ किस प्रकार से सिद्ध कर लिया है ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

तब अर्हत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं ममं कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महा-कालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उपसंपज्जित्ताणं विहरित्तए जाव एगराइयं महापडिमं उपसंपज्जित्ताणं विहरइ।

हे कृष्ण ! कल दीक्षा लेने के बाद गजसुकुमाल अनगार ने दिन के चौथे प्रहर में मुझे वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—हे भगवन ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके महाकाल श्मशान में एक रात्रिक महाप्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ—यावत एकरात्रिक महाप्रतिमा धारण करके विचरने लगे अर्थात् महाप्रतिमा धारण कर ध्यान मग्न हो गये।

तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरिंगाले कहल्लेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भए तामेव दिसं पडिगए।

तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार को एक पुरुष ने ध्यानस्थ देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो गजसुकुमाल अनगार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधी, पाल बांधकर जलती हुई चिता में से फूटे हुए मिट्टी के वर्तन में फूले हुए पलाश पुष्पों के समान लाल खैर की लकड़ी के अंगारे लिये, लेकर गजसुकुमाल अनगार के मस्तक पर डाले, डालकर भयभीत हो, उद्विग्नता के कारण भयाक्रांत हो वहाँ से शीघ्र ही चल दिया, चलकर जिस दिशा से आया था उसी ओर लौट गया।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूआ—उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुर-हियासा।

मस्तक पर अंगारों को डालने से गजसुकुमाल अनगार के शरीर में बहुत ही तीव्र, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चंड, असह्य, दुःख रूप वेदना हुई।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे तस्स पुरिसस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेइ।

तब भी गजसुकुमालकुमार के (अनगार के) मन में उस पुरुष के प्रति थोड़ा सा भी द्वेष भाव पैदा नहीं हुआ और जाज्वल्यमान बहुत ही तीव्र-यावत-असह्य वेदना को सहन किया।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झ-वसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं

तत्पश्चात उन गजसुकुमाल अनगार को उस जाज्वल्यमान-यावत असह्य वेदना को सहन करते हुए भी शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों और तदावरणीय कर्मों के क्षय और कर्म रज को

अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । तओ पच्छा सिद्धे । तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ।

विनष्ट करने वाले अपूर्वकरण रूप परिणामों के कारण अनन्त अनुत्तर, निराबाध, निरावरण, कृत्स्न-संपूर्ण-सकल परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गये। उसके बाद सिद्धि को प्राप्त किया। इसलिये हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने अपना अभिलषित-इच्छित आत्मार्थ सिद्ध कर लिया है - ऐसा मैंने कहा है।

उवसग्गसवणेण कण्हस्स कोहो—

१५६. तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—

"केस णं भंते ! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ ?

उपसर्ग सुनकर कृष्ण को क्रोध—

१५६. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अर्हत अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछा—

हे भगवन् ! वह कौन अप्रार्थित प्रार्थित-मृत्यु को चाहने वाला, दुरन्त-प्रान्त लक्षण वाला हीन पुण्य चातुर्दशिक श्री ह्री, धृति, कीर्ति से विहीन पुरुष व्यक्ति है, जिसने मेरे सहोदर लघु भ्राता गजसुकुमाल अनगार को अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया अथवा अकाल में ही प्राण हरण कर लिये ?

उवसग्गकारणेण साहिज्जमेव दिण्णं ति कोहसमण—

१५७. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि । एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ।

कहं णं भंते ? तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एगं पुरिसं जुण्णं जराजज्जरिय-देहं आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पाससि ।

तए णं तुमं तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हसि, गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेससि । तए णं तुमे एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

जहा णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे, एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे ।

उपसर्ग करके सहायता ही दी है, इस प्रकार क्रोधशमन—

१५७. तत्पश्चात अर्हत अरिष्टनेमि ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर क्रोध मत करो। क्योंकि उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को सहायता दी है।

हे भगवन् ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल को सहायता दी है ? ऐसा आप कैसे कहते हैं ?

तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! वह इस प्रकार कि जैसे तुमने मेरे पाद-वंदन के लिये आते हुए द्वारावती नगरी में एक वृद्ध जरा से जर्जरित शरीर वाले, रोगी, भूखे-प्यासे, दुर्बल, क्लान्त पुरुष को विशाल ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर बाहर सड़क से घर के अन्दर डालते हुए देखा था।

तब तुमने उस पुरुष की अनुकम्पा से हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई थी और उठाकर बाहर सड़क से घर के अन्दर रख दी थी जिससे तुम्हें एक ईंट लेकर घर में रखते हुए देखकर साथ के सैकड़ों अनेकों पुरुषों ने उस विशाल ईंटों की राशि को बाहर सड़क से घर के अन्दर रख दिया था।

इसलिये हे कृष्ण ! जैसे तुमने उस पुरुष की सहायता की इसी प्रकार हे कृष्ण ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को भी उनके लाखों भवों के संचित कर्मों की उदीरणा करके बहुत कर्मों की निर्जरा करने में सहायता दी है।

उवसग्गकारस्स परिण्णाणं कण्हस्स—

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—

कृष्ण के द्वारा उपसर्गकर्ता की जिज्ञासा—

तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछा—

"से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ?"

१५८. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी --

"जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणिज्जासि 'एस णं से पुरिसे'।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

'हे भदन्त ! उस पुरुष को मैं किस प्रकार जान सकूंगा ?"

१५८. तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! द्वारावती नगरी में प्रवेश करते हुए तुम्हें देखकर खड़े-खड़े ही आयु तथा स्थिति क्षय से ही जो वहीं मरण को प्राप्त हो जायेगा तभी तुम जान सकोगे कि 'यही वह पुरुष है जिसने गजसुकुमाल अनगार के प्राण हरण किये हैं।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके जहां आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहां आये, आकर हाथी पर बैठे, बैठकर जहां द्वारावती नगरी है जहां अपना भवन है, उसी ओर चलने के लिये तत्पर हुए।

सोमिलस्स अकालमच्चू—

१५९. तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिऐ-जाव-संकप्पे समुप्पण्णे—"एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए निग्गए। तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ" त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिऐ उव्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमागए।

सोमिल की अकाल मृत्यु—

१५९. तत्पश्चात् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के अपने जाज्वल्यमान तेज के साथ उदय होने से रात्रि के प्रभातरूप होने पर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में यह इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-विचार उत्पन्न हुआ कि—'कृष्ण वासुदेव अर्हत् अरिष्टनेमि के पादवंदन के लिये गये हैं। मेरा कार्य अर्हत के द्वारा जाना हुआ है, विशेष रूप से जाना हुआ है, किसी से सुना है और उनके द्वारा कृष्ण वासुदेव को कहा जायेगा। कृष्ण वासुदेव इस वृतान्त को सुनकर न जाने मुझे किस कुमौत से मारेंगे—

ऐसा विचार कर भयभीत, त्रसित और भय के कारण उद्विग्न होकर अपने घर से निकल पड़ा।

इधर कृष्ण वासुदेव ने भ्रातृशोक के कारण राजमार्ग को छोड़कर द्वारावती नगरी में गली से प्रवेश किया, जिससे अकस्मात् उसका सामना हो गया।

तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए-जाव-संजायभए ठियए चेव ठिइभेयं कालं करेइ, धरणितलंसि सव्वंगेहिं 'धस' त्ति सण्णिवडिए।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण सहसा ही कृष्ण वासुदेव को देखकर भयभीत-यावत-भयाक्रान्त हो खड़े-खड़े ही स्थिति क्षय होने से मरण को प्राप्त हो गया और जमीन पर धड़ाम से चारों खाने गिर पड़ा।

तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"एस णं भो ! देवाणुप्पिया ! से सोमिले माहणे अपत्थियपत्थिए-जाव-सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जेणं ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए" त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावेत्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

—अंत० व० ३, अ० ८।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को देखा देखकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! अहो यही अप्रार्थित प्रार्थित-यावत-श्री, ह्री, धी, कीर्ति से रहित सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे सहोदर कनीयस लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार को अकाल में ही मृत्यु की शरण में पहुँचा दिया'—ऐसा कहकर सोमिल ब्राह्मण के शव को चांडालों से घसिटवाया, घसिटवाकर उस भूमि को पानी से धुलवाया, धुलवाकर जहाँ अपना भवन था वहाँ पहुँचे और उसमें प्रवेश किया।

९. अरिट्ठनेमितित्थे सुमुहाइकुमारा

१६०. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया-जाव-विहरइ।

तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था—वण्णओ।

तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था वण्णओ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि -जाव-नियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा। जहा गोयमे, नवरं—सुमुहे कुमारे। पण्णासं कण्णाओ। पण्णासओ दाओ। चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। वीसं वासाइं परियाओ। सेसं तं चेव-जाव-सेत्तुंजे सिद्धे।

१६१. एवं—दुम्मुहे वि। कूवदारए वि। तिण्णि वि बलदेव-धारिणी-सुया।

दारुए वि एवं चेव, नवरं—वसुदेव-धारिणी-सुए।

एवं —अणाहिट्ठी वि वसुदेव-धारिणी-सुए।

—अंत० व० ३, अ० ९-१३।

९. अरिष्टनेमि तीर्थ में सुमुखादिकुमार

१६०. उस काल और उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी, कृष्ण नामक वासुदेव राजा थे-यावत-विचरण करते थे।

उसी द्वारिका नगरी में बलदेव नामक राजा थे - वर्णन।

उन बलदेव राजा के धारिणी नाम की रानी थी—वर्णन।

तत्पश्चात् वह धारिणी रानी एक बार किसी दिन उस प्रकार की उस शैया में सो रही थी कि अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह को स्वप्न में देखकर जागी, शेष वर्णन गौतम कुमार के समान जानना चाहिये, किन्तु इतना विशेष कि उसका नाम सुमुखकुमार रखा। उस कुमार का पचास राजकन्याओं से विवाह हुआ। पचास दहेज मिले। (दीक्षा लेकर) चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया। शेष सभी वर्णन भी पूर्ववत्-यावत-शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए।

१६१. इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक इन दोनों का भी वर्णन जानना चाहिये। तीनों ही बलदेव और धारिणी के पुत्र थे।

दारुक का भी वर्णन सुमुखकुमार के समान जानना चाहिये, लेकिन इतना अन्तर है कि ये वसुदेव और धारिणी के पुत्र थे। अर्थात् पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था।

इसी प्रकार अनाधृष्टि कुमार का भी वर्णन जानना चाहिये, इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था।

□

१०. जालिआई समणा

गाहा—जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य, वारिसेणे य।
पज्जुन्न, संब, अनिरुद्धे, सच्चनेमी य, दढनेमी ॥१

१६२. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी। तीसे णं बारवईए नयरीए-जाव-कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं-जाव-कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए वसुदेवे राया। धारिणी देवी—वण्णओ जहा गोयमो, नवरं—जालिकुमारे। पण्णासओ दाओ

बारसंगी । सोलस बासा परियाओ । सेसं जहा गोयमस्स-जाव-सेत्तुंजे सिद्धे ।

अन्तर इतना है कि उसका नाम जालिकुमार रखा गया। पचास दहेज मिले । बारह अंगों का अध्ययन किया । सोलह वर्ष पर्यन्त दीक्षा पर्याय का पालन किया । शेष सभी वर्णन गौतमकुमार के समान जानना चाहिये —यावत्-शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

एवं—मयाली, उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य ।

इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुरुषसेन और वारिषेण का भी चरित्र जानना चाहिये ।

एवं—पज्जुण्णे वि, नवरं—कण्हे पिया, रुप्पिणी माया ।

इसी प्रकार प्रद्युम्न का भी चरित्र जानना; लेकिन उनके पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम रुक्मिणी था ।

एवं—संबे वि, नवरं—जंबवइ माया ।

इसी प्रकार शंबकुमार का भी वर्णन जानना चाहिये, किन्तु माता का नाम जाम्बवंती था ।

एवं—अणिरुद्धे वि, नवरं—पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया ।

इसी प्रकार अनिरुद्ध का भी वर्णन है, परन्तु पिता का नाम प्रद्युम्न और माता का नाम वैदर्भी है ।

एवं—सच्चणेमी, नवरं—समुद्दविजए पिया, सिवा माया ।

इसी प्रकार सत्यनेमि का भी चरित्र है, लेकिन पिता समुद्रविजय और माता शिवादेवी थी ।

एवं—दढणेमी वि सव्वे एगगमा ।

—अंत० व० ४, अ० १-१० ।

इसी प्रकार दृढ़नेमि का वर्णन है, सभी गमों का वर्णन एक समान है ।





११. अरिट्ठनेमितित्थे थावच्चापुत्ते अण्णे य

११. अरिष्टनेमि तीर्थ में थावच्चापुत्र और अन्य

बारवईए कण्हो वासुदेवो—

१६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती नामं नयरी होत्था—पाईणपडीणायया उदीणदाहिणवित्थिण्णा नवजोयणवित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा धणवइ-मइ-निम्मिया चामीयरं पवर-पागारा नाणामणि-पंचवण्णकविसीसग-सोहिया अलकापुरि-संकासा पमुइय-पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया ।

१६३. उस काल और उस समय में बारावती (द्वारिका) नाम की नगरी थी—जो पूर्व पश्चिम में बारह योजन लंबी और उत्तर-दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी, वह कुबेर की मति से निर्मित हुई थी, सुवर्ण के श्रेष्ठ प्राकार से और पंचरंगी अनेक प्रकार के मणियों से बने कंगूरे से शोभित थी, अलकापुरी के समान जान पड़ती थी, उसके निवासी प्रमोदयुक्त एवं क्रीड़ा करने में निमग्न रहते थे, वह साक्षात देवलोक सदृश थी ।

तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए रेवतगे नामं पव्वए होत्था—तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणा-विहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लिपरिगए हंस-मिग-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेए अणेगतड-कडग-वियर-उज्झर-पवाय-पब्भारसिहरपउरे अच्छरगण-देवसंघ-चारण-विज्जा-

उस द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था—वह बहुत ऊँचा था, उसके शिखर गगनतल को स्पर्श करते थे, वह नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों, लताओं, और वल्लियों से परिव्याप्त था। हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदन सारिका, और कोयल आदि पक्षियों के झुण्डों से व्याप्त था । उसमें अनेकतर कटक, विवर, झरने, प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नमे हुए गिरि शिखर) और शिखर थे, वह पर्वत अप्सराओं के समूह, देवों के संघ, चारण मुनियों

हरमिहुणसंविचिण्णे निच्चच्छणए दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्क-बलवगाणं, सोमे सुभगे पियदंसणे सुरूवे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं रेवयगस्स अदूरसामंते, एत्थ णं नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणीए अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं उज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए सुरप्पिए नामं जक्खायणे होत्था—दिव्वे वण्णओ ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं-जाव-अण्णेसिं च बहूणं ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं, वेयड्ढगिरि-सागरपेरंतस्स य दाहिणड्ढ-भरहस्स, बारवईए नयरीए आहेवच्चं-जाव-पालेमाणे विहरइ ।

गाहावईणी थावच्चा तीसे य पुत्तो थावच्चापुत्तो—

१६४. तत्थ णं बारवईए नयरीए थावच्चा नामं गाहावइणी परिवसइ—अड्ढा-जाव-अपरिभूया ।

तीसे णं थावच्चाए गाहावइणीए पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं सत्थवाहदारए होत्था—सुकुमालपाणिपाए-जाव-सुरूवे ।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी तं दारगं साइरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेइ-जाव-भोगसमत्थं जाणित्ता बत्तीसाए इब्भकुलबालियाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ ।

बत्तीसओ दाओ जाव-बत्तीसाए इब्भकुलबालियाहिं सद्धिं विपुले सद्द-फरिस-रस-रूव-वण्ण-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए भुंजमाणे विहरइ ।

अरिट्ठनेमि-समवसरणं—

१६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे तित्थगरे सो चेव वण्णओ । दसधणुस्सेहे नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासे अट्ठारसहिं समण-साहस्सीहिं, चत्तालीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्ज-

और विद्याधरों के मिथुनों (जोड़ों) से युक्त था, उस पर तीन लोक में बलवत्तर दशार वंश के वीर पुरुषों के द्वारा नित्य नए उत्सव होते थे, वह पर्वत सौम्य, सुभग, [illegible] प्रसन्नता प्रदान करने वाला तथा देखने में अभिरूप एवं प्रतिरूप था ।

उस रैवतक पर्वत से न अति दूर और न अति [illegible] नन्दनवन नाम का उद्यान था—जो सब ऋतुओं [illegible], पुष्पों और फलों से समृद्ध था, रम्य था, नन्दनवन के समान आनन्दप्रद, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था ।

उस उद्यान के ठीक बीचोंबीच सुरप्रिय नामक दिव्य यक्षायतन था—वर्णन करना चाहिये ।

उस द्वारावती नगरी में कृष्ण नामक वासुदेव राजा निवास करते थे । वह वासुदेव समुद्रविजय आदि दश दशारों-यावत्-और भी बहुत से ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी सार्थवाह आदि का एवं उत्तर में वैताढ्य पर्वत [illegible] दिशाओं में समुद्र पर्यन्त दक्षिणार्धभरत क्षेत्र का और द्वारावती नगरी का आधिपत्य करते हुए-यावत्-पालन करते हुए विचरण करते थे ।

गाथापत्नी थावच्चा और उसका पुत्र थावच्चापुत्र—

१६४. उस द्वारावती नगरी में थावच्चा नाम की एक गाथापत्नी (गृहस्थ महिला) रहती थी—जो समृद्धिशालिनी-यावत्-किसी से पराभव पाने वाली नहीं थी ।

उस थावच्चा गाथापत्नी का थावच्चापुत्र नाम का सार्थवाहबालकपुत्र था—उसके हाथ-पैर अत्यन्त सुकोमल थे-यावत्-वह सुन्दर रूपवाला था ।

तत्पश्चात् उस थावच्चा गाथापत्नी ने उस बालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र, और मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा-यावत्-भोग भोगने में समर्थ जानकर अर्थात् युवावस्था सम्पन्न जानकर इभ्य कुल की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ एक ही दिन में [illegible] ।

बत्तीस दायज [illegible] बत्तीस इभ्य कुल की कुमारियों के साथ विपुल, शब्द, स्पर्श, [illegible] के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों [illegible] ।

अरिष्टनेमि-समवसरण—

१६५ उस [illegible]

माणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव वारवती नगरी जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ।

विचरण करते हुए, ग्रामानुग्रामों में गमन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ द्वारिका नगरी थी, वहाँ रैवतक पर्वत था, जहाँ नन्दनवन था, जहाँ सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ पधारे, पधारकर यथोचित अवग्रह को प्राप्त कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

कण्हस्स पज्जुवासणा—

१६६. तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सभाए सुहम्माए मेघोघरसियं गंभीरमहुरसद्दं कोमुइयं भेरिं तालेह।

तए णं कोडुंबियपुरिसा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्त-माणंदिया-जाव-मत्थए अंजलिं कट्टु एवं—सामी! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव कोमुइया भेरी, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं मेघोघरसियं गंभीरमहुरसद्दं कोमुइयं तालेंति। तओ निद्ध-महुर-गंभीर-पडिसुएणं पिव सारइएणं भेरिं बलाहएणं अणुरसिय भेरीए।

तए णं तीसे कोमुइयाए भेरीए तालियाए समाणीए वारवईए-नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए दुवालसजोयणायामाए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-कंदर-दरी-विवर-कुहर-गिरिसिहर-नगरगोउर-पासाय-दुवार-भवण-देउल-पडिंसुया-सयसहस्ससंकुलं सद्दं करेमाणे वारवतिं नयरिं सब्भिंतर-बाहिरियं सव्वओ समंता से सद्दे विप्पसरित्था।

तए णं बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए बारसजोयणायामाए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा-जाव-गणियासहस्साइं कोमुइयाए भेरीए सद्दं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवसविसप्पमाणहियया ण्हाया आविद्ध-वग्घारिय-मल्लदामकलावा अहय-वत्थ-चंदणोक्किण्णगायसरीरा अप्पेगइया हयगया एवं गयरह-सीया-संदमाणीगया अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसवग्गुरा-परिक्खित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स अंतियं पाउब्भवित्था।

कृष्ण की पर्युपासना—

१६६. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने इस कथा (समाचार) को सुनकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही सुधर्मासभा में जाकर मेघों के समूह जैसे शब्द वाली, गंभीर तथा मधुर शब्द करने वाली कौमुदी नामक भेरी को बजाओ।'

तत्पश्चात वे कौटुम्बिक पुरुष कृष्णवासुदेव के आदेश को सुनकर हृष्ट-तुष्ट आनंदित चित्त वाले होकर-यावत-मस्तक पर अंजलि करके—हे स्वामिन! ठीक इसी प्रकार, बहुत अच्छा इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके कृष्णवासुदेव के पास से निकले, निकलकर जहाँ सुधर्मा सभा थी, जहाँ कौमुदी नामक भेरी थी, वहाँ आये, वहाँ आकर मेघसमूह के समान गंभीर मधुर शब्द करने वाली कौमुदी भेरी को बजाया। तब स्निग्ध, मधुर और गम्भीर प्रतिध्वनि करते हुए शरद ऋतु के मेघों के समान भेरी का शब्द हुआ।

तत्पश्चात् उस कौमुदी भेरी के ताड़न किये जाने पर उसका शब्द नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लंबी द्वारिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, कंदरा, गुफा, विवर, कुहर, गिरि शिखर, नगर के गोपुर- प्रासाद, द्वार, भवन, देवकुल आदि समस्त स्थानों को लाखों प्रतिध्वनियों से शब्दायमान करता हुआ भीतर और बाहर के सभी स्थानों सहित चारों ओर फैल गया।

तत्पश्चात् नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लंबी उस द्वारिका नगरी में समुद्रविजय आदि दस दशारों-यावत्-हजारों गणिकायें आदि उस कौमुदी भेरी के शब्द को सुनकर और अवधारण करके हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकासमान हृदय वाले हुए और सबने स्नान किया, लंबी लटकने वाली पुष्पमालाओं को धारण किया, कोरे नवीन वस्त्र पहने, शरीर पर चन्दन का लेप किया और इसके बाद कोई अश्व पर आरूढ़ हुए कोई हाथी पर, कोई रथ-शिविका एवं स्यंदमनी पर आरूढ़ हुए। और कोई पैदल ही पुरुषों के समूह के साथ कृष्ण वासुदेव के पास आकर उपस्थित हुए।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भु-ट्ठेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवरपडिदुवार-देसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह थावच्चा गाथापत्नी आसन से उठी, उठकर उसने महान् अर्थवाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य, और राजा के योग्य भेंट ग्रहण की, भेंट ग्रहण करके मित्रों, ज्ञातिजनों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों आदि से परिवृत्त होकर जहां कृष्णवासुदेव के श्रेष्ठ भवन के मुख्य प्रवेश द्वार का देशभाग था, वहां आई, आकर प्रतिहार द्वारा दिखलाये मार्ग से जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आई, आकर दोनों हाथ जोड़, सिर पर आवर्त्त कर, मस्तक पर अंजलि करके जयविजय शब्दों से बधाया, बधाकर उस महाअर्थवाली, महामूल्यवान, महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट को सामने रखा, सामने रखकर इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं दारए-इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिय-यणंदिजणए उम्बरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण दरिसणयाए ?

'देवानुप्रिय ! थावच्चा पुत्र नामक मेरा एक ही पुत्र है—जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का स्थान, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ, और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पेटी के समान है, रत्न है, रत्नरूप है, जीवन के उच्छ्वास के समान है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गूलर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन करने की तो बात ही क्या है ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं ।

जैसे उत्पल, पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, और जल में बढ़ता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल कणों से लिप्त नहीं होता है, इसीप्रकार यह थावच्चापुत्र कामों में उत्पन्न हुआ है, और भोगों में पल-पुसकर वृद्धिगत हुआ है फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ भोग-रज से लिप्त नहीं हुआ—कामभोगों से विरक्त रहा ।

से णं देवाणुप्पिया ! संसार-भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहण्णं निक्खमणसक्कारं करेमि । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! थावच्चा-पुत्तस्स निक्ख-ममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिन्नाओ ।

हे देवानुप्रिय ! वह अब संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म जरा मरण से भयभीत हो अर्हंत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता है । मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ । अतएव हे देवानुप्रिय ! मेरी अभिलाषा है कि प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले थावच्चापुत्र के लिए छत्र, मुकुट और चामर प्रदान करें ।

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चं गाहावइणिं एवं वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चागाथापत्नी से इस प्रकार कहा—

"अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि ।"

हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो ! मैं स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण सत्कार करूँगा ।

कण्हस्स थावच्चापुत्तस्स य परिसंवादो—

कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद—

१६८. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए विजयं हत्थि-रयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

१६८. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय हस्ती रत्न पर आरूढ़ होकर जहाँ थावच्चागाथा पत्नी का भवन था, वहाँ आये, आकर थावच्चा पुत्र से इस प्रकार बोले—

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडा जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवरपडिदुवार-देसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह थावच्चा सार्थवाही आसन से उठी, उठकर उसने महान् अर्थवाली, महामूल्य वाली, महान पुरुषों के योग्य, और राजा के योग्य भेंट ग्रहण की, भेंट ग्रहण करके मित्रों, ज्ञातिजनों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों आदि से परिवृत्त होकर जहां कृष्णवासुदेव के श्रेष्ठ भवन के मुख्य प्रवेश द्वार का देशभाग था, वहां आई, आकर प्रतिहार द्वारा दिखलाये मार्ग से जहां कृष्ण वासुदेव थे, वहां आई, आकर दोनों हाथ जोड़, सिर पर आवर्तकर, मस्तक पर अंजलि करके जयविजय शब्दों से बधाया, बधाकर उस महाअर्थवाली, महामूल्यवान, महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट को सामने रखा, सामने रखकर इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं दारए-इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हियंयनंदिजणए उम्बरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण दरिसणयाए ?

'देवानुप्रिय ! थावच्चा पुत्र नामक मेरा एक ही पुत्र है—जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का स्थान, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ, और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पेटी के समान है, रत्न है, रत्नरूप है, जीवन के उच्छ्वास के समान है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गूलर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन करने की तो बात ही क्या है ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं ।

जैसे उत्पल, पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, और जल में बढ़ता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल कणों से लिप्त नहीं होता है, इसीप्रकार यह थावच्चापुत्र कामों में उत्पन्न हुआ है, और भोगों में पल-पुसकर वृद्धिगत हुआ है फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ भोग-रज से लिप्त नहीं हुआ—कामभोगों से विरक्त रहा ।

से णं देवाणुप्पिया ! संसार- भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहण्णं निक्खमणसक्कारं करेमि । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! थावच्चा-पुत्तस्स निक्खममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिन्नाओ ।

हे देवानुप्रिय ! वह अब संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म जरा मरण से भयभीत हो अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता है। मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय ! मेरी अभिलाषा है कि प्रव्रज्या अंगीकार करने वाले थावच्चापुत्र के लिए छत्र, मुकुट और चामर प्रदान करें।

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चं गाहावइणिं एवं वयासी—

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चागाथापत्नी से इस प्रकार कहा—

"अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि ।"

हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो ! मैं स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण सत्कार करूँगा।

कण्हस्स थावच्चापुत्तस्स य परिसंवादो—

कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद—

१६८. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए विजयं हत्थि-रयणं दुरूढे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

१६८. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय हस्ती रत्न पर आरूढ़ होकर जहाँ थावच्चागाथा पत्नी का भवन था, वहाँ आये, आकर थावच्चा पुत्र से इस प्रकार बोले—

मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! मुण्डे भवित्ता पव्वयाहि, भुंजाहि णं देवाणुप्पिया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे मम बाहुच्छाय-परिग्गहिए। केवलं देवाणुप्पियस्स अहं नो संचाएमि वाउकायं उवरिमेणं गच्छामाणं निवारित्तए। अण्णो णं देवाणुप्पियस्स जं किंचि आवाहं वा वावाहं वा उप्पाएइ, तं सव्वं निवारेमि।

'हे देवानुप्रिय ! तुम मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो, किन्तु मेरी भुजाओं की छाया में रहकर हे देवानुप्रिय ! मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम-भोगों को भोगो। मैं केवल देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर आने वाली वायुकाय को रोकने में समर्थ नहीं हूँ लेकिन इसके अतिरिक्त देवानुप्रिय को जो कोई भी आधि, व्याधि-सामान्य और विशेष पीड़ा-उत्पन्न करेगी, उस सबका निवारण करूँगा।'

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"जइ णं देवाणुप्पिया ! मम जीवियंतकरं मच्चुं एज्जमाणं निवारेसि, जरं वा सरीररूव-विणासणिं सरीरं अइवयमाणिं निवारेसि, तए णं अहं तव बाहुच्छाय-परिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि।"

तब कृष्ण वासुदेव के इस कथन को सुनकर थावच्चा पुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक सको और शरीर पर आक्रमण करने वाली एवं शरीर के रूप का विनाश करने वाली जरा—वृद्धावस्था को रोक दो तो मैं आपकी भुजाओं की छाया को ग्रहण करके—आपकी छत्रछाया में रहकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगता हुआ विचरण करूँ।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे थावच्चापुत्तं एवं वयासी—"एए णं देवाणुप्पिया दुरइक्कमणिज्जा नो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं।"

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के इस कथन को सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! ये मरण और जरा दुरतिक्रम्य हैं अर्थात् मरण और जरा का उल्लंघन करना सम्भव नहीं है, अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता है, हाँ अपने कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है।'

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"जइ णं एए दुरइक्कमणिज्जा, नो खलु सक्का सुबलिएणावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अण्णाण-मिच्छत्त-अविरइ-कसाय-संचियस्स अत्तणो कम्मक्खयं करित्तए।

तब थावच्चापुत्र ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—'यदि ये दुरतिक्रम्य हैं और कोई भी बलशाली देव अथवा दानव इनका निवारण नहीं कर सकता है किन्तु अपने कर्मों का क्षय ही रोक सकता है। इसीलिये तो हे देवानुप्रिय ! मैं अपने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, द्वारा संचित आत्मा के कर्मों का क्षय करना चाहता हूँ।

कण्हस्स जोगक्खेम-घोसणा—

१६९. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा उग्घोसणं करेह—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! थावच्चापुत्ते संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइत्तए, तं जो खलु देवाणुप्पिया ! राया वा जुवराया वा देवी वा कुमारे वा ईसरे वा तलवरे वा कोडुंबिय-माडंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पुव्वयंतमणु-पव्वयइ,

कृष्ण की योग-क्षेम घोषणा—

१६९. तत्पश्चात थावच्चापुत्र के इस कथन को सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और द्वारिका नगरी के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथ आदि स्थानों में श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठकर ऊँचो-ऊँची आवाज से उद्घोषणा करते हुए ऐसी घोषणा करो कि—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-जरा और मरण से भयभीत थावच्चा-पुत्र अर्हत अरिष्टनेमि के निकट मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता है, अतएव हे देवानुप्रियो ! जो राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडंविक, इभ्य, सेठ,

तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणइ पच्छाउरस्स वि य से मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स जोगक्खेम-वट्टमाणीं पडिवहइ त्ति कट्टु घोसणं घोसेह-जाव-घोसंति ।

सेनापति अथवा सार्थवाह दीक्षा लेने के लिये तत्पर थावच्चा पुत्र के साथ दीक्षा ग्रहण करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव अनुज्ञा देते हैं, और पीछे रहे हुए उसके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी या परिजन आदि होंगे तो उनके वर्तमान काल सम्बन्धी योग और क्षेमका निर्वाह करेंगे, इस प्रकार की घोषणा करो—यावत-वे कौटुम्बिक पुरुष वैसी घोषणा करते हैं ।

थावच्चापुत्तस अभिनिक्खमणं—

१७०. तए णं थावच्चापुत्तस्स अणुराएणं पुरिससहस्सं निक्खमणाभिमुहं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पत्तेयं-पत्तेयं पुरिससहस्सवाहिणीसु सिवियासु दुरूढं समाणं मित्त-नाइ-परिवुडं थावच्चापुत्तस अंतियं पाउब्भूयं ।

थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण—

१७०. तत्पश्चात थावच्चापुत्र के अनुराग से निष्क्रमण के लिये तत्पर स्नान करके और समस्त अलकारों से विभूषित होकर एक हजार व्यक्ति अलग-अलग पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका में आरूढ़ होकर मित्रों और जाति जनों से परिवृत्त होकर थावच्चापुत्र के निकट प्रगट हुए—आये ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पुरिससहस्सं अंतियं पाउब्भवमाणं पासइ, पासित्ता कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"जहा मेहस्स निक्खमणाभिसेओ तहेव सेयापीढएहिं ण्हावेंति ण्हावेत्ता-जाव अरहतो अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्तं । खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखंभ-सयसन्निविट्ठं-जाव-सीयं उवट्ठवेह ।

तत्पश्चात कृष्ण वासुदेव ने एक हजार पुरुषों को प्रगट हुआ—आया हुआ देखकर, कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, और बुलाकर इस प्रकार कहा—(जैसा मेघकुमार के दीक्षाभिषेक का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार श्वेतपीठिका पर बैठना स्नान करना यावत् अरिष्टनेमि यावत के समवसरण में जाने तक का वर्णन यहाँ करना चाहिये) हे देवानुप्रियो ! सैकड़ों स्तम्भों से बनी हुई—यावत-शिविका लाओ ।

तए णं से थावच्चापुत्ते वारवतीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे उज्जाणे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स छत्ताइछत्तं पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे पासइ, पासित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ ।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र द्वारिका नगरी के बीचों बीच से निकला, निकलकर जहाँ रैवतक पर्वत था, जहाँ नंदनवन उद्यान था, जहाँ सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जहाँ श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था, वहाँ आया, वहाँ आकर अर्हत अरिष्टनेमि के छत्र पर छत्र, पताका पर पताका, विद्याधर और चारण मुनियों, जृम्भकदेवों को आकाश से जमीन पर आते और जमीन से आकाश की ओर ऊपर जाते देखा, देखकर शिविका से नीचे उतरा ।

सिस्सभिक्खादाणं—

१७१. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तं पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एस णं देवाणुप्पिया ! थावच्चापुत्ते" थावच्चाए गाहावइणीए एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययनंदिजणए उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण दरिसणयाए ?

शिष्य भिक्षादान—

१७१. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्र को आगे करके जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये, वहाँ आकर, अरिष्टनेमि की तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! यह थावच्चापुत्र थावच्चागाथापत्नी का इकलौता पुत्र है, यह उसे इष्ट, कान्त, प्रिय. मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास की भूमि के समान है, सम्मत, वहुमत, अनुमत, आभूषणों की पेटी के समान है, मनुष्यों में रत्न के समान, रत्न रूप, हृदय को आनंदित करने वाला और गूलर के पुष्प के समान इसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की वात ही क्या है ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं । एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो । पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सभिक्खं" ।

जैसे-उत्पन्न, पद्म अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में बढ़ता है किन्तु कीचड़ से उपलिप्त नहीं होता, जल रज से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार यह थावच्चापुत्र भी काम में उत्पन्न हुआ है, भोगों में वृद्धि को प्राप्त हुआ है, फिर भी यह काम-रज से लिप्त नहीं हुआ है, भोग-रज से लिप्त नहीं हुआ है। हे देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्विग्न हुआ, जन्म, जरा, मरण से भयभीत हुआ आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर अगार त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्य भिक्षा देते हैं। हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्य भिक्षा को स्वीकार कीजिये।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ ।

तत्पश्चात् अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव की इस बात को सुनकर इस अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करते हैं।

तए णं से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ ।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र अर्हत् अरिष्टनेमि के पास उत्तर-पूर्व-ईशान दिशा में गया, स्वयं ही आभरण, माला, अलंकारों को उतारा।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलि-प्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी रोयमाणी-रोयमाणी कंदमाणी-कंदमाणी विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी-

उसके बाद थावच्चा गाथावाही में हंस लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदु वस्त्र में आभरण, माला, अलंकारों को ग्रहण किया, ग्रहण करके, मोतियों के हार, जल की धारा, निर्गुण्डी के फूलों तथा छिन्न हुई मोतियों की माला के समान आँसुओं को त्यागती हुई रुदन करती हुई, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

"जइयव्वं जाया ! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं । अम्हंपि णं एसेव मग्गे भवउ त्ति कट्टु थावच्चा गाहावइणी अरहं अरिट्ठनेमिं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।"

हे लाल ! प्राप्त चारित्र योग में यतना करना, अप्राप्त चारित्र योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न तत्पर रहना, हे पुत्र ! पराक्रम करना, इस अर्थ—संयम-साधना में प्रमाद मत करना। हमारे लिये भी यही मार्ग हो, इस प्रकार कहकर थावच्चा-गाथावाही ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जिस ओर से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।'

थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जागहणं—

१७२. तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेणं सद्धिं सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ-जाव-पव्वइए ।

थावच्चापुत्र का प्रव्रज्याग्रहण—

१७२. तत्पश्चात एक हजार पुरुषों के साथ थावच्चापुत्र ने अपने आप पंचमुष्ठि लोच किया, लोच करके, जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि थे, वहाँ आया, आकर अर्हत अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया, यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार की।

थावच्चापुत्तस्स अणगारचरिया—

१७३. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए—इरियासमिए-जाव-गुत्तबंभयारी अकोहे-जाव-निरुवलेवे, कंसपाईव मुक्कतोए-जाव-कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं विहरइ ।

थावच्चापुत्र की अनगार चर्या—

१७३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार हो गया—ईर्यासमिति युक्त-यावत-गुप्त ब्रह्मचारी, क्रोधरहित, यावत्-निरूपलिप्त, जल से अलिप्त कांसे के पात्र की तरह-यावत्-कर्मो का उच्छेद करने के लिये तत्पर होकर विचरने लगा।

तए णं से थावच्चापुत्त अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उसके बाद थावच्चापुत्र ने अरिहन्त अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से प्रारम्भ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ भक्त षष्ठ-भक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त, मास अर्धमास की तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।"

थावच्चापुत्तस्स जणवयविहारो सेलगपुरे समोसरणं च—

१७४. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगार-सहस्सं सीसत्ताए दलयइ।

थावच्चापुत्र का जनपद विहार और शैलकपुर में समवसरण

१७४. तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमि ने थावच्चापुत्र अनगार को इभ्य आदि एक हजार अनगारों को शिष्य के रूप में प्रदान किया।

तए णं से थावच्चापुत्ते अण्णया कयाइं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अणगारसहस्सेणं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने अन्य किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके कहा—'हे भदन्त! आपकी आज्ञा अनुमति हो तो एक हजार अनगारों के साथ बाहरी जनपद में विहार करना चाहता हूं।'

अहासुहं देवाणुप्पिया!

'देवानुप्रिय! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसे करो।' भगवान ने उत्तर दिया।

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं तेणं उरालेणं उग्गेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

उसके बाद थावच्चापुत्र एक हजार अनगारों के साथ उस उत्तम उग्र प्रयत्न पूर्वक ग्रहण किये गये तपोकर्म की आराधना करते हुए बाहर जनपद में विचरण करने लगा।

सेलगरायागमणं—

१७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सेलगपुरे नामं नगरे होत्था। सुभूमिभागे उज्जाणे। सेलए राया। पउमावई देवी। मंडुए कुमारे जुवराया।

शैलकराज-आगमन—

१७५. उस काल और उस समय में शैलकपुर नाम का नगर था सुभूमि नामक उद्यान था। शैलक नाम का वहाँ राजा था। उसकी पद्मावती नाम की रानी थी, मंडुक नामक कुमार युवराज था।

तस्स णं सेलगस्स पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया होत्था—उप्पत्तियाए-जाव-पारिणामियाए उववेया रज्जधुरं चिंतयंति।

उस शैलक राजा के पंथक आदि पाँच सौ मंत्री थे-वे औत्पत्तिकी-यावत्-पारिणामिकी इस प्रकार चार तरह की बुद्धियों से संपन्न थे एवं राज्यधुरा का—प्रशासन का चिन्तन करते रहते थे।

थावच्चापुत्ते सेलगपुरे समोसढे। राया निग्गए।

थावच्चापुत्र शैलकपुर में पधारे। राजा वंदनार्थ निकला।

सेलगस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

१७६. तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए धम्मं सोच्चा एवं वयासी—

"जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा उग्गपुत्ता मुंडा भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तहा णं अहं नो संचाएमि-जाव-पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

शैलक की गृहीधर्म-प्रतिपत्ति—

१७६. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार से धर्मोपदेश श्रवण कर शैलक राजा ने इस प्रकार कहा—

देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से उग्रकुल के राजकुमार मुंडित होकर गृहत्याग कर दीक्षित हुए हैं, उस प्रकार यद्यपि मैं दीक्षित होने में समर्थ नहीं हूँ—इसलिये मैं देवानुप्रिय के पास से पाँच अणुव्रतों को-यावत्-श्रावक धर्म धारण करना चाहता हूँ।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।

देवानुप्रिय! 'जैसे सुख उपजे वैसा करो, किन्तु विलंब मत करो।' थावच्चापुत्र अनगार ने कहा।

तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं उवसंपज्जइ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने थावच्चापुत्र अनगार से पाँच अणुव्रतों को यावत्-श्रावक धर्म को अंगीकार किया।

सेलगस्स समणोवासग-चरिया—

१७७. तए णं सेलए राया समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

पंथगपामोक्खा पंच मंति-सया समणोवासया जाया।

थावच्चापुत्ते बहिया जणवयविहारं विहरइ।

शैलक की श्रमणोपासक चर्या—

१७७. उसके वाद शैलक राजा श्रमणोपासक हो गया—जीव अजीव का ज्ञाता होकर आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा। पंथक आदि पाँच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक हो गये।

थावच्चापुत्र अनगार वहाँ से विहार करके जनपद में विचरण करने लगे।

सोगंधियाए सुदंसणे सेट्ठी—

१७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सोगंधिया नामं नयरी होत्था—वण्णओ। नीलासोए उज्जाणे—वण्णओ।

तत्थ णं सोगंधियाए नयरीए सुदंसणे नामं नयरसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे-जाव-अपरिभूए।

सौगंधिका का सुदर्शन श्रेष्ठी—

१७८. उस काल और उस समय में सौगंधिका नाम की नगरी थी—वर्णन। नीलाशोक नामक उद्यान था वर्णन कर लेना चाहिये।

उस सौगंधिका नाम की नगरी में सुदर्शन नामक नगर श्रेष्ठी निवास करता था—जो समृद्धिशाली था-यावत्-किसी से पराभूत नहीं होता था।

सोगंधियाए सुयपरिव्वायगागमणं—

१७९. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुए नामं परिव्वायए होत्था—रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-सट्ठितंतकुसले संखसमए लद्धट्ठे पंचजम-पंचनियमजुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परिव्वायगधम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्याभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धाउरत्त-वत्थ-पवर-परिहिए तिदंड-कुंडिय-छत्त-छन्नालय-अंकुस-पवित्तय-केसरि-हत्थगए परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

सौगंधिका में शुक परिव्राजक-आगमन—

१७९. उस काल और उस समय में शुक नामक परिव्राजक था—जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं षष्ठितंत्र (सांख्यमत) में कुशल था, सांख्य दर्शन में निपुण था, पाँच यमों और पाँच नियमों से युक्त दस प्रकार के शौच मूलक परिव्राजक धर्म का, दान धर्म का, शौच धर्म का और तीर्थ स्नान का उपदेश और प्ररूपण करते हुए, गेरू से रंगे हुए श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करके त्रिदंड, कुंडिका-कमंडलु छत्र, छन्नालिक [काष्ठ का एक उपकरण] अंकुश [वृक्ष के पत्ते तोड़ने का उपकरण] पवित्री [ताँवे की वनी अंगूठी] और केसरी [प्रमार्जन करने का वस्त्र खड] इन सात उपकरणों को हाथ में लेकर एक हजार परिव्राजकों से परिवृत होकर जहाँ सौगंधिका नगरी थी और उसमें जहाँ परिव्राजकों को आवसथ [मठ] था, वहाँ आया, आकर, परिव्राजक-आवसथ (मठ) में उसने अपने उपकरण रखे, उपकरण रखकर सांख्यमत के अनुसार अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

तए णं सोगंधियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ—एवं खलु सुए परिव्वायए इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव सोगंधियाए नयरीए परिव्वायगावसहंसि संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् उस सौगंधिका नगरी के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग, सामान्य मार्ग आदि स्थानों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहते थे—इस प्रकार निश्चय ही शुक परिव्राजक यहाँ आये हैं, यहाँ पधारे हैं, यहाँ समागत हैं और यहीं सौगंधिका नगरी के परिव्राजक आवसथ में सांख्यमत के अनुसार आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

परिसा निग्गया! सुदंसणे वि णिग्गए।

पर्षदा निकली। सुदर्शन भी निकला।

सुयपरिव्वायगेण सोयमूलय-धम्मोवएसो—

१८०. तए णं से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदंसणस्स य

शुक परिव्राजक द्वारा शौच मूलक धर्मोपदेश—

१८०. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने उस परिपद को, सुदर्शन को

अण्णेसिं च बहूणं संखाणं परिकहेइ—एवं खलु सुदंसणा ! अम्हं सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य सोए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वसोए य, भावसोए य।

दव्वसोए उदएणं मट्टियाए य। भावसोए दब्भेहि य मंतेहि य।

जं णं अम्हं देवाणुप्पिया ! किंचि असुई भवइ तं सव्वं सज्जो पुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पक्खालिज्जइ, तओ तं असुई सुई भवइ। एवं खलु जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छंति।

और अन्य दूसरे श्रोताओं को सांख्यमत का उपदेश दिया—इस प्रकार हे सुदर्शन ! हम शौचमूलक धर्म की प्ररूपणा करते हैं। वह शौच भी दो प्रकार का है, यथा—द्रव्यशौच और भावशौच।

द्रव्यशौच जल और मिट्टी से होता है। भावशौच दर्भ और मंत्रों से होता है।

हे देवानुप्रिय ! हमारे यहाँ जो कोई भी वस्तु अशुचि होती है, वह सब सद्यः (तत्काल) मिट्टी से आलिप्त कर दी जाती है, मांज दी जाती है, उसके पश्चात् शुद्ध जल से धो दी जाती है, तब वह अशुचि शुचि हो जाती है। इस प्रकार निश्चय ही जीव जल स्नान से अपनी आत्मा को पवित्र करके बिना विघ्न के स्वर्ग को जाते हैं—स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

सुदंसणस्स सोयमूलय-धम्मपडिवत्ती—

१८१. तए णं से सुदंसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्ठतुट्ठे सुयस्स अंतियं सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से सुए परिव्वायए सोगंधियाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

सुदर्शन की शौचमूलक-धर्म प्रतिपत्ति—

१८१. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के पास धर्म को सुनकर सुदर्शन ने हृष्ट-तुष्ट होकर शुक से शौच मूलक धर्म को ग्रहण किया, ग्रहण करके परिव्राजकों को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभित करता हुआ सांख्यमतानुसार आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

उसके बाद वह शुक परिव्राजक सोगंधिका नगरी से बाहर निकला और निकलकर बाहर जनपदों में विचरण करने लगा।

सोयमूलधम्मविसए थावच्चापुत्तस्स सुदंसणेण संवादो चाउज्जामियधम्मोवएसो य—

१८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं थावच्चापुत्तस्स समोसरणं। परिसा निग्गया। सुदंसणो वि णीइ। थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तुम्हाणं किंमूलए धम्मे पण्णत्ते ?

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी—

सुदंसणा ! विणयमूलए धम्मे पण्णत्ते। से वि य विणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अगार-विणए अणगारविणए य।

तत्थ णं जे से अगारविणए, से णं पंच अणुव्वयाइं, सत्त सिक्खावयाइं एक्कारस उवासगपडिमाओ। तत्थ णं जे से अणगार-विणए, से णं चाउज्जामे, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुव्वेणं अट्ठकम्म-पगडीओ खवेत्ता लोयग्गपइट्ठाणा भवंति।

शौचमूलक धर्म के विषय में थावच्चापुत्र का सुदर्शन से संवाद और चातुर्यामिक धर्मोपदेश—

१८२. उस काल और उस समय में थावच्चापुत्र का आगमन हुआ। पर्षदा वंदनार्थ निकली, सुदर्शन भी निकला। थावच्चापुत्र को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

आपके धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

तब (सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर) थावच्चापुत्र अणगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—

सुदर्शन ! धर्म विनयमूलक कहा गया है। वह विनय (चारित्र) भी दो प्रकार का कहा है; यथा—अगार विनय अर्थात् श्रावक धर्म (चारित्र) और अनगार विनय अर्थात् श्रमण धर्म (श्रमण चारित्र, श्रमणाचार)।

इनमें जो अगारविनय है, पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमारूप है। जो अनगार विनय है, वह चार याम रूप है, यथा—समस्तप्राणातिपात से विरमण, समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त बहिद्धादान (परिग्रह और मैथुन) से विरमण।

इस प्रकार के द्विविध विनयमूलक धर्म से अनुक्रमशः आठ कर्मों की प्रकृतियों को क्षय करके जीव लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित होते हैं।

१८३. तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—

तुब्भण्णं सुदंसणा ! किंमूलए धम्मे पण्णत्ते ?

अम्हाणं देवाणुप्पिया ! सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते-जाव-खलु जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छंति।

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—

"सुदंसणा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेण चेव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काइ सोही ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

एवामेव सुदंसणा ! तुब्भं पि पाणाइवाएणं-जाव-वहिद्धादाणेणं नत्थि सोही, जहा तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही।

सुदंसणा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रुहिरकयं वत्थं सज्जिया-खारेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता पयणं आरुहेइ आरुहेत्ता उण्हं गाहेइ, गाहेत्ता तओ पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेज्जा। से नूणं सुदंसणा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जिया-खारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ ?

हंता भवइ।

एवामेव सुदंसणा ! अम्हं पि पाणाइवायवेरमणेणं जाव-वहिद्धादाणवेरमणेणं अत्थि सोही, जहा वा बीयस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स सज्जियाखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही।

१८३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—

हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

देवानुप्रिय ! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है—यावत्-निश्चय ही जीव जलाभिषेक से पवित्र होकर बिना विघ्न के स्वर्ग जाते हैं।

तब थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा—

हे सुदर्शन ! जैसे किसी भी नाम वाला कोई पुरुष रुधिर से लिप्त किसी वस्त्र को रुधिर से ही धोये तो हे सुदर्शन ! क्या रुधिर से धोये जाने पर भी उस रुधिर से लिप्त वस्त्र की शुद्धि होगी ?

यह अर्थ समर्थ नहीं हैं अर्थात् ऐसा शक्य नहीं है—सुदर्शन ने उत्तर दिया।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात-यावत्-वहिद्धादान से शुद्धि नहीं हो सकती है, जैसे उस रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोने पर शुद्धि नहीं होती है।

हे सुदर्शन ! जैसे किसी भी नाम वाला कोई पुरुष एक बड़े रुधिर लिप्त वस्त्र को सज्जी के खार के पानी में भिगोये, भिगोकर पाक स्थान (चूल्हें) पर चढ़ाये, चढ़ाकर उष्णता ग्रहण कराये (उबाले), उसके बाद शुद्ध जल से धोये तो निश्चय ही सुदर्शन ! वह रुधिर लिप्त वस्त्र सज्जी के खार के पानी में भींगकर, चूल्हें पर चढ़कर-उबलकर और शुद्ध जल से प्रक्षालित होकर—धुलकर शुद्ध हो जाता है ?

हाँ हो जाता है (सुदर्शन ने कहा)।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात विरमण-यावत्-वहिद्धादान-विरमण से शुद्धि होती है जैसे उस दूसरे रुधिर लिप्त वस्त्र की सज्जीं खार के पानी में भींगकर, चूल्हे पर चढ़ाकर-उबालकर और शुद्ध जल से धोये जाने पर शुद्धि हो जाती है।

सुदंसणस्स विणयमूलय-धम्मपडिवत्ती—

१८४. तत्थ णं से सुदंसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए धम्मं सोच्चा जाणित्तए।

तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुदंसणस्स तीसे य महइमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा—

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं-जाव-तए णं से सुदंसणे समणोवासए जाए-अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइ-

सुदर्शन की विनयमूलक-धर्म प्रतिपत्ति—

१८४. तत्पश्चात् सुदर्शन प्रतिबोध को प्राप्त हुआ और उसने थावच्चापुत्र को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"हे भगवन् ! आपसे मैं धर्म सुनकर जानना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन को और उस विशाल पर्षदा को धर्मोपदेश दिया-यथा—

समस्त प्राणातिपात से विरमण, समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त वहिद्धादान से विरमण-यावत्-तब वह सुदर्शन श्रमणोपासक हो गया, जीवाजीव का ज्ञाता हो गया-यावत्-निर्ग्रन्थ श्रमणों को प्रासुक एषणीय अशन,

मेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ ।

पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, उपकरण, कंबल, पाद प्रोंछन, (रजोहरण), औषधि, भेषज आदि के योग्य वस्तुओं को और प्रातिहारिक [वापस देने योग्य] पीठ, फलक, शैया, संस्तारक आदि को दान में देता हुआ विचरने लगा ।

सुयेण सुदंसणस्स पडिसंबोधो—

१८५. तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु सुदंसणेणं सोयधम्मं विप्पजहाय विणयमूले धम्मे पडिवण्णे, तं सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिट्ठिं वामेत्तए पुणरवि सोयमूलए धम्मे आघवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं जेणेव सोगंधिया नगरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता धाउरत्त-वत्थ-पवर परिहिए पविरल-परिव्वायगेणं सद्धिं संपरिवुडे परिव्वायगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सोगंधियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुदंसणस्सगिहे जेणेव सुदंसणे तेणेव उवागच्छइ ।

शुक द्वारा सुदर्शन को प्रति संबोध—

१८५. तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक को इस कथा का अर्थ-समाचार जानकर इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-विचार उत्पन्न हुआ—इस प्रकार सुदर्शन ने शौच धर्म का परित्याग करके विनय मूलक धर्म अंगीकार किया है, अतएव मेरे लिये यह श्रेयस्कर होगा कि सुदर्शन की दृष्टि—श्रद्धा का वमन कराके-त्याग कराके पुनः शौच-मूलक धर्म का उपदेश दूं, ऐसा उसने विचार किया, विचार करके एक हजार परिव्राजकों के साथ जहां सौगंधिका नगरी थी, जहां परिव्राजक आवसथ (मठ) था, वहां आया, आकर परिव्राजक आवसथ में उपकरण रखे, रखकर गेरु से रंगे वस्त्र धारण किये हुए थोड़े से परिव्राजकों के साथ घिरा हुआ, परिव्राजक-मठ से निकला, निकलकर सौगंधिका नगरी के मध्य में से होकर जहां सुदर्शन का घर था और जहां सुदर्शन था, वहाँ आया ।

तए णं से सुदंसणे तं सुयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो अब्भुट्ठेइ न पच्चुग्गच्छइ नो आढाइ नो परियाणाइ नो वंदइ तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तब सुदर्शन ने शुक को आते हुए देखा, देखकर वह न तो आदर करने के लिये उठा, न सामने गया, उसका आदर नहीं किया, पहचान भी नहीं बताई, वंदना नहीं की और मौन धारण किये रहा ।

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं अणब्भुट्ठियं अपच्चुग्गच्छंतं अणाढाइज्जंतं अपरियाणंतं अवंदंतं तुसिणीयं पासित्ता एवं वयासी—

तब शुक परिव्राजक ने सुदर्शन को अनभ्युत—सामने नहीं आते हुए आदर नहीं करते हुए, पहचान भी नहीं बताते हुए, वन्दना नहीं करके मौन रहा देखकर इस प्रकार कहा—

तुमं णं सुदंसणा ! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता अब्भुट्ठेसि पच्चुग्गच्छसि आढासि परियाणासि वंदसि, इयाणिं सुदंसणा ! तुम ममं एज्जमाणं पासित्ता नो अब्भुट्ठेसि नो पच्चुग्गच्छसि नो आढासि नो परियाणसि नो वंदसि । तं कस्स णं तुमे सुदंसणा ! इमेयारूवे विणयमूले धम्मे पडिवण्णे ?

हे सुदर्शन ! पहले मुझे कभी आता हुआ देखते थे तो खड़े होते थे, सत्कार करते थे, सामने आते थे और वंदना करते थे, लेकिन अब कि बार तुम मुझे आते देखकर भी न खड़े हुए, न सामने आये, न आदर किया और न वंदना की । हे सुदर्शन ! किसके समीप तुमने विनयमूलक धर्म अंगीकार किया है ?

१८६. तए णं से सुदंसणे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—

१८६. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के इस कथन को सुनकर सुदर्शन आसन से उठा, उठकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर घुमाकर और मस्तक पर अंजलि करके शुक परिव्राजक से इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी थावच्चापुत्ते नामं अणगारे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह चेव नीलासोए उज्जाणे विहरइ । तस्स णं अंतिए विणयमूले धम्मे पडिवण्णे ।

देवानुप्रिय ! अर्हंत अरिष्टनेमि के अंतेवासी थावच्चापुत्र नामक अनगार अनुक्रम से चलते-चलते, ग्रामानुग्राम में विचरण करते हुए यहाँ आये और यहीं नीलाशोक उद्यान में विचर रहे हैं । उनके पास मैंने विनय मूलक धर्म अंगीकार किया है ।

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी—

तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—

"तं गच्छामो णं सुदंसणा ! तव धम्मायरियस्स थावच्चापुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामो, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो। तं जइ मे से इमाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं वागरेइ, तओ णं वंदामि नमंसामि। अह मे से इमाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं नो वागरेइ, तओ णं अहं एएहिं चेव अट्ठेहिं हेऊहिं० निप्पट्ठपसिणवागरणं करिस्सामि।

'हे सुदर्शन ! चलें और तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के समीप प्रगट हों—पहुँचें और इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को, व्याकरणों को पूछें। यदि वे मेरे इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों का विवेचन कर देंगे तो मैं उन्हें वंदना करूंगा, नमस्कार करूंगा। यदि वे मेरे इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों को नहीं कहेंगे—उत्तर नहीं देंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों हेतुओं आदि से निरुत्तर करा दूँगा।

सुयस्स थावच्चापुत्तेण सह संवादो—

१८७. तए णं से सुए परिव्वायगसहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सद्धिं जेणेव नीलासोए उज्जाणे जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

"जत्ता ते भंते ? जवणिज्जं ते (भंते) ? अव्वाबाहं (ते भंते) ? फासुयं विहारं (ते भंते ?)"

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते समाणे सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—"सुया ! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयं विहारं पि मे"।

तए णं से सुए थावच्चापुत्ते एवं वयासी—किं ते भंते ! जत्ता ?

सुया ! जण्णं मम नाण-दंसण-चरित्त-तव-संजममाइएहिं जोएहिं जोयणा, से तं जत्ता।

से किं ते भंते ! जवणिज्जं ?

सुया ! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य।

से किं तं इंदियजवणिज्जे ?

सुया ! जण्णं ममं सोतिंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टंति, से तं इंदियजवणिज्जे।

से किं तं नोइंदियजवणिज्जे ?

सुया ! जण्णं मम कोह-माण-माया-लोभा खीणा उवसंता नो उदयंति, से तं नोइंदियाजवणिज्जे।

से किं ते भंते ! अव्वाबाहं ?

सुया ! जण्णं मम वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका नो उदीरेंति, से तं अव्वाबाहं।

से किं ते भंते ! फासुयं विहारं ?

शुक का थावच्चापुत्र के साथ संवाद—

१८७ तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक एक हजार परिव्राजकों और सुदर्शन श्रेष्ठी के साथ जहाँ नीलाशोक उद्यान था, जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे वहाँ आया, आकर थावच्चापुत्र अनगार से इस प्रकार बोला—

भगवन् ! क्या तुम्हारे धर्म में यात्रा है ? यापनीय है ? (भगवन् !), अव्याबाध है ? और (हे भगवन् !) प्रासुक विहार है ?

तब शुक परिव्राजक के ऐसा कहने पर थावच्चापुत्र अणगार ने उसको ऐसा कहा—शुक ! हमारे धर्म में यात्रा भी है। यापनीय भी है, अव्याबाध भी हैं और प्रासुक विहार भी है।

तत्पश्चात् शुक ने थावच्चापुत्र अनगार से इस प्रकार कहा—भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?

(थावच्चापुत्र) हे शुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि योगों से जीवों की यतना करना हमारी यात्रा है।

शुक—हे भगवन् ! यापनीय क्या है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! यापनीय दो प्रकार का कहा गया है, यथा—इन्द्रिययापनीय, नोइन्द्रिययापनीय।

शुक—इन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?

थावच्चापुत्र—शुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय विना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती हैं, यही हमारा इन्द्रिययापनीय है ?

शुक—नो इन्द्रिययापनीय क्या है ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय क्षीण, उपशांत हो गये हैं, उदय में नहीं आ रहे हैं, यही हमारा नो इन्द्रिययापनीय है।

शुक—भगवन् ! अव्याबाध क्या है ?

हे शुक ! जो वात-पित्त-कफ और सन्निपात आदि विविध रोग—(उपचार साध्य व्याधि) और आतंक—(प्राणघातक व्याधि) उदय में नहीं आये, यही हमारा अव्याबाध है।

शुक—भगवन् ! आपका प्रासुक विहार क्या है ?

सुया ! जण्णं आरामेसु उज्जाणेसु देउलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडग-विवज्जियासु वसहीसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरामि, से तं फासुयं विहारं ।

थावच्चापुत्र—हे शुक ! हम जो आराम में, उद्यान में, देवकुल में, सभा में, प्याऊ में, तथा स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित उपाश्रय में पडिहारी (वापस लौटाने योग्य) पीठ, फलक, शैया, संस्तारक आदि ग्रहण करके विचरते हैं यही हमारा प्रासुक विहार है ।

सरिसवयाणं भक्खाभक्खत्तवियारणा—

सरिसवयों की भक्ष्याभक्ष्यत्व विचारणा—

(सरिसवया मित्र, सरिस-समान, वय-पक्षी, वृद्धपक्षी, पशु विशेष, गोकुल, सरिसव-सरसों) ।

१८८. सरिसवया ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! सरिसवया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—मित्तसरिसवया य धण्णसरिसवया य । तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवया ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहजायया, सहवड्ढियया, सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते धण्णसरिसवया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य । तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—फासुया य अफासुया य ।

अफासुया णं सुया ! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया । तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य । तत्थं णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाइया य अजाइया य । तत्थ णं जे ते अजाइया तेणं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धा य । तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया ।

एएणं अट्ठेणं सुया ! एवं वुच्चइ—सरिसवया भक्खेया वि [illegible]या वि ।

१८८. शुक—भगवन् ! आपके लिये सरिसवया भक्ष्य हैं या अभक्ष्य है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! सरिसवया हमारे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

शुक—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं कि सरिसवया भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! सरिसवया दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—मित्रसरिसवया और धान्य सरिसवया (सरसों) इनमें जो मित्र सरिसवया हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—साथ में जन्मे हुए, साथ में बड़े हुए और साथ में धूलि में खेले हुए, यह तीनों प्रकार के मित्र सरिसवया श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

और उनमें जो धन्य सरिसवया (सरसों) हैं, वे दो प्रकार के हैं, वे इस प्रकार—शस्त्र परिणत और अशस्त्र परिणत । उनमें जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के हैं यथा—प्रासुक और अप्रासुक ।

हे शुक ! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं । उनमें जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—एषणीय और अनेषणीय, उनमें जो अनेषणीय हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के हैं, यथा—याचित और अयाचित । उनमें जो अयाचित हैं, वे श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं ।

उनमें जो याचित (याचना किये हुए) हैं वे दो प्रकार के हैं, यथा-लब्ध (प्राप्त) और अलब्ध । जो अलब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं और जो लब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रंथों के लिये भक्ष्य हैं ।

हे शुक ! इसी अभिप्राय से कहा है कि सरिसवया भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ।

कुलत्थाणं भक्खाभक्खत्तवियारणा—

१८९. कुलत्था ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! कुलत्था दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिकुलत्था य धण्णकुलत्था य ।

तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-कुलवहुधा इय कुलमाउया इ य कुलधूया इ य । ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते धण्णकुलत्था ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य । तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-फासुया य अफासुया य । अफासुया णं सुया ! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया ।

तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य ।

तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा जाइया य अजाइया य । तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धाय । तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गथाणं भक्खेया ।

एएणं अट्ठेणं सुया ! एवं वुच्चइ—कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

मासाणं भक्खाभक्खत्तवियारणा—

१९०. मासा ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! मासा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-कालमासा य, अत्थमासा य धण्णमासा य ।

कुलत्था की भक्ष्याभक्ष्य विचारण—

(कुलत्था, धान्य विशेष, कुलत्था-कुल में स्थित स्त्री) ।

१८९. शुक—भगवन् ! कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

शुक—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं कि कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

थावच्चापुत्र—शुक ! कुलत्था के दो भेद हैं—स्त्री कुलत्था और धान्य कुलत्था ।

इनमें जो स्त्री कुलत्था है, वह तीन प्रकार की है, यथा—

कुलवधू, कुलमाता, और कुलपुत्री । ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं ।

उनमें जो धान्य कुलत्था है, वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत । जो शस्त्र-परिणत है, वह श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य है ।

जो शस्त्र परिणत है, वह दो प्रकार का है, यथा—प्रासुक और अप्रासुक । इनमें से शुक ! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य है ।

जो प्रासुक है, वह दो प्रकार का है, यथा—एषणीय और अनेषणीय ।

इनमें से जो अनेषणीय है, वह श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य है ।

और जो एषणीय है, वह दो प्रकार का है, यथा—याचित और अयाचित । उनमें से जो अयाचित है वह श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य है ।

उनमें जो याचित है, वह दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—लब्ध और अलब्ध । उनमें से जो अलब्ध है, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है और जो लब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये भक्ष्य हैं ।

हे शुक ! इसी अभिप्राय से यह कहा है—कुलत्था भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ।

मास की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा—

१९०. शुक—भगवन् ! क्या मास भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?

थावच्चापुत्र-शुक ! मास भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी ।

शुक—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं—मास भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी ?

थावच्चापुत्र—शुक ! मास तीन प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—कालमास, अर्थमास और धान्यमास ।

तत्थ णं जे ते कालमासा ते दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा-सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चेत्ते वइसाहे जेट्ठमूले आसाढे। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

उनमें से कालमास बारह प्रकार के कहे गये हैं, यथा-श्रावण, भाद्रपद, आसोज, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़। वे श्रमणों के लिये अभक्ष्य हैं।

तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—हिरण्णमासा य सुवण्णमासा य। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

जो अर्थमास (अर्थात् अर्थ का मासा) है, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-हिरण्य मासा और सुवर्ण का मासा। वे भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं।

तत्थ णं जे ते धण्णमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य। तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

धान्यमास (उड़द) दो प्रकार के हैं, यथा-शस्त्र परिणत और अशस्त्र-परिणत। उनमें से अशस्त्र परिणत श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है।

तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—फासुया य अफासुया य। अफासुया णं सुया! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया।

शस्त्रपरिणत दो प्रकार के कहे गये हैं यथा-प्रासुक और अप्रासुक। शुक! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रंथों के लिये भक्ष्य नहीं है।

तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य। अणेसणिज्जा य तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

उनमें से जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—एषणीय और अनेषणीय। उनमें से जो अनेषणीय है, वह श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया।

जो एषणीय हैं वे दो प्रकार के हैं, यथा—याचित और अयाचित। उनमें से जो अयाचित हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं। उनमें भी जो याचित हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—लब्ध और अलब्ध। उनमें अलब्ध श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं और जो लब्ध हैं वे श्रमण निर्ग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं।

एएणं अट्ठेणं सुया! एवं वुच्चइ—मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि।

हे शुक! इसी अभिप्राय से यह कहा जाता है कि मास भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं।

एग-अक्खयाइपदवियारणा—

एक अक्षयादि पद विचारणा—

१६१. एगे भवं? दुवे भवं? अक्खए भवं? अव्वए भवं? अवट्ठिए भवं? अणेगभूय-भाव-भविए भवं?

१६१. शुक—क्या आप एक है? आप दो हैं? आप अक्षय है? आप अव्यय है? आप अवस्थित है? आप अनेकभूत, भाव और भावी वाले हैं?

सुया! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।

थावच्चापुत्र—हे शुक! मैं एक भी हूँ, दो भी हूँ, अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, मैं अवस्थित भी हूँ और मैं अनेक भूत-भाव और भावी भी हूँ।

से केणट्ठेणं भंते! एगे वि अहं? दुवे वि अहं? अक्खए वि अहं? अव्वए वि अहं? अवट्ठिए वि अहं? अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं?

शुक—भगवन्! किस अभिप्राय से आप ऐसा कहते हैं कि मैं एक भी हूँ? मैं दो भी हूँ? मैं अक्षय भी हूँ? मैं अव्यय भी हूँ? मैं अवस्थित भी हूँ? मैं अनेक भूत, भाव और भावी भी हूँ?

सुया! दव्वट्ठयाए एगे वि अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।

थावच्चापुत्र—हे शुक! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक भी हूँ, ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से दो भी हूँ, प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ और उपयोग की अपेक्षा से अनेकभूत (अतीतकालीन) भाव (वर्तमानकालीन) और भावी (भविष्यकालीन) भी हूँ अर्थात् उपयोग के बदलते रहने से अनित्य भी हूँ।

सुयस्स परिव्वायगसहस्सेण सह पवज्जा—

१९२. एत्थ णं से सुए संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए।"

तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुयस्स चाउज्जामं धम्मं कहेइ। तए णं से सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! परिव्वायग-सहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! !

तए णं सुए परिव्वायए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडयं च कुंडियाओ य छत्तए य छन्नालए य अंकुसए य पवित्तए य केसरियाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव सिहं उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइए। सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ।

शुक परिव्राजक की सहस्र सहित प्रव्रज्या—

१९२. इस प्रकार थावच्चापुत्र के उत्तरों से प्रतिबोध को पाया हुआ शुक थावच्चापुत्र को वंदना-नमस्कार करता है और वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

'भगवन् ! आप से केवली प्ररूपित धर्म श्रवण करने की इच्छा—अभिलाषा करता हूँ।'

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को चातुर्याम रूप धर्म कहा। उसके बाद थावच्चापुत्र से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर शुक परिव्राजक ने इस प्रकार कहा—भगवन् (मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो'—थावच्चापुत्र ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक उत्तर पूर्व—ईशान, दिग्भाग में गया, वहाँ जाकर कुंडिका, छत्र, छन्नालय, अंकुश, पवित्री, केसरी और गेरूआ रंग से रंगें वस्त्र एकान्त में रखे, रखकर अपने हाथ से शिखा उखाड़ी, शिखा उखाड़कर जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे वहाँ आया, आकर थावच्चापुत्र अनगार को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके थावच्चापुत्र अनगार के पास मुंडित होकर दीक्षित हो गया। पश्चात् सामायिक से प्रारम्भ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया।

सुयस्स जणवयविहारो—

१९३. तए णं थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्सं सीसत्ताए वियरइ।

तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ नयरीओ नीलासोयाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

शुक का जनपद विहार—

(थावच्चापुत्र का भी जनपद विहार)।

१९३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को एक हजार अनगार शिष्य के रूप में प्रदान किये।

उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार सौगंधिकानगरी और नीला-शोक उद्यान से निकले, निकलकर बाह्य जनपद में विचरण करने लगे।

थावच्चापुत्तस्स परिनिव्वाणं—

१९४. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव पुण्डरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुण्डरीयं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता-जाव-संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणं णुवन्ने।

तए णं से थावच्चापुत्ते बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं

थावच्चापुत्र का परिनिर्वाण—

१९४. उसके बाद वह थावच्चापुत्र एक हजार साधुओं के साथ जहाँ पुंडरीक (शत्रुंजय) पर्वत था, वहाँ आये, आकर धीरे-धीरे पुंडरीक पर्वत पर आरोहण किया, आरोहण करके मेघघटा के समान श्याम और जहाँ देवों का आगमन होता रहता है, ऐसे पृथ्वीशिला पट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके यावत्-संलेखना द्वारा कर्मक्षय करके आत्मा में रमण करते हुए अनशन द्वारा भक्तपानों का त्यागकर पादोपगमन संथारा ग्रहण किया।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय को पालकर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मरमण करते हुए

अणसणाए छेदित्ता-जाव-केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

साठ भक्तों को अनशन द्वारा छोड़ करके—यावत्-सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान दर्शन को उत्पन्न करके तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिवृत्त, सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

सुयस्स सेलगपुरागमणं सेलगस्स य अभिनिक्खमणाभिलासो—

१९५. तए णं से सुए अण्णया कयाइ जेणेव सेलगपुरे नगरे जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया। सेलओ निग्गच्छइ।

तए णं से सेलए सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सुयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं-जाव-नवरं देवाणुप्पिया! पंथगपामोक्खाइं पंच मंतिसयाइं आपुच्छामि, मंडुयं च कुमारं रज्जे ठावेमि। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

तए णं से सेलए राया सेलगपुरं नगरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे सण्णिसण्णे।

१९६. तए णं से सेलए राया पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! मए सुयस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं देवाणुप्पिया! संसार-भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं सुयस्स अणगारस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! किं करेह? किं ववसह? किं भे हियइच्छिए सामत्थे?

तए णं ते पंथगपामोक्खा पंच मंतिसया सेलगं रायं एवं वयासी—"जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिया! के अण्णे आहारे वा आलंबे वा? अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयामो।

शुक का शैलकपुर-आगमन और शैलक का अभिनिष्क्रमणाभिलाष—

१९५. तत्पश्चात् वह शुक अनगार किसी समय जहाँ शैलकपुर नगर था, जहाँ सुभूमि भाग उद्यान था, वहाँ आये, आकर यथा प्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। उन्हें वंदना करने के लिये परिषद् निकली; शैलक राजा भी निकला।

उसके बाद वह शैलक राजा शुक अनगार से धर्म श्रवण कर और अवधारण करके हर्षित एवं संतुष्ट हो शुक की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—भगवन्! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ-यावत्-विशेष यह है कि हे देवानुप्रिय! मैं पंथक आदि पाँचों मंत्रियों से पूछ लूँ—अनुमति ले लूँ, मंडुककुमार को राज्य पर स्थापित कर दूँ अर्थात् उसे राज्यशासन सौंप दूँ उसके बाद आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर, गृहवास त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा।

जैसे सुख उपजे, वैसा करो—शुक अनगार ने कहा।

तत्पश्चात उस शैलक राजा ने शैलकपुर नगर में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ अपना भवन-घर था, जहाँ बाह्य उपस्थान शाला (राजसभा) थी, वहाँ आया और आकर सिंहासन पर बैठा।

१९६. तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! मैंने शुक अनगार से धर्म श्रवण किया है, उस धर्म की मैंने इच्छा की है, विशेष इच्छा की है, वह धर्म मुझे रुचा है, इसलिये हे देवानुप्रियो! मैं संसार के भय से उद्‌विग्न होकर जन्म-जरा मरण से भयभीत होकर शुक अनगार के पास मुण्डित होकर, गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा। अतः हे देवानुप्रियो! अब तुम क्या करोगे? कहाँ रहोगे, क्या उद्यम करोगे? तुम्हारी हार्दिक इच्छा और विचार क्या है?

तब उन पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों ने शैलक राजा से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! यदि आप संसार के भय से उद्‌विग्न होकर-यावत्-प्रव्रजित होना चाहते हैं तो हे देवानुप्रिय! हमारा दूसरा कौन आधार है? हमारा अवलंबन कौन है? अतएव हे देवानुप्रिय! हम भी संसार के भय से उद्‌विग्न होकर यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे।

जहा णं देवाणुप्पिया ! अम्हं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंबेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए, तहा णं पव्वइयाण वि समणाणं बहूसु कज्जेसु य-जाव-चक्खुभूए ।"

हे देवानुप्रिय ! जैसे हमें यहाँ-गृहस्थावस्था में—बहुत से कार्यों में, कारणों में, कौटुम्बिक क्रिया कलापों में, मंत्रणाओं सलाह मशविरा में, गुप्त बातों में रहस्यों में, और निश्चयों में सम्मति लेने और देने में मेढ़ी के समान-स्तम्भवत् आधार, अवलंबन में नेत्र के समान, अधारभूत, प्रमाणभूत आधार सदृश, अवलंबन सदृश, चक्षुभूत-मार्ग दर्शक हैं, उसी प्रकार प्रव्रजित होकर भी आपने हमारे बहुत से कार्यों में-यावत्-मार्ग दर्शक होंगे ।

तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी—"जइ णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया ! सएसु-सएसु कुडुंबेसु जेट्ठपुत्ते कुडुंबमज्झे ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह ।" ते वि तहेव पाउब्भवंति ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर-यावत्-दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो हे देवानुप्रियो ! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों का भार ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रगट होओ अर्थात् आओ । वे भी तदनुसार कार्य करके शैलक राजा के पास आते हैं ।

सेलगपुत्तमंडुयस्स रायाभिसेयो—

१९७. तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाइं पाउब्भवमाणाइं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेंति ।

तए णं से सेलए राया बहूहिं गणनायगेहि य-जाव-संधिवालेहि य सद्धिं संपरिवुडे मंडुयं कुमारं-जाव-रायाभिसेएणं अभिसिंचइ ।

तए णं से मंडुए राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

शैलक पुत्र मंडुक का राज्याभिषेक—

१९७. तत्पश्चात् शैलक राजा पाँच सौ मंत्रियों को अपने पास आया हुआ देखता है, देखकर हृष्ट—तुष्ट हो कौटम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मंडुक कुमार के महान अर्थ वाले, महामूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करो ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष मंडुक कुमार के राज्याभिषेक के लिये महान अर्थ वाले, मूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल सामग्री तैयार कराके उपस्थित करते हैं । उसके बाद वह शैलक राजा बहुत से गणनायकों-यावत्-संधिवालकों से परिवृत होकर मंडुककुमार को राज्याभिषेक से अभिसिंचित करता है ।

तत्पश्चात् वह मंडुक महान हिमवन्त पर्वत के समान, पृथ्वी के इन्द्र महान मलयाचल मन्दर पर्वत के समान राजा हो गया-यावत्-राज्य पर शासन करते हुए विचरने लगा ।

सेलयस्स पव्वज्जा—

१९८. तए णं से सेलए मंडुयं रायं आपुच्छइ ।

तए णं मंडुए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सेलगपुरं नयरं आसिय-सित्त-सुइय-सम्मज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं से मंडुए दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

शैलक की प्रव्रज्या—

१९८. तत्पश्चात् शैलक ने मंडुक राजा से दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी ।

तब मंडुक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शैलकपुर नगर को सींचकर, स्वच्छ कर लीप पोत कर-यावत्-उत्तम सुगंधित द्रव्यों की सुगंध से गंध की बट्टी के समान करो और करवाओ और ऐसा करके, कराके मेरी यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो ।

तत्पश्चात मंडुकराजा ने पुनः दुबारा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सेलगस्स रण्णो महत्थं महग्घं महरिहं विउलं निक्खमणाभिसेयं करेह । जहेव मेहस्स तहेव नवरं—पउमावती देवी अग्गकेसे पडिच्छइ, सव्वे वि पडिग्गहं गहाय सीयं दुरुहंति ।

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शैलक राजा के महान अर्थ वाले, महामूल्यवान और महान पुरुषों के योग्य विपुल अभिनिष्क्रमण अभिषेक की सामग्री तैयार कर उपस्थित करो। जिस प्रकार मेघकुमार के अध्ययन में कहा है, उसीप्रकार यहाँ भी कहना चाहिये, किन्तु विशेषता यह है कि पद्मावती देवी शैलक राजा के अग्रकेश ग्रहण करती है, सबने ही प्रतिग्रह-पात्र आदि लेकर शिविका पर आरूढ़ हुए ।

अवसेसं तहेव-जाव—

शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिये यावत्—

तए णं से सेलगे पंचहिं मंतिसएहिं सद्धिं सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव सुए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ-जाव-पव्वइए ।

तत्पश्चात् शैलक पाँच सौ मंत्रियों के साथ अपने आप पंचमुष्टि लोच करते हैं, लोच करके जहाँ शुक अनगार हैं, वहाँ आते हैं, आकर शुक अनगार की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं-यावत्-प्रव्रजित हुए ।

तए णं से सेलए अणगारे जाए-जाव-कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं विहरइ ।

तत्पश्चात् वह शैलक अनगार हो गये-यावत्-कर्मों को विनाश करने के लिये तत्पर हो विचरण करते हैं ।

तए णं से सेलए सुयस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

उसके बाद वह शैलक शुक के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन करते हैं, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास, अर्धमास की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

सुयस्स पुण्डरीयपव्वए परिनिव्वाणं—

शुक का पुण्डरीक पर्वत पर परिनिर्वाण—

१९९. तए णं से सुए सेलगस्स अणगारस्स ताइं पंथगपामोक्खाइं पंच अणगारसयाइं सीसत्ताए वियरइ ।

१९९. तत्पश्चात् शुक अनगार ने शैलक अनगार को पंथक प्रभृति पाँच सौ अनगार शिष्य रूप में प्रदान किये ।

तए णं से सुए अण्णया कयाइ सेलगपुराओ नगराओ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

उसके बाद वह शुक अनगार किसी एक दिन शैलकपुर नगर से, सुभूमिभाग उद्यान से निकले, निकलकर बाहर जनपद विहार से विचरने लगे ।

तए णं से सुए अणगारे अण्णया कयाइ तेणं अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव पुण्डरीयपव्वए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

तत्पश्चात् वह शुक अनगार किसी समय उन एक हजार अनगारों के साथ अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ पुण्डरीक पर्वत था, वहाँ आये-यावत्-सर्व दुःखों का क्षय कर मुक्त हुए ।

सेलगस्स रोगातंका—

शैलक को रोग-आतंक—

२००. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य तुच्छेहि य लूहेहि य अरसेहि य विरसेहि य सीएहि य उण्हेहि य कालाइक्कंतेहि य पमाणाइक्कंतेहि य निच्चं पाणभोयणेहि य पयइ-सुकुमालस्स सुहोचियस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला-जाव-दुरहियासा । कंडु-दाह-पित्तज्जर-परिगयसरीरे यावि विहरइ ।

२००. तत्पश्चात नित्य (प्रतिदिन) अन्त (चना आदि) प्रान्त (बचा-खुचा तुच्छ (अल्प) रूक्ष, अरस विरस, शीत, उष्ण, कालातिक्रांत (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) प्रमाणातिक्रांत (कम ज्यादा) प्रमाण में भोजन-पान मिलने से प्रकृति से सुकुमाल और सुख भोग के योग्य शैलक राजर्षि के शरीर में वेदना उत्पन्न हो गई जो उत्कट-यावत्-असह्य थी । उनका शरीर खुजली और दाह उत्पन्न करने वाले पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया ।

तए णं से सेलए तेणं रोगायंकेणं सुक्के भुक्खे जाए यावि होत्था।

तए णं से सेलए अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे-जाव-जेणेव सुभूमिभागे-जाव-विहरइ। परिसा निग्गया। मंडुओ वि निग्गओ सेलगं अणगारं वंदइ नमंसइ पज्जुवासइ।

तब वह शैलक उस रोग आतंक से शुष्क बुभुक्षित हो गये अर्थात् उनका शरीर सूख गया और भूख से पीड़ित रहने लगे।

तत्पश्चात् शैलक राजर्षि किसी समय अनुक्रम से विचरते हुए-यावत्-जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था-यावत्-विचरण करने लगे। उनकी वंदना के लिये पर्षदा निकली। मंडुक भी निकला और शैलक अनगार को वंदना-नमस्कार और उपासना करता है।

सेलग स्स मंडुयकया तिगिच्छा—

२०१. तए णं से मंडुए राया सेलगस्स अणगारस्स सरीरगं सुक्कं भुक्खं सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"अहण्णं भंते! तुब्भं अहापवत्तेहिं तेगिच्छिएहिं अहापवत्तेणं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेगिच्छं आउट्टावेमि। तुब्भे णं भंते! मम जाणसालासु समोसरह, फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओगिण्हित्ताणं विहरह।"

तए णं से सेलए अणगारे मंडुयस्स रण्णो एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ।

तए णं से मंडुए सेलगं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तए णं से सेलए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते स-भंड-मत्तोवगरण-मायाए पंथगपामोक्खेहिं पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं सेलगपुरमणु-प्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मंडुयस्स रण्णो जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

तए णं से मंडुए तेगिच्छिए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया! सेलगस्स फासु-एसणिज्जेणं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेगिच्छं आउट्टेह।"

तए णं ते तेगिच्छिया मंडुएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठा सेलगस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति, मज्जपाणगं च से उवदिसंति।

तए णं तस्स सेलगस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं मज्जपाणएण य से रोगायंके उवसंते यावि होत्था—हट्ठे मल्ल-सरीरे जाए ववगयरोगायंके।

शैलक की मंडुक—कृत चिकित्सा—

२०१. तब मंडुक राजा ने शैलक अनगार का शरीर शुष्क, निस्तेज, सब प्रकार की व्याधि, पीड़ा वाला और रोगयुक्त देखा, देखकर उसने इस प्रकार कहा—

'भगवन्! मैं आपकी साधु के योग्य चिकित्सकों से, साधु के योग्य औषध, भेषज और भोजन पान (पथ्य) द्वारा चिकित्सा कराऊँगा, अतएव हे भगवन्! आप मेरी यानशाला में पदार्पण करें और प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शैया, संस्तारक ग्रहण करके विचरण कीजिये।'

तत्पश्चात् शैलक अनगार ने मंडुक राजा के इस आशय को ठीक है ऐसा, कहकर स्वीकार किया।

उसके बाद मंडुक ने शैलक को वंदना, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी ओर लौट गया।

तत्पश्चात् वह शैलक राजर्षि कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रकाशमान प्रभात रूप होने पर-यावत्-सहस्ररश्मि दिवाकर के जाज्वल्यमान तेज के साथ उदित होने पर भंडमात्र (पात्र) उपकरण लेकर पंथक आदि पाँच सौ अनगारों के साथ शैलकपुर में प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट हो करके जहाँ मंडुक राजा की यानशाला थी, वहाँ आये, आकर प्रासुक एषणीय, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक का ग्रहण करके विचरने लगा।

तत्पश्चात् मंडुक राजा ने चिकित्सकों को बुलाया और बुला-कर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो!' आप शैलक राजर्षि की प्रासुक, एषणीय, औषध भेषज, आहार-पानी से चिकित्सा करो।'

तत्पश्चात् वे चिकित्सक मंडुक राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होकर यथा-प्रवृत्त (साधु के योग्य) औषध, भेषज, भोजन पान से चिकित्सा करते हैं और मद्यपान करने के लिये कहते हैं।

तत्पश्चात् यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, भक्तपान और मद्यपान से शैलक राजर्षि का रोगातंक शांत हो गया, हृष्ट-पुष्ट-यावत्-बलवान शरीर वाले हो गये, रोगातंक पूरी तरह दूर हो गये।

सेलगस्स पमत्तविहारे—

२०२. तए णं से सेलए तंसि रोगायंकंसि उवसंतंसि समाणंसि तंसि विपुले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थ-विहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्त-विहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते यावि विहरइ, नो संचाएइ फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा संथारयं पच्चप्पि-णित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

शैलक का प्रमत्त विहार—

२०२. तत्पश्चात् शैलक उस रोगातंक के उपशांत हो जाने पर और उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम और मद्यपान से मूर्च्छित, मत्त, गृद्ध, अत्यन्त आसक्त, अवसन्न-आलसी, अवसन्न विहारी, पार्श्वस्थ (संयम साधना को एक किनारे रख देने वाले) पार्श्वस्थ विहारी कुशील (चारित्राचार के विराधक) कुशील विहारी, प्रमत्त, प्रमत्त विहारी, संसक्त, संसक्त विहारी हो गये, शेषकाल (चातुर्मास के सिवाय) में शैया-संस्तारक के लिये पीठ, फलक रखने वाले प्रमादी हो गये, प्रासुक और एषणीय पीठ, फलक आदि को वापिस देकर और मंडुक राजा से आज्ञा-अनुमति लेकर बाहर जनपद विहार करने में असमर्थ हो गये।

पंथगं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ता सेलगसिस्साणं विहारो—

२०३. तए णं तेसिं पंथगवज्जाणं पंचण्हं अणगारसयाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणाणं अयमेया-रूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रज्जं-जाव-पव्वइए विउले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए नो संचाएइ फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरित्तए। नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणाणं निग्गंथाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउ-बद्ध-पीढ-फलग-सेज्जासंथारए पमत्ताणं विहरित्तए। तं सेयं खलुं देवाणुप्पिया! अम्हं कल्लं सेलगं रायरिसिं आपु-च्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए—एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता कल्लं जेणेव सेलए रायरिसी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेलयं रायरिसिं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणंति, पच्चप्पिणित्ता पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेंति, ठावेत्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

पंथक अनगार को वैयावृत्यकारी स्थापित करके शैलक शिष्यों का विहार—

२०३ तत्पश्चात पंथक को छोड़कर उन पांच सौ अनगारों को किसी समय एकत्रित होकर मध्यरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-उत्पन्न हुआ कि शैलकराजर्षि राज्य का त्याग कर-यावत-प्रव्रजित हुए थे किन्तु विपुल अशन, पान, स्वादिम, खादिम और मद्यपान में मूर्च्छित हो जाने से प्रासुक, एषणीय, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक को वापस लौटाकर और मंडुक राजा की अनुमति लेकर बाहर जनपद विहार से विचरण करने में समर्थ नहीं है। अतएव हे देवानु-प्रियो! श्रमण निग्रंथों को अवसन्न पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संसक्त, और शेषकाल में भी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक रखने वाले प्रमादी के पास रहना नहीं कल्पता है। इसलिये देवानु-प्रियों! हमारे लिये यही श्रेयस्कर हैं कि हम शैलक राजर्षि से आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ, फलक, शैया संस्तारक वापस सौंपकर और पंथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित कर अर्थात् सेवा में नियुक्त करके बाहर जनपद में अभ्युदय-उद्यम पूर्वक विचरण करें-इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल (दूसरे दिन प्रातः) जहाँ शैलक राजर्षि थे, वहाँ आये, आकर शैलक राजर्षि की आज्ञा लेकर प्रतिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक वापस लौटाकर पंथक अनगार को वैया-वृत्यकारी नियुक्त किया, नियुक्त करके बाहरी जनपद विहार से विचरण करने लगे।

मज्जपमत्तस्स सेलगस्स पंथगेणं चाउम्मासिय-खामणा—

२०४. तए णं से पंथए सेलगस्स सेज्जा-संथारय-उच्चार-पासवण-खेल्ल-सिंघाणमत्त-ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणएणं अगिलाए विणएणं [illegible] करेइ।

महाप्रमत्त शैलक की पंथक द्वारा चातुर्मासिक क्षमापना—

२०४. तत्पश्चात वह पंथक अनगार शैलक की शैया, संस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, खेल (श्लेष्म) संघाण (नासिका मल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार पानी आदि से बिना ग्लानि के विनयपूर्वक वैयावृत्य करते हैं।

तए णं से सेलए अण्णया कयाइ कत्तिय-चाउम्मासियंसि विउलं असणं-पाण-खाइम-साइमं आहारमाहारिए सुबहुं च मज्ज-पाणयं पीए पच्चावरण्हकालसमयंसि सुहप्पसुत्ते।

तत्पश्चात वह शैलक किसी समय कार्तिक चौमासी के दिन विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन का आहार करके और अत्यधिक मद्यपान करके सांयकाल के समय सुखपूर्वक-आराम से सो रहे थे।

तए णं से पंथए कत्तिय-चाउम्मासियंसि कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मासियं पडिक्कमिउकामे सेलगं रायरिसिं खामणट्ठयाए सीसेणं पाएसु संघट्टेइ।

उस समय पंथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके, दैवसिक प्रतिक्रमण करके चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से शैलक राजर्षि को खमाने के लिये अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया।

सेलगस्स कोवो पंथएणं खामणा य—

शैलक का कोप और पंथक की क्षमापना—

२०५. तए णं से सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता एवं वयासी—"से केस णं भो! एस अपत्थियपत्थए, दुरंत-पंत-लक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं ममं सुहपसुत्तं पाएसु संघट्टेइ?"

२०५. तत्पश्चात् पंथक शिष्य के द्वारा मस्तक से चरणों का स्पर्श करने पर शैलक राजर्षि क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित, चंड और दाँतों को मिसमिसाते हुए उठे और उठकर इस प्रकार बोले—'अरे यह कौन है अप्रार्थित (मृत्यु) की इच्छा रखने वाला, दुरन्त, पंत लक्षण वाला, निर्भागी, चातुर्दशिक, श्री, ह्री, धृति, कीर्ति से रहित, जिसने सुखपूर्वक सोते समय मेरे पैरों का स्पर्श किया है?'

तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तसिए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"अहं णं भंते! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते चाउम्मासियं पडिक्कंते चाउम्मासियं खामेमाणे देवाणुप्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि। तं खामेमि णं तुब्भे देवाणुप्पिया! खमंतु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए" त्ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ।

तब पंथक अनगार शैलक के इस कथन को सुनकर भयभीत, त्रस्त और खेदखिन्न हो दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर घुमाकर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

'भगवन्! मैं पंथक हूँ, कायोत्सर्ग पूर्वक दैवसिक प्रतिक्रमण करने के बाद चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करके चातुर्मासिक क्षमापना के लिये आप देवानुप्रिय को वंदना करते समय मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है। सो देवानुप्रिय! आप क्षमा कीजिये, देवानुप्रिय! मेरा अपराध क्षमा करें, देवानुप्रिय! आप क्षमा करने-देने के योग्य हैं, पुनः ऐसा नहीं करूंगा' इस प्रकार कहकर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से विनयपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिये पुनः पुनः खमाने लगे।

सेलगस्स पुणो अब्भुज्जयविहारो—

शैलक का पुनः अभ्युद्यत विहार—

२०६. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

२०६. तत्पश्चात पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर शैलक राजर्षि को इस प्रकार का यह अध्यवसाय, चिन्तन, अभिलाष, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

एवं खलु अहं चइत्ता रज्जं-जाव-पव्वइए ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्तविहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते यावि विहरामि। तं नो खलु कप्पइ समणाणं निग्गंथाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ताणं विहरित्तए।

मैं राज्य आदि का त्याग कर-यावत्-प्रव्रजित हुआ था किन्तु अवसन्न (आलसी) अवसन्नविहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, प्रमत्त, प्रमत्तविहारी, संसक्त और संसक्तविहारी होकर शेष काल में भी पीठ, फलक, शैया, सस्तारक में प्रमादी बनकर विचर रहा हूँ-रह रहा हूँ। लेकिन श्रमण निर्ग्रंथों को अवसन्न-पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संसक्त और शेषकाल में पीठ, फलक, शैया, संस्तारक में प्रमादी बनकर विचरना नहीं कल्पता है।

तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणित्ता पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवय-विहारेणं विहरइ ।

इसलिये कल मंडुक राजा की अनुमति लेकर प्रतिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक वापस सौंपकर पंथक अनगार के साथ बाहर अभ्युदय पूर्वक (उग्रता के साथ) जनपद विहार से विचरना ही मेरे लिये श्रेयस्कर हैं— इस प्रकार का विचार किया, विचार करके मंडुक राजा से अनुमति लेकर पडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक वापस देकर पंथक अनगार के साथ बाहर अभ्युद्यत (उग्र) जनपद विहार से विचरते हैं ।

सेलगकहोवसंहारेणोवएसो—

२०७. एवामेव समणाउसो ! जे निग्गंथे वा निग्गंथी वा ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्त-विहारी संसत्ते संसत्तविहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूण समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-कंतार भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ ।

शैलक कथोपसंहार के द्वारा उपदेश—

२०७. हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी अवसन्न, अवसन्नविहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, प्रमत्त, प्रमत्तविहारी, संसक्त, संसक्तविहारी होकर तथा शेष काल में भी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक में प्रमादी होकर विचरण करता है, वह इसीलोक में बहुत से श्रमणों, बहुत सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा, परिभव का पात्र होता है और परलोक में भी बहुत से दुःखों को प्राप्त करता है तथा अनादि अनन्त, विस्तृत चातुर्गति रूप संसार वन में वारंवार परिभ्रमण करता रहता है—भटकता रहता है—

सेलगसमोवे सेलगसिस्साणं पुणो आगमणं—

२०८. तए णं ते पंथकवज्जा पंच अणगारसया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सेलए रायरिसी पंथएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरइ । तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए', —एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता सेलगं रायरिसिं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति ।

शैलक के समीप शैलक-शिष्यों का पुनः आगमन—

२०८. तत्पश्चात पंथक को छोड़कर पाँच सौ अनगारों ने इस कथा (समाचार) को जानकर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शैलकराजर्षि पंथक अनगार के साथ बाहर अभ्युद्यत जनपद विहार से विचर रहे हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! शैलक राजर्षि के समीप जाकर उनके साथ विचरण करना हमारे लिये श्रेयस्कर है'—इस प्रकार का इन्होंने विचार किया, विचार करके शैलक राजर्षि के निकट जाकर उनके साथ विचरण करने लगे ।

पुण्डरीयपव्वए सव्वेसिं सेलगाईणं निव्वाणं—

२०९. तए णं सेलए रायरिसी पंथगपामोक्खा य पंच अणगारसया बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता । जेणेव पुण्डरीए पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुण्डरीयपव्वयं सणियं-सणियं दुरूहंति, दुरूहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहंति । पडिलेहित्ता-जाव-संलेहणा-झूसणा-झूसिया भत्तपाण-पडियाइक्खिया पाओवगमणं णुवन्ना ।

पुण्डरीक पर्वत पर शैलक आदि सभी का निर्वाण—

२०९. तत्पश्चात शैलक राजर्षि और पंथक आदि पाँच सौ अनगार बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, एकदा जहाँ पुण्डरीक पर्वत था, वहाँ आये आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर सघन मेघ के समान काले और जो देवों का वास स्थान है अथवा जहाँ देवों का आगमन होता है ऐसे पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके-यावत्-संलेखना द्वारा आत्मा को निष्कर्मा करके एवं आत्मरमण करते हुए आहार-पानी का त्याग करके पादोपगमन अनशन धारण कर लिया ।

तए णं से सेलए रायरिसी पंथगपामोक्खा य पंच अणगारसया बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता-जाव-केवलवर-नाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा बुद्धा मुत्ता अंतगडा परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा।

तत्पश्चात् वह शैलक राजर्षि और पंथक आदि पांच सौ अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय पालकर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मरमण करते हुए और आत्मा को शुद्ध करते हुए साठ भक्तों का अनशन द्वारा त्याग करके अर्थात् एक मास का अनशन तप करके-यावत्-सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन को उत्पन्न करके, तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकर, परिनिवृत और सर्वदुःखों का निःशेष रूप से क्षय करने वाले हुए अर्थात् सिद्धावस्था प्राप्त की।

एवामेव समणाउसो! जो निग्गंथो वा निग्गंथी अब्भुज्जएणं जणवय-विहारेणं विहरइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाणं य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रंथनी अभ्युद्यत होकर (उद्यम सहित, यतना पूर्वक) जनपद विहार से विचरते हैं, वे इसी लोक में बहुत से श्रमणों, बहुत सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं द्वारा अर्चा, वंदना, नमस्कार, पूजा, सत्कार सम्मान के योग्य होते हैं—पात्र होते हैं तथा कल्याण रूप मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप एवं विनयपूर्वक पर्युपासना—सेवा के पात्र होते हैं।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ।

परलोक में भी उन्हें हस्तछेदन, कर्णछेदन, नासिकाछेदन, हृदय को आघात पहुँचाने वाले-मर्मघातक, राजा आदि के द्वारा किये जाने वाले उपद्रव और फांसी लगाकर लटकना आदि दुःख नहीं भोगना पड़ते हैं तथा अनादि, अनन्त विशाल चातुर्गति रूप भवाटवी को पार कर जाते हैं, उलांघ जाते हैं।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

२१०. सिढिलिय-संजम-कज्जा वि होइउं उज्जमंति जइ पच्छा।
संवेगाओ ते सेलाओ व्व आराहया होंति।१।
—णाया० सु० १ अ० ५

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा—

२१०. संयम—साधना में शिथिल होने पर भी यदि बाद में संवेग होने से संयम में उद्यम—पुरुषार्थ करे तो शैलक ऋषि के समान वह आराधक होता है। —णाया. श्रु. १ अ. ५

□ □

१२. रहनेमिसमणस्स राजीमइए समुद्धारो

१२. रथनेमि श्रमण का राजीमती द्वारा समुद्धार

२११. सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
'वसुदेव' त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए।१।
तस्स भज्जा दुवे आसी, 'रोहिणी-देवई' तहा।
तासि दोण्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा 'राम-केसवा'।२।
सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
'समुद्दविजए' नामं, रायलक्खणसंजुए।३।

२११. सोरियपुर नगर में राजलक्षणों से युक्त, महान ऋद्धि से संपन्न, 'वसुदेव' नाम का राजा था।१।

उसकी रोहिणी और देवकी नाम की दो भार्यायें थीं। उनके राम (बलदेव) और केशव (कृष्ण)-दो प्रियपुत्र थे।२।

सोरियपुर नगर में राजलक्षणों से युक्त महान ऋद्धि से संपन्न 'समुद्र विजय' नाम का राजा था।३।

तस्स भज्जा 'सिवा' नाम, तीसे पुत्ते महायसे।
भगवं 'अरिट्ठनेमि' त्ति लोगनाहे दमीसरे।४।
सोऽरिट्ठनेमिनामो उ, लक्खण-स्सर-संजुओ।
अट्ठसहस्स-लक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी।५।

उसके शिवा नाम की पत्नी थी, जिसका पुत्र महान यशस्वी, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ लोकनाथ भगवान अरिष्टनेमि था।४।

वह अरिष्टनेमि सुस्वरत्व, गंभीरता आदि लक्षणों से युक्त था। एक हजार आठ शुभ लक्षणों का धारक था। उसका गोत्र गौतम और श्याम वर्ण का था।५।

वज्जरिसह-सघयणो, समचउरंसो झसोदरो।
तस्स 'रायमईकन्नं' भज्जं जायइ केसवो।६।

वह वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान वाला था। उसका उदर मछली के उदर जैसा कोमल था। राजमती कन्या उसकी भार्या बने, यह याचना केशव ने की।६।

अह सा रायवरकन्ना, सुसीला चारुपेहणी।
सव्व-लक्खण-संपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा।७।
अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं।
इहागच्छउ कुमारो, जा से कन्नं ददामिऽहं।८।
सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कय-कोउय-मंगलो।
दिव्वजुयल-परिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ।९।

महान राजा की वह कन्या सुशील, सुन्दर सर्वलक्षण संपन्न थी, उसकी शारीरिक कान्ति विद्युत की प्रभा के समान थी।७।

उसके पिता ने महान ऋद्धिशाली वासुदेव से कहा—कुमार यहाँ आयें, मैं अपनी कन्या उसके लिए दे सकता हूँ।८।

सर्व औषधियों के जल से (अरिष्टनेमि को) स्नान कराया गया। यथाविधि कौतुक एवं मंगल किये गये। दिव्य वस्त्र युगल पहनाया और उसे आभरणों से विभूषित किया गया।९।

मत्तं च गंधहत्थिं च, वासुदेवस्स जेट्ठगं।
आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा।१०।

वासुदेव के सबसे बड़े मत्त गन्धहस्ती पर अरिष्टनेमि आरूढ़ हुए तो वे सिर पर चूड़ामणि की भाँति बहुत अधिक सुशोभित हुए।१०।

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिओ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ।११।
चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं।
तुडियाण सन्निनाएणं, दिव्वेणं गगणं फुसे।१२।

अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र और चामरों से सुशोभित थे, दशार चक्र यदुवंशीक्षत्रियों के समूह-से वे सर्वतः परिवृत्त थे।११।

चतुरंगिणी सेना यथाक्रम से सजाई हुई थी और वाद्यों का गगन स्पर्शी दिव्यनाद हो रहा था।।१२।

२१२. एयारिसीए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य।
नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो।१३।
अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाणे भयद्दुए।
वाडेहिं पंजरेहिं च, संनिरुद्धे सुदुक्खिए।१४।
जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए।
पासित्ता से महापन्ने, सारहिं इणमब्बवी।१५।

२१२. ऐसी उत्तम ऋद्धि और द्युति के साथ, वह वृष्णि-पुंगव अपने भवन से निकले।१३।

तदनन्तर उन्होंने वाड़ों और पिंजरों में बंद किये हुए भयत्रस्त एवं अति दुःखित प्राणियों को देखा। वे जीवन की अंतिम स्थिति (मृत्यु) के सम्मुख थे। मांसाहारियों द्वारा खाये जाने वाले थे। उन्हें देखकर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथी को (पीलवान को) इस प्रकार कहा—।१५।

अरिट्ठनेमि—

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ।१६।

अरिष्टनेमि—

ये सब सुखार्थी प्राणी किसलिये इन वाड़ों और पिंजरों में रोके गये हैं।१६।

सारही—

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं जणं।१७।

सारथी—

सारथी ने कहा—ये सब भद्र प्राणी आपके विवाह कार्य में बहुत से लोगों को खिलाने के लिये हैं।१७।

अरिट्ठनेमि—

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाण-विणासणं।
चिंतेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिए हिओ।१८।

अरिष्टनेमि—

बहुत से प्राणियों के विनाश होने सम्बन्धी उसके वचन को सुनकर जीवों के प्रति करुणाशील महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि इस प्रकार चिन्तन करते हैं—।१८।

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई।१९।

यदि मेरे निमित्त इन बहुत से प्राणियों का हनन होता है तो परलोक में मेरे लिये यह श्रेयस्कर नहीं होगा।१९।

सो कुण्डलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामइ।२०।

उन महायशस्वी ने कुण्डल युगल, सूत्रक कर-धनी और सब आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये।२०।

मणपरिणामो य कओ, देवा य जहोइयं समोइण्णा।
सव्विड्ढीइ सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे।२१।

मन में इन परिणामों-भावों के आते ही, उनके यथोचित अभिनिष्क्रमण के लिये देव अपनी ऋद्धि और परिषद् के साथ उपस्थित हो गये।२१।

देव-मणुस्सपरिवुडो, सिविया-रयणं तओ समारूढो।
निक्खमिय बारगाओ, रेवययम्मि ठिओ भगवं।२२।

देव और मनुष्यों से परिवृत्त वे अरिष्टनेमि शिविका रत्न, श्रेष्ठ पालखी में—आरूढ़ हुए वारावती (द्वारिका) से चलकर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर स्थित हुए।२२।

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ।
साहस्सीय परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं।२३।

उद्यान मे पहुँचकर उत्तम शिविका से उतर कर एक हजार व्यक्तियों के साथ चित्रा नक्षत्र में निष्क्रमण किया।२३।

अह से सुगंधगंधीए, तुरियं मउअकुंचिए।
सयमेव लुंचई केसे, पंचट्ठाहिं समाहिओ।२४।

तदनन्तर समाहित-समाधि संपन्न अरिष्टनेमि ने तत्काल सुगंध से सुवासित कोमल और घुंघराले अपने बालों का स्वयं अपने हाथों से पंचमुष्टिक लोच किया।२४।

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं।
इच्छियमणोरहं तुरियं, पावसु तं दमीसरा!।२५।

वासुदेव-कृष्ण ने लुप्तकेश और जितेन्द्रिय भगवान से कहा—हे दमीश्वर! अपने अभीष्ट मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करें।२५।

नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तहेव य।
खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य।२६।

आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शांति-क्षमा और मुक्ति— निर्लोभता के द्वारा आगे बढ़ें।२६।

एवं ते राम-केसवा, दसारा य बहू जणा।
अरिट्ठणेमिं वंदित्ता, अइगया बारगापुरिं।२७।

इस प्रकार राम (बलभद्र), केशव—कृष्ण और दशार-यादव तथा अन्य बहुत से लोग अरिष्टनेमि को वंदना करके द्वारकापुरी लौट आये।२७।

२१३. सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।
नीहासा य निराणंदा, सोगेण उ समुच्छया।२८।

२१३. भगवान अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या को सुनकर उस राज-कन्या राजीमती के हास्य (हँसी, प्रसन्नता) और आनन्द आदि लुप्त हो गये और वह शोक से मूर्च्छित हो गई।२८।

राईमई विचिंतेइ, धिरत्थु मम जीवियं।
जाऽहं तेणं परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम।२९।

राजीमती ने सोचा—धिक्कार है मेरे जीवन को! चूंकि मैं उनके द्वारा परित्यक्ता हूँ, अतः मेरा प्रव्रजित होना श्रेयस्कर है।२९।

अह सा भमरसन्निभे, कुच्च-फणग-पसाहिए।
सयमेव लुंचइ केसे, धिइमंता ववस्सिया।३०।

धीर तथा कृत संकल्प उस राजीमती ने कूर्च और कंघी से संवारे हुए भौंरों जैसे काले केशों का अपने हाथों से लुंचन कर लिया।३०।

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसिं जिइंदियं।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने! लहुं लहुं।३१।

वासुदेव ने लुप्तकेशा और जितेन्द्रिय राजीमती से कहा—कन्ये! तू इस घोर संसार-सागर को अति शीघ्र पार कर।३१।

सा पव्वइया सती, पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुया।३२।

शीलवती और बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित होकर अपने साथ बहुत से स्वजनों और परिजनों को भी प्रव्रजित कराया।३२।

२१४. गिरिं रेवययं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा।
वासंते अंधयारंमि, अंतो लयणस्स सा ठिया।३३।

२१४. वह रैवतक पर्वत पर जा रही थी कि बीच में वर्षा से भीग गई। जोर की वर्षा हो रही थी, अंधकार छाया हुआ था। इस स्थिति में वह एक गुफा के अन्दर पहुंची।३३।

चीवराइं विसारंती, जहा जायत्ति पासिया।
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि।३४।

सुखाने के लिये अपने चीवरों-वस्त्रों को फैलाती हुई राजीमती को यथाजात (नग्न) रूप में रथनेमि ने देखा। जिससे उसका मन विचलित हुआ। राजीमती ने भी बाद में उसको देखा।३४।

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं।
बाहाहिं काउ संगोप्फं, वेवमाणी निसीयई।३५।

वहाँ एकान्त में उस संयत को देखकर वह डर गई। भय से कांपती हुई वह अपनी भुजाओं से शरीर को आवृत करके बैठ गई।३५।

रहनेमी—

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कमुदाहरे।३६।
'रहनेमी' अहं भद्दे!, सुरूवे! चारुपेहिणी!।
ममं भयाहि सुयणु, न ते पीला भविस्सइ।३७।

रथनेमि—

तब समुद्रविजय के अंगजात उस राजपुत्र ने उसे भयभीत और कांपती हुई देखकर इस प्रकार का वचन कहा—।३६।

'हे भद्रे! मैं रथनेमि हूँ, हे सुन्दरी! हे चारूभाषिणी! मुझे स्वीकार कर! हे सुतनु! तुझे कोई पीड़ा-दुख नहीं होगा।३७।

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा पुणो पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो।३८।

मनुष्य जन्म निश्चित रूप से अत्यन्त दुर्लभ है। आओ हम भोगों को भोगें। भोगों का भोगकर के बाद में हम जिन मार्ग में दीक्षित होंगे।३८।

राइमई—

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोय-पराजियं।
राईमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहिं।३९।

राजीमती—

संयम के प्रतिभग्नोद्योग-उत्साहहीन और भोगवासना से पराजित रथनेमि को देखकर वह राजीमती सम्भ्रान्त नहीं हुई घबराई नहीं। उसने पुनः वस्त्रों से अपने शरीर को ढक लिया।३९।

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया नियमव्वए।
जाई कुलं च सीलं च रक्खमाणी तयं वए।४०।

नियमों और व्रतों में सुस्थित-अविचल उस श्रेष्ठ राजकन्या ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा—।४०।

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नल-कूबरो।
तहा वि ते न इच्छामि, जइ सि सक्खं पुरंदरो।४१।

यदि तू रूप से वैमश्रमण के समान है, ललित कलाओं से नल कूबर जैसा है और तो क्या, तू साक्षात् इन्द्र भी है, तो भी मैं तुझे नहीं चाहती हूँ।४१।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे।

अगंधन कुल में उत्पन्न हुये सर्प जैसे धूमकेतु, प्रज्वलित, भयंकर दुष्प्रवेश अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए अपने विष को पुनः पीने की इच्छा नहीं करते हैं।४२।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे।४२।

हे अयशःकामिन्! धिक्कार है तुझे कि तू योगी जीवन के लिये वान्त-त्यक्त भोगों को पुनः भोगने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरना श्रेयस्कर है।४३।

अहं च भोगरायस्स, तं च सि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर।४३।

मैं भोजराजा की पुत्री हूँ और तू अन्धकवृष्णि का पौत्र है। हम कुल में गंधन सर्प की तरह न बनें। तू निभृत (स्थिर) होकर संयम में विचरण कर।४४।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि।४४।

यदि तू जिस किसी स्त्री को देखकर ऐसे ही राग भाव करेगा तो वायु से कंपित हड (वनस्पति विशेष) की तरह अस्थित आत्मा होगा।४४।

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वणिस्सरो।
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ।४५।

जैसे गोपाल और भाण्डपाल उस द्रव्य—गायों और किराने आदि के स्वामी नहीं होते हैं, इसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं होगा ।४५।

कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे।

तू क्रोध, मान, माया और लोभ का पूर्णतया निग्रह करके, इन्द्रियों को वश में करके अपने आपको उपसंहार-अनाचार से निवृत्त कर।

रहनेमी—

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ।४६।[1]

रथनेमि—

उस संयम शीला के सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि धर्म में वैसे ही सम्यक् प्रकार से स्थिर हो गया जैसे अंकुश से हाथी स्थिर हो जाता है ।४६।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ।४७।

वह मन, वचन और काय से गुप्त, जितेन्द्रिय और व्रतों में दृढ़ होकर जीवन पर्यन्त निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन करता रहा ।४७।

उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दुण्णि वि केवली।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ।४८।

उग्र तप का आचरण करके दोनों ही केवली हुए और सब कर्मों का क्षय करके उन्होंने अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त किया अर्थात् सिद्ध, मुक्त हुए ।४८।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा सो पुरिसोत्तमो ।४९।[2]
त्ति बेमि।
—उत्त० अ० २२।

संबद्ध, पंडित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं। वे पुरुषोत्तम रथनेमि की तरह भोगों से निवृत्त हो जाते हैं ।४९।
—ऐसा मैं कहता हूँ।

□

१३. पासतित्थे अंगई सुपइट्ठो पुण्णभद्दाई य

१३. पार्श्व तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठ और पूर्ण भद्रादि

गाहा—

चंदे, सूरे, सुक्के, बहुपुत्तिय, पुन्न, माणिभद्दे य।
दत्ते, सिवे, वले या, अणाढिए चेव बोद्धव्वे ।१।

गाथा—

……१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ बहुपुत्रिक ५ पूर्ण ६ मणिभद्र, ७ दत्त, ८ शिव ९ वलेपक और १० अनाहत— ये दस अध्ययन जानना चाहिये।

२१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया।

२१५. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसमें गुणशिलक चैत्य था। राजा का नाम श्रेणिक था। उस काल उस समय में, स्वामी-श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ, धर्म कथा सुनने के लिये परिषदा निकली।

१. दस० अ० २ गा० १०
२. दस० अ० २ गा० ११

चंदेण जोइसिंदेण वद्धमाणसमवसरणे नट्टविही—

२१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चन्दे जोइसिन्दे जोइसराया चन्दवडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए चन्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं-जाव-विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं, जहा सूरियाभे, आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता-जाव-सुरिन्दाभिगमणजोग्गं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणन्ति। सूसरा घण्टा-जाव-विउव्वणा। नवरं जाणविमाणं जोयणसहस्सवित्थिण्णं अद्धतेवट्ठिजोयणसमूसियं, महिन्दज्झओ पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियाभस्स, -जाव- आगओ। नट्टविही, तहेव पडिगओ।

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र द्वारा वर्धमान-समवसरण में नाट्यविधि

२१६. उस काल और उस समय में ज्योतिष्क देवों का इन्द्र और ज्योतिष्क देवों का राजा चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर बैठा हुआ चार हजार सामानिक देवों के साथ-यावत् विचरता था। वह श्रेष्ठ-निर्मल अवधिज्ञान से इस परिपूर्ण जम्बू द्वीप नामक द्वीप को अवलोकन करते हुए देखता है, श्रमण भगवान महावीर को देखकर सूर्याभदेव के सदृश आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर-यावत्-सुरेन्द्र के जाने योग्य बनाकर उस आज्ञा की पूर्ति कर वापस सूचना देते हैं। सुस्वर घंटा-यावत्-विकुर्वणा करता है। विशेष इतना है कि इसका यान विमान एक हजार योजन विस्तीर्ण, साढ़े तिरेसठ योजन ऊँचा और महेन्द्र ध्वज पच्चीस योजन ऊँचा है, शेष वर्णन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिये-यावत्-आया। नाट्य विधि की और उसी प्रकार वापस लौट गया।

"भन्ते" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं० पुच्छा। कूडागारसाला सरीरं अणुपविट्ठा० पुव्वभवो-एवं खलु गोयमा!—

'हे भगवन्! इस तरह श्रमण भगवान् महावीर को सम्बोधित कर भगवान गौतम ने पूछा। हे गौतम! कूटाकार शाला में प्रवेश करने की तरह वह शरीर में प्रविष्ट हो गया अर्थात् इस समस्त नाट्य विधि को दिखाने की रचना कर और नाटक दिखाकर उसे अपने देवशरीर में प्रविष्ट कर लिया। फिर भगवान गौतम ने पूछा—पूर्वजन्म में कौन था? उत्तर में श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम—

चंदस्स जोइसिंदस्स पुव्वभववण्णणे अंगइकहा—

२१७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नयरी होत्था। कोट्ठए चेइए। तत्थ णं सावत्थीए नयरीए अङ्गई नामं गाहावई होत्था अड्ढे-जाव- अपरिभूए। तए णं से अङ्गई गाहावई सावत्थीए नयरीए बहूणं नगरनिगम जहा आणन्दो।

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के पूर्वभव-वर्णन में अंगति कथा—

२१७. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहाँ कोष्टक नामक चैत्य था। उस श्रावस्ती नगरी में अंगति नाम का गाथापति था—जो धन वैभव आदि से संपन्न-यावत्-किसी से पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था। वह अंगति गाथापति वाणिज्य ग्राम के आनन्द गाथापति की तरह बहुत से नगर वासियों, व्यापारियों आदि के लिये आधारभूत होकर श्रावस्ती नगरी में निवास करता था!

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे णं अरहा पुरिसादाणीए आइगरे, जहा महावीरो, नवुस्सेहे सोलसेहिं समण-साहस्सीहिं अट्ठतीसाए अज्जिया-सहस्सेहिं- जाव-कोट्ठए समोसढे। परिसा निग्गया।

उस काल, उस समय में महावीर की तरह धर्म की आदि करने वाले, नौ हाथ ऊँचे पुरुषादानी पार्श्व अर्हत् सोलह हजार श्रमणों और अड़तीस हजार आर्यिकाओं के समूह के साथ-यावत्-कोष्टक चैत्य में पधारे। परिषदा निकली।

तए णं से अङ्गई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठे जहा कत्तिओ सेट्ठी तहा निग्गच्छइ-जाव- पज्जुवासइ। धम्मं सोच्चा निसम्म, जं नवरं, "देवाणुप्पिया! जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेमि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं-जाव-पव्वयामि"। जहा गङ्गदत्ते तहा पव्वइए-जाव-गुत्तबम्भयारी।

तत्पश्चात् वह अंगति गाथापति इस इष्ट वृतान्त को सुनकर हृष्ट तुष्ट-होता हुआ कार्तिक सेठ की तरह निकलता है—यावत्-पर्युपासना करता है। धर्म श्रवण कर और अवधारण कर, किन्तु विशेष यह है—'हे देवानुप्रिय! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करूँगा। तत्पश्चात् मैं आप देवानुप्रिय के पास-यावत्-प्रव्रजित होऊँगा।' जैसे गंगदत्त प्रव्रजित हुआ था उसी प्रकार प्रव्रजित हुआ—यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

तए णं से अङ्गई अणगारे पासस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-जाव-भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणइ। पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा चन्दवडिंसए विमाणे उववाइयाए सभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसन्तरिए चन्दे जोइसिन्दत्ताए उववन्ने।

तए णं से चन्दे जोइसिन्दे जोइसराया अहुणोववन्ने समाणे पञ्चविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा—१. आहारपज्जत्तीए, २. सरीरपज्जत्तीए, ३. इन्दियपज्जत्तीए ४. सासोसासपज्जत्तीए, ५. भासामणपज्जत्तीए।

चंदस्स ठिई, महाविदेहे सिद्धी य—

२१८. "चन्दस्स णं भन्ते ! जोइसिन्दस्स जोइसरन्नो केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?"

"गोयमा ! पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं।

एवं खलु गोयमा ! चन्दस्स-जाव-जोइसरन्नो सा दिव्वा देविड्ढी०।"

"चन्दे णं भन्ते ! जोइसिन्दे जोइसराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।"

पासतित्थे सुपइट्ठो अणगारो

वड्ढमाणसमोसरणे सूरेण नट्टविही—

२१९. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। समोसरणं। जहा चन्दो तहा सूरो वि आगओ-जाव-नट्टविहिं उवंसित्ता पडिगओ।

सूरस्स पुव्वभवो—

२२० पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी नयरी। सुपइट्ठे नामं गाहावइ होत्था अड्ढे-जाव-अपरिभूए जहेव अंगई-जाव-विहरइ। पासो समोसढो, जहा अंगई तहेव पव्वइए, तहेव विराहियसामण्णे-जाव-महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-अन्तं करेहिइ।

—पुप्फि० वग्ग० ३, अ० २

तत्पश्चात् उस अंगति अनगार ने पार्श्व अर्हत् के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ भक्त-यावत्-भावना करते हुए वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया। पालन करके अर्धमासिक संलेखना और अनशन द्वारा तीस भक्तों—भोजनों का त्याग कर किन्तु श्रामण्य की विराधना करने वाला होने से काल मास में काल करके चन्द्रावतंसक विमान में उपपात सभा में देवदूष्य वस्त्र से आच्छादित देव शैया में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् वह ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिष राजा चन्द्र अधुनोत्पन्न होकर—अथवा अभी उत्पन्न हुआ वह ज्योतिषेन्द्र ज्योतिष राजा चन्द्र पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुआ, यथा-१ आहारपर्याप्ति २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति ४ श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, ५ भाषा - मनः पर्याप्ति।

चन्द्र की स्थिति और महाविदेह में सिद्धि—

२१८. 'हे भगवन् ! ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिष राजा चन्द्र की कितने काल की स्थिति निरूपित की है ? बतलाई है ?'

'हे गौतम ! एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम प्रमाण उसकी स्थिति है।

उस प्रकार हे गौतम ! ज्योतिषियों के राजा चन्द्र को वह दिव्य ऋद्धि प्राप्त हुई है।'

'हे भदन्त ! ज्योतिरिन्द्र, ज्योतिष राजा चन्द्र आयु के क्षय, भव के क्षय और स्थिति के क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?'

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा-यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

पार्श्वतीर्थ में सुप्रतिष्ठित अनगार

वर्धमान समवसरण में सूर्य द्वारा नाट्य विधि—

२१९. उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। भगवान् का पदार्पण हुआ। जैसे चन्द्र आया उसी प्रकार सूर्य भी आया—यावत् नाट्य विधि दिखाकर वापस लौट गया।

सूर्य का पूर्वभव—

२२०. पूर्वभव के लिये पृच्छा ! श्रावस्ती नगरी थी। सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति था, जो अंगति के सदृश धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत था-यावत्-विचरता है। पार्श्वप्रभु का आगमन हुआ, जैसे अंगति, उसी प्रकार प्रव्रजित हुआ, उसी प्रकार श्रामण्य की विराधना करने वाला-यावत्—महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा-यावत्-अन्त करेगा।

पुण्णभद्दे अणगारे

पुण्णभद्ददेवेण वड्ढमाण-परिसाए नट्टविही—

२२१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं पुण्णभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामणियसाहस्सीहिं, जहा सूरियाभो-जाव-बत्तीसइविहं नट्टविहिं उवदंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। कूडागारसाला।

पुण्णभद्ददेवस्स पुव्वभवो—

२२२. पुव्वभवपुच्छा। "एवं खलु गोयमा!—

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे मणिवइया नामं नयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा-जाव-वण्णओ।

चन्दो राया। ताराइण्णे चेइए। तत्थ णं मणिवइयाए नयरीए पुण्णभद्दे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे-जाव-अपरिभूए। तेणं कालेणं तेणं समयेणं थेरा भगवन्तो जाइसंपन्ना-जाव-जीवियासमरणभयविप्पमुक्का वहुस्सुया बहुपरिवारा पुव्वाणुपुव्वि-जाव-समोसढा। परिसा निग्गया। तए णं से पुण्णभद्दे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ-जाव-जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते, तहेव निग्गच्छइ-जाव-निक्खन्तो-जाव-गुत्तबम्भयारी।

तए णं से पुण्णभद्दे अणगारे थेराणं भगवन्ताणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम-जाव-भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणइ। पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मेकप्पे पुण्णभद्दे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि-जाव-भासा-मणपज्जत्तीए।

पूर्णभद्र अनगार

पूर्णभद्र देव द्वारा वर्धमान-परिषदा में नाट्यविधि—

२२१. उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। स्वामी श्रमण भगवान् महावीर पधारे। धर्मश्रवण करने के लिये परिषदा निकली।

उस काल और उस समय सौधर्मकल्प के पूर्णभद्र विमान में सुधर्मा सभा में चार हजार सामानिक देवों के साथ पूर्णभद्र सिंहासन पर बैठा हुआ पूर्णभद्र देव सूर्याभदेव के सदृश यावत्-बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखाकर जिस दिशा में प्रादुर्भूत हुआ था—जिस दिशा से आया था उसी दिशा में वापस चला गया। कूटागार शाला अर्थात् गौतम भगवान् द्वारा इस देव की ऋद्धि आदि के विषय में पूछने पर श्रमण भगवान् महावीर ने कूटागार शाला के दृष्टान्त से उन्हें प्रतिबोधित किया।

पूर्णभद्र देव का पूर्वभव—

२२२. गौतम ने पूर्णभद्र देव के पूर्वभव के विषय में पूछा—'हे गौतम! वह इस प्रकार है—

उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मणिपदिका नाम की नगरी थी—जो ऋद्धि वैभव से युक्त, भय-व्याधि से विहीन और धन्य-धान्य समृद्धि से संपन्न थी-यावत्-वर्णन करो।

वहाँ के राजा का नाम चन्द्र था। ताराकीर्ण नामक चैत्य था। उस मणिपदिका नगरी में पूर्णभद्र नामक गाथापति निवास करता था, जो धनाढ्य-यावत्-पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था। उस काल, उस समय जाति संपन्न-यावत्-जीवनाकांक्षा और मरण भय से रहित, बहुश्रुत, बहुत शिष्य समुदाय वाले स्थविर भगवन्त पूर्वानुपूर्वी परंपरा से विचरते हुए-यावत्-पधारे। धर्म सुनने परिषदा निकली। तत्पश्चात् वह पूर्ण भद्र गाथापति इस वृत्तान्त को सुनकर हर्षित-संतुष्ट होता हुआ-यावत्-व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में आगत गंगदत्त के समान निकलता है—यावत्-दीक्षित हुआ-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

तत्पश्चात् वह पूर्णभद्र अनगार स्थविर भगवन्तों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है। अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ षष्ठ अष्ठ भक्त-यावत्-भावित करके बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करता है। पालन कर मासिक संलेखना और अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्यागकर आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त होकर काल मास में काल करके सौधर्म कल्प में, पूर्णभद्र विमान में उपपात सभा में देव शयनीय शैया में यावत्-भाषा-मनः पर्याप्ति से पर्याप्त भाव को प्राप्त किया।

२२३. एवं खलु गोयमा ! पुण्णभद्देणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी-जाव-अभिसमन्नागया ।

पुण्णभद्दस्स णं भन्ते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?

गोयमा ! दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

पुण्णभद्दे णं भन्ते । देवे ताओ देवलोयाओ-जाव-कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणं अन्तं काहिइ । —पुप्फि० उवं० ३, अ० ५

२२३. इस प्रकार हे गौतम ! पूर्णभद्र देव ने वह दिव्य देव ऋद्धि-यावत्—अधिगत की है ।'

हे भगवन् ! पूर्णभद्र देव की स्थिति कितने काल की बतलाई है ?

हे गौतम ! दो सागरोपम की स्थिति कही है ।

हे भदन्त ! वह पूर्ण भद्र देव उस देवलोक से-यावत्-कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

माणिभद्दे समणे

मणिभद्र श्रमण

माणिभद्ददेवेण वड्ढमाण-समोसरणे नट्टविही—

२२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसरिए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं माणिभद्दे देवे सभाए सुहम्माए माणिभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा पुण्णभद्दो तहेव आगमणं, नट्टविही ।

मणिभद्र देव द्वारा वर्धमान समवसरण में नाट्यविधि—

२२४. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी का पदार्पण हुआ उस काल और उस समय में मणिभद्र देव सुधर्मा सभा में मणिभद्र सिंहासन पर चार हजार सामनिक देवों के साथ बैठा था, पूर्णभद्र के समान इस मणिभद्र देव का आगमन हुआ और नाट्यविधि दिखाकर वापस चला गया ।

माणिभद्ददेवस्स पुव्वभव्वो—

२२५. पुव्वभवपुच्छा । मणिवइया नयरी, माणिभद्दे गाहावई, थेराणं अन्तिए पव्वज्जा, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूइं वासाइं परियाओ, मासिया संलेहणा, सट्ठि भत्ताइं—। माणिभद्दे विमाणे उववाओ, दो सागरोवमाइं ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणमंतं काहिइ । —पुप्फि० उवं० ३, अ० ६

मणिभद्र देव का पूर्वभव—

२२५. भगवान गौतम ने इस मणिभद्र देव के पूर्वभव के विषय में श्रमण भगवान् महावीर से पूछा । (उत्तर मे बताया)—मणिपदिका-नगरी, मणिभद्र गाथापति, स्थविरों के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, ग्यारह अंगों का अध्ययन किया; बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, मासिक सलेखना, साठ भक्तों का त्याग—मणिभद्र विमान में उत्पन्न हुआ, दो सागरोपम की स्थिति, महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

दत्ताई अण्णे अणगारा

२२६. ७ एवं दत्ते, ८ सिवे, ९ वले, १० अणाढिए, सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे । सव्वेंसि दो सागरोवमाइं ठिई । विमाणा देवसरिसनामा । पुव्वभवे दत्ते चन्दणानामाए, सिवे महिलाए, बले हत्थिणपुरे नयरे, अणाढिए काकन्दीए । चेइयाइं जहा संगहणीए ।

—पुप्फि० उवं० ३, अ० ७-१०

दत्त आदि अन्य अनगार

२२६. इसी प्रकार ७ दत्त, ८ शिव, ९ बल १० अनाधृत, इन सब देवों का वर्णन भी पूर्णभद्र देव के समान जानना चाहिये । सभी की दो-दो सागरोपम की स्थिति है । इन देवों के नाम सदृश ही इनके विमानों का नाम है । अपने पूर्वभव में दत्त की चन्दना नामकी नगरी थी, शिव मिथिला में, बल हस्तिनापुर में और अनाधृत काकंदी नगरी में जन्मे थे । चैत्यों के नाम संग्रहणी गाथा के अनुसार जानना चाहिये ।

□ □

१४. जियसत्तु-सुबुद्धिकहाणयं

१४. जितशत्रु-सुबुद्धि कथानक

चंपानयरीए जित्तसत्तुराया सुबुद्धिअमच्चे य—

२२७. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया। धारिणी देवी। अदीणसत्तू कुमारे जुवराया वि होत्था। सुबुद्धी अमच्चे-जाव-रज्जधुराचिंतए, समणोवासए।

चंपानगरी में जितशत्रु राजा और सुबुद्धि अमात्य—

२२७. उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उस चंपानगरी में जितशत्रु नामक राजा था। उसकी धारिणी नाम की रानी थी और अदीनशत्रु नामक कुमार युवराज था सुबुद्धि नामक अमात्य था, वह-यावत्-राज्य की धुरा का चिन्तक श्रमणोपासक था।

फरिहोदगवण्णओ—

२२८. तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमेण एगे फरिहोदए यावि होत्था—मेय-वसा-रुहिर-मंस-पूय-पडल-पोच्चडे मयग-कलेवर-संछण्णे अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा गोमडे इ वा जाव-मय-कुहिय-विणट्ठ-किमिण-वावण्ण-दुरभिगंधे किमि-जालाउले संसत्ते असुइ-विगय-वीभच्छ-दरिसणिज्जे। भवेयारूवे सिया ?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते।

परिखोदक वर्णन—

२२८. उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में एक परिखा (खाई) का पानी था, जो चर्बी, नसों, रुधिर, मांस और पीव के समूह से युक्त था, मृतक शरीरों से व्याप्त था। वर्ण से अमनोज्ञ, गंध से अमनोज्ञ, रूप से अमनोज्ञ, स्पर्श से अमनोज्ञ, था-वह इस प्रकार था जैसे—कोई सर्प का मृत कलेवर हो अथवा गाय का कलेवर हो—यावत्-मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ों से व्याप्त और जानवरों के द्वारा खाये हुए किसी मृत कलेवर के समान दुर्गन्ध वाला था, कृमियों के समूह से परिपूर्ण था, जीवों से भरा हुआ था, अशुचि विकृत और वीभत्स दिखलाई देता था। क्या वह ऐसे स्वरूप वाला था ?

नहीं यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह जल इससे भी अधिक अनिष्ट, अकंततर असुन्दर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर, अमणामतर, गंध वाला था अर्थात् खाई का पानी इससे भी अधिक अनिष्ट आदि रूप, रस गंध वर्ण वाला था।

जियसत्तुणा पाणभोयाणपसंसा—

२२९. तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए कयबलि-कम्मे-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे बहूहिं राईसर-जाव-सत्थवाह-पभिईहिं सद्धिं भोयणमंडवंसि भोयणवेलाए सुहासण-वरगए विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे एवं च णं विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तंसि विपुलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि जायविम्हए ते बहवे राईसर-जाव-सत्थवाह-पभिईओ, एवं वयासी—

अहो णं देवाणुप्पिया! इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए

जितशत्रु द्वारा पान-भोजन प्रशंसा—

२२९. तत्पश्चात् वह जित शत्रु राजा किसी एक समय स्नान करके, बलिकर्म करके यावत्-अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत करके अनेक राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह प्रभृति के साथ भोजन मंडप में भोजन के समय सुखद आसन पर बैठकर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का आस्वादन लेते हुए, विशेष आस्वादन लेते हुए, परस्पर में देते हुए, खाते हुए विचर रहा था, अर्थात् खा रहा था। भोजन जीमने के अनन्तर हाथ मुँह धोकर कुल्ला करके शुचि होकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य, भोजन के विषय में वह विस्मित हुआ और उन बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह प्रभृति से इस प्रकार बोला—

'अहो देवानुप्रियो ! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम, भोजन वर्ण से, गंध से, रस से और स्पर्श से युक्त है अर्थात्

अस्सायणिज्जे विसायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे विंहणिज्जे सव्विदियगाय-पल्हायणिज्जे।

तए णं ते वहवे राईसर-जाव-सत्थवाहपभिईओ जियसत्तुं रायं एवं वयासी—

तहेव ण सामी ! जण्णं तुब्भे वयह-अहो णं इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे वण्णेणं उववेए-जाव-सव्विदियगाय-पल्हायणिज्जे।

सुबुद्धिणा पुग्गलस्स सुहासुहपरिण्णमणकहणं—

२३०. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—

अहो णं देवाणुप्पिया सुबुद्धी ! इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम साइमे-जाव-सव्विदियगाय-पल्हायणिज्जे।

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

अहो णं देवाणुप्पिया सुबुद्धी ! इमे मणुण्णे असण-पाण-खाइम-साइमे-जाव-सव्विदियगायपल्हायणिज्जे।

तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे जियसत्तुं रायं एवं वयासी—"नो खलु सामी ! अम्हं एयंसि मणुण्णंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि केइ विम्हए।

एवं खलु सामी ! सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा वि पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति। सुरूवा वि पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा वि पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति। सुब्भिगंधा वि पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा वि दुरसा वि पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति। सुरसा वि पोग्गला दुरसत्ताए परिणमंति, दुरसा पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति सुहफासा वि पोग्गला दुहफासत्ताए परिणमंति, दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति, पओग-वीससा-परिणया वि य णं सामी ! पोग्गला पण्णत्ता।"

इसका रूप आदि सभी कुछ श्रेष्ठ, उत्तम है, जिसने यह आस्वादन करने योग्य है, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य है, पुष्टिकारक है, दर्प उत्पन्न करने वाला है, मद जनक है, बलवर्धक है तथा समस्त इन्द्रियों और शरीर को विशिष्ट आल्हाद उत्पन्न करने वाला है।

तब बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्, सार्थवाह आदि जितशत्रु से इस प्रकार बोले—

'आप जो कहते हैं, स्वामिन् ! बात वैसी ही है, अहो यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन वर्णोपेत है-यावत्सब इन्द्रियों और शरीर को विशिष्ट आल्हाद पैदा करने वाला है।

सुबुद्धि के द्वारा पुद्गल का शुभाशुभ परिणमन कथन—

२३०. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से कहा—

अहो देवानुप्रिय ! सुबुद्धि ! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन-समस्त इन्द्रियों एवं गात्र को विशिष्ट आल्हादजनक है।

तब सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजाके इस अर्थ (कथन) का आदर (अनुमोदन) नहीं किया न ध्यान दिया और चुप रह गया।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने दुबारा और तिबारा भी इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय सुबुद्धि ! यह मनोज्ञ, अशन, पान, खादिम और स्वादिम यावत्-समस्त इन्द्रियों और शरीर को विशिष्ट आल्हादजनक है।'

तत्पश्चात् वह सुबुद्धि अमात्य जितशत्रु राजा के दूसरे और तीसरे बार कहे गये इस कथन को सुनकर जितशत्रु राजा से इस प्रकार बोला—'स्वामिन् ! मुझे इस मनोज्ञ, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, के बारे में कुछ भी विस्मय नहीं अर्थात् इसके लिये मैं विस्मित नहीं हूँ।

क्योंकि हे स्वामिन् ! सुरभि (उत्तम-शुभ) शब्द वाले पुद्गल भी दुरभि (अशुभ) शब्द के रूप में परिणत हो जाते हैं और दुरभि शब्द वाले पुद्गल भी सुरभि शब्द रूप में परिणत हो जाते हैं। सुन्दर रूप वाले पुद्गल भी खराब रूप के रूप में परिणत हो जाते हैं और खराब रूप वाले पुद्गल उत्तम रूप में परिणत हो जाते हैं और दुरभिगंध वाले पुद्गल भी सुरभिगंध वाले पुद्गल के रूप में बदल जाते हैं। सुन्दर रस वाले पुद्गल भी खराब रस वाले पुद्गलों में परिणत हो जाते हैं और खराब रस वाले पुद्गल भी सुन्दर रस वाले पुद्गल के रूप में परिणत हो जाते हैं। शुभ स्पर्शवाले पुद्गल भी अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल बन जाते हैं और अशुभ स्पर्श वाले पुद्गल शुभ स्पर्श वाले बन जाते हैं। हे स्वामिन् ! सब पुद्गलों में प्रयोग (जीव प्रयत्न) से और विस्रसा (स्वाभाविक रूप से) परिणमन होता ही रहता है।

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइक्खमाणस्स पण्णवेमाणस्स परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तब राजा जितशत्रु ने ऐसा कहने वाले, बोलने वाले, कथन करने वाले, प्ररूपणा करने वाले सुबुद्धि अमात्य के कथन का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया और चुपचाप रहा ।

जियसत्तुणा फरिहोदगस्स गरहा—

२३१. तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए आसखंधवरगए महयाभड-चडगर-आसवाहिणिआए निज्जायमाणे तस्स फरिहोदयस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ ।

जितशत्रु द्वारा परिखोदक की गर्हा—

२३१. तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह जितशत्रु राजा स्नान करके उत्तम अश्व पर सवार होकर बहुत से भटों, सुभटों के साथ घुड़सवारी के लिये निकला और उस खाई के पानी के समीप पहुँचा ।

तए णं जियसत्तू राया तस्स फरिहोदगस्स असुभेणं गंधेणं अभिभूए समाणे सएणं उत्तरिज्जगेणं आसगं पिहेइ, पिहेत्ता एगंतं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहवे ईसर-जाव-सत्थवाहपभियओ एवं वयासी—

अहो णं देवाणुप्पिया ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं ते बहवे ईसर-जाव-सत्थवाहपभियओ एवं वयासी—

तहेव णं तं सामी ! जं णं तुब्भे वयह—अहो णं इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—अहो णं सुबुद्धी ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने उस खाई के पानी की अशुभ गंध से घबराकर अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढक लिया, ढककर एकांत में चला गया, जाकर साथ में आये राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि से इस प्रकार कहा—

अहो देवानुप्रियो ! यह खाई का पानी अमनोज्ञ वर्ण वाला, यावत्-अमनोज्ञ स्पर्श वाला है, वह इस प्रकार का है जैसे किसी-सर्प का मृत कलेवर हो—यावत् उससे भी अधिक अमनोज्ञ है।'

तत्पश्चात् वे बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि इस प्रकार बोले—

हे स्वामिन् ! आप जो यह ऐसा करते हैं, वह वैसा ही है—सत्य है कि—अहो ! यह खाई का पानी वर्ण से अमनोज्ञ-यावत्-स्पर्श से अमनोज्ञ है, ठीक उसी प्रकार जैसे साँप का मृत कलेवर हो,—यावत्-उससे भी अधिक अतीव अमनोज्ञ गंध वाला है ।

तत्पश्चात् उस जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—अहो सुबुद्धि ! यह खाई का पानी वर्ण से अमनोज्ञ है ।—यावत्-स्पर्श से अमनोज्ञ है, जैसे कि सर्प का मृत कलेवर हो यावत्-उससे भी अधिक अत्यन्त अमनोज्ञ गंध वाला है ।

सुबुद्धिणा पुणो वि पुग्गलसहाववण्णणं—

२३२. तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

अहो णं सुबुद्धी ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे फासेणं,

से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एवं वयासी—"नो खलु सामी ! अम्हं एयंसि फरिहोदगंसि केइ विम्हए । एवं खलु सामी :—

सुबुद्धि द्वारा पुनः पुद्गल स्वभाव वर्णन—

२३२. तब उस सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजा के इस कथन का न तो आदर किया और न अनुमोदन किया, किन्तु मौन रहा ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार भी सुबुद्धि अमात्य से इसी प्रकार कहा—

अहो सुबुद्धि ! यह परिखा का पानी अमनोज्ञ वर्ण वाला-यावत्-अमनोज्ञ स्पर्श वाला है,

जैसे कि सर्प का मृत शरीर हो-यावत्-उससे भी अधिक अत्यन्त अमनोज्ञ गंधवाला है ।

तत्पश्चात् वह सुबुद्धि अमात्य दुबारा और तिबारा भी जितशत्रु राजा के उक्त कथन को सुनकर इस प्रकार बोला—"हे स्वामिन् ! मुझे तो इस खाई के पानी के विषय में कुछ भी विस्मय नहीं है । क्योंकि स्वामिन् !—

सुब्भिसद्दा वि पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति-जाव-दुहफासा वि पोग्गला सुहफासत्ताए परिणमंति । पओग-वीससा-परिणया वि य णं सामी ! पोग्गला पण्णत्ता ।"

शुभ शब्द वाले पुद्गल भी अशुभ शब्द वाले पुद्गल के रूप में परिणत हो जाते हैं—यावत्-खराब स्पर्श वाले भी पुद्गल शुभ स्पर्श वाले पुद्गल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। स्वामिन् ! प्रयोग और विस्रसा परिणाम वाले पुद्गल होते हैं अर्थात् पुद्गलों में प्रयत्न से और स्वाभाविक रूप से परिणमन होता रहता है।

जियसत्तुणा विरोधो—

२३३. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धि अमच्चं एवं वयासी—

"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अप्पाणं च परं च तदुभयं च बहूहि य असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेण य वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहराहि ।"

जितशत्रु द्वारा विरोध—

२३३. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रिय ! तुम स्वयं को, दूसरे को और स्व-पर दोनों को असत् वस्तु धर्म की उद्भावना करके मिथ्या अभिनिवेश (दुराग्रह) द्वारा भ्रम में मत डालो, अपने को चतुर मत समझो।

सुबुद्धिणा जलसोधणं—

२३४. तए णं सुबुद्धिस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो ण जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए जिणपण्णत्ते भावे नो उवलभइ । तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पच्चइएहिं पुरिसेहिं सद्धिं अंतरावणाओ नवए घडए य पडए य गेण्हइ, गेण्हित्ता संझाकालसमयंसि पविरलमणूसंसि निसंत-पडिनिसंतंसि जेणेव फरिहोदए तेणेव उवागच्छइ,

सुबुद्धि द्वारा जल शोधन—

२३४. तत्पश्चात् सुबुद्धि को इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—अहो जितशत्रु राजा सत् [विद्यमान] तत्वरूप, तथ्य, अवितथ और सद्भूत जिन भगवान द्वारा प्ररूपित भावों को नहीं जानता है अतएव मेरे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि मैं जितशत्रु राजा को सत् तत्वरूप, तथ्य, अवितथ (सत्य) सद्भूत जिन प्ररूपित भावों को भली प्रकार से समझाऊँ और इस बात को अंगीकार कराऊँ-ऐसा विचार किया, विचार करके विश्वासपात्र पुरुषों से अन्तरापण कुम्हार की दूकान से बहुत से नये घड़े मंगवाये, मंगवा कर जब कोई विरले मनुष्य आ जा रहे थे और प्रायः सभी अपने-अपने घरों में विश्राम लेने लगे थे, ऐसे सन्ध्या-काल के समय जहां खाई का पानी था, वहाँ आया।

उवागच्छित्ता तं फरिहोदगं गेण्हावेइ, गेण्हावित्ता नवएसु घडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछियमुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता दोच्चं पि नवएसु घडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछियमुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता तच्चं पि नवएसु घडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जखारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछिय-मुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता सत्तरत्तं संवसावेइ ।

वहाँ आकर खाई का वह पानी ग्रहण करवाया, ग्रहण करवा के नये घड़ों में छनवाया, छनवाकर घड़ों में डलवाया, डलवाकर उनमें सज्जीखार डलवाया, सज्जीखार डलवाकर उन घड़ों को मुद्रालांछित करवाया, अर्थात् घड़ों के मुंह बन्द करके उन पर सील मुहर लगवाई, मुद्रित करके सात रात दिन उन्हें वैसे ही रहने दिया। सात रात्रि दिन वैसा ही रहने देने के बाद दूसरी बार पुनः नये घड़ों में पलटवाया, पलटवाकर सज्जीखार डलवाया, सज्जीखार डलवाकर मुद्रालांछित करवाया, करवा कर सात दिन रात उन्हें वैसे ही रहने दिया, सात दिन रात वैसे रखने के बाद तीसरी बार भी नये घड़ों में छनवाया, छनवाकर नये घड़ों में पलटवाया, पलटवाकर सज्जीखार डलवाया, सज्जीखार डलवाकर मुद्रालांछित करवाया, करवा कर सात दिन रात उसे रहने दिया।

एवं खलु एएणं उवाएणं अंतरा गालावेमाणे अंतरा पक्खिवावेमाणे अंतरा य संवसावेमाणे सत्तसत्तराइंदियाइं परिवसावेइ ।

इस तरह इस उपाय से बीच-बीच में छनवाया, बीच-बीच में नये घड़ों में डलवाया और बीच-बीच में [illegible] वह पानी सात-सात दिन रात [illegible]।

तए णं से फरिहोदए सत्तमंसि सत्तयंसि परिणममाणंसि उदगरयणे जाए यावि होत्था—अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फालियवण्णाभे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए आसायणिज्जे विसायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे ।

तत्पश्चात् वह खाई का पानी सात सप्ताह में परिणत होता हुआ उदकरत्न [उत्तम जल] बन गया-' जो स्वच्छ, पथ्य, जात्य [उत्तम जाति का] तनु [हलका] हो गया, स्फटिक के समान मनोज्ञ वर्ण से युक्त, गंध से युक्त, रस से युक्त, स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, पुष्टिकारक, दीप्तिकारक, दर्पकारक, मदजनक, बलवर्धक तथा सर्व इन्द्रियों और शरीर को विशिष्ट आल्हाद उत्पन्न करने वाला हो गया ।

सुबुद्धिणा जलपेसणं—

२३५. तए णं सुबुद्धी जेणेव से उदगरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलंसि आसादेइ, आसादेत्ता तं उदगरयणं वण्णेणं उववेयं गंधेणं उववेयं रसेणं उववेयं फासेणं उववेयं आसायणिज्जं विसायणिज्जं पीणणिज्जं दीवणिज्जं दप्पणिज्जं मयणिज्जं बिंहणिज्जं सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जं जाणित्ता हट्ठतुट्ठे बहूहिं उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेइ, संभारेत्ता जियसत्तुस्स रण्णो पाणियघरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

सुबुद्धि द्वारा जल प्रेषण—

२३५. तत्पश्चात् सुबुद्धि जहाँ उदक रत्न था, वहाँ आया, आकर हथेली में लेकर उसको चखा, चखकर उस उत्तम जल को मनोज्ञ वर्ण से युक्त, मनोज्ञ गंध से युक्त, रस से युक्त, स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, पुष्टिकारक, दीप्तिजनक, दर्पकारक, मदजनक और बलवर्धक और सब इन्द्रियों एवं शरीर को विशिष्ट आल्हाद उत्पन्न करने वाला जानकर हर्षित, संतुष्ट हुआ, फिर जल को स्वादिष्ट बनाने वाले बहुत से द्रव्यों से उसे संवारा-सुस्वादु और सुगंधित बनाया, संवार कर जितशत्रु राजा के जल गृह के कर्मचारी को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"तुमं णं देवाणुप्पिया ! इमं उदगरयणं गेण्हाहि, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेज्जासि ।"

'देवानुप्रिय ! इस उदकरत्न को लो, इसे लेकर भोजन के समय जितशत्रु राजा को देना ।'

जियसत्तुणा उदगरयणपसंसा—

२३६. तए णं से पाडिय-घरिए सुबुद्धिस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं उदगरयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवट्ठवेइ ।

जितशत्रु द्वारा उदकरत्न प्रशंसा—

२३६. तत्पश्चात् जलगृह के उस कर्मचारी ने सुबुद्धि के इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस उदक रत्न को ग्रहण किया, ग्रहण करके भोजन के समय उसे जितशत्रु राजा के सामने उपस्थित किया ।

तए णं से जियसत्तू राया तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे एवं च णं विहरइ । जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तंसि उदगरयणंसि जायविम्हए ते बहवे राईसर-जाव-सत्यवाहपभिईओ एवं वयासी—"अहो णं देवाणुप्पिया ! इमे उदगरयणे अच्छे-जाव-सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्जे ।"

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम का आस्वादन करता हुआ, विशेष रूप से आस्वादन करता हुआ बाँटता हुआ-परोसता हुआ, खाता हुआ विचर रहा था । भोजन करने के अनन्तर भली प्रकार से शुचि-स्वच्छ होकर जल रत्न का पान करने से उसे विस्मय हुआ और बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि से इस प्रकार बोला—'अहो देवानुप्रियो ! यह उदकरत्न स्वच्छ-यावत्-सर्वइन्द्रियों और गात्र को आल्हाद उत्पन्न करने वाला है ।'

तए णं ते बहवे राईसर-जाव-सत्यवाहपभिईओ एवं वयासी—तहेव णं सामी ! जण्णं तुब्भे वयह—इमे उदगरयणे अच्छे-जाव-सव्विंदियगायपल्हायणिज्जे ।

तब वे बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि ने इस प्रकार कहा— 'स्वामिन् ! जैसा आप कहते हैं, बात ऐसी ही है- यह उदक रत्न स्वच्छ-यावत्-समस्त इन्द्रियों और शरीर को आल्हाद उत्पन्न करने वाला है ।'

जियसत्तुणा उदगाणयणपुच्छा—

२३७. तए णं जियसत्तू राया पाणिय-घरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एस णं तुमे देवाणुप्पिया ! उदगरयणे कओ आसादिते ?"

तए णं से पाणिय-घरिए जियसत्तुं एवं वयासी—"एस णं सामी ! मए उदगरयणे सुबुद्धिस्स अंतियाओ आसादिते।"

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"अहो णं सुबुद्धी ! केणं कारणेणं अहं तव अणिट्ठे-जाव अमणामे जेणं तुमं मम कल्लाकल्लिं भोयणवेलाए इमं उदगरयणं न उवट्ठवेसि ? तं एस णं तुमे देवाणुप्पिया ! उदगरयणे कओ उवलद्धे ?"

सुबुद्धिणा उत्तरं—

२३८. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—एस णं सामी ! से फरिहोदए।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी—केणं कारणेणं सुबुद्धी ! एस से फरिहोदए ?

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—

एवं खलु सामी ! तुब्भे तया मम एवमाइक्खमाणस्स-जाव-परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहह। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अवितहे सब्भूए जिणपण्णत्ते भावे नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ। तं सेयं खलु मम जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सब्भूयाणं जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए—एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता तं चेव जाव-पाणिय-घरियं सद्दावेमि, सद्दावेत्ता एवं वदामि—तुमं णं देवाणुप्पिया ! उदगरयणं जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेहि। तं एएणं कारणेणं सामी ! एस से फरिहोदए।"

जियसत्तुणा जलसोधणं—

२३९. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइक्ख-माणस्स-जाव-परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे अब्भिंतरट्ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

जितशत्रु द्वारा उदगानयन पृच्छा—

२३७. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने जलगृह के कर्मचारी को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार पूछा—

'देवानुप्रिय ! तुमने यह जल-रत्न कहाँ से प्राप्त किया है ?

तब वह जलगृह का कर्मचारी जितशत्रु से इस प्रकार बोला—'स्वामिन् ! यह उदक रत्न मैंने सुबुद्धि अमात्य के पास से प्राप्त किया है।'

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

अहो सुबुद्धि ! किस कारण मैं तुम्हें अनिष्ट-यावत्-अमणाम हूँ, जिससे तुम मेरे लिये प्रतिदिन भोजन के समय यह उदक रत्न नहीं भेजते ? देवानुप्रिय ! तुमने यह उदक रत्न कहाँ से प्राप्त किया है ?

सुबुद्धि का उत्तर—

२३८. तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! यह तो वही खाई का पानी है।'

तब जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा—'हे सुबुद्धि ! यह वही खाई का पानी कैसे है ? किस कारण से इसे खाई का पानी कहते हो ?

तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! उस समय मेरे द्वारा इस प्रकार कहे गये-यावत्-प्ररूपित किये गये वर्णन पर आपने श्रद्धा नहीं की थी-विश्वास नहीं किया था। तब मेरे मन में इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ-अहो जितशत्रु राजा सत्, तत्वरूप, तथ्य, अवितथ, सद्भूत जिन भगवान द्वारा भाषित भावों पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता है। अतएव मेरे लिये श्रेयस्कर है कि मैं जितशत्रु राजा को सत्, तत्वरूप, तथ्य, अवितथ, सद्भूत, जिन भाषित भावों को समझाकर पुद्गलों के परिणमन रूप अर्थ को अंगीकार कराऊँ अर्थात् मनवाऊँ।" मैंने ऐसा विचार किया, विचार करके पहले कहे अनुसार-यावत्-जलगृह के कर्मचारी को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! भोजन के समय तुम यह उदकरत्न जितशत्रु राजा के समक्ष उपस्थित करना।' इस कारण हे स्वामिन ! यह वही खाई का पानी है।'

जितशत्रु द्वारा जल-शोधन—

२३९. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि द्वारा कहे गये यावत्-प्ररूपित अर्थ पर न श्रद्धा की, न प्रतीति की और न रुचि की। श्रद्धा न करते हुए, प्रतीति न करते हुए और रुचि न करते हुए उसने अपने आभ्यन्तर परिषद् के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अंतरावणाओ नवए घडए पडए य गेण्हह - जाव-उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेह ।" तेवि तहेव सभारेंति, संभारेत्ता जियसत्तुस्स उवणेंति ।

जियसत्तुस्स पुच्छा—

२४०. तए णं से जियसत्तू राया तं उदगरयणं करयलंसि आसाएइ, आसाएत्ता आसायणिज्ज-जाव-सव्विंदियगाय-पल्हायणिज्ज जाणित्ता सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"सुबुद्धी ! एए णं तुमे संता तच्चा तहिया अवितहा सब्भूया भावा कओ उवलद्धा ?"

सुबुद्धिस्स उत्तरं—

२४१. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—एए णं सामी ! मए संता तच्चा तहिया अवितहा सब्भूया भावा जिणवयणाओ उवलद्धा ।

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी—तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तव अंतिए जिणवयणं निसामित्तए ।

जियसत्तुस्स समणोवासयत्तं—

२४२. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ तमाइक्खति जहा जीवा बज्झंति—जाव-पंच अणुव्वयाइं ।

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सुबुद्धिं अमच्चं एव वयासी—

"सद्दहामि णं देवाणुप्पिया ! निग्गंथं पावयणं-जाव-से जहेयं तुब्भे वयह । तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं-जाव-उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ ।

तए णं जियसत्तू समणोवासए जाए—अहिगयजीवाजीवे-जाव-पडिलाभेमाणे विहरइ ।

जियसत्तु-सुबुद्धीण पव्वज्जा—

२४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं । जियसत्तू राया

'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और कुम्हार की दुकान से नये घड़े लाओ-यावत्-जल सवारने-सुन्दर- शुद्ध बनाने वाले द्रव्यों से उसे संवारो ।' उन्होंने राजा के कथनानुसार पूर्वोक्त विधि से जल को संवारा, संवार कर जितशत्रु के पास लाये।

जितशत्रु का पृच्छा—

२४०. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने उस उदकरत्न को हथेली में लिया हथेली में लेकर आस्वादन करने योग्य-यावत्-सर्व इन्द्रियों और शरीर को आल्हादोत्पादक जानकर सुबुद्धि अमात्य को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

सुबुद्धि ! तुमने यह सत्, तत्वरूप, तथ्य, अवितथ, सद्भूत भावों (पदार्थों) को कहाँ से किससे जाना ?

सुबुद्धि का उत्तर—

२४१. तब सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा— स्वामिन् ! मैंने सत्, तत्वरूप, तथ्य, अवितथ सद्भूतभाव जिन भगवान के वचनों से जाने हैं ।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! मैं तुमसे जिनवचन सुनना चाहता हूँ ।

जितशत्रु का श्रमणोपासकत्व—

२४२. तब सुबुद्धि ने जितशत्रु को केवली-भाषित चातुर्याम रूप अद्भुत धर्म कहा—जिस कारण जीव कर्मबन्धन में बंधते हैं और मुक्त होते हैं, वह सब तत्त्व समझाया । पाँच अणुव्रत का स्वरूप बताया ।

तत्पश्चात् सुबुद्धि से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित और संतुष्ट होकर जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ-यावत्-जैसा कहते हो वैसा ही है । अतएव मैं तुमसे पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को ग्रहण करके विचरण करना चाहता हूँ ।'

'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलम्ब मत करो—सुबुद्धि अमात्य ने कहा ।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुबुद्धि से पाँच अणुव्रत-यावत् बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु श्रमणोपासक-श्रावक हो गया-जीव-अजीव का ज्ञाता हो गया-यावत्-निर्ग्रंथ श्रमण-श्रमणियों को आहार आदि का प्रतिलाभ देता हुआ रहने लगा ।

जितशत्रु-सुबुद्धि की प्रव्रज्या—

२४३. उस काल और उस समय में स्थविरों का पदार्पण हुआ ।

सुबुद्धी य निगच्छइ। सुबुद्धी धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी— जं नवरं—जियसत्तुं आपुच्छामि तओ पच्छा मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

जितशत्रु राजा और सुबुद्धि वन्दना करने निकले। सुबुद्धि ने धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर इस प्रकार कहा—इतना विशेष है कि जितशत्रु से पूछ लूं-आज्ञा ले लूं उसके बाद मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा।

अहासुहं देवाणुप्पिया !

'देवानुप्रिय ! जैसा सुख उपजे, वैसा करो' मुनि ने कहा।

तए णं सुबुद्धी जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी–एवं खलु सामी ! मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते। से वि य धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं सामी ! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तत्पश्चात्सुबुद्धि अमात्य जितशत्रु के पास आया, आकर उसने इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! मैंने स्थविर मुनि से धर्मोपदेश श्रवण किया है। उस धर्म की मैं इच्छा करता हूं, पुनः पुनः इच्छा करता हूँ, अभिरुचि करता हूं। इस कारण हे स्वामिन् ! मैं संसार के भय से उद्विग्न जन्म, जरा, मरण से भयभीत हुआ हूं, इसलिये आपकी आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके स्थविर मुनिराज के पास मुंडित होकर गृहवास का त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं।

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं एवं वयासी—अच्छसु ताव देवाणुप्पिया ! कइवयाइं वासाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा तओ पच्छा एगयओ थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो।

तब जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा—हे देवानु-प्रिय ! अभी कुछ वर्षों तक उदार मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगते हुए ठहरो, उसके बाद हम दोनों साथ-साथ स्थविर मुनि के पास मुंडित होकर, गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे !

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ।

तत्पश्चात् सुबुद्धि ने जितशत्रु राजा की इस बात को स्वी-कार कर लिया।

तए णं तस्स जियसत्तुस्स रण्णो सुबुद्धिणा सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुभवमाणस्स दुवालस वासाइं वीइक्कंताइं।

उसके बाद जितशत्रु राजा को सुबुद्धि अमात्य के साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

२४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। जियसत्तू राया धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी—जं नवरं—देवाणुप्पिया ! सुबुद्धिं अमच्चं आमंतेमि, जेट्ठपुत्तं रज्जे ठावेमि, तए णं तुब्भण्णं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

२४४. उस काल और उस समय में स्थविर मुनि का आगमन हुआ जितशत्रु राजा धर्मोपदेश श्रवण कर और आत्मसात् कर इस प्रकार बोला—इतना विशेष है कि—देवानुप्रिय ! सुबुद्धि अमात्य को आमंत्रित करूंगा और ज्येष्ठपुत्र को राज्य में स्थापित करूंगा, तत्पश्चात् आपके निकट मुंडित होकर [illegible] आनगारिक दीक्षा अंगीकार करूंगा। तब स्थविर मुनि ने कहा—

अहासुहं देवाणुप्पिया !

देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो।

तए णं जियसत्तू राया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबुद्धिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते-जाव-पव्वयामि। तुमं णं किं करेसि ?

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा जहां अपना घर था, वहीं आया, आकर सुबुद्धि अमात्य को बुलाया, बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—मैंने स्थविर मुनि से धर्म श्रवण किया है [illegible] अंगीकार करूंगा। तुम क्या करोगे [illegible]

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं रायं एवं वयासी–जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिया ! के अण्णे आहारे वा आलंबे वा ? अहं पि य णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गे-जाव-पव्वयामि।

तब सुबुद्धि ने जितशत्रु राजा से [illegible] यदि संसारभय से [illegible] प्रिय ! आपके सिवाय मेरा [illegible] सकता है ? [illegible] देवानुप्रिय ! [illegible] [illegible]

तं जइ णं देवाणुप्पिया ! -जाव-पव्वाहि । गच्छह णं देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेहि; ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहित्ता णं ममं अंतिए पाउब्भवाहि । सो वि तहेव पाउब्भवइ ।

तब जितशत्रु राजा ने कहा—देवानुप्रिय ! यदि ऐसा है—यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहते हो तो देवानुप्रिय ! तुम जाओ और ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो, स्थापित करके एक हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे पास प्रगट हो ओ अर्थात् आओ। तब सुबुद्धि महामात्य वैसा करके और शिविका पर आरूढ़ होकर आ गया ।

तए णं जियसत्तू राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अदीणसत्तुस्स कुमारस्स रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।" ते वि तहेव उवट्ठवेंति-जाव-अभिसिंचंति -जाव-पव्वइए ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और अदीनशत्रु कुमार के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित करो-तैयार करो ।' कौटुम्बिक पुरुष भी राजा की आज्ञानुसार राज्याभिषेक की सामगी उपस्थित करते हैं यावत्-अभिषेक करते हैं—यावत्-जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

२४५. तए णं जियसत्तू रायरिसी एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता-जाव-सिद्धे ।

२४५. दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् जितशत्रु राजर्षि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा का शोधन करके-यावत्-समस्त दुःखों का क्षय कर दिया ।

तए णं सुबुद्धी एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता -जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

तब सुबुद्धि (मंत्री) ने (दीक्षा ग्रहण की) एकादश अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन कर बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना के साथ आत्मा का शोधन कर सब दुःखों का अन्त किया ।

वृत्तिकृत्ता समुद्धृता निगमनगाथा—

२४६. मिच्छत्त-मोहियमणा, पावपसत्ता वि पाणिणो विगुणा ।
फरिहोदगं व गुणिणो, हवंति वरगुरुपसायाओ ।१।
—णायाधम्मकहाओ सु. १ अ. १२

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा—

२४६. जिनका मन मिथ्यात्व से मोहित है अर्थात् जो मिथ्या-दृष्टि हैं, जो पाप में आसक्त हैं और गुणहीन हैं वे भी उत्तम गुरु के प्रसाद से, उनके सत्संग से खाई के जल के समान गुणवान बन जाते हैं ।१।





१५. नमिरायरिसी

१५. नमि राजर्षि

मिहिलाए राया नमी तस्स य अभिनिक्खमणं—

२४७. चइऊण देवलोगाओ, उववन्नो माणुसंमि लोगंमि ।
उवसंत-मोहणिज्जो, सरई पोराणियं जाइं ।१।

जाइं सरित्तु भयवं, सह-संवुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई नमी राया ।२।

मिथिला के राजा नमि और उनका अभिनिष्क्रमण—

२४७. देवलोक से च्यवित होकर नमि के जीव ने मनुष्यलोक में जन्म लिया । उसका मोह उपशान्त हुआ तो उसे पूर्व जन्म का स्मरण हुआ ।१।

भगवान नमि पूर्व जन्म को स्मरण करके अनुत्तर धर्म में स्वयं संबुद्ध बने । राज्य का भार पुत्र को सौंपकर उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया ।२।

सो देवलोगसरिसे अंतेउर-वरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु नमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ।३।

नमि राजा श्रेष्ठ अन्तःपुर में रहकर देवलोक के भोगों के समान सुन्दर भोगों को भोगकर एक दिन प्रबुद्ध हुए और उन्होंने भोगों का परित्याग कर दिया ।३।

मिहिलं सपुर-जणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं ।४।

भगवान नमि ने पुर और जनपद सहित अपनी राजधानी मिथिला, सेना, अन्तःपुर और समग्र परिजनों का परित्याग कर अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बन गये ।४।

कोलाहलगब्भूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतंमि ।
तइया रायरिसिमि, नमिमि अभिणिक्खमंतंमि ।५।

जिस समय राजर्षि नमि अभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हो रहे थे, उस समय मिथिला में बहुत कोलाहल हुआ था ।५।

सक्केण सह नमिरायरिसिणो संवादो—

शक्र के साथ नमि राजर्षि का संवाद—

२४८. अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं ।
सक्को माहणरूवेण, इमं वयणमब्बवी ।६।

२४८. अभ्युत्थित हुए (मुनिपद की भूमिका-दीक्षा के लिए प्रस्तुत हुए) नमि राजर्षि से ब्राह्मण के रूप में आये हुए देवेन्द्र ने यह वचन कहा ।६।

(१) किं नु भो अज्ज मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला ।
सुव्वंति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ।७।

(१) हे राजर्षि ! आज मिथिला नगरी में, प्रासादों में, घरों में कोलाहलपूर्ण दारुण [हृदय विदारक] शब्द क्यों सुनाई दे रहे हैं ? ।७।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ।८।

देवेन्द्र के इस अर्थ [बात या प्रश्न] को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ।८।

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्त-पुप्फ-फलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया ।९।

मिथिला में एक चैत्य वृक्ष था। जो शीतल छाया वाला, मनोरम पत्र-पुष्प एवं फलों से युक्त बहुतों [बहुत पक्षियों के] लिये सदैव बहुत उपकारक था ।९।

वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! खगा ।१०।

प्रचंड आंधी से उस मनोरम वृक्ष के गिर जाने से दुःखित, अशरण और आर्त ये पक्षी क्रन्दन कर रहे हैं ।१०।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ।११।

राजर्षि के इस अर्थपूर्ण वचनों को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा ।११।

(२) एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं ।
भयवं अंतेउरंतेणं, कीस णं नावपेक्खह ।१२।

(२) यह अग्नि है, यह वायु है और इनसे यह आपका राजभवन जल रहा है। भगवन् ! आप अपने अन्तःपुर की ओर क्यों नहीं देखते हैं ? ।१२।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ।१३।

देवेन्द्र के इस कथन को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ।१३।

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचणं ।१४।

जिनके पास अपना जैसा कुछ नहीं है, ऐसे हम लोग सुख से रहते हैं, सुख से जीते हैं। मिथिला के जलने में मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है ।१४।

[illegible]

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

जो दुर्जेय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है, उसकी विजय ही परम विजय है ॥३४॥

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पणा चेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥३५॥

बाहर के युद्धों से क्या? स्वयं अपने से ही युद्ध करो! स्वयं को स्वयं द्वारा जीतकर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है ॥३५॥

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥३६॥

पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा मन—ये ही वास्तव में दुर्जेय हैं। एक अपने आपको जीत लेने पर सभी जीत लिए जाते हैं ॥३६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥३७॥

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि को इस प्रकार कहा ॥३७॥

(७) जइत्ता विउले, जन्ने, भोइत्ता समण-माहणे।
दच्चा भोच्चा य जट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया! ॥३८॥

(७) हे क्षत्रिय! तुम विपुल यज्ञ कराकर, श्रमण और माहणों को भोजन कराकर, दान देकर, भोग भोगकर और स्वयं यज्ञ करके फिर जाना-मुनि बनना ॥३८॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३९॥

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ॥३९॥

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ, अदितस्स वि किंचण ॥४०॥

जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख गायों का दान करता है, उसको भी संयम ही श्रेय—कल्याण कारक है। फिर भले ही वह किसी को कुछ भी दान न करे ॥४०॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि को इस प्रकार कहा ॥४१॥

(८) घोरासमं चइत्ताणं, अन्नं पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसह-रओ, भवाहि मणुयाहिवा! ॥४२॥

(८) हे मनुजाधिप! तुम घोराश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम को छोड़कर जो दूसरे आश्रम—संन्यास आश्रम की इच्छा करते हो, यह उचित नहीं है। यहीं गृहस्थाश्रम में रहते हुए पौषधव्रत में अनुरक्त रहो ॥४२॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥४३॥

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ॥४३॥

मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए।
न सो सुयक्खाय-धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥

जो बाल [अज्ञानी] साधक मास मास का तप करता है और पारणे में कुश के अग्र भाग जितना आहार ग्रहण करता है वह सुआख्यात धर्म [जिनधर्म] की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकता है ॥४४॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४५॥

इस अर्थ को सुनकर हेतु और [illegible] नमि राजर्षि को इस प्रकार [illegible] ॥४५॥

(९) हिरण्णं सुवण्णं मणि-मुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं।
कोसं वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया! ॥४६॥

(९) हे क्षत्रिय! तुम चाँदी, सोना, मणि, मोती, कांसे के [illegible] वस्त्र, वाहन और कोष की वृद्धि करके [illegible] ॥४६॥

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥४७॥

इस अर्थ को [illegible] हेतु [illegible] ने देवेन्द्र को [illegible] ॥४७॥

सुवण्ण - रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलास - समा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगास - समा अणंतिया।४८।

सोने और चाँदी के कैलाश पर्वत के समान असंख्य पर्वत हों, फिर भी लोभी मनुष्य की तृप्ति उनसे नहीं होती है; क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।४८।

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे।४९।

पृथ्वी, चावल, जौ, सोना और पशु — ये सब एक की इच्छा पूर्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं, यह जानकर साधक तप का आचरण करे।४९।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी।५०।

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि को इस प्रकार कहा।५०।

(१०) अच्छेरयमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि।५१।

(१०) हे पार्थिव ! आश्चर्य है कि तुम सहज प्राप्त भोगों को भी त्याग रहे हो और अप्राप्त भोगों की इच्छा कर रहे हो। मालूम होता है कि तुम व्यर्थ के संकल्प द्वारा ठगे जा रहे हो।५१।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ।
तओ नमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी।५२।

इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा।५२।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं।५३।

सांसारिक काम भोग शल्य हैं, विष हैं और आशीविष सर्प के तुल्य हैं। जो काम भोगों को चाहते तो हैं, किन्तु परिस्थिति विशेष से उनका सेवन नहीं कर पाते हैं, वे भी दुर्गति में जाते हैं।५३।

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।
माया गइपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं।५४।

क्रोध से अधोगति में जाना होता है। मान से अधमगति होती है। माया से सुगति में बाधा आती है। लोभ से दोनों तरह का-ऐहिक और पारलौकिक-भय होता है।५४।

२४९. अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं।५५।

२४९. देवेन्द्र ब्राह्मण का रूप छोड़कर अपने वास्तविक इन्द्र स्वरूप को प्रगट करके इस प्रकार मधुर वाणी से स्तुति करता हुआ वंदना करता है।५५।

अहो ते निज्जिओ कोहो, अहो माणो पराजिओ।
अहो ते निरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ।५६।

अहो ! आश्चर्य है—तुमने क्रोध को जीता है। अहो ! तुमने मान को पराजित किया है। अहो ! तुमने माया को निराकृत किया है। अहो ! तुमने लोभ को वश में किया है।५६।

अहो ते अज्जवं साहु ! अहो ते साहु ! मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा।५७।

अहो ! तुम्हारी सरलता उत्तम है। अहो ! तुम्हारी मृदुता उत्तम है ! अहो ! तुम्हारी क्षमा उत्तम है। अहो ! तुम्हारी निर्लोभता उत्तम है।५७।

इहं सि उत्तमो भंते ! पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ।५८।

हे भगवन् ! आप इस लोक में भी उत्तम है और परलोक में भी उत्तम होंगे। कर्ममल से रहित होकर आप लोक में सर्वोत्तम स्थान सिद्धि को प्राप्त करेंगे।५८।

एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदए सक्को।५९।

इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से राजर्षि की प्रदक्षिणा करते हुए अनेक बार वंदना की।५९।

तो वंदिऊण पाए, चक्कं-कुस-लक्खणे मुणिवरस्स।
आगासेणुप्पइओ, ललिय-चवल-कुण्डल-तिरीडी।६०।

इसके पश्चात् नमि मुनिवर के चक्र और अंकुश लक्षणों से युक्त चरणों की वंदना करके ललित एवं चपल कुण्डल और मुकुट को धारण करने वाला इन्द्र ऊपर आकाशमार्ग से चला गया।६०।

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे आदिगरे—जाव-सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं-जाव-सुहंसुहेणं विहरमाणे-जाव-बहुसालए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

'हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार तीर्थ की आदि करने वाले-यावत्-सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर आकाशगत चक्र द्वारा-यावत्-सुखपूर्वक विहार करते हुए बहुशालक नामक चैत्य में योग्य अवग्रह को धारण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार करते हैं अर्थात् पधारे हैं।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

हे देवानुप्रिये ! उस प्रकार के अर्हन्त भगवन्तों का नाम और गोत्र का भी श्रवण महान् फलदायक है तो फिर अभिगमन (सामने जाना) वंदन, नमन, पृच्छा-प्रतिपृच्छा और पर्युपासना करने से फल हो, इसमें क्या कहना ? एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन के श्रवण से महान् फल मिलता है तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने के द्वारा महाफल मिले, इसमें क्या कहना ?

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदामो-जाव-पज्जुवासामो । एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ।"

इसलिये हे देवानुप्रिये ! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन करें-यावत्-उनकी पर्युपासना करें। ये अपने को इस भव में और पर-भव में हित, सुख, क्षमा, (शान्ति) निःश्रेयस और शुभ अनुबंध के लिये होगा।'

२५१. तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ ।

२५१. तत्पश्चात् वह देवानन्दा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण की इस बात को सुनकर हर्षित, संतुष्ट, प्रसन्न मन वाली हुई-यावत्-उल्लसित हृदय वाली होकर अपने करतलों को जोड़कर मस्तक पर अंजलि रूप में करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार करती है।

तए णं से उसभदत्ते माहणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

उसके बाद वह ऋषभदत्त ब्राह्मण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइय-समखुरवालिहाण-समलिहियसिंगेहिं, जंबूणयामयकलावजुत्त-पतिविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुय-पवरकंचणनत्थपग्गहोग्गहियएहिं, नीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुग-जोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविरचियनिम्मियं पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र गति करने वाले, प्रशस्त और सदृश रूप वाले, समान खुरों और पूछ वाले, समान उगे सींग वाले, सुवर्ण के आभूषणों से शृंगारित, प्रशस्त गति वाले, चाँदी की घंटियों से युक्त, सुवर्णमय सूत की नाथ द्वारा बंधे हुए, नील कमल के शिर पेच वाले अर्थात् जिनके मस्तक पर नील कमल बंधे हुए हो ऐसे उत्तम युवा बैलों से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घंटियों की माला से व्याप्त, उत्तम काष्ठ का बना जिसमें युगाजुआरी लगा हो और जोत की डोरियाँ जिसमें अच्छी तरह से लगी हुई हों, और बहुत ही चतुराई से जिसे बनाया गया हो, ऐसे प्रवर लक्षण युक्त, धार्मिक श्रेष्ठयान-रथ को तैयार करके शीघ्र ही लाओ और लाकर मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवसविसप्पमाणहियया करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासि—सामी ! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता

तब वे कौटुम्बिक पुरुष ऋषभदत्त ब्राह्मण के कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट एवं आनंदित मन वाले हो गये और करतल को जोड़ अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोले—हे स्वामिन् ! तथारूप आपकी आज्ञा मान्य है, ऐसा कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को

जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उसभदत्तं माहणं पुरओ कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ।

तए णं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलयबाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ।

देवाणंदाए एवंरूवदंसणेणं गोयमपण्हो भ० महावीरकयं समाहाणं च—

२५४. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—किं णं भंते ! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलयबाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ?

गोयमा ! दि समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"एवं खलु गोयमा ! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए। तेणं एसा देवाणंदा माहणी तेणं पुव्वपुत्तसिहाणुरागेणं आगयपण्हया - जाव - समूसवियरोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ।"

भ० महावीरेण धम्मकहणं—

२५५. तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए य माहणीए तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए-जाव-जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ—धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया।

उसहदत्तस्स पव्वज्जाभिलासो—

२५६. तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

(फिर) जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं, वहाँ आती है, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है। प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे करके खड़ी-खड़ी अपने परिवार के साथ शुश्रूषा करती हुई, नमती हुई, अभिमुख रहकर, विनयपूर्वक हाथ जोड़ उपासना करती है।

उसके बाद उस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में से दूध की धार छूट पड़ी, लोचन आनन्दाश्रु से भर आये, हर्षातिरेक से फूलती हुई भुजाओं को उसके कड़ाओं ने रोका, हर्ष के कारण शरीर इतना प्रफुल्लित हो गया कि उसका कंचुक विस्तीर्ण हो गया, मेघधारा से विकसित हुए कदम्ब पुष्प की तरह रोम-रोम खड़ा हो गया और श्रमण भगवान् महावीर को अपलक दृष्टि से निहारती हुई खड़ी रही।

देवानन्दा के इस रूप को देखकर गौतम का प्रश्न और भगवान महावीर कृत समाधान—

२५४. हे भदन्त ! ऐसा कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करते हैं, नमन करते हैं, वंदन और नमन करके इस प्रकार कहा—हे भगवन् ! इस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में से दूध की धारा क्यों छूटी, लोचन आनन्दाश्रुओं से क्यों भर आये, हर्षातिरेक से फूलती भुजायें कड़ाओं द्वारा क्यों रुकीं, कंचुक विस्तीर्ण क्यों हो गया और मेघ धारा से विकसित हुए कदंब पुष्प की तरह ऊर्ध्वमुखी रोमावली युक्त होकर देवानुप्रिय को अनिमिष दृष्टि से देखती हुई क्यों खड़ी है ?

श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से कहा—

"हे गौतम ! यह देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है, मैं देवानन्दा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ। जिससे इस देवानन्दा ब्राह्मणी के उस पूर्वपुत्र-स्नेह-राग से स्तनों से दूध की धारा छूट पड़ी—यावत्-रोमांचित होकर मुझे अनिमिष दृष्टि से देखती-देखती खड़ी है।"

भगवान् महावीर द्वारा धर्म कथन—

२५५. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानन्दा ब्राह्मणी और उस विशालतम ऋषिपर्षद को यावत्-योजन पर्यन्त में व्याप्त होने वाले स्वर से अर्धमागधी भाषा में प्रवचन किया-धर्म कहा-यावत्-परिषद वापस गई।

ऋषभदत्त की प्रव्रज्याभिलाषा—

२५६. उसके बाद वह ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित हुआ, तुष्ट होकर अपने स्थान से खड़ा हुआ, खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमन किया, वंदन नमन करके इस प्रकार बोला—

देवाणंदाए वि पव्वज्जा सिद्धी य—

२५९. तए णं सा देवाणंदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! एवं जहा उसभदत्तो तहेव-जाव-धम्ममाइक्खियं।

तए णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मुंडावेइ, पव्वावेत्ता सयमेव अज्जचंदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ।

तए णं सा अज्जचंदणा अज्जा देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेति, सयमेव मुंडावेति, सयमेव सेहावेति।

एवं जहेव उसभदत्तो तहेव अज्जचंदणाए अज्जाए इमं एयारूवं धम्मियं उवदेसं सम्मं संपडिवज्जइ, तमाणाए तहा गच्छइ-जाव-संजमेणं संजमति।

तए णं सा देवाणंदा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतियं सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा।

—भग० स० ९, उ० ३३

देवानन्दा की भी प्रव्रज्या और सिद्धि—

२५९. उसके बाद वह देवानन्दा ब्राह्मणी श्रमण भगवान् महावीर के मुख से धर्म श्रवण कर और समझकर हर्षित संतुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन आदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी तरह है, इसी तरह ऋषभदत्त के सदृश-यावत्-धर्म कथन किया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने स्वयं देवानन्दा को दीक्षा दी, स्वयं मुंडित किया, दीक्षा देकर स्वयं आर्या चन्दना नामक आर्या को शिष्या रूप में सौंपते हैं।

तब वह आर्या चंदना आर्या देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयमेव दीक्षा देती है, स्वयमेव मुंडित करती है, स्वयमेव शिक्षा देती है।

इस प्रकार ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरह देवानन्दा भी आर्या चन्दना के यह और इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक्तया स्वीकारती है और उसकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करती है-यावत्-संयम द्वारा (यतनापूर्वक) संयमाराधना करती है।

उसके बाद वह देवानन्दा आर्या चन्दना आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करती है, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थभक्त, षष्ठ, अष्ट, दशम, द्वादश भक्तों, मासिक, अर्धमासिक तपश्चर्या आदि विचित्र तपकर्म से आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करती है, पालन करके मासिकी संल्लेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करती है, शुद्ध करके साठ भक्तों का अनशन द्वारा त्याग करती है और कर्म छेदन करके अंतिम उच्छवास निःश्वास में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परिनिवृत्त और सर्वदुःखों से मुक्त होती है।

□

□

१७. बालतवस्सी मोरियपुत्ते तामली अणगारे

१७. बालतपस्वी मौर्यपुत्र तामली अनगार

भ. महावीरसमोसरणे ईसाणदेविंदेण नट्टविही—

२६०. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

भगवान महावीर के समवसरण में ईशान देवेन्द्र द्वारा नाट्यविधि—

२६०. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान् महावीर मोका नगरी के नन्दन नामक चैत्य से बाहर निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपद में विहार करते हैं।

निसम्म ? जं णं ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ?"

मोरियपुत्ते तामली गाहावई तस्स य पाणामा पव्वज्जा-गहणाभिलासो—

२६३. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तामलित्ती नामं नयरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं तामलित्तीए नयरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था।

तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलिस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तकालसमयंसि कुटुम्बजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहेमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि-जाव-अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, जावं च णं मे मित्त-नाति-नियग-सयण-संबंधि-परियणे आढाति परियाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणं आमंतेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुटुंबे ठावेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता, सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए।

सुवचन सुना और अवधारण किया था ? जिसके निमित्त से देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध किया, प्राप्त किया और पूर्णरूप से अधिगत किया ?

मौर्यपुत्र तामली गृहपति और उसकी प्राणामा प्रव्रज्या ग्रहण-अभिलाषा—

२६३. हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नाम की नगरी थी-वर्णन। उस ताम्रलिप्ती नगरी में मौर्यपुत्र तामली नामक गृहपति रहता था जो-आढ्य-धनिक धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत-दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला भी नहीं था।

तत्पश्चात् किसी एक दिवस उस मौर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पूर्व भाग के पिछले भाग में अर्थात् मध्य रात्रि में कुटुम्ब की चिन्ता में जागते हुए इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-'पूर्व में किये हुए, प्राचीन सुआचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याण रूप किये हुए कर्मों का कल्याण फल रूप प्रभाव अभी उदीयमान है जिससे मेरे घर में हिरण्य की वृद्धि हो रही है, सुवर्ण की वृद्धि हो रही है, धन की वृद्धि हो रही है, पुत्रों की वृद्धि हो रही है, पशुओं की वृद्धि हो रही है, विपुल धन-कनक-रत्न-मणि-मोती-शंख-चन्द्रकान्त मणि, प्रवाल, माणिक आदि सारभूत धन की दिनोंदिन वृद्धि हो रही है तो क्या एकान्त रूप में पूर्वकृत, पुरातन सुचारु रूप से आचरण किये गये, सुपराक्रमयुक्त शुभ और कल्याणरूप कृत कर्मों के नाश की उपेक्षा करता रहूँ कि इतना सुख काफी है और ऐसा मानकर भविष्य के लिये उदासीन हो जाऊँ ?

परन्तु जब तक मैं हिरण्य से बढ़ रहा हूँ-यावत्-अधिकाधिक बढ़ रहा हूँ तथा जब तक मेरे मित्र, मेरे जाति-कुटुम्बी, स्वजन, सम्बन्धी और कर्मचारी जन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी मानते हैं, मेरा सत्कार-सम्मान करते हैं, मुझे कल्याणरूप, मंगल-रूप, देवरूप मानकर चैत्य की तरह विनयपूर्वक सेवा करते हैं तब तक मुझे स्वयं अपना कल्याण कर लेने की जरूरत है इसलिये आगामी दिन इस काली रात्रि बीतने के बाद प्रातः होने पर-यावत्-सूर्योदय होने पर, ज्वलंत तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के उदित होने पर स्वयंमेव लकड़ी के पात्र बनवाकर अथवा ग्रहण करके पुष्कल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाकर मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन और वस्त्र, गंध, माला अलंकार आदि से सत्कार कर सम्मान कर उन्हीं मित्रों, जातिजनों, निजीस्वजनों, सम्बन्धियों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर-आज्ञा लेकर स्वयमेव काष्ठपात्र को लेकर मुंडित होकर प्राणामा नामक दीक्षा से दीक्षित होऊँ।

निसम्म ? जं णं ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ?"

सुवचन सुना और अवधारण किया था ? जिसके निमित्त से देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्यु ति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध किया, प्राप्त किया और पूर्णरूप से अधिगत किया ?

मोरियपुत्ते तामली गाहावई तस्स य पाणामा पव्वज्जा-गहणाभिलासो—

२६३. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तामलित्ती नामं नयरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं तामलित्तीए नयरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था।

तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलिस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तकालसमयंसि कुटुम्बजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहेमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि-जाव-अतीव-अतीवं अभिवड्ढामि, जावं च णं मे मित्त-नाति-नियग-सयण-संबंधि-परियणे आढाति परियाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणं आमंतेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता, सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए।

मौर्यपुत्र तामली गृहपति और उसकी प्राणामा प्रव्रज्या ग्रहण-अभिलाषा—

२६३. हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नाम की नगरी थी-वर्णन। उस ताम्रलिप्ती नगरी में मौर्यपुत्र तामली नामक गृहपति रहता था जो-आढ्य-धनिक धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत-दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला भी नहीं था।

तत्पश्चात् किसी एक दिवस उस मौर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पूर्व भाग के पिछले भाग में अर्थात् मध्य रात्रि में कुटुम्ब की चिन्ता में जागते हुए इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-'पूर्व में किये हुए, प्राचीन सुआचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याण रूप किये हुए कर्मों का कल्याण फल रूप प्रभाव अभी उदीयमान है जिससे मेरे घर में हिरण्य की वृद्धि हो रही है, सुवर्ण की वृद्धि हो रही है, धन की वृद्धि हो रही है, पुत्रों की वृद्धि हो रही है, पशुओं की वृद्धि हो रही है, विपुल धन-कनक-रत्न-मणि-मोती-शंख-चन्द्रकान्त मणि, प्रवाल, माणिक आदि सार-भूत धन की दिनोंदिन वृद्धि हो रही है तो क्या एकान्त रूप में पूर्वकृत, पुरातन सुचारु रूप से आचरण किये गये, सुपराक्रमयुक्त शुभ और कल्याणरूप कृत कर्मों के नाश की उपेक्षा करता रहूँ कि इतना सुख काफी है और ऐसा मानकर भविष्य के लिये उदासीन हो जाऊँ ?

परन्तु जब तक मैं हिरण्य से बढ़ रहा हूँ-यावत्-अधिकाधिक बढ़ रहा हूँ तथा जब तक मेरे मित्र, मेरे जाति-कुटुम्बी, स्वजन, सम्बन्धी और कर्मचारी जन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी मानते हैं, मेरा सत्कार-सम्मान करते हैं, मुझे कल्याणरूप, मंगल-रूप, देवरूप मानकर चैत्य की तरह विनयपूर्वक सेवा करते हैं तब तक मुझे स्वयं अपना कल्याण कर लेने की जरूरत है इसलिये आगामी दिन इस काली रात्रि बीतने के बाद प्रातः होने पर-यावत्-सूर्योदय होने पर, ज्वलंत तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के उदित होने पर स्वयमेव लकड़ी के पात्र बनवाकर अथवा ग्रहण करके पुष्कल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवा-कर मित्रों, ज्ञातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन और वस्त्र, गंध, माला अलंकार आदि से सत्कार कर सम्मान कर उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजीस्वजनों, सम्बन्धियों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर-आज्ञा लेकर स्वयमेव काष्ठपात्र को लेकर मुंडित होकर प्राणामा नामक दीक्षा से दीक्षित होऊँ।

पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुभित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ता सुद्धोदणं पडिग्गाहेत्ता तं तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्ति" कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं करेइ, करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासण-वरगए तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धि तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसादेमाणे वीसादेमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

दीक्षित होने पर तत्काल ही यह अभिग्रह धारण करूँगा-जहाँ तक जीवित रहूँ वहाँ त अर्थात् यावज्जीवन निरंतर षष्ठ-षष्ठ भक्त दो-दो उपवास-करूँगा। सूर्य के समक्ष ऊपर की ओर हाथ करके आतापना सहन करता रहूँगा और षष्ठ भक्त के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरकर स्वयं ही काष्ठ पात्र को लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में उच्च, नीच और मध्यम स्थिति वाले कुलों में से भिक्षा लेने की विधिपूर्वक केवल शुद्ध ओदन अर्थात् चावल ही लेकर उसे इक्कीस बार पानी से धोने के बाद उसे खाऊँगा, इस प्रकार का अभिग्रह करने का उसने संकल्प किया, ऐसा संकल्प करके प्रातःकाल होने पर-यावत्-ज्वलंत तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के उदित होने पर वह स्वयंमेव काष्ठपात्र बनवाता है, पात्र बनवाकर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाता है, तैयार करवाने के बाद स्नान किया, बलिकर्म-पूजा कर्म किया, कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त किया और उसके बाद शुद्ध और पहनने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्रों को पहन कर अल्प किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजन के समय भोजन मंडप में सुखासन पर बैठकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बधियों और परिजनों के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन को चखते हुए, स्वाद लेते हुए, दूसरों को परोसते हुए और खाते हुए विहार करता है।

तामलिणा पाणामापव्वज्जागहणं—

२६४. जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेइ, ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—"कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं-जाव-आहारित्तए त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं, अभिगिण्हित्ता जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ। छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ, अडित्ता सुद्धोयणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत्ता तिसत्तक्खुत्तो उदएणं

तामली के द्वारा प्राणामाप्रव्रज्या ग्रहण—

२६४. वह तामली गृहपति जीमा (भोजन किया) और भोजन करने के बाद उसने कुल्ला किया, मुँह धोया और परम शुद्ध बना, इसके बाद उसने अपने उन मित्रों, जाति-बंधुओं, पारिवारिक जनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार और वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार सम्मान किया और उन्हीं मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों के सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया, स्थापित करके मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से पूछा, पूछकर मुंडित हो प्राणामा दीक्षा द्वारा दीक्षित हुआ। दीक्षा होने के साथ ही उसने इस प्रकार का अभिग्रह किया—'जब तक मैं जीवित हूँ तब तक पष्ठ-षष्ठ भक्त तप करूँगा-यावत्-इस प्रकार अभिग्रह करके यावज्जीवन षष्ठ-पष्ठ भक्त तप कर्म पूर्वक ऊँचे हाथ कर सूर्य के समक्ष खड़े होकर आतापना भूमि में आतापना लेता हुआ विचरण करता है। षष्ठम भक्त के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतर कर स्वयमेव काष्ठ पात्रों को लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में उच्चनीच मध्यम स्थिति वाले घरों से गृह सामुदानिक भिक्षा लेने की विधिपूर्वक भिक्षा के लिये भ्रमण करता है,

पक्खालेइ, पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारेइ ।

भ्रमण करके मात्र चावल लेता है, चावल लेकर इक्कीस बार धोता है, धोने के पश्चात् उनका आहार करता है ।

पाणामापव्वज्जाविवरणं—

२६५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पाणामा पव्वज्जा ?

गोयमा ! पाणामीए णं पव्वज्जाए पव्वइए समाणे जं जत्थ पासइ—इंदं वा खंदं वा रुद्दं वा सिवं वा वेसमणं वा अज्जं वा कोट्टकिरियं वा रायं वा ईसरं वा तलवरं वा माडंवियं वा कोडुंबियं वा इब्भं वा सेट्ठि सेणावइं वा सत्थवाहं वा काकं वा साणं वा पाणं वा—उच्चं पासइ उच्चं पणामं करेइ, नीयं पासइ नीयं पणामं करेइ, जं जहा पासइ तस्स तहा पणामं करेइ । से तेणट्ठे णं गोयमा ! एवं वुच्चइ पाणामा पव्वज्जा ।

प्राणामा प्रव्रज्या विवरण—

२६५. हे भगवन् ! वह प्रव्रज्या 'प्राणामा' कहलाती है, उसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! जिसने प्राणामा प्रव्रज्या ली हो वह जिसको जहाँ देखता है, उसको अर्थात् इन्द्र को, स्कन्द को, रुद्र को, शिव को, वैश्रमण को—कुबेर को, आर्या को, पार्वती को, कोट्ट को-महिषासुर को, कुटती, चंडिका को, राजा को, ईश्वर को, तलवर को, कोटपाल को, मांडविक को, कौटुम्बिक को, इभ्य को, सेठ को, सेनापति को, सार्थवाह को, कौए को, कुत्ते को और चांडाल को प्रणाम करता है—ऊँचे को देखकर उच्च रीति से प्रणाम करता है, नीचे को देखकर नीची रीति से प्रणाम करता है, जिसको जिस रीति से देखता है उसको उस रीति से प्रणाम करता है । इसी कारण उस प्रव्रज्या को प्राणामाप्रव्रज्या कहते हैं ।

तामलिणा पाओवगमणसंलेहणागहणं—

२६६. तए णं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के-जाव-धमणिसंतए जाए यावि होत्था ।

तए णं तस्स तामलिस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

"एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे-जाव-धमणिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते तामलित्तीए नगरीए दिट्ठाभट्ठे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छित्ता तामलित्तीए नगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छित्ता पादुग-कुंडिय-मादीयं उवगरणं दारुमयं च पडिग्गहगं एगंते एडित्ता तामलित्तीए नगरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णियत्तणिय-मंडलं आलिहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए"

तामली द्वारा पादोपगमन संल्लेखना ग्रहण—

२६६. तत्पश्चात् वह मौर्यपुत्र तामली उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप कर्म द्वारा सूख गया-यावत्-उसकी सभी धमनियाँ बाहर दिखाई देने लगीं, ऐसा दुबला हो गया ।

उसके बाद किसी एक दिवस मध्य रात्रि में अनित्यता के चिन्तन में लीन होकर जागते हुए उस बाल तपस्वी तामली को इस प्रकार का संकल्प-यावत्-विकल्प उत्पन्न हुआ ।

"मैं इस उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, शोभायुक्त, उदग्र, उदात्त, उत्तम, महाप्रभावशाली तपकर्म से सूख गया हूँ, रूक्ष हो गया हूँ-यावत्-मेरी सभी नसें शरीर के ऊपर दिखलाई देने लगी हैं, इसलिये जहाँ तक मुझ में उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है और पुरुषाकार पराक्रम है, तब तक मेरा श्रेय इसमें है कि रात्रि के बीतने के बाद प्रातःकाल होने पर-यावत्-ज्वलन्त सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य का उदय होने पर ताम्रलिप्ती नगरी में जाकर देखे हुए को, जिनसे बातचीत हुई हो, ऐसे पुरुषों को, पाषण्डस्थों को, गृहस्थों को, पूर्वपरिचितों को, दीक्षित होने के बाद परिचय में आये हुए को अथवा मेरी जैसी दीक्षा पर्याय वालों को पूछकर ताम्रलिप्ती नगरी के बीच में से निकलकर पादुका, कुण्डी आदि उपकरणों को और काष्ठ पात्रों को एकान्त स्थान में रखकर ताम्रलिप्ती नगरी के उत्तर पूर्व दिग्भाग में ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखकर संलेखना तप द्वारा आत्मा को निर्मल बनाकर, आहार, पानी का त्यागकर, वृक्ष की तरह स्थिर रहकर काल की अवकांक्षा न करते हुए विचरण करूँ," ऐसा विचार करता है, विचार करके

त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते तामलित्तीए नगरीए दिट्ठाभट्ठे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छइ, आपुच्छित्ता तामलित्तीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पादुग-कुंडिय-मादीयं उवगरणं दारुमयं च पडिग्गहगं एगंते एडेइ, एडेत्ता तामलित्तीए नगरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णियत्तणिय-मंडलं आलिहइ, आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे।

रात्रि व्यतीत होने पर कल प्रातःकाल-यावत्-ज्वलंत सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदय होने पर ताम्रलिप्ती नगरी में जाकर देखे हुओं को, वार्तालाप हुआ ऐसे पुरुषों को, पाखंडस्थों को, गृहस्थों को, जान पहचान वालों और दीक्षित होने के बाद परिचय में आये हुओं को पूछता है, पूछकर ताम्रलिप्ती नगरी के बीच में से निकलता है, निकलकर पादुका, कुण्डी आदि उपकरणों और काष्ठ पात्रों को एकान्त में रखता है, रखकर ताम्रलिप्ती नगरी के उत्तर पूर्व दिशाभाग—ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखता है, देखकर संलेखना तप द्वारा आत्मा को परिमार्जित करके आहार-पानी का त्याग करके उसने पादोपगमन नामक अनशन अंगीकार कर लिया।

बलिचंचारायहाणिवत्थव्वअसुरकुमारदेवेहिं इन्दत्थं पत्थणा तामलिणा अनियाणकरणं च—

२६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया यावि होत्था।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं ओहिणा आभोएंति, आभोएत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासि—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिया इंदाहीणकज्जा, अयं च णं देवाणुप्पिया ! तामली बालतवस्सी तामलित्तीए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे नियत्तणिय-मंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं तामलिं बालतवस्सिं बलिचंचाए रायहाणीए ठितिपकप्पं पकरावेत्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव रुयगिंदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता-जाव-उत्तर-वेउव्वियाइं रूवाइं विकुव्वंति विकुव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए तिरियं असंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवय-माणा वीईवयमाणा-जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती नगरी जेणेव तामली मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तामलिस्स बालतवस्सिस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं

बलिचंचा राजधानी वासी असुरकुमार देवों के द्वारा इन्द्रार्थ प्रार्थना और तामली द्वारा अनिदानकरण—

२६७. उस काल और उस समय बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित थी।

तब उस बलिचंचा राजधानी में निवास करने वाले बहुत से देवों और देवियों ने बाल तपस्वी तामली को अवधिज्ञान से देखा, देखकर वे एक दूसरे को बुलाते हैं, बुलाकर एक दूसरे से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! अभी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित है और हे देवानुप्रियो ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले और इन्द्राधिष्ठित हैं, अपने सब कार्य इन्द्राधीन हैं और हे देवानुप्रियो ! यह तामली बालतपस्वी ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिशा-ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखकर संल्लेखना द्वारा आत्मा में रमण करते हुए भक्तपान का त्याग करके पादोपगमन अनशन को धारण करके स्थित है, तो हे देवानुप्रियो ! यह अपने लिये श्रेयरूप है कि हम लोग तामली बालतपस्वी को बलिचंचा राजधानी में क्षिति प्रकल्प—इन्द्र रूप में आने का संकल्प करायें—इस प्रकार का विचार कर परस्पर एक दूसरे की बात को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके बलिचंचा राजधानी के मध्य में से निकलते हैं, निकलकर जिस ओर रुच-केन्द्र उत्पात-पर्वत है, वहाँ आते हैं, आकर वैक्रिय समुद्घात की विकुर्वणा करते हैं, विकुर्वणा करके-यावत्-उत्तर-वैक्रिय रूपों को बनाते हैं, बनाकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, जयवती, निपुण सिंह जैसी शीघ्र उद्धूत दिव्य देवगति द्वारा तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य में से गुजरते हुए जिस तरफ जंबूद्वीप नामक द्वीप है, भारतवर्ष है, जहाँ ताम्रलिप्ती नगरी है, जहाँ तामली मौर्यपुत्र है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर तामली बालतपस्वी के ऊपर, समक्ष और सम्प्रतिपक्ष दिशा में अर्थात् उसके सामने खड़े

ठिच्चा दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवज्जुतिं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं बत्तीसतिविहं नट्टविहिं उवदंसेंति, उवदंसेत्ता तामलिं बालतवस्सिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

होकर दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव और दिव्य बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियों को बताते हैं, दिखाते हैं, दिखाकर तामली बालतपस्वी को तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना और नमस्कार करते हैं, वंदना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे बलिचंचारायहाणीवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो। अम्हण्णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिया इंदाहीणकज्जा, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचं रायहाणिं आढाह परियाणह सुमरह, अट्ठं बंधह, निदाणं पकरेह, ठितिपकप्पं पकरेह, तए णं तुब्भे कालमासे कालं किच्चा बलिचंचाए रायहाणीए उववज्जिस्सह, तए णं तुब्भे अम्हं इंदा भविस्सह, तए णं तुब्भे अम्हेहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह।

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले हम बहुत से असुरकुमार देव और बहुत सी देवियाँ आप देवानुप्रिय को वंदना करते हैं, नमन करते हैं, सत्कार और सम्मान करते हैं तथा आपको कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप मानकर आपकी पर्युपासना करते हैं, हे देवानुप्रिय ! अभी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित विहीन है और हे देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले इन्द्राधिष्ठित हैं तथा हमारे सब कार्य इन्द्राधिष्ठित हैं तथा हमारे सब कार्य इन्द्र के अधीन हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! आप बलिचंचा राजधानी का आदर करो, उसका स्वामित्व ग्रहण करो और स्मरण करो, इसके लिये विचार करो, निदान करो, इन्द्र रूप में स्वामी होने का संकल्प करो जिससे तुम काल मास में काल करके बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न होंगे, तब तुम हमारे इन्द्र होओगे और तब तुम हमारे साथ दिव्य भोग्य भोगों को भोगते हुए आनन्दानुभव करोगे।

तए णं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब उस तामली बालतपस्वी ने उन बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों की बात को सुनकर उसका आदर नहीं किया, उसको स्वीकार नहीं किया किन्तु मौन धारण कर लिया।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं मोरियपुत्तं दोच्चं पि तच्चं पि तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति-जाव-अम्हं च णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिआ इंदाहीण-कज्जा, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचं रायहाणिं आढाह परियाणह सुमरह, अट्ठं बंधह, निदाणं पकरेह, ठितिपकप्पं पकरेह-जाव-दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियाँ उस तामली मौर्यपुत्र की दुबारा तिबारा तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं—यावत्—हे देवानुप्रिय ! हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित विहीन है, हे देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले हैं, इन्द्राधिष्ठित हैं और हमारे सब कार्य इन्द्राधीन हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम बलिचंचा राजधानी का आदर करो, उसका इन्द्रत्व स्वामिपना ग्रहण करो, स्मरण करो, इसके लिये विचार करो, निदान करो, स्वामीरूप होने का संकल्प करो—यावत्—दुबारा भी, तिबारा भी इसको सुनकर उस बात का आदर नहीं किया, उसको स्वीकार नहीं किया किन्तु मौन धारण कर लिया।

२६८. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिणा बालतवस्सिणा अणाढाइज्जमाणा अपरियाणिज्जमाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

२६८. तत्पश्चात् जब तामली बालतपस्वी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब वे बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत से देव और देवियाँ उस तामली बाल तपस्वी के द्वारा अनादृत से होकर, बात को स्वीकार न किये जाने के कारण जिस दिशा में से प्रगट हुए थे, वापस उसी दिशा में चले गए।

तामलिस्स ईसाणिन्दत्तण उववाओ—

२६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे कप्पे अणिंदे अपुरोहिए यावि होत्था।

तए णं से तामली बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं सट्ठिं वाससहस्साइं परियागं पाउणित्ता, दोमसियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा ईसाणकप्पे ईसाणवडेंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए ईसाण-देविंदविरहियकालसमयंसि ईसाणदेविंदत्ताए उववण्णे।

तामली का ईशानेन्द्र के रूप में उपपात—

२६९. उस काल, उस समय ईशान कल्प इन्द्र और पुरोहित विहीन था।

उस समय वह तामली बालतपस्वी परिपूर्ण साठ हजार वर्ष तक साधु पर्याय का भोग कर-पालन कर दो मास की संल्लेखना द्वारा आत्मा को भावित कर, एक सौ बीस भक्त का अनशन कर मरण काल में काल करके ईशान कल्प में ईशानवतंसक विमान की उपपात सभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशैया पर अंगुल की असंख्यात भाग जितनी अवगाहना से ईशान देवेन्द्र के विरह काल समय में ईशान देवेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ।

२७०. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए-जाव-भासा-मण-पज्जत्तीए।

२७०. तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान पाँच प्रकार की पर्याप्तियों द्वारा पर्याप्तपने को प्राप्त करता है, तथा-आहार पर्याप्ति द्वारा-यावत्-भाषा-मनः पर्याप्ति द्वारा।

ईसाणिन्दत्तं णच्चा असुरकुमारदेवाणं रोसो तामलिसरीरहीलणं च—

२७१. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं कालगतं जाणित्ता, ईसाणे य कप्पे देविंदत्ताए उववण्णं पासित्ता आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती नयरी जेणेव तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वामे पाए सुंबेण बंधंति, तिक्खुत्तो मुहे निट्ठुहंति, तामलित्तीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महा-पह-पहेसु आकड्ढ-विकड्ढिं करेमाणा, महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयासि—

केस णं भो ! से तामली बालतवस्सी सयंगहियलिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? केस णं से ईसाणे कप्पे ईसाणे देविंदे देवराया ? ति कट्टु तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलंति निंदंति खिंसंति गरहंति अवमण्णंति तज्जेंति तालेंति परिवहेंति पव्वहेंति, आकड्ढविकड्ढिं करेंति, हीलेत्ता निंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमण्णेत्ता तज्जेत्ता तालेत्ता परिवहेत्ता पव्वहेत्ता आकड्ढ-विकड्ढिं करेत्ता एगंते एडिंति एडित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

ईशानेन्द्रत्व को जानकर असुरकुमार देवों का रोष और तामली के शरीर की हीलना—

२७१. उसके बाद बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से देव और देवी तामली बालतपस्वी के कालगत होने को जानकर और ईशान कल्प में देवेन्द्रपने से उत्पन्न होना देखकर क्रोधित हो गये, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए बलिचंचा राजधानी के मध्य में से निकलते हैं, निकलकर वे उत्कृष्ट गति से यावत्-जिस तरफ भारतवर्ष है, उसमें जहाँ ताम्रलिप्ती नगरी है, जहाँ बालतपस्वी तामली का शरीर पड़ा है वहाँ आते हैं और उस शव के बायें पैर को रस्सी से बाँधते हैं बाद में तीन बार उसके मुख पर थूकते हैं और फिर ताम्रलिप्ती नगरी में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य मार्गों में घसीटते-घसीटते और जोर-जोर आवाज में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले—

अरे हे ! स्वयं अपने आप वेष पहनने वाला और प्राणामा नामक दीक्षा से दीक्षित होने वाला तामली बालतपस्वी कौन है ? ईशान-कल्प में ईशान देवेन्द्र देवराज कौन है ? ऐसा करके तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना करते हैं, निन्दा करते हैं, खिंसा करते हैं, गर्हा करते हैं, अवमानना करते हैं, तर्जना करते हैं, पीटते हैं, कदर्थना करते हैं, प्रव्यथित करते हैं और जैसा मन में आता है वैसा उल्टा-सीधा घसीटते हैं और इस प्रकार से हीलना करके, निन्दा करके, खिंसा करके, गर्हा करके, अपमान करके, तर्जना करके, पीट करके, कदर्थना करके, प्रव्यथित करके, उल्टा-सीधा घसीट करके एकान्त स्थान पर फेंक देते हैं, फेंक कर जिस दिशा में प्रगट हुए थे वापस उसी दिशा में चले गये।

तामलिसरीरस्स हीलणं णच्चा ईसाणिन्देण बलिचंचा-रायहाणिस्स दहणं—

२७२. तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निंदिज्जमाणं खिसिज्जमाणं गरहिज्जमाणं अवमण्णिज्जमाणं तज्जिज्जमाणं तालेज्जमाणं परिवहिज्जमाणं पव्वहिज्जमाणं आकड्ढविकड्ढि कीरमाणं पासंति, पासित्ता आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिए कालगए जाणित्ता ईसाणे य कप्पे इंदत्ताए उववण्णे पासेत्ता आसुरुत्ता-जाव-एगंते एडेंति, एडेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं ईसाणे देविंदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणिं अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएइ।

तए णं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा अहे सपक्खि सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेणं दिव्वप्पभावेणं इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियब्भूया तत्तकवेल्लकब्भूया तत्ता समजोइब्भूया जाया यावि होत्था।

असुरकुमारदेवेहिं ईसाणिन्दपत्थणं खमावणं य—

२७३. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणिं इंगालब्भूयं-जाव-समजोइ-ब्भूयं पासंति, पासित्ता भीआ तत्था तसिआ उव्विग्गा संजायभया सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति, आधावेत्ता परिधावेत्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा चिट्ठंति।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं परिकुवियं जाणित्ता ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणु-भागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा

तामली के शरीर की हीलना को जानकर ईशानेन्द्र द्वारा बलिचंचा राजधानी का दहन—

२७२. तत्पश्चात् वे ईशानकल्पवासी बहुत से देव और देवी बलि-चंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों को तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना, निन्दा, खिसा, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना, प्रव्यथना, इधर-उधर घसीटना आदि करते हुए देखते हैं, देखकर क्रोधाभि-भूत हो यावत्-दाँतों को मिसमिसाते हुए जहाँ ईशान देवेन्द्र देव-राज हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर करतलों को जोड़ दसों नखों को मिलाकर मस्तक पर आवर्तकर अंजलिपूर्वक जय विजय शब्दों से वधाते हैं, वधाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवानुप्रिय को कालगत जानकर और ईशानकल्प में इन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ देखकर क्रोधाभिभूत हो—यावत्-एकान्त स्थान में फेंकते हैं, फेंककर जिस दिशा में प्रगट हुए थे, वापस उसी दिशा में चले गये।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज ईशान उन ईशान कल्पवासी बहुत से देवों देवियों की इस बात को सुनकर और अवधारण करके क्रोधाभिभूत हो—यावत्-मिसमिसाते हुए वहीं देवशैया पर बैठा हुआ वह ईशानेन्द्र कपाल में तीन रेखायें हो जायें इस प्रकार से भृकुटी चढ़ाकर नीचे बलिचंचा राजधानी की ओर सपक्ष और सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने देखता है।

तब वह बलिचंचा राजधानी देवेन्द्र देवराज ईशान के द्वारा नीचे सपक्ष और सप्रतिदिशा में यानी बराबर सामने देखे जाने पर उसके दिव्य प्रभाव से अंगार जैसी हो गई, आग के कणों जैसी हो गई, राख जैसी हो गई, तपी हुई रेत के कणों जैसी हो गई और प्रज्वलित लपटों जैसी हो गई।

असुरकुमार देवों द्वारा ईशानेन्द्र से प्रार्थना और क्षमापन—

२७३. तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से असुरकुमार देव और देवी बलिचंचा राजधानी को अंगार जैसी हुई—यावत्-लपटों जैसी हुई देखते हैं, देखकर भयभीत, त्रस्त, संत्रस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर इधर-उधर भागते हैं, दौड़ते हैं, भागदौड़ कर एक दूसरे के शरीर से सटकर चिपक कर खड़े हो जाते हैं।

तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे असुरकुमार देव और देवी देवेन्द्र देवराज ईशान को कुपित हुआ जानकर देवेन्द्र देवराज ईशान की उस दिव्य, देवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति, दिव्यदेव प्रभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन नहीं करते हुए

करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—अहो ! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं खामेमो णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति ।

सपक्ष, सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने खड़े होकर हाथों को जोड़ दशों नखों को मिलाकर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाते हैं बधाकर इस प्रकार बोले-अहो ! आप देवानुप्रिय के दिव्यदेव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को हमने देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हम आप से क्षमा माँगते हैं, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करें, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करने योग्य हैं, पुनः हम ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा करके विनयपूर्वक इस अपराध के लिये बारम्बार क्षमा माँगते हैं।

तदणंतरं असुरकुमारा ईसाणिन्दस्स आणाए ठिया जाया—

तदनन्तर असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा में स्थित होते हैं—

२७४. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामिते समाणे तं दिव्वं देविड्ढि-जाव-तेयलेस्सं पडिसाहरइ । तप्पभिंतिं च णं गोयमा ! ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं आढंति परियाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासंति, ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आणा-उववायवयण-निद्देसे चिट्ठंति ।

२७४. उसके बाद जब उन बलिचंचा राजधानी में रहने वाले असुरकुमार देवों और देवियों ने अपने अपराध के लिये देवेन्द्र देवराज ईशान से विनयपूर्वक अच्छी तरह बारम्बार क्षमा माँगी तब उस देवेन्द्र देवराज ईशान ने अपनी उस दिव्य देव ऋद्धि-यावत्-तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण कर लिया अर्थात् वापस खींच लिया । हे गौतम ! उसी समय से वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं, आदेश को मानते हैं, सत्कार सम्मान करते हैं, कल्याण, मंगलदेव और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उसकी सेवा करते हैं और तभी से देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा में, सेवा में, आदेश में, निर्देश में रहते हैं ।

एवं खलु गोयमा ! ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ।

हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को इस प्रकार से लब्ध, प्राप्त, पूर्ण रूप से अधिगत किया है ।

ईसाणिन्दस्स ठिई महाविदेहे सिद्धी य—

ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि—

२७५. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

२७५. हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

हे गौतम ! उसकी स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की कही है ।

ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

भग० स० ३, उ० १ ।

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान आयुक्षय होने, भवक्षय होने, स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! वह महाविदेह में जन्म लेकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

□ □

तामलिसरीरस्स हीलणं णच्चा ईसाणिन्देण बलिचंचारायहाणिस्स दहणं—

२७२. तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निंदिज्जमाणं खिसिज्जमाणं गरहिज्जमाणं अवमण्णिज्जमाणं तज्जिज्जमाणं तालेज्जमाणं परिवहिज्जमाणं पव्वहिज्जमाणं आकड्ढविकड्ढि कीरमाणं पासंति, पासित्ता आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिए कालगए जाणित्ता ईसाणे य कप्पे इंदत्ताए उववण्णे पासेत्ता आसुरुत्ता-जाव-एगंते एडेंति, एडेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं ईसाणे देविंदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणिं अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएइ।

तए णं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेणं दिव्वप्पभावेणं इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियब्भूया तत्तकवेल्लकब्भूया तत्ता समजोइब्भूया जाया यावि होत्था।

असुरकुमारदेवेहिं ईसाणिन्दपत्थणं खमावणं य—

२७३. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणिं इंगालब्भूयं-जाव-समजोइ-ब्भूयं पासंति, पासित्ता भीआ तत्था तसिआ उव्विग्गा संजायभया सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति, आधावेत्ता परिधावेत्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा चिट्ठंति।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं परिकुवियं जाणित्ता ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो तं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणु-भागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा

तामली के शरीर की हीलना को जानकर ईशानेन्द्र द्वारा बलिचंचा राजधानी का दहन—

२७२. तत्पश्चात् वे ईशानकल्पवासी बहुत से देव और देवी बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों को तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना, निन्दा, खिसा, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना, प्रव्यथना, इधर-उधर घसीटना आदि करते हुए देखते हैं, देखकर क्रोधाभिभूत हो यावत्-दाँतों को मिसमिसाते हुए जहां ईशान देवेन्द्र देवराज हैं, वहां आते हैं, वहां आकर करतलों को जोड़ दसों नखों को मिलाकर मस्तक पर आवर्तकर अंजलिपूर्वक जय विजय शब्दों से बधाते हैं, बधाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवानुप्रिय को कालगत जानकर और ईशानकल्प में इन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ देखकर क्रोधाभिभूत हो—यावत्-एकान्त स्थान में फेंकते हैं, फेंककर जिस दिशा में प्रगट हुए थे, वापस उसी दिशा में चले गये।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज ईशान उन ईशान कल्पवासी बहुत से देवों देवियों की इस बात को सुनकर और अवधारण करके क्रोधाभिभूत हो—यावत्-मिसमिसाते हुए वहीं देवशैया पर बैठा हुआ वह ईशानेन्द्र कपाल में तीन रेखायें हो जायें इस प्रकार से भृकुटी चढ़ाकर नीचे बलिचंचा राजधानी की ओर सपक्ष और सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने देखता है।

तब वह बलिचंचा राजधानी देवेन्द्र देवराज ईशान के द्वारा नीचे सपक्ष और सप्रतिदिशा में यानी बराबर सामने देखे जाने पर उसके दिव्य प्रभाव से अंगार जैसी हो गई, आग के कणों जैसी हो गई, राख जैसी हो गई, तपी हुई रेत के कणों जैसी हो गई और प्रज्वलित लपटों जैसी हो गई।

असुरकुमार देवों द्वारा ईशानेन्द्र से प्रार्थना और क्षमापन—

२७३. तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से असुरकुमार देव और देवी बलिचंचा राजधानी को अंगार जैसी हुई—यावत्-लपटों जैसी हुई देखते हैं, देखकर भयभीत, त्रस्त, संत्रस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर इधर-उधर भागते हैं, दौड़ते हैं, भागदौड़ कर एक दूसरे के शरीर से सटकर चिपक कर खड़े हो जाते हैं।

तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे असुरकुमार देव और देवी देवेन्द्र देवराज ईशान को कुपित हुआ जानकर देवेन्द्र देवराज ईशान की उस दिव्य, देवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति, दिव्यदेव प्रभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन नहीं करते हुए

करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—अहो ! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं खामेमो णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति ।

सपक्षं, सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने खड़े होकर हाथों को जोड़ दशों नखों को मिलाकर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से बधाते हैं बधाकर इस प्रकार बोले-अहो ! आप देवानुप्रिय के दिव्यदेव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को हमने देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हम आप से क्षमा माँगते हैं, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करें, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करने योग्य हैं, पुनः हम ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा करके विनयपूर्वक इस अपराध के लिये बारम्बार क्षमा माँगते हैं।

तदणंतरं असुरकुमारा ईसाणिन्दस्स आणाए ठिया जाया—

तदनन्तर असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा में स्थित होते हैं—

२७४. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामिते समाणे तं दिव्वं देविड्ढि-जाव-तेयलेस्सं पडिसाहरइ । तप्पभिंति च णं गोयमा ! ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं आढंति परियाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासंति, ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आणा-उववायवयण-निद्देसे चिट्ठंति ।

२७४. उसके बाद जब उन बलिचंचा राजधानी में रहने वाले असुरकुमार देवों और देवियों ने अपने अपराध के लिये देवेन्द्र देवराज ईशान से विनयपूर्वक अच्छी तरह बारम्बार क्षमा माँगी तब उस देवेन्द्र देवराज ईशान ने अपनी उस दिव्य देव ऋद्धि-यावत्-तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण कर लिया अर्थात् वापस खींच लिया । हे गौतम ! उसी समय से वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं, आदेश को मानते हैं, सत्कार सम्मान करते हैं, कल्याण, मंगलदेव और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उसकी सेवा करते हैं और तभी से देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा में, सेवा में, आदेश में, निर्देश में रहते हैं ।

एवं खलु गोयमा ! ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ।

हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को इस प्रकार से लब्ध, प्राप्त, पूर्ण रूप से अधिगत किया है ।

ईसाणिन्दस्स ठिई महाविदेहे सिद्धी य—

ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि—

२७५. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

२७५. हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

हे गौतम ! उसकी स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की कही है ।

ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

भग० स० ३, उ० १ ।

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान आयुक्षय होने, भवक्षय होने, स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! वह महाविदेह में जन्म लेकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

□ □

१८. अद्दगस्स अण्णातित्थिएण सह वादो

महावीरचरियं अहिकिच्च गोसालगस्स अक्खेवो—

२७६. पुराकडं अद्द ! इमं सुणेह, एगंतचारी समणे पुरासी।
से भिक्खवो उवणेत्ता अणेगे आइक्खतिण्हिं पुढो वित्थरेणं ।१।

साऽऽजीविया पट्ठवियाऽथिरेणं सभागओ गणओ भिक्खुमज्झे।
आइक्खमाणो बहुजण्णमत्थं ण संधयाई अवरेण पुव्वं ।२।

एगंतमेवं अदुवा वि इण्हिं दोऽवण्णमण्णं ण समेंति जम्हा।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च एगंतमेवं पडिसंधयाइ ।३।

अद्दगस्स उत्तरं—

समेच्च लोगं तसथावराणं खेमंकरे समणे माहणे वा।
आइक्खमाणो वि सहस्समज्झे एगंतयं सारयई तहच्चे ।४।

धम्मं कहंतस्स उ णत्थि दोसो खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स।
भासाय दोसे य विवज्जगस्स गुणे य भासाय णिसेवगस्स ।५।

महव्वए पंच अणुव्वए य तहेव पंचासव संवरे य।
विरइं इहस्सामणियम्मि पण्णे लवावसक्की समणे त्ति बेमि ।६।

सीओदगादिसेविणो ण पावमिति गोसालो—

२७७. सीओदगं सेवउ बीयकायं आहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एगंतचारिस्सिह अम्ह धम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेइ पावं ।७।

१८. आर्द्रक का अन्य तीर्थिकों के साथ वाद

महावीर चर्या को लक्ष्य करके गोशालक का आक्षेप—

२७६. हे आर्द्रक ! श्रमण महावीर का यह पूर्व वृतान्त सुनो कि वे पहले अकेले-एकाकी विचरने वाले तपस्वी थे, लेकिन इस समय में वे अनेक भिक्षुओं को अपने साथ रखकर विस्तार के साथ धर्म का उपदेश करते हैं।१।

उन चंचल चित वाले महावीर ने अभी यह जीविका स्थापित की है कि सभा में जाकर अनेक भिक्षुओं के मध्य में बहुत से लोगों के हित के लिये धर्म का उपदेश करते हैं। इस समय का उनका यह व्यवहार पहले के व्यवहार से बिल्कुल नहीं मिलता है।२।

इस प्रकार या तो उनका पहला व्यवहार एकान्तवास ही अच्छा हो सकता है अथवा इस समय का अनेक लोगों के साथ रहना अच्छा हो सकता है। परन्तु दोनों अच्छे नहीं हो सकते हैं। क्योंकि दोनों का परस्पर मेल नहीं है। (प्रत्युत्तर में आर्द्रक कहते हैं)—पहले, अब और भविष्य में श्रमण भगवान् महावीर तो सदा सर्वदा एकान्त का ही अनुभव करते हैं।३। कैसे ?—

आर्द्रक का उत्तर—

श्रमण भगवान् महावीर तो त्रस और स्थावर जीवों के कल्याण के लिये हजारों जीवों के मध्य में धर्म का कथन करते हुए भी एकान्त का अनुभव करते हैं। क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति तदनुरूप ही बनी रहती है।४।

धर्म का उपदेश करते हुए भी उनको दोष नहीं होता है। क्योंकि वे समस्त परीषहों को सहन करने वाले, मन को वश में किए हुए और जितेन्द्रिय हैं। अतः भाषा के दोषों को वर्जित करने वाले उनके द्वारा भाषा का सेवन किया जाना गुण ही है, दोष नहीं है।५।

कर्म से अलिप्त वे पंच महाव्रतों और पंच अणुव्रतों तथा पांच आस्रव एवं पांच संवर का उपदेश करते हैं और पूर्ण साधुपने में वे विरति की शिक्षा देते हैं यह मैं कहता हूँ।६।

शीतोदकादि सेवी को पाप नहीं है—गोशालक का मत—

२७७. कच्चा जल, बीज काय (सचित्त कच्ची वनस्पति) आधा कर्म तथा स्त्रियों का सेवन भले ही कोई करता हो, परन्तु जो अकेला विचरने वाला है, उसको हमारे धर्म में पाप नहीं लगता है।७।

अद्दगस्स उत्तरं—

सीओदगं वा तह बीयकायं आहायकम्मं तह इत्थियाओ।
एयाइं जाणे पडिसेवमाणा अगारिणो अस्समणा भवंति।८।

सिया य बीयोदगइत्थियाओ पडिसेवमाणा समणा भवंतु।
अगारिणो वि समणा भवंतु सेवंति उ ते वि तहप्पगारं।९।

जे यावि बीओदगभोइ भिक्खू भिक्खं विहं जायइ जीवियट्ठी।
ते णाइसंजोगमविप्पहाय काओवगा णंतकरा भवंति।१०।

पावादुयाणं परोप्परं निन्देति गोसालगस्स अक्खेवो—

२७८. इमं वयं तु तुम पाउकुव्वं पावाइणो गरहसि सव्व एव।
पावाइणो उ पुढो किट्टयंता सयं सयं दिट्ठि करेंति पाउं।११।

अद्दगस्स उत्तरं—

ते अण्णमण्णस्स उ गरहमाणा अक्खंति ऊ समणा माहणा य।
सतो य अत्थी असतो य णत्थी गरहामो दिट्ठि ण गरहामो किंचि।१२।

ण किंचि रूवेणऽभिधारयामो सदिट्ठिमग्गं तु करेमो पाउं।
मग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू।१३।

उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु तसा य जे थावर जे य पाणा।
भूयाभिसंकाए दुगुंछमाणे णो गरहइ वुसिमं किंचि लोए।१४।

मेहाविपुरिसपण्हभयेण महावीरो आरामगिहे न तिट्ठतीति—गोसलो—

२७९. आगंतगारे आरामगारे समणे उ भीते ण उवेइ वासं।
दुक्खा हु संती बहवे मणुस्सा ऊणातिरित्ता य लवालवा य।१५।

मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता सुत्तेहि अत्थेहि य णिच्छयण्णू।
पुच्छिसु मा णे अणगार अण्णे इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ।१६।

आर्द्रक का उत्तर—

कच्चे जल, बीजकाय, आधाकर्म और स्त्रियों को सेवन करने वाले गृहस्थ हैं, श्रमण नहीं है।८।

यदि बीजकाय, शीतजल, (कच्चा पानी) आधाकर्म और स्त्रियों को सेवन करने पर भी यदि पुरुष श्रमण माने जायें तो गृहस्थ भी श्रमण क्यों न माने जायेंगे? क्योंकि वे भी पूर्वोक्त विषयों का सेवन करते हैं।९।

जो भिक्षु होकर भी सचित बीजकाय, शीतजल और आधाकर्म आदि का सेवन करते हैं और जीवन-रक्षा के लिये भिक्षावृत्ति करते हैं, वे अपने ज्ञाति संसर्ग को छेदकर भी अपने शरीर के पोषक हैं किन्तु कर्मों का क्षय करने वाले नहीं हैं।१०।

प्रावादुकों की परस्पर निन्दा—यह गोशालक का आक्षेप—

२७८. हे आर्द्रक! तुम इस प्रकार के वचन को कहकर संपूर्ण प्रावादुकों की निन्दा करते हो। प्रावादुक गण अलग-अलग अपने सिद्धान्तों को बताते हुए अपने दर्शन को श्रेष्ठ कहते हैं।११।

आर्द्रक का उत्तर—

वे श्रमण और ब्राह्मण परस्पर एक दूसरे की निन्दा करते हुए अपने-अपने दर्शन की प्रशंसा करते हैं, वे अपने दर्शन में कही हुई क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य और परदर्शनोक्त क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य न होना बताते हैं। अतः मैं उनकी इस एकान्त दृष्टि की निन्दा करता हूँ और कुछ नहीं।१२।

हम किसी के रूप और वेष की निन्दा नहीं करते हैं, किन्तु स्वदर्शन के मार्ग का प्रकाश करते हैं। यह मार्ग सरल व सर्वोत्तम है और आर्य सत्पुरुषों के द्वारा अनुत्तर कहा गया है।१३।

ऊर्ध्व, अधो और तिरछी दिशाओं में रहने वाले जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उन प्राणियों की हिंसा से घृणा करने वाले संयमी पुरुष इस लोक में किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं।१४।

मेधावी पुरुषों के प्रश्न भय से महावीर आरामगृह में नहीं ठहरते—यह गोशालक का आक्षेप—

२७९. तुम्हारे श्रमण भगवान् महावीर बड़े डरपोक हैं, इसीलिये वे जहाँ बहुत से आगन्तुक लोग उतरते हैं ऐसे आगन्तु गृहों और आरामगृहों में निवास नहीं करते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि उक्त स्थानों में बहुत से कोई न्यून, कोई अधिक, कोई वक्ता और कोई मौनी ऐसे मनुष्य निवास करते हैं।१५।

इसके सिवाय कोई मेधावी, कोई शिक्षा पाये हुए, कोई बुद्धिमान तथा कोई सूत्र और अर्थों में पूर्ण निष्णात वहाँ निवास करते हैं। अतः ऐसे वे लोग मुझसे कुछ प्रश्न न पूछ बैठें, ऐसी आशंका से वे श्रमण महावीर वहाँ नहीं जाते हैं।१६।

अद्दगस्स उत्तरं—
णो कामकिच्चा ण य बालकिच्चा रायाभियोगेण कुओ भएणं ?
वियागरेज्जा पसिणं ण वा वि सकामकिच्चेणिह आरियाणं ।१७।

आर्द्रक का उत्तर—
वे श्रमण महावीर विना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करते हैं और न बालक की तरह ही विना विचारे कोई कार्य करते हैं। जब वे राजभय से भी धर्मोपदेश नहीं करते तो फिर दूसरे भयों की तो बात ही क्या ? भगवान् प्रश्न का उत्तर देते हैं और नहीं भी देते हैं। वे तो तीर्थंकर नाम कर्म के कारण आर्यपुरुषों को धर्मोपदेश देते हैं ।१७।

गंता व तत्था अदुवा अगंता वियागरेज्जा समियासुपण्णे ।
अणारिया दंसणओ परित्ता इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ ।१८।

वे सर्वज्ञ भगवान् सुनने वालों के पास जाकर अथवा न जाकर समान भाव से धर्म का उपदेश करते हैं, परन्तु अनार्य लोग दर्शन से भ्रष्ट होते हैं, इस आशंका से भगवान् उनके पास नहीं आते हैं। अथवा अनार्य लोग देखकर भयभीत न हो जायें, इस विचार से भगवान् उनके पास नहीं जाते हैं ।१८।

वणियसरिसो महावीरे त्ति गोसालगस्स अक्खेवो—
पण्णं जहा वणिए उदयट्ठी आयस्स हेउं पगरेइ संगं ।
तओवमे समणे णायपुत्ते इच्चेव मे होइ मई वियक्का ।१६।

वणिक् सदृश महावीर हैं—यह गोशालक का आक्षेप—
जैसे लाभार्थी वणिक् लाभ के लिये महाजनों से संग करता है, यही उपमा श्रमण ज्ञातपुत्र की है, यह मेरी बुद्धि का विचार है ।१६।

अद्दगस्स उत्तरं—
णवं ण कुज्जा विहुणे पुराणं चिच्चाऽमइं ताइ य साह एवं ।
एतावता बंभवति त्ति वुत्ते तस्सोदयट्ठी समणे त्ति बेमि ।।२०।।

आर्द्रक का उत्तर—
श्रमण भगवान् महावीर नवीन कर्मों को नहीं करते हैं किन्तु पुराने कर्मों को क्षय करते हैं। क्योंकि वे स्वयं कहते हैं कि प्राणी कुमति को छोड़कर ही मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार मोक्ष का व्रत कहा गया है उसी मोक्ष के उदय की इच्छा वाले भगवान् हैं, यह मैं कहता हूँ ।२०।

समारभंते वणिया भूयगामं परिग्गहं चेव ममायमाणा ।
ते णाइसंजोगमविप्पहाय आयस्स हेउं पगरेंति संगं ।।२१।।

वणिक् तो प्राणियों का आरम्भ करते हैं और वे परिग्रह पर भी ममता रखते हैं एवं ज्ञातिजनों के सम्बन्ध को न छोड़कर लाभ के निमित्त दूसरों का संग करते हैं ।२१।

वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा ते भोयणट्ठा वणिया वयंति ।
वयं तु कामेहिं अज्झोववण्णा अणारिया पेमरसेसु गिद्धा ।।२२।।

वणिक् तो धन के अन्वेषी और मैथुन में अत्यन्त आसक्त होते हैं, वे भोजन की प्राप्ति के लिये इधर-उधर जाते हैं। अतः हम लोग तो वणिकों को कामासक्त, प्रेमरस में गृद्ध और अनार्य कहते हैं ।२२।

आरंभगं चेव परिग्गहं च अविउस्सिया णिस्सिय आयदंडा ।
तेसिं च से उदए जं वयासी चउरंतणंताय दुहाय णेह ।।२३।।

वणिक् आरम्भ और परिग्रह को नहीं छोड़ते हैं किन्तु उनमें अत्यन्त लिप्त रहते हैं और आत्मा को दण्ड देने वाले हैं। उनका वह उदय, जिसे तुम उदय कहते हो, वह वस्तुतः उदय नहीं, किन्तु चतुर्गति रूप संसार को प्राप्त करने वाला और दुःख का कारण है और उसका कभी अन्त नहीं होता है ।२३।

णेगंति णच्चंति वओदए से वयंति ते दो वि गुणोदयम्मि ।
से उदए साइमणंतपत्ते तमुदयं साहयइ ताइ णाई ।।२४।।

वणिक् को जो उदय होता है, वह एकान्त एवं आत्यन्तिक नहीं है—ऐसा विद्वज्जन कहते हैं और उनके उदय में कोई गुण नहीं है। किन्तु भगवान जिस उदय को प्राप्त हैं, वह सादि और अनन्त है। वे दूसरों को भी इसी उदय की प्राप्ति के लिए उपदेश करते हैं। भगवान त्राण करने वाले और सर्वज्ञ हैं ।२४।

अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं ।
तमायदंडेहि समायरंता अबोहिए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥

भगवान हिंसा से रहित हैं और समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले हैं। वे सदैव धर्म में स्थित और कर्म के विवेक के कारण हैं। ऐसे उन भगवान को तुम जैसे आत्मा को दण्ड देने वाले पुरुष ही वणिक् सदृश कहते हैं। यह कहना तुम्हारे अज्ञान के अनुरूप ही है।२५।

बुद्धभिक्खूणं हिंसा-अहिंसाविसये मतनिवेयणं—

बुद्ध भिक्षुओं का हिंसा-अहिंसा विषयक मत निवेदन—

२८०. पिण्णागपिंडीमवि विद्ध सूले केई पएज्जा पुरिसे इमे त्ति ।
अलाउयं वा वि कुमारग त्ति स लिप्पई पाणिवहेण अम्हं ॥२६॥

२८०. कोई पुरुष खली के पिंड को भी यदि 'यह पुरुष है' यह मानकर शूल में वेधकर पकावे अथवा तुम्बे को बालक मानकर पकावे तो हमारे मत में वह प्राणिवध करने के पाप का भागी होता है।२६।

अहवा वि विद्धूण मिलक्खू सूले पिण्णागबुद्धीए णरं पएज्जा ।
कुमारगं वा वि अलाउए त्ति ण लिप्पई पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥

अथवा वह म्लेच्छ पुरुष यदि मनुष्य को खली समजकर उसे शूल में वेधकर पकावे अथवा तुम्बा समझकर बालक को पकावे तो वह प्राणी के घात के पाप का भागी नहीं होता है, वह हमारा मत है।२७।

पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा सूलंमि केई पए जायतेए ।
पिण्णागपिंडि सइमारुहेत्ता बुद्धाण तं कप्पइ पारणाए ॥२८॥

कोई पुरुष मनुष्य को अथवा बालक को खली का पिंड मानकर उसे शूल में वेधकर आग में पकावे तो वह पवित्र है, तथा बुद्ध के पारणा योग्य है।२८।

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं ।
ते पुण्णखंधं सुमहऽज्जणित्ता भवंति आरोप्प महंतसत्ता ॥२९॥

जो पुरुष दो हजार स्नातक भिक्षुओं को प्रतिदिन भोजन कराता है, वह महान पुण्य अर्जन करके महा पराक्रमी आरोप्य नामक देवता होता है।२९।

अद्दगस्स उत्तरं—

आर्द्रक का उत्तर—

अजोगरूवं इह संजयाणं पावं तु पाणाण पसज्झ काउं ।
अबोहिए दोण्ह वि तं असाहु वयंति जे यावि पडिस्सुणंति ॥३०॥

यह शाक्यमत संयमी पुरुषों के योग्य नहीं है। क्योंकि प्राणियों का घात करके पाप का अभाव कहना जो ऐसा कहते हैं और जो सुनते हैं उन दोनों के लिये अज्ञानवर्धक और बुरा है।३०।

उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु विण्णाय लिंगं तसथावराणं ।
भूयाभिसंकाए दुगुंछमाणे वदे करेज्जा वा कुओ विहऽत्थि ॥३१॥

ऊपर, नीचे और तिरछी दिशाओं में त्रस और स्थावर प्राणियों के सद्भाव के चिन्हों को जानकर जीव हिंसा की आशंका से विवेकी पुरुष हिंसा से घृणा रखता हुआ विचारकर भाषण करे और कार्य भी विचार कर ही करे तो उसे दोष किस प्रकार हो सकता है।३१।

पुरिसे त्ति विण्णत्ति ण एवमत्थि अणारिए से पुरिसे तहा हु ।
को संभवो पिण्णगपिंडियाए वाया वि एसा बुइया असच्चा ॥३२॥

खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि मूर्ख को भी नहीं होती है, अतः जो पुरुष खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि अथवा पुरुष में खली के पिण्ड की बुद्धि करता है वह अनार्य है। खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि होना सम्भव नहीं है, अतः ऐसा वाक्य कहना भी मिथ्या है।३२।

वायाभिओगेण जमावहेज्जा णो तारिसं वायमुदाहरेज्जा ।
अट्ठाणमेयं वयणं गुणाणं णो दिक्खिए बूय सुरालमेयं ॥३३॥

जिस वचन को बोलने से जीव को पाप लगता है, वह वचन विवेकी पुरुष को कभी भी नहीं बोलना चाहिए। तुम्हारा पूर्वोक्त वचन गुणों का स्थान नहीं है। अतः दीक्षा धारण किया हुआ पुरुष ऐसा निःसार वचन नहीं कहता है।३३।

लद्धे अट्ठे अहो एव तुब्भे जीवाणुभागे सुविचिंतिते य।
पुव्वं समुद्दं अवरं च पुट्ठे ओलोइए पाणितलट्ठिए वा ॥३४॥

अहो बौद्धो ! मालूम होता है कि जैसे तुमने ही पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तुमने ही जीवों के कर्मफल का विचार किया है एवं तुम्हारा ही यश पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला है तथा तुमने ही हाथ में रखी हुई वस्तु के समान इस जगत को देख लिया है।३४।

जीवाणुभागं सुविचिंतयंता आहारिया अण्णविहीए सोहिं।
ण वियागरे छण्णपओपजीवी एसोऽणुधम्मो इह संजयाणं ॥३५॥

निर्ग्रन्थ मतानुयायी तो जीवों की पीड़ा को अच्छी तरह सोचकर शुद्ध अन्न को स्वीकार करते हैं तथा कपट से जीविका करने वाले न बनकर मायायुक्त वचन नहीं बोलते हैं। इस जैन शासन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है।३५।

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं।
असंजए लोहियपाणि से ऊ णियच्छई गरहमिहेव लोए ॥३६॥

जो पुरुष दो हजार स्नातक भिक्षुओं को प्रतिदिन भोजन कराता है, वह असंयमी और रुधिर से लाल हाथ वाला पुरुष इसी लोक में निन्दा को प्राप्त करता है।३६।

थूलं उरब्भं इह मारियाणं उद्दिट्ठभत्तं च पगप्पएत्ता।
तं लोणतेल्लेण उवक्खडेत्ता सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥३७॥

इस बौद्ध मत को मानने वाले पुरुष मोटे भेड़े को मारकर उसको बौद्ध भिक्षुओं के भोजन के लिये बनाकर और उसे लवण तेल आदि से पकाकर पिप्पली आदि से उस मांस को बघारते हैं—तैयार सुस्वादु करते हैं।३७।

तं भुंजमाणा पिसियं पभूयं णो उवलिप्पामो वयं रएणं।
इच्चेवमाहंसु अणज्जधम्मा अणारिया बाल रसेसु गिद्धा ॥३८॥

अनार्यों का कार्य करने वाले, अनार्य अज्ञानी रस-लंपट वे बौद्ध भिक्षु यह कहते हैं कि बहुत मांस खाते हुए भी हम लोग पाप से लिप्त नहीं होते हैं।३८।

जे यावि भुंजंति तहप्पगारं सेवंति ते पावमजाणमाणा।
मणं न एयं कुसला करेंती वाया वि एसा बुइया उ मिच्छा ॥३९॥

किन्तु जो लोग पूर्वोक्त प्रकार से निष्पन्न मांस का भक्षण करते हैं वे अज्ञानी जन पाप का सेवन करते हैं। अतः जो पुरुष कुशल हैं वे उक्त प्रकार के मांस के खाने की (मन) इच्छा भी नहीं करते हैं तथा मांस भक्षण में दोष न होने का कथन भी मिथ्या है।३९।

सव्वेसि जीवाण दयट्ठयाए सावज्जदोसं परिवज्जयंता।
तस्संकिणो इसिणो णायपुत्ता उद्दिट्ठभत्तं परिवज्जयंति ॥४०॥

सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करने के लिये और सावद्य दोष को वर्जित करने वाले तथा सावद्य की आशंका करने वाले भगवान महावीर के शिष्य ऋषिगण उद्दिष्ट भक्त का त्याग करते हैं।४०।

भूताभिसंकाए दुगुंछमाणा सव्वेसि पाणाण णिहाय दंडं।
तम्हा ण भुंजंति तहप्पगारं एसोऽणुधम्मो इह संजयाणं ॥४१॥

प्राणियों के उपमर्दन की आशंका से सावद्य अनुष्ठान से विरक्त रहने वाले साधु पुरुष सब प्राणियों को दण्ड देना त्यागकर सदोष आहार को नहीं भोगते हैं। जिन-शासन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है।४१।

णिग्गंथधम्मम्मि इमं समाहिं अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा।
बुद्धे मुणी सीलगुणोववेए अच्चत्थतं पाउणई सिलोगं ॥४२॥

इस निर्ग्रन्थ धर्म में स्थित पुरुष पूर्वोक्त समाधि को प्राप्त करके तथा इसमें भली भांति स्थिर रहकर माया रहित होकर संयम का अनुष्ठान करें। इस धर्म के आचरण के प्रभाव से पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त किया हुआ तथा शील और गुणों युक्त पुरुष अत्यन्त प्रशंसा का पात्र होते हैं।४२।

सियाणगभोयणेण पुण्णज्जणमिति वेय-वाईणं मतं—
२८१. सिणायगाणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णिदिए माहणाणं।
ते पुण्णखंधे सुमहऽज्जणित्ता भवंति देवा इइ वेयवाओ ॥४३॥

स्नान भोजन द्वारा पुण्यार्जन—यह वेदवादियों का मत—
२८१. जो पुरुष दो हजार स्नातक ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराता है, वह महान पुण्यपुञ्ज को उपार्जित करके देवता होता है—यह वेद का कथन है।४३।

अद्दगस्स उत्तरं—
सिणायगाणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णितिए कुलालयाणं।
से गच्छई लोलुवसंपगाढे तिव्वाभितावी णरगाभिसेवी ॥४४॥

आर्द्रक का उत्तर—
क्षत्रिय आदि कुलों में भोजन के लिये घूमने वाले दो हजार स्नातक ब्राह्मणों को जो प्रतिदिन भोजन कराता है, वह पुरुष माँस लोभी पक्षियों से परिपूर्ण नरक में जाता है और वह वहाँ भयंकर ताप को भोगता हुआ निवास करता है।४४।

दयावरं धम्म दुगुंछमाणे वहावहं धम्म पसंसमाणे।
एगं पि जे भोययई असीलं णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले[1] ॥४५॥

दया प्रधान धर्म की निन्दा और हिंसा प्रधान धर्म की प्रशंसा करने वाला जो राजा एक भी शीलरहित ब्राह्मण को भोजन कराता है, वह अन्तकाल में अंधकार युक्त नरक में जाता है। [फिर देवता होने की तो बात ही क्या है?]।४५।

संख-परिव्वायगाणं अव्वत्तरू-वपुरिसविसये मतं—
२८२. दुहओ वि धम्मम्मि समुट्ठियामो अस्सि सुठिच्चा तह एसकालं।
आयारसीले बुइएह णाणे ण संपरायम्मि विसेसमत्थि ॥४६॥

सांख्य-परिव्राजकों का अव्यक्त रूप पुरुष विषयक मत—
२८२. हम और तुम दोनों ही धर्म में प्रवृत्त हैं, हम दोनों तीनों काल में धर्म स्थित हैं। हमारे दोनों के मत में आचारशील पुरुष ज्ञानी कहा गया है तथा हम दोनों के मत में संसार के स्वरूप में भी कोई भेद नहीं हैं।४६।

अव्वत्तरूवं पुरिसं महंतं सणातणं अक्खयमव्वयं च।
सव्वेसु भूएसु वि सव्वओ से चंदो व ताराहिं समत्तरूवे ॥४७॥

यह पुरुष [जीवात्मा] अव्यक्त, व्यापक, सनातन, अक्षय, अव्यय है और सब भूतों में संपूर्ण रूप से रहता है जैसे चन्द्रमा सम्पूर्ण ताराओं के साथ सम्पूर्ण रूप से सम्बन्ध करता है।४७।

अद्दगस्स उत्तरं—
एवं ण मिज्जंति ण संसरंति ण माहणा खत्तिय-वेस-पेसा।
कीडा य पक्खी सरीसिवा य णरा य सव्वे तह देवलोगा ॥४८॥

आर्द्रक का उत्तर—
हे सांख्यो! इस प्रकार आपके मत से हमारे मत की एकता नहीं हो सकती है। क्योंकि तुम्हारे मतानुसार सुभग दुर्भग आदि भेद नहीं हो सकते हैं तथा जीव का अपने कर्म से प्रेरित होकर नाना गतियों में जाना भी सिद्ध नहीं होता है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूप भेद भी सिद्ध होता है एवं कीट, पक्षी और सरीसृप आदि गतियां भी सिद्ध नहीं होंगी और मनुष्य तथा देवता आदि गतियों के भेद भी सिद्ध नहीं होंगे।४८।

लोगं अयाणित्तिह केवलेणं कहिंति जे धम्ममजाणमाणा।
णासेंति अप्पाण परं च णट्ठा संसार घोरम्मि अणोरपारे ॥४९॥

इस लोक को केवलज्ञान के द्वारा न जानकर जो अज्ञानी धर्म का उपदेश करते हैं वे जीव स्वयं नष्ट हो, अपना तथा दूसरों का भी अपार तथा भयंकर संसार में नाश करते हैं।४९।

लोगं विजाणंतिह केवलेणं पुण्णेण णाणेण समाहिजुत्ता।
धम्मं समत्तं च कहिंति जे उ तारेंति अप्पाण परं च तिण्णा ॥५०॥

परन्तु समाधियुक्त जो पुरुष पूर्ण केवलज्ञान के द्वारा इस लोक को ठीक-ठीक जानते हैं और सच्चे धर्म का उपदेश करते हैं, वे पाप से पार हुए पुरुष अपने को और दूसरे को भी संसार सागर से पार करते हैं।५०।

---

१. णिवो णिसं जाति कुओ सुरेहिं। इइ पाठंतरं।

जे गरहियं ठाणमिहावसंति जे यावि लोए चरणोववेया।
उदाहडं तं तु समं मईए अहाउसो विप्परियासमेव ॥५१॥

इस लोक में जो पुरुष निन्दनीय आचरण करते हैं और जो पुरुष उत्तम आचरण का पालन करते हैं, उन दोनों के अनुष्ठानों को अज्ञजीव अपनी इच्छा से समान बताते हैं। अथवा शुभ अनुष्ठान करने वालों को अशुभ आचरण करने वाले और अशुभ अनुष्ठान करने वालों को शुभ आचरण करने वाले, इस प्रकार विपरीत प्ररूपणा करते हैं।५१।

हत्थितावसाणं साभिप्पाय-निरूवणं—

२८३. संवच्छरेणावि य एगमेगं बाणेण मारेउ महागयं तु।
सेसाण जीवाण दयट्ठयाए वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥५२॥

हस्तितापसों का स्वाभिप्राय निरूपण—

२८३. हस्तितापस कहते हैं—हम लोग शेष जीवों की दया के लिये वर्ष भर में बाण के द्वारा एक बड़े हाथी को मारकर वर्ष भर उसके मांस से निर्वाह करते हैं।५२।

अद्दगस्स उत्तर-पदं—

संवच्छरेणावि य एगमेगं पाणं हणंता अणियत्तदोसा।
सेसाण जीवाण वहेण लग्गा सिया य थोवं गिहिणो वि तम्हा ॥५३॥

आर्द्रक का उत्तर पद—

वर्ष भर में एक-एक प्राणी को मारने वाले पुरुष भी दोष रहित नहीं है। क्योंकि तब शेष जीवों के घात में प्रवृत्ति न करने वाले गृहस्थ भी दोष वर्जित क्यों न माने जायें ?।५३।

संवच्छरेणावि य एगमेगं पाणं हणंते समणव्वते ऊ।
आयाहिए से पुरिसे अणज्जे ण तारिसं केवलिणो भणंति ॥५४॥

जो पुरुष श्रमणों के व्रत में स्थित होकर वर्ष भर में भी एक-एक प्राणी को मारता है, वह अनार्य कहा गया है, ऐसे पुरुष को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है।५४।

बुद्धस्स आणाए इमं समाहिं अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं आयाणवं धम्ममुदाहरेज्जासि ॥५५॥

—त्ति बेमि॥

—सूय. सु. २ अ० ६।

तत्त्वदर्शी भगवान की आज्ञा से इस शांतिमय धर्म को अंगीकार करके और इस धर्म में अच्छी तरह स्थित होकर दोनों करणों से मिथ्यात्व की निंदा करता हुआ पुरुष स्वपर की रक्षा करता है। महादुस्तर समुद्र की तरह संसार सागर को पार करने के लिये विवेकी पुरुषों को धर्म का वर्णन और ग्रहण करना चाहिये।५५।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

□ □

१९. महावीरतित्थे अइमुत्तए कुमारसमणे

१९. महावीर तीर्थ में अतिमुक्तक कुमार श्रमण

पोलासपुररण्णो अइमुत्तकुमारो—

२८४. तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नगरे। सिरिवणे उज्जाणे। तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजये नामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी नामं देवी होत्था—वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अतिमुत्ते नामं कुमारे होत्था—सूमालपाणिपाए।

पोलासपुर के राजा का कुमार अतिमुक्तक—

२८४. उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था। उसमें श्रीवन नामक उद्यान था। उस पोलासपुर नगर में विजय नामक राजा था। उस विजय राजा की श्रीदेवी नाम की रानी थी—वर्णन ! उस विजय राजा का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्तक नामक कुमार था—जिसके हाथ पैर आदि अंगोपांग सुकुमाल थे।

गोयमस्स भिक्खायरिया—

२८५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती अणगारे जाव-पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ।

गौतम की भिक्षाचर्या—

२८५. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर का यावत श्रीवन उद्यान में पदार्पण हुआ, और यथाप्रतिरूप अवग्रहों को धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार-यावत-पोलासपुर नगर के उच्च-नीच मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण करते हैं।

गोयम-अइमुत्तकुमार-संवादो—

२८६. इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए-जाव-सव्वालंकारविभूसिए बहूहिं दारएहि य दारयाहि य डिंभिएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए। तेहिं बहूहिं दारएहि य संपरिवुडे अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ।

तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूर-सामंतेणं वीईवयइ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए भगवं गोयमं एवं वयासी—"के णं भंते! तुब्भे? किं वा अडह?"

तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

"अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणा निग्गंथा इरियासमिया-जाव-गुत्तबंभयारी उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडामो।"

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—"एह णं भंते! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि" त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए।

तए णं सा सिरिदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—"कहिं णं भंते! तुब्भे परिवसह?"

गौतम-अतिमुक्तक कुमार-संवाद—

२८६. इस समय कुमार अति मुक्तक स्नान कर-यावत-सर्व अलंकारों से विभूषित हो बहुत से लड़के-लड़कियों और बालक-बालिकाओं एवं कुमार-कुमारिकाओं के साथ अपने घर से निकले, निकलकर जहाँ इन्द्रस्थान बालकों के खेलने का स्थान था वहाँ आये और उन बहुत से बालकों से परिवृत होकर खेलने लगे। उसी समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर के उच्च-नीच-मध्यमकुलों में गृह सामुदायिक भिक्षा चर्या के लिए पर्यटन करते हुए इन्द्रस्थान के समीप से निकले।

तब उन अतिमुक्तक कुमार ने भगवान गौतम को समीप में पर्यटन करते हुए देखा, देखकर जहां भगवान गौतम थे, वहाँ उनके समीप आये और भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—'हे भदन्त! आप कौन हैं और किस कार्य हेतु घूम रहे हैं?

तत्पश्चात् भगवान् गौतम ने अतिमुक्तक कुमार से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं जो ईर्यासमिति आदि समितियों से युक्त यावत-गुप्त ब्रह्मचारी हैं और उच्च-नीच मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हैं।'

तब अतिमुक्तक कुमार ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—'हे भदन्त! आप मेरे साथ चलें, मैं आपको भिक्षा दिलाऊंगा' ऐसा कहकर भगवान गौतम की अंगुली पकड़ ली, पकड़कर जहाँ अपना घर था, वहाँ लेकर आये।

तत्पश्चात श्रीदेवी ने भगवान गौतम को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर जहाँ भगवान गौतम थे वहां आई। भगवान गौतम की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके विपुल अशन, पान, खाद्य-स्वाद्य पदार्थों को दिया—वहराया, वहराकर विदा किया।

तत्पश्चात वह अतिमुक्तक कुमार भगवान गौतम से इस प्रकार बोले—हे भदन्त! आप कहां रहते हैं?

तए णं से भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे आइगरे-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तत्थ णं अम्हे परिवसामो ।"

तब उन भगवान गौतम ने अतिमुक्तक कुमार को इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, धर्म की आदि करने वाले -यावत-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के अभिलाषी श्रमण भगवान महावीर यहीं पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में यथाकल्प अवग्रहों को धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं। वहीं पर हम रहते हैं ।'

अईमुत्तकुमारस्स पव्वज्जा—

२८७. तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धि समणं भगवं महावीरं पायवंदए ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धि जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ-जाव-पज्जुवासइ ।

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जं नवरं— देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए-जाव-पव्वयामि ।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव-इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ [illegible] पव्वइत्तए ।

अतिमुक्तक कुमार की प्रव्रज्या—

२८७. तत्पश्चात अतिमुक्तक कुमार ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! मैं भी आपके साथ श्रमण भगवान महावीर की पाद वंदना के लिये चलना चाहता हूँ ।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध—प्रमाद मत करो ।'

तत्पश्चात् वह अति मुक्तककुमार भगवान गौतम के साथ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे हैं, वहां गये, वहाँ जाकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना की यावत्-पर्युपासना करते हैं ।

तत्पश्चात् भगवान गौतम जहां श्रमण भगवान महावीर विराजमान हैं, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर के समीप गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणा-अनेषणा की आलोचना की, आलोचना करके आहार पानी को दिखाया, दिखाकर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस विशाल परिषद के बीच अतिमुक्तक कुमार के योग्य विचित्र धर्म का कथन किया ।

तब वह अतिमुक्तक कुमार श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर समझ कर हर्षित एवं सन्तुष्ट होकर इस प्रकार बोले—

हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ —यावत इतना विशेष है कि मैं आप देवानुप्रिय के पास -यावत-प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।'

हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुखकर हो, वैसा करो परन्तु प्रमाद मत करो ।

तत्पश्चात् वह अतिमुक्तक कुमार जहां माता-पिता थे, वहाँ आये -यावत-हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूँ ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे, किं णं तुमं जाणसि धम्मं ?"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि तं चेव न जाणसि ? जं चेव न जाणसि तं चेव जाणसि ?"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

"जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्स मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा कियचिरेण वा ? न जाणामि णं अम्मयाओ ! केहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरयइ-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति। एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि। तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए-जाव-पव्वइत्तए।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामकाइं चेव अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

"तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए।"

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महब्बलस्स निक्खमणं-जाव-सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

—अंत० व० ६ अ० १५

तब अतिमुक्तक कुमार के माता पिता ने इस प्रकार कहा—

'हे पुत्र ! अभी तुम बालक हो, तत्व के ज्ञाता नहीं हो, क्या तुम धर्म को जानते हो ?'

तत्पश्चात् अतिमुक्तककुमार ने माता-पिता से कहा—

'हे माता-पिता ! जो मैं जानता हूँ, उसको नहीं जानता हूँ और जिसको नहीं जानता हूँ, उसको जानता हूँ।'

तब माता-पिता ने अतिमुक्तक कुमार से इस प्रकार कहा—

'हे पुत्र ! यह तुम क्या कह रहे हो ? कि जो जानता हूँ, उसको नहीं जानता और जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ ?'

तत्पश्चात् वह अतिमुक्तक कुमार माता-पिता से इस प्रकार बोले—

हे मात तात ! इतना मैं जानता हूँ कि जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य मरेगा किन्तु हे माता पिता ! यह नहीं जानता हूँ कि वह कब कहाँ, किस तरह और कितने समय के बाद मरेगा ? हे माता पिता ! यह नहीं जानता कि किन कर्मों के द्वारा जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवयोनि में उत्पन्न होते हैं। किन्तु हे माता-पिता ! मैं यह जानता हूँ कि जीव स्वयं के कर्मानुसार ही नरक, तिर्यंच-मनुष्य और देवयोनियों में उत्पन्न होता है। इसलिये हे माता-पिता ! मैंने कहा कि जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ और जिसको जानता हूँ उसको नहीं जानता हूँ। इसी कारण हे माता पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर—लेकर-यावत्-प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

उसके बाद जब माता-पिता अतिमुक्तक कुमार को सामान्य युक्तियों से, विशेष युक्तियों से और संज्ञापना, विज्ञापना—वाणी द्वारा समझाने, बुझाने, संशोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ नहीं हुए तब अनिच्छापूर्वक उदासीन मन से अतिमुक्तक कुमार से इस प्रकार बोले—

'हे लाल ! हम तुम्हारी एक दिन के लिये भी राज्य श्री देखना चाहते हैं।'

तब वह अतिमुक्तक कुमार माता पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए मौन रह गये। तब माता-पिता ने उनका राज्याभिषेक महाबल के समान किया, अभिनिष्क्रमण-यावत्-सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

समणअइमुत्तगकुमारस्स कीलणं—

२८८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार समणे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए।

श्रमण अतिमुक्तक कुमार का क्रीड़न—

२८८. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के शिष्य अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण, जो स्वभाव से भद्र, स्वभाव से शांत, स्वभावतः अत्यल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, मृदु मार्दव सम्पन्न, आज्ञानुरूप प्रवृत्ति करने वाले, विनयशील थे।

तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे अण्णया कयाइ महावुट्ठि-कायंसि निवयमाणंसि कक्खपडिग्गह रयहरणमायाए बहिया संपट्ठिए विहाराए।

तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे वाहयं वहमाणं पासइ, पासित्ता मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता णाविया मे णाविया मे नाविओ विव णावमयं पडिग्गहगं उदगंसि कट्टु पव्वाहमाणे-पव्वाहमाणे अभिरमइ। तं च थेरा अद्दक्खु। जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-समणे, से णं भंते! अइमुत्ते कुमार-समणे कतिहिं भवग्गणेहिं सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति?"

२८६. 'अज्जो त्ति!' समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-समणे पगइभद्दए-जाव-विणीए, से यं अइमुत्ते कुमार-समणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति। तं मा णं अज्जो! तुब्भे अइमुत्तं कुमार-समणं हीलेह निंदह खिंसह गरहह अवमण्णह। तुब्भे णं देवाणुप्पिया! अइमुत्तं कुमार-समणं अगिलाए संगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेह। अइमुत्ते णं कुमार-समणे अंतकरे, चेव अंतिमसरीरिए चेव।

तए णं ते थेरा भगवंतो समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, अइमुत्तं कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हंति, अगिलाए उवगिण्हंति, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेंति।

—भग० स० ५ उ० ४

बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं जाव विपुले सिद्धे। —अंत० व० ६ अ० १५

वे अतिमुक्तक कुमार श्रमण अन्य किसी एक दिन खूब वर्षा हो रही थी तब अपनी कांख में रजोहरण दबाकर और पात्र लेकर बाहर शौच के निमित्त निकले थे।

तत्पश्चात उन अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने बहते हुए पानी का एक गड्ढा देखा, देखकर उस गड्ढे के चारों ओर मिट्टी से पाल बांधी, बांधकर 'यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है,' इस प्रकार नाविक की तरह अपने पात्र को नाव रूप करके पानी पर रखा और उसको तैराया, इस प्रकार क्रीड़ा करते हैं। इस प्रवृत्ति को स्थविरों ने देखा, देखकर जहां श्रमण भगवान महावीर विराजमान रहे हैं वहां आये, आकर इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय भगवन्! आपके जो अतिमुक्तक नाम के कुमार श्रमण हैं शिष्य हैं तो हे भगवन्! वे अतिमुक्तक कुमार श्रमण कितने भव करने के पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे, सर्वदुःखों का अन्त करेंगे।'

२८६ हे आर्यो! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने उन स्थविरों से कहा—

'हे आर्यो! स्वभाव से भद्र-यावत-विनीत ऐसा मेरा शिष्य अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण यह भव पूरा करके ही सिद्ध होगा—यावत सर्व दुःखों का अन्त करेगा? अतएव हे आर्यो! तुम उस अतिमुक्तक कुमार श्रमण की अवहेलना मत करो, निन्दा मत करो, रोष मत करो, गर्हा-उपेक्षा मत करो और अपमान मत करो। किन्तु हे देवानुप्रियो! तुम निर्ग्लान भाव से उस अतिमुक्तक कुमार श्रमण की देख-रेख करो, उसको सहायता दो, आहार, पानी आदि से वैयावृत्य करो क्योंकि वह अतिमुक्तक कुमार श्रमण सर्व दुःखों का अन्त करने वाला और चरम शरीर धारण करने वाला है।'

तत्पश्चात् वे स्थविर श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना, नमस्कार करते हैं और अतिमुक्तक कुमार श्रमण की ग्लानि रहित होकर देख रेख करते हैं, उसको सहयोग देते हैं और आहार पानी आदि से उसकी वैयावृत्य-सेवा करते हैं।

बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया, गुणरत्न तप कर्म-यावत्-विपुलाचल पर सिद्ध हुए।

□ □

२०. महावीरतित्थे अलक्करराया

२०. महावीर तीर्थ में अलक्ष्य राजा

अलक्करायस्स पव्वज्जा—

२९०. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए।

तत्थ णं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था।

तणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे जहा कोणिए-जाव-पज्जुवासइ। धम्मकहा।

तए णं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उद्दायणे तहा निक्खंते, नवरं—जेट्ठपुत्तं रज्जे अभिसिंचइ। एक्कारस अंगाइं। बहू वासा परियाओ-जाव-विपुले सिद्धे।

—अंत० व० ६ अ० १६।

अलक्ष्य राज की प्रव्रज्या—

२९०. उस काल, उस समय वाराणसी नगरी थी, उस नगरी में काम महावन नामक चैत्य था।

उस वाराणसी नगरी में अलक्ष्य नामक राजा था।

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर-यावत-विचरते हैं। परिषदा दर्शनार्थ निकली।

तत्पश्चात अलक्ष्य राजा इस वृतान्त को जानकर हर्षित एवं तुष्ट हुआ और कूणिक के समान-यावत-पर्युपासना करता है। भगवान ने धर्म कथा कही।

तत्पश्चात् वह अलक्ष्य राजा उदायन राजा के समान श्रमण भगवान महावीर के पास से निकला और प्रव्रजित हुआ, किन्तु इतनी विशेषता है कि ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर-यावत-विपुल पर्वत पर सिद्ध हुआ।




२१. महावीरतित्थे मेहकुमारसमणे

२१. महावीर तीर्थ में मेघकुमार श्रमण

रायगिहे सेणिओ राया—

२९१. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ। गुणसिलए चेतिए—वण्णओ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था—महताहिमवंत-महंत-मंदर-महिंदसारे वण्णओ।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था—सूमालपाणिपाया वण्णओ।

तस्स णं सेणियस्स पुत्ते नंदाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे होत्था। अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे-जाव-सेणियस्स रण्णो रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव समुपेक्खमाणे समुपेक्खमाणे विहरइ।

राजगृह में श्रेणिक राजा—

२९१. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में दक्षिणार्ध भरत में राजगृह नामक नगर था—वर्णन। गुणशीलक चैत्य था—वर्णन।

उस राजगृह में महाहिमवन्त, महान मलय पर्वत, पृथ्वी के इन्द्र के समान मन्दर [सुमेरु] सदृश श्रेणिक नाम का राजा था वर्णन।

उस श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की देवी-भार्या—रानी थी जो सुकुमार हाथ पैरों वाली थी—वर्णन।

उस श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दादेवी का आत्मज अभय नामक कुमार था—वह हीनतारहित, परिपूर्ण इन्द्रियों एवं शरीर वाला था-यावत्-श्रेणिक राजा के राज्य, राष्ट्र, कोश, कोष्ठागार [अन्न भण्डार], बल, सेना, वाहन, पुर-नगर, और अन्तःपुर का संप्रेक्षण-देखभाल करते हुए विचरता था।

सेणियस्स धारिणी भारिया—

२९२. तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—जाव-सुकुमाल-पाणिपाया विहरइ।

श्रेणिक की धारिणी भार्या

२९२. उस श्रेणिक राजा की धारिणी नाम की देवी [रानी] थी-यावत्-सुकुमाल हाथ पैरों वाली सुखोपभोग करती हुई रहती थी।

धारिणीए सुमिणदंसणं—

२९३. तए णं सा धारिणी देवी अण्णदा कदाइ तंसि तारिसगंसि—छक्कट्ठग-लट्ठमट्ठसंठिय-खंभुग्गय-पवरवर-सालभंजिय-उज्जलं - मणि-कणग-रयण-थूभिय- विडंकजालद्धचंद - निज्जूहंतरकणयालिचंदसा-लियाविभत्तिकलिए सरसच्छधाऊवल-वण्णरइए बाहिरओ दूमिय-घट्ठ-मट्ठे अब्भितरओ पसत्थ—सुविलिहिय-चित्तकम्मे नाणाविह-पंचवण्ण-मणिरयण-कोट्टिमतले पउमलया-फुल्लवल्लि-वरपुप्फजाइ-उल्लोयचित्तिय-तले वंदण-वरकणगकलससुणिम्मिय-पडिपूजिय-सरसपउमसोहंतदारभाए पयरग-लंबंत-मणिमुत्तदाम-सुविरइयदार-सोहे सुगंध-वर कुसुममउय-पम्हलसयणोवयारे मणहिययनिव्वु-इयरे कप्पूर-लवंग-मलय-चंदण-कालागरु-पवरकुन्दुरुक्क - तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंध-वट्टिभूए मणिकिरण-पणासियंधयारे, किंबहुणा? जुइगुणेहिं सुरवरविमाण-विडंबियवरघरए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि-जाव-पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी-ओहीरमाणी—

धारिणी का स्वप्न दर्शन—

२९३. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी ने किसी एक दिन जिसके बाह्य आलंदक या द्वार पर तथा मनोज्ञ, चिकने, सुन्दर आकार वाले ऊँचे खंभों पर अतीव सुन्दर-उत्तम पुतलियां बनी हुई थीं, उज्ज्वल मणियों, कनक और कर्केतन आदि रत्नों से जिसके शिखर बने हुए थे, जो छतरी, गवाक्ष, अर्ध चन्द्राकार सोपान, निर्यूहक (दरवाजे के दोनों ओर निकले काष्ठ) और उनके बीच का भाग, कनकाली चन्द्रमालिका आदि घर के विभागों की सुन्दर रचना से युक्त था, जिसमें स्वच्छ गेरू से उत्तम रंग किया गया था, जिसका बाह्य भाग कलई से पोता गया था तथा कोमल पाषाण से घिसाई किये जाने से अत्यन्त चिकना था, भीतरी भाग में प्रशस्त एवं सुविलसित चित्र बने हुए थे, उसका भूमिभाग [फर्श] विविध प्रकार की पचरंगी मणियों और रत्नों से जड़ा हुआ था तथा ऊपरी भाग [छत] पद्मलताओं, पुष्पवेलों और उत्तम पुष्प जाति-मालती आदि से चित्रित था, जिसके दरवाजे चंदन चर्चित मांगलिक घटों की स्थापना से शोभायमान थे, सरस कमलों से सुशोभित थे, जिसके द्वार प्रवरक, सुवर्णमय आभूषणों, मणियों और मोतियों की लंबी लटकती हुई मालाओं से शोभित हो रहे थे, जिसमें सुगन्धित और श्रेष्ठ पुष्पों से कोमल और सायेंदार शैया का उपचार किया गया था अर्थात् जिसमें सुगन्धित पुष्पों से युक्त शैया बिछी हुई है, मन और हृदय को आनंदित करने वाला था, कपूर, लौंग, मलयज, चन्दन, कृष्ण अगरु, उत्तम कुन्दुरुक्क, तुरुष्क [लोबान] और अनेक सुगन्धित द्रव्यों के संयोग से बने हुए धूप के जलने से उत्पन्न मघमघाती गंध से रमणीय था, जिसमें उत्तम चूर्णों की गंध विद्यमान थी, सुगंध की अधिकता से जो गंधवर्तिका जैसा प्रतीत होता था, मणियों की किरणों के प्रकाश से जिसमें अन्धकार नष्ट हो चुका था, विशेष और क्या कहा जाये? वह अपनी द्युति-कांति से तथा गुणों से उत्तम देव विमान को पराजित करता था, ऐसे उस उत्तम भवन में एक शैया थी -यावत्-मध्यरात्रि के समय में जब न गहरी नींद में थी और न जाग रही थी, अर्थात अर्ध जाग्रत जैसी थी, तब—

एगं महं सत्तुस्सेहं रययकूड-सन्निहं नहयलंसि सोमं सोमागारं लीलायंतं जंभायमाणं मुहमतिगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

एक महान, सात हाथ ऊँचे रजतकूट—चाँदी के शिखर सदृश श्वेत, सौम्य, सौम्याकृति वाले लीला करते हुए हाथी को आकाश तल से अपने मुख में आते हुए देखकर वह जाग गई।

सेणियस्स सुमिनिदवेणं—

२९४. तए णं सा धारिणी देवी अयमेयारूवं उरालं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं सस्सिरीयं महासुमिणं पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया—जाव-अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-गिराहिं संलवमाणी-संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहेत्ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणा-मणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए-जाव-नियगवयणमइवयंतं गयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा—तं एयस्स णं देवाणुप्पिया ! उरालस्स-जाव-सुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?"

सेणिएणं सुमिणमहिम-निदंसणं—

२९५. तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-चुंचुमालइयतणू ऊसवियरोमकूवे तं सुमिणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गहं करेइ, करेत्ता धारिणिं देविं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं अणुवूहमाणे-अणुवूहमाणे एवं वयासी—

"उराले णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे-जाव-अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो ते देवाणुप्पिए ! भोग-सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए !

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं-जाव-सुरूवं दारयं पयाहिसि । से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-

श्रेणिक से स्वप्न निवेदन—

२९४. तत्पश्चात् इस प्रकार के इस उदार-प्रधान महास्वप्न को देखकर जागृत हुई वह धारिणी देवी हर्षित, संतुष्ट और आनंदित होती हुई यावत्-विलंब रहित, राजहंस जैसी गति से चलकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आई, वहाँ आकर श्रेणिक को इष्ट यावत्-वाणी बोल-बोल कर जगाती है, जगाकर श्रेणिक राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन पर बैठती है, उत्तम सुखासन पर बैठकर आश्वस्त—चलने के श्रम से रहित होकर, विश्वस्त क्षोभ रहित होकर और दोनों करतलों को जोड़कर मस्तक के आवर्त-पूर्वक अंजलि करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोली—

'हे देवानुप्रिय ! आज मैं उस पूर्व वर्णित शरीर प्रमाण तकिया वाली शैया पर सो रही थी तब यावत-अपने मुख में प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न में देखकर जागी हूँ—तो हे देवानुप्रिय ! इस उदार-यावत-स्वप्न का कौनसा कल्याणकारक फल विशेष होगा ?

श्रेणिक के द्वारा स्वप्न महिमा निदर्शन—

२९५. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में अवधारण करके हर्षित हुआ, सन्तुष्ट हुआ, चित्त में आनंदित हुआ, मन में प्रीति उत्पन्न हुई, परम प्रसन्नता हुई, हर्षातिरेक से उसका हृदय विकसित हो गया, मेघ की धाराओं से आहत कदंब वृक्ष के सुगन्धित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा, उसका रोम-रोम खड़ा हो गया, उसने स्वप्न का अवग्रहण किया—सामान्य रूप से विचार किया, अवग्रहण करने के अनन्तर विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया, ईहा में प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि विज्ञान द्वारा उस स्वप्न के फल का निश्चय किया, निश्चय करके इष्ट यावत-वाणी से वार-वार प्रशंसा करते हुए धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है—यावत-हे देवानुप्रिये ! इस स्वप्न को देखने से तुम्हें अर्थ लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! राज्य लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! तुम्हें भोग और सौख्य लाभ होगा ।

निश्चय ही हे देवानुप्रिये ! तुम पूरे नौ मास और साढ़े सात रात्रि दिन-व्यतीत होने पर हमारे कुल की ध्वजा के समान यावत-रूपवान बालक-पुत्र को जन्म दोगी । वह बालक बाल्यावस्था को पार करके, ज्ञान, विज्ञान और विनय में परिपक्व

परिणयमेत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विपुल-बलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ।

होकर, युवावस्था को प्राप्त कर शूरवीर और पराक्रमी होगा, वह विस्तीर्ण और विपुल सेना और वाहनों वाला होगा, राज्य का अधिपति राजा होगा।

तं उराले णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवि ! सुमिणे दिट्ठे" त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेइ।

हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार-स्वप्न देखा है—यावत्—हे देवी, तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुष्यकारी, कल्याणकारी स्वप्न देखा है,' इस प्रकार कह कर बारम्बार उसकी प्रशंसा करने लगा।

धारिणीए सुमिणजागरिया—

२६६. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवमेयं देवाणुप्पिया !....-जाव-सच्चे णं एसमट्ठे जं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिकणगरयण-भत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एवं वयासी—

धारिणी की स्वप्न जागरणा—

२६६. उसके बाद हर्षातिरेक से जिसका हृदय पुलकित हो उठा है, ऐसी वह धारणी देवी श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हर्षित, संतुष्ट एवं चित्त में आनंदित हुई और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोली—हे देवानुप्रिय ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है……आपने मुझसे जो कहा है, सो वह अर्थ सत्य है। इस प्रकार कहकर स्वप्न को भली भांति स्वीकार करती है, स्वीकार करके श्रेणिक राजा की अनुमति प्राप्त कर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन से उठती है, उठकर जहां अपनी शैया है, वहां आती है, वहां आकर शैया पर बैठती है, बैठकर इस प्रकार सोचती है—

"मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिहि" त्ति कट्टु देवय-गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।

'मेरा यह उत्तम, प्रधान और मंगल रूप स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नों द्वारा प्रतिघात प्राप्त न हो अथवा नष्ट न हो जाये,' ऐसा विचार कर देव और गुरुजनों सम्बन्धी प्रशस्त धार्मिक कथाओं द्वारा अपने स्वप्न की रक्षा करने के लिये जागरण करती हुई विचरती है।

सुमिणपाढग-निमंतणं—

२६७. तए णं से सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

स्वप्न पाठक निमंत्रण—

२६७. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा प्रभात काल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज सविसेसं परमरम्मं....गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह य करेत्ता कारवेत्ता य। एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही बाहर की उपस्थानशाला को विशेष रूप से परमरमणीय…………सुगंध की गुटिका के समान करो, और करवाओ और ऐसा करके वापस आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।'

तए णं से कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हर्षित, सन्तुष्ट एवं मन में आनंदित हुए -यावत— उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् आज्ञानुसार कार्य होने की सूचना देते हैं।

तए णं से सेणिए राया-जाव-जेणेव अट्टणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा -यावत-जहां व्यायाम शाला थी, वहां आता है, वहाँ आकर व्यायाम शाला में प्रवेश करता है।

अणेगवायाम-जोग्ग-वग्गण- वामद्दण - मल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधवरतेल्लमादिएहिं-जाव-अब्भंगेहिं अब्भंगिए समाणे....-अवगय-परिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसई, अणुपविसित्ता समत्तजाला-भिरामे विचित्त-मणि-रयण-कोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणगपवर-मज्जणविहीए मज्जिए तत्थ-कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइ-लूहियंगे अहय-सुमहग्घ-दूसरयण-सुसंवुए -ससि व्व पियदंसणे नरवइ मज्जण-घराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्याभिमुहे सण्णिसण्णे।

अनेक प्रकार के व्यायाम, योग्य [भारी पदार्थों को उठाना] वल्गन [कूदना] व्यामर्दन [भुजा आदि अंगों को परस्पर मोड़ना] मल्लयुद्ध तथा करण [बाहुओं को विशेष प्रकार से मोड़ना] आदि के द्वारा श्रम, विशेष श्रम करने के बाद शतपाक, सहस्रपाक आदि श्रेष्ठ सुगंधित तेल आदि के द्वारा यावत-अभ्यंगनों से अभ्यगंन कराया, पश्चात............परिश्रम के दूर होने पर राजा व्यायाम शाला से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ मज्जनगृह [स्नानघर] था, वहां आता है, आकर मज्जनगृह में प्रवेश करता है, प्रवेश करके जालियों से मनोहर, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों से जिसका भूमिभाग रमणीय है ऐसे स्नान मंडप के भीतर विविध प्रकार की मणियों और रत्नों की रचना से चित्र विचित्र स्नान करने की पीठ-चौकी पर सुखपूर्वक बैठकर शुभ जल से, सुगन्धित जल से, पुष्पमिश्रित जल से और शुद्ध जल से बारंबार कल्याणकारी और उत्तम स्नान विधि से स्नान किया, कल्याणकारी और उत्तम स्नान करने के अनन्तर अनेक प्रकार के सैंकड़ों कौतुक किये गये, तत्पश्चात् पक्षी के पंख के समान सुकुमाल, सुगन्धित और कषाय रंग में रंगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा, कोरे, बहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये.......... चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन वाला राजा श्रेणिक मज्जन गृह से बाहर निकलता है, निकलकर जहां बाह्य उपस्थान शाला थी, वहां आता है, वहां आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ।

तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरित्थमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थ-पच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थय-मंगलो-वयार-कयसंतिकम्माइं रयावेइ, रयावेत्ता नाणामणिरतणमंडियं.... सुमउयं धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावेत्ता कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा अपने से न अति दूर और न अति निकट उत्तर पूर्व दिशा में ईशानकोण में श्वेतवस्त्र से आच्छादित और सरसों के मांगलिक उपचार से जिनमें शांतिकर्म किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है, रखवाकर विविध मणि रत्नों से मंडित.... ....भीतरी भाग में धारिणी देवी के लिये अतिशय मृदु भद्रासन रखवाया, रखवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थपाढए विविहसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावेत्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।"

'हे देवानुप्रियो! अष्टांग महानिमित्त-ज्योतिष शास्त्र के सूत्र और अर्थ के पाठक, तथा विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्न पाठकों को शीघ्र ही बुलाओ और बुलाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापस लौटाओ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयल-परिग्गहियं दसणह सिरसावत्तं मत्यए अंजलिं कट्टु एवं देवो! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमेत्ता रायगिहस्स

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हर्षित, संतुष्ट, आनंदित हृदय वाले-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाले और दोनों करतलों को जोड़ दसों नखों को एकत्रित कर मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके हे देव! ऐसा ही होगा, इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास से

नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुमिणपाढगगिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति।

सेणिएण सुमिणफल-पुच्छा—

तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया ण्हाया कयबलिकम्मा सएहिं-सएहिं गेहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स भवणवडेंसगदुवारे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एगयओ मिलंति, मिलित्ता सेणियस्स रण्णो भवणवडेंसगदुवारेणं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, सेणिएणं रण्णा अच्चिय-वंदिय-'पूइय-माणिय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति।

तए णं से सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणिं देविं ठवेइ, ठवेत्ता पुप्फफल-पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणी देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि-जाव-महासुमिणं पासित्ताणं पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स-जाव-सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?।"

सुमिणफल-कहणं—

२६६. तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता अण्णमण्णेण सद्धिं संचालेंति, संचालेत्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा पुच्छियट्ठा गहियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा-उच्चारेमाणा एवं वयासी—

"……इमे य सामी! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्ठे, तं उराले णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो सामी! पुत्तलाभो सामी!

निकलते हैं, निकलकर राजगृह नगर के मध्य में से होकर जहां स्वप्नपाठकों के घर हैं, वहां पहुंचते हैं, वहां पहुंचकर स्वप्नपाठकों को बुलाते हैं।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न फल पृच्छा—

२६८. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाया जाने पर वे स्वप्न पाठक हृष्ट-तुष्ट, आनंदित हृदय-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाले हुए, उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म-पूजन किया……अपने-अपने घरों से निकलते हैं, निकलकर राजगृह नगर के बीचों बीच से होकर जहां श्रेणिक राजा के मुख्य भवन का द्वार है, वहां आते हैं, वहां आकर सब एक साथ मिलते हैं, मिलकर श्रेणिक राजा के भवनावतंसक के द्वार से अन्दर प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके जहां बाह्य उपस्थान शाला है जहां श्रेणिक राजा है, वहां आते हैं, आकर जय विजय शब्दों से श्रेणिक राजा को बधाया, श्रेणिक राजा के द्वारा अर्चना, वंदना, पूजा, मान, सत्कार, सम्मान किये जाने के बाद वे स्वप्न पाठक पहले से रखे हुए पृथक-पृथक भद्रासनों पर बैठते हैं।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा यवनिका के अन्दर धारिणी देवी को बैठाता है, बैठाकर हाथों मे पुष्प और फलों को लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्न पाठकों से इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रियों! आज उस प्रकार की उस शैया पर सोई हुई धारिणी देवी-यावत्-महास्वप्न को देखकर जागी है। तो देवानुप्रियो! इस उदार-यावत्-सश्रीक महास्वप्न का क्या कल्याणकारी फल विशेष होगा?

स्वप्न-फल कथन—

२६६. उसके बाद वे स्वप्न पाठक श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-हर्ष वश विकासमान हृदय वाले हुए और उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण करते हैं, अवग्रहण करके ईहा [विचारणा] में प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरे से विचार विमर्श करते हैं, विचार विमर्श करके उस स्वप्न का अपने आप से अर्थ समझा, आपस में उस अर्थ को पूछा, दूसरे के अभिप्राय को ग्रहण किया, दूसरे के अभिप्राय पर विशेष विचार किया, और तथ्य अर्थ का निश्चय किया और उसके बाद श्रेणिक राजा के समक्ष स्वप्न शास्त्रों का बार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

'स्वामिन्! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है, स्वामिन्! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत्-स्वामिन्! धारिणी देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है। स्वामिन्! इससे आपको अर्थ लाभ होगा, स्वामिन्! पुत्र का लाभ होगा, स्वामिन्

रज्ज-लाभो सामी ! भोगलाभो सामी ! सोक्खलाभो सामी ! एवं खलु सामी ! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं वहुपडिपुण्णाणं-जाव-दारगं पयाहिइ । से वि य णं दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णय परिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विपुल-वलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अगणारे वा भावियप्पा ।

राज्य का लाभ होगा, स्वामिन् ! भोग का लाभ होगा, स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा, स्वामिन् ! इस प्रकार धारिणी देवी नौ मास व्यतीत होने पर -यावत्-पुत्र को जन्म देगी । वह पुत्र भी वालवय को प्राप्त करके, विज्ञान और विनययुक्त होकर युवावस्था को पार करके शूर, वीर, पराक्रमी होगा, विस्तीण और विपुल वल-वाहन वाला होगा, राज्याधिपति राजा होगा अथवा अपनी आत्मा को भावित करने वाला अनगार होगा ।

तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे-जाव-आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं सामी ! धारणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे" त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवहेंति ।

अतएव हे स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है—यावत्-हे स्वामिन् धारिणी देवी ने आरोग्यकारक, तुष्टिकारक दीर्घायुष्य कारक कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर वे स्वप्न-पाठक बारवार उस स्वप्न की सराहना-प्रशंसा करने लगे ।

सुमिणपाढग-विसज्जणं—

३००. तए णं से सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवमेयं देवाणुप्पिया !-जाव-जं णं तुब्भे वयह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ", पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पीतिदाणं दलयति, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

स्वप्न-पाठक विसर्जन—

३००. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा उन स्वप्न-पाठकों के इस अर्थ को सुन और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकासमान हृदयवाला हो गया और दोनों करतलों को जोड़ मस्तक पर घुमाकर अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रियो ! जो तुम कहते हो वह वैसा ही है ।' इस प्रकार कहकर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है । स्वीकार करके उन स्वप्नपाठकों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार, सम्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देता है और प्रीतिदान देकर विदा करता है ।

सेणिएण सुमिणपसंसा—

३०१. तए णं से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव धारिणी देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए !....आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्ल-कारए णं तुमे देवि ! सुमिणे दिट्ठे" त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहेइ ।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न-प्रशंसा—

३०१. उसके वाद वह श्रेणिक राजा सिंहासन से उठा, उठकर जहाँ धारिणी देवी थी, वहाँ आया, आकर धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो !.......... तुमने आरोग्य तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर बार-बार उसकी अनुमोदना करता है ।

धारिणीए दोहलो—

३०२. तए णं सा धारिणी देवी सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया तं सुमिणं सम्मं पडिच्छति, पडिच्छित्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया कयवलि-कम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ।

धारिणी का दोहद—

३०२. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के इन अर्थ को सुनकर और अवधारण करके धारिणी देवी हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदयवाली हुई और उन स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार करती है, अंगीकार करके जहाँ अपना वासगृह है, वहाँ आती है, आकर स्नान किया, वलिकर्म, पूजन किया, कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित करके विपुल भोगों को भोगती हुई विचरण करती है ।

तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भवित्था—

"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, सपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासि माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुण्णएसु अब्भुट्ठिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोय-रुप्पपट्ट-अंक-संख-चंद-कुन्द-सालिपिट्ठरासिसमप्पभेसु चिकुर-हरियाल-भेय-चंपग-सण-कोरेंट-सरिसव-पउमरयसमप्पभेसु लक्खारस-सरस-रत्तकिंसुय-जासुमण-रत्तबंधुजीवग-जातिहिंगुलय-सरस-कुंकुम-उरब्भससरुहिर-इंदगोवग-समप्पभेसु बरहिण-नील-गुलिय-सुग-चासपिच्छ-भिंगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर-नवसिरीसकुसुम-नवसद्दलसमप्पभेसु जच्चंजण-भिंगभेय-रिट्ठग-भमरावलि-गवल-गुलिय-कज्जलसमप्पभेसु फुरंत-विज्जुय-सगज्जिएसु वायवस-विपुलगगण-चवलपरिसक्किरेसु, निम्मल - वरवारिधारा - पयलिय - पयंडमारुयसमाहय-समोत्थरंत उवरुवरितुरियवासं पवासिएसु, धारा-पहकर-निवाय-निव्वाविय-मेइणितले हरियगगणकंचुए पल्लवियपायवगणेसु वल्लिवियाणेसु पसरिएसु उन्नएसु सोभग्गमुवागएसु नगेसु नदेसु वा वेभारगिरिप्पवाय-तड-कडगविमुक्केसु उज्झरेसु, तुरियपहाविय-पट्ठलोट्टफेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिनदीसु सज्जज्जुणनीव-कुडय-कंदल-सिलिंध-कलिएसु उववणेसु, मेहरसिय-हट्ठतुट्ठ-चिट्ठिय-हरिसवसपमुक्ककंठकेकारवं मुयंतेसु बरहिणेसु उउवस-मयजणिय-तरुणसहयरि-पणच्चिएसु नवसुरभि-सिलिंध-कुडय-कंदल-कलंब-गंधुद्धणिं मुयंतेसु

उसके बाद दो मास व्यतीत हो जाने पर और जब तीसरा मास चल रहा था तब धारिणी देवी के उस गर्भ के दोहदकाल के अवसर पर इस प्रकार का अकालमेघ का दोहद उत्पन्न हुआ—

"वे माताएँ धन्य हैं, वे माताएँ पुण्यशाली हैं, वे माताएँ कृतार्थ हैं, उन माताओं ने पुण्यार्जन किया है, वे माताएँ कृत लक्षण हैं, जिनका वैभव सफल है, उन्होंने मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्राप्त किया है जब, अग्नि में तपाकर शुद्ध की हुई चाँदी के पतरे के समान, अंकरत्न समान, शंख, चन्द्र, कुन्द, पुष्प, चावल के आटे के समान, श्वेत वर्ण वाले, चिकुर, हरताल के टुकड़े, चंपा के फूल, सन के फूल, कोरंट पुष्प, सरसों के फूल, पद्मपराग के समान-पीत वर्ण वाले, लाख के रस, सरस रक्त, किंशुक के पुष्प, जासू के पुष्प, लाल रंग के बंधुजीवक के पुष्प, उत्तम जाति के हिंगलू, सरस कुंकुम, बकरा और खरगोश के रक्त, इन्द्रगोप के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नीलमणि, गुलिका, तोते के पंख, चाष पक्षी के पंख, भ्रमर के समान पंख, सासक नामक वृक्ष, नीलकमल के समूह, रिष्ट रत्न, भ्रमर समूह, भैंसे के सींग की गोली [अंतरंग भाग] और काजल के समान कृष्ण वर्ण वाले मेघ चारों ओर आकाश में फैल रहे हों, उठ रहे हों बढ़ रहे हों, बरसने को उद्यत हों, गरज रहे हों, बिजली के झपकारे हो रहे हों, फुहार पड़ रही हो तथा गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमक रही हो, वायु के कारण चपल बादल इधर-उधर आकाश में परिभ्रमण कर रहे हों, प्रचंड वायुवेग से आहत और स्खलित होकर निर्मल श्रेष्ठ जल धाराओं से भूमि को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर बरस रही हो, जलधारा से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी ने हरित घास का कंचुक धारण कर लिया हो, वृक्षावलि नवीन पल्लवों से सुशोभित हो गई हो, बेलों का समूह विस्तीर्ण हो चुका हो, उन्नत भूप्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हों अर्थात् पानी से धुलकर साफ स्वच्छ हो गये हों, वैभारगिरि तट और काटकों से प्रपात और निर्झर निकल कर बह रहे हों, पर्वतीय नदियों में तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त मटमैला जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीम और कुटज नामक वृक्षों के अंकुरों और छत्राकार [कुकरमुत्ता] से युक्त हो गये हों, मेघ की गर्जना से हृष्ट, तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्ष के कारण मुक्तकंठ से केकारव कर रहे हों और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हों, उपवन शिलिंध्र, कुटज, कंदल और कंदब वृक्ष के पुष्पों की नवीन और सौरभ युक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हों—सुगन्ध-संपन्न हो रहे हों,

उववणेसु, परहुय-रुय-रिभिय-संकुलेसु उद्दाइंत-रत्तइंदगोवय-थोवय-कारुण्णविलविएसु ओणयतणमंडिएसु दद्दुरपयंपिएसु।

संपिंडिय-दरिय-भमर - महुयरिपहकर - परिलितमत्त-छप्पय-कुसुमासवलोल-महुर-गुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामिय-चंद-सूर-गहगण-पणट्ठनक्खत्ततारगपहे इंदाउह-बद्ध-चिंधपट्टम्मि अंबर-तले उड्डीणबलागपंति-सोभंतमेहवंदे कारंडग-चक्कवाय-कलहंस-उस्सुयकरे संपत्ते पाउसम्मि काले ण्हायाओ कयवलिकम्माओ कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ताओ 'किं ते ?' वरपायपत्तनेउर-मणि-मेहल -हार-रइय-उचि-कडग- खुड्डय-विचित्तवरवलयथंभियभुयाओ कुण्डलउज्जोवियाणणाओ रयणभूसियंगीओ, नासा-नीसासवाय-वोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिससंजुत्तं हयलालापेलवाइरेयं धवलकणय-खचियंतकम्मं आगासफलिह-सरिसप्पभं अंसुयं पवरपरिहियाओ, दुगूलसुकुमालउत्तरिज्जाओ सव्वोउय - सुरभिकुसुम-पवरमल्लसो-भियसिराओ कालागरुधूवधूवियाओ सिरी-समाणवेसाओ, सेयणय-गंधहत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ, सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चंदप्पभ-वइरवेरुलिय-विमलदंड-संख-कुन्द-दगरय-अमय-महिय-फेणपुञ्जसन्निगास-चउचामरवालवीजियंगीओ सेणि-एणं रण्णा सद्धिं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगच्छ-माणीओ चाउरंगिणीए सेणाए-महया हयाणीएणं गयाणीएणं रहाणीएणं पायत्ताणीएणं-सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द - सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतु-डिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुन्दुहि,

नगर के बाहर के उद्यान कोयलों के स्वरों से व्याप्त हों और रक्त इन्द्र गोप नामककीड़ों से सुशोभित हो रहे हों, उनमें चातक करुण स्वर से वोल रहे हों, वे नमे हुए तृणों से सुशोभित हों, उनमें मेंढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हों।

मदोन्मत्त भ्रमर और भ्रमरियों के समूह एकत्रित हो रहे हों, तथा जिसके प्रदेश पुष्प रस के लोलुप और मधुर गुंजार करने वाले मदोन्मत भ्रमरों के गुंजारव से व्याप्त हों, चन्द्र, सूर्य और ग्रहों के समूह मेघों से आच्छादित होने के कारण आकाश श्याम वर्ण का दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी ध्वज पट फहरा रहा हो और उसमें रहा हुआ मेघ समूह बगुलों की पंक्तियों से सुशोभित हो रहा हो, तथा कारंडक, चक्रवाक और राजहंस पक्षियों को मान सरोवर की ओर जाने के लिये उत्सुक वनाने वाला हो, ऐसे वर्षा ऋतु के समय में जो मातायें स्नान करके, वलि कर्म करके, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित करके, पैरों में उत्तम नूपुर धारण करती हैं, कमर में करधनी धारण करती हैं, वक्षस्थल पर हार, हाथों में कड़े, अंगुलियों में अंगूठियां पहनती हैं, अपने बाहुओं को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दों से स्तम्भित करती हैं, जिनका मुख कुंडलों से चमक रहा हो, शरीर रत्नों से भूषित हो रहा हो तथा नासिका की निश्वास वायु से उड़ जायें नेत्रा-कर्षक, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाले से, घोड़े के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल और हल्के, उज्ज्वल, जिनकी किनारियाँ सुवर्ण के तारों से बनी हुई हों, आकाश व स्फटिक के समान कांतिवाले हों और श्रेष्ठ जिनका ऊपरी भाग समस्त ऋतुओं के सुगंधित पुष्पों और श्रेष्ठ पुष्पमालाओं से सुशोभित, कालागुरु आदि की उत्तम धूप से धूपित और लक्ष्मी के वेष के समान ऐसे जिन्होंने वस्त्र धारण किये हों तथा इस प्रकार वस्त्राभूषणों से सज-धजकर जो सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर कोरंट-पुष्पों की माला से सुशोभित छत्र को धारण करती हैं, चन्द्रमा की प्रभा वाले वज्र और वैडूर्य रत्न के निर्मल दण्ड वाले एवं शंख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत मंथन करने से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान उज्ज्वल चार चामर जिन पर ढोरे जा रहे हैं और हस्तिरत्न के स्कंध पर श्रेणिक राजा के साथ बैठी हों, जिनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना, विशाल अश्व सेना, गज सेना, रथसेना और पदाति सेना, चल रही हो, सर्व ऋद्धि के साथ, समस्त द्युति कांति के साथ, समस्त सेना के साथ, समस्त समुदाय के साथ, समस्त आदर पूर्वक, सर्व वैभवपूर्वक, सर्ववि-भूषापूर्वक, ससम्मान, सभी प्रकार के पुष्प, गंध, माला, अलंकारों सहित, नगाड़े आदि सभी प्रकार के वाद्यों के शब्द निनाद के साथ, महान ऋद्धि, द्युति, बल, समूह, उत्तम नगाड़े, शंख, प्रणव पटह भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि

निग्घोसनाइयरवेणं रायगिहं नयरं सिंघाडग-तिग-चउक्क - चच्चर - चउम्मुह - महापहपहेसु आसित्तसित्त-सुइय सम्मज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फपुञ्जोव-यार कलियं कालागरु-पवरकुन्दुरुक्क - तुरुक्क-धूव-उज्झंति-सुरभि-मघमघेंत गंधुद्धयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूय अवलोएमा-णीओ नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणीओ गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म, वल्लि-गुच्छोच्छाइयं सुरम्मं वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति ।

आदि वाद्यों के एक साथ बजने से उत्पन्न निर्घोष शब्द के साथ, जिसके शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों में एक बार जल छिड़का हो, अनेक बार छिड़का हो उन्हें शुचि किया हो, झाड़ा हो, लीपा हो, पंचरंगी, सरस, सुगन्धित मुक्त पुष्प पुंजों के द्वारा जिनका उपचार किया गया हो तथा कालागुरु, उत्तम कुन्दुरुक, तुरुष्क, धूप के जलाने से उत्पन्न सुगन्ध से मघमघा रहे हों, चारों ओर गंध फैलने से मनोहर प्रतीत हो रहे हों, उत्तम गंध के चूर्णों से सुगन्धित हो और गंध द्रव्यों की गुटिका जैसे हो, ऐसे राजगृह नगर को देखती हुई, नागरिकों के द्वारा अभिनन्दन की जाती हुई गुच्छों, लताओं वृक्षों, गुल्मों [झाड़ियों] और बेलों के समूह से व्याप्त मनोहर वैभारगिरि के पादमूल में चारों ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं—वे माताएं धन्य हैं।

तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु-जाव-दोहलं विणिज्जामि ।"

तो मैं भी इसी प्रकार मेघों का उदय आदि होने पर-यावत्-अपने दोहद को पूर्ण करूं ।'

धारिणीए चिंता—

३०३. तए णं सा धारिणी देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि असंपत्तदोहला असंपुण्णदोहला असम्माणियदोहला सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा पमइलदुब्बला किलंता ओमंथि-यवयण-नयणकमला पंडुइयमुही करयलमलिय व्व चंपगमाला नित्तेया दीणविवण्णवयणा जहोचिय-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-हारं अणभिलसमाणी किड्डारमणकिरियं परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा निराणंदा भूमिगयदिट्ठीया ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाइ ।

धारिणी की चिन्ता

३०३. तत्पश्चात् वह धारिणी देवी उस दोहद की उपेक्षा होने के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, दोहद के सम्पूर्ण न होने के कारण, दोहद के सम्मानित न होने के कारण सूख गई, भूख से व्याप्त हो गई, अर्थात् उसे भोजन की इच्छा ही नहीं रही, मांस रहित हो गई, शरीर की हड्डी दिखने लगी, जीर्ण और जीर्ण शरीर वाली हो गई, स्नान का त्याग करने के कारण मलिन शरीर वाली, भोजन त्याग देने से दुबली और थकी सी हो गई, उसके मुख और नयन रूपी कमल नीचे झुक गये, उसका मुख पीला पड़ गया, हथेलियों से मसली हुई चंपक पुष्पों की माला के समान निस्तेज हो गई, मुख दीन और विवर्ण हो गया, यथोचित पुष्प, गन्ध, माला, अलंकार, हार आदि आभूषणों के विषय में अभिलाषा नहीं रही, क्रीड़ा खेलने आदि की क्रियाओं का परित्याग करके दीन, दुखित, आनन्दहीन होकर भूमि की तरफ मुख झुकाये मानसिक संकल्प और उत्साह रहित होकर हथेली पर मुख को टिकाये हुए आर्तध्यान में डूबी रहने लगी।

पडिचारियाहिं चिंताकारणपुच्छा—

३०४. तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडिचारियाओ अब्भि-तरियाओ दासचेडियाओ य धारिणिं देविं ओलुग्गं झियायमाणिं पासंति, पासित्ता एवं वयासी—

"किण्णं तुमे देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव झियायसि ?"

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडिचारियाहिं अब्भित-रियाहिं दासचेडियाहिं य एवं वुत्ता समाणी ताओ दासचेडियाओ

परिचारिकाओं द्वारा चिन्ताकारण पृच्छा—

३०४. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी की अंगपरिचारिकायें और अभ्यन्तर दास चेटिकायें धारिणी देवी को जीर्ण एवं आर्तध्यान में डूबी हुई देखती हैं, देखकर इस प्रकार बोलीं—

'हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण सी और जीर्ण शरीर वाली क्यों हो -यावत्-आर्तध्यान क्यों कर रही हो ?'

उसके बाद धारिणी देवी उन अंगपरिचारिकाओं और अभ्यन्तर दास चेटिकाओं के इस कथन को सुनकर भी उन दास

नो आढाइ नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।

चेटिकाओं का आदर नहीं करती है, उनकी ओर ध्यान नहीं देती है, किन्तु आदर और ध्यान नहीं देती हुई मौन रहती है।

तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अब्भितरियाओ दासचेडियाओ य धारिणिं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—"किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-झियायसि ?"

उसके बाद वे अंगपरिचारिकायें और अभ्यन्तर दास चेटिकायें दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहती हैं—'हे देवानुप्रिये! क्यों तुम जीर्ण सी और जीर्ण शरीर वाली हो रही हो-यावत्-आर्तध्यान कर रही हो ?'

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडिचारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ।

उन अंग परिचारिकाओं और आभ्यन्तर दास चेटिकाओं द्वारा दुबारा और तिबारा भी इसी प्रकार पूछे जाने पर भी वह धारिणी देवी उनके कथन का आदर नहीं करती है और न गौर करती है अर्थात् बात पर ध्यान नहीं देती है किन्तु आदर न करती हुई और उपेक्षा करती हुई मौन रहती है।

पडिचारियाहिं सेणियस्स निवेदणं—

३०५. तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अब्भितरियाओ दासचेडियाओ य धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरियाणिज्जमाणीओ तहेव संभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणी देवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्झाणोवगया झियायइ।"

परिचारिकाओं द्वारा श्रेणिक से निवेदन—

३०५. तत्पश्चात् धारिणी देवी द्वारा अनादृत तथा उपेक्षित वे अंग परिचारिकायें और अभ्यन्तर दासियाँ सम्भ्रान्त (व्याकुल) होकर धारिणी देवी के पास से निकलती हैं, निकलकर जहाँ श्रेणिक राजा है, वहीं आती है, वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़ दसों नखों को मस्तक पर घुमाकर, मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाती हैं, वधाकर इस प्रकार कहती है—

'हे स्वामिन्! आज धारिणी देवी जीर्ण सी-जीर्ण शरीर वाली होकर-यावत्-आर्तध्यान में निमग्न होकर चिन्तित हो रही है।'

सेणिएणं चिंताकारणपुच्छा—

३०६. तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडिचारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं ओलुग्गं ओलुग्गसरीरं-जाव-अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्झाणोवगया झियायसि ?"

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ-जाव-तुसिणीया संचिट्ठइ।

तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

"किण्णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्झाणोवगया झियायसि ?"

श्रेणिक द्वारा चिन्ताकारण पृच्छा—

३०६. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा उन अंग परिचारिकाओं से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर और उसी प्रकार व्याकुल होकर, शीघ्र, त्वरापूर्वक, चपलतायुक्त वेग से अर्थात् अत्यन्त शीघ्र गति से जहां धारिणी देवी थी वहां आता है, आकर धारिणी देवी को जीर्ण, जीर्ण शरीर -यावत-आर्तध्यान ग्रस्त, चिन्तित देखता है, देखकर इस प्रकार बोला—

हे देवानुप्रिये! तुम जीर्णसी, जीर्ण शरीर वाली -यावत-आर्त्तध्यान में मग्न होकर क्यों चिन्ता कर रही हो ?'

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर भी आदर नहीं करती है, उत्तर नहीं देती है -यावत-मौन रहती है।

तब श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से दुबारा भी, तिबारा भी इसी प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिये! क्यों तुम जीर्ण सी, जीर्ण शरीर होकर-यावत्-आर्तध्यान में निमग्न होकर चिन्तित हो ?'

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ-जाव-तुसिणीया संचिट्ठइ।

तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं सवह-सावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"किण्णं देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए? तो णं तुमं ममं अयमेयारूवं मणोमाणसियं दुक्खं रहस्सीकरेसि।"

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा द्वारा, दूसरी बार भी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर आदर नहीं करती, ध्यान नहीं देती हुई मौन रहती है।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा धारिणी देवी को शपथ दिलाता है, शपथ दिलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रिये! क्या मैं तुम्हारे मन की बात सुनने के लिए अयोग्य (नालायक) हूं? जिससे तुम अपने मनोगत इस मानसिक दुःख को छिपा रही हो।'

धारिणीए चिंताकारणनिवेदणं—

३०७. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा सवह-साविया समाणी सेणियं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु सामी! मम तस्स उरालस्स-जाव-महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—

"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु-जाव-दोहलं विणेज्जामि।

तए णं अहं सामी! अयमेयारूवंसि अकालदोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा-जाव-अट्टज्झाणोवगया झियामि।" एएणं अहं कारणेणं सामी! ओलुग्गा-जाव-अट्टज्झाणोवगया-जाव-झियामि।

धारिणी का चिन्ताकारण निवेदन—

३०७. तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा की शपथ को सुनकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोली—

'हे स्वामिन्! मेरे उस उदार-यावत्-महास्वप्न के तीन मास पूर्ण होने पर इस प्रकार का अकालमेघ सम्बन्धी दोहद उत्पन्न हुआ है'—

वे माताएँ धन्य हैं, माताएँ कृतार्थ हैं-यावत्-वैभारगिरि के पादमूल-तलहटी में चारों ओर भ्रमण करती हुई; भ्रमण करती हुई दोहद को पूर्ण करती हैं। मैं भी उसी प्रकार मेघों के उदय होने पर -यावत्-दोहद को पूर्ण करूं।

इस कारण हे स्वामिन्! मैं इस तरह के इस अकाल दोहद के पूर्ण न होने से जीर्ण सी-यावत्-आर्तध्यान ग्रस्त होकर चिन्ता में डूबी हुई हूँ।' हे स्वामी! इसी कारण मैं जीर्ण-सी यावत् आर्तध्यान वश होकर चिन्तित हूँ।'

सेणिएणं आसासणं—

३०८. तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म धारिणिं देविं एवं वयासी—

"मा णं तुमं देवाणुप्पिए! ओलुग्गा-जाव-अट्टज्झाणोवगया झियाहि। अहं णं तह करिस्सामि जहा णं तुब्भं अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ" त्ति कट्टु धारिणिं देविं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं बहूहिं आएहि य उवाएहि य, उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य—चउव्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे-अणुचिंतेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा उप्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहयमण-संकप्पे-जाव-झियायइ।

श्रेणिक का आश्वासन—

३०८. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी की इस बात को सुनकर और समझकर, धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये! तुम जीर्ण सी-यावत्-आर्तध्यान ग्रस्त होकर चिन्तित मत होओ। मैं वैसा करूंगा जिससे तुम्हारे इस प्रकार के इस अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति हो जाये।' इस प्रकार कहकर धारिणी देवी को इष्ट..........वाणी से आश्वासन देता है, आश्वासन देकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला है, वहाँ आता है, आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठा और धारिणी देवी के इस अकाल दोहद की पूर्ति के लिये बहुत से आयों [दृष्टिकोणों] से, उपायों से और औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार चारों तरह की बुद्धियों से बार-बार चिन्तन करते हुए भी उस दोहद के आय हेतु को, उपाय को, स्थिति को, उत्पत्ति को, नहीं समझ सकने से, मानसिक संकल्प और उत्साह विहीन होकर चिन्ता ग्रस्त हो गया।

अभयकुमारेण सेणियं पइ चिंताकारणपुच्छा—

३०९. तयाणंतरं च णं अभए कुमारे ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए पायवंदए पहारेत्थ गमणाए।

तए णं अभए कुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ओहयमणसंकप्पं-जाव-झियायमाणं पासइ, पासित्ता से अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अण्णया ममं सेणिए राया एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आढाइ परियाणइ सक्कारेइ सम्माणेइ इट्ठाहिं वग्गूहिं आलवइ संलवइ अद्धासणेणं उवनिमंतेइ मत्थयंसि अग्घाइ। इयाणि ममं सेणिए राया नो अढाइ नो परियाणइ नो सक्कारेइ नो सम्माणेइ नो इट्ठाहिं....वग्गूहिं आलवइ संलवइ नो अद्धासणेणं उवनिमंतेइ नो मत्थयंसि अग्घाइ, किं पि ओहयमणसंकप्पे-जाव-झियायइ। तं भवियव्वं णं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु ममं सेणियं रायं एयमट्ठं पुच्छित्तए"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"तुब्भे णं ताओ! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता आढाह परियाणह सक्कारेह सम्माणेह आलवह संलवह अद्धासणेणं उवणिमंतेह मत्थयंसि अग्घायह आसणेणं उवणिमंतेह। इयाणि ताओ! तुब्भे ममं नो आढाह-जाव-नो आसणेणं उवणिमंतेह किं पि ओहयमणसंकप्पा-जाव-झियायह। तं भवियव्वं णं ताओ! एत्थ कारणेणं। तओ तुब्भे मम ताओ! एयं कारणं अगूहमाणा असंकमाणा अनिण्हवमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवितहमसंदिद्धं एयमट्ठं आइक्खह। तए णं हं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमिस्सामि।"

अभयकुमार द्वारा श्रेणिक से चिन्ताकारण पृच्छा—

३०९. तदनन्तर अभयकुमार ने स्नान किया, बलिकर्म करके, कौतुक मंगल और प्रायश्चित करके, सर्व अलंकारों से विभूपित होकर पादवंदना करने के लिये प्रस्थान किया।

तत्पश्चात् अभयकुमार जहाँ श्रेणिक राजा था, वहां आया आकर श्रेणिक राजा को संकल्प में डूबे हुए-यावत्-ध्यानमग्न देखता है, देखकर उसके मन में इस प्रकार का यह अन्तरंग चिन्तन संकल्प उत्पन्न हुआ—'किसी दूसरे समय श्रेणिक राजा मुझे आता हुआ देखते थे तब देखकर आदर करते थे, बोलते थे—आया हुआ जानते थे, सत्कार करते थे, सम्मान करते थे, इष्ट वचनों से आलाप-संलाप करते थे, आधे आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित करते थे, मेरे मस्तक को सूंघते थे। लेकिन आज तो श्रेणिक राजा न मुझे आदर दे रहे हैं, न बोल रहे हैं, न सत्कार-सम्मान कर रहे हैं, न इष्ट..........वचनों से आलाप संलाप कर रहे हैं, न अर्ध आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित कर रहे हैं और न मेरे मस्तक को सूंघ रहे हैं, किन्तु संकल्प-विकल्पों में डूबे हुए-यावत्-चिन्ताग्रस्त हैं। इसका कोई कारण होना चाहिये। तो मुझे यह श्रेयस्कर होगा कि मैं श्रेणिक राजा से इसका कारण पूछूं'—इस प्रकार का निश्चय करता है, निश्चय करके जहाँ श्रेणिक राजा थे, वहाँ आता है, आकर दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर घुमाकर और अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाता है, वधाकर इस प्रकार बोला—

'हे तात! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, मेरा आना जानते, सत्कार करते, सम्मान करते आलाप-संलाप करते, अर्ध-आसन पर बैठने के लिये आमन्त्रित करते, मस्तक को सूंघते। आसन से निमंत्रित करते किन्तु तात! आज आप न मुझे आदर दे रहे हैं-यावत्-न मस्तक को सूंघ रहे हैं और न आसन का निमंत्रण दे रहे हैं, तथा किसी मानसिक संकल्प में डूबे हुए—यावत्-चिन्ता कर रहे हैं। तो हे तात! इस विषय का कोई कारण होना चाहिये। अतः हे तात! आप इस कारण को छिपाये बिना, शंका रखे बिना, अपलाप किये बिना, दबाये बिना जैसा का तैसा, सत्य, असंदिग्ध रूप से इस अर्थ को बतलाइये। तत्पश्चात् मैं उस कारण के निराकरण का प्रयत्न करूंगा अर्थात् कार्यसिद्धि के उपायों पर विचार करूंगा।

सेणिएणं चिंताकारणनिवेदणं—

३१०. तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे अभय कुमारं एवं वयासी—

श्रेणिक राजा का चिन्ताकारण निवेदन—

३१०. तत्पश्चात अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा—

"एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए धारिणी देवीए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकाल-समयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था—धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं-जाव-वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु-जाव-दोहलं विणिज्जामि।

'बात यह है कि पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी के गर्भ के दो मास बीतने के बाद तीसरा मास चल रहा है, उसमें दोहदकाल के समय में उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे मातायें धन्य हैं, इत्यादि सब पहले की भांति कहना चाहिये—यावत्-वैभारगिरि की उपत्यका में चारों ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। मैं भी इसी प्रकार मेघों के उदय होने पर -यावत्-अपने दोहद को पूर्ण करूँ।

तए णं अहं पुत्ता धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बहूहिं आएहिं य उवाएहिं य-जाव-उत्पत्तिं अविंदमाणे ओहयमण-संकप्पे-जाव-झियामि, तुमं आगयं पि न याणामि। तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पे-जाव-झियामि।"

तब हे पुत्र ! मैं धारिणी देवी के इस अकाल दोहद के आयों, उपायों-यावत-उत्पत्ति अर्थात् पूर्ति के उपायों को नहीं जानने के कारण संकल्प-विकल्प में डूबा हूँ—यावत्-चिन्ताग्रस्त हूँ, इसी से तुम आये हो, यह नहीं जाना। अतएव पुत्र ! मैं इसी कारण भग्न मनःसंकल्प वाला होकर-यावत-चिन्तित हूं।'

अभएणं आसासणं—

३११. तए णं से अभए कुमारे सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाण-हियए सेणियं रायं एवं वयासी—

"मा णं तुब्भे ताओ ! ओहयमणसंकप्पा-जाव-झियायह। अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकालदोहस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ" त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं....कंताहिं-जाव-वग्गूहिं समासासेइ।

तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियए अभयं कुमारं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

अभय द्वारा आश्वासन—

३११. तत्पश्चात् वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के इस अर्थ को सुनकर और समझकर हर्षित, संतुष्ट, चित्त में आनंदित-यावत्-हर्षवशात विकसित हृदयवाला होकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोला—

'हे तात ! आप भग्न मनोरथ-यावत्-चिन्तित न हों। मैं वैसा उपाय करूंगा जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार इस अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति हो जाये।' इस प्रकार इष्ट''''''''वचनों से श्रेणिक राजा को सांत्वना देता है।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा अभयकुमार के इस कथन को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, चित्त में आनंदित-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला होकर अभयकुमार का सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदाई देता है।

अभएणं देवाराहाणं—

३१२. तए णं से अभयकुमारे सक्कारिए सम्माणिए पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे, तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसण्णे।

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"नो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालदोहलमणोरहसंपत्तिं करित्तए, नन्नत्थ दिव्वेणं उवाएणं। अत्थि णं मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगइए देवे महिड्ढीए-जाव-महासोक्खे। तं सेयं खलु ममं पोसहसालाए [पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगय-मालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स] अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता पुव्वसंगइयं

अभय द्वारा देवाराधन—

३१२. उसके बाद सत्कारित एवं सम्मानित होकर विदा किया गया वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है, निकलकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आता है, आकर सिंहासन पर बैठता है।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार को इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—'दिव्य अर्थात् दैविक उपाय के विना मानवीय उपायों से मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति होना शक्य नहीं है। सौधर्मकल्प में रहने वाला एक देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान ऋद्धि धारक-यावत्-महान सुख को भोगने वाला है। अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं पौषध शाला में (पौषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग

देवं मणसीकरेमाणस्स विहरित्तए। तए णं पुव्वसंगइए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालमेहेसु दोहलं विणेहिति"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता, दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी-जाव-पुव्वसंगइयं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।

करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र, मूसल आदि अर्थात् समस्त आरम्भ समारंभ को छोड़कर, एकाकी, अद्वितीय होकर दर्भ के संस्तारक—आसन पर स्थित होकर, अष्टम भक्त की तपस्या ग्रहण करके पूर्व के मित्र देव का मन में चिन्तन करते हुए रहूँ। जिससे वह पूर्व का मित्र देव मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकालमेघ सम्बन्धी दोहद को पूर्ण कर देगा—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके जहाँ पौषधशाला है, वहाँ आता है, आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन करके उच्चार-प्रस्रवण की भूमि का प्रतिलेखन करता है, प्रतिलेखन करके दर्भ संथारे की प्रतिलेखना करता है, प्रतिलेखना करके दर्भ संथारे पर आसीन होता है, आसीन होकर अष्टमभक्त तप ग्रहण करता है, ग्रहण करके पौषधशाला में पौषधव्रती होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके-यावत्-पूर्व के मित्र देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करता है।

देवागमणं—

३१३. तए णं तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसंगइयस्स देवस्स आसणं चलइ।

तए णं से पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ।

तए णं तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु मम पुव्वसंगइए जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए पोसहिए अभए नामं कुमारे अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं मम मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ। तं सेयं खलु मम अभयस्स कुमारस्स अंतिए पाउब्भवित्तए"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तं जहा—

'रयणाणं वइराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलगाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंकाणं अंजणाणं रययाणं जायरूवाणं अंजणपुलगाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडेत्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता अभयकुमारमणुकंपमाणे देवे पुव्वभवजणिय-नेह-

देवागमन—

३१३. उसके बाद उस अभयकुमार का अष्टम भक्त परिणमित होने पर पूर्वभव के उस मित्रदेव का आसन चलायमान हुआ।

तब वह सौधर्मकल्पवासी पूर्वभव का मित्रदेव आसन को चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाता है।

तब उस पूर्वभव के मित्र देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार-यावत्-संकल्प समुत्पन्न हुआ—'इस प्रकार मेरा पूर्व का मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत में, राजगृह नगर में, पौषधशाला में पौषधव्रती होकर अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मन में पुनः पुनः मेरा स्मरण कर रहा है। अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं अभयकुमार के समीप प्रकट होऊँ'—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके उत्तर पूर्व दिशा – ईशान कोण में जाता है, जाकर वैक्रिय समुद्घात नामक समुद्घात करता है, समुद्घात करके संख्यात योजन का दंड निकालता है, जो इस प्रकार का है—

१. कर्केतनरत्न, २. वज्ररत्न, ३. वैडूर्यरत्न, ४. लोहिताक्षरत्न, ५. मसारगल्लरत्न, ६. हंसगर्भ रत्न, ७. पुलकरत्न, ८. सौगंधिकरत्न, ९. ज्योतिरत्न, १०. अंकरत्न, ११. अंजनरत्न, १२. रजतरत्न, १३. जातरूपरत्न, १४. अंजन-पुलक रत्न, १५. स्फटिकरत्न, १६. रिष्टरत्न—इन सब रत्नों के यथा बादर-असार-पुद्गलों का परित्याग करता है, परित्याग करके यथा-सूक्ष्म-सार-पुद्गलों को ग्रहण करता है, ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है) फिर अभयकुमार पर अनुकम्पा करता हुआ, पूर्वभवजनित स्नेह-प्रीति एवं उसके प्रति बहुमान के कारण

पीइवहुमाणजायसोगे, तओ विमाणवरपुण्डरीयाओ रयणुत्तमाओ धरणियल-गमण-तुरिय-संजणिय-गमणपयारो।

शोक करने लगा। फिर [illegible] उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर [illegible] गति का प्रचार किया, अर्थात् [illegible] चल पड़ा।

वाघुण्णिय-विमल-कणग - पयरग- वडिसगमउडुक्कडाडोवदंस-णिज्जो अणेगमणि - कणगरयण - पहकर-परिमंडिय - भत्तिचित्त-विणिउत्तग-मणुगुणजणियहरिसो पिंखोलमाणवरललियकुंडलुज्जलिय-वयणगुणजणियसोम्मरूवो उदिओ विव कोमुदी-निसाए सणिच्छ-रंगारकुज्जलियमज्झभागत्थो नयणाणंदो सरयचंदो, दिव्वोसहि-पज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उवुलच्छिसमत्त-जायसोहो पइट्ठगंधुद्ध-यामिरामो मेरू विव नगवरो विगुव्वियविचित्तवेसो दीवसमुद्दाणं असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेणं वीइवयमाणो उज्जोयंतो पभाए विमलाए जीवलोयं रायगिहं पुरवरं च अभयस्स पासं ओवयइ दिव्वरूवधारी।

उस समय [illegible] और मुकुट के [illegible] था। अनेक मणियों, सुवर्ण और रत्नों के समूह से [illegible] और विविध रचना [illegible] रहा था। [illegible] मुख की शोभा [illegible] हो रहा। कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में [illegible] और [illegible] के मध्य में स्थित और उदित शरत्कालीन चन्द्रमा के समान [illegible] नयनों को आनन्द दे रहा था। दिव्य औषधियों की प्रभा के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओं की लक्ष्मी से [illegible] शोभा [illegible] प्रसार से मनोहर, मेरु पर्वत के समान [illegible] अभिराम प्रतीत हो रहा था। उस देव ने विविध वेष की [illegible] की। वह असंख्य संख्यक और असंख्य नामों वाले द्वीपों और समुद्रों के मध्य में होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीव लोक को तथा नगरवर राजगृह को प्रकाशित करता हुआ वह दिव्य रूप धारी-देव अभयकुमार के निकट अवतरित हुआ-यावत्-आया।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे वसद्धवण्णाइं सखिखिणि-याइं पवरवत्थाइं परिहिए अभयं कुमारं एवं वयासी—

तत्पश्चात पंचरंगे और घुंघरू वाले उत्तम वस्त्र धारण किया हुआ वह देव आकाश में स्थित होकर अभयकुमार से इस प्रकार बोला—

"अहं णं देवाणुप्पिया! पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिड्ढीए जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता णं ममं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलयामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हियइच्छियं?"

'हे देवानुप्रिय! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र सौधर्म कल्प-वासी महान ऋद्धि का धारक देव हूं, जिसे तुम पौषधशाला में अष्टम भक्त तप ग्रहण किये हुए बार-बार मन में रखकर स्थित हो, इसी कारण हे देवानुप्रिय! मैं शीघ्र यहां आया हूं। हे देवानुप्रिय! बताओ कि मैं तुम्हारा कौनसा इष्ट कार्य करूं? तुम्हें क्या दूं? तुम्हारे सम्बन्धी को क्या दूं? तुम्हारा मनो-वांछित क्या है?

तए णं से अभए कुमारे तं पुव्वसंगइयं देवं अंतलिक्खपडिवण्णं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह अभयकुमार आकाश में स्थित अपने पूर्वभव के मित्रदेव को देखता है, देखकर हर्षित और संतुष्ट होता हुआ, पौषध को पूर्ण करता है, पूर्ण करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालदोहले पाउब्भूए—धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव पुव्वगमेणं-जाव-वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणिंति। तं जइ

'हे देवानुप्रिय! बात यह है कि मेरी छोटी माता धारिणी-देवी. को इस प्रकार का यह अकाल दोहद उत्पन्न हुआ है—"वे मातायें धन्य हैं, इत्यादि पूर्व वर्णन के समान सब कथन यहां समझ लेना चाहिये-यावत्-वैभारगिरि के पादमूल—तलहटी में चारों ओर सर्वत्र पुनः पुनः परिभ्रमण करती हुई अपने दोहद को

णं अहमवि मेहेसु अब्भुग्गएसु-जाव-दोहलं विणेज्जामि—तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेहि।"

पूर्ण करती हैं। तो मैं भी इसी प्रकार के मेघों के उदय होने पर -यावत्-अपने दोहद को पूर्ण करूं—तो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहद को पूर्ण कर दो।'

देवेण अकालमेहविउव्वणं—

३१४. तए णं से देवे अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे अभयं कुमारं एवं वयासी—

"तुमं णं देवाणुप्पिया ! सुनिव्वुय-वीसत्थे अच्छाहि। अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवं अकालदोहलं विणेमि त्ति कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ, पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरत्थिमे णं वेभारपव्वए वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ-जाव-दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं, सविज्जुयं सफुसियं पंचवण्णमेहनिणाओवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणामेव अभए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभयं कुमारं एवं वयासी—

देव द्वारा अकाल मेघ विकुर्वण—

३१४. उसके बाद उस देव ने अभयकुमार के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर अभयकुमार से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रखो। मैं तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहद की पूर्ति किये देता हूँ'—ऐसा कहकर वह देव अभयकुमार के पास से निकलता है, निकलकर उत्तर पूर्व दिग्भाग में वैभार पर्वत पर जाकर उत्तर वैक्रिय समुद्घात करता है समुद्घात करके संख्यात योजन दंड निकालता है-यावत्-दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात करता है, समुद्घात करके शीघ्र ही गर्जना युक्त, विद्युतयुक्त, फुहारों से युक्त, पांच वर्ण वाले मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की लक्ष्मी की विक्रिया करता है, विक्रिया करके जहां अभयकुमार था वहां आया, आकर अभयकुमार से इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया, तं विणेऊ णं देवाणुप्पिया ! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूवं अकालदोहलं।

'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी प्रीति के लिये गर्जनायुक्त, जलबिन्दुओं से युक्त, विद्युतयुक्त दिव्य वर्षालक्ष्मी की विकुर्वणा की है, अतः हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी कनिष्ठा माता धारिणीदेवी इस प्रकार से इस अकाल दोहद की पूर्ति कर लें।'

धारिणीए दोहद-पूरणं—

३१५. तए णं से अभए कुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स सोहम्मकप्पवासिस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवं खलु ताओ ! मम पुव्वसंगइएणं सोहम्मकप्पवासिणा देवेणं खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया पंचवण्णमेहनिणाओवसोभिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया। तं विणेउ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहलं।"

धारिणी का दोहद पूर्ण—

३१५. तदनन्तर वह अभयकुमार उस पूर्वभव के मित्र सौधर्म कल्पवासी देव की बात को सुनकर और समझकर हृष्ट तुष्ट होता हुआ अपने भवन से निकलता है, निकलकर जहां श्रेणिक राजा है, वहां आता है, आकर दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्तपूर्वक अंजलि करके इस प्रकार कहता है—

'हे तात ! इस प्रकार मेरे पूर्वभव के मित्र सौधर्म कल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, विद्युतयुक्त, पंचवर्णों के मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा लक्ष्मी की विक्रिया की है। अतः मेरी छोटी माता धारिणी देवी अपने अकाल दोहद को सम्पन्न कर लें—पूर्ण करें।'

तए णं से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा अभयकुमार से इस बात को सुनकर और मन में अवधारित कर हृष्ट एवं तुष्ट हो कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! रायगिहं नगरं सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसितसित्त-सुइय-संमज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता करवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

'हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, महापथों और सामान्य पथों आदि को जल से सींचकर पुनः सींचकर शुचिभूत कर, साफ स्वच्छ कर, लीपकर-यावत्-उत्तम सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित कर गंधवर्तिका के समान कर दो, दूसरों से करवाओ और ऐसा करके व कराके मेरी आज्ञा वापस सौंपो अर्थात् आज्ञा पूर्ति की मुझे सूचना दो।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्त-माणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति । तए णं से सेणिए राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, आनन्दित, प्रीतिमना, परम सौमनस्य, हर्षवश विकसित हृदय वाले होकर उस आज्ञा को वापस सौंपते हैं अर्थात् आज्ञापूर्ति की सूचना देते हैं। तत्पश्चात् उस श्रेणिक राजा ने दुबारा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं चाउरंगिणिं सेणं सन्नाहेह, सेयणयं च गंधहत्थिं परिकप्पेह ।" ते वि तहेव करेंति-जाव-पच्चप्पिणंति ।

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही उत्तम अश्व, गज, रथ और योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो और सेचनक गंधहस्ती को सजाओ।' वे भी उसी प्रकार करते हैं-यावत्-आज्ञा वापस सौंपते हैं।

तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं एवं वयासी—

तदनन्तर वह श्रेणिक राजा जहां धारिणीदेवी थी, वहां आया, आकर धारिणीदेवी से इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! सगज्जिया सविज्जुया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी पाउब्भूया । तं णं तुमं देवाणुप्पिए ! एयं अकालदोहलं विणेहि ।"

'हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार गर्जनायुक्त, विद्युतयुक्त, जलकणों,-बिन्दुओं युक्त दिव्य पावसश्री-वर्षालक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई है । अतएव हे देवानुप्रिये ! तुम अपने अकाल दोहद की पूर्ति करो ।'

३१६. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता, किं ते वरपायपत्त-नेउर-मणिमेहलहार-रइय-ओविय-कडग-खुड्डय - विचित्त-वरवल-यथंभियभुया जाव-आगास-फालिय-समप्पभं अंसुयं नियत्था, सेयणयं गंधहत्थिं दुरूढा समाणी अमय-महिय-फेणपुंज-सन्निगासाहिं सेयचामरवाल-वीयणीहिं वीइज्जमाणी-वीइज्जमाणी संपत्थिया ।

३१६. तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट हुई और जहां स्नानगृह था, वहां आई, आकर स्नानगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके अन्तःपुर के अन्दर स्नान किया, बलिकर्म-पूजन किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित किया और उसके बाद क्या किया ? सो कहते हैं—पैरों में उत्तम नूपुर, कटि में करधनी, गले में हार, हाथों में कड़े, अँगुलियों में अँगूठियाँ पहनीं, विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबंदों से हाथ स्तम्भित किये-यावत्-आकाश स्फटिक मणि के समान प्रभा वाले वस्त्र धारण किये, वस्त्र धारण कर सेचनक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर अमृत मंथन से उत्पन्न फेनपुंज के समान श्वेत चामरों के बालों रूपी वींजन से विजाती हुई रवाना हुई ।

तए णं से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे-जाव-सस्सिरिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउ-चामराहिं वीइज्जमाणे धारिणिं देविं पिट्ठओ अणुगच्छइ ।

उसके बाद श्रेणिक राजा ने स्नान किया, बलिकर्म किया—-यावत्-सुसज्जित होकर श्रेष्ठ हस्ती के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की माला वाले छत्र को मस्तक पर धारण करके चार चामरों से विजाते हुए धारिणीदेवी का अनुगमन किया ।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महया भड-चडगर-वंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए-जाव-दुंदुभिनिग्घोसनाइयरवेणं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणी-अभिनंदिज्जमाणी जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेभारगिरि-कडग-तडपायमूले आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य रुक्खेसु य गुच्छेसु य गुम्मेसु य लयासु य वल्लीसु य कंदरासु य दरीसु य चुंढीसु य दहेसु य कच्छेसु य नदीसु य संगमेसु य विवरएसु य अच्छमाणी य पेच्छमाणी य मज्जमाणी य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य पल्लवाणि य गिण्हमाणी य माणेमाणी य अग्घायमाणी य परिभुंजेमाणी य परिभाएमाणी य वेभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिंडइ ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठे हुए श्रेणिक राजा के द्वारा पीछे-पीछे अनुगमन की जाती हुई वह धारिणी देवी अश्व, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत होकर, चारों ओर महान सुभटों के समूह से परिवेष्टित समग्र समृद्धि, समस्त द्युति-यावत्-दुन्दुभिनाद के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों महापथों और पथों में नागरिकों द्वारा पुनः पुनः अभिनंदित की जाती हुई जहां वैभारगिरि पर्वत था, वहां आती है, आकर वैभारगिरि के कटक तट और तलहटी, आरामों, उद्यानों, काननों, वनों, वनखण्डों, वृक्षों, गुच्छाओं, गुल्मों, लताओं, वेलों, कन्दराओं, गुफाओं, चुड्यों (पोखरों) ह्रदों-तालाबों कच्छों नदियों के संगमों और विवरों-जलाशयों पर दृष्टि डालती हुई, उन्हें देखती हुई और स्नान करती हुई, पत्रों, पुष्पों और फलों और पल्लवों को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका दुलार करती हुई, सूंघती हुई, खाती हुई, दूसरों को बांटती हुई वैभारगिरि के पादमूल में अपने दोहद को पूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करती है।

तए णं सा धारिणी देवी सम्माणियदोहला विणीयदोहला संपुण्णदोहला संपत्तदोहला जाया यावि होत्था ।

उसके बाद वह धारिणी देवी सम्मानित दोहद, संपूर्ण दोहद सम्पन्न दोहद वाली हो गई।

तए णं सा धारिणी देवी सेयणयगंधहत्थिं दुरूढा समाणी सेणिएणं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए-जाव-जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठे हुए श्रेणिक राजा के द्वारा मार्ग में पीछे-पीछे अनुगमन की जा रही और सेचनक गंधहस्ती पर आरूढ़ वह धारिणी देवी अश्व, गज, रथ और उत्तम योद्धाओं से युक्त-यावत्-जहां राजगृह नगर था, वहां आती है, वहां आकर राजगृह नगर के मध्य में से होती हुई, जहां अपना भवन है वहां आती है, आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगों को भोगती हुई विचरती है।

अभएण देवस्स पडिविसज्जणं—

३१७. तए णं से अभए कुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुव्वसंगइयं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से देवे सगज्जियं सविज्जुयं पंचवण्णमेहोवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

अभय द्वारा देव का प्रतिविसर्जन—

३१७. तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहां पौषधशाला है, वहां आता है, आकर पूर्वभव के मित्र देव का सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदा करता है।

उसके बाद वह देव गर्जनायुक्त, विद्युत्युक्त, पंचवर्ण वाले मेघों से सुशोभित दिव्य पावस की वर्षा लक्ष्मी का प्रतिसंहरण करता है अर्थात् उसे समेटता है, प्रतिसंहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा में चला गया।

धारिणीए गब्भचरिया—

३१८. तए णं सा धारिणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणीयंसि सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठाए-जाव-तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ ।

धारिणी की गर्भ चर्या—

३१८. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी ने उस अकाल दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्मानित किया और उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए-यावत्-उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करती है।

मेहस्स जम्मवद्धावणं—

३१९. तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकुमालपाणिपायं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया।

३२०. तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणिं देविं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयायं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं निवेएमो, पियं भे भवउ।"

तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विउलेण य पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ, कप्पेत्ता पडिविसज्जेइ।

मेघ का जन्म वधावा—

३१९. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी ने परिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर अर्धरात्रि के समय सुकुमार हाथ-पैर वाले-यावत्-सर्वांग सुन्दर शिशु का प्रसव किया।

३२०. उसके वे अंगपरिचारिकायें धारिणी देवी को नौ मास पूर्ण हुए-यावत्-सर्वांग सुन्दर शिशु को उत्पन्न हुआ देखती है, देखकर शीघ्र, त्वरित, चपल वेग से जहाँ श्रेणिक राजा था वहाँ आती है, आकर श्रेणिक राजा को जय विजय शब्दों से वधाती है, वधाकर हस्तयुगल को जोड़ मस्तक पर घुमाकर और अञ्जलि करके इस प्रकार कहती है—

'हे देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर—यावत्-सर्वांग सुन्दर पुत्र का प्रसव किया है। सो हम देवानुप्रिय को प्रिय निवेदन करते हैं, आपको यह समाचार प्रिय सुखद हो।'

तदनन्तर उन अंग परिचारिकाओं से इस बात को सुनकर और समझकर वह श्रेणिक राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ, उन अंग परिचारिकाओं का मधुर वचनों से और विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार सम्मान करता है, मस्तक प्रक्षालन करता है अर्थात् उनको दासीपने से मुक्त करता है। पुत्र-पौत्र आदि तक चलती रहे ऐसी आजीविका के साधन देता है, देकर विदा करता है।

मेहस्स जम्मुस्सवो—

३२१. तए णं से सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिहं नगरं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं नड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहकहग - पवग-लासग- आइक्खग लंख-मंख-तूण इल्ल-तुंबवीणिय-अणेगतालायरपरिगीयं करेह, कारवेह य, चारगपरिसोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्त-माणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्प-माणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

मेघ का जन्मोत्सव—

३२१. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा प्रभातकाल के समय में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर को जल से आसिक्त करो अर्थात् उसमें सुगंधित जल को छिड़कों, साफ स्वच्छ करो, लीपो, सुगंधित द्रव्य की गंध से सुगंध की गुटिका जैसा कर दो, नट, नर्तक, जल्ल (रस्सी पर खेल दिखाने वाले), मल्ल, मुष्टिक (पंजा लड़ाने वाले), विदूपक (कहकहे लगाने वाले), लवक (कूद-फांद करने वाले), लासक (हँसी मश्करी करने वाले) आख्यायक (किस्से कहानी कहने वाले) लंख, मंख, तूणा नामक वाद्य विशेष एवं तंबूरा बजाने वाले और ताल देकर गाने वाले आदि को अपना-अपना कला कौशल दिखाने के लिये नियुक्त कर दो और करवाओ, कारागार के द्वार खोल दो अर्थात् कैदियों को मुक्त करो, मुक्त करके तोल-माप में वृद्धि करो, यह सब करके मेरी आज्ञा मुझे वापस लौटाओ।'

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा की बात को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, प्रीतिमना, परम सौमनस और हर्षवश विकसित हृदय वाले होकर उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् आदेशपूर्ति की सूचना देते हैं।

तए णं से सेणिए राया अट्ठारससेणि-प्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! रायगिहे नगरे अब्भिंतरबाहिरिए उस्सुंकं उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिम-कुदंडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धयमुइंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं पमुइय-पक्कीलियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदेवसियं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

उसके बाद वह श्रेणिक राजा अठारह श्रेणियों और प्रश्रेणियों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और राजगृह नगर के अन्दर और बाहर उत्शुल्क, उत्कर, अभट प्रवेश, दंड कुदंड रहित अधरिम (ऋणमुक्त) अधारणीय (ऋणी को न पकड़ना) करने की घोषणा कर दो तथा सर्वत्र मृदंग आदि बाजे बजवाओ, चारों ओर विकसित ताजे फूलों की मालायें लटकवाओ, गणिकायें प्रमुख हों ऐसे पात्रों के नाटक करवाओ, अनेक तालाचरों के द्वारा नाटक आदि करवाओ, लोग हर्षित होकर क्रीड़ाओं में रत रहें, इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका (जन्म महोत्सव) करो और करवाओ और मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ।'

तेवि तहेव करेंति, तहेव पच्चप्पिणंति ।

वे भी इसी प्रकार करते हैं और उसी प्रकार राजाज्ञा वापस सौंपते हैं। अर्थात् राजाज्ञानुसार घोषणा आदि करके आदेशपूर्ति की सूचना राजा को देते हैं।

तए णं से सेणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे सतिएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहिं दाएहिं भागेहिं दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे एवं च णं विहरइ ।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा बाहरी उपस्थानशाला में पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो सैकड़ों, हजारों और लाखों के द्रव्य को याचकों आदि को देता हुआ और भेंट स्वरूप ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

मेहस्स नामादिसक्कारकरणं—

३२२. तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेंति, बितिए दिवसे जागरियं करेंति, ततिए दिवसे चंदसूरदंसणिय करेंति एवामेव निवत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुलं असण-पाणखाइम-साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं बलं च बहवे गणनायग-दंडनायग - राईसर - तलवर - माडंबिय-कोडुंबिय - मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द- नगर - निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवाले आमंतेंति । तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया महइमहालयंसि भोयणमंडवंसि त विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेहिं बलेण य बहूहिं गणनायग दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति- महामंति- गणग-दोवारिय अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम सेट्ठि सेणावइ सत्थवाह-दूय-संधिवालेहिं सद्धिं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति ।

मेघ का नामादि सत्कार ग्रहण—

३२२. तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता पहले दिन जातकर्म, (नाल काटना आदि) करते हैं, दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरण—रात्रि में गीत गायन) करते हैं, तीसरे दिन चंद्र सूर्य के दर्शन करते हैं, इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद बारहवें दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोज्य पदार्थ तैयार करवाते हैं, तैयार करवाके मित्र, ज्ञाति, निजक (पुत्र आदि) स्वजन (काका आदि) सम्बन्धी परिजन (दास आदि), सेना और बहुत से गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नगर, निगम श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल आदि को आमंत्रित करते हैं। इसके पश्चात् स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त करके सर्व अलंकारों से विभूषित हो बहुत विशाल भोजन मंडप में उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, भोजन का मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन, सेना, और बहुत से गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नगर, निगम, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परिभाग, परिभोग करते हुए विचरण करते हैं।

जिमियभुत्तुत्तरागयावि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-सुइभूया तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं बलं च बहवे गणनायग-जाव-संधिवाले विपुलेणं पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी—

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् बैठने के स्थान पर आये, हाथ मुँह धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए और फिर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी, परिजन, सेना और बहुत से गणनायक-यावत्-संधिपाल आदि का विपुल पुष्प, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार सम्मान करते हैं, सत्कार सम्मान करके इस प्रकार कहा—

"जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए, तं होउ णं अम्हं दारए मेहे नामेणं। तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति मेहे इ।"

'जब हमारा यह पुत्र गर्भ में आया था तब इसे (इसकी माता को) अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद प्रगट हुआ था, इसलिए इस पुत्र का नाम मेघ होना चाहिए। इस प्रकार उस बालक के माता-पिता यथारूप यह गोण-गुण निष्पन्न नामकरण करते हैं।

मेहस्स लालणपालण—

मेघ का लालन-पालन

३२३. तए णं से मेहे कुमारे पंचधाईपरिग्गहिए तं जहा—खीर-धातीए मंडणधातीए मज्जणधातीए कीलावणधातीए अंक-धातीए अण्णाहि य बहूहिं—खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं बब्बरीहिं बउसीहिं जोणियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं थारुगिणि-याहिं लासियाहिं लउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं आरबीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुण्डीहिं सबरीहिं पारसीहिं—नानादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणियाहिं सदेस-नेवत्थ-गहिय-वेसाहिं निउण-कुसलाहिं विणीयाहिं, चेडिया-चक्कवाल-वरिसधर-कंचुइज्ज-महयरग-वंद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे चालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परंगि-ज्जमाणे परंगिज्जमाणे निव्वाय-निव्वाघायंसि गिरिकंदरमल्लीणे व चंपगपायवे सुहंसुहेणं वड्ढइ।

३२३. तत्पश्चात उस मेघकुमार को पांचों धायों ने ग्रहण किया अर्थात् पांच धायें जैसे क्षीर धात्री, मंडन धात्री, मज्जन धात्री क्रीड़ावन धात्री, अंक धात्री ने सभी मेघकुमार का पालन-पोषण करने लगीं, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी-कुब्जा (कुबड़ी) चिलातिका, वामन, वड़भी, वर्बरी, बकुश देश की, योनिक देश की, पल्हविक देश की, ईसविक, थारुकिन, ल्हासक देश की, लकुश देश की, द्रविड़ देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुण्ड देश की, शबर देश की, पारस देश की आदि अनेक देशों और विदेशों की इंगित (मुख आदि की चेष्टा) चिन्तित (मानसिक विचार) पार्थित (अभि-लषित) को जानने वाली अपने-अपने देश के वेप को धारण करने वाली, निपुण, कुशल (चतुर) विनयी दासियों, स्वदेशी दासियों, वर्षधरों, कंचुकियों महत्तरकों के समुदाय से घिरा रहता और हाथों ही हाथों में ग्रहण किया जाता, एक गोद से दूसरी गोद में लिया जाता, लोरियाँ गा-गाकर बहलाया जाता, अंगुली पकड़कर चलाया जाता, क्रीड़ा आदि से लालन-पालन किया जाता एवं रमणीय मणि जटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरि कंदरा में स्थित चंपक वृक्ष के समान सुख-पूर्वक बढ़ने लगा।

३२४. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं नामकरणं च पजेमणगं च पचंकमणगं च चूलोवणयं च महया-महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं करेंसु।

३२४. उसके बाद उस मेघकुमार के माता-पिता अनुक्रम से नामकरण, पालने में सुलाना, पैरों से चलाना, चूलोपनयन आदि आदि संस्कार महान ऋद्धि, सत्कार और उल्लासपूर्वक करते हैं।

मेहस्स कलागहणं—

मेघ का कला ग्रहण—

३२५. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं चेव गब्भट्ठमे वासे सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति।

३२५. तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर माता-पिता मेघकुमार को शुभतिथि, करण, मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजते हैं।

तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ, तं जहा—

१. लेहं २. गणियं ३. रूवं ४. नट्टं ५. गीयं ६. वाइयं ७. सरगयं ८. पोक्खरगयं ९. समतालं १०. जूयं ११. जणवायं १२. पासयं १३. अट्ठावयं १४. पोरेकच्चं १५. दगमट्टियं १६. अण्णविहिं १७. पाणविहिं १८. वत्थविहिं १९. विलेवणविहिं २०. सयणविहिं २१. अज्जं २२. पहेलियं २३. मागहियं २४. गाहं २५. गीइयं २६. सिलोयं २७. हिरण्णजुत्तिं २८. सुवण्णजुत्तिं २९. चुण्णजुत्तिं ३० आभरणविहिं ३१ तरुणीपडिकम्मं ३२. इत्थिलक्खणं ३३. पुरिसलक्खणं ३४. हयलक्खणं ३५. गयलक्खणं ३६. गोणलक्खणं ३७. कुक्कुडलक्खणं ३८. छत्तलक्खणं ३९. दंडलक्खणं ४०. असिलक्खणं ४१. मणिलक्खणं ४२. कागणिलक्खणं ४३. वत्थुविज्जं ४४. खंधावारमाणं ४५. नगरमाणं ४६. वूहं ४७ पडिवूहं ४८. चारं ४९. पडिचारं ५०. चक्कवूहं ५१. गरुलवूहं ५२. सगडवूहं ५३. जुद्धं ५४. निजुद्धं ५५. जुद्धाइजुद्धं ५६. अट्ठिजुद्धं ५७. मुट्ठिजुद्धं ५८. बाहुजुद्धं ५९. लयाजुद्धं ६०. ईसत्थं ६१. छरुप्पवायं ६२. धणुवेयं ६३. हिरण्णपागं ६४. सुवण्णपागं ६५. वट्टखेड्डं ६६. सुत्तखेड्डं ६७. नालियाखेड्डं ६८. पत्तच्छेज्जं ६९. कडच्छेज्जं ७०. सज्जीवं ७१. निज्जीवं ७२. सउणरुतं ति।[1]

तब वे कलाचार्य मेघकुमार को गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेखा आदि शकुनिरुत (पक्षियों की ध्वनि) पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से और करण से (प्रयोग पूर्वक) सिद्ध करवाते हैं, सिखाते हैं। उन कलाओं के नाम इस प्रकार है—

१. लेखन २. गणित ३. रूप बदलना ४. नाटक ५. गायन ६. वाद्य बजाना ७. स्वर ज्ञान ८. वाद्य सुधारना ९. समताल ज्ञान जानना १०. द्यूत ११. वाद-विवाद करना १२. पासों का खेल १३. चौपड़ खेलना १४. नगर की रक्षा करना १५. जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु निर्माण करना १६. धान्य निपजाना १७. जल शोधन की विधि १८. वस्त्र निर्माण करना १९. विलेपन निर्माण २०. शैया बनाना २१. आर्याछन्द बनाना २२. पहेलियां बनाना २३. मगध भाषा का ज्ञान २४. प्राकृत भाषा में छन्द रचना २५. गीत छन्द आदि बनाना २६. श्लोक बनाना २७. चांदी और उसके आभूषण बनाना अथवा (चांदी शोधना) २८. सुवर्ण और उसके आभूषण बनाना (अथवा सुवर्ण शोधना) २९. सुगंधित चूर्ण आदि बनाना ३०. आभूषण बनाना ३१. तरुणी का प्रसाधन करना ३२. स्त्री के लक्षण जानना ३३. पुरुष के लक्षण जानना ३४. अश्व के लक्षण जानना ३५. हाथी के लक्षण जानना ३६. गो लक्षण जानना ३७. कुक्कुट (मुर्गा) लक्षण जानना, ३८. छत्र लक्षण जानना ३९. दंड के लक्षण जानना ४०. खड्ग के लक्षण जानना ४१. मणि परीक्षा ४२ काकणी रत्न परीक्षा ४३. वस्तु विद्या ४४. स्कन्धावार निर्माण विद्या ४५. नगर निर्माण विद्या ४६. व्यूह रचना ४७. प्रतिव्यूह रचना ४८. सैन्य संचालन ४९. प्रतिचार-शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना ५०. चक्रव्यूह रचना ५१. गरुड़ व्यूहरचना ५२. शकट व्यूह रचना ५३. युद्ध विद्या ५४. विशिष्ट युद्ध विद्या ५५. अति विशिष्ट युद्ध विद्या ५६. यष्टियुद्ध—लकड़ी लड़ाने की विद्या ५७. मुष्टियुद्ध ५८. बाहुयुद्ध ५९. लतायुद्ध ६०. बाण विद्या ६१. खड्ग की मूठ आदि बनाना ६२. धनुर्विद्या ६३. चांदी का पाक बनाना ६४. सुवर्ण पाक बनाना ६५. खेल खेलना ६६. सूत्र खेड करना ६७. कमल नाल का छेदन करना ६८. पत्र छेदन करना ६९. कटक कुण्डल आदि का छेदन करना ७०. मूर्च्छित को जीवित करना ७१. जीवित को मृत तुल्य करना और ७२. शकुन-रुत (काक धूक आदि की बोली पहचानना)।

तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ, सेहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेइ।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य मेघकुमार को गणित-प्रधान लेख आदि शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है, सिखाता है, सिद्ध कराकर और सिखाकर माता-पिता के पास लाता है।

१. सम० ७२।

३२६. तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं महुरेहिं वयणेहिं विउलेण य वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति, दलइत्ता पडिविसज्जेंति ।

तए णं से मेहे कुमारे बावत्तरि-कलापंडिए नवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारस-विहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलंभोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था ।

३२६. तब मेघकुमार के माता-पिता कलाचार्य का मधुर वचनों से और विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार-सम्मान करते हैं, सत्कार-सम्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर विदा करते हैं ।

तब वह मेघकुमार बहत्तर कलाओं में पंडित-निपुण हो गया, उसके नौ अंग-दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन—जो बाल्यावस्था के कारण अव्यक्त चेतना वाले थे, प्रतिबुद्ध-जाग्रत से हो गये, वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद-पंडित हो गया, गीत रसिक, गीत और नृत्य में कुशल हो गया, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला हो गया, अपनी भुजाओं से प्रतिपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया, भोग भोगने में सक्षम हो गया और विकाल में भी गमन कर सके ऐसा साहसी बन गया ।

मेहस्स पाणिग्गहणं—

३२७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं बावत्तरि-कलापंडियं-जाव-वियालचारिं जायं पासंति, पासित्ता अट्ठ पासायवडिंसए कारेंति—अब्भुग्गयमूसियपहसिए विव मणि-कणग-रयण-भत्तिचित्ते वाउद्धु य-विजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे जालंतर-रयण-पंजरुम्मिलिए व्व मणिकणगथूभियाए वियसिय-सयवत्त-पुण्डरीए तिलयरयणद्धचंदच्चिए नाणामणिमयदामालंकिए अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्ज-रुइल-वालुया-पत्थरे-सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए--जाव-पडिरूवे ।

मेघ का पाणिग्रहण—

३२७. तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता जब उसे बहत्तर कलाओं में पंडित-यावत्-विकालचारी हुआ देखा देखकर आठ प्रासादावतंसकों का निर्माण कराया-जो बहुत ऊँचे उठे हुए थे, अपनी उज्ज्वल छटा से प्रतीत होते थे, मणि-सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र थे, वायु से फहराती हुई और विजय की सूचना देने वाली वैजयन्ती पताकाओं से एवं छत्रातिछत्रों से युक्त थे, अपने शिखरों से आकाश तल का भी उल्लंघन कर दें, इतने ऊँचे थे, उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों वे उनके नेत्र हों, उनमें मणियों और सुवर्ण की धूमिकायें (स्तूपिकायें-छतरियां, गुम्बजें) थीं, उनमें चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक साक्षात कमल जैसे विकसित हो रहे थे, वे तिलक रत्नों से रचित, अर्धचन्द्रमाकार वाले सोपानों से युक्त थे अथवा उनकी दीवालें चन्दन आदि के हाथों से चर्चित थीं, अनेक प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत थे, भीतर और बाहर से चिकने थे, उनके प्रांगणों में तपे हुए सुवर्ण जैसी रक्त वालुका बिछी हुई थी, उनका स्पर्श सुखद था, रूप बड़ा ही शोभन था, प्रासाद गुण युक्त थे, अर्थात् उन्हें देखते ही मन प्रसन्नता से भर जाता था-यावत-प्रतिरूप थे—अत्यन्त मनोहर थे ।

एगं च णं महं भवणं कारेंति—अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं अब्भुग्गयसुकयवइरवेइयातोरण-वररइय-सालभंजिय-सुसिलिट्ठविसिट्ठ-लट्ठ-संठिय- पसत्थ - वरुलियखंभ-

इनके अतिरिक्त एक और विशाल भवन का निर्माण कराया । वह भवन सैंकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट था, अर्थात् वह भवन इतना विशाल था कि जिसमें सैंकड़ों खम्भे थे, जिन पर लीलायुक्त अनेक पुतलियां बनी हुई थी, ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिकायें

नाणामणिकणगरयण-खचियउज्जलं बहुसम-सुविभत्त-निचियरमणिज्जभूमिभागं ईहामियउसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहर-जमल-जुयल-जंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणमणिरयणथूभियागं नाणाविह-पंचवण्ण-घंटापडाग-परिमंडियग्गसिहरं धवलमिरिचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं-जाव-गंधवट्टिभूयं पासाईयं-जाव-पडिरूवं।

और तोरण थे, मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उन्नत, मोटे और प्रशस्त वैडूर्य रत्न के स्तम्भ थे, वे विविध प्रकार की मणियों, सुवर्ण तथा रत्नों से खचित होने से उज्ज्वल दिखाई देते थे, उसका भूमिभाग बिलकुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था, उस भवन में ईहा मृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर, पक्षी बलाका, किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता, आदि के चित्र, चित्रित हुए थे, स्तम्भों पर बनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ता था, सम-श्रेणी में स्थित, विद्याधरों के युगल यंत्र द्वारा चलते हुए से दीख पड़ते थे, हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों चित्रों से युक्त होने के कारण यह भवन दीप्यमान और अतीव देदीप्यमान था, दर्शकों के लिये नयनाकर्षक था, उसका स्पर्श सुखप्रद था और रूप शोभासम्पन्न था, जिसमें सुवर्ण मणि और रत्नों की स्तूपिकायें बनी हुई थी जिसका शिखर विविध प्रकार की, पांच वर्णों की घंटाओं युक्त पताकाओं से सुशोभित था, वह चारों ओर धवल देदीप्यमान किरणों के समूह को फैला रहा था, लिपा-पुता और चंदोवे से युक्त था-यावत्-गन्धवर्तिका जैसा जान पड़ता था, चित्त को प्रसन्न करने वाला-यावत्-प्रतिरूप और मनोहर था।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि सरिसियाणं सरिव्वयाणं सरित्तयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसएहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाणं पसाहणट्ठंग-अविहवबहु-ओवयण-मंगलसुजंपिएहिं अट्ठहिं रायवरकन्नाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने शुभ तिथि, करण, नक्षत्र, मुहूर्त में शरीर परिमाण से सदृश-समान उम्र वाली, समान त्वचा (समान शरीर वर्ण कांति) समान लावण्य रूप, यौवन और गुण वाली तथा अपने समान राजकुलों से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ मेघकुमार का एक ही दिन, आठ अंगों में अलंकार धारण करने वाली सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा किये जा रहे मंगल गानों पूर्वक एवं मांगलिक वचनों के कथन द्वारा पाणिग्रहण करवाया।

पीइदाणं—

३२८. तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं पीइदाणं दलयंति-अट्ठ हिरण्ण-कोडीओ अट्ठ सुवण्णकोडीओ गाहाणुसारेण भाणियव्वं-जाव-पेसणकारियाओ, अन्नं च विपुलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख - सिल-प्पवाल - रत्तरयण-संत-सार - सावएज्जं अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं।

प्रीतिदान—

तए णं से मेहे कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेगं हिरण्ण-कोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, अन्नं च विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण - संत-

सार-सावएज्जं अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं दलयइ।

तए णं से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंग-मत्थएहिं-जाव-माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

(माणिक आदि सारभूत द्रव्य देता है जो सात पीढ़ियों तक इच्छानुसार देने, भोगने, बांटने के लिये पर्याप्त था।

उसके बाद वह मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपरी भाग में रहकर मृदंगों की गुंजायमान ध्वनिपूर्वक -यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगता हुआ विचरता है।

महावीरसमवसरणं—

३२९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वापुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

महावीर समवसरण—

३२९. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए, सुखपूर्वक विचरण करते हुए जहां राजगृह नगर था, गुणशिलक चैत्य था, वहां आये, वहां आकर यथाप्रतिरूप अभिग्रह धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विराजते हैं।

मेहस्स पुच्छा—

३३०. तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महपहापहेसु-महया जणसद्दे इ वा-जाव-बहवे उग्गा भोगा जाव-रायगिहस्स नगरस्स मज्झं-मज्झेणं एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति। इमं च णं मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंग-मत्थएहिं-जाव-माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे रायमग्गं च ओलोएमाणे-ओलोएमाणे एवं च णं विहरइ।

तए णं से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे-जाव-एगदिसाभिमुहे निग्गच्छमाणे पासइ, पासित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"किण्णं भो देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नगरे इंदमहे इ वा-जाव-एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति।"

मेघ की पृच्छा—

३३०. उसके बाद राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य मार्गों आदि में बहुत से लोगों का शब्द होने लगा-यावत्-बहुत से जन—उग्र कुल के, भोग कुल के यावत्-राजगृह नगर के बीचोंबीच से होकर एक ही दिशा में, एक ही ओर मुख करक निकलने लगे। उस समय वह मेघकुमार श्रेष्ठप्रासाद के ऊपरी भाग में बैठा हुआ मृदंगों की थाप से गुंजायमान वातावरण में यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगते हुए और राजमार्गों का अवलोकन करते हुए विचर रहा था।

तब वह मेघकुमार उन अनेक उग्रवंशियों, भोगवंशियों को -यावत्-एक ही दिशा की ओर जाते हुए देखता है, देखकर कंचुकी पुरुष को बुलाया है, बुलाकर इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिय! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्रमहोत्सव है अथवा अन्य कोई महोत्सव है-यावत्-एक ही दिशा में एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं, जा रहे हैं।

कंचुइज्जपुरिसेण निवेदणं—

३३१. तए णं से कंचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेहं कुमारं एवं वयासी—"नो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज रायगिहे नयरे इंदमहे इ वा-जाव-गिरिजत्ता इ वा जं णं एए उग्गा भोगा-जाव-एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति। एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कंचुकी पुरुष द्वारा निवेदन—

३३१. तत्पश्चात् उस कंचुकी पुरुष ने श्रमण भगवान महावीर के आगमन वृतान्त को जानकर मेघकुमार से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! आज राजगृह नगर में इन्द्रमह अथवा -यावत-गिरियात्रा आदि नहीं है, जिसके कारण ये उग्रवंशीय, भोगवंशीय यावत्-एक ही दिशा में एक ओर मुख करके नहीं जा रहे हैं, किन्तु हे देवानुप्रिय! धर्म तीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले श्रमण भगवान महावीर यहाँ आये हैं, यहाँ पधारे हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में यथायोग्य अवग्रह धारण करके तप और संयम द्वारा आत्मा को भाते हुए विचरण कर रहे हैं।'

मेहस्स भगवओ समीवे गमण—

३३२. तए णं से मेहे कुमारे कंचुइज्जपुरिसस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह।

तहत्ति उवणेंति।

तए णं से मेहे ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेण महया भड-चडगर-वंद परियाल-संपरिवुडे रायगिहस्स नयरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्ताइछत्तं पडागाइपडागं विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ। जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पंजलिउडे अभिमुहं विणएण पज्जुवासइ।

मेघ का भगवान के समीप गमन—

३३२. तत्पश्चात् वह मेघकुमार कंचुकी पुरुष की इस बात को सुनकर और अवधारित कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटों वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो।

वे 'बहुत अच्छा' कहकर रथ ले आते हैं।

उसके बाद मेघकुमार ने स्नान किया यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर चार घंटे वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ और कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर पारस्पर बहुत से सुभटों और दासीजनों के साथ राजगृह नगर के बीच में से निकलता है, निकलकर जहाँ गुणशील चैत्य था वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर के छत्रातिछत्र और पताकाओं पर पताका आदि अतिशयों को देखा, विद्याधरों, चारण मुनियों और जृम्भक देवों को नीचे आते और ऊपर जाते देखा, देखकर चार घंटों वाले अश्वरथ से नीचे उतरा, उतरकर पांच प्रकार के अभिगमों पूर्वक श्रमण भगवान महावीर के अभिमुख सामने चला। जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के न अति निकट और न अधिक दूर किन्तु समुचित स्थान में शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए अंजलि करके सम्मुख विनयपूर्वक [illegible]।

तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

मेहस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

३३५. तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भड-चडगर-पहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।"

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

"धन्नो सि तुमं जाया ! संपुण्णो सि तुमं जाया ! कयत्थो सि तुमं जाया । कयलक्खणो सि तुमं जाया ! जन्नं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।"

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।"

धारिणीए सोगाकुलदसा—

३३६. तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं, गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागयरोमकूवपगलंत-विलीणगाया सोयभरपवेवियंगी नित्तेया दीण-विमणवयणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर

उसके बाद मुंडित होकर और गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा ।

"देवानुप्रिय जिसमें तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो, परन्तु उसमें विलम्ब मत करो ।"

मेघ का माता-पिता से निवेदन—

३३५. तत्पश्चात् वह मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहां चार घंटे वाला अश्वरथ था, वहां आता है, आकर चार घंटे वाले अश्वरथ पर वहां आता है, आरूढ़ होकर महान सुभटों और विशाल जन समूह वाले परिवार के साथ राजगृहनगर के मध्य में से होकर अपना भवन है, वहां आता है, आकर चातुर्घंटिक अश्वरथ से नीचे उतरता है, उतरकर जहां माता-पिता थे, वहां आता है, आकर माता-पिता को प्रणाम करता है प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है और उस धर्म का मैं आकांक्षी हूँ, विशेष रूप से आकांक्षी हूँ, मुझे रुचिकर है अर्थात् मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचा है ।'

तब उस मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—

'पुत्र ! तुम धन्य हो ! तुम पुण्यशाली हो, पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, पुत्र ! तुम कृत लक्षण हो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट पुनः-पुनः इष्ट और रुचिकर है ।'

तब उस मेघकुमार ने दूसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार कहा—

'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्मश्रवण किया है, वह धर्म मुझे इष्ट है, विशेष इष्ट है, रुचिकर हैं । अतएव हे माता-पिता ! तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।'

धारिणी की शोकाकुल दशा—

३३६. उसके बाद इस अनिष्ट, अप्रिय, अप्रशस्त, अमनोज्ञ, अमणाम (मन को न रुचने वाली) अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण कर, मन ही मन इस प्रकार के इस महान पुत्र-वियोग के दुःख से पीड़ित उस धारिणी देवी के रोम-रोम में पसीना आने से भीग गया, सारा शरीर, शोकातिरेक से अंग अंग कांप उठे, वह निस्तेज हो गई, दीन और विमनस्क हो गई, हथेली से मसली हुई कमल की माला के समान

लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण-पडंतखुण्णिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमाल-विकिण्ण-केसहत्था मुच्छावस-नट्ठचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्क-संधिबंधणा कोट्टिमतलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया।

हो गई, इसी क्षण जीर्ण और दुर्बल शरीर वाली हो गई, लावण्य-शून्य कान्तिहीन, श्रीविहीन हो गई, पहने हुए आभूषण ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर गिर कर चूर-चूर हो गये, उत्तरीय वस्त्र खिसक गया, सुकुमार केश-पाश बिखर गया, मूर्च्छा के कारण चेतना नष्ट हो गई, शरीर भारी हो गया, कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता के समान हो गई, महोत्सव के समाप्त हो जाने पर इन्द्रध्वज के समान शोभाहीन हो गई, शरीर के जोड़-जोड़ ढीले हो गये, और धड़ाम से सब अंगों से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

धारिणीए मेहस्स य परिसंवादो—

३३७. तए णं सा धारिणीदेवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाण-निव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय-तालविंट-वीयणग-जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउर-परिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे, कलुण-विमण-दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी—

धारिणी और मेघ का परिसंवाद—

३३७. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी को संभ्रम के साथ शीघ्रता से सुवर्ण झारी के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचित किया अर्थात् शीतल जल के छींटे डाले जिससे उसका शरीर शीतल हो गया और अंतःपुर के परिजनों द्वारा उत्क्षेपक, तालवृन्त और वीजनक द्वारा उत्पन्न हुई तथा जलकणों से मिश्रित वायु से सचेत किये जाने पर मोतियों की लड़ी के समान अपने झरझर बरसाती हुई अश्रुधारा से वह अपने स्तनों को सींचने भिगोने लगी, वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो कर और रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना-पसीना होती हुई, विलाप करती हुई, शोक करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार बोली—

"तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदिजणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

"हे पुत्र! तू हमारा इकलौता बेटा है, तू हमें इष्ट है, कान्त है, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम है, हमारे लिए धैर्य और विश्वास का आधार है, कार्य करने में माना हुआ है, बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पेटी के समान है, रत्न है, रत्न के समान है, जीवन के उच्छ्वास के सदृश है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, उदुम्बर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात ही क्या है? हे पुत्र! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग

तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

उसके बाद मुंडित होकर और गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा।

'देवानुप्रिय जिससे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो, परन्तु उसमें विलम्ब मत करो।"

मेहस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

३३५. तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भड-चडगर-पहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।"

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

"धन्नो सि तुमं जाया ! संपुण्णो सि तुमं जाया ! कयत्थो सि तुमं जाया। कयलक्खणो सि तुमं जाया ! जन्नं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।"

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी—

"एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

मेघ का माता-पिता से निवेदन—

३३५. तत्पश्चात् वह मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहां चार घंटे वाला अश्वरथ था, वहां आता है, आकर चार घंटे वाले अश्व-रथ पर वहां आता है, आरूढ़ होकर महान सुभटों और विशाल जन समूह वाले परिवार के साथ राजगृहनगर के मध्य में से होकर अपना भवन है, वहां आता है, आकर चातुर्घंटिक अश्वरथ से नीचे उतरता है, उतरकर जहां माता-पिता थे, वहीं आता है, आकर माता-पिता को प्रणाम करता है प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण किया है और उस धर्म का मैं आकांक्षी हूँ, विशेष का मैं आकांक्षी हूँ, मुझे रुचिकर है अर्थात् मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचा है।'

तब उस मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—

'पुत्र ! तुम धन्य हो ! तुम पुण्यशाली हो, पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, पुत्र ! तुम कृत लक्षण हो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रमण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट पुनः-पुनः इष्ट और रुचिकर है।'

तब उस मेघकुमार ने दूसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार कहा—

'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्मश्रवण किया है, वह धर्म मुझे इष्ट है, विशेष इष्ट है, रुचिकर हैं। अतएव हे माता-पिता ! तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।'

धारिणीए सोगाकुलदसा—

३३६. तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं, गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागयरोम-कूवपगलंत-विलीणगाया सोयभरपवेवियंगी नित्तेया दीण-विमण-वयणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर

धारिणी की शोकाकुल दशा—

३३६. उसके बाद इस अनिष्ट, अप्रिय, अप्रशस्त, अमनोज्ञ, अमणाम (मन को न रुचने वाली) अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण कर, मन ही मन इस प्रकार के इस महान पुत्र-वियोग के दुःख से पीड़ित उस धारिणी देवी के रोम-रोम में पसीना आने से भीग गया, सारा शरीर, शोकातिरेक से अंग अंग कांप उठे, वह निस्तेज हो गई, दीन और विमनस्क हो गई, हथेली से मसली हुई कमल की माला के समान

लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण-पडंतखुम्मिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमाल-विकिण्ण-केसहत्था मुच्छावस-नट्ठचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्क-संधिबंधणा कोट्टिमतलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया।

हो गई, उसी क्षण जीर्ण और दुर्बल शरीर वाली हो गई, लावण्य शून्य कांतिहीन, श्रीविहीन हो गई, पहने हुए गहने अत्यन्त ढीले हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसककर भूमि पर गिर कर चूर-चूर हो गये, उत्तरीय वस्त्र खिसक गया, सुकुमाल केशपाश बिखर गया, मूर्च्छा के कारण, चेतना नष्ट हो गई, शरीर भारी हो गया, कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता के समान हो गई, महोत्सव के समाप्त हो जाने पर इन्द्र दण्ड के समान श्रीहीन हो गई, शरीर के जोड़-जोड़ ढीले हो गये, और पछाड़ खाकर सर्व अंगों से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

धारिणीए मेहस्स य परिसंवादो—

३३७. तए णं सा धारिणीदेवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाण-निव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय-तालविंट-वीयणग-जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे, कलुण-विमण-दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं वयासी—

धारिणी और मेघ का परिसंवाद—

३३७. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी को संभ्रम पूर्वक शीघ्र ही सुवर्ण झारी के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचित किया अर्थात् शीतल जल के छींटे डाले जिससे उसका शरीर शीतल हो गया और अंतःपुर के परिजनों द्वारा उत्क्षेपक, तालवृन्त और वीजनक द्वारा उत्पन्न एवं जलकणों मिश्रित वायु से सचेत किये जाने पर मोतियों की लड़ी के समान नेत्रों से झरझर बरसाती हुई अश्रुधारा से वह अपने वक्ष स्थल को सींचने भिगोने लगी, वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई और रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना-पसीना होती हुई, लार टपकती हुई, शोक करती हुई, विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार बोली—

"तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते-कंते इट्ठे पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदिजणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओग सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिए-कुलवंसतंतुकज्जम्मि निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

'हे पुत्र! तू हमारा इकलौता बेटा है, तू हमें कान्त, इष्ट, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम है, हमारे लिये धैर्य और विश्वास का आधार है, कार्य करने में माना हुआ है, बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों के भडकरंड के समान है, रत्नों से बढ़कर रत्नरूप है, जीवन के श्वासोश्वास के सदृश हैं, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गूलर के फूल के समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है? हे पुत्र! हम क्षण मात्र के लिये भी वियोग सहन नहीं कर सकते हैं, इसलिये हे पुत्र! जब तक हम जीवित है तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगो और हमारे कालगत हो जाने के बाद जब परिपक्व अवस्था के हो जाओ अर्थात् युवावस्था बीतने के बाद प्रौढ़ अवस्था हो जाये, कुलवंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तन्तु कार्य की वृद्धि हो जाये, लौकिक कार्यों की अपेक्षा न रहे अर्थात् गृहस्थावस्था का दायित्व न रहे उस समय तुम श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित हो, गृहत्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना।'

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—

तब माता-पिता के इस कथन को सुनकर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

"तहेव णं तं अम्मताओ ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—'तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते-जाव-पव्वइस्ससि ।' "एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाविभूते विज्जुलयाचचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए, के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाय समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।"

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाओ सरिसेहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाओ भारियाओ । तं भुंजाहि णं जाया ! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे । पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।"

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—

"तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ-जाव-भारियाओ । तं भुंजाहि णं जाया ! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे । पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।'

"एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सास-नीसासा दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पज-हणिज्जा ।

"से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए, के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।"

'हे माता-पिता ! आपने मुझसे जो यह कहा कि हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते बेटे हो, -यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार करना, वह वैसा ही है, अर्थात् ठीक है । परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्य भव-जीवन अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, विनश्वर और आपदाओं से व्याप्त है, बिजली की तरह चंचल, जल के बुदबुदे और दूब के नोक पर स्थित जल कण के समान अनित्य सन्ध्या अभ्रराग-लालिमा के समान, स्वप्न दर्शन के समान है सड़न, पतन और विध्वंसन धर्मा है, पश्चात् या पूर्व में अवश्य त्यागने योग्य है, हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि पहले कौन जायेगा और पीछे कौन जायेगा ? अतः हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं ।'

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

'हे पुत्र ! यह तुम्हारी भार्यायें समान शरीर वाली, समान रंग वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन, एवं गुणों से युक्त है तथा समान राजकुलों से लाई हुई हैं । अतएव हे पुत्र ! इनके साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम भोगों को भोगो भुक्त भोगी होने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित होकर गृहस्थावस्था का त्यागकर आनगारिक दीक्षा अंगीकार कर लेना ।'

तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला—

हे माता-पिता ! आप मुझसे जो यह कहते हैं—'हे पुत्र ! तेरी यह भार्यायें समान शरीर वाली हैं इत्यादि । अतएव हे पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगो । भोग-भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना, सो ठीक है ।

लेकिन हे माता-पिता ! निश्चय ही मनुष्य के काम-भोग अशुचि-अपवित्र है, अशाश्वत है, वमन को झराने वाले हैं, पित्त को झराने वाले हैं, कफ को झराने वाले हैं, शुक्र को झराने वाले हैं, शोणित को झराने वाले हैं, गंदे उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं, खराब मूत्र, मल, पीव से परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिका मल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न, पतन, विध्वंसन धर्मा हैं और पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य हैं ।

हे माता पिता ! पहले कौन जायेगा [मरण को प्राप्त होगा] और बाद में कौन जायेगा—मरेगा, यह कौन जानता है ? इसीलिये हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार दीक्षा लेना चाहता हूँ ।'

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहू हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं। तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं। तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

उसके बाद माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

'हे पुत्र ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह अर्थात् सात पीढ़ियों से आया हुआ यह बहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, वस्त्र, मणि, मोती, शंख, मूँगा, माणिक आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है जो सात पीढ़ियों तक यथेच्छ देने, भोगने और बाँटने पर भी समाप्त होने वाला नहीं है। अतएव हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि सत्कार की समुन्नति का अनुभोग करके बाद में अनुभूत कल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के निकट मुण्डित हो, गृह त्यागकर अनगार धर्म अंगीकार कर लेना।'

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—"तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए-जाव-तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।"

तब वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला—'हे माता-पिता ! आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक है कि 'हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ-यावत्-पश्चात अनुभूतकल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर अनगार दीक्षा स्वीकार कर लेना।'

"एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामण्णे-जाव-मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे। से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए, के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

लेकिन हे ! माता-पिता ! यह हिरण्य आदि धन द्रव्य अग्नि-साध्य, चोर-साध्य, राज्यसाध्य, दायसाध्य, मृत्युसाध्य है अर्थात् इस धन को अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, कुटुम्बीजन बाँट सकते हैं और मृत्यु आने पर अपना नहीं रहता है तथा अग्नि सामान्य है—यावत्-मृत्यु सामान्य है, सड़न, पतन और विध्वंसन स्वभाव वाला है, पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य है। अतः हे माता-पिता ! कौन यह जानता है कि पहले कौन जायेगा और बाद में कौन जायेगा ? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी अनुमतिपूर्वक श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर और गृहवास का त्याग करके अनगार दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'

३३८. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति मेहं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी—

३३८. तत्पश्चात् जब मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आख्यापना (सामान्य वाणी), प्रज्ञापना (विशेष वाणी), संज्ञापना (संवोधन करने वाली वाणी) विज्ञापना (अनुनय-विनय की वाणी) समझाने, बुझाने, संवोधन करने और अनुनय करने पर भी विषयाभिमुखी करने में समर्थ नहीं हुए तब विषयों के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार वोले—

"एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए-जाव-संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा,

'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, परिपूर्ण, निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है-यावत्-संशुद्ध, शल्यनाशक, मोक्षमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जरामार्ग, निर्वाण मार्ग, सर्व दुखों के नाश का मार्ग है, सर्प के समान लक्ष्य के प्रति निश्चल दृष्टि वाला है, छुरे के समान एक धार वाला है, लोह

वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं चंकमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं। नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वद्दलियाभत्ते वा गिलाण-भत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा।

के जो चबाने जैसा है, बालू के कौर जैसा नीरस है, गंगामहानदी के प्रतिस्रोत—पूर में तैरने जैसा है, भुजाओं से महासमुद्र को पार करने जैसा है, तलवार की तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा है, वजन को गले में लटकाने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है। इसके अलावा हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों को आधाकर्मी अथवा औद्देशिक अथवा क्रीतकृत अथवा स्थापित [साधु के लिए रखा हुआ] अथवा रचित [मोदक आदि के चूर्ण को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ] अथवा दुर्भिक्ष-भक्त, कान्तारभक्त, वर्दलिका भक्त [वर्षा के समय उपाश्रय में आकर बनाया गया भोजन] अथवा ग्लान भक्त [रोगी गृहस्थ के नीरोग होने की कामना से साधु को दिया जाने वाला भोजन] आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार मूल, कद, फल, बीज और हरित वनस्पति का भोजन भी नहीं कल्पता है।

"तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय सिंभिय-सन्निवाइए विवहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए। भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे। तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्व-इस्ससि।"

इसके अलावा दूसरी बात यह है कि हे पुत्र ! तू सुख भोगने लायक है, दुःख सहने योग्य नहीं है, तू शीत, उष्ण, भूख, प्यास भी सहन करने में समर्थ नहीं है और वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले विविध विकारों, रोगों और आतंकों को, ऊँचे,नीचे इन्द्रिय प्रतिकूल वचनों को, बाईस परीषहों और उपसर्गों को अदीन होकर सम्यक् प्रकार से सहन करने के लायक भी नहीं है। अतएव हे लाल ! तू मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोग ! भोग भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम को त्यागकर कल्याणकर अनगार दीक्षा ग्रहण करना।'

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मा-पियरं एवं वयासी—"तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'एस णं जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे पुणरवि तं चेव जाव पव्वइस्ससि।' एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोग-निप्पिवासाणं दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव णं धीरस्स निच्छिय-ववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ?

उसके बाद मेघकुमार माता-पिता की इस बात को सुनकर माता-पिता से इस प्रकार बोला—'हे माता-पिता ! आपने जो कुछ कहा सो ठीक वैसा ही है कि 'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है इत्यादि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिये-यावत्-प्रव्रज्या स्वीकार कर लेना।' लेकिन हे माता-पिता ! यह निर्ग्रंथ प्रवचन क्लीवों-नपुंसकों को, कायरों को, कुत्सित पुरुषों को, इहलोक सम्बन्धी विषय-सुख की अभिलाषा करने वालों को, परलोक में सुख की इच्छा करने वाले सामान्यजनों के लिए ही दुष्कर है लेकिन धीर और दृढ़ संकल्पी पुरुषों को पालन करने में कठिनाई क्या है ?

"तं इच्छामि णं अम्मयाओ तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

अतएव हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा अनुमति लेकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।'

मेहस्स एगदिवसरज्जं—

३३९. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं लोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि

मेघ का एक दिवस राज्य—

३३९. तत्पश्चात् जब माता-माता मेघकुमार को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत सी आख्यापना, प्रज्ञापना,

य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे अकामकाइं चेव मेहं कुमारं एवं वयासी—

"इच्छामो ताव जाया ! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए ।"

संज्ञापना और विज्ञापना वाणी द्वारा समझाने, बुझाने, संबोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ नहीं हुए तब इच्छा के बिना अनिच्छापूर्वक उदासीन होकर मेघकुमार से इस प्रकार बोले—

'हे लाल ! हम तुम्हारी एक दिन की राज्यश्री देखना चाहते हैं अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए राज्य शासन करो ।'

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तब वह मेघकुमार माता-पिता की इच्छा का मान करते हुए मौन रह गया ।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।"

उसके बाद श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मेघकुमार के राज्याभिषेक के लिए महान अर्थ वाली, बहुमूल्य एवं महामूल्यवान सामग्री तैयार करो ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेंति ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष मेघकुमार के राज्याभिषेक के लिए महार्थक, महर्घ और महामूल्यवान सामग्री तैयार करते हैं ।

तए णं से सेणिए राया बहूहिं गणनायगेहि य - जाव-संधिवालेहि य - जाव- संपरिवुडे मेहं कुमारं अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं रुप्पमयाणं कलसाणं सुवण्णरुप्पमयाणं कलसाणं, मणिमयाणं कलसाणं, सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं रुप्पमणिमयाणं कलसाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं कलसाणं, भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहीहिं सिद्धत्थएहि य सविड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं-जाव दुंदुभि-निग्घोसणाइयरवेणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत से गणनायकों और— यावत्-सन्धिपालों और-यावत-परिवृत होकर मेघकुमार को एक सौ आठ सुवर्ण कलशों, इसी प्रकार चाँदी के कलशों, सुवर्णरजत कलशों, मणिमय कलशों, सुवर्ण मणिमय कलशों, रजत मणिमय कलशों, सुवर्ण रजत-मणिमय कलशों मृत्तिका कलशों में भरे हुए सर्व प्रकार के जल से, सब प्रकार की मृत्तिका से, सर्व प्रकार के पुष्पों से, सब तरह के गंधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सर्व प्रकार की औषधियों से, सरसों से, समस्त समृद्धि, द्युति और सर्वसैन्य के साथ-यावत्-दुन्दुभि निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों सहित महामहिमा वाले राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया, अभिषेक करके दोनों हाथों को जोड़ दस नखों को सिर पर घुमाकर मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

"जय-जय नंदा ! जय-जय भद्दा ! जय-जय नंदा ! भद्दं ते, अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, अजियं जिणाहि सत्तुपक्खं, जियं च पालेहि मित्तपक्खं, इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं भरहो इव मणुयाणं रायगिहस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूणं गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संवाह- सण्णिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं

'हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे आनन्दकर ! तुम्हारी जय हो, जय हो, तुम्हारा भद्र [कल्याण] हो, तुम न जीते हुए को जीतो, जीते हुए का पालन करो, अथवा जीत परम्परागत आचार का पालन करो, जित—आचारवान् के मध्य में निवास करो अर्थात् शिष्ट पुरुषों की संगति प्राप्त करो, नहीं जीते हुए शत्रु पक्ष पर विजय प्राप्त करो और जित मित्र पक्ष का पालन करो, देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, तारों ज्योतिष्क मंडल में चन्द्रमा के समान, मनुष्यों में भरत के समान राजगृह नगर का तथा और दूसरे भी बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्वट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम निगम, संवाह, सन्निवेश आदि का आधिपत्य करते हुए, प्रधानता करते

सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति" कट्टु जय-जय सद्दं पउंजति ।

तए णं से मेहे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एवं वयासी—"भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे ?"

मेहस्स निक्खमणपाओग्ग-उवगरणं—

३४०. तए णं से मेहे राया अम्मापियरो एवं वयासी—"इच्छामि णं अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, कासवयं च सद्दावेह ।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सय-सहस्साइं गहाय दोहिं सय-सहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह ।"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेंति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेंति ।

कासवेण मेहस्स अग्गकेसकप्पणं—

३४१. तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवसविसप्पमाणहियए ण्हाए कय-बलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं मंगलाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलपरि-ग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"संदिसह णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ।"

हुए स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञा, ऐश्वर्यत्व और सेना-पतित्व करते हुए, पालन करते हुए, जोर-जोर से बजाये जा रहे नृत्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल ताल, त्रुटित, घन, मृदंग, पटह आदि के घोषों पूर्वक विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करो—इस प्रकार कहकर जय-जयकार किया ।

तत्पश्चात् वह मेघ राजा हो गया और पर्वतों में महा हिमवन्त की तरह, पृथ्वी के इन्द्र के समान मन्दराचल [सुमेरु पर्वत] की तरह शोभित होता हुआ विचरने लगा ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—'हे लाल ! बताओ कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे इष्टजनों को क्या दें ? तुम्हारे मन में क्या चाह—इच्छा विचार है ?

मेघ के निष्क्रमण प्रायोग्य उपकरण—

३४०. तत्पश्चात् मेघराजा ने माता-पिता को इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण [जहाँ सभी तरह की वस्तुएँ मिलती हैं, ऐसी दुकान] से रजोहरण और पात्र मंगवा दो और काश्यप-नापित-नाई को बुलवा दो ।'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और श्रीगृह [कोष, खजाना] से तीन लाख स्वर्णमुद्रायें लेकर दो लाख से तो कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ और एक लाख देकर नाई को बुलवाओ ।'

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरें लेकर दो लाख से कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाते हैं और एक लाख मोहरों से उन्होंने नाई को बुलाया ।

काश्यप द्वारा मेघ के अग्रकेश कल्पन (कर्तन)—

३४१. तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये गये उस काश्यप [नाई] ने हृष्ट तुष्ट आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षवश विकसित हृदय वाला होकर स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया और साफ स्वच्छ राजसभा में प्रवेश करने योग्य श्रेष्ठ मांगलिक वस्त्र धारण किये, थोड़े और बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और उसके बाद जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया, आकर श्रेणिक राजा को कर युगल जोड़ मस्तक पर आवर्तित कर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! जो मुझे करने योग्य है, उसकी आज्ञा दीजिये ।'

तए णं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी—"गच्छाहि णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सुरभिणा गंधोदएणं निक्के हत्थपाए पक्खालेहि, सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुहं बंधित्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि।"

तब श्रेणिक राजा ने कश्यप से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुगन्धित गंधोदक से अच्छी तरह हाथ-पैर धो लो, फिर चार पट वाले श्वेत वस्त्र से मुँह बाँधकर दीक्षा के योग्य चार अंगुल छोड़कर मेघकुमार के अग्रकेशों का कर्तन कर दो।'

तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामि ! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सुद्धवत्थेणं मुहं बंधइ, बंधित्ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेति।

तत्पश्चात् वह काश्यप श्रेणिक राजा के इस आदेश को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकासमान हृदय वाला होकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर घुमाकर मस्तक पर अंजलि करके हे स्वामिन् ! इसी प्रकार ही, विनयपूर्वक आदेश वचन को स्वीकार करता है, स्वीकार करके सुगंधित गंधोदक से हाथ-पैरों का प्रक्षालन करता है, प्रक्षालन करके शुद्ध वस्त्र से मुख को बाँधता है, बाँधकर पूर्ण यतनापूर्वक दीक्षा के योग्य चार अंगुल छोड़कर मेघकुमार के शेष अग्रकेशों का कर्तन करता है।

३४२. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महरिहेणं हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयइ, दलइत्ता सेयाए पोत्तीए बंधइ, बंधित्ता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता मंजूसाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलि-प्पगासाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी, रोयमाणी-रोयमाणी, कंदमाणी-कंदमाणी, विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी—

३४२. तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने बहुमूल्य और हंस के समान श्वेत उज्ज्वल वस्त्र में उन केशों को ग्रहण किया, ग्रहण करके सुरभित गंधोदक से धोया, धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन से उन्हें चर्चित किया, अर्थात् उन पर चंदन के छींटे दिये, छींटे देकर श्वेत वस्त्र में बाँधा, बाँधकर रत्न समुदाक (डिबिया) में रखा, रखकर फिर मंजूषा (पेटी) में रखा, रखकर फिर जल की धार, निर्गुन्डी के पुष्प एवं टूटे हुए मोतियों के हार के समान आँखों से आँसू बहाती हुई, रोती हुई, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

"एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य—अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ" त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ।

मेघकुमार के इन केशों का दर्शन राज्य प्राप्ति आदि अभ्युदयों के अवसर पर, उत्सवों पर, प्रसवों के अवसर पर, तिथियों के अवसर पर, इन्द्रमह आदि के अवसर पर, नागपूजा आदि के अवसर पर, और पर्व तिथियों के अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा अर्थात् इन केशों का दर्शन उन उन प्रसंगों पर हमें मेघकुमार का स्मरण कराता रहेगा'—इस प्रकार कहकर उस पेटी को अपने सिरहाने रख लिया।

मेहस्स अलंकरणं—

मेघ का अलंकरण—

३४३. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, मेहं कुमारं दोच्चं पि तच्चं पि सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावेत्ता पम्हलसूमालाए गंधकासाइयाए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति, अणुलिंपित्ता नासा-नीसासवाय-वोज्झं वरणगरपट्टणग्गयं कुसलणरपसंसितं

३४३. तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया, फिर मेघकुमार को दुबारा, तिबारा श्वेत-पीत (चाँदी और सुवर्ण) कलशों से स्नान करवाया, स्नान करवा कर रूँएदार अत्यन्त सुकोमल कषाय गंध वाले अथवा सुगंधित कषाय रंग में रंगे हुए वस्त्र से उसके अंग पोंछकर सरस गोशीर्ष चंदन से शरीर का विलेपन किया, विलेपन करके नासिका के निःश्वास से भी उड़ने योग्य ऐसा अत्यन्त बारीक श्रेष्ठ नगरों

अससलालापेलवं छेयायरियकणगखचियंतकम्मं हंसलक्खणं पडसाडगं नियंसेंति, णियंसेत्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेंति पिणद्धेत्ता—

आदि में प्राप्त होने वाला, चतुर मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, घोड़े के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल, जिसके किनारों पर सुवर्ण के तारों से बेल-बूटे बनाये गये हैं और हंस के जैसा श्वेत वस्त्र पहनाया, पहनाकर फिर हार पहनाया, फिर अर्ध हार पहनाया।

एवं-एगावलिं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं पालंबं पायपलंबं कडगाइं तुडिगाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्दियाणंतयं कडिसुत्तयं कुण्डलाइं चूडामणिं रयणुक्कडं मउडं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता दिव्वं सुमणदामं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता दद्दरमलयसुगंधिए गंधे पिणद्धेंति। तए णं तं मेहं कुमारं गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति।

और फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, प्रालंब (कंठी) पाद प्रलम्ब—(पैरों तक लटकने वाला आभूषण) कड़े, तुटिक, केयूर, अंगद, दसों अंगुलियों में मुद्रिका, कटिसूत्र, कुण्डल, चूड़ामणि, रत्नजटित मुकुट पहनाये, पहनाकर दिव्य फूलों की माला पहनाई, पहनाकर, दर्दर (घड़े में पकाया हुआ) में पकाये हुए चन्दन के सुगंधिततैल की गंध शरीर पर लगाई। पश्चात् सूत से गुंथी हुई पुष्प आदि से वेष्टित लपेटी हुई, बांस की सलाई आदि से पूरी हुई और जोड़ी हुई इस तरह चार प्रकार की मालाओं द्वारा कल्पवृक्ष की तरह अलंकृत, विभूषित किया।

मेहस्स अभिनिक्खमणमहुस्सवं—

मेघ का अभिनिष्क्रमण महोत्सव—

३४४. तए णं से सेणिए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं लीलट्ठिय-साल-भंजियागं ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं घंटा-वलि-महुर-मणहरसरं सुभ-कंत-दरिसणिज्जं निउणोविय-मिसिमिसेंत-मणिरयण-घंटियाजालपरिक्खित्तं अब्भुग्गय-वइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहरजमल-जंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेस्सं सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं पुरिससहस्स-वाहिणीयं सीयं उवट्ठवेह।"

३४४. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र ही अनेक सैकड़ों स्तम्भों से बनी हुई जिनमें क्रीड़ा करती हुई पुतलियां बनी हों, जो ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रूरु (कृष्ण मग) सरभ (अष्टापद) चमरी गाय, कुञ्जर, वनलता, पद्मलता, आदि के चित्रों से युक्त हो, जिसकी घंटावलि से मधुर, मनहर स्वर निकल रहे हों, जो शुभ, कांत-आकर्षक और दर्शनीय हो, कुशल कारीगरों के द्वारा निर्मित, दैदीप्यमान मणियों और रत्नों की घंटियों-घुंघरुओं के समूह से व्याप्त हो, वज्ररत्नों से बनी हुई वेदिका से युक्त होने से जो मनोहर दिखलाई देती हो, जिसमें बने हुए विद्याधर युगलों के चित्र यन्त्रचालित जैसे प्रतीत होते हों, सहस्रमाली सूर्य की किरणों की तरह शोभायमान हो, हजारों रूपवाली हो, दीप्यमान, अतिशय दीप्यमान हो, देखने में नेत्रों को आकृष्ट करने वाली हो, सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो अर्थात् इतनी शोभायमान हो कि स्वयं लक्ष्मी ही अपने सम्पूर्ण वैभव समृद्धि के साथ उपस्थित हो गई है तथा शीघ्र, त्वरित, चपल और अतिशय चपल हो अर्थात् जिसको शीघ्रतापूर्वक ले जाया जा सके और जो एक हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाती हो ऐसी एक शिविका तैयार करो!

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठा अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं-जाव-सीयं उवट्ठवेंति।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट तुष्ट होकर अनेक सैकड़ों स्तम्भों से बनी हुई-यावत्-शिविका (पालकी) तैयार कर उपस्थित करते हैं।

तए णं से मेहे कुमारे सीयं दुरूहइ दुरूहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ़ हुआ और आरूढ़ होकर श्रेष्ठ सिंहासन के निकट आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणपासे भद्दासणंसि निसीयइ ।

उसके बाद जो स्नान कर चुकी है, बलिकर्म कर चुकी है-यावत्-अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषण से जिसका शरीर अलंकृत है ऐसी उस मेघकुमार की माता शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार की दाहिनी ओर भद्रासन पर बैठी ।

३४५. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबधाई रयहरणं च पडिग्गहं च गहाय सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामपासे भद्दासणंसि निसीयइ ।

३४५. तत्पश्चात् उस मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर मेघकुमार के बायें पार्श्व में भद्रासन पर बैठ गई ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला आमेलगजमलजुयल-वट्टिय-अब्भुण्णय-पीण-रइय-संठिय-पओहरा हिम-रयय-कुंदेंदुपगासं सकोरेंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारेमाणी ओहारेमाणी चिट्ठइ ।

उसके बाद उस मेघकुमार के पृष्ठ भाग में शृंगार के आगार रूप मनोहर वेष वाली, सुन्दर गति, हास्य, बोली, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप (वर्णन) करने में निपुण, योग्य उपचार करने में कुशल, परस्पर मिले हुए सम श्रेणी में स्थित गोल, ऊँचे, पुष्ट, प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तनवाली अर्थात् पूर्ण नवयौवना ऐसी एक उत्तम तरुणी हिम, चांदी, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान एवं कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त धवल आतपत्र (छत्र) को हाथ में लेकर लीला करती हुई खड़ी हुई ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय-गय-हसिय-भणिए-चेट्ठिय-विलास - संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयार-कुसलाओ सीयं दुरूहंति, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पासं नाणामणि-कणग-रयण-महरिहतवणिज्जुज्जल-विचित्तदंडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीहवालाओ संख-कुंद-दगरय-अमयमहियफेणपुंज-सण्णिगासाओ चामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठन्ति ।

उसके बाद अपने सुन्दर वेष से शृंगार के आगार के समान, सुन्दरगति, हास्य, वाणी, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप करने में कुशल, योग्य उपचार करने में कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियाँ शिविका पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर मेघकुमार की दोनों बाजुओं में विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण, रत्न और महान पुरुषों के योग्य, तपनीय (लाल सुवर्ण) के समान उज्ज्वल, विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए, पतले, उत्तम और लंबे बालों वाले, शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, मंथन किये गये अमृत के फेन के पुंज सरीखे धवल चामरों को ग्रहण कर लीलापूर्वक वींजती-वींजती हुई खड़ी हुई ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरओ पुरत्थिमेणं चंदप्पवइर-वेरुलिय-विमलदंडं तालियंटं गहाय चिट्ठइ ।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप चारुवेष धारिणी, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप में निपुण और उचित उपचार करने में कुशल एक उत्तम तरुणी शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार के निकट पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकांत मणि, वज्ररत्न और वैडूर्य मणि की निर्मल डंडी वाले पंखे को ग्रहण करके खड़ी हुई ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय - भणिय-चेट्ठिय-विलास - संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयार-कुसला सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स

उसके बाद मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप चारुवेष धारिणी, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप में निपुण, उचित उपचार करने में कुशल एक श्रेष्ठ तरुणी आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार के पूर्व दक्षिण

पुव्वदक्खिणेणं सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगय-महामुहा-कितिसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ।

दिग्भाग—आग्नेयकोण—में श्वेत रजतमय विमल जल से भरे हुए मत्त गजेन्द्र की मुखाकृति वाले भृंगार को हाथ में ग्रहण करके खड़ी हुई।

३४६. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं एगाभरण-गहिय-निज्जोयाणं कोडुंबिय-वरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेह।"

३४६. उसके बाद मेघकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, एक रंग रूप के, एक उम्र के, एक जैसी वेषभूषा से सुसज्जित एक हजार उत्तम, तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।'

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं एगाभरण - गहिय - निज्जोयाणं कोडुंबियवरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेंति।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कांति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले और एक सरीखे आभूषणों से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया।

तए णं ते कोडुंबियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया-जाव-एगाभरण-गहिय-णिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं एवं वयासी—

उसके बाद श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये गये वे उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट तुष्ट हुए, उन्होंने स्नान किया-यावत्-एक से आभूषण एवं पोशाक पहनकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आये, आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—

"संदिसह णं देवाणुप्पिया! जं णं अम्हेहिं करणिज्जं।"

'हे देवानुप्रिय! हमारे लिए जो करने योग्य हो उसके लिए आदेश दीजिये।'

तए णं से सेणिए राया त कोडुंबियवरतरुणसहस्सं एवं वयासी—

तब श्रेणिक राजा ने उन कौटुम्बिक, उत्तम तरुण सहस्रों से इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! मेहस्स कुमारस्स पुरिस-सहस्सवाहिणीयं सीयं परिवहेह।"

'हे देवानुप्रियो! जाओ और तुम मेघकुमार की पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका को वहन करो।'

तए णं तं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सेणिएण रण्णा एवं वुत्तं संतं हट्ठं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं परिवहइ। तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलया तप्पढमयाए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणया-जाव-बहवे अत्थत्थिया-जाव-कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया कारोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया वंदियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजय-मंगलसएहिं अणवरयं अभिनंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी—

तब वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिविका का वहन करते हैं। तत्पश्चात् पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ़ होने पर यह आठ मंगलद्रव्य अनुक्रम से उसके सामने चलने लगे, वे इस प्रकार हैं—स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त्त, वर्धमान, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल, दर्पण-यावत्-बहुत से धनार्थी याचकजन-यावत्-कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्विषिक, कारोटिक, कारवाहिक, शंख बजाने वाले, चक्र हाथ में लेने वाले, हल धारण करने वाले, मुख मांगलिक, वर्धमानक (वधाई देने वाले), चारण, भार आदि, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, नयनाभिराम हृदयंगम वाणी से जयविजय रूप मंगल शब्दों से अनवरत अभिनंदन और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"जय-जय नंदा! जय-जय भद्दा! जय-जय नंदा! भद्दं ते अजियं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समण-धम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोस-

'हे नन्द! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भद्र! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे जगत् को आनन्द देने वाले! तुम्हारी जय हो, जय हो, तुम्हारा कल्याण हो, नहीं जीती हुई इन्द्रियों को तुम जीतो, जीते हुए धारण किये हुए, प्राप्त श्रमण धर्म का पालन करो, हे देव! विघ्नों पर विजय प्राप्त कर सिद्धि में

मल्ले तवेण धिइ-धणिय-बद्धकच्छो, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो, पाव य वितिमिरमणुत्तर केवलं नाणं, गच्छ य मोक्खं परमं पयं सासयं च अयलं, हंता परीसह-चमुं णं, अभीओ परीसहोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ" त्ति कट्टु पुणो-पुणो मंगल-जयसद्दं पउंजंति ।

निवास करो, तप के द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों का हनन करो, धैर्य धारण कर, उनका निकंदन करने के लिए कटिबद्ध होओ, प्रमाद रहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्मरूपी शत्रुओं का मर्दन करो, अज्ञानान्धकार से रहित अनुत्तर-सर्वोत्तम अद्वितीय—केवलज्ञान को प्राप्त करो, परीषह रूपी सेना का हनन करके परीषह और उपसर्गों से निर्भय होकर शाश्वत और अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो, तुम्हारी धर्म साधना निर्विघ्न सम्पन्न हो,—इस प्रकार कहकर वे पुनः पुनः मंगलमय जय जय शब्दों का उच्चारण करने लगे ।

तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ ।

उसके बाद मेघकुमार राजगृह नगर के मध्य में से होकर निकला, निकलकर जहाँ गुण शिलक चैत्य था, वहाँ आया, आकर सहस्र पुरुष वाहिनी शिविका से नीचे उतरा ।

सिस्सभिक्खादाणं—

३४७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एस णं देवाणुप्पिया ! मेहे कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययणंदिजणए उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण दरिसणयाए ?

शिष्य भिक्षा दान—

३४७. उसके बाद मेघकुमार के माता पिता मेघकुमार को आगे करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है, यह हमें इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का आधार रूप है, बहुमूल्य, अनमोल भंडकरंड के समान है, रत्नों में रत्न रूप है, जीवन के लिए उश्वास रूप है, हृदय को आनन्द देने वाला है, गूलर के पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है ?

"से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं । एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिक्खं दलयामो । पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया । सिस्सभिक्खं ।"

जैसे उत्पल (नीलकमल) पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में वृद्धि पाता है, फिर भी पंकरज से उपलिप्त नहीं होता है, जलरज (रेखा) से लिप्त नहीं होता है, इसी प्रकार यह मेघकुमार कामों में उत्पन्न हुआ है, भोगों में संवर्धित हुआ है, फिर भी कामरज से लिप्त नहीं हुआ है, भोग रज से लिप्त नहीं हुआ है । हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार संसार के भय से उद्विग्न हुआ है, जन्म जरा मरण से भयभीत हुआ है और आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण करने का इच्छुक है अतः हम आप देवानुप्रिय को इसे शिष्य भिक्षा रूप में अर्पित करते हैं । हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्य भिक्षा को स्वीकार कीजिये ।'

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ ।

तत्पश्चात मेघकुमार के माता-पिता के इस कथन को सुनकर श्रमण भगवान महावीर ने इस अर्थ (बात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया ।

३४८. तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ। तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्प-गासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी रोयमाणी रोय-माणी कंदमाणी कंदमाणी विलवमाणी विलवमाणी एवं वयासी—

३४८. तत्पश्चात मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास से उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में गया—जाकर स्वयं ही आभरण, माला, अलंकार उतारे। तब मेघकुमार की माता ने हंस जैसे श्वेत और कोमल वस्त्र खंड में उन आभरण, माला और अलंकारों को ग्रहण किया, ग्रहण करके जल की धारा, निर्गुण्डी के पुष्प और टूटी हुई मुक्तावली के समान आंसू टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहा—

"जइयव्वं जाया! घडियव्वं जाया! परक्कमियव्वं जाया! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं।" 'अम्हं पि णं एसेव मग्गे भवउ' त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

'हे लाल! प्राप्त चारित्रयोग में यतना करना, हे जाया! अप्राप्त चारित्रयोग के लिये घटना करना अर्थात् प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होना, हे पुत्र! पराक्रम करना, संयम साधना में प्रमाद न करना। हमारे लिये भी यही मार्ग हो अर्थात् हम भी भविष्य में संयम धारण करने का सुयोग प्राप्त करें'—इस प्रकार कहकर मेघकुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये।

मेहस्स पव्वज्जागहणं—

३४९. तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

मेघ का प्रव्रज्या ग्रहण—

३४९. उसके बाद मेघकुमार ने स्वयं पंचमुष्टिक लोच किया, लोच करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आया, आकर तीन बार-आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"आलित्ते णं भंते! लोए, पलित्ते णं भंते! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य।

'हे भगवन्! यह संसार आलिप्त है, हे भगवन्! यह संसार प्रदीप्त है, हे भगवन्! यह संसार जरा—मरण से आदीप्त-प्रदीप्त है।

"से जहानामए-केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ-एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य लोए हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आयाभंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे। एस मे नित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।

जैसे कोई गृहपति घर में आग लग जाने पर उस घर में से अल्प भारवाली किन्तु जो बहुमूल्य वस्तु होती है, उसे लेकर स्वयं एकान्त में चला जाता है और सोचता है कि अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह द्रव्य मेरे लिये पीछे और अभी हित के लिये, सुख के लिये, क्षमा (शांति, सामर्थ्य) के लिये, कल्याण के लिये और भविष्य में काम आने के लिये होगा। इसी प्रकार मेरा भी आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम है। इसी को सुरक्षित निकालने पर यह मेरे संसार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूँ कि आप देवानुप्रिय मुझे स्वयं ही प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करें, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वयं ही सूत्र और अर्थ की शिक्षा दें, स्वयं ही आचार-गोचर, वैनयिक-चरण-करण-संयम यात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।'

३५०. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ-जाव-धम्ममाइक्खइ—

"एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं -जाव-सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं।"

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिवज्जइ-तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ,-जाव-उट्ठाय पाणेहिं-जाव-सत्तेहिं संजमेणं संजमइ।

३५०. तत्पश्चात श्रमण भगवान महावीर ने स्वयं ही मेघकुमार को प्रव्रजित किया-यावत-धर्म की शिक्षा दी—

'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार चलना चाहिये, इस प्रकार भोजन करना चाहिये, इस प्रकार बोलना चाहिये, इस प्रकार अप्रमत्त एवं सावधान होकर प्राणों-यावत-सत्वों की रक्षा करके संयम का पालन करना चाहिये, इस विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

तब मेघकुमार ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार का यह धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया और भगवान की आज्ञानुरूप गमन करता, उसी प्रकार बैठता-यावत्-सावधानी पूर्वक प्राणों की-यावत्-सत्वों की यतना करता हुआ वह संयम की आराधना करने लगा।

मेहस्स मणो-संकिलेसे—

३५१. जद्दिवसं च णं मेहे कुमारे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तस्स णं दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि समणाणं निग्गथाणं अहाराइणियाए सेज्जा-संथारएसु विभज्जमाणेसु मेहकुमारस्स दारमूले सेज्जा-संथारए जाए यावि होत्था।

तए णं समणा निग्गंथा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए-जाव-धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइगच्छमाणा य निग्गच्छमाणा य अप्पेगइया मेहं कुमारं हत्थेहिं संघट्टेंति-जाव-अप्पेगइया ओलंडेंति अप्पेगइया पोलंडेंति अप्पेगइया पायरय-रेणु-गुंडियं करेंति। एमहालियं च रयणिं मेहे कुमारे नो संचाएइ खणमवि अच्छिं निमीलित्तए।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं सेणियस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए देवीए अत्तए मेहे इट्ठे कंते-जाव-उम्बर-पुप्फं व दुल्लहे सवणयाए। तं जया णं अहं अगारमज्झे आवसामि तया णं मम समणा निग्गंथा आढायंति परियाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति, अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति, इट्ठाहिं कंताहिं-जाव-वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। जप्पभिइं च णं अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तप्पभिइं च णं ममं समणा निग्गंथा नो आढायंति-जाव-नो कंताहिं वग्गूहिं आलवेंति

मेघ का मनःसंक्लेश—

३५१. जिस दिन मेघकुमार मुण्डित होकर गृहत्याग कर आनगारिक हुआ उसी दिन संध्याकाल में यथारात्निक अर्थात् दीक्षा पर्याय के अनुक्रम से श्रमण-निर्ग्रन्थों के शैया-संस्तारक का विभाजन करते समय मेघकुमार का शैया-संस्तारक दरवाजे के समीप हुआ।

तब श्रमण निर्ग्रंथ रात्रि के पहले प्रहर में और अंतिम समय में वाचना के लिये-यावत-धर्म के व्याख्यान का चिंतन करने के लिये और उच्चार (बड़ी नीति) अथवा प्रस्रवण (लघुनीति-पेशाब) के लिये प्रवेश करते और बाहर निकलते थे तो उनमें से किसी साधु के हाथ का मेघकुमार से संघट्टन हुआ-यावत-कोई-कोई लांघ कर निकले, कोई-कोई दो-तीन बार लांघकर निकले, किसी किसी ने अपने पैरों की धूलि से उसे भर दिया। इस प्रकार उस लम्बी रात्रि में मेघकुमार एक क्षण के लिये भी आंखें बन्द नहीं कर सका अर्थात् तनिक भी नींद नहीं ले सका।

तब उस मेघकुमार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं श्रेणिक राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज मेघ हूँ जो उनके लिये इष्ट, कांत-यावत्-गूलर के पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण भी दुर्लभ है। जब मैं घर में रहता था तब ये श्रमण निर्ग्रंथ मेरा आदर करते थे, जानते थे, सत्कार सम्मान करते थे, जीवादि पदार्थों को, उन्हें सिद्ध करने वाले हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को और व्याकरणों (प्रश्नों के उत्तरों) को कहते थे, इष्ट, मनोहर-यावत-वाणी से आलाप संलाप करते थे। लेकिन जब से मैंने मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारत्व स्वीकार कर लिया है तब से ये श्रमण निर्ग्रन्थ न तो मेरा आदर करते हैं-यावत्-न मनोहर वचनों

संलवेंति। अदुत्तरं च णं ममं समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्ता-वरत्ताकालसमयंसि वायणाए-जाव-एमहालियं च णं रत्ति अहं नो संचाएमि अच्छि निमीलावेत्तए, तं सेयं खलु मज्झ कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माण-सगए निरयपडिरूवियं च णं तं रयणि खवेइ, खवेत्ता कल्लं पाउ-प्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ जाव-पज्जुवासइ।

से आलाप संलाप ही करते हैं। इसके सिवाय श्रमण निग्रंथ पूर्व और पिछली रात्रि के समय वाचना-यावत-इस प्रकार लम्बी रात्रि में एक क्षण के लिये भी मैं आँख नहीं मींच सका, अतएव मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर-यावत्-तेज से जाज्वल्यमान सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित होने पर श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा लेकर पुनः गृहवास में बस जाना चाहिये—इस प्रकार का मेघकुमार ने विचार किया और विचार करके आर्तध्यान के कारण दुःखी और संकल्प विकल्प युक्त मानस को प्राप्त होकर वह रात्रि नरक की भांति व्यतीत की, व्यतीत करके कल रात्रि को सुविमल प्रभात रूप होने पर-यावत-तेज से जाज्वल्यमान सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदय होने पर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया-यावत-पर्युपासना करने लगा।

मेहस्स संबोधो—

३५२. तए णं मेहा ! इ समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं एवं वयासी—

"से नूणं तुमं मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि समणेहिं निग्गंथेहिं वायणाए-जाव-एमहालियं च णं राइं तुमं नो संचाएसि मुहुत्तमवि अच्छि निमीलावेत्तए।

"तए णं तुज्झ मेहा ! इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—जया णं अहं अगारमज्झे आवसामि तया णं ममं समणा निग्गंथा आढायंति इट्ठाहिं....वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। जप्पभिइं च णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि तप्पभिइं च णं ममं समणा निग्गंथा नो आढायंति जाव नो इट्ठाहिं कंताहिं वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति। अदुत्तरं च णं ममं समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अप्पेगइया जाव पाय-रय-रेणु-गुंडियं करेंति। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउ-प्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगार-मज्झे आवसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माणसगए निरयपडिरूवियं च णं तं रयणि खवेसि, खवेत्ता जेणामेव अहं तेणामेव हव्वमागए। से नूणं मेहा ! एस अत्थे समत्थे।"

मेघ को संबोध—

३५२. तत्पश्चात हे मेघ ! इस प्रकार संबोधन करके श्रमण भगवान महावीर ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

'हे मेघ ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर पर श्रमण निग्रन्थों के वाचना-यावत्-लम्बी रात्रि पर्यन्त थोड़ी देर के लिये भी आँखें नहीं मींच सके हो।

तब हे मेघ ! तुम्हारे मन में इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—जब मैं गृहवास में निवास करता था तब ये श्रमण निग्रंथ मेरा आदर करते थे इष्ट........वचनों से आलाप-संलाप करते थे। लेकिन जब से मुण्डित होकर गृहत्याग कर अनगारत्व में प्रव्रजित हुआ हूँ तब से ये श्रमण निग्रंथ न तो मेरा आदर करते हैं-यावत-न इष्ट, रमणीय वाणी से आलाप-संलाप ही करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमण निग्रंथ रात्रि के पहले और पिछले काल के समय में कोई-यावत-पैरों की धूलि से भरते हैं। अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर-यावत-जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदय होने पर श्रमण भगवान महावीर से पूछकर, आज्ञा लेकर गृहवास में बस जाऊँ—इस प्रकार का तुमने विचार किया और विचार करके दुर्द्धर्ष आर्त ध्यान के कारण दुःख से पीड़ित एवं संकल्प विकल्पों से युक्त मानस वाले होकर नरक वेदना की तरह उस रात्रि को व्यतीत किया, व्यतीत करके जहाँ मैं हूँ वहाँ शीघ्रतापूर्वक आये हो। हे मेघ ! यह अर्थ समर्थ है अर्थात् मेरा कथन सत्य है ?

"हंता, अत्थे समत्थे।"

'जी हां ! यह अर्थ समर्थ है—आपका कथन सत्य है'—मेघकुमार ने उत्तर दिया।

भगवया पुव्वभवसुमेरुप्पभ-भवनिरूवणं—

३५३. एवं खलु मेहा ! तुमं इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढ-गिरिपायमूले वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे सेए संख-दल-उज्जल-विमल-निम्मल-दहिघण-गोखीर-फेण-रयणियरप्पयासे सत्तुस्सेहे नवायए दसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिए सोमे सम्मिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छी अच्छिद्द-कुच्छी अलंबकुच्छी पलंबलंबोदराहरकरे धणुपट्ठागिति-विसिट्ठपुट्ठे अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिय-पीवर-गत्तावरे अल्लीण-पमाणजुत्तपुच्छे पडिपुण्ण सुचारु-कुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निरुवहय-विसतिनहे छद्दन्ते सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था।

भगवान द्वारा पूर्वभव के सुमेरुप्रभ-भव निरूपण

३५३. 'हे मेघ ! इससे पहले अतीत तीसरे भव में तुम वैताढ्य गिरि के पादमूल (तलहटी) में शंख के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के, गाय के दूध के फेन और चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले, सात हाथ ऊँचे और नौ हाथ लम्बे, दस हाथ के परिमाण वाले, सातों अंगों (चार पैर, सूंड, पूंछ और लिंग) से प्रतिष्ठित, सौम्य, प्रमाणोपेत अंग वाले, सुन्दर रूपवाले, आगे से ऊँचे तथा ऊँचे उठे हुए मस्तक वाले, शुभ-सुखद आसन-स्कन्ध वाले, वराह (शूकर) के समान पृष्ठ भाग में झुके हुए, गड्ढा रहित और न लंबी ऐसी बकरी की कूंख जैसी कूंख वाले, लंबे उदर, लंबे होंठ और लंबी पूंछ वाले, खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी पीठ की आकृति वाले, भली भांति मिले हुए प्रमाण युक्त, गोल एवं पूर्ण अवयवों वाले, प्रमाणोपेत और चिपकी हुई पूंछ वाले, कछुए के पैरों जैसे परिपूर्ण और मनोहर पैरों वाले, श्वेत, निर्मल, चिकने और निरूपहत बीसों नखों एवं छह दन्त युक्त सुमेरुप्रभ नाम के गजराज थे।

"तत्थ णं तुमं मेहा ! बहूहिं हत्थीहि य हत्थिणियाहि य लोट्टिएहि य लोट्टियाहि कलभएहि य कलभयाहि य सद्धिं संपरिवुडे हत्थि-सहस्सनायए देसए पागट्ठी पट्ठवए जूहवइ वंदपरिवड्ढए, अण्णेसिं च बहूणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेवच्चं-जाव-विहरसि।

'हे मेघ ! वहाँ तुम बहुत से हाथियों, हथिनियों, लोट्टकों (कुमार हाथियों) लोट्टिकाओं, कलभों (हाथी के बच्चों) और कलभियों से परिवृत होकर एक हजार हाथियों के नायक, मार्ग-दर्शक, अग्रणी, प्रस्थापक, यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले तथा इनके अलावा बहुत से दूसरे अकेले हाथी के बच्चों का आधिपत्य करते हुए-यावत्-विचरण करते थे।

३५४. तए णं तुमं मेहा ! निच्चप्पमत्ते सइं पललिए कंदप्परई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहि हत्थीहि य-जाव-संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य दरीसु य कुहरेसु य कंदरासु य उज्झरेसु य निज्झरेसु य वियरएसु य गड्डासु य पल्ललेसु य चिल्ललेसु य कडगेसु य कडयपल्ललेसु य तडीसु य वियडीसु य टंकेसु य कूडेसु य सिहरेसु य पब्भारेसु य मंचेसु य मालेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य नदीसु य नदीकच्छेसु य जूहेसु य संगमेसु य वावीसु य पोक्खरणीसु य दीहियासु य गुंजालियासु य सरेसु य सरपंतियासु य सरसर-

३५४. हे मेघ ! उस समय तुम निरन्तर अप्रमादी, सदा क्रीड़ा परायण, कंदर्प रति-क्रीड़ा करने में प्रीति वाले, मैथुनप्रिय, काम भोगों में अतृप्त और कामभोगों में तृष्णा वाले थे और बहुत से हाथियों और—यावत्—से परिवृत्त होकर वैताढ्य गिरि के पादमूल में, पर्वतों में दरियों में (विशेष प्रकार की गुफाओं में) कुहरों में, कंदराओं में, उज्झरों (प्रपातों) में, झरनों में, विदरों (नहरों) में, गड्ढों में, पल्लवों (तलैयों) में, चिल्ललों में (कीचड़ वाली तलैयों में,) कटकों (पर्वत के तटों) में, कट पल्लवों (पर्वत की समीपवर्ती तलैयों) में, तटों में, अटवी में, टंकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) पर, कूटों पर, शिखरों पर, प्राग्भारों पर, मंचों पर, बगीचों में, काननों में, वनों में, वनखण्डों में, वनराजियों में, नदियों में, नदी कच्छों में (नदी के समीपवर्ती वनों में) यूथों में, संगमों पर, बावड़ियों में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (वक्र बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवर की पंक्तियों में, सर-सर-पंक्तियों

पंतियासु य वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लव-पउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेणं विहरसि।

(एक तालाब से दूसरे तालाब में पानी जाने के लिये मार्ग बना हो, ऐसे सरोवरों की पंक्तियों) में, वनचरों द्वारा विचरण करने की छूट जिसे दी गई हो ऐसे तुम बहुत से हाथियों और-यावत-कलभियों से परिवृत होकर विविध प्रकार के तरुपल्लवों, पानी और घास का उपभोग करते हुए निर्भय और उद्वेग रहित होकर सुखपूर्वक विचरण करते थे।

३५५. "तए णं तुमं मेहा—अण्णया कयाइ पाउस-वरिसारत्त-सरद-हेमंत-वसंतेसु कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं वणदव-जाल-संपलित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु महावाय-वेगेणं संघट्टिएसु छिण्णजालेसु आवयमाणेसु पोल्लरुक्खेसु अंतो-अंतो झियायमाणेसु मय-कुहिय-विणट्ठ-किमिय-कद्दम-नईवियरगज्झीणपाणीयतेसु वणंतेसु भिंगारकदीणकंदिय-रवेसु खरफरुस अणिट्ठ-रिट्ठ-वाहित्त-विद्दुमग्गेसु दुमेसु तण्हावस-मुक्कपक्ख - पायडियजिब्भतालुय - असंपुडियतुंड-पक्खिसंघेसु ससंतेसु गिम्हुम्हउण्हवाय-खरफरुसचंडमारुय-सुक्क-तणपत्तकयवरवाउलि- भमंतदित्तसंभंत - सावयाउल -मिगतण्हाबद्ध-चिंधपट्टेसु गिरिवरेसु संवट्टिइएसु तत्थ-मिय-पसव-सरीसिवेसु अवदालियवयणविवर-निल्लालियग्गजीहे महंततुंबइय-पुण्णकण्णे संकुचिय-थोर-पीवर-करे ऊसिय-नंगूले पीणाइय-विरसरडिय-सद्देणं फोडयंतेव अंबरतलं, पायदद्दरएणं कंपयंतेव मेइणितलं, विणिम्मुयमाणेय सीयारं, सव्वओ समंता वल्लिवियाणाइं छिंदमाणे, रुक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि नोल्लयंते, विणट्ठरट्ठेव्व नरवरिंदे, वायाइद्धेव्व पोए, मंडलवाएव्व परिब्भमंते, अभिक्खणं-अभिक्खणं लिंडनियरं पमुंचमाणे-पमुंचमाणे बहूहिं हत्थीहि य जाव-कलभियाहि य सद्धिं दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

३५५. तत्पश्चात हे मेघ ! किसी एक समय प्रावृट्, वर्षा, शरद, हेमंत, वसंत क्रमशः इन पांच ऋतुओं के व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया, तब ज्येष्ठ मास में वृक्षों की आपस में रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तों और कचरों से, एवं वायु के वेग से दीप्त हुई महाभयंकर अग्नि से उत्पन्न दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा जिससे दिशायें धुयें से व्याप्त हो गई और प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालायें फूट फूट कर चारों ओर फैलने लगीं। खोखले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे, वन प्रदेशों के नदी नालों का जल मृत कलेवरों से सड़ने लगा, खराब हो गया, उनका कीचड़ कीड़ों वाला हो गया, उनके किनारों का पानी सूख गया, भृंगारक पक्षी, दीनतापूर्वक आक्रन्दन करने लगे, उत्तम वृक्षों पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द करने लगे, उन वृक्षों के अग्र भाग अग्नि कणों के कारण मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे, प्यास से पीड़ित होकर पक्षियों के समूह पंख ढीले करके जिह्वा और तालु को प्रगट करके और मुंह फाड़कर सांसें लेने लगे, ग्रीष्मकाल की उष्णता, सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एवं प्रचण्ड वायु एवं सूखे घास, पत्ते और कचरे से युक्त बवंडर के कारण भाग-दौड़ करने वाले, भयभीत सिंह आदि श्वापदों के कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल व्याकुल हो उठा, ऐसा प्रतीत होता था मानों उन पर्वतों पर मृग तृष्णा रूप पट्टबंध—पताका—बंधा हो, त्रसित हुए मृग, पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़फने लगे, इस भयानक अवसर पर उस सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख विवर फट गया, जिह्वा का अग्र भाग बाहर निकल आया, बड़े-बड़े दोनों कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए, बड़ी और मोटी सूंड़ सुकड़ गई, उसने पूंछ ऊंची करली और गर्व से विरस अरांट भरी चित्कार से आकाश तल को व्याप्त करता हुआ सा, पैरों के अघात से पृथ्वी तल को कंपित करता हुआ सा, सीत्कार करता हुआ चारों ओर सर्वत्र वेलों के समूह को रौंदता हुआ, हजारों वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से भटकते हुए जहाज के समान, और बवंडर के समान, इधर-उधर भ्रमण करता हुआ बार-बार लीद करता हुआ बहुत से हाथियों, हथिनियों-यावत-कलभिकाओं के साथ दिशाओं और विदिशाओं में इधर-उधर भाग- दौड़ करने लगा।

"तत्थ णं तुमं मेहा ! जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे आउरे झंझिए पिवासिए दुब्बले किलंते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापरद्धे उण्हेण य तण्हाए य छुहाए य परब्भाहए समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सव्वओ समंता आधावमाणे परिधावमाणे एगं च णं महं सरं अप्पोदगं पंकबहुलं अतित्थेणं पाणियपाए ओइण्णे।

'हे मेघ ! तुम वहाँ जीर्ण, जरा से जर्जरित देहवाले, व्याकुल भूखे, प्यासे, दुर्बल, क्लांत, बहरे और दिङ्मूढ़ होकर अपने यूथ से बिछुड़ गये, वन के दावानल की ज्वालाओं से पराभूत हुए, गर्मी, प्यास और भूख से पीड़ित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए, उद्‌विग्न हुए, तुम्हें पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया, जिससे तुम इधर-उधर दौड़ने लगे, खूब दौड़ने लगे तब अल्पजल और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा सरोवर दिखा जिसमें पानी पीने के लिये बिना घाट के तुम उतर गये।

"तत्थ णं तुमं मेहा ! तीरमइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयंसि विसण्णे।

'हे मेघ ! वहाँ तुम किनारे से तो दूर चले गये परन्तु पानी तक न पहुँच सके और बीच में ही कीचड़ में फंस गये।

"तत्थं णं तुमं मेहा ! पाणियं पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थं पसारेसि। से वि य ते हत्थे उदगं न पावइ। तए णं तुमं मेहा ! पुणरवि कायं पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतरायं पंकंसि खुत्ते।

हे मेघ ! वहाँ तुमने 'मैं पानी पिऊं' ऐसा सोचकर अपनी सूंड फैलाई, परन्तु तुम्हारी सूंड भी पानी न पा सकी। तब हे मेघ ! तुमने पुनः 'शरीर बाहर निकालूं' ऐसा विचार कर जोर लगाया तो कीचड़ में और गहरे फंस गये।

"तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ एगे चिरनिज्जूढए गयवरजुवाणए सगाओ जूहाओ कर-चरण-दंत-मुसलप्पहारेहिं विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयपाए समोयरइ। तए णं से कलभए तुमं पासइ, पासित्ता तं पुव्ववेरं सुमरइ, सुमरित्ता आसुरत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुमं तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ, उच्छुभित्ता पुव्वं वेरं निज्जाएइ, निज्जाएत्ता हट्ठतुट्ठे पाणीयं पियइ, पिवित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

'तत्पश्चात हे मेघ ! किसी दूसरे समय तुमने एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को अपनी सूंड, पैर और दांत रूपी मूसलों से प्रहार करके मारा था और अपने यूथ से बहुत समय पूर्व बाहर निकाल दिया था। वह हाथी भी पानी पीने के लिये उसी महाद्रह में उतरा तब उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा, देखकर उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया, स्मरण करके क्रोधाभिभूत हो-यावत्-दांत मिसमिसाते हुए जहां तुम थे, वहां आया, आकर तीक्ष्ण दांत रूपी मूसलों से तीन बार तुम्हारी पीठ बींध दी और बींधकर पूर्व वैर का बदला लिया, बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर पानी पीया, पानी पीकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस लौट गया।

"तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भवित्था-उज्जला-जाव-दुरहियासा। पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरित्था।

'तत्पश्चात हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई, जिससे तुम्हें तनिक भी चैन नहीं था-यावत्-दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह भी उत्पन्न हो गया।

भगवया मेरुप्पभ-भवनिरूवणं—

३५६. "तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं-जाव-दुरहियासं सत्तराइंदियवेयणं वेदेसि, सवीसं वाससयं परमाउयं पालइत्ता अट्टदुहट्ट-वसट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गंगाए महानईए दाहिणे कूले विंझगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहत्थिणा एगाए गयवर-करेणूए कुच्छिंसि गयकलभए जणिए।

भगवान द्वारा मेरुप्रभ-भव निरूपण

३५६. 'तत्पश्चात हे मेघ ! तुम उस बेचैन कर देने वाली-यावत्-दुस्सह वेदना को सात दिन-रात तक भोगकर एक सौ बीस वर्ष की आयु भोगकर दुर्द्धर्ष आर्तध्यान के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए, मृत्यु के समय काल मरण करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भारत में गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विन्ध्यगिरि की तलहटी में एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गंध हस्ती से एक श्रेष्ठ हथिनी की कुक्षि में हाथी के बच्चे के रूप में उत्पन्न हुए।

"तए णं सा गयकलभिया नवण्हं मासाणं वसंतमासंसि तुमं पयाया।

तत्पश्चात उस हथिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर बसंत मास में तुम्हें जन्म दिया।

"तए णं तुमं मेहा ! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था—रत्तुप्पल-रत्तसूमालए जासुमणाऽऽरत्तपालियत्तय-लक्खारस-सरसकुंकुमसंझब्भरागवण्णे, इट्ठे नियगस्स जूहवइणो गणियायार-करेणु-कोत्थ-हत्थी अणेगहत्थिसयसंपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि।

'तत्पश्चात हे मेघ ! तुम गर्भावास से मुक्त होकर गजकलभ (छोटे हाथी) भी हो गये—लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए, जपा कुसुम, रक्त वर्ण के पारिजात नामक वृक्ष के समान, लाख के रस, सरस कुंकुम और सांध्यकालीन बादलों के रंग के समान रक्तवर्ण हुए, अपने यूथपति को प्रिय हुए, गणिकाओं के समान युवती हथिनियों के उदर प्रदेश में अपनी सूंड डालते हुए काम-क्रीड़ा में तत्पर रहने लगे और इस प्रकार सैकड़ों हाथियों से परिवृत्त होकर पर्वत के रमणीय काननों में सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

"तए णं तुमं मेहा ! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जसि।

'तत्पश्चात हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था को प्राप्त हुए और यूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर तुम स्वयं ही उस यूथ का वहन करने लगे—अर्थात् यूथपति हो गये।

"तए णं तुमं मेहा ! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे सत्तुस्सेहे-जाव-पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निरुवहय-विंसतिनहे चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा ! सत्तंगपइट्ठिए तहेव-जाव-पडिरूवे।

'उसके बाद हे मेघ ! तुम सात हाथ ऊंचे-यावत-श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत बीस नखों और चार दंत वाले मेरुप्रभ नामक हस्तिरत्न हुए। 'हे मेघ तुम सातों अंगों से भूमि का स्पर्श करने वाले-यावत-सुन्दर रूप वाले हुए।

तत्थ णं तुमं मेहा ! सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्चं-जाव-कारेमाणे पालेमाणे अभिरमेत्था।

हे मेघ ! वहाँ तुम सात सौ हाथियों के यूथ का अधिपतित्व-यावत-करते हुए, पालन करते हुए अभिरमण करने लगे।

३५७. "तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकारेणं हुयवहेणं वणदव-जाला-पलित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु-जाव-मंडलवाएव्व परिब्भमंते भीए-जाव-संजायभए बहूहिं हत्थीहि य-जाव-संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

३५७. 'तत्पश्चात अन्यदा किसी समय ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास में वृक्षों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न और शुष्क घास, पत्र और कूड़े कचरे एवं वायु के संयोग से दीप्त महाभयंकर अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा, दिशायें धुयें से व्याप्त हो गईं-यावत-बवंडर के समान इधर-उधर भ्रमण करते हुए, भयभीत-यावत् भय पैदा हो जाने के कारण बहुत से हाथियों और-यावत-परिवृत्त होकर दिशाओं और विदिशाओं में सर्वत्र इधर उधर दौड़ भाग करने लगे।

"तए णं तव मेहा ! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—'कहि णं मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसंभमे अणुभूयपुव्वे ?'

'हे मेघ ! तब उस वन के दावानल को देखकर तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-संकल्प उत्पन्न हुआ—'मालुम होता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति पहले भी मैंने कभी अनुभव की है ?'

"तए णं तव मेहा ! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं अज्झवसाणेणं सोहणेणं सुभेणं परिणामेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाईसरणे समुप्पज्जित्था।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! विशुद्ध लेश्याओं, शुभ अध्यवसायों, शुभ परिणामों और तदावरण कर्मो का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषण करते हुए तुम्हें संज्ञी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

"तए णं तुमं मेहा ! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि—एवं खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे वेयड्ढ-गिरिपायमूले जाव सुमेरुप्पभे नाम हत्थिराया होत्था। तत्थ णं मया अयमेयारूवे अग्गिसंभमे समणुभूए।

"तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकाल-समयंसि नियएणं जूहेणं सद्धिं समण्णागए यावि होत्था।

तए णं तुमं मेहा ! सत्तुस्सेहे-जाव-सन्निजाइसरणे चउदंते मेरुप्पभे नामं हत्थी होत्था।

मेरुप्पभेण मंडलनिम्माणं—

३५८. "तए णं तुज्झं मेहा ! अयमेयारुवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—सेयं खलु मम इयाणिं गंगाए महानईए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विंझगिरिपायमूले दवग्गिसंताणकारणट्ठा सएणं जूहेणं महइमहालयं मंडलं घाइत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता सुहंसुहेणं विहरसि।

"तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ पढमपाउसंसि महा-वुट्ठिकायंसि सन्निवयंसि गंगाए महानईए अदूरसामंते बहूहिं हत्थीहि य-जाव-कलभियाहि य सत्तहि य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएसि—जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कंटए वा लया वा वल्ली वा खाणुं वा रुक्खे वा खुवे वा, तं सव्वं तिक्खुत्तो आहुणिय-आहुणिय पाएणं उट्ठवेसि, हत्थेणं गिण्हसि, एगंते एडेसि।

"तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरिपायमूले गिरीसु य-जाव-सुहंसुहेणं विहरसि।

"तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ मज्झिमए वरिसार-त्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवा-गच्छसि, उवागच्छित्ता दोच्चं पि मंडलघायं करेसि। "एवं—चरिमवरिसारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवयमाणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तच्चं पि मंडलघायं करेसि-जाव-सुहंसुहेणं विहरसि।

दवग्गिभीतसावयाणं मेरुप्पभस्स य मंडलपवेसो—

३५९. "अह मेहा ! तुमं गइंदभावम्मि वट्टमाणो कमेणं नलिणिवण-विहवणगरे हेमंते कुंदलोद्धउद्धततुसारपउरम्मि अतिक्कंते अहिणवे

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि—निश्चय ही मैं अतीत दूसरे भव में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में वैताढ्यगिरि की तलहटी में-यावत-सुमेरुप्रभ नामक हस्तिराजा था। वहाँ मैंने इस प्रकार के अग्नि संभ्रम—भय का अनुभव किया है।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम उस दिन के अंतिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ रहते हुए विचरण करते थे।

'हे मेघ ! उसके बाद सात हाथ ऊँचे-यावत-जातिस्मरण ज्ञान से युक्त चार दांत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए।

मेरूप्रभ द्वारा मंडल निर्माण—

३५८. 'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-संकल्प उत्पन्न हुआ—मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर विंध्य पर्वत की तलहटी में दावाग्नि से रक्षा करने के लिये अपने यूथ के साथ एक बड़ा मंडल बनाऊँ—इस प्रकार विचार करके तुम सुखपूर्वक विचरने लगे।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने किसी एक बार प्रथम वर्षाकाल में खूब वर्षा होने पर गंगा महानदी के समीप बहुत से हाथियों-यावत-कलभिकाओं आदि सात सौ हाथियों से परिवृत्त होकर एक योजन परिमित बड़े घेरे वाला अत्यन्त विशाल मंडल बनाया-उस मंडल में जो कुछ भी घास, पत्ते, काष्ट, कांटे, लता, बेला, ठूँठ, वृक्ष, या पौधे आदि थे उन सब को तीन बार हिला हिलाकर पैरों से उखाड़ा, सूंड से पकड़ा और एक ओर ले जाकर फैंक दिया।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम मंडल के सन्निकट गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे विंध्याचल के पाद मूल में, पर्वत-यावत-पूर्वोक्त स्थानों में सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होने पर जहाँ मण्डल था तुम उस स्थान पर आये, आकर दूसरी बार उस मण्डल को ठीक तरह से साफ किया। इसी प्रकार अन्तिम वर्षा ऋतु में घोर वृष्टि होने पर जहाँ मण्डल था, वहाँ आये, वहाँ आकर तीसरी बार भी उस मण्डल को साफ किया-यावत-सुखपूर्वक विचरण करने लगे।

दवाग्नि भीत श्वापदों और मेरुप्रभ का मंडल-प्रवेश—

३५९. इसके बाद हे मेघ ! जब तुम उस गजेन्द्र पर्याय में थे [illegible] अनुक्रम से कमलिनियों के वन का विनाश करने वाला, कुन्द और लोध्र के पुष्पों की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिम वाला

गिम्हसमयंसि पत्ते वियट्टमाणेसु वणेसु वणकरेणुविविहदिण्णकय-पंसुघाओ तुमं उउयकुसुमकयचामरकन्नपूरपरिमंडियाभिरामो मयवसविगसंतकडतडकिलिन्नगंधमदवारिणा सुरभिजणियगंधो करेणुपरिवारिओ उउसमत्तजणियसोभो काले दिणयरकरपयंडे परिसोसियतरुवरसिहरभीमतरदंसणिज्जे भिंगाररवंतभेरवरवे णाणाविहपत्तकट्ठतणकयवरुद्धतपइमारुयाइद्धनहयलदुमगणे वाउलियादारुणतरे तण्हावसदोसदूसियभमंतविविहसावयसमाउले भीमदरिसणिज्जे वट्टंते दारुणम्मि गिम्हे मारुतवसपसरपसरियवियंभिएणं अब्भहियभीमभेरवरवप्पगारेणं महुधारापडियसित्तउद्धायमाणधगधगंतसद्दुद्धुएणं दित्ततरसफुलिंगेणं धूममालाउलेणं सावयसयंतकरणेणं अब्भहियवणदवेणं जालालोवियनिरुद्धधूमंधकार भीयो आयाव लोयमहंततुंबइयपुन्नकन्नो आकुंचियथोरपीवरकरो भयवसभयंतदित्तनयणो वेगेण महामेहो व्व पवणोल्लियमहल्लरूवो जेणेव कओ ते पुरा दवग्गिभयभीयहियएणं अवगयतणप्पएसरुक्खो रुक्खोद्देसो दवग्गिसंताणकारणट्ठाए जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्य गमणाए, एक्को ताव एस गमो।

हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गई और अभिनव ग्रीष्म काल प्राप्त हुआ तब वन में क्रीड़ा करते समय वन की हथिनियां तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार के कमलों और पुष्पों का प्रहार करती थीं, तुम उस ऋतु में उत्पन्न पुष्पों से निर्मित चामर जैसे कर्ण के आभूषणों से मंडित और मनोहर दिखते थे, मद के कारण विकसित गंडस्थलों को आर्द्र करने वाले झरते हुए सुगन्धित मद जल से तुम सुगंधमय बन गये थे, हथिनियां से घिरे रहते थे, इस प्रकार सब तरह से ऋतु सम्बन्धी शोभा उत्पन्न हुई थी, उस ग्रीष्म काल में सूर्य की प्रखर किरणें गिर रही थी, ग्रीष्म ऋतु के कारण श्रेष्ठ वृक्षों के शिखर अत्यन्त शुष्क हो गये थे, जिससे वे बड़े भयंकर प्रतीत होते थे, भृंगार पक्षी भयानक शब्द करते थे, पत्र, काष्ठ, तृण और कचरे को उड़ाने वाले प्रतिकूल पवन से सारा भूमण्डल व्याप्त हो गया था और बवंडरों के कारण भयावह दीख पड़ता था, प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषों से दूषित और इधर उधर भटकते हुए श्वापदों (हिंसक पशुओं) से व्याप्त था, देखने में भयानक ऐसा वह ग्रीष्मकाल उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया। वह दावानल वायु के कारण विस्तार से फैला हुआ और विकसित हुआ था, उसके शब्दों की ध्वनि अत्यधिक भयंकर थी, वृक्षों से गिरने वाले मधु की धाराओं से सिंचित होने के कारण वह अत्यन्त वृद्धिगत हुआ था, धधक रहा था और उद्धत था, वह अत्यन्त देदीप्यमान, चिनगारियों के युक्त और धूम पंक्ति से व्याप्त था, सैंकड़ों श्वापदों के प्राणों का अन्त करने वाला था इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त भयंकर दिखाई देती है। तब हे मेघ ! तुम उस दावानल की ज्वालाओं से आच्छादित हो गये, रुक गये अर्थात् इच्छानुसार जाने में असमर्थ हो गये, धुयें के कारण उत्पन्न हुए अंधकार से भयभीत हो गये, अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनों कान अरघट के तुम्ब के समान स्तब्ध रह गये, तुम्हारी मोटी और बड़ी सूंड सुकड़ गई, तुम्हारे चमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर-उधर फिरने देखने लगे, जैसे वायु के वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा, पूर्वजन्म के दावानल के भय से भीत हृदय वाले होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिये जिस दिशा में तृण, वृक्ष आदि हटाकर साफ प्रदेश बनाया था और जिधर वह मंडल बनाया था, उधर ही तुमने जाने का निश्चय किया ! यह एक गम है—आचार्यान्तर के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है।

"तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायव-घंससमुट्ठिएणं

'तत्पश्चात् हे मेघ ! अन्य किसी समय क्रमशः पाँच ऋतुओं के व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म काल के अवसर पर ज्येष्ठमास

जाव संवट्टिइएसु मियपसुपंखिसरोसिवेसु दिसोविसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य-जाव-कलभियाहि य सद्धिं जेणेव से मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

में वृक्षों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत्-अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि दिशा विदिशा में भाग दौड़ करने लगे तब तुम बहुत से हाथियों-यावत्-कलभिकाओं के साथ जहाँ वह मंडल था, वहाँ जाने के लिये दौड़ पड़े।

"तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य वग्घा य विगा य दीविया य अच्छा य तरच्छा य परासरा य सरभा य सियाला य विराला य सुणहा य कोला य ससा य कोकंतिया य चिता य चिल्लला य पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठन्ति।

'उस मंडल में और भी बहुत से सिंह, बाघ, भेड़िया, द्वीपिक (चीता), रीछ, तरच्छ, पारासर, शृगाल, बिडाल, श्वान, शूकर, खरगोश, लोमड़ी, चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से पराभूत होकर पहले ही आ चुके थे और एक साथ बिलधर्म से रहे हुए थे—अर्थात् जैसे एक बिल में सैंकड़ों कीड़े-मकोड़े ठसाठस भरे रहते हैं उसी प्रकार उस मंडल में भी पूर्वोक्त श्वापद ठसाठस भरे हुए थे।

"तए णं तुमं मेहा! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहूहिं सीहेहि य-जाव-चिल्ललेहि य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि।

तत्पश्चात हे मेघ! जहाँ मंडल था, वहाँ तुम आये और आकर उन बहुत से सिंह-यावत्-चिल्लल आदि के साथ एक स्थान पर बिलधर्म से ठहर गये।

मेरुप्पभस्स पादुक्खेवे—

३६०. "तए णं तुमे मेहा! पाएणं गत्तं कंडुइस्सामी त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते। तंसि च णं अंतरंसि अण्णेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे-पणोलिज्जमाणे ससए अणुप्पविट्ठे।

मेरुप्रभ का पादोत्क्षेप—

३६०. तत्पश्चात हे मेघ! 'पैर से शरीर को खुजा लूं' ऐसा सोच कर तुमने एक पैर ऊपर उठाया, उसी समय उस खाली हुई जगह में अन्य बलवान प्रणियों द्वारा भगाया-धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया अर्थात् उस खाली स्थान पर एक खरगोश आकर बैठ गया।

"तए णं तुमे मेहा! गायं कंडूइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खेविस्सामि त्ति कट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पाससि, पासित्ता पाणाणुकंपाए-जाव-सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निक्खित्ते।

'उसके बाद हे मेघ! शरीर को खुजलाकर तुमने सोचा कि मैं पैर नीचे रखूं, परन्तु पैर की जगह में उस शशक को घुसा हुआ देखा, देखकर प्राणानुकंपा-से-यावत्-सत्वानुकंपा से वह पैर अधर ही रखा, नीचे नहीं रखा।

३६१. "तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए-जाव-सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे।

३६१. 'हे मेघ! तब उस प्राणानुकंपा-यावत्-सत्वानुकंपा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बंध किया।

तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए उवरए उवसंते विज्झाए यावि होत्था।

तत्पश्चात् वह दावानल ढाई दिन रात पर्यन्त उस वन को जलाता रहा, जलाकर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, शांत हो गया, और बुझ गया।

तए णं ते बहवे सीहा य-जाव-चिल्लला य तं वणदवं निट्ठियं उवरयं उवसंतं विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता सव्वओ समंता विप्पसरित्था।

तब उन बहुत से सिंह-यावत्-चिल्लल आदि प्राणियों ने उस दावानल को पूर्ण हुआ-समाप्त हुआ, उपरत, उपशान्त और बुझा हुआ देखा, देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए और प्यास एवं भूख से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले, निकलकर चारों ओर फैल गये।

तए णं ते बहवे हत्थी य-जाव-कलभिया य तं वणदवं निट्ठियं उवरयं उवसंतं विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता दिसोदिसिं विप्पसरित्था।

तब वे बहुत से हाथी-यावत्-कलभिका आदि ने उस वनदव को समाप्त, उपरत, उपशान्त और बुझा हुआ देखा, देखकर अग्नि भय से मुक्त हुए और भूख-प्यास से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले और निकल कर दिशा विदिशा में फैल गये।

"तए णं तुमं मेहा ! जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे सिढिलवलि-तय-पिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणो वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरि-पब्भारे धरणि तलंसि सव्वंगेहि सण्णिवइए ।

'हे मेघ ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से जर्जरित शरीर वाले शिथिल और सलों वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल थके हुए, भूखे-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, निर्बल सामर्थ्य रहित, चलने फिरने की शक्ति से रहित और ठूंठ की तरह अकड़े से हो गये, 'मैं वेग से चलूं' ऐसा विचार कर ज्यों ही चलने के लिये पैर पसारा कि विद्युत से आघात पाये हुए रजत गिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े ।

"तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया—उज्जला-जाव-दुरहियासा । पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरसि ।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई जो उज्जला—बेचैनी पैदा करने वाली उत्कृष्ट-यावत्-दुस्सह थी । शरीर में पित्त ज्वर के व्याप्त हो जाने से दाहज्वर भी उत्पन्न हो गया ।

मेहभवो तत्थ य तितिक्खोवदेसो—

३६२. "तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं-जाव-दुरहियासं तिण्णि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं 'परमाउं' पाल-इत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिसि कुमारत्ताए पच्चायाए ।

तए णं तुमं मेहा ! आणुपुव्वेणं गब्भवासाओ निक्खंते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

"तं जइ ताव तुमे मेहा ! तिरिक्खजोणियभावमुवगएणं अपडिलद्ध-सम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए-जाव-सत्ताणु-कंपयाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निक्खित्ते । किमंग पुण तुमं मेहा ! इयाणिं विपुलकुलसमुब्भवे णं निरुवहयसरीर-दंतलद्ध-पंचिंदिए णं एवं उट्ठाण-बल-वीरिय-पुरिसगार-परक्कमसंजुत्ते णं मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए-जाव-धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइ-गच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणि य-जाव-रय-रेणु-गुंडणाणि य नो सम्मं सहसि खमसि तितिक्खसि अहियासेसि ?"

मेघभव और उसमें तितिक्षोपदेश—

३६२. 'हे मेघ ! तत्पश्चात् तुम उस उत्कट-यावत्-दुस्सह वेदना को तीन रात-दिन तक भोगते रहे अंत में एक सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में राजगृह नगर में श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कुक्षि में कुमार रूप में उत्पन्न हुए ।

'तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भावास से निकलकर बाल्यावस्था का अतिक्रमण कर युवावस्था को प्राप्त होने पर मेरे पास मुण्डित हो, गृहवास त्याग अनगारिकत्व में प्रव्रजित-दीक्षित हुए हो ।

'तो हे मेघ ! जब तुम तिर्यंच योनिरूप पर्याय को प्राप्त थे और जब तुम्हें सम्यक्त्व रत्न का लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ था उस समय भी प्राणानुकंपा-यावत्-सत्वानुकंपा से प्रेरित होकर पैर को अधर ही रखा, नीचे नहीं टिकाया था तो फिर हे मेघ ! इस जन्म में तो तुम विशाल कुल में जन्मे हो, तुम्हें उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है, प्राप्त हुई पांचों इन्द्रियों का तुमने दमन किया है और उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम से युक्त हो और मेरे पास मुंडित हो, गेही से अगेही बने हो तब श्रमण निर्ग्रंथों के पहली और पिछली रात्रि के समय वाचना-यावत्-धर्मानुयोग के चिन्तन के लिये, उच्चार प्रस्रवण के लिये आते-जाते समय तुम्हें जो उनके हाथ का स्पर्श हुआ-यावत्-धूलिकणों के तुम्हारा शरीर भर गया उसे तुम सम्यक् प्रकार से सहन नहीं कर सके, बिना क्षोभ के सहन नहीं कर सके, तितिक्षा भाव नहीं रख सके, और शरीर को निश्चल रखकर सहन नहीं कर सके ?

मेहस्स जाईसरणं—

३६३. तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स समणस्से भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहिं परिणामेहिं-जाव-पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहि विसुज्झमाणेहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णि-पुव्वे जाईसरणे समुप्पण्णे, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ।

मेघ को जातिस्मरण—

३६३. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर से यह वृत्तान्त सुन समझ-कर शुभ परिणामों-यावत्-प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए मेघकुमार श्रमण को संज्ञी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे उसने अपना वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया।

मेहस्स पुणो पव्वज्जा—

३६४. तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय पुव्वजातिसंभरणे दुगुणाणीयसंवेगे आणंदअंसुपुण्णमुहे हरिसवस-विसप्पमाणहियए धाराहयकलंबकं पिव समूससियरोमकूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"अज्जप्पभिती णं भंते ! मम दो अच्छीणि मोत्तूणं अवसेसे काए समणाणं निग्गंथाणं निसट्ठे त्ति कट्टु पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! इयाणिं दोच्चं पि सयमेव पव्वावियं-जाव-सयमेव आयार-गोयरं जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं।"

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ-जाव-जाया मायावत्तियं धम्ममाइक्खइ "एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणाणं-जाव-सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं।"

तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह गच्छइ-जाव-संजमेणं संजमइ।

मेघ की पुनः प्रव्रज्या—

३६४. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्ववृत्तान्त स्मरण करा दिये जाने के कारण मेघकुमार का संवेग दुगुना हो गया, उसका मुख आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गया, हर्ष के कारण विकसित हृदय वाला हो गया, मेघधारा से आहत कदम्ब पुष्प की भांति उसका रोम-रोम खिल गया, उसने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त ! दोनों नेत्रों को छोड़कर आज से मेरा शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये समर्पित है'—इस प्रकार कहकर मेघकुमार पुनः श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

भगवन् ! मेरी इच्छा—भावना है कि अब आप स्वयं ही दूसरी बार मुझे प्रव्रजित करें-यावत् स्वयं ही आचार, गोचर, संयम यात्रा और मात्रा-प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना आदि रूप श्रमण धर्म का उपदेश प्रदान करें।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव प्रव्रजित—दीक्षित किया-यावत्-यात्रा-मात्रा रूप धर्म का उपदेश दिया कि—'हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करना चाहिये, इस प्रकार निर्दोष आहार की गवेषणा करना और खाना चाहिए, इस प्रकार बोलना चाहिये, सावधान रहकर प्राणों-यावत्-सत्वों की रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त होना चाहिये।'

तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है, अंगीकार करके यथारूप प्रवृत्ति-यावत्-संयम में उद्यम करता है।

मेहस्स नियंठचरिया—

३६५. तए णं से मेहे अणगारे जाए-इरियासमिए-जाव-इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरति।

मेघ की निर्ग्रन्थ चर्या

३६५. तत्पश्चात् मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए-यावत्-इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को सामने रखकर विचरते हैं, निर्ग्रन्थचर्यानुसार विचरते हैं।

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥

तत्पश्चात् उन मेघ मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविर मुनियों से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन करके बहुत से षष्ठ, अष्ठ, दशम, द्वादश भक्त आदि तथा मास अर्धमास क्षमण आदि की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

महावीरस्स रायगिहाओ बहिया जणवयविहारो—

३६६. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नयराओ गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

महावीर का राजगृह से बाह्यजनपद विहार—

३६६. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर से गुणशिलक चैत्य से निकले, निकलकर बाहर जनपदों में विचरने लगे।

मेहस्स भिक्खुपडिमा—

३६७. तए णं से मेहे अणगारे अण्णया कयाइ समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तए णं से मेहे अणगारे समणेणं अब्भणुण्णाए भगवया महावीरेणं समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेइ-जाव-किट्टेइ, सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंसज्जित्ता णं विहरित्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए पंचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइंदियाए दोच्चसत्तराइंदियाए तच्चसत्तराइंदियाए आहोराइंयाए वि एगराइयाए वि।

मेघ की भिक्षु प्रतिमा—

३६७. तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी अन्य समय श्रमण भगवान महावीर की वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'भगवन् ! आपकी अनुमति लेकर मैं एक मास की मर्यादा वाली भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार करना चाहता हूँ।'

'देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो'—भगवान ने कहा।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा अनुमति प्राप्त किये हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे।

यथासूत्र, यथाकल्प और यथामार्ग मासिक प्रतिमा को सम्यक् प्रकार काय से ग्रहण किया-यावत्-आराधना की, इस प्रकार सम्यक् प्रकार से काया से ग्रहण करके-यावत्-आराधना करके पुनः श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दूसरी द्विमासिक भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ।'

भगवान ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबंध मत करो।'

जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाँचवी पांच मास की, छठी छह मास की, सातवीं सात मास की फिर पहली अर्थात् आठवीं सात अहोरात्रि की, दूसरी अर्थात् नौंवी सात अहोरात्रि की, तीसरी अर्थात् दसवीं सात अहोरात्रि की और ग्यारहवीं एवं बारहवीं एक एक अहोरात्रि की कहना चाहिये।

मेहस्स गुणरयणसंवच्छरतवो—

३६८. तए णं से मेहे अणगारे बारस भिक्खुपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं[1] उवसंपज्जित्ता णं विहारत्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"........

तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेइ-जाव-किट्टेइ अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

मेहस्स सरीरदसा—

३६९. तए णं से मेहे अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारेणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मंसे निस्सोणिए किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था—जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ। से जहानामए इंगालसगडिया इ वा कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा तिलसगडिया इ वा एरंडकट्ठसगडिया इ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेण, अवचिए मंससोणिएणं, हुयासणे इव भासरासिपरिच्छन्ने तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

मेघ का गुणरत्न संवत्सर तप—

३६८. तत्पश्चात् मेघ अनगार ने बारहों भिक्षु प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से काय से अंगीकार करके-यावत्-आराधना करके पुनः वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्न संवत्सर तपःकर्म अंगीकार करके विचरण करना चाहता हूं।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, किन्तु विलंब मत करो।'—भगवान ने कहा।

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तपःकर्म का यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग सम्यक् प्रकार से काय द्वारा ग्रहण किया-यावत्-कीर्तित किया और सूत्र, कल्प और मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय द्वारा ग्रहण करके-यावत्-कीर्तन करके श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके बहुत से षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त आदि तथा अर्धमास एवं मास खमण आदि विचित्र तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

मेघ की शरीर दशा—

३६९. तत्पश्चात् वे मेघ अनगार उस उराल-प्रधान, विपुल, सश्रीक, शोभा संपन्न, प्रदत्त, प्रग्रहीत—बहुमानपूर्वक ग्रहण किया गया, कल्याणकारी, शिव, धन्य, मंगल, उदग्र, तीव्र, उदार, उत्तम, महान प्रभाव वाले तपःकर्म से शुष्क, रूक्ष, मांस रहित और हाड़ किड़किड़ाने वाले जैसे हो गये, अस्थि पंजर चमड़ी से मढ़ा रह गया, शरीर कृश और नसों से व्याप्त हो गया अर्थात् एक एक नस दिखलाई देने लगी। इसके अतिरिक्त इतने कमजोर हो गये कि अपने जीव के बल से (आत्मशक्ति से) ही चलते और जीव के बल से ही खड़े हो पाते थे, भाषा बोलकर थक जाते थे, बात करते-करते थक जाते थे, यहां तक कि 'मैं बोलूंगा' ऐसा विचार करते ही थक जाते थे। जैसे धूप में डालकर सुखाई गई कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, तिल के डंठलों से भरी गाड़ी हो, अथवा एरंड के काष्ठों से भरी गाड़ी हो तो वह गाड़ी खड़खड़ाहट करती हुई चलती है, आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार भी हाड़ों की खड़खड़ाहट के साथ चलते थे, खड़खड़ाहट के साथ खड़े होते थे, तप से तो उपचित थे, अर्थात् तप से तो बढ़े-चढ़े—वृद्धि प्राप्त थे, किन्तु मांस और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गये थे, राख के ढेर से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे, तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव अतीव शोभायमान हो रहे थे।

मेहस्स विपुलपव्वए अणसणं—

३७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे-जाव-पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं-जाव-तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मंसे किडिकिडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था—जीवंजीवेणं गच्छामि-जाव-भासं भासिस्सामि त्ति गिलामि। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे,-जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसण्णिगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

मेघ का विपुल पर्वत पर अनशन—

३७०. उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले श्रमण भगवान महावीर-यावत्-अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम गमन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, जहां गुणशिलक चैत्य था वहां आये, आकर यथोचित अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं।

तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को पूर्व और उत्तर रात्रि की संधि-वेला में अर्थात् मध्य रात्रि में धर्मजागरणा में जागरणा करते हुए इस प्रकार का यह अध्यवसाय-यावत्-उत्पन्न हुआ—इस प्रकार मैं इस उदार-यावत्-तपःकर्म से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, किड़किड़ाहट युक्त हाड़ों वाला, चर्माच्छादित अस्थि पंजर वाला, कृश और नसा जाल मात्र रह गया हूँ—अपनी आत्मशक्ति से चलता हूँ-यावत्-'मैं बोलूंगा' यह विचार करने मात्र से भी थक जाता हूँ। इसलिये अभी तो मुझ में उठने की शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है-यावत्-मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेष्टा श्रमण भगवान महावीर जिनेश्वर गंध-हस्ती के समान विचरण कर रहे हैं तब तक कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रगट होने पर-यावत्-जाज्वल्यमान तेज के साथ दिनकर सहस्त्ररश्मि सूर्य के उदित होने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा लेकर स्वयं ही पाँच महाव्रतों को पुनः अंगीकार करके गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों तथा निर्ग्रंथियों से क्षमा याचना कर तथा-रूपधारी एवं योगवहन आदि क्रियायें जिन्होंने की हैं, ऐसे स्थविरों के साथ शनैः शनैः विपुलाचल पर्वत पर आरोहण करके स्वयं ही सघन मेघ के सदृश पृथ्वी शिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना को प्रीतिपूर्वक स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, पादोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विचरण करूं, यह मेरे लिये श्रेयस्कर होगा, इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिणमित होने पर-यावत्-जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्त्ररश्मि सूर्य के उदित होने पर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर यथायोग्य स्थान पर रहकर शुश्रूषा-सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए, नतमस्तक हो विनयपूर्वक अंजलि करके उपासना करने लगे—बैठ गये।

३७१. 'मेहा' इ समणे भगवं महावीरे अणगारं एवं वयासी—

"से नूणं तव मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं सुक्के-जाव-संकप्पे अहं तेणेव हव्वमागए।

"से नूणं मेहा ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता, अत्थि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

३७१. 'हे मेघ ! इस प्रकार संबोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने मेघ अनगार से इस प्रकार कहा—

'निश्चय ही हे मेघ ! पूर्व-उत्तर रात्रिकाल में-मध्य रात्रि में, धर्म जागरिका में, जागरण करते हुए तुम्हें इस प्रकार का यह अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम तुरन्त आये हो ?'

'हे मेघ ! क्या यह अर्थ समर्थ है ? अर्थात् यह बात सत्य है ?

'हाँ यह अर्थ समर्थ है।' मेघ ने कहा।

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलंब मत करो।' भगवान ने कहा।

३७२. तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता गोयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेइ, खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसण्णिगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

३७२. तत्पश्चात् वे मेघ अनगार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-हर्षित विकसित हृदय वाले हुए और स्थान से उठे, उठकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके स्वयं ही पंचमहाव्रतों का उच्चारण किया, उच्चारण करके गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थनियों से क्षमा याचना की, क्षमा-याचना करके तथारूप (चारित्र संपन्न) एवं योग वहन आदि किए हुए स्थविर संतों के साथ धीरे-धीरे विपुल नामक पर्वत पर चढ़े, चढ़कर स्वयं ही सघन मेघ सदृश पृथ्वी शिला पट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण-मल-मूत्र त्यागने की भूमिका का प्रतिलेखन किया, प्रतिलेखन करके दर्भसंस्तारक बिछाया, बिछाकर दर्भ के संस्तारक पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर पूर्व दिशा के सम्मुख पर्यंकासन-पद्मासन से बैठकर दोनों हाथ जोड़ और सिर पर आवर्त कर अथवा सिर से स्पर्श कर अंजलि पूर्वक इस प्रकार बोले—

"नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउ-कामस्स मम धम्मायरियस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए- पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं" त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए-जाव-मिच्छादंसणसल्ले - पच्चक्खाए। "इयाणिं पि णं अहं तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि - जाव- मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, सव्वं असण - पाण - खाइम- साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

'अरिहन्त भगवन्तों को-यावत्-सिद्धगति को प्राप्त सिद्धों को नमस्कार हो। श्रमण-यावत्-सिद्धगति को प्राप्त करने के इच्छुक मेरे धर्माचार्य को नमस्कार हो। वहाँ स्थित भगवान को यहाँ स्थित मैं वंदना करता हूँ, वहाँ स्थित भगवान यहाँ स्थित मुझको देखें'—इस प्रकार कहकर वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के निकट समस्त प्राणातिपात का त्याग किया है, यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान किया है। इस समय भी मैं उन्हीं के निकट सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। सभी प्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य चारों प्रकार के आहार का

"जं पि य इमं सरीरं इट्ठं-जाव-विविहा रोगायंका परीस-होवसग्गा फुसंतीति कट्टु एयं पि य णं चरमेहिं ऊसास-नीसासेहिं वोसिरामि" त्ति कट्टु सलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडिया-इक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ और यह शरीर जो इष्ट-यावत्-विविध रोगों एवं आतंकों, परीषहों, उपसर्गों से स्पर्शित रहता है, उसका भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूँ"—इस प्रकार कहकर संलेखना को सप्रेम अंगीकार करके, भक्तपान का त्याग करके पादोपगमन समाधि-मरण ग्रहण कर मृत्यु की कामना न करते हुए विचरण करते हैं।

तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेया-वडियं करेंति।

तब वे स्थविर भगवन्त ग्लानि रहित होकर अग्लान भावपूर्वक मेघ अनगार की वैयावृत्य करते हैं।

मेहस्स समाहिमरणं—

३७३. तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवरिसाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता, आलोइय-पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते अणुपुव्वेणं कालगए।

मेघ का समाधिमरण—

३७३. तत्पश्चात् वे मेघ अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके लगभग बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके एक मास की संलेखना के द्वारा आत्मा में रमण करते हुए साठ भक्तों का छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, शल्यों का उच्छेद करके समाधिपूर्वक अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए।

थेरेहिं मेहस्स आयारभंडसमप्पणं—

३७४. तए णं ते थेरा भगवंतो मेहं अणगारं अणुपुव्वेणं कालगयं पासंति, पासित्ता परिनेव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करेत्ता मेहस्स आयार भंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता विउलाओ पव्वयाओ सणियं सणियं पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए, जेणामेव समणे भगवं महावीरे, तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

स्थविरों द्वारा मेघ के आचार भांडों का समर्पण—

३७४. तत्पश्चात् साथ गये स्थविर भगवन्तों ने मेघ अनगार को क्रमशः कालगत देखा, देखकर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग किया, कायोत्सर्ग करके मेघ अनगार के आचार भांडों-उपकरणों को ग्रहण किया, विपुल पर्वत से धीरे-धीरे नीचे उतरे, उतरकर जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहीं आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे नामं अणगारे पगइ-भद्दए-जाव-विणीए, से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेवमेघघणसण्णि-गासं पुढविसिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भत्तपाणपडियाइक्खिए अणुपुव्वेणं कालगए।

'आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार जो प्रकृति से भद्र-यावत्-विनीत थे वे आप देवानुप्रिय की आज्ञा प्राप्त करके-अनुमति लेकर गौतम आदि निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों से क्षमा याचना कर, हमारे साथ धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढ़े. स्वयं ही सघन मेघ सदृश कृष्ण वर्ण वाली पृथ्वी शिला की प्रतिलेखना की, भक्तपान का प्रत्याख्यान किया, और अनुक्रम से काल धर्म को प्राप्त हुए हैं।

"एस णं देवाणुप्पिया ! मेहस्स अणगारस्स आयारभंडए।'

'हे देवानुप्रिय ! यह मेघ अनगार के आचार-भांड-उपकरण हैं।'

गोयमपुच्छाए भगवओ उत्तरं—

३७५. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमं-सइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

गौतम की पृच्छा-भगवान का उत्तर—

३७५. 'भगवन् !' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी मेहे नामं अणगारे से णं भंते ! मेहे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववण्णे ?" गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे गोयमं एवं वयासी—

"एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी मेहे नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए, से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता, मए अब्भणुण्णाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ, खामेत्ता तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरूहित्ता, दब्भसंथारगं, संथरित्ता दब्भसंथारोवगए सयमेव पंचमहव्वए उच्चारेत्ता, बारस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार - माहिंद - बंभ - लंतग - महासुक्कसहस्साराणय-पाणयारणच्चुए तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्ज-विमाणवाससए वीईवइत्ता विजए महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

"तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं मेहस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई।"

"एस णं भंते ! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।"

—त्ति बेमि

चूलिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

३७६. महुरेहिं निउणेहिं, वयणेहिं चोययंति आयरिया।
सीसे कहिंचि खलिए, जह मेहमुणिं महावीरो ॥१॥

णाया—अ० १

'हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी जो मेघ अनगार थे, वे मेघ अनगार कालमास—मृत्यु के समय-काल करके किस गति में गये हैं ? और कहाँ उत्पन्न हुए हैं ? हे गौतम ! इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

'इस प्रकार हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी मेघ नामक अनगार प्रकृति से भद्र-यावत्-विनीत था, उसने तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से प्रारम्भ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके बारह भिक्षुप्रतिमाओं और गुणरत्न संवत्सर तपःकर्म को ग्रहण करके-यावत्-कीर्तन करके, मेरी आज्ञा लेकर गौतम आदि स्थविरों को खमाया, खमाकर तथारूप गीतार्थ स्थविरों के साथ, विपुलाचल पर धीरे-धीरे आरोहण करके दर्भ संथारा बिछाकर स्वयं ही दर्भ संथारे पर बैठकर पंच महाव्रतों का उच्चारण कर, बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना से आत्मा में रमण करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, शल्यों का उच्छेद करके समाधिस्थ होकर कालमास में काल-मृत्यु को प्राप्त करके ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप, ज्योतिष चक्र से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, लाखों योजन, करोड़ों योजन, और कोड़ा कोड़ी योजन लांघकर तथा इनसे भी ऊपर जाकर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, आरण, अच्युत देवलोकों को तथा तीन सौ ग्रैवेयक विमान वासों को लांघकर विजय महाविमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है।

'उस विजय नामक महाविमान में कितने-कितने ही देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उनमें मेघनामक देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति है।'

'भगवन् ! वह मेघदेव उस देवलोक से आयु क्षय, स्थिति क्षय, भवक्षय होने के अनन्तर च्यव कर [illegible]—च्यव करके किस गति में जायेगा ? किस स्थान पर उत्पन्न होगा ?'

'हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में जन्म ग्रहण करेगा—सिद्ध को प्राप्त करेगा-यावत्-समस्त दुःखों का अन्त करेगा।'

—इस प्रकार मैं कहता हूँ।

चूर्णिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा

३७६. यदि किसी समय पर [illegible] मधुर [illegible] वचनों से [illegible] जैसे [illegible] ने मेघ मुनि को संयम में स्थिर किया।

२२. महावीरतित्थे मकाइआई समणा

संगहणी-गाहा—

३७७. १. मकाइ २. किंकमे चेव, ३. मोग्गरपाणी य ४. कासवे।
५. खेमए ६. धिइहरे चेव, ७. केलासे ८. हरिचंदणे ॥१॥
९. वारत्त १०. सुदंसणं ११. पुण्णभद्द तह १२. सुमणभद्द
१३. सुपइट्ठे। १४. मेहे १५. ऽतिमुत्त १६. अलक्के,
अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

मकाई समणे किंकिमे य—

३७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिह नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।

तत्थ णं मकाइ नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे-जाव अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिकरे गुणसिलए-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिस-सहस्स-वाहिणीए सीयाए निक्खंते-जाव-अणगारे जाएइरिया-समिए।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदगस्स गुणरयणं तवोकम्मं। सोलसवा-साइं परियाओ। तहेव विउले सिद्धे।

३७९. किंकमे वि एवं चेव-जाव-विउले सिद्धे।

अंत—व० ६, अ० १, २।



२२ महावीर तीर्थ में मकाई आदि श्रमण

संग्रहणी गाथा—

३७७. १ मकाई, २ किंकिम, ३ मुद्गरपाणि ४ काश्यप ५ क्षेमक ६ धृतिधर ७ कैलाश ८ हरिचंदन ९ वारत्त १० सुदर्शन ११ पूर्णभद्र १२ सुमनोभद्र १३ सुप्रतिष्ठ १४ मेघ १५ अतिमुक्त १६ अलक्ष ये सोलह अध्ययन हैं।

मकाई श्रमण और किंकिम—

३७८. उस काल, उस समय में राजगृह नगर था, गुणशिलक चैत्य था, श्रेणिक राजा था।

उस नगर में मकाई नामक एक गृहपति रहता था—जो अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत था, अर्थात् उसका कोई पराभव नहीं कर सकता था।

उस काल और उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर का गुणशिलक चैत्य में पदार्पण हुआ-यावत्-संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे, परिषद् दर्शनार्थ निकली।

तत्पश्चात् मकाई गाथापति इस बात को सुनकर गंगदत्त के वर्णन के समान (व्याख्या प्रज्ञप्ति के अनुसार) यह भी ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका में बैठकर निकला-यावत्-अनगार हो गया—ईर्यासमिति आदि से युक्त।

तत्पश्चात् मकाई अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। शेष स्कन्दक के समान, गुणरत्न तपःकर्म का आराधन किया। सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन किया और अन्त में स्कन्दक के समान विपुलाचल पर सिद्ध हुए।

३७९. किंकिम भी इसी प्रकार प्रव्रजित हुए-यावत्-विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।



२३. महावीरतित्थे अज्जुण मालागारे

२३ महावीर तीर्थ में अर्जुन मालाकार

रायगिहे मोग्गरपाणिजक्खाययणे—

३८०. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । चेल्लणा देवी ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ—अड्ढे-जाव-अपरिभूए ।

तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था—सूमाल-पाणिपाया० ।

तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था—किण्हे-जाव-महामेहनिउरंबभूए दसद्धवण्ण-कुसुमकुसुमिए पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते, एत्थ णं अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जयपज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिस-परंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था—पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे ।

तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ ।

अज्जुणस्स जक्खपज्जुवासणा—

३८१. तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था । कल्लाकल्लिं पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायवडिए पणामं करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

गोट्ठिल्लेहिं अज्जुणमालायारबंधणं बंधुमईए सद्धिं अणायारो य—

३८२. तत्थ णं रायगिहे नयरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ—अड्ढा-जाव-अपरिभूया जं कयसुकया यावि होत्था ।

तए णं रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ पमोए घुट्ठे यावि होत्था ।

राजगृह में मुद्गरपाणि यक्षायतन—

३८०. उस काल उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । चेलना रानी थी ।

उस राजगृह नगर में अर्जुन नामक मालाकार रहता था—जो धनाढ्य-यावत्-किसी से भी पराभव को प्राप्त होने वाला नहीं था ।

उस अर्जुन मालाकार की बंधुमती नाम की भार्या थी—जो सुकोमल हाथ-पैर [शरीर] वाली थी ।

उस अर्जुन मालाकार का राजगृह नगर से बाहर एक विशाल पुष्पाराम [बगीचा] था—जो श्यामल वर्ण शाखा-प्रशा- घने वृक्षों से आच्छादित होने के कारण बादलों की घनघोर घटाओं से व्याप्त जैसा प्रतीत होता था, पंचरंगे पुष्पों से शोभायमान होने से दर्शनीय-यावत्-प्रतिरूप था । उस पुष्पाराम के समीप इस अर्जुन मालाकार के पितामह, प्रपितामह और पिता के पितामह की कुलपरंपरा से चला आ रहा मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था—जो प्राचीन दिव्य एवं सत्यप्रभाव वाला था, जैसे कि पूर्णभद्र चैत्य ।

उसमें एक हजार पल परिमाण वाला एक लोहमय मुद्गर लिये हुए मुद्गरपाणि की प्रतिमा स्थापित थी ।

अर्जुन का यक्ष पर्युपासना—

३८१. तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त हो गया था । वह प्रतिदिन [illegible] ग्रहण करता, ग्रहण कर राजगृह नगर से बाहर निकलता, निकलकर जहां पुष्पाराम है, वहां पर आता, आकर पुष्प चयन करता, चयन करके उत्तम, श्रेष्ठ पुष्पों को लेकर जहां पर मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहां आता, आकर मुद्गरपाणि यक्ष की महामूल्यवान श्रेष्ठ पुष्पों से अर्चना करता, अर्चना करके घुटने टेककर प्रणाम करता, उसके बाद राजमार्ग पर आजीविका करते हुए विचरण करता था ।

गोष्ठिक द्वारा अर्जुनमालाकार का बंधन और बंधुमती के साथ अनाचार—

३८२. वहां राजगृह नगर में ललिता नाम की गोष्ठी [मंडली] रहती थी—जो धनाढ्य [illegible] वाली नहीं थी, [illegible] थी ।

तत्पश्चात् किसी एक दिन राजगृह नगर में प्रमोद [illegible] की घोषणा हुई ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जं इति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धिं पच्छियपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ।

तत्पश्चात् उस अर्जुन मालाकार ने सोचा कि कल बहुत अधिक फूलों की मांग—बिक्री होगी, ऐसा सोचकर प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व बंधुमती भार्या को साथ लेकर बास की टोकरी ली, लेकर अपने घर से निकला, निकलकर राजगृह नगर के बीचोंबीच से चलता हुआ निकला, निकलकर जहां पुष्पाराम था, वहां आया, आकर बन्धुमती भार्या के साथ पुष्प चयन करता है।

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति।

तत्पश्चात् उस ललिता गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष जहां मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहां आये और हास-परिहास, क्रीड़ा आदि करने लगे।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ, पत्थियं भरेइ, भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ।

तत्पश्चात् बन्धुमती भार्या के साथ उस अर्जुन मालाकार ने पुष्प चयन किया, पिटारी भरी, भरकर अग्रणी श्रेष्ठ पुष्प लेकर जहां मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहां आया।

तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—"एस णं देवाणुप्पिया,! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए" त्ति कट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति।

तत्पश्चात् उन छह गौष्ठिक पुरुषों ने बन्धुमती भार्या के साथ अर्जुनमालाकार को आते हुए देखा, देखकर आपस में इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रियो ! यह अर्जुन मालाकार बन्धुमती भार्या के साथ यहां शीघ्र आ रहा है। अतः हे देवानुप्रियो ! हमारे लिये यह आनन्दप्रद होगा कि अर्जुन मालाकार को उल्टी मुश्कों से बांधकर बन्धुमती भार्या के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए विचरण करें। इस प्रकार विचार कर परस्पर एक दूसरे की बात सुनी, सुनकर किवाड़ों के पीछे छिप गये, बिल्कुल चुपचाप, अचल, स्पन्दन, रहित होकर छिपकर बैठ गये।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, आलोए पणामं करेइ, महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, जण्णुपायपडिए पणामं करेइ।

तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार बंधुमती भार्या के साथ यक्ष प्रतिमा को देख प्रणाम करता है, श्रेष्ठ उत्तम पुष्पों से अर्चना की और घुटनों व पैरों को नमित कर प्रणाम किया।

तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति, गेण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

तब वे छह गौष्ठिक पुरुष जल्दी-जल्दी किवाड़ों के पीछे से निकले, निकलकर अर्जुन मालाकार को पकड़ लिया, पकड़कर उल्टी मुश्कों से बांधा, बंधुमती मालाकारी (मालिनी) के साथ अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हुए विचरने लगे।

अज्जुणस्स चिंता तस्स सरीरे मोग्गरपाणिपवेसो य—

अर्जुन को चिन्ता और उसके शरीर में मुद्गरपाणि का प्रवेश—

३८३. तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं-जाव-पुप्फच्चणं करेमि, जण्णुपायपडिए पणामं करेमि, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होंते,

३८३. उस समय उस अर्जुनमालाकार के मन में यह विचार-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—बचपन से ही मैं मुद्गरपाणि भगवान की प्रतिदिन-यावत्-पुष्पार्चन करता हूँ, घुटनों और पैरों को नमित कर प्रणाम करता हूँ, उसके बाद राजमार्ग पर आजीविका करता आ रहा हूँ। अतः यदि मुद्गरपाणि यक्ष यहां

तेणं किं मम एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते ? तं नत्थि णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए । सुव्वत्तं णं एस कट्ठे ।"

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं-जाव-वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडतडस्स बंधाइं छिंदइ, छिंदित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नगरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।

रायगिहे आतंकं—

३८४. तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ ।'

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे-जाव-घाए-माणे-घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं निग्गच्छउ । मा णं तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह ।"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा-जाव-पच्चप्पिणंति ।

भगवओ समोसरणं—

मौजूद होता तो क्या वह मुझे इस प्रकार की आपत्ति में पड़ा देखता ? इसलिए निश्चय ही यहाँ मुद्गरपाणि यक्ष सन्निहित-मौजूद नहीं है । यह तो स्पष्ट ही केवल काष्ठ है ।

तत्पश्चात् वह मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन मालाकार के इस प्रकार के मनोगत भावों को-यावत्-जानकर अर्जुन मालाकार के शरीर में प्रविष्ट हो गया, प्रविष्ट होकर तड़-तड़ ध्वनि के साथ बंधनों को काट दिया, काटकर हजार पल से निष्पन्न लोहे के मुद्गर को लिया, लेकर स्त्री जिसमें सातवीं है ऐसे उन छहों पुरुषों को मार डालता है ।

तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट होकर राजगृह नगर के आसपास चारों ओर प्रतिदिन सातवीं स्त्री सहित छह पुरुषों को मारता हुआ विचरने लगा ।

राजगृह में आतंक—

३८४. तब राजगृह नगर में शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, [illegible] चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों आदि स्थानों में [illegible] परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार [illegible] है—'हे देवानुप्रियो ! अर्जुनमालाकार मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट होकर राजगृह नगर के बाहर सातवीं स्त्री और [illegible] पुरुषों को मारते हुए विचरता है ।'

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने इस वृत्तान्त को [illegible] कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार [illegible]—

'हे देवानुप्रियो ! अर्जुनमालाकार-यावत्-[illegible] रहा है । इसलिए तुम में से कोई [illegible] के लिए [illegible] अथवा फल फूलादि [illegible] मत निकलो । अन्यथा शरीर का नाश [illegible] इस प्रकार दूसरी बार भी और तीसरी बार भी [illegible] घोषणा करो और [illegible] मुझे इसकी [illegible]।'

[illegible] वे कौटुम्बिक [illegible]

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

तब राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बहुत से मनुष्य परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे-यावत्-उनके दर्शन और प्ररूपित धर्म के विपुल अर्थ ग्रहण के लाभ का तो कहना ही क्या है ?

सुदंसणस्स वंदणट्ठं गमणं—

३८६. तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि।"

सुदर्शन का वंदनार्थ गमन—

३८६. तब बहुत से व्यक्तियों से इस वृतान्त को सुनकर और समझकर सुदर्शन के मन में यह अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित, संकल्प उत्पन्न हुआ—इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण कर रहे हैं। अतः मैं श्रमण भगवान महावीर की वंदना करने के लिये जाऊं—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ माता पिता थे, वहां आया, आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्त कर और अंजलि करके इस प्रकार बोला—'हे माता पिता ! श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण करते हैं। इसलिये मैं जाऊं और श्रमण भगवान महावीर को वंदना करूं, नमस्कार करूं, सत्कार सम्मान करूं और कल्याण रूप, मंगलकारक देव एवं चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूं, ऐसी मेरी इच्छा है।'

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ। तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमण्णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि।"

तत्पश्चात् माता पिता ने सुदर्शन सेठ से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर अर्जुन मालाकार राजगृह नगर के बाहर चारों तरफ प्रतिदिन सातवीं स्त्री सहित छह पुरुषों को मारता हुआ घूम रहा है। इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान को वंदन करने बाहर मत जाओ अन्यथा तुम्हारे शरीर की हानि हो जायेगी अतः तुम यहाँ रहकर ही श्रमण भगवान महावीर को वंदना कर लो।'

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी—"किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं-जाव-इहगए चेव वंदिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदए।"

तब सुदर्शन सेठ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहां पधारे हैं-यावत्-यहां से ही कैसे वंदना करूं ? इसलिये हे माता पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके जाना चाहता हूँ।'

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं पण्णवणाहिं सण्णवणाहिं विण्णवणाहिं परूवणाहिं आघवेत्तए पण्णवेत्तए सण्णवेत्तए विण्णवेत्तए परूवेत्तए ताहे एवं वयासी—"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तदनन्तर माता पिता जब-उस सुदर्शन सेठ को अनेक प्रकार की युक्तियों, प्ररूपणाओं, संज्ञप्तियों, निवेदन और प्रतिपादन द्वारा कथन करने में, प्ररूपित करने में, ज्ञान कराने में, निवेदन करने में और प्रतिपादित करने में समर्थ नहीं हो सके तब इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, परन्तु विलम्ब मत करो।'

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणा-लंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता

तत्पश्चात् माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने स्नान किया, धर्म स्थान में जाने योग्य शुद्ध, मंगल रूप, उत्तम वस्त्र धारण किये और अल्प किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर

पायविहारचारेणं रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर पैदल चलते हुए राजगृह नगर के मध्य में होता हुआ निकला, निकलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के पास से होता हुआ जहाँ गुणशीलक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उस ओर जाने के लिए उद्यत हुआ।

सुदंसणस्स अज्जुणकय-उवसग्गो—

३८७. तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं-वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

'नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं।'

'नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स।'

'पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं-जाव-मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तो मे तहा पच्चक्खाए चेव' त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

सुदर्शन को अर्जुनकृत उपसर्ग—

३८७. तत्पश्चात् उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो यावत् मिसमिसाते हुए उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को घुमाते-घुमाते हुए जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था, उसी ओर जाने के लिए उद्यत हुआ।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने मुद्गरपाणि यक्ष को आते हुए देखा, देखकर निर्भय, त्रास, उद्वेग एवं क्षोभ रहित हो, बिना किसी चंचलता और हड़बड़ी के भूमि का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दोनों हाथ जोड़ मस्तकावर्त्त कर, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'नमस्कार हो श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो।'

नमस्कार हो।' श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

तब राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बहुत से मनुष्य परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे-यावत्-उनके दर्शन और प्ररूपित धर्म के विपुल अर्थ ग्रहण के लाभ का तो कहना ही क्या है ?

सुदंसणस्स वंदणट्ठं गमणं—

३८६. तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि।"

सुदर्शन का वंदनार्थ गमन—

३८६. तब बहुत से व्यक्तियों से इस वृतान्त को सुनकर और समझकर सुदर्शन के मन में यह अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित, संकल्प उत्पन्न हुआ—इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण कर रहे हैं। अतः मैं श्रमण भगवान महावीर की वंदना करने के लिये जाऊं—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ माता पिता थे, वहां आया, आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्त कर और अंजलि करके इस प्रकार बोला—
'हे माता पिता ! श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण करते हैं। इसलिये मैं जाऊं और श्रमण भगवान महावीर को वंदना करूं, नमस्कार करूं, सत्कार सम्मान करूं और कल्याण रूप, मंगलकारक देव एवं चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूं, ऐसी मेरी इच्छा है।'

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लिं बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ। तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमण्णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि।"

तत्पश्चात् माता पिता ने सुदर्शन सेठ से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर अर्जुन मालाकार राजगृह नगर के बाहर चारों तरफ प्रतिदिन सातवीं स्त्री सहित छह पुरुषों को मारता हुआ घूम रहा है। इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान को वंदन करने बाहर मत जाओ अन्यथा तुम्हारे शरीर की हानि हो जायेगी अतः तुम यहाँ रहकर ही श्रमण भगवान महावीर को वंदना कर लो।'

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी—"किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं-जाव-इहगए चेव वंदिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदए।"

तब सुदर्शन सेठ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहां पधारे हैं-यावत्-यहां से ही कैसे वंदना करूं ? इसलिये हे माता पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके जाना चाहता हूँ।'

तए णं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं पण्णवणाहिं सण्णवणाहिं विण्णवणाहिं परूवणाहिं आघवेत्तए पण्णवेत्तए सण्णवेत्तए विण्णवेत्तए परूवेत्तए ताहे एवं वयासी—"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तदनन्तर माता पिता जब उस सुदर्शन सेठ को अनेक प्रकार की युक्तियों, प्ररूपणाओं, संज्ञप्तियों, निवेदन और प्रतिपादन द्वारा कथन करने में, प्ररूपित करने में, ज्ञान कराने में, निवेदन करने में और प्रतिपादित करने में समर्थ नहीं हो सके तब इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, परन्तु विलम्ब मत करो।'

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता

तत्पश्चात् माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने स्नान किया, धर्म स्थान में जाने योग्य शुद्ध, मंगल रूप, उत्तम वस्त्र धारण किये और अल्प किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर

पायविहारचारेणं रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर पैदल चलते हुए राजगृह नगर के मध्य में होता हुआ निकला, निकलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के पास से होता हुआ जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, उस ओर जाने के लिये उद्यत हुआ।

सुदंसणस्स अज्जुणकय-उवसग्गो—

३८७. तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं-वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

'नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं।'

'नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स।'

'पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं-जाव-मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तो मे तहा पच्चक्खाए चेव' त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।

सुदर्शन को अर्जुनकृत उपसर्ग—

३८७. तत्पश्चात् उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो-यावत्-मिसमिसाते हुए उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को घुमाते-घुमाते हुए जहां सुदर्शन श्रमणोपासक था, उसी ओर आने के लिये उद्यत हुआ।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने मुद्गरपाणि यक्ष को आते हुए देखा, देखकर निर्भय, त्रास, उद्वेग एवं क्षोभ रहित हो, बिना किसी चंचलता और हड़बड़ी के भूमि का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो, मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा—

'नमस्कार हो श्रमण भगवान महावीर को-यावत्-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो।'

नमस्कार हो।' श्रमण भगवान महावीर को-यावत्-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को

'पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान कर लिया है, स्थूल मृषावाद का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान कर लिया है, यावज्जीवन के लिये स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया है, यावज्जीवन के लिये स्वदार संतोष व्रत ग्रहण किया है, इच्छा परिमाण व्रत यावज्जीवन के लिए स्वीकार कर लिया है तो भी अब यहां यावज्जीवन के लिये सर्वथा प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ, सर्वथा क्रोध-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ, मैं जीवन पर्यन्त के लिये सर्वप्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ। यदि इस उपसर्ग से मुक्त होऊं तो मुझे पारणा करना कल्पता है। यदि इस उपसर्ग से मुक्त नहीं होऊं तो मुझे इस प्रकार का प्रत्याख्यान है' ऐसा विचार कर सागारी पडिमा (अनशन व्रत) धारण कर ली।

तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए।

तदनन्तर वह मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल भार वाले लोहे के मुद्गर को घुमाता-घुमाता जहां पर सुदर्शन श्रमणोपासक था, वहीं आया। तो भी वह सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से किसी भी प्रकार विचलित करने में समर्थ नहीं हो सका।

उवसग्गनिवारण—

३८८. तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंता परिघोलेमाणे-परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाइए सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं निवडिए।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ।

सुदंसणस्स अज्जुणस्स य भगवओ पज्जुवासणा—

३८९. तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के कहिं वा संपत्थिया ?'

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए— अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।'

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

"तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए-जाव-पज्जुवासित्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।'

तए णं सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ-जाव-पज्जुवासइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ। सुदंसणे पडिगए।

उपसर्ग निवारण—

३८८. तत्पश्चात् वह मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक के चारों ओर घूमते हुए भी जब सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से पराजित नहीं कर सका तब सुदर्शन श्रमणोपासक के आगे सप्रतिपक्ष दिशा में (सामने) खड़े होकर सुदर्शन श्रमणोपासक को अनिमेष दृष्टि से चिरकाल तक देखता रहा, देखकर अर्जुनमालाकार के शरीर को छोड़ दिया, छोड़कर उस सहस्रपल निष्पन्न लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

तदनन्तर वह अर्जुन मालाकार मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होने पर 'धम्' ऐसी आवाज के साथ भूमि पर सर्वांग से गिर पड़ा।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को निरुपसर्ग जानकर अपनी पडिमा का पारणा किया-पडिमा पूर्ण की।

सुदर्शन और अर्जुन द्वारा भगवान की पर्युपासना—

३८९. तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार मुहूर्त भर के पश्चात्-कुछ क्षणों के बाद आश्वस्थ-स्वस्थ होकर उठा, उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं ?'

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुनमालाकार से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मैं जीवाजीवादि का जानने वाला सुदर्शन नामक श्रमणोपासक गुणशिलक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करने जा रहा हूँ।'

तब अर्जुनमालाकार ने सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान महावीर को वंदन करने-यावत्-सेवा करने के लिये चलना चाहता हूँ।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।'

इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमालाकार के साथ जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर विराजते थे, वहां आया, आकर अर्जुन मालाकार के साथ श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है, वंदना-नमस्कार करता है;-यावत्-पर्युपासना करता है।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमालाकार और उस विशाल परिषदा के सन्मुख विचित्र धर्म का उपदेश दिया। सुदर्शन वापस लौट गया।

अज्जुणस्स पव्वज्जा—

३९०. तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता-जाव-अणगारे जाए, से णं वासीचंदणकप्पे समतिणमणि-लेट्ठुकंचणे समसुहदुक्खे इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धे जीविय-मरण-निरवकंखे संसारपारगामी कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं च णं विहरइ।

अर्जुन की प्रव्रज्या—

३९०. उसके बाद वह अर्जुन मालाकार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवणकर एवं समझकर हर्षित और संतुष्ट होता हुआ श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा —

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर विश्वास करता हूँ, हे भदन्त ! निर्ग्रंथ प्रवचन पर रुचि रखता हूँ और हे भदन्त ! निग्रन्थ प्रवचन का सत्कार-सम्मान करता हूँ—सत्कार करने के लिये उद्यत हूँ।' (व्रत लेना चाहता हूँ)

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध-विलम्ब मत करो।'

तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में गया, जाकर स्वयं ही पंचमुष्टिक केश लोच करता है, लोच करके यावत् अनगार हो गया और वसूले से छीले जाने पर भी सुगंध देने वाले चंदन के समान, तृण-मणि-लोष्ठ-कचन में सम, सुख-दुःख में तटस्थ, इहलोक-परलोक में आसक्ति रहित, जीवन-मरण के प्रति निस्पृह संसार पारगामी और कर्म विनाश के लिये उद्यत होकर विचरता है।

अज्जुणअणगारस्स तितिक्खा—

३९१. तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ, ओगेण्हित्ता जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए जहा गोयमसामी-जाव-रायगिहे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ।

तए णं तं अज्जुणयं रायगिहे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणं बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—"इमेण मे पिता मारिए। इमेण मे माता मारिया। इमेण मे भाया

अर्जुन अनगार की तितिक्षा—

३९१. तत्पश्चात् उस अर्जुन अनगार ने जिस दिन मुण्डित होकर गृहत्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार का यह अभिग्रह-स्वीकार किया—आज से मुझे यावज्जीवन के लिये निरंतर षष्ठ भक्त-षष्ठ भक्त की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना कल्पता है," यह मन में विचार कर इस प्रकार का अभिग्रह लेता है, अभिग्रह लेकर जीवन पर्यन्त के लिये निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तपोकर्म द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता है।

तत्पश्चात् वह अर्जुन अनगार षष्ठ भक्त तप के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करता है, दूसरे प्रहर में ध्यान करता है, तीसरे प्रहर में गौतम स्वामी के समान-यावत्-राजगृह नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में गृह समुदान भिक्षा के लिये अटन-भ्रमण करता है।

तत्पश्चात् अर्जुन अनगार को राजगृह नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में गृह समुदान भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण करते हुए देख बहुत सी स्त्रियां, पुरुष, बच्चे, बूढ़े-बड़े और युवक इस प्रकार कहते हैं—'इसने मेरे पिता को मारा है। इसने मेरी माता को

भगिणी भज्जा पुत्त धूया सुण्हा मारिया । इमेण मे अण्णयरे सयण-संबंधि परियणे मारिए" त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइआ हीलंति निंदंति खिसंति गरिहंति तज्जंति तालेंति ।

मारा है । इसने मेरी भार्या, बहिन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू को मारा है । इसने मेरे दूसरे दूर व निकट के स्वजन, सम्बन्धी परिचित को मारा है ।' ऐसा कहकर कोई क्रोधित होते हैं—गाली देते हैं, कोई हीलना करते हैं, निन्दा करते हैं, खीजते हैं, गर्हा करते हैं, तर्जना करते हैं और ताड़ना देते हैं ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे-जाव-तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अपउस्समाणे सम्मं सहइ सम्मं खमइ सम्मं तितिक्खइ सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे सम्मं खममाणे सम्मं तितिक्खमाणे सम्मं अहियासेमाणे रायगिहे नयरे उच्च-णीय-मज्झिम-कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ ।

तब वह अर्जुन अनगार उन बहुत सी स्त्रियों, पुरुषों, बालकों बड़े-बूढ़ों और युवकों द्वारा तिरस्कृत-यावत् ताड़ित होने पर भी उन पर मन से द्वेष नहीं करता हुआ सम्यक् प्रकार से सहन करता है, क्षमा करता है, सहिष्णुता रखता है और झेलता है—अनुभव करता है, और सम्यक् प्रकार से सहते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते और झेलते हुए राजगृह नगर के उच्च, नीच मध्यम कुलों में भ्रमण करते हुए उसे यदि कहीं भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता, पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ. पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णग-भूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।

तब वह अर्जुन अनगार अदीन, खिन्न न होकर, मलिनमन न होकर अनाविल-अकलुषित, विषादरहित होकर, खेद रहित होकर योगी की तरह भ्रमण करते हैं, भ्रमण करके राजगृह नगर से निकलते हैं, निकलकर जहां गुणशिलक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान महावीर विराजते हैं, वहाँ आते हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर से कुछ दूर पर गमनागमन का प्रतिक्रमण करते हैं, प्रतिक्रमण करके एषण-अनेषण-गवेषणा अगवेषणा सम्बन्धी आलोचना करते हैं, आलोचना करके आहार-पानी दिखाते हैं, दिखाकर श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा प्राप्त कर मूर्च्छारहित, गृद्धिरहित, आसक्तिरहित और उदासीन होकर बिल में जैसे सर्प सीधा प्रवेश करता है, उसी तरह की भावनापूर्वक उस आहार को खा लेते हैं ।

३९२. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

३९२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर अन्यदा-अन्य किसी दिन राजगृह से निकलते हैं और निकलकर बाहर जनपदों में विहार करते हैं ।

अज्जुणअणगारस्स सिद्धी—

३९३. तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे-जाव-सिद्धे ।

अर्जुन अनगार की सिद्धि—

३९३. तत्पश्चात् अर्जुन अनगार ने उस उदार, श्रेष्ठ, प्रयत्न पूर्वक ग्रहण किये हुए श्रेष्ठ सामर्थ्य संपन्न तपःकर्म से आत्मा को भावित करते हुए, शुद्ध करते हुए कुछ अधिक छह मास श्रमण पर्याय पालन किया, पालन करके आधे मास की संलेखना से आत्मा की आराधना की, आराधना करके तीस भक्तों को अनशन द्वारा छेदा, छेदकर जिस प्रयोजन के लिये नग्न भाव ग्रहण किया था-यावत्-सिद्ध हो गये ।

२४. महावीरतित्थे कासवाई समणा

२४ महावीर तीर्थ में काश्यपादि श्रमण

३६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। कासवे नामं गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं खेमए वि गाहावई, नवरं—कायंदी नयरी। सोलस वासा परियाओ। विपुले पव्वए सिद्धे।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—केलासे वि गाहावई, नवरं—साएए नयरे। बारस वासाइं परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—हरिचंदणे वि गाहावई साएए नयरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—वारत्तए वि गाहावई, नवरं—रायगिहे नगरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—सुदंसणे वि गाहावई, नवरं—वाणियग्गामे नयरे। दूइपलासए चेइए। पंच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—पुण्णभद्दे वि गाहावई वाणियग्गामे नयरे। पंचवासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए नयरीए। बहुवासाइं परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए नयरीए। सत्तावीसं वासा परियाओ। विपुले सिद्धे॥

एवं—मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे। बहूइं वासाइ परियाओ। विपुले सिद्धे।[1]

—अंतगड व० ६, अ० ४-१४।

३६४. उस काल उस समय में राजगृहनगर, गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। काश्यप नाम का गाथापति बसता था। यथा मकाई। सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—क्षेमक गाथापति भी, विशेष-कांकदी नगरी। सोलह वर्ष की दीक्षापर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार धृतिधर गाथापति भी, कांकदी नगरी के निवासी। सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय। विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—कैलाश गाथापति भी, विशेष—साकेत नगरवासी। बारह वर्ष की श्रमण पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—हरिचंदन गाथापति भी, साकेतनगर वासी। बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—वारत्तगाथापति भी, विशेष—राजगृह नगरवासी। बारह वर्ष की श्रमणपर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—सुदर्शन गाथापति, विशेष—वाणिज्य ग्रामवासी। द्युतिपलाश चैत्य। पांच वर्ष की श्रमण पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—पूर्णभद्र गाथापति भी, वाणिज्यग्राम नगरवासी। पांच वर्ष की दीक्षा पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—सुमनभद्र गाथापति भी, श्रावस्ती नगरी। बहुत वर्षों की दीक्षा पर्याय। विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—सुप्रतिष्ठ गाथापति भी, श्रावस्ती नगरी के निवासी। सत्ताईस वर्ष की दीक्षा पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार—मेघ गाथापति भी, राजगृहनगर निवासी। बहुत वर्षों की श्रमण पर्याय। विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

□ □

---

१. अनुत्तरकहाणयं १३४-१३८ पुट्ठे दट्ठव्वं। अन्तकडकहाणयं य १३६ पुट्ठे दट्ठव्वं।

२५. महावीरतित्थे सेणियपुत्ता जाली आइ-समणा

संगहणी-गाहा—

३९५. जालि मयालि उवयाली, पुरिससेणे य वारिसेणे य।
दीहदंते य लट्ठदंते य, वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे ॥१॥

जालि-अणगारे—

३९६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे-रिद्धित्थिमिय-समिद्धे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जाली कुमारो। जहा मेहो। अट्ठट्ठओ दाओ।

तए णं से जालीकुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं-जाव-माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

सामी समोसढे। सेणिओ निग्गओ। जहा मेहो तहा जाली वि निग्गओ। तहेव निक्खंतो जहा मेहो। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। गुणरयणं तवोकम्मं जहा खंदयस्स। एवं जा चेव खंदगस्स वत्तव्वया, सा चेव चिंतणा, आपुच्छणा। थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं तहेव दुरूहइ, नवरं—सोलस वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता, कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त-तारा-रूवाण - सोहम्मीसाण-माहिंद-बंभ-लंतग महासुक्क-सहस्साराणय-पाणय-आरणच्चुए कप्पे नव य गेवेज्ज-विमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता विजयविमाणे देवत्ताए उववण्णे।

तए णं थेरा भगवंतो जालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिणिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, करेत्ता पत्त-चीवराइं गेण्हंति। तहेव उत्तरंति-जाव-इमे से आयारभंडए॥

३९७. भंते! ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

२५ महावीर तीर्थ में श्रेणिकपुत्र जालि आदि श्रमण

संग्रहणी गाथा—

३९५. १ जालि २ मयालि ३ उपजालि ४ पुरुषसेन ५ वारिसेन ६ दीर्घदन्त ७ लष्ठदन्त ८ वेहल्ल ९ वेहायस और १० अभय इस प्रकार कुमारों के नाम हैं।

जालि अनगार—

३९६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था—जो ऋद्धि संपन्न, भय रहित और धन धान्य से युक्त था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। धारिणी रानी थी। स्वप्न में सिंह को देखा। जालिकुमार का जन्म हुआ। जिस प्रकार मेघ कुमार का वर्णन है। आठ आठ दात आये।

तत्पश्चात् वह जालिकुमार उत्तम प्रासाद के ऊपर रहकर मृदंगों आदि की झंकारों पूर्वक-यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए—अनुभव करते हुए विचरता है।

स्वामी (श्रमण भगवान महावीर) पधारे। श्रेणिक वंदना के लिये निकला। जैसे मेघकुमार वंदनार्थ गया था। उसी प्रकार जालि भी गया। उसी प्रकार निकला—अर्थात् दीक्षित हुआ-जैसे मेघकुमार दीक्षित हुआ था। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। गुणरत्न तपःकर्म की साधना की, जैसे स्कन्दक मुनि ने की थी। इस प्रकार जो कुछ भी स्कन्दक मुनि की वक्तव्यता है, वही यहां जानना चाहिये, उसी तरह की चिन्तना-धर्म-चिन्तना और भगवान से अनशन व्रत धारण करने की आज्ञा लेना भी समझ लेना चाहिये। उसी प्रकार स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर चढ़ता है, विशेष यह है कि सोलह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करता है, पालन कर कालमास में—मृत्यु के समय काल करके ऊंचे चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, तारा रूप ज्योतिष्क देवों तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युतकल्प और नव-ग्रैवेयक विमान प्रतरों से ऊपर दूर गमन करके विजय विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

इसके अनन्तर वे स्थविर भगवन्त जालि अनगार को कालगत हुआ जानकर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं, करके पात्र और वस्त्र ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार उतरते हैं-यावत्-ये उसके आचार भांडोपकरण हैं।

३९७. हे भदन्त! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी जाली नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए । से णं जाली अणगारे कालगए कहिं गए ? कहिं उववण्णे ?"

"एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी तहेव जहा खंदयस्स-जाव-कालगए उड्ढं चंदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं-जाव-विजए विमाणे देवत्ताए उववण्णे ॥"

"जालिस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

"गोयमा ! वत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।"

"से णं भंते ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ ! कहिं उववज्जिहिइ ?"

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

'आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी जालि नामक अनगार प्रकृति से भद्र-यावत्-विनीत था । वह जालि अनगार काल को प्राप्त कर कहां गया है ? कहां उत्पन्न हुआ है ?'

'हे गौतम ! इस प्रकार निश्चय से मेरा अन्तेवासी उसी प्रकार जैसे स्कन्दक की वक्तव्यता है-यावत्-काल करके ऊँचे चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण नक्षत्र, तारारूप ज्योतिष्क देवों-यावत्-विजय विमान में देवपने उत्पन्न हुआ है ।'

'हे भदन्त ! जालिदेव की कितने काल की स्थिति प्रतिपादित की है ?

'हे गौतम ! बत्तीस सागरोपम की स्थिति प्रतिपादन की है ।'

'हे भगवन् ! वह जालिदेव आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति क्षय होने पर उस देवलोक से कहां जायेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?'

'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्व-दुःखों का अन्त करेगा ।

मयालिपभिइ-समणा—

३९८. एवं सेसाण वि नवण्हं भाणियव्वं, नवरं-सत्त धारिणिसुआ, वेहल्लवेहायसा चेल्लणाए, अभए नंदाए । सव्वेसिं सेणिओ पिया । आइल्लाणं पंचण्हं सोलस वासाइं सामण्णपरियाओ । तिण्हं बारस वासाइं । दोण्हं पंच वासाइं । आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववाओ विजए वेजयंते जयंते अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे । दीहदंते सव्वट्ठसिद्धे उक्कमेणं सेसा । अभओ विजए । सेसं जहा पढमे ।

—अणुत्त० व० १, अ० १-१० ।

मयालिप्रभृति श्रमण—

३९८. इसी प्रकार शेष नौ कुमारों का भी वर्णन जानना चाहिये, विशेष इतना है—सात धारिणी रानी के पुत्र थे और वेहल्ल वेहायस, चेलना के तथा अभय नन्दा के पुत्र थे । सभी के पिता श्रेणिक थे । आदि के पांच ने सोलह वर्ष श्रामण्य पर्याय का पालन किया । तीन ने बारह वर्ष और दो ने पांच वर्ष तक । आदि के पांच की अनुक्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पत्ति हुई । दीर्घदन्त की सर्वार्थसिद्ध में, शेष कुमारों की उत्क्रम से उत्पत्ति हुई । अभय विजय विमान में उत्पन्न हुए । शेष वर्णन जैसा पूर्व में जालि श्रमण का किया है, उसी प्रकार जानना चाहिये ।

दीहसेणाइ समणा—(संगहणी-गाहा)—

३९९. दीहसेणे, महासेणे, लट्ठदंते य गूढदंते य सुद्धदंते य ।
हल्ले, दुमे, दुमसेणे, महादुमसेणे य आहिए ॥१॥
सीहे य, सीहसेणे य, महासीहसेणे य आहिए ।
पुण्णसेणे य बोधव्वे, तेरसये होइ अज्झयणे ॥२॥

दीर्घसेनादि श्रमण—(संग्रहणी गाथा)—

३९९. १ दीर्घसेन, २ महासेन ३ लष्टदन्त ४ गूढदन्त ५ शुद्धदन्त ६ हल्ल ७ द्रुम ८ द्रुमसेन ९ महाद्रुमसेन (का कथन किया गया है) । १ ।

१० सिंह ११ सिंहसेन और १२ महासिंहसेन और १३ पुण्यसेन जानना चाहिये, इस तरह तेरह अध्ययन होते हैं । २ ।

४००. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । धारिणी देवी । सीहो सुमिणे । जहा जाली तहा जम्मं बालत्तणं कलाओ, नवरं-दीहसेणो कुमारो, सच्चेव वत्तव्वया जहा जालिस्स-जाव-अंतं काहिइ ।

४००. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । धारिणी रानी थी । स्वप्न में सिंह देखा । जैसा जालिकुमार के वर्णन में कहा गया है, उसी प्रकार जन्म, बालपन, कलाओं का सीखना, विशेष इतना है कि जैसी जालिकुमार की वक्तव्यता है, वैसी ही दीर्घसेन कुमार की समझनी चाहिये-यावत्-अन्त करेगा ।

एवं तेरस वि रायगिहे नयरे। सेणिओ पिया। धारिणी माया। तेरसण्ह वि सोलस वासा परियाओ। आणुपुव्वीए विजए दोण्णि, वेजयंते दोण्णि, जयंते दोण्णि, अपराजिए दोण्णि, सेसा महादुमसेणमादी पंच सव्वट्ठसिद्धे।

—अणुत्त० व, २ अ० १-१३।

इसी प्रकार तेरह कुमारों के विषय में जानना चाहिये कि वे राजगृह नगर में उत्पन्न हुए। श्रेणिक पिता थे। माता का नाम धारिणी था। तेरहों की सोलह वर्ष की श्रामण्य पर्याय थी। अनुक्रम से दो विजय में, दो वैजयन्त में, दो जयन्त में, दो अपराजित में और शेष महाद्रुमसेन आदि पांच सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

卐 卐

२६. महावीरतित्थे सत्थवाहपुत्तो धण्णे अणगारे

२६ महावीर तीर्थ में सार्थवाह पुत्र धन्य अनगार

(संगहणी गाहाओ)—

४०१. धण्णे य सुणक्खत्ते य, इसिदासे य आहिए।
पेल्लए, रामपुत्ते य, चंदिमा पिट्ठिमा इ य ॥१॥
पेढालपुत्ते अणगारे, नवमे पोट्टिले वि य।
वेहल्ले दसमे वुत्ते, इमे य दस आहिया ॥२॥

(संग्रहणी गाथायें)—

४०१........१ धन्य, २ सुनक्षत्र ३ ऋषिदास ४ पेल्लक ५ रामपुत्र, ६ चन्दिम ७ पृष्टिम और ८ पेढालपुत्र अनगार ९ पोट्टिल और १० वेहल्ल नामक ये दस अध्ययन हैं।

धण्णस्स गिहवासे—

४०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नामं नयरी होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धा। सहसंबवणे उज्जाणे सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे। जियसत्तू राया।

धन्य का गृहवास—

४०२. उस काल और उस समय में काकंदी नामक नगरी थी—जो ऋद्धियुक्त निर्भय और धन-धान्य समृद्धि से संपन्न थी। सब ऋतुओं के पुष्पों और फलों से युक्त सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। राजा का नाम जितशत्रु था।

तत्थ णं काकंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ—अड्ढा-जाव-अपरिभूया। तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धण्णे नामं दारए होत्था— अहीणपडिपुण्ण-पंचेंदियसरीरे-जाव-सुरूवे। पंचधाईपरिग्गहिए जहा महब्बलो-जाव-बावत्तरिं कलाओ अहीए-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

उस कांकदी नगरी में भद्रा नाम की सार्थवाहिनी निवास करती जो ऋद्धि समृद्धि से आढ्य-संपन्न-यावत्-अपरिभूत—किसी से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाली थी। उस भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र धन्य नामक बालक था—जो अहीन—किसी इन्द्रिय से भी हीन नहीं, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय एवं शरीरवाला-यावत्-सुरूप था। पांच धायों से परिगृहीत था जैसे महाबल कुमार-यावत्-बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया-यावत्-सब तरह से भोगों का भोग करने में भी समर्थ हो गया था।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णं दारयं उम्मुक्कबालभावं-जाव-अलंभोगसमत्थं वा वि जाणित्ता बत्तीसं पासायवडेंसए कारेइ—अब्भुग्गयमूसिए-जाव-पडिरूवे। तेसिं मज्झे एगं च णं भवणं कारेइ—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं-जाव-पडिरूवं।

तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाहिनी धन्य बालक को बालकपन से मुक्त-यावत्-भोगों के उपभोग करने में भी समर्थ जान कर बहुत विशाल और ऊंचे-यावत्-प्रतिरूप बत्तीस श्रेष्ठ प्रासाद बनवाती है। उनके मध्य में अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त-यावत्-प्रतिरूप एक विशाल-बड़ा भवन बनवाया।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं धण्णं दारयं बत्तीसाए इब्भवर-कण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ । बत्तीसओ दाओ ।

उसके बाद उस भद्रा सार्थवाही ने उस धन्यकुमार का इभ्य सेठों की बत्तीस उत्तम कन्याओं के साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया ।

तए णं से धण्णे दारए उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं-जाव-विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

बत्तीस दात—दहेज आये । तदनन्तर वह धन्यकुमार जोर-जोर से बजते हुए मृदंग आदि वाद्यों के नाद से युक्त उन श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपर-यावत्-विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का अनुभव करते हुए विचरता है ।

धण्णस्स पव्वज्जा—

धन्य की प्रव्रज्या—

४०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे । परिसा निग्गया । राया जहा कोणिओ तहा जियसत्तू निग्गओ ।

४०३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । परिषदा निकली । राजा जितशत्रु भी जैसे कोणिक राजा गया था उसी प्रकार वंदना के लिये गया ।

तए णं तस्स धण्णस्स दारगस्स तं महया जणसद्दं वा-जाव-जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—किण्णं अज्ज काकंदीए नयरीए इंदमहे इ वा-जाव-थूभमहे इ वा जण्णं एते बहवे उग्गा भोगा-जाव-निग्गच्छंति— एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कंचुइपुरिसं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"किण्णं देवाणुप्पिया ! अज्ज काकंदीए नयरीए इंदमहे इ वा-जाव-निग्गच्छंति ?"

तदनन्तर उस धन्यकुमार के मन में महान जन-कोलाहल-यावत्-जनसमुदाय को सुनकर और देखकर इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—क्या आज काकन्दी नगरी में इन्द्रमह है अथवा-यावत्-स्तूपमह है अथवा यज्ञ है, जिसमें ये बहुत से उग्र—भोग कुल के लोग-यावत्-जा रहे हैं—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके कंचुकी पुरुष को बुलाता है, बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! क्या आज काकन्दी नगरी में इन्द्रमह अथवा-यावत्-जा रहे हैं ?'

तए णं से कंचुइपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स आगमणगहियविणिच्छए धण्णं दारयं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज समणे भगवं महावीरे काकंदीए नयरीए बहिया सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते बहवे उग्गा भोगा-जाव-निग्गच्छंति ।"

तत्पश्चात् उस कंचुकी पुरुष ने जिसको श्रमण भगवान महावीर के आगमन की निश्चित जानकारी थी, धन्यकुमार से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज श्रमण भगवान महावीर काकन्दी नगरी के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में यथा-प्रतिरूप अभिग्रह स्वीकार करके संयम तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं, इसलिये ये बहुत से उग्र भोग कुल के लोक-यावत्-जा रहे हैं ।'

तए णं से धण्णे दारए कंचुइपुरिसस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे-जाव-पायचारेणं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ ।

तदनन्तर वह धन्यकुमार कंचुकी पुरुष से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित एवं संतुष्ट हुआ-यावत्-पैदल चलकर जिस ओर श्रमण भगवान विराजते थे उस ओर गया, जाकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके त्रिविध पर्युपासना से पर्युपासना करता है ।

तए णं समणे भगवं महावीरे धण्णस्स दारयस्स तीसे य महइमहालियाए इसिपरिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने धन्यकुमार और उस विशाल ऋषि परिषदा को-यावत्-धर्म कथन किया ।

४०४. तए णं से धण्णे दारए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

४०४. इसके बाद वह धन्यकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और समझकर हृष्ट तुष्ट हो श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया।" जहा जमाली तहा आपुच्छइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म धस त्ति सव्वंगेहिं संनिवडिया। वुत्तपडिवुत्तया जहा महब्बले।

तए णं धण्णं दारयं भद्दा सत्थवाही जाहे नो संचाएइ-जाव-जियसत्तुं आपुच्छइ—"इच्छामि णं देवाणुप्पिया! धण्णस्स दारयस्स निक्खममाणस्स छत्तमउड-चामराओ य विदिन्नाओ।"

तए णं जियसत्तू राया भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—

"अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं सयमेव धण्णस्स दारयस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि।"

सयमेव जियसत्तू निक्खमणं करेइ, जहा थावच्चापुत्तस्सकण्हो।

तए णं से धण्णे दारए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ-जाव-पव्वइए।

तए णं से धण्णे दारए अणगारे जाए-इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिए उच्चारपासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मणसमिए वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी।

धण्णस्स तवचरिया—

४०५. तए णं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए। छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि कप्पइ मे आयंबिलं पडिगाहेत्तए, नो चेव णं अणायंबिलं। तं पि य

'हे भगवन्! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ-यावत्-माता भद्रा सार्थवाहिनी से आज्ञा ले लूं, तदनन्तर मैं आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा।'

'हे देवानुप्रिय! जैसे सुख हो, वैसा करो।' जैसे जमाली ने पूछा था, उसी प्रकार पूछना है।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाहिनी उन अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, अमणाम, अश्रुतपूर्व और कर्कश वचन को सुनकर और विचार कर धम् करती हुई सर्वांग से जमीन पर गिर पड़ी। मूर्च्छा टूटने पर माता-पुत्र की इस विषय में बातचीत हुई, जैसी महाबल कुमार की हुई थी।

इसके बाद भद्रा सार्थवाहिनी जब धन्यकुमार को समझाने में समर्थ नहीं हो सकी-यावत्-जितशत्रु से पूछा—'हे देवानुप्रिय! निष्क्रमण करने वाले धन्यकुमार के लिये छत्र, मुकुट और चामर की याचना करती हूँ।'

तब जितशत्रु राजा ने भद्रा सार्थवाहिनी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये! तुम शीघ्र ही शोक मुक्त और आश्वस्त होओ, आज मैं स्वयं ही धन्यकुमार का निष्क्रमण सत्कार करूंगा।'

जितशत्रु स्वयं ही धन्यकुमार का निष्क्रमण समारोह करता है, जैसे कृष्ण ने थावर्चापुत्र का किया था।

तत्पश्चात् वह धन्यकुमार स्वयं अपने हाथ से पंचमुष्टिक केश लोच करता है-यावत्-प्रव्रजित हुआ।

तब वह धन्यकुमार ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदान भंडमत्तनिक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचन समिति, कायसमिति से युक्त, मनोगुप्त, वचनगुप्त, कायगुप्त, गुप्त (अथवा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति से गुप्त) गुप्तेन्द्रिय और गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया।

धन्य की तपश्चर्या—

४०५. तत्पश्चात् वह धन्य अनगार जिस दिन मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा से प्रव्रजित हुआ, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

'हे भगवन्! आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर आजीवन के लिये निरन्तर षष्ठ षष्ठतप से आचाम्ल (आयंबिल) ग्रहणरूप तप कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहता हूँ और षष्ठ तप के पारणे में भी आचाम्ल शुद्ध भोजन ग्रहण करना

संसट्ठं, नो चेव णं असंसट्ठं। तं पि य णं उज्झियधम्मियं नो चेव णं अणुज्झिय-धम्मियं। तं पि य जं अण्णे बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा नावकंखंति।"

कल्पता है न कि अनाचाम्ल ग्रहण करना। वह भी संसृष्ट (विलिप्त) हाथों से लेना, न कि असंसृष्ट हाथों से। वह भी उज्झित परित्याग रूप धर्मवाला हो न कि अपरित्याग रूप धर्म वाला। वह भी ऐसा हो जिसको और दूसरे बहुत से श्रमण, माहण, अतिथि, कृपण, याचक नहीं चाहते हों।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।"

'हे देवानुप्रिय! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध—विलंब मत करो।'

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगार श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा प्राप्त कर हर्षित एवं संतुष्ट हो जीवन पर्यन्त के लिये निरंतर षष्ठ षष्ठ आचाम्ल ग्रहण करने रूप तपकर्म द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरण करता है।

४०६. तए णं से धण्णे अणगारे पढम-छट्ठखमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ,-जाव-जेणेव काकंदी नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता काकंदीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे आयंबिलं पडिगाहेति, नो चेव णं अणायंबिलं। तं पि य संसट्ठं, नो चेव णं असंसट्ठं। तं पि य उज्झियधम्मियं, नो चेव णं अणुज्झिय-धम्मियं तं पि य जं अण्णे बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा नावकंखंति।

४०६. तत्पश्चात् वह धन्य अनगार प्रथम षष्ठ क्षपण-तप के पारणे में पहले प्रहर में स्वाध्याय करता है, जैसे गौतम स्वामी ने उसी प्रकार धन्य अनगार ने पूछा-यावत्-जहां काकंदी नगरी है, वहां आता है, आकर काकंदी नगरी के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में गृह समुदाण भिक्षाचर्या से भ्रमण करते हुए आचाम्ल ग्रहण करता है किन्तु अनाचाम्ल ग्रहण नहीं करता है। वह भी संसृष्ट करता है, असंसृष्ट ग्रहण नहीं करता है। वह भी उज्झित धर्म वाला ग्रहण करता है, अनुज्झित धर्म वाला ग्रहण नहीं करता है, वह अन्न भी ऐसा जिसे अनेक श्रमण, माहण, अतिथि, कृपण, वणीमग-याचक नहीं चाहते हैं।

तए णं से धण्णे अणगारे ताए अब्भुज्जयाए पययाए पयत्ताए पग्गहियाए एसणाए एसमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगार उद्यमवाली, प्रयत्नवाली, गुरुओं से आज्ञप्त, उत्साहपूर्वक स्वीकार की हुई एषणा समिति से आहार की गवेषणा करते हुए विचरता तो उसे कहीं यदि भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता और यदि पानी मिलता है तो भक्त भोजन प्राप्त नहीं होता है।

तए णं से धण्णे अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अविसादी अपरितंत-जोगी जयण-घडण-जोगचरित्ते अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेइ, पडिगाहेत्ता काकंदीओ नयरीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जहा गोयमे-जाव-पडिदंसेइ।

तदनन्तर—अदीन दीनतारहित, अविमन-प्रसन्नचित्त कलुष-रहित, विषाद रहित अपरितंत योगी निरंतर समाधि-युक्त योग और चारित्र के प्रति यतना और उद्यमशील वह धन्य अनगार यथापर्याप्त भिक्षा ग्रहण करता, ग्रहण करके काकंदी नगरी से बाहर निकलता, निकलकर जैसे गौतम स्वामी-यावत्-दिखाता है।

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ, आहारेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उसके बाद वह धन्य अनगार श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा प्राप्त करके मूर्छारहित, गृद्धिरहित, लिप्सारहित और आसक्ति रहित होकर बिल में सर्प के प्रवेश करने की भांति के आहार करता और आहार करके संयम और तप द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरण करता है।

४०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंववणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

४०८. तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था। जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामीति गिलाइ।

से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-भंडग-सगडिया इ वा एरंडकट्ठसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव धण्णे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

४०७. उसके बाद अन्यदा कदाचित् श्रमण भगवान महावीर काकंदी नगरी से सहस्राम्रवन से निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपद-विहार के लिये विचरण करते हैं।

४०८. तत्पश्चात् वह धन्य अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके संयम और तप द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरता है।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगार उस श्रेष्ठ विपुल, महान, प्रयत्न-पूर्वक प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलकारक, सश्रीक-शोभायुक्त, उदग्र, उत्तम, उदार, महाफल वाले तपः कर्म से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, चर्माच्छादित अस्थिवाला, किटिकिटिकाभूत, कृश, धमनी जैसा हो गया था। वह आत्मशक्ति के सहारे से चलता था, आत्मशक्ति से ठहरता था, बोलने के बाद वह थक जाता था, बोलते हुए थक जाता था, मैं बोलूंगा यह सोचकर खिन्न हो जाता था।

जैसे कोई लकड़ी से भरी गाड़ी, पत्तों से भरी गाड़ी अथवा पत्र, तिल, भांड से भरी गाड़ी अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी अथवा कोयले से भरी गाड़ी सूर्य की उष्णता से सूखकर ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार धन्य अनगार भी ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए ठहरता है, वह तप से उपचित-पुष्ट और मांस शोणित से अवचित-हीन, राख से ढकी हुई हवन की अग्नि के समान तप और तेज से जाज्वल्यमान, तप-तेज श्री से अतीव शोभित होता है।

धण्णस्स तवजणिय-सरीरलावण्णं—

४०९. धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तव-रूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्कछल्ली इ वा कट्ठपाउया इ वा जरग्ग-ओवाहणा इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स पाया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धण्णस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे-तवरूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए कलसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा तरुणिया छिण्णा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी-मिलायमाणी चिट्ठति। एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य का तप जनित शरीर लावण्य—

४०९. धन्य अनगार के पैरों का इस प्रकार का तपजनित लावण्य हुआ था—

जैसे कि सूखी वृक्ष की छाल हो, लकड़ी की खड़ाऊँ हो अथवा जीर्ण जूता हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैर शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि चर्म और शिराओं के कारण पहिचाने जाते हैं न कि मांस और रुधिर से।

धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियों की यहाँ, इस प्रकार की तप जनित सुन्दरता हो गई थी—

जैसे कि कोई कलाय-मटर की फलियां, मूँग की फलियां, उड़द की फलियां कोमल ही तोड़कर धूप में सुखाने से मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, निर्मांस और अस्थि, चर्म और शिराओं से पहचानी जाती थीं न कि मांस और शोणित से।

धण्णस्स णं अणगारस्स जंघाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए काकजंघा इ वा कंकजंघा इ वा ढेणियालियाजंघा इ वा—एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जंघाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की जंघाओं का यह इस प्रकार का तप जनित रूप लावण्य हो गया था—

जैसे काक-जंघा हों, कंक पक्षी की जंघायें हों अथवा ढेणिक पक्षी की जंघायें हों—इसी प्रकार धन्य अनगार की जंघायें भी शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि, चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थी, मांस और रुधिर से नहीं पहिचानी जाती थी।

धण्णस्स णं अणगारस्स जाणूणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए कालिपोरे इ वा मऊरपोरे इ वा, ढेणियालियापोरे इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जाणू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के जानुओं—घुटनों का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ था—

जैसे कि वे कालि—वनस्पति विशेष के पर्व-गांठ, संधि स्थान हों, मयूर पर्व हों अथवा ढेणिक पक्षी के पर्व हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के जानु शुष्क, रूक्ष, निर्मांस अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचाने जाते थे किन्तु मांस और शोणित से नहीं जाने जाते थे।

धण्णस्स णं अणगारस्स ऊरूणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए सामकरिल्ले इ वा बोरीकरिल्ले इ वा सल्लइकरिल्ले इ वा सामलिकरिल्ले इ वा तरुणए छिण्णे उण्हे दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे मिलायमाणे चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स ऊरू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की ऊरुओं का यह इस प्रकार का तपजन्य रूप लावण्य हुआ था—

जैसे—कोमल प्रियंगुवृक्ष की कोपलें, बेर की कोंपलें, शल्यकी वृक्ष की कोंपलें अथवा शाल्मली वृक्ष की कोंपलें तोड़कर सूर्य की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य अनगार की उरु (जंघायें) शुष्क, रुक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थीं; मांस रुधिर से नहीं पहचानी जाती थीं

धण्णस्स णं अणगारस्स कडिपत्तस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए उट्टपादे इ वा जरग्गपाए इ वा महिसपाए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स कडिपत्ते सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के कटिपट्ट (कमर) का तपस्या जनित रूप लावण्य इस प्रकार का हुआ था—

जैसे ऊंट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो, बूढ़े महिष का पैर हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के कटि पट्ट शुष्क, रूक्ष, मांसहीन, अस्थिचर्म शिराओं से पहचाना जाता था मांस और रुधिर की सत्ता से नहीं पहचाना जाता था।

४१०. धण्णस्स णं अणगारस्स उदर-भायणस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्क-दिए इ वा भज्जणयक-मल्ले इ वा कट्ठ-कोलंबए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उदरं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

४१०. धन्य अनगार के उदर भाजन का यह इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ—

जैसे वह सूखी हुई दीवक (मशक) हो अथवा चने आदि भूजने का भाजन हो अथवा काष्ठ का कोलम्ब (पात्र विशेष) हो, इसी प्रकार धन्य अनगार का उदर शुष्क, रूक्ष, मांस [illegible] चर्म शिराओं से पहचाना जाता था, किन्तु मांस और शोणित से नहीं पहचाना जाता था।

धण्णस्स णं अणगारस्स पंसुलिय कडयाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए थासयावली इ वा पाणावली इ वा मुंडावली इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पंसुलिय-कडया, सुक्का लुक्खा, निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की पार्श्वकी अस्थियों—पसलियों [illegible] का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य [illegible]—

जैसे [illegible] अथवा [illegible] की [illegible] इसी प्रकार धन्य अनगार की [illegible], शुष्क, रूक्ष, [illegible] जाती थी। किन्तु [illegible]

४०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

४०७. उसके बाद अन्यदा कदाचित श्रमण भगवान महावीर काकंदी नगरी से सहस्राम्रवन से निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपद-विहार के लिये विचरण करते हैं।

४०८. तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

४०८. तत्पश्चात् वह धन्य अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके संयम और तप द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरता है।

तए णं से धण्णे अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था। जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामीति गिलाइ।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगार उस श्रेष्ठ विपुल, महान, प्रयत्न-पूर्वक प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलकारक, सश्रीक-शोभायुक्त, उदग्र, उत्तम, उदार, महाफल वाले तपः कर्म से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, चर्माच्छादित अस्थिवाला, किटिकिटिकाभूत, कृश, धमनी जैसा हो गया था। वह आत्मशक्ति के सहारे से चलता था, आत्मशक्ति से ठहरता था, बोलने के बाद वह थक जाता था, बोलते हुए थक जाता था, मैं बोलूंगा यह सोचकर खिन्न हो जाता था।

से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-भंडग-सगडिया इ वा एरडकट्ठसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव धण्णे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

जैसे कोई लकड़ी से भरी गाड़ी, पत्तों से भरी गाड़ी अथवा पत्र, तिल, भांड से भरी गाड़ी अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी अथवा कोयले से भरी गाड़ी सूर्य की उष्णता से सूखकर ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार धन्य अनगार भी ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए ठहरता है, वह तप से उपचित-पुष्ट और मांस शोणित से अवचित-हीन, राख से ढकी हुई हवन की अग्नि के समान तप और तेज से जाज्वल्यमान, तप-तेज श्री से अतीव शोभित होता है।

धण्णस्स तवजणिय-सरीरलावण्णं—

धन्य का तप जनित शरीर लावण्य—

४०९. धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तव-रूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्कछल्ली इ वा कट्ठपाउया इ वा जरग्ग-ओवाहणा इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स पाया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

४०९. धन्य अनगार के पैरों का इस प्रकार का तपजनित लावण्य हुआ था—

जैसे कि सूखी वृक्ष की छाल हो, लकड़ी की खड़ाऊँ हो अथवा जीर्ण जूता हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैर शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि चर्म और शिराओं के कारण पहिचाने जाते हैं न कि मांस और रुधिर से।

धन्नस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाण अयमेयारूवे-तवरूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए कलसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा तरुणिया छिण्णा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी-मिलायमाणी चिट्ठंति। एवामेव धन्नस्स अणगारस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियों की यहाँ, इस प्रकार की तप जनित सुन्दरता हो गई थी—

जैसे कि कोई कलाय-मटर की फलियां, मूँग की फलियां, उड़द की फलियां कोमल ही तोड़कर धूप में सुखाने से मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, निर्मांस और अस्थि, चर्म और शिराओं से पहचानी जाती थीं न कि मांस और शोणित से।

धण्णस्स णं अणगारस्स जंघाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए काकजंघा इ वा कंकजंघा इ वा ढेणियालियाजंघा इ वा—एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जंघाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की जंघाओं का यह इस प्रकार का तप जनित रूप लावण्य हो गया था—

जैसे काक-जंघा हों, कंक पक्षी की जंघायें हों अथवा ढेणिक पक्षी की जंघायें हों—इसी प्रकार धन्य अनगार की जंघायें भी शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि, चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थी, मांस और रुधिर से नहीं पहिचानी जाती थी।

धण्णस्स णं अणगारस्स जाणूणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए कालिपोरे इ वा मऊरपोरे इ वा, ढेणियालियापोरे इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जाणू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के जानुओं—घुटनों का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ था—

जैसे कि वे कालि—वनस्पति विशेष के पर्व-गांठ, संधि स्थान हों, मयूर पर्व हों अथवा ढेणिक पक्षी के पर्व हों, इसी प्रकार धन्य अनगार के जानु शुष्क, रूक्ष, निर्मांस अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचाने जाते थे किन्तु मांस और शोणित से नहीं जाने जाते थे।

धण्णस्स णं अणगारस्स ऊरूणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए सामकरिल्ले इ वा बोरीकरिल्ले इ वा सल्लइकरिल्ले इ वा सामलिकरिल्ले इ वा तरुणए छिण्णे उण्हे दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे मिलायमाणे चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स ऊरू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की ऊरूओं का यह इस प्रकार का तपजन्य रूप लावण्य हुआ था—

जैसे—कोमल प्रियंगुवृक्ष की कोपलें, बेर की कोंपलें, शल्यकी वृक्ष की कोंपलें अथवा शाल्मली वृक्ष की कोंपलें तोड़कर सूर्य की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य अनगार की उरु (जंघायें) शुष्क, रुक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थीं; मांस रुधिर से नहीं पहचानी जाती थीं

धण्णस्स णं अणगारस्स कडिपत्तस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए उट्टपादे इ वा जरग्गपाए इ वा महिसपाए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स कडिपत्ते सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के कटिपट्ट (कमर) का तपस्या जनित रूप लावण्य इस प्रकार का हुआ था—

जैसे ऊंट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो, बूढ़े महिष का पैर हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के कटि पट्ट शुष्क, रूक्ष, मांसहीन, अस्थिचर्म शिराओं से पहचाना जाता था मांस और रुधिर की सत्ता से नहीं पहचाना जाता था।

४१०. धण्णस्स णं अणगारस्स उदर-भायणस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्क-दिए इ वा भज्जणयकभल्ले इ वा कट्ठकोलंबए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उदरं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

४१०. धन्य अनगार के उदर भाजन का यह इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ—

जैसे वह सूखी हुई दीवक (मशक) हो अथवा चने आदि भूजने का भाजन हो अथवा काष्ठ का कोलम्ब (पात्र विशेष) हो, इसी प्रकार धन्य अनगार का उदर शुष्क, रूक्ष, मांस रहित चर्म शिराओं से पहचाना जाता था, किन्तु मांस और शोणित से नहीं पहचाना जाता था।

धण्णस्स णं अणगारस्स पंसुलिय-कडयाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए पाणियावली इ वा थासावली इ वा मुंडावली इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पंसुलिय-कडया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार की पार्श्ववर्ती अस्थियों—पसलियों [illegible] का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य [illegible] था—

जैसे [illegible] अथवा [illegible] की [illegible], इसी प्रकार धन्य अनगार की पसलियां शुष्क, रूक्ष निर्मांस अस्थि, चर्म [illegible] जाती थीं। किन्तु मांस [illegible] नहीं जाती थीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स पिट्ठि-करंडयाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार के पीठ की हड्डी के उन्नत प्रदेशों की यह इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हो गई—

से जहानामए कण्णावली इ वा गोलावली इ वा वट्टयावली इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पिट्ठि-करंडया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे वे कान के आभूषण की पंक्ति हों, गोलक विषयों की पंक्ति हों अथवा वर्तक—लाख आदि से बनी गोलियों की पंक्ति हों, इसी प्रकार धन्य अनगार की पृष्ठ-करंडक शुष्क, रूक्ष, मांस-रहित, अस्थि-चर्म-शिराओं से पहचानी जाती थीं, न कि मांस व शोणित से।

धण्णस्स णं अणगारस्स उर-कडयस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार का उर-कटक—वक्षस्थल की यह इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हो गई थी—

से जहानामए चित्तकट्टरे इ वा वीयणपत्ते इ वा तालियंटपत्ते इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उर-कडए सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कुण्डे का अधोभाग होता है अथवा बांस आदि के पत्तों का पंखा होता है, अथवा ताड़ के पत्तों का पंखा होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार का वक्षस्थल शुष्क, रूक्ष, मांस रहित अस्थि चर्म और शिराओं से जाना जाता है, मांस और रुधिर से नहीं पहचाना जाता है।

धण्णस्स णं अणगारस्स बाहाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार की भुजाओं का यह इस प्रकार का तप-जनित सौन्दर्य हुआ—

से जहानामए समिसंगलिया इ वा वाहायासंगलिया इ वा अगत्थियसंगलिया इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स बाहाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव मंस-सोणियत्ताए।

जैसे शमी वृक्ष की फली, वाहाया—वृक्षविशेष की फली अथवा अगस्तिक वृक्ष की फली सूखकर हो जाती हैं; इसी प्रकार धन्य अनगार की भुजायें शुष्क, रूक्ष, निर्मांस अस्थि-चर्म शिराओं से पहचानेने में आती हैं, मांस और रुधिर से नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स हत्थाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार के हाथों की यह, इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हुई—

से जहानामए सुक्कछगणिया इ वा वडपत्ते इ वा पलासपत्ते इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स हत्था सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कि सूखा गोबर होता है, वट वृक्ष के सूखे पत्ते होते हैं अथवा पलाश वृक्ष के सूखे पत्ते होते हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म, और शिराओं से पहचाने जाते हैं, किन्तु मांस और शोणित की लालिमा से युक्त हुए नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स हत्थंगुलियाणं अयमेयारूवे तव-रूव लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियों का यह और इस प्रकार का तपजनित सौन्दर्य हुआ—

से जहानामए कलायसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा तरुणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी मिलायमाणी चिट्ठति, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स हत्थंगुलियाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कल (मटर) की फलियां, मूंग की फलियां अथवा उड़द की फलियां कोमल तोड़कर सूर्य की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म और शिराओं से पहचाने में आती हैं, मांस शोणित से भरी हुई नहीं।

४११. धण्णस्स णं अणगारस्स गीवाए अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

४११. धन्य अनगार की ग्रीवा—गर्दन की यह इस प्रकार की तप जनित सुन्दरता हुई—

से जहानामए करगगीवा इ वा कुंडियागीवा इ वा उच्चत्थवणए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स गीवा सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कि करवे—मिट्टी के छोटे घड़े की ग्रीवा, कुण्डिका की ग्रीवा होती है अथवा उच्च स्थापनक-ऊँचे मुंह वाला बर्तन होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार की ग्रीवा शुष्क, रूक्ष, निर्मांस अस्थि-चर्म शिराओं से पहचानी जाती है, मांस रुधिर सहितता से नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स हणुयाए अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था —

धन्य अनगार की हनु-ठोडी की इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हो गई थी—

से जहानामए लाउफले इ वा हकुवफले इ वा अंबगट्ठिया इ वा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी मिलायमाणी चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स हणुया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे तुम्बे का फल, हकुव का फल अथवा आम की गुठली सूर्य के आतप से सूख कर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य कुमार की ठोडी शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि चर्म और शिराओं से पहचानने में आती है, मांस रुधिर की युक्तता से नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स उट्ठाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार के होठों की यह, इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हुई—

से जहानामए सुक्कजलोया इ वा सिलेस गुलिया इ वा अलत्त गुलिया इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उट्ठा सुक्का लुक्खा निम्मंसा चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कि सूखी हुई जोंक होती है, अथवा श्लेष्म की गुटिका होती है अथवा मेंहदी की गुटिका होती है, इसी प्रकार धन्य अनगार के होठ शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि, चर्म और शिराओं से पहचानने में आते थे, मांस और रुधिर युक्तता से नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स जिब्भाए अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य कुमार की जीभ का यह, इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ—

से जहानामए वडपत्ते इ वा पलासपत्ते इ वा सागपत्ते इ वा एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जिब्भा सुक्का लुक्खा निम्मंसा चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे वट वृक्ष का अथवा पलाश वृक्ष अथवा शाक का पत्ता होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार की शुष्क, रूक्ष, मांस रहित चर्म और शिराओं से जानी जाती है, किन्तु मांस और शोणित युक्तता से नहीं जानी जाती है।

धण्णस्स णं अणगारस्स नासाए अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार की नासिका—नाक की यह इस प्रकार की तप-जनित सुन्दरता हुई—

से जहानामए अंबगपेसिया इ वा अंबाडगपेसिया इ वा माउलुंगपेसिया इ वा तरुणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी-मिलायमाणी चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स नासा सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

जैसे कि आम की फांक अथवा आंवले की फांक अथवा मातुलुंग—बिजोरा की फांक कोमल ही काटकर धूप में [illegible] सुखाने पर कुम्हला-मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य अनगार की नाक, शुष्क, रूक्ष, मांस रहित अस्थि-चर्म-शिराओं से पहचानने में आती है, मांस और शोणित से [illegible] नहीं आती है।

धण्णस्स णं अणगारस्स अच्छीणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए वीणाछिड्डे इ वा वद्धीसगछिड्डे इ वा पभाइयतारिगा इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स अच्छीओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धण्णस्स णं अणगारस्स कण्णाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए मूलाछल्लिया इ वा वालुंकछल्लिया इ वा कारेल्लयछल्लिया इ वा, एवामेव धण्णस अणगारस्स कण्णा सुक्का लुक्खा निम्मंसा चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के कानों का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ—

जैसे कि मूली का छिलका होता है अथवा चर्मरी-खरबूजा का छिलका होता है अथवा करेले का छिलका होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार के कान शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, चर्म और शिराओं से पहचानने में आते हैं, मांस और रक्त की सहितता से नहीं।

धण्णस्स णं अणगारस्स सीसस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए तरुणगलाउए इ वा तरुणगएलालुए इ वा सिण्हालए इ वा तरुणए छिण्णे आयवे दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे-मिलायमाणे चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंस अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

धन्य अनगार के शिर की यह इस प्रकार की तपजनित शोभा हुई थी—

जैसे कोमल तुम्बा अथवा कोमल आलू अथवा कोमल सिस्ता-लक-फल विशेष तोड़कर सूर्य के ताप में सुकाने पर म्लान-मुरझाया हुआ होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार का सिर शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि, चर्म और शिराओं से जाना जाता है, किन्तु मांस और रक्त सम्पन्नता से नहीं।

४१२. धण्णे णं अणगारे सुक्केणं भुक्खेणं पायजंघोरुणा, विगय-तडि-करालेणं कडिकडाहेणं, पिट्ठिमवस्सिएणं उदरभायणेणं, जोइज्जमाणेहिं, पंसुलि-कडएहिं, अक्खसुत्तमाला ति व गणेज्ज-माणेहिं पिट्ठिकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडगदेसभाएणं, सुक्कसप्पसमाणाहिं बाहाहिं, सिढिलकडाली विव लंबतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइओ विव वेवमाणीए सीसघडीए पव्वाय-वयणकमले उब्भडघडामुहे उब्बुणयणकोसे जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ।

४१२. मांस आदि के नहीं रहने से सूखे, भूख के कारण, रूखे पैर, जंघा और उरू से, मांस के क्षीण होने से पार्श्व भागों की अस्थियाँ, नदी के तट के समान भयंकर रूप से जिसमें उन्नत हो रही है ऐसे कटिरूप कटाह—कछुये की पीठ या भाजन विशेष से, यकृतप्लीहा आदि के क्षीण होने से पीठ के साथ मिले हुए उदर-भाजन से शरीर में मांस के सूख जाने से दिखाई देती हुई पसलियों से, रूद्राक्ष के दानों की माला अथवा गिनती की माला के दाने जिस प्रकार पृथक्-पृथक् गिने जा सकते हैं, इसी प्रकार माँस के अभाव में पृथक्-पृथक् गिने जाने वाले पृष्ठ करण्डक (रीढ़ की हड्डी) की संधियों से, गंगा नदी की तरंगों के समान वक्षस्थल रूपी कटक से सूखे हुए सर्प के समान भुजाओं से, शिथिल लगाम के जैसे काँपते हुए अग्रहस्तों—हाथों से, कंपन वायु के रोग वाले पुरुष के समान कम्पायमान सिर रूपी घटी [छोटा घड़ा] से युक्त तथा मुरझाये हुए मुखकमल वाला भयंकर घट के मुख के समान मुखवाला और जिसके नयनकोश भीतर घुस गये हैं, ऐसा वह धन्य अनगार आत्मशक्ति से चलता है, आत्म-शक्ति से खड़ा होता है, वचन बोलकर ग्लान हो जाता है, भाषा बोलने पर खिन्न हो जाता है, भाषा कहूँगा इस विचार मात्र से ग्लान हो जाता है—

से जहानामए इंगालसगडिया इ वा कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा तिलंडासगडिया इ वा एरंडसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ,

जैसे—कोयले से भरी गाड़ी अथवा लकड़ी से भरी गाड़ी अथवा पत्तों से भरी गाड़ी अथवा तिल के डंठलों से भरी गाड़ी अथवा एरंड की लकड़ी से भरी गाड़ी धूप में सूखकर ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई खड़ी होती

एवामेव धण्णे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंससोणिएणं, हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

है—ठहरती है, इसी प्रकार धन्य अनगार ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए खड़ा होता है, तप से उपचित—पुष्ट और मांस-शोणित से अपचित—हीन राख की राशि से ढकी हुई अग्नि के समान तप और तेज से और तप एवं तेज की शोभा से अतीव-अतीव अत्यधिक शोभायमान होता हुआ विराजता है।

सेणियेण महादुक्करकारय-पुच्छा भगवओ समाहाणं च—

श्रेणिक द्वारा महादुष्करकारक-पृच्छा और भगवान का समाधान—

४१३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिए निग्गए। धम्मकहा। परिसा पडिगया।

तए णं सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इमासि णं भंते ! इंदभूइपामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं कतरे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ?"

"एवं खलु सेणिया ! इमासि णं इंदभूइपामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव।"

"से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, इमासि णं इंदभूइपामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ?"

४१३. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ। परिषदा निकली। श्रेणिक निकला। धर्म कथा कही। परिषदा वापस आई।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और अवधारण कर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौनसा अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और कर्मों की महान निर्जरा करने वाला है ?'

'हे श्रेणिक ! इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में निश्चय ही धन्य अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और महा निर्जरा करने वाला है।'

'हे भगवन् ! किस कारण से आप इस प्रकार कहते हैं कि इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और कर्मों की महानिर्जरा करने वाला है ?'

भगवओ उत्तरं—

४१४. "एवं खलु सेणिया ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायन्दी नामं नयरी होत्था। धण्णे दारए उप्पि पासायवडेंसए विहरइ।"

भगवान का उत्तर—

४१४. 'हे श्रेणिक ! उस काल और उस समय में काकंदी नाम की नगरी थी वहां धन्यकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर विचरण करता था।'

तए णं अहं अण्णया कयाई पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव कायन्दी नयरी जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागए। अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरामि। परिसा निग्गया। तहेव-जाव-पव्वइए-जाव-बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ। धण्णस्स णं अणगारस्स सरीरवण्णओ सव्वो-जाव-तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

"से तेणट्ठेणं सेणिया ! एवं वुच्चइ 'इमासि णं इंदभूइ-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्कर-कारए चेव महाणिज्जरतराए चेव।"

सेणिएण धण्णस्स थवणा—

४१५. तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव धण्णे अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुपुण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुकयत्थे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयलक्खणे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले" त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

धण्णस्स सव्वट्ठसिद्ध-गमणं-महाविदेहे सिद्धी य—

४१६. तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स अण्णया कयाइ पुव्वर-त्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं धमणिसंतए जाए। जहा खंदओ तहेव चिंता। आपु-च्छणं। थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं दुरूहइ। मासिया संलेहणा। नवमासा परियाओ-जाव-कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिमसूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं-जाव-नव य गेवेज्जविमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। थेरा तहेव ओयरंति-जाव-इमे से आयारभंडए।

भंते त्ति ! भगवं गोयमे तहेव आपुच्छति, जहा खंदयस्स भगवं वागरेइ-जाव-सव्वट्ठसिद्धे विमाणे उववण्णे।

इसी कारण हे श्रेणिक ! मैं इस प्रकार कहता हूँ कि इन्द्र-भूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार 'अत्यन्त कठिन तप करने वाला एवं कर्मों की महानिर्जरा करने वाला है।'

श्रेणिक द्वारा धन्य की स्तवना—

४१५. तत्पश्चात श्रेणिक राजा श्रमण भगवान की इस बात को सुनकर और उसका मननकर हृष्ट और तुष्ट होकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहां धन्य अनगार था, वहां आता है, आकर धन्य अनगार को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगा—

हे देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे अच्छे पुण्य हैं—तुम पुण्यशाली हो, हे देवानुप्रिय ! तुम कृतार्थ हुए, हे देवानुप्रिय ! तुम शुभ लक्षणों से युक्त हो, हे देवानुप्रिय ! मानव जन्म के जीवन का फल तुमने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार स्तुति कर वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके जिस दिशा से प्रगट हुआ था—आया था उसी दिशा में वापस चला गया।

धन्य का सर्वार्थसिद्धगमन और महाविदेह में सिद्धि—

४१६. तदनन्तर उस धन्य अनगार को अन्यदा किसी समय मध्य रात्रि के समय धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्या-त्मिक विचार-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं इस प्रकार इस उदार तप कर्म के द्वारा धमनी जैसा हो गया हूँ। जैसी स्कन्दक ने की, उसी प्रकार चिन्ता अर्थात् जैसा स्कन्दक ने अनशन करने का विचार किया था उसी प्रकार धन्य अनगार ने विचार किया। भगवान से पूछा। स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर चढ़ा। मासिकी संलेखना की। नौ मास तक श्रमण पर्याय का पालन किया -यावत्-काल मास में मृत्यु के समय काल करके उर्ध्व लोक में चन्द्र, सूर्य, ग्रह गण, नक्षत्र, ताराओं से -यावत्-पुनः ग्रैवेयक विमानों के प्रस्तरों को उलांघ करके ऊपर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। स्थविर उसी प्रकार उतर आये -यावत्-यह उसके आचार भण्डोपकरण हैं।

हे भगवन् ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम उसी प्रकार पूछते हैं जैसा स्कन्दक के बारे में पूछते हैं। उत्तर में भगवान प्रतिपादन करते हैं -यावत-सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ।

"धण्णस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

'हे भदन्त ! धन्य देव की कितने काल की स्थिति प्रतिपादित की गई है ?'

"गोयमा ! तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

'हे गौतम ! तेतीस सागरोपम की स्थिति प्रतिपादित की गई है।'

"से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

'हे भगवन् ! वह धन्य देव उस देवलोक से च्युत होकर कहां पर जायेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?'

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—अणुत्त० व० ३, अ० १।

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा, बोधि प्राप्त होगा, मुक्त होगा, परिनिर्वाण को प्राप्त होगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

卐 卐

२७. महावीरतित्थे सुणक्खत्ताइसमणा

२७ महावीर तीर्थ में सुनक्षत्रादि श्रमण

४१७. तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी *नयरी। जियसत्तू राया।

४१७. उस काल और समय में काकंदी नगरी थी। जितशत्रु राजा था।

तत्थ णं काकंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ—अड्ढा-जाव-अपरिभूया।

उस काकंदी नगरी में भद्रा नाम की सार्थवाहिनी निवास करती थी—जो ऋद्धि सम्पन्न -यावत्- अपरिभूत-किसी से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाली थी।

तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचेंदियसरीरे-जाव-सुरूवे पंचधाइपरिखित्ते जहा धण्णो तहेव। बत्तीसओ दाओ-जाव-उप्पिं पासायवडेंसए विहरइ।

उस भद्रा सार्थवाहिनी का सुनक्षत्र नामक बालक पुत्र था—जो पांचों इन्द्रियों से अहीन और परिपूर्ण था -यावत्- सुरूप था, जैसा धन्य कुमार का उसी प्रकार पांच धायों द्वारा किया लालन-पालन हुआ। बत्तीस दहेज आये -यावत्- ऊपर श्रेष्ठ प्रासाद में विचरता था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे-जाव-समोसरणं। जहा धण्णे तहा सुणक्खत्ते वि निग्गए। जहा थावच्चापुत्तस्स तहा निक्खमणं-जाव-अणगारे जाए—इरियासमिए-जाव-गुत्तबंभयारी।

उस काल, उस समय स्वामी—श्रमण भगवान महावीर पधारे -यावत्- समवसरण हुआ। धर्म परिषदा निकली। जिस प्रकार धन्यकुमार निकला था उसी प्रकार सुनक्षत्र भी निकला। जिस प्रकार थावच्चापुत्र का हुआ था। उसी प्रकार सुनक्षत्र का निष्क्रमण-महोत्सव हुआ -यावत्- अनगार हो गया—ईर्या-समिति वाला -यावत्- गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

तए णं से सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तं चेव दिवसं अभिग्गहं तहेव-जाव-बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ, आहारेत्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

४१८. सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

४१८. स्वामी—श्रमण भगवान महावीर बाहरी जनपद विहार में विचरण करते हैं। ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है और संयम तथा तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता है।

तए णं से सुणक्खत्ते अणगारे तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं जहा खंदओ अईव-अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

तत्पश्चात् वह सुनक्षत्र अनगार उस उदार तपकर्म से जैसे स्कन्दक उसी प्रकार अतीव-अतीव शोभायमान होता हुआ विराजता है।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मकहा। राया पडिगओ। परिसा पडिगया।

उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। स्वामी का पदार्पण हुआ। धर्म श्रवण के लिये परिषदा निकली। राजा भी निकला। धर्मकथा हुई। राजा लौटा। परिषदा वापस लौटी।

४१९. तए णं तस्स सुणक्खत्तस्स अणगारस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खंदयस्स। बहू वासा परियाओ। गोयम पुच्छा। तहेव कहेइ-जाव-सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणमंतं काहिइ।

—अणुत्त० व० ३, अ० २

४१९. इसके अनन्तर उस सुनक्षत्र अनगार को अन्यदा किसी समय मध्यरात्रि के समय में धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ, जैसा स्कन्दक के विषय में बताया है। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया। गौतम स्वामी ने पूछा। उसी प्रकार कथन किया—सर्वार्थसिद्ध देव विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। तेतीस सागरोपम की स्थिति हुई। महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

इसिदासादि-कहाणयनिद्देसो—

४२०. एवं सुणक्खत्तगमेणं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा भाणियव्वा, नवरं—आणुपुव्वीए दोण्णि रायगिहे, दोण्णि साकेते, दोण्णि वणियग्गामे, नवमो हत्थिणपुरे, दसमो रायगिहे। नवण्हं भद्दाओ जणणीओ। नवण्हं वि बत्तीसओ दाओ। नवण्हं निक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं। वेहल्लस्स पिया करेइ। छम्मासा वेहल्लए। नव धण्णे। सेसाणं बहू वासा। मासं संलेहणा। सव्वट्ठसिद्धे। सव्वे महाविदेहे सिज्झिस्संति-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

—अणुत्त० व० ३, अ० ३-१०।

ऋषिदासादि कथानक निर्देश—

४२०. इसी प्रकार सुनक्षत्र के गम—आख्यान समान शेष आठ अध्ययन भी कहना चाहिये, विशेषता इतनी है कि अनुक्रम से दो राजगृह में, दो साकेतपुर में, दो वाणिज्यग्राम में, नौवां हस्तिनापुर में, और दसवां राजगृह नगर में उत्पन्न हुआ। नौ ही माताओं का नाम भद्रा था, नौ ही के बत्तीस दहेज आये। नौ ही का निष्क्रमण थावर्चापुत्र के सदृश हुआ। वेहल्ल का निष्क्रमण महोत्सव पिता ने किया। वेहल्ल अनगार ने छह माह श्रमण पर्याय का पालन किया। धन्य अनगार ने नौ मास श्रमण पर्याय का पालन किया। शेष आठों की श्रमण पर्याय बहुत वर्षों की थी। सबने एक मास की संलेखना की। सर्वार्थसिद्ध विमान में सब उत्पन्न हुए। सभी महाविदेह क्षेत्र में सिद्धगति प्राप्त करेंगे-यावत्-सर्व दुखों का अन्त करेंगे।

卐 卐

२८. महावीरतित्थे सुबाहुकुमार समणे

४२१. सुबाहू भद्दनंदी य, सुजाए य सुवासवे।
तहेव जिणदासे य, धणवई य महब्बले।
भद्दनंदी महच्चंदे, वरदत्ते तहेव य ॥१॥

सुबाहुकुमार जम्म-परिणयाइं—

४२२. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे। वण्णओ।

तस्स णं हत्थिसीसस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं पुप्फकरंडए नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फफल समिद्धे। वण्णओ।

तत्थ णं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खायणे होत्था—दिव्वे।

तत्थ ण हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नामं राया होत्था—महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे, वण्णओ।

तस्स णं अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सीहं सुमिणे पासइ, जहा मेहस्स जम्मणं तहा भाणियव्वं।

तए णं से सुबाहुकुमारे बावत्तरिकलापंडिए-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

४२३. तए णं तं सुबाहुकुमारं अम्मापियरो बावत्तरिकलापंडियं-जाव-अलंभोगसमत्थं वा जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पंच पासायवडेंसगसयाइं कारेंति—अब्भुग्गयमूसियपहसियाइं। एगं च णं महं भवणं कारेंति एवं जहा महब्बलस्स रण्णो, नवरं—पुप्फचूलापामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति। तहेव पंचसइओ दाओ-जाव-उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं-जाव-माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

२८ महावीर तीर्थ में सुबाहुकुमार श्रमण

४२१. सुबाहु, भद्रनंदी, सुजात, सुवासव, जिनदास, धनपति, महाबल, भद्रनन्दी, महच्चन्द्र और वरदत्त—ये [illegible] हैं।

सुबाहुकुमार का जन्म-परिणयादि—

४२२. उस काल, उस समय में हस्तिशीर्ष नामक नगर था—जो ऋद्धि-सम्पन्न, ईति-भीति आदि से रहित और समृद्धियुक्त था। वर्णन करें।

उस हस्तिशीर्ष नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में पुष्पकरंडक नामक उद्यान था—वह सर्व ऋतुओं के पुष्पों और फलों से समृद्ध था। वर्णन करो।

वहाँ कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था—जो दिव्य, दर्शनीय आदि था।

उस हस्तिशीर्ष नगर में महान् हिमवन्त, मलयगिरि, मन्दराचल और महेन्द्र आदि के समान श्रेष्ठ अदीनशत्रु नामक राजा था, वर्णन।

उस अदीनशत्रु राजा का धारिणी प्रमुख एक हजार रानियों का अन्तःपुर-रनिवास था।

तत्पश्चात् वह धारिणी रानी अन्यदा किसी समय [illegible] में सोते हुए स्वप्न में सिंह को देखती है, जैसे मेघ के [illegible] का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी [illegible] चाहिए।

तत्पश्चात् वह सुबाहुकुमार बहत्तर कलाओं में पंडित [illegible] यावत् भोगों का भोग करने में भी समर्थ हो गया।

४२३. तत्पश्चात् माता-पिता सुबाहुकुमार को [illegible] पंडित-यावत्-भोग भोगने में समर्थ [illegible] कर माता-पिता पांच [illegible] प्रासादों का [illegible] जो अपनी ऊँचाई से बड़े-बड़े पर्वतों की [illegible] विशेष [illegible] यह है कि पुष्पचूला प्रमुख [illegible] एक दिन में पाणिग्रहण करवाते हैं। [illegible] ओर-छोर से [illegible] उस श्रेष्ठ प्रासाद के [illegible] को भोगते हुए विचरता है।

सुबाहुकुमारस्स गिहिधम्मपडिवज्जणं—

४२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। अदीणसत्तू जहा कूणिए तहा निग्गए। सुबाहू वि जहा जमाली तहा रहेणं निग्गए-जाव-धम्मो कहिओ। राय-परिसा गया।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ-जाव-एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ सत्थवाहप्पभियओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयंति नो खलु अहं तहा संचाएमि पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जामि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

तए णं से सुबाहू समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

सुबाहुपुव्वभवपुच्छा—

४२५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई-जाव-एवं वयासी—

"अहो णं भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे कंते-कंतरूवे पिए पियरूवे मणुण्णे मणुण्णरूवे मणामे मणामरूवे सोमे सोमरूवे सुभगे सुभगरूवे पियदंसणे सुरूवे।

बहुजणस्स वि य णं भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे-जाव-सुरूवे।

साहुजणस्स वि य णं भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे-जाव-सुरूवे।

सुबाहुणा भंते ! कुमारेणं इमा एयारूवा उराला माणुसिड्ढी किण्णा लद्धा ?-जाव-अभिसमण्णागया ? के वा आसि पुव्वभवे ?"

सुबाहुस्स सुमुहभव-कहाणयं—

४२६. "गोयमा !" इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—

सुबाहुकुमार का गृहिधर्म-श्रावक धर्म अंगीकरण—

४२४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर पधारे। परिषदा निकली। अदीनशत्रु जैसे कोणिक निकला था, उसी प्रकार निकला। सुबाहु भी जैसे जमाली उसी प्रकार रथ पर आरूढ़ होकर निकला-यावत्-धर्मोपदेश दिया। राजा और परिषदा वापस लौटी।

इसके अनन्तर वह सुबाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ अपने स्थान से उठता है -यावत- इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ। आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजेश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारत्व अंगीकार करते हैं, उस प्रकार से तो मैं प्रव्रजित होने में समर्थ नहीं हूँ, किन्तु आप देवानुप्रिय के पास मैं पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहिधर्म—श्रावकाचार धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध—विलंब मत करो।'[1]

तत्पश्चात् सुबाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप, बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार करता है, स्वीकार करके उसी चार घण्टे वाले अश्व रथ पर आरूढ़ होता है, आरूढ होकर जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था—आया था, उसी दिशा को वापस लौट गया।

सुबाहु की पूर्वभव पृच्छा—

४२५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति-यावत्-इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! अहो सुबाहुकुमार इष्ट, इष्टरूप, कांत, कांत-रूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मणाम, मणामरूप, सोम सौम्य, सोमरूप, सुभग, सुभगरूप, प्रियदर्शन और सुरूप है।

हे भगवन् ! सुबाहुकुमार बहुत मनुष्यों-जनों को भी इष्ट, इष्टरूप-यावत्-सुरूप है।

हे भगवन् ! सुबाहुकुमार साधुजनों-सज्जनों को भी इष्ट, इष्टरूप -यावत्-सुरूप है।

हे भगवन ! सुबाहुकुमार को यहां, इस प्रकार की उदार, मनुष्य ऋद्धि – कैसे प्राप्त हुई है—यावत्-अभिसमन्वागत हुई है ? तो यह पूर्वभव में कौन था····?

सुबाहु का सुमुखभव कथानक—

४२६. 'हे गौतम !' इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—

अंतरा वि य णं आगासंसि 'अहो दाणे अहो दाणे' घुट्ठे य । हत्थिणाउरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवं आइक्खइ एवं भासेइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—

तं धण्णे णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई पुण्णे णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई एवं-कयत्थे णं कयलक्खणे णं सुलद्धे णं सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजीवियफले, जस्स णं इमा एयारूवा उराला माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

सुमुहस्स सुबाहुभवो—

४२८. तए णं से सुमुहे गाहावई बहूइं वाससयाइं आउयं पालेइं, पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववण्णे ।

तए णं सा धारिणी देवी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी-ओहीरमाणी तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चेव-जाव-उप्पिं पासाए विहरइ ।

तं एवं खलु गोयमा ! सुबाहुणा इमा एयारूवा उराला माणुसिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।"

"पभू णं भंते ! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?"

"हंता, पभू ।

तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ हत्थिसीसाओ नयराओ पुप्फकरंडयउज्जाणाओ कयवणमालपियजक्खाययणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जयवणविहारं विहरइ ।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-पडिलाभेमाणे विहरइ ।

शय प्रगट हुए—यथा सुवर्ण की वृष्टि हुई, पंचरंगे पुष्पों की वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप किया गया, देव दुन्दुभियां बजाई गई और आकाश में 'अहोदानं अहोदानं' इस प्रकार की घोषणा गूंजी । तब हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य पथों-गलियों में बहुत से लोग परस्पर एक दूसरे को इस प्रकार कहते हैं, बोलते हैं, प्रतिपादन करते हैं, प्ररूपणा करते हैं—

हे देवानुप्रिय ! सुमुख गाथापति धन्य है, देवानुप्रिय ! सुमुख गाथापति पुण्यशाली है एवं कृतार्थ है, कृतलक्षण है और सुमुख गाथापति ने अपने मनुष्य जन्म और जीवन का फल भलीभांति प्राप्त कर लिया है, जिसने यह इस प्रकार की उदार मानवीय ऋद्धि उपार्जित की है, प्राप्त की है, अधिगत की है ।

सुमुख का सुबाहुभव—

४२८. तदनन्तर वह सुमुख गाथापति बहुत सैंकड़ों वर्षों की आयु का उपभोग करता है, उपभोग करके कालमास में काल करके इसी हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् वह धारिणी रानी शैया पर कुछ सोती हुई—कुछ जागती हुई सी ईषत् निद्रा लेती हुई उसी तरह सिंह को देखती है, शेष सब वर्णन उसी भांति-पूर्ववत् जानना-यावत्-ऊपर प्रासादों में विचरता है ।

इस तरह हे गौतम ! सुबाहुकुमार ने यह इस प्रकार की उदार मानवी समृद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है ।

'हे भगवन् ! सुबाहुकुमार आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है ?'

'हां, समर्थ है ।'

तत्पश्चात् भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर अन्यदा किसी समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरंडक उद्यान में स्थित कृतवनमालप्रिय यक्षायतन से निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपदों में विहरण करने लगे ।

तदनन्तर वह सुबाहुकुमार श्रमणोपासक हो गया-जीवाजीवादि तत्वों का मर्मज्ञ होकर -यावत-प्रतिलाभ को प्राप्त करता हुआ विचरता है ।

तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं वा-जाव-जणसण्णिवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था —एवं जहा जमाली तहा निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा, राया पडिगया।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ। निक्खमणाभिसेओ तहेव-जाव-अणगारे जाए इरिया-समिए-जाव-गुत्तबंभयारी।

तदनन्तर उस महान जन कोलाहल और-यावत्-जन समुदाय को सुनने और देखने से उस सुबाहुकुमार को मन इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, कल्पित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—इस तरह जैसे जमाली, उसी प्रकार वह निकला। भगवान ने धर्म का प्रतिपादन किया। परिषद और राजा वापस लौटे।

तत्पश्चात् वह सुबाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म को सुनकर और अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट होकर जैसे मेघकुमार उसी प्रकार माता-पिता से पूछता है। उसी प्रकार निष्क्रमणाभिषेक किया गया-यावत्-अनगार हो गया, ईर्या समिति का पालक-यावत्-गुप्त-ब्रह्मचारी बन गया।

सुबाहुकुमारस्स आगामिभवा महाविदेहे सिद्धी य—

४३१. तए णं से सुबाहु अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठमतवोवहाणेहिं अप्पाणं भावेत्ता, बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

सुबाहुकुमार के आगामी भव और महाविदेह में सिद्धि—

४३१. तत्पश्चात् वह सुबाहु अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से प्रारम्भ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है। अध्ययन करके बहुत-से अनेक चतुर्थ, षष्ठ, अष्ट भक्त आदि नानाविध तपों के आचरण से आत्मा को भावित करके बहुत-अनेक वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना करके, साठ भक्तों—भोजनों को अनशन द्वारा छेदन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर काल मास में काल करके सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

से णं तओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ, केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ।

तत्पश्चात् वह आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर उस देवलोक से देव शरीर को छोड़कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा और वहाँ केवल—निर्मलबोधि—सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा एवं तथारूप स्थविरों के पास मुण्डित होकर, गृह त्यागकर अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा।

से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्णं पाउणिहिइ। आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उवव-ज्जिहिइ। से णं ताओ माणुस्सं, पव्वज्जा, बंभलोए। माणुस्सं, महासुक्के। माणुस्सं, आणए। माणुस्सं, आरणे। माणुस्सं सव्वट्ठ-सिद्धे।

वह वहाँ बहुत वर्षों तक श्रामण्य का पालन करेगा। आलो-चना और प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होता हुआ काल करके सनत्कुमार कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा। वहां से च्युत होकर वह मनुष्यभव धारण करेगा, दीक्षा लेगा और काल-गत होकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न होगा फिर मनुष्य भव धारण करेगा, महाशुक्र कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा। मनुष्यभव लेकर पुनः आणत देवलोक में देव होगा। मनुष्यभव, पुनः आरण कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा। मनुष्य होकर पुनः सर्वार्थसिद्ध में देव रूप से उत्पन्न होगा।

४३२. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति अड्ढाइं जहा दढपइण्णे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—विवागसुयं सु० २ अ० १।

४३२. उसके अनन्तर वहाँ से च्यवन कर वह महाविदेह क्षेत्र में जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न और धनाढ्य होगा, वह दृढ़प्रतिज्ञ के समान सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, परिनिवृत्त होगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

卐 卐

जिणदासो—

४३६. सोगंधिया नयरी। नीलासोगं उज्जाणं। सुकालो जक्खो। अप्पडिहओ राया। सुकण्णा देवी। महचंदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्तो। तित्थयरागमणं। जिणदासपुव्वभवो। मज्झमिया नयरी। मेहरहे राया। सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

जिनदास—

४३६. सौगन्धिका नगरी। नीलाशोक नामक उद्यान था। सुकाल यक्ष था। अप्रतिहत राजा था। सुकृष्णा देवी थी। महाचंद नामक कुमार था। उसकी भार्या का नाम अरहदत्ता था। जिनदास नामक पुत्र था। तीर्थंकर का आगमन हुआ। जिनदास का पूर्वभव पूछना। माध्यमिका नगरी थी। मेघरथ राजा था। सुधर्म अनगार प्रतिलाभित किये-यावत्-सिद्ध हुआ।

धणवई—

४३७. कणगपुरं नयरं। सेयासोयं उज्जाणं। वीरभद्दो जक्खो। पियचंदो राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरिदेवीपामोक्खा पंचसया कन्ना पाणिग्गहणं। तित्थयरागमणं। धणवई जुवरायपुत्ते-जाव-पुव्वभवो। मणिवइया नयरी। मित्तो राया। संभूतिविजए अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे।

धनपति—

४३७. कनकपुर नगर था। श्वेताशोक उद्यान था। वीरभद्र नामक यक्ष का यक्षायतन था। प्रियचन्द्र नामक राजा था। सुभद्रा देवी थी। वैश्रमणकुमार नामक युवराज था। श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। तीर्थंकर भगवान का आगमन हुआ। धनपति युवराजपुत्र-यावत्-पूर्वभव की पृच्छा की। मणिवयिका नगरी थी। वहां मित्र नामक राजा था। संभूतिविजय अनगार प्रतिलाभित किये-यावत्-सिद्ध हुआ।

महब्बलो—

४३८. महापुरं नयरं। रत्तासोगं उज्जाणं। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महब्बले कुमारे। रत्तवईपामोक्खाओ पंचसया कन्ना पाणिग्गहणं। तित्थयरागमणं-जाव-पुव्वभवो। मणिपुरं नयरं। नागदत्ते गाहावई। इंदपुत्ते अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे।

महाबल—

४३८. महापुर नामक नगर था। वहाँ रक्ताशोक नामक उद्यान था। उसमें रक्तपाद नामक यक्ष का यक्षायतन था। राजा का नाम बल था। सुभद्रा देवी थी। महाबल कुमार था। रक्तवती प्रमुख पाँच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। तीर्थंकर भगवान का पदार्पण हुआ यावत्-पूर्वभव की पृच्छा की गई। मणिपुर नगर था। नागदत्त गाथापति था। इन्द्रपुत्र अनगार को प्रतिलाभित किया-यावत्-सिद्ध हुआ।

भद्दनंदी—

४३९. सुघोसं नयरं। देवरमणं उज्जाणं। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया। तत्तवई देवी। भद्दनंदी कुमारे। सिरिदेवीपामोक्खा पंचसया-जाव-पुव्वभवे। महाघोसे नयरे। धम्मघोसे गाहावई। धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे।

भद्रनन्दी—

४३९. सुघोष नगर था। उसमें देवरमण नामक उद्यान था। वीरसेन यक्ष का यक्षायतन था। राजा का नाम अर्जुन था। तत्त्ववतीदेवी थी। भद्रनन्दी कुमार था। श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ-यावत्-पूर्वभव के लिए पूछा। महाघोष नगर था। वहाँ धर्मघोष गाथापति था। धर्मसिंह अनगार को प्रतिलाभित किया था-यावत्-सिद्ध हुआ।

महचंद—

४४०. चंपा नयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दे जक्खे। दत्ते राया। रत्तवती देवी। महचंदे कुमारे जुवराया। सिरिकंतापामोक्खा णं पंचसया कन्ना-जाव-पुव्वभवो। तिगिंछी नयरी। जियसत्तू राया। धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे।

महचंद्र—

४४०. चंपा नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था। जिसमें पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। दत्त नामक राजा था। रानी का नाम रक्तवती था। महचन्द्र कुमार युवराज था। श्रीकान्ता प्रमुख पाँच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ-यावत्-पूर्वभव के लिये पूछा। तिगिंछी नगरी थी। वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। धर्मवीर्य अनगार को प्रतिलाभित किया-यावत्-सिद्ध हुआ।

वरदत्ते—

४४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं साएयं नामं नयरं होत्था। उत्तरकुरुउज्जाणे। पासमिओ जक्खो। मित्तनंदी राया। सिरिकंता देवी। वरदत्ते कुमारे। वरसेणापामोक्खा पंच देवीसया। तित्थयरागमणं। सावगधम्मं। पुव्वभवपुच्छा। सयदुवारे नयरे। विमलवाहणे राया। धम्मरुई अणगारे पडिलाभिए। मणुस्साउए निबद्धे। इहं उप्पण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स कुमारस्स। चिंता-जाव-पव्वज्जा। कप्पंतरिते-जाव-सव्वट्ठसिद्धे। तओ महाविदेहे जहा दढपइण्णे-जाव-सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—विवागसुयं सु० २, अ० २-१०

वरदत्त—

४४१. उस काल, उस समय में, साकेत नाम का नगर था। वहां उत्तरकुरु नाम का उद्यान था। उसमें पार्श्वमृग यक्ष का यक्षायतन था। राजा का नाम मित्रनन्दी था। श्रीकान्ता देवी थी। वरदत्त कुमार था। वरसेना प्रमुख पांच सौ स्त्रियां थीं। तीर्थंकर भगवान का आगमन हुआ। श्रावक धर्म ग्रहण किया। पूर्वभव की पृच्छा। शतद्वार नगर था। वहां विमलवाहन राजा था। धर्मरुचि अनगार को आहारदान से प्रतिलाभित किया। मनुष्यायु का बंध किया। यहां उत्पन्न हुआ। शेष वर्णन सुबाहु-कुमार की तरह जानना। विचार किया-यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार की। कल्पान्तरों में उत्पन्न होने के बाद-यावत्-सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होगा। वहां से च्यवकर महाविदेह में उत्पन्न होगा, दृढ़प्रतिज्ञ की तरह-यावत्-सिद्ध होगा-यावत्-सर्व दुःखों का अंत करेगा।

卐 卐

30. महावीरतित्थे सेणियनत्तू पउमसमणो अण्णे य

३० महावीरतीर्थ में श्रेणिकनप्तृ (पौत्र) पद्म आदि श्रमण और अन्य

४४२. गाहा—पउमे, महापउमे, भद्दे, सुभद्दे, पउमभद्दे।
पउमसेणे, पउमगुम्मे, नलिणिगुम्मे, आणंदे, नंदणे।

४४२. (गाथा) ···· पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन पद्मगुल्म, नलिनीगुल्म, आनंद और नंदन (ये दस अध्ययन हैं।)

पउमजम्मणं—

४४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउआ काली नामं देवी होत्था सुउमालपाणिपाया-जाव-सुरूवा। तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था सुउमाल-जाव-सुरूवे। तस्स णं कालस्स कुमारस्स पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाला-जाव-सुरूवा-जाव-विहरइ।

पद्म-जन्म—

तए णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिन्तरओ सचित्तकम्मे-जाव-सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा। एवं जम्मणं, जहा महाबलस्स,-जाव-नामधेज्जं— "जम्हा णं अम्हं इमे दारए कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं पउमे पउमे"। सेसं जहा महाबलस्स। अट्ठओ दाओ।-जाव-उप्पिं पासायवरगए विहरइ।

तदनन्तर वह पद्मावती रानी अन्यदा किसी समय जिसकी दीवालों पर चित्राम बने हुए थे ऐसे उस उत्तम शयनगृह में सोई हुई थी -यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जागी-जाग गई। जन्म से लेकर नामकरण तक का सभी वर्णन महाबल के समान जानना चाहिये—'क्योंकि हमारा यह बालक कालकुमार का पुत्र और पद्मावती का आत्मज है, इसलिये हमारे इस दारक का नाम पद्म-पद्म हो।' इसके बाद का शेष वृत्तान्त महाबल के सदृश जानना। आठ दात-प्रीतिदान-दहेज मिले -यावत्-श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहते हुए विचरता है।

पउमपव्वज्जा—

सामी समोसरिए। परिसा निग्गया। कूणिए निग्गए। पउमे वि जहा महाबले, निग्गए। तहेव अम्मापिइआपुच्छणा,-जाव-पव्वइए अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-गुत्तबम्भयारी।

पद्म की प्रव्रज्या—

स्वामी—श्रमण भगवान महावीर पधारे। परिषदा निकली। कोणिक भी निकला। पद्म भी महाबल के समान धर्मोपदेश सुनने के लिये निकला। उसी प्रकार माता-पिता से पूछना-यावत्-प्रव्रजित हुआ। अनगार हो गया, ईर्या समिति का पालक-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

तए णं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम-जाव-विहरइ।

तत्पश्चात् वह पद्म अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन कर बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम भक्त तप से आत्मा को भावित करता हुआ -यावत्-विचरता है।

तए णं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं, जहा मेहो, तहेव धम्मजागरिया, चिन्ता। एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपुच्छित्ता विउले-जाव-पाओवगए समाणे तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं, बहुपडिपुण्णाइं, पंच वासाइं सामण्णपरियाए। मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं। आणुपुव्वीए कालगए। थेरा ओतिण्णा। भगवं गोयमे पुच्छइ, सामी कहेइ,-जाव-सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइय-पडिक्कन्ते उड्ढं चन्दिम० सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने। दो सागराइं।

तत्पश्चात् वह पद्म अनगार उस उदार तप कर्म से मेघ के सदृश, उसी प्रकार धर्म जागरणा, चिन्तन और जैसे मेघ अनगार ने पूछा आदि उसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर को पूछकर विपुल-यावत्-पादपोपगत होकर—(पादपोपगमन संथारा लेकर) तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, परिपूर्ण पांच वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन किया। एक मास की संलेखना से आत्मा को आराधना करते हुए और अनशन से साठ भक्तों का छेदन कर अनुक्रम से काल को प्राप्त हुआ। स्थविर उतरे। भगवान गौतम ने पूछा, स्वामी ने कहा-यावत्-अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन कर आलोचना प्रतिक्रमण करके चन्द्र आदि से ऊपर सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहां उसकी दो सागर की आयु स्थिति हुई।

"से णं, भन्ते, पउमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं"। पुच्छा। "गोयमा, महाविदेहे वासे, जहा दढपइन्नो,-जाव-अन्तं काहिइ"।

—कप्पव० अ० १

'हे भगवन ! वह पद्म देव आयुक्षय होने पर उस देवलोक से च्युत होकर' गौतम ने पूछा। 'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में, दृढ़प्रतिज्ञ के सदृश-यावत्-अन्त करेगा।'

महावीरतित्थे सेणियनत्तूणो महापउमाइसमणा—

४४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चम्पाए

महावीर तीर्थ में श्रेणिक-पौत्र महापद्म आदि श्रमण—

४४४. उस काल और उस समय चंपा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। कोणिक राजा था। पद्मावती रानी थी। उस

नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवो होत्था । तीसे णं सुकालीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे । तस्स ण सुकालस्स कुमारस्स महापउमा नामं देवी होत्था सुउमाल० ।

चंपानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या (कोणिक राजा की मौसी मां) सुकाली नामकी रानी थी। उस सुकाली का सुकालकुमार नाम का पुत्र था। उस सुकालकुमार की महापद्मा नामक स्त्री थी जो सुकुमाल शरीर वाली और सुन्दरी थी।

तए णं सा महापउमा देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि, एवं तहेव, महापउमे नामं दारए-जाव-सिज्झिहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणमंतं काहिइ । नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ उक्कोसट्ठिईओ ।

तत्पश्चात् वह महापद्मा रानी अन्यदा किसी समय तथारूप उस (शय्या) में और सब वर्णन पूर्ववत् जानना, बालक का नामकरण महापद्म किया—यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा। विशेषता यह है कि ईशानकल्प में उत्कृष्ट स्थिति वाला उत्पन्न हुआ।

४४५. एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा । मायाओ सरिसनामाओ । कालाईणं दसण्हं पुत्ता आणुपुव्वीए—

दोण्हं च पञ्च चत्तारि तिण्हं तिण्हं च होन्ति तिण्णेव ।
दोण्हं च दोन्नि वासा सेणियनत्तूण परियाओ ।१।

४४५. इसी प्रकार शेष आठ के लिये भी जानना चाहिये। माताओं के नाम सदृश हैं— मातायें सदृशनामवाली हैं।

कालादि के दसों पुत्रों की अनुक्रम से श्रमण पर्याय इस प्रकार है—श्रेणिक के पौत्रों में से दो ने पांचवर्ष, तीन ने चार वर्ष, तीन ने तीन वर्ष, और दो ने दो वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया।

उववाओ आणुपुव्वीए-पढमो सोहम्मे, बिइओ ईसाणे, तइओ सणंकुमारे, चउत्थो माहिन्दे, पञ्चमो बम्भलोए, छट्ठो लन्तए, सत्तमो महासुक्के, अट्ठमो सहस्सारे, नवमो पाणए, दसमो अच्चुए । सव्वत्थ उक्कोसट्ठिई भाणियव्वा । महाविदेहे सिद्धे ।

—कप्पव० अ० ३-१०

अनुक्रम से इस प्रकार उत्पन्न हुए—पहला सौधर्म कल्प में, दूसरा ईशानकल्प में, तीसरा सनत्कुमारकल्प में, चौथा माहेन्द्र कल्प में, पांचवा ब्रह्मलोक कल्प में, छठा लान्तक कल्प में, सातवां महाशुक्र कल्प में, आठवा सहस्रारकल्प में, नौवा प्राणत में, दसवां अच्युत में। सबकी उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिये। महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होंगे।

卐 卐

३१. महावीरतित्थे हरिएसबलो समणो

३१ महावीर तीर्थ में हरिकेशबल श्रमण

जन्नवाडे भिक्खट्ठं गमणं—

४४६. सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसबलो नाम, आसी भिक्खू जिइंदिओ ।१।

इरि-एसण-भासाए, उच्चारसमिईसु य ।
जओ आयाण-निक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ।२।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जन्नवाडमुवट्ठिओ ।३।

तं पासिऊणमेज्जन्तं, तवेण परिसोसियं ।
पन्तोवहि-उवगरणं, उवहसन्ति अणारिया ।४।

जाईमय-पडिबद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्ववी ।५।

जातिमद से प्रतिबद्ध—दृप्त, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी लोगों ने इस प्रकार कहा ।५।

हरिएसं दट्ठूणं माहणरोसो—

हरिकेश को देखकर ब्राह्मणों का रोष—

४४७. कयरे आगच्छइ दित्तरूवे ? काले विकराले फोक्कनासे।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कंठे ।६।

४४७. बीभत्स रूप वाला, काला, विकराल, बेडौल नाक वाला, अल्प एवं मलिन वस्त्र धारी, पांशुपिशाच—धूलि धूसरित होने के कारण भूत की तरह दिखाई देने वाला—गले में संकरदूष्य (कूड़े के ढेर से उठाकर लाया गया वस्त्र) धारण करने वाला यह कौन आ रहा है ? ।६।

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे ? काए व आसा इहमागओसि ?
ओम-चेलया पंसु-पिसायभूया, गच्छ क्खलाहि किमिहं ठिओ सि ।७।

अरे अदर्शनीय ! तू कौन है ? यहां किस आशा से आया है तू ? गंदे और धूलि धूसरित वस्त्र से तू अधनंगा पिशाच की तरह दीख रहा है। जा, भाग यहां से, यहां क्यों खड़ा है ? ।७।

जक्खया हरिएसपसंसा—

यक्ष द्वारा हरिकेश की प्रशंसा—

४४८. जक्खे तहिं तिंदुयरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्था ।८।

४४८. उस महामुनि के प्रति अनुकंपा भाव रखने वाले तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष ने अपने शरीर का गोपन कर इस प्रकार कहा— ।८।

समणो अहं संजओ बंभयारी, विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ।९।

"मैं श्रमण हूँ, मैं संयत हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं धन, पचन—भोजन पकाना और परिग्रह का त्यागी हूँ। भिक्षा के समय दूसरों के लिये निष्पन्न आहार के लिये यहां आया हूं ।९।

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणेह मे जायण-जीविणो त्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सी ।१०।

यहां प्रचुर अन्न दिया जा रहा है, खाया जा रहा है, उपभोग में लाया जा रहा है। आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भिक्षा-जीवी हूँ। अतः बचे हुए अन्न में से कुछ इस तपस्वी को भी मिल जाये ।१०।

जक्खस्स माहणेहिं संवादो—

यक्ष का ब्राह्मणों से संवाद—

माहणा—

ब्राह्मण—

४४९. उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं।
न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओ सि ? ।११।

यह भोजन केवल ब्राह्मणों के लिये तैयार किया गया है। यह एक पक्षीय है, अतः दूसरों के लिये अदेय है। हम तुझे यह यज्ञार्थ निष्पन्न अन्नजल नहीं देंगे। फिर तूँ यहां क्यों खड़ा है ?।११।

जक्खो—

यक्ष—

थलेसु बीयाइ ववंति कासगा, तहेव निन्नेसु य आससीए।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ।१२।

अच्छी फसल की आशा से कृषक जैसे ऊँची जमीन में बीज बोते हैं, वैसे ही नीची जमीन में भी बोते हैं। इस श्रद्धा से ही मुझे दान दो, मैं भी पुण्य क्षेत्र हूँ अतः मेरी भी आराधना करो ।१२।

माहणा—

ब्राह्मण—

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा।
जे माहणा जाइ-विज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ।१३।

संसार में ऐसे क्षेत्र हमें मालूम हैं, जहाँ बोये गये बीज पूर्ण रूप से उग आते हैं। जो जाति और विद्या से संपन्न ब्राह्मण हैं, वे ही पुण्य क्षेत्र हैं ।१३।

जक्खो—

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइ विज्जा-विहीणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ।१४।
तुब्भेत्थ भो भारधरा गिराणं, अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ।१५।

यक्ष—

जिनमें क्रोध, मान, हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह है वे जाति और विद्या से विहीन ब्राह्मण पापक्षेत्र हैं ।१४।

हे ब्राह्मणो ! इस संसार में तुम लोग केवल वाणी का भार ही वहन कर रहे हो, वेदों को पढ़कर भी, उनके अर्थ को नहीं जानते हो । जो मुनि भिक्षा के लिये समभावपूर्वक ऊँच-नीच घरों में जाते हैं, वे ही पुण्य क्षेत्र हैं ।१५।

माहणा—

अज्झावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किं नु सगासि अम्हं ?
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा ! ।१६।

ब्राह्मण—

अध्यापकों के प्रति प्रतिकूल बोलने वाला अरे निर्ग्रन्थ ! हमारे सामने यह क्या बकवास कर रहा है ? भले यह अन्नजल सड़कर नष्ट हो जाये, परन्तु हम तुझे नहीं देंगे ।१६।

जक्खो—

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स ।
जइ मे न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जन्नाण लहित्थ लाहं ।१७।

यक्ष—

मैं समितियों से सुसमाहित हूँ, गुप्तियों से गुप्त हूँ और जितेन्द्रिय हूँ, अतएव यदि यह एषणीय आहार मुझे नहीं देंगे तो इन यज्ञों का आज तुम क्या लाभ लोगे ? ।१७।

माहणा—

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खंडिएहिं ।
एयं खु दंडेण फलेण हंता, कंठमि घेत्तूण खलेज्ज जो णं ।१८।

ब्राह्मण—

यहां है कोई क्षत्रिय, उपज्योतिष—रसोइया, अध्यापक और छात्र, जो इसको डंडे से, फलक से, पीटकर और गला पकड़कर यहां से निकाल दें ।१८।

कुमारेहिं हरिएसताडणं—

४५०. अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहि वित्तेहि कसेहि चेव, समागया तं इसिं तालयंति ।१९।

कुमारों द्वारा हरिकेश-ताड़न—

४५०. अध्यापकों के वचन सुनकर बहुत से कुमार दौड़ते हुए वहां आये और डंडों से, बेंतों से, चाबुकों से उस ऋषि को पीटने लगे ।१९।

भद्दाए निवारणं पसंसा य—

४५१. रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया, 'भद्द त्ति' नामेण अणिंदियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ।२०।
देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना मु रन्ना मणसा न झाया ।
नरिंद-देविंदभिवंदिएणं, जेणम्हि वंता इसिणा स एसो ।२१।

भद्रा द्वारा निवारण और प्रशंसा—

४५१. राजा कौशलिक की अनिन्द्य सुन्दरी भद्रा नाम की कन्या ने संयत—मुनि को पिटते देखकर क्रुद्ध कुमारों को रोका ।२०।

देवता की बलवती प्रेरणा से राजा ने मुझे इस मुनि को दिया था, किन्तु मुनि ने मुझे मन से भी न चाहा । मेरा परित्याग करने वाले ये मुनि—ऋषि नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा भी पूजित हैं ।२१।

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ संजओ बंभयारी ।
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ।२२।

महाजसो एस महाणुभागो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे निद्दहेज्जा ।२३।

जक्खेहिं निवारणं असुरेहिं कुमारताडणं य—

४५२. एयाइं तीसे वयणाइं सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयंति ।२४।
ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयंति।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा, इणमाहु भुज्जो ।२५।

असुर यक्ष द्वारा निवारण और कुमार-ताड़न—

४५२. पुरोहित की पत्नी भद्रा के इन सुभाषित वचनों को सुनकर ऋषि की सेवा के लिये यक्ष कुमारों को रोकने लगे।

आकाश में स्थित भयंकर रूप वाले असुर भावापन्न क्रुद्ध यक्ष उनको प्रताड़ित करने लगे। कुमारों को क्षत-विक्षत और खून की उल्टी करते देखकर भद्रा ने पुनः कहा ।२५।

भद्दाए पुणो पसंसा—

४५३. गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहि खायह।
जायतेयं पाएहि हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ।२६।
आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह ।२७।

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा ।२८।

भद्रा द्वारा पुनः प्रशंसा—

४५३. जो भिक्षु का अपमान करते हैं, वे नखों से पर्वत खोदते हैं, दांतों से लोहा चबाते हैं और पैरों से अग्नि को कुचलते हैं।

महर्षि आशीविष हैं, घोर तपस्वी हैं, घोरव्रती हैं, घोर पराक्रमी हैं। जो भिक्षु को भिक्षा काल में व्यथित करते हैं वे लोग पतंगों की भांति अग्नि में गिरते हैं ।२७।

यदि तुम लोग अपना जीवन और धन चाहते हो तो सब मिलकर, नतमस्तक होकर इनकी शरण लो। तुम्हें मालूम होना चाहिये—यह ऋषि कुपित होने पर समस्त विश्व को भस्म कर सकते हैं।२८।

माहणेण खमाजायणं—

४५४. अवहेडिय-पिट्ठि-सउत्तमंगे, पसारिया बाहु अकम्मचेट्ठे।
निब्भेरियच्छे रुहिरं वमंते, उड्ढंमुहे निग्गय-जीह-नेत्ते ।२९।

ते पासिया खंडियकट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ, हीलं च निंदं च खमाह भंते! ।३०।

वालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते!।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ।३१।

ब्राह्मणों द्वारा क्षमा याचन—

४५४. मुनि को पीटने वाले कुमारों—छात्रों के सिर पीठ की ओर झुक गये थे। उनकी भुजायें फैल गई थीं। वे निश्चेष्ट हो गये थे। उनकी आंखें खुली की खुली रह गई थीं। उनके मुँह से रक्त बहने लगा था। उनके मुँह ऊपर को हो गये थे। उनकी जीभें और आँखें बाहर निकल आई थीं ।२९।

इस प्रकार उन छात्रों को काष्ठ की तरह निश्चेष्ट देखकर वह उदास और भयभीत ब्राह्मण ऋषि को प्रसन्न करने लगा—भन्ते! हमने जो आपकी अवहेलना और निन्दा की है, उसे क्षमा करें ।३०।

भन्ते! मूढ़ अज्ञानी बालकों ने आपकी जो अवहेलना की है, उन्हें आप क्षमा करें। ऋषिजन महान प्रसन्नचित्त होते हैं, मुनि किसी पर क्रोध नहीं करते हैं, मुनि क्रोध करने वाले नहीं होते हैं ।३१।

मुणी—

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पओसो न मे अत्थि कोइ।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ।३२।

मुनि—

मेरे मन में न पहले कोई द्वेष था, न अब है और न भविष्य में भी होगा। यक्ष सेवा करते हैं, उन्होंने ही कुमारों को प्रताड़ित किया है ।३२।

माहणा—

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ।३३।

ब्राह्मण—

धर्म और अर्थ को यथार्थ रूप से जानने वाले भूतिप्रज्ञ आप क्रोध नहीं करें। हम सब मिलकर आपके चरणों में आये हैं, शरण ले रहे हैं ।३३।

अच्चेमु ते महाभाग !, न ते किंचि न अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणा-वंजण-संजुयं।३४।

हे महाभाग ! हम आपकी अर्चना करते हैं, आपका ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी हम अर्चना न करें। अब आप दधि आदि नाना व्यंजनों से मिश्रित शालि—चावलों से निष्पन्न भोजन खाइये।३४।

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा।
बाढं ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स ऊ पारणए महप्पा।३५।

यह हमारा प्रचुर अन्न है, हमारे अनुग्रहार्थ इसे स्वीकार कीजिये। इस आग्रह पर ऋषि ने स्वीकृति दी और एक मास की तपस्या का पारणा करने के लिए आहार-पानी ग्रहण किया।३५।

तहियं गंधोदय-पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहो दाणं च घुट्ठं।३६।

देवों ने वहां गंधोदक, पुष्प और दिव्यधन की वर्षा की और दुन्दुभियां बजाईं, और आकाश में 'अहोदानम्' का घोष किया।३६।

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा।३७।

प्रत्यक्ष में तप की विशेषता—महिमा दिख रही है किन्तु जाति की कोई विशेषता नहीं दीखती है। यह हरिकेश मुनि श्वपाकपुत्र—चांडाल-पुत्र हैं जिनकी ऐसी महान चमत्कारी ऋद्धि है।३७।

मुणिणा जण्णसरूवपरूवणं—

मुनि द्वारा यज्ञ-स्वरूप प्ररूपण—

मुणी—

४५५. किं माहणा ! जोइसमारभंता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ?।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति।३८।

मुनि—

४५५. हे ब्राह्मणो ! अग्नि का समारम्भ (यज्ञ) करते हुए क्या तुम बाहर से जल से शुद्धि करना चाहते हो ? जो बाहर से शुद्धि की खोज करते हैं, उन्हें कुशल पुरुष सुदृष्ट—सम्यग्द्रष्टा नहीं कहते हैं।३८।

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा ! पगरेह पावं।३९।

कुश, यूप, तृण, काष्ठ और अग्नि का प्रयोग तथा प्रातः और संध्या जल का स्पर्श—इस प्रकार तुम मन्दबुद्धि लोग प्राणियों और भूत (वृक्षादि) जीवों का विनाश करते हुए पापकर्म कर रहे हो।३९।

माहणा—

कहं चरे भिक्खू ? वयं जयामो, पावाइ कम्माइ पणुल्लयामो।
अक्खाहि णे संजय ! जक्खपूइया, कहं सुजट्ठं कुसला वयंति।४०।

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! हम कैसे प्रवृत्ति करें ? कैसे यज्ञ करें ? कैसे पाप कर्मों को दूर करें ? हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताओ कि कुशल पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ कौन-सा कहते हैं ?।४०।

मुणी—

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण मायं, एयं परिन्नाय चरंति दंता।४१।

मुनि—

सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणा।
वोसट्ठकाया सुइचत्तदेहा, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं।४२।

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया किं च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू ? कयरेण होमेण हुणासि जोइं ?
। ४३ ।

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सी है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षेपक कड़छी क्या है ? करीषांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ?।४३।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।४४।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छी है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ।४४।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतितित्थे ? कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्खणे संजय ! जक्खपूइया, इच्छामो नाउं भवओ सगासे ।४५।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा ह्रद-सरोवर कौन सा है ? शांतितीर्थ कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं ।४५।

मुणी—

धम्मे हरए बंभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ।४६।

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुष लेश्यावाला धर्म मेरा ह्रद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ ।४६।

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता ।४७।
—त्ति बेमि
—उत्त० अ० १२

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्मह्रद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं ।४७।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐 卐

३२. महावीरतित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाणारसी-उज्जाणे जयघोसमुणी आगमणं—

४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्नंमि जयघोसे त्ति नामओ ।१।

इन्दियग्गामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते पत्तो वाणारसिं पुरिं ।२।

वाराणसी के उद्यान में जयघोष मुनि का आगमन—

४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याज्ञिक था ।१।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था। एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया ।२।

वाणारसीए बहिया उज्जाणंमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंथारे तत्थ वासमुवागए ।३।

वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या वसति और संस्तारक—पीठ, फलक आदि आसन की याचना कर ठहर गया ।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्नं जयइ वेयवी ।४।

उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ।४।

अह से तत्थ अणगारे मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नंमि भिक्खस्सऽट्ठा उवट्ठिए ।५।

वह जयघोष मुनि एक मास की तपस्या के पारणा के समय भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ मण्डप में उपस्थित हुआ ।५।

भिक्खादाण-निसेहो—

भिक्षादान का निषेध—

४५७. समुवट्ठियं तहिं सन्तं जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्खं भिक्खू ! जायाहि अन्नओ ।६।

४५७. यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को इन्कार करता है—भिक्षु ! मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा, अन्यत्र याचना करो ।६।

जे य वेयविऊ विप्पा जन्नट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य; जे य धम्माण पारगा ।७।

जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी हैं (तथा)—।७।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं; भो भिक्खू ! सव्वकामियं ।८।

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, हे भिक्षु ! यह सर्वकामिक—सर्वरसयुक्त एवं सब को अभीष्ट अन्न उन्हीं को देना है।" ।८।

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ—गवेसओ ।९।

वहाँ, इस प्रकार याजक विजयघोष के द्वारा मना किए जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला वह महामुनि न रुष्ट—क्रुद्ध हुआ और न प्रसन्न हुआ ।९।

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए इमं वयणमब्बवी ।१०।

न तो अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवननिर्वाह के लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) के कारण हेतु मुनि ने इस प्रकार कहा— ।१०।

वेद-जन्नाणविमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की वक्तव्यता—

जयघोस मुणी—

जयघोष मुनि—

४५८. न वि जाणासि वेयमुहं न वि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च जं च धम्माण वा मुहं ।११।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि अह जाणासि तो भण ।१२।
तस्सऽक्खेवपमोक्खं च अचयंतो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजली होउं पुच्छई तं महामुणिं ।१३।

विजयघोसो—

वेयाण च मुहं बूहि बूहि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि बूहि धम्माण वा मुहं ।१४।

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया किं च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू ? कयरेण होमेण हुणासि जोई ? ।४३।

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सी है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षेपक कड़छी क्या है ? करीषांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ?४३।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।४४।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छी है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है। ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ।४४।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतितित्थे ? कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया, इच्छामो नाउं भवओ सगासे ।४५।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा ह्रद-सरोवर कौन सा है ? शांतितीर्थ कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं ।४५।

मुणी—

धम्मे हरए बंभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ।४६।

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता ।४७।

—त्ति बेमि

—उत्त० अ० १२

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुष लेश्यावाला धर्म मेरा ह्रद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ ।४६।

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है। ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है। इस धर्मह्रद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं ।४७।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

卐

卐

३२. महावीरतित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाणारसी-उज्जाणे जयघोसमुणी आगमणं—

४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो।
जायाई जमजन्नंमि जयघोसे त्ति नामओ ।१।

इंदियग्गामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी।
गामाणुगामं रीयंते पत्तो वाणारसिं पुरिं ।२।

वाराणसी के उद्यान में जयघोष मुनि का आगमन—

४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याजिक था ।१।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था। एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया ।२।

वाणारसीए वहिया उज्जाणंमि मणोरमे।
फासुए सेज्जसंथारे तत्थ वासमुवागए।३।

वाराणसी के वाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या वसति और संस्तारक—पीठ, फलक आदि आसन की याचना कर ठहर गया।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्नं जयइ वेयवी।४।

उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था।४।

अह से तत्थ अणगारे मासक्खमणपारणे।
विजयघोसस्स जन्नंमि भिक्खस्सऽट्ठा उवट्ठिए।५।

वह जयघोष मुनि एक मास की तपश्चर्या के पारणा के समय भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ मंडप में उपस्थित हुआ।५।

भिक्खादाण-निसेहो—

भिक्षादान का निषेध—

४५७. समुवट्ठियं तहिं सन्तं जायगो पडिसेहए।
न हु दाहामि ते भिक्खं भिक्खू! जायाहि अन्नओ।६।

४५७. यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को इन्कार करता है—भिक्षु! "मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा अन्यत्र याचना करो।६।

जे य वेयविऊ विप्पा जन्नट्ठा य जे दिया।
जोइसंगविऊ जे य; जे य धम्माण पारगा।७।

जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी हैं (तथा)—।७।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देयं; भो भिक्खू! सव्वकामियं।८।

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, हे भिक्षु! यह सर्वकामिक—सर्वरसयुक्त एवं सब को अभीष्ट अन्न उन्हीं को देना है।" ।८।

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो जायगेण महामुणी।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ—गवेसओ।९।

वहाँ, इस प्रकार याजक विजयघोष के द्वारा मना किए जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला वह महामुनि न रुष्ट—क्रुद्ध हुआ और न प्रसन्न हुआ।९।

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए इमं वयणमव्ववी।१०।

न तो अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवन-निर्वाह के लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) व कल्याण हेतु मुनि ने इस प्रकार कहा— ।१०।

वेद-जन्नाणदिमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की वक्तव्यता—

जयघोस मुणी—

जयघोष मुनि—

४५८. न वि जाणासि वेयमुहं न वि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं जं च जं च धम्माण वा मुहं।११।

४५८. (विप्र!) "तू वेद के मुख को नहीं जानता है और न जो यज्ञों का मुख है, नक्षत्रों का जो मुख है और धर्मों का जो मुख है, उसे ही जानता है।" ।११।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि अह जाणासि तो भण।१२।

—"जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी तू नहीं जानता है। यदि जानता है, तो बता।" ।१२।

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च अचयन्तो तहिं दिओ।
सपरिसो पंजली होउं पुच्छई तं महामुणिं।१३।

उसके (मुनि के) आक्षेपों का—प्रश्नों का प्रमोक्ष अर्थात् उत्तर देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिषदा (उपस्थित ज्ञाति व मित्रों) के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से यों पूछा—।१३।

विजयघोस—

विजयघोष ब्राह्मण —

वेयाणं च मुहं वूहि वूहि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं वूहि वूहि धम्माण वा मुहं।१४।

"मुने! तुम कहो—वेदों का मुख क्या है? यज्ञों का जो मुख है, वह भी वतलाओ। नक्षत्रों का मुख वताओ और धर्मों का जो मुख है, उसे भी कहो—।१४।

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया किं च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू ? कयरेण होमेण हुणासि जोइं ? । ४३ ।

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सी है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षेपक कड़छी क्या है ? करीपांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ?४३।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ।४४।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छी है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ।४४।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतितित्थे ? कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया, इच्छामो नाउं भवओ सगासे ।४५।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा ह्रद-सरोवर कौन सा है ? शांतितीर्थ कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं ।४५।

मुणी—

धम्मे हरए बंभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ।४६।

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुप लेश्यावाला धर्म मेरा ह्रद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ ।४६।

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता ।४७।
—त्ति बेमि
—उत्त० अ० १२

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्मह्रद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं ।४७।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।





३२. महावीरतित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाणारसी-उज्जाणे जयघोसमुणी आगमणं—

४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्नंमि जयघोसे त्ति नामओ ।१।

इन्दियग्गामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते पत्तो वाणारसिं पुरिं ।२।

वाराणसी के उद्यान में जयघोष मुनि का आगमन—

४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याज्ञिक था ।१।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था । एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया ।२।

वाणारसीए बहिया उज्जाणंमि मणोरमे।
फासुए सेज्जसंथारे तत्थ वासमुवागए ।३।

वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या वसति और संस्तारक—पीठ, फलक आदि आसन की याचना कर ठहर गया ।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्नं जयइ वेयवी ।४।

उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ।४।

अह से तत्थ अणगारे मासक्खमणपारणे।
विजयघोसस्स जन्नंमि भिक्खस्सऽट्ठा उवट्ठिए ।५।

वह जयघोष मुनि एक मास की तपश्चर्या के पारणा के समय भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ मंडप में उपस्थित हुआ ।५।

भिक्खादाण-निसेहो—

भिक्षादान का निषेध—

४५७. समुवट्ठियं तहिं सन्तं जायगो पडिसेहए।
न हु दाहामि ते भिक्खं भिक्खू ! जायाहि अन्नओ ।६।

४५७. यज्ञकर्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को इन्कार करता है—भिक्षु ! "मैं तुम्हें भिक्षा नही दूंगा अन्यत्र याचना करो ।६।

जे य वेयविऊ विप्पा जन्नट्ठा य जे दिया।
जोइसंगविऊ जे य; जे य धम्माण पारगा ।७।

जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी हैं (तथा)—।७।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देयं; भो भिक्खू ! सव्वकामियं ।८।

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, हे भिक्षु ! यह सर्वकामिक—सर्वरसयुक्त एवं सब को अभीष्ट अन्न उन्हीं को देना है।" ।८।

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो जायगेण महामुणी।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ—गवेसओ ।९।

वहाँ, इस प्रकार याजक विजयघोष के द्वारा मना किए जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला वह महामुनि न रुष्ट—क्रुद्ध हुआ और न प्रसन्न हुआ ।९।

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए इमं वयणमब्बवी ।१०।

न तो अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवन-निर्वाह के लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) व कल्याण हेतु मुनि ने इस प्रकार कहा— ।१०।

वेद-जन्नाणदिमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की वक्तव्यता—

जयघोस मुणी—

जयघोष मुनि—

४५८. न वि जाणासि वेयमुहं न वि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं जं च जं च धम्माण वा मुहं ।११।

४५८. (विप्र !) "तू वेद के मुख को नहीं जानता है और न जो यज्ञों का मुख है, नक्षत्रों का जो मुख है और धर्मों का जो मुख है, उसे ही जानता है।" ।११।

जे समत्था समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि अह जाणासि तो भण ।१२।

—"जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी तू नहीं जानता है। यदि जानता है, तो बता।" ।१२।

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च अचयन्तो तहिं दिओ।
सपरिसो पंजली होउं पुच्छई तं महामुणिं ।१३।

उसके (मुनि के) आक्षेपों का—प्रश्नों का प्रमोक्ष अर्थात् उत्तर देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिषदा (उपस्थित ज्ञाति व मित्रों) के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से यों पूछा—।१३।

विजयघोस—

विजयघोष ब्राह्मण —

वेयाणं च मुहं बूहि बूहि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं बूहि बूहि धम्माण वा मुहं ।१४।

"मुने ! तुम कहो—वेदों का मुख क्या है ? यज्ञों का जो मुख है, वह भी बतलाओ। नक्षत्रों का मुख बताओ और धर्मों का जो मुख है, उसे भी कहो—।१४।

जे समत्था समद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
एयं मे संसयं सव्वं साहू ! कहसु पुच्छिओ।१५।

तथा अपना एवं दूसरों का उद्धार करने में कौन समर्थ हैं, वे भी बतलाओ। मुझे यह सब संशय है। हे साधु ! मैं पूछता हूँ, आप बताइए।" ।१५।

जयघोस—

अग्गिहोत्तमुहा वेया जन्नट्ठी वेयसां मुहं।
नक्खत्ताण मुहं चंदो धम्माणं कासवो मुहं।१६।

जयघोष मुनि—

"वेदों का मुख अग्नि-होत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव) है।" ।१६।

जहा चंदं गहाईया चिट्ठन्ती पंजलीउडा।
वन्दमाणा नमंसन्ता उत्तमं मणहारिणो।१७।

"जैसे उत्तम एवं मनोहारी ग्रह-नक्षत्र आदि हाथ जोड़ कर चन्द्र की वन्दना तथा नमस्कार करते हुए स्थित हैं, (वैसे ही भगवान् ऋषभदेव के समक्ष सभी नत हैं)।१७।

अजाणगा जन्नवाई विज्जा माहणसंपया।
गूढा सज्झायतवसा भासच्छन्ना इवऽग्गिणो।१८।

"विद्या ब्राह्मण की सम्पदा है; यज्ञवादी इससे अनभिज्ञ हैं, वे बाहर में स्वाध्याय और तप से वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे कि अग्नि राख से ढँकी हुई होती है।" ।१८।

समण-माहण-तावस सुरूव विसये वत्तव्वया—

श्रमण ब्राह्मण तपस्वी के स्वरूप विषयक चर्चा—

४५६. जे लोए बम्भणो वुत्तो अग्गी वा महिओ जहा।
सया कुसलसंदिट्ठं तं वयं बूम माहणं।१९।

"जिसे लोक में कुशल (विज्ञ) पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो अग्नि के समान सदा तेजस्वी है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।१९।

जो न सज्जइ आगन्तुं पव्वयन्तो न सोयई।
रमए अज्जवयणंमि तं वयं बूम माहणं।२०।

४५१. "जो प्रिय स्वजनादि के आने पर उनमें अनुरक्त नहीं होता और जाने पर शोक नहीं करता है। जो आर्य-वचन में—अर्हद्वाणी में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२०।

जायरूवं जहामट्ठं निद्धन्तमलपावगं।
राग-द्दोस-भयाईयं तं वयं बूम माहणं।२१।

"कसौटी पर कसे हुए और अग्नि के द्वारा मल रहित हुए—शुद्ध किए गए जातरूप—सोने की तरह जो विशुद्ध है, जो राग, द्वेष और भय से मुक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२१।

तवस्सियं किसं दन्तं अवचियमंस-सोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं तं वयं बूम माहणं।२२।

"जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, (इन्द्रियों का दमन करने वाला) है, तप के द्वारा जिसका मांस और रक्त अपचित (कम) हो गया है। जो सुव्रत है, राग रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२२।

तसपाणे वियाणेत्ता संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं तं वयं बूम माहणं।२३।

"जो त्रस और स्थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जान कर मन, वचन और काया से उनकी हिंसा नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२३।

कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ तं वयं बूम माहणं।२४।

"जो क्रोध से, हास्य, लोभ अथवा भय से झूठ नहीं बोलता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।२४।

चित्तमन्तमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गेण्हइ अदत्तं जे तं वयं बूम माहणं।२५।

"जो सचित्त या अचित्त, थोड़ा या अधिक अदत्त नहीं लेता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२५।

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय-वक्केणं तं वयं बूम माहणं।२६।

"जो देव, मनुष्य और तिर्यंच-सम्बन्धी मैथुन का मन, वचन और शरीर (त्रिकरण-त्रियोग) से सेवन नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।" ।२६।

जहा पोमं जले जायं नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तो कामेहिं तं वयं बूम माहणं ।२७।

"जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल (कीचड़) से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।" ।२७।

अलोलुयं मुहाजीवी अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु तं वयं बूम माहणं ।२८।

"जो रसादि में लोलुप नहीं है, जो—मुधाजीवी—निर्दोष भिक्षा से जीवन-निर्वाह करता है, जो गृह-त्यागी है, जो अकिंचन (निष्परिग्रह) है, जो गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।" ।२८।

जहित्ता पुव्वसंजोगं नाइसंगे य बन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहिं तं वयं बूम माहणं ।२९।

"जो पूर्व संयोगों को, ज्ञातिजनों की आसक्ति और बान्धवों को छोड़कर फिर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।" ।२९।

पसुबन्धा सव्ववेया जट्ठं च पावकम्मुणा ।
न तं तायन्ति दुस्सीलं कम्माणि बलवन्ति ह ।३०।

"उस दुःशील (पुरुष) को पशुबन्ध (यज्ञ में वध के लिए पशुओं को बाँधना) के हेतुभूत ये सर्व वेद और पाप कर्म—हिंसापूर्वक किए गए यज्ञ बचा नहीं सकते, क्योंकि इस संसार में कर्म बलवान हैं ।" ।३०।

न वि मुण्डिएण समणो न ओंकारेण बम्भणो ।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण न तावसो ।३१।

"केवल सिर मुड़ाने से कोई श्रमण नहीं होता है, ओम् का उच्चारण करने से ब्राह्मण नहीं होता है, अरण्यवास करने से मुनि नहीं होता है, कुश का बना चीवर पहनने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता है ।" ।३१।

समयाए समणो होइ बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ तवेण होइ तावसो ।३२।

"समभाव से श्रमण होता है । ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है । ज्ञान से मुनि होता है । तप से तपस्वी होता है ।" ।३२।

कम्म-पहाणया निरूवणं—

कर्म-प्रधानता का निरूपण—

४६०. कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ।३३।

४६०. "कर्म (यथोचित प्रवृत्ति अथवा पूर्व कृत पुण्य-पाप) से ब्राह्मण होता है । कर्म से क्षत्रिय होता है । कर्म से वैश्य होता है कर्म से ही शूद्र होता है ।" ।३३।

एए पाउकरे बुद्धे जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिम्मुक्कं तं वयं बूम माहणं ।३४।

"बुद्ध—सर्वज्ञ ने इन तत्वों का निरूपण किया है । इनके द्वारा जो साधक स्नातक—परिपूर्ण होता है, सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।" ।३४।

एवं गुणसमाउत्ता जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था उ उद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।३५।

"इस प्रकार जो (उक्त) गुण से सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं ।" ।३५।

एवं तु संसए छिन्ने विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तयं तं तु जयघोसं महामुणिं ।३६।

"इस प्रकार (तत्व निरूपण सुनकर) संशय मिट जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष की वाणी को सम्यक्रूप से स्वीकार किया ।" ।३६।

विजयघोस—

विजयघोष ब्राह्मण—

तुट्ठे य विजयघोसे इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु मे उवदंसियं ।३७।

मन में तुष्ट हुए विजयघोष ने हाथ जोड़कर मुनि से इस प्रकार कहा—"आपने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा उपदेश दिया है ।" ।३७।

जयघोसस्स थवणा—

जयघोष मुनि की स्तवना—

४६१. तुब्भे जइया जन्नाणं तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ।३८।

४६१. "वास्तव में—तुम यज्ञों के यष्टा—यज्ञ-कर्ता हो, तुम वेदों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम ज्योतिष के ज्ञाता हो, तुम्हीं धर्मों के पारगामी हो ।" ।३८।

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य।
तमणुग्गहं करेहऽम्हं भिक्खेण भिक्खु उत्तमा।३९।

"तुम अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो। अतः भिक्षु श्रेष्ठ! यह भिक्षा स्वीकार कर हम पर अनुग्रह करो।" ।३९।

जयघोस—

न कज्जं मज्झ भिक्खेण खिप्पं निक्खमसू दिया।
मा भमिहिसि भयावट्टे घोरे संसारसागरे।४०।

जयघोष मुनि—

"मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है। हे द्विज! शीघ्र ही अभिनिष्क्रमण कर अर्थात् संसार त्यागकर श्रमणत्व स्वीकार कर। ताकि भय के आवर्तों—चक्रवालों वाले संसार सागर में तुझे भ्रमण न करना पड़े।" ।४०।

भोग निव्वट्टि-उवएसो—

४६२. उवलेवो होइ भोगेसु अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ संसारे अभोगी विप्पमुच्चई।४१।

भोग-निवृत्ति का उपदेश—

४६२. "भोगों में कर्म का उपलेप (संचय) होता है। अभोगी कर्मों से लिप्त नहीं होता है। भोगी संसार में भ्रमण करता है। अभोगी उससे मुक्त हो जाता है।' ।४१।

उल्लो सुक्को य दो छूढा गोलया मट्टियामया।
दो वि आवडिया कुड्डे जो उल्लो सो तत्थ लग्गई।४२।

(जिस प्रकार) "एक गीला और एक सूखा, ऐसे दो मिट्टी के गोले फेंके गये। वे दोनों दीवार पर गिरे। जो गीला था, वह वहीं चिपक गया।" ।४२।

एवं लग्गन्ति दुम्मेहा जे नरा कामलालसा।
विरत्ता उ न लग्गन्ति जहा सुक्को उ गोलओ।४३।

"इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त हैं, वे विषयों के साथ चिपक जाते हैं। विरक्त साधक सूखे गोले की भांति उनमें नहीं लगते हैं।" ।४३।

उवसंहारो—

४६३. एवं से विजयघोसे जयघोसस्स अन्तिए।
अणगारस्स निक्खन्तो धम्मं सोच्चा अणुत्तरं।४४।

खवित्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य।
जयघोस-विजयघोसा सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं।४५।

—त्ति बेमि

उत्तरा० अ० २५

उपसंहार—

४६३. इस प्रकार विजयघोष विप्र जयघोष अनगार के समीप, अनुत्तर श्रेष्ठ धर्म को सुनकर दीक्षित हो गया।४४।

जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्व-संचित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की।४५।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

☐　　☐

३३. महावीरतित्थे अणाही महानियंठो

३३ महावीर तीर्थ में अनाथी महानिर्ग्रन्थ

सेणिएण मुणिदंसणं—

४६४. सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ-धम्म-गइं तच्चं अणुसिट्ठिं सुणेह मे।१।

श्रेणिक द्वारा मुनि दर्शन—

४६४. सिद्धों और संयतों को भावपूर्वक नमस्कार करके मैं अर्थ, मोक्ष और धर्म के स्वरूप का बोध कराने वाली तथ्यपूर्ण अनुशिष्टि-शिक्षा का कथन करता हूँ, उसे सुनो।१।

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ, मंडिकुच्छिसि चेइए।२।

प्रचुर रत्नों से समृद्ध मगधाधिपति राजा श्रेणिक मंडिकुक्षि चैत्य-उद्यान में विहार-यात्रा के लिये नगर से निकला।२।

नाणा-दुम-लयाइण्णं, नाणा-पक्खि-निसेवियं।
नाणाकुसुम-संछन्नं, उज्जाणं नंदणोवमं।३।

वह उद्यान विविध प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण था, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित था और विविध प्रकार के पुष्पों से भली भांति आच्छादित था। विशेष क्या; उद्यान नन्दन वन के समान था।३।

तत्थ सो पासई साहुं संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं।४।

राजा ने उस उद्यान में वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक संयत, समाधि-सम्पन्न, सुकुमाल एवं सुखोचित—सुखोपभोग के योग्य साधु को देखा।४।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ।५।

साधु के अनुपम रूप को देखकर राजा को उस संयत के प्रति अत्यधिक अतुलनीय आश्चर्य हुआ।५।

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया।६।

अहो! क्या वर्ण (रंग) है, क्या रूप है! अहो! आर्य की कैसी सौम्यता है! अहो क्या क्षान्ति है, क्या मुक्ति-निर्लोभता है! अहो, भोगों के प्रति कैसी असंगता है!।६।

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ।७।

उस मुनि के चरणों में वंदना और नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करने के पश्चात् राजा न अति दूर और न अति पास—योग्य स्थान में खड़ा रहा और हाथ जोड़कर पूछने लगा।७।

सेणियस्स मुणिणा सह संवादो—

श्रेणिक का मुनि के साथ संवाद—

सेणिओ—

तरुणो सि अज्जो! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया!।
उवट्ठिओ हि सामण्णे एयमट्ठं सुणेमि ता।८।

श्रेणिक—

हे आर्य! तुम अभी युवा हो। फिर भी हे संयत! तुम भोग काल में दीक्षित हुए हो, श्रामण्य में उपस्थित हुए हो। इसका क्या कारण है, मैं सुनना चाहता हूँ।८।

मुणी—

अणाहो मि महाराय!, नाहो मज्झ न विज्जइ।
अणुकम्पयं सुहिं वा वि, कंचि नाभिसमेमहं।९।

मुनि—

हे महाराज! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ—रक्षक नहीं है। मुझ पर अनुकंपा रखने वाला कोई सुहृद-मित्र भी मैं नहीं पा रहा हूँ।९।

सेणिओ—

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमंतस्स, कहं नाहो न विज्जइ।१०।

श्रेणिक—

यह सुनकर मगधाधिप राजा श्रेणिक जोर से हँसा और बोला—इस प्रकार तुम देखने में ऋद्धिसंपन्न लगते हो, फिर भी तुम्हारा कोई नाथ कैसे नहीं है?।१०।

होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया!
मित्त-नाइ-परिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।११।

हे भदन्त! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। हे संयत! मित्र और ज्ञातिजनों के साथ मिलकर भोगों को भोगो। मनुष्य जीवन बड़ा दुर्लभ है।११।

मुणी—

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया! मगहाहिवा!।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं नाहो भविस्ससि!।१२।

मुनि—

हे श्रेणिक! तुम स्वयं अनाथ हो। मगधाधिप! जब तुम स्वयं अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकते हो। कैसे हो सकोगे?१२।

सेणिओ—

एवं वुत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ।१३।

श्रेणिक—

राजा पहले से ही विस्मित हो रहा था, अब तो मुनि के अभूतपूर्व वचन सुनकर और भी अधिक सम्भ्रान्त-संशयाकुल एवं विस्मित हुआ ।१३।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे।
भुंजामि माणुसे भोए, आणा इस्सरियं च मे ।१४।

मेरे पास अश्व हैं, हाथी हैं, नगर और अन्तःपुर है। मैं मनुष्य जीवन के सभी सुखों का भोग कर रहा हूँ और मेरे पास आज्ञा-शासन-ऐश्वर्य-प्रभुत्व भी है ।१४।

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते ! मुसं वए ।१५।

इस प्रकार श्रेष्ठ संपदा, जिसके द्वारा सभी काम-भोग मुझे समर्पित हैं, प्राप्त है, तब भी भला मैं अनाथ कैसे ? भदन्त ! आप झूठ न बोलिये ।१५।

मुणिणा अप्पणो अणाहत्तपरूवणं—

४६५. न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं व पत्थिवा!
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा ! ।१६।

मुनि द्वारा 'अपना' अनाथत्व प्ररूपण—

४६५. हे पृथ्वीपति नरेश ! तुम 'अनाथ' के अर्थ और परमार्थ को नहीं जानते हो कि मनुष्य अनाथ और सनाथ कैसे हो सकता है ?१६।

सुणेह मे महाराय ! अव्वक्खित्तेणं चेयसा।
जहा अणाहो भवई, जहा मे य पवत्तियं ।१७।

महाराज ! अव्याक्षिप्त (अनाकुल) चित्त से मुझे सुनिये कि यथार्थ में अनाथ कैसे होता है और किस आशय से मैंने उसका प्रयोग किया है ?।१७।

'कोसंबी' नाम नयरी, पुराणपुरभेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय-धण-संचओ ।१८।

प्राचीन नगरों में असाधारण सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है। वहां मेरे पिता थे और उनके पास प्रचुर धन का संग्रह था ।१८।

पढमे वए महाराय !, अउला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा ! ।१९।

महाराज ! प्रथम वय में—युवावस्था में मेरी आँखों में अतुल-असाधारण पीड़ा उत्पन्न हुई। पार्थिव ! उससे मेरे समस्त शरीर में अत्यन्त जलन होती थी ।१९।

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीरविवरंतरे।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ।२०।

क्रुद्ध शत्रु जैसे शरीर के मर्मस्थानों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र घोंपदे और उससे जैसी वेदना हो, वैसी ही मेरी आंखों में भयंकर वेदना हो रही थी ।२०।

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडइ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ।२१।

जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से भयंकर वेदना होती है, वैसे ही मेरे त्रिक-कटिभाग में, अन्तरेच्छ-हृदय में और उत्तमांग-मस्तक में अतिदारुण वेदना हो रही थी ।२१।

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जा-मंत-तिगिच्छिया।
अबीया सत्थकुसला, मंतमूलविसारया ।२२।

विद्या और मंत्र से चिकित्सा करनेवाले, मंत्र तथा औषधियों के विशारद अद्वितीय शास्त्रकुशल मेरी चिकित्सा के लिये उपस्थित थे ।२२।

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ।२३।

उन्होंने मेरे हितार्थ चतुष्पाद (वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक रूप) चिकित्सा की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता है ।२३।

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया।२४।

मेरे पिता ने मेरे लिये चिकित्सकों को उपहार स्वरूप सर्वसार अर्थात् सर्वोत्तम वस्तुएँ दीं किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता है।२४।

माया वि मे महाराय ! पुत्तसोगदुहट्टिया।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया।२५।

महाराज ! मेरी माता पुत्रशोक के दुःख से पीड़ित रहती थी किन्तु वह भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी, यही मेरी अनाथता है।२५।

भायरा मे महाराय ! सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया।२६।

महाराज ! मेरे बड़े और छोटे सभी सगे भाई मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता है।२६।

भइणीओ मे महाराय ! सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया।२७।

महाराज ! मेरी बड़ी और छोटी सगी बहनें भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकीं, यही मेरी अनाथता है।२७।

भारिया मे महाराय ! अणुरत्ता अणुव्वया।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचइ।२८।

महाराज ! मुझ में अनुरक्त और अनुव्रत मेरी पत्नी अश्रुपूर्ण नयनों से मेरे उरःस्थल (छाती) को भिगोती रहती थी।२८।

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंध-मल्लविलेवणं।
मए नायमणायं वा, सा बाला नोवभुंजइ।२९।

वह बाला मेरे प्रत्यक्ष में या परोक्ष में कभी भी अन्न, पान, स्नान, गंध, माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती थी।२९।

खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि न फिट्टइ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया।३०।

वह एक क्षण के लिये भी मुझ से दूर नहीं होती थी। फिर भी वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी। महाराज ! यही मेरी अनाथता है।३०।

अणाहयं णच्चा पव्वज्जासंकप्पो, तओ वेयणाखओ य—

अनाथ जानकर प्रव्रज्या संकल्प और उससे वेदना क्षय—

४६६. तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए।३१।

४६६. तब मैंने इस प्रकार कहा—विचार किया कि प्राणी को इस अनन्त संसार में बार-बार असह्यवेदना का अनुभव करना होता है।३१।

सइं च जइ मुच्चिज्जा, वेयणा विउला इओ।
खंतो दंतो निरारम्भो, पव्वए अणगारियं।३२।

इस विपुल वेदना से यदि एक बार भी मुक्त हो जाऊँ तो मैं क्षान्त, दान्त और निरारंभ अनगारवृत्ति में प्रव्रजित हो जाऊँगा।३२।

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा !।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया।३३।

नराधिप ! इस प्रकार विचार करके मैं सो गया। परिवर्तमान (बीतती हुई) रात्रि के साथ-साथ मेरी वेदना भी क्षीण हो गई।३३।

पव्वज्जागहणेण सनाहत्तं—

प्रव्रज्या ग्रहण से सनाथत्व—

४६७. तओ कल्ले पभायंमि, आपुच्छित्ताण बंधवे।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं।३४।

४६७. तदनन्तर प्रातःकाल में कल्य—निरोग होते ही मैं बन्धुजनों से पूछकर क्षान्त, दान्त और निरारंभ होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित हो गया।३४।

तो हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेय भूयाणं, तसाण थावराण य।३५।

तब मैं अपना और दूसरों का त्रस और स्थावर सभी जीवों का नाथ हो गया।३५।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं।३६।

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शालमली वृक्ष है, कामदुधाधेनु है और नन्दनवन है।३६।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।३७।

आत्मा ही अपने सुख-दुःख की कर्त्ता है और विकर्ता—भोक्ता है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।३७।

कुसीलायरणनिरूवणपुव्वं संजमपालणोवएसो—

कुशीलाचरण निरूपणपूर्वक संयम पालनोपदेश—

४६८. इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि।
नियंठधम्मं लहियाण वी जहा, सीयंति एगे वहुकायरा नरा।३८।

४६८. राजन् ! यह एक और भी अनाथता है। जिसे शांत और एकाग्रचित्त होकर सुनो ! बहुत से ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं जो निर्ग्रन्थ धर्म को पाकर भी खिन्न हो जाते है, दुःखित होते हैं।३८।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं च नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्नइ बंधण से।३९।

जो महाव्रतों को स्वीकार कर प्रमाद के कारण उनका सम्यक् पालन नहीं करते, आत्मा का निग्रह नहीं करते, रसों में आसक्त हैं, वे राग-द्वेष रूप बंधनों का मूल से उच्छेद नहीं कर सकते हैं।३९।

आउत्तया जस्स न अत्थि काई, इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाण-निक्खेव-दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं।४०।

जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन में अयुक्तता है—सजगता नहीं है, वह उस मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता है, जो वीरयात है अर्थात् उस मार्ग पर वीर पुरुष चलते हैं।४०।

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए।४१।

जो अहिंसादि व्रतों में अस्थिर है, तप और नियमों से भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुण्ड रुचि (सिर मुंडा लेने वाला भिक्षु) रहकर और आत्मा को कष्ट देकर भी संसार से पार नहीं हो सकता है।४१।

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूड-कहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु।४२।

जो खाली मुट्ठी के समान निस्सार है, खोटे सिक्के की तरह अयंत्रित—अप्रमाणित है, वैडूर्य की तरह चमकने वाली तुच्छ राढामणि—कांचमणि है, वह जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में मूल्यहीन है।४२।

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।
असंजए संजय लप्पमाणे, विणिघायमागच्छइ से चिरं पि।४३।

जो कुशील वेष और ऋषिध्वज [रजोहरण आदि मुनि चिन्ह] धारण कर जीविका चलाता है, असंयत होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है।४३।

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसो वि धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो।४४।

पिया हुआ कालकूट विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र, अनियंत्रित वैताल-भूत, प्रेत-जैसे विनाशकारी होता है वैसे ही विषय विकारों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।४४।

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, निमित्त-कोऊहलसंपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले।४५।

जो लक्षण और स्वप्न विद्या का प्रयोग करता है निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कुहेट-विद्याओं-जादूगरी के खेलों से जीविका चलाता है, वह कर्मफल भोग के समय किसी की शरण नहीं पा सकता है।४५।

तमं तमेणेव उ जे असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ।
संधावई नरगतिरिक्खजोणिं, मोणं विराहित्तु असाहुरूवे।४६।

वह शील रहित साधु अपने तमस्तमस-तीव्र अज्ञान के कारण विपरीत दृष्टि को प्राप्त होता है, जिससे असाधु प्रकृति वाला वह साधु मौन—मुनिधर्म की विराधना कर सतत दुःख भोगता हुआ नरक और तिर्यंचगति में आवागमन करता रहता है।४६।

उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं ।४७।

जो औद्देशिक, क्रीत-कृत, नियाग-नित्यपिंड आदि रूप किंचिन्मात्र भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता है, वह अग्नि की भांति सर्वभक्षी भिक्षु पापकर्म करके यहाँ से मरने के बाद दुर्गति में जाता है ।४७।

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणे ।४८।

स्वयं ही अपनी दुष्प्रवृत्तिशील दुरात्मा जो अनर्थ करती है, वह गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर सकता है। उक्त तथ्य को निर्दय—संयमहीन पुरुष मृत्यु के क्षणों में पश्चात्ताप करते हुए जान पायेगा ।४८।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठे विवज्जासमेइ ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ।४९।

जो उत्तमार्थ-संयम में विपरीत दृष्टि रखता है, उसको श्रामण्य में अभिरुचि व्यर्थ है। उसके लिये न यह लोक है, न परलोक है। दोनों लोकों के प्रयोजन से शून्य होने के कारण वह उभयभ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में घुलता जाता है ।४९।

एमेवऽहाछंदकुसीलरूवे, मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।
कूररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परितावमेइ ।५०।

इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु भी जिनोत्तम के मार्ग की विराधना कर वैसे ही परिताप को प्राप्त होता है, जैसे कि भोग-रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुकरी [गीध] पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है ।५०।

सोच्चाण मेहावि ! सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं ।५१।

मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन-शिक्षा को सुनकर कुशील व्यक्तियों के सब मार्गों को छोड़कर महान निर्ग्रन्थों के पथ पर चलते हैं ।५१।

चरित्तमायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजमपालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ।५२।

चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निराश्रव होता है। अनुत्तर शुद्ध संयम का पालनकर वह निराश्रव साधक कर्मों का क्षय कर विपुल, उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करता है ।५२।

एवुग्गदंते वि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ।
महानियंठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ।५३।

इस प्रकार उस उग्र-दान्त, महान तपोधन, महाप्रतिज्ञ, महान यशस्वी, महामुनि ने इस महा निर्ग्रन्थीय महाश्रुत को महान विस्तार से कहा ।५३।

सेणियस्स तुट्ठी खमाजायणं च—

श्रेणिक की तुष्टि और क्षमायाचना—

४६९. तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ।५४।

४६९. राजा श्रेणिक इस कथन को सुनकर संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—भगवन् ! आपने अनाथ का यथार्थ स्वरूप मुझे ठीक तरह से समझाया है ।५४।

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ।
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य, जं भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाणं ।५५।

हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल है, तुम्हारी उपलब्धियां सफल हैं, तुम सच्चे सनाथ और सबान्धव हो, क्योंकि तुम जिनेश्वर के मार्ग में स्थित हो ।५५।

तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया ! ।
खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउं ।५६।

हे संयत ! तुम अनाथों के नाथ हो, तुम सब जीवों के नाथ हो। हे महाभाग ! मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। मैं तुमसे अनुशासित होने की इच्छा रखता हूँ ।५६।

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो उ जो कओ ।
निमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ।५७।

मैंने आपसे प्रश्नकर जो ध्यान में विघ्न किया और भोगों के लिये निमंत्रण दिया, उस सबके लिये मुझे क्षमा करें ।५७।

एवं थुणित्ताणं स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ।५८।

इस प्रकार वह राजसिंह—श्रेणिक राजा अनगार सिंह मुनि की परमभक्ति से स्तुति कर अन्तःपुर तथा परिजनों के साथ निर्मल चित्तपूर्वक धर्म में अनुरक्त हो गया ।५८।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ।५९।

राजा के रोमकूप आनन्द से उल्लसित हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा, और नतमस्तक हो वंदना करके लौट गया । ५९।

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ।६०।

वह (अनाथी मुनि) गुणों से समृद्ध, तीन गुप्तियों से गुप्त, तीन दंडों से विरत, मोहमुक्त मुनि पक्षी की भांति विप्रमुक्त-अप्रतिवद्ध होकर भूतल पर विहार करने लगे ।६०।

त्ति बेमि ।
—उत्तरा० अ० २० ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐 卐

३४. महावीरतित्थे समुद्दपालीयस्स कहाणयं

३४ महावीर तीर्थ में समुद्रपालीय कथानक

४७०. चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसो सो उ महप्पणो ।१।

४७०. चंपा नगरी में 'पालित' नामक एक वणिक् श्रावक था । वह महात्मा भगवान महावीर का शिष्य था ।१।

निग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए ।
पोएण ववहरंते, पिहुण्डं नगरमागए ।२।

वह श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन का कोविद—विशिष्ट ज्ञाता विद्वान था । एक बार पोत से व्यापार करता हुआ वह पिहुण्ड नगर में आया ।२।

पिहुण्डे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ।३।

पिहुण्डनगर में व्यापार करते समय उसे एक वणिक् ने विवाह के रूप में अपनी पुत्री दी । कुछ समय के बाद गर्भवती पत्नी को लेकर अपने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया ।३।

समुद्दे जम्मणं परिणयणाइ य—

समुद्र में जन्म और परिणय आदि—

४७१. अहं पालियस्स घरिणी, समुद्दम्मि पसवइ ।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालि त्ति नामए ।४।

४७१. पालित की पत्नी ने समुद्र में ही पुत्र को जन्म दिया । समुद्र में पैदा होने के कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा गया ।४।

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं ।
संवड्ढई तस्स घरे, दारए से सुहोइए ।५।

वह वणिक् श्रावक सकुशल चम्पानगरी में अपने घर आया । वह सुखोचित-सुकुमार बालक अपने घर में आनन्द के साथ बढ़ने लगा ।५।

बावत्तरी, कलाओ य, सिक्खई नीइकोविए।
जुव्वणेण य संपन्ने, सुरूवे पियदंसणे।६।

उसने बहत्तर कलायें सीखीं और वह नीति निपुण हो गया वह युवावस्था से संपन्न हो गया तो सभी को सुन्दर और प्रिय लगने लगा।६।

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रूविणिं।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदुओ जहा।७।

पिता ने उसके लिये 'रूपणी' नाम की सुन्दर रूपवती भार्या ला दी। वह दोगुन्दक देव की भांति अपनी पत्नी के साथ सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा करने लगा।७।

वज्झदंसणेण वेरग्गं पव्वज्जा य—

वध्य दर्शन से वैराग्य और प्रव्रज्या—

४७२. अह अन्नया कयाई, पासायालोयणे ठिओ।
वज्झमंडणसोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं।८।

४७२. एक समय वह प्रासाद के आलोकन—झरोखे में बैठा था। वध्यजनोचित मंडनों—चिन्हों से युक्त वध्य को वध्यस्थान की ओर ले जाते हुए उसने देखा।८।

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहोऽसुहाणकम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं।६।

उसे देखकर संवेग प्राप्त समुद्रपाल ने मन में इस प्रकार कहा—अहो! यह अशुभ कर्मों का पापक निर्याण—दुःखद परिणाम है।६।

संबुद्धो सो तहिं भयवं, परमसंवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं।१०।

इस प्रकार चिन्तन करते हुए वह भगवान—महान आत्मा संवेग को प्राप्त हुआ और संबुद्ध हो गया। माता-पिता से पूछ-कर उसने अनगार दीक्षा ली।१०।

जहित्तु संगं य महाकिलेसं, महंतमोहं कसिणं भयावहं।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य।११।

दीक्षित होने पर मुनि महाक्लेशकारी, महामोह और पूर्ण भयकारी संग (आसक्ति) का परित्याग करके पर्याय धर्म–साध्वाचार में, व्रत में, शील में और परीषहों के सहने में अभिरुचि रखे।११।

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंचमहव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ।१२।

मुनि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-इन पांच महाव्रतों को स्वीकार करके जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण करे।१२।

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी, खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइंदिए।१३।

इन्द्रियों का सम्यक् संवरण करने वाला भिक्षु सब जीवों के प्रति करुणाशील रहे, क्षमा से दुर्वचनादि को सहन करे, संयत हो, ब्रह्मचारी हो। वह सदैव सावद्य योग-पापाचार का परित्याग करता हुआ विचरण करे।१३।

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु।१४।

साधु समयानुसार अपने बलाबल को, अपनी शक्ति को जानकर राष्ट्रों में विचरण करे। सिंह की भांति भयोत्पादक शब्द सुनकर भी संत्रस्त न हो, असभ्य वचन सुनकर भी बदले में असभ्य वचन न कहे।१४।

परीसहसहणं सिद्धी य—

परीषह सहन और सिद्धि—

४७३. उवेहमाणो उ परिव्वइज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्ख इज्जा।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए।१५।

४७३. संयमी प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ विचरण करे, प्रिय-अप्रिय, इष्ट-अनिष्ट, अनुकूल-प्रतिकूल परीषहों को सहन करे, सर्वत्र सबकी अभिलाषा न करे, पूजा और गर्हा भी न चाहे।१५।

अणेगछंदा इह माणवेहिं, जे भावओ से पगरेइ भिक्खू।
भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा।१६।

यहाँ-संसार में मनुष्यों के अनेक प्रकार के छन्द-अभिप्राय होते हैं। भिक्षु उन्हें अपने में भी भाव से जानता है। अतः वह देवकृत, मनुष्यकृत तथा तिर्यंचकृत भयोत्पादक भीषण उपसर्गों को सहन करे।१६।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयंति जत्था बहुकायरा नरा।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया।१७।

अनेक असह्य, परीषह प्राप्त न होने पर बहुत से कायर लोग खेद का अनुभव करते हैं। किन्तु भिक्षु परीषहों को प्राप्त होने पर संग्राम में आगे रहने वाले नागराज—हाथी की तरह व्यथित न हो।१७।

सीओसिणा दंस-मसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुराकयाइं।१८।

शीत, उष्ण, डांस, मच्छर, तृण-स्पर्श तथा अनेक प्रकार के दूसरे आतंक जब भिक्षु को स्पर्श करें तब वह कुत्सित शब्द न करते हुए उन्हें समभाव से सहन करे। पूर्वकृत कर्मों को क्षीण करे।१८।

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो।
मेरु व्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा।१९।

विचक्षण भिक्षु सतत राग-द्वेष और मोह को छोड़कर वायु से अकंपित मेरु के समान आत्म-गुप्त बनकर परीषहों को सहन करे।१९।

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेइ।२०।

पूजा-प्रतिष्ठा में उन्नत और गर्हा में अवनत न होने वाला महर्षि पूजा और गर्हा में लिप्त न हो। वह समभावी विरत संयमी सरलता को स्वीकार करके निर्वाण मार्ग को प्राप्त होता है।२०।

अरइ-रइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे।२१।

जो रति और अरति को सहन करता है, संसारी जनों के परिचय से दूर रहता है, विरक्त है, आत्महित का साधक है, प्रधानवान है—संयमशील है, शोक और ममत्वरहित है, अकिंचन है, वह परमार्थ पदों में-सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष साधनों में स्थित होता है।२१।

विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई, निरोवलेवाइं असंथडाइं।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइं।२२।

त्रायी—प्राणि रक्षा करने वाला मुनि महान यशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि कर्म से रहित, असंसृत-बीजादि से रहित विविक्त लयन-एकान्त स्थानों का सेवन करे और परीषहों को सहन करे।२२।

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए वंऽतलिक्खे।२३।

अनुत्तर धर्म संचय का आचरण करके सद्ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करने वाला, अनुत्तर ज्ञानधारी यशस्वी महर्षि अन्तरिक्ष में सूर्य की भांति प्रकाशमान होता है।२३।

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं, निरंगणे सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोहं, समुद्दपाले अपुणागमं गइं गए।२४।

समुद्रपाल मुनि पुण्य-पाप (शुभ-अशुभ) दोनों ही कर्मों का क्षय करके संयम में निरंगन—निश्चल और सब प्रकार से मुक्त होकर समुद्र की भांति विशाल संसार प्रवाह को तैरकर अपुनरागमन—मोक्ष को प्राप्त हुए।२४।

—त्ति बेमि।

—उत्तरा० अ० २१

—ऐसा मैं कहता हूँ।

卐 卐

३५. महावीरतित्थे मियापुत्ते बलसिरी समणे

३५ महावीरतीर्थ में मृगापुत्र बलश्री श्रमण

४७४. सुग्गीवे नयरे रंमे, काणणुज्जाणसोहिए ।
राया बलभद्दि'त्ति मिया तस्सग्गमाहिसी ।१।

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमोसरे ।२।

नंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवो दोगुंदुगो चेव, निच्चं मुइय-माणसो ।३।
मणि-रयण-कोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ ।
आलोएइ नगरस्स, चउक्क-तिय-चच्चरे ।४।

४७४. कानन और उद्यानों से सुशोभित 'सुग्रीव' नामक सुरम्य नगर में बलभद्र नाम का राजा था, मृगा उसकी अग्रमहिषी—पटरानी थी ।१।

उनके बलश्री नामक पुत्र था, जो मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध था । वह माता-पिता को प्रिय था, युवराज था और दमीश्वर था, अर्थात् शत्रुओं को दमन करने वालों में प्रमुख था ।२।

वह प्रसन्नचित्त हो सदा नन्दन प्रासाद में दोगुन्दग देवों की तरह स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता था ।३।

एक दिन वह मणि और रत्नों से जटित कुट्टिमतल (फर्श) वाले प्रासाद के गवाक्ष में खड़े होकर नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख रहा था ।४।

समणं दट्ठूण जाईसरणं—

४७५. अह तत्थ अइच्छंतं, पासई समण-संजयं ।
तव-नियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं ।५।

तं पेहई मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ।६।

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहं गयस्स संतस्स, जाईसरणं समुप्पन्नं ।७।

देवलोगचुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सन्नि-नाणे-समुप्पन्ने, जाइं सरइ पुराणियं ।८।

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरई पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ।९।

श्रमण को देखकर जाति-स्मरण—

४७५. उसने वहाँ राजपथ पर जाते हुए तप, नियम एवं संयम के धारक शील से समृद्ध तथा गुणों के आकर (खान) एक संयत श्रमण को देखा ।५।

मृगापुत्र उस मुनि को अपलक दृष्टि से देखता रहा और सोचता रहा कि मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने इसके पूर्व भी कहीं देखा है ।६।

साधु के दर्शन और तदनन्तर पवित्र अध्यवसाय होने से 'मैंने ऐसा कहीं देखा है' इस प्रकार ऊहापोह रूप मोह (एकतानता) को प्राप्त उसे जातिस्मरण उत्पन्न हुआ ।७।

संज्ञीज्ञान (समनस्क ज्ञान) होने पर वह पूर्व जाति (भव) को स्मरण करता है—'मैं देवलोक से च्युत होकर इस मनुष्यभव में आया हूँ' ।८।

जाति-स्मरण उत्पन्न होने पर महाऋद्धिशाली मृगापुत्र अपनी पूर्व जाति और पूर्वाचरित श्रामण्य को स्मरण करता है ।९।

मियापुत्तस्स पव्वज्जासंकप्पो अम्मापिउपुरओ निवेयणं च—

४७६. विसएहि अरज्जंतो, रज्जंतो संजमंमि य ।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयणमब्बवी ।१०।
सुयाणि मे पंच महव्वयाणि,
नरएसु दुक्खं च तिरक्ख-जोणिसु ।
निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ।११।

मृगापुत्र का प्रव्रज्या-संकल्प और माता-पिता के समक्ष निवेदन—

४७६. विषयों से विरक्त और संयम में अनुरक्त मृगापुत्र ने माता-पिता के निकट आकर इस प्रकार कहा—।१०।

मैंने पांच महाव्रतों को सुना है और यह भी सुना है कि नरक और तिर्यंच योनि में दुःख है । मैं संसार रूप महासागर से निर्विण्ण—विरक्त हो गया हूँ, मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा । अतः मात ! मुझे अनुमति दीजिये ।११।

अम्मताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंधदुहावहा ।१२।

हे तात-मात ! मैं भोगों को भोग चुका हूँ। वे विषफल के समान अंत में कटु विपाक वाले और निरन्तर दुःख देने वाले हैं ।१२।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाणभायणं ।१३।

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है और अशुचि से पैदा हुआ है। यहाँ का आवास अशाश्वत है और दुःख एवं क्लेश का स्थान है ।१३।

असासए सरीरंमि, रइं नोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणवुब्बुयसन्निभे ।१४।

यह शरीर पानी के बुलबुले के समान अनित्य है और पहले या बाद में इसे कभी छोड़ना ही है। अतः इसमें मुझे आनन्द नहीं मिल रहा है ।१४।

माणुसत्ते असारंमि, वाही-रोगाण आलए ।
जरा-मरणघत्थमि, खणं पि न रमामहं ।१५।

व्याधि और रोगों के घर तथा जरा और मरण से ग्रस्त इस असार मनुष्य शरीर में मुझे एक क्षण के लिये भी सुख नहीं मिल रहा है ।१५।

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ।१६।

जन्म दुःख है, जरा दुःख है, रोग दुःख है, मरण दुःख है। अहो ! यह समग्र संसार ही दुःखरूप है, जहाँ जीव क्लेश पाते हैं ।१६।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा ।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे ।१७।

क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, पुत्र, स्त्री, बन्धुजन और इस शरीर को छोड़कर एक दिन विवश होकर मुझे चले जाना है ।१७।

जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताणं भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ।१८।

जिस प्रकार विषयरूप किंपाक-फलों का अंतिम परिणाम सुन्दर नहीं होता है, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता है ।१८।

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहा-तण्हाए पीडिओ ।१९।

जो व्यक्ति पाथेय (पथ का संबल, नाश्ता) लिये बिना ही लंबे मार्ग पर चल देता है, वह चलते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होता है ।१९।

एवं धम्मं अकाऊणं जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ।२०।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म किये बिना परभव में जाता है, वह जाते हुए व्याधि और रोगों से पीड़ित होता है—दुःखी होता है ।२०।

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छतो सो सुही होइ, छुहा-तण्हाविवज्जिओ ।२१।

जो व्यक्ति पाथेय लेकर लम्बे मार्ग पर चलता है, वह चलते हुए भूख और प्यास के दुःख से रहित सुखी होता है ।२१।

एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ।२२।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म करके परभव में जाता है, वह अल्पकर्मा होने से जाते हुए वेदना से रहित सुखी होता है ।२२।

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवइज्झइ ।२३।

जिस प्रकार घर को आग लगने पर गृहस्वामी मूल्यवान सार वस्तुओं को निकालता है और मूल्यहीन असार वस्तुओं को छोड़ देता है ।२३।

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ।२४।

उसी प्रकार आपकी अनुमति प्राप्त कर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक में से सारभूत अपनी आत्मा को बाहर निकालूंगा ।२४।

सामण्णं दुक्करं ति अम्मापियरहिं पव्वज्जावारणं—

४७७. तं बेंतऽम्मापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा ।२५।

(१) समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवाय-विरई, जावज्जीवाए दुक्करं ।२६।

(२) निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ।२७।

(३) दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं ।२८ ।

(४) विरई अबंभचेरस्स, काम-भोगरसन्नुणा ।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ।२९।

(५) धण-धन्न-पेसवग्गेसु, परिग्गह-विवज्जणं ।
सव्वारंभ-परिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ।३०।

(६) चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा ।
सन्निही-संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ।३१।

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंस-मसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ।३२।
तालणा तज्जणा चेव, वह-बंधपरीसहा ।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ।३३।
कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउं अमहप्पणो ।३४।

सुहोइओ तुमं पुत्ता ! सुउमालो सुमज्जिओ ।
न हुसि पभू तुमं पुत्ता, सामण्णमणुपालिया ।३५।

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोहभारु व्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ।३६।

आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही ।३७।

'श्रामण्य दुष्कर है'—माता-पिता द्वारा प्रव्रज्यावारण—

४७७. माता-पिता ने उससे कहा—पुत्र ! श्रामण्य—मुनिचर्या अत्यन्त दुष्कर है । भिक्षु को हजारों गुण—नियमोपनियमधारण करने होते हैं ।२५।

(१) भिक्षु को जगत में शत्रु और मित्र के प्रति, यहाँ तक कि सभी जीवों के प्रति समभाव रखना होता है । जीवनपर्यन्त प्राणातिपात से विरत होना भी बड़ा दुष्कर है ।२६।

(२) सदा अप्रमत्त भाव से मृषावाद का त्याग करना, हर क्षण सावधान रहते हुए हितकारी सत्य बोलना—बहुत कठिन होता है ।२७।

(३) दंतशोधन—दातुन आदि भी बिना दिये न लेना और प्रदत्त वस्तु भी अनवद्य (निर्दोष) और एषणीय ही लेना अत्यन्त दुष्कर है ।२८।

(४) काम भोगों के रस से परिचित व्यक्ति के लिये अब्रह्मचर्य से विरक्ति और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना बहुत दुष्कर है ।२९।

(५) धन, धान्य, प्रेष्यवर्ग—दासी-दास आदि परिग्रह का त्याग करना और सब प्रकार के आरम्भ एवं ममत्व का त्याग करना बहुत दुष्कर होता है ।३०।

(६) चतुर्विध आहार (अशन-पान-आदि) का रात्रि में त्याग करना और काल मर्यादा से बाहर घृतादि संनिधि का संचय न करना अत्यन्त दुष्कर है ।३१।

भूख-प्यास, सर्दी, गर्मी, डांस और मच्छरों का कष्ट, आक्रोश वचन, दुःख शैया—कष्टप्रद स्थान, तृण स्पर्श और मैल—।३२।

ताड़ना, तर्जना, वध और बंधन, भिक्षाचर्या, याचना और अलाभ—इन परीषहों का सहन करना अति कठिन है ।३३।

यह कापोती वृत्ति अर्थात कबूतर के समान दोषों से सशंक एवं सतर्क रहने की वृत्ति, दारुण केशलोच और यह घोर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना अमहान—सामान्य आत्माओं के लिये दुष्कर है ।३४।

पुत्र ! तू सुख भोगने के योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित है—साफ स्वच्छ रहने वाला है, अतः श्रमणधर्म का पालन करने के लिये तू समर्थ नहीं है ।३५।

पुत्र ! साधुचर्या में जीवन पर्यन्त कहीं विश्राम नहीं है । लोहे के भार की तरह साधु के गुणों का महान गुरुतर भार है, जिसे जीवनपर्यन्त वहन करना अत्यन्त कठिन है ।३६।

जैसे आकाश गंगा का स्रोत; प्रतिस्रोत (प्रतिकूल प्रवाह) दुस्तर है, जिस प्रकार सागर को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, वैसे ही गुणोदधि—संयम सागर को तैरना दुष्कर है ।३७।

वालुया कवले चेव, निरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ।३८।

सगम रेत से ग्रास की तरह स्वादरहित है। तप का आचरण तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है ।३८।

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुक्करे।
जवा लोहमया चेव चावेयव्वा सुदुक्करं ।३९।

सांप की तरह एकाग्र दृष्टि से चारित्र धर्म में चलना कठिन है। लोहे के जौ चबाना जैसे दुष्कर है, वैसे ही चारित्र का पालन दुष्कर है ।३९।

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा।
तह दुक्कर करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ।४०।

जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा—ज्वाला का पीना दुष्कर है, वैसे ही युवावस्था में श्रमण धर्म का पालन करना दुष्कर है ।४०।

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ।४१।

जैसे वस्त्र के कोथले—थैले को हवा से भरना कठिन है, वैसे ही कायरों द्वारा श्रमण धर्म का पालन करना भी कठिन है ।४१।

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी।
तहा निहुयनीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ।४२।

जैसे मेरु पर्वत को तराजू से तौलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चल और निःशंक भाव से श्रमण धर्म का पालन करना भी दुष्कर है ।४२।

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो ।४३।

जैसे भुजाओं से समुद्र को तैरना कठिन है, वैसे ही अनुपशान्त व्यक्ति के द्वारा संयम सागर को पार करना दुष्कर है ।४३।

भुंज माणुस्सए भोए, पंचलक्खणए तुमं।
भुत्तभोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्ससि ।४४।

पुत्र ! पहले तू मनुष्य सम्बन्धी शब्द-रूप आदि पांच प्रकार के भोगों का भोग कर। पश्चात भुक्तभोगी होकर धर्म का आचरण करना ।४४।

मियापुत्तेण नरयदुक्खवण्णणं सामण्णदुक्करत्तनिराकरण च—

मृगापुत्र द्वारा नरक दुःख वर्णन और श्रामण्य दुष्करत्व-निवारण—

४७८. सो बेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं।
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्करं ।४५।

४७८. उसने (मृगापुत्र ने) माता-पिता से कहा—आपने जो कहा है, ठीक है। किन्तु इस ससार में जिसकी प्यास बुझ चुकी है उसके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है ।४५।

सारीर-माणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खभयाणि य ।४६।

मैंने शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्तबार सहन किया है और अनेक बार भयंकर दुःख और भय का भी अनुभव किया है ।४६।

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ।४७।

मैंने नरकादि चार गति रूप अन्तवाले जरा-मरण रूपी भय के आकर—खान संसाररूपी वन में भयंकर जन्म-मरणों को सहा है ।४७।

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणंतगुणो तहिं।
नरएसु वेयणा उण्हा, असाया वेइया मए ।४८।

जैसे यहां अग्नि उष्ण है, उससे अनन्तगुणी अधिक दुःख रूप उष्ण वेदना मैंने नरक में अनुभव की है ।४८।

जहा इहं इमं सीयं, एत्तोऽणंतगुणं तहिं।
नरएसु वेयणा सीया, असाया वेइया मए ।४९।

जैसे यहां शीत है, उससे अनन्तगुणी अधिक दुःखरूप शीत-वेदना मैंने नरक में अनुभव की है ।४९।

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो ।५०।

मैं नरक की कंदु कुम्भियों—लोहपात्रों में ऊपर पैर और नीचा सिर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हूँ ।५०।

महादवग्गिसंकासे, मरुंमि वइरवालुए।
कलंबवालुयाए य दड्ढपुव्वो अणंतसो ।५१।

महाभयंकर दावाग्नि तुल्य मरु प्रदेश में तथा वज्रवालुका में और कदम्ब (नदी का तट) वालुका में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ—घसीटा गया हूँ ।५१।

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो ।
करवत्त-करकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणंतसो ।५२।

बंधु-बांधवों से रहित असहाय रोता हुआ मैं कन्दुकुम्भी में ऊंचा बांधा गया और करवत एवं क्रकच—आरा आदि शस्त्रों से अनन्त बार छेदा गया हूँ ।५२।

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे ।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहि दुक्करं ।५३।

अत्यन्त तीखे कांटों से व्याप्त ऊँचे शाल्मलि वृक्ष पर पाश-जाल से बांधकर इधर-उधर खींचकर मुझे असह्य कष्ट दिया गया है ।५३।

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ।
पीलिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो ।५४।

अति भयानक आक्रन्दन करता हुआ मैं पाप कर्मा अपने कर्मों के कारण गन्ने की तरह बड़े-बड़े यन्त्रों में अनन्त बार पीला गया हूँ ।५४।

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरंतो अणेगसो ।५५।

मैं इधर-उधर भागता हुआ और आक्रन्दन करता हुआ काले और चितकबरे सुअरों और कुत्तों से अनेक बार गिराया गया, फाड़ा गया और छेदा गया ।५५।

असीहिं अयसिवण्णाहिं, भल्लेहिं पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, ओइण्णो पावकम्मुणा ।५६।

पापकर्मों के कारण मैं नरक में जन्म लेकर अलसी के फूलों के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोहे के दंडों से छेदा गया, भेदा गया और खंड-खंड कर दिया गया ।५६।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए ।
चोइओ तोत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ।५७।

समिला (जुए के छेद में लगने वाली कीली) से युक्त जुए वाले जलते लोह के रथ में जोता गया, चाबुक और रस्सी से हांका गया तथा रोझ की भांति पीटकर भूमि पर गिराया गया ।५७।

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ।५८।

पापकर्मों से घिरा हुआ पराधीन मैं अग्नि की चिताओं में भैंसे की भांति जलाया गया पकाया गया हूँ ।५८।

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवंतोऽहं, ढंकगिद्धेहिं णंतसो ।५९।

लोहे के समान कठोर संडासी जैसी चोंच वाले ढंक और गीध पक्षियों द्वारा रोता-बिलखता हुआ भी हठात् अनन्त बार नोचा गया हूँ ।५९।

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं नइं ।
जलं पाहं ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ ।६०।

प्यास से व्याकुल होकर दौड़ता हुआ मैं वैतरणी नदी पर पहुँचा । 'जल पीऊँगा' यह सोच ही रहा था कि छुरे के धार जैसी तीक्ष्ण जलधारा से मैं चीरा गया ।६०।

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ।६१।

गर्मी से संतप्त होकर मैं छाया के लिये असि-पत्र महावन में गया । किन्तु वहां ऊपर से गिरते हुए असि पत्रों से अनेक बार छेदा गया ।६१।

मुग्गरेहिं मुसंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहिं य ।
गया-संभग्ग-गत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो ।६२।

सब ओर से निराश हुए मेरे शरीर को मुद्गरों, मुसुण्डियों, शूलों और मूसलों से चूर-चूर किया गया । इस प्रकार मैंने अनन्त बार दुःख पाया है ।६२।

खुरेहिं तिक्खधाराहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो य अणेगसो ।६३।

तेजधार वाले छुरों से, छुरियों से तथा कैंचियों से मैं अनेक बार काटा गया हूँ, टुकड़े-टुकड़े किया गया हूँ, छेदा गया हूँ और मेरी चमड़ी उतारी गई है ।६३।

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइयो ।६४।

विवश बने मृग की भांति भी अनेक बार पाशों और कूट जालों से छलपूर्वक पकड़ा गया हूँ, बांधा गया हूँ, रोका गया हूँ और विनष्ट किया गया हूँ ।६४।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो ।६५।

गलों—मछली को फँसाने के कांटों से और मगर को पकड़ने के जालों से मत्स्य की तरह विवश मैं अनन्त बार खींचा गया, फाड़ा गया, पकड़ा गया और मारा गया हूँ ।६५।

वीदंसएहि जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो ।६६।

बाज पक्षियों, जालों तथा वज्रलेपों के द्वारा पक्षी की भांति मैं अनन्त बार पकड़ा गया, चिपकाया गया, बांधा गया और मारा गया ।६६।

कुहाड-फरसु-माईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणंतसो ।६७।

बढ़ई के द्वारा वृक्ष की तरह कुल्हाड़ी और फरसा आदि से मैं अनन्त बार कूटा गया हूं, फाड़ा गया हूं, छेदा गया हूं और छीला गया हूं ।६७।

चवेड-मुट्ठिमाईहिं कुमारेहिं अयं पिव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणंतसो ।६८।

लुहारों के द्वारा लोहे की भांति मैं परमाधर्मी असुरकुमारों के द्वारा चपत और मुक्का आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, खंड-खंड किया गया और चूर्ण बना दिया गया ।६८।

तत्ताइं तंबलोहाइं तउयाइं, सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ।६९।

भयंकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे कलकलाता गर्म तांबा, लोहा, रांगा और सीसा पिलाया गया।६९।

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि स-मंसाइं, अग्गिवण्णाइं णेगसो ।७०।

'तुझे टुकड़े-टुकड़े किया हुआ और शूल में पिरोकर पकाया हुआ मांस प्रिय था'—यह याद दिलाकर मुझे मेरे ही शरीर का मांस काटकर और उसे अग्नि जैसा लाल तपाकर अनेक बार खिलाया गया ।७०।

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।
पज्जिओ म्मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ।७१।

'तुझे सुरा, सीधू, मैरेय और मधु आदि मदिरायें प्रिय थीं'—यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्बी और खून पिलाया गया ।७१।

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ।७२।

मैंने (इस प्रकार पूर्व जन्मों में) नित्य ही भयभीत, संत्रस्त, दुःखित और व्यथित होते हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना का अनुभव किया है ।७२।

तिव्वचंडप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेइया मए ।७३।

तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ़ घोर, अत्यन्त दुःसह, महाभयंकर और भीष्म वेदनाओं का मैंने नरक में अनुभव किया है ।७३।

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसंति वेयणा ।
एत्तो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ।७४।

हे तात ! मनुष्यलोक में जैसी वेदनायें देखी जाती हैं—उनसे अनन्तगुणी अधिक दुःख वेदनायें नरक में हैं ।७४।

सव्वभवेसु असाया, वेयणा वेइया मए ।
निमेसंतरमित्तं पि, जं साता नत्थि वेयणा ।७५।

मैंने सभी जन्मों में दुःख रूप वेदना का अनुभव किया है। एक पलक मात्र जितनी भी सुख रूप वेदना (अनुभूति) वहां नहीं है ।७५।

अम्मापियरेहिं सामण्णे निप्पडिकम्मणं ति कहणं—

माता-पिता द्वारा 'श्रामण्य में निष्प्रतिकर्मण' कथन—

४७९. तं बितऽम्मापियरो, छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया ।७६।

४७९. माता-पिता ने उससे कहा—पुत्र ! अपनी इच्छानुसार तुम भले ही संयम स्वीकार करो। किन्तु विशेष बात यह है कि श्रमण जीवन में निष्प्रतिकर्मता—रोग होने पर चिकित्सा न कराना—यह कष्ट है ।७६।

मियापुत्तस्स उत्तरं—

मृगापुत्र का उत्तर—

४८०. सो बेइ अम्मापियरो ! एवमेवं जहा फुडं ।
पडिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मियपक्खिणं ।७७।

४८०. वह बोला—माता-पिता ! आपने जो कहा, वह सत्य है। किन्तु जंगल में रहने वाले निरीह पशु-पक्षियों की चिकित्सा कौन करता है ?७७।

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरइ मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ।७८।

जैसे जंगल में मृग अकेला विचरता है, वैसे ही मैं भी संयम और तप के साथ एकाकी होकर धर्म का आचरण करूँगा ।७८।

जहा मिगस्स आयंको, महारण्णंमि जायइ ।
अच्छंतं रुक्खमूलंमि, को णं ताहे तिगिच्छई ।७९।

जब महावन में मृग के शरीर में आतंक (प्राणघातक रोग) उत्पन्न हो जाता है तब वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस मृग की चिकित्सा कौन करता है ?७९।

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छइ सुहं ?
को से भत्तं व पाणं वा, आहरित्तु पणामए ? ।८०।

कौन उसे औषधि देता है ? कौन उससे सुख (स्वास्थ्य) की बात पूछता है ? कौन उसे भोजन-पान लाकर देता है ?८०।

जया य से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ।८१।

जब वह नीरोग हो जाता है, तब स्वयं गोचर भूमि में जाता है और खाने-पीने के लिये लता वेलों और जलाशयों को खोजता है ।७१।

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य ।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं ।८२।

वेलों और जलाशयों में खा-पीकर मृगचर्या (उछल कूद) करता हुआ वह मृग मृगचर्या (मृगों की निवास भूमि) को चला जाता है ।८२।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं ।८३।

इसी प्रकार रूपादि में अप्रतिबद्ध, संयम के लिये उद्यत, भिक्षु स्वतंत्र विहार करता हुआ मृगचर्या की तरह आचरण कर ऊर्ध्वदिशा—मोक्ष को गमन करता है ।८३।

जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे,
नो हीलए नो वि य खिंसएज्जा ।८४।

जैसे मृग अकेला अनेक स्थानों में विचरता है, अनेक स्थानों में रहता है, सदैव गोचर-चर्या से ही जीवन यापन करता है, वैसे ही गोचरी के लिये गया हुआ मुनि भी किसी की निन्दा और अवज्ञा नहीं करता है ।८४।

मियापुत्तस्स पव्वज्जा—

४८१. मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं ।
अम्मापिऊहिंऽणुन्नाओ, जहाइ उवहिं तओ ।८५।

मृगापुत्र की प्रव्रज्या—

४८१. मैं मृगचर्या का आचरण करूंगा ।

पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो—इस प्रकार माता-की अनुमति पाकर वह उपधि-परिग्रह को छोड़ता है ।८५।

मियचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
तुब्भेहिं अंब ! ऽणुन्नाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ।८६।

हे माता ! मैं तुम्हारी अनुमति प्राप्त कर सभी दुःखों का क्षय करने वाली मृगचर्या का आचरण करूंगा ।

पुत्र ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो ।८६।

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं ।
ममत्तं छिंदई ताहे, महानागो व्व कंचुयं ।८७।

इस प्रकार वह अनेक तरह से माता-पिता को अनुमति के लिये समझा कर ममत्व का त्याग करता है, जैसे महानाग (सर्प) कैंचुली को छोड़ता है ।८७।

इड्ढी वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च नायओ ।
रेणुयं व पडे लग्गं, निद्धूणित्ताण निग्गओ ।८८।

कपड़े पर लगी हुई धूल की तरह ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कलत्र और ज्ञाति जनों को झटक कर वह संयमयात्रा के लिये निकल पड़ा ।८८।

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य ।
सब्भिंतरबाहिरए, तवोकम्मंमि उज्जुओ ।८९।
निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।९०।

पंच महाव्रतों से युक्त, पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, आभ्यन्तर और बाह्य तप में उद्यत—।८९।

ममत्व रहित, अहंकार रहित, संगरहित, गौरव का त्यागी, त्रस और स्थावर सभी जीवों में समदृष्टि—।९०।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ।९१।

लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुःख में, जीवन में, मरण में, निन्दा में, प्रशंसा में और मान-अपमान में समत्व का साधक—।९१।

गारवेसु कसाएसु, दंड-सल्ल-भएसु य।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अबंधणो।९२।

गौरव, कषाय, दंड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बंधन से मुक्त—।९२।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासीचंदणकप्पो य असणे अणसणे तहा।९३।

इस लोक में अनासक्त और परलोक में अनासक्त, बसूले से काटने अथवा चन्दन लगाये जाने पर भी तथा आहार मिलने और न मिलने पर भी सम—।९३।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं सव्वओ पिहियासवे।
अज्झप्प-ज्झाणजोगेहिं, पसत्थ-दमसासणे।९४।

अप्रशस्त द्वारों—हेतुओं से आने वाले कर्म पुद्गलों का सर्वतोभावेन निरोधक वह महर्षि (मृगापुत्र) अध्यात्म संबंधी ध्यान योगों से प्रशस्त संयम शासन में लीन हुआ।९४।

एवं नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं।९५।

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और शुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित कर—।९५।

बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं।९६।

बहुत वर्षों तक श्रामण्य धर्म का पालन कर अंत में एक मास के अनशन से वह अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुआ।९६।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणिअट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहा रिसी।९७।

संबुद्ध, पंडित और अतिविचक्षण व्यक्ति ऐसा ही करते हैं। वे काम भोगों से वैसे ही निवृत्त होते हैं, जैसे कि महर्षि मृगापुत्र निवृत्त हुए।९७।

महप्पभावस्स महाजसस्स, मियाइपुत्तस्स निसम्म भासियं।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं।९८।

महान प्रभावशाली, महान यशस्वी, मृगापुत्र के तपःप्रधान, त्रिलोक विश्रुत एवं मोक्षरूपगति से प्रधान—उत्तम चारित्र के कथन को सुनकर—।९८।

वियाणिया दुक्ख-विवड्ढणं धणं, ममत्तबंधं च महाभयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाण-गुणावहं महं।९९।

धन को दुःखवर्धक तथा ममत्व बंधन को महा भयंकर जानकर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने वाली सुखावह—अनन्त सुख प्राप्त कराने वाली धर्मधुरा को धारण करो।९९।

त्ति बेमि।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

—उत्तर० अ० १९।

□ □

३६. महावीरतित्थे गद्दभाली संजयराया य / ३६ महावीर तीर्थ में गर्दभालि और संजय राजा

संजयरण्णा मुणिसमीवे मिअवहो—

संजय राजा का मुनि के समीप मृगवध—

४८२. कंपिल्ले नयरे राया, उदिण्णबलवाहणे।
नामेणं संजए नाम, मिगव्वं उवणिग्गए।१।

४८२. कांपिल्यनगर में सेना और वाहन से सुसंपन्न संजय नाम का राजा था। एक दिन वह मृगया—शिकार खेलने के लिये निकला।१।

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ।२।
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाणकेसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ, रसमुच्छिए ।३।

वह राजा सब ओर से विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पदाति सेना से परिवृत्त था ।२।

राजा अश्व पर आरूढ़ था । वह रसमूर्च्छित होकर कांपिल्य नगर के केशर उद्यान की ओर ढकेले गये भयभीत और थके हुए हिरणों को मार रहा था ।३।

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ।४।
अप्फोवमंडवंमि, झायइ खवियासवे ।
तस्सागए मिए पासं, वहेइ से नराहिवे ।५।

उस केशर उद्यान में एक तपोधन अनगार स्वाध्याय और ध्यान में लीन थे, धर्मध्यान की एकाग्रता साध रहे थे ।४।

आस्रव का क्षय करने को उद्यत अनगार अप्फोवमंडप-लतामंडप में ध्यान कर रहे थे। राजा ने उनके समीप आये हिरणों का वध कर दिया ।५।

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ ।६।

अश्वारूढ़ राजा शीघ्र ही वहाँ आया, जहां मुनि ध्यानस्थ थे । मृत हरिणों को देखने के बाद उसने वहाँ एक अनगार को देखा ।६।

संजएण खमाजायणं—

संजय द्वारा क्षमा याचन—

४८३. अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ ।
मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घंतुणा ।७।

४८३. मुनि को देखकर राजा सहसा भयभीत हो गया । उसने सोचा—मैं कितना मंदपुण्य-भाग्यहीन, रसासक्त और हिंसकवृत्ति का हूँ कि मैंने व्यर्थ ही मुनि को आहत किया है ।७।

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वंदए पाए, भगवं ! एत्थ मे खमे ।८।

घोड़े को छोड़कर उसने विनयपूर्वक अनगार के चरणों में वंदन किया और कहा—भगवन् ! इस अपराध के लिये मुझे क्षमा कीजिये ।८।

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए ।
रायाणं न पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ ।९।

वे अनगार तो मौनपूर्वक ध्यान में लीन थे । उन्होंने राजा को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया । अतः राजा और अधिक भयाक्रांत हो गया ।९।

संजओ अहमंसीति, भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ ।१०।

भगवन् ! मैं संजय हूं । आप मुझसे कुछ तो बोलें । मैं जानता हूँ—क्रुद्ध अनगार अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को जला डालते हैं ।१०।

गद्दभालिमुणिणा उवएसो—

गर्दभालि मुनि द्वारा उपदेश—

४८४. अभओ पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगंमि, किं हिंसाए पसज्जसि ? ।११।
जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चं जीवलोगंमि, किं रज्जंमि पसज्जसि ? ।१२।

४८४. पार्थिव—राजन् ! तुझे अभय है, किन्तु तू भी अभयदाता बन । इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों हिंसा में संलग्न है ?११।

जब सब कुछ छोड़कर तुझे यहाँ से अवश्य लाचार होकर चले जाना है, तो इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों राज्य में आसक्त हो रहा है ?१२।

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपायचंचलं ।
जत्थ तं मुज्झसि रायं ! पेच्चत्थं नाववुज्झसे ।१३।

राजन् ! तू जिसमें मोहमुग्ध है, वह जीवन और सौन्दर्य बिजली की चमक की तरह चंचल है । तू अपने परलोक के हित को नहीं समझ रहा है ।१३।

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा ।
जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुवयंति य ।१४।

स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र तथा बंधुजन जीवित व्यक्ति के साथ ही जीते हैं । कोई भी मृत व्यक्ति के पीछे नहीं जाता है अर्थात् मरते समय कोई साथ नहीं देता है ।१४।

नीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया।
पियरो वि तहा पुत्ते, बंधू रायं ! तवं चरे ।१५।

अत्यन्त दुःख के साथ पुत्र अपने मृत पिता को घर से बाहर निकाल देते हैं उसी प्रकार पुत्र को पिता और बन्धु को अन्य बंधु भी बाहर निकालते हैं। अतः राजन् ! तू तप का आचरण कर ।१५।

तओ तेणऽज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलंतऽन्ने नरा रायं ! हट्ठतुट्ठमलंकिया ।१६।

मृत्यु के बाद उस मृत व्यक्ति द्वारा उपार्जित धन का तथा परिरक्षित स्त्रियों का, अन्य लोग हृष्ट, तुष्ट अलंकृत होकर उपभोग करते हैं ।१६।

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ।१७।

जो सुख अथवा दुःख के कर्म जिस व्यक्ति ने किये हैं, वह अपने उन कर्मों के साथ परभव में जाता है।१७।

मुणिसमीवे रण्णो पव्वज्जा—

मुनि के समीप राजा की प्रव्रज्या—

४८५. सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए।
महया संवेगनिव्वेयं, समावन्नो नराहिवो ।१८।

४८५. अनगार के पास से महानधर्म को सुनकर राजा मोक्ष का अभिलाषी और संसार से विमुख हो गया ।१८।

संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ।१९।

राज्य को छोड़कर वह संजय राजा भगवान गर्दभाली अनगार के समीप जिन शासन में दीक्षित हो गया है ।१९।

खत्तियमुणिपण्हो—

क्षत्रिय मुनि के प्रश्न—

४८६. चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ।
जहा ते दीसइ रूवं, पसन्नं ते जहा मणो ।२०।

४८६. राष्ट्र को त्यागकर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक दिन संजयमुनि से कहा—तुम्हारा यह रूप—बाह्य आकार जैसे प्रसन्न-निर्विकार है, लगता है,—वैसे ही तुम्हारा अन्तर्मन भी प्रसन्न है ।२०।

किं नामे किं गोत्ते कस्सट्ठाए व माहणे।
कहं पडियरसि बुद्धे, कहं विणीए त्ति वुच्चसि ? ।२१।

तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गोत्र क्या है ? किस प्रयोजन से तुम महान मुनि बने हो ? किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ? किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?२१।

संजयमुणिणा अत्तकहानिवेयणं—

संजय मुनि द्वारा आत्मकथा निवेदन—

४८७. संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ।२२।

४८७. मेरा नाम संजय है। मेरा गोत्र गौतम है। विद्या और चरण के पारगामी गर्दभालि मेरे आचार्य हैं ।२२।

किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणी।
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासइ ।२३।

हे महामुने ! क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान-इन चार स्थानों के द्वारा कुछ एकान्तवादी मेयज्ञ—तत्ववेत्ता असत्य तत्व की प्ररूपणा करते हैं ।२३।

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिणिव्वुए।
विज्जा-चरण-संपन्ने, सच्चे सच्चपरक्कमे ।२४।

बुद्ध—सर्वज्ञ. परिनिर्वृत्त-संसार त्यागी, ज्ञान और चारित्र से संपन्न, सत्यवाक् और सत्य पराक्रमी ज्ञातवंशीय भगवान महावीर ने ऐसा प्रगट किया है ।२४।

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ।२५।

जो मनुष्य पाप कर्म करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं और जो आर्य धर्म का आचरण करते हैं, वे दिव्य गति को प्राप्त करते हैं ।२५।

मायावुइयमेयं तु, मुसा भासा निरत्थिया।
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि य ।२६।

एकान्तवादियों का सब कथन मायापूर्वक है, अतः मिथ्या-वचन है। मैं इन माया पूर्ण वचनों से बचकर चलता हूँ ।२६।

सव्वेए विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पयं ।२७।

जो मिथ्यादृष्टि और अनार्य हैं, वे सब मेरे जाने हुए हैं। मैं परलोक में रहे हुए अपने को अच्छी तरह से जानता हूँ ।२७।

खत्तियमुणिणा अप्पणो पुव्वभवकहणं—

क्षत्रिय मुनि द्वारा अपना पूर्व भव कथन—

४८८. अहमासि महापाणे, जुइमं वरिससओवमे ।
जा सा पालि-महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ।२८।

४८८. मैं पहले महाप्राण नामक विमान में वर्ष शतोपम आयु-वाला द्युतिमान देव था । जैसे कि—यहाँ सौ वर्ष की आयु पूर्ण मानी जाती है, वैसे ही वहां पाली-पल्योपम एवं महापाली-सागरोपम की दिव्य आयु पूर्ण है ।२८।

से चुए, बंभलोगाओ, माणुस्सं भवमागए ।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ।२९।

ब्रह्मलोक का आयुष्य पूर्ण करके मैं मनुष्य भव में आया हूँ। मैं जैसे अपनी आयु को जानता हूँ, वैसे ही दूसरों की आयु को भी जानता हूँ ।२९।

नाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ।३०।

नाना प्रकार की रुचि और छन्दों—मन के विकल्पों का तथा सब प्रकार के अनर्थक व्यापारों का संयतात्मा मुनि को सर्वत्र त्याग करना चाहिए । इस तत्व ज्ञान रूप विद्या का लक्ष्य करके संयम पथ पर विचरण करें ।३०।

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ।३१।

मैं शुभाशुभ सूचक प्रश्नों और गृहस्थों की मंत्रणाओं से दूर रहता हूँ । अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए उद्यत रहता हूँ । यह जानकर तुम भी तप का आचरण करो ।३१।

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ।३२।

जो तुम मुझे सम्यक्, शुद्ध चित्त से काल के विषय में पूछ रहे हो, उसे बुद्ध सर्वज्ञ ने प्रगट किया है । अतः वह ज्ञान जिन शासन में विद्यमान हैं ।३२।

किरियं च रोयई धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं ।३३।

धीर पुरुष क्रिया—चारित्र, संयम में रुचि रखे और अक्रिया का त्याग करे । सम्यक् दृष्टि से संपन्न होकर तुम दुश्चर धर्म का आचरण करो ।३३।

खत्तियमुणिणा पुव्वपव्वइयभरहाईणं निरूवणं—

क्षत्रिय मुनि द्वारा पूर्व प्रव्रजित भरतादि का निरूपण—

४८९. एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थ—धम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइं पव्वए ।३४।

४८९. अर्थ और धर्म से उपशोभित इस पुण्य पद-पवित्र उपदेश को सुनकर भरत चक्रवर्ती भारतवर्ष के राज्य तथा काम भोगों का परित्यागकर प्रव्रजित हुए थे ।३४।

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे ।३५।

नराधिप सागर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़कर दया-संयम की साधना से परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ ।३५।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसे ।३६।

महान ऋद्धि संपन्न, महान यशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष की ऋद्धि को छोड़कर प्रव्रज्या स्वीकार की ।३६।

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं, सो वि राया तवं चरे ।३७।

महान ऋद्धि-सम्पन्न, मनुष्येन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती ने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर तप का आचरण किया ।३७।

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ।३८।

महान ऋद्धि सम्पन्न और लोक में शांति करने वाले शांति-नाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।३८।

इक्खागरायवसभो, कुंथू नाम नरीसरो ।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ।३९।

इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ, नरेश्वर, विशाल कीर्ति, द्युतिमान कुन्थुनाथ ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।३९।

सागरंतं चइत्ताणं, भरहवासं, नरेसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ।४०।

सागर पर्यन्त भारतवर्ष को छोड़कर कर्म रज को दूर करके नरेश्वरों में श्रेष्ठ, 'अर'....ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।४०।

चइत्ता भारहं वासं, चइत्ता बलवाहणं।
चइत्ता उत्तमे भोए महापउमे तवं चरे।४१।

भारतवर्ष को छोड़कर उत्तम भोगों का त्यागकर महापद्म चक्रवर्ती ने तप का आचरण किया ।४१।

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माण-निसूरणो।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ।४२।

शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी पर एक छत्र शासन करके फिर अनुत्तर गति प्राप्त की ।४२।

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ।४३।

हजार राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य का परित्याग कर जिन भाषित दम (संयम) का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की ।४३।

दसण्णरज्जं मुदियं चइत्ताणं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ।४४।

साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होकर दशार्णभद्र राजा ने अपने सब प्रकार से सम्पन्न दशार्ण राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली और मुनि धर्म का आचरण किया ।४४।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ।४५।

साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होने पर भी विदेह राज नमि श्रामण्य धर्म में भली भांति स्थिर हुए, अपने को अति विनम्र बनाया ।४५।

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गई ।४६।

कलिंग में करकंडु, पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमिराज और गंधार में नग्गति ।४६।

एए नरिंदवसभा, निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ।४७।

राजाओं में वृषभ के समान महान थे। इन्होंने अपने-अपने पुत्र को राज्य में स्थापित कर श्रामण्य धर्म स्वीकार किया ।४७।

सोवीररायवसभो, चइत्ताण मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ।४८।

सौवीर राजाओं में वृषभ के समान महान उद्रायण राजा ने राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली, मुनि धर्म का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की—।४८।

तहेव कासिराया वि, सेओ सच्चपरक्कमो।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ।४९।

इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमशील काशीराज ने कामभोगों का परित्याग कर कर्मरूपी महावन का नाश किया ।४९।

तहेव विजओ राया, अणट्ठा कित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ।५०।

इसी प्रकार अमर कीर्ति, महान यशस्वी, विजय राजा ने गुण समृद्ध राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली ।५०।

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ।५१।

इसी प्रकार अनाकुल चित्त से उग्र तपस्या करके राजर्षि महावल ने शिर देकर शिर प्राप्त किया अर्थात् अहंकार का विसर्जन कर सिद्धि रूप उच्च पद प्राप्त किया ।५१।

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व महिं चरे ?।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ।५२।

इन भरत आदि शूर और दृढ़ पराक्रमी राजाओं ने जिन-शासन में विशेषता देखकर ही उसे स्वीकार किया था। अतः अहेतुवादों से प्रेरित होकर अव कोई कैसे उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर विचरण करे ?५२।

अच्चंतनियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया ।५३।

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम-युक्तिसंगत सत्यवाणी कही है। इसे स्वीकार करके अनेक जीव अतीत में संसार समुद्र से पार हुए हैं, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में पार होंगे ।५३।

कहिं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ।
सव्वसंग-विणिम्मुक्के, सिद्धे भवइ नीरए ।५४।

त्ति बेमि॥
उत्तरा० अ० १८

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवादों में अपने आपको कैसे लगाये ? जो सभी संगों से मुक्त है, वही नीरज-कर्मरज से रहित होकर सिद्ध होता है ।५४।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।





३७. महावीरतित्थे उसुयार रायाइ छ समणा

३७ महावीर तीर्थ में इषुकारराजादि छह श्रमण

उसुयारनयरे पुरोहियपुत्ताई—

४६०. देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ।१।

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विण्ण-संसारभया जहाय, जिणिंदमग्गं सरणं पवन्ना ।२।

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायऽत्थ देवी कमलावई य ।३।

इषुकार नगर में पुरोहित पुत्रादि—

४६०. देवलोक के समान सुरम्य, प्राचीन, प्रसिद्ध और समृद्धिशाली इषुकार नामक नगर था। उसमें पूर्वजन्म में एक ही विमान के वासी कुछ जीव देवायु पूर्णकर अवतरित हुए ।१।

पूर्वभव में कृत अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण वे जीव उच्च कुलों में उत्पन्न हुए और संसार भय से उद्विग्न होकर कामभोगों का परित्याग कर जिनेन्द्र मार्ग की शरण ली ।२।

पुरुषत्व को प्राप्त दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विशाल कीर्तिवाला इषुकार राजा और उसकी रानी कमलावती—ये छह व्यक्ति थे ।३।

जाईसरणेण पुरोहियपुत्ताणं विरत्ती पव्वज्जासंकप्पो णिवेयणं च—

४६१. जाई-जरा-मच्चु भयाभिभूया, बहिं विहाराभिनिविट्ठ-चित्ता ।
संसार-चक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ।४।

पियपुत्तगा दुन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ।५।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा,
तायं उवागम्म इमं उदाहु ।६।

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअंतरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ।७।

जातिस्मरण से पुरोहित पुत्रों को विरक्ति और प्रव्रज्या संकल्प निवेदन—

४६१. जन्म, जरा और मरण के भय से अभिभूत कुमारों का चित्त मुनि दर्शन से वहिर्विहार अर्थात् मोक्ष की ओर आकृष्ट हुआ, फलतः संसार चक्र से मुक्ति पाने के लिये वे काम गुणों से विरक्त हुए ।४।

यज्ञ-यागादि स्वकार्य में संलग्न ब्राह्मण (पुरोहित) के ये दोनों प्रियपुत्र अपने पूर्वजन्म और तत्कालीन सुचीर्ण (भली-भांति आराधित) तप संयम को स्मरण कर विरक्त हुए ।५।

मनुष्य और देव सम्बन्धी काम-भोगों में अनासक्त, मोक्षाभिलाषी, श्रद्धासंपन्न उन दोनों पुत्रों ने पिता के पास आकर इस प्रकार कहा—।६।

जीवन की क्षणिकता को हमने जाना है, वह विघ्न बाधाओं से परिपूर्ण है, अल्पायु है, इसलिये घर में हमें कोई आनन्द नहीं मिल रहा है । अतः आपकी अनुमति चाहते हैं कि हम मुनि धर्म का आचरण करें ।७।

पुरोहियेण वारणं—

४६२. अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो ।८।

पुरोहित के द्वारा वारण—

४६२. यह सुनकर पिता ने कुमार-मुनियों की तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वाली यह बात कही—पुत्रो ! वेदों के ज्ञाता इस प्रकार कहते हैं कि जिनको पुत्र नहीं होता है, उनकी गति नहीं होती है ।८।

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया !
भोच्चा ण भोए सह इत्थियाहिं,
आरण्णगा होह मुणी पसत्था ।६।

इसलिये हे पुत्रो ! पहले वेदों का अध्ययन करो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ और विवाह कर स्त्रियों के साथ भोग करो। अनन्तर पुत्रों को घर का भार सौंप कर अरण्यवासी प्रशस्त—श्रेष्ठ मुनि बनना ।६।

पुरोहिअपुत्ता—

सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ।१०।

पुरोहित पुत्र—

अपने रागादि गुण रूप ईंधन से प्रदीप्त और मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोकाग्नि से जिसका अन्तःकरण संतप्त और परितप्त हो गया है एवं जो मोहग्रस्त होकर अनेक प्रकार के बहुत अधिक दीन वचन बोल रहा है ।१०।

पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं, निमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ।११।

जो क्रमशः बार-बार अनुनय कर रहा है, धन का और क्रम प्राप्त काम भोगों का निमंत्रण दे रहा है, उस अपने पिता पुरोहित को कुमारों ने अच्छी तरह विचार कर यह वचन कहा—।११।

वेया अहीया न भवंति ताणं, भुत्ता दिया निंति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ।१२।

पढ़े हुए वेद भी त्राण (रक्षक) नहीं होते हैं। यज्ञ-याज्ञादि के रूप में पशु हिंसा का उपदेश देने वाले ब्राह्मण भी भोजन कराने पर तमस्तम स्थिति में ले जाते हैं। पुत्र भी रक्षा करने वाले नहीं है। अतः आपके उक्त कथन का कौन अनुमोदन करेगा ?१२।

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।१३।

वे कामभोग क्षण भर के लिये सुखदायक है तो चिरकाल तक दुःख देते हैं, अधिक दुःख और थोड़ा सुख देते हैं। संसार से मुक्त होने में बाधक हैं, अनर्थों की खान हैं ।१३।

परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ।१४।

जो कामनाओं से मुक्त नहीं है, वह अतृप्ति की ताप में जलता हुआ पुरुष दिन-रात भटकता रहता है और दूसरों के लिये प्रमादाचरण करने वाला वह धन की खोज में लगा हुआ एक दिन जरा और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।१४।

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ।१५।

यह मेरे पास है, यह मेरे पास नहीं है। यह मुझे करना है, यह नहीं करना है—इस प्रकार व्यर्थ की बकवास करने वाले व्यक्ति को अपहरण करने वाली मृत्यु उठा लेती है। उक्त स्थिति होने पर भी प्रमाद कैसा ?१५।

पुरोहिओ—

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो,
तं सव्व साहीणमिहेव तुब्भं ।१६।

पुरोहित—

जिसकी प्राप्ति के लिये लोग तप करते हैं, वह विपुल धन, स्त्रियां स्वजन और इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय भोग तुम्हें यहां पर ही स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं। फिर परलोक के लिये इन गुणों के लिये क्यों भिक्षु बनते हो ?१६।

पुरोहिअपुत्ता—

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ।१७।

पुरोहित पुत्र—

जिसे धर्म की धुरा को वहन करने का अधिकार प्राप्त है, उसे धन, स्वजन तथा ऐन्द्रियिक विषयों का क्या प्रयोजन ? हम तो गुणसमूह के धारक, अप्रतिवद्धविहारी, शुद्ध भिक्षा ग्रहण करने वाले श्रमण बनेंगे ।१७।

पुरोहिओ—

जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घयं तेल्लमहातिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता, समुच्छइ नासइ नावचिट्ठे ।१८।

पुरोहित—

पुत्रो ! जैसे अरणि में अग्नि, दूध में घी, तिलों में तेल, असत्-अविद्यमान पैदा होता है, उसीप्रकार शरीर में जीव भी असत् ही पैदा होता है और नष्ट हो जाता है। शरीर का नाश होने पर जीव का कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता है।१८।

पुरोहिअपुत्ता—

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थहेउं नियय्स्स बंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं ।१९।

पुरोहित पुत्र—

आत्मा अमूर्त्त है, अतः वह इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। जो अमूर्तभाव होता है वह नित्य होता है। आत्मा के आन्तरिक रागादि हेतु निश्चित रूप से वंध के कारण है और वंध को संसार का हेतु कहा है ।१९।

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुब्भमाणा परिरक्खयंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ।२०।

जब तक हम धर्म से अनभिज्ञ थे, तब तक मोहवश पापकर्म करते रहे, आपके द्वारा हम रोके गये और हमारा संरक्षण होता रहा। किन्तु ! अब हम पुनः पापकर्म का आचरण नहीं करेंगे ।२०।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंसि न रइं लभे ।२१।

लोक आहत-पीड़ित है। चारों तरफ से घिरा हुआ है। अमोघा (अन्धकार) आ रही है। इस स्थिति में हम घर में सुख नहीं पा रहे हैं ।२१।

पुरोहिओ—

केण अब्भाहओ लोगो ? केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ? जाया चिंतावरो हुमि ।२२।

पुरोहित—

पुत्रो ! यह लोक किससे आहत है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहते हैं ? यह जानने के लिये मैं चिन्तित हूँ ।२२।

पुरोहिअपुत्ता—

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ? ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय विजाणह ।२३।

पुरोहित पुत्र—

पिता ! आप अच्छी तरह जान लें कि यह लोक मृत्यु से आहत है, जरा से घिरा हुआ है और रात्रि (समय चक्र की गति) को अमोघा कहते हैं ।२३।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ।२४।

जो जो रात्रि जा रही है, वह फिर लौट कर नहीं आती है। अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल जाती हैं ।२४।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ।२५।

जो जो रात्रि जा रही हैं, वह फिर लौटकर नहीं आती है। धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल होती है ।२५।

पुरोहिओ—

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्मत्तसंजुया ।
पच्छा जाया ! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ।२६।

पुरोहित—

पुत्रो ! पहले हम सब कुछ समय एक साथ रहकर सम्यक्त्व और व्रतों से युक्त हों—पालन करें, पश्चात् ढलती आयु में दीक्षित होकर घर से भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरेंगे ।२६।

पुरोहिअपुत्ता—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स चऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया।२७।

पुरोहित पुत्र—

जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, जो मृत्यु के आने पर दूर भाग सकता हो और जो यह जानता हो कि मैं कभी मरूंगा ही नहीं, वही आने वाले कल का भरोसा कर सकता है।२७।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना न पुणब्भवाभो।
अणागयं नेव य अत्थि किंची, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं।२८।

हम आज ही राग को दूर करके श्रद्धा से युक्त मुनि धर्म को स्वीकार करेंगे, जिसे पाकर पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेना होता है। हमारे लिये कोई भी भोग अनागत-अभुक्त नहीं है, क्योंकि वे अनन्त बार भोगे जा चुके हैं।२८।

भारियं जसं पइ पुरोहिओ—

४६३. पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो,
वासिट्ठि ! भिक्खायरिइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं,
छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं।२६।

पुरोहित यशाभार्या के प्रति—

४६४. वाशिष्ठि ! पुत्रों के बिना मेरा इस घर में निवास नहीं हो सकता है। भिक्षाचर्या का काल आ गया है। वृक्ष शाखाओं से ही अच्छा लगता है। शाखाओं के कट जाने पर केवल ठूंठ ही कहलाता है।२६।

पंखाविहूणो व जहेव पक्खी, भिच्चव्विहूणो व्व रणे नरिंदो।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहंपि।३०।

पंखों से रहित पक्षी, युद्ध में सेना से रहित राजा, जलपोत पर धन रहित व्यापारी जैसे असहाय होता है, वैसे ही पुत्रों के बिना मैं भी असहाय हूं।३०।

जसा—

सुसंभिया कामगुणे इमे ते, संपिंडिया अग्गरसप्पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं।३१।

यशा—

ससंस्कृत और सुसंगृहीत काम-भोग रूप प्रचुर विषय रस जो हमें प्राप्त हैं, उन्हें पहले इच्छानुरूप भोग लें। उसके बाद हम मुनि धर्म के प्रधान मार्ग पर चलेंगे।३१।

पुरोहिओ—

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ, न जीवियट्ठा पजहामि भोए।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं।३२।

पुरोहित—

भवति ! हम विषय रसों को भोग चुके हैं। युवावस्था हमें छोड़ रही है। मैं किसी स्वर्गीय जीवन के प्रलोभन में भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख को समदृष्टि से देखता हुआ मैं मुनि धर्म का पालन करूंगा।३२।

जसा—

माहू तुमं सोयरियाण संभरे, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरियाविहारो।३३।

यशा—

प्रतिस्रोत में तैरने वाले बूढ़े हंस की तरह कहीं तुम्हें फिर अपने बन्धुओं को याद न करना पड़े ? अतः मेरे साथ भोगों को भोगो। यह भिक्षाचर्या और यह ग्रामानुग्राम विहार काफी दुःख दायक है।३३।

पुरोहिओ—

जहा य भोई तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो।
एमेए जाया पयहंति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्को ?।३४।

पुरोहित—

भवति ! जैसे सांप अपने शरीर की केंचुली छोड़कर मुक्त-मन से चलता है, वैसे ही दोनों पुत्र भोगों को छोड़कर जा रहे हैं। अतः मैं अकेला रहकर क्या करूंगा ? क्यों न उनका अनुगमन करूं ?।३४।

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाए।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति।३५।

रोहित मत्स्य जैसे कमजोर जाल को काटकर बाहर निकल जाते हैं, वैसे ही धारण किये हुए गुरुतर संयम भार का वहन करने वाले प्रधान तपस्वी धीर साधक काम गुणों को छोड़कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं।३५।

जसा—

जहे व कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलिति पुत्ता य पई य मज्झं, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ? ।३६।

यथा—

जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलियों द्वारा फैलाये गये जालों को काटकर आकाश में स्वतंत्र रूप से उड़ जाते हैं, वैसे ही मेरे पुत्र और पति भी छोड़कर जा रहे हैं। पीछे मैं अकेली रहकर क्या करूंगी ? मैं भी क्यों न उनका अनुगमन करूँ ?३६।

कमलावई रायाणं पइ—

४६४. पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं तं, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ।३७।

कमलावती का राजा के प्रति—

४६४. पुत्र और पत्नी के साथ पुरोहित ने भोगों को त्यागकर अभिनिष्क्रमण किया है—यह सुनकर उस कुटुम्ब की प्रचुर और श्रेष्ठ धन संपत्ति की चाह रखने वाले राजा को देवी कमलावती ने कहा ।३७।

वंतासी पुरिसो रायं ! न सो होई पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आयाउमिच्छसि ।३८।

तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो। राजन् ! वमन को खाने वाला पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता है ।३८।

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वा वि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ।३९।

सारा जगत और उसका समस्त धन भी यदि तुम्हारा हो जाये, तो भी वह तुम्हारे लिये अपर्याप्त ही होगा और वह धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा ।३९।

मरिहिसि रायं ! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ।४०।

राजन् ! एक दिन इन मनोज्ञ काम-गुणों को छोड़कर जब मरेंगे तब एक धर्म ही संरक्षक होगा। हे नरदेव ! यहाँ धर्म के अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है ।४०।

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा ।४१।

पक्षी जैसे पिंजरे में सुख का अनुभव नहीं करता है, वैसे ही मुझे भी यहाँ आनन्द नहीं है। मैं स्नेह के बन्धनों को तोड़कर अकिंचन, सरल, निरासक्त, परिग्रह और हिंसा से निवृत्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूँगी ।४१।

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु।
अन्ने सत्ता पमोयंति, रागद्दोसवसं गया ।४२।

जैसे कि वन में लगे दावानल में जन्तुओं को जलते देखकर रागद्वेष के कारण अन्य जीव प्रमुदित होते हैं ।४२।

एवमेव वयं मूढा, काम-भोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जगं ।४३।

उसी प्रकार कामभोगों में मूर्छित हम मूढ़ लोग भी राग-द्वेष की अग्नि से जलते हुए जगत को नहीं समझ रहे हैं ।४३।

भोगे भोच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ।४४।

आत्मवान साधक भोगों को भोगकर भी उन्हें त्यागकर वायु की तरह अप्रतिबद्ध लघुभूत होकर विचरण करते हैं। अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले पक्षियों की तरह प्रसन्नता पूर्वक स्वतन्त्र विहार करते हैं ।४४।

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थऽज्जमागया।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ।४५।

जिन्हें हमने नियंत्रित समझ रखा है, ऐसे हमारे हस्तगत हुए ये कामभोग वस्तुतः क्षणिक हैं। अभी हम कामनाओं में आसक्त हैं, किन्तु जैसे ये—पुरोहित परिवार बंधन मुक्त हुए हैं, वैसे ही हम भी होंगे ।४५।

सामिसं कुललं दिस्स, वज्झमाणं निरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामि निरामिसा ।४६।

जिस गीध पक्षी के पास मांस होता है, उसी पर दूसरे मांस भक्षी पक्षी झपटते हैं और जिसके पास मांस नहीं होता है, उस पर कोई नहीं झपटते हैं। अतः मैं भी उन मांसोपम कामभोगों को छोड़कर निरामिष भाव से विचरण करूँगी ।४६।

गिद्धोवमा उ नच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, सकमाणो तणुं चरे ।४७।

संसार की वृद्धि करने वाले कामभोगों को गीध के समान जानकर उनसे वैसे ही शंकित होकर चलना चाहिए, जैसे कि गरुड़ के समीप सांप शंकित होकर चलता है ।४७।

नागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं, उसुयारि त्ति मे सुयं ।४८।

बंधन को तोड़कर जैसे हाथी अपने निवास स्थान—वन को चला जाता है, वैसे ही हमें भी अपने वास्तविक स्थान-मोक्ष में चलना चाहिए । हे महाराज इषुकार ! यही एकमात्र श्रेयस्कर है, ऐसा मैंने ज्ञानी जनों से सुना है ।४८।

रायाईणं पव्वज्जा—

राजादि की प्रव्रज्या—

४६५. चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ।४९।

४६५. विशाल राज्य को छोड़कर, दुस्त्यज कामभोगों का परित्याग करके वे राजा रानी भी निर्विषय, निरामिष, निःस्नेह और निष्परिग्रह हो गये ।४९।

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झऽहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ।५०।

धर्म को सम्यक् रूप से जानकर, उपलब्ध श्रेष्ठ काम गुणों को छोड़कर दोनों ही यथोपदिष्ट घोर तप को स्वीकार कर संयम में घोर पराक्रमी बने ।५०।

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।
जम्म-मच्चु-भउव्विग्गा, दुक्खस्संतगवेसिणो ।५१।

इस प्रकार वे सब क्रमशः बुद्ध बने, धर्मपरायण बने, जन्म एवं मृत्यु के भय से उद्विग्न हुए, अतएव दुःख के अन्त की खोज में लग गये ।५१।

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया ।
अचिरेणेव कालेणं, दुक्खस्संतमुवागया ।५२।

जिन्होंने पूर्व भव में अनित्य आदि भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित किया, वे वीतराग अर्हत् शासन में मोह को दूर करके थोड़े समय में ही दुःख का अन्त करके मुक्त हुए ।५२।

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडा ।५३।
त्ति बेमि॥
उत्तरा० अ० १४ ।

राजा के साथ रानी, ब्राह्मण पुरोहित, उसकी पत्नी और उनके दोनों पुत्र ये सब संसार भ्रमण से परिनिर्वृत्त हुए ।५३।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐 卐

३८. महावीरतित्थे खंदएपरिव्वायगे

३८ महावीर तीर्थ में स्कन्दक परिव्राजक

कयंगलाए महावीरसमोसरणं—

कृतंगला में महावीर समवसरण—

४६६. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइआओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

४६६. उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगरी के निकटवर्ती गुणशिलक चैत्य से निकले, निकलकर बाहर जनपद विहार से विचरण करते हैं ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कयंगला नामं नगरी होत्था—वण्णओ।

तीसे णं कयंगलाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए छत्तपलासए नामं चेइए होत्था—वण्णओ।

तए णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे - जाव - समोसरणं। परिसा निग्गच्छइ।

उस काल उस समय में कृतंगला नाम की नगरी थी—वर्णन।

उस कृतंगला नगरी के वाहर उत्तर-पूर्व दिशा में-ईशानकोण में छत्र पलाशक नाम का चैत्य था—वर्णन।

उस समय उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले श्रमण भगवान-यावत्-समवसरण हुआ। परिषद् निकली।

सावत्थीए खंदए परिव्वायगे—

४९७. तीसे णं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ—रिव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहास-पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं—चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं सारए धारए पारए सडंगवी सट्ठितंत-विसारए, संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोतिसामयणे, अण्णेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था—

श्रावस्ती में स्कन्दक परिव्राजक—

४९७. उस कृतंगला नगरी के निकट श्रावस्ती नाम की नगरी थी—वर्णन।

उस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्रीय गर्दभाल का शिष्य स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा पांचवां इतिहास और छठा निघंटु का सांगोपांग और रहस्य सहित प्रवर्तक याद करने वाला, उनमें होने वाली भूलों को सुधारने वाला, वेदादि शास्त्रों का धारक और पारगामी था, छह अंगों का ज्ञाता था, षष्ठितंत्र में विशारद था, गणितशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा और दूसरे अनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजक सम्बन्धी नीति और दर्शन शास्त्रों में भी अत्यन्त निपुण था।

पिंगलेण लोगाइविसए पण्हाईं—

४९८. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए नामं नियंठे वेसालिय-सावए परिवसइ।

तए णं से पिंगलए नामं नियंठे वेसालियसावए अण्णया कयाइ जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदगं कच्चायणसगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे—

पिंगल द्वारा लोकादि के विषय में प्रश्न—

४९८. उसी श्रावस्ती नगरी में वैशालिक (महावीर) का श्रावक पिंगल नामका निग्रंथ रहता था।

तत्पश्चात वैशालिक का श्रावक वह पिंगल नामक निग्रंथ किसी एक समय जहाँ कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक रहता था, वहाँ आया, आकर कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से आक्षेपपूर्वक इस प्रकार पूछा—

मागहा ! १. किं सअंते लोए ? अणंते लोए ? २. सअंते जीवे ? अणंते जीवे ३. सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ? ४. सअंते सिद्धे ? अणंते सिद्धे ? ५. केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?—एतावं ताव आइक्खाहि वुच्चमाणे एवं।

"हे मागध ! (१) क्या लोक अन्तसहित है या अन्त रहित अनन्त है (२) जीव सांत है या अनन्त है ? (३) सिद्धि सान्त है या अनन्त है ? (४) सिद्ध सान्त हैं या अनन्त हैं ? (५) किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है अर्थात् जीव किस तरह मरे जिससे उसका संसार बढ़ता है या घटता है ? तुम इतने प्रश्नों के तो उत्तर दो।

खंदअस्स उत्तरदाणे असामत्थं—

४९९. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए विति-

स्कन्दक की उत्तर देने में असामर्थ्य—

४९९. तत्पश्चात् जब वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने उस कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इन आक्षेपों—प्रश्नों को पूछा तब वह इन प्रश्नों का क्या यह उत्तर होगा या दूसरा, इस प्रकार की शंका वाला, 'इन प्रश्नों का उत्तर किस तरह से दूं' इस प्रकार की कांक्षावाला, मैं जो उत्तर दूंगा उससे पूछने वाले को सन्तोष होगा या नहीं, इस प्रकार से आत्मविश्वास से है

गिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलयस्स नियंठस्स वेसालियसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ।

—भेद समापन्न और क्लेशयुक्त हो गया किन्तु वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ को कुछ भी उत्तर देने में सक्षम नहीं हुआ और मौन धारण कर लिया।

तए णं से पिंगलए नियंठे वेसालियसावए खंदयं कच्चायणसगोत्तं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छे—

तब वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से पुनः दुबारा और तिबारा भी उन्हीं आक्षेपों को पूछा—

मागहा! १. किं सअंते लोए? अणंते लोए?-जाव-५. केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा?—एतावं ताव आइक्खाहि वुच्चमाणे एवं।

मागध! क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? यावत (५) जीव किस तरह मरे तो उसका संसार बढ़े अथवा घटे? तू मेरे इन प्रश्नों का उत्तर तो दे।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलस्स नियंठस्स वेसालियसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तत्पश्चात जब उस वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से पुनः दूसरी बार और तीसरी बार भी इन्हीं प्रश्नों को पूछा तो वह शंकितमना, कांक्षितमना और आत्मविश्वासहीन हो गया, बुद्धि भंग और क्लेश को प्राप्त हुआ और वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ को कुछ भी उत्तर न देकर मौन धारण किये बैठा रहा।

बहुजणस्स कयंगलं पइ गमणं—

जनसमूह का कृतंगला की ओर गमन—

५००. तए णं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-जाव-महापहेसु महया जणसंमद्दे इ वा जणवूहे-इ-वा। परिसा निग्गच्छति।

५००. तत्पश्चात् श्रावस्ती नगरी के शृंगाटक-यावत्—राजमार्ग से बहुत बड़ी भीड़ के रूप में अथवा जनसमूह के रूप में पर्षदा निकली।

खंदअस्स महावीरदंसणट्ठं कयंगलागमणं—

स्कन्दक का महावीर के दर्शनार्थ कृतंगला गमन

५०१. तए णं तस्स खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तपलासए चेइए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि। सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासित्ता इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिदंडं च कुंडियं च कंचणियं च करोडियं च भिसियं केसरियं च छण्णालयं च अंकुसयं च पवित्तयं च गणेत्तियं च छत्तयं च उवाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता

५०१. तत्पश्चात् अनेक मनुष्यों के मुख से इस अर्थ (महावीर के आगमन) को सुनकर और अवधारण करके उस कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक के मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ कि—'श्रमण भगवान् महावीर कृतंगला नगरी के बाहर छत्रपलाशक नामक चैत्य में संयम और तप द्वारा आत्मा को भाते हुए विचरण कर रहे हैं। अतः मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार करूँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दना, नमस्कार करके, उनका सत्कार सम्मान करके और कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप महावीर स्वामी की पर्युपासना करके इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को और व्याकरणों को पूछूं तो यह मेरे लिए श्रेयस्कर होगा—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ परिव्राजक आवसथ (मठ) था वहाँ आया, आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला, करोटिक-मिट्टी का पात्र, वृषिक—एक प्रकार का आसन, केसरिका, कपड़े का टुकड़ा, छन्नालय, अकुश पवित्री, गणेत्रिका—हाथ का कड़ा, छत्र, उपानह—जूता,

परिव्वायावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तिदंड-कुंडिय-कंचणिय-करोडिय-भिसिय - केसरिय - छण्णालय-अंकुसय-पवित्तय-गणेत्तियहत्थगए, छत्तोवाहणसंजुत्ते, धाउरत्तवत्थपरिहिए सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कयंगला नगरी, जेणेव छत्तपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

पादुका और गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को लेता है, लेकर परिव्राजक मठ से निकला, निकलकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला करोटिका, वृषिक, केसरिया, छन्नालय, अंकुश, पवित्रि, गणेत्रिका, को हाथ में लेकर छत्र को सिर पर लगाकर, जूता पहनकर, गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को शरीर पर धारण कर श्रावस्ती नगरी के मध्य में से निकला, निकलकर जहाँ कृतंगला नगरी थी, जहाँ छत्रपलाशक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ-संकल्प किया।

महावीरेण गोयमं पइ खंदयआगमणनिद्देसो—

५०२. गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"दच्छिसि णं गोयमा ! पुव्वसंगयं।"

कं भंते ! ?

खंदयं नाम।

से काहे वा ? किह वा ? केवच्चिरेण वा ?

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्ते परिव्वायए परिवसइ। तं चेव-जाव-जेणेव ममं अंतिए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। से अदूरागते बहुसंपत्ते अद्धाणपडिवण्णे अंतरा पहे वट्टइ। अज्जेव णं दच्छिसि गोयमा !

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

पहू णं भंते ! खंदए कच्चायणसगोत्ते देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

हंता पभू।

जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ, तावं च णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते तं देस हव्वमागए।

महावीर द्वारा गौतम से स्कन्दक-आगमन निर्देश—

५०२. 'हे गौतम !' इस प्रकार सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

'हे गौतम ! तुम आज अपने पूर्व के सम्बन्धी को देखोगे।'

हे भगवन् ! किसको देखूँगा ?

स्कन्दक नामक परिव्राजक को—महावीर ने उत्तर दिया।

गौतम ने पूछा—मैं उसे कब, कहाँ, किस तरह और कितने समय में देखूँगा ?

हे गौतम ! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी—वर्णन। उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल का शिष्य कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता है। एतद्-विषयक वर्णन पहले किये गये कथन के अनुसार समझ लेना चाहिये—यावत्—जहाँ मैं हूँ उस ओर—मेरे पास आने का संकल्प किया है। वह अपने समीप पहुँचने के करीब है, उसने बहुत-सा मार्ग तय कर लिया है, आधे रास्ते पर है और हे गौतम ! तुम उसे आज ही देखोगे। (भगवान महावीर ने उत्तर दिया।)

'हे भगवन् !' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर, आगार त्यागकर, अनगारत्व अंगीकार करने में सक्षम है ?

महावीर ने उत्तर दिया—हाँ, गौतम योग्य है।

जब श्रमण भगवान महावीर भगवान गौतम से यह बात कह रहे थे। इतने में ही वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक उस स्थान पर—भगवान महावीर के विराजने के स्थान पर शीघ्र आया।

गोयमकयं खंदयसुसागयं आगमणकारणकहणं च—

५०३. तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं अदूरागतं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठेत्ता खिप्पामेव पच्चुव-

गौतमकृत स्कन्दक का सुस्वागत और आगमन कारण कथन—

५०३. तत्पश्चात भगवान गौतम कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को निकट आया हुआ जानकर शीघ्र ही अपने

गच्छइ, जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—

आसन से खड़े हो गये, खड़े होकर शीघ्र ही स्कन्दक के सामने गये और जहाँ कात्यायन गोत्रीय परिव्राजक स्कन्दक था, वहाँ आये, वहाँ आकर कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस प्रकार बोले—

"हे खंदया ! सागयं खंदया ! सुसागयं खंदया ! अणुरागयं खंदया ! सागयमणुरागयं खंदया ! से नूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—मागहा ! किं सअंते लोगे ? अणंते लोगे ? एवं तं चेव-जाव-जेणेव इहं, तेणेव हव्वमागए। से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ?"

'हे स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, हे स्कन्दक ! तुम्हारा सुस्वागत है, हे स्कन्दक ! तुम्हारा अन्वागत है, हे स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत अन्वागत है, हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में तुम से वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने यह आक्षेपपूर्वक पूछा था—हे मागध ! क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है ? इसी प्रकार पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार करना चाहिए—यावत—जिससे शंकित होकर तुम शीघ्र ही यहाँ आये हो, हे स्कन्दक ! क्या यह बात ठीक है ?'

हंता अत्थि।

स्कन्दक ने कहा—हाँ, यह बात सत्य है।

महावीरस्स नाणविसए खंदयस्स अच्छरियं—

५०४. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

"से केस णं गोयमा ! तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा, जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं तुमं जाणसि ?"

तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—"एवं खलु खंदया ! ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तीय-पच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि खंदया !"

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—"गच्छामो णं गोयमा ! तव धम्मायरियं धम्मोवदेसयं समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणसगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

महावीर के ज्ञान विषय में स्कन्दक का आश्चर्य—

५०४. तत्पश्चात् कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

'हे गौतम ! ऐसे कौन तथारूप ज्ञानी और तपस्वी पुरुष हैं कि जिन्होंने मेरी गुप्त बात तुमसे शीघ्र कह दी, जिससे तुम इस रहस्य की बात को जानते हो ?'

तब भगवान गौतम ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस प्रकार कहा—'हे स्कन्दक ! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान महावीर उत्पन्न ज्ञान और दर्शन के धारक हैं, अर्हत हैं, जिन हैं, केवली हैं, अतीत, वर्तमान और अनागत काल के ज्ञाता, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, जिन्होंने मुझे तुम्हारी गुप्त बात शीघ्र कह दी, जिससे हे स्कन्दक ! मैं उस बात को जानता हूँ।'

तत्पश्चात् कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक ने गौतम भगवान् से इस प्रकार कहा—'हे गौतम ! आओ चलें और तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान महावीर को वंदन करें, नमन करें, उनका सत्कार सम्मान करें और उन कल्याण रूप, मंगलरूप और चैत्य रूप की पर्युपासना-सेवा करें।'

हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें योग्य प्रतीत हो, वैसा करो, किन्तु विलंब मत करो। गौतम ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् भगवान गौतम कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक के साथ जहां श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उस ओर गमन करने के लिये उद्यत हुए।

खंदयस्स महावीर पज्जुवासणा—

५०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वियट्ट-भोई यावि होत्था।

स्कन्दक की महावीर पर्युपासना—

५०५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर व्यावृतभोजी थे।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं सिंगारं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं अणलंकियविभूसियं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणं चिट्ठइ ।

उन व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवन्त महावीर का उदार, शृंगार किया हुआ जैसा, कल्याण रूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप अलंकारों से विहीन भी शोभित, उत्तम लक्षणों व्यंजनों और गुणों से युक्त शरीर शोभा द्वारा अतीव अतीव शोभित हो रहा था ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं-जाव-अतीव-अतीव उवसोभेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ-जाव-पज्जुवासइ ।

तत्पश्चात् वह कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक व्यावृत्त-भोजी श्रमण भगवान महावीर का उदार शरीर -यावत्-शोभा द्वारा अत्यन्त शोभायमान शरीर को देखता है, देखकर हर्षित, संतुष्ट एवं आनंदित चित्तवाला हुआ और हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला होकर जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया; वहां आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की-यावत्-उनकी पर्युपासना करता है ।

महावीरेण खंदयस्स मणोगयस्स कहणं—

५०६. खंदया ! ति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—

"से नूणं तुमं खंदया ? सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—

मागहा ! १. किं सअंते लोए ? अणंते लोए ? एवं तं चेव-जाव-जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए ।

से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ?" हंता अत्थि ।

महावीर द्वारा स्कन्दक के मनोगत का कथन—

५०६. स्कन्दक ! ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस प्रकार कहा—

'हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में रहने वाले वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुम से इस प्रकार आक्षेपपूर्वक पूछा था—

हे मागध ! क्या लोक अंत वाला है या अन्त विना का है ? यह सब पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिये—यावत्-जिससे तू मेरे पास शीघ्र आया है ।

हे स्कन्दक ! यह अर्थ समर्थ है, अर्थात् यह वात सत्य है ? स्कन्दक ने उत्तर दिया—हां, यह वात सत्य है ।

महावीरेण चउव्विहलोयपरूवणं—

५०७. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं सअंते लोए ? अणंते लोए ?—तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगे लोए सअंते ।

खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ते, अत्थि पुण से अंते ।

कालओ णं लोए न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, नत्थि पुण से अंते ।

महावीर द्वारा चार प्रकार से लोक का प्ररूपण—

५०७ हे स्कन्दक ! तेरे मन में जो इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—क्या लोक अन्तसहित है या अन्त विना का है ?—उसका भी यह अर्थ है—हे स्कन्दक ! मैंने लोक चार प्रकार का वतलाया है, यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से ।

द्रव्य से जो लोक है, वह एक है और अन्त सहित है ।

क्षेत्र से जो लोक है, वह असंख्य कोटाकोटी योजन के आयाम विष्कम्भ वाला—लम्वाई-चौड़ाई वाला है और उसकी परिधि असंख्य कोटाकोटि योजन प्रमाण है तथा उसका अंत है ।

काल से जो लोक है, वह किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है, किसी समय नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है, किसी समय नहीं है, ऐसा भी नहीं है—किन्तु वह हमेशा था, हमेशा है और हमेशा रहेगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है तथा उसका अंत नहीं है ।

भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

भाव से जो लोक है वह अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त-गंध पर्यायरूप है, अनन्त रस पर्यायरूप, अनन्त स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त संस्थान (आकार) पर्यायरूप, अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप तथा अनन्त अगुरुलघुपर्याय रूप है तथा उसका अंत नहीं है।

सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते।

अतएव हे स्कन्दक ! द्रव्यतः लोक अन्तवाला है, क्षेत्रतः लोक अन्तवाला है, कालतः लोक अनन्त है और भावतः लोक अनन्त है।

चउव्विहजीवपरूणं—

चतुर्विध जीव प्ररूपणा—

५०८. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

किं सअंते जीवे ? अणंते जीवे ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे जीवे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं एगे जीवे सअंते।

खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते।

कालओ णं जीवे न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, नत्थि पुण से अंते।

भावओ णं जीवे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता चारित्तपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अंते।

सेत्तं खंदगा ! दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे सअंते कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते।

५०८. हे स्कन्दक ! तुझे जो यह, इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत, संकल्प समुत्पन्न हुआ था—

क्या जीव अन्तवाला है या अन्त विना का है ?

उसका भी यह अर्थ है—हे स्कन्दक ! मैंने जीव चार प्रकार का बतलाया है, यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से।

द्रव्य से जीव एक है, और अन्तवाला है।

क्षेत्र से जीव असंख्यात प्रदेश वाला है और असंख्य प्रदेशों में उसका अवगाह है तथा उसका अन्त भी है।

काल से जीव किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है, किसी समय नहीं है, ऐसा नहीं है किसी समय नहीं होगा, ऐसा नहीं है—अपितु वह था, है और रहेगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है एवं उसका अन्त नहीं है।

भावतः जीव में अनन्त ज्ञान पर्यायें, अनन्त दर्शन पर्यायें अनन्त-चारित्र पर्यायें, अनन्त गुरुलघुपर्यायें और अनन्त अगुरुलघु-पर्यायें है तथा उसका अन्त नहीं है।

इसीलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से जीव सान्त, क्षेत्र से जीव सान्त, काल से जीव अनन्त, और भाव से जीव अनन्त है।

चउव्विहसिद्धिपरूवणं—

चार प्रकार की सिद्धि की प्ररूपणा—

५०९. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

किं सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे। एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहा सिद्धी पण्णत्ता, तं जहा—

दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

दव्वओ णं एगा सिद्धी सअंता।

खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोण्णि य अउणापन्नेजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, अत्थि पुण से अंते।

५०९. हे स्कन्दक ! तुझे जो इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—

क्या सिद्धि अन्तवाली है या अन्त विना की है ?

उसका भी यह उत्तर है कि हे स्कंदक ! मैंने सिद्धि चार प्रकार की कही है।

वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से।

द्रव्य से सिद्धि एक और सांत है।

क्षेत्र से सिद्धि पैंतालीस लाख योजन आयाम-विष्कंभ वाली है और उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख, तीन हजार दो सौ उन्नचास योजन से कुछ विशेषाधिक है और उसका अन्त छोर भी है।

कालओ णं सिद्धी न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवा नियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया निच्चा, नत्थि पुण से अंते।

काल से सिद्धि किसी दिन नहीं थी, ऐसा नहीं है, किसी दिन नहीं है, ऐसा नहीं है और किसी दिन नहीं रहेगी, ऐसा भी नहीं है; किन्तु वह थी, है और रहेगी—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है और उसका अन्त नहीं है।

भावओ णं सिद्धीए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

भाव से लोक अनन्त वर्णपर्याय, अनन्त गंधपर्याय, अनन्त रसपर्याय, अनन्त स्पर्शपर्याय, अनन्त संस्थानपर्याय, अनन्त गुरुलघुपर्याय, अनन्त अगुरुलघु-पर्याय रूप है तथा उसका अन्त नहीं है।

सेत्तं खन्दया ! दव्वओ सिद्धी सअंता, खेत्तओ सिद्धी सअंता, कालओ सिद्धी अणंता, भावओ सिद्धी अणंता।

इसलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से सिद्धि अन्तवाली है, क्षेत्र से सिद्धि अन्तवाली है, काल से सिद्धि अनन्त है, भाव से सिद्धि अनन्त है।

चउव्विहसिद्ध-परूवणं—

चार प्रकार का सिद्ध प्ररूपण—

जे वि य खन्दया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं सअंते सिद्धे ? अणंते सिद्धे ? तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खन्दया ! चउव्विहे सिद्धे पण्णत्ते,

तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

हे स्कन्दक ! तुझे जो यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि सिद्ध अन्तसहित है अथवा अन्त बिना का है ? उसका भी यह स्पष्टीकरण है—हे स्कन्दक ! मैंने चार प्रकार से सिद्ध की प्ररूपणा की है,

वह इस प्रकार है—द्रव्यापेक्षा, क्षेत्रापेक्षा, कालापेक्षा, भावापेक्षा।

दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते। खेत्तओ णं सिद्धे असंखेज्ज-पएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते।

द्रव्यापेक्षा सिद्ध एक है और असंख्यप्रदेश वाला है और असंख्य प्रदेश में अवगाढ़ है और उसका अन्त भी है।

कालओ णं सिद्धे सादीए, अपज्जवसिए, नत्थि पुण से अंते।

कालापेक्षा सिद्ध आदि वाला है किन्तु अपर्यवसित है अर्थात् अन्तविना का है और उसका अन्त नहीं है।

भावओ णं सिद्धे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा,-जाव-अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

भावापेक्षा सिद्ध अनन्त ज्ञानपर्याय रूप है, अनन्तदर्शन पर्याय रूप है,—यावत्-अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है और उसका अन्त नहीं है।

से त्तं खन्दया ! दव्वओ सिद्धे सअंते, खेत्तओ सिद्धे सअंते, कालओ सिद्धे अणंते, भावओ सिद्धे अणंते।

इसलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से सिद्ध अन्तसहित, क्षेत्र से सिद्ध अन्तसहित, काल से सिद्ध अन्तरहित और भाव से सिद्ध अन्तरहित है।

मरणपरूवणं—

मरण प्ररूपण—

५१०. जे वि य ते खन्दया ! इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए—पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?

५१०. हे स्कन्दक ! तुझे जो यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—जीव के किस मरण से मरने पर उसका संसार बढ़ता है अथवा घटता है ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु खन्दया ! मए दुविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—

बालमरणे य, पंडियमरणे य।

से किं तं बालमरणे ?

उसका भी उत्तर इस प्रकार है—हे स्कन्दक ! मैंने मरण के दो प्रकार बतलाये हैं, यथा—

बालमरण और पंडितमरण।

उनमें से बालमरण क्या है ?

बालमरणे दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा—१. वलयमरणे २. वसट्टमरणे ३. अंतोसल्लमरणे ४. तब्भवमरणे ५. गिरिपडणे ६. तरुपडणे ७. जलप्पवेसे ८. जलणप्पवेसे ९. विस-भक्खणे १०. सत्थोवाडणे ११. वेहाणसे १२. गिद्धपट्ठे।

बालमरण के बारह भेद कहे हैं, वे इस प्रकार हैं—१. वलयमरण २ वशार्तमरण ३ अंत:शल्यमरण ४. तद्भव मरण ५ गिरिपतन ६ तरुपतन ७ जलप्रवेश ८ अग्नि-प्रवेश ९ विषभक्षण १० शस्त्रघात, ११ फांसी लगाना १२ गृद्धपृष्ठ (गृद्ध आदि हिंसक पक्षी पशुओं के आघात से मरना।)

इच्चेतेणं खन्दया ! दुवालसविहेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं तिरियभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं मणुयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ।

हे स्कन्दक ! इन बारह प्रकार के बालमरणों से मरने पर जीव अनन्त बार नारकभवों को प्राप्त करता है, अनन्त तिर्यंचभवों के ग्रहण से अपनी आत्मा को संयोजित करता है, अनन्त बार मनुष्यभवों को प्राप्त करता है और अनन्त बार देवभवों को धारण करता है और अनादि, अनन्त, विस्तृत, चतुर्गति रूप संसार रूप वन में भटकता रहता है।

सेत्तं मरमाणे वड्ढइ-वड्ढइ। सेत्तं बालमरणे।

इस प्रकार के बालमरण से मरने वाला जीव अपने संसार को बढ़ाता है अथवा ऐसे बालमरण से मरने पर संसार की वृद्धि होती है?

से किं तं पंडियमरणे ?

वह पंडितमरण क्या है?

पंडियमरणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य।

पंडितमरण दो प्रकार का कहा है, यथा—पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान।

से किं तं पाओवगमणे ?

पादोपगमन क्या है?

पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनीहारिमे य। नियमा अप्पडिकम्मे। सेत्तं पाओवगमणे।

पादोपगमन दो प्रकार का है, यथा—निर्हारिम और अनिर्हारिम [जिस मृत शरीर का संस्कार किया जाता है उसे निर्हारिम मरण और उससे विपरीत को अनिर्हारिम मरण कहते हैं]। ये दोनों प्रकार के पादोपगमन मरण प्रतिकर्म बिना के हैं। इस प्रकार पादोपगमन मरण का स्वरूप है।

से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?

भक्त प्रत्याख्यान क्या है?

भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनीहारिमे य। नियमा सपडिकम्मे। सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे।

भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा है, यथा—निर्हारिम और अनिर्हारिम ! ये दोनों मरण प्रतिकर्म सहित हैं। यह भक्तप्रत्याख्यान मरण का स्वरूप है।

इच्चेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं तिरियभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं मणुयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयइ।

हे स्कन्दक ! इन दोनों प्रकार के पंडितमरणों से मरने वाला जीव नारकों के अनन्तभवों को प्राप्त नहीं करता है, अनन्त तिर्यंचभवों को प्राप्त नहीं करता, अनन्त मनुष्यभवों को प्राप्त नहीं करता है, अनन्त देवभवों को प्राप्त नहीं करता है किन्तु अनादि, अनन्त, विशाल, चातुर्गतिक रूप संसार वन को पार कर लेता है।

सेत्तं मरमाणे हायइ-हायइ।
सेत्तं पंडियमरणे।

इस प्रकार के मरण से मरने पर जीव का संसार घटता है।
यह पंडित मरण का स्वरूप है।

इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा, हायइ वा।

हे स्कन्दक ! पूर्वोक्त दो प्रकार के मरण द्वारा मरते हुए जीव का संसार बढ़ता भी है और घटता भी है।

खंदयस्स धम्मसवणं—

५११. एत्थ णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए ।

स्कन्दक का धर्मश्रवण—

५०३. इस बात को सुनकर वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक संबुद्ध होकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन, नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! आपसे केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण करने का इच्छुक हूँ ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।

तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स, तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ । धम्मकहा भाणियव्वा ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक तथा उपस्थित विशाल जनसमूह-सभा को धर्म कहा—यहां धर्म कथा कहना चाहिये ।

खंदयस्स पव्वज्जा—

५१२. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

स्कन्दक की प्रव्रज्या—

५१२. तत्पश्चात् वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के मुख से श्रवणकर और अवधारण कर हृष्ट, तुष्ट आनन्दित चित्त, नंदित, प्रीतिमना, परम सौमनस और हर्षवश विकसित हृदयवाला हुआ और आसन से उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं,-जाव-से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ—यावत् वह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं, ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में जाता है वहाँ जाकर त्रिदण्ड, कुण्डी-यावत्- गेरू के रंगे वस्त्रों को एकान्त में रखता है, रखकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान हैं, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

"आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य । से जहानामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पसारे मोल्लगरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ । एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ।

हे भगवन् ! यह लोक जरा और मरण से आलिप्त है, हे भगवन् ! प्रलिप्त-प्रदीप्त है और हे भगवन् ! आलिप्त प्रदीप्त है । अतएव जैसे कोई गृहपति अग्नि से जलते हुए घर में से जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य सामान होता है, उसे लेकर एकान्त में चला जाता है कि यही अवशिष्ट बचा हुआ सामान मुझे आगे, पीछे हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप और अनुक्रम से अन्त में निश्रेयस कल्याण रूप होगा ।

एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइय-विविहा रोगायंका परीस-

इसी प्रकार हे देवानुप्रिय ! मेरी आत्मा भी एक प्रकार की बहुमूल्य वस्तु है जो मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, स्थैर्य और विश्वास की आधार रूप, सम्मत, बहुमत, अनुमत एवं आभूषण की मंजूषा जैसी है, इसलिये इसे शीत, उष्णता, भूख, प्यास, चोर, सांप, डांस, मच्छर, वात, पित्त, श्लेष्म,

होवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

सन्निपात आदि विविध प्रकार के रोगातंक, परीषह, उपसर्ग आदि स्पर्श न करें, हानि न पहुंचायें और उसको पूर्वोक्त विघ्नों से बचा लूं, तो वह मेरी आत्मा परभव में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, और परंपरा से कल्याण रूप होगी।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणय, वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तिय धम्ममाइक्खियं।"

अतः हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि आप स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें, स्वयमेव सिखायें, आप स्वयं ही शिक्षा दें और स्वयं आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, विनय का फल, चरण, करण, यात्रा, मात्रारूप धर्म कहें।

तए ण समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं सयमेव पव्वावेइ-जाव-धम्ममाइक्खइ—

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने स्वयं कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को प्रव्रजित किया -यावत्-धर्म कहा—

एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीइयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहिं भूएहि जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं।

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार चलना चाहिये, इस प्रकार ठहरना—खड़े होना चाहिए, इस प्रकार बैठना चाहिये, इस प्रकार सोना चाहिये, इस प्रकार खाना चाहिये, इस प्रकार बोलना चाहिये और इस प्रकार उठकर प्राण, भूत, जीव और सत्वों के विषय में संयम पूर्वक वर्तन करना चाहिये और इसके बारे में किंचिन्मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ—तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमेइ, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमायइ।

उसके बाद उस कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक मुनि ने श्रमण भगवान महावीर का यह इस प्रकार का धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया और जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा है, तदनुरूप वह चलता है, रहता है, बैठता है, सोता है, खाता है, बोलता है और उठकर प्राण, भूत, जीव और सत्वों के प्रति संयमपूर्वक प्रवृत्ति करता है तथा इस विषय में जरा भी प्रमाद नहीं करता हैं—रखता है।

तए णं से खन्दए कच्चायणसगोत्ते अणगारे जाते—इरिया-समिए-जाव-गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धन्ने खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अनियाणे अप्पुस्सुए अवहिल्लेसे सुसामण्णरए दंते इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

तब वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक अनगार हो गया-ईर्या-समिति-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी, त्यागी, सरल, धन्य, क्षमा से सहन करने वाला, जितेन्द्रिय, शोधक, आकांक्षारहित, संभ्रम रहित, उत्सुकतारहित संयम के सिवाय अन्यत्र मन को नहीं रखने वाला, सुश्रामण्य में लीन, दांत होकर इसी निर्ग्रंथ प्रवचन को समक्ष रखकर आगे रखकर विचरण करता है।

महावीरस्स जणवयविहारो—

५१३. तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ छत्त-पलासाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

महावीर का जनपद विहार—

५१३. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर कृतंगला नगरी और छत्रपलाशक चैत्य से निकले, निकलकर बाहर जनपद विहार से विचरण करते हैं।

खंदएण भिक्खुपडिमागहणं—

५१४. तए णं से खन्दए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव

स्कन्दक द्वारा भिक्षु प्रतिमा ग्रहण—

५१४. उसके बाद वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से प्रारम्भ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके जहां श्रमण भगवान विराजमान हैं, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं मासिक भिक्षु प्रतिमा धारणकर विचरना चाहता हूँ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

हे देवानुप्रिय ! जैसा उचित हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध (विलंब) मत करो। (भगवान ने कहा)

तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-जाव-नमंसित्ता मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त कर वह स्कन्दक अनगार हर्षित हुआ-यावत्-नमस्कार करके एक मास की भिक्षु प्रतिमा को धारण करके विचरता है।

तए णं से खन्दए अणगारे मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं सम्मं काएण फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ पूरेइ किट्टेइ अणुपालेइ आणाए आराहेइ, सम्मं काएण फासेत्ता पालेत्ता सोभेत्ता तीरेत्ता पूरेत्ता किट्टेत्ता अणुपालेत्ता आणाए आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

उसके बाद वह स्कन्दक अनगार मासिक भिक्षु प्रतिमा को सूत्र के अनुसार, कल्प के अनुसार, मार्ग के अनुसार, सत्यता-पूर्वक और सम्यक् प्रकार से पूर्णतया काय के द्वारा स्पर्श करता हैं, पालन करता है, शोभाता है, समाप्त करता है, पूर्ण करता है, कीर्तन करता है, अनुपालन करता है और आज्ञा प्रमाण आराधना करता है तथा सम्यक्प्रकार से काय द्वारा स्पर्श करके, पालन करके, शोभित करके, समाप्त करके, पूर्ण करके, कीर्तन करके और अनुपालन करके, आज्ञापूर्वक आराधना करके जहां श्रमण भगवान महावीर विराजते थे, वहां आया, वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।"

'हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं द्वि-मासिक भिक्षु प्रतिमा धारण करके विचरण करना चाहता हूँ।'

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं। तं चेव। एवं तेमासियं, चाउम्मासियं, पंचमासियं, छम्मासियं, सत्तमासियं, पढमसत्तरातिंदियं, दोच्चसत्तरातिंदियं, तच्चसत्तरातिंदियं, रातिंदियं, एगरातियं।

भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो किन्तु विलंब मत करो। इस प्रकार त्रिमासिक, चातुर्मासिक पंचमासिक, छह मासिक, सप्तमासिक, प्रथम सात रात्रि दिन की, द्वितीय सात रात्रि दिन की, तृतीय सातरात्रि दिन की, चौथी रात्रि, दिन की और पांचवीं एक रात्रि की (प्रतिमा सम्पन्न की)।

तए णं से खन्दए अणगारे एगरातियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं-जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा को सूत्र के अनुसार-यावत्-आराधना करके जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

खंदएण गुणरयणसंवच्छरतवोवसंपज्जणं—

स्कन्दक द्वारा गुणरत्न संवत्सर तपोकर्म [illegible]—

५१५. इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

५१५. हे भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं गुणरत्न संवत्सर नामक तपोकर्म को धारण करके विचरण करना चाहता हूँ।

(महावीर बोले)—हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो, विलंब मत करो।

तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे-जाव-नमंसित्ता गुणरयण-संवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण महावीर की अनुमति प्राप्त होने से हृष्ट-तुष्ट हुआ। -यावत्-नमस्कार करके गुणरत्न संवत्सर तप को धारण करके विचरता है।

तए णं से खन्दए अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं-जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उसके बाद वह स्कन्दक अनगार गुणरत्न संवत्सर तप को सूत्र के अनुसार, आचार के अनुसार -यावत्- आराधना करके जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशमभक्त, द्वादश भक्त, मास खमण, अर्धमास खमण आदि विचित्र तप कर्म के द्वारा आत्मा को भाता हुआ विहार करता है।

तए णं से खन्दए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था। जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामीति गिलाइ। से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा, पत्तसगडिया इ वा, पत्त-तिल-भंडगसगडिया इ वा, एरंडकट्ठसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा—उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ,

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार पूर्वोक्त प्रकार के उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप, शोभायुक्त, उदग्र, उदात्त-उज्ज्वल, उत्तम, उदार और महान प्रभाव वाले तपःकर्म से शुष्क, रूक्ष, मांसरहित हो गया, मात्र हड्डी और चमड़ी से आच्छादित जैसा रह गया, चलने पर हाड़ों में से किटकिट आवाज होती थी, दुबला और संपूर्ण नसें दिखें ऐसा हो गया। अब तो वह अपने आत्मबल से चलता था, आत्मबल के सहारे ही बैठता था, ऐसा कमजोर हो गया कि बोल चुकने पर ग्लानि अनुभव करता था, बोलते-बोलते और बोलने का विचार करे तो भी ग्लानि होती थी—थकावट आ जाती थी। जैसे कोई लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, अथवा पत्तों से भरी गाड़ी हो अथवा पत्ते, तिल और दूसरे किसी सामान से भरी गाड़ी हो अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी हो तथा कोयले से भरी गाड़ी हो तो जब उन सब गाड़ियों को धूप में सुखाकर ढकेला जाये तो वे आवाज करती हुई चलती हैं और आवाज करती-करती खड़ी होती हैं।

एवामेव खन्दए अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं तेएणं तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

इसी प्रकार स्कन्दक अनगार भी जब चलता तथा खड़ा होता तो खड़-खड़ शब्द होता था वह तप से पुष्ट था किन्तु मांस एवं रुधिर से क्षीण था और राख के ढेर से ढकी हुई अग्नि के समान तप, तेज और तप-तेज की शोभा द्वारा बहुत बहुत शोभायमान हो रहा था।

रायगिहे महावीरसमोसरणं खंदयस्स समाहिमरणे संकप्पो य—

राजगृह में महावीर-समवसरण और स्कन्दक का समाधि-मरण संकल्प—

५१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे-जाव-समोसरणं जाव परिसा पडिगया।

५१६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में यावत्-समवसरण हुआ -यावत-पर्षदा लौटी।

तए णं तस्स खंदयस्स अणगारस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

तत्पश्चात् किसी एक दिन उस स्कन्दक अनगार को मध्यरात्रि के समय धर्म जागरणा में जागते-जागते इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-उत्पन्न हुआ—

"एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं-जाव-किसे धमणिसंतए जाए। जीवंजीवेणं गच्छामि-जाव-एवामेव अहं पि ससद्दं गच्छामि, ससद्दं चिट्ठामि।

"मैं यह और इस प्रकार के उदार-यावत्-दुबला हो गया हूँ, मेरी सभी नसें बाहर दिखने लगी हैं। आत्मशक्ति के सहारे चलता हूँ -यावत्-इसी प्रकार मैं भी आवाज करता हुआ चलता हूँ और आवाज करता हुआ बैठता हूँ।

तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहपंडुरे पभाए, रत्तासोयप्पकासे, किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरूहित्ता मेहघणसंनिगासं देवसन्निवातं पुढवीसिलापट्टयं पडिलेहेत्ता, दब्भसंथारगं संथरित्ता दब्भसंथारोवगयस्स संलेहणाझूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासइ।

इस स्थिति में भी मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम है, तो जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम है -यावत्-मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक और शुभार्थी श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हैं, तब तक मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात वाली रात्रि होने पर, कोमल कमलों के विकसित होने पर, निर्मल प्रभात होने के अनन्तर, लाल अशोक वृक्ष जैसे प्रकाश वाले पलाश पुष्प, तोते की चोंच और गुंजा (चनोटी) के आधे भाग जैसे लाल कमल के समूह वाले वन खंड को विकसित करने वाले, सहस्र किरणों वाले तथा तेज से जाज्वल्यमान दिनकर-सूर्य का उदय होने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके, नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा करते हुए, सामने विनयपूर्वक अंजलिपूर्वक पर्युपासना कर और श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा लेकर स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपकर, श्रमण एवं श्रमणियों को खमाकर, तथारूप योग्य स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर शनैः शनैः आरोहण कर, मेघ पटल के जैसे श्यामवर्ण के और देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिला पट्टक का प्रतिलेखन करके, दर्भ का संथारा बिछाकर और दर्भ संस्तारक पर बैठकर संलेखना द्वारा आत्म-रमण करते हुए, भक्तपान का त्याग करके, पादोपगमन से स्थित होकर काल (मरण) की आकांक्षा न करते हुए विचरण करूं"—ऐसा विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर -यावत्- सहस्र रश्मि तेज से जाज्वल्यमान दिनकर सूर्य के उदित होने पर जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए सामने विनयपूर्वक नत मस्तक आसन से बैठकर पर्युपासना करता है।

खंदया इ समणे भगवं महावीरे खंदयं अणगारं एवं वयासी—"से नूणं तव खंदया ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं तवेणं ओरालेणं विउलेणं तं चेव-जाव-कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि

दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए।

रात्रि के प्रभात रूप होने पर -यावत् सहस्र किरण वाले तेज से जाज्वल्यमान दिनकर-सूर्य का उदय होने पर जहां मैं हूँ, शीघ्र ही मेरी ओर आये?

से नूणं खन्दया! अट्ठे समट्ठे?"

हंता अत्थि।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

तो हे स्कन्दक! यह बात सत्य है?

स्कन्दक ने उत्तर दिया—हां यह बात सत्य है।

हे देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलंब मत करो। भगवान ने कहा।

खन्दयस्स संलेहणा—

५१७. तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता समणा य समणीओ य खामेइ, खामेत्ता तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहघणसन्निगासं देवसन्निवातं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

स्कन्दक की संलेखना—

५१७. तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की अनुमति प्राप्त होने से हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त, नंदित, प्रीतिमना, परम सौमनस वाला, हर्षविकसित हृदय वाला होकर स्थान से उठा, उठकर तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके स्वयमेव पंच महाव्रतों का आरोपण किया, आरोपण करके साधु और साध्वियों से खमाता है, क्षमापना करके तथारूप योग्य स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुलाचल पर चढ़ता है, चढ़कर मेघ पटल के समान श्याम वर्णवाले एवं देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ संस्तारक बिछाया, बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुखकर पर्यंकासन से बैठ दस नखों सहित दोनों हाथों को जोड़, मस्तक स्पर्शकर अंजलि पूर्वक इस प्रकार बोला—

"नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं-जाव-सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव-सिद्धिगति-नामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं" ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"पुव्विं पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-जाव-मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए जावज्जीवाए।

इयाणिं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए-जाव-मिच्छादंसण-सल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए एवं सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं-चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं-जाव-मा णं वाइय-पित्तिय-संभिय-सन्निवाइयविविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एयं पि णं चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं वोसिरामि" त्ति कट्टु

'अरिहंत भगवन्तों को -यावत्-सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त हुओं को नमस्कार हो। श्रमण भगवान महावीर-यावत्-सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को नमस्कार हो तत्र विराजित भगवान महावीर को यहाँ रहा हुआ मैं वंदना करता हूँ, वहाँ विराजित भगवान यहां रहे हुए मुझे देखें, ऐसा कहकर वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास में सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान यावज्जीवन के लिये कर लिया था-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान जीवन पर्यन्त के लिये कर लिया था। इस समय भी श्रमण भगवान महावीर के पास जीवन पर्यन्त के लिये सर्व प्राणातिपात-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ, इसी तरह यावज्जीवन के लिये अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार का भी प्रत्याख्यान-त्याग करूँगा। जो मेरा यह इष्ट, कान्त, प्रिय शरीर है—यावत्-वात्त, पित्त, श्लेष्म, सन्निपात आदि विविध रोग और आतंक स्पर्शन करें, ऐसे इस शरीर को भी चरम उश्वास-निश्वास पर्यन्त-मरण के अंतिम क्षण तक के लिये त्याग करता

संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

हूँ—ऐसा करके संलेखना को प्रीतिपूर्वक धारण कर; भक्त-पान का त्यागकर; वृक्ष की तरह स्थिर रह; मरण की आकांक्षा न करके विचरण करता है।

तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर, बारह वर्ष तक पूर्णरूप से श्रमण पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल करके और साठ भक्त-पानों का त्याग करके (अनशन द्वारा) आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त करके कालधर्म को प्राप्त हुआ।

खंदयस्स पत्त-चीवरसमाणयणं—

५१८. तए णं ते थेरा भगवंतो खंदयं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउसग्गं करेंति, करेत्ता पत्त-चीवराणि गेण्हंति, गेण्हित्ता विपुलाओ पव्वयाओ सणियं-सणियं पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए पगइविणीए पगइउवसंते पगइपयणु-कोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए। से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरुहेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्मेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्ता-जाव-मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए। इमे य से आयारभंडए।"

स्कन्दक के पात्र-चीवर समानयन—

५१८. तत्पश्चात् स्कन्दक अनगार को कालगत जानकर वे स्थविर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं, करके पात्र और चीवरों को लेते हैं, लेकर विपुल पर्वत से धीरे-धीरे उतरते हैं, उतरकर जहां श्रमण भगवान महावीर विराजमान हैं वहां आते हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करते हैं, वदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'आप देवानुप्रिय का अंतेवासी स्कन्दक नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र, प्रकृति-स्वभाव से विनीत, प्रकृति-स्वभाव से उपशांत, प्रकृति से ही अत्यन्त अल्पतम क्रोध, मान, माया, लोभ वाला, मार्दव, आर्जव संपन्न, गुरु आज्ञा में लीन अर्थात् गुरु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करनेवाला तथा भद्र और विनीत था, तथा जो आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपण कर श्रमणों और श्रमणियों से क्षमापना कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे चढ़ा था-यावत्-मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल कर, साठ भक्त-पानों का अनशन द्वारा त्यागकर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त कर, क्रम पूर्वक काल को प्राप्त हुआ। यह उनके उपकरण हैं।

खंदअस्स अच्चुयकप्पे उववाओ महाविदेहे सिद्धी य—

५१९. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववण्णे ?"

गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—'एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपण्णे अल्लीणे विणीए, से णं मए अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेत्ता-जाव-मासियाए संलेहणाए अत्ताणं

स्कन्दक का अच्युतकल्प में उपपात और महाविदेह में सिद्धि—

५१९. हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन, नमन किया और वंदन-नमन करके इस प्रकार कहा—

'आप देवानुप्रिय का शिष्य स्कन्दक नामक अनगार कालमास में काल करके कहाँ गया है ? कहाँ उत्पन्न हुआ है ?'

हे गौतम ! इस प्रकार सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम को इस प्रकार उत्तर दिया—'हे गौतम ! मेरा शिष्य स्कन्दक नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शान्त, प्रकृति से अत्यन्त अल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाला, मार्दव, आर्जव सम्पन्न, आज्ञाकारी विनीत था, वह मेरी अनुमति प्राप्त कर अपने आप पांच महाव्रतों का आरोपण कर [illegible]

झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं खंदयस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

से णं भंते! खंदए देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति।

—भग० स० २, उ० १।

मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करके साठ भक्त-पानों का अनशन द्वारा छेद करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर काल मास में काल करके अच्युतकल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ है।

उस कल्प में कितने ही देवों की बाईस सागरोपम की आयु होती है। वहां स्कन्दक देव की भी बाईस सागर की आयु स्थिति है।'

हे भगवन्! वह स्कन्दकदेव आयुक्षय, भवक्षय, स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहां जायेगा? कहां उत्पन्न होगा?

हे गौतम! महाविदेह वर्ष में सिद्ध होगा-यावत्-समग्र दुःखों का अन्त करेगा।





३९. महावीरतित्थे मोग्गलपरिव्वायगे

३९ महावीर तीर्थ में मुद्‌गल परिव्राजक

आलभियाए मोग्गल-परिव्वायगो—

५२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं संखवणे नामं चेइए होत्था—वण्णओ। तस्स णं संखवणस्स चेइयस्स अदूरसामंते मोग्गले नामं परिव्वायए परिवसइ। रिउव्वेद जजुव्वेद-जाव-बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नएसु सुपरिनिट्ठिए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खत्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ।

मोग्गलस्स विभंगनाण—

५२१ तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइपयणुकोहमाणमायालोभाए मिउमद्दवसंपन्नयाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं

आलभिका में मुद्‌गल परिव्राजक—

५२०. उस काल, उस समय आलभिका नाम की नगरी थी—वर्णन। वहां शंखवन नामक चैत्य था, वर्णन। उस शंखवन नामक चैत्य से थोड़ी दूर मुद्‌गल नामक परिव्राजक रहता था—जो ऋग्वेद, यजुर्वेद-यावत्-ब्राह्मण सम्बन्धी और परिव्राजक सम्बन्धी नयों में कुशल था और निरन्तर छट्ठ छट्ठ तप करते हुए ऊँचे हाथ रख सूर्य के अभिमुख मुँह किये हुए आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरण करता था।

मुद्‌गल को विभंगज्ञान—

५२१. तत्पश्चात् उस मुद्‌गल परिव्राजक को निरन्तर छट्ठ-छट्ठ तप करने से, ऊँचे हाथ रखकर सूर्य के सन्मुख मुँह करके आतापना भूमि में आतापना लेने से तथा प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शांत, प्रकृति से अत्यल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होने से, मृदुता और मार्दव संपन्न होने से, आज्ञानुरूप वृत्तिवाला होने से, विनीत होने से किसी एक दिन तदावरण कर्मों का क्षयोपशम

ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। से णं तेणं विब्भंगेणं नाणेणं समुप्पन्नेणं बंभलोए कप्पे देवाणं ठितिं जाणइ-पासइ।

हो जाने एवं ईहा, अपोह, मार्गणा एवं गवेषणा करने के कारण विभंग नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ। वह उस उत्पन्न विभंग ज्ञान के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पवासी देवों तक की स्थिति को जानता है और देखता है।

देवठिइविसए मोग्गलस्स विभंगनाणं—

देवस्थिति के विषय में मुद्गल का विभंगज्ञान—

५२२. तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—अत्थि णं ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, तिदंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव आलभिया नगरी, जेणेव परिव्वायगावसहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—

५२२. तत्पश्चात् उस मुद्गल को इस प्रकार का यह अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—मुझे अतिशयवाला ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुआ है, देवलोक में देवों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक-यावत्-असंख्य समय अधिक करते-करते उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति कही है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं—ऐसा विचार करता है, विचार करके आतापना भूमि से उठा, उठकर त्रिदंड कुण्डिका यावत्-भगवे वस्त्रों को लेता है, लेकर जहां आलभिका नगरी थी, जहां परिव्राजक मठ था, वहां आता है, आकर उपकरणों को रखा, रखकर आलभिका नगरी में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महापथ और पथों में जाकर परस्पर बहुत से मनुष्यों से इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपणा करता है कि—

अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया,-जाव-असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य।

हे देवानुप्रियो! मुझे अतिशय वाले ज्ञान, दर्शन उत्पन्न हुए हैं, देवलोक में देवों का जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति है और उसके ऊपर एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत्-असंख्यात समय अधिक, उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति कही है। उसके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो जाता है।

तए णं मोग्गलस्स परिव्वायगस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! मोग्गले परिव्वायए एवमाइक्खइ जाव-परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य। से कहमेयं मन्ने एवं?

उसके बाद मुद्गल परिव्राजक से इस बात को सुनकर और अवधारण करके आलभिका नगरी में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथों में बहुत से मनुष्य एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं-यावत्-प्ररूपणा करते हैं कि—हे देवानुप्रियो! मुद्गल परिव्राजक इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपणा करता है कि हे देवानुप्रियो! मुझे अतिशय वाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं, देवलोक में देवों की दस हजार वर्ष की जघन्य स्थिति कही है और उसके ऊपर एक समय अधिक, दो समय अधिक-यावत्-असंख्य समय अधिक, करते-करते उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति है। उसके बाद देवों और देवलोकों का [illegible] [illegible] यह कैसे माना जाए?

महावीरसमोसरणं देवठिइविसए जहत्थकहणं च—

महावीर [illegible] और देवस्थिति [illegible] कथन—

५२३. सामी समोसढे, परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ, परिसा

५२३. महावीर स्वामी का [illegible] [illegible]

पडिगया। भगवं गोयमे तहेव भिक्खायरियाए तहेव बहुजणसद्दं निसामेइ, निसामेत्ता तहेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि, एवं भासामि-जाव-परूवेमि—देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया-दुसमयाहिया-जाव-असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य।

धर्म कहा, परिषद् वापस लौटी। भगवान गौतम उसी तरह भिक्षाचर्या के लिये निकले और उन्होंने बहुत से मनुष्यों के वैसे शब्दों को सुना, सुनकर उसी प्रकार सब कहना चाहिये-यावत्-हे गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ, बोलता हूँ-यावत्-प्ररूपणा करता हूँ—देवलोक में देवों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक-यावत्-असंख्य समय अधिक, उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की स्थिति है। उसके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो जाता है।

अत्थि णं भंते! सोहम्मे कप्पे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठन्ति? हंता अत्थि। एवं ईसाणे वि, एवं जाव अच्चुए, एवं गेवेज्जविमाणेसु, अणुत्तरविमाणेसु वि, ईसिपब्भाराए वि-जाव-? हंता अत्थि।

हे भगवन्! क्या सौधर्म कल्प में वर्ण सहित और वर्ण रहित गंधसहित और गंधरहित, रससहित और रसरहित, स्पर्श सहित और स्पर्श रहित, एक दूसरे से बद्ध, एक-दूसरे से स्पृष्ट, एक-दूसरे से बद्धस्पृष्ट द्रव्य हैं और एक दूसरे से मिले हुए हैं? हे गौतम! हां, हैं—भगवान ने उत्तर दिया। इसीप्रकार ईशान देवलोक में भी जानना, इसी प्रकार-यावत्-अच्युत में इसी प्रकार ग्रैवेयक विमानों में, अनुत्तरविमानों में और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में भी—सिद्धशिला में भी वर्णसहित इत्यादि द्रव्य हैं? हाँ गौतम! हैं।

तए णं सा महतिमहालिया परिसा-जाव-जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तत्पश्चात् वह विशाल परिषद्-यावत्-जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापस लौट गई।

तए णं आलभियाए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ "जण्णं देवाणुप्पिया! मोग्गले परिव्वायए एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ-अत्थि णं देवाणुप्पिया! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य। तं नो इणट्ठे समट्ठे। समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ-जाव-देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असंखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य"।

उसके बाद आलभिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग और सामान्य मार्ग आदि में बहुत से मनुष्य ऐसा कहते-यावत्-प्ररूपणा करते—'हे देवानुप्रियो! यदि मुद्गल परिव्राजक इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपणा करता है—हे देवानुप्रियो! मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए हैं और देवलोकों में देवों की जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति हैं और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक-यावत्-असंख्य समय अधिक उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति है। उसके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो जाता है। इसका यह कथन यथार्थ नहीं है। श्रमण भगवान महावीर तो ऐसा कहते हैं-यावत्-देवलोक में देवों की जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक-यावत्-असंख्य समय अधिक उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की स्थिति है। उसके अनन्तर देवों और देवलोक का अन्त आ जाता है।'

मोग्गलस्स विभंगनाणपडणं महावीरसमीवे गमणं च—

५२४. तए णं से मोग्गले परिव्वायए बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था। तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वा-

मुद्गल का विभंगज्ञान पतन और महावीर के समीप गमन—

५२४. तत्पश्चात् वह मुद्गल परिव्राजक बहुत से मनुष्यों से इस बात को सुनकर और अवधारण कर शंकित, कांक्षित, संदेहापन्न, अनिश्चित और कलुषित भाव को प्राप्त हुआ। तब शंकित,

यगस्स संकियस्स कंखियस्स वितिगिच्छियस्स भेदसमावन्नस्स कलुससमावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव पडिवडिए।

तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थगरे-जाव-सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं-जाव-संखवणे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि-जाव-पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तिदंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पडिवडिय-विब्भंगे आलभियं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव संखवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिकडे पज्जुवासइ।

कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित और कलुषितभाव को प्राप्त हुए उस मुद्गल परिव्राजक का विभंगज्ञान तत्काल नष्ट हो गया।

उसके बाद उस मुद्गल परिव्राजक को यह इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-विचार उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर-यावत्-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर आकाश में चलते हुए धर्मचक्र-यावत्-शंखवनचैत्य में यथायोग्य अवग्रह धारण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं, जब उस प्रकार के अरिहन्त भगवन्तों के नामगोत्र का श्रवण करना महाफल वाला है तो फिर अभिगमन वंदन, नमन प्रतिपृच्छना और पर्युपासना आदि के लिए क्या कहना ? जब एक आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण करना महाफल है, तब उसके विपुल अर्थ के ग्रहण करने के लिए क्या कहना ? अतएव मैं श्रमण भगवान महावीर के समीप जाऊँ और वंदना करूँ-यावत्-पर्युपासना करूँ, यह मुझे इस भव में और परभव में हितरूप, सुखरूप, शांतिरूप और अनुक्रम से निःश्रेयस् रूप होगा'—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके जहां परिव्राजक मठ था वहां आया, आकर परिव्राजक मठ में प्रवेश किया, प्रवेश करके त्रिदण्ड, कुण्डिका-यावत् भगवे वस्त्रों को लेता है, लेकर परिव्राजक मठ से निकला, निकल कर विभंग ज्ञान से रहित वह आलभिका नगरी के मध्य भाग में से निकला, निकलकर जहां शंखवन चैत्य था, जहां श्रमण भगवान विराज रहे थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदना और नमस्कार किया, वंदना और नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर यथायोग्य स्थान में बैठकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए और सामने विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करता है।

मोग्गलस्स पव्वज्जा—

५२५. तए णं समणे भगवं महावीरे मोग्गलस्स परिव्वायगस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-आणाए आराहए भवइ।

तए णं से मोग्गले परिव्वायए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म जहा खंदओ-जाव-उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं जहेव उसभदत्तो तहेव पव्वइओ, तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, तहेव सव्व-दुक्खप्पहीणे।

मुद्गल की प्रव्रज्या—

५२५. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने मुद्गल परिव्राजक और उस विशाल पर्षदा को धर्म कथा कही-यावत्-आज्ञा का आराधक होता है।

तत्पश्चात् वह मुद्गल परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के पास से धर्मश्रवण कर और अवधारण कर स्कन्दक के प्रकरण में कहे गए अनुसार उत्तरपूर्व दिशा भाग में [illegible], जाकर त्रिदण्ड और कुण्डिका यावत्-भगवे [illegible] स्थान में रखता है, रखकर [illegible] करता है, और करके श्रमण भगवान महावीर [illegible] प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके [illegible] करता है, वंदना नमस्कार करके [illegible] होता है, [illegible] सर्व-दुःखों से [illegible] है।

गोयमस्स सिज्झमाणस्स संघयणाइपण्हा—

५२६. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि संघयणे सिज्झंति ?

गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणे सिज्झंति, एवं जहेव ओववाइए तहेव । संघयणं संठाणं, उच्चत्तं आउयं च परिवसणा । एवं सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्वा-जाव—अव्वाबाहं सोक्खं, अणुहुंती सासयं सिद्धा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भग० स० ११, उ० १२

गौतम का सिद्ध्यमान का संहनन आदि प्रश्न—

५२६. हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमन करते हैं, वंदन नमन करके इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! सिद्ध होने वाला जीव किस संहनन में सिद्ध होता है ?

हे गौतम ! वज्रऋषभनाराच संहनन में सिद्ध होता है, इत्यादि औपपातिक सूत्र में जैसा कहा गया है, उसी प्रकार। संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य, परिवसना । इस प्रकार संपूर्ण सिद्धिगंडिका कहना चाहिये -यावत्- अव्याबाध शाश्वत सुख को सिद्ध अनुभव करते हैं ।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है ।

卐 卐

४०. महावीरतित्थे सिवरायरिसी

४०. महावीरतीर्थ में शिव राजर्षि

हत्थिणापुरे सिवराया—

५२७. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ । तस्स णं हत्थिणापुरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे, एत्थ णं सहसंबवणे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे रम्मे णंदणवणसन्निगासे सुहसीतलच्छाए मणोरमे सादुप्फले अकंटए, पासादीए-जाव-पडिरूवे ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे सिवे नामं राया होत्था—महया-हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे—वण्णओ । तस्स णं सिवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—सुकुमालपाणिपाया—वण्णओ। तस्स णं सिवस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए अत्तए सिवभद्दे नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए, जहा सूरियकंते-जाव-रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च पुरं च अंतउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे-पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ।

हस्तिनापुर में शिवराजा—

५२७. उस काल, उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था—वर्णन । उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग में सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था, जो सर्वऋतु के पुष्प और फलों से समृद्ध, रम्य, नन्दन वन के समान शोभावाला सुखकारक और शीतल छाया से युक्त, मनोहर, स्वादिष्ट फलों से युक्त, कंटक रहित, प्रसन्नता देने वाला -यावत्-प्रतिरूप-सुन्दर था ।

उस हस्तिनापुर नगर में शिव नाम का राजा था—जो महाहिमवान पर्वत, महान मलय मन्दर पर्वत के समान सर्व राजाओं में श्रेष्ठ था-वर्णन । उस शिव राजा की धारिणी नाम की रानी थी—उसके हाथ, पैर सुकोमल थे—वर्णन । उस शिव राजा का पुत्र धारिणी देवी का आत्मज शिवभद्र नामक कुमार था—जो सुकोमल हाथ पैर वाला था इत्यादि सूर्यकान्त राज-कुमार की तरह वर्णन करना चाहिये-यावत्-वह कुमार राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अन्तःपुर को देखता देखता विचरण करता था ।

सिवस्स दिसापोक्खिय-तावसपव्वज्जासंकप्पो—

५२८. तए णं तस्स सिवस्स रण्णो अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि रज्जधुरं चिंतेमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाण-फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि, रज्जेणं वड्ढामि, एवं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभि-वड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि-जाव-अतीव-अतीव अभिवड्ढामि जावं च मे सामंतरायाणो वि वसे वट्टंति, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं घडावेत्ता सिवभद्दं कुमारं रज्जे ठावेत्ता तं सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं गहाय जे इमे गंगाकूले वाणपत्था तावसा भवंति, तं जहा—होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जहा ओववाइए-जाव-आयावणाहिं पंचग्गि-तावेहिं इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं कट्ठसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरंति, तत्थ णं जे ते दिसापोक्खियतावसा तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइत्तए, पव्वइते वि य णं समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्क-वालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमु-हस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए।

ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं घडा-वेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! हत्थिणापुरं नगरं सब्भिंतर-बाहिरियं आसिय-संमज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधवरगंधियं गंध-

शिव का दिशा प्रोक्षिक-तापस प्रव्रज्या संकल्प—

५२८. तत्पश्चात् किसी एकदिन शिवराजा को पूर्व रात्रि के अन्तिम प्रहर में राज्य कार्यों का विचार करते-करते यह इस प्रकार का अध्यवसाय -यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ, मेरे पूर्व सुआचरित, सुपराक्रमित, शुभ, कल्याणरूप, कृतकर्मों के कल्याण रूप फलवृत्ति विशेष से मैं हिरण्य से, सुवर्ण से, धन से, धान्य से, पुत्रों से, पशुओं से, राज्य से एवं राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अंतःपुर से वृद्धिगत हो रहा हूं तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल, रक्तरत्न आदि सारभूत द्रव्यों की अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त कर रहा हूं तो क्या अब मैं अपने पूर्व सुआचरित, सुपराक्रमित, शुभ, कल्याणरूप कर्मों के फलरूप एकान्त सुख को भोगता हुआ ही विचरण करूँ ?

अतएव जहां तक मैं हिरण्य से वृद्धि प्राप्त करता हूं-यावत्-अतीव-अतीव वृद्धि को प्राप्त करता हूं-यावत्-सामन्त राजा मेरी आज्ञा में है, तब तक कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर -यावत्-तेज से जाज्वल्यमान सहस्त्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित होने पर बहुत सी लोढ़ियां, लोहे की कढ़ाइयां, कुड़छी और तांबे के तापसों के उपकरण बनवाकर, गंगा के किनारे जो वानप्रस्थ तापस रहते हैं यथा—अग्निहोत्री, पोतिक वस्त्र धारण करने वाले, कौतिक इत्यादि औपपातिक सूत्र में आये उल्लेखानुसार -यावत्-आतापना द्वारा, पंचाग्नि तप द्वारा अंगारों से शरीर को तपाते हुए, कंडों की अग्नि से शरीर को तपाते हुए, काष्ठ की अग्नि से शरीर को तपाते हुए विचरते हैं, उनमें से तापस दिशा प्रोक्षक (पानी द्वारा दिशा को पूजकर फल पुष्प आदि ग्रहण करने वाले) हैं, उनके पास मुण्डित होकर दिशा प्रोक्षक तापसपने की प्रव्रज्या स्वीकार करना मुझे श्रेयस्कर है, प्रव्रज्या धारण कर मैं इस प्रकार का अभिग्रह धारण करूंगा कि जीवन पर्यंत निरन्तर छट्ठ छट्ठ तप करते हुए दिक्चक्रवाल तपोकर्म द्वारा ऊँचा हाथ रखकर सूर्य की तरफ मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरण करूँ, यह मुझे कल्पता है।—

वट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

उत्तम सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध से सुगन्धवर्तिका के समान करो और करवाओ और वैसा करके एवं करवाकर आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो ।'

ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

वे भी वैसा करके आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् कार्य सम्पन्न होने की सूचना देते हैं ।

सिवभद्दकुमारस्स रज्जाभिसेओ—

५२६. तए णं से सिवे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! सिवभद्दस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह । तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव उवट्ठवेंति ।

तए णं से सिवे राया अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय - कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि - सेणावइ-सत्थवाह - दूय-संधिपाल-सद्धिं संपरिवुडे सिवभद्दं कुमारं सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं, निसीयावेइ, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव-अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-णिग्घोसणाइयरवेणं महया-महया रायाभिसेगेणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति, लूहेत्ता सरसेण गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति एवं जहेव जमालिस्स अलंकारो तहेव-जाव-कप्परुक्खगं पिव अलंकिय विभूसियं करेइ, करेत्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिवभद्दं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिणंदंतो य अभित्थुणंतो य एव वयासी—

"जय-जय नंदा ! जय-जय भद्दा ! भद्दं ते, अजियं जिणाहि जियं पालियाहि, जियमज्झे वसाहि । इंदो इव देवाणं, चमरो इवासुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुयाणं बहूइं वासाइं बहूइं वाससयाइं बहूइं वाससहस्साइं बहूइं वाससयसहस्साइं अणहसमग्गो हट्ठतुट्ठो परमाउं पालयाहि इट्ठजणसंपरिवुडे हत्थिणापुरस्स नगरस्स, अण्णेसिं च बहूणं गामागार-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब - पट्टण-आसम-निगम-

शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेक—

५२६. तत्पश्चात् वह शिवराजा पुनः दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शिवभद्रकुमार के राज्याभिषेक के लिये महाअर्थवाली महामूल्यवान, महापुरुषों के अनुरूप, योग्य सामग्री तैयार करो । तब वे कौटुम्बिक पुरुष तदनुरूप तैयारी करते हैं—उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् वह शिव राजा अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपालों से परिवृत्त होकर शिवभद्र कुमार को उत्तम सिंहासन पर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठाता है, बैठाकर एक सो आठ सुवर्ण कलशों-यावत्-एक सौ आठ मिट्टी के कलशों द्वारा संपूर्ण ऋद्धि सहित-यावत्-वाद्यों के निर्घोषपूर्वक महान राज्याभिषेक से अभिषेक करता है, अभिषेक करके पक्ष्मल के समान सुकोमल काषायिक, गंध से सुगंधित वस्त्र से शरीर पौंछता है, पौंछकर सरस गोशीर्ष चंदन का शरीर का लेप करता है आदि जैसे जमालि का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार -यावत्-कल्पवृक्ष के सदृश उसे अलंकृत-विभूषित करता है, विभूषित करके दसों नखों को एकत्रित करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक से स्पर्श कर अंजलि करके शिवभद्र कुमार को जय विजय शब्दों से बधाता है, बधाकर इष्ट -यावत्-वाणी द्वारा जय विजय सूचक सैकड़ों मंगल वचनों से अनवरत अभिनंदन करते हुए स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—

'हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय-जयकार हो, अविजितों को जीतो, और अविजितों का पालन करो, जीते हुओं के बीच निवास करो । देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, ताराओं में चन्द्र के समान, और मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान बहुत वर्षों तक, बहुत सैकड़ों वर्षों तक, बहुत हजारों वर्षों तक, बहुत लाखों वर्षों तक विना किसी विघ्न बाधा के हृष्ट तुष्ट होकर दीर्घायु का भोग करो और इष्ट जनों के परिवार से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर का तथा और दूसरे अनेक ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्वट, द्रोणमुख, मंडब, पट्टन, आश्रम, निगम, संवाह

संबाह-सन्निवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल - तुडिय-घण-मुइंग - पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि" त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउञ्जति।

तए णं से सिवभद्दे कुमारे राया जाते—महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे, वण्णओ-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

सिवस्स दिसापोक्खियतावसपव्वज्जा—

५३०. तए णं से सिवे राया अण्णया कयाइ सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-मुहुत्त-नक्खत्तंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्तनाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं रायाणो य खत्तिए य आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं राएहि य खत्तिएहि य सद्धिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसादेमाणे वीसादेमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं रायाणो य खत्तिए य सिवभद्दं च रायाणं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडुच्छुयं तंबियं तावसभंडगं गहाय जे इमे गंगाकूलगा वाणपत्था तावसा भवंति, तं चेव जाव तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए, पव्वइए वि य णं समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति— कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय विहरित्तए —अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता पढमं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

सन्निवेशों का आधिपत्य, प्रभुत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञा-ऐश्वर्यत्व एवं सेनापतित्व करते हुए, पालते हुए महान् नृत्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल-ताल, त्रुटित, घन, मृदंग, पटु आदि की झंकारों के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करो' इस प्रकार जय जयकार करता है।

तत्पश्चात् वह शिवभद्रकुमार राजा हुआ—महान् हिमवान् पर्वत एवं महान् मलय, मन्दराचल के समान राजाओं में मुख्य हुआ, वर्णन-यावत्-राज्य का प्रशासन करता हुआ विचरण करता है।

शिव की दिशाप्रोक्षिक तापस प्रव्रज्या—

५३०. तत्पश्चात् वह राजा किसी एक दिन शुभ तिथि, करण, दिवस, मुहूर्त, नक्षत्र के योग में विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तैयार करवाता है, तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजी, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन, राजा और क्षत्रियों को आमंत्रित करता है, आमंत्रित करने के बाद स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल, प्रायश्चित्त किये और शुद्ध, प्रवेश योग्य मांगलिक वस्त्रों को पहिना और अल्प किन्तु मूल्यवान आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजन के समय भोजन मण्डप में उत्तम सुखासन पर बैठकर उन मित्र, ज्ञाति, निजी, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन, राजा और क्षत्रियों के साथ विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य का आस्वादन करते हुए, विशेष रूप से स्वाद लेते हुए और आपस में परसते हुए, खाते हुए विचरता है।

गिण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं-अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पासइ, पासित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य-जाव-हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गेण्हित्ता किढिण-संकाइयगं भरेइ,भरेत्ता दब्भे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोडं च गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं ठवेइ, ठवेत्ता वेदिं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवण-संमज्जणं करेइ, करेत्ता दब्भकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानदिं ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जणं करेइ, करेत्ता जलकीडं करेइ, करेत्ता जलाभिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए देवय-पितिकयकज्जे दब्भ-सगब्भ कलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए य वेदिं रएति, रएत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गिं पाडेइ, पाडेत्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालेत्ता "अग्गिस्स दाहिणे पासे, सत्तंगाइं समादहे", तं जहा—

किढिन (बांस का पात्र) और कावड़ को लेता है. लेकर पूर्वदिशा को प्रोक्षित करता है कि पूर्वदिशा के सोम महाराज धर्म साधना में प्रवृत्त शिव राजर्षि की रक्षा करो, शिव राजर्षि का रक्षण करो और उस दिशा में रहे हुए कंद, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरित वनस्पति लेने की अनुमति दो—ऐसा कहकर पूर्व दिशा में देखता है, देखकर वहां विद्यमान कंद -यावत्-हरित वनस्पति को लेता है लेकर किढिण और कावड़ भरता है, भरकर दर्भ, कुश, समिध काष्ठ और वृक्ष की शाखा को मरोड़कर पत्ते लेता है, लेकर जहां अपनी कुटिया है, वहाँ आता है आकर किढिन, कावड़ नीचे रखता है, रखकर वेदिका बनाता है, बनाकर वेदिका को लीपकर शुद्ध करता है, शुद्ध करके दर्भ युक्त कलश को हाथ में लेकर जहां गंगा महानदी है, वहां आता है, आकर गंगा महानदी में घुसता है, घुसकर डुबकी लगाता है, डुबकी लगाकर जलक्रीड़ा करता है, क्रीड़ा करके जलाभिषेक स्नान करता है, स्नान करके अच्छी तरह स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर देवता और पितृ कार्य करके दर्भ और कलश को हाथ में लेकर गंगा महानदी से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर दर्भ, कुश और बालुका द्वारा वेदिका को रंगता है, रंग कर शर से अरणि को घिसता है, घिसकर अग्नि पैदा करता है, पैदा करके सुलगाता है, सुलगाकर समिध काष्ठों को डालता है, डालकर अग्नि को प्रज्वलित करता है, प्रज्वलित करके अग्नि की दक्षिण बाजू में सात वस्तुओं को रखता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सकहं वक्कलं ठाणं, सिज्जाभंडं कमंडलुं ।
दंडदारुं तहप्पाणं, अहेताइं समादहे ॥१॥

महुणा य घएण य तंदुलेहि य अग्गिं हुणइ, हुणित्ता चरुं साहेइ, साहेत्ता बलि-वइस्सदेवं करेइ, करेत्ता अतिहिपूयं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति।

सकथा (उपकरण विशेष), वल्कल, दीपस्थान, शैया उपकरण, कमण्डलु, दंड और स्वय, इन सबको एकत्रित करता है।

उसके बाद मधु, घी और चावल (धान) द्वारा अग्नि में होम करता है, होम करके चरु-पूजा सामग्री तैयार करता है, तैयार करके उस पूजा सामग्री से वैश्वदेव की पूजा करता है, पूजा करके अतिथि पूजा करता है, उसके बाद स्वयं आहार—भोजन करता है।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि दूसरी बार षष्ठ तप करके विचरण करता है।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता दाहिणगं दिसं पोक्खेइ, दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव जाव तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

उसके बाद वह शिवराजर्षि दूसरी बार के षष्ठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपनी कुटिया थी वहां आता है, किढिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके दक्षिण दिशा को प्रोक्षित करता है कि दक्षिण दिशा के यम महाराज, धर्माराधना के लिए प्रस्तुत शिव राजर्षि की रक्षा करो, इसके बाद समस्त वर्णन पूर्व दिशा के वर्णन के समान समझना चाहिये -यावत्- उसके बाद स्वयं आहार करता है।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता पच्चत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पच्चत्थिमाए दिसाए वरुणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

उसके बाद वह शिव राजर्षि तीसरी बार षष्ठ-तप करके विचरता है।

पश्चात् वह शिव राजर्षि तीसरी बार के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र धारण करके जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर किढिन, कावड़ लेता है, लेकर पश्चिम दिशा को प्रोक्षित करता है कि हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज! आत्मसाधना के लिये समुद्यत शिवराजर्षि की रक्षा करो। शेष पूर्व दिशा के वर्णन के समान जानना चाहिए -यावत्- उसके बाद आहार करता है।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता उत्तरदिसं पोक्खेइ, उत्तराए दिसाए वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

इसके बाद वह शिव राजर्षि चौथी बार षष्ठ तप करके विचरता है।

उसके बाद वह शिवराजर्षि चौथी बार के षष्ठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वस्त्र पहनकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर किढिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके उत्तर दिशा को प्रोक्षित करता है कि उत्तर दिशा के वैश्रमण महाराज! साधना की ओर अग्रसर शिव राजर्षि की रक्षा करो, शेष वर्णन पूर्व की तरह -यावत्- उसके बाद अपना आहार करता है।

सिवस्स विभंगनाणं सत्तदीवविसयं—

५३२. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतताए पगइपयणुकोहमाण-मायालोभयाए मिउमद्दवसंपन्नयाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासति अस्सिं लोए सत्त दीवे सत्त समुद्दे, तेण परं न जाणइ, न पासइ।

शिव को सप्तद्वीप विषयक विभंगज्ञान—

५३२. तत्पश्चात् निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तप करने से दिक्चक्रवाल तपकर्म से और ऊपर की ओर भुजाओं को उठाकर सूर्य के सम्मुख मुँह रखकर आतापना भूमि में आतापना लेने से, प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शांत, अत्यन्त अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाला होने, मृदुमार्दव सम्पन्न होने, आत्मलीन होने, विनीत होने से उस शिव राजर्षि को किसी दिन तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करने से विभंग नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस उत्पन्न विभंग ज्ञान से वह देखता है कि इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे न जानता है और न देखता है।

तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—अत्थि णं ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडुच्छुयं तंबियं तावसभंडगं किढिण-संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नयरे जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नयरे सिंघाडग-

गिण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं-अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पासइ, पासित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य-जाव-हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गेण्हित्ता किढिण-संकाइयगं भरेइ,भरेत्ता दब्भे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोडं च गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं ठवेइ, ठवेत्ता वेदिं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवण-संमज्जणं करेइ, करेत्ता दब्भकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानदिं ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जणं करेइ, करेत्ता जलकीडं करेइ, करेत्ता जलाभिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए देवय-पिति-कयकज्जे दब्भ-सगब्भ कलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए य वेदिं रएति, रएत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गिं पाडेइ, पाडेत्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालेत्ता "अग्गिस्स दाहिणे पासे, सत्तंगाइं समादहे", तं जहा—

सकहं वक्कलं ठाणं, सिज्जाभंडं कमंडलुं ।
दंडदारूं तहप्पाणं, अहेताइं समादहे ॥१॥

महुणा य घएण य तंदुलेहि य अग्गिं हुणइ, हुणित्ता चरुं साहेइ, साहेत्ता बलि-वइस्सदेवं करेइ, करेत्ता अतिहिपूयं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति ।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता दाहिणग दिसं पोक्खेइ, दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

किढिन (बांस का पात्र) और कावड़ को लेता है. लेकर पूर्वदिशा को प्रोक्षित करता है कि पूर्वदिशा के सोम महाराज धर्म साधना में प्रवृत्त शिव राजर्षि की रक्षा करो, शिव राजर्षि का रक्षण करो और उस दिशा में रहे हुए कंद, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरित वनस्पति लेने की अनुमति दो—ऐसा कहकर पूर्व दिशा में देखता है, देखकर वहां विद्यमान कंद -यावत्-हरित वनस्पति को लेता है लेकर किढिण और कावड़ भरता है, भरकर दर्भ, कुश, समिध काष्ठ और वृक्ष की शाखा को मरोड़कर पत्ते लेता है, लेकर जहां अपनी कुटिया है, वहाँ आता है आकर किढिन, कावड़ नीचे रखता है, रखकर वेदिका बनाता है, बनाकर वेदिका को लीपकर शुद्ध करता है, शुद्ध करके दर्भ युक्त कलश को हाथ में लेकर जहां गंगा महानदी है, वहां आता है, आकर गंगा महानदी में घुसता है, घुसकर डुबकी लगाता है, डुबकी लगाकर जलक्रीड़ा करता है, क्रीड़ा करके जलाभिषेक स्नान करता है, स्नान करके अच्छी तरह स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर देवता और पितृ कार्य करके दर्भ और कलश को हाथ में लेकर गंगा महानदी से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर दर्भ, कुश और बालुका द्वारा वेदिका को रंगता है, रंग कर शर से अरणि को घिसता है, घिसकर अग्नि पैदा करता है, पैदा करके सुलगाता है, सुलगाकर समिध काष्ठों को डालता है, डालकर अग्नि को प्रज्वलित करता है, प्रज्वलित करके अग्नि की दक्षिण बाजू में सात वस्तुओं को रखता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सकथा (उपकरण विशेष), वल्कल, दीपस्थान, शैया उपकरण, कमंडलु, दंड और स्वय, इन सबको एकत्रित करता है ।

उसके बाद मधु, घी और चावल (धान) द्वारा अग्नि में होम करता है, होम करके चरु-पूजा सामग्री तैयार करता है, तैयार करके उस पूजा सामग्री से वैश्वदेव की पूजा करता है, पूजा करके अतिथि पूजा करता है, उसके बाद स्वयं आहार—भोजन करता है ।

तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि दूसरी बार षष्ठ तप करके विचरण करता है ।

उसके बाद वह शिवराजर्षि दूसरी बार के षष्ठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि के नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपनी कुटिया थी वहाँ आता है, किढिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके दक्षिण दिशा को प्रोक्षित करता है कि दक्षिण दिशा के यम महाराज, धर्माराधना के लिये प्रस्तुत शिव राजर्षि की रक्षा करो, इसके बाद समस्त वर्णन पूर्व दिशा के वर्णन के समान समझना चाहिये -यावत्-उसके बाद स्वयं आहार करता है ।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताण विहरइ।

उसके बाद वह शिव राजर्षि तीसरी बार षष्ठ तप करके विचरता है।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता पच्चत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पच्चत्थिमाए दिसाए वरुणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

पश्चात् वह शिव राजर्षि तीसरी बार के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र धारण करके जहाँ अपनी कुटिया थी, वहां आता है आकर किढिन, कावड़ लेता है, लेकर पश्चिम दिशा को प्रोक्षित करता है कि हे पश्चिम दिशा के अधिपति वरुण महाराज! आत्मसाधना के लिये समुद्यत शिवराजर्षि का रक्षण करो। शेष पूर्व दिशा के वर्णन के समान जानना चाहिये -यावत्-उसके बाद आहार करता है।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

इसके बाद वह शिव राजर्षि चौथी बार षष्ठ तप करके विचरता है।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थे छट्ठक्खमणपारणगंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता उत्तरदिसं पोक्खेइ, उत्तराए दिसाए वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ।

उसके बाद वह शिवराजर्षि चौथी बार के षष्ठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वस्त्र पहनकर जहां अपनी कुटिया थी, वहां आता है, आकर किढिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके उत्तर दिशा को प्रोक्षित करता है कि उत्तर दिशा के वैश्रमण महाराज! साधना की ओर अग्रसर शिव राजर्षि की रक्षा करो, शेष वर्णन पूर्व की तरह -यावत्-उसके बाद अपना आहार करता है।

सिवस्स विभंगनाणं सत्तदीवविसयं—

५३२. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खत्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंताए पगइपयणुकोहमाण-मायालोभयाए मिउमद्दवसंपन्नाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासति अस्सि लोए सत्त दीवे सत्त समुद्दे, तेण परं न जाणइ, न पासइ।

शिव को सप्तद्वीप विषयक विभंगज्ञान—

५३२. तत्पश्चात् निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तप करने से, दिशाचक्रवाल तपकर्म से और ऊपर की ओर हाथों को उठाकर सूर्य के सन्मुख मुँह रखकर आतापना भूमि में आतापना लेने से एव प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शांत, अत्यल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाला होने, मृदुमार्दव सम्पन्न होने, आज्ञानुरूप वृत्ति वाला होने, विनीत होने से उस शिव राजर्षि को किसी एक दिन तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करने से विभंग नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस उत्पन्न विभंग ज्ञान से वह देखता है कि लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद आगे न जानता है और न देखता है।

तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—अत्थि णं ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं किढिण-संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-

तत्पश्चात् उन शिव राजर्षि को यह इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प हुआ—मुझे अतिशय वाले ज्ञान, दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप और समुद्र नहीं हैं—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर जहां अपनी कुटिया है, वहां आता है, आकर अनेक प्रकार की लोही लोहकटाह, कुड़छा, तांबे के तापसों के उपकरण, किढिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके जहां हस्तिनापुर नगर है, जहां तापस मठ है, वहां आता है, आकर उपकरणों को नीचे रखता है, रखकर हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर,

तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ जाव-एवं परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए—सत्त दीवा य सत्त समुद्दा तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य।

५३३. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं मन्ने एवं ?"

चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि में अनेक लोगों से इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपित करता है—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद द्वीप और समुद्रों का अन्त हो जाता है।

५३३. तत्पश्चात् उस शिवराजर्षि के पास इस अर्थ—बात को सुनकर और अवधारण करके हस्तिनापुर नगर में श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथों में अनेक लोग एक-दूसरे से ऐसा कहते हैं यावत्-प्ररूपित करते हैं—हे देवानुप्रियो ! शिवराजर्षि ऐसा कहते -यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप, समुद्र नहीं है। तो इस प्रकार कैसे हो सकता है ?

महावीरसमोसरणे सिवविभंगनाणविसय पण्होत्तरेसु असंखेज्जदीव-समुद्दपरूवणं—

५३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा—निग्गया। धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जहा बितियसए नियंठुद्देसए-जाव-घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। से कहमेयं मन्ने एवं ?

तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे-जाव-समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे हत्थिणापुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य।

से कहमेयं भंते ! एवं ?"

गोयमा ! दि समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

महावीर समवसरण में शिव के विभंगज्ञान विषयक प्रश्नोत्तरों में असंख्यद्वीप समुद्रों की प्ररूपणा—

५३४. उस काल, उस समय में महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, पर्षदा निकली। धर्म कहा, परिषद् वापस लौटी।

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार द्वितीय शतक(भग.)के निर्ग्रन्थ-उद्देशक में किये गये वर्णन के अनुसार-यावत्-गृहसामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण करते हुए अनेक मनुष्यों के शब्दों को सुनते हैं, वे अनेक मनुष्य एक-दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे—यावत् प्ररूपित करते थे—हे देवानुप्रियो ! शिव राजर्षि ऐसा कहते हैं -यावत्-प्ररूपित करते हैं कि—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय युक्त ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उसके बाद द्वीप समुद्रों का विच्छेद हो जाता है। तो इस प्रकार कैसे माना जा सकता है ?

तत्पश्चात् भगवान गौतम उन अनेक मनुष्यों के मुख से इस बात तो सुनकर और अवधारण कर श्रद्धा वाले होकर -यावत्-श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

'हे भगवन् ! मैंने आपकी अनुज्ञापूर्वक हस्तिनापुर नगर के उच्च-नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हुए बहुत से मनुष्यों के शब्दों को सुना है कि—हे देवानुप्रियो ! शिव राजर्षि इस प्रकार कहते हैं-यावत्-प्ररूपणा करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप एवं सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप एवं समुद्रों का विच्छेद हो जाता है।

तो हे भदन्त ! इस प्रकार कैसे हो सकता है ?'

'हे गौतम !' इस प्रकार संबोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

"जण्णं गोयमा ! एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइपयणुकोहमाणमायालोभयाए मिउमद्दवसंपन्नयाए अल्लीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने। तं चेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य।

'हे गौतम ! अनेक मनुष्य जो परस्पर ऐसा कहते हैं, उसका कारण यह है कि निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्तपूर्वक दिशा चक्रवाल तपकर्म से ऊँचे हाथ रखे सूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए उस शिव राजर्षि को स्वभावतः भद्र, शांत और अत्यन्त अल्प मात्रा में क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होने से, मृदु मार्दव संपन्न होने से, आज्ञानुसार वृत्तिवाला होने से और विनीत होने से किसी एक दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम एवं ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ है। पूर्ववत् यहां सब वर्णन करना चाहिये-यावत्-उपकरणों को नीचे रखता है, नीचे रखकर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महापथ और पथों में अनेक जनों से इस प्रकार कहता है—यावत् इस प्रकार प्ररूपित करता है कि—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके आगे द्वीप और समुद्रों का विच्छेद हो जाता है अर्थात् आगे द्वीप समुद्र नहीं हैं।

५३५. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य, तण्णं मिच्छा ! अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि-जाव-परूवेमि—एवं खलु जंबुद्दीवादीया दीवा, लवणादीया समुद्दा संठाणओ एगविहिविहाणा, वित्थारओ अणेगविहिविहाणा एवं जहा जीवाभिगमे,-जाव-सयंभूरमणपज्जवसाणा अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता समणाउसो !"

५३५. तत्पश्चात् शिव राजर्षि के पास से इस बात को सुनकर हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य पथों में जो अनेक मनुष्य परस्पर ऐसा कहते हैं-यावत-प्ररूपित करते हैं कि—'हे देवानुप्रियो ! शिव-राजर्षि ऐसा कहते हैं-यावत्-प्ररूपित करते हैं कि—'हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशयवन्त ज्ञान—दर्शन उत्पन्न हुए हैं और यह लोक सात द्वीप एवं सात समुद्र पर्यन्त है और उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं हैं, वह मिथ्या है, हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ-यावत्-प्ररूपित करता हूं कि इस प्रकार जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवण आदि समुद्र सभी आकार में एक सरीखे हैं किन्तु विशालता की दृष्टि से अनेक प्रकार के हैं, इत्यादि जीवाभिगम सूत्र में कहे अनुसार सर्वकथन जानना-यावत्-हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस तिर्यग् लोक में स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

अत्थि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दव्वाइं-सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

हंता अत्थि।

अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति।

हंता अत्थि।

अत्थि णं भंते ! धायइसंडे दीवे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

हे भगवन् ! धातकीखंड नामक द्वीप में सवर्ण, अवर्ण, सगंध, अगंध, सरस, अरस, सस्पर्श; अस्पर्श द्रव्य अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्ध स्पृष्ट एवं अन्योन्य संबद्ध हैं ?

हंता अत्थि। एवं-जाव—

हे गौतम ! हां है।

अत्थि णं भंते ! सयंभूरमणसमुद्दे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाई पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्णबद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णबद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठन्ति।

इसी प्रकार-यावत्-हे भगवन् ! स्वयंभूरमण समुद्र में सवर्ण और अवर्ण, सगंध और अगंध, सरस और अरस, सस्पर्श और अस्पर्श द्रव्य अन्योन्यबद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य बद्ध स्पृष्ट, अन्योन्य संबद्ध हैं ?

हंता अत्थि।

हाँ हैं।

तए णं सा महतिमहालिया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तत्पश्चात् वह अत्यन्त विशाल परिषदा श्रमण भगवान महावीर के पास से इस अर्थ को सुनकर और अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके जिस दिशा में से प्रगट हुई—आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

५३६. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ "जण्णं देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेणं परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। तं नो इणट्ठे समट्ठे।

५३६. तत्पश्चात् हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य पथों में अनेक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं-यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! शिव राजर्षि जो यह कहते हैं-यावत्-प्ररूपणा करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं और उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं है, उनका यह कथन युक्त-यथार्थ नहीं है।

समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं० तं चेव-जाव-भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सिं लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य तण्णं मिच्छा, समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ—एवं खलु जंबुद्दीवादीया दीवा लवणादीया समुद्दा०, तं चेव जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा पण्णत्ता समणाउसो !"

श्रमण भगवान महावीर तो यह कहते हैं—यावत्-प्ररूपित करते हैं कि षष्ठ षष्ठ तप को निरन्तर करने से शिव राजर्षि को पूर्व में कहे गये अनुसार-यावत्-उपकरणों को नीचे रखता है, नीचे रखकर हस्तिनापुर में शृंगाटक त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ एवं दूसरे मार्गों में अनेक लोगों से ऐसा कहते हैं-यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं है। तत्पश्चात् उस शिव राजर्षि के पास से यह बात सुनकर और अवधारण कर -यावत्-उसके बाद द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हो जाते हैं—नहीं हैं, वह मिथ्या है, श्रमण भगवान महावीर तो इस प्रकार कहते हैं कि हे आयुष्मन् श्रमणो ! जंबूद्वीप आदि द्वीप और लवण आदि समुद्र, इत्यादि पूर्व में कहे अनुसार जानना चाहिये-यावत्-असंख्यात द्वीप समुद्र कहे हैं।

सिवस्स अप्पणो नाणे संका महावीरपज्जुवासणं च—

५३७. तए णं से सिवे रायरिसी बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था। तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स संकियस्स कंखियस्स वितिगिच्छियस्स भेदसमावन्नस्स कलुससमावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव परिवडिए।

तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे तित्थगरे आदिगरे जाव-सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंगपुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव तावसावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तावसावसहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंबियं तावसभंडगं किढिण-संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता तावसावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पडिवडियविब्भंगे हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिकडे पज्जुवासइ।

शिव को अपने ज्ञान में शंका और महावीर पर्युपासना—

५३७. तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि बहुत से मनुष्यों से इस अर्थ को सुनकर और अवधारण करके शंकित, कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित, और कलुषित मना हुआ। तत्पश्चात् उस शंकित, कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित और कलुषित भाव को प्राप्त शिव-राजर्षि का वह विभंग नामक ज्ञान तत्काल नष्ट हो गया।

उसके बाद उस शिव राजर्षि को यह, इस प्रकार का अध्य-वसाय विचार उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार श्रमण भगवान महा-वीर तीर्थंकर, धर्म की आदि करने वाले—यावत्-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं और आकाश में गमन करते हुए धर्म चक्र द्वारा -यावत्-सहस्राम्रवन उद्यान में यथायोग्य अवग्रह धारण करके संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहार करते हैं तो जब उस प्रकार के अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र का श्रवण करना महाफल वाला है, तब फिर उनके सामने जाना, उनका वंदना नमस्कार करना, उनसे पूछना और उनकी पर्युपासना करने के लिये क्या कहना ? एक ही आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण करना जब महाफलदायक है तो फिर उनके विपुल अर्थ के अवधारण करने के लिये कहना ही क्या ? इसलिये मैं श्रमण भगवान महावीर के पास जाऊँ, उनकी वंदना करूँ-यावत्-उनकी पर्युपासना करूँ, ऐसा करना मेरे लिये इस भव और परभव में हित, सुख, क्षमा और अनुक्रम से निःश्रेयस कल्याण के लिये होगा' ऐसा विचार करता है, विचार करके जहां तापसों का मठ था, वहां आता है, आकर तापसों के मठ में प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कुड़छा, और तांबे के तापसों के उपकरण, किढिन, कावड़, लेता है, लेकर तापसों के मठ से बाहर निकलता है. निकलकर विभंगज्ञान रहित वह हस्तिनापुर नगर के मध्यातिमध्य भाग में से निकलता है. निकल-कर जहां सहस्राम्रवन उद्यान है, जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उनसे न अति निकट और न अति दूर खड़े होकर शुश्रूषा करते हुए, आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, करके नमस्कार किया [illegible] विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करता है।

तए णं समणे भगवं महावीरे सिवस्स रायरिसिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भवइ।

तत्पश्चात् उस शिव राजर्षि एवं उस [illegible] श्रमण भगवान महावीर धर्म [illegible] आराधक होता है।

सिवस्स पव्वज्जा निव्वाणगमणं च—

५३८. तए णं से सिवे रायरिसी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म जहा खंदओ-जाव-उत्तरपुरत्थिमं

शिव की प्रव्रज्या एवं निर्वाणगमन—

५३८. तत्पश्चात् वह शिव राजर्षि श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और अवधारण कर [illegible]

दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सुबहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंवियं तावसभंडगं किढिण-संकाइयगं च एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं जहेव उसभदत्तो तहेव पव्वइओ, तहेव एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ, तहेव सव्वं-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।

—भग० स० ११, उ० ९।

कहे गये अनुसार-यावत्-उत्तरपूर्व दिशाभाग-ईशानकोण में जाता है, वहाँ आकर उन बहुत सी लोढ़ियों, लोहकटाहों, कुड़छों, तांबें के तापसों के उपकरणों, किडिन और कावड़ को एकान्त स्थान में रखता है, रखकर स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच करता है, लोच करके श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके, वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या स्वीकार करता है, उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, उसी प्रकार सब वर्णन करना चाहिये-यावत्-समस्त दुःखों से मुक्त होता है।





४१. महावीरतित्थे उद्दायणराय कहाणयं ४१. महावीरतीर्थ में उदायन राज कथानक

चंपाए महावीरसमोसरणं—

५३९. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए—वण्णओ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नगरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

चंपा में महावीर समवसरण—

५३९. उस काल, उस समय में चंपा नाम की नगरी थी—वर्णन। पूर्णभद्र चैत्य था—वर्णन। तत्पश्चात् श्रमण भगवन्त महावीर किसी एक दिन अनुक्रम से चलते हुए, ग्राम-ग्राम का स्पर्श करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहां पधारे, पधारकर यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

वीतीभए उद्दायणराया—

५४०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिंधूसोवीरेसु जणवएसु वीतीभए नामं नगरे होत्था—वण्णओ। तस्स णं वीतीभयस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं मियवणे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे—वण्णओ। तत्थ णं वीतीभए नगरे उद्दायणे नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे—वण्णओ।

वीतभय में उदायन राजा—

५४०. उस काल उस समय में सिन्धु सौवीर जनपद में वीतभय नाम का नगर था—वर्णन। उस वीतभय नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में मृगवन नाम का उद्यान था—जो सर्व ऋतुओं के पुष्पों और फलों से समृद्ध था—वर्णन। उस वीतभय नगर में उदायन नामक राजा था—जो महाहिमवन एवं पृथ्वी के शिर-मौर रूप मलय मंदराचल के समान सर्व राजाओं में श्रेष्ठ था—वर्णन।

तस्स णं उद्दायणस्स पउमावती नामं देवी होत्था—सुकुमाल० वण्णओ। तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पभावती नामं देवी होत्था—सुकुमाल पाणिपाया—वण्णओ।

उस उदायन राजा के पद्मावती नाम की रानी थी—जो सुकुमाल, हाथ पैर वाली आदि वर्णन। उस उदायन राजा के प्रभावती नाम की रानी थी, जो सुकुमाल हाथ पैर वाली आदि वर्णन।

तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए अभीयी नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माणपमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वंग-सुन्दरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे पडिरूवे। से णं अभीयी कुमारे जुवराया वि होत्था—उद्दायणस्स रण्णो-रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे-पच्चुवेक्खमाणे विहरइ।

उस उदायन राजा का पुत्र प्रभावती देवी का आत्मज अभीचि नामक कुमार था—जो सुकुमार हाथ-पैर वाला, सर्व अंगों से पूर्ण, परिपूर्ण पंच इन्द्रियों, शरीर के लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त था, अंग-प्रत्यंग सामुद्रिक शास्त्र के अनुरूप मानोन्मान प्रमाण से युक्त, परिपूर्ण से सुघटित, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाला, कांत, प्रियदर्शन और रूप सौंदर्य से परिपूर्ण था। वह अभीचिकुमार युवराज भी था, जो उदायन राजा के राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्टागार, पुर और अन्तःपुर की व्यवस्था-प्रबन्ध करते हुए विचरता था।

तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो नियए भाइणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए-जाव-सुरूवे।

उस उदायन राजा के केशीकुमार नामक भानजा था, जो सुकुमार हाथ पैर वाला-यावत्-सुरूप था।

से णं उद्दायणे राया सिंधूसोवीरप्पामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं, वीतीभयप्पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं, महसेणप्पामोक्खाणं दसण्हं राईणं बद्धमउडाणं विदिन्नछत्त-चामर-वालवीयणाणं, अण्णेसिं च बहूणं राईसर-तलवर-कोडुंबिय-माडंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ—सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं-आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

वह उदायन राजा सिंधु सौवीर प्रमुख सोलह देशों, वीतभय प्रमुख तीन सौ तिरेसठ नगरों, महासेन प्रमुख दस मुकुट बद्ध राजाओं का जिनके ऊपर छत्र ताना जाता था और चामर ढोरे जाते थे तथा ऐसे ही दूसरे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति का आधिपत्य करते हुए, प्रमुखपना भोगते हुए, स्वामित्व, भर्तृत्व, आज्ञैश्वर्यत्व, सेनापतित्व करते हुए, पालन करते हुए जीवाजीव तत्व का ज्ञाता श्रमणोपासक था-यावत्-यथाविधि तप कर्म को ग्रहण करके आत्मा को भाते हुए विचरता था।

तए णं से उद्दायणे राया अण्णया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, जहा संखे-जाव-पोसहिए बंभचारी ओमुक्क-मणिसुवण्णे ववगयमाला-वण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबिइए दब्भसंथारोवगए पक्खियं पोसहं पाडजागरमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह उदायन राजा अन्य किसी दिन जहां पौषधशाला थी वहां आया, आकर शंख श्रमणोपासक की तरह - यावत्-पौषध धारण कर ब्रह्मचारीवत् मणि-सुवर्ण आदि को त्यागकर, माला-शृंगार प्रसाधन, विलेपन को छोड़कर, शस्त्र, मूशल आदि को नीचे रखकर एकाकी, विकल्प विहीन हो, दर्भ संस्तारक पर बैठकर पाक्षिक पौषध में जागरणा करते हुए विचरता है।

उद्दायणस्स महावीरवंदणाइम्मि अहिलासो—

५४१. तए णं तस्स उद्दायणस्स रण्णो पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"धन्ना णं ते गामागर-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संवाहसण्णिवेसा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरइ, धन्ना णं ते राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितयो जे णं समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति-जाव-पज्जुवासंति।

उदायन की महावीर को वंदनादि की अभिलाषा—

५४१. तत्पश्चात् उस उदायन राजा को मध्यरात्रि के समय में धर्म जागरणा करते हुए यह इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-विचार उत्पन्न हुआ कि "वे ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सबाह सन्निवेश धन्य हैं, जहां श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हैं व राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं-यावत्-पर्युपासना सेवा करते हैं।

अह णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इहमागच्छेज्जा, इह

यदि श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से चलते हुए ग्रामानुग्राम को स्पर्श करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए यहां

समोसरेज्जा, इहेव वीतीभयस्स नगरस्स बहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा, तो णं अहं समणं भगवं महावीरं वंदेज्जा नमंसेज्जा-जाव-पज्जुवासेज्जा।"

आयें, उनका यहां पदार्पण हो इसी वीतभय नगर के बाहर मृगवन उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार करें तो मैं श्रमण भगवान महावीर को वंदन करूँ, नमस्कार करूँ—यावत्-उनकी पर्युपासना करूँ।'

महावीरेण अहिलासवियाणणा—

५४२. तए णं समणे भगवं महावीरे उद्दायणस्स रण्णो अयमेयारूवं अज्झत्थिय-जाव-संकप्पं समुप्पन्नं वियाणित्ता चंपाओ नगरीओ पुण्णभद्दाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सिंधुसोवीरे जणवए जेणेव वीतीभये नगरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

महावीर द्वारा अभिलाषा जानना—

५४२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर उदायन राजा के इस प्रकार के उत्पन्न हुए अध्यवसाय-यावत्-संकल्प को जानकर चंपानगरी से, पूर्णभद्र चैत्य से बाहर निकले, निकलकर अनुक्रम से गमन करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में भ्रमण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां सिंधु सौवीर जनपद हैं, जहां वीतभय नगर हैं और जहां मृगवन उद्यान है वहां आये, आकर यावत्-संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

वीतीभए समोसरणं—

५४३. तए णं वीतीभये नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तए णं से उद्दायणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ-तुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वीयीभयं नगरं सब्भितर-बाहिरियं-जहा कूणिओ उववाइए-जाव-पज्जुवासइ।

पउमावतीपामोक्खाओ देवीओ तहेव-जाव-पज्जुवासंति।

धम्मकहा।

वीतभय में समवसरण—

५४३. तत्पश्चात् वीतभय में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और दूसरे पथों में-यावत्—परिषद पर्युपासना करती है।

तब उस उदायन राजा ने इस वार्ता को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही वीतभय नगर को अन्दर बाहर से सिंचित कर-यावत्-जैसा औपपातिक सूत्र में कूणिक का वर्णन है, पर्युपासना करता है।

पद्मावती प्रमुख रानियाँ भी उसी प्रकार-यावत्-पर्युपासना करती हैं।

धर्मकथा कही।

उद्दायणस्स पव्वज्जासंकप्पो—

५४४ तए णं से उद्दायणे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो-जाव-नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भंते! तहमेयं भंते!—जाव-से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु जं नवरं—देवाणुप्पिया! अभीयिकुमारं रज्जे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

उदायन का प्रव्रज्या संकल्प—

५४४. उसके बाद वह उदायन राजा श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो स्थान से उठा, उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करके-यावत-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, हे भगवन्! यह तथ्य है; यावत्-जैसा आप कहते हैं, इस प्रकार कहकर परन्तु इतना विशेष है कि—हे देवानुप्रिय! अभीचिकुमार को राज्य शासन में स्थापित करूंगा, तत्पश्चात् आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर आगार त्याग करके आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करूंगा।

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! वीयीभयं नगरं सब्भितर-बाहिरियं आसियसमज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधिवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही वीतभय नगर को अन्दर बाहर से जल से सिंचित कर, बुहार कर और लीपकर -यावत्-श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्यों की गंध से गंधवट्टी के समान करो और करवाओ, ऐसा करके और करवाके इस आज्ञा को वापस लौटाओ। वे भी वैसा करके उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

तए णं से उद्दायणे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह उदायन राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार बोला—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! केसिस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं एवं रायाभिसेओ जहा सिवभद्दस्स(स० ११, उ० ९)तहेव भाणियव्वो-जाव-परमाउं पालयाहि, इट्ठजण-संपरिवुडे सिंधूसोवीरपामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीयीभयपामोक्खाणं तिण्णि तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं महसेणपामोक्खाणं दसण्हं राईणं, अण्णेसिं च बहूणं राईसर-तलवर- माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ - सेट्ठि - सेणावइ - सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे, पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउञ्जंति ।

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही केशीकुमार के महाअर्थ वाले, महा-मूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल ऐसा राज्याभिषेक करो—जैसा शिवभद्र का (भ० स० ११, उ० ९) हुआ वैसा वर्णन कहना चाहिए । यावत्-दीर्घायु का भोग करो, इष्टजनों से सदा घिरे हुए सिन्धु सौवीर आदि सोलह जनपदों, वीतशोक प्रमुख तीन सौ तिरेसठ नगर और आकरों, महासेन प्रमुख दस राजाओं एवं दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इब्भ, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति का आधिपत्य, प्रमुखत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, आज्ञैश्वर्यत्व, सेनापतित्व करते हुए, पालते हुए विचरण करो, ऐसा कहकर जय जयकार करता है ।

तए णं से केसी कुमारे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

तत्पश्चात् वह केशीकुमार राजा हो गया—महा हिमवंत मलय मंदर पर्वत की तरह राजाओं में श्रेष्ठ राजा की तरह -यावत्-राज्य पर शासन करते हुए विचरता है ।

उद्दायणस्स पव्वज्जा—

५४६. तए णं से उद्दायणे राया केसिं रायाणं आपुच्छइ ।

उदायन की प्रव्रज्या—

५४६. तत्पश्चात् वह उदायन राजा केशीराजा से आज्ञा मांगता है ।

तए णं से केसी राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ—एवं जहा जमालिस्स तहेव सब्भितरबाहिरियं तहेव-जाव-निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेंति ।

तत्पश्चात् उस केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया—इत्यादि जैसा जमालि के सम्बन्ध में कहा है, उसी प्रकार नगर के बाहर अन्दर साफ कराओ इत्यादि-यावत्-निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करते हैं ।

तए णं से केसी राया अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ सत्थवाह-दूय - संधि-पाल, सद्धिं संपरिवुडे उद्दायणं रायं सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयावेति-निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं जहा जमालिस्स-जाव महया-महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचति, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण सामी ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा वा ते अट्ठो ?

तत्पश्चात् वह केशीराजा अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इब्भ, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल से परिवृत्त होकर उदायन राजा को उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठाता है, बैठाकर एक सौ आठ सुवर्ण कलशों द्वारा अभिषेक करता है इत्यादि जमालि के अभिषेक की तरह-यावत्-महान निष्क्रमणाभिषेक करता है, अभिषेक करके दसों नखों सहित दोनों हाथों को जोड़ मस्तक से स्पर्श कर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाता है, वधाकर इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! हम आपको क्या दें, क्या अर्पित करें अथवा आपको क्या इष्ट है—आपका क्या प्रयोजन है ?

तए णं से उद्दायणे राया केसिं रायं एवं वयासी—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं, कासवगं च सद्दाविउं—एवं जहा जमालिस्स, नवरं पउमावती अग्गकेसे पडिच्छइ पियविप्पयोगदूसहा।

तब उस उदायन राजा ने केशी राजा से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगवाना और काश्यप को बुलवाना चाहता हूँ—इत्यादि जैसा जमालि के सम्बन्ध में वर्णन किया है, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिये, परन्तु इतना विशेष है कि दुस्सह प्रिय वियोग से दुखित पद्मावती अग्रकेशों को ग्रहण करती है।

तए णं से केसी राया दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेति, रयावेत्ता उद्दायणं रायं सेया-पीतएहिं कलसेहिं ण्हावेति, ण्हावेत्ता सेसं जहा जमालिस्स-जाव-चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेई, अब्भुट्ठेत्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे-सण्णिसण्णे, तहेव अम्मधाती, नवरं पउमावती हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता उद्दायणस्स रण्णो दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा सेसं तं चेव-जाव-छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठावेइ ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ।

तत्पश्चात् केशी राजा दुबारा उत्तर दिशा में सिंहासन को रखवाता है, रखवाकर उदायन राजा को श्वेत-पीत (चांदी-सोने के) कलशों से नहलाता है, नहलाकर शेष जमालि के वर्णन की तरह -यावत्-चारों प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर परिपूर्ण रूप से अलंकृत हुआ सिंहासन से उठता है, उठकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करके शिविका पर आरूढ़ होता है, आरूढ़ होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठा, उसी प्रकार धाय माता के सम्बन्ध में भी जानना, किन्तु यह विशेष है कि पद्मावती हंस सदृश श्वेत वस्त्र को लेकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करके शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर उदायन राजा की दाहिनी बाजू में रखे भद्रासन पर बैठी, शेष पूर्ववत् जानना -यावत्-छत्रादिक तीर्थंकर के अतिशयों को देखता है, देखकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका को खड़ी करवाता है, उस पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका से नीचे उतरता है, उतरकर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिशा भाग में गया, जाकर स्वयमेव आभरण, माला, अलंकारों को उतारता है।

तए णं सा पउमावती देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्न-मुत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी उद्दायणं रायं एवं वयासी—

जइयव्वं सामी ! घडियव्वं सामी ! परक्कमियव्वं सामी ! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमादेयव्वं त्ति कट्टु केसी राया पउमावती य समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं से उद्दायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ सेसं जहा उसभदत्तस्स-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।

अभीयीकुमारस्स उद्दायणं पइ वेरभावणा कूणियसमीवगमणं य—

५४७. तए णं तस्स अभीयीस्स कुमारस्स अण्णदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं उद्दायणस्स पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तए णं से उद्दायणे राया ममं अवहाय नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए—इमेणं एयारूवेणं महया अप्पत्तिएणं मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतेउरपरियाल-संपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए वीतीभयाओ नयराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कूणियं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तत्थ वि णं से विउलभोगसमितिसमन्नागए यावि होत्था। तए णं से अभीयीकुमारे समणोवासए यावि होत्था—अभिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, उद्दायणम्मि रायरिसिम्मि समणुबद्धवेरे यावि होत्था।

अभीचिकुमार की उदायन के प्रति वैर भावना और कूणिक के समीप गमन—

५४७. तत्पश्चात् उस अभीचिकुमार को अन्य कोई दिन मध्य रात्रि के समय कुटुम्ब जागरिका में जागरण करते हुए यह इस प्रकार का अध्यवसाय -यावत्-विचार उत्पन्न हुआ कि यथार्थ रूप में मैं उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज हूँ, तब भी उदायन राजा ने मुझे छोड़कर अपने भानजे केशीकुमार को राज्य पर स्थापित कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण की है—इस प्रकार के महा अप्रीतिरूप मानसिक दुःख से पीड़ित होकर अंतःपुर और पारिवारिक जनों सहित अपने भांडोपकरण आदि लेकर वीतिभय नगर से निकला, निकलकर क्रम-क्रम से चलते हुए, एक गांव से दूसरे गांव जाते हुए जहां चम्पानगरी थी, जहां कूणिक राजा था वहाँ आया, आकर कूणिक राजा का आश्रय लेकर विचरण करता है। वहां भी उसे विपुल भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वह अभीचिकुमार श्रमणोपासक भी हुआ-जीवाजीव तत्वों का ज्ञाता -यावत्-विधिपूर्वक तपःकर्म की आराधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता था तो भी उदायन राजर्षि के प्रति वैरानुबंध से युक्त था।

अभीयीकुमारस्स असुरदेवेसु उप्पत्ती—

५४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु चोयट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

तए णं से अभीयीकुमारे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयापडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरि-सामंतेसु चोयट्ठीए आयावाअसुरकुमारावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि आयावाअसुरकुमारावासंसि आयावाअसुरकुमारदेवत्ताए उववण्णे।

तत्थ णं अत्थेगतियाणं आयावगाणं असुरकुमाराणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं अभीयीस्स वि देवस्स एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

से णं भंते! अभीयीदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

अभीचिकुमार को असुरदेवों में उत्पत्ति—

५४८. उस काल उस समय इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के पास चौसठ लाख असुरकुमारों के आवास कहे गये हैं।

तत्पश्चात् अनेक वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करके वह अभीचिकुमार अर्धमासिक संलेखना से तीस भक्तों को अनशन पूर्वक व्यतीत कर उस पाप स्थानक की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना मरण समय में कालधर्म को प्राप्त कर इसी रत्न प्रभा पृथ्वी के नरकावासों के पास स्थित चौसठ लाख आतापरूप असुरकुमारों के आवासों में से किसी एक आतापरूप असुर कुमार आवास में आतापरूप, असुरकुमार देव रूप से उत्पन्न हुआ।

वहाँ कितने ही आतापरूप असुरकुमार देवों की एक पल्योपम स्थिति कही है, यह अभीचिदेव भी वहां एक पल्योपम की स्थिति वाला हुआ।

हे भगवन्! वह अभीचिदेव भी आयुक्षय होने, भवक्षय होने, और स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से निकल कर कहां जायेगा? कहां उत्पन्न होगा?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भग० स० १३, उ० ६ ।

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! यह ऐसा ही है, भगवन् ! यह ऐसा ही है—इस प्रकार स्वीकार करके गौतम भगवान विहरते हैं ।

卐

४२. महावीरतित्थे जिणपालिय-जिणरक्खियणायं

४२. महावीरतीर्थ में जिनपालित-जिनरक्षित ज्ञात

चंपाए मायंदीसत्थवाहदारया—

५४९. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी पुण्णभद्दे चेइए ।

तत्थ णं मायंदी नामं सत्थवाहे परिवसइ- अड्ढे-जाव-अपरिभूए । तस्स णं भद्दा नामं भारिया । तीसे णं भद्दाए अत्तया दुवे सत्थवाहदारया होत्था, तं जहा—जिणपालिए य जिणरक्खिए य ।

चम्पा के माकंदी सार्थवाह दारक—

५४९. उस काल, उस समय में चंपा नामक नगरी थी, पूर्णभद्र चैत्य था ।

उसमें माकंदी नामक सार्थवाह निवास करता था, जो धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत-अपराजेय था । उसकी भद्रा नाम की भार्या थी । उस भद्रा भार्या के आत्मज दो सार्थवाह पुत्र थे. उनके नाम इस प्रकार हैं—जिनपालित और जिनरक्षित ।

जिणपालिय जिणरक्खियाणं समुद्दजत्ता—

५५०. तत्थ णं तेसिं मागंदिय-दारगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अम्हे लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारसवाराओ ओगाढा । सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया । तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! दुवालसमंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

एवं खलु अम्हे अम्मयाओ ! लवणसमुद्दं पोयवहणेणं एक्कारसवाराओ ओगाढा । सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया । तं इच्छामो णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा दुवालसमंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए ।

जिनपालित-जिनरक्षित की समुद्र यात्रा—

५५०. तत्पश्चात् वे दोनों माकंदी पुत्र किसी एक समय इकट्ठे हुए तो उनमें आपस में इस प्रकार का कथा समुल्लाप-वार्तालाप हुआ—"हम लोगों ने पोतवाहन से ग्यारह बार लवण समुद्र का अवगाहन किया । सभी बार हमने अर्थ की प्राप्ति की, करने योग्य कार्यों को किया और फिर बिना विघ्न के शीघ्र अपने घर आ गये । तो हे देवानुप्रिय ! बारहवीं बार भी पोतवाहन से लवणसमुद्र में अवगाहन करें, इस प्रकार विचार [illegible] अर्थ (प्रस्ताव) को स्वीकार किया । स्वीकार करके [illegible] आए और आकर इस प्रकार बोले—

तए णं ते मागंदिय-दारए अम्मापियरो एवं वयासी—

"इमे भे जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोह ताव जाया ! विपुले माणुस्सए इड्ढीसक्कारसमुदए । किं भे सपच्चवाएणं निरालंवणेणं लवणसमुद्दोत्तारेणं ? एवं खलु पुत्ता ! दुवालसमी जत्ता सोवसग्गा यावि भवइ । तं मा णं तुब्भे दुवे पुत्ता दुवालसमंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहेह । मा हु तुब्भं सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ ।"

तब माता-पिता ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

'हे पुत्रो ! यह तुम्हारे पितामह-प्रपितामह और पिता के पितामह द्वारा उपार्जित प्रचुर हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र, मणि, मौक्तिक, शंख, मूंगा, माणिक आदि सर्वोत्तम धन संपत्ति है जो सात पीढ़ी तक यथेच्छ देने, भोगने और बंटवारा करने के लिये पर्याप्त है । अतएव पुत्रो ! मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि-सत्कार के समुदाय वाले भोगों का भोग करो। विघ्न बाधाओं से युक्त और जिसमें कोई आलम्बन नहीं ऐसे लवणसमुद्र में उतरने से क्या लाभ है ? हे पुत्रो ! बारहवीं बार की यात्रा सोपसर्ग भी होती है, अतएव हे पुत्रो ! तुम दोनों बारहवीं बार लवण समुद्र में प्रवेश मत करो, जिससे तुम्हारे शरीर में व्यापत्ति (विनाश या पीड़ा) न हो ।'

तए णं ते मागंदिय-दारगा अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—"एवं खलु अम्हे अम्मयाओ ! एक्कारसवाराओ लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाढा । सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया । तं सेयं खलु अम्हं अम्मयाओ ! दुवालसं पि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए ।"

तत्पश्चात् माकंदी-पुत्रों ने माता-पिता से दूसरी बार और और तीसरी बार इस प्रकार कहा—'हमने ग्यारह बार पोत-वाहन से लवण समुद्र में अवगाहन किया और सभी बार हमने अर्थ की प्राप्ति की, करने योग्य कार्यों को किया और बिना किसी विघ्न-बाधाओं के शीघ्र ही अपने घर लौट आये तो हे माता-पिता ! बारहवीं बार भी पोतवाहन से लवण समुद्र में प्रवेश करना हमारे लिये श्रेयस्कर होगा ।

तए णं ते मागंदिय-दारए अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा ताहे अकामा चेव एयमट्ठं अणुमण्णित्था ।

तत्पश्चात् माता-पिता जब उन माकंदी पुत्रों को सामान्य कथन द्वारा विशेष कथन द्वारा, सामान्य या विशेष रूप से सम-झाने में समर्थ न हुए तब इच्छा न होने पर भी उन्होंने इस बात की अनुमति दे दी ।

तए णं ते मागंदियदारगा अम्मापिऊहिं अब्भणुण्णाया समाणा गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हंति, जहा अरहन्नगस्स जाव-लवणसमुद्दं बहूइं जोयणसयाइं ओगाढा ।

तत्पश्चात् माता-पिता की अनुमति पाये हुए वे माकन्दी पुत्र गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-चार प्रकार का माल जहाज में भरकर अर्हन्नक की भांति लवणसमुद्र में अनेक सैकड़ों योजन तक चले गये ।

नावा-भंगो—

५५१. तए णं तेसिं मागंदिय-दारगाणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं अणेगाइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्दे कालियवाए-तत्थ-समुट्ठिए ।

नौका-भंग—

५५१. तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों के अनेक सैकड़ों योजन तक अवगाहन कर जाने पर सैकड़ों उत्पात (उपद्रव) उत्पन्न हुए, यथा—अकाल में मेघ गर्जना होने लगी, अकाल में बिजली चमकने लगी, अकाल में स्तनित शब्द (गहरी मेघ घटाओं की ध्वनि-गड़गड़ाहट) होने लगा, प्रतिकूल तेज हवा चलने लगी ।

तए णं सा नावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी-आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी-संचालिज्जमाणी संखोभिज्ज-माणी-संखोभिज्जमाणी सलिल-तिक्ख-वेगेहिं आयट्टिज्जमाणी-आयट्टिज्जमाणी कोट्टिमंसि करतलाहते विव तिंदूसए तत्थेव-तत्थेव ओवयमाणी व उप्पयमाणी य ।

तत्पश्चात् वह नौका उस प्रतिकूल तूफानी वायु से बार-बार कांपने लगी, बार-बार एक जगह से दूसरी जगह चलायमान होने लगी, बार-बार संक्षुब्ध होने लगी, जल के तीक्ष्ण वेग से बार-बार थपेड़े खाने लगी, हाथ से भूतल पर पछाड़ी हुई गेंद के समान बार-बार नीची-ऊँची उछलने लगी ।

उप्पयमाणी विव धरणीयलाओ सिद्धविज्जा विज्जाहरकन्नगा, ओवयमाणी विव गगणतलाओ भट्ठविज्जा विज्जाहरकन्नगा,

जिसे विद्या सिद्ध हुई है ऐसी विद्याधर कन्या जैसे पृथ्वीतल से ऊपर उछलती है, उसीप्रकार वह नौका उछलने लगी और विद्या से भ्रष्ट विद्याधर-कन्या जैसे आकाशतल से नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका नीचे भी गिरने लगी।

विपलायमाणी विव महागरुल-वेग-वित्तासिया भुयगवर-कन्नगा,

जैसे महान गरुड़ के वेग से त्रास पाई हुई नाग की उत्तम कन्या भयभीत होकर भागती है, उसी प्रकार वह नौका भी इधर उधर भागने लगी।

धावमाणी विव महाजण-रसियसद्द-वित्तत्था ठाणभट्ठा आसकिसोरी,

जैसे अपने स्थान से बिछुड़ी बछेरी (घोड़े की बच्ची) बहुत से लोगों के (बड़ी भीड़ के) कोलाहल से त्रस्त होकर इधर-उधर दौड़ती-भागती है, उसी प्रकार वह नाव भी इधर-उधर दौड़-भाग करने लगी।

निगुंजमाणी विव गुरुजण-दिट्ठावराहा सुजणकुलकन्नगा,

गुरुजनों (माता-पिता) के द्वारा जिसका अपराध-दुराचार जान लिया गया है, ऐसी सत्कुलोत्पन्न कन्या के समान नीचे नमने लगी।

घुम्ममाणी विव वीचि-पहार-सय-तालिया, गलिय-लंबणा विव गगणतलाओ,

तरंगों के सैकड़ों प्रहारों से ताड़ित होकर वह थरथराने लगी, जैसे बिना आलंबन की वस्तु आकाश से नीचे गिरती है, उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी।

रोयमाणी विव सलिलगंठिविप्पइरमाण-थोरंसुवाएहिं नववहू उवरयभत्तुया,

जिसका पति मर गया हो, ऐसी नवविवाहिता वधू जैसे अश्रुपात करती है, उसी प्रकार पानी से भीगी ग्रन्थियों (जोड़ों) में से झरने वाली जलधारा के कारण वह नौका भी अश्रुपात करती हुई-सी प्रतीत होने लगी।

विलवमाणी विव परचक्करायाभिरोहिया परममहब्भया-भिद्दुया महापुरवरी,

परचक्री (शत्रु) राजा के द्वारा अवरुद्ध (घिरी हुई) और इस कारण घोर महाभय से पीड़ित किसी उत्तम महानगरी के समान वह नौका भी विलाप करती हुई-सी प्रतीत होने लगी।

झायमाणी विव कवड-च्छोम-प्पओगजुत्ता जोगपरिव्वाइया,

कपट (वेष परिवर्तन) से किये प्रयोग (परवंचनारूप व्यापार) से युक्त योग साधने वाली परिव्राजिका जैसे ध्यान करती है, उसी प्रकार वह नौका भी कभी-कभी स्थिर हो जाने के कारण ध्यान करती-सी जान पड़ती थी।

नीससमाणी विव महाकंतार-विणिग्गय-परिस्संता परिणयवया अम्मया,

किसी बड़े बीयाबान जंगल में से चलकर निकली हुई और हारी-थकी हुई परिणत वय वाली माता (बूढ़ी स्त्री) जैसे हांफती है, उसी प्रकार वह नौका भी निःश्वास-से छोड़ने लगी।

सोयमाणी विव तव-चरणखीणपरभोगा चयणकाले देववहू।

तपश्चरण के फलस्वरूप प्राप्त स्वर्ग के भोग क्षीण होने पर जैसे श्रेष्ठ देवी अपने च्यवन के समय शोक करती है, उसी प्रकार वह नौका भी शोक-सा करने लगी अर्थात् [illegible] शोक करने लगी।

संचुण्णियकट्ठ-कूवरा, भग्गमेढि-मोडिय-सहस्समाला, सूलाइय-वंकपरिमासा, फलहंतर-तडतडेंत-फुट्टंत-संधिवियलंत-लोहकीलिया, सव्वंग-वियंभिया, परिसडियरज्जुविसरंतसव्वगत्ता, आमगमल्लग-

भूया, अकयपुण्ण-जणमणोरहो विव चिंतिज्जमाणगुरुई हाहाक्कय कण्णधार-नाविय-वाणियगजण-कम्मकर-विलविया नाणाविह-रयण-पणिय-संपुण्णा बहूहिं पुरिससएहिं रोयमाणेहिं-जाव-विलवमाणेहिं एगं महं अंतो जलगयं गिरिसिहरमासाइत्ता संभग्ग-कूवतोरणा मोडियज्झयदंडा वलयसयखंडिया करकरस्स तत्थेव विद्दवं उवगया।

पर चढ़ गई हो, उसे जल का स्पर्श वक्र (वांका) होने लगा अर्थात् नौका वांकी टेढ़ी हो गई, एक दूसरे से जुड़े पाटियों में तड़-तड़ शब्द होने लगा, उनके जोड़ टूटने लगे, लोहे की कीलियाँ निकल गई, उसके सब अंग-भाग अलग-अलग हो गये, उसके पाटियों के साथ बंधी रस्सियां सड़ गलकर टूट गई, जिससे उसके हिस्से बिखर गये, वह कच्चे सिकोरे जैसी हो गई अर्थात् पानी में विलीन हो गई, अभागे मनुष्यों के मनोरथ के समान वह अत्यन्त दयनीय-चिन्तनीय हो गई, नौका पर आरूढ़ कर्णधार, मल्लाह, वणिक् और कर्मचारी हाय-हाय करते हुए विलाप करने लगे, वह नाना प्रकार के रत्नों और मालों से भरी हुई थी, इस विपदा के समय सैंकड़ों मनुष्य रुदन करने लगे -यावत्-विलाप करने लगे, उसी समय जल के भीतर विद्यमान एक बड़े पर्वत के शिखर के साथ टकराकर मस्तूल और तोरण भग्न हो गया और ध्वजदंड मुड़ गया, वलय जैसे सैंकड़ों टुकड़े-टुकड़े हो गये और कड़ाक ध्वनि करते हुए वह नौका उसी जगह नष्ट हो गई अर्थात् समुद्र तल में विलीन हो गई—डूब गई।

तए णं तीए नावाए भिज्जमाणीए ते बहवे पुरिसा विपुल-पणिय-भंडमायाए अंतोजलंमि निमज्जाविया यावि होत्था।

तत्पश्चात् उस नौका के भग्न होकर डूब जाने पर बहुत से लोग विपुल रत्नों, भांडों और माल के साथ जल में डूब गये।

मागंदियदारया फलगखंडासादणेण रयणदीवे संपत्ता—

माकंदीपुत्र फलकखंड के आश्रय द्वारा रत्नद्वीप में समागत—

५५२. तए णं ते मागंदिय-दारगा छेया दक्खा पत्तट्ठा कुसला मेहावी निउणसिप्पोवगया बहूसु पोयवहण-संपराएसु कयकरणा लद्धविजया अमूढा अमूढहत्था एगं महं फलगखंडं आसादेंति।

५५२. तत्पश्चात् चतुर, दक्ष, अर्थ को प्राप्त, कुशल, बुद्धिमान, निपुण शिल्प को प्राप्त, बहुत से पोतवहन के युद्ध जैसे खतरनाक कार्यों में कृतार्थ, विजयी, मूढ़तारहित और चंचल-फुर्तीले ऐसे उन दोनों माकन्दी-पुत्रों ने एक बड़ा सा फलक खण्ड—पटिये का टुकड़ा प्राप्त कर लिया।

जंसि च णं पएसंसि से पोयवहणे विवण्णे तंसि च णं पएसंसि एगे महं रयणदीवे नामं दीवे होत्था—अणेगाइं जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अणेगाइं जोयणाइं परिक्खेवेणं नाणादुमसंड-मंडिउद्देसे सस्सिरीए पासाईए-जाव-पडिरूवे।

जिस प्रदेश में वह पोतवहन नष्ट हुआ था, उसी के निकट स्थान में ही रत्नद्वीप नाम का एक बड़ा द्वीप था, जो अनेक योजन लम्बा-चौड़ा और अनेक योजन की परिधि वाला था, उसके प्रदेश अनेक प्रकार के वृक्षों के वनों से मंडित थे, वह सुन्दर सुषमा वाला, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला-यावत्-प्रतिरूप था।

तस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए यावि होत्था—अब्भुग्गयमूसिय-पहसिए-जाव-सस्सिरीयरूवे पासाईए-जाव-पडिरूवे। तत्थ णं पासायवडेंसए रयणदीव-देवया नाम देवया परिवसइ—पावा चंडा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया।

उसके एकदममध्य भाग में एक विशाल उत्तम प्रासाद था, उसकी ऊँचाई प्रगट थी—वह बहुत ऊँचा था -यावत्-सश्रीक प्रसन्नताप्रदा भी यावत्-प्रतिरूप था। उस प्रासादवतंसक में रत्नद्वीपदेवता नामक एक देवी वास करती थी—जो पापिनी, चंडा, रुद्रा, भयंकर, क्षुद्र स्वभाववाली और साहसिक थी।

तस्स णं पासायवडेंसयस्स चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा—किण्हा किण्होभासा।

उस प्रासादवतंसक की चारों दिशाओं में चार वनखंड थे—जो श्यामवर्ण और श्याम कांति वाले थे।

तए णं ते मागंदिय-दारगा तेणं फलयखंडेणं ओवुज्झमाणा-ओवुज्झमाणा रयणदीवंतेणं संवूढा यावि होत्था।

तए णं ते मागंदिय-दारगा थाहं लभंति, २ मुहुत्तंतरं आससंति, २ फलगखंडं विसज्जेंति, २ रयणदीवं उत्तरंति, २ फलाणं मग्गण-गवेसणं करेंति, फलाइं गिण्हंति, २ फलाइं आहारेंति, २ नालिएराणं मग्गण-गवेसणं करेंति, २ नालिएराइं फोडेंति, २ नालिएरतेल्लेणं अण्णमण्णस्स गायाइं अब्भंगेंति, २ पोक्खरणीओ ओगाहेंति, २ जलमज्जणं करेंति, २ पोक्खरणीओ पच्चुत्तरंति, २ पुढविसिलावट्टयंसि निसीयंति, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासण-वरगया चंपं नयरिं अम्मापिउआपुच्छणं च लवण-समुद्दोत्तारणं च कालियवायसमुच्छणं च पोयवहणविवत्तिं च फलयखंडस्सासायणं च रयण-दीवोत्तारं च अणुचिंतेमाणा-अणुचिंतेमाणा ओहयमणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया झियायंति।

तत्पश्चात् वे दोनों माकन्दी-पुत्र उस फलकखंड के सहारे तैरते-तैरते रत्नद्वीप के निकट आ पहुँचे।

तत्पश्चात् उन माकन्दी पुत्रों को थाह मिली, थाह पाकर उन्होंने घड़ी भर विश्राम किया, विश्राम करके फलकखंड को छोड़ दिया, छोड़कर रत्नद्वीप में उतरे, उतरकर फलों की मार्गणा गवेषणा की, फलों को ग्रहण किया, फिर फलों को ग्रहण करके खाया, खाकर नारियल की मार्गणा गवेषणा की, नारियल फोड़े, फोड़कर उनके तेल से दोनों ने परस्पर एक दूसरे के शरीर की मालिश की, मालिश करके पुष्करिणी-जल में प्रवेश किया, प्रवेश करके स्नान किया, स्नान करके पुष्करिणी से बाहर आए, आकर पृथ्वी शिला रूप पाट पर बैठे, बैठकर आश्वस्त [illegible] हुए, विश्राम किया और श्रेष्ठ सुखासन पर आसीन हुए, बैठे-बैठे चंपानगरी, माता-पिता से आज्ञा लेना और लवणसमुद्र में उतरना, तूफानी, प्रचण्ड वायु का उत्पन्न होना, पोत का भग्न होकर डूब जाना, काष्ठ फलकखण्ड (लकड़ी के पाटिये का टुकड़ा) मिल जाना और अंत में रत्नद्वीप में उतरना, आना, इन सब बातों का बारंबार विचार करते हुए भग्नमनोरथ होकर हथेली पर मुख को रखकर चिन्ता में डूब गये।

रयणदीवदेवयाए सद्धिं भोगभुंजणं

५५३. तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिए-दारए ओहिणा आभोएइ, असि-फलग-वग्ग-हत्था सत्तट्ठतलप्पमाणं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-देवगईए वीईवयमाणी-वीईवयमाणी जेणेव मागंदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरत्ता ते मागंदिय-दारए खर-फरुस-निट्ठुरवयणेहिं एवं वयासी—

"हंभो मागंदिय-दारया! अपत्थियपत्थिया! जइ णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरह, तो भे अत्थि जीवियं; अहण्णं तुब्भे मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा नो विहरह तो भे इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेणं खुरधारेणं असिणा रत्तगंडमंसुयाइं माउआहिं उवसोहियाइं तालफलाणि व सीसाइं एगंते एडेमि।

तए णं ते मागंदिय-दारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

रत्नद्वीप-देवता के साथ भोग भोगना—

५५३. तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकन्दी-पुत्रों को अवधिज्ञान से देखा, देखकर उसने हाथ में ढाल और तलवार ली, सात-आठ ताड़ प्रमाण जितनी ऊंचाई पर आकाश में उड़ी, उड़कर उत्कृष्ट-यावत्- देवगति से चलती-चलती जहाँ माकन्दी-पुत्र थे, वहाँ आई, आकर कुपित हुई और तीखे, कठोर और निष्ठुर वचनों द्वारा माकन्दी पुत्रों से इस प्रकार बोली—

"अरे माकन्दी-पुत्रो! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वालो! यदि तुम मेरे साथ विपुल काम-भोग भोगते हुए रहोगे तो तुम्हारा जीवन है—तुम जीवित रहोगे और यदि तुम मेरे साथ विपुल काम-भोग भोगते हुए विचरण नहीं करोगे तो इस नीलकमल, भैंस के सींग और अलसी के पुष्प की [illegible] और छुरे की धार जैसी तीखी तलवार से तुम्हारे [illegible] गण्डस्थलों [illegible] और दाढ़ी-मूंछों की [illegible] माता आदि के द्वारा सवारे [illegible] शोभायमान [illegible]

"जण्णं देवाणुप्पिया वइस्ससि तस्स आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठिस्सामो।"

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए गेण्हइ, २ जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, २ असुभपोग्गलावहारं करेइ, २ सुभपोग्गलपक्खेवं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा तेहिं सिद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ, कल्लाकल्लिं च अमयफलाइं उवणेइ।

'देवानुप्रिया जो कहेंगी, हम आपकी आज्ञा, उपपात-आदेश और वचन निर्देश में तत्पर रहेंगे।'

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने मांकदी-पुत्रों को ग्रहण किया, ग्रहण करके जहां अपना उत्तम प्रासाद या वहां आई, आकर अशुभ पुद्‌गलों को दूर किया और शुभ पुद्‌गलों का प्रक्षेपण किया और उसके बाद उनके साथ विपुल काम-भोगों को भोगते हुए विहार करने लगी, प्रतिदिन उनके लिये अमृत जैसे मधुर फल लाने लगी।

रयणदीवदेवयाए लवणसमुद्दसच्छीकरणत्थं गमणं वणसंडे रमणादेसो य—

५५४. तएणं सा रयणदीवदेवया सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा लवण-समुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेयव्वे त्ति जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइपूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेयव्वं ति कट्टु निउत्ता।

रत्नद्वीप की देवी का लवणसमुद्र के स्वच्छीकरण हेतु गमन और वनखंड में रमण करने का आदेश—

५५४. तत्पश्चात् शक्रेन्द्र के वचन—आदेश से सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपतिदेव ने उस रत्नद्वीप की देवी से कहा—'तुम्हें इक्कीस वार लवणसमुद्र का चक्कर लगाना है और वहां जो कुछ भी तृण (घास), पत्ता, काष्ठ, कचर, अशुचि (अपवित्र वस्तु), सड़ी-गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु आदि गन्दी चीजें हों, उन सवको इक्कीस वार हिला-हिलाकर समुद्र से निकालकर एक तरफ फैंक देना।' इस प्रकार कहकर उसे समुद्र की सफाई के कार्य में नियुक्त किया।

तए णं सा रयणदीवदेवया ते मागंदिय-दारए एवं वयासी—

"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा तं चेव-जाव-निउत्ता। तं-जाव-अहं देवाणुप्पिया! लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइपूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेमि ताव तुब्भे इहेव पासायवडेंसए सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह। जइ णं तुब्भे एयंसि अंतरंसि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह! तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तं जहा—पाउसे य वासारत्ते य।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! मैं शक्रेन्द्र के वचनादेश से सुस्थित नामक लवण समुद्राधिपति देव द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से -यावत्-नियुक्त की गई हूँ। सो हे देवानुप्रियो! जब तक मैं लवण-समुद्र का इक्कीस वार चक्कर काटकर वहां जो कुछ भी तृण, पत्र, काष्ठ, कचरा, अशुचि, सड़ी गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु आदि अशुद्ध वस्तुएँ हैं, उनको इक्कीस वार हिला-हिलाकर एकान्त में फैंकती हूँ तब तक तुम इसी प्रासादवतंसक में आनन्दपूर्वक रमण करते हुए रहना। यदि इस बीच ऊब जाओ अथवा उत्सुक होओ या कोई उपद्रव हो जाये तो तुम पूर्व दिशा के वनखंड में चले जाना। वहाँ दो ऋतुयें सदा स्वाधीन हैं—विद्यमान रहती हैं, यथा प्रावृष (आषाढ़ एवं श्रावण मास) तथा वर्षारात्र (भाद्रपद और आश्विन मास)

गाहा—

तत्थ उ—कंदल-सिलिंध - दंतो,
निउर-वरपुप्फपीवरकरो।
कुडयज्जुण-नीव-सुरभिदाणो,
पाउसउऊ गयवरो साहीणो ॥१॥[1]

गाथा—

उसमें—प्रावृष ऋतु रूपी हाथी स्वाधीन है। कंदल-नवीन लतायें और सिलिंध्र-भूमिफोड़ा उस प्रावृष-हाथी के दाँत हैं, निउर नामक वृक्ष के उत्तम पुष्प उसकी उत्तम सूँड है, कुटज, अर्जुन और नीप वृक्षों के पुष्प ही उसका सुगन्धित मदजल है।१।

१. यह सब वृक्ष प्रावृपऋतु में फूलते हैं, किन्तु उस वनखंड में सदैव फूले रहते हैं, इसी कारण प्रावृष को वहां सदा विद्यमान कहा है।

तत्थ य—सुरगोवमणि-विचित्तो,
दद्दुरकुलरसिय-उज्झररवो।
बरहिणवंद - परिणद्धसिहरो,
वासारत्तउऊ पव्वओ साहीणो ॥२॥

उसमें—वर्षाऋतु रूपी पर्वत भी सदा स्वाधीन-विद्यमान है। क्योंकि वह इन्द्रगोप रूपी पद्मराग आदि मणियों से विचित्र वर्ण वाला रहता है और उसमें मेंढकों के समूह के शब्द रूपी झरने की ध्वनि सदैव होती रहती है। वहाँ मयूरों के समूह सदैव शिखरों पर विचरते रहते हैं।२।

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बहूसु वावीसु य-जाव-सरसर-पंतियासु य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य-जाव-कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरिज्जाह। जइ णं तुब्भे तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे उत्तरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा, तं जहा—सरदो य हेमंतो य।

हे देवानुप्रियो ! उस पूर्व दिशा के उद्यान में तुम बहुत सी बावड़ियों में और-यावत्-सरोवरों की पंक्तियों में, बहुत से लता मंडपों में, वल्लियों के मंडपों में और -यावत्-पुष्प मंडपों में सुखपूर्वक रमण करते हुए समय व्यतीत करना। अगर तुम वहाँ भी ऊब जाओ, उत्सुक हो जाओ या उत्कंठित हो जाओ तो तुम उत्तर दिशा के वनखंड में चले जाना। वहाँ दो ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं, यथा—शरद् और हेमन्त।

गाहा—
तत्थ उ—सण-सत्तिवण्ण-कउहो,
नीलुप्पल-पउम-नलिण-सिंगो।
सारस-चक्कवाय-रवियघोसो,
सरयउऊ गोवई साहीणो ॥३॥
तत्थ य—सियकुन्द-धवलजोण्हो,
कुसुमिय - लोद्धवणसंड-मंडलतलो।
तुसार - दगधार - पीवरकरो,
हेमंतउऊ ससी सया साहीणो ॥४॥

गाथा—
उसमें—शरद् ऋतु रूपी गोपति—वृषभ सदा स्वाधीन है, सप्तच्छद वृक्षों के पुष्प उसका ककुद (कांधला) है, नीलोत्पल पद्म और नलिन उसके सींग हैं, सारस और चक्रवाक पक्षियों का कूजन ही उसका घोष (ढंकारना) है।३।
उसमें—हेमन्त ऋतु रूपी चन्द्रमा सदा स्वाधीन है, श्वेत कुन्दकुसुम उसकी धवल ज्योत्स्ना है, कुसुमित लोध्र वनखण्ड उसका मंडलतल (बिम्ब) है और तुषार के जल बिन्दुओं की धारायें उसकी स्थूल-स्थूल किरणें हैं।४।

तत्थ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बहूसु वावीसु य-जाव-सरसर-पंतियासु य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य-जाव-कुसुम-घरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा विहरिज्जाह। जइ णं तुब्भे तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे अवरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं दो उऊ सया साहीणा तं जहा—वसंते य गिम्हे य।

हे देवानुप्रियो ! वहाँ तुम बहुत सी बावड़ियों में -यावत्-सरोवरों की पंक्तियों में, बहुत से लतागृहों में, वल्ली मंडपों में -यावत्-पुष्प मंडपों में सुखपूर्वक रमण करते हुए समय व्यतीत करना। यदि तुम वहाँ भी ऊब जाओ या उत्सुक हो जाओ अथवा कोई उपद्रव हो जाये तो तुम पश्चिम दिशा के वनखंड में चले जाना। उस वनखण्ड में भी दो ऋतुएँ सदैव स्वाधीन हैं, यथा—वसंत और ग्रीष्म।

गाहा—
तत्थ उ—सहकार-चारुहारो,
किंसुय-कणियारासोगमउडो।
ऊसियतिलग-बउलायवत्तो,
वसंतउऊ नरवई साहीणो ॥५॥

तत्थ य—पाडल-सिरीस-सलिलो,
मल्लिया-वासंतिय-धवलवेलो।
सीयलसुरभि-अनिल-मगरचरिओ,
गिम्हउऊ सागरो साहीणो ॥६॥

गाथा—

तत्थ णं बहूसु वावीसु य-जाव-सरसरपंतियासु य बहूसु आलीघरएसु य मालीघरएसु य-जाव-कुसुमघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विरहेज्जाह।

उस वनखण्ड में बहुत-सी वापिकाओं और -यावत्-सरोवरों की पंक्तियों में और अनेक लतागृहों में, वल्लियों के मण्डपों में और -यावत-कुसुमगृहों में सुखपूर्वक रमण करते हुए विचरण करना।

रयणदीवदेवयाए मागंदीपुत्ताणं दिट्ठीविससप्पसमीवे गमणनिसेहो—

५५५. जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! तत्थ वि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तओ तुब्भे जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छेज्जाह ममं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठेज्जाह, मा णं तुब्भे दक्खिणिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह। तत्थ णं महं एगे उग्गविसे चंडविसे घोरविसे महाविसे अइकाए महाकाए जहा तेयनिसग्गे-मसि-महिस-मूसा-कालए नयणविसरोसपुण्णे अंजणपुंज-नियरप्पगासे रत्तच्छे जमल-जुयल-चंचल-चलंतजीहे धरणितल-वेणिभूए उक्कड-फुड-कुडिल- जडुल - कक्खड-वियड - फडाडोव - करणदच्छेलोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतघोसे अणागलिय चंड-तिव्वरोसे समुहिय-तुरिय-चवलं धमधमंते दिट्ठीविसे सप्पे परिवसइ। मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ"—ते मागंदिय-दारए दोच्चं पि तच्चंपि एवं वदति, वदित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए लवणसमुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टेउं पयत्ता यावि होत्था।

रत्नद्वीप देवी का माकंदी-पुत्रों को दृष्टिविष सर्प के समीप गमन निषेध—

५५५. हे देवानुप्रियो! अगर तुम वहां भी ऊब जाओ अथवा उत्सुक हो जाओ या उपद्रव हो जाये तो तुम जहां श्रेष्ठ प्रासाद है, वहां लौट आना और मेरी प्रतीक्षा करते हुए वहीं ठहरना। किन्तु दक्षिण दिशा के वन खण्ड की ओर मत जाना। वहां पर एक विशाल, उग्रविष, चंडविष, घोरविष, महाविष युक्त, दीर्घकाय, महाकाय तथा 'जहातेयनिसग्गे' अर्थात् तेजोलेश्या के निसर्ग काल में गोशालक के वर्णन में कहे गये अनुसार शेष विशेषण यहां भी जान लेना चाहिये जो इस प्रकार हैं कि काजल, भैंसा और कसौटी पाषाण के सदृश काला तथा जिसके नेत्र विष और रोष-क्रोध से परिपूर्ण हैं, जिसकी आभा काजल के ढेर के समान काली है, आंखें लाल हैं, उसकी दोनों जीभें चपल एवं लपलपाती हैं, जो पृथ्वी रूपी स्त्री की वेणी के समान है, वह उत्कट, स्फुट—प्रकट, कुटिल, जटिल, कर्कश और विकट-विस्तार वाला फटाटोप करने (फण फैलाने) में दक्ष, लोहार की धौंकनी के धौंके जाने पर जैसे वह धम-धम शब्द करती है, उसी प्रकार धम-धम शब्द करने वाला है, जिसका रोष प्रचण्ड, तीव्र एवं अपरिमित है, कुत्तों के भौंकने के समान शीघ्रता एवं चपलता से धम-धम ध्वनि करने वाला ऐसा दृष्टिविष सर्प रहता है। अतएव कहीं ऐसा न हो कि तुम वहां चले जाओ और तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाये।' उसने यह बात दो बार, तीन बार, भी उन माकंदी पुत्रों से कही, कहकर उसने वैक्रिय समुद्घात से विक्रिया की, विक्रिया करके उत्कृष्ट देवगति से लवण समुद्र के इक्कीस बार चक्कर काटने में प्रवृत्त हो गई।

मागंदियपुत्ताणं वणसंडगमणं—

५५६. तए णं ते मागंदिय-दारया तओ मुहुत्तंतरस्स पासायवडेंसए सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! रयणदीवदेवया अम्हे एवं वयासी—

एवं खलु अहं सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा निउत्ता-जाव-मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ। तं सेयं

माकंदी पुत्रों का वनखण्ड गमन—

५५६. तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र उसके चले जाने पर एक मुहूर्त में ही (कुछ क्षणों में ही) उस श्रेष्ठ प्रासाद में सुखद स्मृति, रति और धृति नहीं पाते हुए आपस में इस प्रकार बोले—

देवानुप्रिय! रत्नद्वीप की देवी ने हमसे इस प्रकार कहा है—

"शक्रेन्द्र के वचनादेश से लवण समुद्राधिपति देव सुस्थित ने मुझे इस कार्य के लिये नियुक्त किया है -यावत्-ऐसा न हो।

खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गमित्तए—अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, २ तत्थ णं वावीसु य-जाव-आलीघरएसु य-जाव-सुहंसुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा विहरंति।

तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, २ तत्थ णं वावीसु य-जाव-आलीघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरंति।

तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा जेणेव पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, २ तत्थ णं वावीसु य-जाव-आलीघरएसु य सुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरंति।

मागंदियपुत्ताणं देवयानिसिद्धट्ठाणे गमणं—

५५७. तए णं ते मागंदिय-दारगा तत्थ वि सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अण्णमण्णं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे रयणदीवदेवया एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! सक्कवयण-संदेसेणं सुट्ठिएण लवणाहिवइणा निउत्ता-जाव-मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं। तं सेयं खलु अम्हं दक्खिणिल्लं वणसंडं गमित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तओ णं गंधे निद्धाइ, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अणिट्ठतराए चेव।

वणसंडे देवयाकयसूलाइयपुरिसदंसणं—

५५८. तए णं ते मागंदिय-दारगा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति, पिहेत्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वणसंडे तेणेव उवागया। तत्थ णं महं एगं आघयणं पासंति—अट्ठियरासि-सयसंकुलं भीम-दरिसणिज्जं। एगं च तत्थ सूलाइयं पुरिसं कलुणाइं विस्सराइं कट्ठाइं कुव्वमाणं पासंति, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया जेणेव से सूलाइए पुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी—

कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय, तो हे देवानुप्रिय ! हमें पूर्व दिशा के वनखण्ड में चलना चाहिए—एक दूसरे ने इस विचार को सुना, सुनकर जहाँ पूर्व दिशा का वनखण्ड था वहाँ आये, आकर वहाँ की बावड़ियों में-यावत्-लतागृहों में-यावत्-सुखपूर्वक रमण करते हुए विहार करने लगे।

तदनन्तर वे माकंदी-पुत्र जब वहाँ भी सुखानुभूति, रति और शान्ति प्राप्त न कर सके तो जहाँ उत्तरदिशा का वनखण्ड था, वहाँ पहुँचे वहाँ भी वापिकाओं में-यावत्-लतागृहों में-यावत्-सुखे-सुखे सुखपूर्वक रमण करते हुए विहार करते हैं।

उनके बाद वे माकंदी-पुत्र वहाँ भी जब सुखानुभूति, रति और शान्ति अनुभव नहीं कर सके तो जहाँ पश्चिम दिशा का वनखण्ड था, उस ओर चल दिये, वहाँ भी वापिकाओं में-यावत्-वल्लीगृहों में सुखपूर्वक रमण करते हुए विहार करने लगे।

माकंदी-पुत्रों का देवी द्वारा निषिद्धस्थान में गमन—

५५७. तत्पश्चात् वे माकंदी-पुत्र वहाँ भी सुखानुभूति, रति और शान्ति नहीं पाकर आपस में इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रियो ! रत्नद्वीप की देवी ने हमें ऐसा कहा था कि—

हे देवानुप्रिय ! शक्र के वचनादेश से लवणाधिपति सुस्थित देव द्वारा मैं नियुक्त की गई हूँ-यावत्-तुम्हारे शरीर का विनाश न हो जाये। तो इसमें कोई कारण होना चाहिए। अतएव हमें दक्षिण दिशा के वनखण्ड में भी जाना चाहिए, ऐसा कहकर उन्होंने एक दूसरे के इस विचार को स्वीकार किया, स्वीकार करके जिस ओर दक्षिण दिशा का वनखण्ड था, उस ओर जाने के लिए उद्यत हुए। वहाँ से दुर्गन्ध फैलने लगी, जैसे कोई सर्प का मृत कलेवर-यावत्-उससे भी अधिक अनिष्ट गंध हो।

[illegible] हे देवानुप्रियो ! [illegible]
[illegible]

तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंदिय-दारगे एवं वयासी—

एस णं देवाणुप्पिया ! रयणदीवदेवयाए आघयणे। अहं णं देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ कागंदीए आसवाणियए विपुलं पणियभंडमायाए पोयवहणेणं लवणसमुद्दं ओयाए। तए णं अहं पोयवहण-विवत्तीए निब्बुड्ड-भंडसारे एगं फलगखंडं आसाएमि। तए णं अहं ओवुज्झमाणे-ओवुज्झमाणे रयणदीवंतेण संवूढे। तए णं सा रयणदीवदेवया ममं ओहिणा पासइ, पासित्ता ममं गेण्हइ, गेण्हित्ता मए सद्धिं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणी विहरइ। तए णं सा रयणदीव-देवया अण्णया कयाइ अहालहुसगंसि अवराहंसि परिकुविया समाणी ममं एयारूवं आवइं पावेइ। तं न नज्जइ णं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सइ ?

तब शूली पर चढ़े उस पुरुष ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! यह रत्नद्वीप की देवी का वध स्थल है। हे देवानुप्रियो ! मैं जम्बूद्वीप के भारत वर्ष में स्थित काकंदी नगरी का वासी अश्व वणिक् हूँ, मैं बहुत से अश्वों और भांडोपकरणों को पोत में भरकर लवण समुद्र में चला था। तत्पश्चात् पोतवहन के भंग हो जाने और भांडोपकरणों के डूब जाने पर मुझे एक पाटिये का टुकड़ा मिल गया। तब उसी के सहारे तिरता-तिरता मैं रत्नद्वीप के समीप आ पहुँचा। उसी समय रत्नद्वीप की देवी ने मुझे अवधिज्ञान से देखा, देखकर उसने मुझे ग्रहण किया, ग्रहण करके वह मेरे साथ विपुल कामभोगों को भोगती हुई विचरण करने लगी। तत्पश्चात् रत्नद्वीप की वह देवी किसी एक समय एक छोटे से अपराध पर अत्यन्त कुपित हो गई और कुपित होकर उसी ने मुझे इस विपत्ति में ढकेल दिया है। हे देवानुप्रियो ! न मालूम तुम्हारे इस शरीर को भी कौन सी आपदा आ सकती है ?

मायंदियदारगेहिं नित्थारपुच्छा—

५५९. तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्स सूलाइगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बलियतरं भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजाय-भया सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी—

"कहण्णं देवाणुप्पिया ! अम्हे रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं नित्थरेज्जामो ?"

तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंदिय-दारगे एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया ! पुरत्थिमिल्ले वणसंडे सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे सेलए नामं आसरूवधारी जक्खे परिवसइ। तए णं से सेलए जक्खे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु आगयसमए पत्तसमए महया-महया सद्देणं एवं वदइ—कं तारियामि ? कं पालयामि ? तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं सेलगस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणियं करेह, करेत्ता जन्नुपायवडिया पंजलिउडा विणएणं पज्जुवासमाणा विहरह। जाहे णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वएज्जा—कं तारयामि ? कं पालयामि ? ताहे तुब्भे एवं वदह—अम्हे तारयाहि अम्हे पालयाहि। सेलए भे जक्खे परं रयणदीवदेवयाए हत्थाओ साहत्थिं नित्थारेज्जा। अण्णहा भे न याणामि इमेसिं सरीरगाणं का मण्णे आवई भविस्सई ?"

माकंदी-पुत्रों द्वारा निस्तार पृच्छा—

५५९. तत्पश्चात् वे माकंदी-पुत्र उस शूली पर चढ़े हुए पुरुष से यह वृतांत सुनकर और हृदय में धारण कर अत्यधिक भयभीत हो गये और त्रसित, उद्विग्न, भयग्रस्त होकर उन्होंने शूली पर चढ़े हुए पुरुष से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! हम लोग रत्नद्वीप की देवी के हाथ से किस तरह अपने हाथों अपने आप निस्तार-छुटकारा पा सकते हैं ?'

तब शूली पर चढ़े हुए पुरुष ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! इस पूर्व दिशा के वनखण्ड में शैलक यक्ष का यक्षायतन है, उसमें अश्वरूप धारी शैलक नाम का एक यक्ष निवास करता है। वह शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन आगत समय और प्राप्त समय पर अर्थात् एक नियत समय पर जोर-जोर से चिल्लाता हुआ इस प्रकार बोलता है—किसको तारूँ ? किसको पालूँ ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग पूर्व दिशा के वनखण्ड में जाना और शैलक यक्ष की महान जनों के योग्य पुष्पों से पूजा अर्चना करना, पूजा करके घुटने और पैर नमाकर, दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उसकी सेवा करते हुए ठहरना। जब वह शैलक यक्ष आगत समय और प्राप्त समय होकर नियत समय आने पर—कहे कि किसे तारूँ ? किसे पालूँ ? तब तुम कहना—हमें तारो, हमें पालो। इस प्रकार शैलक यक्ष ही रत्नद्वीप की देवी के हाथ से स्वयं तुम्हारा निस्तार करेगा। अन्यथा मैं नहीं जानता हूँ कि तुम्हारे इस शरीर को कौनसी आपदा हो जायेगी।

मागंदियदारगाणं सेलगपट्ठारोहणं—

५६२. तए णं ते मागंदिय-दारया हट्ठ० सेलगस्स जक्खस्स पणामं करेंति, करेत्ता सेलगस्स पिट्ठं दुरूढा।

तए णं से सेलए ते मागंदिए-दारए पिट्ठं दुरूढे जाणित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए दिव्वाए देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव चंपा नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

माकंदी-पुत्रों का शैलक पृष्ठारोहण—

५६२. तब माकंदी-पुत्रों ने हर्षित एवं संतुष्ट होकर शैलक यक्ष को प्रणाम किया और प्रणाम करके वे शैलक की पीठ पर आरूढ़ हो गये।

तत्पश्चात् वह शैलक माकंदी पुत्रों को पीठ पर आरूढ़ हुआ जानकर सात-आठ ताड़ के बराबर ऊँचा आकाश में उठा, उठकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, प्रचण्ड और दिव्य देवगति से लवण समुद्र के बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था, जिधर भरत क्षेत्र था, जिधर चंपानगरी थी उसी ओर चलने के लिए उद्यत हो गया।

रयणदीवदेवयाकया पडिलोमा उवसग्गा—

५६३. तए णं सा रयणदीवदेवया लवणसमुद्दं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टइ, जं तत्थ तणं वा-जाव-एगंते एडेइ, जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते मागंदिय-दारए पासायवडेंसए अपासमाणी जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छइ-जाव-सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, करेत्ता तेसिं मागंदिय-दारगाणं कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्ति वा अलभमाणी जेणेव उत्तरिल्ले, एवं चेव पच्चत्थिमिल्ले वि जाव अपासमाणी ओहिं पउंजइ, ते मागंदिए-दारए सेलएणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ता असिखेडगं गेण्हइ गेण्हित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए जेणेव मागंदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"हंभो मागंदिय-दारगा! अपत्थियपत्थया! किण्णं तुब्भे जाणह ममं विप्पजहाय सेलएणं जक्खेणं सद्धिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणा? तं एवमवि गए जइ णं तुब्भे ममं अवयक्खह तो भे अत्थि जीवियं। अह णं नावयक्खह तो भे इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेणं खुरधारेणं असिणा रत्तगंडमंसुयाइं माउआहिं उवसोहियाइं तालफलाणि व सीसाइं एगंते एडेमि।"

तए णं ते मागंदिय-दारगा रयणदीवदेवयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अभीया अतत्था अणुव्विग्गा अक्खुभिया असंभंता

रत्नद्वीप देवताकृत प्रतिलोम उपसर्ग—

५६३. तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने लवणसमुद्र के चारों तरफ इक्कीस बार चक्कर लगाकर, उसमें तृण अथवा -यावत्- एकान्त में फैंक दिया, जहां अपना श्रेष्ठ प्रासाद था, वहीं आई आकर उन माकंदी-पुत्रों को उत्तम प्रासाद में न देखकर पूर्व दिशा के वनखण्ड में गई -यावत्- सब जगह मार्गणा गवेषणा की, गवेषणा करने पर उन माकंदी-पुत्रों को कहीं पर भी श्रुति अथवा क्षुति-छींकने की आवाज अथवा प्रवृत्ति समाचार न पाती हुई, उत्तर दिशा के और इसी प्रकार पश्चिम दिशा के वनखण्ड में भी न दिखाई देने पर अवधिज्ञान का प्रयोग किया, उन माकंदी पुत्रों को शैलक के साथ लवणसमुद्र के बीचों बीच होकर जाते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो ढाल तलवार ली, लेकर सात-आठ ताल आकाश में ऊँची उठी, उठकर उत्कृष्ट देवगति से जहां माकंदी-पुत्र थे, वहां आई और आकर इस प्रकार बोली—

'अरे माकंदी-पुत्रो ! अरे अप्रार्थित (मोक्ष) के अभिलाषी ! क्या तुम नहीं जानते हो कि मेरा त्याग करके शैलक यक्ष के साथ लवणसमुद्र के मध्य में होकर तुम निकल जाओगे ? इतना होने पर भी यदि तुम मेरी अपेक्षा रखोगे तो तुम जीवित रह सकोगे। यदि मेरी अपेक्षा नहीं रखोगे तो नील कमल, भैंस के सींग और अलसी के फूल जैसी प्रभा वाली और छुरे की धार जैसी तलवार से गंडस्थलों को और दाढ़ी-मूछों को लाल करने वाले, माता आदि के द्वारा सवारकर सुशोभित किये गये केशों से शोभायमान तुम्हारे इन मस्तकों को तालफल की तरह काटकर एकान्त में फैंक दूंगी।'

तत्पश्चात् वे माकंदी-पुत्र रत्नद्वीप की देवी के इस कथन को सुनकर और समझकर भी भयभीत नहीं हुए, त्रास को प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, क्षुभित नहीं हुए, संभ्रान्त नहीं हुए

अकयण्णुय ! सिढिलभाव ! निल्लज्ज ! लुक्ख ! अकलुण ! जिणरक्खिय ! मज्झं हिययरक्खगा !,

"ण हु जुज्जसि एक्किकयं अणाहं अबंधवं तुज्झ चलणओवायकारियं उज्झिणं अहण्णं,

"गुणसंकर ! अहं तुमे विणा ण समत्था वि जीविउं खणं पि, इमस्स उ अणेग झस-मगर-विविधसावयसयाउलघरस्स रयणागरस्स मज्झे अप्पाणं वहेमि तुज्झ पुरओ,

"एहि णियत्ताहि, जइ सि कुविओ खमाहि एक्कावराहं मे,

"तुज्झ य विगयघणविमलससिमंडलागारसस्सिरीयं सारयनवकमलकुमुदकुवलयविमलदलनिकरसरिसनिभं नयणं वयणं पिवासागयाए सद्धा मे पेच्छिउं जे, अवलोएहि ता इओ ममं णाह ! जा ते पेच्छामि वयणकमलं"

एवं सप्पणयसरलमहुराइं पुणो पुणो कलुणाइं वयणाइं जंपमाणी सा पावा मग्गओ समण्णेइ पावहियया ।

को नहीं जानने वाले ! निर्मोही ! निष्क्रिय—कर्त्तव्य शून्य ! अकृतज्ञ—कृतघ्नी ! शिथिलमना ! निर्लज्ज ! रूक्ष—स्नेह रहित ! अकरुण ! जिनरक्षित ! मेरे हृदय रक्षक !

'मुझ अकेली, अनाथ, बान्धवविहीन, तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाली—चरणदासी और अधन्या—हतभागिनी को त्याग देना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है ।

'हे गुण भंडार ! मैं तुम्हारे बिना एक क्षण के लिये भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ, अनेक सैंकड़ों मत्स्य, मगर और विविध क्षुद्र जलचर प्राणियों के गृहरूप इस रत्नाकर के मध्य तुम्हारे सामने मैं अपना वध करती हूँ—अपने प्राण त्यागती हूँ ।

'आओ वापस लौट चलो, यदि तुम कुपित हो गये हो तो मेरा एक अपराध क्षमा करो ।

'शरद् ऋतु के मेघविहीन विमल चन्द्रमा के समान एवं सद्यः विकसित कमल, कुमुद और कुवलय के विमल समूह के सदृश शोभायमान तुम्हारे मुखमंडल और नेत्रों के दर्शन करने की पिपासा (इच्छा) से मैं यहाँ आई हूँ, तुम्हारे मुख को देखने के लिये अधीर हूँ इसलिये हे नाथ ! इस ओर तुम मुझे देखो, जिससे मैं तुम्हारा मुख-कमल देख लूँ ।'

इस प्रकार प्रेमपूर्ण, सरल और मधुर वचनों को बार-बार बोलती हुई वह पापिनी और पापपूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में पीछे-पीछे चलने लगी ।

जिणरक्खियविवत्ती—

५६५. तए णं से जिणरक्खिए चलमणे तेणेव भूसणरवेणं कण्णसुहमणहरेणं तेहि य सप्पणय-सरल-महुर-भणिएहिं संजाय-विउण-राए रयणदीवस्स देवयाए तीसे सुंदरथण-जहण-वयण कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वणसिरिं च दिव्वं सरभस-उवगूहियाइं बिब्बोय-विलसियाणि य विहसिय-सकडक्खदिट्ठि-निस्ससिय-मलिय-उवललिय-थिय-गमण-पणयखिज्जिय-पसाइयाणि य सरमाणे रागमोहियमती अवसे कम्मवसगए अवयक्खइ मग्गतो सविलियं ।

तए णं जिणरक्खियं समुप्पण्णकलुणभावं मच्चु-गलत्थल्ल-णोल्लियमइं अवयक्खंतं तहेव जक्खे उ सेलए जाणिऊण सणियं-सणियं उव्विहइ नियगपिट्ठाहि विगयसत्थं ।

जिनरक्षित का विनाश—

५६५. तत्पश्चात् पूर्वोक्त कानों को सुख देने वाले और मन को हरण करने वाले आभूषणों के शब्दों से तथा उन प्रणययुक्त, सरल और मधुर वचनों से जिनरक्षित का मन चलायमान हो गया, पूर्व की अपेक्षा उसे दुगुना राग हो गया, रत्नद्वीप की देवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर और नेत्रों के लावण्य को, रूप—शरीर सौन्दर्य और यौवन की सुन्दरता, हर्षातिरेकवश किये गये दिव्य आलिंगनों का, बिब्बों को—काम चेष्टाओं को, विलासों को, विहसित-मुस्कराहट को, कटाक्षों को, कामक्रीड़ा जनित निःस्वासों को, मर्दन को, उपललित को, स्थित को, गति को, प्रणयकोप को और प्रसादित-मानिनी को रिझाने को स्मरण करते हुए जिनरक्षित की मति राग से मोहित हो गई, वह विवश हो गया, कर्म के अधीन हो गया और लज्जा के साथ पीछे की ओर मैं मुड़कर उसकी ओर देखने लगा ।

तत्पश्चात् जिनरक्षित को देवी पर अनुराग भाव उत्पन्न हुआ कि मृत्यु रूपी राक्षस ने उसके गले में हाथ डालकर उसकी मति पलट दी, उसने देवी की ओर देखा कि वैसे ही इस बात को जानकर शैलक यक्ष ने उसको शनैः शनैः अपनी पीठ से उठा कर फैंक दिया ।

दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

पालित से आज्ञा ली और आज्ञा लेकर जिस दिशा से आया था उधर ही लौट गया।

तए णं से जिणपालिए चंपं नयरिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे तिप्पमाणे विलवमाणे जिणरक्खिय-वावत्तिं निवेदेइ।

उसके बाद जिनपालित ने चंपानगरी में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहां अपना घर था, जहां माता-पिता थे, आकर रोते हुए, आक्रन्दन करते हुए, शोक करते हुए, परिताप करते हुए, विलाप करते हुए माता-पिता से जिनरक्षित के विनाश के बारे में निवेदन किया।

तए णं जिणपालिए अम्मापियरो मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेण सद्धिं रोयमाणा कंदमाणा सोयमाणा तिप्पमाणा विलवमाणा बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया।

तत्पश्चात् जिनपालित ने और उसके माता-पिता ने मित्र, ज्ञाति, अपने निजी स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों के साथ रोते हुए, क्रन्दन करते हुए, शोक करते हुए, परिताप करते हुए और विलाप करते हुए बहुत सी लौकिक मरणोत्तर क्रियाएँ कीं और क्रियायें करके कुछ समय के बाद शोकरहित हुए।

तए णं जिणपालियं अण्णया कयाइ सुहासणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी—कहण्णं पुत्ता ! जिणरक्खिए कालगए ?

तत्पश्चात् किसी एक समय सुखासन पर बैठे हुए जिनपालित से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! जिनरक्षित किस प्रकार कालगत हुआ ?

तए णं से जिणपालिए अम्मापिऊणं लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवाय-संमुच्छणं च पोयवहण-विवत्तिं च फलहखंड-आसायणं रयणदीवुत्तारं च रयणदीवदेवयागिहं च भोगविभूइं च रयणदीवदेवया-आघयणं च सूलाइपुरिसदरिसणं च सेलगजक्ख-आरुहणं च रयणदीवदेवया-उवसग्गं च जिणरक्खियवावत्तिं च लवणसमुद्दउत्तरणं च चंपागमणं च सेलगजक्खआपुच्छणं च जहाभूयमवितहमसंदिद्धं परिकहेइ।

तब जिनपालित ने माता-पिता से लवणसमुद्र में प्रवेश करने, तूफानी हवा के उठने, पोतवहन के नष्ट होने, काष्ठ खंड के मिलने, रत्नद्वीप में उतरने, रत्नद्वीप की देवी द्वारा ग्रहण करने, भोगोपभोग भोगने, रत्नद्वीप की देवी के वध स्थान और शूली पर चढ़े पुरुष को देखने, शैलक यक्ष की पीठ पर बैठने, रत्नद्वीप की देवी द्वारा उपसर्ग किये जाने, जिनरक्षित के विनाश—मरण होने, लवण समुद्र को पार करने, चंपा में आने, शैलक यक्ष के द्वारा आज्ञा लेने आदि जो कुछ भी वृत्तान्त था उसे ज्यों का त्यों यथाक्रम सत्य और असंदिग्ध कह सुनाया।

तए णं से जिणपालिए अप्पसोगे-जाए-जाव-विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह जिनपालित शोकरहित होकर -यावत्-विपुल भोगों को भोगता हुआ विहार करता है।

जिणपालियस्स पव्वज्जा—

जिनपालित की प्रव्रज्या—

५६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। जिणपालिए धम्मं सोच्चा पव्वइए। एगारसंगवी। मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे। दो सागरोवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ—जाव—सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

५६७. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर पधारे। जिनपालित ने धर्मोपदेश श्रवण कर दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह अंगों का ज्ञाता हुआ। मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करके, साठ भक्तों का अनशन करके काल के समय काल करके सौधर्मकल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहां दो सागरोपम की स्थिति प्राप्त की। महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे माणुस्सए कामभोगे नो पुणरवि आसायइ

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारे निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथी अथवा आचार्य, उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या धारण कर मनुष्य सम्बन्धी

जाणामो णं अज्जो ! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठं; जाव-जाणामो णं अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं ।

"हे आर्य ! हम सामायिक को जानते हैं, सामायिक के अर्थ को भी जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और व्युत्सर्ग के अर्थ को भी जानते हैं।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी—

उसके पश्चात् कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

जति णं अज्जो ! तुब्भे जाणह सामाइयं, जाणह सामाइयस्स अट्ठं; जाव-जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं; किं भे अज्जो ! सामाइए ? किं भे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ?—जाव-किं भे विउस्सग्गस्स अट्ठे ?

हे आर्यो ! यदि आप सामायिक को (जानते हैं) और सामायिक के अर्थ को जानते हैं, यावत् - व्युत्सर्ग को एवं व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं, तो बतलाइये कि (आपके मतानुसार) सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है ? यावत्........व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ?

तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

तब उन स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार कहा कि—

आया णे अज्जो ! सामाइए, आया णे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे—जाव-आया णे अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठे ।

हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी आत्मा सामायिक का अर्थ है; यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है, हमारी आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी—

इस पर कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—

जति भे अज्जो ! आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे; एवं—जाव-आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्टु कोह-माण-माया-लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?

'हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही सामायिक का अर्थ है, और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग है तथा आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध मान-माया और लोभ का परित्याग करके क्रोधादि की गर्हा— निन्दा क्यों करते हैं ?'

कालासवेसियपुत्ता ! संजमट्ठयाए ।

हे कालास्यवेपिपुत्र ! हम संयम के लिये क्रोध आदि की गर्हा करते हैं।

से भंते ! किं गरहा संजमे, अगरहा संजमे ?

तो 'हे भगवन् ! क्या गर्हा (करना) संयम है या अगर्हा (करना) संयम है ?'

कालासवेसियपुत्ता ! गरहा संजमे, नो अगरहा संजमे, गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं बालियं परिण्णाए एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवचिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते भवति ।

हे कालास्यवेषिपुत्र ! गर्हा (पापों की निन्दा) संयम है, अगर्हा संयम नहीं है। गर्हा सब दोषों को दूर करती है—आत्मा समस्त मिथ्यात्व को जान कर गर्हा द्वारा दोषनिवारण करता है। इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है, और इसी प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है।

एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

(स्थविर भगवन्तों का उत्तर सुनकर) वह कालास्यवेपिपुत्र अनगार बोध को प्राप्त हुए और उन्होंने स्थविर भगवन्तों को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

एतेसि णं भंते ! पदाणं पुव्विं अण्णाणयाए असवणयाए अबोहीए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं अस्सुताणं अमुताणं अविण्णायाणं अव्वोगडाणं अवोच्छिन्नाणं अणिज्जूढाणं अणुवधारिताणं एतमट्ठं

'हे भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) पदों को न जानने से, पहले सुने हुए न होने से, बोध न होने से अभिगम (ज्ञान) न होने से, दृष्ट न होने से, विचारित (सोचे हुए) न होने से, सुने हुए न

जाणामो णं अज्जो ! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठं ; जाव-जाणामो णं अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं ।

"हे आर्य ! हम सामायिक को जानते हैं, सामायिक के अर्थ को भी जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और व्युत्सर्ग के अर्थ को भी जानते हैं।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी—

उसके पश्चात् कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

जति णं अज्जो ! तुब्भे जाणह सामाइयं, जाणह सामाइयस्स अट्ठं; जाव-जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं; किं भे अज्जो ! सामाइए ? किं भे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ?— जाव-किं भे विउस्सग्गस्स अट्ठे ?

हे आर्यो ! यदि आप सामायिक को (जानते हैं) और सामायिक के अर्थ को जानते हैं, यावत् - व्युत्सर्ग को एवं व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं, तो बतलाइये कि (आपके मतानुसार) सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है ? यावत्........व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ?

तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

तब उन स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार कहा कि—

आया णे अज्जो ! सामाइए, आया णे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे—जाव-आया णे अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठे ।

हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी आत्मा सामायिक का अर्थ है; यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है, हमारी आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी—

इस पर कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—

जति भे अज्जो ! आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे; एवं—जाव-आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्टु कोह-माण-माया-लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?

'हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही सामायिक का अर्थ है, और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग है तथा आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध मान-माया और लोभ का परित्याग करके क्रोधादि की गर्हा— निन्दा क्यों करते हैं ?'

कालासवेसियपुत्ता ! संजमट्ठयाए ।

हे कालास्यवेषिपुत्र ! हम संयम के लिये क्रोध आदि की गर्हा करते हैं।

से भंते ! किं गरहा संजमे, अगरहा संजमे ?

तो 'हे भगवन् ! क्या गर्हा (करना) संयम है या अगर्हा (करना) संयम है ?'

कालासवेसियपुत्ता ! गरहा संजमे, नो अगरहा संजमे, गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं बालियं परिण्णाए एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवचिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते भवति ।

हे कालास्यवेषिपुत्र ! गर्हा (पापों की निन्दा) संयम है, अगर्हा संयम नहीं है। गर्हा सब दोषों को दूर करती है— आत्मा समस्त मिथ्यात्व को जान कर गर्हा द्वारा दोषनिवारण करता है। इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है, और इसी प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है।

एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

(स्थविर भगवन्तों का उत्तर सुनकर) वह कालास्यवेषिपुत्र अनगार बोध को प्राप्त हुए और उन्होंने स्थविर भगवन्तों को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

एतेसि णं भंते ! पदाणं पुव्विं अण्णाणयाए असवणयाए अबोहीए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं अस्सुताणं अमुताणं अविण्णायाणं अव्वोगडाणं अवोच्छिन्नाणं अणिज्जूढाणं अणुवधारिताणं एतमट्ठं

'हे भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) पदों को न जानने से, पहले सुने हुए न होने से, बोध न होने से अभिगम (ज्ञान) न होने से, दृष्ट न होने से, विचारित (सोचे हुए) न होने से, सुने हुए न

णो सद्दहिते, णो पत्तिए, णो रोइए; इदाणिं भंते ! एतेसिं पदाणं जाणताए सवणताए वोहीए अभिगमेणं दिट्ठाणं सुताणं मुताणं विण्णाताणं वोगडाणं वोच्छिन्नाणं णिज्जूढाणं उवधारिताणं एतमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि; एवमेतं से जहेयं तुब्भे वयह।

होने से, विशेषरूप से न जानने से, कहे हुए न होने से, अनिर्णीत होने से, उद्धृत न होने से, और ये पद अवधारण किये हुए न होने से इस अर्थ में श्रद्धा नहीं की थी, प्रतीति नहीं की थी, रुचि नहीं की थी; किन्तु भगवन् ! अब इन (पदों) को ज़ान लेने से, सुन लेने से, वोध होने से, अभिगम होने से, दृष्ट होने से, चिन्तित (चिन्तन किये हुए) होने से, श्रुत (सुने हुए) होने से, विशेष जान लेने से, (आपके द्वारा) कथित होने से, निर्णीत होने से, उद्धृत होने से, और इन पदों का अवधारण करने से इस अर्थ (कथन) पर मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ, हे भगवन् ! आप जो यह कहते हैं, वह यथार्थ है, वह इसी प्रकार है।'

कालासवेसियस्स चाउज्जामधम्माओ पंचमहव्वइयधम्मउवसंपज्जणा—

५६९. तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—सद्दहाहि अज्जो ! पत्तियाहि अज्जो ! रोएहि अज्जो ! से जहेयं अम्हे वयामो।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंच-महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह।

५७०. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे वहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे अण्हाणयं अदंतवणयं अच्छत्तयं अणोवाहणयं भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोओ वंभचेरवासो परघरप्पवेसो लद्धावलद्धी उच्चावया गामकंटगा वावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहेइ, आरोहेत्ता चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—भग० स० १, उ० ९।

कालास्यवेषि का चातुर्याम धर्म से पंचमहाव्रत धर्म स्वीकरण—

५६९ तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार को इस प्रकार कहा—हे आर्य ! जैसा हम कहते हैं, उसी प्रकार तुम श्रद्धा रखो, प्रीति करो और रुचि रखो।

तव वह कालास्यवेपिपुत्र अनगार स्थविर भगवन्तों को वंदना नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार वोला—हे भदन्त ! तुम्हारे पास चातुर्याम धर्म—चार महाव्रत वाला धर्म छोड़कर प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत वाला धर्म प्राप्त कर विचरण करना चाहता हूँ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, विलंव मत करो—स्थविरों ने कहा।

५७० तत्पश्चात वह कालास्यवेपिपुत्र अनगार स्थविर भगवन्तों को वदंन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार करके चातुर्याम धर्म को छोड़ प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत वाला धर्म प्राप्त करके विचरण करता है।

तदनन्तर उस कालास्यवेपि अनगार ने वहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, पालन करके जिस प्रयोजन के लिये नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दंत-धावन न करना, छत्र न रखना, जूता न पहनना, पृथ्वी पर वैठना, फलकशैया, काष्ठ पर सोना, केश लोच करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, भिक्षार्थ पर-गृह प्रवेश, कहीं मिले कहीं न मिले अथवा कम मिले और अनुकूल तथा प्रतिकूल, इन्द्रियों को कांटों जैसे वाईस परिषह उपसर्गों को सहन किया जाता है उस अर्थ की आराधना की, आराधना करके चरम-उच्छ्वास-निःश्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त और सर्व दुःखों से हीन हुआ।

卐 卐

४५. महावीरतित्थे उदएपेढाल पुत्ते

नालंदाए लेवे समणोवासए—

५७१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे, वण्णओ-जाव-पडिरूवे ।

तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं णालंदा णामं बाहिरिया होत्था—अणेगभवणसयसण्णिविट्ठा पासादीया-जाव-पडिरूवा ।

तत्थ णं णालंदाए बाहिरिया लेवे णामं गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था ।

से णं लेवे णामं गहावई समणोवासए यावि होत्था—अभिगयजीवा-जीवे-जाव-णिग्गंथिए पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए णिव्वितिगिच्छे लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ते "अयमाउसो ! णिग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" ऊसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियत्तंतेउर - परघरदारप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे णिग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेण वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पीढ-फलग - सेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणे बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

लेवस्स उदगसालाए समीवे गोयमविहारो—

५७२. तस्स णं लेवस्स गाहावइस्स णालंदाए बाहिरियाए उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं सेसदविया णाम उदगसाला होत्था—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा पासादीया-जाव-पडिरूवा ।

तीसे णं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं हत्थिजामे णामं वणसंडे होत्था—किण्हे०, वण्णओ वणसंडस्स । तस्सिं च णं गिहपदेसंसि भगवं गोयमे विहरइ, भगवं च णं अहे आरामंसि ।

४५. महावीरतीर्थ में उदकपेढाल-पुत्र

नालन्दा में लेप श्रमणोपासक—

५७१. उस काल और समय में राजगृह नाम का नगर था—ऋद्धि-समृद्धि से परिपूर्ण, वर्णन-यावत्-परिपूर्ण था ।

उसी राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में नालंदा नामक एक उपनगर था जो अनेक सैकड़ों, भवनों से सुशोभित, दर्शनीय-यावत्-प्रतिरूप था ।

उस नालंदा नामक उपनगर में लेप नाम का गाथापति-गृहस्थ था-जो धनाढ्य-यावत्-पराभव पाने के भी योग्य न था ।

वह लेप नामक गाथापति श्रमणोपासक भी था जो जीवाजीव तत्वों को जानने वाला-यावत्-निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंक एवं अन्य दर्शनों की इच्छा से रहित गुणीजनों की निन्दा नहीं करनेवाला, वस्तु स्वरूप का ज्ञाता, मोक्षमार्ग को स्वीकार किया हुआ, पूछ-कर विशेष रूप से पदार्थों का निश्चय किया, प्रश्नोत्तर के द्वारा पदार्थों को अच्छी तरह समझा हुआ, पदार्थों का विशेष रूप से जानकार, अस्थि और मज्जा में भी धर्मानुराग था अर्थात् जिसके रोम रोम में धर्म के प्रति अनुराग व्याप्त था कि—'आयुष्मन् ! यह निर्ग्रंथ प्रवचन ही सत्य है और यही परमार्थ है, शेष सब दर्शन अनर्थ हैं; उसका निर्मल यश जगत में फैला हुआ था, उसके घर का द्वार खुला रहता था, अन्तःपुर में या अन्य किसी घर में भी उसका प्रवेश बन्द नहीं था, वह चतुर्दशी, अष्टमी तथा पूर्णमासी आदि तिथियों में परिपूर्ण पौषधव्रत का पालन करता था, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन, औषधि, भैषज, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक का दान करता हुआ तथा बहुत से शील-व्रत, गुण व्रत, विरमण प्रत्याख्यान, पौषध और उपवास आदि यथा-योग्य तपोकर्म के द्वारा अपने को निर्मल बनाते हुए—आत्मा का चिन्तन करते हुए विचरता था ।

लेप की उदकशाला के समीप गौतम का विहार—

५७२ उस लेप नामक गाथापति की नालंदा से बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में शेषद्रव्या नामक जलशाला थी-जो अनेक प्रकार के सैकड़ों स्तम्भों से युक्त मन को प्रसन्न करने वाली-यावत् प्रतिरूप थी ।

उस शेष द्रव्या उदकशाला के उत्तर पूर्व दिशा में हस्ति याम नामक एक वनखण्ड था जो कृष्ण वर्ण वाला था, वनखण्ड का वर्णन करना । उसके गृह प्रदेश में भगवान गौतम स्वामी विचरते थे, भगवान [गौतम स्वामी] नीचे बगीचे में विराजते थे ।

उदगपेढालपुत्तस्स पण्हत्थं गोयमसमीवे आगमणं—

५७३. अहे णं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे णियंठे मेदज्जे गोत्तेणं जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—"आउसंतो! गोयमा! अत्थि खलु मे केइ पदेसे पुच्छियव्वे, तं च मे आउसो! अहासुयं अहादरिसियमेव वियागरेहि।"

सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—"अवियाइ आउसो! सोच्चा णिसम्म जाणिस्सामो।"

उदकपेढालपुत्र का प्रश्नार्थ गौतम के समीप आगमन—

५७३ इस अवसर पर भगवान पार्श्व की शिष्य परम्परा का मेदार्य्य गोत्रीय उदकपेढालपुत्र निर्ग्रन्थ जहाँ भगवान गौतम विराजते थे, वहाँ आया, आकर भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—'हे आयुष्मन् गौतम! हमें आपसे कोई प्रश्न पूछना है, हे आयुष्मन्! उसे आपने जैसा सुना है और जैसा निश्चय किया है, वैसा वाद सहित मुझसे कहें।'

भगवान् गौतम स्वामी ने उदकपेढालपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे आयुष्मन्! आपके प्रश्न को सुनकर और समझकर यदि मैं जान सकूँगा तो उत्तर दूँगा।'

उदगपेढालपुत्तस्स समणोवासगपच्चक्खाणविसए पण्हो—

५७४. सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

"आउसंतो! गोयमा! अत्थि खलु कुम्मारपुत्तिया णाम समणा णिग्गंथा तुम्हाग पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपण्णं एवं पच्चक्खावेंति—'णण्णत्थ अभिजोगेणं, गाहावइ-चोरग्गहण-विमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं।'

एवं ण्हं पच्चक्खंताणं दुप्पच्चक्खायं भवइ। एवं ण्हं पच्चक्खावेमाणाणं दुपच्चक्खावियं भवइ। एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अइयरंति सयं पइण्णं।

कस्स णं तं हेउं?

संसारिया खलु पाणा—थावरा वि पाणा तसत्ताए पच्चायंति। तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति। थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति। तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति। तेसिं च णं थावरकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं घत्तं।

एवं ण्हं पच्चक्खंताणं सुपच्चखायं भवइ।

एवं ण्हं पच्चक्खावेमाणाणं सुपच्चक्खावियं भवइ।

एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा णाइयरंति सयं पइण्णं—'णण्णत्थ अभिजोगेणं, गाहावइ-चोरग्गहण-विमोक्खणयाए तस-

उदकपेढालपुत्र का श्रमणोपासक प्रत्याख्यान विषयक प्रश्न—

५७४. वाद सहित उदकपेढालपुत्र ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

"हे आयुष्मन्! गौतम! कुमारपुत्र नामक एक श्रमण निर्ग्रन्थ है जो तुम्हारे प्रवचन की प्ररूपणा करते हुए उनके निकट आये हुए गाथापति, श्रमणोपासक को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं—राजा आदि के अभियोग को छोड़कर गाथापति चोर ग्रहण विमोक्षण न्याय से त्रस प्राणियों को दण्ड देने का प्रत्याख्यान है।'

परन्तु उनका इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना दुष्प्रत्याख्यान है। इस रीति से जो प्रत्याख्यान करते हैं वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हैं। इसप्रकार से दूसरे को प्रत्याख्यान कराने वाले पुरुष स्वयं अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करते हैं।

उसका क्या कारण है?

क्योंकि संसारी प्राणी परिवर्तनशील हैं, अतएव स्थावर प्राणी भी त्रसरूपता को प्राप्त होते हैं और त्रस प्राणी भी स्थावर रूप में उत्पन्न होते हैं। वे स्थावर काय को छोड़कर त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं। त्रसकाय को छोड़कर स्थावर काय में उत्पन्न होते हैं। वे त्रस प्राणी जब स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं तब वे उन त्रस काय को दंड न देने वालों के द्वारा घात करने के योग्य होते हैं।

परन्तु जो लोग इसप्रकार प्रत्याख्यान करते हैं उनका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

इस प्रकार जो प्रत्याख्यान कराते हैं, उनका कराना सुप्रत्याख्यान कराना होता है।

इस प्रकार जो दूसरे को प्रत्याख्यान कराते हैं क्या वे अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं—'राजा के अभियोग को

भूएहिं पाणेहिं णिहाय दंडं ।' एवं सइ भासाए परिकम्मे विज्जमाणे जे ते कोहा वा लोहा वा परं पच्चक्खावेंति । अयं पि णो उवएसे किं णो णेयाउए भवइ ? अवि याइं आउसो ! गोयमा ! तुब्भं पि एयं एवं रोयइ ?"

छोड़कर तथा गाथापति चोर ग्रहण विमोक्षण न्याय से वर्तमान में त्रस रूप से परिणत प्राणी को दण्ड देने का त्याग है ।' इस प्रकार होने से भाषा में शक्ति विशेष का विद्यमान न होने से वे क्रोध या लोभ के वश दूसरे को प्रत्याख्यान कराते हैं । क्या हमारा यह उपदेश न्याय-संगत नहीं है ? हे आयुष्मन् गौतम ! हमारा यह कथन क्या आपको भी अच्छा लगता है ?"

भगवओ गोयमस्स उत्तरं—

५७५. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—"आउसंतो ! उदगा ! णो खलु अम्हं एयं एवं रोयइ—जे ते समणा वा माहणा वा एवमाइक्खंति, एवं भासेंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति णो खलु ते समणा वा णिग्गंथा वा भासं भासंति, अणुतावियं खलु ते भासं भासंति, अब्भाइक्खंति खलु ते समणे समणोवासए वा । जेहिं वि अण्णेहिं पाणेहिं-जाव-सत्तेहिं संजमयंति ताणि वि ते अब्भाइक्खंति ।

कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति । थावरा वि पाणा तसत्ताए पच्चायंति ।

तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति । थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति । तेसिं च णं तसकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं अघत्तं ।"

भगवान गौतम का उत्तर—

५७५. भगवान गौतम ने उदक पेढालपुत्र से वाद सहित इस प्रकार कहा—"हे आयुष्मन् उदक ! इस प्रकार प्रत्याख्यान कराना हमें अच्छा नहीं लगता है—जो श्रमण या माहण तुम्हारे कहे अनुसार प्ररूपणा करते हैं वे श्रमण और निर्ग्रन्थ यथार्थ भाषा का भाषण करने वाले नहीं हैं, वे अनुताप को उत्पन्न करने वाली भाषा का भाषण करते हैं, वे श्रमण और श्रमणोपासकों का अभ्याख्यान करते हैं—उनको व्यर्थ कलंक देते हैं । जो अन्य प्राणियों-यावत्-सत्वों के विषय में संयम ग्रहण करते हैं, उन पर भी वे कलंक लगाते हैं ।

इसका कारण क्या है ?

सभी प्राणी संसारी है—परिवर्तनशील है—

त्रस प्राणी भी स्थावर रूपता को प्राप्त होते हैं और स्थावर प्राणी भी त्रसभाव को प्राप्त करते हैं ।

वे त्रसकाय को त्यागकर स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं और स्थावरकाय को त्यागकर त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं । जब वे त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तब वे हनन करने योग्य नहीं होते हैं ।"

उदगपेढालपुत्तस्स पडिपण्हो—

५७६. सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

"कयरे खलु आउसंतो ! गोयमा ! तुब्भे वयह तसपाणा तसा आउ अण्णहा ?"

उदक पेढालपुत्र का प्रतिप्रश्न—

५७६. उदक पेढालपुत्र ने वाद सहित भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

'हे आयुष्मन् गौतम ! वे प्राणी कौन हैं, जिन्हें तुम त्रस कहते हो ? तुम त्रस प्राणी को त्रस कहते हो या किसी दूसरे को ?

'तसभूया पाणा तसा तसा पाणा तसे' त्ति एकट्ठं इति गोयमवयणं—

५७७. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—

"आउसंतो ! उदगा ! जे तुब्भे वयह तसभूया पाणा तसभूता पाणा, ते वयं वदामो तसा पाणा, तसा पाणा । ज वयं वयामो तसा पाणा तसा पाणा, ते तुब्भे वदह तसभूया पाणा तसभूता पाणा । एए संति दुवे ठाणा तुल्ला एगट्ठा । किमाउसो !

'त्रसभूत प्राणी त्रस, त्रस प्राणी त्रस' एकार्थक हैं यह गौतम वचन—

५७७. भगवान गौतम ने उदक पेढालपुत्र से वादसहित इस प्रकार कहा—

'हे आयुष्मन् उदक ! जिन प्राणियों को तुम त्रसभूत प्राणी—त्रस भूतप्राणी कहते हो, उन्हीं को हम त्रसप्राणी त्रसप्राणी कहते हैं और हम जिन्हें त्रसप्राणी—त्रसप्राणी कहते हैं, उन्हीं को तुम त्रसभूतप्राणी—त्रसभूतप्राणी कहते हो । ये दोनों ही स्थान समान

इमे भे सुप्पणीयतराए भवइ—तसभूया पाणा तसभूता पाणा ? इमे भे दुप्पणीयतराए भवइ—तसा पाणा तसा पाणा ? भो एगमाउसो ! पलिकोसह, एक्कं अभिणंदह । अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

और एकार्थक है । तब हे आयुष्मन् ! त्रसभूत प्राणी त्रसभूत प्राणी कहना आप शुद्ध मानते हैं और त्रस प्राणी त्रस प्राणी कहना दुष्प्रणीत समझते हैं ? जिससे आयुष्मन् ! एक की आप निन्दा और दूसरे की प्रशंसा करते हैं ? अतः आपका यह पूर्वोक्त भेद न्यायसंगत नहीं है ।

भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । वयं णं अणुपुव्वेणं गोत्तस्स लिसिस्सामो । ते एवं संखंसावेंति—ते एवं संखं ठवयंति, ते एवं संखं सोवट्ठावयति, "णण्णत्थ अभिजोगेणं गाहावइ-चोरग्गहण-विमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं ।" तं पि तेसिं कुसलमेव भवइ । तसा वि वुच्चंति तसा तससंभारकडेणं कम्मुणा, णामं च णं अब्भुवगयं भवइ । तसाउयं च णं पलिक्खीणं भवइ, तसकायट्ठिइया ते तओ आउयं विप्पजहंति, ते तओ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति । थावरा वि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा, णामं च णं अब्भुवगयं भवइ । थावराउयं च णं पलिक्खीणं भवइ, थावरकायट्ठिइया ते तओ आउयं विप्पजहंति, ते तओ आउयं विप्पजहित्ता भुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति । ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, चिरट्ठिइया ।

भगवान गौतम ने पुनः कहा—ऐसे भी कई मनुष्य हैं, जिनका यह पूर्व कथन होता है कि हम मुण्डित होकर गृह त्याग करके आनगारिक दीक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं है, किन्तु क्रमशः साधुत्व स्वीकार करेंगे । वे अपने मन में ऐसा ही विचार करते हैं—वे मन में ऐसा विचार स्थिर (पक्का) करते हैं और फिर उस पर उपस्थित—प्रस्तुत हो जाते हैं—'राजा आदि के अभियोग आदि कारणों से गाथापति चोर ग्रहण विमोक्ष न्यास से त्रस प्राणियों का घात न करने की प्रतिज्ञा कराते हैं ।' इतना त्याग भी उनके लिए अच्छा ही होता है । त्रस जीव भी त्रस नाम कर्म के फल का अनुभव करने के कारण त्रस कहलाते हैं और वे उक्त कर्म का फल भोग करने के कारण ही त्रसनाम को धारण करते हैं । जब उनकी त्रस आयु क्षीण हो जाती है और त्रसकाय में उनकी स्थिति का हेतुरूप कर्म भी क्षीण हो जाता है, तब वे उस आयु को छोड़ देते हैं और उसे छोड़कर वे स्थावर भाव को प्राप्त करते हैं । स्थावर प्राणी भी स्थावर नाम कर्म के फल का अनुभव करते हुए स्थावर कहलाते हैं और इसीकारण वे स्थावर नाम को भी धारण करते हैं । जब उनकी स्थावर की आयु क्षीण हो जाती है और स्थावर काय में उनकी स्थिति का काल समाप्त हो जाता है, तब वे उस आयु को छोड़ देते हैं और उस आयु को छोड़कर पुनः परलोकभाव को प्राप्त करते हैं । वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे महाकाय वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले भी होते हैं ।

उदगपेढालपुत्तस्स सपक्ख-ठावणा—

५७८. सवायं उदए पेढालपुत्ते भयवं गोयमं एवं वयासी—"आउसंतो ! गोयमा ! णत्थि णं से केइ परियाए जण्णं समणोवासगस्स 'एगपाणातिवायविरए वि दंडे णिक्खित्ते । कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

थावरा वि पाणा तसत्ताए पच्चायंति । तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति ।

थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति । तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति । तेसिं च णं थावरकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं घत्तं ।'

उदकपेढालपुत्र की स्वपक्ष स्थापना—

५७८. उदक पेढालपुत्र ने वाद सहित भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—'हे आयुष्मन् गौतम ! कोई भी वह पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक एक प्राणी के प्राणातिपातविरति रूप त्याग को भी सफल बना सके । इसका कारण क्या है ?

प्राणी संसरणशील—परिवर्तनशील हैं—

अतः कभी स्थावर प्राणी भी त्रस हो जाते हैं—त्रस प्राणी भी स्थावर रूप से उत्पन्न हो जाते हैं ।

वे सबके सब स्थावर काय को छोड़कर त्रसकाय में उत्पन्न हो जाते हैं । सभी त्रसकाय को छोड़कर स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं । जब वे सभी स्थावरकाय में उत्पन्न हो जाते हैं, तब वे घात के योग्य हो जाते हैं ।

भगवओ गोयमस्स पच्चुत्तरं—

५७९. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—"णो खलु आउसो ! अस्माकं वत्तव्वएणं तुब्भं चेव अणुप्पवाएणं अत्थि णं से परियाए जम्मि समणोवासगस्स सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते भवइ।

कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति। थावरा वि पाणा तसत्ताए पच्चायंति। तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति। थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति। तेसिं च णं तसकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं अघत्तं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। इति से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—'णत्थि णं से केइ परियाए जंसि जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते'। अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

भगवान गौतम का प्रत्युत्तर—

५७९. भगवान गौतम ने वादसहित उदकपेढालपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे आयुष्मन् ! हमारे वक्तव्य के अनुसार ही नहीं, किन्तु तुम्हारे वक्तव्य के अनुसार भी वह पर्याय हैं, जिसमें श्रमणोपासक सब प्राणियों-यावत्-समस्त सत्वों के घात का त्याग कर सकता है।

इसका कारण क्या है ?

प्राणी संसरणशील हैं—

अतः त्रस प्राणी भी स्थावर रूप से (उत्पन्न) होते हैं और स्थावर भी त्रस रूप से होते हैं। वे सब त्रसकाय को छोड़कर स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं और वे सभी स्थावर काय को छोड़कर त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं। इसलिये जब वे सब त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं, तब वह स्थान घात के योग्य नहीं होता है।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहे जाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिर काल तक स्थित रहने वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत हैं, जिससे श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है। वे प्राणी अल्पतर होते हैं, जिनसे श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। इस प्रकार वह महान त्रसकाय के घात से शान्त और विरत होता है, जिससे तुम अथवा अन्य व्यक्ति जो यह कहते हैं—'ऐसी एक भी पर्याय नहीं है, जिसके लिए श्रमणोपासक का एक प्राणी के घात का भी त्याग हो सके।' सो आपका यह कथन न्यायसंगत नहीं है।

समणदिट्ठंतो—

५८०. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो ! णियंठा ! इह खलु संतेगइया मणुस्सा भवंति। तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—जे इमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्ता, एएसिं णं आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते। जे इमे अगारमावसंति, एएसिं णं आमरणंताए दंडे णो णिक्खित्ते।

केई च णं समणे-जाव-वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जित्ता अगारं वएज्जा ?

हंता वएज्जा।

तस्स णं तमगारत्थं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे भग्गे भवइ ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

श्रमण दृष्टान्त—

५८०. भगवान् (गौतम स्वामी) कहते हैं कि निर्ग्रन्थों से यह पूछा जाता है—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में कोई मनुष्य ऐसे होते हैं, जो इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं—ये जो मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार कर चुके हैं, इनको मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग नहीं करता हूँ।

उन श्रमणों में से कोई श्रमण चार, पांच या छह अथवा दस वर्ष तक थोड़े या बहुत देशों में विचरण कर क्या पुनः गृहस्थ बन जाते हैं ?

हां, वे गृहस्थ बन जाते हैं।

उन गृहस्थों को मारने वाले उस प्रत्याख्यानधारी पुरुष का क्या वह प्रत्याख्यान भंग हो जाता है ?

यह कथन युक्ति संगत नहीं है।

एवामेव समणोवासगस्स वि तसेहिं पाणेहिं दंडे णिक्खित्ते, थावरेहिं पाणेहिं दंडे णो णिक्खित्ते । तस्स णं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भग्गे भवइ । सेवमायाणह णियंठा ! सेवमायाणियव्वं ।

इसी तरह श्रमणोपासक ने भी त्रस प्राणी को दण्ड देने का त्याग किया है, स्थावर प्राणी को दण्ड देने का त्याग नहीं किया है । इसलिए स्थावरकाय के प्राणियों का हनन करने पर भी उसका प्रत्याख्यान भंग नहीं होता है । हे निर्ग्रन्थो ! इसी तरह समझो और इसी तरह ही समझना चाहिये ।

५८१. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो णियंठा ! इह खलु गाहावइणो वा गाहावइपुत्ता वा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म धम्मस्सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा ?

५८१. भगवान् गौतम स्वामी ने कहा—मैं निर्ग्रन्थों से पूछता हूँ—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में गाथापति या गाथापति के पुत्र उस प्रकार के कुल में जन्म लेकर धर्म श्रवण के लिये क्या आ सकते हैं ?

हंता उवसंकमेज्जा ।

हां, आ सकते हैं ?

तेसिं च णं तहप्पगाराणं धम्मे आइक्खियव्वे ?

उस प्रकार के उस उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों को क्या धर्म का उपदेश करना चाहिए ?

हंता आइक्खियव्वे ।

हां, उन्हें धर्म का उपदेश करना चाहिए ।

किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा—इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेयाउयं संसुद्धं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं अवितहं असंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं । एत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

क्या वे इस प्रकार का धर्म श्रवण कर और समझकर इस प्रकार कह सकते हैं कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, सर्वोत्तम है, केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, परिपूर्ण है, न्याय युक्त है, भली प्रकार से शुद्ध है, शल्य को नष्ट करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति मार्ग है, निर्याण मार्ग है, निर्वाण मार्ग है, अवितथ, असंदिग्ध और समस्त दुःखों के नाश का मार्ग है । इस धर्म में स्थित जीव सिद्ध होता है, बोध को प्राप्त करता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त करता है और सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करता है ।

तमाणाए तहा गच्छामो तहा चिट्ठामो तहा णिसीयामो तहा तुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अब्भुट्ठेमो तहा उट्ठाए उट्ठेत्ता पाणाणं-जाव-सत्ताणं संजमेणं संजमामो त्ति वएज्जा ?

अतः हम इस मार्ग की आज्ञा के अनुसार चलेंगे, स्थित होंगे, बैठेंगे, शयन करेंगे, भोजन करेंगे, बोलेंगे, उठेंगे और उठ कर प्राणियों-यावत्-सत्वों का संयम करने—रक्षा करने के लिए संयम धारण करेंगे, इस प्रकार क्या वे कह सकते हैं ?

हंता वएज्जा ।

हां वे ऐसा कह सकते हैं ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावेत्तए ?

क्या वे इस प्रकार के विचार वाले दीक्षा देने के योग्य हैं ?

हंता कप्पंति ।

हां, वे योग्य हैं ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावेत्तए ?

क्या वे ऐसे विचार वाले पुरुष मुण्डित करने योग्य हैं ?

हंता कप्पंति ।

हाँ योग्य हैं ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावेत्तए ?

क्या इस तरह के विचार वाले वे शिक्षा देने योग्य हैं ?

हंता कप्पंति ।

हां, अवश्य हैं ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्ठावेत्तए ?

क्या वे ऐसे विचार वाले व्यक्ति प्रव्रज्या में उपस्थित करने योग्य हैं ?

हंता कप्पंति ।

हां, योग्य हैं ।

तेसिं च णं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते ?

तो क्या ऐसे विचार वाले पुरुषों ने समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त सत्वों को दण्ड देना छोड़ दिया है ?

हंता णिक्खित्ते ।

हाँ, छोड़ दिया है ।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा-जाव-वासाइं चउपंच-माइं छद्दसमाइं वा अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जित्ता अगारं वएज्जा ?

हंता वएज्जा।

तस्स णं सव्वपाणेहिं सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते ? णो इणट्ठे समट्ठे। से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते। से जे से जीवे जस्स आरेणं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते। से जे से जीवे जस्स इयाणिं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ। परेणं अस्संजए, आरेणं संजए, इयाणिं अस्संजए। अस्संजयस्स णं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ। सेवमायाणह णियंठा। सेवमायाणियव्वं।

तो क्या इस प्रकार के विहार द्वारा विचरण करने वाले यावत्-चार, पाँच, छह अथवा दस वर्ष तक थोड़े या बहुत से देशों में परिभ्रमण कर पुनः गृहस्थावास में जा सकते हैं ?

हाँ, जा सकते हैं।

तब वे क्या सम्पूर्ण प्राणियों, सम्पूर्ण सत्वों को दण्ड देना छोड़ देते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् युक्तिसंगत नहीं है। वह जीव वही है, जिसने पूर्व में समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त सत्वों को दण्ड देना त्याग नहीं किया था। वह जीव वही है, जिसने पहले समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त सत्वों को दण्ड देना त्याग नहीं किया है। वह जीव वही है, जिसके अभी समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त सत्वों को दंड देना का त्याग नहीं होता है। वह पहले तो असंयमी था, अभी संयमी है और फिर इस समय असंयमी हुआ। असंयमी जीव को सम्पूर्ण प्राणियों-यावत्-सम्पूर्ण सत्वों को दण्ड देने का त्याग नहीं होता है। हे निर्ग्रन्थो ! इसी तरह जानो और इसी तरह जानना चाहिए।

५८२. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो ! णियंठा ! इह खलु परिव्वायया वा परिव्वाइयाओ वा अण्णयरेहिंतो तित्थायतणेहिंतो आगम्म धम्मस्सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा ? हंता उवसंकमेज्जा।

किं तेसिं तहप्पगाराणं धम्मे आइक्खियव्वे ?

हंता आइक्खियव्वे।

किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा—इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेयाउयं संसुद्धं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं अवितहं असंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं। एत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। तमाणाए तहा गच्छामो तहा चिट्ठामो तहा णिसीयामो तहा तुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अब्भुट्ठेमो तहा उट्ठाए उट्ठेत्ता पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामो त्ति वएज्जा ?

५८२. भगवान ने कहा कि मैं निर्ग्रन्थों से पूछता हूँ—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में परिव्राजक अथवा परिव्राजिकायें किसी दूसरे तीर्थ के स्थान में रहकर धर्म सुनने लिये क्या साधु के निकट आ सकती हैं ? हाँ, आ सकती है।

क्या उन वैसे व्यक्तियों को धर्म सुनाना चाहिए ?

हाँ, सुनाना चाहिए।

क्या वे इस प्रकार के धर्म को सुनकर और समझकर इस प्रकार कह सकते हैं—यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, अनुत्तर है, केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, परिपूर्ण है, न्याययुक्त है, संशुद्ध है, शल्यनाशक है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, निर्याण पथ है, निर्वाण मार्ग है, अवितथ मिथ्यात्व रहित, संदेह रहित और समस्त दुःखों के नाश का मार्ग है। इस धर्म में स्थित जीव सिद्ध होता है, बोध को प्राप्त होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और समस्त दुःखों का नाश करता है। अतः हम इसकी आज्ञानुसार इसके द्वारा विधान की गई रीति से चलेंगे, स्थित होंगे, बैठेंगे, करवट बदलेंगे, भोजन करेंगे, बोलेंगे, उठेंगे और उठकर सम्पूर्ण प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों की रक्षा के लिए संयम धारण करेंगे—इस प्रकार वे कह सकते हैं क्यों ?

हंता वएज्जा।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावेत्तए ?

हंता कप्पंति।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुण्डावेत्तए ?

हंता कप्पंति।

हाँ वे ऐसा कह सकते हैं।

क्या इस प्रकार के विचार वाले वे जीव दीक्षा देने के योग्य हैं ?

हाँ वे योग्य हैं।

क्या वे ऐसे विचार वाले पुरुष मुण्डित करने योग्य हैं ?

हां, वे योग्य हैं।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्ठावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए ?

हंता कप्पंति ।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा-जाव-वासाइं चउ-पंच-माइं छद्दसमाइं वा अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जित्ता अगारं वएज्जा ? हंता वएज्जा ।

ते णं तहप्पगारा कप्पंति संभुंजित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे ।

से जे से जीवे जे परेणं णो कप्पंति संभुंजित्तए । से जे से जीवे जे आरेणं कप्पंति संभुंजित्तए । से जे से जीवे जे इयाणिं णो कप्पंति संभुंजित्तए ।

परेणं अस्समणे, आरेणं समणे, इयाणिं अस्समणे । अस्समणेणं सद्धिं णो कप्पति समणाणं णिग्गंथाणं संभुंजित्तए । सेवमायाणह णियंठा ! सेवमायाणियव्वं ।

ऐसे विचार वाले वे पुरुष क्या शिक्षा देने के योग्य हैं ?

हाँ, अवश्य योग्य हैं ।

क्या ऐसे विचार वाले वे पुरुष प्रव्रज्या में उपस्थित करने योग्य हैं ?

हाँ, योग्य हैं ।

क्या वैसे विचार वाले वे पुरुष साथ बैठकर भोजन करने के योग्य हैं ?

हाँ, योग्य हैं ।

क्या अब वे इस प्रकार की चर्या में स्थित होकर—यावत्—चार, पाँच या छह तथा दस वर्ष तक थोड़े या बहुत देशों में घूमकर पुनः गृहस्थावास में जा सकते हैं ? हाँ, जा सकते हैं ।

अब वे गृहवास को प्राप्त कर क्या साधु के संभोग के योग्य होते हैं ? नहीं, यह बात उचित नहीं है ।

वह जीव तो वही है जिसके साथ पहले संभोग रखना नहीं कल्पता है । वह जीव तो वही है, जिसके साथ अभी संभोग रखना कल्पता है । वह जीव तो वही है जिसके साथ इस समय साधु का संभोग नहीं कल्पता है ।

पहले वह जीव अश्रमण था, अभी श्रमण है और इस समय अश्रमण है । अश्रमण के साथ श्रमण निर्ग्रन्थों का संभोग नहीं कल्पता है । हे निर्ग्रन्थो ! इसी तरह जानो और ऐसा ही जानना चाहिये ।

पच्चक्खाणस्स विसय-उवदंसणं—

५८३. भगवं च णं उदाहु—णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो ! णियंठा ! इह खलु संतेगइया समणोवासगा भवंति । तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, वयं णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्ण-मासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो । थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो-जाव-थूलगं परिग्गहं पच्च-क्खाइस्सामो, इच्छापरिमाणं करिस्सामो दुविहं तिविहेणं । मा खलु ममट्ठाए किंचि वि करेह वा कारवेह वा तत्थ वि पच्चक्खा-इस्सामो । ते णं अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाओ पच्चोरुहित्ता ते तह कालगया किं वत्तव्वं सिया ?

सम्मं कालगय त्ति वत्तव्वं सिया ।

प्रत्याख्यान का विषय—उपदर्शन—

५८३. भगवान् ने पुनः कहा—निर्ग्रन्थों से मैं पूछता हूँ—हे आयुष्मान् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में कोई श्रमणोपासक बड़े शान्त होते हैं । वे इस प्रकार कहते हैं—हम प्रव्रज्या धारण करके गृहवास को त्यागकर अनगार होने के लिए समर्थ नहीं है, अतः हम चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा के दिन, परिपूर्ण पौषधव्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए विचरण करेंगे तथा स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करेंगे—यावत्—स्थूल परिग्रह का त्याग करेंगे, हम दो करण तीन योग से अपनी इच्छा का परिमाण करेंगे । हमारे लिए कुछ मत करो और कुछ मत कराओ, ऐसा भी हम प्रत्याख्यान करेंगे, वे श्रावक बिना खाये पीए और बिना स्नान किये आसन से उतर कर यदि कालगत हो जायें तो उनके काल के विषय में क्या कहना होगा ?

वे अच्छी रीति से काल को प्राप्त हुए हैं, यही कहना पड़ेगा ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया । ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । इति से महयाओ तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक हैं, जिससे श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है । वे प्राणी अल्प हैं, जिनके विषय में श्रमणोपासक का

जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

अप्रत्याख्यान होता है। अतः वह श्रमणोपासक महान त्रसकाय की विराधना से उपशांत, उपरत, मुमुक्षु प्रतिविरत होने पर भी आप लोग एवं अन्य जो यह कहते हैं—'ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान हो सके।' आपका यह कथन न्यायसंगत नहीं है।

५८४. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो! णियंठा! इह खलु संतेगइया समणोवासगा भवंति। तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठ-मुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरित्तए। वयं णं अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाझूसिया भत्तपाणपडियाइक्खिया कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो। सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो, एवं सव्वं मुसावायं सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो। तिविहं तिविहेणं मा खलु ममट्ठाए किंचि वि करेह वा कारवेह वा करंतं समणुजाणेह वा, तत्थ वि पच्चक्खाइस्सामो। ते णं अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाओ पच्चोरुहित्ता ते तह कालगया किं वत्तव्वं सिया?

५८४. भगवान ने कहा कि मैं निर्ग्रन्थों से पूछता हूँ—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! इस लोक में कोई श्रमणोपासक बड़े शांत होते हैं। वे इस प्रकार कहते हैं—हम मुण्डित होकर, गृह त्याग कर अनगार होने के लिए समर्थ नहीं हैं तथा चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा तिथियों में परिपूर्ण पौषधव्रत का पालन करते हुए विचरने में भी समर्थ नहीं हैं। हम तो अन्त समय में मरण काल आने पर संलेखना का सेवन करके भक्तपान का त्यागकर काल की इच्छा न रखते हुए विचरण करेंगे। उस समय हम तीन करण और तीन योग से समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करेंगे, इसी प्रकार समस्त मृषावाद, समस्त अदत्तादान, समस्त मैथुन और समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करेंगे और मेरे लिए कुछ मत करो, कराओ मत, और न करते हुए की अनुमोदना करो, उसका भी प्रत्याख्यान करेंगे। वे श्रमणोपासक विना खाये, पीये और विना स्नान किये आसन से उतर कर यदि काल को प्राप्त हो जायें तो उनके काल के विषय में क्या कहना होगा?

सम्मं कालगय त्ति वत्तव्वं सिया।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे अच्छी तरह से काल को प्राप्त हुए हैं, यही कहना होगा।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है। वे प्राणी अल्पतर हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत श्रावक के लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह भी कथन न्यायसंगत नहीं है।

५८५. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—महिच्छा महारंभा महापरिग्गहा अहम्मिया-जाव-अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, 'हण' 'छिंद' 'भिंद' विगत्तगा लोहियपाणी चंडा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उक्कंचण-वंचण-माया-णियडि-कूड-कवड-साइसंपओगबहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहू। सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए-जाव-सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, जेहिं समणो-

५८५. भगवान् ने कहा—इस संसार में कोई ऐसे मनुष्य होते हैं यथा—महान इच्छा वाले, महान आरम्भ वाले, महापरिग्रह वाले, अधार्मिक यावत्—अधर्म से ही वृत्ति उपार्जन करने वाले तथा हनन, छेदन, भेदन और जीवों को काटने, वध करने से जिनके हाथ खून से सने हुए हैं, चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, साहसिक, चापलूस, वंचक, मायावी, कपटी, कूट-कपट में रत, उत्तम वस्तु के साथ हीन वस्तु मिलाने वाले, दुःशील वाले, व्रतहीन

वासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, ते चइत्ता भुज्जो सगमादाए दोग्गइगामिणो भवंति।

और बड़ी कठिनाई से प्रसन्न होने योग्य और असाधु होते हैं। वे जीवन पर्यन्त के लिए समस्त प्राणातिपात से निवृत्त नहीं होते हैं—यावत—जाव-जीव [जीवन पर्यन्त] के लिए समस्त परिग्रहों से निवृत्त नहीं होते हैं। इन प्राणियों का घात करने का श्रमणोपासक व्रतग्रहण के समय से मरण पर्यन्त त्याग करता है, वे पुरुष काल के समय अपनी आयु को छोड़ देते हैं और छोड़कर अपने पापकर्म को अपने साथ लेकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे बड़े शरीर वाले और चिरकाल की स्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत श्रमणोपासक के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं कि 'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

५८६. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया-जाव-धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहू। सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए-जाव-सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता ते तओ भुज्जो सगमायाए सोग्गइगामिणो भवंति।

५८६. भगवान् ने कहा—संसार में कोई मनुष्य ऐसे होते हैं, जो आरम्भ नहीं करते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं, धार्मिक यावत्—धर्म से ही वृत्ति का अर्जन करते हुए विचरण करते हैं, सुशील, सुव्रतों के धारक, सरलता से प्रसन्न करने योग्य सुसाधु होते हैं। जो जीवन पर्यन्त के लिए सम्पूर्ण प्राणातिपात से विरत होते हैं—यावत्—यावज्जीवन के लिए परिग्रह से प्रतिविरत होते हैं। श्रमणोपासक व्रतग्रहण के समय से मरणपर्यन्त इन प्राणियों का घात करने का त्याग करता है, वे पुरुष काल के समय अपनी आयु को छोड़ देते हैं, आयु छोड़कर अपने शुभ कर्मों को अपने साथ लेकर सुगति को प्राप्त होते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे महानकाय वाले और चिरकाल की स्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। अतः उस महान त्रस काय की हिंसा से उपरत, व्रतों में स्थित और प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह कथन भी न्याययुक्त नहीं है।

५८७. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—अप्पिच्छा अप्पारंभा अप्परिग्गहा धम्मिया-जाव-धम्मेणं चेव

५८७. भगवान ने कहा—संसार में कोई मनुष्य ऐसे होते हैं जो अल्प इच्छा वाले, अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह वाले,

वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहू। एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया। -जाव-एगच्चाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया। जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता ते तओ भुज्जो सगमादाए सोग्गइगामिणो भवंति।

धार्मिक—यावत—धर्म के द्वारा आजीविका अर्जन करने वाले, शील सम्पन्न, सुव्रती, सरलता से प्रसन्न होने वाले और सुसाधु होते हैं। वे यावज्जीवन के लिए किसी प्राणातिपात प्रतिविरत और किसी एक से अविरत—यावत्—जीवनपर्यन्त के लिए किसी एक परिग्रह से विरत और किसी एक से अविरत होते हैं। श्रमणोपासक व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरणपर्यन्त इन प्राणियों के घात करने का त्याग करता है, वे अपनी उस आयु का त्याग करते हैं और त्याग करके पुनः अपने शुभ कर्मों को साथ लेकर सुगति को प्राप्त होते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—'णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और दीर्घ स्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। अतः उस महान त्रस काय की हिंसा से उपरत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो कहते हैं कि 'उनके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह उपदेश—कथन न्याययुक्त नहीं है।

५८८. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—आरण्णिया आवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया—जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ—णो बहुसंजया णो बहुपडिविरया सव्वपाणभूयजीवसत्तेहिं अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विउंजंति—अहं ण हंतव्वो अण्णे हंतव्वा, अहं ण अज्जावेयव्वो अण्णे अज्जावेयव्वा, अहं ण परिघेतव्वो अण्णे परिघेतव्वा, अहं ण परितावेयव्वो अण्णे परितावेयव्वा, अहं ण उद्दवेयव्वो अण्णे उद्दवेयव्वा।

५८८. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो जंगल में निवास करते हैं, मठ में रहते हैं, गाँव की सीमा पर रहने वाले हैं, किसी रहस्य को जानने वाले होते हैं—उनको श्रमणोपासक व्रत ग्रहण करने के दिन से लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है—वे संयमी नहीं हैं, वे सर्वसावद्य कर्मों से निवृत्त नहीं हैं, समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्वों में अपने मन से सच्ची-झूठी बात इस प्रकार कहते हैं—मुझको नहीं मारना चाहिये, दूसरों को मारना चाहिये, मुझको आज्ञा नहीं देना चाहिये, दूसरे को आज्ञा देना चाहिये, मुझे ग्रहण नहीं करना चाहिये, अन्य को ग्रहण करना चाहिये, मुझे परिताप नहीं देना चाहिये, दूसरे को परिताप देना चाहिये, मुझे उद्वेलित नहीं करना चाहिये, अन्य को उद्वेलित करना चाहिये।

एवामेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववण्णा -जाव-वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरो वा भुज्जयरो वा भुंजित्तु भोगभोगाइं कालमासे कालं किच्चा अण्णयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति। तओ वि विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमोरूवत्ताए पच्चायंति।

इस प्रकार से वे स्त्री-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त—अत्यन्त आसक्त—यावत्—चार, पांच, छह अथवा दस वर्ष तक अल्प या अधिक भोगोपभोगों को भोगकर काल के समय काल करके अन्यतर असुर योनि में या किल्विषयोनि में उत्पन्न होते हैं, वे वहाँ से च्यवकर फिर बकरे की तरह मूक और तामस वृत्ति वाले होते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्च-

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महाकाय वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी

क्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

बहुत होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है। वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। अतः उस महान त्रस काय की हिंसा से उपशांत, व्रत में उपस्थित, प्रतिविरत को जो आप अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिससे श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो।' आपका यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

५८९. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया पाणा दीहाउया, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ। ते पुव्वामेव कालं करेंति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति।

५८९. भगवान ने कहा—इस जगत में बहुत से प्राणी दीर्घायु वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रतग्रहण करने के समय से लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है। वे प्राणी पहले ही काल को प्राप्त होकर परलोक में जाते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया, ते दीहाउया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले तथा चिरकाल की स्थिति वाले और दीर्घ आयु वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत संख्या वाले हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपशांत, संयम में स्थित, प्रतिविरत के लिए जो आप अथवा दूसरे कोई यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो।' यह उपदेश भी न्याययुक्त नहीं है।

५९०. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया पाणा समाउया, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ। ते सममेव कालं करेंति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति।

५९०. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई प्राणी समान आयु वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देना वर्जित करता है। वे समकाल में काल को प्राप्त होते हैं, प्राप्त होकर परलोक में जाते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते समाउया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं केइ से परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और सम आयु वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। उस महान त्रसकाय की हिंसा से विरत, मुमुक्षु, प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य कोई जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो।' यह कथन न्याययुक्त नहीं है।

५९१. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया पाणा अप्पाउया, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ। ते पुव्वामेव कालं करेंति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति।

५९१. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई प्राणी अल्प आयु वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रतग्रहण के दिन से लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है। वे पहले ही काल करते हैं, करके परलोक में जाते हैं।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते अप्पाउया। ते वहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले होते हैं और अल्प आयु वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है। वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। उस महान त्रस काय की हिंसा से उपशांत, विरक्त, प्रतिविरक्त के लिए आप अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो।' आपका यह कथन भी न्याययुक्त नहीं है।

णवभंगेहिं पच्चक्खाणस्स विसय-उवदंसणं—

५९२. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया समणोवासगा भवंति। तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालित्तए।

नौ भंगों के द्वारा प्रत्याख्यान का विषय—उपदर्शन—

५९२. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई श्रमणोपासक होते हैं वे इस प्रकार कहते हैं—हम मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ नहीं है तथा चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध पालन करने के लिए भी समर्थ नहीं हैं।

णो खलु वयं संचाएमो अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाझूसिया भत्तपाणपडियाइक्खिया कालं अणवकंखमाणा विहरित्तए। वयं णं सामाइयं देसावगासियं–पुरत्था पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं एतावताव सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते सव्वपाण-भूयजीवसत्तेहिं खेमंकरे अहमंसि।

हम अन्त समय में मारणांतिक संलेखना का सेवन करके, भक्तपान का त्यागकर, काल की इच्छा न रखते हुए विचरण करने में भी समर्थ नहीं हैं। अतः हम सामायिक, देशावकाशिक व्रत को—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में देश की मर्यादा को स्वीकार करके उससे बाहर के सर्वप्राणियों—यावत्—सर्व सत्वों को दण्ड देना छोड़कर प्राण, भूत, जीव और सत्वों का क्षेम करने वाले होंगे।

१. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

१—उससे पहले जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दंड देने का त्याग कर दिया है, वे अपनी आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर उस मर्यादा के बाहर के क्षेत्र में त्रसरूप से उत्पन्न होते हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दंड देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है। वे प्राणी अल्प होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त, प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो।' यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

२. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं चेव जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते, अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते दंडे।

२—उस समीप देश में रहने वाले जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को छोड़ देते हैं, और छोड़कर वहीं समीप देश में जो स्थावर जीव हैं, जिनको श्रमणोपासक ने अनर्थ दंड देना वर्जित किया है किन्तु अर्थदण्ड देना वर्जित नहीं किया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक ने अनर्थ दण्ड देना वर्जित नहीं किया है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, और त्रस भी कहलाने है, वे महान् शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। उस महान् त्रसकाय की हिंसा से उपशान्त, मुमुक्षु, प्रतिविरत के लिए जो आप अथवा अन्य लोग यह कहते हैं—'ऐसी एक भी पर्याय नहीं है जिसके लिए श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके।' सो यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

३. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तत्थ परेणं चेव जे तसा थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

३—वहाँ समीप देश में रहने वाले जो त्रसप्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर उससे दूर देश में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, जिनमें श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के समय से मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया था, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, और त्रस भी कहलाते हैं वे महान शरीर और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त, प्रतिविरत के लिए आप अथवा अन्य जो यह कहते हैं—'ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके।' यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

४. तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

४—वहाँ समीप देश में जो स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने अनर्थ दंड देना वर्जित किया है, किन्तु अर्थदंड देना वर्जित नहीं किया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर वहीं समीप देश में जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के दिन से मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं। जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपशांत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये आप अथवा दूसरे लोग जो यह कहते हैं—'ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह भी उपदेश न्याय संगत नहीं है।

५. तत्थ आरेणं जं थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता ते तत्थ आरेणं चेव जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

५—वहां समीप देश में जो स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दंड देना तो नहीं छोड़ा है, किन्तु, विना प्रयोजन के दण्ड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर वहीं समीपवर्ती देश में जो स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दण्ड देना तो नहीं छोड़ा है किन्तु निष्प्रयोजन दण्ड देना छोड़ दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उन्हें श्रमणोपासक प्रयोजनवश तो दण्ड देता है, परन्तु बिना प्रयोजन के दण्ड नहीं देता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे महाकाय वाले और चिर स्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर हैं, जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त, प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—'ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक भी प्राणी के दण्ड का त्याग हो सके।' यह कथन भी न्याययुक्त नहीं है।

६. तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता तत्थ परेणं चेव जे तसा थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

६—वहां अन्य देश में उत्पन्न जो स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दण्ड देना तो नहीं त्यागा है किन्तु निष्प्रयोजन दण्ड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं और छोड़कर वहीं जो अन्य देशवर्ती त्रस स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के दिन से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक हैं, जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है। उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त और प्रतिविरत के लिए आप अथवा दूसरे लोग जो यह कहते हैं—'ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके।' यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है।

७. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ।

७—वहाँ अन्य देश में उत्पन्न जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रतारंभ से लेकर मरणपर्यन्त दंड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को छोड़ देते हैं, छोड़कर श्रावक के द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण में रहने वाले जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रावक ने व्रतारम्भ से लेकर मरण पर्यन्त दंड देना छोड़ दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

वे प्राणी भी कहे जाते हैं और त्रस भी कहे जाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं वे प्राणी अधिक हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। उस महान त्रस काय की हिंसा से उपरत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये जो आप अथवा दूसरे लोग यह कहते हैं—'उसको ऐसी कोई पर्याय नहीं हैं जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके।' यह प्रतिपादन न्यायसंगत नहीं है।

८. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

८—वहां अन्य देश में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरणपर्यन्त दंड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं और छोड़कर श्रावक द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण में रहने वाले जो स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दंड देना तो नहीं त्यागा है किन्तु निष्प्रयोजन दंड देना त्याग दिया हैं, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

वे प्राणी भी कहे जाते हैं और त्रस भी कहे जाते हैं, वे महाकाय वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं। वे प्राणी अधिक हैं जिनके लिए श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर हैं जिनके लिये श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है। उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपशांत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत के लिये जो आप लोग अथवा अन्य लोग ऐसा कहते हैं 'उसको ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके।' यह भी सिद्धान्त-मत न्यायसंगत नहीं है।

९. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता ते तत्थ परेणं चेव जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणो-

९—वहाँ अन्य देश में उत्पन्न जो त्रस स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड का त्याग कर दिया है। वे उस आयु को छोड़ देते हैं, छोड़कर वे श्रावक के द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण से अन्य देशवर्ती जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के दिन से लेकर मरणपर्यन्त दंड

वासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति। तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया। ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ। ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चखायं भवइ। से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—"णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं। उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महानकाय और चिर स्थिति वाले होते हैं। उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपशांत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये आप या अन्य कोई जो यह कहते हैं—'उसको ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो।' यह मत भी न्यायसंगत नहीं है।

तस-थावर-पाणाणं अव्वोच्छित्ती—

५९३. भगवं च णं उदाहु—ण एयं भूयं ण एयं भव्वं ण एयं भविस्सं जण्णं—तसा पाणा वोच्छिज्जिहिंति, थावरा पाणा भविस्संति। थावरा पाणा वोच्छिज्जिहिंति, तसा पाणा भविस्संति। अवोच्छिण्णेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वदह—"णत्थि णं से केइ परियाए-जाव-जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते।" अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ।

त्रस स्थावर प्राणियों की अव्युच्छित्ति—

५९३. भगवान ने कहा—पूर्वकाल में यह नहीं हुआ और अनागत अनन्त काल में भी यह नहीं होगा और वर्तमान में भी यह नहीं होता है—त्रस प्राणी सर्वथा उच्छिन्न हो जायेंगे और सबके सब स्थावर हो जायेंगे। स्थावर प्राणी सर्वथा उच्छिन्न हो जायें और सबके सब त्रस हो जायेंगे। त्रस और स्थावर प्राणियों के सर्वथा उच्छिन्न न होने पर तुम लोग अथवा दूसरे लोग जो यह कहते हैं—'वह कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो।' आपका यह सिद्धान्त भी न्यायसंगत नहीं है।

उवसंहारो—

५९४. भगवं च णं उदाहु—आउसंतो! उदगा! जे खलु समणं वा माहणं वा परिभासइ मित्ति मण्णइ आगमित्ता णाणं, आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिट्ठइ।

जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिभासइ मित्ति मण्णइ आगमित्ता णाणं, आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिट्ठइ।

तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं अणाढायमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पहारेत्थ गमणाए।

भगवं च णं उदाहु—आउसंतो! उदगा! जे खलु तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म अप्पणो चेव सुहुमाए पडिलेहाए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंभिए समाणे सो वि ताव तं आढाइ परिजाणेइ वंदइ णमंसइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासइ।

उपसंहार—

५९४. भगवान ने कहा—हे आयुष्मन् उदक! जो व्यक्ति श्रमण या माहण के प्रति मैत्री भाव रखते हुए भी उनकी निन्दा करता है तो ज्ञान को प्राप्त करके, दर्शन को प्राप्त करके चारित्र को प्राप्त करके पाप कर्मों का विनाश करने के लिए तत्पर होकर भी परलोक का विघात करता है।

जो श्रमण अथवा माहण की निन्दा नहीं करता है किन्तु मैत्री भाव रखता है तो ज्ञान को प्राप्त करके, दर्शन को प्राप्त करके और चारित्र को प्राप्त करके, पाप कर्मों का विघात करने के लिये उद्यत है, वह निश्चय ही परलोक की विशुद्धि के लिये स्थित है [समर्थ होता है।]

तत्पश्चात् वह उदक पेढालपुत्र भगवान गौतम का आदर नहीं करता हुआ जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में जाने के लिए उद्यत हुआ।

भगवान ने कहा—हे आयुष्मन् उदक! जो पुरुष तथारूप श्रमण अथवा माहण के निकट एक भी आर्य, धार्मिक सुवचन को सुनकर एवं समझकर अपनी सूक्ष्म बुद्धि से यह विचार कर कि इन्होंने अनुत्तर योग क्षेम का मार्ग प्राप्त कराया है वह भी उन्हें आदर देता है, उपकारी मानता है, वंदना नमस्कार करता है, सत्कार-सम्मान करता है, कल्याण और मंगल रूप समझता है और देवता एवं चैत्य की तरह उनकी पर्युपासना करता है।

५९५. तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—"एएसि णं भंते ! पदाणं पुव्विं अण्णाणयाए असवणयाए अबोहीए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं असुयाणं अमुयाणं अविण्णायाणं अणिज्जूढाणं अव्वोगडाणं अव्वोच्छिण्णाणं अणिसिट्ठाणं अणिजूढाणं अणुवहारियाणं एयमट्ठं णो सद्दहियं णो पत्तियं णो रोइयं। एएसि णं भंते ! पदाणं एण्हिं जाणयाए सवणयाए बोहीए अभिगमेणं दिट्ठाणं सुयाणं मुयाणं विण्णायाणं णिज्जूढाणं वोगडाणं वोच्छिण्णाणं णिसिट्ठाणं णिवूढाणं उवधारियाणं एयमट्ठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि 'एवमेयं जहा णं, तुब्भे वदह।'

५९५. तत्पश्चात् उस उदक पेढालपुत्र ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! मैंने इन पदों को पहले कभी नहीं जाना है, न सुना है, न समझा है, न हृदयंगम किया है, जिससे ये पद मेरे द्वारा अदृष्ट, अर्थात् नहीं देखे हुए तथा नहीं सुने हुए हैं, मेरे द्वारा नहीं जाने हुए और स्मरण नहीं किए हुए हैं, गुरुमुख से प्राप्त नहीं किये हैं, ये पद मेरे लिये प्रगट नहीं हैं, मेरे द्वारा संशय रहित ज्ञात नहीं है, इनका मैंने निर्वाह नहीं किया है, इनका मैंने अवधारण—निश्चय नहीं किया है, अतएव इन पदों में मैंने श्रद्धान नहीं किया है, विश्वास नहीं किया है तथा रुचि नहीं की है। हे भदन्त ! इन पदों को मैंने अभी जाना है, अभी सुना है, अभी समझा है, अभी हृदयंगम किया है, देखा है, सुना है, स्मरण किया है, इनका विशेष रूप से ज्ञान किया है, ये पद अभी निर्यूढ हुए हैं, प्रगट हुए हैं, संशयरहित ज्ञात हुए हैं, अनुज्ञात हुए हैं, निर्व्यूढ हुए हैं, इनका निश्चय हुआ है, इसलिये अब मैं इन पदों में श्रद्धान करता हूँ, विश्वास करता हूँ, रुचि करता हूँ, 'यह बात वैसी ही है, जैसा आप कहते हैं।'

तए णं भगवं गोयमे उदगं पेढालपुत्तं एवं वयासी—"सद्दहाहि णं अज्जो ! पत्तियाहि णं अज्जो ! रोएहि णं अज्जो। एवमेयं जहा णं अम्हे वयामो।"

इसके बाद भगवान् गौतम ने उदक पेढालपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे आर्य ! जैसा हम कहते हैं, वैसा श्रद्धान करो, हे आर्य ! वैसा विश्वास करो, हे आर्य ! वैसी ही रुचि करो।

उदयस्स चाउज्जामधम्माओ पंचमहव्वयग्गहणं—

उदक का चातुर्याम धर्म से पंच महाव्रत ग्रहण—

५९६. तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

५९६. तत्पश्चात् वह उदक पेढालपुत्र भगवान गौतम से इस प्रकार बोला—हे भदन्त ! मैं आपके पास चार याम वाले धर्म को छोड़कर पंच महाव्रत युक्त धर्म को प्रतिक्रमण के साथ स्वीकार करके विचरना चाहता हूँ।

तए णं भगवं गोयमे उदगं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ।

इसके बाद भगवान गौतम उदक पेढालपुत्र को लेकर जहां श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आये।

तए णं से उदए पेढालपुत्ते समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् उदक पेढालपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।"

'हे भदन्त ! मैं आपके निकट चार याम वाले धर्म को छोड़कर पंच महाव्रत वाले धर्म को प्रतिक्रमण के साथ धारण करके विचरना चाहता हूँ।'

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम को सुख हो, वैसा करो, प्रतिबन्ध न करो। [श्रमण भगवान महावीर ने कहा।]

तए णं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

इसके पश्चात् वह उदक पेढालपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के निकट चार याम वाले धर्म से पांच महाव्रत वाले धर्म को प्रतिक्रमण के साथ प्राप्त करके विचरण करता है।

—त्ति बेमि।

—इस प्रकार मैं कहता हूँ।

—सुय०, सु०२, अ० ७

४६. महावीरतित्थे नंदीफलणायं

४६. महावीरतीर्थ में नंदीफल ज्ञात (उदाहरण)

चंपाए धणसत्थवाहो—

५९७. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया।

तत्थ णं चंपाए नयरीए धणे नामं सत्थवाहे होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए।

तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता नाम नयरी होत्था—रिद्धत्थिमिय-समिद्धा वण्णओ।

तत्थ णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था—महया० वण्णओ।

धणस्स अहिच्छत्तगमणघोसणा—

५९८. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्व-रत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्प-ज्जित्था—सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च—चउव्विहं भंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडी-सागडं सज्जेइ, सज्जेत्ता सगडी-सागडं भरेइ, भरेत्ता कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! चंपाए नयरीए सिंघाडग-जाव-महापहपहेसु उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया! धणे सत्थवाहे विपुलं पणियं आदाय इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए, तं जो णं देवाणुप्पिया! चरए वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा पंडुरंगे वा गोयमे वा गोव्वतिए वा गिहिधम्मे वा धम्मचिंतए वा अविरुद्ध-विरुद्ध-वुड्ढसावग-रत्तपड-निग्गंथप्पभिई पासंडत्थे वा गिहत्थे वा धणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ, अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ, अकुंडियस्स कुण्डियं दलयइ, अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, अपक्खे-

चम्पा में धन्य सार्थवाह—

५९७. उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र चैत्य था। जितशत्रु नामक राजा था।

उस चंपा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो धनाढ्य-यावत्-किसी से पराभूत होने वाला नहीं था।

उस चंपा नगरी की उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छत्रा नामक नगरी थी—जो भवनों आदि की ऋद्धि तथा समृद्धि से परिपूर्ण थी, वर्णन करना :

उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामक राजा था—वह महाहिमवन्त पर्वत आदि; वर्णन करना।

धन्य की अहिच्छत्रा-गमन घोषणा—

५९८. तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् उस धन्य सार्थवाह के मन में मध्य रात्रि के समय में इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—विक्रय करने योग्य विपुल वस्तुओं को लेकर मुझे अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार करने के लिये जाना श्रेयस्कर है—उसने ऐसा विचार किया, विचार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य—इस प्रकार चारों प्रकार के पदार्थों को ग्रहण किया, ग्रहण करके गाड़ी-गाड़े तैयार किये, तैयार करके गाड़ी-गाड़े भरे, भरकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो! जाओ और चंपा नगरी के शृंगाटक-यावत्-राजमार्गों और मार्गों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—हे देवानुप्रियो! धन्य सार्थवाह विपुल विक्रेय वस्तुओं को लेकर वाणिज्य के निमित्त अहिच्छत्रा नगरी में जाने की इच्छा करता है, इसलिये हे देवानुप्रियो! जो भी चरक अथवा चोरिक अथवा चर्मखंडिक अथवा भिच्छुंड या पांडुरंग या गौतम या गोव्रतिक, या गृहिधर्मा या धर्मचिन्तक या अविरुद्ध-विरुद्ध-वृद्ध-श्रावक-रक्तपट-निर्ग्रन्थ आदि व्रतवान या गृहस्थ-जो भी कोई धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहता हो, उसको धन्य सार्थवाह साथ ले जायेगा और जिसके पास छतरी नहीं होगी उसे छतरी देगा, विना जूते वाले को जूता दिलायेगा, जिसके पास कमंडलु नहीं होगा उसे कमंडलु दिलायेगा जिसके पास पाथेय नहीं होगा उसे पाथेय [मार्ग में खाने के लिये भोजन]

वगस्स पक्खेवं दलयइ, अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ, सुहंसुहेणं य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

देगा, जिसके पास प्रक्षेप नहीं होगा, उसे प्रक्षेप [मार्ग व्यय के लिये धन] दिलायेगा, जो बीच में पड़ जायेगा, भग्न हो जायेगा अथवा रुग्ण हो जायेगा उसकी सहायता—सार-सम्भाल करेगा और सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचायेगा—ऐसा करके दुवारा और तिवारा भी घोषणा करो, घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा चंपाए नयरीए सिंघाडग-जाव-महापहपहेसु एवं वयासी—हंदि सुणंतु भगवंतो ! चंपानयरीवत्थव्वा ! बहवे चरगा ! वा-जाव-गिहत्था ! वा, जो णं धणेणं सत्थवाहेणं सद्धि अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ जाव-सुहंसुहेणं य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुए और चंपा नगरी के शृंगाटक-यावत्-राजमार्गों, मार्गों में जाकर इस प्रकार बोले—'हे चंपा नगरी के निवासी भगवन्तो ! चरको ! अथवा-यावत्-गृहस्थो ! आदि सुनो—जो धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहता हो, उसको धन्य सार्थवाह ले जायेगा और जिसके पास छतरी नहीं होगी उसे छतरी दिलायेगा-यावत्-सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचायेगा, इस तरह कहकर दूसरी बार और तीसरी बार भी घोषणा की और घोषणा करके उसकी आज्ञा उसे वापस लौटाते हैं।

तए णं तेसिं कोडुम्बियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा चंपाए नयरीए बहवे चरगा य-जाव-गिहत्था य जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस बात को सुनकर चंपा नगरी के जो बहुत से चरक और-यावत्-गृहस्थ थे, वे जहां धन्य सार्थवाह था वहां आये।

तए णं धणे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य-जाव-गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ-जाव-अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, दलयित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह।

तत्पश्चात् उन चरकों और-यावत्-उन गृहस्थों में से जिनके पास छतरी नहीं थी उनको धन्य सार्थवाह ने छतरी दिलवाई-यावत्-पाथेय नहीं था उन्हें पाथेय दिया, देकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और चंपा नगरी के बाहर-प्रधान उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो।

तए णं ते चरगा य-जाव-गिहत्था य धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा चंपाए नयरीए बहिया अग्गुज्जाणंसि धणं सत्थवाहं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठंति।

तदनन्तर वे चरक और-यावत्-गृहस्थ धन्य सार्थवाह के इस कथन को सुनकर चंपानगरी के बाहर प्रधान उद्यान में धन्य सार्थवाह की प्रतीक्षा करते हुए ठहर गये।

धणकओ नन्दीफलरुक्खोवभोगनिसेहो—

५६६. तए णं धणे सत्थवाहे सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्तंसि विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावेत्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडी-सागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता चंपाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता नाइविप्पगिट्ठेहिं अद्धाणेहिं वसमाणे-वसमाणे सुहेहिं वसहि-पायरासेहिं अंगं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ,

धन्यकृत नन्दीफलवृक्षोपभोग निषेध—

५६०. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने शुभ तिथि, करण और नक्षत्र में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनवाया, बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन, सम्बन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करके उन्हें भोजन कराया, भोजन कराके उनसे अनुमति ली, अनुमति लेकर गाड़ी—गाड़े जुतवाये, जुतवाकर चंपानगरी से बाहर निकला, निकलकर बहुत दूर-दूर पर पड़ाव न करता हुआ अर्थात् थोड़ी-थोड़ी दूरी पर मार्ग में बसता बसता हुआ, सुखजनक वसति और प्रातराश [नाश्ता] करता हुआ, अंगदेश के बीचों बीच होकर देश की सीमा पर जा पहुँचा, वहाँ पहुँचकर गाड़ी-गाड़े खोले, खोलकर पड़ाव

उवागच्छित्ता सगडी-सागडं मोयावेइ, मोयावेत्ता सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! इमीसे आगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं बहवे नंदिफला नामं रुक्खा—किण्हा-जाव-पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति—मणुण्णा वण्णेणं मणुण्णा गंधेणं मणुण्णा रसेणं मणुण्णा फासेणं मणुण्णा छायाए।

तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि व तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति। तं मा णं देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा-जाव-हरियाणि वा आहरउ, छायाए वा वीसमउ, मा णं से वि अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सउ। तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य-जाव-हरियाणि य आहारेह, छायासु वीसमह' त्ति घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोएइ, जोएत्ता जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—"एए णं देवाणुप्पिया ! ते नंदिफला रुक्खा किण्हा-जाव-मणुण्णा छायाए। तं जो णं देवाणुप्पिया ! एएसिं नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ-जाव-अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति। तं मा णं तुब्भे तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा-जाव-अहारेह, छायाए वा वीसमह, मा णं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सह, अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य-जाव-आहारेह, छायाए वा वीसमह त्ति कट्टु घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।" ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

डाला, पड़ाव डालकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे सार्थनिवेश में ऊँचे-ऊँचे स्वर से बार-बार उद्घोषणा करते हुए ऐसा कहो—'हे देवानुप्रिय ! इस आगे आने वाली अटवी में मनुष्यों का आवागमन नहीं होता है तथा यह बहुत लम्बी है, उसके मध्यभाग में बहुत से नन्दीफल नामक वृक्ष हैं जो कृष्ण वर्ण वाले-यावत्-पत्तों-पुष्पों-फलों वाले, हरे, शोभायमान और सौन्दर्य से अतीव-अतीव शोभित हैं,—उनका रूप-रंग मनोज्ञ है, गंध मनोज्ञ है, रस मनोज्ञ है, स्पर्श मनोज्ञ है और छाया मनोज्ञ है।

किन्तु हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अथवा हरित का भक्षण करेगा अथवा छाया में विश्राम करेगा, उसको आपाततः [क्षण भर] तो अच्छा लगेगा, किन्तु उसके बाद उसका परिणमन होने पर अकाल में ही वह मृत्यु को प्राप्त होगा। अतएव हे देवानुप्रियो ! तुममें से कोई उन नन्दीफलों के मूल अथवा-यावत्-हरित का सेवन न करे, छाया में विश्राम न करे, जिससे अकाल में ही जीवन का नाश न हो। 'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग दूसरे वृक्षों के मूल-यावत्-हरित का भक्षण करना और उनकी छाया में विश्राम लेना।' इस प्रकार की घोषणा करो, घोषणा करके मेरी आज्ञा वापस लौटाओ। वे भी उसी तरह घोषणा करके उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं।

तदनन्तर धन्य सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाये, जुतवाकर जहां नन्दीफल नामक वृक्ष थे, वहां आया, आकर उन नन्दीफल वृक्षों से न अति दूर और न अति समीप सार्थनिवेश किया—पड़ाव डाला, सार्थ निवेश करके पुनः दूसरी बार और तीसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम मेरे सार्थ निवेश में ऊँचे-ऊँचे स्वर से पुनः पुनः उद्घोषणा करते हुए कहो—'हे देवानुप्रियो ! वे नन्दीफल वृक्ष ये हैं जो कृष्ण वर्ण वाले-यावत्-मनोज्ञ छाया वाले हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! जो उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज या हरित का भक्षण करेगा-यावत्-वह अकाल में ही जीवन का नाश करेगा। इसलिये तुम उन नन्दीफल वृक्षों के मूल या-यावत्-भक्षण न करना अथवा छाया में विश्राम न करना, जिससे ये अकाल में ही जीवन का नाश न कर सकें। अन्य वृक्षों के मूल और-यावत्-भक्षण करना, छाया में विश्राम करना, इस प्रकार की घोषणा करो, घोषणा करके मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ।' वे भी उसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापस सौंपते हैं।

निसेहानुसरणस्स फलं—

६०० तत्थ णं अत्थेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति, एयमट्ठं सद्दहमाणा पत्तियमाणा रोयमाणा तेसिं नंदिफलाणं दूरंदूरेणं परिहरमाणा-परिहरमाणा अण्णेसिं रुक्खाणं मूलाणि य-जाव-आहारंति, छायासु वीसमंति। तेसि णं आवाए नोभद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा सुभरूवत्ताए सुभगंधत्ताए सुभरसत्ताए सुभफासत्ताए सुभछायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

निषेधानुसरण का फल—

६००. उनमें से किन्हीं-किन्हीं पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा की, विश्वास किया, रुचि की, इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करते हुए उन नन्दीफलों का दूर से त्याग करते हुए दूसरे वृक्षों के मूल आदि का सेवन करते थे, छाया में विश्राम करते थे। उन्हें तत्काल भद्र [सुख] तो प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसके पश्चात् ज्यों-ज्यों उनका परिणमन होता गया त्यों-त्यों वे पुनः पुनः शुभ गंध, शुभ वर्ण, शुभरस, शुभ स्पर्श और शुभ छायारूप में परिणत होते गये।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचसु कामगुणेसु नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्झइ, नो मुज्झइ नो अज्झोववज्जइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावागाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थछेयणाणि य कण्णछेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं—हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व ते पुरिसा।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर, अनगारत्व अंगीकार करके पाँच इन्द्रियों के काम-भोगों में आसक्त नहीं होते हैं, अनुरक्त नहीं होते हैं, गृद्ध नहीं होते हैं, मूच्छित नहीं होते हैं, अत्यन्त आसक्त नहीं होते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं के पूजनीय होते हैं और परलोक में भी बहुत से हस्तछेदन, कर्ण छेदन, नासाछेदन, उसी तरह हृदय विदारण, वृषण [अंडकोष] उत्पाटन, फांसी लगाकर लटकाना आदि दुःखों को प्राप्त नहीं करते हैं और अनादि, अनन्त लम्बे रास्ते वाले, चातुर्गतिक रूप संसार कांतार को पार कर जाते हैं—जैसे वे पुरुष।

निसेहापालणे विपत्ती—

६०१. तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, धणस्स, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोयमाणा जेणेव ते नंदिफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य-जाव-आहारंति, छायासु वीसमंति तेसि णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेंति।

निषेध के न पालन से विपत्ति—

६०१. उनमें से कितनेक पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नहीं की, विश्वास नहीं किया, रुचि नहीं की, धन्य सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करके, विश्वास न करके, रुचि न करके जहाँ वे नन्दीफल वृक्ष थे, वहां आये, आकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षों के मूलों और-यावत्-भक्षण-सेवन किया, विश्राम किया, उन्हें तत्काल तो सुख प्राप्त हुआ किन्तु उसके बाद में परिणमन होने पर अकाल में ही जीवन का विनाश करते गये।

६०२. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए-समाणे पंचसु कामगुणेसु सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्झइ, से णं इहभवे-जाव-अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं संसारकंतारं भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ—जहा व ते पुरिसा।

६०२. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के निकट मुंडित होकर गृहवास त्याग, अनगार-प्रव्रज्या अंगीकार करके पाँच इन्द्रियों के काम-भोगों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, गृद्ध होता है, मूच्छित होता है, अत्यन्त आसक्त होता है, वह इस भव में-यावत्-अनादि, अनन्त, दीर्घपथ वाले संसार कान्तार में बारबार परिभ्रमण करता रहता है—जैसे कि वे पुरुष।

धणस्स अहिच्छत्तागमणं—

६०३. तए णं से धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता जेणेव अहिच्छत्ता नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहिच्छत्ताए नयरीए वहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता सगडी-सागडं मोयावेइ । तए णं से धणे सत्थवाहे महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता वहुपुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायरिहं पाहुडं उवणेइ । तए णं ते कणगकेऊ राया हट्ठतुट्ठे धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता धणं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ, भंडविणिमयं करेइ, करेत्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहंसुहेणं जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं अभिसमण्णागए विपुलाइं माणुस्साइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

धन्य का अहिच्छत्रागमन—

६०२. तत्पश्चात् उस धन्य सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाये, जुतवाकर जहां अहिच्छत्रानगरी थी, वहां पहुंचा, पहुंचकर अहिच्छत्रा नगरी के वाहर प्रधान उद्यान में पड़ाव डाला, पड़ाव डालकर गाड़ी-गाड़े खुलवा दिये । तदनन्तर उस धन्य सार्थवाह ने महामूल्यवान महर्घ्य, महान पुरुषों के योग्य, राजा के योग्य उपहार, लिया उपहार लेकर वहुत पुरुषों के साथ, उनसे परिवृत्त होकर अहिच्छत्रा नगरी के मध्यभाग में होकर प्रवेश किया, प्रवेश करके जहां कनककेतु राजा था, वहां आया, आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर घुमाकर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से वधाया, वधाकर उस महामूल्यवान महर्घ्य महान पुरुषों के योग्य राजा के योग्य भेंट को सामने रखा । तदनन्तर राजा कनककेतु ने हर्षित और संतुष्ट होकर धन्य सार्थवाह की उस महामूल्यवान महर्घ्य, उत्तम पुरुषों के योग्य, राजोचित भेंट को स्वीकार किया, स्वीकार करके धन्य सार्थवाह का सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उत्शुल्क कर दिया—राजकर माफ कर दिया, शुल्क माफ करके विदा किया, फिर धन्य सार्थवाह ने अपने भांड-माल का विनिमय किया, विनिमय करके वदले में दूसरा भांड-माल लिया माल लेकर सुखपूर्वक जहाँ चम्पानगरी थी, वहाँ आया, आकर अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों संवंधियों परिजनों के साथ मनुष्य सम्वन्धी विपुल भोगोपभोगों का बारंबार अनुभव करते हुए विचरने लगा ।

धणस्स पव्वज्जा—

६०४. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं ।

धणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेत्ता पव्वइए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ ।[1]

—णायाधम्मकहाओ सु० १, अ० १५

धन्य की प्रव्रज्या—

५६५. उस काल उस समय स्थविर भगवन्तों का आगमन हुआ ।

धन्य सार्थवाह धर्म श्रवण करके ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके—कुटुम्ब का भार सौंप करके दीक्षित हो गया, और सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके एवं बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल करके किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ । महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा, बोधि को प्राप्त करेगा, मुक्ति को प्राप्त करेगा, परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा । □□

---

१. वृत्तिकत्ता समुद्धता निगमनगाहा—

चंपा इव मणुयगई, धणोव्व भयवं जिणोदएक्करसो । अहिच्छत्तानयरिसमं, इह निव्वाणं मुणेयव्वं ॥१॥
घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घं । चरगाइणो व्व एत्थं, सिवसुहकामा जिया वहवे ॥२॥
नंदिफलाइ व्व इहं, सिवपहपडिपण्णगाण विसया उ । तब्भक्खणाओ मरणं, जह तह विसएहि संसारो ॥३॥
तव्वज्जणेण जह इट्ठपुरगमो विसयवज्जणेण तहा । परमानंदनिवंधण-सिवपुरगमणं मुणेयव्वं ॥४॥

४७. महावीरतित्थे धणसत्थवाहकहाणयं

४७. महावीरतीर्थ में धन्य सार्थवाह कथानक

रायगिहे धणसत्थवाहदारिया सुसुमा—

६०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं धणे नामं सत्थवाहे। भद्दा भारिया।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा—धणे धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरक्खिए।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा नामं दारिया होत्था—सूमालपाणिपाया०।

चिलाय-दासचेडेण कुमार-कुमारीणं कीडणकाले तज्जणं—

६०६. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं दासचेडे होत्था—अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था।

तए णं से दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालग्गाहे जाए यावि होत्था, सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ।

तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिंदूसए अवहरइ, अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आओसइ अवहसइ निच्छोडेइ निब्भच्छेइ तज्जेइ तालेइ।

६०७. तए णं ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साणं साणं अम्मापिऊणं निवेदेंति।

राजगृह में धन्य सार्थवाह कथानक—

६०५. उस काल और उस समय राजगृह नामक नगर था—वर्णन करो।

वहाँ धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र भद्रा के आत्मज पांच सार्थवाह दारक थे, यथा—धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित।

उस धन्य सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पांच पुत्रों के पश्चात् जन्मी हुई सुंसुमा नामक बालिका थी—जिसके हाथ पैर आदि अंगोपांग सुकुमार थे।

चिलात-दासचेटक द्वारा कुमार-कुमारियों का क्रीड़ाकाल में तर्जन—

६०६. उस धन्य सार्थवाह के चिलात नामक दासचेट था—जो पांचों इन्द्रियों और शरीर से परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था तथा बच्चों को लाने (खिलाने) में भी कुशल था।

तत्पश्चात् वह दासचेट सुंसुमा बालिका का बालग्राहक [बालक को क्रीड़ा कराने वाला] नियत हुआ, वह सुंसुमा बालिका को कमर में ले लेता, लेकर बहुत से बालकों-बालिकाओं, बच्चों-बच्चियों, कुमारों-कुमारियों के साथ खेलता-खेलता विचरण करता था।

उस समय वह चिलात दासचेटक उन बहुत से बालकों और बालिकाओं, बच्चों-बच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं में से किसी की कौड़ियों को छीन लेता, किसी की गोलियों को चुरा लेता, किसी की गेंदों को झपट लेता, किसी की दड़ों को हर लेता, किसी के कपड़ों को छिपा देता, किसी के साडोल्लकों [दुपट्टों] का अपहरण कर लेता, किसी के आभूषण-माला-अलंकारों को चुरा लेता, किसी पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी की तर्जना करता और किसी को मारता-पीटता था।

६०७. तब वे बहुत से बालक और बालिकायें, बच्चे और बच्चियां, कुमार और कुमारिकायें रोती हुई, चिल्लाती हुई, शोकयुक्त होती हुई, रोती विसूरती हुई, विलाप करती हुई अपने अपने माता-पिता से जाकर कहतीं।

चिलायस्स गिहाओ निक्कासणं—

६०८. तए णं तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाणि य डिंभयाण य डिंभियाण कुमारयाण य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं बहूहिं खिज्जणाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेंति ।

तए णं से धणे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एयमट्ठं भुज्जो-भुज्जो निवारेइ, नो चेव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिंदूसए अवहरइ, अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आओसइ अवहसइ निच्छोडेइ निब्भेच्छेइ तज्जेइ तालेइ ।

तए णं ते बहवे दारगा य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा य तिप्पमाणा य विलवमाणा य साणं साणं अम्मापिऊणं निवेदेंति ।

तए णं ते आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणा जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बहूहिं खिज्जणाहि य रुंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य रुंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेंति ।

तए णं से धणे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं दारियाणं डिंभयाणं डिंभियाणं कुमारयाणं कुमारियाणं अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे चिलायं दासचेडं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ उद्धंसइ निब्भच्छेइ निच्छोडेइ तज्जेइ उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ साओ गिहाओ निच्छुभइ ।

चिलात का गृह निष्कासन—

६०८. तब उन बहुत से बालक और बालिकाओं के, बच्चों और बच्चियों के, कुमार और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्थवाह के पास आते, आकर धन्य सार्थवाह को खेदजनक वचनों से खेद प्रगट करते, रोते और उलाहना देते और फिर धन्य सार्थवाह को यह वृतान्त सुनाते ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह चिलात दासचेट को इस बात के लिये बार-बार मना करता, लेकिन चिलात दासचेट नहीं माना —रुका नहीं ।

मना करने के बाद भी वह चिलात दासचेट उन बहुत से बालक और बालिकाओं में से, बच्चों और बच्चियों में से, कुमार और कुमारिकाओं में से किन्हीं की कौड़ियाँ हर लेता, किन्हीं की गोलियां चुरा लेता, किन्हीं की गेंदों को हर लेता, किन्हीं के दड़ों को हर लेता, किन्हीं के कपड़े चुरा लेता, किन्हीं के साडोल्लक चुरा लेता, किन्हीं के आभरण, माला, अलंकार चुरा लेता, किसी पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को ठगता, किसी को धमकाता, किसी को तर्जना देता और किसी को ताड़ना देता—चपत मारता ।

तब वे बहुत से बालक और बालिकायें, बच्चे और बच्चियाँ, कुमार और कुमारिकायें रोती, चिल्लाती, शोकयुक्त, रोती बिसूरती और विलाप करती हुई अपने अपने माता-पिता से कहतीं ।

तब वे क्रोधित, रुष्ट, कुपित, अति क्रोधित हो मिसमिसाते हुए धन्य सार्थवाह के पास आते, आकर खेद-जनक वचनों से, अनादर भरे वचनों से, उलाहने भरे वचनों से खेद प्रगट करते, रोते और उलाहना देते हुए धन्य सार्थवाह को यह वृतान्त सुनाते ।

तब धन्य सार्थवाह ने उन बहुत से बालक और बालिकाओं के, बच्चों और बच्चियों के, कुमार और कुमारिकाओं के माता-पिताओं से यह बात सुनकर अत्यन्त कुपित, रुष्ट, चंडरूप धारण कर दांतों को मिसमिसाते हुए उस चिलात दासचेट पर ऊंचे-नीचे आक्रोश भरे वचनों द्वारा आक्रोश किया, उसका तिरस्कार किया, भर्त्सना की, धमकी दी, तर्जना की और ऊंची-नीची ताड़नाओं से ताड़ना दी और फिर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया ।

चिलायस्स दुव्वसण-पवत्ती—

६०९. तए णं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-

चिलात की दुर्व्यसन-प्रवृत्ति—

६०९. धन्य सार्थवाह द्वारा अपने घर से निकाल दिये जाने के बाद वह चिलात दासचेट राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों,

पहेसु देवकुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघरएसु य पाणघरएसु य सुहंसुहेणं परिवड्ढइ ।

चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, देवालयों, सभाओं, प्याउओं, जुआरियों के अड्डों, वेश्याओं के घरों और मद्यपान गृहों में मजे से भटकने लगा ।

तए णं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी, मज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी मंसपसंगी जूयप्पसंगी वेसाप्पसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था ।

तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट कोई हाथ पकड़कर रोकने वाला और वचन से रोकने वाला नहीं रहने से, स्वच्छन्द बुद्धि वाला, स्वैराचारी, मदिरापान में आसक्त, चोरी में आसक्त माँस में आसक्त, जुआ में आसक्त, वेश्याओं में आसक्त और परस्त्रियों में भी आसक्त हो गया ।

रायगिहसमीवे चोरपल्ली तत्थ य विजए चोरसेणावई—

राजगृह के समीप चोरपल्ली और वहाँ विजय चोर सेनापति—

६१०. तए णं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामंते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहा नामं चोरपल्ली होत्था—विसम-गिरिकडग-कोलंब-सण्णिविट्ठा वंसीकलंकपागार-परिक्खित्ता छिण्णसेल-विसमप्पवाय-फरिहोवगूढा एगदुवारा अणेगखंडी विदितजण-निग्गमप्पवेसा अब्भिंतरपाणिया सुदुल्लभजल-पेरंता सुबहुस्स वि कुवियबलस्स आगयस्स दुप्पहंसा यावि होत्था ।

६१०. उस समय राजगृह नगर से न अधिक दूर और न अधिक निकट प्रदेश में दक्षिण पूर्व दिशा में सिंह गुफा नामक एक चोर-पल्ली थी । जो विषम गिरिनितम्ब [तलहटी] के प्रान्त भाग में बसी हुई थी, बांस की झाड़ियों के प्राकार से घिरी हुई थी, छिन्न-भिन्न हुए विषम शैल की प्रपात रूपी परिखा से युक्त थी, आने-जाने के लिये एक द्वार वाली थी, अनेक छोटे-छोटे खंडों वाली थी, जानकार ही उसमें प्रवेश कर सकते थे और उसमें से निकल सकते थे, उसके भीतर ही पानी था उस पल्ली से बाहर आस-पास में पानी मिलना अत्यन्त दुर्लभ था, चुराये हुए धन को छीनने के लिये आयी हुई सेना भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी ।

६११. तत्थ णं सीहागुहाए चोरपल्लीए विजए नामं चोरसेणावई—परिवसई--अहम्मिए अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मसीलसमुदायारे अहम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणे विहरइ । हण-छिंद-भिंद-वियत्तए लोहियपाणी चंडे रुद्दे खुद्दे साहस्सिए उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कवड-कूड - साइ - संपओग - बहुले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे बहूणं दुपय-चउप्पय-मियपसु-पक्खि-सरिसिवाणं घायाए वहाए उच्छायण-याए अहम्मकेऊ समुट्ठिए बहुनयर-निग्गय-जसे सूरे दढप्पहारी साहसिए सद्दवेही ।

६११. उस सिंह गुफा नामक चोर पल्ली में विजय नामक चोर सेनापति रहता था—जो अधार्मिक, अधर्म में स्थित, पापियों का प्रिय, प्रसिद्ध पापी, पाप का उपदेश देने वाला, अधर्म का बीज, अधर्म को देखने वाला, कुधर्म और कुशील का आचरण करने वाला और पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला था । हनन-छेदन-भेदन में प्रवृत रहने से जिसके हाथ खून से लाल रहते थे, अति क्रोधी, रौद्र, दुष्ट, दुःसाहसी, धूर्त-खुशामद करने वाला, ठग, कपटी, छल, कपट और मिलावट करने में चतुर, शील व्रत और गुणों से रहित, प्रोषधोपवास का प्रत्याख्यान नहीं करने वाला, बहुत से मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, सर्पों का घात करने वाला, वध करने वाला, विनाश करनेवाला और अधर्म की ध्वजा था, बहुत से नगरों में अर्थात् दूर-दूर तक उसका यश [अपयश] फैला हुआ था, वह शूर था, दृढ़ प्रहार करनेवाला, साहसी और शब्दवेधी था ।

से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा - ईसर- सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

वह उस सिंह गुफा चोर पल्ली में पांच सौ चोरों का अधिपतित्व, अग्रेसरत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वर्यत्व और सेनापतित्व करते हुए और उनका पालन करते हुए विचरता था ।

६१२. तए णं से विजए तक्करे-चोर-सेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य बालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अण्णेसि च बहूणं छिण्ण-भिण्ण वहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।

तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिण-पुरत्थिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोगहणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य ओवीलेमाणे-ओवीलेमाणे विद्ध ंसेमाणे–विद्ध ंसेमाणे नित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

चिलायस्स चोरपल्ली-गमणं चोरसेणावइणा विजयेण चोरियविज्जाए सिक्खा य—

६१३. तए णं से चिलाए दासचेडए रायगिहे बहूहिं अत्थाभि-संकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूयकरेहि य परब्भवमाणे-परब्भवमाणे रायगिहाओ नगराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं, चोरसेणावइं उवसंप-ज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्ग-असिलट्ठिग्गाहे जाए यावि होत्था। जाहे वि य णं से विजए चोर-सेणावई गामघायं वा नगरघायं वा गोगहणं वा बंदिग्गहणं वा पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुबहुं पि कुवियबलं हय-महियपवरवीरघाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहेइ, पडिसेहेत्ता पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लिं हव्वमागच्छइ।

तए णं से विजए चोरसेणावई चिलायं तक्करं बहूओ चोर-विज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ।

चोरसेणावइस्स विजयस्स मच्चू—

६१४. तए णं से विजए चोरसेणावई अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था।

६१२. वह तस्कर, चोरों का सेनापति विजय बहुतेरे चोरों के लिये, जारों के लिये, जेबकटों के लिये, सेंध लगाने वालों के लिये, खान खोदने वालों के लिये, राजा के अपकारियों के लिये, कर्जदारों के लिए, बालघातकों के लिये, विश्वास-घातकों के लिये, जुआ खेलने वालों के लिये, खंडरक्षकों के लिये तथा मनुष्यों के हाथ पैर-आदि अवयवों का छेदन-भेदन करने वाले और दूसरे बहुतेरे लोगों के लिये कुडंग [बांस की झाड़ी] के समान आधारभूत था—आश्रयदाता था।

उस समय वह विजय तस्कर चोर सेनापति राजगृह नगर की दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित जनपद को ग्रामों के घात द्वारा, नगर के घात द्वारा, गायों का हरण करके, मनुष्यों को कैद करके, पथिकों को मारकूट कर तथा सेंध लगाकर पुनः पुनः उत्पीड़ित करता हुआ, विध्वंस करता हुआ, लोगों को स्थानहीन और धनहीन बनाता हुआ विचरण करता था।

चिलात का चोरपल्ली गमन और चोर सेनापति विजय द्वारा चौर्य विद्या की शिक्षा—

६१३. तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट राजगृह नगर में बहुत से अर्थाभिशंकी, चौराभिशंकी, दाराभिशंकी, धनिकों और जुआरियों द्वारा पराभव पाया हुआ—प्रताड़ित किया हुआ राजगृह नगर से बाहर निकला, निकलकर जहाँ सिंह-गुफा चोर-पल्ली थी, वहाँ आया, आकर चोर सेनापति विजय की शरण लेकर रहने लगा।

तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट चोर सेनापति विजय का प्रमुख खड्ग और यष्टिधारक हो गया। अतएव जब कभी भी वह विजय चोर सेनापति ग्राम का घात करने, नगर का घात करने, गायों का हरण करने, मनुष्यों को बन्दी बनाने, पथिकों को लूटने-कूटने के लिये जाता था तब उस समय वह दासचेट चिलात बहुत सी कूविय सेना को हत एवं मथित करके, प्रवर वीरों का घात करके, ध्वजा पताका आदि को नष्ट करके, प्राणों को संकट ग्रस्त करके दूर-दूर दिशा-विदिशाओं में भगा देता था, भगाकर पुनः उस धन अर्थ को लेकर अपना कार्य करके अज्ञात मार्ग से सिंह गुफा चोर-पल्ली में सकुशल शीघ्र वापस आ जाता था।

तत्पश्चात् उस विजय चोर सेनापति ने चिलात तस्कर को बहुत सी चोर विद्यायें, चोर मंत्र, चोर मायायें और चोर निकृतियाँ [चोरों के योग्य छल-कपट] सिखलाईं।

चोर सेनापति विजय की मृत्यु—

६१४. तत्पश्चात् वह विजय चोर सेनापति किसी समय काल-धर्म से युक्त हुआ—अर्थात् मर गया।

तए णं ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया-महया इड्ढीसक्कार-समुदएणं नीहरणं करेंति, करेत्ता, वहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेंति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया यावि होत्था।

तव उन पांच सौ चोरों ने विजय चोर सेनापति का बड़े ठाठ-बाट से नीहरण—शवदाह आदि क्रियायें कीं, फिर बहुत से मरणोत्तरकालीन लौकिक कृत्य किये, उन कृत्यों को करने के बाद समय बीतने पर वे शोक रहित हो गये।

चिलायस्स चोरसेणावइत्तं—

चिलात को चोर सेनापतित्व—

६१५. तए णं ताइं पंच चोरसयाइं अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते। अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा वहूओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खाविए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! चिलायं तक्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता चिलायं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति।

६१५. तत्पश्चात् उन पांच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर उन्होंने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! हमारा विजय चोर सेनापति कालधर्म से संयुक्त हो गया है। विजय चोर सेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत सी चोर विद्यायें, चोर मंत्र, चोर मायायें और चोर निकृतियां सिखलाई हैं। अतएव हे देवानुप्रियो ! हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि चिलात तस्कर का सिंह गुफा नामक चोर पल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषेक किया जाये'—इस प्रकार कहकर उन्होंने एक-दूसरे की यह बात स्वीकार की, स्वीकार करके चिलात को सिंह गुफा चोर पल्ली के चोर सेनापति के रूप में अभिषिक्त किया।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणे अहम्मसील-समुदायारे अहम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

तव वह चिलात चोरसेनापति हो गया—जो अधार्मिक, पापियों का प्रिय, पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला—पाप का उपदेश देने वाला, अधर्म का बीज, अधर्म-प्रेक्षक, अधर्म में अनुराग रखने वाला, कुधर्म और कुशील का आचरण करने वाला और पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला होकर विचरण करने लगा।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई चोरनायगे वहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण य वालघायगाण य वीसंभघायगाण य जूयकाराण य खंडरक्खाण य अण्णेसिं च वहूणं छिण्ण-भिण्ण वाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था।

तत्पश्चात् वह चोर नायक चिलात सेनापति बहुतेरे चोरों के लिये, जारों के लिये, राजा के अपकारियों के लिये, कर्जदारों के लिये, बालघातकों के लिये, विश्वास-घातकों के लिये, जुआरियों के लिये, खण्डरक्षकों के लिये तथा मनुष्यों के हाथ-पैर आदि अवयवों का छेदन-भेदन करने वाले और दूसरे भी बहुतेरे लोगों के लिये कुडंग के समान आश्रयदाता हो गया।

से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

वह उस सिंह गुफा नामक चोर पल्ली में पांच सौ चोरों का अधिपतित्व, प्रमुखत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञाऐश्वर्यत्व, सेनापतित्व करता हुआ, पालन करता हुआ विचरने लगा।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई रायगिहस्स नयरस्स दाहिण-पुरत्थिमिल्लं जणवयं वहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग-हणेहि य वंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य ओवीले-माणे-ओवीलेमाणे विद्धंसेमाणे-विद्धंसेमाणे नित्थाणं निद्धणं करेमाणे विहरइ।

उस समय वह चिलात चोर सेनापति राजगृह नगर के दक्षिण-पूर्व दिग्भाग में स्थित जनपद को, ग्रामघात द्वारा, नगरघात द्वारा, गायों का हरण करके, मनुष्यों को बंदी बनाकर, पथिकों को मार-कूट कर और सेंध लगाकर पुनः पुनः उत्पीड़ित करता हुआ, विध्वंस करता हुआ, लोगों को स्थानविहीन और निर्धन करता हुआ विचरने लगा।

चिलायस्स धणसत्थवाहगिहविलुम्पणं सुंसुमदारिया-हरणं च—

६१६. तए णं से चिलाए चोरसेणावई अण्णया कयाइ विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता ते पंच चोरसए आमंतेइ। तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे भोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए ते पंच चोरसए विपुलेणं धूव-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी—

चिलात का धन्य सार्थवाह गृह-विनाश और सुंसुमा दारिका-हरण—

६१६. तत्पश्चात् उस चिलात चोर सेनापति ने किसी एक समय विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाकर उन पांच सौ चोरों को आमंत्रित किया। उसके पश्चात् स्नान करके, बलिकर्म करके भोजन मंडप में उन पांच सौ चोरों के साथ विपुल अशन, पान, खाद्य, सुरा, मद्य, मांस, सीधु [मद्य-विशेष] प्रसन्ना [मदिराविशेष] का आस्वादन करते हुए, चखते हुए, परसते हुए, खाते हुए विचरने लगा। भोजन करने के पश्चात् उन पांच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके इस प्रकार कहा—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे अड्ढे। तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा नामं दारिया— अहीणा-जाव-सुरूवा। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! धणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंपामो। तुब्भं विपुले धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाले ममं सुंसुमा दारिया।"

'हे देवानुप्रियो! राजगृह नगर में धन्य नामक एक धनाढ्य सार्थवाह है। उसकी पत्नी भद्रा की आत्मजा और पांच पुत्रों के बाद जन्मी हुई सुंसुमा नाम की लड़की है—जो परिपूर्ण इन्द्रियों और शरीर वाली-यावत्-सुन्दर रूप वाली है। तो हे देवानुप्रियो! हम लोग चलें और धन्य सार्थवाह का घर लूटें। उस लूट में मिलने वाला विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, प्रवाल आदि तुम्हारे होंगे और सुंसुमा लड़की मेरी होगी।

तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स [एयमट्ठं ?] पडिसुणेंति।

तब उन पांच सौ चोरों ने चिलात की यह बात स्वीकार की।

६१७. तए णं ते चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्लं चम्मं दुरुहइ, दुरुहित्ता पच्चावरण्ह-कालसमयंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए उप्पीलिय-सरासण-पट्टिए पिणद्ध गेविज्जे आविद्ध-विमलवरचिंधपट्टे गहियाउह-पहरणे माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं, निक्किट्ठाहिं असिलट्ठीहिं, अंसगएहिं तोणेहिं, सज्जीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं, सरेहिं, समुल्लालियाहिं दाहाहिं, ओसारियाहिं ऊरुघंटियाहिं, छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया-महया उक्किट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुभिय-महासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणे सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता रायगिहस्स अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुप्पविसति, अणुप्पविसित्ता दिवसं खवेमाणे चिट्ठति।

६१७. तत्पश्चात् वह चिलात चोर सेनापति उन पांच सौ चोरों के साथ आर्द्र चर्म पर बैठा, बैठने के पश्चात् दिन के अन्तिम प्रहर में पांच सौ चोरों के साथ कवच धारण करके तैयार हुआ, शरासन पट्टिका को कसकर बांधा, गले की रक्षा के लिये गलूबंध पहना, अपनी पहचान कराने वाला श्रेष्ठ विमल प्रतीक पट को धारण किया, आयुध और प्रहरण लिये, कोमल गोमुखी फलक [ढाल] धारण किये, तलवारें म्यान से निकाल लीं, कंधों पर तरकस धारण किये, धनुष जीवायुक्त कर लिये, बाण बाहर निकाल लिये, बर्छियां और भाले उछलने लगे, जंघाओं पर बंधी हुई घंटिकायें लटका दीं, कूच के बाजे बजने लगे और चोरों के द्वारा जोर-जोर से किये जा रहे सिंहनादों और कलकलरवों से प्रक्षुभित समुद्र जैसी गर्जना करता हुआ सिंह गुफा नामक चोर पल्ली से निकला, निकलकर जहां राजगृह नगर था, वहां आया, आकर राजगृह से न अधिक दूर और न अधिक निकट एक सघन वन में घुस गया और घुसकर सूर्यास्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्त-कालसमयंसि निसंत-पडिनिसंतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं-

तत्श्चात् वह चिलात चोर सेनापति आधी रात के समय जब सब तरफ शांति और सुनसान हो गयी तब पाँच सौ चोरों

-जाव-मूइयाहिं ऊरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहे नयरे पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उदगवत्थि परामुसइ आयंते चोक्खे परम-सुइभूए तालुग्घाडणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता रायगिहस्स दुवारकवाडे उदएणं अच्छोडेइ, अच्छोडेत्ता कवाडं विहाडेइ, विहाडेत्ता रायगिहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणे-उग्घोसेमाणे एवं वयासी—"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! चिलाए नामं चोरसेणावई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागए धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे । तं जे णं नवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे, से णं निग्गच्छउ" त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणस्स गिहं विहाडेइ ।

के साथ कोमल गोमुखाकार फलकों को छाती से बांधकर-यावत्-जांघों में बंधी हुई घंटियों को लटकाकर जहाँ राजगृह नगर का पूर्व दिशा का द्वार था, वहां पहुँचा, पहुँचकर उसने उदकवस्ती [मशक] हाथ में ली, और उससे चुल्लू में जल लेकर आचमन किया, स्वच्छ हुआ, शुद्ध-पवित्र हुआ, फिर ताला खोलने की विद्या का आह्वान किया—स्मरण किया, स्मरण करके राजगृह के द्वार के किवाड़ों पर पानी छिटका, छिटककर किवाड उघाड़ दिये, उघाड़कर राजगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके ऊँचे-ऊँचे शब्दों में उद्‌घोषणा करते हुए इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रियो ! मैं चिलात नामक चोर सेनापति पाँच सौ चोरों के साथ सिंह गुफा चोर पल्ली से धन्य सार्थवाह का घर लूटने के लिये यहां आया हूँ । इसलिये जो नवीन माता का दूध पीने को इच्छुक हो वह मेरे सामने आये'—ऐसा कहकर जहाँ धन्य सार्थवाह का घर था, वहाँ आया, आकर धन्य सार्थवाह के घर का द्वार उघाड़ दिया ।

६१८. तए णं से धणे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाएत्ता सुबहुं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिनिक्खमई, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

६१८. तत्पश्चात् धन्य ने पांच सौ चोरों के साथ चिलात चोर सेनापति के द्वारा घर को लूटे जाते हुए देखा, वह देखकर भयभीत, त्रस्त, डरा हुआ, उद्विग्न, भयाक्रान्त हो वह अपने पांचों पुत्रों के साथ एकान्त स्थान में छिप कर जा बैठा ।

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह का घर लूटकर बहुत सारा धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला प्रवाल, रक्तरत्न [माणिक] आदि सारभूत स्वापतेय [धन-संपत्ति] तथा सुंसुमा दारिका को लिया, लेकर राजगृह नगर से बाहर निकला और निकलकर जिधर सिंह गुफा थी, उसी ओर जाने के लिये उद्यत हुआ ।

नगरगुत्तिएहिं चोरनिग्गहो—

६१९. तए णं से धणे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुबहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं गहाय रायगिहाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पडिगए । तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमाए दारियाए कूवं गमित्तए । तुब्भं णं देवाणुप्पिया ! से विपुले धण-कणगे, ममं सुंसुमा दारिया ।"

नगररक्षकों द्वारा चोर निग्रह—

६१९. तत्पश्चात् धन्यसार्थवाह, जहाँ अपना घर था, वहाँ आया, आकर बहुत सारा धन, कनक और सुंसुमा दारिका के अपहरण को जान बहुमूल्य, महर्घ, उच्च पुरुषों के योग्य भेंट लेकर नगर रक्षकों के पास पहुँचा, पहुँचकर वह उस बहुमूल्य, महर्घ, उच्च पुरुषों के योग्य भेंट को उनके सामने रखा और रखकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! चिलात चोर सेनापति सिंह गुफा चोर पल्ली से यहाँ आकर पांच सौ चोरों के साथ मेरे घर को लूटकर बहुत सारा धन, कनक और सुंसुमा दारिका को लेकर राजगृह से निकल कर सिंह गुफा की ओर गया है । इसलिये हे देवानुप्रियो ! हम सुंसुमा कन्या को वापस लाने के लिए जाना चाहते हैं । देवानुप्रियो ! जो विपुल धन [illegible] मिले वह सब तुम्हारा और सुंसुमा दारिका मेरी रहेगी ।'

तए णं ते नगरगुत्तिया धणस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया जाव गहियाउहपहरणा महया-महया उक्किट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पक्खुभिय-महासमुद्दं रवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरसेणावई तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे नगर-रक्षक धन्य की इस बात को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके वे कवच धारण करके सन्नद्ध हुए-यावत्-आयुध और प्रहरण लेकर जोर-जोर से किये जा रहे उत्कृष्ट सिंहनाद की कलकल ध्वनि से प्रक्षुभित समुद्र जैसी गर्जना से आकाशमण्डल को व्याप्त करते हुए राजगृह से निकले, निकलकर जहां चिलात चोर सेनापति था, वहां पहुँचे और वहां पहुँचकर चिलात चोर सेनापति के साथ युद्ध करने लगे।

तए णं ते नगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहेंति।

तब नगर-रक्षकों ने चोर सेनापति चिलात के बड़े बड़े वीरों को हत, मथित और घायल कर, ध्वजा पताकाओं का विनाश कर और कंठगत प्राण जैसा बनाकर दिशा-विदिशाओं में भगा दिया-रोक दिया।

तए णं से पंच चोरसया नगरगुत्तिएहिं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागा किच्छोवगयपाणा दिसोदिसिं पडिसेहिया समाणा तं विपुलं धण-कणगं विच्छड्डमाणा य विप्पकिरमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था।

उस समय वे पाँच सौ चोर नगर-रक्षकों द्वारा हत, मथित, बड़े-बड़े वीरों के घायल किये जाने, ध्वजा पताकाओं को नष्ट करने और कंठगत प्राण जैसा करके दिशा विदिशा में भगा दिये जाने से उस विपुल धन, कनक आदि को छोड़कर और फैंककर चारों ओर—कोई किसी तरफ और कोई किसी तरफ भाग खड़े हुए।

तए णं ते नगरगुत्तिया तं विपुलं धण-कणगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छंति।

तत्पश्चात् वे नगर-रक्षक उस विपुल धन, कनक आदि को लेते हैं और लेकर जिस ओर राजगृह नगर था उस तरफ चल पड़े।

चिलायस्स चोरपल्लीतो सुंसुमासद्धिं पलायणं सुंसुमा-मारणं च—

६२०. तए णं से चिलाए तं चोरसेन्नं तेहिं नगरगुत्तिएहिं हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहियं [पासित्ता ?] भीए तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अगामियं दीहमद्धं अडविं अणुप्पविट्ठे।

चिलात का सुंसुमा के साथ चोरपल्ली से पलायन और सुंसुमा-मारण—

६२०. तत्पश्चात् वह चिलात नगर-रक्षकों द्वारा सैन्य को हत, मथित, प्रवर वीरों को घायल, ध्वजा पताकाओं को नष्ट, कंठगत प्राण जैसा करके दिशा विदिशाओं में खदेड़ते देखकर भयभीत और त्रस्त हो सुंसुमा दारिका को लेकर एक महान अगामिक और लम्बे मार्गवाली अटवी में घुस गया।

तए णं से धणे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं चिलाएणं अडवीमुहिं अवहीरमाणिं पासित्ताणं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे सण्णद्धबद्ध वम्मिय-कवए चिलायस्स पयमग्गविहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ अणुगच्छइ।

उस समय धन्य सार्थवाह चिलात द्वारा सुंसुमा दारिका को अटवी में ले जाई जाती देखकर पाँचों पुत्रों के साथ और छठा स्वयं कवच और शस्त्र से सन्नद्ध होकर चिलात के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए, गर्जना करते हुए, चुनौती देते हुए, पुकारते हुए, तर्जना देते हुए और त्रस्त करते हुए उसके पीछे पीछे चलने लगा।

६२१. तए णं से चिलाए तं धणं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पछट्ठं सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिइ-कवयं समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे जाहे नो

६२१. तत्पश्चात् चिलात ने धन्य सार्थवाह को पाँचों पुत्रों के साथ तथा छठा स्वयं कवच और शस्त्रों से सज्जित होकर पीछा करते हुए देखा, यह देखकर वह निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पराक्रम विहीन हो गया और जब सुंसुमा दारिका को संभालने

संचाएइ सुंसुमं दारियं निव्वाहित्तए ताहे संते तंते परितंते नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिंदइ, छिंदित्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुप्पविट्ठे।

में—ले जाने में सक्षम नहीं रहा तब श्रांत हो गया—थक गया ग्लानि को प्राप्त हुआ और अत्यन्त श्रांत हो गया—घबरा गया और दूसरा कोई उपाय न देखकर उसने नीलकमल, भैंस के सींग के समान, अलसी के फूल के समान, प्रभावाली तीक्ष्ण धार वाली तलवार हाथ में ली, हाथ में लेकर सुंसुमा दारिका का उत्तमांग—मस्तक काट लिया, काटकर उस सिर को लेकर अग्रामिक अटवी में घुस गया।

६२२. तए णं से चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तण्हाए [छुहाए ?] अभिभूए समाणे पम्हुट्ठ-दिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए।

६२२. तत्पश्चात् वह चिलात उस अग्रामिक अटवी में प्यास से [भूख से ?] पीड़ित होकर दिशा [मार्ग] भूल गया और सिंह गुफा चोर पल्ली तक न पहुंचकर बीच में ही मर गया।

निगमणपदं—

निगमन पद—

६२३. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स खेलासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुरुय-उस्सास-निस्सासस्स दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असासयस्स सडण-पडण-विद्धंसणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जस्स वण्णहेउं वा रूवहेउं वा बलहेउं वा विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे जाव चाउरंतं संसार-कंतारं अणुपरियट्टिस्सइ—जहा व से चिलाए तक्करे।

६२३. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो साधु, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्डित हो, गृहवास त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करके वमन को बहाने वाले, पित्त को बहाने वाले, कफ को बहाने वाले, शुक्र को बहाने वाले, रक्त को बहाने वाले, दुस्सह उश्वास-निःश्वास वाले-दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास वाले, दुर्गन्धयुक्त मूत्र, मल [टट्टी], पीप से परिपूर्ण, विष्ठा-मूत्र-श्लेष्म, नाक का मैल, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित से उत्पन्न होने वाले, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न-गलन विध्वंसन-धर्मा और पीछे या पहले अवश्य ही छूटने वाले - ऐसे इस औदारिक शरीर के वर्ण, रूप, बल और विषय प्राप्ति के निमित्त आहार करते हैं, वे इसी लोक में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं की अवहेलना के पात्र बनते हैं—यावत्-चतुर्गति रूप संसार कांतार में परिभ्रमण करते हैं—भटकते हैं—जैसे कि वह चिलात तस्कर।

धणस्स सुंसुमाकए कंदणं—

धन्य का सुंसुमा के लिये क्रन्दन—

६२४. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं (सद्धिं ?) अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे-परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाएइ चिलाय चोरसेणावइं साहत्थिं गिण्हित्तए। से णं तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुंसुमं दारियं चिलाएण जीवियाओ ववरोवियं पासई, पासित्ता परसुनियत्ते व्व चंपगपायवे निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्क-संधिबंधणे धरणितलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिए।

६२४. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह पांचों पुत्रों के साथ तथा छठा स्वयं उस अग्रामिक अटवी में चिलात के पीछे-पीछे इधर-उधर दौड़ते-भागते तृषा एवं क्षुधा से श्रान्त, क्लान्त, और अत्यन्त श्रान्त हो जाने पर भी चिलात चोर सेनापति को अपने हाथ से पकड़ने में समर्थ नहीं हो सका। तब वह वहां से लौटा और लौटकर जहां सुंसुमा दारिका को चिलात ने जीवनरहित कर दिया था, वहां आया, आकर चिलात के द्वारा मारी गई सुंसुमा दारिका को देखा, देखकर कुल्हाड़े से काटे गये चम्पक वृक्ष के समान, संधि बंधन से मुक्त इन्द्र ध्वज के समान धड़ पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

तए णं से धणे सत्थवाहे [पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं ?] अप्पछट्ठे आसत्थे कूवमाणे कंदमाणे विलवमाणे महया-महया सद्देणं

तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह [पांचों पुत्रों के साथ ?] और छठा स्वयं जब आश्वस्त हुआ तब चीत्कार करते हुए, आक्रन्द

कुहुकुहुस्स परुन्ने सुचिरकालं बाहप्पमोक्खं करेइ।

करते हुए, विलाप करते हुए जोर-जोर से कुह-कुह शब्द से रोते हुए बहुत देर तक आँसू बहाता रहा।

अडविपत्तेहिं धणाईहिं छुहाभिभूएहिं सुंसुमा-मंससोणियाहारो—

अटवी में क्षुधाभिभूत धन्यादि द्वारा सुंसुमा के मांसशोणित का आहार—

६२५. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं [सद्धिं ?] अप्पछट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परब्भाहते समाणे तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणे संते तंते परितंते निव्विण्णे तीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणे नो चेव णं उदगं आसादेति। तते णं उदगं अणासाए-माणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविएल्लिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धणं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु पुत्ता! सुंसुमाए दारियाए अट्ठाए चिलायं तक्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणा नो चेव णं उदगं आसादेमो। तए णं उदगं अणासाएमाणा नो संचाएमो रायगिहं संपावित्तए। तण्णं तुब्भे ममं देवाणुप्पिया! जीवियाओ ववरोवेह, मम मंसं च सोणियं च आहारेह, तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।"

६२५. तत्पश्चात् उस अग्रामिक अटवी में चिलात चोर का पीछा करते हुए चारों ओर दौड़ भाग करने के कारण भूख-प्यास से पीड़ित होने पर पांचों पुत्रों सहित और छठा स्वयं धन्य सार्थवाह ने उस अग्रामिक अटवी में चारों तरफ पानी की मार्गणा-गवेषणा की और गवेषणा करने पर भी उसके प्राप्त न होने से वह श्रान्त हो गया, विषाद में डूब गया—खिन्न हो गया अत्यन्त क्लान्त हो गया और उदास हो गया एवं उस अग्रामिक अटवी में जल की खूब खोज करने पर भी जल प्राप्त नहीं हुआ, तब वह खोजने पर भी जल प्राप्त न कर सका तो जहाँ सुंसुमा जीवन रहित की गई थी, उसी स्थान पर आया, आकर धन्य ने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! सुंसुमा दारिका के लिये चिलात तस्कर के पीछे चारों ओर दौड़-भाग करते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होकर हमने इस अग्रामिक अटवी में जल की मार्गणा-गवेषणा की, गवेषणा करने पर भी जल प्राप्त नहीं हुआ। जल के बिना हम लोग राजगृह पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। इसलिये हे देवानुप्रिय! तुम मुझे जीवन से रहित कर दो, मेरे मांस और रुधिर का आहार करो, उस आहार से स्वस्थ होकर, फिर इस अग्रामिक अटवी को पारकर जाना, राजगृह को पा लेना, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धी और परिचितों से मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी होना।'

६२६. तए णं से जेट्ठे पुत्ते धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धणं सत्थवाहं एवं वयासी—"तुब्भे णं ताओ! अम्हं पिया गुरुजणया देवयभूया ठावक्का पइट्ठावका संरक्खगा संगोवगा। तं कहण्णं अम्हे ताओ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भं णं मंसं च सोणियं च आहारेमो? तं तुब्भे णं ताओ। ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं आहारेह, अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह।"

६२६. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर ज्येष्ठ पुत्र धन्य सार्थवाह से बोला—'हे तात! आप हमारे पिता हो, गुरु हो, जनक हो, देवता स्वरूप हो, स्थापक हो, प्रतिस्थापक हो, संरक्षक हो, संगोपक हो। अतः हे तात! हम आपको कैसे जीवन से रहित करें, कैसे आपके मांस और रुधिर का आहार करें? हे तात! आप मुझे जीवन हीन कर दो, मेरे मांस और रुधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो, राजगृह को प्राप्त करो और मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों, सम्बन्धियों और परिचितों से मिलो और अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी बनो।'

तए णं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी—"मा णं ताओ! अम्हे जेट्ठं भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तस्स णं मंसं च सोणियं च आहारेमो। तं तुब्भे णं ताओ! ममं जीवियाओ

तत्पश्चात् दूसरे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा—'हे तात! गुरु और देव के समान ज्येष्ठ भ्राता को जीवन से रहित नहीं करेंगे, उनके मांस और रुधिर का आहार नहीं करेंगे। अतएव

ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अगामियं अडविं नित्थरिहिह, रायगिहं च संपवेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य अभागी भविस्सह।" एवं-जाव-पंचमे पुत्ते।

हे तात ! आप मुझे जीवन रहित कीजिए, मेरे मांस और रुधिर का आहार कीजिये, अग्रामिक अटवी को पार कीजिये, राजगृह को प्राप्त कीजिये, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचितों से मिलिये और अर्थ, धर्म और पुण्य के भागी बनिये।' इसी प्रकार-यावत्-पाँचवें पुत्र ने भी कहा।

६२७. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंचपुत्ते एवं वयासी—"मा णं अम्हे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो। एस णं सुंसुमाए दारियाए सरीरे निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पजढे। तं सेयं खलु पुत्ता ! अम्हं सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए। तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो।"

६२७. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पाँचों पुत्रों की हृदयाभिलाषा जानकर उन पाँचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—'हे पुत्रो ! हम अपने में से एक को भी जीवन से रहित न करें। सुंसुमा दारिका का यह निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीव से त्यक्त शरीर है। अतएव हे पुत्रो ! सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिये उचित होगा। जिससे हम लोग उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा सकेंगे।'

तए णं ते पंचपुत्ता धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणेंति।

तदनन्तर धन्य सार्थवाह के इस कथन को सुनकर उन पांचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की।

६२८. तए णं धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करेत्ता सरगं करेइ, करेत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गिं पाडेइ, पाडेत्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्केत्ता दारुयाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं पज्जालेइ, सुंसुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ। तेणं आहारेणं अवथद्धा समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्त-नाइ-नियग-संयण-संबंधि-परियणं अभिसमण्णागया, तस्स य विउलस्स धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्ज आभागी जाया।

६२८. तत्पश्चात् पाँचों पुत्रों के साथ धन्य सार्थवाह ने अरणि की, फिर किया, शर करके शर से अरणि का मंथन किया, मंथन करके अग्नि उत्पन्न की, फिर अग्नि धौंकी, धौंककर उसमें लकड़ियाँ डालीं, अग्नि प्रज्वलित की और फिर सुंसुमा दारिका का मांस पकाकर उस मांस और रुधिर का आहार किया। उस आहार से स्वस्थ होकर राजगृह नगर को प्राप्त किया, अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों, सम्बन्धियों से मिले और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल, रक्त रत्न आदि संसार के सारभूत धन एवं पुण्य के भागी बने।

६२९. तए णं से धणे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता कल्लेणं विगयसोए जाए यावि होत्था।

६२९. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने सुंसुमा दारिका के बहुत से लौकिक मृतक-कृत्य किये, करके काल के बीत जाने पर शोक रहित हो गया।

धणस्स पव्वज्जा—

धन्य की प्रव्रज्या—

६३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए समोसढे।

तए णं धणे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए। एक्कारसंगवी। मासियाए संलेहणाए सोहम्मे कप्पे उववण्णे। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

६३०. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में पधारे।

उस समय पुत्रों सहित धन्य सार्थवाह धर्म श्रवण कर प्रव्रजित हुआ। ग्यारह अंगों का वेत्ता हो गया। अंतिम समय आने पर एक मास की संलेखना करके सौधर्म-कल्प में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा।

निगमणं—

"जहा वि य णं जंबू ! धणेणं सत्थवाहेणं नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुंसुमाए दारियाए मंससोणिए आहारिए, नन्नत्थ एगाए रायगिह-संपावणट्ठयाए।

निगमन—

'हे जम्बू ! जैसे उस धन्य सार्थवाह ने वर्ण के लिए, रूप के लिए, बल के लिए अथवा विषय के लिए सुंसुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार नहीं किया था, किन्तु मात्र राजगृह नगर को पाने के लिए ही आहार किया था।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स [खेलासवस्स ?] 'सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुरुय-उस्सास-निस्सासस्स दुरुय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असासयस्स सडण-पडण-विद्धंसणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नन्नत्थ एगाए सिद्धिगमण-संपावणट्ठयाए, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं संसारकंतारं वोईवइस्सइ—जहा व से सपुत्ते धणे सत्थवाहे।"

इसी प्रकार हे आयुष्मन श्रमणो ! हमारे जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनी, आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्डित होकर, गृह त्यागकर अनगार दीक्षा लेकर वमन को बहाने वाले, पित्त को बहाने वाले [कफ को बहाने वाले ?] शुक्र को बहाने वाले, शोणित को बहाने वाले, दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास वाले, दुर्गन्ध-युक्त मल-मूत्र-श्लेष्म, नासिका मल, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित से उत्पन्न होने वाले अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न-पड़न-विध्वंसनधर्मा और पहले-पीछे अवश्य छूटने योग्य इस औदारिक शरीर के वर्ण के लिये, रूप के लिये, बल के लिये अथवा विषय प्राप्ति के लिये आहार नहीं करते हैं, किन्तु मात्र सिद्ध गति प्राप्त करने के लिये आहार करते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत-सी श्राविकाओं के अर्चनीय होते हैं-यावत्-चतुर्गति रूप संसार कांतार को पार करते हैं—जैसे कि पुत्रों सहित वह धन्य सार्थवाह।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठारसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।[1]

त्ति बेमि।

—णायाधम्मकहाओ सु. १, अ. १८

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान-यावत्-संप्राप्त महावीर द्वारा अठारहवें ज्ञात अध्ययन में यह अर्थ कहा गया है।

—उसी प्रकार मैंने कहा है।

६३१. अंगवंसाओ णं सत्तहत्तरि रायाणो मुण्डे-जाव-पव्वइया।

सम० ७७ सु० १५५

६३१. अंगवंश के सतहत्तर राजा मुण्डित-यावत्-प्रव्रजित हुए।

卐

卐

४८. महावीरतित्थे कालोदाइ कहाणयं

४८ महावीरतीर्थ में कालोदायी कथानक

रायगिहट्ठियाणं कालोदाइआईणं अत्थिकायविसये संदेहो—

६३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था वन्नओ। गुणसिलए चेइए—वन्नओ,-जाव-पुढविसिलापट्टए—वण्णओ।

राजगृह स्थित कालोदायी आदि को अस्तिकाय विषयक संदेह—

६३२. उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था, वर्णन। गुणशिलक चैत्य था—वर्णन,-यावत्-पृथ्वी शिलापट्टक था—वर्णन।

---

१. वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह सो चिलाइपुत्तो सुंसुमगिद्धो अकज्ज-पडिबद्धो। धण-पारद्धो पत्तो, महाडवि वसण-सयकलियं ॥१॥
तह जीवो विसय-सुहे, लुद्धो काऊण पावकिरियाओ। कम्मवसेणं पावइ, भवाडवीए महादुक्खं ॥२॥
धणसेट्ठी विव गुरुणो, पुत्ता इव साहवो भवो अडवी। सुयमंसमिवाहारो, रायगिहं इह सिवं नेयं ॥३॥
जह अडवि-नियर-नित्थरण-पावणत्थं तएहिं सुयमंसं। भुत्तं तहेह साहू, गुरुण आणाइ आहारं ॥४॥
भव-लंघण-सिव-साहणहेउं भुंजंति ण गेहीए। वण्ण-बलरूव-हेउं, च भावियप्पा महासत्ता ॥५॥

तस्स णं गुणसिलयस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते बहवे अन्न-उत्थिया परिवसंति, तं जहा—कालोदाई सेलोदाई सेवालोदाई उदए नामुदए नम्मुदए अन्नवालए सेलवालए संखवालए सुहत्थी गाहावई।

६३३. तए णं तेंसि अन्नउत्थियाणं अन्नया कयाई एगयओ समुवागयाणं सन्निविट्ठाणं सन्निसन्नाणं अयमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था —"एवं खलु समणे नायपुत्ते पंच अत्थिकाए पन्नवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं, जाव आगा सत्थिकायं तत्थ णं समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पन्नवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं पोग्गलत्थिकायं, एगं च णं समणे णायपुत्ते जीवत्थिकायं अरूविकायं जीवकायं पन्नवेइ। तत्थ णं समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पन्नवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं जीवत्थिकायं, एगं च णं समणे णायपुत्ते पोग्गलत्थिकायं रूविकायं अजीवकायं पन्नवेइ, कहमेयं मन्ने एवं ?"

कालोदाइआईणं गोयमं पइ अत्थिकायसंकानिरूवणं—

६३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-गुणसिलए चेइए समोसढे-जाव-परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं एवं जहा बिइयसए नियंठुद्देसए-जाव-भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं पडिगाहित्ता रायगिहाओ-जाव-अतुरियमचवलमसंभंतं-जाव-रियं सोहेमाणे सोहेमाणे तेंसि अन्नउत्थियाणं अदूरसामंतेणं वीइवयइ।

उस गुणशिलक उद्यान के समीप थोड़ी दूर, बहुत से अन्य तीर्थिक रहते हैं यथा-कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक शंखपालक, सुहस्ती गाथापति गृहपति।

६३३. तत्पश्चात् अन्य किसी एकसमय एकत्र हुए, बैठे हुए, सुखपूर्वक बैठे हुए उन अन्यतीर्थिकों में इस प्रकार का यह वार्तालाप हुआ—'श्रमण ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं, यथा-धर्मास्तिकाय-यावत्-आकाशास्तिकाय उनमें श्रमण, ज्ञातपुत्र चार अस्तिकाय अजीवकाय हैं, ऐसा बताते हैं। वे इसप्रकार-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय एक जीवास्तिकाय को श्रमण ज्ञातपुत्र अरूपी जीवकाय बताते हैं। उनमें से श्रमण ज्ञातपुत्र चार अस्तिकाय को अरूपी काय प्ररूपित करते हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय एक पुद्गलास्तिकाय को रूपी अजीवकाय प्ररूपित करते हैं इस प्रकार यह कैसे माना जा सकता है ?'

कालोदायी आदि का गौतम से अस्तिकाय शंका निरूपण—

६३४. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर-यावत्-गुणशिलक चैत्य में समवसरित हुए-यावत्-परिषदा वापस लौटी। उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार दूसरे शतक के निर्ग्रन्थोद्देशक में किये गये वर्णन के अनुरूप-यावत्-भिक्षाचर्या के लिये अटन करते हुए यथा पर्याप्त भक्तपान को ग्रहण करके राजगृह नगर से-यावत्-त्वरारहित, असम्भ्रान्त रूप से—यावत्-ईर्यासमिति को बारम्बार शोधते हुए उन अन्यतीर्थिकों के

गोयमकयं कालोयाइआईणं संकाए समाहाणं—

६३५. तए णं से भगवं गोयमे ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

"नो खलु वयं देवाणुप्पिया ! अत्थिभावं नत्थि त्ति वयामो नत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो, अम्हे णं देवाणुप्पिया ! सव्वं अत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो, सव्वं नत्थिभावं नत्थि त्ति वयामो, तं चेयसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं सयमेव पच्चुवेक्खह" त्ति कट्टु से अन्नउत्थिए एवं वदति, एवं वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे एवं जहा नियंठुद्देसए-जाव-भत्तपाणं पडिदंसेइ, भत्तपाणं पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने-जाव-पज्जुवासइ।

गौतमकृत कालोदायी आदि की शंका का समाधान—

६३५. तत्पश्चात् उन भगवान गौतम ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव को नास्ति यह नहीं कहते हैं और उसी तरह नास्तिभाव को अस्ति यह भी नहीं कहते हैं, हे देवानुप्रियो ! हम समस्त अस्तिभाव को अस्ति कहते हैं और समस्त नास्तिभाव को नास्ति कहते हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो ! ज्ञान द्वारा तुम स्वयमेव इस अर्थ का विचार करो।' ऐसा उन अन्यतीर्थिकों से कहते हैं, इस प्रकार कहकर जहाँ गुणशिलक चैत्य है, जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं, निर्ग्रंथ उद्देशक के वर्णन के अनुरूप-यावत्-भक्तपान को दिखाते हैं, भक्तपान को दिखाकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन नमस्कार करके न अति निकट-यावत्-पर्युपासना करते हैं।

कालोदाइकयाए पंचत्थिकायसंबंधिविविहपुच्छाए णातपुत्तकयं समाहाणं—

६३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महाकहा-पडिवन्ने यावि होत्था। कालोदाई य तं देसं हव्वमागए।

कालोदाई ति समणे भगवं महावीरे कालोदाइं एववयासी—

से नूणं ते कालोदाई ! अन्नया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सन्निविट्ठाणं तहेव-जाव-से कहमेयं मन्ने एवं ?

से नूणं कालोदाइ ! अट्ठे समट्ठे ?

हंता ? अत्थि।

तं सच्चे णं एसमट्ठे कालोदाई ! अहं पंचत्थिकायं पन्नवेमि, तं जहा—धम्मत्थिकायं-जाव-पोग्गलत्थिकायं, तत्थ णं अहं चत्तारि अत्थिकाए अजीवत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव-जाव-एगं च णं पोग्गलत्थिकायं रूविकायं पण्णवेमि।

कालोदायी-कृत पंचास्तिकाय सम्बन्धी विविध प्रश्नों का ज्ञातपुत्र-कृत समाधान—

६३६. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर महाकथा प्रतिपन्न [धर्मोपदेश करने में प्रवृत्त] थे। उस स्थान पर कालोदायी शीघ्र आया।

श्रमण भगवान महावीर ने कालोदायी से कहा—

हे कालोदायी ! अन्यदा कोई एक समय एकत्रित हुए, आये हुए, बैठे हुए, तुमको पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार-यावत्-वह बात इस तरह कैसे मानी जा सकती है ?

हे कालोदायी ! सचमुच क्या यह बात यथार्थ है ?

हाँ ! यथार्थ है।

हे कालोदायी ! यह बात सत्य है, मैं पाँच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ, जैसे कि धर्मास्तिकाय-यावत्-पुद्गलास्तिकाय, उनमें चार अस्तिकाय अजीवास्तिकाय को अजीव रूप में कहता हूँ, पूर्व में कहे प्रमाण-यावत्-एक पुद्गलास्तिकाय को रूपी काय कहता हूँ।

६३७. तए णं से कालोदाई समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

एयंसि णं भंते ! धम्मत्थिकायंसि अधम्मत्थिकायंसि आगासत्थिकायंसि अरूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठइत्तए वा निसीइत्तए वा तुयट्टित्तए वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

कालोदाई ! एगंसि णं पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा-जाव-तुयट्टित्तए वा।

६३७. तब उस कालोदायी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! इन अरूपी अजीवकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय में बैठने, सोने, खड़े रहने, नीचे बैठने, लोटने में कोई भी शक्तिमान है ?

यह अर्थ योग्य नहीं है।

हे कालोदायी ! एक रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय में बैठने, सोने-यावत्-लोटने में कोई भी शक्तिमान है।

एयंसि णं भंते ! पोग्गलत्थिकायंसि रुविकायंसि अजीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावकम्मफलविवागसंजुत्ता कज्जंसि ?

हे भगवन् ! इस रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय में जीवों को पाप फल विपाक सहित पापकर्म लगते हैं ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई !

हे कालोदायी ! यह अर्थ योग्य नहीं है ।

६३८. एयंसि णं जीवत्थिकायंसि अरूविकायंसि जीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

६३८. क्या इस अरूपीकाय जीवास्तिकाय में जीवों को पाप फल विपाक सहित पाप कर्म लगते हैं ?

हंता ! कज्जंति ।

हाँ लगते हैं ।

कालोदाइस्स निग्गंथपवज्जागहणं विहरणं च—

कालोदायी द्वारा निर्ग्रंथ प्रव्रज्या ग्रहण और विहरण—

६३९. एत्थ णं से कालोदाई संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

६३९. यहाँ वह कालोदायी संबुद्ध हुआ और श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतियं धम्मं निसामेत्तए एवं जहा खंदए तहेव पव्वइए तहेव एक्कारस अंगाइं-जाव-विहरइ ।

'हे भगवन् ! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूँ— धर्म श्रवण करने का इच्छुक हूं । इस तरह स्कंदक के समान उसने प्रव्रज्या अंगीकार की और उसी तरह ग्यारह अंगों को पढ़कर-यावत्-विचरता है ।

भगवओ महावीरस्स जणवयविहारो—

भगवान महावीर का जनपद विहार—

६४०. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहाओ नगराओ गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

६४०. तत्पश्चात् अन्यदा कोई एक दिन श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर और गुणशीलक चैत्य से बाहर निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपदों में विहार करते हैं ।

कालोदाइकयाए पावकम्म-कल्लाणकम्मफलविवागपुच्छाए भगवओ समाहाणं—

कालोदायीकृत पापकर्म-कल्याण कर्म फल विपाक प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४१. तेणं कालेणं तेण समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए । तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ-जाव-समोसढे ।-जाव-परिसा पडिगया ।

६४१. उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर में गुणशीलक चैत्य था । वहां अन्यदा कोई दिन श्रमण भगवान महावीर-यावत्-पधारे । परिषदा वापस गई ।

६४२. "तए णं से कालोदाई अणगारे अन्नया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

६४२. उसके बाद वह कालोदायी अनगार अन्य किसी दिन जहां श्रमण भगवान हैं, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

अत्थि णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हे भदन्त ! जीवों के पापकर्म पाप-अनुभाग [illegible] होते हैं ?

तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए-जाव-भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ।

परिणत होता है, इसी तरह हे कालोदायी ! जीवों को प्राणातिपात-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य शुरुआत में अच्छा लगता है, उसके बाद परिणमित होने पर घृणित रूप से-यावत्-बारंबार परिणत होता है, इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के पापकर्म पाप फल विपाक सहित होते हैं ।

कल्लाणकम्मविसये पण्होत्तरं—

६४३. अत्थि णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता ! अत्थि ।

कहन्नं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ?

कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुन्नं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं ओसहमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवन्नत्ताए-जाव-सुहत्ताए नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे-जाव-परिग्गहवेरमण कोहविवेगे-जाव-मिच्छादंसणसल्लविवेगे तस्स णं आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए-जाव-नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा-जाव-कज्जंति ।

कल्याणकर्म के विषय में प्रश्नोत्तर—

६४३. हे भगवन् ! क्या जीवों के कल्याणकर्म कल्याण फल विपाक सहित होते हैं ?

हां, होते हैं ।

हे भगवन् ! जीवों के कल्याणकर्म कल्याणफल विपाक सहित कैसे होते हैं ?

हे कालोदायी ! जैसे कोई एक पुरुष सुन्दर स्थाली में पकाने से शुद्ध अठारह प्रकार के व्यंजनों से युक्त औषधि मिश्रित भोजन करता है, वह भोजन खाते समय प्रारम्भ में भद्र-रुचिकर-अच्छा नहीं लगता है उसके बाद जब वह अत्यन्त परिणाम को प्राप्त होता है—पचता है तब वह सुरूपपने से, सुवर्णपने से-यावत्-सुखदपने से परिणत होता है किन्तु दुखरूप से परिणत नहीं होता है, इसी तरह हे कालोदायी ! जीवों को प्राणातिपातविरमण-यावत्-परिग्रहविरमण, क्रोध का त्याग-यावत्-मिथ्यादर्शनशल्य का त्याग प्रारम्भ में अच्छा नहीं लगता है, किन्तु उसके बाद जब वह परिणाम को प्राप्त करता है तब वह बारंबार सुखपने से परिणत होता है-यावत्-दुखरूप से परिणत नहीं होता है, इस तरह हे कालोदायी ! जीवों के कल्याणकर्म कल्याणफलविपाक सहित होते हैं ।

कालोदाइकयाए अगणिकायसमारभण-निव्वावण-संबंधियकम्मबन्ध पुच्छाए भगवओ समाहाणं—

६४४. दो भंते ! पुरिसा सरिसया-जाव-सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं अगणिकायं समारभंति तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ, एएसि णं भंते ! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव महासवतराए चेव महावेयणतराए चेव, कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव-जाव-अप्पवेयणतराए चेव, जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, जे वा से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ ?

कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव-जाव-महावेयणतराए चेव, तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव-जाव-अप्पवेयणतराए चेव ।

कालोदायीकृत अग्निकाय समारंभण-निर्वापण सम्बन्धी कर्म बंध के प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४४. हे भदन्त ! सदृश दो पुरुष-यावत्-समान भांड-पात्रादि उपकरण वाले हों, वे परस्पर साथ में अग्निकाय का समारंभ-हिंसा करते हैं, उनमें एक पुरुष अग्निकाय को प्रकट करता है और एक पुरुष उसे बुझाता है, हे भगवन् ! इन दो पुरुषों में कौनसा पुरुष महाकर्म—महाक्रिया वाला, महाआस्रव वाला और महावेदना वाला होता है और कौनसा पुरुष अल्प कर्मवाला-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है, अथवा जो पुरुष अग्निकाय को प्रगट करता है वह या जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है वह ?

हे कालोदायी ! उन दो पुरुषों में जो अग्निकाय को प्रज्वलित करता है, वह पुरुष महाकर्म वाला-यावत्-महावेदना वाला होता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पुरुष अल्पकर्मवाला-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—तत्थ णं जे से पुरिसे-जाव-अप्पवेयणतराए चेव ?

कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारभइ, बहुतरागं आउक्कायं समारभइ, अप्पतरायं तेउकायं समारभइ, बहुतरागं वाउकायं समारभइ, बहुतरायं वणस्सइकायं समारभइ, बहुतरागं तसकायं समारभइ; तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पतरायं पुढविक्कायं समारभइ, अप्पतरागं आउक्कायं समारभइ, बहुतरागं तेउक्कायं समारभइ, अप्पतरागं वाउक्कायं समारभइ, अप्पतरागं वणस्सइकायं समारभइ, अप्पतरागं तसकायं समारभइ; से तेणट्ठेणं कालोदाई ! जाव-अप्पवेयणतराए चेव ।

हे भगवन् ! इस तरह आप कैसे—किसलिये कहते हैं—उनमें जो पुरुष-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है ?

हे कालोदायी ! उन दोनों में से जो पुरुष अग्निकाय को प्रदीप्त करता है, वह पुरुष पृथ्वीकाय का प्रचुर परिमाण में समारंभ करता है, जलकाय का प्रभूत मात्रा में समारंभ करता है, अल्प अग्निकाय का समारंभ करता है, वायुकाय का अधिक समारंभ करता है, बहुत से वनस्पतिकाय का समारंभ करता है, अधिक त्रसकाय का समारंभ करता है; और उनमें जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है वह पुरुष अल्पपृथ्वीकाय का समारंभ करता है, अल्प जलकाय का समारंभ करता है, बहुत अग्निकाय का समारम्भ करता है, अल्प वायुकाय का समारंभ करता है, अल्प वनस्पतिकाय का समारंभ करता है, अल्प त्रसकाय का समारंभ करता है, इस कारण हे कालोदायी ! यावत्-अल्पतर वेदना वाला होता है ।

कालोदाइकयाए अचित्तपोग्गलावभासण - उज्जोवण-संबंधियपुच्छाए भगवओ समाहाणं—

कालोदायीकृत अचित्त पुद्गलावभासन-उद्योतन सम्बन्धी प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४५. अत्थि णं भंते ! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ?

हंता ! अत्थि ।

कयरे णं भंते ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति-जाव-पभासेंति ?

कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गंता दूरं निवयइ, देसं गंता देसं निवयइ, जहिं जहिं च णं सा निवयइ तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति-जाव-पभासंति, एएणं कालोदाई ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति जाव-पभासेंति ।

६४५. हे भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं ? उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रकाश करते हैं ?

हां, करते हैं !

हे भगवन् ! अचित्त होने पर भी कौन से पुद्गल अवभास करते हैं-यावत्-प्रकाश करते हैं ?

हे कालोदायी ! क्रोधित अनगार की तेजोलेश्या निकलकर दूर जाकर दूर पड़ती है, देश में जाकर उस देश में पड़ती है, जहां-जहां वह पड़ती है वहां वहां वे अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं-यावत्-प्रकाश करते हैं, इस कारण वे अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं-यावत्-प्रकाश करते हैं ।

कालोदाइस्स निव्वाणगमणं—

कालोदायी का निर्वाणगमन—

६४६. तए णं से कालोदाई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-जाव-अप्पाणं भावेमाणे जहा पढमसए कालासवेसियपुत्ते-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

६४६. तत्पश्चात् वह कालोदायी अनगार श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम-यावत्-आत्मा को भावित करता हुआ—भावित हुआ प्रथम शतक में कालासवेसियपुत्र की तरह-यावत् सर्व दुःखों से रहित हुआ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भगवई स. ७, उ. १०

हे भगवन् ! यह इस प्रकार है, हे भगवन् ! यह इस प्रकार है ।

卐 卐

४९ पुण्डरीय कण्डरीय कहाणयं

महाविदेहे पुण्डरीगिणी-नगरीए रायपुत्ता पुण्डरीय-कंडरीया—

६४७. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे, सीयाए महानईए उत्तरिल्ले कूले, नीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, उत्तरिल्लस्स सीयामुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावई नामं विजए पण्णत्ते।

तत्थ णं पुंडरीगिणी नामं रायहाणी पण्णत्ता—नवजोयण-वित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे णं पुंडरीगिणीए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए नलिणिवणे नामं उज्जाणे।

तत्थ णं पुंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था।

तस्स णं पउमावई नामं देवी होत्था।

तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा—पुंडरीए य, कंडरीए य—सुकुमालपाणिपाया। पुंडरीए जुवराया।

महापउमरण्णो पव्वज्जा पुण्डरीयाभिसेओ य—

६४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं। महापउमे राया निग्गए। धम्मं सोच्चा पुंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए। पुंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया। महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ। तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तए णं से महापउमे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता-जाव-सिद्धे।

तए णं थेरा अण्णया कयाइ पुणरवि पुंडरीगिणीए रायहाणीए नलिणीवणे उज्जाणे समोसढा। पुंडरीए राया निग्गए। कंडरीए महाजणसद्दं सोच्चा जहा महाबलो जाव पज्जुवासइ। थेरा धम्मं परिकहेंति। पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए।

४९. पुण्डरीक-कण्डरीक कथानक

महाविदेह में पुण्डरीकिणी नगरी के राजपुत्र पुण्डरीक-कंडरीक—

६४७. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह में सीता महानदी के उत्तरी किनारे, नीलवंत नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, उत्तर की तरफ के सीतामुख नामक वनखण्ड से पश्चिम में और एकशैलक नामक वक्षार पर्वत से पूर्व दिशा में पुष्कलावती नामक विजय है।

उसमें पुण्डरीकिणी नामक राजधानी है—जो नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी-यावत्-साक्षात देवलोक के समान मनोहर, दर्शनीय, सुन्दर रूपवाली और प्रतिरूप है।

उस पुण्डरीकिणी नगरी के उत्तर पूर्व दिग्भाग [ईशान कोण] में नलिनीवन नामक उद्यान है।

उस पुण्डरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था।

उसकी पद्मावती नाम की रानी थी।

उस महापद्म राजा के पुत्र, पद्मावती देवी के आत्मज दो राजकुमार थे, यथा—पुण्डरीक और कंडरीक; जिनके हाथ-पैर आदि अंगोपांग सुकुमाल थे। पुण्डरीक युवराज था।

महापद्म राजा की प्रव्रज्या और पुण्डरीक का अभिषेक—

६४८. उस काल और उस समय में स्थविर मुनियों का आगमन हुआ। महापद्म राजा [वंदना के लिये] निकला। धर्म को सुनकर पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित कर उसने दीक्षा अंगीकार करली। 'पुण्डरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हुआ। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। तदनन्तर स्थविर मुनि बाहर के जनपदों में विहार करने लगे।

तत्पश्चात् महापद्म ने बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन कर-यावत्-सिद्धि प्राप्त की।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय पुनः स्थविर पुण्डरीकिणी राजधानी के नलिनी वन उद्यान में पधारे। पुण्डरीक राजा वंदना के लिये निकला। कंडरीक भी महाजनों [जन समूह] के मुख से स्थविरों के आने के समाचार सुनकर महाबल की तरह वंदना करने के लिये निकला-यावत्-पर्युपासना करता है। स्थविरों ने धर्मोपदेश दिया। धर्म श्रवणकर पुण्डरीक श्रमणोपासक हो गया-यावत्- अपने घर लौट आया।

तए णं कंडरीए थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

पश्चात् कंडरीक स्थविर मुनिराजों के मुख से धर्म सुनकर और समझकर हर्षित और सन्तुष्ट हो अपने स्थान से उठकर खड़ा हुआ, खड़े होकर स्थविरों को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं—पुंडरीयं रायं आपुच्छामि। तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।"

'हे भदन्त ! निर्ग्रंथ प्रवचन की मैं श्रद्धा करता हूँ—यावत् आपने जो कहा वह वैसा ही है। लेकिन विशेष यह है—मैं पुण्डरीक राजा से अनुमति ले लूं। उसके बाद मुण्डित हो गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा।'

अहासुहं देवाणुप्पिया !

'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो'—स्थविरों ने कहा।

तए णं से कंडरीए थेरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, तमेव चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ महयाभड-चडगर-पहकरेणं पुंडरीगिणीए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् कंडरीक ने स्थविरों को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके स्थविरों के पास से निकला, निकल कर उसी चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ और बड़े-बड़े योद्धाओं के समूह के साथ पुण्डरीकिणी नगरी के बीचों-बीच होता हुआ जहाँ अपना भवन था, वहाँ पहुँचा, पहुँच कर चार घंटा वाले अश्वरथ से नीचे उतरा, उतरकर जहाँ पुण्डरीक राजा था, वहाँ आया, आकर हाथ जोड़ नतमस्तक हो अंजलि करके इस प्रकार बोला—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

"हे देवानुप्रिय ! मैंने स्थविर मुनियों से धर्म सुना है, मैं उस धर्म की इच्छा करता हूँ, विशेष इच्छा करता हूँ, रुचि करता हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय ! आपकी अनुमति प्राप्त करके स्थविरों के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

कंडरीयस्स पव्वज्जा—

कंडरीक की प्रव्रज्या—

६४९. तए णं से पुंडरीए राया कंडरीयं एवं वयासी—

६४९. तब पुण्डरीक राजा ने कंडरीक से इसप्रकार कहा—

"मा णं तुमं भाउया ! इयाणिं मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि। अहं णं तुमं महारायाभिसेएणं अभिसिंचामि।"

'हे भाई ! तुम इस समय मुण्डित होकर, गृह त्यागकर, अनगार दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुम्हें महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करना चाहता हूँ।'

तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब कंडरीक ने पुण्डरीक राजा के इस कथन का आदर नहीं किया, उसको स्वीकार नहीं किया और मौन रहा।

तए णं से पुण्डरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—"मा णं तुमं भाउया ! इयाणिं मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि। अहं णं तुमं महारायाभिसेएणं अभिसिंचामि।"

तब पुण्डरीक राजा ने कंडरीक कुमार से दो बार तीन बार इस प्रकार कहा—हे भाई ! तुम इस समय मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुम्हें महान राज्याभिषेक से अभिषिक्त करना चाहता हूँ।

तए णं से कंडरीए पुण्डरीयस्स रण्णो एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब कंडरीक ने पुण्डरीक राजा के इस कथन का आदर नहीं किया, स्वीकार नहीं किया और मौन रहा।

तए णं पुण्डरीए कंडरीयकुमारं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य जाव-ताहे अकामए चेव एयमट्ठं अणुमन्नित्था जाव-निक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिक्खं दलयइ । पव्वइए । अणगारे जाए । एक्कारसंगवी ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक कंडरीक कुमार को बहुत कुछ कह कर और समझाकर-यावत्-तब इच्छा न होते हुए भी यह बात मान ली—यावत्-निष्क्रमणाभिषेक से उसे अभिषिक्त किया-यावत्-स्थविर मुनियों को शिष्य भिक्षा प्रदान की । कंडरीक प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया, ग्यारह अंगों का वेत्ता हो गया ।

तए णं थेरा भगवंतो अण्णया कयाइ पुण्डरीगिणीओ नयरीओ नलिणिवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा किसी समय पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनीवन उद्यान से निकले और निकल कर बाहर के जनपदों में विहार करने लगे ।

कंडरीयस्स वेयणा—

६५०. तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहिं य पंतेहिं य जहा सेलगस्स-जाव-दाहवक्कंतीए यावि विहरइ ।

तए णं थेरा अण्णया कयाइ जेणेव पोंडरीगिणी नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नलिणीवणे समोसढा । पुण्डरीए निग्गए । धम्मं सुणेइ ।

कंडरीक को वेदना—

६५०. तत्पश्चात् कंडरीक अनगार अन्त प्रान्त आहार से यावत्-दाहज्वर से रुग्ण होकर सेलक के समान विचरने लगे ।

तत्पश्चात् एक वार किसीसमय स्थविर भगवन्त पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे, पधार कर नलिनीवन उद्यान में विराजे । पुण्डरीक राजा दर्शन, वंदना करने के लिये निकला । उसने धर्म श्रवण किया ।

कंडरीयस्स तिगिच्छा—

६५१. तए णं पुण्डरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वाबाहं सरोगं पासइ, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"अहण्णं भंते ! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं तेगिच्छं आउण्टामि । तं तुब्भे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह ।'

कंडरीक की चिकित्सा—

६५१. तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा धर्म श्रवण कर जहां कंडरीक अनगार थे, वहाँ आया, आकर कंडरीक को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके कंडरीक अनगार का शरीर सब प्रकार से बाधा वाला और सरोग देखा, देखकर वह स्थविर भगवंतों के पास आया, आकर स्थविर भगवंतों को वंदना-नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'भगवन् ! मैं कंडरीक अनगार की यथाप्रवृत्त [साधु समाचारी के अनुकूल] औषधि, भेषज, भक्त, पान से चिकित्सा कराना चाहता हूँ । अतः हे भदन्त ! आप मेरी यानशाला में पधारिये ।'

तए णं थेरा भगवंतो पुण्डरीयस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव पुण्डरीयस्स रण्णो जाणसाला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता फासुएसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवन्तों ने पुण्डरीक की इस बात को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ पुण्डरीक राजा की यानशाला थी, वहाँ पधारे और प्रासुक, एषणीय पीठ, फलक, शैया, संस्तारक लेकर विचरने लगे।

तए णं पुण्डरीए राया तेगिच्छिए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! कंडरीयस्स फासु-एसणिज्जेणं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेणं तेगिच्छं आउट्टेह ।"

तदनन्तर पुण्डरीक राजा ने चिकित्सक को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आप कंडरीक अनगार की प्रासुक, एषणीय औषध, भेषज, भक्त (भोजन) पान से चिकित्सा कीजिये ।'

तए णं ते तेगिच्छिया पुण्डरीएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा कंडरीयस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं तेगिच्छं आउट्टेंति, मज्जपाणगं च से उवदिसंति ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा की आज्ञा को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हो कंडरीक की यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, आहारपानी से चिकित्सा करते हैं और मद्यपान करने का कहते हैं ।

तए णं तस्स कंडरीयस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं मज्जपाणएणं य से रोगायंके उवसंते यावि होत्था—हट्ठे बलियसरीरे जाए ववगयरोगायंके।

तत्पश्चात् यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, आहार, पानी और मद्यपान से चिकित्सा होने पर कंडरीक की रोग व्याधि उपशान्त हो गई—रोग व्याधि दूर होने से कंडरीक हृष्ट-पुष्ट बलवान शरीर वाले हो गये।

कंडरीयस्स पमत्तविहारो—

६५२. तए णं थेरा भगवंतो पुण्डरीयं रायं आपुच्छंति, आपुच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

तए णं से कंडरीए ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे नो संचाएइ पुण्डरीयं आपुच्छित्ता बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरित्तए तत्थेव ओसन्ने जाए।

कंडरीक का प्रमत्त विहार—

६४३. तत्पश्चात् स्थविर-भगवन्तों ने पुण्डरीक राजा से इस प्रकार पूछा और पूछकर वे बाहर जनपद विहार से विचरने लगे।

उस समय कंडरीक उन रोग-आतंक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने के कारण पुण्डरीक राजा से पूछकर बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ नहीं हो सके, वहीं शिथिलाचारी होकर रहने लगे।

पुण्डरीएण पडिबोहो—

६५३. तए णं से पुण्डरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—

"धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे। सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले जे णं तुमं रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च विछड्डेत्ता विगोवइत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभाएइत्ता, मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहण्णं अधन्ने अकयपुण्णे रज्जे-जाव-अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए-जाव-अज्झोववण्णे नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए। तं धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे। सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले।

तए णं से कंडरीए अणगारे पुण्डरीयस्स एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं से कंडरीए अणगारे पोंडरीएणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवसवसे लज्जाए गारवेण य पुंडरीयं आपुच्छइ आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

पुण्डरीक द्वारा प्रतिबोध—

६५३. तत्पश्चात् पुण्डरीक ने इस कथा के अर्थ अर्थात् इस बात के विदित होने पर स्नान किया और अंतःपुर के परिवार से परिवृत होकर जहाँ कंडरीक अनगार थे, वहाँ आया, आकर कंडरीक को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

कंडरीयस्स पव्वज्जा-परिच्चाओ—

६५४. तए णं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं कंचि कालं उग्गंउग्गेणं विहरित्ता तओ पच्छा समणत्तण-परितंते समणत्तण-निव्विण्णे

समणत्तण-निब्भच्छिए समणगुण-मुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुण्डरीगिणी नयरी जेणेव पुण्डरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि निसीयइ, नीसीइत्ता ओहयमणसंकप्पे करतलपल्लहत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायमाणे संचिट्ठइ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीय अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पुण्डरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुण्डरीयं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! तव पियभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ।"

तए णं से पुण्डरीए अम्मधाईए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता अंतेउर-परियालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले-जाव-अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहं णं अधन्ने अकयत्थे अकयपुण्णे अकयलक्खणे-जाव-नो संचाएमि पव्वइत्तए। तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! -जाव-सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले।"

तए णं कंडरीए पुण्डरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। दोच्चंपि तच्चंपि पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं पुंडरीए कंडरीयं एवं वयासी—अट्ठो भंते ! भोगेहिं ?

हंता ! अट्ठो।

तए णं से पुण्डरीए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कंडरीयस्स महत्थं रायाभिसेयं उवट्ठवेह-जाव-रायाभिसेएणं अभिसिंचति।

से ऊब गये और श्रमणत्व से निर्भत्सित को प्राप्त हुए, साधुता के गुणों से मुक्त हो गए और धीरे-धीरे स्थविरों के पास से खिसक लिए, खिसक कर जहाँ पुण्डरीकिणी नगरी थी, जहाँ पुण्डरीक का भवन था, उसी तरफ आये, आकर अशोक वाटिका में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्टक पर बैठ गए, बैठकर हथेली पर मुख को रखकर भग्न मनोरथ हो आर्तध्यान करते हुए चिन्ता में डूब गये।

तत्पश्चात् पुण्डरीक की धायमाता जहां अशोकवाटिका थी, वहां पहुंची, पहुंचकर उसने अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला पट्टक पर भग्न मनोरथ होकर-यावत्-चिन्ता में डूबे हुए कंडरीक अनगार को बैठे देखा, देखकर वह पुण्डरीक राजा के पास आई, आकर पुण्डरीक राजा से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! आपके प्रिय भाई कंडरीक अनगार अशोक वाटिका में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिला पट्टक पर भग्न मनोरथ-यावत्-चिन्तामग्न होकर बैठे हैं।'

तब वह पुण्डरीक राजा धायमाता की यह बात सुनकर और समझकर तत्काल संभ्रान्त होकर स्थान से उठा, उठकर अन्तःपुर के परिवार से परिवृत होकर जहां अशोकवाटिका थी, वहां आया, आकर कंडरीक अनगार की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, कृतार्थ हो, कृतपुण्य हो, कृत-लक्षण हो, देवानुप्रिय ! तुमने मानव जन्म और जीवन का सुन्दर फल प्राप्त किया है-यावत्-गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की है, मैं अधन्य हूँ, अकृतार्थ हूँ, अकृतपुण्य हूँ, अकृत लक्षण हूँ-यावत्-दीक्षा लेने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ। देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो-यावत्-देवानुप्रिय ! तुमने मानव जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है।'

तत्पश्चात् पुण्डरीक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी कंडरीक मौन होकर बैठा रहा। दूसरी बार भी, तीसरी बार भी, पुण्डरीक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी मौन ही बना रहा।

तत्पश्चात् पुण्डरीक ने कंडरीक से इस प्रकार कहा—भदन्त ! क्या भोगों से प्रयोजन है ? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है ?

हां ! प्रयोजन है। कंडरीक ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही कंडरीक के महान अर्थ व्यय से संपन्न होने वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो-यावत्-राज्याभिषेक से कंडरीक का अभिषेक करता है।

पुण्डरीयस्स पव्वज्जा—

६५५. तए णं से पुण्डरीए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता कंडरीयस्स संतियं आयारभंडगं गेण्हइ, गेण्हित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—

"कप्पइ मे थेरे वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता णं पुण्डरीगिणीए पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

पुण्डरीक की प्रव्रज्या—

६५५. तत्पश्चात् पुंडरीक स्वयं अपने आप ही पंचमुष्टिक लोच करता है, स्वयं ही चातुर्याम धर्म अंगीकार करता है, अंगीकार करके कंडरीक के श्रमण सम्बन्धी आचार-भांड लिए, लेकर यह और इस प्रकार का अभिग्रह धारण करता है—

'स्थविर भगवान् को वंदन नमस्कार करके और स्थविर से चातुर्याम धर्म अंगीकार करने के पश्चात् ही मुझे आहार करना कल्पता है,' ऐसा कहकर और यह इस प्रकार का अभिग्रह धारण करके पुण्डरीकिणी नगरी से निकल गये। निकल कर अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए जिधर स्थविर भगवान थे, उस ओर गमन करने के लिए उद्यत हुआ।

कंडरीयस्स मच्चू—

६५६. तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स अइजागरएण य अइभोय-प्पसंगेण य से आहारे नो सम्मं परिणमइ।

तए णं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया—उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ।

तए णं से कंडरीए राया रज्जे य रट्ठे य अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अट्टदुहट्टवसट्टे अकामए अवसवसे कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे।

कंडरीक की मृत्यु—

६५६. तत्पश्चात् उस कंडरीक राजा के प्रणीत [सरस, पौष्टिक] भोजनपान का आहार करने से, अति जागरण से और अति भोजन के प्रसंग से वह आहार अच्छी तरह परिणत नहीं हुआ, अर्थात् पच नहीं सका।

निगमणं—

६५७. एवामेव समणाउसो! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोए आसाएइ पत्थयइ पीहेइ, अभिलसइ, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य तज्जणाणि य तालणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ—जहा व से कंडरीए राया।

पुण्डरीयस्स आराहणा—

६५८. तए णं से पुण्डरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, करेत्ता बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए जाव उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहेत्ता अहापज्जत्तमि ति कट्टु पडिनिवत्तेइ, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए-जाव-विलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं सरीर-कोट्ठगंसि पक्खिवइ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स तं कालाइक्कंतं अरसं विरसं सीयलुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे नो सम्मं परिणमइ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहि-यासा। पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कंतीए विहरइ।

तए णं से पुण्डरीए अणगारे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरि-सक्कारपरक्कमे करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं थेराणं भगवंताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं। पुव्विं पि य णं मए अंतिए थेराण सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव वहिद्धादाणे पच्चक्खाए, इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव-वहिद्धादाणं पच्चक्खामि। सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं तं पि य णं चरिमेहिं उस्सास-नीसासेहिं वोसिरामि" त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे उववण्णे। तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

पुण्डरीक की आराधना—

६५८. तत्पश्चात् वह पुण्डरीक अनगार जहां स्थविर भगवान विराजते थे, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर स्थविर भगवान को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके स्थविरों के पास दूसरी बार चातुर्याम धर्म अंगीकार किया, फिर षष्ठ भक्त के पारणक में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया स्वाध्याय करके द्वितीय प्रहर में ध्यान किया, तीसरे प्रहर में-यावत्-उच्च नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या से अटन करते हुए शीत, रुक्ष भोजन-पान ग्रहण किया, ग्रहण करके यह मेरे लिये पर्याप्त है, ऐसा सोचकर लौट आये, और जहां स्थविर भगवान थे, उनके पास आये, आकर लिया हुआ भोजन-पानी दिखलाया, दिखलाकर स्थविर भगवन्तों की आज्ञा होने पर मूर्च्छाहीन होकर-यावत्-जैसे सर्प बिल में सीधा जाता है, उसी प्रकार उस प्रासुक तथा एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य को शरीर रूपी कोठे में डाल लिया।

तत्पश्चात् कालातिक्रांत रसहीन, विरस, ठंडे और रूक्ष भोजन-पानी का आहार करने वाले और मध्य रात्रि के समय धर्म जागरणा में तत्पर उन पुण्डरीक अनगार को वह आहार सम्यक् रूप से परिणत नहीं हुआ।

उस समय उन पुण्डरीक अनगार के शरीर में वेदना उत्पन्न हो गई—जो अत्यन्त तीव्र, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चण्ड, दुख-प्रद और दुस्सह थी। शरीर में पित्त ज्वर व्याप्त हो जाने से उसके दाह से पीड़ित होकर विचरने लगे।

तत्पश्चात् पुण्डरीक अनगार निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पुरुषाकार पराक्रम से विहीन हो गये, उन्होंने दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्त पूर्वक अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्थविर भगवन्तों को नमस्कार हो। पूर्व में भी मैंने स्थविरों के निकट समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान कर लिया है-यावत्-मैथुन परिग्रह का प्रत्याख्यान कर लिया है, इस समय भी पुनः मैं उनके पास समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ-यावत्-मैथुन परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। सभी अशन, पान, खादिम, स्वादिम का प्रत्याख्यान करता हूँ यावज्जीवन के लिये चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ। यद्यपि यह शरीर इष्ट और कांत भी है तो भी अंतिम उश्वास-निश्वास तक के लिये त्यागता हूं' इत्यादि कहकर आलोचना प्रतिक्रमण करके, काल मास में काल करके सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। वहां से अनन्तर च्यव करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेंगे, बोधि प्राप्त करेंगे, मुक्ति प्राप्त करेंगे, परिनिवृत्त होंगे और समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

निगमणं—

६५९. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्झइ नो मुज्झइ नो अज्झोवज्झइ नो विप्पडिघायमावज्जइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ।

परलोए वि य णं नो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुण्डणाणि य तज्जणाणि य तालणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व से पुण्डरीए अणगारे।"[1]

—णाया. सु. १, अ. १९

निगमन—

६५९. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्डित होकर, गृह त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करके मनुष्य संबंधी काम-भोगों में आसक्त नहीं होते हैं, अनुराग नहीं करते हैं, गृद्ध नहीं होते हैं, मूर्च्छित नहीं होते हैं, अत्यन्त आसक्त नहीं होते हैं, लिप्त नहीं होते हैं, वे इस भव में बहुत से श्रमण, श्रमणियों, श्रावकों एवं श्राविकाओं के अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलरूप, देव और चैत्य के समान उपासना के योग्य होते हैं।

परलोक में भी विविध प्रकार के दंड, मुंडन, तर्जना और ताड़न को प्राप्त नहीं करते हैं—यावत्—अनादि अनंत संसार-कान्तार को पार कर जाते हैं—जैसे वे पुण्डरीक अनगार।

卐

५०. महावीरतित्थे थविरावली

६६०. सव्वे एए समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारस वि गणहरा दुवालसंगिणो चोद्दसपुव्विणो समत्तगणिपिडगधरा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा। थेरे इंदभूई, थेरे अज्जसुहम्मे सिद्धिं गए महावीरे पच्छा दोन्नि वि परिनिव्वुया।[2]

समणनिग्गंथाणं अज्जसुहम्मावच्चिज्जत्तं—

६६१. जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए णं सव्वे अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा, अवसेसा गणहरा निरवच्चा वोच्छिन्ना।

अज्जसुहम्ममारब्भ अज्जजसभद्दपज्जंता थेरावली—

६६२. समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेणं। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगोत्तस अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणसगोत्तस अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जजंबुनामस्स कासवगोत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगोत्तस अज्जसेज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसेज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगोत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते।

अज्जजसभद्दमारब्भ संखित्तथेरावली—

६६३. संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा—

थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते; थेरे अज्जभद्दबाहू पाइणसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते; थेरे अज्जसुहत्थी वसिट्ठसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुपडिबुद्धा कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ता।

थेराणं सुट्ठिसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिस्सरस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगोत्ते।

आर्यसुधर्मा से आरंभ कर आर्य यशोभद्र पर्यन्त स्थविरावली—

६६२. श्रमण भगवान महावीर काश्यपगोत्री थे। काश्यप गोत्री श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अग्नि वैश्यायन गोत्री आर्य सुधर्मा स्थविर थे।

अग्नि वैश्यायन गोत्री स्थविर आर्य सुधर्मा के काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू नामक अन्तेवासी थे।

काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू के कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव नामक अन्तेवासी थे।

कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव के वात्स्यगोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव नामक अन्तेवासी थे।

वात्स्य गोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव के तुंगियायन गोत्री स्थविर आर्य यशोभद्र नामक अन्तेवासी थे।

आर्य यशोभद्र से लेकर संक्षिप्त स्थविरावली—

६६३. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली संक्षिप्त वाचना के अनुसार इस प्रकार कही गई है, वह इस प्रकार है—

तुंगियायन गोत्री आर्य यशोभद्र स्थविर के दो स्थविर अन्तेवासी थे—

१ माढर गोत्रीय स्थविर संभूतविजय और २ प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय के गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र अन्तेवासी थे।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे—एलावच्चगोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और वाशिष्ठगोत्री आर्य सुहस्ती।

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर सुहस्ती के दो स्थविर अन्तेवासी थे—सुस्थित और सुप्रतिबद्ध, ये दोनों कोडिय, काकंदक कहलाते थे और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय थे।

कोडिय काकंदक के रूप में प्रसिद्ध और व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न अन्तेवासी थे।

कौशिक गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न स्थविर के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न अन्तेवासी थे।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के जिनको जातिस्मरण ज्ञान हुआ था ऐसे कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यसिंहगिरि अन्तेवासी थे।

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त और कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरि के गौतम गोत्रीय आर्यवज्र नामक स्थविर अन्तेवासी थे।

थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा १ थेरे अज्जनाइले, २ थेरे अज्जपोमिले, ३ थेरे अज्जजयंते, ४ थेरे अज्जतावसे।

थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयन्ती साहा निग्गया,
थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र के चार स्थविर अंतेवासी थे—१ स्थविर आर्यनाइल, २ स्थविर आर्यपोमिल ३ स्थविर आर्य जयंत, और ४ स्थविर आर्य तापस।

स्थविर आर्यनाइल से आर्यनाइला शाखा निकली,
स्थविर आर्यपोमिल से आर्य पोमिला शाखा निकली,
स्थविर आर्य जयंत से आर्य जयन्ती शाखा निकली और
स्थविर आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा निकली।

अज्जजसभद्दमारिब्भ वित्थिण्णा थेरावली—

६६४. वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ परओ थेरावली एवं पलोइज्जइ, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते, थेरे अज्ज संभूयविजये माढरसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

थेरे गोदासे, थेरे अग्गिदत्ते, थेरे जण्णदत्ते, थेरे सोमदत्ते कासवगोत्ते णं।

थेरेहिंतो णं गोदासेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो एत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—तामलित्तिया कोडीवरिसिया पोंडवद्धणिया दासी खब्बडिया।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—

नंदणभद्दे उवनंदभद्दे तह तीसभद्दे जसभद्दे।
थेरे य सुमिणभद्दे मणिभद्दे य पुण्णभद्दे य ॥१॥
थेरे य थूलभद्दे उज्जुमती जंबुनामधेज्जे य।
थेरे य दीहभद्दे थेरे तह पंडुभद्दे य ॥२॥

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिन्नाओ होत्था, तं जहा—

गाहा—

जक्खा य जक्खदिन्ना भूया तह होइ भूयदिन्ना य।
सेणा वेणा रेणा भइणीओ थूलभद्दस्स ॥१॥

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स इमे दो थेरा अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

आर्य यशोभद्र से प्रारम्भ कर विस्तृत स्थविरावली

६६४. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली विस्तृत वाचना से इस प्रकार दृष्टिगत होती है, वह इस प्रकार है—

स्थविर आर्य यशोभद्र के पुत्र के समान दो प्रख्यात— प्रख्यात स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु और माठर गोत्रीय आर्य सम्भूतिविजय स्थविर।

प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु के पुत्र [illegible], प्रख्यात ये चार स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

स्थविर गोदास, स्थविर अग्निदत्त, स्थविर यज्ञदत्त और स्थविर सोमदत्त। ये चारों काश्यप गोत्रीय थे।

काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदास गण नामक गण निकला—प्रारम्भ हुआ, उस गण की ये चार शाखाएं इस प्रकार कहलाती हैं, यथा—ताम्रलिप्तिका [illegible], कोटीवरिसिया [कोटिवर्षीया], पौण्ड्रवर्धनिका [पौण्ड्रवर्धनीया], दासीखब्बडिया [दासी खर्बटिका]।

माठर गोत्रीय आर्य सम्भूतिविजय स्थविर के पुत्र [illegible] एवं विद्वान ये बारह स्थविर अंतेवासी थे, यथा

गाथाएँ—

अज्जसुहम्ममारब्भ अज्जजसभद्दपज्जंता थेरावली—

६६२. समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेणं। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगोत्तस अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणसगोत्तस अज्जजंवुनामे थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जजंवुनामस्स कासवगोत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगोत्तस अज्जसेज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसेज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगोत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते।

अज्जजसभद्दमारब्भ संखित्तथेरावली—

६६३. संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा—

थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते; थेरे अज्जभद्दबाहू पाइणसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते; थेरे अज्जसुहत्थी वसिट्ठसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुपडिवुद्धा कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ता।

थेराणं सुट्ठिसुपडिवुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिस्सरस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगोत्ते।

आर्यसुधर्मा से आरंभ कर आर्य यशोभद्र पर्यन्त स्थविरावली—

६६२. श्रमण भगवान महावीर काश्यपगोत्री थे। काश्यप गोत्री श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अग्नि वैश्यायन गोत्री आर्य सुधर्मा स्थविर थे।

अग्नि वैश्यायन गोत्री स्थविर आर्य सुधर्मा के काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू नामक अन्तेवासी थे।

काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू के कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव नामक अन्तेवासी थे।

कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव के वात्स्यगोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव नामक अन्तेवासी थे।

वात्स्य गोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव के तुंगियायन गोत्री स्थविर आर्य यशोभद्र नामक अन्तेवासी थे।

आर्य यशोभद्र से लेकर संक्षिप्त स्थविरावली—

६६३. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली संक्षिप्त वाचना के अनुसार इस प्रकार कही गई है, वह इस प्रकार है—

तुंगियायन गोत्री आर्य यशोभद्र स्थविर के दो स्थविर अन्तेवासी थे—

१ माढर गोत्रीय स्थविर संभूतविजय और २ प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रवाहु।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय के गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र अन्तेवासी थे।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे—एलावच्चगोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और वाशिष्ठगोत्री आर्य सुहस्ती।

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर सुहस्ती के दो स्थविर अन्तेवासी थे—सुस्थित और सुप्रतिबद्ध, ये दोनों कोंडिय, काकंदक कहलाते थे और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय थे।

कोंडिय काकंदक के रूप में प्रसिद्ध और व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न अन्तेवासी थे।

कौशिक गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न स्थविर के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न अन्तेवासी थे।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के जिनको जातिस्मरण ज्ञान हुआ था ऐसे कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यसिंहगिरि अन्तेवासी थे।

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त और कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरि के गौतम गोत्रीय आर्यवज्र नामक स्थविर अन्तेवासी थे।

थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा १ थेरे अज्जनाइले, २ थेरे अज्जपोमिले, ३ थेरे अज्जजयंते, ४ थेरे अज्जतावसे।

थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयन्ती साहा निग्गया,
थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति।

अज्जजसभद्दमारिब्भ वित्थिण्णा थेरावली—

६६४. वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ परओ थेरावली एवं पलोइज्जइ, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते, थेरे अज्ज संभूयविजये माढरसगोत्ते।

थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

थेरे गोदासे, थेरे अग्गिदत्ते, थेरे जण्णदत्ते, थेरे सोमदत्ते कासवगोत्ते णं।

थेरेहिंतो णं गोदासेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो एत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—तामलित्तिया कोडीवरिसिया पोंडवद्धणिया दासीखब्बडिया।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—

नंदणभद्दे उवनंदनभद्दे तह तीसभद्दे जसभद्दे।
थेरे य सुमिणभद्दे मणिभद्दे य पुन्नभद्दे य ॥१॥
थेरे य थूलभद्दे उज्जुमती जंबुनामधेज्जे य।
थेरे य दीहभद्दे थेरे तह पंडुभद्दे य ॥२॥

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिन्नताओ होत्था, तं जहा—

गाहा—

जक्खा य जक्खदिन्ना भूया तह होइ भूयदिन्ना य।
सेणा वेणा रेणा भगिणीओ थूलभद्दस्स ॥१॥

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स इमे दो थेरा अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र के चार स्थविर अन्तेवासी थे—१ स्थविर आर्यनाइल, २ स्थविर आर्यपोमिल ३ स्थविर आर्य जयंत, और ४ स्थविर आर्य तापस।

स्थविर आर्यनाइल से आर्यनाइला शाखा निकली,
स्थविर आर्यपोमिल से आर्य पोमिला शाखा निकली,
स्थविर आर्य जयंत से आर्य जयन्ती शाखा निकली और
स्थविर आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा निकली।

आर्य यशोभद्र से प्रारम्भ कर विस्तृत स्थविरावली

६६४. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली विस्तृत वाचना से इस प्रकार दृष्टिगत होती है, वह इस प्रकार है—

स्थविर आर्य यशोभद्र के पुत्र के समान ये दो विद्वान—प्रख्यात स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु और माढर गोत्रीय आर्य संभूतविजय स्थविर।

प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु के पुत्रस्थानीय, प्रख्यात ये चार स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

स्थविर गोदास, स्थविर अग्निदत्त, स्थविर यज्ञदत्त और स्थविर सोमदत्त। ये चारों काश्यप गोत्रीय थे।

काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदासगण नामक गण निकला—प्रारम्भ हुआ, उस गण की ये चार शाखाएँ इस प्रकार कहलाती हैं, यथा—तामलित्तिया [ताम्रलिप्तिका], कोडीवरिसिया [कोटिवर्षीया], पोंडवद्धणिया [पौण्ड्रवर्धनिका] दासीखब्बडिया [दासी कर्पटिका]।

माढर गोत्रीय आर्य संभूतविजय स्थविर के पुत्र के समान एवं विद्वान ये बारह स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

गाथायें—

१ नन्दनभद्र २ उपनन्दनभद्र, ३ तिष्यभद्र ४ यशोभद्र ५ स्थविर सुमनभद्र, (स्वप्नभद्र) ६ मणिभद्र, ७ पुण्यभद्र, ८ स्थविर स्थूलभद्र, ९ ऋजुमति, १० जम्बू, ११ स्थविर दीर्घभद्र और १२ पाण्डुभद्र।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय की पुत्री के समान तथा विदुषी प्रवीण यह सात अन्तेवासिनियाँ—शिष्याएँ थीं, यथा—

गाथा—

१ यक्षा, २ यक्षदत्ता, ३ भूता, ४ भूतदत्ता, ५ सेणा, ६ वेणा और ७ रेणा, ये सातों ही स्थूलभद्र की बहिनें थीं।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के पुत्र के समान एवं प्रवीण ये दो स्थविर अन्तेवासी थे, उनके नाम यह हैं—

थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते, थेरे अज्ज सुहत्थी वासिट्ठसगोत्ते।

एलावच्च [एलावत्स] गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि और वाशिष्ठ गोत्री स्थविर आर्य सुहस्ती।

थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्छसगोत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

एलावच्च गोत्रीय आर्य महागिरि स्थविर के अपत्य स्थानीय प्रख्यात ये आठ स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

१ थेरे उत्तरे, २ थेरे वलिस्सहे, ३ थेरे धणड्ढे, ४ थेरे सिरिड्ढे, ५ थेरे कोडिन्ने, ६ थेरे नागे, ७ थेरे नागमित्ते, ८ थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसिए गोत्तेणं।

१ स्थविर उत्तर, २ स्थविर वलिस्सह ३ स्थविर धणड्ढ (धनाढ्य) ४ स्थविर सिरिड्ढ (श्री आढ्य) ५ स्थविर कौडिन्य ६ स्थविर नाग, ७ स्थविर नागमित्र, और ८ षडुलूक कौशिक गोत्रीय स्थविर रोहगुप्त। ये आठों स्थविर कौशिक गोत्रीय थे।

थेरेहिंतो णं छलुएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगोत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया। थेरेहिंतो णं उत्तरवलिस्सहेहिंतो तत्थ णं उत्तरवलिस्सहगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

कौशिक गोत्रीय स्थविर षडुलूक रोहगुप्त से त्रैराशिक संप्रदाय निकला। स्थविर उत्तर और वलिस्सह से उत्तर वलिस्सह गण नामक गण निकला। उसकी ये चार शाखायें इस प्रकार कही जाती हैं, जैसे—

१ कोसंबिया, २ सोतित्तिया, २ कोडवाणी, ४ चंदनागरी।

१ कोसंविया (कौशाम्बिका), २ सोतित्तिया (सौत्रित्रिका) ३ कोडवाणी और ४ चंदनागरी।

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ती के पुत्र के समान एवं प्रवीण ये बारह स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

गाहाओ—

थेरे त्थ अज्जरोहण, भद्दजसे मेहगणी य कामिड्ढी।
सुट्ठियसुप्पडिबुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते य ॥१॥
इसिगुत्ते सिरिगुत्ते, गणी य बंभे गणी य तह सोमे।
दस दो य गणहरा, खलु एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥

गाथायें—

स्थविर आर्यरोहण, यशोभद्र, मेघगणि, कामिड्ढी (कामर्द्धि), सुस्थित, सुप्रतिबद्ध, रक्षित, रोहगुप्त, ऋषिगुप्त, श्रीगुप्त, ब्रह्माणि, सोमगणि। बारह गणधर के समान ये आर्य सुहस्ती के शिष्य थे।

थेरेहिंतो णं अज्जरोहणेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो तत्थ णं उद्देहगणे नामं गणे निग्गए। तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति।

काश्यपगोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से उद्देहगण नामक गण निकला। उसकी चार शाखाओं से निकले छह कुल इस प्रकार कहलाते हैं।

से किं तं साहाओ?

वे शाखायें कौनसी हैं?

साहाओ एवमाहिज्जंति,-१ उदुंबरिज्जिया, २ मासपूरिया, ३ मतिपत्तिया, ४ सुवन्नपत्तिया, सेत्तं साहाओ।

वे शाखायें इस प्रकार कही जाती हैं—१ उदुम्बरिज्जिया (उदुम्बरीया) २ मासपूरिया ३ मतिपत्तिया, और ४ सुवन्नपत्तिया, ये वे शाखायें हैं।

से किं तं कुलाइं? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

वे कुल कौन से हैं? वे कुल इस प्रकार कहलाते हैं, यथा—

गाहाओ—

पढमं च नागभूयं, बीयं पुण सोमभूइयं होइ।
अह उल्लगच्छ तइयं, चउत्थयं हत्थिलिज्जं तु ॥१॥
पंचमगं नंदिज्जं, छट्ठं पुण पारिहासियं होइ।
उद्देहगणस्सेते, छच्च कुला होंति नायव्वा ॥२॥

गाथायें—

१ नागभूत, २ सोमभूतिक ३ उल्लगच्छ ४ हत्थिलिज्ज ५ नन्दिज्ज, ६ पारिहासिव, उद्देहगण के ये छह कुल जानना चाहिये।

थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो णं हारियसगोत्तेहिंतो एत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति।

हारिय गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से यहाँ चारणगण नामक गण निकला, उसकी ये चार शाखायें और सात कुल इस प्रकार कहे हैं।

से किं तं साहातो ?

साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१ हारियमालागारी, २ संकासिया, ३ गवेधूया, ४ वज्जनागरी, से त्तं साहाओ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहाओ—

पढमेत्थ वच्छलिज्जं, बीयं पुण वीचिधम्मकं होइ।
तइयं पुण हालिज्जं, चउत्थगं पूसमित्तेज्जं ॥१॥
पंचमगं मालिज्जं, छट्ठं पुण अज्जवेडयं होइ।
सत्तमगं कण्हसहं, सत्त कुला चारणगणस्स ॥२॥

थेरेहिंतो भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगोत्तेहिंतो एत्थ णं उडुवाडियगणे नामं गणे निग्गए।

तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिन्नि य कुलाइं एवमाहिज्जंति।

से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१ चंपिज्जिया, २ भद्दिज्जिया, ३ काकंदिया, ४ मेहलिज्जिया, से त्तं साहाओ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति—

गाहा—

भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं, तइयं च होइ जसभद्दं।
एयाइं उडुवाडियगणस्स, तिन्नेव य कुलाइं ॥१॥

थेरेहिंतो णं कामिड्ढीहिंतो कुंडिलसगोत्तेहिंतो एत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए।

तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि य कुलाइं एवमाहिज्जंति।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति—

सावत्थिया रज्जपालिया अन्तरिज्जिया खेमलिज्जिया से त्तं साहाओ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति—

गाहा—

गणियं मेहिय कामड्ढियं च, तह होइ इंदपुरगं च।
एयाइं वेसवाडियगणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥१॥

थेरेहिंतो णं इसिगुत्तेहिंतो णं काकंदएहिंतो वासिट्ठसगोत्तेहिंतो एत्थ णं माणवगणे नामं गणे निग्गए।

वे शाखायें कौनसी हैं ?

शाखायें इस प्रकार हैं, यथा—

१ हरियमाला-गिरि २ संकासिया, ३ गवेधूया ४ [illegible] ये चार शाखायें हैं।

वे कुल कौन से हैं ?

कुल इस इस प्रकार हैं, यथा—

गाथायें—

प्रथम—वत्सलीय, द्वितीय—वीचिधम्मक, तृतीय—[illegible], चतुर्थ—पूसमित्तेज्ज, पंचम—मालिज्ज, षष्ठ—[illegible], सप्तम—कण्हसह। चारणगण के ये सात कुल हैं।

भारद्वाज गोत्रीय स्थविर यशोभद्र से यहां उडुवाडियगण नामक गण निकला।

उसकी ये चार शाखाएं और तीन कुल इस प्रकार कहलाते हैं।

ये शाखायें कौनसी हैं ? शाखायें इस प्रकार हैं यथा—

१ चंपिज्जिया २ भद्दिज्जिया ३ काकंदीया ४ मेहलिज्जिया, उसकी ये शाखायें हैं।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

गाथा—

उडुवाडियगण के ये तीन कुल हैं—१ भद्रयशिय, २ भद्रगुप्तिय और ३ जसभद्र।

कुण्डिल गोत्रीय कामिड्ढी स्थविर से यहां वेसवाडियगण नामक गण निकला।

उसकी ये चार शाखायें और चार कुल इस प्रकार कहलाते हैं।

वे शाखायें कौन-सी हैं ?

शाखायें इस प्रकार हैं—

सावत्थिया, रज्जपालिया, अन्तरिज्जिया और खेमलिज्जिया, ये उसकी शाखायें हैं।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

गाथा—

[illegible]

[illegible]

तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइं एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति—१ कासविज्जिया, २ गोयमिज्जिया, ३ वासिट्ठिया, ४ सोरट्ठिया । से त्तं साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहा—

इसिगोत्तियऽत्थपढमं, बिइयं इसिदत्तियं मुणेयव्वं ।
तइयं च अभिजसंतं, तिन्नि कुला माणवगणस्स ॥१॥

थेरेहिंतो णं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडियकाकंदिएहिंतो वग्घावच्चसगोत्तेहिंतो एत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहा—

उच्चानागरी विज्जाहरी य, वइरी य मज्झिमिल्ला य ।
कोडियगणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ ॥१॥

से किं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहा—

पढमेत्थ बंभलिज्जं, वितियं नामेण वच्छलिज्जं तु ।
ततियं पुण वाणिज्जं, चउत्थयं पन्नवाहणयं ॥१॥

थेराणं सुट्ठियसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जइंददिन्ने थेरे पियगंथे थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगोत्ते णं थेरे इसिदत्ते थेरे अरहदत्ते । थेरेहिंतो णं पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया । थेरेहिंतो णं विज्जाहरगोवालेहिंतो तत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगोत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासी गोयमसगोत्ते । थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया वि होत्था, तं जहा—

थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगोत्ते थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते ।

थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो णं माढरसगोत्तेहिंतो एत्थ णं उच्चानागरी साहा निग्गया ।

उसकी ये चार शाखायें और तीन कुल इस प्रकार कहे गये हैं ।

उसकी वे शाखायें कौनसी हैं ?

शाखायें इस प्रकार हैं—१ कासविज्जिया २ गोयमिज्जिया ३ वासिट्ठिया ४ सोरट्ठिया । ये चार शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं यथा—

गाथा—

प्रथम—इसिगोत्तिय, द्वितीय—इसिदत्तिय और तृतीय अभिजसंत । माणवगण के ये तीन कुल हैं ।

वग्घावच्च गोत्रीय कोडिय काकंदक स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध से यहां कोडियगण नामक गण निकला । उसकी ये चार शाखायें और चार कुल इस प्रकार हैं ।

वे शाखायें कौन-कौन सी हैं ?

वे शाखायें इस प्रकार हैं—

गाथा—

१ उच्चानागरी २ विज्जाहरी ३ वइरी (वज्री) और ४ मज्झिमिल्ला । कोडियगण की ये चार शाखायें होती हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

गाथा—

प्रथम—बंभलिज्जकुल, द्वितीय—वच्छलिज्जकुल, तृतीय-वाणिज्जकुल और चतुर्थ-पन्नवाहणकुल ।

व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोडिय काकंदक स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबद्ध के पुत्र समान प्रवीण ये पाँच स्थविर अन्तेवासी थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न, स्थविर प्रियग्रन्थ, स्थविर विद्याधर गोपाल, काश्यपगोत्री स्थविर ऋषिदत्त, स्थविर अरहदत्त । स्थविर प्रियग्रन्थ से यहाँ मध्यमा शाखा निकली । स्थविर विद्याधर गोपाल से यहाँ विद्याधरी शाखा प्रारम्भ हुई—निकली ।

काश्यप गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न अन्तेवासी थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न के पुत्र के समान प्रख्यात ये दो स्थविर अन्तेवासी थे, वे इस प्रकार हैं—

माढर गोत्रीय आर्यशांति श्रेणिक स्थविर और कौशिक गोत्रीय जातिस्मरण ज्ञान संपन्न स्थविर आर्य सिंहगिरि ।

माढर गोत्रीय स्थविर शांति श्रेणिक से यहाँ उच्चानागरी शाखा निकली ।

वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं ।
गिम्हाण पढममासे कालगयं चेत्तसुद्धस्स ॥५॥

काश्यपगोत्री क्षमा के सागर और गंभीर आर्य हस्ती को वंदन करता हूँ। ये ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास चैत्र के शुक्ल पक्ष में कालधर्म को प्राप्त हुए थे।५।

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीसलद्धिसंपन्नं ।
जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥६॥

आर्य धर्म को वंदन करता हूँ जो सुव्रतों और शिष्यों की लब्धि से संपन्न थे तथा जिनके निष्क्रमण-दीक्षा लेने के समय देवों ने श्रेष्ठ उत्तम छत्र धारण किया था—वहन किया था।६।

हत्थं कासवगोत्तं धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि ।
सीहं कासवगोत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥७॥

काश्यपगोत्रीय हस्त को और शिव साधक धर्म को नमस्कार करता हूँ। काश्यप गोत्रीय सिंह और काश्यपगोत्रीय धर्म को भी वंदन करता हूँ।७।

सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने ।
देविड्ढिखमासमणे कासवगोत्ते पणिवयामि ॥८॥

—कप्पसुत्त

सूत्ररूप और उसके अर्थरूप रत्नों से समृद्ध, क्षमा, दम और मार्दव गुणों से संपन्न काश्यगोत्रीय देवर्धि क्षमाश्रमण को प्रणाम करता हूँ।८।

नंदिसुत्तगता थेरावली

६६५. सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥२५॥

नन्दीसूत्रगत स्थविरावली—

६६५. अग्निवेश्यायन गोत्रीय श्री सुधर्मा स्वामी को, काश्यप गोत्रीय जम्बू स्वामी को, कात्यायन गोत्रीय प्रभव स्वामी को और वत्सगोत्रीय श्री शयंभव स्वामी को वंदन करता हूँ।२५।

जसभद्दं तुंगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥२६॥

तुंगिक गोत्रीय यशोभद्र को, माढर गोत्रीय संभूत विजय को प्राचीन गोत्रीय भद्रबाहु स्वामी को तथा गौतम गोत्रीय स्थूल भद्र को तथा।२६।

एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च ।
तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥२७॥

एलापत्य गोत्र वाले महागिरि और सुहस्ती को वंदन करता हूँ तत्पश्चात् कौशिक गोत्रीय बहुल के समानवय वाले (बलिस्सह) को वंदन करता हूँ।२७।

[1] हारियगुत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥२८॥

हरीत गोत्री स्वाति को और हारीत गोत्री श्यामार्य को वंदना करता हूँ। कौशिक गोत्री शाण्डिल्य आर्य और जीतधर को वंदन करता हूँ।२८।

ति-समुद्द-खायकित्तिं, दीवसमुद्देसु गहिय-पेयालं ।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥२९॥

तीन समुद्रों पर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले, विविध द्वीप और समुद्रों में प्रामाणिकता-प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले, क्षोभरहित समुद्र के समान गंभीर ऐसे आर्य समुद्र को वंदन करता हूँ।२९।

तत्तो अ थिरचरित्तं उत्तमसम्मत्तसंजुत्तं । देसिगणिखमासमणं माढरगुत्तं नमंसामि ॥११॥
तत्तो अणुओगधरं धीरं मइसागरं महासत्तं । थिरगुत्तखमासमणं वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥१२॥
तत्तो य नाणदंसणचरित्ततवसुट्ठियं गुणमहंतं । थेरं कुमारधम्मं वंदामि गणिं गुणोवेयं ॥१३॥
सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देविड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१४॥

—अर्वाचीनासु प्रतिषु पाठः

१. मेरुतुङ्गस्थविरावली—
सूरि बलिस्सह साई, सामज्जो संडिलो य जीयधरो । अज्जसमुद्दो मंगू, नंदिल्लो नागहत्थी य ॥
रेवईसिंहो खंदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा । सिरभूइदिन्न-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवड्ढी ॥
सुत्तत्थ-रयणभरिए, खम-दम-मद्दवगुणेहिं संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥

गाहाओ—

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं ।
कोच्छिं सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जितकंटे य ॥१॥

तं वंदिऊण सिरसा चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं ।
णक्खं कासवगोत्तं रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥

वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं ।
विण्हुं माढरगोत्तं कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥

[2]गोयमगोत्तमभारं सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे ।
[3] थेरं च संघवालियकासवगोत्तं पणिवयामि ॥४॥

गाथार्थ—

गौतम गोत्रीय फग्गुमित्र को, वाशिष्ठ गोत्रीय धनगि... कौत्स्य गोत्रीय शिवभूति को और कौशिक गोत्रीय दोज्जं... को वंदन करता हूँ ? ।१।

उन सभी को मस्तक नमाकर वंदन करके काश्यप ... चित्त को वंदन करता हूँ । काश्यप गोत्रीय नक्षत्र ... काश्यप गोत्रीय रक्ष को भी वंदन करता हूँ ।२।

गौतम गोत्रीय आर्यनाग को और वाशिष्ठ गोत्री जे... तथा माढर गोत्रीय विष्णु को और गौतम गोत्री कालक ... वंदन करता हूँ ।३।

गौतम गोत्रीय मभार को सप्पलय को तथा भद्रक को ... करता हूँ । काश्यप गोत्री स्थविर संघवालिक—संघपालि... प्रणाम करता हूँ ।४।

थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स । अज्जनक्खत्ते थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स । अज्जरक्खे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स णं अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स । अज्जनागे थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥८॥
थेरस्स णं अज्जनागस्स गोयमसगुत्तस्स । अज्जजेहिले थेरे अन्तेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स णं अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स । अज्जविण्हू थेरे अन्तेवासी माढरसगोत्ते ॥१०॥
थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरस्सगुत्तस्स । अज्जकालए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥११॥
थेरस्स णं अज्जकालगस्स गोयमसगुत्तस्स । इमे दुवे थेरा अन्तेवासी गोयमसगोत्ता—
थेरे अज्जसंपलिए थेरे अज्जभद्दे ॥१२॥
एएसिं दुण्ह वि थेराणं गोयमसगुत्ताणं । अज्जवुड्ढे थेरे अन्तेवासी गोयमसगुत्ते ॥१३॥
थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगोत्तस्स । अज्जसंघपालिए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥१४॥
थेरस्स णं अज्जसंघपालियस्स गोयमसगोत्तस्स । अज्जहत्थी थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस । अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी सुव्वयगोत्ते ॥१६॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स सुव्वयगोत्तस्स । अज्जसीहे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स णं अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स । अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स । अज्जसंडिल्ले थेरे अन्तेवासी ॥१९॥

—अर्वाचीनासु प्रतिपु प...

२. गोयमगोत्तकुमारं—गोयमगोत्तममारं इतिकल्याणविजय—पट्टावलीपरागे पृ० २६ ।
"गोयमगोत्तभभारं, गोयमगोत्तममारं" इति प्रत्यन्तरद्वयम् ॥

३. थेरं च अज्जुवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसामि ॥४॥
तं वंदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च संघवालिय गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥५॥
वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं । गिम्हाण पढममासे कालगयं चेव सुद्धस्स ॥६॥
वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥

गाहाओ—

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं ।
कोच्छि सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जितकंटे य ॥१॥

तं वंदिऊण सिरसा चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं ।
णक्खं कासवगोत्तं रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥

वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं ।
विण्हुं माढरगोत्तं कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥

[1]गोयमगोत्तमभारं सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे ।
[2] थेरं च संघवालियकासवगोत्तं पणिवयामि ॥४॥

गाथार्थ—

गौतम गोत्रीय फग्गुमित्र को, वाशिष्ठ गोत्रीय धनगिरि को, कौत्स्य गोत्रीय शिवभूति को और कौशिक गोत्रीय दोज्जंत कंटक को वंदन करता हूँ ? ।१।

उन सभी को मस्तक नमाकर वंदन करके काश्यप गोत्रीय चित्त को वंदन करता हूँ। काश्यप गोत्रीय नक्षत्र को और काश्यप गोत्रीय रक्ष को भी वंदन करता हूँ।२।

गौतम गोत्रीय आर्यनाग को और वाशिष्ठ गोत्री जेहिल को तथा माढर गोत्रीय विष्णु को और गौतम गोत्री कालक को भी वंदन करता हूँ।३।

गौतम गोत्रीय मभार को सप्पलय को तथा भद्रक को वंदन करता हूँ। काश्यप गोत्री स्थविर संघवालिक—संघपालित को प्रणाम करता हूँ।४।

थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स । अज्जनक्खत्ते थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स । अज्जरक्खे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स णं अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स । अज्जनागे थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥८॥
थेरस्स णं अज्जनागस्स गोयमसगुत्तस्स । अज्जजेहिले थेरे अन्तेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स णं अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स । अज्जविण्हू थेरे अन्तेवासी माढरसगोत्ते ॥१०॥
थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरस्सगुत्तस्स । अज्जकालए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥११॥
थेरस्स णं अज्जकालगस्स गोयमसगुत्तस्स । इमे दुवे थेरा अन्तेवासी गोयमसगोत्ता—
थेरे अज्जसंपलिए थेरे अज्जभद्दे ॥१२॥
एएसिं दुण्ह वि थेराणं गोयमसगुत्ताणं । अज्जवुड्ढे थेरे अन्तेवासी गोयमसगुत्ते ॥१३॥
थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगोत्तस्स । अज्जसंघपालिए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥१४॥
थेरस्स णं अज्जसंघपालियस्स गोयमसगोत्तस्स । अज्जहत्थी थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स । अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी सुव्वयगोत्ते ॥१६॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स सुव्वयगोत्तस्स । अज्जसीहे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स णं अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स । अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स णं अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स । अज्जसंडिल्ले थेरे अन्तेवासी ॥१९॥

—अर्वाचीनासु प्रतिपु पाठः ।१

२. गोयमगोत्तकुमारं—गोयमगोत्तममारं इतिकल्याणविजय—पट्टावलीपरागे पृ० २८ ।
"गोयमगोत्तनभारं, गोयमगोत्तममारं" इति प्रत्यन्तरद्वयम् ॥

३. थेरं च अज्जवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसामि ॥४॥
तं वंदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च संघवालिय गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥५॥
वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं । गिम्हाण पढममासे कालगयं चेव सुद्धस्स ॥६॥
वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥
हत्थिं कासवगुत्तं धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि । सीहं कासवगुत्तं धम्मं पि अ कासवं वंदे ॥८॥
तं वंदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेर च अज्जजंबुं गोअमगुत्तं नमंसामि ॥९॥
मिउमद्दवसंपन्नं उवउत्तं नाणचरित्ते । थेरं च नंदिअं पि य कासवगुत्तं पणिवयामि ॥१०॥

शेप पृष्ठ ३७७ पर

वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं ।
गिम्हाण पढममासे कालगयं चेत्तसुद्धस्स ॥५॥

काश्यपगोत्री क्षमा के सागर और गंभीर आर्य हस्ती को वंदन करता हूँ । ये ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास चैत्र के शुक्ल पक्ष में कालधर्म को प्राप्त हुए थे ।५।

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीसलद्धिसंपन्नं ।
जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥६॥

आर्य धर्म को वंदन करता हूँ जो सुव्रतों और शिष्यों की लब्धि से संपन्न थे तथा जिनके निष्क्रमण-दीक्षा लेने के समय देवों ने श्रेष्ठ उत्तम छत्र धारण किया था—वहन किया था ।६।

हत्थं कासवगोत्तं धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि ।
सीहं कासवगोत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥७॥

काश्यपगोत्रीय हस्त को और शिव साधक धर्म को नमस्कार करता हूँ । काश्यप गोत्रीय सिंह और काश्यपगोत्रीय धर्म को भी वंदन करता हूँ।७।

सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने ।
देविड्ढिखमासमणे कासवगोत्ते पणिवयामि ॥८॥

—कप्पसुत्त

सूत्ररूप और उसके अर्थरूप रत्नों से समृद्ध, क्षमा, दम और मार्दव गुणो से संपन्न काश्यगोत्रीय देवर्धि क्षमाश्रमण को प्रणाम करता हूँ ।८।

नंदिसुत्तगता थेरावली

नन्दीसूत्रगत स्थविरावली—

६६५. सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।
पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तहा ॥२५॥

६६५. अग्निवेश्यायन गोत्रीय श्री सुधर्मा स्वामी को, काश्यप गोत्रीय जम्बू स्वामी को, कात्यायन गोत्रीय प्रभव स्वामी को और वत्सगोत्रीय श्री शयंभव स्वामी को वंदन करता हूँ ।२५।

जसभद्दं तुगियं वंदे, संभूयं चेव माढरं ।
भद्दबाहुं च पाइन्नं, थूलभद्दं च गोयमं ॥२६॥

तुंगिक गोत्रीय यशोभद्र को, माढर गोत्रीय संभूत विजय को प्राचीन गोत्रीय भद्रबाहु स्वामी को तथा गौतम गोत्रीय स्थुल भद्र को तथा ।२६।

एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थिं च ।
तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥२७॥

एलापत्य गोत्र वाले महागिरि और सुहस्ती को वंदन करता हूँ तत्पश्चात् कौशिक गोत्रीय बहुल के समानवय वाले (बलिस्सह) को वंदन करता हूँ ।२७।

[1] हारियगुत्तं साइं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।
वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥२८॥

हरीत गोत्री स्वाति को और हारीत गोत्री श्यामार्य को वंदना करता हूँ । कौशिक गोत्री शाण्डिल्य आर्य और जीतधर को वंदन करता हूँ ।२८।

ति-समुद्द-खायकित्तिं, दीवसमुद्देसु गहिय-पेयालं ।
वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥२९॥

तीन समुद्रों पर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले, विविध द्वीप और समुद्रों में प्रामाणिकता-प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले, क्षोभरहित समुद्र के समान गंभीर ऐसे आर्य समुद्र को वंदन करता हूँ ।२९।

तत्तो अ थिरचरित्तं उत्तमसम्मत्तसंजुत्तं । देसिगणिखमासमणं माढरगुत्तं नमंसामि ॥११॥
तत्तो अणुओगधरं धीरं मइसागरं महासत्तं । थिरगुत्तखमासमणं वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥१२॥
तत्तो य नाणदंसणचरित्ततवसुट्ठिअं गुणमहंतं । थेरं कुमारधम्मं वंदामि गणिं गुणोवेयं ॥१३॥
सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देविड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१४॥
—अर्वाचीनासु प्रतिषु पाठः ।

१. मेरुतुङ्गस्थविरावली—
सूरि बलिस्सह साई, सामज्जो संडिलो य जीयधरो । अज्जसमुद्दो मंगू, नंदिल्लो नागहत्थी य ॥
रेवईसिंहो खंदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा । सिरभूइदिन्न-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवड्ढी ॥
सुत्तत्थ-रयणभरिए, खम-दम-मद्दवगुणेहिं संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥

भणगं करगं झरगं, पभावगं णाण-दंसणगुणाणं ।
वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारगं धीरं ॥३०॥

भापक (कालिक सूत्रों का अध्ययन करने वाले) कारक (सूत्रानुसार क्रिया करने वाले) धर्मध्यान के ध्याता, ज्ञान-दर्शन गुणों का उद्योत करने वाले, श्रुतसागर के पारगामी और धैर्य गुण संपन्न आर्य मंगु को वंदन करता हूँ ।३०।

*वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवइरं, तव-नियम-गुणेहिं वइरसमं ॥३१॥

आर्य धर्म को और फिर भद्रगुप्त को वंदन करता हूँ और उसके बाद तप-नियम आदि गुणों से वज्र के समान आर्य वज्र स्वामी को वंदन करता हूँ ।३१।

*वंदामि अज्जरक्खिय, खवणेरक्खिय-चारित्त सव्वस्से ।
रयणकरंडगभूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥३२॥

जिन्होंने सभी संयमियों के चारित्र सर्वस्व (धन) की रक्षा की तथा जिन्होंने रत्नों की पेटी के समान अनुयोग की रक्षा की उन आर्यरक्षित क्षपण को वंदन करता हूँ ।३२।

नाणंमि दंसणंमि य, तव-विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जा नंदिल-खवणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥३३॥

ज्ञान, दर्शन, तप और विनय में प्रतिक्षण उद्यत, प्रसन्नचित्त रहने वाले आर्यनंदिल क्षपण को मस्तक नमाकर वंदन करता हूँ ।३३।

वड्ढउ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं ।
वागरण-करण-भंगिय, कम्मपयडीपहाणाणं ॥३४॥

(प्रश्न) व्याकरण और करण सित्तरी आदि भांगों के ज्ञाता. कर्मप्रकृति-प्ररूपण करने में प्रधान ऐसे आर्य नाग हस्ती का वाचक वंश यश-वंश की तरह वृद्धिगत हो ।३४।

जच्चंजण-धाउसमप्पहाण मुद्दीय-कुवलयनिहाणं ।
वड्ढउ वायगवंसो, रेवइ—नक्खत्तनामाणं ॥३५॥

जाति अंजन धातु के समान प्रभावाले तथा कुवलय कमल के समान प्रभा वाले रेवती नक्षत्र नामक मुनिप्रवर का वाचक वंश वृद्धि प्राप्त करे ।३५।

अयलपुरा निक्खंते, कालियसुअ-आणुओगिए धीरे ।
बंभद्दीवग-सीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥३६॥

अचलपुर में जो दीक्षित हुए, कालिक सूत्रों के व्याख्याता, धीर उत्तम वाचक पद को प्राप्त करने वाले ब्रह्मदीपिक शाखा में सिंह के समान श्री सिंहाचार्य को तथा— ।३६।

जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहंमि ।
बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥३७॥

जिनका यह अनुयोग आज भी अर्धभरत क्षेत्र में प्रचलित है और बहुत नगरों में जिनका यश प्रसृत—फैला हुआ है, उन स्कन्दिलाचार्य को वंदन करता हूँ ।३७।

तत्तो हिमवंत-महंत-विक्कमे, धिइपरक्कममणंते ।
सज्झायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥३८॥

तत्पश्चात् हिमवान् की तरह महान विक्रमशाली, अनन्त धैर्य एवं पराक्रम वाले, अनन्त स्वाध्याय के धारक ऐसे हिमवान आचार्य को नतमस्तक हो वंदना करता हूँ ।३८।

कालिय-सुय-अणुओगस्स-धारए, धारए य पुव्वाणं ।
हिमवंतखमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥३९॥

कालिक श्रुतसम्बन्धी अनुयोग के धारक और उत्पादि आदि पूर्वों को भी धारण करने वाले आचार्य—हिमवन्त क्षमा श्रमण के सदृश आर्य नागार्जुन को नमस्कार करता हूँ ।३९।

मिउमद्दवसंपन्ने, अणुपुव्वि वायगत्तणं पत्ते ।
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वन्दे ॥४०॥

मृदु-मार्दव आदि भावों से संपन्न, क्रम से वाचक पद को प्राप्त, ओघश्रुत का समाचरण करने वाले नागार्जुन वाचक को वंदन करता हूँ ।४०।

*गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं ।
णिच्चं खंतिदयाणं, परूवणे दुल्लभिंदाणं ॥४१॥

अनुयोग सम्बन्धी विपुल धारणा करने वालों में इन्द्र के समान क्षमा और दया आदि गुणों की नित्य प्ररूपणा करने में निपुण गोविन्दाचार्य को भी नमस्कार हो ।४१।

---

* एतादृक्चिन्हांकित गाथा पञ्चकं व्याख्या ग्रन्थेषु नोपलभ्यते ॥

*तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तव-संजमे अनिव्विण्णं ।
पंडियजणसामन्नं, वंदामो संजमविहिण्णुं ।।४२।।

और तत्पश्चात् तप और संयम में सदा ही खेदरहित, पंडितजनों में सम्माननीय तथा संयम के विशेषज्ञ ऐसे आचार्य भूतदिन्न को वंदन करता हूँ।४२।

वर-कणग-तविय-चंपग-विमउल-वर-कमलगब्भसरिवन्ने ।
भवियजणहियय‌दइय, दयागुणविसारए धीरे ।।४३।।
अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह-सज्झाय-सुमुणियपहाणे ।
अणुओगियवरवसभे, नाइलकुलवंसनंदिकरे ।।४४।।
भूयहियय‌प्पगब्भे, वंदेऽहं भूयदिन्नमायरिए ।
भवभयवुच्छेयकरे, सीसे नागज्जुणरिसीणं ।।४५।।

तपाये हुए विशुद्ध सुवर्ण के समान, स्वर्णिम चंपक पुष्प के तुल्य या विकसित उत्तम कमल के गर्भ सदृश वर्ण वाले, भव्यजनों के हृदयवल्लभ, जनता में दया भावना उत्पन्न करने में अति निपुण, धैर्य गुणयुक्त, अर्धभरत क्षेत्र में युगप्रधान, स्वाध्याय के विना प्रकारों के श्रेष्ठ विज्ञाता, अनेक श्रेष्ठ मुनिवरों को स्वाध्याय आदि में प्रवृत्त कराने वाले, नाइल कुल तथा वंश को प्रसन्न करने वाले, प्राणिमात्र को हितोपदेश करने में समर्थ, संसार भय को नष्ट करने वाले और आचार्य श्री नागार्जुन ऋषि के शिष्य भूतदिन्न आचार्य को मैं वंदन करता हूँ। ४३-४५

सुमुणियनिच्चानिच्चं, सुमुणियसुत्तत्थधारयं वंदे ।
सब्भावुब्भावणया, तत्थं लोहिच्च णामाणं ।।४६।।

नित्यानित्य रूप से वस्तुतत्व को सम्यक्तया जानने वाले, भली प्रकार से समझे हुए सूत्रार्थ को धारण करने वाले, यथावस्थित भावों का सम्यक् प्रकार से प्ररूपण करने वाले लोहित्य नामक आचार्य को वंदन करता हूँ।४६।

अत्थमहत्थक्खाणिं, सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं ।
पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ।।४७।।

शास्त्रों के अर्थ व महार्थ की खान के समान, सुश्रमणों के लिये आगमों का व्याख्यान और पूछे हुए विषयों का कथन करने में शांति का अनुभव करने वाले और प्रकृति से मधुर वाणी संपन्न उन दूष्यगणि को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करता हूँ।४७।

*तव-नियम-सच्च-संजम-विणयज्जव-खंति-मद्दवरयाणं ।
सीलगुणगद्दियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ।।४८।।
सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।
पाए पावयणीणं, पाडिच्छयसएहिं पणिवइए ।।४९।।

तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव, क्षान्ति, मार्दव आदि गुणों में रत, संलग्न, शील गुणों में ख्याति प्राप्त और अनुयोग की व्याख्या करने में युगप्रधान तथा पूर्वोक्त गुणों से युक्त, प्रवचनकारों के प्रशस्त लक्षणों से उपेत, सैकड़ों प्रतीच्छकों-शिष्यों द्वारा प्रणाम किये गये ऐसे (उन दूष्यगणि के) प्रशस्त लक्षणों से युक्त, सुकुमार सुन्दर तलवे वाले चरणों को प्रणाम करता हूँ तथा—४८-४९।

जे अन्ने भगवंते, कालियसुण-आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं ।।५०।।

इनके अतिरिक्त और जो अन्य-दूसरे कालिकश्रुत तथा अनुयोगधर धीर श्रुतधर भगवन्त हैं, उनको नतमस्तक होकर प्रणाम करके ज्ञान की प्ररूपणा करता हूँ—करूँगा/कहूँगा ।५०।

—नंदी

卐 卐



स्व० श्री तेजराजजी चवरचन्दजी वेद, इचलकरंजी

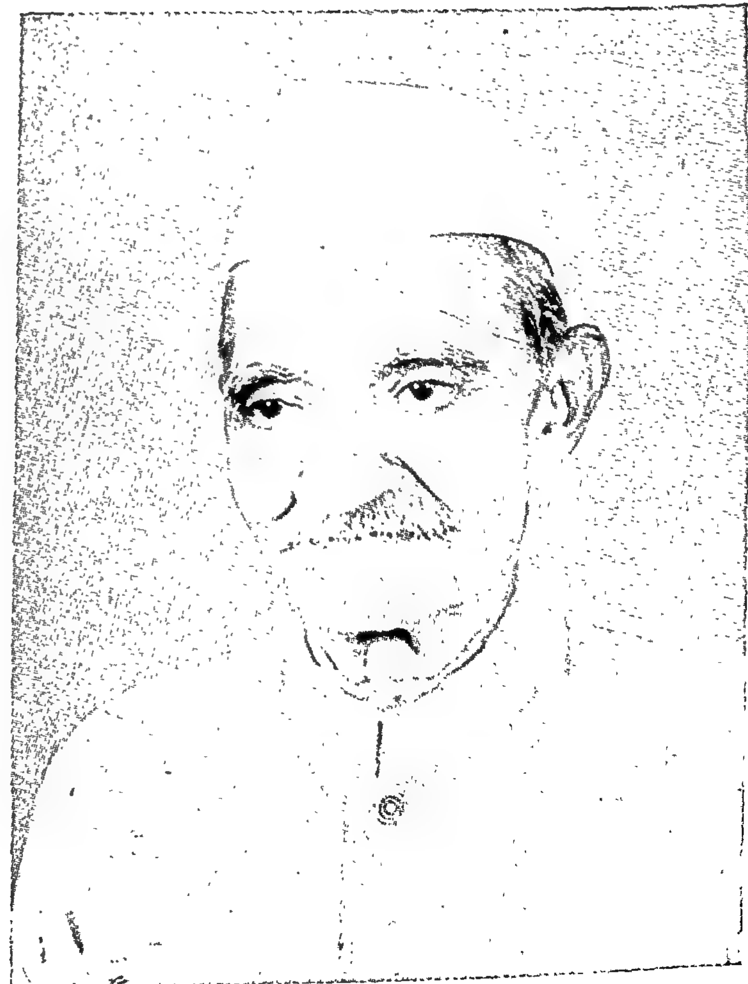
आप मूलतः भादवा मारवाड़ निवासी हैं। आप आठ भाई थे: श्री मूलचन्द जी, श्री तेजराज जी, श्री मदनलाल जी, श्री माणकचन्द जी, श्री मोहनलाल जी, श्री मोतीलाल जी, श्री हिराचन्द जी, श्री श्रीचन्द जी।

श्री तेजराज जी सा० का गत वर्ष निधन हो गया। आप बहुत ही धर्म निष्ठ उदार हृदयी श्रावक थे। आप पूज्य गुरुदेव श्री फतहचन्द जी म० के सुशिष्य अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" के अनन्य भक्त थे। आपके सुपुत्र रूपचन्द जी भी धार्मिक भावना वाले उदार हृदय युवक हैं।

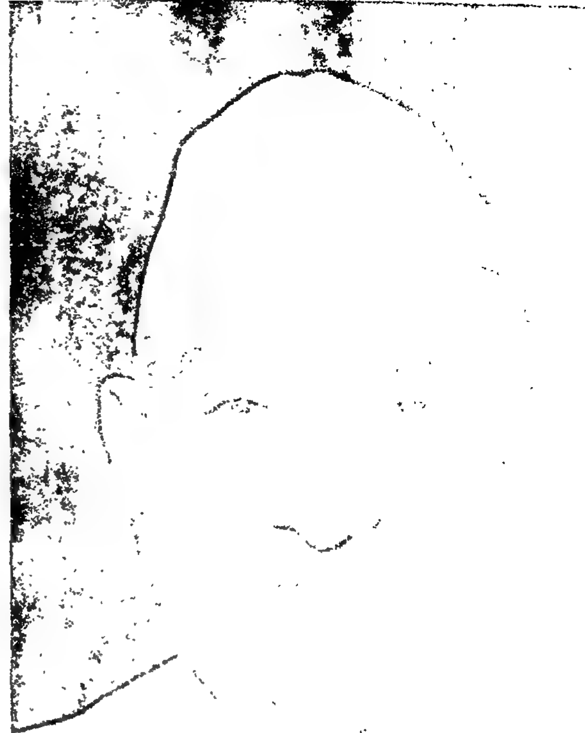
आपका वर्तमान में व्यवसायिक क्षेत्र इचलकरंजी है।

स्व० जगजीवनदास रतनसी बगड़िया
दामनगर

आप दामनगर के प्रतिष्ठित सुश्रावक थे। शास्त्रों के बहुत बड़े अभ्यासी थे। अनेक शास्त्रों का प्रकाशन आपने करवाया था। बहुत ही नम्र स्वभाव के थे। साधु साध्वीयों के प्रति आपकी असीम श्रद्धा थी। बोटाद संप्रदाय के श्री अमीचन्द जी म० की प्रेरणा से आपके सुपुत्र भोगी भाई के चतुर्थ व्रत के प्रत्याख्यान के उपलक्ष्य में अनुयोग ट्रस्ट को बहुत बड़ा योगदान दिया है।







स्व0 श्री हरिभाई जयचन्द दोशी

विश्व वात्सल्य ट्रस्ट बम्बई



आप बड़े ही सादगीप्रिय तत्वज्ञानी श्रावक थे। धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। साधु-साध्वियों के प्रति भक्ति एवं दान की भावना विशेष थी।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप भी प्रथम श्रेणी के सहयोगी रहे हैं।



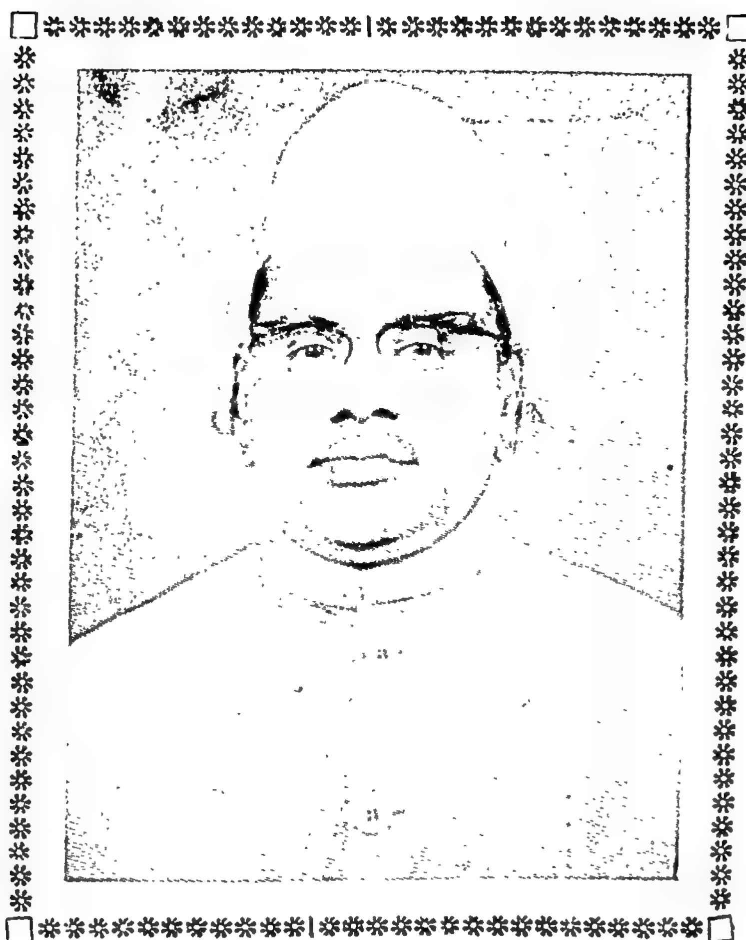


धर्मशीला उदयकंवर बाई [illegible]

आप मुकनचन्द जी [illegible] की धर्मपत्नी है। बहुत ही उदार, धार्मिक [illegible] साहब मुख्यतः पाली, मारवाड़ के [illegible] संस्थाओं के प्राण है। वर्तमान में [illegible] बड़े पैमाने पर [illegible] पाली में निर्मित आचार्य [illegible] आपके द्वारा हुआ। आगम अनुयोग [illegible] गुरुदेव [illegible] [illegible] श्रद्धा [illegible]



स्व० श्री मेघराज जी बम्ब, हैदराबाद



आप मूलतः पीही मारवाड़ निवासी हैं। हैदराबाद में रह कर आपने बहुत बड़ा व्यापार व्यवसाय किया। अनेक सुकृत कार्यों में उदार मन से जीवन पर्यन्त सहयोग करते रहे। शमशेरगंज में धर्म आराधना हेतु एक भवन का निर्माण भी कराया।

आपका स्वास्थ्य कुछ वर्षों से अच्छा नहीं था, ३ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया। आप पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी महाराज के अनन्य भक्त थे, आप अन्तिम समय तक गुरुदेव के चातुर्मास की प्रबल भावना करते रहे। वह भी सफल हुई और गुरुदेव का चातुर्मास वि० सं० २०३८ का हुआ। आपके भाई चांदमल जी भीमराज जी, शिवराज जी भी बहुत ही धार्मिक उदार व गुरुभक्त हैं। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के प्रथम श्रेणी के सहयोगी बने।

श्रीमती केलीबाई देवराज जी [illegible] जैतारण (मारवाड़)

आप बहुत ही धार्मिक, दानवीर [illegible] श्री शान्तिलाल जी एवं श्री [illegible] आपका व्यवसाय [illegible] लम्बे-२ मुनि दर्शनार्थ संघ [illegible] सदुपयोग कर रहे हैं। आपने [illegible] प्रदान किया है।

श्रीमती चन्द्रादेवी बंब, टोंक (राज०)

आपका जन्म आसोज वदी १२ सन् १९३३ दिल्ली में हुआ। सन् १९४५ में टोंक (राज०) के प्रतिष्ठित परिवार के श्री धन्नालालजी बंब के सुपुत्र श्री गंभीरमल जी के साथ पाणिग्रहण हुआ। आपके दो सुपुत्र श्री अजीत कुमार एवं श्री अशोक कुमार हैं।

आप अनुयोग प्रवर्तक पं० रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'कमल' एवं महासती श्री पानकंवर जी रत्नकंवर जी से विशेष प्रभावित हुई हैं।

श्री [illegible] मुनि जी 'आगीत' के जीवन निर्माण में एवं धर्म की ओर अग्रसर करने में आप प्रमुख रही हैं। आप स्वयं के दीक्षा लेने के [illegible] अनुकूल न होने के [illegible] [illegible] आपने अनुयोग [illegible] में विशेष [illegible] किया है।





श्री अजयराज जी मेहता, अहमदाबाद

आप मुख्यत: बड़लू भोपालगढ़ के निवासी हैं। आपकी धर्मप सरोजबेन भी बहुत धार्मिक भावना वाली हैं। आपका अहमदा में फाइनेन्स का व्यवसाय है। आप बहुत ही नम्र सरल एवं उ व्यक्ति हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।



श्री विजयराज जी बोहरा, अहमदाबाद

आप राणीवाल मारवाड़ के निवासी हैं। बालाराम जी के आप पुत्र हैं। अहमदाबाद में आपका न्यू क्लोथ माकट में फाइनेन्स का बहुत बड़ा व्यापार है। अनुयोग के कार्य हेतु पूज्य गुरुदेव अहमदाबाद धारे जब से विशेष रूचि है। आप पूज्य मरुधर केसरी जी म० के अनन्य भक्त हैं। अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।













तृतीय श्रेणी सहयोगी



[स्]व० शा० कस्तूरचन्दजी प्रताप जी साकरिया सांडेराव

आप वांकली वास के प्रतापजी कपूर जी के सुपुत्र थे ! स्व० तपस्वी स्वामी श्री वक्तावरमल जी म० के अनन्य भक्तों में से एक थे। आपके सुपुत्र शांतिलाल जी, कांतिलाल जी, मदनलाल जी, सुरेशकुमार जी, जगदीश जी भी धर्म में दृढ़ श्रद्धाभाव रखते हैं।



श्री वृद्धिचन्द जी मेघराज जी सांडेराव

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सांडेराव एवं वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। श्री मूलचन्द जी, शेषमलजी, उम्मेदमलजी एवं आप चार भाइयों में सबसे बड़े हैं। पूज्य गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं।



श्रीमान धनराजजी नाहटा, केकड़ी (राज०)

आप श्री दीपचन्द जी नाहटा के सुपुत्र हैं। चित्रकला, कविता, नाटक कला, व्यायाम आदि में आपकी विशेष रुचि है। साथ ही धार्मिक ज्ञान, तत्त्वचर्चा तथा वाद-विवाद में भी कुशल हैं। स्थानकवासी जैन संघ केकड़ी के मंत्री हैं। पूज्य स्वामीदास जी म० की परम्परा के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखते हुए गुरुदेव मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'कमल' के अनन्य भक्त हैं। श्रमण संघ के प्रति गहरी निष्ठा है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी हैं।

श्रीमती पार्वती बहिन शिवलाल तलक्सीभाई अजमेरा ट्रस्ट, अहमदाबाद। हस्ते, नवनीतलाल मणीलाल अजमेरा
श्री शांतिलाल अमृतलाल वोरा, अहमदाबाद
श्री कांतिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला, अहमदाबाद
श्री वाडीलाल मोहनलाल शाह, सायन, बम्बई
श्री गिरधरलाल पुरुषोतमदास ऐलिसब्रिज, अहमदाबाद
श्री जयन्तिलाल भोगीलाल भावसार, सरसपुर, अहमदाबाद
श्री जयन्तिलाल बी. भावसार अहमदाबाद-२
श्री दीनुबाई बी. भावसार अहमदाबाद-२
श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद
श्री अहमदाबाद स्टील स्टोर, अहमदाबाद
हस्ते जयन्तिलाल मनसुखलाल लोखण्डवाला
श्री जादवजी मोहनलाल शाह, अहमदाबाद
डा. धीरजलाल एच. गोसलिया नवरंगपुरा, अहमदाबाद
श्री सज्जनसिंहजी भंवरलालजी काकरिया, पिपाड़सिटी (वर्तमान—अहमदाबाद)
श्री कांतिलाल प्रेमचन्द मुंगफलीवाला, अहमदाबाद
मे० प्लाजा इन्डस्ट्रीज, अहमदाबाद
हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
स्व० मणीलाल नेमचन्द अजमेरा तथा स्व० कस्तुरी बहिन मणीलाल की स्मृति में
हस्ते, चम्पकभाई मणीलाल अजमेरा बम्बई
श्री नगीनदास शिवलाल अहमदाबाद
श्रीमती कांताबेन भाईलाल के वर्षीतप के उपलक्ष्य में
हस्ते, सखीदास महासुखभाई अहमदाबाद
श्रीमती समरथ बेन चतुभु ज बम्बई
हस्ते, कांतिभाई बेकरीवाला
श्री छगनलाल शामजी भाई विराणी, राजकोट (बम्बई)
श्री रसीकलाल हीरालाई झवेरी बालकेश्वर बम्बई
श्रीमती तरुलताबेन रमेशचन्द दफ्तरी बाल्केश्वर बम्बई
श्री ताराचन्द चतुरभाई वोरा वाल्केश्वर बम्बई
हस्ते, नंदलाल वोरा
श्री चम्पकलाल एम. लाखाणी, बालकेश्वर बम्बई
श्री हिरजी सोजपाल कच्छकपाया वाला बालकेश्वर बम्बई
श्री अमृतलाल सौभाग्यचन्द की स्मृती में
हस्ते, गुणवंतलाल राजेन्द्रकुमार बम्बई
श्री दलिचन्दभाई अमृतलाल देसाई अहमदाबाद
श्री एम० के० गांधी चेरिट्रिबल ट्रस्ट घाटकोपर, बम्बई
हस्ते, वजुभाई गांधी
श्री भाईलाल जादवजी सेठ कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
श्री जुहारमल दीपचन्द नाहटा सर्राफ केकड़ी (राज०)
हस्ते धनराज लालचन्द नाहटा

श्री रतनसी भेदा की स्मृति में—
हस्ते, उमरबाई शिवजी भेदा
श्री रतनजी केशवजी भेदा की स्मृती में
हस्ते, उम्मेदभाई शिवजी भेदा, बम्बई
श्री पी. के. गांधी बम्बई
श्री सुखलालजी कोठारी, खार बम्बई
श्री मोहनलाल नागरदास खार, बम्बई
श्री आनन्दीलालजी कटारिया वड़ाला, बम्बई
श्री वसंतलाल के. दोसी विलेपारला बम्बई
दी प्रोसीजन टेक्सटाईल इन्जीनियरिंग एण्ड कॉम्पोन्टस, बम्बई
श्री मेहता इन्द्रजी पुरुषोत्तमदास दादर, बम्बइ
स्व० भाई अमृतलाल की स्मृति में
श्री पारसमलजी कावडिया सादड़ी मारवाड़ (आरकाट)
श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिटेबल ट्रस्ट बम्बई
श्री जयसुखलाल रामजीभाई कांदावाडी, बम्बई
श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाडी बम्बई
श्री मेघजी भाई थोभण कांदावाडी बम्बई
श्री प्रीतमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाडी, बम्बई
श्री प्रभुदास रामजी भाई कांदावाडी बम्बई
श्री एक सद्गृहस्थ बम्बई
श्री सीलमोहन एण्ड कम्पनी बम्बई (टाइपराईटर हेतु)
हस्ते, रमणीकलाल मोहनलाल धानेरा
श्री नरोतमदास मोहनलाल बम्बई
श्री रतिलाल विट्ठलदास गोसलिया माधवनगर (महाराष्ट्र)
श्री वाडीलाल जेठालाल शाह वाल्केश्वर, बम्बई
श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र, मरीन लाइन बम्बई
आचार्य श्री यशोदेव सूरिस्वरजी म० की प्रेरणा से
शा० मेघजी खिमजी तथा श्रीमति लक्ष्मीबेन मेघजी खिमजी बम्बई
श्री हरखराजजी दौलतराजजी धारीवाल हैदराबाद
श्री लादुसिंहजी गांग एडवोकेट शाहपुरा (राज)
श्री एस. एन. भीकमचंद सुखाणी लाल बाजार, सिकन्द्राबाद
श्री केशवलाल मणीलाल शाह बम्बई
श्री ताराचंद गुलाबचंद बालकेश्वर बम्बई
श्री नाथालाल भगवानजी घाटलिया बम्बई
श्री पुखराजजी कावडिया सादड़ो मारवाड़ (बम्बई)
श्रीमती भूरीबाई भंवरलालजी कोठारी, सेमा (मेवाड़)
हस्ते, सागरमल मदनलाल रमेशचंद्र बम्बई
श्री प्रेमराजजी चौरडिया मदनगंज (अजमेर)
श्रीमती भानुबेन जयेन्द्रभाई महेता बम्बई
नगीन भाई जयमुखलाल, सींगापुरवाला, बम्बई

जैन-आगम में सत्य का साक्षात् दर्शन है। जो अखण्ड है, सम्पूर्ण व समग्र मानव चेतना को संस्पर्श करता है। सत्य के साथ शिव का मधुर सम्बन्ध होने से वह सुन्दर ही नहीं, अतिसुन्दर है। वह आर्ष वाणी है। आर्ष का अर्थ तीर्थंकर या ऋषियों की वाणी है। यास्क ने ऋषि की परिभाषा करते हुए लिखा है—'जो सत्य का साक्षात् द्रष्ट है, वह ऋषि है'।[1] प्रत्येक साधक ऋषि नहीं बन सकता, ऋषि वह है जिसने तीक्ष्ण प्रज्ञा, तर्क, शुद्ध ज्ञान से सत्य की स्पष्ट अनुभूति की है।[2] यही कारण है कि वेदों में ऋषि को मंत्रद्रष्टा कहा है। मंत्रद्रष्टा का अर्थ है—साक्षात् सत्यानुभूति पर आधृत शिवत्व का प्रतिपादन करने वाला सर्वथा मौलिक ज्ञान। वह आत्मा पर आयी हुई विभाव परिणतियों के कालुष्य को दूर कर केवलज्ञान और केवलदर्शन से स्व-स्वरूप को आलोकित करता है। जो यथार्थ सत्य का परिज्ञान करा सकता है, आत्मा का पूर्णतया परिबोध करा सके, जिससे आत्मा पर अनुशासन किया जा सके, वह आगम है। उसे दूसरे शब्दों में शास्त्र और सूत्र भी कह सकते हैं।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में लिखा है—जिसके द्वारा यथार्थ सत्य रूप ज्ञेय का, आत्मा का परिबोध हो एवं आत्मा का अनुशासन किया जा सके, वह शास्त्र है।[3] शास्त्र शब्द शास् धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—शासन, शिक्षण और उद्बोधन। जिस तत्त्व-ज्ञान से आत्मा अनुशासित हो, उद्बुद्ध हो, वह शास्त्र है। जिससे आत्मा जागृत होकर तप, क्षमा, एवं अहिंसा की साधना में प्रवृत्त होती है, वह शास्त्र है। और जो केवल गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्नदश-पूर्वी के द्वारा कहा गया है, वह सूत्र है।[4] दूसरे शब्दों में जो ग्रन्थ प्रमाण से अल्प अर्थ की अपेक्षा महान्, बतीस दोषों से रहित, लक्षण तथा आठ गुणों से सम्पन्न होता हुआ सारवान् अनुयोगों से सहित, व्याकरण विहित, निपातों से रहित, अनिन्द्य और सर्वज्ञ कथित है, वह सूत्र है।[5]

इस सन्दर्भ में यह समझना आवश्यक है कि आगम कहो, शास्त्र कहो, या सूत्र कहो, सभी का एक ही प्रयोजन है। वे प्राणियों के अन्तर्मानस को विशुद्ध बनाते हैं। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने कहा—जैसे जल वस्त्र की मलिनता का प्रक्षालन करके उसको उज्ज्वल बना देता है वैसे ही शास्त्र भी मानव के अन्तःकरण में स्थित काम, क्रोध आदि कालुष्य का प्रक्षालन करके उसे पवित्र और निर्मल बना देता है।[6] जिससे आत्मा का सम्यक् बोध हो, आत्मा अहिंसा, संयम और तप साधना के द्वारा पवित्रता की ओर गति करे, वह तत्वज्ञान शास्त्र है, आगम है।

आगम भारतीय साहित्य की मूल्यवान् निधि है। डॉ० हरमन जेकोबी, डॉ० शुब्रिंग प्रभृति अनेक पाश्चात्य मूर्धन्य मनीषियों ने जैन-आगम साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन कर इस सत्य-तथ्य को स्वीकार किया है कि विश्व को अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद के द्वारा सर्वधर्म-समन्वय का पुनीत पाठ पढ़ाने वाला यह सर्वश्रेष्ठतम साहित्य है।

आगम साहित्य बहुत ही विराट और व्यापक है। समय-समय पर उसके वर्गीकरण किये गये हैं। प्रथम वर्गीकरण पूर्व और अंग के रूप में हुआ।[7] द्वितीय वर्गीकरण अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के रूप में किया गया।[8] तृतीय वर्गीकरण आर्यरक्षित ने अनुयोगों के आधार पर किया है। उन्होंने सम्पूर्ण आगम-साहित्य को चार अनुयोगों में बाँटा है।[9]

---

१. ऋषिदर्शनात्,—निरुक्त, २/११.
२. साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः—निरुक्त, १/२०.
३. 'सासिज्जए तेण तहिं वा नेयमायावतो सत्थं'
टीका—शासु अनुशिष्टौ शास्यते ज्ञेयमात्मा वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वा शास्त्रम्। — विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १३८४
४. सुत्तंगणधरकधिदं तहेव पत्तेयबुद्धकधिदं च।
सुदकेवलिणा कधिदं अभिण्णदसपुव्विकधिदं च॥ —मूलाचार, ५/८०
५. अप्पग्गंथ महत्थं बत्तीसा दोसविरहियं जं च।
लक्खणजुत्तं सुत्तं अट्ठेहि च गुणेहि उववेयं॥
अप्पक्खरमसंदिद्धं च सारवं विस्सओ मुहं।
अत्थोभगणवज्जं च सुत्तं सव्वण्णुभासियं॥ —आव० निर्युक्ति, ८८०, ८८६.
६. मलिनस्य यथात्यन्तं जलं वस्त्रस्य शोधनम्।
अन्तःकरणरत्नस्य, तथा शास्त्रं विदुर्बुधाः॥ —योगबिन्दु, प्रकरण, २/६.
७. समवायांग—१४/१३६.
८. अहवा तं समासओ दुविहं पण्णत्तं तं जहा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। —नंदी, सूत्र ४३
९. (क) आवश्यक निर्युक्ति, ३६३-३७७.
(ख) विशेषावश्यकभाष्य, २२८४-२२९५.
(ग) दशवैकालिकनिर्युक्ति, ३ टीका

आचार्य मलयगिरि[1] ने प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक श्रमण तीक्ष्ण बुद्धि के धनी थे, अतः अनुयोग की दृष्टि से अविभक्त रूप से व्याख्या प्रचलित थी। प्रत्येक सूत्र में चरणकरणानुयोग आदि का अविभागपूर्वक वर्तन था। मुख्यता की दृष्टि से निर्युक्तिकार ने यहाँ पर कालिक श्रुत को ग्रहण किया है अन्यथा अनुयोगों का कालिक-उत्कालिक आदि सभी में अविभाग था।[2]

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने इस सम्बन्ध में विश्लेपण करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक जब अनुयोग अपृथक् थे तब एक ही सूत्र की चारों अनुयोगों के रूप में व्याख्या होती थी।

अनुयोगों का विभाग कर दिया जाय, उनकी पृथक्-पृथक् छँटनी कर दी जाय तो वहाँ उस सूत्र में चारों अनुयोग व्यवच्छिन्न हो जायेंगे। इस प्रश्न का समाधान करते हुए भाष्यकार ने लिखा है जहाँ किसी एक सूत्र की व्याख्या चारों अनुयोगों में होती थी, वहाँ चारों में से अमुक अनुयोग के आधार पर व्याख्या करने का यहाँ पर अभिप्राय है।

आर्य रक्षित से पूर्व अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था, उसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या चरण-करण, धर्म, गणित और द्रव्य की दृष्टि से की जाती थी। यह व्याख्या पद्धति बहुत ही क्लिष्ट और स्मृति की तीक्ष्णता पर अवलम्बित थी। आर्य रक्षित के १. दुर्बलिका पुष्यमित्र २. फल्गुरक्षित ३. विन्ध्य और ४. गोष्ठामाहिल ये चार प्रमुख शिष्य थे। विन्ध्य मुनि महान् प्रतिभासम्पन्न शीघ्रग्राही मनीषा के धनी थे। आर्य रक्षित शिष्य मण्डली को आगम वाचना देते, उसे विन्ध्य मुनि उसी क्षण ग्रहण कर लेते थे। अतः उनके पास अग्रिम अध्ययन के लिए बहुत सा समय अवशिष्ट रहता। उन्होंने आर्य रक्षित से प्रार्थना की—मेरे लिए अध्ययन की पृथक् व्यवस्था करें। आचार्य ने प्रस्तुत महनीय कार्य के लिए महामेधावी दुर्बलिका पुष्यमित्र को नियुक्त किया। अध्यापन-रत दुर्बलिका पुष्यमित्र ने कुछ समय के पश्चात् आर्य रक्षित से निवेदन किया—आर्य विन्ध्य को आगम वाचना देने से मेरे पठित पाठ के पुनरावर्तन में बाधा उपस्थित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था से मेरी अधीत पूर्व ज्ञान की राशि विस्मृत हो जायेगी। आर्य रक्षित ने सोचा—महामेधावी शिष्य की भी यह स्थिति है तो आगम ज्ञान का सुरक्षित रहना बहुत ही कठिन है। दूरदर्शी आर्य रक्षित ने गम्भीरता से चिन्तन कर जटिल व्यवस्था को सरल बनाने हेतु आगम अध्ययन-क्रम को चार अनुयोगों में विभक्त किया।[3] वह क्रम इस प्रकार है :—

१. चरण-करणानुयोग—कालिक श्रुत, महाकल्प, छेदश्रुत आदि।
२. धर्म-कथानुयोग—ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन आदि।
३. गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि।
४. द्रव्यानुयोग—दृष्टिवाद आदि।

यह महत्त्वपूर्ण कार्य दशपुर में वीर निर्वाण ५९२, वि० सं. १२२ के आस-पास सम्पन्न हुआ था। यह वर्गीकरण विषय सादृश्य की दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत वर्गीकरण करने के बावजूद भी यह भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती कि अन्य आगमों में अन्य अनुयोगों का वर्णन नहीं है। उदाहरण के रूप में, उत्तराध्ययन सूत्र में धर्मकथा के अतिरिक्त दार्शनिक तथ्य भी पर्याप्त मात्रा में है। भगवती सूत्र तो अनेक विषयों का विराट सागर है। आचारांग आदि में भी अनेक विषयों की चर्चायें हैं। कुछ

---

१. यावदार्यवज्रा—आर्यवज्रस्वामिनो मुखो महामतयस्तावत्कालिकानुयोगस्य कालिकश्रुतव्याख्यानस्यापृथक्त्वं—प्रतिसूत्रं चरण-करणानुयोगादीनामविभागेन वर्तनमासीत्, तदा साधुनां तीक्ष्णप्रज्ञत्वात्। कालिक ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम्, अन्यथा सर्वानुयोगस्यापृथक्त्वमासीत्। —आवश्यकनिर्युक्ति, पृ० ३८३, प्रका. आगमोदय समिति

२. अपुहुत्ते अणिओगो चत्तारि दुवार भासए एगो।
पुहुताणुओग करणे ते अत्थ तओवि वोच्छिन्ना॥
किं वइरेहिं पुहुत्तं कयमह तदणंतरेहिं भणियम्मि।
तदणंतरेहिं तदभिहिय गहिय सुत्तत्थ सारेहि॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २२८६—२२८७.

३. (क) देविंद वदिएहि महाणुभावेहि रक्खियज्जेहिं।
जुगमासज्ज विभत्तो, अणुयोगो तो कओ चउहा॥
चत्तारि अणुयोग चरण धम्म गणियणुयोग य।
दव्वियणुयोगे तहा जहक्कमं महिड्ढिया॥ —अभिधान राजेन्द्र कोश

(ख) कालिय सुयं च इसिभासिआइं तइओ अ सूरपन्नत्ती।
सव्वोअ दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो॥ —आवश्यकनिर्युक्ति—१२४

दशवैकालिकनिर्युक्ति में एक गाथा है—

"आयारे ववहारे पन्नती चेव दिट्ठिवाए य।
एसा चउव्विहा खलु कहा उ अक्खेवणी होइ ॥" [१९४]

आचार्य हरिभद्र[1] ने आचार का अर्थ आचरण, प्रज्ञप्ति का अर्थ समझाना, और दृष्टिवाद का अर्थ सूक्ष्मतत्त्व का प्रतिपादन किया है। चूर्णिकार ने 'आयारे' 'ववहारे' 'पन्नत्ति' आदि शब्दों को द्वयर्थक नहीं माना है। टीकाकार श्री हरिभद्र ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए आचार आदि को शास्त्रवाचक भी माना है।[2] स्थानांग में आक्षेपणी कथा के जो चार प्रकार बताये हैं, जिनका उल्लेख निर्युक्ति की प्रस्तुत गाथा में हुआ है।[3] आचार्य अभयदेव ने मतान्तर का जो उल्लेख किया है वह आचार्य हरिभद्र के शब्दों में ही किया है।

विक्षेपणी कथा के भी चार प्रकार हैं—१ सम्यग्दृष्टि व्यक्ति स्वयं के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। २ दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के पश्चात् अपने सिद्धान्त की संस्थापना करता है। ३ सम्यग्वाद का प्रतिपादन करने के पश्चात् मिथ्यावाद का प्रतिपादन करता है। ४ मिथ्यावाद का प्रतिपादन कर पुनः सम्यग्वाद की स्थापना करता है। विक्षेपणी कथा की परिभाषा में टीका ग्रन्थों में कोई भिन्नता नहीं है।

संवेदनी कथा के भी चार प्रकार बताये हैं—१. इहलोक संवेदनी—मानव जीवन की असारता प्रदर्शित करने वाली कथा। २. परलोक संवेदनी—देव, तिर्यंच आदि के जन्मों की मोहमयता व दुःखमयता प्रदर्शित करने वाली कथा। ३. आत्म-शरीर संवेदनी—अपने शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा। ४. पर-शरीर संवेदनी—दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा।

स्थानांगवृत्तिकार ने संवेदनी कथा की जो व्याख्या की है, वह व्याख्या दशवैकालिकनिर्युक्ति[4] और मूलाराधना[6] की व्याख्या से पृथक् है। उनके अभिमतानुसार इस कथा में वैक्रिय-शुद्धि तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्धि का कथन होता है। अणिमा, महिमा आदि का नाम विक्रिया है। इन विक्रिया रूप प्रयोजन को सिद्ध करने वाला शरीर वैक्रिय है। उसके निर्माण में जो दोष लगता है, उसका शुद्धिकरण करना "वैक्रियशुद्धि" है। (देखिए—सर्वार्थसिद्धि-२/३६ तथा तत्त्वार्थश्रुतसागरीया वृत्ति—२/३६) धवला की दृष्टि से इस कथा में पुण्य-फल का वर्णन किया जाता है।[7]

निर्वेदनी कथा के भी चार प्रकार हैं—१. इहलोक में दुश्चीर्ण कर्म इसी लोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। २. इहलोक में दुश्चीर्ण कर्म परलोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। ३. परलोक में दुश्चीर्ण कर्म इहलोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। ४. परलोक में दुश्चीर्ण कर्म परलोक में ही दुःखमय फल देने वाले होते हैं।

प्रकारान्तर से निर्वेदनी कथा के चार प्रकार और बताये हैं—१. इहलोक में सुचीर्ण कर्म इसी लोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। २. इहलोक में सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। ३. परलोक में सुचीर्ण कर्म इहलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। ४. परलोक में सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं।

---

१. आचारो—लोचास्नानादिः, व्यवहारः—कथञ्चिदापन्नदोषव्यपोहाय प्रायश्चित्तलक्षणः, प्रज्ञप्तिश्चैव—संशयापन्नस्य मधुरवचनैः प्रज्ञापना, दृष्टिवादश्च—श्रोत्रपेक्षया सूक्ष्मजीवादि भावकथनम्। —दशवैकालिकनिर्युक्ति हरिभद्रीया वृत्ति प० ११०.

२. अन्ये त्वभिदधति—आचारादयो ग्रन्था एव परिगृह्यन्ते, आचाराद्यभिधानादिति।
—दशवैकालिकनिर्युक्ति हरिभद्रीयावृत्ति, प० ११०.

३. आयारअक्खेवणी ववहारअक्खेवणी पन्नतिअक्खेवणी दिट्ठवातअक्खेवणी। —ठाणांग, ४२४७.

४. स्थानांग, ४/२४८.

५. वीरिय विउव्वणिड्ढी, नाण-चरण-दंसणाण तह इड्ढी।
उवइस्सइ खलु जहियं, कहाइ संवेयणीइ रसो ॥
—दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा २००

६. संवेयणी पुण कहा, णाण चरित्त तव वीरिय इड्ढिगदा।
—मूलाराधना ६५७

७. संवेयणी नाम पुण्ण-फल-संकहा। काणि पुण्ण-फलानि? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्धीओ।
—षट्खण्डागम, भाग १, पृ० १०५.

निर्वेदनी कथा के स्थानांग में आठ विकल्प किये गये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि पुण्य और पाप इन दोनों फलों का कथन करना इस कथा का विषय रहा है। निर्वेदनी की व्याख्या में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। धवलाकार[1] की दृष्टि से इस कथा में पाप फल का कथन है।

उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला में कथा के पाँच प्रकार बताये हैं,[2] वे इस प्रकार हैं :—१. सकल कथा २. खण्ड कथा ३. उल्लाप कथा ४. परिहास कथा और ५. संकीर्ण कथा। जिस कथा के अन्त में सभी प्रकार से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो, वह सकल कथा है।[3] खण्ड कथा में कथावस्तु बहुत ही छोटी होती है। उल्लाप कथा में समुद्र यात्रा या साहसपूर्वक किये जाने वाले प्रेम का निरूपण होता है। परिहास कथा हास्य-व्यंग्यात्मक कथा होती है। इसमें कथा के अन्य तत्त्वों का प्रायः अभाव होता है। संकीर्ण कथा को दशवैकालिकनिर्युक्ति में मिश्र कथा भी कहा है।[4] जिस कथा में धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का निरूपण हो, वह संकीर्ण कथा या मिश्र कथा है। आचार्य हरिभद्र ने प्रस्तुत परिभाषा को स्वीकार करते हुए यह लिखा है कि कथा सूत्रों में परस्पर तारतम्य होना चाहिए। उद्योतन सूरि[5] का यह अभिमत है कि संकीर्ण कथा में कथा के सभी गुण विद्यमान होते हैं। यह कथा शृंगार की हुई युवती की भाँति मनोहर होती है। इस कथा में राजा, या विशिष्ट व्यक्तियों के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, शील, वैराग्य, समुद्री यात्रा में साहस, आकाश गमन, पर्वतीय प्रदेशों की विकट यात्रा, स्वर्ग-नरक का वर्णन, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि के दुष्परिणामों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रमुख रूप से होता है।

उद्योतन सूरि ने धर्म-कथा, अर्थ-कथा और काम-कथा ये तीन भेद संकीर्ण कथा के किये हैं। जबकि दशवैकालिक में चारों को कथा के ही भेद माने हैं। अर्थ-कथा वह है, जिसमें मानव की आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में चिन्तन कर सही समाधान प्रस्तुत किया जाये और वह समाधान, आख्यान, दृष्टान्त के द्वारा व्यक्त करना चाहिए।[6] राजनैतिक कथाओं का समावेश भी इस कथा के अन्तर्गत होता है। काम-कथाओं में केवल रूप-सौन्दर्य का विश्लेषण ही नहीं होता परन्तु यौन समस्याओं का विश्लेषण भी होता है। समाज के परिशोधन में इन कथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

धर्म-कथा में जीवों के समय-समय पर उद्बुद्ध विविध परिणाम-भावों को उद्घाटित करने वाले जीवन प्रसंग, तथा धर्म, शील, संयम, तप आदि जीवन को उजागर करने वाली घटनाओं का अंकन होता है।[7] उद्योतन सूरि ने आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी कथाओं के चारों प्रकारों को धर्म-कथा के अन्तर्गत लिया है।

कथा साहित्य में धर्म-कथा जीवन को आमूलचूल परिवर्तन करने वाली श्रेष्ठतम कथा है। इसलिए आगम-साहित्य में आये हुए धर्म-कथाओं के विविध प्रसंग प्रस्तुत ग्रन्थ में पहली बार संकलित-आकलित किये गये हैं। हम अगली पंक्तियों में तुलनात्मक व समीक्षात्मक दृष्टि से चिन्तन प्रस्तुत करेंगे।

कुलकर : एक विश्लेषण

सुदूर अतीत में भगवान् ऋषभदेव से पूर्व यौगलिक व्यवस्था चल रही थी। उस व्यवस्था में न कुल था, न वर्ग था, और न जाति ही थी। उस समय एक युगल ही सब कुछ होता था। वह युगल सहज, शान्त और निर्दोष जीवन जीता था। काल के परिवर्तन के साथ व्यवस्था में परिवर्तन होने से जीवन अस्त-व्यस्त होने लगा, तब कुल व्यवस्था का विकास हुआ। प्रस्तुत व्यवस्था में लोग कुल के रूप में संगठित होकर रहने लगे। प्रत्येक कुल का एक मुखिया होता था। वह कुलकर कहलाता था। सब-

---

१. णिव्वेयणी णाम-पाव-फल संकहा। काणि पाव-फलाणि? णिरय-तिरिय कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा-मरण-वाहि-वेयणा-दालिद्दादीणि। संसार-सरीर-भोगेसु-वेरग्गुप्पाइणी णिव्वेयणी णाम। —षट्खण्डागम, भाग १, पृष्ठ १०५

२. ताओ पुण पंच कहाओ, तं जहा—सयलकहा, खण्डकहा, उल्लावकहा, परिहासकहा तह संकिण्ण कह त्ति णायव्वा।

३. समस्त फलान्तेतिवृत्तवर्णना समरादित्यादिवत् सकल कथा, —

४. धम्मो अत्थो कामो उवइस्सइ जत्थ सुत्त कव्वेसु।
लोगे वेए समये सा उ कहा मीसिया णाम॥

५. सव्व-कहा-गुण-जुत्ता सिंगार-मणोहरा सुरइयंगी।
सव्व-कलागम-सुहया, संकिण्ण-कह त्ति णायव्वा॥

६. समराइच्च कहा, जाकोबी, पृष्ठ २

७. जो उस समय समय पर उद्बुद्ध-जीव-परिणाम-भाव-विभावना प।

वायांग[1], स्थानांग[2] और भगवती[3] में सात कुलकर बताये गये हैं। आवश्यकनिर्युक्ति[4] और आवश्यकचूर्णि[5] में भी इसी तरह सात कुलकरों के नाम प्राप्त हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र,[6] वसुदेवहिण्डी[7] और भरतेश्वर वाहुवलीवृत्ति[8] प्रभृति परवर्ती साहित्य में भी उसका अनुसरण हुआ है। वे नाम ये हैं—विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशोमान, अभिचन्द, प्रसेनजित्, मरुदेव और नाभि।

आदि मानव :

जैन दृष्टि से कालचक्र को दो भागों में बाँटा है—१. अवसर्पिणी, और २. उत्सर्पिणी। वे दोनों भी भाग छह-छह भागों में विभक्त किये गये हैं, जिसे जैन पारिभाषिक शब्दों में 'आरा' कहा गया है। अवसर्पिणी काल में प्रत्येक वस्तु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सभी दृष्टियों से क्षीणता होती जाती है और उत्सर्पिणी काल में वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श की दृष्टि से प्रतिपल-प्रतिक्षण उत्कर्ष होता है। अवसर्पिणी काल के छह आरे इस प्रकार हैं—१. सुषमा-सुषम, २. सुषम ३. सुषमा-दुषम ४. दुषमा-सुषम ५. दुषम ६. दुषमा-दुषम। उत्सर्पिणी में उन्हीं का व्युत्क्रम होता है।

अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे में सुख का साम्राज्य होता है। इस काल के मानव का शरीर वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान युक्त होता है। वे सामाजिक, राजकीय और आर्थिक बन्धनों से मुक्त होते हैं। वे स्वयं अपने आप के राजा होते हैं और उन्हें किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है। वे दिव्य रूप-सम्पन्न, सौम्य, मृदुभाषी, अल्पपरिग्रही, शान्त, सरल, क्रोध-मान-मद, मोह, मात्सर्य आदि दुर्गुणों की अल्पता वाले हैं। उस समय घोड़े-गधे, बैल आदि विविध प्रकार के पशु होने पर भी वे उनका उपयोग नहीं करते हैं।

उन मानवों के शरीर में से कमल के समान और कस्तूरी के समान सुगन्ध आती है। वे उत्कट साहस के धनी तथा सहज शान्त स्वभाव वाले होते हैं। छह मास अवशेष रहने पर युगलिनी पुत्र और पुत्री युगल को जन्म देती, उन-पचासवें (४९) दिन तक प्रतिपालना करने के पश्चात् छींक और उबासी आने पर युगल-दम्पत्ति सदा के लिए आँखें मूँद लेते हैं।

द्वितीय आरे में प्रथम आरक की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श में अनन्त गुनी हीनता हो जाती है। मानव की आयु तीन पल्योपम से कम होकर इस आरक में दो पल्योपम की रह जाती है। पुत्र-पुत्री का पालन (६४) चौंसठ दिन तक करने के पश्चात् युगल दम्पत्ति का देहावसान हो जाता है।

तृतीय आरे में द्वितीय आरे की अपेक्षा अनन्त गुनी पूर्वापेक्षा अपकर्षता हो जाती है। प्रथम आरक में जहाँ मानव की ऊँचाई तीन कोस की थी, वहाँ दूसरे आरे में दो गाउ (कोस) की तो तृतीय आरे में दो हजार धनुष की ऊँचाई रह जाती है। मृत्यु के पूर्व छह मास अवशेष रहने पर एक युगल को जन्म देते हैं और उस युगल का वे उन्यासी (७९) दिन तक पालन-पोषण करते हैं। यह समय भोगभूमि के रूप में विश्रुत है। तीसरे आरे के प्रथम और मध्य विभाग तक यह स्थिति चलती है। उन सभी में किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होता।

तृतीय आरे के एक पल्योपम का आठवाँ भाग अवशेष रहता है, उस समय भरतक्षेत्र में कुलकर पैदा होते हैं।

पउमचरियं,[9] महापुराण,[10] हरिवंशपुराण[11] और सिद्धान्त संग्रह[12] में चौदह कुलकरों के नाम मिलते हैं। वे ये हैं—

---

१. समवायांग, १५७.   २. स्थानांग, ७६७.

३. भगवती, ५/६/३.   ४. आवश्यकनिर्युक्ति, मलयगिरी वृत्ति, १५२/१५४.

५. आवश्यकचूर्णि, १२९.   ६. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १/२/१४२-२०६.

७. वसुदेवहिण्डी, नीलयशा लम्भक खण्ड—संघदास गणिविरचित   ८. भरतेश्वर वाहुवली वृत्ति

९. पउमचरियं—३/५०-५५.

१०. आद्यः प्रतिश्रुतिः प्रोक्तः, द्वितीयः सन्मतिर्मतः। तृतीयः क्षेमकृन्नाम्ना, चतुर्थः क्षेमधृन्मनुः॥
सीमकृत्पंचमो ज्ञेयः, षष्ठः सीमधृदिष्यते। ततो विमलवाहांकश्, चक्षुष्मानष्टमो मतः॥
यशस्वान्नवमस्तस्मान्, नाभिचन्द्रोऽप्यनन्तरः। चन्द्राभोऽस्मात्परं ज्ञेयो, मरुदेवस्ततः परम्॥
प्रसेनजित्परं तस्मान्नाभिराजश्चतुर्दशः॥   —महापुराण, जिनसेनाचार्य; १/३/२२९-२३२, पृ० ६६

११. हरिवंशपुराण में महापुराण की तरह ही चौदह कुलकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। —हरिवंशपुराण, सर्ग ७, श्लोक १२४-१७०

१२. सिद्धान्त संग्रह, पृष्ठ १८.

पउमचरियं में :—१. सुमति २. प्रतिश्रुति ३. सीमङ्कर ४. सीमन्धर ५. क्षेमंकर ६. क्षेमंधर ७. विमलवाहन ८. चक्षुष्मान् ९. यशस्वी १०. अभिचन्द्र ११. चन्द्राभ १२. प्रसेनजित् १३. मरुदेव १४. नाभि। आचार्य जिनसेन ने संख्या की दृष्टि से चौदह कुलकर माने हैं, किन्तु पहले प्रतिश्रुत, दूसरे सन्मति, तीसरे क्षेमङ्कर, चौथे क्षेमंधर, पांचवें सीमंकर और छठे सीमंधर इस प्रकार कुछ व्युत्क्रम से संख्या दी है। विमलवाहन के आगे के दोनों ग्रन्थों में (पउमचरियं और महापुराण) नाम समान मिलते हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[1] में इन चौदह नामों के साथ ऋषभ को जोड़ कर पन्द्रह कुलकर बताये हैं। इस तरह अपेक्षा दृष्टि से कुलकरों की संख्या में मतभेद हुआ है। चौदह कुलकरों में पहले के छह और ग्यारहवां चन्द्राभ के अतिरिक्त सात कुलकरों के नाम स्थानांग आदि के अनुसार ही हैं। जिन ग्रन्थों में छह कुलकरों के नाम नहीं दिये गये हैं, उसके पीछे हमारी दृष्टि से वे केवल पथ-प्रदर्शक रहे होंगे, उन्होंने दण्ड-व्यवस्था का निर्माण नहीं किया था, इसलिए उन्हें गौण मान कर केवल सात ही कुलकरों का उल्लेख किया गया हो।

भगवान् ऋषभदेव प्रथम सम्राट हुए, और उन्होंने यौगलिक स्थिति को समाप्त कर कर्म-भूमि का प्रारम्भ किया था। इसलिए उन्हें कुलकर न माना हो। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में उन्हें कुलकर लिखा है। सम्भव है, मानव समूह के अर्थ में कुलकर शब्द व्यवहृत हुआ हो। कितने ही आचार्य इस संख्या भेद को वाचनाभेद मानते हैं।[2]

कुलकर के स्थान पर वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में मनु का उल्लेख हुआ है। आदिपुराण[3] और महापुराण[4] में कुलकरों के स्थान पर मनु शब्द आया है। स्थानांग आदि की भांति मनुस्मृति[5] में भी सात महातेजस्वी मनुओं का उल्लेख है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. स्वयंभू २. स्वारोचिष् ३. उत्तम ४. तामस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत।

अन्यत्र चौदह मनुओं के भी नाम प्राप्त होते हैं।[6] वे इस प्रकार हैं—१. स्वायम्भुव २. स्वारोचिष ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. रौच्यदेव-सावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि।

मत्स्य पुराण,[7] मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत् और विष्णुपुराण प्रभृति ग्रन्थों में भी स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं के नाम प्राप्त हैं। वे इस प्रकार हैं :—

१. स्वायंभुव २. स्वारोचिष ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. रौच्य १०. भौत्य ११ मेरुसावर्णि १२. ऋभु १३. ऋतुधामा १४. विश्वक्सेन।

मार्कण्डेय[8] पुराण में वैवस्वत के पश्चात् पांचवां सावर्णि, रौच्य और भौत्य आदि सात मनु और माने हैं।

श्रीमद्भागवत[9] में उपर्युक्त सात नाम वे ही हैं, आठवें नाम से आगे के नाम पृथक् हैं। वे इस प्रकार हैं—८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. देवसावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि।

मनु को मानव जाति का पिता व पथ-प्रदर्शक व्यक्ति माना है। पुराणों के अनुसार मनु को मानव जाति का गुरु तथा प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित कहा है। वह जाति के कर्त्तव्य का ज्ञाता था। वे मननशील और मेधावी थे।

---

१. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, व० २, सूत्र २९.

२. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृष्ठ १२०.

३. आदिपुराण, ३/१५.

४. महापुराण, ३/२२९. पृष्ठ ६६.

५. स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे। सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा, महात्मानो महौजसः॥
स्वारोचिषश्चौत्तमश्च, तामसो रैवतस्तथा। चाक्षुषश्च महातेजा, विवस्वत्सुत एव च॥
स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते, मनवो भूरितेजसः। स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम्॥
—मनुस्मृति १। [illegible]

६. (क) [illegible], पृ० ७४८. (ख) [illegible]

७. मत्स्य पुराण, अध्याय ९ से [illegible].

८. मार्कण्डेय पुराण

९. श्रीमद्भागवत, ८ ५ ७

रहे हैं। वह व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, किन्तु उपाधि वाचक हैं। यों मनु शब्द का प्रयोग ऋग्वेद,[1] अथर्ववेद,[2] तैत्तिरीय[3] संहिता, शतपथ[4] ब्राह्मण, जैमिनीय[5] उपनिषद् में हुआ है, वहां मनु को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। भगवद्‌गीता[6] में भी मनुओं का उल्लेख है।

चतुर्दश मनुओं का काल-प्रमाण सहस्र युग माना गया है।[7]

आगम-साहित्य में जहाँ कुलकरों के नामों का निर्देश है, वहाँ उसके व्याख्या-साहित्य में और स्वतन्त्र ग्रन्थों में उस समय की परिस्थिति का भी चित्रण किया गया है। हम यहाँ अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति[8] ग्रन्थ में जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह यहां दे रहे हैं; जिससे जिज्ञासुओं को परिज्ञान हो सके।

सर्वप्रथम मानवों ने अनन्त आकाश में जब चन्द्र और सूर्य को देखा तो भय से कांप उठे। वे सोचने लगे कि आपत्तियां की घनघोर घटाएँ मंडराने वाली हैं। उन भयभीत मानवों को 'प्रतिश्रुत' नामक प्रथम कुलकर ने आश्वस्त करते हुए कहा—ये चन्द्र और सूर्य नये उदित नहीं हुए हैं। ये तो प्रतिदिन इसी तरह से उदित और अस्त होते हैं किन्तु तेजांग जाति के अत्यन्त प्रकाशपूर्ण कल्पवृक्षों के कारण हम इन्हें देख नहीं पाते थे, अब तेजांग नामक कल्पवृक्षों का दिव्य आलोक मन्द हो रहा है, जिससे हमें चन्द्र और सूर्य दिखाई दे रहे हैं, अतः भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। जन-मानस के भय को नष्ट करने से वह कुलकर कहलाया।

प्रतिश्रुत कुलकर के देहावसान के पश्चात् तेजांग नाम के कल्पवृक्ष पूर्ण रूप से नष्ट हो गये थे जिससे गहन अन्धकार मंडराने लगा और अंधकार होने से आकाश-मण्डल में असंख्य तारे जगमगाते हुए दिखाई देने लगे। मानवों ने सर्वप्रथम ताराओं को देखा तो उनका हृदय भावी आशंका से काँप उठा। 'सन्मति' कुलकर ने उन मानवों को आश्वस्त करते हुए कहा—आप भयभीत न हों, तेजांग नामक कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से रात्रि में अन्धकार का साम्राज्य होने से तारा-मण्डल दिखाई दे रहा है। यह पहले भी था, पर प्रकाश के कारण दिखाई नहीं देता था। सन्मति के कहने से लोगों को ढाढस बँधा और वह कुलकर के रूप में विश्रुत हुआ।

समय सरक रहा था और उसके प्रभाव से परिवर्तन आ रहा था। पहले भी जंगलों में व्याघ्र आदि पशुगण थे किन्तु उनमें क्रूरता नहीं थी, वे सौम्य स्वभाव के थे। पर समय ने उनमें भी क्रूरता पैदा की और वे मानवों को संत्रस्त करने लगे। क्षेमंकर ने मानवों को कहा—इन पशुओं का विश्वास न करो तथा समूह बनाकर रहो, जिससे वे तुम लोगों को कष्ट नहीं दे सकें। इसलिए वह तृतीय कुलकर के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

चतुर्थ कुलकर 'क्षेमंधर' ने जब पशु अधिक क्रूर बनकर मानव-समूह पर हमला करने लगे तो उसने कहा—पशुओं से बचने के लिए दण्ड आदि अपने पास रखो, जिससे वे सहसा आक्रमण न कर सकें। इसलिए वह कुलकर कहलाया।

पाँचवें कुलकर 'सीमंकर' के समय कल्पवृक्ष अल्प मात्रा में फल देने लगे, जिससे सभी मानवों की पूर्ति नहीं हो पाती थी। वे एक दूसरे के वृक्ष पर अपना स्वामित्व स्थापित करने का प्रयास करने लगे। सीमंकर ने कहा—यों संघर्ष करने से समाधान नहीं होगा। समाधान का सही तरीका यही है कि सीमा का निर्धारण करलो। सीमा निर्धारण करने से संघर्ष मिट गया और वह कुलकर के रूप में विश्रुत हुआ।

इन पाँचों कुलकरों ने भोग-युग के समाप्त होने तक और कर्म युग के आगमन की पूर्व सूचना देने के कारण अपने युग के मानवों को तदनुकूल जीवन बिताने की प्रेरणा दी, जो कोई भी व्यक्ति नीति का उल्लंघन करते तो ये 'हा तुमने यह काम किया' यह 'हाकार नीति' अपनाते, जिससे अपराधी पानी-पानी हो जाता। उसे अपनी भूल का परिज्ञान होता।

---

१. ऋग्वेद, १/८०,१६; ८/६३, १; १०. १००/५.
२. अथर्ववेद, १४/२, ४१.
३. तैत्तिरीय संहिता, १/५, १,३; ७/५, १५, ३; ६,७,१; ३,३, २,१; ५/४, १०, ५; ६/६, ६,१; का० सं० ८१५;
४. शतपथ ब्राह्मण, १/१,४/१४
५. जैमिनीय उपनिषद्, ३/१५,२
६. भगवद्‌गीता, १०/६.
७. (क) भागवत, स्कन्ध ८, अध्याय १४.
   (ख) हिन्दी विश्वकोष, १६वाँ भाग, पृ० ६४८ से ६५५.
८. तिलोयपण्णत्ति महाधिकार, गाथा ४२१–५०६.

छठे कुलकर 'सीमंधर' ने जब कल्प-वृक्षों के स्वामित्व को लेकर परस्पर संघर्ष होने लगे। तब [illegible] कर संघर्ष का अन्त किया, इसलिए वह कुलकर कहलाया।

सातवें कुलकर का नाम 'विमलवाहन' है। आवश्यकनिर्युक्ति[1] और त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[2] में विमलवाहन के सम्बन्ध में एक प्रसंग है—एक बार एक युगल वन में इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था, एक [illegible] हाथी सामने आया। उस युगल ने उसे बहुत ही स्नेह से निहारा। निहारने से उस हाथी को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ कि हम दोनों ही पूर्व भव में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में घनिष्ठ मित्र थे। वह सरल प्रकृति का धनी था, इसलिए वह मानव बना और मैं [illegible] मायावी होने से पशु-योनि में उत्पन्न हुआ। उसने अपनी सूँड़ से उस युगल दम्पत्ति का आलिंगन किया और उन्हें उठाकर अपनी पीठ पर बिठा लिया। अन्य युगलों ने जब उसे वाहनारूढ़ देखा तो अत्यन्त आश्चर्य हुआ, क्योंकि इसके पूर्व कोई भी व्यक्ति [illegible] पर आसीन नहीं हुआ था। उन्होंने सोचा—यह मानव हम सबसे अधिक शक्तिशाली है, इसलिए उसे अपना मुखिया बनाया और वह कुलकर के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उज्ज्वल कान्ति युक्त हाथी पर आरूढ़ होने से वह विमलवाहन के नाम से पहचाना जाने लगा। उसका अनुसरण कर अन्य व्यक्तियों ने भी पशुओं को पालतू बनाना प्रारम्भ किया।

तिलोयपण्णत्ति के अनुसार आठवें 'चक्षुष्मान्' कुलकर के समय युगलों ने अपनी सन्तान को देखा। वे सन्तान को देखकर भयभीत हुए। चक्षुष्मान् ने उन्हें समझाया कि भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। यह तुम्हारी सन्तान है। वे अपनी सन्तान के मुख देखने लगे और मुँह देखते ही परलोकवासी होने लगे।

नौवें 'यशस्वी' कुलकर ने अपनी सन्तान का नामकरण-महोत्सव करने की शिक्षा दी, क्योंकि अब सन्तान को देखते ही माता-पिता उस समय ही काल-कवलित नहीं होते थे, इसलिए नाम संस्करण प्रारम्भ हुआ।

दशवें कुलकर 'अभिचन्द्र' ने कुलों की सुव्यवस्था के साथ ही बालकों के रुदन को रोकने के लिए उनको खिलाने-पिलाने की विधि बताई। तदनुसार युगल अपने बालकों को खिलाने-पिलाने लगे, उनका पालन-पोषण करने लगे। कुछ दिनों तक पालन-पोषण करने के बाद वे युगल-दम्पत्ति सदा के लिए आँखें मूँद लेते थे।

छठे से दशवें कुलकर तक 'हाकार' और 'माकार' ये दोनों नीतियाँ प्रचलित रहीं। 'हा! तुमने यह क्या किया', 'मत करो' ये दोनों शब्द दण्ड प्रहार की तरह मानवों को आघात करने के सदृश प्रतीत होते।

ग्यारहवें 'चन्द्राभ' कुलकर के समय मौसम में भी परिवर्तन होने लगा। पहले मौसम बड़ा सुहावना था, न अति शीत था, न अति उष्णता थी और न अति वर्षा ही थी; किन्तु अब प्रकृति में परिवर्तन आ गया था, अतः शीत और ताप से [illegible] हो गई थी। कुहरे के कारण सूर्य की चिलचिलाती धूप मानवों को नहीं मिलती, जिससे वे ठिठुरने लगे। चन्द्राभ ने बताया कि यह शीत और तुषार सूर्य की किरणों से नष्ट होगा। लोगों को शान्ति का अनुभव हुआ।

बारहवें कुलकर 'मरुदेव' के समय आकाश में उमड़-घुमड़ कर घटायें आने लगीं, बिजलियाँ चमकने लगीं और [illegible] धारा के रूप में पानी बरसने लगा। कल-कल छल-छल करती हुई नदियाँ प्रवाहित होने लगीं। यह दृश्य देखकर मानव भयभीत हो उठा। मरुदेव ने कहा—अब शीघ्र ही कर्मयुग का प्रारम्भ होगा। तुम भयभीत न बनो, नौकाएँ बनाकर नदियों को पार करो। छाता बनाकर वर्षा और गर्मी से अपने आपको बचाओ। सीढ़ियाँ बनाकर पहाड़ों पर चढ़ो। इस प्रकार [illegible] के कारण मरुदेव कुलकर कहलाया।

तेरहवें कुलकर 'प्रसेनजित' के समय जरायु से वेष्टित युगल बालकों को देखकर वे बड़े भयभीत हुए। [illegible] हटाओ और बालकों का उचित रूप से पालन करो। इस प्रकार शिक्षा देने के कारण प्रसेनजित कुलकर [illegible]।

चौदहवें कुलकर 'नाभि' के समय बालकों का नाभिनाल बहुत बड़ा होने लगा। [illegible] जावे। इस समय तक प्रायः कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे। विविध धान्य और मधुर फल [illegible] फलों को और इन धान्यादि को खाने की सलाह दी जिससे औषधियों को [illegible] प्राप्त हुई। [illegible] सिद्ध हुआ।

जन-साधारण में क्रमशः धृष्टता बढ़ती जा रही थी। 'माकार नीति' असफल हो गई थी, इसलिए ग्यारहवें से चौदहवें कुलकर तक 'धिक्कार' नीति का प्रचलन हुआ। इस नीति के अनुसार 'तुझे धिक्कार है, ऐसा कार्य किया' इस प्रकार तिरस्कारसूचक शब्द को सुनकर वे मृत्युदण्ड से अधिक अपने आपको दण्डित समझते थे। इस युग में जघन्य अपराध के लिए खेद, मध्यम अपराध के लिए निषेध और उत्कृष्ट अपराध के लिए तिरस्कार मुख्य दण्ड था।

महापुराण में जिनसेन के लिखा है—ये चौदह ही कुलकर पूर्वभव में महाविदेह क्षेत्र में उच्च कुलीन महापुरुष थे। इनमें से कितने ही कुलकर जाति-स्मरण ज्ञान के धारक थे और कितने ही अवधिज्ञान के धारक थे। इसलिए उन्होंने अपने ज्ञान बल से उपर्युक्त कार्य करने का आदेश दिया।

अन्य कुलकरों में नाभिराय अधिक प्रतिभासम्पन्न थे। श्रीमद्भागवतकार ने उन्हें आदि मनु स्वायम्भुव के पुत्र प्रियव्रत और प्रियव्रत के आग्नींध्र तथा आग्नींध्र के नौ पुत्रों में ज्येष्ठ माना है।[1] नाभिराय ने अपने विशिष्ट ज्ञान से जो भी प्रश्न आये, उसका समाधान किया। वे जन-जन के त्राणकर्ता थे, इसलिए उन्हें क्षत्रिय कहा गया। आगे चलकर क्षत्रिय शब्द नाभि के अर्थ में ही रूढ़ हो गया। अमरकोशकार ने 'क्षत्रिये नाभिः' लिखा है।[2] अभिधान चिन्तामणि में भी आचार्य हेमचन्द्र ने 'नाभिश्च क्षत्रिये' लिखा है।[3] मेदिनीकोश में लिखा है कि चक्र के मध्य भाग में जैसे नाभि मुख्य है वैसे ही क्षत्रिय राजाओं में नाभि मुख्य थे।[4]

आचार्य जिनसेन ने तो नाभि के गुणों का उत्कीर्तन करते हुए लिखा है—वे चन्द्र के सदृश अनेक कलाओं के आधार थे, सूर्य के समान तेजस्वी थे, इन्द्र के समान वैभवसम्पन्न थे और कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित फल प्रदान करने वाले थे।[5] अरबी में एक शब्द 'नबी' है, जिसका अर्थ है—'ईश्वर का दूत', 'पैगम्बर' और 'रसूल'।[6] यह शब्द संस्कृत में नाभि और प्राकृत में 'णाभि' का रूपान्तर है। वे अपने तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण ईश्वर के दूत के रूप में जनता के आदर-पात्र बने थे।

नाभि का अपर नाम 'अजनाभ' भी मिलता है, उन्हीं के नाम के आधार पर आर्यखण्ड को 'नाभिखण्ड' या 'अजनाभ वर्ष' कहा है। स्कन्दपुराण में 'हिमाद्रि जलधेरन्तर्नाभि-खण्डमिति स्मृतम्' पद आया है।[7] डा० अवध विहारीलाल अवस्थी ने लिखा है—जम्बूद्वीप के नौ वर्षों में से हिमालय और समुद्र के बीच में स्थित भूखण्ड को आग्नींध्र के पुत्र नाभि के नाम पर ही नाभि खण्ड कहा गया है।[8] नाभि का अपर नाम अजनाभ था, जिससे इस खण्ड का नाम 'अजनाभ वर्ष' हुआ। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—'स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के पुत्र नाभि, नाभि के पुत्र ऋषभ और ऋषभदेव सौ पुत्र हुए, जिनमें भरत ज्येष्ठ थे। यही नाभि अजनाभ भी कहलाते थे जो अत्यन्त प्रतापी थे और जिनके नाम पर यह देश 'अजनाभ वर्ष' कहलाता था।[9] श्रीमद्भागवत में लिखा है 'अजनाभ वर्ष ही आगे चलकर "भारतवर्ष" इस संज्ञा से अभिहित हुआ।'[10]

जैन आगमों में अतीत उत्सर्पिणी और अतीत अवसर्पिणी के कुलकरों का उल्लेख हुआ है। स्थानांग में अतीत उत्सर्पिणी के दश कुलकर बताये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :—१. स्वयंजल २. शतायु ३. अनन्तसेन ४. अमितसेन ५. तर्कसेन ६. भीमसेन ७. महाभीमसेन ८. दृढ़रथ ९. दशरथ १०. शतरथ। जबकि समवायांग में अतीत उत्सर्पिणी के केवल सात ही कुलकर गिनाये हैं,

---

१. प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः।
तस्याग्नींध्रस्ततो नाभिः ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः॥ —भागवतपुराण, ११/२/१५,

२. अमरकोष, ३/५/२०.

३. अभिधान चिन्तामणि, १/३६.

४. नाभिर्मुख्य नृपे चक्रमध्यक्षत्रियोरपि। —मेदिनी कोष भ० वर्ग ५.

५. शशीव स कलाधारः तेजस्वी भानुमानिव।
प्रभु शक्र इवाभीष्टफलदः कल्पशाखिवत्॥ —महापुराण, १२/११.

६. 'उर्दू-हिन्दी कोश' सम्पादक—रामचन्द्र वर्मा, प्रका० हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय वम्बई, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५३, पृ० २२४.

७. स्कन्दपुराण—१/२/३७-५५.

८. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, प्रका० कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, सन् १९६४, पृ० १२३, परिशिष्ट—२.

९. मार्कण्डेय पुराण : सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पाद टिप्पण सं० १, पृ० १३८.

१०. अजनाभं नामैतद्वर्षभारतमिति यत् आरभ्य व्यपदिशन्ति। —श्रीमद्भागवत, ५/७/३.

जो इस प्रकार हैं—१. मित्रदामा २. सुदामा ३. सुपार्श्व ४. स्वयंप्रभ ५. विमलघोष ६. सुघोष और ७. महाघोष। [illegible]
के कुलकरों के नामों में बिल्कुल ही भेद है।

समवायांग में अतीत अवसर्पिणी के दस कुलकरों के नाम इस प्रकार बताये हैं :—

१. स्वयंजल २. शतायु ३. अजितसेन ४. अनन्तसेन ५. कार्यसेन ६. भीमसेन ७. महाभीमसेन ८. [illegible] ९. [illegible] और १०. शतरथ। इन नामों के साथ यदि हम 'अजितसेन' और 'कार्यसेन' ये दो नाम हटा दें तो [illegible] हमारी दृष्टि से स्थानांग में उत्सर्पिणी के स्थान पर अवसर्पिणी पाठ होता तो अधिक उपयुक्त था। क्योंकि स्थानांग में [illegible] स्थान में उत्सर्पिणी के सात कुलकर बताये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. मित्रवाहन २. सुभूम ३. सुप्रभ ४. स्वयंप्रभ ५. [illegible] ६. [illegible] ७. सुबन्धु। ये दस कुलकरों के जो नाम पहले बताये गये हैं, उनसे पृथक् हैं। और यही सातों नाम [illegible] में भी मिलते हैं। इसलिए ये नाम अतीत अवसर्पिणी के गिनने चाहिए। समवायांग के साथ जो दो नामों में भेद है वह [illegible] दृष्टि से [illegible] भेद हो सकता है।

कल्पवृक्ष : एक अनुचिन्तन

प्रस्तुत विभाग में सात प्रकार के वृक्षों का भी उल्लेख है। मानव का वृक्षों के साथ [illegible] मधुर सम्बन्ध रहा है, उसकी सारी अपेक्षायें वृक्षों से पूर्ण होती थीं, इसलिए वह खाद तथा पानी आदि से उनका संपोषण भी करता रहा है। [illegible] कुलगुरु कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला का वृक्षों पर सहोदर की भांति स्नेह बताया है।[1]

यौगलिक युग में मानव की इच्छायें अल्प थीं। उसकी भूख-प्यास का शमन, वस्त्र-सज्जा, मकान आदि सभी की पूर्ति वृक्षों से होती थी। उन वृक्षों को जैन आगम साहित्य में 'कल्पवृक्ष' कहा गया है। यों कल्प शब्द अनेकार्थक है। सामर्थ्य, [illegible], छेदन करना, औपम्य और अधिवास प्रभृति विविध अर्थ कल्प शब्द के हैं, पर यहाँ समर्थ अर्थ में प्रयोग उचित लगता है। जो वृक्ष विविध प्रकार के फल प्रदान करने में समर्थ हों, वह 'कल्पवृक्ष' हैं। नालन्दा हिन्दी शब्दकोश में स्वर्ग के वृक्ष का नाम 'कल्पतरु' लिखा है। यह सम्भव है, वह कल्पवृक्ष हो। वह वृक्ष देवलोक का वृक्ष माना गया है। कल्पना के अनुसार फल प्रदान करने के कारण यह वृक्ष 'कल्पवृक्ष' के नाम से विश्रुत है।

कितने ही लोगों में यह भ्रम है कि एक ही प्रकार का वृक्ष सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, जिस व्यक्ति को जिस वस्तु की आवश्यकता होती वह उस वृक्ष के नीचे पहुँच जाता और इच्छित वस्तु प्राप्त कर [illegible] होता। [illegible] का यह भी अभिमत है कि इन वृक्षों के अधिष्ठाता देव विशेष थे, जो उनकी इच्छाओं [illegible] करते थे, [illegible] कथन भी युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि स्थानांग[2] सूत्र के सातवें स्थान में सात प्रकार के [illegible] स्थानांग[3] के दसवें स्थान में दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन है। समवायांग[4] और [illegible][5] में भी [illegible] प्रकार के कल्पवृक्ष बताये हैं। ये सभी वृक्ष अपनी-अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति करते थे। इससे यह स्पष्ट है कि सभी वृक्षों का अलग-अलग स्वतंत्र स्थान था और उस सीमा तक अपना कार्य करते थे।

स्थानांग में जो सात प्रकार के कल्पवृक्ष बताये गये हैं, वे 'विमलवाहन' कुलकर के समय [illegible] ज्योतिष्क और [illegible] वृक्षों के नाम नहीं आये हैं। सम्भव है, उस समय या उस क्षेत्र में [illegible] अभाव होगा। जीवाभिगम[6] सूत्र में ये कल्पवृक्ष [illegible] द्वीप में बताये हैं। [illegible] प्रकार हैं :—

[१] **मत्तांगक**—स्वादु पेय की पूर्ति करने वाले।

[२] **भृत्तांग**—अनेक प्रकार के भाजनों की पूर्ति करने वाले

[३] **तूर्यांग**—वाद्यों की पूर्ति करने वाले।

[४] **दीपांग**—सूर्य के अभाव में दीपक के समान प्रकाश देने वाले।

[५] **ज्योतिरंग**—सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाश देने वाले।

[६] **चित्रांग**—विचित्र पुष्प [माला] देने वाले।

[७] **चित्र रसांग**—विविध प्रकार के भोजन देने वाले।

[८] **मण्यंग**—मणि, रत्न आदि आभूषण देने वाले।

[९] **गृहाकार**—घर के समान स्थान देने वाले।

[१०] **अनग्न**—वस्त्रादि की पूर्ति करने वाले।

ये कल्पवृक्ष मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। 'मत्तांगक' वृक्ष से चन्द्रप्रभा, मनःशीला, सिन्धुवारुणी आदि विशेष प्रकार के पौष्टिक पदार्थों से युक्त वह पेय उत्पन्न होता था, जिसे पीकर यौगलिकों में अभिनव स्फूर्ति का संचार होता था। समय पर उनसे स्वतः स्राव होता था। जिससे यौगलिक पूर्ण स्वस्थ रहते थे। वे वृक्ष उस समय सहज रूप में पैदा होते थे। उनका निर्माता कोई ईश्वर आदि नहीं था, वे वृक्ष स्वतः ही समय पर पकते थे और समय पर ही उनमें से स्वतः स्राव झरने लगता, उसका उपयोग कर मानव पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त करते थे।[1]

'भृत्तांग' नामक वृक्ष से सहज रूप में उन्हें पात्र मिल जाते थे। आज जिस प्रकार के पात्रों का प्रचलन है, उस प्रकार के पात्र यौगलिक काल में नहीं थे। भृत्तांग नामक वृक्ष के पत्र और शाखायें वर्तनाकार होती थीं अथवा उनके पत्रों को सहज रूप से पात्र का आकार दिया जा सकता था। जीवाभिगम[2] सूत्र में उल्लेख है कि वे वृक्ष घट, कलश, करकरी (भाजन पीतल का), पादकांचनिका (पैरों को प्रक्षालन करने वाली स्वर्ण पात्री), उदक (पानी लेने का पात्र), भृंगार (लोटा), सरक (बाँस का पात्र) तथा मणिरत्नों की रेखाओं से खचित तथा विविध प्रकार के पत्र और फूलों के रूप में पात्र प्रदान करते थे।

जब मानव कार्य करते हुए थक जाता है, तब वह मनोरंजन की सामग्री जुटाता है। नृत्य, वाद्य आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन हैं। प्राग्ऐतिहासिक काल में मनोरंजन के लिए वादित्र का मुख्य स्थान रहा है, वे वादित्र कृत्रिम नहीं किन्तु स्वतः निर्मित थे। उन वादित्रों में मृदंग, पणव, दर्दरक, करटी, डिमडिंम, ढक्का, मूरज, शंखिका, विपंची, महत्ती, तलताल, कंसताल, प्रभृति वाद्य मुख्य थे। 'तूर्यांग' नामक वृक्ष समूह से स्वतः ही तत, वितत, घन, सुषिर प्रभृति विविध प्रकार के स्वर प्रस्फुटित होते थे। यौगलिक मानव इन वृक्षों से मनोरंजन करता था।

प्राचीन युग में जब विद्युत शक्ति का विकास नहीं हुआ था, तब मशालों से या दीपकों से मानव अन्धकार में ज्योति प्राप्त करता था। यौगलिक काल में अग्नि का अभाव था। इसलिए उस समय वृक्षों से ही निर्मल प्रकाश प्राप्त होता था।[3] वे वृक्ष निर्धूम अग्नि की तरह चमकते थे। उन वृक्षों का प्रकाश सुवर्ण, केसुक, अशोक और जपा वृक्षों के विकसित फूलों की तरह और मणि रत्नों के किरणों की भाँति दैदीप्यमान था। वह जात्य हिंगुल के रंग के सदृश्य सुन्दर 'ज्योतिष्क' नामक वृक्षों का समूह कहलाता था। अग्नि की तरह प्रकाशमान होने से अन्धकार का अभाव रहता था। शीतकाल में भी वे वृक्ष यौगलिक मानवों को शान्ति प्रदान करते थे। वे वृक्ष 'दीपांग' और 'ज्योतिरंग' के रूप में विश्रुत थे।

यौगलिक काल के मानव कृत्रिम कलाओं से परिचित नहीं थे। पर उस समय कुछ वृक्ष ऐसे थे जो चित्रमय थे। वे चित्र बड़े ही दर्शनीय, रम्य और विविध वर्ण वाले थे। वे वृक्ष 'चित्रांग' के नाम से जाने जाते थे।[4]

---

१. देखिए—(क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूत्र २० पृ० ९९
(ख) पन्नवणा ३६४

२. घड कलस कडग कक्करी……… —जीवाभि० पा० ३४७

३. जहा से…………अइरुग्गय सरय सूर मण्डल………… —जीवा० पा० ३४८.

४. जहा से पेच्छा घरे विचित्ते………… —जीवा० पा० ३४८.

संसार का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो आहार के अभाव में दीर्घकाल तक जीवित रह सके। आहार जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। यौगलिक काल में मानव आजकल की तरह भोजन का निर्माण नहीं करता था। उस युग में 'चित्ररस' नामक ऐसे वृक्ष थे, जिन पर विविध प्रकार के फल लगते थे। जैसे—चक्रवर्ती[1] सम्राट के लिए सुगन्धित [illegible] चावलों से खीर बनाते हैं, विविध पदार्थों से मोदक तैयार करते हैं, उसे खाकर प्रत्येक व्यक्ति तृप्ति का अनुभव करता है, वैसे ही अठारह प्रकार के विशिष्ट भोजन गुणों से युक्त वे फल मानव को पूर्ण तृप्ति प्रदान करते थे।

अनुसन्धित्सुओं का यह मन्तव्य[2] है कि आधुनिक युग में भी अमेरिका में ऐसे वृक्ष हैं जो 'मिल्क ट्री', 'ब्रेड ट्री' और 'लाइट ट्री' आदि नामों से पुकारे जाते हैं। इन वृक्षों के फल, दूध, रोटी और प्रकाश से व्यक्ति लाभान्वित होते हैं।

यौगलिक काल के मानवों का जीवन प्रकृति पर अवलम्बित था। आज के युग में सोने, चांदी, हीरे-पन्ने आदि बहुमूल्य रत्नों से विविध प्रकार के आभूषण बनते हैं, पर उस युग में मानव वृक्षों के ही फल-पत्तों से तथा फूलों से आभूषण तैयार करता था। 'अभिज्ञान शाकुन्तल'[3] नाटक में शकुन्तला के आभूषणों का उल्लेख है। ऋषि कण्व ने आभूषणों को लाने का आदेश गौतमी को दिया। गौतमी जब आभूषण लेकर उपस्थित हुई तो उन्होंने पूछा—कहां से लाई हो? उसने उत्तर दिया—मैंने ये विविध वृक्षों से प्राप्त किये हैं। 'मण्यंग' नामक वृक्ष से विविध प्रकार के हार, अर्द्धहार, मुकुट, कुण्डल, सूत्र, एकावली, मुक्तावलि, [illegible], कनकावली, रत्नमालिका, केयूर, वलय, अंगूठी, मेखला, घण्टिका, नूपुर, आदि विविध प्रकार के आभूषण प्राप्त होते थे। अतः उन वृक्षों के फूल और फलों से सहज रूप में आभूषण बन जाते होंगे, उन आभूषणों की कान्ति स्वर्ण, मणि और रत्नों से भी अधिक थी।

यौगलिक काल में मानव समूह के रूप में नहीं रहता था। न उन्हें परिवार की चिन्ता थी और न समाज की ही। वे युगल रूप में पैदा होते और युगल रूप में जीवन की सांध्य वेला तक साथ रहते पर उनके पास मकान निर्माण की कला नहीं थी। वे 'गेहाकार' वृक्षों के कारण धूप, छाया आदि से बचे रहते थे, वे वृक्ष भव्य भवनों का कार्य करते थे। वे अट्टालिका, [illegible], प्रासाद, एकशाल, द्विशाल, चतुःशाल,[4] गर्भगृह, मोहन गृह, वलभी गृह, आपण, निर्यूह, अपवरक, चन्द्रशाला[4] आदि विविध प्रकार के मकान की तरह स्वतः निर्मित हो जाते थे। उन मकानों में ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियां भी होती थी और द्वार भी होते थे।[5]

कल्पवृक्षों को ही इस्लाम धर्म में 'तोवे' कहा गया है और क्रिश्चियन धर्म में उसे 'स्वर्ग का वृक्ष' माना है।[1] पेरु देश में आज भी ऐसे वृक्ष हैं जो हवा में से पानी तत्त्व को खींचते रहते हैं, और गर्मी के दिनों में उन वृक्षों में से स्वतः पानी झरने लगता है। कितने ही वृक्षों के फूल आज भी लोग आभूषणों के रूप में धारण करते हैं, कितने ही फल भूख और प्यास को शांत करते हैं, कितने ही वृक्षों की छाल आज भी वस्त्र के रूप में उपयोग की जाती है। इस तरह वृक्ष मानवों के लिए सदा उपयोगी रहा है। कल्पवृक्ष कोई काल्पनिक वृक्ष नहीं था, क्योंकि आज वे वृक्ष नहीं हैं पर कुछ उनकी तुलना वाले वृक्ष आज भी हैं। इससे यह अनुमान हो सकता है कि किसी युग में इस प्रकार के वृक्ष रहे होंगे।

भगवान ऋषभदेव

भगवान् ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। जिनकी गौरव गाथाओं का उल्लेख जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में गाया गया है। वे विश्व-वन्द्य महापुरुष थे। यहाँ पर प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके जीवन के कुछ स्रोतों पर प्रकाश डाला है।

भगवान् ऋषभ को कुलकर भी माना है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में वे पन्द्रहवें कुलकर हैं और प्रथम तीर्थंकर हैं। प्रथम राजा, प्रथम केवली और प्रथम धर्म चक्रवर्ती हैं, इसलिए उनकी जीवन गाथा यहाँ सर्वप्रथम दी जा रही है।[2]

तीर्थंकरों का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य कल्याणक है। कल्पसूत्र में पाँच कल्याण माने गये हैं, अतः सर्वप्रथम कल्याणकों का उल्लेख है। जन्मोत्सव मनाने के लिए छप्पन महत्तरिका दिशाकुमारियाँ और चौंसठ इन्द्र आते हैं। सबसे पहले अधोलोक में अवस्थित "भोगंकरा" आठ दिशाकुमारियाँ सपरिवार आकर मरुदेवी को नमन कर निवेदन करती हैं—हम जन्मोत्सव मनाने आई हैं। आप भयभीत न बनें। धूल और दुरभिगंध आदि को दूर कर एक योजन तक का समस्त वातावरण परम सुगन्धमय बनाती हैं तथा गीत गाती हुई मरुदेवी के चारों ओर खड़ी हो जाती हैं।

उसके पश्चात् ऊर्ध्वलोक में रहने वाली 'मेघंकरा' आदि दिक्कुमारियाँ सुगंधित जल की वृष्टि करती हैं और दिव्य धूप से एक योजन के परिमण्डल को देवों के आगमन योग्य बना देती हैं। मंगल गीत गाती हुई मरुदेवी के सन्निकट खड़ी हो गईं। उसके बाद रूचक कूट पर रहने वाली नन्दुत्तरा आदि दिक्कुमारियाँ हाथों में दर्पण लिए आती हैं, दक्षिण के रूचक पर्वत पर रहने वाली "समाहारा" आदि दिक्कुमारियाँ अपने हाथों में झारियाँ लिए हुए, पश्चिम दिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली "इला देवी" आदि दिक्कुमारियाँ पंखे लिए हुए, उत्तर रूचक पर्वत पर रहने वाली "अलम्बुषा" आदि दिक्कुमारियाँ चामर लिए हुए मंगल गीत गाती हुईं मरुदेवी के सामने खड़ी हो गईं। विदिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सुदामिनी चारों दिशाओं में प्रज्वलित दीपक लिए हुए खड़ी होती हैं। उसी प्रकार मध्य रूचक पर्वत पर रहने वाली, रूपा, रूपांशा, सुरूपा और रूपकावती ये चारों महत्तरिका दिशाकुमारियाँ नाभि-नाल को काटती हैं और उसे गड्ढे में गाड़ देती हैं। रत्नों से उस गड्ढे को भरकर उस पर पीठिका निर्माण करती हैं। पूर्व, उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशाओं में तीन कदली-घर और उसमें एक-एक चतुःसाल और उसके मध्य भाग में सिंहासन बनाती हैं। मध्य रूचक पर्वत पर रहने वाली "रूपा" आदि दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशा के कदली गृह में माता मरुदेवी को ऋषभ के साथ सिंहासन पर लाकर बिठाती हैं। शतपाक, सहस्रपाक तैल का मर्दन करती हैं और सुगन्धित द्रव्यों से पीठी करती हैं। वहाँ से वे उन्हें पूर्व दिशा के कदली गृह में ले जाती हैं। गंधोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदक से स्नान कराती हैं। वहाँ से उत्तर दिशा के कदली गृह के सिंहासन पर बिठाकर गोशीर्ष चन्दन से हवन और भूतिकर्म निष्पन्न कर रक्षा पोटली बाँधती है और मणि रत्नों से कर्णमूल के पास शब्द करती हुई चिरायु होने का आशीर्वाद देती हैं। वहाँ से माता मरुदेवी के साथ भगवान ऋषभ को जन्म-गृह में लाती हैं और शय्या पर बिठा कर मंगल गीत गाती हैं।

उसके पश्चात् आभियोगिक देवों के साथ सौधर्मेन्द्र आता है और माता मरुदेवी को नमस्कार कर उन्हें अवस्वापिनी निद्रा देता है। ऋषभ का दूसरा रूप बनाकर माता के पास रखता है तथा स्वयं वैक्रिय शक्ति से अपने पाँच रूप बनाता है। एक रूप से भगवान् ऋषभ को उठाता है, दूसरे रूप से छत्र धारण करता है और दो रूप इधर-उधर दोनों पार्श्व में चामर बींजते हैं

---

१. भरतमुक्ति : एक अध्ययन, ले० महेन्द्र मुनि, पृष्ठ ४,

२. उसह-चरियं, धम्मकहाणुओगे, पढम खंधे

तीन गव्यूति, एक योजन की दूरी पर थे। ये सात एक ही समय पैदा हुए। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व को लेकर कपिलवस्तु नगर में आये।[1]

कालदेवल तपस्वी जो आठ समाधि से सम्पन्न थे, वे भोजनादि से निवृत्त होकर मनोविनोदार्थ त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहाँ विश्रान्ति लेते हुए देवगणों से उसने पूछा—आप सन्तुष्ट होकर क्रीड़ा किस तरह से कर रहे हैं? हमें भी इसका रहस्य बतायें। देवों ने कहा—राजा शुद्धोदन के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह धर्मचक्र प्रवर्तन करेगा उसकी अनन्त लीला देखने और सुनने का हमें अवसर मिलेगा। यही हमारी प्रसन्नता का मुख्य कारण है।

तपस्वी देवलोक से उतर कर राजमहल में पहुँचा। राजा को जाकर कहा कि मैं आपके पुत्र को देखना चाहता हूँ। राजा ने उसी क्षण पुत्र को अपने पास मँगवाया और पुत्र को तपस्वी के चरणों में लगाना चाहा पर बोधिसत्व के चरण इतने लम्बे हो गये कि तापस की जटा में जा लगे, क्योंकि बोधिसत्व किसी को भी नमस्कार नहीं करते। यदि वही चरण अनजान में लग जाता तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जाते। तथागत के दिव्य तेज को देखकर तापस उनके चरणों में गिर पड़ा। बोधिसत्व के चरण स्पर्श से उसे अस्सी कल्प की स्मृति हो आई। उसने बालक के शारीरिक लक्षणों को देखा, उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह अवश्य ही बुद्ध बनेगा और वह ज्ञान से यह सोचने लगा कि मैं यहाँ मरकर अरुप लोक में पैदा होऊँगा जिससे इनके दर्शन नहीं हो सकेंगे। इस तरह बोधिसत्व के जन्म की घटनाओं में भी अलौकिकता रही हुई है। यह अलौकिकता यह सिद्ध करती है कि ये घटनायें श्रद्धा के युग में लिखी हुई हैं। श्रद्धालु घटना-विशेष को तर्क की कसौटी पर नहीं कसता। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में भी श्रद्धा युग की अनेक घटनायें मिलती है।

ऋषभ कथा का विस्तार

भगवान् ऋषभदेव के जन्म, वंश, उत्पत्ति, विवाह, राज्याभिषेक और उनके एकसौ दो सन्तान आदि का उल्लेख जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में विस्तार से नहीं है। आवश्यकनिर्युक्ति,[2] आवश्यक चूर्णि,[3] आवश्यक हरिभद्रियावृत्ति,[4] आवश्यक मलयगिरी वृत्ति[5] चउपन्न महापुरिस चरियं,[6] त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र[7] आदि में विस्तार से घटनाओं के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि जीवन-प्रसंग धीरे-धीरे अधिक विकसित हुए हैं।

आवश्यकनिर्युक्ति[8] और आवश्यकचूर्णि[9] के अनुसार जब ऋषभदेव गर्भ में आये थे तब माता ने ऋषभ का स्वप्न देखा था और जन्म के पश्चात् शिशु के उरु स्थल पर ऋषभ का लांछन भी था, इसलिए उनका गुणनिष्पन्न नाम ऋषभ रखा। श्रीमद्भागवत् के अनुसार उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम आदि सद्गुणों के कारण नाभि ने उनका नाम ऋषभ रखा।[10] आचार्य जिनसेन[11] ने ऋषभदेव के स्थान पर 'वृषभदेव' लिखा है। वृष कहते हैं श्रेष्ठ को, भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान थे, इसीलिए उन्हें 'वृषभ स्वामी' के नाम से पुकारा गया है। वे धर्म और कर्म के आद्य निर्माता थे, इसीलिए आदिनाथ के नाम से भी वे विश्रुत रहे हैं। आचार्य जिनसेन[12] और आचार्य समन्तभद्र[13] ने उनका एक गुणनिष्पन्न

१. देखिए—आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ० १५५ डा० मुनि नगराज जी
२. आवश्यकनिर्युक्ति, पूर्वभाग, प्रकाशक—श्री आगमोदय समिति, सन् १९२८
३. आवश्यकचूर्णि, ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९२८
४. आवश्यक हरिभद्रिया वृत्ति, प्रथम विभाग, प्रकाशक—आगमोदय समिति
५. आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पूर्व भाग, प्रकाशक—आगमोदय समिति
६. चउप्पन महापुरिस चरियं—आचार्य शीलांक विरचित—वाराणसी
७. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र—हेमचन्द्राचार्य, प्रका० आत्मानन्दसभा, भावनगर
८. आवश्यकनिर्युक्ति, १९२/१.
९. उरुसु उसभलंछणं उसभो सुमिणंमि तेण कारणेण उसभोत्ति णामं कयं। —आवश्यकचूर्णि, पृ० १५१.
१०. श्रीमद्भागवत, ५/४/२, प्र० खण्ड, गोरखपुर संस्करण ३, पृ० ५५६.
११. महापुराण, १४/१६०-१६१.
१२. महापुराण १६०/१३/३६३.
१३. प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदाम्वरः॥ —बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र

नाम 'प्रजापति' लिखा है। जब वे गर्भ में आये तब हिरण्य की वृष्टि हुई, इसलिए उनका एक नाम 'हिरण्यगर्भ'[1] भी है। इक्षुरस का पान करने के कारण वे 'काश्यप' भी कहलाये।[2] इसके अतिरिक्त वे विधाता, विश्वकर्मा, स्रष्टा आदि विविध नामों से भी पुकारे जाते हैं।[3]

आवश्यकनिर्युक्ति में लिखा है कि जब भगवान् एक वर्ष से कुछ कम के थे तब पिता की गोद में बैठे हुए शक्रेन्द्र के हाथ से इक्षु लेकर खाने इच्छा व्यक्त की, तो शक्रेन्द्र ने उनके वंश को 'इक्ष्वाकुवंश' के नाम से अभिहित किया।[6] सर्वप्रथम इसी वंश की स्थापना हुई। आचार्य जिनसेन ने लिखा है—ऋषभदेव के समय इक्षु-दण्ड अपने आप पैदा होते थे किन्तु लोग उसका उपयोग करना नहीं जानते थे। ऋषभदेव ने रस निकालने की की विधि बताई, इसलिए वे 'इक्ष्वाकु' कहलाए।[5]

यौगलिक काल में भाई और भगिनी ही पति-पत्नी के रूप में परिवर्तित हो जाया करते थे। सुनन्दा के भ्राता की अकाल में मृत्यु हो जाने से नाभि ने ऋषभदेव सहजात सुमंगला और सुनन्दा का पाणिग्रहण ऋषभदेव के साथ करवाकर एक नई व्यवस्था स्थापित की।[7] आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—ऋषभदेव ने लोगों में विवाह-प्रवृत्ति चालू रखने के लिए विवाह किया।[7] आचार्य जिनसेन[8] ने सुमंगला के स्थान पर 'नन्दा' का नाम दिया है। सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया और सुमंगला ने भरत, ब्राह्मी आदि निन्यानवें पुत्रों को जन्म दिया। पद्म पुराण में ऋषभदेव की 'यशस्वती' रानी से भरत का जन्म हुआ, ऐसा लिखा है।[9] श्वेताम्बर परम्परा में ऋषभदेव के सौ पुत्र तथा दो पुत्रियाँ, इस तरह एक सौ दो सन्तान मानी हैं तो दिगम्बर परम्परा में एक सौ तीन सन्तान मानी हैं।[10]

हम यह पूर्व ही बता चुके हैं कि यौगलिक काल में मानव स्वयं शासित था, उसमें किसी भी प्रकार की उच्छृंखलता नहीं थी और ज्यों ज्यों उच्छृंखलता बढ़ती गई, त्यों त्यों 'हाकार', 'माकार' और 'धिक्कार' नीति का विकास हुआ और वह धिक्कार नीति ऋषभदेव तक चलती रही। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभदेव को पन्द्रहवें कुलकर माना है साथ में प्रथम राजा के रूप में भी उल्लेख किया गया है।[11] नाभि कुलकर थे और उनकी उपस्थिति में ही वे राजा बने, इसीलिए ऋषभदेव ने कुलकर पद को ग्रहण नहीं किया होगा, यह स्पष्ट है क्योंकि एक समय एक ही स्थान पर दो कुलकर नहीं हो सकते। फिर यहाँ जो उल्लेख हुआ है, वह हमारी दृष्टि ने कुलकर की भांति कार्य करने से ऋषभदेव कुलकर कहलाये होंगे। वह संक्रांति काल था। प्राचीन मर्यादायें विच्छिन्न हो रही थीं, यौगलिकों ने घबरा कर उस स्थिति पर नियंत्रण करने हेतु ऋषभदेव से प्रार्थना की।[12] ऋषभदेव ने कहा—आप नाभि कुलकर से निवेदन करें, वे आपको राजा प्रदान करेंगे। जो इस सारी स्थिति को नियंत्रित कर सुव्यवस्था करेंगे। यौगलिकों की प्रार्थना पर नाभि कुलकर ने ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर राजा घोषित किया।[13]

---

१. महापुराण; पर्व १२/६५.

२. (क) कासं—उच्छू, तस्य विकारो कास्यः—रसः सो जस्स पाणं सो कासवो—उसभस्वामी।
—दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्। —महापुराण १६/२६६, पृ० ३७०.

३. विधाता विश्वकर्मा च स्रष्टा चेत्यादिनामभिः। प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म, जगतां पतिमच्युतम्॥
—महापुराण १६/२६७/३७०.

४. (क) सक्को वंसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हुन्ति इक्खागा। —आवश्यकनिर्युक्ति, १८६.

(ख) आवश्यकचूर्णि—१५२.

५. आकानाच्च तदिक्षुणां रससंग्रहणे नृणाम्। इक्ष्वाकुरित्यभूद् देवो जगतामभिसम्मतः॥
—महापुराण १६/२६४.

६. आवश्यकनिर्युक्ति, १५१-१९३.

७. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, १/२/८८१.

८. हरिवंशपुराण, ६/१८.

९. पद्मपुराण—रविषेणाचार्य, २०/१०४.

१०. महापुराण, १६/३४६.

११. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सू० २९-३०.

१२. नीतीण अइक्कमणे निवेयणं उसभसामिस्स। —आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरी, १९३.

१३. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १५३-१५४.

राज्य की सुव्यवस्था के लिए आरक्षक दल की स्थापना की, जिसके अधिकारी 'उग्र' कहलाये। मंत्रिमण्डल बनाया, जिसके अधिकारी 'भोग' के नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट के पास रहने वाले और परामर्श देने वाले 'राजन्य' कहलाये तथा अन्य कर्मचारी 'क्षत्रिय' के नाम से पहचाने गये।[1] दुष्टों के दमन तथा प्रजा व राज्य के संरक्षणार्थ चार प्रकार की सेना व 'सेनापतियों' की व्यवस्था की गई।[2] गज, अश्व, रथ, पादातिक, चतुर्विध सेना का संगठन किया। अपराधों के निरोध हेतु साम, दाम, दण्ड, और भेद नीति का प्रचलन किया। साथ ही चार प्रकार की दण्ड व्यवस्था भी बनाई।[3]

१. **परिभास**—कुछ समय के लिए अपराधी को आक्रोशपूर्ण शब्दों में नजरबन्द रहने का दण्ड देना।

२. **मण्डलबन्ध**—सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड प्रदान करना।

३. **चारक**—बन्दीगृह में बन्द रहने का दण्ड देना।

४. **छविच्छेद**—कर आदि अंगों का छेदन करना।

आचार्य अभयदेव का अभिमत है—परिभास और मण्डलबन्ध ये दो नीतियाँ ऋषभदेव के समय चलीं तथा चारक और छविच्छेद ये दो नीतियाँ भरत के समय चलीं।[4] आचार्य भद्रबाहु[5] और आचार्य मलयगिरि[6] की दृष्टि से बन्ध, (बेड़ी का प्रयोग) घात, ये दो दण्ड ऋषभ के समय में प्रारम्भ हुए। मृत्युदण्ड का प्रारम्भ भरत के समय में हुआ। जिनसेन[7] आचार्य ने लिखा है—वध, बन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय में प्रचलित हुए।

ऋषभदेव के समय कल्पवृक्ष पूर्णतया नष्ट हो चुके थे। मानव स्वतः पैदा होने वाले, कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि का उपयोग करते थे। साथ ही चावल, गेहूँ, मूँग, चना आदि का भी उपयोग करते थे। पकाने के साधन के अभाव में अपक्व अन्न दुष्पाच्य हो गया तो वे लोग ऋषभदेव के पास पहुँचे। ऋषभ ने समस्या का समाधान करते हुए कहा—पहले छिलके उतार लें और फिर मल कर खायें। कुछ समय के बाद जब वह भी दुष्पाच्य हो गया तो पानी में भिगोकर मुट्ठी व बगल में रखकर खाने की सलाह दी, पर यह भी स्थाई समाधान नहीं था। ऋषभदेव जानते थे कि यह एकान्त स्निग्ध काल है, इस समय अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती। अग्नि की उत्पत्ति के लिए एकान्त स्निग्ध और एकान्त रूक्ष ये दोनों ही काल उपयुक्त नहीं हैं। समय द्रुत गति से आगे बढ़ रहा था। वृक्षों के परस्पर टकराने से अग्नि उत्पन्न हुई। मानवों ने जब अग्नि देखी तो रत्न राशि समझ कर उसे हाथ में लेना चाहा पर हाथ जल गये। उन्होंने ऋषभदेव से निवेदन किया कि कोई भूत जंगल में पैदा हुआ है, जो हमारे को कष्ट दे रहा है। ऋषभदेव ने कहा—स्निग्ध-रूक्ष काल आगया है, इसलिए अब तुम्हारी समस्या का स्थाई समाधान हो जायेगा। उन्होंने मिट्टी का पात्र बनाकर एवं अन्नादि पकाकर खाने की सलाह दी। यही कारण है कि अथर्ववेद के ऋषभसूक्त में ऋषभदेव के अन्य विशेषणों के साथ 'जातवेदस्' [अग्नि] के रूप में स्तुति की है।[8] वहाँ लिखा है—'रक्षा करने वाला, सभी को अपने भीतर रखने वाला, स्थिर स्वभावी, अन्नवान ऋषभ संसार के उदर का परिपोषण करता है। उस दाता ऋषभ को परम ऐश्वर्य के लिए विद्वानों के जाने योग्य मार्गों से बड़े ज्ञान वाला, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष प्राप्त करें।'

शिल्पों में सर्वप्रथम कुम्भकार का शिल्प प्रचलित हुआ। उसके पश्चात् भवन-निर्माण करने की कला सिखाई। मनोरंजन के लिए चित्र शिल्प का आविष्कार हुआ। वस्त्र निर्माण की शिक्षा दी। बाल, नाखून आदि की अभिवृद्धि से शरीर अभद्र प्रतीत

---

१. (क) आवश्यक निर्युक्तिमलयगिरी वृत्ति, १९८/१९५/१.
   (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, १/२/९७४-९७६.

२. त्रिषष्टि० १/२/९२५-९३२.

३. आवश्यकचूर्णि—१५६.

४. स्थानांग वृत्ति—७/३/५५७.

५. निगडाइजमो वन्धोघातो दण्डादितालणया। —आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २१७.

६. आवश्यकमलयगिरी वृत्ति—१९९/२०२.

७. शरीरदण्डनञ्चैव वधवंधादिलक्षणम्। नृणां प्रवलदोषाणां भरतेन नियोजितम्॥ —महापुराण ३/२१६/६५.

८. पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कवन्धमृषभो बिभर्ति।
   तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः॥ —अथर्ववेद—९/४/३

होने लगा तब नापित शिल्प का प्रशिक्षण दिया। इन पाँच मुख्य शिल्पों के बीस-बीस अवान्तर भेद हुए, इस तरह कुल सौ शिल्प विकसित हुए।

आचार्य जिनसेन ने ऋषभदेव के समय प्रचलित छह आजीविकाओं के साधनों का उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार से हैं :—

(१) **असि**—अर्थात् सैनिक वृत्ति (२) **मषि**—लिपि विद्या (३) **कृषि**—खेती का कार्य (४) **विद्या**—अध्यापन या शास्त्रोपदेश का कार्य (५) **वाणिज्य**—व्यापार, व्यवसाय (६) **शिल्प**—कला कौशल[1]। उस समय के मानवों को 'षट्कर्म जीवीनाम्' कहा गया है।[2]

ऋषभदेव ने अपने बड़े पुत्र भरत को बहत्तर कलाओं का[3] और लघु पुत्र बाहुबली को प्राणी-लक्षणों का ज्ञान कराया[4]। आचार्य जिनसेन[5] ने आदिपुराण में लिखा है कि ऋषभदेव ने अपने ज्येठ पुत्र भरत को अर्थशास्त्र, संग्रह प्रकरण और नृत्य शास्त्र की शिक्षा दी। वृषभसेन को गान्धर्व विद्या की, अनन्त विजय को चित्रकला, वास्तुकला और आयुर्वेद की शिक्षा दी। बाहुबली को काम नीति, स्त्री-पुरुष लक्षण, धनुर्वेद, अश्वलक्षण, गजलक्षण, रत्न परीक्षा एव तंत्र-मंत्र की शिक्षा दी थी। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दक्षिण हस्त से अठाहरह लिपियों का अध्ययन कराया[6] तथा सुन्दरी को वामहस्त से गणित विद्या का परिज्ञान कराया।[7] व्यवहार-साधन हेतु मान, [माप], उन्मान [तोला-माशा आदि,], अवमान [गज, फीट, इंच आदि], प्रतिमान [छटांक सेर-मन आदि] सिखायें।[8] ब्राह्मी लिपि जो आज प्रचलित है, उसका आविष्कार ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी के द्वारा हुआ। विश्व में आज जितनी भी लिपियाँ प्रचलित हैं, उनका मूल आधार ब्राह्मी लिपि है। आज जो गणित शास्त्र [Mathematics] है, वह सुन्दरी के गणित शास्त्र का ही विकसित रूप है। इस तरह ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुरुषों को बहत्तर कलाओं, स्त्रियों को चौसठ कलाओं और सौ प्रकार के शिल्पों का परिज्ञान कराया[9]। संक्षेप में कहें तो असि, मषि और कृषि की व्यवस्था की।

ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की। यह स्थापना ऊँचता और नीचता की दृष्टि से नहीं, किन्तु आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए की[10]। ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट भरत ने की थी, ऐसा स्पष्ट उल्लेख आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रन्थों में है।[11] ऋग्वेद[12] संहिता में वर्णों की

---

१. असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च। कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥

—आदिपुराण १६/१७९.

२. आदिपुराण, ३९/१४३.

३. समवायांग सूत्र, समवाय ७४.

४. भरहस्स रूवकम्मं, नराइ लक्खणमहोइयं बलिणो। —आवश्यकनिर्युक्ति ११३.

५. आदिपुराण, १६/११८-१२५.

६. (क) ऋषभदेव : एक परिशीलन, परिशिष्ट विभाग चौथा, ले० देवेन्द्रमुनि
(ख) आवश्यकनिर्युक्ति, २१२.

७. (क) ऋषभदेव : एक परिशीलन, द्वितीय संस्करण, पृ० १४९.
(ख) विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति, १३२.

८. "माणुम्माणवमाणपमाणंगणिमाई वत्थूण" —आवश्यकनिर्युक्ति, २१३.

९. कल्पसूत्र, १९५/५७ पुण्य० सं०

१०. महापुराण, १८३/१६/३६२.

११. (क) आवश्यकनिर्युक्ति पृ० २३५/१. (ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २१२-२१४. (ग) त्रिषष्टि० १/६.

१२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ —ऋग्वेद संहिता १०/९०; ११-१२.

उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है, वहाँ ब्राह्मण को मुख, क्षत्रिय को बाहु, वैश्य को उर और शूद्र को पैर बताया है। यह लाक्षणिक वर्णन समाज रूप विराट शरीर के रूप में चित्रित किया गया है। श्रीमद्भागवत[1] आदि में भी इस सम्बन्ध में चर्चा है। वैदिक साहित्य में ऋषभदेव को अनेक स्थलों पर ब्रह्मा भी कहा है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभदेव की दीक्षा का उल्लेख है, पर वैराग्य किस कारण से उद्बुद्ध हुआ, इसकी चर्चा नहीं है[2]। जबकि आचार्य हेमचन्द्र[3] ने और शीलाचार्य[4] ने लिखा है—वसन्तु ऋतु में नागरिक गण विविध प्रकार की क्रीड़ायें कर रहे थे, क्रीड़ायें देखकर वे चिन्तन करने लगे—क्या इससे भी अधिक सुख कहीं पर है? चिन्तन करते हुए अवधिज्ञान से पूर्वभव में अनुत्तर विमान में जो सुखोपभोग अनुभव किया था, उसके सामने यह कुछ भी नहीं है। वह लम्बे समय का सुखोपभोग आज स्वप्नवत् हो गया है, अतः वे संयम के पथ पर बढ़ गये। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ हरिवंश पुराण[5] और अन्यान्य ग्रन्थों में 'नीलांजना' नर्तकी नृत्य करते-करते मृत्यु को प्राप्त हुई, उसे देखकर ऋषभदेव प्रतिबुद्ध हुए, ऐसा उल्लेख है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अभिनिष्क्रमण के पूर्व ऋषभदेव ने वार्षिक दान दिया, ऐसा उल्लेख नहीं है, पर आवश्यक-निर्युक्ति[6] और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[7] में उनके वार्षिक दान का उल्लेख है।

ऋषभदेव ने चार मुष्टिक लुंचन किया, यह उल्लेख जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में है। जबकि अन्य तीर्थंकरों के वर्णन में पंच-मुष्टि लुंचन का उल्लेख हुआ है। टीकाकार ने विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—जिस समय भगवान् लोच कर रहे थे, उस समय उनके स्वर्ण सदृश केश राशि को देखकर इन्द्र ने प्रार्थना की—एक मुष्टि केश इसी तरह रहने दें। भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना से उसी प्रकार केशों को रहने दिया[8]। केश रखने से वे 'केशी' या 'केशरिया जी' के नाम से विश्रुत हुए। पद्मपुराण[9], हरिवंश पुराण[10] में ऋषभदेव की जटाओं का उल्लेख है। ऋग्वेद[11] में ऋषभ की स्तुति 'केशी' के रूप में की गई है। वहाँ पर कहा है—केशी अग्नि, जल, स्वर्ग तथा पृथ्वी को धारण करता है। केशी विश्व के समस्त तत्त्वों का दर्शन कराता है और केशी ही प्रकाशमान् ज्ञान ज्योति कहलाता है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में चार हजार उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय वंश के व्यक्तियों के साथ ऋषभदेव की दीक्षा का उल्लेख है।[12] यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भगवन् ऋषभ ने उनको दीक्षा नहीं दी थी, पर उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही लुंचन आदि क्रियायें की थीं।[13]

---

१. विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा, मुखबाहूरुपादजाः। वैराजात् पुरुषाज्जाताय आत्माचार लक्षणाः॥
—भागवत ११/१७/१३ द्वि० भा० पृ० ८०६

२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सूत्र ३०.

३. त्रिषष्टिशलाका० १/२/९८५-१०३३.

४. चउपन्न महापुरिस चरियं

५. सोऽथ नीलाञ्जसां दृष्ट्वा नृत्यन्तीमिन्द्रनर्तकीम्।
बोधस्याभिनिबोधस्य, निर्विवेदोपयोगतः॥
—हरिवंशपुराण, ९/५७.

६. आवश्यकनिर्युक्ति, २३९.

७. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, १/३/२३.

८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २ सूत्र ३०.

९. वातोद्धता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः।
—पद्मपुराण ३/२८८.

१०. स प्रलम्बजटाभारभ्राजिष्णुः।
—हरिवंशपुराण, ९/२०४.

११. केश्यग्निं विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते॥
—ऋग्वेद १०/१३६/१.

१२. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार २, सूत्र ३०.

१३. चउरो साहस्सीओ, लोयं काऊण अप्पणा चेव।
जं एस जहा काही तं तह अम्हेवि काहामो॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३७.

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा के पश्चात् कब प्रथम आहार ग्रहण किया, इसका उल्लेख नहीं है। समवायांग[1] में "संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसहेण लोगनाहेण" इस प्रकार उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेव को दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत होने पर भिक्षा मिली। किस तिथि को उन्हें भिक्षा प्राप्त हुई ? इसका उल्लेख वसुदेव हिण्डी[2] और हरिवंश पुराण[3] में नहीं हुआ है। वहाँ केवल संवत्सर का ही उल्लेख है। खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली,[4] त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र[5] तथा महाकवि पुष्पदंत के महापुराण[6] में अक्षय तृतीया के दिन ऋषभदेव का पारणा हुआ, यह स्पष्ट उल्लेख है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार ऋषभदेव ने वेले का तप धारण किया था, और दिगम्बर परम्परा के अनुसार उन्होंने छह मास का तप धारण किया था। पर लोग आहार-दान देने की विधि से अनभिज्ञ थे। अतः स्वतः आचीर्ण तप उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और एक वर्ष से अधिक अवधि व्यतीत होने पर उनका पारणा हुआ। श्रेयांसकुमार ने ईक्षु रस उन्हें प्रदान किया। इसका सूचन वाचस्पत्याभिधान के निम्न श्लोकों से भी होता है—

"वैशाखमासि राजेन्द्र, शुक्लपक्षे तृतीयका।
अक्षया सा तिथि प्रोक्ता, कृत्तिकारोहिणीयुता ॥
तस्यां दानादिकं सर्वमक्षयं समुदाहृतम्।........"

इन प्रमाणों के आलोक में यह स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेव का पारणा अक्षयतृतीया के दिन हुआ। भगवान् ऋषभ एक वर्ष तक इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र को धारण करते रहें। उसके पश्चात् वे अचेलक हो[7] गये। साधना काल में देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आये, उन उपसर्गों को उन्होंने बहुत ही शान्त भाव से सहन किया।[8] वे अपने साधनाकाल में व्युत्सर्ग काय और त्यक्त देह की भांति रहे। श्रीमद्भागवत[9] में श्रमण बनने के बाद ऋषभदेव को अज्ञानी लोगों ने दारुण कष्ट दिये, यह उल्लेख है, पर हमारी दृष्टि से उस युग के मानव इतने क्रूर नहीं थे जो ऋषभ को इतना कष्ट देते।

भगवान् के जीवन और साधना का शब्द-चित्र विविध उपमाओं के द्वारा शास्त्रकार ने प्रस्तुत किया है। एक सहस्र वर्ष के पश्चात् भगवान् को केवलज्ञान तथा केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। जिसे जैनागमों में केवलज्ञान कहा है, उसे बौद्ध ग्रंथों में 'प्रज्ञा', सांख्य-योग में 'विवेक-ख्याति' कहा है।[10] उन्होंने तीर्थ की स्थापना की। उनके चौरासी गण तथा चौरासी गणधर हुए। वैदिक पुराणों में भी भगवान् ऋषभदेव को दस विध धर्म का प्रवर्तक माना है। तृतीय आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान ऋषभदेव दश हजार श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ़ हुए। चतुर्दश भक्त से आत्मा को भावित करते हुए अभिजित नक्षत्र के योग में पर्यंकासन से स्थित शुक्लध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर-

---

१. समवायांग—सूत्र १५७

२. "भयवं पियामहो निराहारो परमधिति-बल-सायरो सयंभुसागरोइव थिमियो अणाउलो संवच्छरं विहरइ, पत्तो य हत्थिणाउरं...............ततो परमहरिसियो पडिलाहेइ सामि खोयरसेणं। —वसुदेव हिण्डी

३. हरिवंशपुराण, सर्ग ९, श्लोक १८०-१९१.

४. श्री युगादिदेव पारणकपवित्रितायां वैशाख शुक्लपक्ष तृतीयायां स्वपदे महाविस्तरेण स्थापिताः।
—खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली [सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई]

५. राधशुक्ल तृतीयायां, दानमासीत्तदक्षयम्। पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते ॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, १/३/३०१.

६. सेयंसहु घणएण णिउंजिय, उक्कहिं उडमाला इव पंजिय। पूरियसंवच्छर उववासें, अक्खयदाणु भणिउं परमेसें ॥
—महापुराण, संधि ९, पृ० १४८-१४९

७. उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छर-साहियं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए। —धम्मकहाणुओगे, पढम खंधे, पृ० २०.

८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार १, सूत्र ३१.

९. भागवत ५/५/३०/५६४.

१०. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः। —योग सूत्र २/२६.

अजर-अमर पद को प्राप्त हुए,[1] जिसे जैन परिभाषा में 'निर्वाण' या 'परिनिर्वाण' कहा है। शिवपुराण में अष्टापद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।[2]

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,[3] कल्पसूत्र,[4] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र[5] के अनुसार ऋषभदेव की निर्वाण तिथि माघ कृष्णा त्रयोदशी है और तिलोयपण्णत्ति[6] एवं महापुराण[7] के अनुसार माघ कृष्णा चतुर्दशी है। मूर्धन्य मनीषियों का यह मानना है कि भगवान् की स्मृति में उस दिन श्रमणों ने उपवास रखा और रात भर धर्म-जागरण करते रहे। इसलिए वह रात्रि 'शिवरात्रि' के रूप में प्रसिद्ध हुई। ईशान[8] संहिता में उल्लेख है—माघ कृष्णा चतुर्दशी की महानिशा में कोटि सूर्य प्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इस लिङ्ग से प्रकट हुए; जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव कहे जाते थे, वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से 'शिव' कहलाने लगे।

ऋषभदेव का महत्त्व केवल जैन परम्परा में ही नहीं रहा है, अपितु ब्राह्मण परम्परा में भी वे उपास्य देव रहे हैं। डा० राधाकृष्णन्, डा० जिमर, प्रो० विरूपाक्ष, वॉडियर प्रभृति अनेक विद्वानों ने इस सत्य-तथ्य को स्वीकार किया है कि वेदों में भी भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है। वैदिक ऋषि भक्ति भावना से तल्लीन होकर महाप्रभु ऋषभ की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परमसुख प्राप्त करने के लिए हम आपकी शरण में आना चाहते हैं।[9] ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है।[10] यजुर्वेद में भी कहा है—मैंने उस महापुरुष को जाना है, जो सूर्यवत् तेजस्वी तथा अज्ञान आदि अन्धकार से बहुत दूर है; उसी का परिज्ञान कर मृत्यु से पार हुआ जा सकता है। मुक्ति के लिए इसके सिवाय अन्य को मार्ग नहीं।[11] अथर्ववेद के ऋषि ने मानवों को यह प्रेरणा दी कि वे ऋषभदेव का आह्वान करें। हे सहचर बन्धुओ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज को धारण करो।[12] क्योंकि वे प्रेम के राजा हैं, उन्होंने उस संघ की स्थापना की है, जिसमें पशु भी मानव के सदृश माने जाते हैं तथा उनको कोई भी नहीं मार सकता।

वैदिक ऋषियों ने विविध प्रतीकों के द्वारा भी ऋषभदेव की स्तुति की है। कहीं वे जाज्वल्यमान अग्नि के[13] रूप में, कहीं परमेश्वर के रूप में,[14] कहीं रुद्र के रूप में,[15] कहीं शिव[16] के रूप में, कहीं हिरण्यगर्भ[17] के रूप में, कहीं ब्रह्मा[18] के

---

१. चुलसीतीऐ जिणवरो, समण सहस्सेहिं परिवुडो भगवं। दसहिं सहस्सेहिं समं, निव्वाणमणुत्तरं पत्तो॥
—आवश्यकचूर्णि २२१.

२. कैलाशे पर्वते रम्ये, वृषभोऽयं जिनेश्वरः। चकार स्वावतारं च, सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥ —शिवपुराण ५९.

३. 'जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे। माह बहुले तस्स णं माहबहुलस्स तेरसी पक्खेणं॥
—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४८/९१.

४ कल्पसूत्र १९९/५९   ५. त्रिषष्टि० १/६

६. 'माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णियय—जम्मणक्खत्ते अट्टावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोमि। —तिलोयपण्णत्ति

७. महापुराण ३७/३.

८. माघे कृष्ण चतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिंग तयोद्भूतः कोटि सूर्यसमप्रभः।
तत्काल व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः॥ —ईशान संहिता

९. मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियर्मि वाचमृताय भूषन्। इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणां विशां देवी नामुत पूर्वयाया॥
—ऋग्वेद २/३४/२.

१०. ऋग्वेद—१०/१६६/१.

११. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

१२. अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां, विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्। अपां न पातमश्विना हुं वे धिय, इन्द्रियेण इन्द्रिय दत्तमोजः॥
—अथर्ववेद, कारिका १९/४२/४.

१३. अथर्ववेद ९/४/३; ९/४/७; ९/४/१८;   १४. अथर्ववेद ९/४/७.

१५. (क) ऋग्वेद १०/१३६., २/३३/१५.   (ख) यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता १/८/६, वाजसनेयी ३/५७/६३.

१६. प्रभासपुराण ४९.   १७. (क) ऋग्वेद १०/१२१/१.   (ख) तैत्तिरीयारण्यक भाष्य-सायणाचार्य, ५/५/१/२.
(ग) महाभारत, शान्तिपर्व ३४९.   (घ) महापुराण १२/९५.

१७. ऋषभदेव : एक परिशीलन, द्वि० संस्करण, पृ० ४९.

रूप में; कहीं विष्णु[1] के रूप में, कहीं वातरसना[2] श्रमण के रूप में, कहीं केशी[3] के रूप में भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हैं।

श्रीमद्भागवत[4] में तो ऋषभदेव का बड़ा ही विस्तार से निरूपण है, लगता है कि जैन परम्परा के ग्रन्थ को ही हम पढ़ रहे हैं। उनके माता-पिता के नाम, सुपुत्रों का उल्लेख, उनकी ज्ञान साधना, उपदेश, धार्मिक-सामाजिक नीतियों का प्रवर्तन, और भरत के अनासक्त योग का चित्रण हुआ है। श्रीमद्भागवत में ही नहीं, अपितु लिङ्गपुराण,[5] शिवपुराण,[6] आग्नेयपुराण,[7] ब्रह्माण्डपुराण[8] विष्णुपुराण,[9] कूर्मपुराण,[10] नारदपुराण,[11] वाराहपुराण,[12] स्कन्दपुराण,[13] प्रभृति पुराणों में ऋषभदेव का केवल नामोल्लेख ही नहीं हुआ है, किन्तु कहीं-कहीं उनके जीवन-प्रसंग भी उट्टंकित हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में ऋषभदेव का उल्लेख जितना विस्तार के साथ होना चाहिए, उतना नहीं हो पाया। 'धम्मपद' में ऋषभ और महावीर का नाम एक साथ आया है, उसमें ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ धीर अभिहित किया।[14] धर्मकीर्ति ने 'न्याय विन्दु' ग्रन्थ में सर्वज्ञ का दृष्टान्त देते हुए ऋषभदेव और भगवान् महावीर का उल्लेख किया है।[15] जो सर्वज्ञ अथवा आप्त हैं, वे ज्योतिर्ज्ञानादिक के उपदेष्टा होते हैं।

पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी ने ऋषभदेव को आदिपुरुष माना है और विविध रूप में उनका चित्रण किया है। विस्तार भय से हम यहाँ उन सभी के विचार उट्टंकित नहीं कर रहे हैं, विशेष जिज्ञासुजन लेखक का 'ऋषभदेव : एक परिशीलन' ग्रन्थ अवलोकन करें।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जन्मोत्सव का जैसे विस्तार से निरूपण हुआ है, वैसे ही उनके निर्वाण का भी विस्तार से निरूपण है। निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए चौंसठ इन्द्र अपने विशाल-परिवार के साथ वहाँ उपस्थित होते हैं। शक्र ऋषभदेव के शरीर को क्षीरोदक से स्नान करवाता है, अन्य देव गण, गणधर तथा अन्य अन्तेवासी शिष्यों के पार्थिव शरीरों को क्षीरोदक से स्नान करवाते हैं फिर गोशीर्ष चन्दन का विलेपन करते हैं। तीन प्रकार की शिविकायें तैयार करते हैं। एक में ऋषभदेव को, दूसरी में गणधरों को और तीसरी शिविका में सामान्य साधुओं को रखते हैं। "जय-जय नन्दा, जय-जय भद्दा" के दिव्य आघोष से आकाश को गुंजायमान करते हुए तीन चिताओं में तीर्थंकर, गणधर तथा सामान्य साधुओं को स्थापित करते हैं। शक्र की आज्ञा से अग्निकुमार देव ने अग्नि की विकुर्वणा की और वायुकुमार देव ने अग्नि को प्रज्वलित किया। गोशीर्ष चन्दन की बनी हुई चितायें जलने लगीं। जब सभी के पार्थिव शरीर जल गये तब शक्रेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव ने क्षीरोदक से उन चिताओं को ठण्डा किया। सभी इन्द्र अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार प्रभु की डाढ़ों और दाँतों को तथा शेष देवों ने प्रभु की अस्थियों को ग्रहण किया। तीनों चिताओं पर स्मृति चिन्ह बनाकर वे देवेन्द्र अपने परिवार के साथ नन्दीश्वर द्वीप गये और अष्टाह्निका महोत्सव मनाया।

---

१. सहस्रनाम ब्रह्मशतकम् श्लोक १००-१०२.
२. (क) ऋग्वेद १०/१३६/२. (ख) तैत्तिरियारण्यक २/७/१. पृ० १३७. (ग) बृहदारण्यकोपनिषद ४/३/२२.
(घ) एन्शियेन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड वाय मैगस्थनीज एण्ड एरियन, कलकत्ता, १९१६, पृ० ९७-९८.
(ङ) ट्रान्सलेशन आव द फ्रेग्मेन्टस आव द इण्डिया आव मैगस्थनीज, वान १८४६, पृ० १७५.
३. (क) पद्मपुराण ३/२८८. (ख) हरिवंश पुराण ९/२०४. (ग) ऋग्वेद १०/१३६/१.
४. श्रीमद्भागवत १/३/१३; २/७/१०; ५/३/२०; ५/४/२०; ५/४/५; ५/४/८; ५/४/९-१३; ५/५/१६; ५/५/१९; ५/५/२८; ५/१४/४२-४४; ५/१५/१.
५. लिंगपुराण, ४८/१९-२३.
६. शिवपुराण, ५२/८५.
७. आग्नेयपुराण, १०/११-१२.
८. ब्रह्माण्डपुराण पूर्व, १४/५३.
९. विष्णुपुराण, द्वितीयांश, अ० १/२६-२७.
१०. कूर्मपुराण, ४१/३७. ३८.
११. नारदपुराण, पूर्वखण्ड, अ० ४८.
१२. वाराहपुराण, अ० ७४.
१३. स्कन्दपुराण, अ० ३७.
१४. उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं। अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ —धम्मपद ४२२.
१५. य: सर्वज्ञ आप्तो वा स ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् तद्यथा ऋषभवर्धमानादिरिति। —न्यायविन्दु

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव का ओजस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व एवं कृतित्व अत्यन्त प्रेरणादायी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके जीवन के कुछ बिन्दुओं पर चिन्तन किया है और ये ही बिन्दु आगम साहित्य के पश्चात् निर्मित साहित्य के उप-जीव्य रहे हैं हैं।

मल्ली भगवती :

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ में मल्ली भगवती का चरित्र आया है। मल्ली भगवती के चरित्र का मूल आधार ज्ञाताधर्मकथा है। मल्ली भगवती का जीव अपने तीसरे पूर्वभव में 'महाबल' नामक राजा बना था। वह छह स्नेही साथियों के साथ श्रमणधर्म में दीक्षित हुआ और साथ ही समान तप करने का निश्चय किया। पर महाबल के अन्तर्मानस में ये विचार उद्‌बुद्ध हुए कि मैं गृहस्थाश्रम में भी इनसे बढ़कर था। यदि इस समय समान साधना की तो इन्हीं के समान भविष्य में रहना पड़ेगा। अतः महाबल ने विशिष्ट तप की साधना प्रारम्भ की। यदि छहों साथी षष्ठभक्त तप करते तो महाबल अष्टमभक्त तप करते, यदि अन्य साथी अष्टमभक्त तप करते तो वे दशम भक्त तप करते। साथी मुनियों के पूछने पर शारीरिक और मानसिक कारण बताकर वे पारणा नहीं करते। माया के कारण उन्होंने स्त्रीनामकर्म का अनुबन्धन किया स्त्रीवेद का बन्ध कर लेने के पश्चात् सभी प्रकार के शल्यों से मुक्त होकर निष्काम भाव से उग्र तप के साथ तीर्थंकर नाम गोत्र का बन्ध किया। सातों ही श्रमणों ने भिक्षु की द्वादश प्रतिमाओं को धारण किया, लघुसिंह निष्क्रीड़ित तथा महासिंह निष्क्रीड़ित आदि विविध प्रकार की तपस्याएँ करने के बाद अन्त में पादपोपगमन संथारा कर स्वर्गस्थ हुए। महाबल का जीव बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति सहित अनुत्तर विमान में पैदा हुआ और अन्य छहों मुनि बत्तीस सागर से कुछ कम स्थिति वाले देव बने।

वहाँ से च्युत होकर महाबल का जीव मिथिला नगरी में महाराजा कुम्भ की महारानी प्रभावती की कुक्षि से मल्ली भगवती के रूप में उत्पन्न हुआ और उनके पूर्वभव के छह मित्र जिनमें से "अचल" का जीव कौशल, की राजधानी अयोध्या में 'प्रतिबद्ध' नामक राजकुमार हुआ। "धरण" का जीव अंग की राजधानी चम्पा में 'चन्द्रछाय' नामक राजकुमार हुआ। "अभिचन्द्र" का जीव काशी की राजधानी वाराणसी में 'शंख' राजकुमार बना। 'पूरण' का जीव कुणाला की राजधानी कुणाला नगरी में 'रुक्मी' नामक राजकुमार हुआ। 'वसु' का जीव पुरु की राजधानी हस्तिनापुर में 'अदीनशत्रु' नामक राजकुमार के रूप में पैदा हुआ तथा 'वैश्रमण" का जीव पांचाल की राजधानी काम्पिल्यपुर में 'जितशत्रु' राजा बना।

द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति मल्ली कुमारी दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसका रूप अद्‌भुत था। जो भी उसे निहारता, वह ठगा सा रह जाता। राजकुमारी ने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा कि मेरे छहों मित्र मेरे रूप की ख्याति सुनकर मेरे से विवाह करने के लिए तत्पर होंगे, अतः उन्हें प्रतिबोध देने हेतु उसने विशिष्ट कलाकारों को बुलवाया और अशोक वाटिका में मोहन गृह का निर्माण करवाया, छह गर्भगृहों के बीच एक जाल-गृह का निर्माण करवाया। उस जाल-गृह में मणि पीठिका पर अपने ही समान स्वर्ण पुतली बनवाई, उस पुतली को देखने वाला यही समझता कि साक्षात् मल्ली भगवती ही खड़ी है। उस पुतली के सिर पर एक छिद्र बनवाया और पदम् पत्र की तरह उसका ढक्कन निर्माण करवा कर प्रतिदिन अपने भोजन के बाद एक कवल उस पुतली में डालने लगी। वह अन्न प्रतिदिन अन्दर ही अन्दर सड़ने लगा, जिससे दुसह्य दुर्गन्ध पैदा हुई। छहों मित्र राजाओं ने मल्ली भगवती के रूप की प्रशंसा सुनी तो उन सबने उसे अपनी-अपनी पत्नी बनाने के लिए कुम्भ राजा के पास दूत प्रेषित किये। छहों दूतों को एक साथ आया हुआ देखकर महाराजा कुम्भ यह निर्णय न ले सके कि किसके साथ राजकुमारी का पाणिग्रहण कराया जाय, अतः छहों दूतों को निषेध कर दिया। छहों राजकुमारों के दूतों ने अपने-अपने राजाओं को निवेदन किया तथा वे छहों सेना से सुसज्जित होकर आक्रमण करने हेतु मिथिला की ओर बढ़े जिससे कुम्भ राजा अत्यन्त चिन्तित हुआ। मल्ली भगवती के संकेत से छहों राजाओं को पृथक्-पृथक् गर्भ गृहों में ठहरा दिया गया। छहों ने मल्ली भगवती की प्रतिकृति देखी, वे देखते ही उस पर मन्त्र-मुग्ध हो गये। मल्ली भगवती जाल-गृह में से अपनी कनकमयी प्रतिकृति के पास आई और पदम् कमल के ढक्कन को पुतली के सिर पर से हटा दिया। ढक्कन हटते ही असह्य और भीषण दुर्गन्ध निकली, जिससे सारा वायुमण्डल दुसह्य दुर्गन्ध से व्याप्त हो गया। छहों राजाओं ने अपने उत्तरीय वस्त्रों से नाक को ढक लिया और मुख को मोड़कर बैठ गये। राजकुमारी मल्ली भगवती ने उन सभी राजाओं को सम्बोधित कर कहा—आप सभी मुख को मोड़कर और नाक आदि ढक कर क्यों बैठे हैं? इस स्वर्णमूर्ति में प्रतिदिन एक-एक ग्रास श्रेष्ठ भोजन का डाला गया है। जब एक-एक ग्रास से भी इतनी भयंकर सड़ान पैदा हुई है तो हम इस शरीर में प्रतिदिन कितने ग्रास डालते हैं? यह शरीर मल-मूत्र, श्लेष्म, रज आदि अशुचियों का भण्डार है, इसमें आप क्यों आसक्त हो रहे हैं? स्मरण करो अपने पूर्वभव को! हम पूर्वभव में मित्र थे। साधना

करते हुए मैंने माया का सेवन किया, जिसके कारण मैंने स्त्री नाम कर्म का वन्धन किया। छहों राजाओं को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ और वे प्रतिबुद्ध हुए। तीन सौ पुरुष और तीन सौ महिलाओं के साथ मल्ली भगवती ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी दिन उन्हें केवलज्ञान एवं केवलदर्शन हो गया। एक प्रहर से कुछ अधिक समय तक वे छद्मस्थ अवस्था में रहे। केवलज्ञान होने पर छहों राजा भी उनके प्रथम उपदेश को सुनकर दीक्षित हुए।

प्रस्तुत कथा में भोग के दलदल में फँसने वाले, रूप और लावण्य के पीछे पागल बने हुए छहों राजाओं को विशुद्ध सदाचार का मार्ग बताया है। जो शरीर ऊपर से चमक-दमक रहा है, जिसकी चमक-दमक से उसके प्रति आकर्षण पैदा होता है, उस शरीर में रही हुई अपार गंदगी को बताकर राजाओं का हृदय परिवर्तन किया गया है। बौद्ध साहित्य में भिक्षुणी शुभा का एक प्रसंग है। शुभा का सौन्दर्य निराला था। एक कामुक व्यक्ति उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उस कामुक व्यक्ति ने कहा—तुम्हारे नेत्र कितने सुन्दर और आकर्षक हैं कि उनको पाये बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा। भिक्षुणी ने अपने शील की रक्षा के लिए तीक्ष्ण नाखूनों से अपने नेत्र निकाल कर उसके हाथ में दे दिये और उस कामुक व्यक्ति से कहा—जिन नेत्रों पर तुम मुग्ध हो, वे नेत्र तुम्हें समर्पित कर रही हूँ। किन्तु उस कथा से भी मल्ली भगवती की कथा अधिक आकर्षक और प्रभावशाली है।

रूपक की भाषा में यदि कहा जाये तो वे छहों राजा काम, क्रोध, मद, मोह आदि षट् रिपुओं के रूप में हैं। सभी धर्म और सम्प्रदायों ने षट् रिपुओं को जीतने पर बल दिया है। उन रिपुओं को कला से ही जीता जा सकता है। मल्ली भगवती की तरह साधक उन रिपुओं पर विजय-वैजयन्ती फहरा सकता है।

प्रस्तुत कथा में उत्कृष्ट चित्रकला का रूप भी देखने को मिलता है। प्राचीन भारत में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ था। चित्रों को बनाने के लिए चित्रकार अपनी कूँची और विविध प्रकार के रंगों का उपयोग करता था। चित्रकार सर्वप्रथम भूमि को तैयार करता फिर उसको सजाता-संवारता। मल्ली भगवती के भ्राता मल्लदत्त कुमार ने हाव-भाव, विलास और श्रृंगार चेष्टाओं से युक्त एक चित्र सभा बनवाई थी। चित्रकार श्रेष्ठतम चित्र बनाने में संलग्न हो गये। उसमें एक चित्रकार अद्‌भुत प्रतिभा का धनी था। वह द्विपद, चतुष्पद, अपद [वृक्ष आदि] के किसी एक हिस्से को निहार कर उसके सम्पूर्ण रूप को चित्रित कर देता था। राजा-महाराजा और श्रेष्ठी गणों को चित्र-कला अत्यन्त प्रिय थी। वे विविध प्रकार की चित्र-शालायें बनवाते थे।

बृहत्कल्पभाष्य में आचार्य संघदासगणि ने चित्र कर्म के निर्दोष और सदोष ये दो प्रकार बताये हैं। वृक्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, भवन, वल्ली, लता वितान, पूर्ण कलश, स्वस्तिक, आदि मांगलिक पदार्थों का आलेखन निर्दोष चित्र कर्म माना है और स्त्रियों के श्रृंगार आदि आलेखन को सदोष चित्र कर्म माना है।[१] चित्र मुख्य रूप से भित्तियों पर और पट्ट फलक पर बनाये जाते थे। चित्र-सभायें उस युग में राजाओं के लिए अत्यन्त गर्व की वस्तु होती थीं। चित्र सभाओं में सैकड़ों खम्भे होते थे।

प्रस्तुत कथा में कुछ अवान्तर कथायें भी हैं। चोक्खा परिव्राजिका राजा जितशत्रु के दरबार में पहुँचती है। जितशत्रु को अपने अन्तःपुर पर बड़ा गर्व था। वह सोचता था कि मेरे अन्तःपुर के सदृश सुन्दरियाँ अन्यत्र कहीं पर भी नहीं हैं। विश्व का सम्पूर्ण सौन्दर्य मेरे अन्तःपुर में सिमटा हुआ है, अतः वह अभिमान के साथ परिव्राजिका के बोला—आप तो देश-विदेशों में घूमती हैं। क्या आपने मेरे अन्तःपुर सदृश्य अन्य अन्तःपुर देखा है। परिव्राजिका ने मुस्कराते हुए कहा—तुम तो कूप-मण्डूक सदृश हो; और वह कूप-मण्डूक की कथा सुनाती है।

समुद्र-यात्रा : एक चिन्तन

प्रस्तुत कथानक में अरणक श्रावक की सुदृढ़ धर्म-श्रद्धा का भी उल्लेख है। वणिक् लोग मूल धन की रक्षा करते हुए धनोपार्जन करते थे।[२] कितने ही व्यापारी एक स्थान पर दुकान लगाकर व्यापार करते थे और कितने ही व्यापारी बिना दुकान लगाये इधर-उधर घूम-फिरकर व्यापार करते थे।[३] निशीथचूर्णि[४] में 'समुद्द जाणी' शब्द प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है—समुद्र यात्री ! ज्ञातृधर्मकथा[५] में अनेक स्थलों पर 'पोत पट्टन' और 'जल पत्तन' शब्द आये हैं, जो समुद्री बन्दरगाह के सूचक हैं, जहां पर विदेशों से माल उतरता था और देशी माल का वहां से निर्यात होता था। आचारांग[६] और उत्तराध्ययन[७] में नाव और

---

१. बृहत्कल्पभाष्य १/२४२६.
२. निशीथचूर्णि ११/३५३२.
३. निशीथभाष्य १६/५७५०. की चूर्णि.
४. समुद्दजाणीए चेव णावए —निशीथचूर्णि
५. णायाधम्मकहा, अध्य० ८वां
६. आचारांग, ३/२.
७. उत्तराध्ययन, अध्य० २३.

पोत शब्द भी प्राप्त होते हैं। पोतवह[1] शब्द जहाज का वाचक है। आधुनिक युग में 'वाणिय' शब्द सामान्य व्यापारी के अर्थ में व्यवहृत होता है, पर ज्ञाताधर्मकथा में 'वाणिय' शब्द समुद्री यात्री के लिए प्रयुक्त हुआ है।[2]

आगम साहित्य में व धर्मकथानुयोग में अनेक स्थलों पर समुद्र यात्रा का निरूपण है। आवश्यकचूर्णि[3] से यह पता चलता है कि दक्षिण मदुरा से सुराष्ट्र में जहाज चलते थे। समुद्र यात्रा के लिए वायु का अनुकूल होना आवश्यक माना गया है।[4] निर्यामकों को समुद्री हवा के बारे में कुशल होना आवश्यक माना गया है। समुद्र में "कालियावात" न चलने पर और साथ ही गर्भज वायु के चलने पर जहाज सकुशल बन्दरगाहों पर पहुँच जाते थे। 'कालियावात' यानी तूफानों में जहाजों को डूबने का अत्यधिक खतरा रहता था। उस युग में समुद्र-यात्रा निर्विघ्न नहीं थी।[5] जहाज आज की भांति दोनों प्रकार के होते थे—चढ़ने योग्य और माल ढोने योग्य।[6] जो जहाज व्यापार के लिए जाते थे, उनमें जो माल भरा जाता था; वह १. गणिम—सुपारी, नारियल आदि जो गिन करके भरा जाता था। २. धरिम—शक्कर आदि जिसे तोलकर भरते थे। ३. मेय—चावल, घी आदि जो पाली आदि से मापकर दिया जाता था। ४. परिच्छेद्य—जिसे केवल आंखों से जांचकर देते थे जैसे—कपड़ा, हीरे-पन्ने, माणिक-मोती आदि जवाहरात।[7] बन्दरगाह तक व्यापारी लोग हाथी, घोड़ा, शकट तथा गाड़ियों पर बैठकर पहुँचते थे। विविध भाषाओं का परिज्ञान न होने पर लोग संकेतों से काम लेते थे। जब तक सौदा पूरा नहीं होता वहां तक लोग माल को ढँक कर रखते थे।[8]

उत्तराध्ययन की टीका के अनुसार गुप्त काल में भारत का ईरान के साथ अत्यन्त मधुर सम्बन्ध था। शंख, चन्दन, अगर-तगर, रत्न आदि भारत से ईरान में जाते थे और ईरान से मजीठ, स्वर्ण, चांदी, मूँगे, मुक्तायें प्रभृति अनेक वस्तुएँ भारत में आती थीं।[9] यह भी ज्ञात होता है कि भारत में सोमाली-लैण्ड, वंक्षु प्रदेश, यूनान, सिंहल, अरब, हटगना, फारस प्रभृति देशों से अनेक दास-दासियां अन्तःपुर में महारानियों की सेवा के लिए आती थी।[10] उनके लालन-पालन में बढ़ती हुई सन्तान सहज रूप से वहाँ की भाषाओं से परिचित हो जाते थे। उन्हें भाषाओं के अध्ययन के लिए विशेष श्रम करने की आवश्यकता नहीं होती थी। धाय-माताओं की घूंट के साथ ही भाषा भी उन्हें हृदयंगम हो जाती।

आज के युग की तरह प्राचीन युग में भी विदेशों से जो बहुमूल्य माल आता था, उस माल का (राजस्व) कर न चुकाना पड़े, इसलिए व्यापारी गण राजमार्ग का परित्याग कर बीहड़-पथ पर भी चल पड़ते थे और जब वे पकड़े जाते तो राजागण उन्हें कठोर दण्ड देते थे।[11] इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में सभी ईमानदार व्यक्ति पैदा नहीं होते। लोभ की वृत्ति से मानव अनैतिकता की ओर बढ़ता है।

जैन श्रमण की आचार संहिता अत्यधिक कठिन थी इसलिए वह समुद्र यात्रा नहीं करते थे, पर जैन सार्थवाह और व्यापारीगण व्यापार के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति करना चाहते थे, इसलिए वे समुद्र-यात्रा किया करते थे। एक बार नहीं, किन्तु अनेक बार वे माल को इधर से उधर आयात और निर्यात करते रहते थे। आगम व व्याख्या साहित्य और स्वतन्त्र कथा-साहित्य में सैकड़ों व्यक्तियों के समुद्र-यात्रा के प्रसंग प्राप्त हैं। उन्हें समुद्री मार्गों का भी विशेष परिज्ञान था। यह सत्य है कि आज के युग की तरह उस युग में वाहन इतने सबल नहीं थे। पवन की प्रतिकूलता से वाहन क्षत-विक्षत भी हो जाते थे, तथापि व्यापारी हिम्मत नहीं हारते थे।

प्रस्तुत कथानक में छह राजाओं का परिचय भी दिया गया है। मल्ली भगवती के युग में राज्य-व्यवस्था कैसी थी? इसका भी इससे पता चलता है। राजाओं के पास चतुरंगिणी सेनायें होती थी। वे स्वाभिमानी होते थे। उनके अहंकार को जरा सी ठेस पहुँचने पर वे युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हो जाते। सभी राजाओं की यही इच्छा रहती कि विश्व में जो भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु

---

१. णायाधम्मकहा, अध्य० ८,९,१७.
२. णायाधम्मकहा, अध्य० ८,९,१७.
३. आवश्यकचूर्णि, पृ० ७०९.
४. आवश्यकचूर्णि पृ० ९९.
५. णायाधम्मकहा, अध्ययन ९.
६. उपासकदशांग सूत्र ५.
७. (क) णायाधम्मकहा, अध्ययन ८,९,१७.
(ख) निशीथचूर्णि ५६३२.
८. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ४२.
९. उत्तराध्ययन टीका, पृष्ठ ६४.
१०. अन्तगडदसाओ, बारनेट का अनुवाद, पृष्ठ २८ से २९.
११. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र २५२.

है, उसके अधिपति हम ही हैं। यही कारण है कि मल्ली भगवती के सौन्दर्य-रस का पान करने के लिए छहों राजा रूपी भँवरे एक साथ मंडराये और अधिकार की भाषा में सभी ने अपना-अपना अधिकार व्यक्त किया।

प्रस्तुत कथानक के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग में, आज की तरह लड़की माता-पिता के लिए एक समस्या ही थी। यदि लड़की अत्यन्त रूपवान होती तो रूप-लुब्धक व्यक्ति उसे पाने के लिए अपनी जान दाँव पर लगा देते और जब एक से अधिक व्यक्ति उसे प्राप्त करने के लिए आतुर हो जाते तो माता-पिता के लिए गम्भीर समस्या बन जाती थी। यदि वह लड़की सुरूपा नहीं होती तो भी विवाह की समस्या ही बनी रहती। इस तरह दोनों ही प्रकार से लड़की की समस्या रहती थी।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक में सांस्कृतिक, धार्मिक सामग्री रही हुई है।

भगवान् अरिष्टनेमि :

भगवान् ऋषभदेव और मल्ली भगवती ये दोनों तीर्थंकर प्राग् ऐतिहासिक काल में हुए हैं। आधुनिक इतिहासकार भगवान् अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। क्योंकि कर्मयोगी श्रीकृष्ण को इतिहासकार इतिहास के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र मानते हैं। उसी युग में अरिष्टनेमि का भी प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में संकोच की आवश्यकता नहीं है।

ऋग्वेद में अरिष्टनेमि शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है।[1] "स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः" [ऋग्वेद १/१४/८९/६] यहाँ पर 'अरिष्टनेमि' शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए प्रयुक्त हुआ है। कितने ही मूर्धन्य मनीषीगणों का यह मन्तव्य है कि 'छान्दोग्योपनिषद्' में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम 'घोर आंगिरस' के नाम से आया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को आत्म-यज्ञ की शिक्षा प्रदान की। उसकी दक्षिणा, दान, तपश्चर्या, ऋजुभाव, अहिंसा, सत्यवचन रूप थी।[2] धर्मानन्द कौशाम्बी ने 'आंगिरस' ऋषि को भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम माना है।[3]

ऋग्वेद,[4] यजुर्वेद[5] और सामवेद[6] में भगवान् अरिष्टनेमि को 'तार्क्ष्य अरिष्टनेमि' लिखा है। "स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु"।[7] वेदों में जो अरिष्टनेमि शब्द प्रयोग हुआ है, वह भगवान् अरिष्टनेमि के लिए है। महाभारत में भी 'तार्क्ष्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। वह भी भगवान् अरिष्टनेमि का ही दूसरा नाम होना चाहिए।[8]

यजुर्वेद में लिखा है—'अध्यात्मयज्ञ को प्रगट करने वाले, संसार के भव्य जीवों को यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से आत्मा पवित्र बनती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ।[9]

डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है—यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों के नाम हैं।[10]

---

१. (क) ऋग्वेद १/१४/८९/६. (ख) ऋग्वेद १/२४/१८०/१०
 (ग) ऋग्वेद ३/४/५३/१७. (घ) ऋग्वेद १०/१२/१७८/१.
२. अतः यत् तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा। —छान्दोग्य उपनिषद् ३/१७/४.
३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृ० ५७.
४. (क) त्वम् पु वाजिनं देवजूतं सहावान तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमि पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम॥ —ऋग्वेद १०/१२/१७८/१.
 (ख) ऋग्वेद १/१/१६.
५. यजुर्वेद २५/१९. ६. सामवेद ३/९. ७. ऋग्वेद १/१/१६
८. एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्यः सर्वशास्त्र विदांवरः। विबुध्य संपदं चाग्र्यां सद्वाक्यमिदमब्रवीत्॥ —महाभारत, शान्ति पर्व, २८८/४.
९. वाजसनेयि-माध्यंदिनशुक्लयजुर्वेद, अध्याय ९, मंत्र २५. सातवलेकर संस्करण (विक्रम १९८४)
१०. The Yajurveda mentions the names of three Tirthankaras—Rishabha, Ajitnath and Arishtanemi. —Indian Philosophy, Vol. I, p. 287.

'स्कन्दपुराण'[१] में एक प्रसंग है—वामन ने तप किया। तप के दिव्य प्रभाव से प्रभावित होकर शिव ने वामन को दर्शन दिये। शिव उस समय श्याम वर्ण, अचेल और पद्मासन में बैठे हुए थे। वामन ने उनका नाम 'नेमिनाथ' रखा। ये नेमिनाथ कलिकाल के सभी घोर पापों को नष्ट करने वाले हैं। इनके दर्शन और चरण स्पर्श से करोड़ों यज्ञ का फल प्राप्त होता है। प्रभासपुराण[२] में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत[३] में भी उनकी स्तुति में स्वर प्रस्फुटित हुए हैं।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० रायचौधरी ने "वैष्णव धर्म के प्राचीन इतिहास" में भगवान् अरिष्टनेमि को श्रीकृष्ण का चचेरा भाई लिखा है।[४]

अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में कर्नल टॉड[५] ने लिखा है—मुझे ऐसा ज्ञात होता है, अतीत काल में चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए हैं, उनमें प्रथम आदिनाथ और द्वितीय नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ऑडिन तथा चीनियों के प्रथम 'फो' देवता थे।

डा० नगेन्द्रनाथ वसु, डा० फुहर, प्रोफेसर बॉरनेट, मि० कर्वा, डा० हरिदत्त, डा० प्राणनाथ विद्यालंकार आदि अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी भगवान् अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक एवं प्रभावशाली महापुरुष माना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके कल्याण, गर्भ में आने पर माता ने जो चौदह महास्वप्न देखे, उनका उल्लेख है। जन्म, प्रव्रज्या केवलज्ञान, गणधर, अन्तकृत भूमि और कुमारावस्था में निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख हुआ है।

'वसुदेव हिण्डी', 'चउपन्न महापुरिस चरियं', त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, नेमिनाह चरिउं, भव-भावना, उपदेश माला प्रकरण, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण, नेमि निर्वाण काव्य, अरिष्टनेमि चरित्र, नेमिनाथ चरित्र आदि लगभग सौ से भी अधिक रचनायें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी भाषा में उपलब्ध हैं। जिन रचनाओं में भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन के पावन-प्रसंग उट्टंकित हैं। विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा लिखित 'भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन' ग्रन्थ का अवलोकन करें।[६]

भगवान् अरिष्टनेमि लोकोत्तर महापुरुष थे। जीवन के उषा काल से ही उनमें विरक्ति की भावना अंगड़ाइयाँ ले रही थी। नारी शक्ति उन्हें पराजित करने के लिए तुली हुई थी। वह हाव-भाव और विलास के द्वारा उनके वैराग्य को विचलित करना चाहती थी। श्रीकृष्ण की महारानियाँ विविध प्रकार की शृंगार चेष्टायें कर उन्हें संसार के प्रति आकर्षित करना चाहती थीं। मोह-मुग्ध रानियों की स्थिति पर चिन्तन करते हुए अरिष्टनेमि के मुख पर हल्की सी स्मित रेखा उभरती तो रानियाँ झूम उठतीं अपनी सफलता पर ! वे यह कल्पना करतीं कि हमने इनके हृदय को जीत लिया है। पर अरिष्टनेमि तो हिमालय की तरह अडोल थे।

भगवान् अरिष्टनेमि के युग का हम अध्ययन करें तो सूर्य के प्रकाश की भांति यह स्पष्ट होगा कि उस युग में क्षत्रिय-गण मांस और मदिरा के पीछे पागल बने हुए थे। वे उसे अपना गौरव मानते थे। अरिष्टनेमि के विवाह के पावन-प्रसंग पर पशुओं को एकत्रित किया गया। हिंसा की इस पैशाचिक प्रवृत्ति की ओर जन-मानस का ध्यान केन्द्रित करने के लिए तथा क्षत्रियों को मांस-भक्षण से विरत करने के लिए वे बिना विवाह किये ही लौट गये। उनका यह लौटना क्षत्रियों के पापों का प्रायश्चित्त था। उसका अद्भुत प्रभाव बिजली की भाँति हुआ। उससे सारा समाज विचलित हो उठा। अरिष्टनेमि के त्याग ने मानव समाज को नया मार्गदर्शन दिया। जो मानव अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे जीवों के जीवन के साथ खिलवाड़ करते थे, उन्हें आत्मालोचन की प्रेरणा मिली कि हम किसी भी प्राणी को कष्ट न देंगे। भगवान् अरिष्टनेमि का यह अपूर्व उद्बोधन सभी प्राणियों के लिए वरदान था।

मदिरा ने ही द्वारिका का विनाश किया था। मदिरा के विरोध में अरिष्टनेमि ने जोरदार स्वर बुलन्द किया, जिसके फलस्वरूप द्वारिका में मदिरा-पान बिल्कुल ही बन्द हो गया। अरिष्टनेमि अध्यात्म जगत के तेजस्वी सूर्य थे। कर्मयोगी श्रीकृष्ण

---

१. स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड २. प्रभास पुराण ४९-५०.
३. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १४९, श्लोक ५०-८२. ४. वैष्णव धर्म का प्राचीन इतिहास—डा० रायचौधरी
५. अन्नल्स ऑफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पत्रिका जिल्द २३, पृष्ठ १२२.
६. "भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन"—ले० देवेन्द्र मुनि शास्त्री,
प्रका० तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज०)

अब किसी को भी क्षति नहीं पहुँचायेगा। भगवान् महावीर ने चण्डकौशिक नाग का उद्धार किया तो तथागत बुद्ध ने चण्डनाग पर विजय पताका फहराई। घटना समान होने पर भी दोनों की प्रक्रिया और शैली में अत्यधिक अन्तर है। महावीर की घटना अधिक प्रभावोत्पादक है। महापुरुष स्नेह, सद्भावना, प्रेम, करुणा और अहिंसा का अमृत बाँटते हैं। वे राग, द्वेष, ईर्ष्यारूपी नागों के भयंकर विष से स्वयं तो मुक्त होते ही हैं और विश्व को भी अभय बनाते हैं।

संगमदेव ने भगवान् महावीर को एक रात्रि में बीस भयंकर उपसर्ग दिये और उसके पश्चात् भी वह छह माह तक प्रभु के साथ रहकर उन्हें भयंकर कष्ट देता रहा, किन्तु भगवान् को वह विचलित न कर सका। यह प्रसंग भी आचारांग और कल्पसूत्र आदि में नहीं है। किन्तु आवश्यकनिर्युक्ति,[1] विशेषावश्यकभाष्य[2] आदि अनेक श्वेताम्बर ग्रन्थों में यह प्रसंग मिलता है।

एक बार भगवान् महावीर ने घोर अभिग्रह ग्रहण किया—'द्रव्य से—उड़द के बाकुले हों, शूर्प के कोने में हो, क्षेत्र से—दाता का एक पैर देहली के अन्दर व एक बाहर हो, काल से—भिक्षाचरी की अतिक्रान्त वेला हो, भाव से—राज्यकन्या हो, दासत्व प्राप्त हो, शृंखला-बद्ध हो, सिर से मुण्डित हो, तीन दिन की उपोसित हो, ऐसे संयोग में मुझे भिक्षा लेना है, अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा नहीं लेना है।'[3]

कठोरतम प्रतिज्ञा को ग्रहण कर भगवान् महावीर कोशाम्बी की झोंपड़ियों से लेकर उच्च अट्टालिकाओं में पधारते, पर बिना कुछ लिये ही लौट जाते। पाँच मास और पच्चीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनकी मुख-मुद्रा उसी तरह तेजोदीप्त थी। अन्त में चन्दनबाला के हाथ से भगवान् का अभिग्रह पूर्ण हुआ।[4]

भगवान् महावीर के साधनाकाल में प्रविष्ट होते ही प्रथम उपसर्ग भी ग्वाले ने दिया था एवं अन्तिम उपसर्ग भी ग्वाले के द्वारा दिया गया। ग्वाले ने भगवान् महावीर के कानों में कीलें (कांस्य की तीक्ष्ण शलाकाएँ) ठोंकी। उन शलाकाओं को कोई न देख ले, अतः उनका बाह्य भाग छेद दिया। प्रभु को अत्यधिक वेदना होने पर भी वे पूर्ण शान्त एवं प्रसन्न थे। खरक वैद्य ने जब भगवान् ध्यानस्थ थे, तब शरीर पर तेल का मर्दन किया और संडासी से पकड़कर शलाकायें निकालीं। कानों से रक्त की धारा प्रवाहित हुई। वैद्य ने 'संरोहण' औषधि से रक्त को बन्द कर दिया।[5] भगवान् महावीर को जो शताधिक उपसर्ग प्राप्त हुए, उन सभी उपसर्गों में यह उपसर्ग सबसे बड़ा था।[6] ग्वाले की तीव्र अशुभ भावना होने से वह मरकर सातवीं नरक में गया और वैद्य खरक की प्रशस्त भावना होने से वह देवलोक का अधिकारी बना।[7]

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा महावीर का तपःकर्म अधिक उत्कृष्ट था।[8] बारह वर्ष और तेरह पक्ष की लम्बी अवधि में केवल तीन सौ उनपचास (३४९) दिन भगवान् ने आहार ग्रहण किया और शेष दिन निर्जल और निराहार रहे।[9]

संक्षेप में भगवान् महावीर का तपःकर्म इस प्रकार रहा[10]—

एक छः मासी तप	नौ चातुर्मासिक
एक पांच दिन न्यून छः मासी	दो त्रिमासिक

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति ३८०   २. विशेषावश्यकभाष्य १९३२   ३. आवश्यकचूर्णि ३१६-३१७

४. आवश्यकचूर्णि ३१९.   ५. आवश्यकचूर्णि ३२२.

६. (क) अहवा जहन्नगाण उवरि कडपूयणासीतं, मज्झियाण काल-चक्कं, उक्कोसगण उवरि सल्लुद्धरणं !

—आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३२२

(ख) महावीर चरियं ७/२५०.

७. एवं गोवेण आरद्धा उवसग्गा गोवेण चेव निट्ठिता। गोवो सत्तमिगतो, खरगो य दियलोगं तिव्वमवि उदीरंतं नाति सुद्धभावा।

—आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३२२

८. उग्गं च तवोकम्मं विसेसओ वद्धमाणस्स। —आवश्यकनिर्युक्ति

९. (क) तिण्णि सते दिवसाणं अउणापण्णे व पारणाकालो उक्कुडुअणिसेज्जाणं ठिनपडिमाणं सते बहुए।

—आवश्यकनिर्युक्ति ४१७

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १९६९.

१०. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ४०९-४१६.   (ख) विशेषावश्यकभाष्य १९३१ से १९६८.

(ग) आव० हरिभद्रीयावृत्ति २२७-२२८.   (घ) आवश्यक मल. वृत्ति २९८-२९९

(ङ) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) ७/२५०.   (च) त्रिषष्टि० १०/४.६५२-६५६.

दो सार्धद्विमासिक	एक महाभद्र प्रतिमा (चार दिन)
छह द्विमासिक	एक सर्वतोभद्र प्रतिमा (दस दिन)
दो सार्धमासिक	दो सौ उनतीस छट्ठभक्त
बारह मासिक अर्थात् एक-एक मास का तप (१२ मासखमण किये)	बारह अष्टभक्त
बहत्तर पाक्षिक	तीन सौ उनपचास दिन पारणे के
एक भद्र प्रतिमा (दो दिन)	एक दिन दीक्षा का।

आचारांग सूत्र के अनुसार भगवान् महावीर ने दशमभक्त आदि तपस्यायें भी की थीं।[1]

कुल मिलाकर भगवान् महावीर ने अपने साधक जीवन के ४५१५ दिनों में से केवल ३४९ दिन आहार ग्रहण किया तथा ४१६६ दिन निर्जल तपश्चरण किया।

आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर की विहार-चर्या का सजीव निरूपण है। भगवान् महावीर की तप के साथ ध्यान-साधना अनुस्यूत थी। भगवान् एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ाकर ध्यान करते थे। "**तिरिय भित्ति चक्खुमासज्ज अंतसो झाति**" यहाँ पर जो '**तिरियभित्ति**' शब्द आया है, वह चिन्तनीय है। आचार्य अभयदेव ने भगवती में '**तिर्यग्भित्ति**' का अर्थ प्राकार, वरण्डिका आदि की भींत अथवा पर्वतखण्ड किया है।[2] बौद्ध साहित्य में भी वर्णन है कि साधक भित्ति पर दृष्टि टिका कर ध्यान करे। जब भगवान् तिर्यक्भित्ति पर दृष्टि जमाकर ध्यान करते थे तब उनकी आँखों की पुतलियाँ ऊपर उठ जाती थीं, जिन्हें निहार कर बालकों की मण्डली भयभीत हो जाती थी, और वह बच्चों की टोली मिलकर इस प्रकार चिल्लाती कि अन्य सामान्य साधक ध्यान नहीं कर पाता पर भगवान् विघ्न उपस्थित होने पर भी ध्यान में मग्न रहते।[3] भगवान् महावीर एकान्त स्थान न मिलने पर जब गृहस्थों तथा अन्यतीर्थिकों के संकुल स्थान पर ठहरते तो उनके अद्भुत रूप-यौवन को देखकर कामातुर स्त्रियाँ उनसे प्रार्थना करतीं और ध्यान में विघ्न डालतीं।[4] महावीर अब्रह्म का सेवन न कर ध्यान में लीन रहते थे। कई बार विविध प्रकार के प्रश्न पूछकर लोग उनके ध्यान में विघ्न डालते, पर भगवान् किसी से कुछ नहीं कहते थे। यदि एकान्त स्थान मिल जाता तो महावीर वहाँ चले जाते और न मिलता तो भीड़-संकुल स्थान में भी अपने आपको एकाकी बनाकर ध्यानस्थ रहते।[5] जो भगवान् को अभिवादन करते तो भी महावीर आशीर्वाद प्रदान नहीं करते थे। कुछ अभागों ने प्रभु को डण्डों से पीटा, उन पर पागल कुत्ते छोड़े तो भी उन्होंने शाप नहीं दिया। समौन रहकर ध्यान में मग्न रहे। यह स्थिति सामान्य साधक के लिए बहुत ही कठिन थी। वीणा-वादकों ने भगवान् से कहा—जरा ठहरो! हमारा वीणावादन सुनकर आगे बढ़ो। कितने ही नृत्य-संगीत, दण्ड-युद्ध, मुष्टि-युद्ध आदि मनोरंजक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए निवेदन करते पर भगवान् प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थितियों को ध्यान में विघ्न समझकर उनसे विरत रहते तथा अपने ध्यान में स्थित रहते।[6]

भगवान् महावीर की संयम-साधना के मुख्य आठ अंग थे—शरीर संयम, मन संयम, आहार संयम, वासस्थान-संयम, इन्द्रिय संयम, निद्रा-संयम, क्रिया-संयम और उपकरण संयम। विविध प्रकार के आसन, त्राटक आदि सहज-योग की क्रियाओं से शरीर को सुस्थिर, सन्तुलित, मोह-ममता रहित, स्फूर्तिवान रखने का प्रयास करते। भगवान् की निद्रा, संयम-विधि अद्भुत थी। वे ध्यान के द्वारा निद्रा संयम करते थे। निद्रा पर विजय प्राप्त करने के लिए वे कभी खड़े होते, कभी चंक्रमण करते। वे ऐसा उपाय करते, जिससे निद्रा उन्हें परेशान नहीं करें।[7]

भगवान् को वास-स्थानों में प्रायः ये उपसर्ग सहन करने पड़ते। कभी सांप, नेवला उन्हें काटते, कभी गिद्ध आदि पक्षी उनका मांस नोंचते, कभी चींटी, डांस, मच्छर, मक्खी आदि उन्हें संत्रस्त करते, कभी शून्य गृह में तस्कर व लम्पट पुरुष उन्हें सताते, कभी सशस्त्र ग्रामरक्षक उन पर आक्रमण करते, कभी कामासक्त ललनाएं हाव-भाव-कटाक्ष द्वारा उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करतीं, कभी देव, मानव एवं तिर्यंचों के विविध उपसर्ग उपस्थित होते और कभी एकाकी समझकर भगवान् को विविध प्रकार के ऊटपटांग प्रश्न पूछकर ध्यान से विचलित करने का प्रयास करते।[8]

---

१. छट्ठेण एगया भुञ्जे अदुवा अट्ठमेण दसमेण। दुवालसमेण एगया भुञ्जे पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥

—आचारांग १/९/४/७.

२. भगवती सूत्र वृत्ति, पत्र ६४३-६४४.

३. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२.

४. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२.

५. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२

६. आयारो—मुनि नथमल, पृ० ३४३.

७. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०७-३०८.

८. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०७.

भगवान् को ठहरने के लिए कभी भयंकर दुर्गन्ध-युक्त स्थान मिलता, कभी ऊबड़-खाबड़ विषम स्थान मिलता। कभी बन्द स्थान के अभाव में सर्दी का प्रकोप उन्हें परेशान करता। इस प्रकार साढ़े बारह वर्ष तक अहर्निश यत्नशील, अप्रमत्त होकर भगवान् महावीर ध्यानस्थ रहे।

आवश्यकचूर्णि के अनुसार भगवान् महावीर ने चिन्तन किया कि मुझे बहुत से कर्मों की निर्जरा करनी है, अतः लाढ़ देश की ओर जाऊँ, जिससे अधिक कर्म-निर्जरा के निमित्त उपलब्ध होंगे। ऐसा विचारकर भगवान् लाढ़ प्रदेश में पधारे। ऐतिहासिक अन्वेषणा के आधार पर यह पता चला है कि वर्तमान में वीर-भूम, सिंह-भूम तथा मान-भूम (धनबाद आदि जिले) एवं पश्चिम बंगाल के तमलूक, मिदनापुर, हुगली, तथा वर्धवान जिले का हिस्सा लाढ़ देश माना जाता था। लाढ़ देश पर्वतों, झाड़ियों और सघन जंगलों के कारण अत्यन्त दुर्गम था। उस प्रदेश में घास अत्यधिक होती थी। चारों ओर पर्वतों से घिरा होने के कारण सर्दी और गर्मी वहाँ अधिक पड़ती थी। वर्षा ऋतु में पानी अधिक होने से दलदल हो जाती, जिससे डांस, मच्छर जलोंका प्रभृति अनेक जीव-जन्तु पैदा हो जाते थे। यहाँ नगर कम थे और गाँवों में बस्ती भी कम थी। वहाँ के लोग असभ्य थे। साधु को देखते ही उन पर टूट पड़ते। वहाँ पर तिल भी नहीं थे और गायें भी बहुत कम थीं। इसलिए घी, तेल सुलभ नहीं था। लोग रूखा-सूखा खाते थे, अतः वे स्वभाव से भी रूखे थे।[1] बात-बात में उत्तेजित होकर गाली देते, झगड़ा करते। वहाँ पर कुत्तों का अधिक उपद्रव था, वे कुत्ते बड़े खूँखार थे। अन्य तीर्थिक भिक्षु उनसे बचने के लिए लाठी और डण्डा रखते थे; पर भगवान् पूर्ण अहिंसक थे। उनके पास लाठी आदि नहीं थी, इसलिए वे निःशंक होकर भगवान् पर हमला करते, कितने ही अनार्य तो छू-छू करके कुत्तों को बुलाते तथा भगवान् को काटने के लिए उकसाते।[2] दुष्कर और दुर्गम परीषह एवं उपसर्गों को भगवान् महावीर शांति से सहन करते।

जिन साधकों की चेतना का स्तर निम्न होता है, उन्हें शारीरिक कष्टों की अनुभूति अधिक होती है। किन्तु भगवान् महावीर की चेतना का स्तर बहुत ही उच्च था। वे चाहे जितना कठोर तप करते लेकिन साथ में समाधि का सतत प्रेक्षण करते रहते। वे जिस किसी भी क्रिया को करते, उसमें पूर्णतया तन्मय हो जाते। न अतीत की स्मृति सताती और न भविष्य की कल्पना ही परेशान करती। वे केवल वर्तमान में रहकर ही उस क्रिया को सर्वात्मना समर्पित होकर करते। वे जब चलते थे तो इधर-उधर झांकते भी नहीं थे और न अन्य बातों पर चिंतन ही करते। वे जब खाते थे तो खाते ही थे, स्वाद की ओर ध्यान नहीं देते और न बातचीत ही करते। वे इतने अधिक आत्म-विभोर थे कि उन्हें भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि की कोई भी अनुभूति नहीं होती। उनकी चेतना की समग्र धारा आत्मा की ओर प्रवाहित थी। इस प्रकार भगवान् महावीर की साधना का रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में है।

साढ़े बारह वर्ष के सुदीर्घकाल की साधना के पश्चात् भगवान् को केवलज्ञान एवं केवलदर्शन का दिव्य आलोक प्राप्त हुआ। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने आकर कैवल्य-महोत्सव उल्लास के क्षणों में सम्पन्न किया।

औपपातिक सूत्र में आये हुए भगवान् महावीर के शरीर का शब्द चित्र भी इस ग्रन्थ में निर्दिष्ट है और साथ ही भगवान् महावीर के अन्तेवासी श्रमणों का भी निरूपण हुआ है। प्रभु महावीर ने एक मास बीस रात्रि व्यतीत होने पर वर्षावास पर्युषणा की। भगवान् के जिन-जिन क्षेत्रों में वर्षावास सम्पन्न हुए, उसकी सूची भी प्रस्तुत ग्रन्थ में दी गई है। उनका परिनिर्वाण, अन्तिम उपदेश, गौतम को केवलज्ञान, नव मल्लवी, नव लिच्छवी राजाओं के द्वारा किये गये पौषध और द्रव्य-उद्योत का भी निरूपण हुआ है। निर्वाण के पश्चात् भस्मग्रह और उसका प्रभाव, महावीर का शिष्य समुदाय, महावीर के आठ राजा शिष्य हुए थे, महावीर के समय तीर्थंकर नामकर्म का नव व्यक्तियों ने अनुबन्धन किया था। उनके तीर्थ में सात प्रवचन निह्नव हुए थे। इस प्रकार आगम साहित्य में आये हुए महावीर चरित्र को प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित किया गया है। महावीर के तेजस्वी व्यक्तित्व को समझने के लिए उपर्युक्त प्रसंग अत्यन्त उपयोगी है।

महापद्म-चरित्र :

सम्राट श्रेणिक महावीर प्रभु के परमभक्त थे। उन्होंने भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर नामकर्म का अनुबन्धन किया था। वे नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी काल में तीर्थंकर पद को प्राप्त करेंगे। उनका रत्नों की वर्षा होने के कारण पिता ने 'महापद्म' नाम रखा। दूसरा नाम 'देवसेन' और तीसरा नाम 'विमलवाहन' रखा गया। तीस वर्ष गृहस्थाश्रम में रह कर वे श्रमण बनेंगे। कुछ अधिक बारह वर्ष तक उपसर्गों को सहन कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। वे पच्चीस भावना सहित पांच महाव्रत

१. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३१८.
२. आचारांग—शीलांकाचार्य टीका पत्र ३१०-३११

का तथा षट्जीवनिकाय का उपदेश देंगे। भगवान् महावीर की तरह ही उनके भी नौ गण तथा ग्यारह गणधर होंगे। उनकी बहत्तर वर्ष की आयु होगी। महापद्म तीर्थंकर के समय आठ राजा दीक्षित होंगे। इस प्रकार महापद्म का चरित्र विस्तार के साथ निरूपित है।

स्थानांग और समवायांग में आये हुए विविध तीर्थंकरों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएं भी इसमें दी गई हैं।

भरत-चक्रवर्ती :

भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत थे, जिनके नाम पर ही 'भारतवर्ष' का नामकरण हुआ है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भरत-चक्रवर्ती का वर्णन करते हुए लिखा है—भरत-चक्रवर्ती और देव के नाम से 'भारतवर्ष' नामकरण हुआ। वसुदेव हिण्डी[1] में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है। वायुपुराण,[2] ब्रह्माण्डपुराण,[3] आदिपुराण,[4] वाराहपुराण,[5] वायुपुराण,[6] लिंगपुराण,[7] स्कन्दपुराण,[8] मार्कण्डेयपुराण[9], श्रीमद्भागवतपुराण[10], आग्नेयपुराण[11], विष्णुपुराण[12], कूर्मपुराण[13], शिवपुराण[14], नारदपुराण[15] प्रभृति ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से संकेत है कि ऋषभपुत्र भरत के नाम से ही प्रस्तुत देश का नामकरण 'भारतवर्ष' हुआ। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन[16] का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम०ए०[17] व रामधारीसिंह दिनकर[18] का भी यही मन्तव्य है।

भरत महान् प्रतिभा सम्पन्न, प्रतापशाली एवं परम यशस्वी सम्राट थे। अन्य सम्राटों का जीवन जहाँ भौतिक दृष्टि से महान् होता है, वहाँ भरत चक्रवर्ती भौतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु आध्यात्मिक दृष्टि से भी महान् थे। जिस दिन भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ, उसी दिन भरत की आयुधशाला में चक्र-रत्न उत्पन्न हुआ। ये समाचार सुनकर उन्होंने मुकुट के

---

१. वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १८६. २. वायुपुराण ४५/७५.

३. ब्रह्माण्डपुराण, पर्व २/१४.

४. प्रमोदभरतः प्रेमनिर्भरावन्धुता तदा, तमाह भरतं भावि समस्त भरताधिपम्।
तन्नाम्ना भारतंवर्षमिति ह्यासेज्जनास्पदं, हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्र भृतामिदं ॥ —आदिपुराण पर्व १५/१५८-५९.

५. नाभेर्मरुदेव्यां पुत्रमजनयनृषभ नामानं तस्य भरतो पुत्रञ्च तावदग्रजः तस्य भरतस्य पिता ऋषभः—हेमाद्रेर्दक्षिणं वर्षमहद् भारतं नाम शशास। —वाराहपुराण ७४/४९.

६. हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्। तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः। —वायु महापुराण ३३/५२.

७. हिमाद्रे दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्। तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥ —लिंगपुराण ४६/२४.

८. नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत्। तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते॥
—स्कन्दपुराण, कौमारखण्ड ३७/५७.

९. हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ। तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥ —मार्कण्डेयपुराण—५०/४१.

१०. (क) येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणः। आसीद् येनेदं वर्ष भारतमिति व्यपदिशति॥
(ख) अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत् आरभ्य दिशंति। —श्रीमद्भागवतपुराण ५/४.

११. भरताद् भारतं वर्षं। —आग्नेयपुराण १०७/१२.

१२. ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशताग्रजः। तस्य राज्यं स्वधर्मेण तथेष्टं वा विविधान् मखान्।
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथ्वीपतिः। तपसे स महाभागः पुलहस्थाश्रमं ययौ।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते। —विष्णुपुराण, अंश २, अ० १/२८-२९/३२.

१३. ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः। सोभिषिंच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथ्वीपतिः॥ —कूर्मपुराण ४१/३८.

१४. खण्डानि कल्पयामास नवान्यपि हिताय च। तत्राऽपि भरते ज्येष्ठं खण्डेऽस्मिन् स्पृहणीयके।
तन्नाम्ना चैव विख्यातं खंडं च भारतं तदा। सर्वेष्वविचरखंडेषु श्रेष्ठं भरतमुच्यते॥ —शिवपुराण ५२/८५.

१५. आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठो, भरतो नाम भूपतिः। आर्षभो यस्य नाम्नेदं, भारतं खण्डमुच्यते॥ —नारदपुराण ४८/५

१६. Brahmanical puranas prove Rishabha to be the father of that Bharat, from whom India took to name "Bharatvarsha." —Kalpasutra Introd., P. XVI.

१७. ऋषियों ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा। —प्राचीन भारत, पृष्ठ ५.

१८. भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। —संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ १३९.

अतिरिक्त अन्य सारे पहनने के आभूषण आयुधशाला के रक्षक को प्रदान किये। पहले उन्होंने भगवान को वन्दन कर केवलज्ञान महोत्सव मनाया उसके पश्चात् स्वयं आयुधशाला में जाकर चक्ररत्न को प्रणाम किया एवं अष्टान्हिका महोत्सव मनाया। एक हजार देवों से सुसेवित चक्र-रत्न आकाश-मार्ग से चलकर विनीता नगरी के मध्य भाग में होता हुआ गंगा के दक्षिणी तट से मागध तीर्थ की ओर बढ़ा। चक्र-रत्न द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण कर भरत चक्रवर्ती पीछे चले। मागध तीर्थ पर जाकर उन्होंने लवण समुद्र में प्रवेश किया और बाण छोड़ा। नामांकित बाण बारह योजन की दूरी पर मागध तीर्थाधिपति देव के वहां गिरा। पहले वह क्रुद्ध हुआ पर भरत चक्रवर्ती नाम पढ़कर वह उपहार लेकर पहुँचा। इस तरह चक्र-रत्न के पीछे चलकर वरदाम तीर्थ कुमार देव को अधीन किया, उसके बाद प्रभासकुमार देव, सिन्धु देवी, वैताढ्यगिरि कुमार, कृतमालदेव आदि को अधीन करते हुए भरत सम्राट ने षट्खण्ड पर विजय-वैजयन्ती फहराई।

चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न और नौ निधियाँ होती हैं। चौदह रत्न इस प्रकार हैं—

१. **चक्र-रत्न**—यह आयुधशाला में उत्पन्न होता है। सेना के आगे प्रयाण करता हुआ चक्रवर्ती को षट्खण्ड साधने का मार्ग दिखाता है। चक्रवर्ती उसकी सहायता से शत्रु का शिरच्छेदन भी कर सकता है।

२. **छत्र-रत्न**—यह रत्न बारह योजन लम्बा और चौड़ा होता है। छत्राकार के रूप में सेना की सर्दी, वर्षा एवं धूप से रक्षा करता है। छत्री की भांति उसको समेटा भी जा सकता है।

३. **दण्ड-रत्न**—यह विषम मार्ग को सम बनाता है। वैताढ्य पर्वत की दोनों गुफाओं के द्वार खोलकर उत्तर भारत की ओर चक्रवर्ती को पहुँचाता है। दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से वृषभाचल पर्वत पर नाम लिखने का कार्य भी यह रत्न करता है।

४. **असि-रत्न**—यह रत्न पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा एवं आधा अंगुल मोटा होता है। अपनी तीक्ष्ण धार से यह रत्न दूर में रहे हुए शत्रुओं को भी नष्ट कर डालता है।

५. **मणि-रत्न**—सूर्य और चन्द्रमा की तरह यह रत्न अन्धकार को नष्ट करता है। इस रत्न को मस्तक पर धारण कर लेने से मनुष्य, देव तथा तिर्यंच कृत उपसर्ग नहीं होता है। हस्तिरत्न के दक्षिण कुम्भस्थल पर रख देने से अवश्यमेव विजय होती है।

६. **काकिणी-रत्न**—यह रत्न चार अंगुल प्रमाण का होता है। इस रत्न से चक्रवर्ती वैताढ्य पर्वत की गुफा में उनपचास मण्डल बनाते हैं। एक-एक मण्डल का प्रकाश एक-एक योजन तक फैलता है और इसी रत्न से चक्रवर्ती ऋषभकूट पर्वत पर अपना नाम अंकित करते हैं।

७. **चर्म-रत्न**—दिग्विजय के समय नदियों को पार कराने में यह रत्न नौका के रूप में बन जाता है और म्लेच्छ (अनार्य) नरेशों के द्वारा जल-वृष्टि कराने पर यह रत्न सेना की सुरक्षा करता है।

८. **सेनापति-रत्न**—यह सेना का प्रमुख होता है। वासुदेव के समान शक्ति-सम्पन्न होता है। यह चार खण्डों पर विजय करता है।

९. **गाथापति-रत्न**—यह रत्न चक्रवर्ती की सेना के लिए उत्तम भोजन की व्यवस्था करता है। दिगम्बर ग्रन्थों में गाथापति रत्न को गृहपति-रत्न कहा है। उसका नाम है—कामवृष्टि गृहपति रत्न!

१०. **वर्धकी-रत्न**—यह चक्रवर्ती की सेना के लिए आवास-व्यवस्था करता है। उन्मग्नजला, निमग्नजला आदि नदियों पर पुल बांधने का काम भी यह रत्न करता है।

११. **पुरोहित-रत्न**—यह ज्योतिषशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्त-शास्त्र, लक्षण और व्यंजन आदि का पूर्ण ज्ञाता होता है। दैवी उपद्रवों को शान्त करता है।

१२. **स्त्री-रत्न**—यह सर्वांग सुन्दरी होती है। सदा युवती बनी रहती है। इसे तीव्र भोगावली कर्म का उदय होता है। इसके प्रति चक्रवर्ती का अत्यधिक राग होता है।

१३. **अश्व-रत्न**—यह श्रेष्ठ अश्व एक क्षण में नौ योजन लाँघ जाने की शक्ति रखता है। कीचड़, जल, पहाड़, गुफा, आदि विषम स्थलों को भी सहज पार कर जाता है। भरत चक्रवर्ती के अश्व-रत्न का नाम कमलापीड़ था।[1]

१४. **हस्ति-रत्न**—यह ऐरावत हाथी की तरह सर्वगुणसम्पन्न होता है।

प्रत्येक रत्न के एक-एक हजार देव रक्षक होते हैं। चौदह रत्नों के चौदह हजार देवता रक्षक थे। वैदिक साहित्य में भी चौदह रत्नों के नाम प्राप्त होते हैं।

१. (क) त्रिषष्टि० १/४ (ख) स्थानांग सूत्र, स्थान ७ (ग) समवायांग सूत्र, समवाय १४

वैदिक-साहित्य के चौदह रत्न :

१. हाथी २. घोड़ा ३. रथ ४. स्त्री ५. वाण ६. भण्डार ७. माला ८. वस्त्र ९. वृक्ष १०. शक्ति ११. पाश १२. मणि १३. छत्र और १४. विमान।

चक्रवर्ती की नव निधियाँ :[1]

सम्राट भरत के पास नौ निधियाँ थीं जिनसे वे मनोवांछित वस्तुएँ प्राप्त करते थे। निधि का अर्थ खजाना है। आचार्य अभयदेव के अनुसार चक्रवर्ती को अपने राज्य के लिए उपयोगी सभी वस्तुओं की प्राप्ति इन नौ निधियों से होती थी। इसलिए इन्हें नव निधान के रूप में गिनाया है। (स्थानांग वृत्ति पत्र ४२६)। वे नव निधियाँ निम्न प्रकार हैं—

१. **नैसर्पनिधि**—यह निधि ग्राम-नगर-द्रोणमुख-मंडप आदि स्थानों के निर्माण में सहायक होती है।

२. **पांडुकनिधि**—मान-उन्मान और प्रमाण आदि का ज्ञान कराती है तथा धान्य और बीजों को उत्पन्न करती है।

३. **पिंगलनिधि**—यह निधि मनुष्य एवं तिर्यचों के सर्वविध आभूषणों की विधि का ज्ञान कराने वाली तथा योग्य आभरण प्रदान करती है।

४. **सर्वरत्ननिधि**—इस निधि से वज्र, वैडूर्य, मरकत, माणिक्य, पद्मराग, पुष्पराज आदि बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं।

५. **महापद्मनिधि**—यह निधि सभी प्रकार के शुद्ध एवं रंगीन वस्त्रों की उत्पादिका है। किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में इसका नाम पद्मनिधि है।

६. **कालनिधि**—वर्तमान, भूत, भविष्य, कृषि कर्म, कलाशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि का यह निधि ज्ञान कराती है।

७. **महाकालनिधि**—सोना, चांदी, मोती, प्रवाल, लोहा आदि की खानें उत्पन्न कराने में सहायक होती हैं।

८. **माणवनिधि**—कवच, ढाल, तलवार आदि विविध प्रकार के दिव्य आयुध, युद्धनीति तथा दण्डनीति आदि की जानकारी कराने वाली।

९. **शंखनिधि**—विविध प्रकार के वाद्य-काव्य-नाट्य-नाटक आदि की विधि का ज्ञान कराने वाली।

ये सभी निधियाँ अविनाशी होती हैं, दिग्विजय से लौटते हुए गंगा के पश्चिमी तट पर, अट्ठमतप के तदुपरान्त चक्रवर्ती सम्राट को प्राप्त होती हैं। प्रत्येक निधि एक-एक हजार यक्षों से अधिष्ठित होती हैं। इनकी ऊँचाई आठ योजन, चौड़ाई नौ योजन तथा लम्बाई दस योजन होती है। ये सभी निधियाँ स्वर्ण और रत्नों से परिपूर्ण होती हैं, चन्द्र और सूर्य के चिह्नों से चिह्नित होती हैं, तथा पल्योपम की आयु वाले नागकुमार जाति के देव इनके अधिष्ठायक होते हैं।[2]

ये नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति-रत्न के अधीन थीं एवं चक्रवर्ती के समस्त मनोरथों को सदैव पूर्ण करती थीं।[3]

हिन्दू धर्मशास्त्रों में इन नव-निधियों के नाम इस प्रकार से बताये हैं—

१. महापद्म २. पद्म ३. शंख ४. मकर ५. कच्छप ६. मुकुन्द ७. कुन्द ८. नील और ९. खर्व। ये निधियाँ कुबेर का खजाना भी कही जाती हैं।

भरत महाराज ने साठ हजार वर्षों की अवधि में षट् खण्ड पर विजय-पताका फहरा कर चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए विनीता नगरी की ओर प्रस्थान किया। बत्तीस हजार मुकुटधारी महाराजा भरत के अधीन थे। विनीता नगरी चिर काल के बाद अपने स्वामी को पाकर फूली नहीं समा रही थी। षट्खण्ड पर विजय करने के कारण एक विशाल अभिषेक मण्डप तैयार किया गया और भरत महाराज ने आभियोगिक देवों से कहा—मेरा महाभिषेक करो। आभियोगिक देवों ने भरत महाराज का अभिषेक किया। बत्तीस हजार राजाओं ने तथा सेनापति रत्न, सार्थवाह रत्न, वार्धकि रत्न, पुरोहित रत्न, आदि ने भी भरत का महाभिषेक किया तथा अपने कर्तव्य का पालन किया।

भरत महाराज एक बार स्नानादि से निवृत्त होकर शीशमहल में पहुँचे। शीशमहल में सिंहासन पर आसीन हुए। चारों ओर अपना रूप देखकर अन्तर्रूप की ओर आकृष्ट हुए। शुद्ध परिणामों की धारा प्रवाहित हुई। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[4] के अनुसार भावों की शीघ्रता से भरत महाराज को केवलज्ञान हो गया। आवश्यकनिर्युक्ति[5] के अनुसार शीशमहल में भरत अपनी दिव्य

---

१. (क) त्रिषष्टि० १/४. (ख) स्थानांग सूत्र, ठाणा ९, सूत्र १९. (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चक्रवर्ती अधिकार.
(घ) हरिवंशपुराण सर्ग ११ (ङ) माघनन्दीविरचित शास्त्रसार समुच्चय, सूत्र १८, पृष्ठ ३४.

२. त्रिषष्टि० १/४/५७४-५८८

३. हरिवंशपुराण—जिनसेन, ११/१२३.

४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार ३

५. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ४३३.

छटा को देखकर विस्मित थे। उनकी दृष्टि अंगुलियों पर गिरी, एक अंगुली शोभाविहीन थी, क्योंकि उसमें से पहनी हुई अंगूठी गिर गई थी। उन्होंने दूसरी अंगुलियों की अंगूठियाँ भी धीरे-धीरे निकालना प्रारम्भ किया और देखने लगे कि ये अंगुलियाँ कैसी लगती हैं? इस तरह उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये। वे सोचने लगे—शरीर का सौन्दर्य मेरा नहीं है. जो शरीर कुछ क्षणों पहले चमक रहा था, वह आभूषणों के अभाव में कान्तिहीन प्रतीत हो रहा है। भौतिक अलंकारों से लदी हुई सुन्दरता कृत्रिम और भ्रामक है। उसमें फँसकर मानव अपने शुद्ध स्वरूप को विस्मृत हो जाता है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन्हें केवलज्ञान हुआ। आवश्यकनिर्युक्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में यही अन्तर है कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में पहले केवलज्ञान होता है और उसके बाद भरत अपने वस्त्रालंकार उतारते हैं; जबकि आवश्यकनिर्युक्ति में वस्त्रालंकार उतारने के बाद केवलज्ञान होने का उल्लेख है।

आवश्यकनिर्युक्ति आदि में सम्राट भरत के जीवन से सम्बन्धित अन्य अनेक प्रेरक प्रसंग हैं। विस्तारभय से हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में चक्रवर्ती की विजय, और अन्य जानकारी स्थानांग और समवायांग सूत्र से उद्धृत की गई है।[1]

बलदेव-वासुदेव :

बलदेव, वासुदेव ये दोनों भाई के रूप में होते हैं। नौ बलदेव और नौ वासुदेव तथा नौ प्रतिवासुदेव इस प्रकार सत्ताईस विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। वासुदेव अर्धचक्री होते हैं। वे तीन खण्ड के अधिपति होते हैं। वे उत्तम पुरुष माने गये हैं। वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली और सुरूप होते हैं। वे कान्त, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शी होते हैं। वे महाबली, अप्रतिहत और अपराजित होते हैं। शत्रुओं का अच्छी तरह से मर्दन करने वाले होते हैं। हजारों शत्रुओं के मान को एक क्षण में नष्ट कर देते हैं। वे दयालु, अमत्सर, अचपल और अचण्ड होते हैं। उनका स्वभाव बहुत ही मधुर होता है। उनकी वाणी गम्भीर, मृदु तथा सत्य होती है। उनके शरीर में अनेक शुभ लक्षण होते हैं। वे चन्द्र की तरह सौम्य, सूर्य के समान प्रचण्ड, प्रकाण्ड दण्डनीतिज्ञ, समुद्र के समान गम्भीर, युद्ध में दुर्द्धर तथा धनुर्धर होते हैं। वे राजवंश में तिलक के समान होते हैं। बलदेव के हाथ में हल होता है और वासुदेव धनुष रखते हैं। वासुदेव शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते हैं। उनके मुकुट में श्रेष्ठ, उज्ज्वल, शुक्ल, विमल कौस्तुभमणि होती है और कान में कुण्डल होते हैं। उनकी आँखें कमल के समान होती हैं। उनके गले में एकावली हार होता है। श्रीवत्स का लांछन होता है तथा पंचरंगों के सुगन्धित फूलों की माला होती है। उनके अंगोपांग में आठ सौ प्रशस्त चिह्न होते हैं। उनके अंगोपांग सर्वांग सुन्दर होते हैं। बलदेव, नीले तथा वासुदेव पीले रंग के वस्त्र धारण करते हैं। बलदेव निदानरहित होते हैं तो वासुदेव निदानकृत होते हैं। बलदेव ऊर्ध्वगामी होते हैं तो वासुदेव अधोगामी होते हैं।[2] प्रतिवासुदेव को वासुदेव पराजित करते हैं और अन्त में स्वचक्र से ही प्रतिवासुदेव की मृत्यु होती है।[3]

बलदेव, वासुदेव के पूर्वभव तथा सभी के नाम, माता-पिताओं के नाम आदि का निरूपण प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है। अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊँचे थे। विजय बलदेव तियोतर लाख वर्ष आयु भोगकर सिद्ध हुए। सुप्रभ बलदेव इक्यावन लाख वर्ष की आयु भोगकर सिद्ध हुए। नन्दन बलदेव तेतीस धनुष ऊँचे थे तथा राम बलदेव दस धनुष ऊँचे थे।

इस तरह विपुल सामग्री बलदेव, वासुदेव के सम्बन्ध में दी गई है। आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव का भी इसमें निरूपण हुआ है। इस प्रकार प्रथम स्कन्ध में उत्तम पुरुषों की कथायें दी गई हैं।

महाबल :

द्वितीय स्कन्ध में श्रमणों की कथायें दी गई हैं। सर्वप्रथम महाबल का परिचय-चरित्र दिया गया है। महाबल विमलनाथ अरिहंत के समय में हुए। उनका जन्म हस्तिनापुर के बलराजा एवं प्रभावती की कुक्षि से हुआ। जब महाबल गर्भ में आया, तब माता प्रभावती ने सिंह का स्वप्न देखा और विविध प्रकार के दोहद उत्पन्न हुए। जन्म होने पर राजा ने अपने हृदय का आह्लाद बन्दी जनों को मुक्त कर व्यक्त किया तथा विविध प्रकार के उत्सव मनाये। बलराजा का पुत्र होने से उसका नाम 'महाबल' रखा। क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मण्डनधात्री, क्रीड़नधात्री एवं अंकधात्री इन पांच धात्रियों से संरक्षित होता हुआ महाबल बढ़ने लगा। सूर्य-दर्शन, जागरण, नामकरण, घुटनों के बल चलाना, पैरों से चलाना, अन्न-भोजन [illegible]

1. तुलना कीजिए—अनुत्तरनिकाय (५.१३३) में बताया है कि चक्रवर्ती या चक्र [illegible] होता नहीं है। [illegible]
है—वह धर्मज्ञ होता है, धर्मज्ञ होता है, मर्यादापालक होता है, [illegible]
2. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ४१५.
3. आवश्यकनिर्युक्तिभाष्य, गाथा ४३

ग्रास बढ़ाना, सम्भाषण करना, कान बिंधाना, वर्ष गाँठ मनवाना, चोटी रखवाना, उपनयन करना, आदि बहुत से गर्भ धारण, जन्म-महोत्सव आदि विविध प्रसंगों को लेकर विविध प्रकार के कौतुक किये।

संस्कार चिन्तन :

जैनधर्म की आचार-संहिता में बाह्य विधि-विधानों का निरूपण कम हुआ है जबकि ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थों में संस्कार-विधियों का विस्तार से निरूपण है। गौतम धर्मसूत्र,[1] आपस्तम्भ धर्मसूत्र[2] और वसिष्ठ धर्मसूत्र,[3] में विस्तार से वर्णन है। स्मृतियों में संस्कारों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है। गौतम ने चालीस संस्कारों का वर्णन किया है।[4] वैखानस ने अठारह शारीरिक संस्कारों के नाम दिये हैं। अंगिरा ने पच्चीस संस्कारों के नाम बताये हैं। व्यास ने सोलह संस्कार बताये हैं।[5] मनु, याज्ञवल्क्य और विष्णु धर्मसूत्र में संख्या का निर्देश नहीं है। निबन्धों में मुख्य रूप से सोलह संस्कार बताये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

१. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. विष्णुवलि ५. जातकर्म ६. नामकरण ७. निष्क्रमण ८. अन्नप्राशन ९. चौल १०. उपनयन ११-१४. वेदव्रत चतुष्टय १५. समावर्तन और १६. विवाह। स्मृतिचन्द्रिका आदि में प्रकारान्तर से अन्य नाम भी मिलते हैं। गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में एवं रघुनन्दनकृत संस्कार तत्त्व, नीलकण्ठकृत संस्कार मयूख, मित्रमिश्र कृत संस्कार प्रकाश, अनन्तदेवकृत संस्कार कौस्तुभ और गोपीनाथकृत संस्कार रत्नमाला, आदि ग्रन्थों में विराट सामग्री भरी पड़ी है, अतः विशेष जिज्ञासु उन ग्रन्थों का अवलोकन करें।

संस्कारों में उपनयन संस्कार एक विशेष महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। महाबल कथा में "**उवनयणं**" शब्द का प्रयोग हुआ है। जैन परम्परा में "उपनयन संस्कार" किस प्रकार होता था? इसका वर्णन आगम ग्रन्थों में नहीं है। ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थों में कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए ले जाना, उपनयन संस्कार माना गया है। यह संस्कार विद्यार्थी को गायत्री मंत्र सिखाकर किया जाता था। गुरु के सन्निकट रहने से शतपथ ब्राह्मण[6] और तैत्तिरीयोपनिषद्[7] में उसे अन्तेवासी कहा है। उपनयन संस्कार कब किया जाये, इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए आश्वलायन गृहसूत्र में लिखा है[8]—ब्राह्मण आठ वर्ष में, क्षत्रिय ग्यारह वर्ष में, वैश्य बारह वर्ष में उपनयन करें; अथवा सोलह, बावीस और चौबीसवें वर्ष में उपनयन करें। आपस्तंब[9] शांखायन,[10] बौद्धायन,[11] भारद्वाज,[12] गोभिल,[13] गृहसूत्र तथा याज्ञवल्क्य[14] में यह स्पष्ट संकेत है कि वर्षों की परिगणना गर्भाधान से करनी चाहिए। शांखायन गृहसूत्र आदि में वर्षों के सम्बन्ध में विभिन्न मत रहे हैं। धर्मशास्त्रों में उपनयन के लिए मुहूर्त आदि की भी चर्चा की गई है। उपनयन के समय वस्त्र, दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, गायत्री उपदेश, आदि देने की विधि भी बताई गई है।

महाबल की कथा में यह भी बताया है कि जब महाबल आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र का हुआ तब वह कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए भेजा गया और पूर्ण युवा होने पर उसका आठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। यहाँ पर दो बातें चिन्तनीय हैं कि प्राचीनकाल में शिक्षा का प्रारम्भ आठ वर्ष की या उससे कुछ अधिक उम्र होने पर होता था; क्योंकि तब तक बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता था। यही कारण है आगम साहित्य में और परवर्ती साहित्य में यह वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है।[15] आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार भी हो जाता था, इसलिए उपनयन संस्कार को कला ग्रहण-उत्सव भी कहा गया है।[16] स्मृतियों में पाँच वर्ष की वय में शिक्षा प्रारम्भ करने का विधान भी मिलता है। वह अपवाद रूप में

---

१. गौतम धर्मसूत्र ८/८.　२. आपस्तम्भ धर्मसूत्र, १/१/१/९.　३. वसिष्ठ धर्मसूत्र ४/१.
४. गौतम, ८/१४—२४.　५. व्यास, १/१४—१५.
६. शतपथ ब्राह्मण ५/१/५/१७.　७. तैत्तिरीयोपनिषद् १/११.　८. आश्वलायन गृहसूत्र १/१९/१-६.
९. आपस्तंब० १०/२.　१०. शांखायन० २/१.　११. बोधायन० २/५/२.
१२. भारद्वाज० १/१.　१३. गोभिल० २/१०.　१४. याज्ञवल्क्य० १/१४.
१५. (क) द जैन सिस्टम ऑफ एजुकेशन' जर्नल ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ बोम्बे, जनवरी १९४०, पृष्ठ २०६ आदि (जगदीशचन्द्र, लाइफ इन एन्शिएन्ट इन्डिया एज डिपिक्टेड इन जैन केनन्स, ज० जै० के० पृष्ठ १६९ पर उद्धृत एच० आर० कापड़िया) डी. सी० दासगुप्त.
(ख) (i) 'जैन सिस्टम ऑफ एजुकेशन' पृष्ठ ७४.　(ii) भगवती (अभयदेव वृत्ति) ११/११, ४२९ पृ० ९९९.
(iii) नायाधम्मकहाओ, १·२०, पृष्ठ ३१,　(iv) कथाकोषप्रकरण, पृ० ८.
(v) ज्ञानपंचमी कहा, ६·९२ आदि।
१६. 'प्राचीन भारत में जैन शिक्षण पद्धति'—डा० हरीन्द्रभूषण, संसद्-पत्रिका, १९६५.

रहा है। इसके साथ यह भी स्मरण रखना होगा कि उस समय आज की तरह शिक्षा भार रूप नहीं थी। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श था। विद्यार्थी के लिए आवश्यक था कि वह खूब मन लगाकर अध्ययन करे, विनयपूर्वक गुरु चरणों में रहे तथा नियम-सम्पन्न हो। पुरुषों के लिए बहत्तर कलाओं तथा स्त्रियों के लिए चौसठ कलाओं का अध्ययन आवश्यक माना जाता था।

प्राचीनतम युग में बाल-विवाह नहीं था। आगम-साहित्य में स्थान-स्थान पर "उमुक्क बालभावं जाव अलं भोगसमत्थं" शब्द व्यवहृत हुआ है। बाल-विवाह मध्य युग की देन प्रतीत होती है। इसीलिए अलबरूनी ने लिखा है—हिन्दू लोग अपने बालकों के विवाह का आयोजन करते थे क्योंकि विवाह बहुत ही छोटी उम्र में हुआ करते थे।[1] एक स्थान पर यह भी लिखा है—ब्राह्मणों में अरजस्वला कन्या को ही ग्रहण किया जाता था।[2] गुप्तकाल में बाल-विवाह का प्रचलन रहा।[3]

यों जैन साहित्य में विवाह के तीन प्रकारों का वर्णन मिलता है—१. वर और कन्या दोनों पक्षों के माता-पिताओं के द्वारा आयोजित विवाह २. स्वयंवर विवाह ३. गान्धर्व विवाह। मुख्य रूप से स्वयं की जाति में ही विवाह करने की प्रथा थी। बौद्ध जातकों में भी समान स्थिति और समान व्यवसाय वाले लोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के उल्लेख मिलते हैं जिससे कि निम्न जातिगत तत्त्वों के सम्मिश्रण से कुल की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा जा सके।[4] यों आगम-साहित्य में अन्य जातियों के साथ भी विवाह करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैसे—राजमंत्री तेतलीपुत्र ने एक सुनार की कन्या[5] से, क्षत्रिय गजसुकुमाल ने सोमिल ब्राह्मण की कन्या से, राजा[6] जितशत्रु ने चित्रकार की कन्या से,[7] राजकुमार ब्रह्मदत्त ने ब्राह्मण तथा वणिकों की कन्याओं से पाणिग्रहण किया था।[8]

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में यह स्पष्ट है कि विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति था। सन्तानोत्पत्ति के लिए एक से अधिक विवाह करने की अनुमति स्मृतिकारों ने प्रदान की। बहुपत्नीत्व विवाह का यही मुख्य उद्देश्य रहा था। आगे चलकर बहु-विवाह विशिष्ट व्यक्तियों के गौरव की चीज हो गई। राजा और राजकुमार अपने अन्तःपुरों में अधिक से अधिक पत्नियां रखने में वे गौरव का अनुभव करते थे। अनेक राजाओं के साथ स्नेहपूर्ण-सम्बन्ध स्थापित होने के कारण बहुविवाह राजनीतिक सत्ता को शक्तिशाली बनाने में सहायक होता था। इसीलिए महाबल राजकुमार का भी आठ कन्याओं के साथ विवाह होने का उल्लेख है।

जैन कथाओं की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि जो व्यक्ति भोग के दलदल में फंसा है, वह भी वीतराग-वाणी को श्रवण कर भोग को रोग समझकर मुक्त हो जाता है। वैराग्यभावना प्रबुद्ध होने पर कोई भी शक्ति उन्हें संसार में रोकने के लिए समर्थ नहीं होती। प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् साधक पहले अध्ययन करता है, आगम-साहित्य का दोहन करता है और उसके पश्चात् उग्र जप-तप की साधना कर कर्मों को नष्ट करने का प्रयास करता है। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर देव बनता है।

उत्तराध्ययन के अठारहवें अध्ययन की पचासवीं गाथा में भी महाबल का उल्लेख हुआ है। टीकाकार नेमिचन्द्र ने उसकी कथा विस्तार से दी है और अन्त में व्याख्याप्रज्ञप्ति का निर्देश किया है पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह महाबल भगवती में वर्णित ही है या अन्य? सम्भव है विपाक सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, अध्याय ७ में वर्णित महापुर नगर का राजा बल का पुत्र महाबल हो। भगवती का महाबल उस महाबल से पृथक् होना चाहिए।

कार्तिक श्रेष्ठी :

प्रस्तुत विभाग में कार्तिक श्रेष्ठी की कथा भी आई है, जो भ० मुनिसुव्रत के तीर्थ में हुए थे। वे ही कार्तिक श्रेष्ठी प्रथम देवलोक के इन्द्र बने। भारतीय साहित्य में इन्द्र के हजार नाम प्रसिद्ध हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में इन्द्र के सम्बन्ध में चर्चा है। हम यहां इन्द्र के अनेक नामों में से कुछ शब्दों का उल्लेख कर रहे हैं, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त हुए हैं। "शक्र" नामक सिंहासन पर बैठने से तथा सामर्थ्यवान होने से वह 'शक्र' कहलाया। देवताओं के मध्य परम ऐश्वर्ययुक्त होने से वह 'इन्द्र' के नाम से विश्रुत हुआ। इन्द्र नाम सबसे अधिक प्रचलित है। ऋग्वेद में प्रायः दो सौ पचास सूक्तों में इन्द्र का वर्णन है और पचास सूक्त ऐसे भी हैं, जिनमें दूसरे सूक्तों के साथ इन्द्र का वर्णन है। इस तरह ऋग्वेद का लगभग चतुर्थांश इन्द्र की स्तुति

१ [illegible] पृष्ठ १५४ २ [illegible] पृष्ठ १३१
३ [illegible] पृष्ठ [illegible]
४ द सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम [illegible]
५ [illegible] पृ० १५८ ६ [illegible] पृष्ठ ९५
७ [illegible] पृष्ठ ४९ ८ [illegible]

से भरा पड़ा है। ऋग्वेद में इन्द्र को अग्नि का जुड़वाँ भाई बताया है।[१] पौराणिक युग में मानव तप से इन्द्र पद प्राप्त करने के लिए लालायित रहता था। इन्द्र अपने सिंहासन की रक्षा के लिए अप्सराओं को प्रेषित करता है जो तपस्वियों को मोहित कर पथ-भ्रष्ट करती हैं। पौराणिक इन्द्र शक्तिमान्, समृद्ध और विलासी है।

जैन दृष्टि से अन्य देवों में नहीं पाई जाने वाली असाधारण अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों के धारक ऐसे देवाधिपति को इन्द्र के नाम से अभिहित किया है।[२] देवताओं का राजा होने से वह देवराज भी कहलाता है। हाथ में वज्र नामक शस्त्र को धारण करने से 'वज्रपाणि' है। शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने के कारण वह 'पुरन्दर' है। कार्तिक श्रेष्ठी के भव में सौ बार श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा अर्थात् अभिग्रह विशेष को धारण करने के कारण वह 'शतक्रतु' कहलाता है। यद्यपि भगवती सूत्र में जो कार्तिक श्रेष्ठी की कथा है, उसमें कार्तिक श्रेष्ठी के द्वारा सौ बार प्रतिमा धारण की गई, ऐसा उल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु आचार्य श्री जयमलजी म० ने बड़ी साधु वन्दना में लिखा है—

"बलि कार्तिक शेठे, पड़िमा वही सूर वीर।
जीमी मोराँ ऊपर, तापस बलती खीर ॥३३॥
पछी चारित्र लीधूँ, मित्र एक सहस आठ धीर।
मरी हुओ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भव तीर ॥३४॥

वैदिक परम्परा के अनुसार शतक्रतु का अर्थ है—सौ यज्ञ करने वाला। कहा जाता है कि इन्द्र पूर्वभव में कार्तिक श्रेष्ठी था। उसकी वीतराग धर्म पर अनन्य आस्था थी। उसने सौ बार श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा तक की आराधना की। नगर में एक बार गैरिक नामक उग्र तपस्वी आया। उसके कठोर तप से सभी प्रभावित हुए। जन-समूह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। विराट जनसमूह को देखकर तपस्वी के मन में अहंकाररूपी नाग फन फैलाकर खड़ा हो गया। उसने लोगों से पूछा—क्या सभी लोग मेरे दर्शनार्थ आ चुके हैं?

एक भक्त ने निवेदन किया कि कार्तिक श्रेष्ठी को छोड़कर अन्य सभी लोग आ गये हैं। तपस्वी ने क्रोध और अहंकार के वश होकर यह अभिग्रह किया—मैं कार्तिक श्रेष्ठी की पीठ पर थाली रखकर ही पारणा करूँगा अन्यथा जीवनभर कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा। राजा ने जब तपस्वी को पारणा करने के लिए प्रार्थना की तो तपस्वी ने अभिग्रह की बात दोहराई। राजा ने श्रेष्ठी को बुलाया तथा गरमा-गरम खीर तैयार की गई। राजा के आदेश से सेठ ने सिर झुकाया और तपस्वी ने क्रूरतापूर्वक सेठ की पीठ पर खीर से भरी थाली रखी। श्रेष्ठी की चमड़ी जलने लगी। तपस्वी ने नाक पर अंगुली रखकर कहा—तू मुझे वन्दन करने नहीं आया, उसका फल चख! मैंने तेरा नाक काट ही दिया। सेठ मन ही मन सोचने लगा—यदि मैं पहले साधु बन जाता तो आज जो यह दयनीय दशा हुई है, वह नहीं होती। वह समभावपूर्वक कष्ट सहन करता रहा। एक हजार आठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठी ने मुनिसुव्रत स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की और शक्रेन्द्र बना। तापस गैरिक भी अपना आयुष्य पूर्णकर शक्रेन्द्र का ऐरावत हाथी बना। इन्द्र को अपने ऊपर बैठा देखकर ऐरावत हाथी घबराया। इन्द्र ने भी अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव देखा और ऐरावत का भी। उसे डाँटा, फटकारा। ऐरावत शान्त हो गया। प्रस्तुत ग्रन्थ में कार्तिक श्रेष्ठी की दीक्षा आदि का विस्तार से निरूपण हुआ है।

गंगदत्त :

मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में होने वाले गंगदत्त की कथा भी यहाँ पर दी गई है। गंगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर की सभा में उपस्थित हुआ। गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने उसका पूर्वभव सुनाते हुए कहा—हस्तिनापुर में गंगदत्त नामक गाथापति था। अरिहंत मुनिसुव्रत के पावन-प्रवचन को श्रवण कर तथा ज्येष्ठ पुत्र की अनुमति प्राप्त कर गंगदत्त ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उत्कृष्ट तप-जप की आराधना कर यह देव बना और यहाँ से आयु पूर्ण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा। प्रस्तुत कथा का सम्बन्ध मुनिसुव्रत स्वामी के साथ है। यही इस कथा की विशेषता है। प्राग् ऐतिहासिक काल का यह प्रसंग बहुत ही प्रेरणादायी है।

चित्त-संभूति :

इसके आगे चित्त-संभूति की कथा दी गई है। इस कथा-वस्तु का बौद्ध परम्परा के 'चित्त-संभूति जातक' में भी वर्णन है। दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में कथा-वस्तु बहुत कुछ समानता लिये हुए है। दोनों ही कथाकारों ने कथा-वस्तु गद्य और

---

१. ऋग्वेद ६/५९/२.

२. (क) अन्य देवासाधारणाणिमादि योगादिन्दन्तीति इन्द्राः—सर्वार्थसिद्धि ४/४ (ख) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ४/४

पद्य में गठित की है। कथा-वस्तु गद्य में है तो संवाद पद्य में है। कथा ब्रह्मदत्त की उत्पत्ति से प्रारम्भ होती है। इसमें पैंतीस श्लोक हैं। टीकाकार नेमिचन्द्र ने सुखबोधावृत्ति में सम्पूर्ण कथा दी है। उत्तराध्ययन के मूल में कथा का प्रारम्भ है। दोनों भाई चित्त और संभूत परस्पर मिलते हैं तथा सुख-दुःख के फल-विपाक की चर्चा करने लगते हैं। चित्त का जीव श्रमण अवस्था में ब्रह्मदत्त को संसार की निःसारता का परिज्ञान कराते हुए कहता है—'ऐश्वर्य विद्युत की तरह चंचल है और भोग भी नश्वर है, अतः तुम श्रमण धर्म को स्वीकार कर अपने जीवन को पावन बनाओ।' जब चित्त मुनि ने देखा—ब्रह्मदत्त श्रमण बनने की स्थिति में नहीं है तो गृहस्थाश्रम में रहकर ही मुनि ने धर्म-साधना करने की प्रेरणा दी। पर ब्रह्मदत्त का मन धर्म में नहीं था। चित्त मुनि धर्माराधन कर सिद्ध हुआ तथा ब्रह्मदत्त भोगों में आसक्त होकर नरक का अधिकारी बना। पांचवीं, छठी और सातवीं गाथा में पूर्व जन्मों का नामोल्लेख हुआ है। पर वहाँ विस्तार से चर्चा नहीं है, टीकाकार नेमिचन्द्र ने पूर्व के पाँच भवों का सविस्तृत वर्णन किया। संक्षेप में छह भव इस प्रकार हैं—१. दशपुर नगर में शांडिल्य ब्राह्मण की दासी यशोमती के गर्भ से पुत्र रूप में पैदा होना। २. कालिंजर पर्वत पर मृगी की कुक्षी से युगल रूप में उत्पन्न होना। ३. मृतगंगा के तीर पर हंसी के गर्भ से उत्पन्न होना। ४. वाराणसी में श्वपाक के पुत्र रूप में उत्पन्न होना। ५. देवलोक में उत्पन्न होना। ६. चित्त का जीव पुरिमताल नगर में इभ्य श्रेष्ठी के यहाँ पुत्र रूप में और संभूत का जीव काम्पिल्यपुर में ब्रह्मराजा की रानी चूलनी के गर्भ से ब्रह्मदत्त रूप में उत्पन्न हुआ।

बौद्ध-साहित्य में :

बौद्ध साहित्य में संक्षेप में कथा का रूप इस प्रकार है—

१. निरंजरा नदी के किनारे मृगी की कुक्षी में उत्पन्न होना।

२. नर्मदा नदी के किनारे बाज पक्षी के रूप में उत्पन्न होना।

३. चित्त का जीव कौशाम्बी में पुरोहित का पुत्र हुआ तथा संभूत का जीव पांचाल राजा के रूप में उत्पन्न हुआ।[1] जब दोनों भाई परस्पर मिलते हैं तो चित्त संभूत को उपदेश प्रदान करता है, किन्तु संभूत का मन भोगों से विरक्त नहीं होता। जिससे चित्त संभूत के सिर पर धूल गिराता है और स्वयं हिमालय की ओर प्रस्थान कर जाता है। जब राजा संभूत ने यह देखा तो उसके अन्तर्मानस में वैराग्य समुत्पन्न हुआ और वह भी हिमालय को चल दिया। चित्त ने उसे योग विद्या सिखलाई, जिससे संभूत को ध्यान-लाभ हुआ। इस प्रकार चित्त और संभूत दोनों ब्रह्मलोकवासी हुए।

जैन और बौद्ध दोनों ही कथा-वस्तुओं का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जैन कथा-वस्तु विस्तृत है। कुमार ब्रह्मदत्त अपने मंत्री-पुत्र वरधनु के साथ घर से निकलकर दूर चला गया और पुनः लौटकर नगर में नहीं आने तक की कथा छोटी-बड़ी अनेक घटनाओं के कारण जटिल हो गई है। सारी अवान्तर घटनाएँ ब्रह्मदत्त से सम्बन्धित हैं तथा उन अवान्तर घटनाओं का अन्त होता है किसी कन्या के साथ विवाह या पाणिग्रहण करने पर। कुमार ब्रह्मदत्त वरधनु के साथ अपनी नगरी में लौटता है। राज्याभिषेक होने के पश्चात् उसे अपने भ्राता की मधुर स्मृति हो आती है। दोनों भाई मिलते हैं। मुनि चित्त का जीव धर्माराधन कर मुक्त बनता है। कुमार ब्रह्मदत्त भोगों में आसक्त होकर नरक में जाता है। जैन दृष्टि से संभूत का जीव कुमार ब्रह्मदत्त नरक का अधिकारी बनता है तो बौद्ध दृष्टि से संभूत ब्रह्मलोक में जाता है। सरपेन्टियर ने लिखा है—इन दोनों कथानकों में साम्य ही नहीं अपितु दोनों की गाथाओं में भी पूर्ण साम्य है।[2] उदाहरण के रूप में देखिए—

समान गाथाएँ

जैन परम्परा	बौद्ध परम्परा
उत्तराध्ययन, अध्ययन १३	चित्त सम्भूत जातक (सं० ४९८)
श्लोक	गाथा
दासा दसण्णे आसी मिया कालिंजरे नगे। हंसा मयंगतीरे सोवागा कासिभूमिए ॥६॥	चण्डालाहुम्ह अवन्तीसु मिगा नेरञ्जरं पति, उक्कुसा नम्मदा तीरं त्यज्ज ब्राह्मण खत्तिया ॥२॥

१. जातक चतुर्थ खण्ड संख्या ४९८ चित्त सम्भूत जातक पृष्ठ ५०४

२. The Uttarādhyayana Sūtra, p. 45.

शार्पेन्टियर ने प्रस्तुत कथानक की तीन गाथाओं को अर्वाचीन माना है।[1] परन्तु उसके लिए कोई प्रबल तर्क नहीं दिया है। चूर्णि, टीका प्रभृति व्याख्या ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में मनीषी आचार्यों ने कहीं भी किसी प्रकार का उल्लेख नहीं किया है। ये तीनों गाथाएँ प्रकरण की दृष्टि से भी अनुपयुक्त नहीं हैं। इन तीनों गाथाओं में उनके जन्म-स्थान, जन्म का कारण और आपस में मिलने का वर्णन है। ये गाथाएँ अगली गाथाओं से सम्बन्धित हैं। ये तीनों गाथाएँ आर्याछन्द में निबद्ध हैं जबकि आगे की गाथाएँ अनुष्टुप, उपजाति आदि विभिन्न छन्दों में निर्मित हैं। छन्दों की भिन्नता से उन्हें प्रक्षिप्त या अर्वाचीन नहीं मान सकते। यह कथा भगवान् अरिष्टनेमि के युग की है।

निषधकुमार :

प्रस्तुत कथा का प्रसंग भी भगवान् अरिष्टनेमि से सम्बन्धित है। भगवान् अरिष्टनेमि एक बार द्वारिका नगरी में पधारे। उनके आगमन के संवाद को सुनकर द्वारिका नगरी के निवासी तथा श्रीकृष्ण आनन्द से झूम उठे। राजकीय वैभव के साथ प्रभु के दर्शन को चले। निषधकुमार भी भगवान को वन्दन करने के लिए पहुँचा। भगवान् की विमल-वाणी सुनकर उसने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। निषधकुमार के दिव्य रूप को देखकर अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य वरदत्त अणगार ने पूछा—प्रभो! यह ऋद्धि, समृद्धि और सुरूप इन्हें कैसे प्राप्त हुआ? भगवान् ने कहा—भरतक्षेत्र में रोहितक नामक नगर था। महाबल राजा और पद्मावती रानी थी। विरंगत कुमार का बत्तीस कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। आचार्य सिद्धार्थ के उपदेश को श्रवण कर वह श्रमण बना और उत्कृष्ट तप की साधना कर पाँचवे ब्रह्मदेवलोक में देव बना। यह विराट सम्पत्ति और ऋद्धि पूर्वकृत पुण्य का फल है।

वरदत्त गणधर ने पूछा—भन्ते! क्या यह आपके सन्निकट प्रव्रजित होगा? भगवान ने स्वीकृतिसूचक संकेत किया। कुछ समय के पश्चात् भगवान का द्वारिका नगरी में पुनः पदार्पण हुआ। निषधकुमार ने संयम ग्रहण किया। सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। नौ वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय में उत्कृष्ट तप की आराधना की और बयालीस भक्त का अनशन कर, संलेखना—संथारे के द्वारा समाधिपूर्वक काल कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

भगवान अरिष्टनेमि के तीर्थ में ही गौतम अणगार ने भी अपने जीवन को पावन बनाया था। भगवान् अरिष्टनेमि के पावन उपदेश से प्रभावित होकर वह आठ पत्नियों का त्याग कर भगवान अरिष्टनेमि के पास संयम स्वीकार करता है तथा उत्कृष्ट तप की आराधना करता है। उसके बाद वह भिक्षु-प्रतिमा की साधना करता है और अट्ठाईस मास तथा तैंतीस दिन से प्रतिमा की साधना पूर्ण कर गुणरत्न-संवत्सर तप की आराधना करता है। अन्त में जब गौतम अणगार का शरीर क्षीण हो गया, "**जीवं जीवेण चिट्ठइ**" और अपनी जीवनी-शक्ति के सहारे ही टिका हुआ था। तब उन्होंने मृत्यु की इच्छा न करते हुए और न जीने की कामना करते हुए एक मास का संथारा किया तथा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। गौतम अणगार तप की जीती-जागती प्रतिमा थे। उनका जीवन अत्यन्त प्रेरणादायी है।

अणीयसेन आदि छह भाई :

भद्दिलपुर नगर में नाग गाथापति की धर्मपत्नी सुलसा अत्यन्त रूपवती थी। उसके अणीयसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन तथा शत्रुसेन ये छह पुत्र थे। उन छहों ने भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश को श्रवण कर प्रव्रज्या ग्रहण की। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि ये छहों भाई देवकी के गर्भ से संहरण कर सुलसा की कुक्षि में स्थापित किये गये थे। उन सभी भाइयों ने उत्कृष्ट तप-साधना कर मुक्ति को वरण किया था। ये छहों श्रीकृष्ण वासुदेव के भाई थे। इस रहस्य का उद्घाटन भगवान् अरिष्टनेमि ने किया। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में यह घटना उपलब्ध नहीं है।

गजसुकुमाल :

पावन उपदेश को श्रवण कर गजसुकुमाल का अन्तर्मानस वैराग्य से भावित हो गया। उसके जीवन का नक्शा बदल गया। वह आया था उपदेश सुनने के लिए, किन्तु श्रमण बनने के लिए तत्पर हो गया। अग्नि की नन्ही सी चिनगारी घास-फूस को छू जाय तो वह आग प्रज्वलित हो जाती है। हवा का झोंका उसे बुझा नहीं पाता किन्तु और बढ़ा देता है। यही स्थिति गजसुकुमाल के वैराग्य की थी। वैराग्य की ज्वाला को बुझाने के लिए माता-पिता के हजार-हजार आंसू बहे, जिससे पुत्र का वैराग्य उन आंसुओं में बह जाय, पर वह महाशक्ति विचलित नहीं हुई। श्रीकृष्ण ने एक दिन का राज्य प्रदान किया। सोचा, सिंहासन का प्रलोभन इसके वैराग्य को धुँधला बना देगा पर वह महादावानल था जिसे सुख और साधनों के ऐश्वर्य तथा जय-जयघोष के झंझावात बुझा नहीं सके। वह ज्वाला तो निरन्तर जलती ही रही। वह महान् साधक अनुमति प्राप्त कर दीक्षित हो गया। उन नवदीक्षित मुनि को आत्मकल्याण के लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा बताई गई। वह अभिनव साधक निर्जन श्मशान भूमि में मन को एकाग्र कर ध्यानस्थ हो गया।

मुनि के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बाँधकर जाज्वल्यमान अंगारे रख दिये गये। मांस जल रहा था, रक्त उबल रहा था, सारे शरीर में भयंकर वेदना हो रही थी तथापि वह शान्तभाव में खड़ा था। जलते हुए आग के शोलों के नीचे भी वह हँस रहा था। मस्तक पर आग जल रही थी तथा अन्तर्मन में चिन्तन-मनन चल रहा था। शरीर लपटों में जल रहा था पर वह क्षमा एवं सहिष्णुता का देवता उस समय भी मुस्करा रहा था। यह अलंकार की भाषा नहीं, जीवन का वास्तविक तथ्य है। जिसने ध्यान-साधना को सिद्ध कर लिया, वह साधक देह में रह करके भी देहातीत स्थिति में पहुंच जाता है और ऐसे अलबेले साधक ध्यानाग्नि से कर्मों को ध्वस्त कर देते हैं। गजसुकुमाल जैसे वरिष्ठ साधक बौद्ध और वैदिक परम्परा में ढूंढने पर भी मिल नहीं सकते। बड़ा अद्भुत और अनूठा कृतित्व है उसका ! श्रीकृष्ण के लघुभ्राता होने पर भी वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं है। गजसुकुमाल की कथा इतनी अत्यधिक लोकप्रिय हुई कि अन्तकृद्दशांग के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तथा राजस्थानी एवं गुजराती कथा साहित्य में विविध लेखकों ने इस पर अनेक मौलिक रचनाएं लिखी हैं।

सुमुख आदि कुमार :

सुमुखकुमार बलदेव के पुत्र थे तथा दुर्मुख, कूपदारक और दारुक—ये क्रमशः बलदेव तथा वसुदेव के पुत्र थे। जालि, मयालि, उवयाली, पुरुषसेण, वारिषेण, प्रद्युम्नकुमार, शाम्बकुमार, अनिरुद्धकुमार, सत्यनेमिकुमार, दृढ़नेमिकुमार इन दसों राजकुमारों में पूर्व के पाँच राजकुमार वसुदेव के पुत्र थे तथा प्रद्युम्नकुमार और शाम्बकुमार के पिता श्रीकृष्ण थे। अनिरुद्धकुमार के पिता प्रद्युम्न थे। सत्यनेमि और दृढ़नेमि के पिता समुद्रविजय थे। ये सभी राजकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश को श्रवण कर राजवैभव का परित्याग कर साधना के महा राजमार्ग को स्वीकार करते हैं और वीर सेनानी की भांति आगे बढ़कर अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इन राजकुमारों के उल्लेख भी इतर साहित्य में अनुपलब्ध हैं। ये कथाएं जैन साहित्य की ही अपनी देन हैं।

थावच्चापुत्र :

ज्ञातासूत्र में थावच्चापुत्र की दीक्षा का वर्णन है। मुनि श्री जीवराज जी ने "थावच्चापुत्र रास" नामक ग्रन्थ में उनके जीवन का एक प्रसंग दिया है। उस प्रसंग का मूल स्रोत कहाँ है ? यह अन्वेषणीय है। थावच्चापुत्र का यह नाम उनकी माता के नाम पर पड़ा है। उनका असली नाम क्या था ? यह कहीं भी निर्दिष्ट नहीं है। वह सार्थवाह का पुत्र था। वह बाल्यकाल से ही चिन्तनशील था। वह जो भी देखता, सुनता उसके सम्बन्ध में गहराई से चिन्तन करता। जब तक सही तथ्य का परिज्ञान नहीं हो जाता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता।

एक समय प्रातःकाल का सुनहरा प्रभात दिल को लुभा रहा था। मंगल गीतों की मधुर ध्वनि पड़ौसी के घर से आ रही थी। वह एकाग्र होकर गीतों को सुनने लगा। उसे गीतों की स्वर लहरियाँ अत्यन्त प्रिय लगीं। उसने माँ से जिज्ञासा की—माँ ! इतने सुन्दर और मधुर गीत पड़ौस में क्यों गाये जा रहे हैं ? माँ ने बताया—वत्स ! पड़ौसी के यहाँ पुत्र पैदा हुआ है। उसकी प्रसन्नता में ये गीत गाये जा रहे हैं। माँ ! क्या मेरे जन्म के समय भी इसी प्रकार गीत गाये गये थे ?

माँ ने अपने लाड़ले को चूमते हुए कहा—वत्स ! केवल गीत ही नहीं गाये गये, बाजे भी बजाये गये और बहुत बड़ा उत्सव किया गया। माँ ! ये गीत मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। तू भी ऊपर की छत पर चल और गीतों का आनन्द ले ! माँ ने कहा—मुझे समय नहीं है, तू ही जाकर सुन ले ! थावच्चापुत्र ऊपर आया, किन्तु उसे सुमधुर स्वर लहरियों के स्थान पर कर्ण-कटु आक्रन्दन सुनाई दिया और साथ ही भयावना-सा कोलाहल भी उसके कानों में गिरा। उसका मन रुँआसा होने लगा। वह

उल्टे पैरों लौटकर माता के पास पहुँचा। माँ ! जो गीत पहले सुहावने लगते थे, वे अब डरावने [illegible] माँ ने [illegible] की आकस्मिक विपत्ति को समझ लिया और उसकी आँखों से भी आँसू छलक पड़े। माँ ने अपने अबोध बालक [illegible] कहा—वत्स ! जिस पुत्र का उत्सव मनाया जा रहा था, वह पुत्र मर गया। इसीलिए गायन रुदन के रूप में [illegible] के स्थान पर शोक की काली घटाएँ छा गईं।

माँ ! क्या मैं भी एक दिन इसी तरह मर जाऊँगा ? माँ ने उसके मुँह को चूमते हुए कहा—तू मेरी आँखों का [illegible], नयनों का सितारा है। तू क्यों मरेगा ? मरेंगे तेरे दुश्मन ! थावच्चापुत्र के भोले-भाले चेहरे पर वही जिज्ञासा [illegible]। अन्त में माँ को कहना पड़ा—वत्स ! एक दिन सभी को मरना है। पर सलौने बेटे ऐसी बात नहीं किया करते। मन में [illegible] पनपता रहा और एक दिन अर्हत् अरिष्टनेमि की वाणी को श्रवण कर साधना के महामार्ग पर बढ़ने के लिए [illegible] हो गया। श्रीकृष्ण ने उसका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। वासुदेव श्रीकृष्ण की उत्कट धार्मिक भावना उसमें उजागर हो रही है। श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे वरिष्ठ पद के धनी होते हुए भी साधना के प्रति उनके अन्तर्मानस में कितनी श्रद्धा थी ? यह इससे स्पष्ट होता है।

थावच्चापुत्र के अन्तर्मानस में वैराग्योत्पत्ति का मूल कारण मृत्यु-दर्शन है, तो तथागत बुद्ध के जीवन में भी [illegible] का एक कारण मृत्यु-दर्शन है। मृत्यु, जीवन का अन्तिम सत्य है। यदि व्यक्ति इसे समझ ले तो वह भोग के [illegible] में [illegible] सकता। यह कथा अत्यन्त प्रेरणादायी है।

रथनेमि एवं राजीमती :

रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघु भ्राता थे। रथनेमि का आकर्षण राजीमती की ओर प्रारम्भ से ही [illegible]। [illegible] भगवान् अरिष्टनेमि ने राजीमती को बिना विवाह किये ही छोड़ दिया तो रथनेमि उनके साथ विवाह करने के लिए [illegible] उठे और अपनी भावना राजीमती के सामने व्यक्त करने लगे। राजीमती ने वमन कर उसे पीने के लिए कहा। रथनेमि ने [illegible] होकर कहा, क्या तू मेरा अपमान करती है ? राजीमती ने कहा—भाई के द्वारा वमन किये हुए को ग्रहण करना क्या तुम्हारे लिए उपयुक्त है ? रथनेमि का विवेक जागृत हो उठा। यहाँ एक प्रश्न चिन्तनीय है। वह यह है—अर्हत अरिष्टनेमि के दीक्षा लेने के पश्चात् रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण की। आवश्यकनिर्युक्ति[1] वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र[2] में [illegible] है—रथनेमि चार सौ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे, एक वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे और पाँच सौ वर्ष केवली पर्याय में। [illegible] सौ वर्ष का आयुष्य हुआ। इसी तरह कुमारावस्था, छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था का विभाग करके राजीमती ने भी [illegible] ही आयुष्य का उपभोग किया।[3]

अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारावस्था में रहे, सात सौ वर्ष छद्मस्थ व केवली अवस्था में रहे। [illegible] हजार वर्ष का आयुष्य भोगा।[4]

जिज्ञासा यह है—रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता थे, भगवान् तीन सौ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे, [illegible] और राजीमती चार सौ वर्ष। राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण में सिर्फ [illegible] दिन का अन्तर है। [illegible] का उल्लेख कवियों की रचना में मिलता है।[5] यदि इस उल्लेख को प्रामाणिक माना जाय तो यह स्पष्ट है कि राजीमती [illegible]

---

१. (क) निर्युक्ति—रहनेमिस्स भगवओ, गिहत्थए चउर हुंति वाससया। संवच्छर छउमत्थो, पंचसए [illegible] ॥
[illegible]
—[illegible]
(ख) [illegible]
[illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
४ (क) [illegible]
[illegible]
(ख) [illegible]
(ग) [illegible]
[illegible]
५ [illegible]

वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम में रहना चिन्तनीय विषय है। विज्ञों को इस सम्बन्ध में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति[1] तथा वादी वेताल शान्तिसूरि रचित वृहद्वृत्ति[2], मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव-भावना ग्रन्थ[3] की दृष्टि से भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के[4] अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात राजीमती, नन्द की कन्या एकवासा तथा यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करती हैं। राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया। मुझे धिक्कार है, जो मैं मोह के दलदल में फँसी हूँ। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। इस प्रकार राजीमती ने दृढ़ संकल्प कर कंघी से संवारे हुए काले केशों को उखाड़ डाला। श्रीकृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्ये! इस भयंकर संसार रूपी सागर से तू शीघ्र तिर जा।[5] रथनेमि ने भी उसी समय भगवान् के पास संयम ग्रहण किया।[6]

एक दिन की घटना है—बादलों की गड़गड़ाहट से दिशायें काँप रही थीं। बिजलियाँ कौंध रही थीं। रेवतक का वनप्रान्तर साँय-साँय कर रहा था। साध्वी समूह के साथ राजीमती रेवतक गिरि पर चढ़ रही थी। एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया। बिछुड़ी हुई राजहंसिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया। राजीमती ने एकान्त स्थान निहार कर सम्पूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिया।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उसी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा में अवस्थित था। बिजली की चमक में निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर पड़ी। वह अपने अंगों का गोपन कर बैठ गई। कामविह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुरूपे! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हूँ। तू मुझे स्वीकार कर! मैं तेरे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर; फिर समय आने पर हम दोनों संयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे वासना से विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो, पर मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसन्द करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष का पान नहीं करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यों कर रहे हो? जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है वैसे ही रथनेमि का मन संयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा-प्रसंग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ, तब नारी ने उसका सच्चा पथ-प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहुबली को अहंकार के गज से उतरने की प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणों का निरूपण इस अध्याय में हुआ है। इसके पश्चात पुरुषादानीय भगवान् पार्श्व के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि की बहुत ही संक्षेप में कथायें हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी इसमें दी गई है। इस कथा में दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिन्तन किया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उस युग में प्रचलित थी। विश्व में कोई भी पदार्थ एकान्त रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ में परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो सकता है। अतः अन्तर्मानस में किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है। यह बात प्रस्तुत कथानक में स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर इन दो तीर्थंकरों के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थंकरों के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर बावीस तीर्थंकरों के श्रमणोपासक द्वादश व्रतों को ही धारण करते थे। उनके लिए पाँच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।[7]

---

१. परिनुट्ठमणा य रायमई वि पत्ता समोसरणं। —उत्तराध्ययन सुखबोधा—पृ० २८१.

२. इत्थं सा नावदवस्थिता यावदन्यत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्न केवलस्य भगवतो निशम्य देशनां विशेषत उत्पन्न वैराग्या किं कृतवती त्याह 'अह' त्यादि। —बृहद्वृत्ति पत्र ४९३.

३. भव-भावना—३७१६, १७, पृष्ठ १५६.   ४. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, ८/१०/१४८.

५. (क) वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं। संसार सागरं घोरं, तर कन्ने! लहु-लहु॥ —उत्तराध्ययन, २२/३१.
(ख) उत्तराध्ययन २२/३०.   ६. (क) उत्तराध्ययन—२२/३२.   (ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा २८१.

७. "तए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ……तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए विहरित्तए।" —धर्मकथानुयोग, पृष्ठ ५४।२२४

ने गोपालन पर बल दिया; किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि ने सभी प्राणियों की रक्षा पर बल दिया जिसके कारण भारत में अहिंसा की सुरीली स्वरलहरियाँ झंकृत हुईं और वे इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि वैदिक और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों ने भी अरिष्टनेमि का उल्लेख बहुत ही गौरव के साथ हुआ है।

भगवान् पार्श्वनाथ :

पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी मूर्धन्य मनीषी भगवान् पार्श्व को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। वे भगवान महावीर के जन्म से तीन सौ पचास वर्ष पूर्व जन्मे थे। सर्वप्रथम डा० हरमन जेकोबी ने जैनागमों के साथ ही बौद्ध पिटकों के आधार पर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है।[1] उसके बाद कॉलब्रुक, स्टीवेन्सन, एडवर्ड टामस, डा० बेलवलकर, दासगुप्ता, डा० राधाकृष्णन,[2] शार्पेन्टियर, गेरीनोट, मजूमदार, ईलियट, पुसिन आदि विज्ञों ने सप्रमाण यह प्रमाणित किया है कि श्रमण भगवान् महावीर से पूर्व एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय था, जो बहुत प्रभावशाली था। उस निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के प्रधान नायक पार्श्वनाथ थे। डा० चार्ल्स शार्पेन्टियर का अभिमत है कि हमें इन दो बातों का स्मरण रखना होगा—जैन धर्म निश्चित रूप से महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं। परिणामस्वरूप, मूल सिद्धान्तों की प्रमुख बातें महावीर से पूर्व सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।[3]

भगवान् पार्श्व के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूचना श्वेताम्बर आगमों में समवायांग और कल्पसूत्र में मिलती है। समवायांग में पार्श्व के माता-पिता, उनकी दीक्षा नगरी, शिविका, चैत्य वृक्ष और उनके प्रमुख शिष्य एवं शिष्याओं का नाम निर्दिष्ट हुआ है। जीवन वृत्त के क्रम से एक ही घटना उसमें नहीं आई है। नामों के अतिरिक्त पार्श्व के साथ दीक्षा लेने वालों की संख्या, प्रथम तप के दिनों की संख्या बताई है तथा पार्श्व के पूर्वभव का नाम 'सुदर्शन' बताया है। उस भव में वे माण्डलिक राजा थे। मुनि बनने के पश्चात् ग्यारह अंग के ज्ञाता बने।

कल्पसूत्र में पार्श्व का जीवन-वृत्त प्राप्त होता है पर उसमें पार्श्व के पूर्वभवों का कोई उल्लेख नहीं है। पार्श्व के कुशस्थल जाने का, रविकीर्ति या प्रसेनजित के सहयोग से कलिंगराज यवन से युद्ध करने का तथा राजकुमारी प्रभावती से विवाह करने का कोई भी वर्णन नहीं है। उसमें कमठ व सर्प की घटना, मेघमाली कृत उपसर्गों का भी वर्णन नहीं है। भगवान् पार्श्व को किस निमित्त से वैराग्य हुआ? उसका भी उसमें उल्लेख नहीं है।

आगम ग्रन्थों के पश्चात् रचित 'चउपन्न महापुरिस चरियं' जिसके रचयिता आचार्य शीलांक हैं और 'पासनाह चरियं' जिसके रचयिता आचार्य अभयदेव के शिष्य आचार्य देवभद्र सूरि है, 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित', जिसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं। इन श्वेताम्बर आचार्यों ने पार्श्वनाथ के कथानक को विकसित किया है।

दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में, महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण में, वादिराज सूरि ने 'पासनाह चरिउ' में भगवान् पार्श्वनाथ के मौलिक प्रसंगों को उट्टंकित किया है। पार्श्वाभ्युदय काव्य, जिसके रचयिता आचार्य जिनसेन हैं, यह काव्य उत्तरपुराण से भी पहले का है, पर यह काव्य-ग्रन्थ है। इसकी रचना कालिदास के 'मेघदूत' की भांति हुई है। इस काव्य में "भगवान् पार्श्व" ध्यानावस्था में अवस्थित हैं और शम्बर देव उन्हें उपसर्ग प्रदान करता है, इसका चित्रण हुआ है। किन्तु जीवन वृत्त का परिचायक यह ग्रन्थ नहीं है। जिनरत्न कोष[4] से पता चलता है कि आचार्य समन्तभद्र ने भी महापुराण या त्रिषष्टिशलाका पुराण की रचना की है पर यह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। उसमें भी पार्श्व के चरित्र के प्रसंग हैं।

वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम में रहना चिन्तनीय विषय है। विज्ञों को इस सम्बन्ध में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति[1] तथा वादी वेताल शान्तिसूरि रचित बृहद्वृत्ति[2], मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव-भावना ग्रन्थ[3] की दृष्टि से भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के[4] अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात राजीमती, नन्द की कन्या एकनामा तथा यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करती हैं। राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया। मुझे धिक्कार है, जो मैं मोह के दलदल में फँसी हूँ। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। इस प्रकार राजीमती ने दृढ़ संकल्प कर कंघी से संवारे हुए काले केशों को उखाड़ डाला। श्रीकृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्ये! इस भयंकर संसार रूपी सागर से तू शीघ्र तिर जा।[5] रथनेमि ने भी उसी समय भगवान् के पास संयम ग्रहण किया।[6]

एक दिन की घटना है—बादलों की गड़गड़ाहट से दिशायें काँप रही थी। बिजलियाँ कौंध रही थीं। रेवतक का वनप्रान्तर साँय-साँय कर रहा था। साध्वी समूह के साथ राजीमती रेवतक गिरि पर चढ़ रही थी। एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया। बिछुड़ी हुई राजहंसिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया। राजीमती ने एकान्त स्थान निहार कर सम्पूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिया।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उसी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा में अवस्थित था। बिजली की चमक में निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर पड़ी। वह अपने अंगों का गोपन कर बैठ गई। कामविह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुरूपे! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हूँ। तू मुझे स्वीकार कर! मैं तेरे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर; फिर समय आने पर हम दोनों संयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे वासना से विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो, पर मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसन्द करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष का पान नहीं करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यों कर रहे हो? जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है वैसे ही रथनेमि का मन संयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा-प्रसंग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ, तब नारी ने उसका सच्चा पथ-प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहुबली को अहंकार के गज से उतरने की प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणों का निरूपण इस अध्याय में हुआ है। इसके पश्चात पुरुषादानीय भगवान् पार्श्व के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि की बहुत ही संक्षेप में कथायें हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी इसमें दी गई है। इस कथा में दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिन्तन किया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उस युग में प्रचलित थी। विश्व में कोई भी पदार्थ एकान्त रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ में परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो सकता है। अतः अन्तर्मानस में किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है। यह बात प्रस्तुत कथानक में स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर इन दो तीर्थंकरों के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थंकरों के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर बावीस तीर्थंकरों के श्रमणोपासक द्वादश व्रतों को ही धारण करते थे। उनके लिए पाँच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।[7]

---

१. परितुट्ठमणा य रायमई वि पत्ता समोसरणं। —उत्तराध्ययन सुखबोधा—पृ० २८१.

२. इत्थं चासौ तावदवस्थिता यादवन्यत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्न केवलस्य भगवतो निशम्य देशनां विशेषत उत्पन्न वैराग्या किं कृतवती त्याह 'अहे' त्यादि। —बृहद्वृति पत्र ४९३.

३. भव-भावना—३७१६, १७, पृष्ठ १५६.   ४. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, ८/१०/१४८.

५. (क) वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं। संसार सागरं घोरं, तर कन्ने! लहुं लहुं॥ —उत्तराध्ययन, २२/३१.
(ख) उत्तराध्ययन २२/३०.

६. (क) उत्तराध्ययन—२२/३२.   (ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा २९१.

७. "तंए णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्त केवलिपण्णत्त चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ.......तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खाव्वइयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।" —धर्मकथानुयोग, पृष्ठ ५४।२२४

ने गो-पालन पर बल दिया; किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि ने सभी प्राणियों की रक्षा पर बल दिया जिसके कारण भारत में अहिंसा की सुरीली स्वरलहरियाँ झंकृत हुई और वे इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि वैदिक और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख बहुत ही गौरव के साथ हुआ है।

भगवान् पार्श्वनाथ :

पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी मूर्धन्य मनीषी भगवान् पार्श्व को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। वे भगवान महावीर के जन्म से तीन सौ पचास वर्ष पूर्व जन्मे थे। सर्वप्रथम डा० हरमन जेकोबी ने जैनागमों के साथ ही बौद्ध त्रिपिटकों के आधार पर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है।[1] उसके बाद कॉलब्रुक, स्टीवेन्सन, एडवर्ड टामस, डा० बेलवलकर, दासगुप्ता, डा० राधाकृष्णन,[2] शार्पेन्टियर, गेरीनोट, मजूमदार, ईलियट, पुसिन आदि विज्ञों ने सप्रमाण यह प्रमाणित किया है कि श्रमण भगवान् महावीर से पूर्व एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय था, जो बहुत प्रभावशाली था। उस निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के प्रधान नायक पार्श्वनाथ थे। डा० चार्ल्स शार्पेन्टियर का अभिमत है कि हमें इन दो बातों का स्मरण रखना होगा—जैन धर्म निश्चित रूप से महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं। परिणामस्वरूप, मूल सिद्धान्तों की प्रमुख बातें महावीर से पूर्व सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।[3]

भगवान् पार्श्व के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूचना श्वेताम्बर आगमों में समवायांग और कल्प-सूत्र में मिलती है। समवायांग में पार्श्व के माता-पिता, उनकी दीक्षा नगरी, शिविका, चैत्य वृक्ष और उनके प्रमुख शिष्य एवं शिष्याओं का नाम निर्दिष्ट हुआ है। जीवन वृत्त के क्रम से एक ही घटना उसमें नहीं आई है। नामों के अतिरिक्त पार्श्व के साथ दीक्षा लेने वालों की संख्या, प्रथम तप के दिनों की संख्या बताई है तथा पार्श्व के पूर्वभव का नाम 'सुदर्शन' बताया है। उस भव में वे माण्डलिक राजा थे। मुनि बनने के पश्चात् ग्यारह अंग के ज्ञाता बने।

कल्पसूत्र में पार्श्व का जीवन-वृत्त प्राप्त होता है पर उसमें पार्श्व के पूर्वभवों का कोई उल्लेख नहीं है। पार्श्व के कुशस्थल जाने का, रविकीर्ति या प्रसेनजित के सहयोग से कलिंगराज यवन से युद्ध करने का तथा राजकुमारी प्रभावती से विवाह करने का कोई भी वर्णन नहीं है। उसमें कमठ व सर्प की घटना, मेघमाली कृत उपसर्गों का भी वर्णन नहीं है। भगवान् पार्श्व को किस निमित्त से वैराग्य हुआ ? उसका भी उसमें उल्लेख नहीं है।

आगम ग्रन्थों के पश्चात् रचित 'चउपन्न महापुरिस चरियं' जिसके रचयिता आचार्य शीलांक हैं और 'सिरि पासनाह चरियं' जिसके रचयिता आचार्य अभयदेव के शिष्य आचार्य देवभद्र सूरि हैं, 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र', जिसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं। इन श्वेताम्बर आचार्यों ने पार्श्वनाथ के कथानक को विकसित किया है।

दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में, महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण में, वादिराज सूरि ने 'पासनाह चरिउ' में भगवान् पार्श्वनाथ के मौलिक प्रसंगों को उट्टंकित किया है। पार्श्वाभ्युदय काव्य, जिसके रचयिता आचार्य जिनसेन है, यह काव्य उत्तरपुराण से भी पहले का है, पर यह काव्य-ग्रन्थ है। इसकी रचना कालिदास के 'मेघदूत' की भांति हुई है। इस काव्य में "भगवान् पार्श्व" ध्यानावस्था में अवस्थित हैं और शम्बर देव उन्हें उपसर्ग प्रदान करता है, इसका चित्रण हुआ है। किन्तु जीवन वृत्त का परिचायक यह ग्रन्थ नहीं है। जिनरत्न कोष[4] से पता चलता है कि आचार्य मल्लीसेण ने भी महापुराण या त्रिषष्टिशलाका पुराण की रचना की है पर वह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। उसमें भी पार्श्व के जीवन के प्रसंग हैं।

---

1. The Sacred Books of the East, Vol. XLV, Introduction, page 21. "That Parsva was a historical person, is now admitted by all as very probable,............"
2. Indian Philosophy, Vol. I. p. 287.
3. The Uttaradhyayana Sutra, Introduction, p. 21 : "We ought also to remember that the Jain religion is certainly older than Mahavira, his reputed predecessor Parsva having almost certainly existed as a real person, and that, consequently, the main points of the original doctrine may have been codified long before Mahavira."
4. जिनरत्न कोष, लेखक—हरि दामोदर वेलनकर, पृ० १६२.

समवायांग में तीर्थंकरों के पूर्वभवों के नामों का कुछ उल्लेख हुआ है, उसका विकसित रूप हमें विमलसूरि रचित 'पउमचरियं' में मिलता है। विमलसूरि ने अन्तिम दो भवों से पहले भव का विवरण प्रस्तुत किया है। सभी तीर्थंकरों के उस भव से सम्बधिन्त जन्म, नगरियों के नाम, स्वयं के नाम, गुरुओं के नाम तथा उनके अग्रिम देवभवों के नाम बताये गये हैं।[1] इस तीसरे भव के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्वभव से सम्वन्धित कोई भी विवरण 'पउमचरियं' में नहीं है। समवायांग में चौबीस तीर्थंकरों के नाम आये हैं, उनमें से कुछ ही नाम उसमें मिलते हैं, शेष नाम पृथक् हैं। जैसे—'समवायांग' में पार्श्व का नाम 'सुदर्शन' है, जबकि 'पउमचरियं' में 'आनन्द' है। समवायांग के "सुदर्शन" नाम का विवरण अन्य किसी भी पार्श्व चरित्र में में नहीं मिलता है।

विमलसूरि रचित पउमचरियं के समान ही आचार्य रविषेण ने भी पद्मपुराण में पार्श्वनाथ का विवरण दिया है।

पूर्वभवों का सर्वप्रथम व्यवस्थित उल्लेख श्वेताम्बर परम्परा में 'चउपन्न महापुरिस चरियं' में है तथा दिगम्बर परम्परा में 'उत्तरपुराण' में है। फिर उसके बाद रचित ग्रन्थों में प्रायः उन्हीं का अनुसरण हुआ है।

समवायांग और कल्पसूत्र में पार्श्व का नामकरण किस कारण हुआ? इसकी कोई सूचना वहाँ पर नहीं है। आवश्यकनिर्युक्ति में सर्वप्रथम इसके निमित्त की चर्चा की गई है। वहाँ लिखा है—"सप्पं सयणे जणणी तं पासइ तमसि तेण पास[2] जिणो।"

आचार्य हरिभद्र[3] ने प्रस्तुत विषय पर विस्तार से चिन्तन करते हुए लिखा है कि पार्श्व की माता वामा भगवान् के गर्भ में आने पर स्वप्न में नाग देखती है तथा पार्श्वनाथ के दिव्य प्रभाव से अन्धकार में भी सन्निकट में से निकलते हुए सर्प को देखती है, इसलिए भगवान् का नाम 'पार्श्व' रखा गया। आचार्य हेमचन्द्र,[4] भावदेव,[5] विनयविजय[6] जी आदि ने नामकरण में 'पार्श्व' में जाते हुए सर्प को देखा, इसलिए उनका नाम पार्श्व हुआ, ऐसा स्पष्ट उल्लेख किया है। उत्तरपुराण,[7] पासनाहचरिउ[8] प्रभृति ग्रन्थों में इन्द्र ने बालक का नाम 'पार्श्व' रखा, ऐसा उल्लेख है। दिगम्बर ग्रन्थों में सर्प के देखने का उल्लेख नहीं है और न उसका नाम के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है।

पार्श्वनाथ के गृहस्थ जीवन की दो मुख्य घटनायें हैं। प्रथम घटना है—कुशस्थलपुर का युद्ध और प्रभावती के साथ विवाह; और दूसरी घटना है—कमठ के साथ विवाद और नाग का उद्धार।

कुशस्थलपुर युद्ध के लिए जाने का वर्णन न आगम ग्रन्थों में है और न चउपन्न महापुरिस चरियं में ही है। सर्वप्रथम पद्मकीर्ति रचित पासनाहचरिउ में तथा देवभद्र सूरि रचित पासनाहचरियं में यह वर्णन मिलता है। पर दोनों ग्रन्थों में श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा-भेद होने से कथानक में ही मतभेद होना स्वाभाविक है। आचार्य शीलांक ने कुशस्थलपुर जाने का वर्णन नहीं किया है, किन्तु उन्होंने प्रभावती के साथ पार्श्व का विवाह होना बताया[9] है। दिगम्बर आचार्य पद्मकीर्ति के अनुसार प्रभावती के साथ पार्श्व का विवाह सम्बन्ध स्वीकृत होता है[10] पर उसी समय कुशस्थलपुर में ही कमठ और नाग की घटना

---

१. पउमचरियं २०/१-२५. डा० हरमन जेकोबी इसकी रचना तीसरी शताब्दी मानते हैं। ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचना-काल वीर नि० सं० ५३० अर्थात् ई० सन् ३ बताया है। पर सभी विज्ञों में एकमत नहीं।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १०९१.

३. आवश्यकनिर्युक्ति, हरिभद्रियावृत्ति, पृ० ५०६.

४. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित, ९/३/४३-४४.

५. पार्श्वनाथ चरित्र, सर्ग ५.

६. कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका, पृष्ठ २०३.

७. जन्माभिषेक कल्याण पूजा निर्वृत्यनन्तरम् पार्श्वाभिधानं कृत्वास्य पितृभ्यां तं समर्पयन्!

—उत्तरपुराण ७३/९२, पृष्ठ ४३५.

८. पासनाहचरिउ, पद्मकीर्ति ८/२३/७०.

९. एत्थावसरम्मि य सयलगुणगणालंकियसविसेसीकयर, वसोहग्गाइसयस्स भयवओ पसेणइणा अच्चन्तसोहग्गसालिणी पहावती णाम णिययधूया पणामिया।

—चउपन्नमहापुरिसचरियं, पृ० २६१.

१०. जोवसियइ बहु-गुण कहिउ लग्गु। परणाहहो तं णिय-चित्ति लग्गु॥
गउ वियसिय-वयणु खणेण तित्थु। अच्छइ धवलहरि कुमारु जित्थु॥
करि लेयि णरिंदे वुत्तु देउ। महु कण्ण परिणि करि वयणु एउ॥ पडिवण्णु कुमारे एउ होउ॥ —पासणाहचरिउ, १३/९.

घटित होने से पार्श्व प्रभावती से विवाह न कर वे विरक्त हो जाते हैं।[1] जबकि देवभद्रसूरि ने विवाह होना माना है। पार्श्वनाथ के जितने भी अन्य चरित्र ग्रन्थ हैं, उन सभी में कमठ और नाग की घटना वाराणसी में मानी है। केवल पद्मकीर्ति ने ही वह कुशस्थलपुर में मानी है।

कमठ-विवाद का प्रसंग सर्वप्रथम हमें चउपन्न महापुरिस चरियं और उत्तरपुराण में प्राप्त होता है। दोनों में अन्तर यही है कि आचार्य शीलांक ने तो अग्नि में जलते काष्ठ में नाग को पीड़ित होते बताया है,[2] जबकि गुणभद्र ने काष्ठ को चीरने पर नाग-नागिन को पीड़ित होते बताया है।[3] आचार्य हेमचन्द्र[4] ने तथा भावदेव[5] सूरि ने शीलांकाचार्य का अनुसरण किया है। पद्मकीर्ति[6] ने पासनाहचरिउ में केवल एक नाग को ही जलते बताया है, जबकि वादिराज[7] सूरि ने पार्श्वनाथ चरित्र मे नाग-युग्म का धरणेन्द्र-पद्मावती के रूप में उल्लेख किया है। दोनों ही परम्पराओं के अर्वाचीन ग्रन्थों में नाग-नागिन और धरणेन्द्र पद्मावती का उल्लेख हुआ है। कितने ही लेखकों ने यह लिखा है कि नागिन मर कर धरणेन्द्र की स्त्री पद्मावती देवी बनी।[8] पर स्थानांग,[9] भगवती,[10] ज्ञाता सूत्र[11] में धरणेन्द्र नागराज की १. आला २. शक्रा ३. सतेरा ४. सौदामिनी ५. इन्द्रा ६. घनविद्युता, ये छह अग्रमहिषियां बताई गई हैं, उनमें पद्मावती का नामोल्लेख नहीं है।

जिस प्रकार इन्द्रों के नाम शाश्वत हैं, उनमें परिवर्तन नहीं होता वैसे ही अग्रमहिषियों के नाम भी शाश्वत हैं। ज्ञाता-सूत्र के अनुसार वर्तमान में धरणेन्द्र की जो अग्रमहिषियाँ हैं, वे भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में बनी हैं। अग्रमहिषियों की स्थिति अर्धपल्योपम से भी अधिक बताई है।[12] इससे यह स्पष्ट है कि धरणेन्द्र के पूर्व जो अग्रमहिषियाँ थीं, वे सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ के समय बनी होंगी, इसलिए वे भगवान् पार्श्व के गृहस्थाश्रम तक जीवित थीं।[13]

आचार्य हेमचन्द्र[14] और भावदेव[15] ने भगवान् पार्श्व के शासनदेव का नाम 'पार्श्व यक्ष' दिया है तथा शासनदेवी का नाम 'पद्मावती यक्षिणी' दिया है। कहीं कहीं पर धरणेन्द्र और पार्श्व ये दोनों एकार्थक रूप में व्यवहृत हुए हैं।[16] लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ[17] तथा हार्ट ऑफ जैनिज्म[18] में भी धरणेन्द्र और पद्मावती को शासनदेव और शासनदेवी

---

१. पासणाहचरिउ, १३/९-१३, २. चउपन्नमहापुरिस चरियं, पृष्ठ २६१ ३. उत्तरपुराण ७३/१०१-१०३.
४. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, अँग्रेजी अनुवाद, खण्ड ५, पृ० ३६१-३६२.
५. पार्श्वनाथ चरित्र, सर्ग छठा ६. पासनाह चरिउ
७. परिणमदनलामपाकजात-श्रम भरितं भुजंग प्रियासमेतम्।
जिनवररविरुदयन् स्वाधाम्वा सकलमपास्य तताप तापसम्य ॥८४॥
परिगतदहनं व्युदस्य देहं भुजगपति भवेन बभूव देवः।
समजनि भुजगी च तस्य देवी-वदलत्कोमल नीलनीरजाक्षी ॥८६॥
पद्मावती च धरणश्च कृतोपकारं तत्काल जातमवधि प्रणिधायवुद्ध् वा।
आनम्र मौलिकचिरञ्छ विचर्चिताघ्रि-मानर्चतुः सुरतरुप्रसवैर्जिनेन्द्रम् ॥८७॥
—श्री पार्श्वनाथ चरितं, सर्ग १०२, श्लोक ८४, ८६, ८७.
८. उत्तरपुराण ७३/११८-११९, पृष्ठ ४३६-४३७.
९. धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा—आला, सक्का, सतेरा, सोयामणा, इन्दा, घणविज्जुया। —स्थानांग सूत्र ३५, घासीलाल जी, म० द्वारा सम्पादित, भा० ४, पृ० ३७१.
१०. धरणस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तंजहा—१. इला २. सुक्का ३. सतारा ४. सोदामिणी ५. इन्दा ६. घणविज्जुया।
—भगवती, शतक १०, उद्देशक ५, खण्ड ३, पृष्ठ १०१.
११. ज्ञातासूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंध, तृतीय वर्ग, पृ० ६०६. प्रकाशक—तिलोक रत्न स्था० परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी.
१२. णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ सातिरेगअद्धपलिओवमठिई। —ज्ञातासूत्र, द्वि० श्रुतस्कंध,२/३/पृ० ६०६.
१३. समर्थ समाधान, भाग १ला, पृष्ठ ६५.
१४. (क) त्रिषष्टि—९/३/पृष्ठ ४८६-४८७. गुजराती। (ख) अभिधान चिन्तामणि ४३.
१५. पार्श्वचरित, सर्ग ७, श्लोक ८२७. १६. श्री पार्श्वचरित सर्ग ६, श्लोक १९०-१९४.
१७. लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ, फुटनोट, पृ० ११८, १६७. १८. हार्ट ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ ३१३.

माना है । वादिराज सूरि विरचित पार्श्वनाथ चरित[1] तथा बृहद् पद्मावती स्तोत्र[2] में भी यह वर्णन है । मेरी दृष्टि से लेखकों ने भूल से ऐसा किया है क्योंकि पद्मावती को यक्षिणी और धरणेन्द्र को यक्ष लिखा गया है । यक्ष और यक्षिणी यह वाणव्यन्तर देवों का ही एक प्रकार है ।[3] जबकि धरणेन्द्र भवनपति के इन्द्र हैं ।[4] इसलिए पद्मावती यक्षिणी उनकी देवी किस प्रकार हो सकती है ? वाणव्यन्तर की देवी भवनपतियों की देवी नहीं बन सकती, अतः प्रस्तुत कथन आगमसम्मत नहीं है । आगमज्ञों के लिए चिन्तनीय है ।

चउपन्नमहापुरिस चरियं[5] में लिखा है कि एक बार पार्श्वकुमार बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के भीति-चित्रों का अवलोकन कर रहे थे । अवलोकन करते-करते उनके अन्तर्मानस में वैराग्य भावना जागृत हुई । उत्तरपुराण[6] में लिखा है कि भगवान् पार्श्व जब गृहस्थाश्रम में थे, तब अयोध्या का दूत वाराणसी आया, उस दूत ने भगवान् ऋषभदेव का वर्णन सुनाया, जिससे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ । आचार्य देवभद्र सूरि ने पासनाह चरिउं[7] में शीलांक का ही अनुकरण किया है । पद्मकीर्ति[8] के अभिमतानुसार कमठ और नाग की घटना उनके वैराग्य का निमित्त बनी । आचार्य हेमचन्द्र[9] और वादिराज[10] सूरि ने उनके वैराग्योत्पत्ति का कोई कारण नहीं दिया है । आधुनिक श्वेताम्बर साहित्य में शीलांक का विशेष रूप से अनुसरण हुआ है ।

समवायांग और कल्पसूत्र में कमठ कृत उपसर्गों की बिल्कुल चर्चा नहीं है । पर चउपन्नमहापुरिसचरियं,[11] श्री पासनाह चरियं,[12] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[13] में यह घटना आई है ।

कमठ तापस मरकर मेघमाली देव बना । विभंगज्ञान से भगवान पार्श्व को ध्यान मुद्रा में देखकर उसका अहंकार जागृत हो उठा । इसने मुझे पूर्वभव में पराजित किया था । अब मैं इसे पराजित कर अपनी शक्ति प्रदर्शित करूँ ! उसने सर्प, बिच्छू आदि के विविध रूप बनाकर भगवान् को भयंकर यातनायें दीं, किन्तु वे मेरु की तरह अडोल रहे । तब खिसिया कर भयंकर गर्जना करते हुए अपार जल की वृष्टि की ।[14] नासाग्र तक पानी आ जाने पर भी पार्श्व ध्यान से विचलित नहीं हुए ।[15] धरणेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से मेघमाली के उपसर्ग को देखा । सात फनों का छत्र बनाकर मेघमाली देव के उपसर्ग का निवारण किया ।[16]

भक्ति भावना से विभोर होकर धरणेन्द्र ने भगवान् की स्तुति की । पर समतायोगी भगवान् पार्श्व न धरणेन्द्र पर तुष्ट हुए और न कमठ के जीव पर रुष्ट ही हुए । यही कारण है कि आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है[17]—

"कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचिते कर्म कुर्वति । प्रभोस्तुल्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः" ।।

धरणेन्द्र के भय से भयभीत बना हुआ मेघमाली प्रभु के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमायाचना करने लगा ।

---

१. पद्मावती जिनमतस्थितिमुन्नयती, किं नैव तत्सदसि शासनदेवतासीत् ।
तस्याः पतिस्तु गुणसंग्रहदक्षचेता, यक्षो बभूव जिनशासनरक्षणज्ञः ।।

—श्री पार्श्वनाथ चरितम् १२/४२, पृष्ठ १९३.

२. पातालाधिपति प्रिया प्रणयिनी चिन्तामणि प्राणिनां । श्री मत्पार्श्वजिनेश शासन-सुरी पद्मावती देवता ।।

—बृहद् पद्मावती स्तोत्र २२.

(प्रकाशक—माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, बम्बई)

३. स्थानांग-समवायांग, पृष्ठ ४५५.
४. स्थानांग-समवायांग, पृष्ठ ४८१.
५. चउपन्नमहापुरिस चरियं, पृष्ठ २६३.
६. उत्तरपुराण ७३/१२०-१२४.
७. पासनाह चरिउ १६२.
८. पासनाह चरिउ १३/१२.
९. त्रिषष्टि० ९/३/२३१.
१०. पार्श्वनाथ चरित्र ११वाँ सर्ग, श्लोक १-५५.
११. चउपन्नमहापुरिस चरियं २६६.
१२. श्री पासनाह चरियं ३/१९१.
१३. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र ९/३
१४. सिरि पासनाह चरियं—देव०, ३/१९२.
१५. सिरि पासनाह चरियं ३/१९३.
१६. (क) चउपन्नमहापुरिस चरियं २६७.
(ख) सिरिपासनाहचरियं ३/१९३.
१७. त्रिषष्टि० पर्व ९, सर्ग १, श्लोक २५.

चउपन्नमहापुरिस चरियं,[१] सिरि पासनाह चरियं,[२] त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र[३], पद्मकीर्तिकृत पासनाह चरिउ[४] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों में विघ्नकर्ता का नाम मेघमालिन् दिया है। उत्तरपुराण,[५] पुष्पदन्त कृत महापुराण और रइधू के पासचरिय में विघ्न उपस्थित करने वाले का नाम 'शम्बर' दिया है। वादिराज[६] ने उसका नाम 'भूतानन्द' लिखा है। आचार्य सिद्धसेन[७] दिवाकर ने लिखा है—हे स्वामिन्! उस शठ कमठ ने जो धूलि आप पर फेंकी, वह धूलि आपकी छाया पर भी आघात नहीं पहुँचा सकी।[८]

पद्मकीर्ति[९] के अनुसार भगवान् पार्श्व को जब कमठ उपसर्ग दे रहा था, तब उनको केवलज्ञान हुआ। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार कमठ के उपसर्ग के कुछ दिनों बाद भगवान् पार्श्व को केवलज्ञान हुआ।[१०]

समवायांग और कल्पसूत्र के अनुसार पार्श्व के प्रथम शिष्य 'दिन्न' [आर्यदत्त] हुए तथा प्रथम शिष्या 'पुष्पचूला' हुई।[११] प्रथम श्रावक सुनन्द तथा प्रथम श्राविका सुनन्दा हुई। दिगम्बर परम्परा के अनुसार प्रथम शिष्य का नाम 'स्वयंभू' है और प्रथम शिष्या का नाम 'सुलोका' या 'सुलोचना' है।[१२] पद्मकीर्ति के अनुसार प्रथम शिष्या का नाम प्रभावती है।[१३]

स्थानांग,[१४] समवायांग[१५] और कल्पसूत्र[१६] के अनुसार भगवान् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर थे। उनके नाम इस प्रकार है—१. शुभ २. शुभघोष ३. वसिष्ठ ४. ब्रह्मचारी ५. सोम ६. श्रीधर ७. वीरभद्र और ८. यश। आवश्यक निर्युक्ति[१७] आवश्यक[१८] मलयगिरी वृत्ति, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र,[१९] सिरि पासनाह चरिउ,[२०] तिलोयपण्णत्ति[२१] ग्रन्थों में भगवान् पार्श्व के दस गणधर लिखे हैं। उनके नामों में भी अन्तर है। उदाहरण के रूप में, द्वितीय गणधर का नाम कल्पसूत्र में 'आर्यघोष' हैं, तो समवायांग में 'शुभघोष' है। कल्पसूत्र में प्रथम गणधर का नाम 'शुभ' है तो श्री पासनाह चरियं में 'शुभदत्त' है। गणधरों की संख्या के सम्बन्ध में उपाध्याय विनयविजयजी[२२] ने यह समाधान दिया है कि भगवान पार्श्वनाथ के दो गणधर अल्प आयुष्य वाले थे, इसलिए समवायांग और कल्पसूत्र में आठ गणधरों का उल्लेख हुआ है। अन्य ग्रन्थों में दस गणधरों का उल्लेख हुआ है।

आवश्यकनिर्युक्ति[२३] के अनुसार भगवान् पार्श्व मुख्य रूप से अंग, बंग, तथा मगध में विचरे थे। पर भारत के दक्षिण-पश्चिम अंचल को भी उन्होंने स्पर्श किया था। भगवान् पार्श्व ने कर्नाटक से सौराष्ट्र तक एवं अनार्य देशों में भी विहार

---

१. चउप्पन्न० २६६.
२. ताव पुव्वुत्तकढो, मेहकुमारत्तणेण वट्टंतो! —सिरिपास० ३/१६१.
३. त्रिषष्टि० ६/३.
४. तं पेक्खेवि धवलुज्जलु थक्कउ अविचलु मेहमल्लिभडु कुद्धउ। —पासणाह चरिउ १४/५/११६.
५. उत्तरपुराण ७३/१३६-१३७.
६. श्री पार्श्वनाथ चरित्र १०/८८.
७.—८. कल्याणमन्दिर स्तोत्र ३१.
९. पासणाह चरिउ १४/३०/१३२.
१०. भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १०४-१०५—ले० देवेन्द्रमुनि
११. (क) समवायांग १५७, गा० ३९-४१. (ख) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ। —कल्पसूत्र १५७.
(ग) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओसुनन्दपामोक्खाणं····सुनन्दापामोक्खाणं····!—कल्पसूत्र १५७
(घ) समवायांग १५७/४२-४.
१२. (क) तिलोयपण्णत्ति ४/९६६, पृष्ठ २७१. प्र० भाग (ख) पासणाह चरिउ १५/१२/१३८.
(ग) तिलोयपण्णत्ति ४/११/८०.
१३. तहो दुहिय पहावइ वर-कुमारि। अवयरिय जुवाणहं णाइ मारि। सा अज्जिय संघहो वर-पहाण············ —पासणाह चरिउ, १५/१२/१३८.
१४. स्थानांग, ६१७.
१५. समवायांग ८/८
१६. कल्पसूत्र १५६, पृष्ठ २२३.
१७. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २९०.
१८. आवश्यक मलयगिरी वृत्ति, पत्र २०९.
१९. त्रिषष्टि० ९/३.
२०. (क) सिरि पासणाह चरियं ४/२०२.
(ख) पार्श्व चरित्र ५/४३७-४३८
२१. तिलोय पण्णत्ति
२२. द्वौ अल्पायुष्कत्वादिकारणान्नोक्तौ इति टिप्पणके व्याख्यातम्। —कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका, पृ० ३०१.
२३. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २५६.

किया था। सकलकीर्ति[1] की दृष्टि से भगवान् पार्श्व का विहार-क्षेत्र इस प्रकार रहा—कुरु, कौशल, काशी, सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालव, अंग, वंग, कलिंग, पांचाल, मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्णाटक, कोंकण, मेवाड़, लाट, द्राविड़, काश्मीर, कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स, आभीर आदि देशों में उन्होंने विहार किया था। अन्य आचार्यों ने[2] भी इसी प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ के विहार का वर्णन किया है। भगवान् पार्श्व शाक्य द्वीप में पधारे थे। शाक्य भूमि नेपाल की उपत्यका में थी। वहाँ पर पार्श्वनाथ के अत्यधिक अनुयायी गण रहते थे। तथागत बुद्ध के चाचा भगवान् पार्श्व के अनुयायी श्रावक थे।[3] प्राचीन काल से भारत और शाक्य प्रदेश में अत्यन्त मधुर सम्बन्ध रहे हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ भगवान् पार्श्व का परिनिर्वाण सम्मेत शिखर मानते हैं, जो पर्वत आज भी बिहार राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित है और 'पार्श्वगिरी' के नाम से विश्रुत है।[4] उसके निकटस्थ रेलवे का नाम भी पारसनाथ है।

भगवान् महावीर :

श्रमण भगवान् महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी था। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक मूलभूत समस्याओं का मौलिक समाधान किया था। जिस समय ईरान में जरथोस्त्र, फिलिस्तीन में जीरेमिया, तथा ईजकिल, चीन में कन्फ्यूशियस एवं लाओत्से, यूनान में पाइथागोरस, अफलातून और सुकरात आदि विविध चिन्तक अपना चिन्तन प्रस्तुत कर रहे थे, उसी समय भारत में पूरण कश्यप, मंखली गोशालक, अजित केसकम्बली, प्रकुद्ध कात्यायन, संजय-विरट्ठीपुत्र, तथागत बुद्ध, आदि विचारक तात्कालिक समस्या का समाधान कर रहे थे।

उस समय वैदिक संस्कृति में उच्छृंखलता, अमानवीयता एवं घनघोर अहंकार के मद में क्रूरता प्रदीप्त थी। यज्ञ में मूक पशु-पक्षी और निरपराधी नर-नारी तथा शिशु समुदाय को समर्पित किया जा रहा था। **"यज्ञार्थम् पशवः स्रष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा"** तथा **"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"**—इस प्रकार के अनुचित नारे लगाकर यज्ञ आदि अनुष्ठानों का औचित्य प्रगट किया जा रहा था। जातिवाद एवं वर्गवाद की सीमायें अत्यन्त संकीर्ण हो गई थीं। शूद्र वर्ग को पतित माना जाता था। वेदाध्ययन का उसे अधिकार नहीं था। यदि वेद के शब्द उनके कर्ण कुहरों में गिर जाते तो उनके कानों में शीशा भर दिया जाता तथा वेद के शब्दोच्चार होने पर जिह्वा छेदन कर देते थे। इस प्रकार जन-जीवन के साथ खिलवाड़ की जा रही थी। यज्ञ-हिंसा के साथ जातिगत हिंसा भी कम नहीं थी। गरीब-अमीर तथा दास और स्वामी आभिजात्य और निम्न वर्गों के बीच गहरी खाई पैदा हो गई थी। सम्पूर्ण समाज में कुण्ठा थी। उस समय भगवान् महावीर का जन्म होता है।

महावीर के जीवन में गर्भापहरण की घटना प्राचीनतम आगम ग्रन्थों में मिलती है।[5] मथुरा में प्राप्त एक प्लेट क्रमांक १८. पर भी डा० बूलर ने "भगवानेमेसो" पढ़ा है, जो भगवान् महावीर के गर्भ-परिवर्तन का सूचक है।[6] प्रस्तुत ग्रन्थ में यह घटना विस्तार से निरूपित है। बयासी रात्रि व्यतीत होने पर इन्द्र के आदेश से हरिणैगमेषी देव ने देवानन्दा की कुक्षी से संहरण कर उन्हें त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षी में प्रस्थापित किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ। आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य, आदि प्राचीन साहित्य में महावीर के द्वारा मेरु कम्पन का उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम पउमचरियं में विमलसूरि ने लिखा है—मेरुपर्वत को अपने अँगूठे से क्रीड़ा मात्र में भगवान् ने हिला दिया था, इसलिए सुरेन्द्रों ने उनका नाम 'महावीर' रखा।[7] उसके पश्चात् आचार्य शीलांक,[8] आचार्य नेमिचन्द्र,[9] आचार्य गुणचन्द्र,[10] आचार्य हेमचन्द्र[11] और कल्पसूत्र की विविध टीकाओं में विस्तार से इस प्रसग को लिखा है।

---

१. सकलकीर्ति—पार्श्वनाथ चरित्र २३/१८-१९, १५/७६-८५.
२. (क) पार्श्वनाथ चरित, सर्ग १५/७६-८५. (ख) त्रिषष्टि०—९/४ पृ० २९३-३०८ (गुजराती अनुवाद)
   (ग) सिरिपासणाहचरियं सर्ग ८.
३. अंगुत्तरनिकाय की अट्ठ कथा, भाग २, पृ० ५५९.
४. भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन—ले० देवेन्द्रमुनि "शास्त्री"
५. (क) स्थानांग ७७०. (ख) समवायांग ८३. (ग) आचारांग २/१५. (घ) भगवती, शतक ५, उद्दे० ४.
६. The Jain Stupa and other Antiquities of Mathura, p. 25.
७. आकम्पिओ य जेणं, मेरु अंगुट्ठएण लीलाए। तेणेह महावीरो, नामं सि कयं सुरिन्देहिं ॥—पउमचरियं २/२६, पृ० १०.
८. चउप्पन्न महापुरिस चरियं, २७१ पृष्ठ
९. महावीर चरियं, गा० १-३४, पृष्ठ ३०-३१.
१०. महावीर चरियं, गा० १-३, तथा पृष्ठ १२०-१२१.
११. त्रिषष्टि० १०/२/५८-६६.

विमलसूरि तथा दिगम्बर आचार्य रविषेण इन दोनों ने प्रस्तुत प्रसंग के साथ भगवान् महावीर के नामकरण का सम्बन्ध भी जोड़ा है, किन्तु अन्य आचार्यों ने नहीं। पं० सुखलाल जी सिंघवी ने भागवत् में आये हुए श्रीकृष्ण के जीवन के उस प्रसंग के साथ तुलना की है कि श्रीकृष्ण ने इन्द्र के द्वारा किये गये उपद्रवों से रक्षण करने के लिए योजन प्रमाण गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक ऊपर उठाये रखा।[1] किन्तु जन्मते हुए महावीर ने अंगूठे से मेरुपर्वत को कंपा दिया।[2]

बौद्ध परम्परा के मज्झिमनिकाय ग्रन्थ में वर्णन है—भिक्षु मौद्गल्यायन ने वैजयन्त प्रासाद को अंगुष्ठ-स्पर्श से प्रकम्पित कर इन्द्र को प्रभावित किया।[3] इस तरह मेरु-कम्पन, गोवर्द्धन-धारण एवं प्रासाद-कम्पन की घटनायें उस युग में अपने-अपने आराध्य पुरुषों के सामर्थ्य, पराक्रम और ऐश्वर्य की प्रतीक बन गई थीं। राजा सिद्धार्थ ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। डा० हॉर्नेल,[4] डा० जेकोबी,[5] ने अपने लेखों में सिद्धार्थ को राजा न मान कर एक प्रतिष्ठित उमराव व सरदार माना है। उनका यह मानना आगम-सम्मत नहीं है। आचारांग एवं कल्पसूत्र आदि में 'सिद्धत्थे खत्तिए' शब्द का प्रयोग हुआ है, लगता है जिसके कारण उनको यह भ्रम पैदा हुआ हो। क्षत्रिय का अर्थ सामान्य क्षत्रिय ही नहीं, अपितु राजा भी है। अभिधान चिन्तामणि में कहा है—क्षत्रिय, क्षत्र आदि शब्दों का प्रयोग राजा के लिए भी होता है।[6] प्रवचनसारोद्धार में 'महसेणे य खत्तिए' शब्द आया है। वहाँ टीकाकार ने क्षत्रिय का अर्थ राजा किया है।[7]

आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य आदि में वर्णन है—भगवान् महावीर का जन्म होने पर देवों ने स्वर्ण, रत्न आदि सिद्धार्थ राजा के घर पर लाकर रखे तथा जृम्भक देवों ने भी रत्न आदि की वृष्टि की, इसलिए भगवान् का नाम 'वर्धमान' हुआ, ऐसा उल्लेख नहीं है। पर आचारांग,[8] महावीर चरियं,[9] चउपन्नमहापुरिस चरियं[10], त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[11] आदि के वर्णन से यह स्पष्ट है, कि निरन्तर धन-धान्य की अभिवृद्धि होने से उनका नाम 'वर्धमान' रखा गया। वे किसी भी प्रकार के भय उत्पन्न होने पर भी विचलित नहीं हुए। इसलिए उनका दूसरा नाम 'महावीर' हुआ। आचारांग,[12] कल्पसूत्र,[13] आवश्यकनिर्युक्ति,[14] महावीर चरियं,[15] त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[16] आदि में भी इसका समर्थन है।

वर्धमान, महावीर, सन्मति, काश्यप, समण, ज्ञातपुत्र, विदेह, वैशालिक आदि विविध नाम अनेक ग्रन्थों में प्राप्त हैं।[17]

---

१. भागवत, दशमस्कंध, अ० ४३, श्लोक २६-२७. २. चार तीर्थंकर पं० सुखलाल जी, पृष्ठ ६०.

३. मज्झिमनिकाय, चूलतण्हासंखयसुत्त।

४. 'महावीर तीर्थंकरनी जन्मभूमि' लेख—जैन साहित्य संशोधक, खण्ड १, अंक ४, पृष्ठ २१६.

५. 'जैन सूत्रोनी प्रस्तावना का अनुवाद'—जैन साहित्य संशोधक, खण्ड १, अंक ४, पृष्ठ ७१.

६. क्षत्रं तु क्षत्रियो राजा, राजन्यो बाहुसंभवः। —अभिधान चिन्तामणि, काण्ड ३, श्लोक ५२७.

७. (क) प्रवचनसारोद्धार सटीक पत्र ८४. (ख) चन्द्रप्रभस्य महासेनः क्षत्रियो राजा। —प्रवचनसारोद्धार, सटीक पत्र ८४.

८. चूलिका २/१५/१२-१३.

९. (क) महावीर चरियं, गुणचन्द्र, प्र० ४, पृष्ठ ११४-१२४ (ख) महावीर चरियं ७७०, पृष्ठ ३४, नेमिचन्द्र

१०. चउप्पन्न० पृष्ठ २७१. ११ त्रिषष्टि० १०/२/९८-९९.

१२. 'भीमं भयभेरवं उरालं अवेलयं परिसहं सहइ त्ति कट्टु, देवेहिं से णामं कयं 'समणे भगवं महावीरे।' —आयारो० आयार० २।१५-१६

१३. अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खंतिखए पडिमाणं पालए धीयं अरतिरति सहे दविए वीरियसम्पन्ने देवेहिं से णामं कयं 'समणे भगवं महावीरे'! —कल्पसूत्र १०४.

१४. (क) घोरं परीसहचमुं अधियासित्ता महावीरो। —आवश्यकनिर्युक्ति ४२०
(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९७२ (ग) आ० हरिभद्रीय० ५३७

१५. महावीर चरियं ४/१२५.

१६. महोपसर्गेरप्येष न कम्प्यं इति वज्रिणा। महावीर इत्यपरं नाम चक्रे जगत्पतेः॥ —त्रिषष्टि० १०/२/१००.

१७ भगवान् महावीर : एक अनुशीलन—ले० देवेन्द्रमुनि "शास्त्री", पृष्ठ २३८-२५८.

भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वापत्य श्रमणोपासक थे। जीवन की सांध्य वेला में संलेखना सहित आयु पूर्ण कर वे देव बने। आचारांग तथा कल्पसूत्र में उनके तीन-तीन नाम आये हैं एवं पारिवारिक जनों के नाम भी वर्णित है। महावीर वार्षिक दान देकर बड़े ही उल्लास के क्षणों में एकाकी दीक्षित होते हैं।[1] दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। एक संवत्सर से अधिक मास तक भगवान् वस्त्र-धारी रहे। उसके बाद वे अचेलक बन गये। उन्होंने नाना प्रकार के अभिग्रह ग्रहण किये। जो भी मनुष्य, देव तथा तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उपस्थित हुए, उन्हें शान्तभाव से प्रभु ने सहन किये। आचारांग आदि में केवल उपसर्गों का संकेत है किन्तु कौन-कौन से उपसर्ग उन्हें साधना-काल में उपस्थित हुए, इसका किंचित् मात्र भी वर्णन नहीं है। सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति एवं आवश्यकचूर्णि आदि में उनके विविध उपसर्गों का क्रमबद्ध वर्णन है। सर्वप्रथम ग्वाला बैल गुम जाने से भगवान् को चोर समझ कर बैलों को बांधने की रस्सी से उन्हें मारने दौड़ा। इन्द्र ने, प्रभु से, साथ में रहने की प्रार्थना की, किन्तु महावीर ने उसकी प्रार्थना को यह कहकर टाल दिया कि आत्म सिद्धि या मुक्ति दूसरों के सहारे प्राप्त नहीं हो सकती। शूलपाणि यक्ष ने भी प्रभु को रोमांचकारी कष्ट दिये। प्रथम बार इतने कष्ट एक साथ आये, जिससे उन्हें कुछ थकान महसूस हुई; और भगवान् को दश स्वप्न आये। उन दश स्वप्नों का उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है। ये दश स्वप्न भगवान के भावी जीवन को प्रतिबिम्बित कर रहे थे।

अंगुत्तरनिकाय[2] में तथागत बुद्ध ने भी अपने साधना काल की अन्तिम रात्रि में पाँच स्वप्न देखे, जिनका सम्बन्ध उनके भावी जीवन से था। बुद्ध ने स्वप्न में देखा—मैं एक महापर्यंक पर सोया हुआ हूँ, मैंने हिमालय का उपधान [तकिया] लगा रखा रखा है। बायें हाथ से मैं पूर्वी समुद्र को छू रहा हूँ और दायें हाथ से पश्चिमी समुद्र को स्पर्श कर रहा हूँ। मेरे पैर दक्षिण समुद्र को छू रहे हैं। इस स्वप्न का अर्थ है—मुझे पूर्ण बोधि प्राप्त होगी।[3] बुद्ध ने दूसरे स्वप्न में देखा—"तिर्या" नामक एक वृक्ष उनके हाथ में पैदा हुआ और वह वृक्ष अनन्त आकाश को छूने लगा। इस स्वप्न का फल होगा—मैं अष्टाङ्गिक मार्ग का निरूपण करूँगा। तीसरे स्वप्न में उन्होंने देखा श्वेत कीट, जिसका सिरोभाग काला है, वह कीट मेरे घुटने तक रेंग रहा है। इसका अर्थ है श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों का शरणागत होना। बुद्ध ने चतुर्थ स्वप्न में देखा—रंग बिरंगे चार पक्षी चार दिशाओं से आ रहे हैं और वे पक्षी चरणों में गिर रहे हैं, गिरते ही वे श्वेत हो जाते हैं। इस स्वप्न का तात्पर्य है—चारों वर्ण वाले लोग मेरे पास दीक्षित होंगे तथा वे निर्वाण को प्राप्त करेंगे। पाँचवें स्वप्न में उन्होंने देखा—वे एक गोमय पर्वत पर चल रहे हैं, उस पर्वत पर वे न तो फिसल रहे हैं और न ही गिर रहे हैं। इस स्वप्न का फल यह होगा कि मैं भौतिक सुख-सुविधाओं के होने पर भी अनासक्त रहूँगा।

भगवान् महावीर ने साधना काल में दश स्वप्न देखे तो बुद्ध ने पाँच स्वप्न देखे। भगवती सूत्र आदि में यह स्पष्ट नहीं है कि वे स्वप्न साधना काल के कौन से वर्ष में देखे? कुछ लेखकों ने केवलज्ञान के पहले भगवान् महावीर ने दश स्वप्न देखे, यह उल्लेख किया है। आवश्यकनिर्युक्ति में भगवान् महावीर ने वे स्वप्न प्रथम वर्षावास के सोलहवें दिन देखें, ऐसा स्पष्ट संकेत है।[4] चण्डकौशिक को प्रतिबोध देने की घटना भी आचारांग तथा कल्पसूत्र आदि में नहीं है। आवश्यकचूर्णि,[5] महावीर चरियं-नेमीचन्द्र,[6] गुणचन्द्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[7] आदि में, चण्डकौशिक को महावीर के द्वारा प्रतिबुद्ध किया गया, यह वर्णन है। विनयपिटक महावग्ग में बुद्ध के द्वारा चण्डनाग विजय का उल्लेख है।[8] दोनों घटनाओं में बहुत कुछ समानता है। तथागत बुद्ध एक बार काश्यपजटिल के आश्रम में पहुँचे और उन्होंने कहा—काश्यप! मैं तुम्हारी अग्नि-शाला में निवास करना चाहता हूँ। काश्यप उरुवेल ने सनम्र निवेदन किया—भगवन्! मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु वहाँ पर अत्यन्त चण्ड, दिव्य शक्ति सम्पन्न आशीविष नागराज रहता है, जो आपको कहीं कष्ट न दे! तथागत बुद्ध ने उत्तर में कहा—वह नाग मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देगा। बहुत बार कहने पर पुरुवेल ने बुद्ध को वहाँ रहने की स्वीकृति प्रदान की। बुद्ध अपना आसन लगाकर वहाँ बैठ गये। नागराज बुद्ध को देखकर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह जहरीला धुआँ उगलने लगा। बुद्ध ने अपने विशिष्ट योग-बल से नागराज के चर्म, मांस, अस्थि, मज्जा को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये उसका सारा तेज खींच लिया। प्रातः उसे अपने पात्र में रखकर पुरुवेल काश्यप को दिखाते हुए कहा—अब यह नागराज पूर्णरूप से निर्विष हो गया है। यह नागराज

१. आचाराङ्ग २/१५/२६.
२. (क) अंगुत्तरनिकाय ३-२४०. (ख) महावस्तु २/१३६.
३. प्रस्तुत स्वप्न का फल भगवती में उसी जन्म में मोक्ष में मोक्ष-प्राप्ति माना है। —भगवती १६/६, सूत्र ५८०.
४. आवश्यकनिर्युक्ति, पृष्ठ २६९.
५. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २७८.
६. महावीर चरियं—नेमीचन्द्र ६६३—गुणचन्द्र ५/१४६.
७. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०/३/२२५-२२८
८. विनयपिटक महावग्ग, महाखंधक!

नमि राजर्षि :

श्रमण वही बनता है, जिसे बोधि प्राप्त हो। वह बोधि तीन प्रकार की है, जो स्वयं प्राप्त होती है वह "स्वयंबुद्ध" है, जिसे किसी घटना के निमित्त से बोधि प्राप्त होती है वह "प्रत्येकबुद्ध" है और जो बोधि प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधिलाभ करते हैं वे "बुद्धबोधित" हैं।[1] नमि राजर्षि प्रत्येकबुद्ध हैं।

विदेह राज्य में दो नमि हुए और वे दोनों स्वयं के राज्य का परित्याग कर श्रमण बने। एक तीर्थंकर हुए और एक प्रत्येकबुद्ध हुए।[2] सुदर्शनपुर में मणिरथ का राज्य था। युगबाहु उसका कनिष्ठ भ्राता था। मदनरेखा युगबाहु की पत्नी थी। मणिरथ ने माया से युगबाहु को मार डाला। उस समय मदनरेखा गर्भवती थी। शील रक्षा के लिए वह वन में चली गई। उसने वन में पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र को राजा पद्मरथ मिथिला ले गया और उसका नाम 'नमि' रखा। वह मिथिला का राजा बना। एक बार वह दाह-ज्वर से संत्रस्त हुआ। छह माह तक दाह-ज्वर की उपशान्ति के लिए विविध प्रकार के उपचार किये गये। स्वयं रानियाँ चन्दन घिसतीं और नमि के शरीर पर विलेपन करतीं। उनके हाथों में पहने हुए कंगनों की ध्वनि से नमि का सिर चढ़ गया। रानियों ने सौभाग्य-चिन्ह स्वरूप एक-एक कंगन हाथों में रखकर शेष कंगन उतार दिये।

नमि सोचने लगे—जहाँ दो हैं, वहाँ द्वन्द है, दुःख है। अकेलेपन में सुख है। विरक्तभाव आगे बढ़ा, वे प्रव्रजित हुए।[3] नमि को अकस्मात् प्रव्रजित होते देखकर इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर नमि को लुभाने के लिए प्रबल प्रयास करता है। उन्हें कर्त्तव्य-बोध का पाठ पढ़ाना चाहता है। नमि राजर्षि ब्राह्मण को अध्यात्म की गहरी बातें बताते हैं।

बौद्ध साहित्य में भी चार प्रत्येकबुद्धों का वर्णन है। पर उनके जीवन-चरित्र तथा बोधि-प्राप्ति के निमित्तों के उल्लेख में पृथकता है।[4] डिक्सनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स ग्रन्थ में[5] दो प्रकार के बुद्ध बताये हैं—प्रत्येकबुद्ध और सम्मासम्बुद्ध। जो अपने आप ही बोधि को प्राप्त करते हैं पर संसार को उपदेश प्रदान नहीं करते, वे "प्रत्येकबुद्ध" हैं। इन्हें उच्च आत्मदृष्टि पैदा होती है। वे जीवन पर्यंत अपनी उपलब्धि का वर्णन नहीं करते, इसलिए वे 'मौनबुद्ध' भी कहलाते हैं। वे दो हजार असंख्येय कल्प तक 'पारामी' की साधना करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और गाथापति के कुल में उन्हें समस्त ऋद्धि, सम्पत्ति, प्रतिसम्पदा उपलब्ध होती है। उनका तथागत बुद्ध से कभी साक्षात्कार नहीं होता। वे एक साथ अनेक हो सकते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में नमि की तरह ही प्रत्येकबुद्ध का प्रसंग है।[6] वह इस प्रकार है—

विदेह राष्ट्र में मिथिला नगरी का निमि नाम का राजा था।[7] गवाक्ष में बैठा हुआ राजा राज-पथ को निहार रहा था। एक चील मांस के टुकड़े को लेकर अनन्त आकाश में उड़ी जा रही थी। गिद्ध पक्षियों ने देखा, वे मांस के टुकड़े की छीना-झपटी करने लगे। चील के मुँह से मांस का टुकड़ा छूट गया। दूसरे पक्षियों ने उसे ग्रहण किया। अन्य पक्षी उसके पीछे पड़ गये। निमि राजा ने सोचा—जो कामभोगों को ग्रहण करता है, वह दुःख पाता है। मेरे सोलह हजार स्त्रियाँ हैं, मुझे काम-भोगों का परित्याग कर सुखपूर्वक रहना चाहिए।

नमि प्रव्रज्या की आंशिक तुलना हम "महाजनक जातक" से भी कर सकते हैं। वह प्रसंग इस प्रकार है—मिथिला नगरी में महाजनक राजा था। उसके अरिट्ठजनक और पोलजनक ये दो पुत्र थे। राजा की मृत्यु के बाद अरिट्ठजनक राजा हुआ। कुछ समय के बाद दोनों भाइयों में मनमुटाव हो गया। पोलजनक ने प्रत्यन्त ग्राम में जाकर सेना इकट्ठी की और भाई को युद्ध के लिए ललकारा। युद्ध में अरिट्ठजनक मारा गया। पति की मृत्यु से पत्नी को आघात लगा। वह राजमहल को छोड़कर निकल गई। वह गर्भवती थी, उसने पुत्र को जन्म दिया। पितामह के नाम पर उसका नाम भी महाजनक रखा। बड़े होने पर वह पिता के राज्य को लेने के लिए पहुँचा। पोलजनक की मृत्यु हो चुकी थी। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः महाजनक राजा बन गया। सीवलीकुमारी से उसका पाणिग्रहण हुआ। दीर्घायु नामक पुत्र हुआ। एक दिन महाजनक उद्यान में गये, वहाँ आम के

---

१. नन्दीसूत्र, सूत्र २०
२. दुन्निवि नमी विदेहा, रज्जाइं पयहिऊण पव्वइया।
एगो नमितित्थयरो, एगो पत्तेयबुद्धो अ॥ —उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा २६७
३. उत्तराध्ययन, सुखबोधावृत्ति, पत्र १३६ से १४३।
४. कुम्भजातक, सं० ४०८, जातक खण्ड ४, पृ० ३९। ५. डिक्सनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग २, पृष्ठ २९४।
६. कुम्भजातक, सं० ४०८, जातक खण्ड ४, पृष्ठ ३९।
७. देखिए —उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन—मुनि नथमल जी

दो वृक्ष थे। एक आम से लदा हुआ था और दूसरा ठूंठ की तरह खड़ा था। राजा ने एक बढ़िया पके हुए फल को तोड़ा। राजा के पीछे चलने वाले सभी सैनिकों ने फल तोड़े। जिससे वह आम्र वृक्ष भी ठूंठ की तरह हो गया। वन परिभ्रमण करके राजा लौटा। उसने देखा—जो वृक्ष पहले हरा-भरा एवं फलों से लदा हुआ था, वह अब फल एवं पत्तों से रहित खड़ा था। राजा ने माली से पूछा—यह वृक्ष फल-रहित कैसे हुआ ? माली ने सारी बात बता दी। राजा सोचने लगा—जो फलदार होते हैं, वे नौंचे जाते हैं। यह राज्य भी फलदार वृक्ष की तरह है, जो एक दिन नौंचा जायेगा। वह प्रतिबुद्ध हुआ। राजप्रासाद में रहते हुए भी वह विरक्त हो गया। उसे राजप्रासाद नरक की तरह प्रतीत होने लगा, वह चिन्तन करने लगा—मैं मिथिला को छोड़कर कब प्रव्रजित होऊँगा ? रानियों ने रोकने का प्रयास किया। सीवली देवी ने एक उपाय खोजा। उसने महासेनारक्षक को बुलाकर आदेश के स्वर में कहा—तात ! राजा के जाने के मार्ग पर जो आगे-आगे पुराने घर हैं, जीर्ण शालाएँ हैं, उनमें आग लगा दो। जहाँ-तहाँ घास-पत्ते जलाकर धुँआ पैदा कर दो। वैसा ही किया गया। सीवली देवी ने राजा से नम्र निवेदन करते हुए कहा—"घरों में आग लग रही है, ज्वालाएँ निकल रही हैं, खजाने जल रहे हैं, सोना-चांदी, मणि-मुक्ता सभी जलकर नष्ट हो रहे हैं। हे राजन् ! आप आकर उनको रोकने का प्रयास करें।" राजा महाजनक ने प्रत्युत्तर में कहा—

"सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं।
मिथिलाय डय्हमानाय न मे किंचि अडय्हथ ॥

"मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। मिथिला नगरी के जलने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जलता।"

"सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किंचनं।
रट्ठे विलुप्पमानम्हि न मे किंचि अजीरथ ॥
सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किंचनं।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥"

"मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। राष्ट्र के नष्ट होने से मेरी कुछ भी हानि नहीं।"
"मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। जैसे—अभास्वर देव हैं, वैसे ही हम प्रीतिभक्षक होकर रहेंगे।"

सभी का परित्याग कर राजा आगे बढ़ गया। देवी भी साथ ही थी। वे नगर द्वार पर पहुँचे। एक लड़की बालू रेती को थपथपा रही थी। उसके एक हाथ में कंगन था, वह बज रहा था। राजा ने पूछा—एक हाथ में कंगन क्यों बज रहा है ? उसने कहा—एक हाथ में दो कंगन हैं, परस्पर रगड़ने से शब्द होता है। जो अकेला है, वह शब्द नहीं करता। विवाद का मूल दो है।[1]

राजा आगे बढ़ा। एक उसुकार (बाँस-फोड़) एक आँख को बन्द कर देख रहा था। राजा ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—तुम ऐसा क्यों देख रहे हो ? उसने कहा—दोनों आँखों से देखने पर रोशनी फैल जाती है, जिससे टेढ़ी जगह का पता नहीं लगता। एक आँख के बन्द करने से टेढ़ापन स्पष्ट दिख जाता है और बाँस सीधा किया जाता है।[2]

रानी सीवली पीछे-पीछे चल रही थी। राजा ने मूंज के तिनके से रेखा को खींच कर कहा—अब इसे मिलाया नहीं जा सकता। इसी तरह से मेरा और तेरा साथ नहीं हो सकता। रानी पुनः लौट गई। महाजनक अकेले आगे चले गये। यह कथा जातक में बहुत ही विस्तार के साथ दी गई है। हमने संक्षेप में सार प्रस्तुत किया है। पूर्णरूप से कथा समान न होने पर भी दोनों का प्रतिपाद्य प्रायः समान सा है। दोनों ही कथाओं में ये विचार प्रतिपादत किये गये हैं—अन्यान्य आश्रमों से संन्यासाश्रम श्रेष्ठ है।[3] सन्तोष त्याग में है, भोग में नहीं।[4] सुख का मूल एकाकीपन है, और दुःख का मूल द्वन्द्व है।[5] सुख अकिंचनता में है।[6] साधना में विघ्न हैं—कामभोग।[7]

दोनों ही कथा-वस्तुओं में अनेक प्रसंग एक सदृश हैं। जैसे—"सम्पत्ति से युक्त मिथिला नगरी का परित्याग कर

---

१. जातक ५३९, श्लोक १५८-१६१.
२. जातक ५३९, श्लोक १६६-१६७.
३. (क) उत्तराध्ययन ९/४४. (ख) जातक २५-११५.
४. (क) उत्तराध्ययन ९/४८,४९. (ख) जातक १२२.
५. (क) उत्तराध्ययन ९/१६. (ख) जातक १६१-१६८.
६. (क) उत्तराध्ययन ९/१४. (ख) जातक १२५.
७. (क) उत्तराध्ययन ९/२३. (ख) जातक १३२.

प्रव्रजित होना, मिथिला को प्रज्वलित बताकर प्रव्रज्या से विचलित करने का प्रयास करना, "मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है," इस तरह ममत्व-रहित भाव व्यक्त करना दोनों ही कथा-वस्तुओं में हैं। जैन कथा-वस्तु की दृष्टि से इन्द्र नमि राजर्षि की परीक्षा करने आता है तो जातक की दृष्टि से सीवली देवी महाजनक राजा की परीक्षा करती है। जैन कथा की दृष्टि से मिथिलानरेश कंकण के शब्दों को सुनकर प्रतिबुद्ध होते हैं तो बौद्ध दृष्टि से मिथिला नरेश आम्र वृक्ष को देखकर प्रतिबोधित होते हैं।

सोनक जातक में भी कुछ प्रसंग इससे मिलते-जुलते हैं।[1]

महाभारत में माण्डव्य मुनि और जनक का मधुर संवाद है। भीष्म पितामह से युधिष्ठिर ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—तृष्णा क्षय का उपाय बताइये। भीष्म पितामह ने कहा—राजन्! माण्डव्य मुनि ने यही जिज्ञासा प्रस्तुत की थी विदेहराज जनक से। उन्होंने समाधान करते हुए कहा[2]—

"सुसुखं बत जीवामि यस्य मे नास्ति किञ्चन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन॥"

"मैं बहुत ही सुख से जीवन यापन कर रहा हूँ। इस विश्व में कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। मिथिला नगरी के प्रज्वलित होने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जलता है।"

जो विवेकी व्यक्ति हैं, उन्हें समृद्धि से युक्त विषय भी दुःखरूप ज्ञात होते हैं। अज्ञानी व्यक्ति विषय में लिप्त रहते हैं। जो काम जनित सुख हैं, वे तृष्णा क्षय होने पर सुख की सोलहवीं कला की तुलना भी नहीं कर सकते। उन्होंने आगे कहा—धन की अभिवृद्धि के साथ तृष्णा की भी अभिवृद्धि होती है। ममकार ही दुःख का कारण है। भोग और आसक्ति से दुःख में अभिवृद्धि होती है। तृष्णा को छोड़ना अत्यन्त कठिन है। जो तृष्णा का परित्याग करता है, वह सुख के सागर पर तैरता है। इस तरह उत्तराध्ययन के प्रस्तुत कथा प्रसंग के साथ महाभारत में वर्णित इस संवाद की आंशिक तुलना की जा सकती है।

दूसरा प्रसंग यह है—एक बार भीष्म ने कहा—धन की तृष्णा से दुःख और उसकी कामना के त्याग से परमसुख प्राप्त होता है। यह बात जनक ने भी कही है[3]—

अनन्तमिव मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां, न मे दह्यति किञ्चन॥

"मेरे पास असीम धन-सम्पदा है। तथापि मेरा किंचित मात्र भी नहीं है। मिथिला नगरी के प्रदीप्त होने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता है।"

यहाँ हमने तुलनात्मक दृष्टि से देखा कि एक ही कथावस्तु विविध धर्मग्रन्थों में अपनी मान्यता और सिद्धान्त के अनुसार ढाल दी गई है। जातक कथा का गद्य भाग अर्वाचीन है। 'राइस डेविड्स' ने जातकों के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है—बौद्ध साहित्य के नौ विभागों में जातक एक विभाग है। पर वह विभाग आज जो जातक प्रचलित हैं, उससे बिल्कुल भिन्न है। प्राचीन जातक के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन जातक का अधिकांश भाग किसी एक ढाँचे में ढला हुआ नहीं था। उसमें पद्य-भाग नहीं था। वे केवल काल्पनिक कथायें (Fables), उदाहरण (Parables), और आख्यायिकाएँ (Legends) मात्र थे। दूसरी बात यह है कि जो वर्तमान में जातक उपलब्ध हैं, वे प्राचीन जातक के अंशमात्र है।[4]

अपन्नक (सं० १), मखादेव (सं० ९), सुखविहारी (सं० १०), तित्तिर (सं० ३७), लित्त (सं० ९१), महा-सुदस्सन (सं० ९५), खण्डवट्ट (सं० २०३), मणि-कण्ठ (सं०२५०), वक-ब्रह्म (सं० ४०५) आदि जातकों के सूक्ष्म अध्ययन से राइस डेविड्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्ध से पूर्व भी जन-कथायें इन जातकों में थी। ये बुद्ध से भी प्राचीन हैं। ये जातक केवल बौद्धमत की ही नहीं हैं, ये भारतीय लोक-कथाओं के संग्रह हैं। बौद्ध विज्ञों ने अपने-अपने आचार-विचार के अनुसार कुछ परिवर्तन कर इसे अपनाया।[5] इससे यह स्पष्ट है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहले कई कथायें प्रचलित थीं। जिन कथाओं को भारत की जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों धाराओं ने अपनाया।

---

१. सोनक जातक, संख्या ५२९, जातक भाग ५, पृ. ३३१-३४६.
२. महाभारत—शान्तिपर्व, अध्याय २७६, श्लोक ४
३. महाभारत—शान्तिपर्व, अध्याय १७८, श्लोक २.
४. Buddhist India, pp. 196-197.
५. Buddhist India, p. 197.

इन सभी कथाओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि एक परम्परा ने दूसरी परम्परा का अनुसरण किया है। पर किस परम्परा ने किसका अनुसरण किया, यह अन्वेषणीय है।

ऋषभदत्त और देवानन्दा :

एक बार भगवान् महावीर धर्म की दिव्य ज्योति जगाते हुए ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में पहुँचे और बहुसाल चैत्य में विराजे। बहुसाल चैत्य ब्राह्मणकुण्ड एवं क्षत्रियकुण्ड के बीच में था। दोनों कुण्डपुरों की जनता भगवान् के प्रवचन-श्रवणार्थ उपस्थित हुई। ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण रहता था। आचारांग[१], कल्पसूत्र,[२] आवश्यकचूर्णि[३] में उसे केवल ब्राह्मण लिखा है। पर भगवती[४] में उसे चार वेदों के ज्ञाता के साथ श्रमणोपासक भी लिखा है। वह अपनी पत्नी देवानन्दा के साथ भगवान् को वन्दन के लिए पहुँचा। भगवान् महावीर को देखकर देवानन्दा को अपार प्रसन्नता हुई। उसके स्तनों से दूध की धारा छूटने लगी। आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। गौतम ने भगवान् से जिज्ञासा की—भगवन् ! इसके स्तनों से दूध की धारा क्यों छूटने लगी है ? आँखों से अश्रु क्यों बह रहे हैं ? भगवान् ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं इसका पुत्र हूँ।[५] भगवान् ने गर्भ परिवर्तन की सारी घटना सुनाई। इसके पूर्व भगवान् महावीर के गर्भ परिवर्तन की बात किसी को ज्ञात नहीं थी। देवानन्दा और ऋषभदत्त के साथ सारी परिषद आश्चर्यचकित हो गई। उसके पश्चात् भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर ऋषभदत्त ने दीक्षा ग्रहण की तथा विविध तप का अनुष्ठान कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए मोक्ष प्राप्त किया। इसी तरह देवानन्दा भी दीक्षित होकर मुक्त हुई।

बाल तपस्वी मौर्यपुत्र तथा तामली अणगार :

प्रस्तुत कथा का मूल स्रोत भगवती सूत्र है। भगवान् महावीर का समवसरण मोका नगरी में लगा हुआ था। ईशानेन्द्र भगवान् के दर्शनार्थ आये। उन्होंने बत्तीस प्रकार के नाट्य किये। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की, यह अपूर्व ऋद्धि इन्हें कैसे प्राप्त हुई ?

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—ताम्रलिप्ति नगर में तामली नामक मौर्य पुत्र था। उसके पास विराट सम्पत्ति थी। एक दिन उस विराट् वैभव का परित्याग कर उसने 'प्राणामा' प्रव्रज्या ग्रहण की और यह अभिग्रह धारण किया कि मैं छट्ठ छट्ठ तप करूँगा तथा सूर्य के सम्मुख दोनों हाथ ऊँचे कर आतापना लूँगा। पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतर कर, लकड़ी का पात्र हाथ में लेकर शुद्ध ओदन ग्रहण करूँगा और फिर उसे इक्कीस बार धोकर उसे आहार के रूप में उपयोग में लूँगा। प्राणामा प्रव्रज्या का धारक होने से वह इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रमण, आर्या, चण्डिका, राजा, मंत्री, पुरोहित, सार्थवाह, कौवे, कुत्ते, चाण्डाल आदि को जहाँ कहीं भी देखता, उनको प्रणाम करता। ऊँचे आकाश में देखकर ऊँचे तथा नीचे खड्डे आदि में देखकर नीचे प्रणाम करता।

प्राणामा प्रव्रज्या वालों को सूत्रकृतांग[६] में विनयवादी कहा है। औपपातिक,[७] ज्ञाताधर्मकथा[८] तथा अंगुत्तरनिकाय[९] में विनयवादियों को अविरुद्ध भी कहा है। ये मोक्ष प्राप्ति के लिए विनय को आवश्यक मानते थे।[१०] उत्तराध्ययन की टीका में[११] भी यह स्पष्ट लिखा है—ये तापस सभी को प्रणाम करते थे। सूत्रकृतांग की टीका में[१२] इनके बत्तीस भेद कहे हैं।

तामली तापस ने जब देखा कि उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तो उसने पास के लकड़ी आदि के उपकरणों को एकान्त स्थान में डाल कर पादपोपगमन संथारा किया। उस समय असुरेन्द्र चमर की सावधानी इन्द्र से रहित थी। असुर कुमार देवों ने अवधिज्ञान से देखकर तामली तपस्वी से प्रार्थना की—आप हमारे इन्द्र बनें ! किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। और ईशान कल्प में ईशानेन्द्र बना। तामली तपस्वी ने साठ हजार वर्ष तक उत्कृष्ट तप की आराधना की थी। उससे वह ईशानेन्द्र बना। प्राचीन आचार्यों का अभिमत है—यदि सज्ञानी (जिनमतानुयायी) इतना उत्कृष्ट तप करता तो उतनी तपस्या से सात जीव मोक्ष में चले जाते। यह सज्ञान (जिनमत के) तप का महत्व है।

---

१. आचारांग २, पृष्ठ २४३, बाबू धनपतसिंह
२. कल्पसूत्र, सूत्र ७, पृष्ठ ४३. देवेन्द्रमुनि सम्पादित
३. आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र २३६.
४. भगवती ९/६/३८०, पत्र ८३७.
५. धम्मकहाणुओगे, वितियो खंधो, पृष्ठ ५८/२५४.
६. सूत्रकृतांग १।१२।१
७. औपपातिक, सूत्र ३८, पृष्ठ १६९
८. ज्ञाताधर्मकथा टीका, १५, पृष्ठ १९४
९. अंगुत्तरनिकाय ३, पृष्ठ २७६
१०. सूत्रकृतांग १।१२।२. आदि की टीका
११. उत्तराध्ययन टीका १८, पृष्ठ २३०
१२. सूत्रकृतांग टीका १।१२, पृष्ठ २०९ अ

आर्द्रकीय मुनि का अन्य तीर्थियों के साथ वाद :

आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर के राजकुमार थे।[1] निरुक्तिकार के अनुसार उनके पिता ने राजा श्रेणिक के लिए बहुमूल्य उपहार प्रेषित किये। आर्द्रककुमार ने भी अभयकुमार के लिए उपहार भेजे। आर्द्रककुमार को भव्य और शीघ्र मोक्षगामी समझ कर अभयकुमार ने उसके लिए आत्मसाधनोपयोगी उपकरण उपहार में भेजे। उसे निहारते ही आर्द्रककुमार को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। आर्द्रककुमार का मन काम-भोगों से विरक्त हो गया। वह अपने देश से निकलकर भारत पहुँचा। दिव्य-वाणी ने उसे संकेत किया कि अभी प्रव्रज्या ग्रहण न करे पर वह उस दिव्य-वाणी की ओर ध्यान न देकर आर्हत् धर्म में प्रव्रजित हो गया। भोगावली कर्मोदयवश दीक्षा परित्याग कर उसे पुनः गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट होना पड़ा। अवधि पूर्ण होने पर उसने पुनः श्रमण वेश अंगीकार किया और जहाँ भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ पहुँचने के लिए चल दिया। पूर्वजन्म का स्मरण होने से उसे भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म का बोध था। सूत्रकृतांगनिर्युक्ति के अनुसार आर्द्रकमुनि ने पाँच मतवादियों के साथ विवाद किया।[2] वे थे—

(१) गोशालक (२) बौद्धभिक्षु (३) वेदवादी ब्राह्मण (४) सांख्यमतवादी एकदण्डी[3] और (५) हस्तितापस। आर्द्रकमुनि ने सप्रमाण निर्ग्रन्थ सिद्धान्त के अनुसार बहुत ही रोचक व चित्ताकर्षक उत्तर प्रदान किये जिन्हें सुनकर सभी स्तम्भित हो गये। आर्द्रकमुनि ने उन्हें दीक्षित किया। यहाँ यह भी चिन्तनीय है कि गोशालक आदि विरोधी पक्षों ने श्रमण भगवान् महावीर के जीवन और सिद्धान्त पर जो आक्षेप किया, उससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् महावीर की विद्यमानता में भी उनके प्रति कितनी भ्रान्तियाँ फैलाई गई थीं और विरोधी उन पर किस तरह आक्षेप करते थे? आर्द्रकमुनि ने तर्क पुरस्सर समाधान कर उनके विरोधों का शमन किया।

अतिमुक्तक कुमार :

एक बार भगवान् महावीर पोलासपुर में पधारे। उपासकदशांग में पोलासपुर के राजा का नाम जितशत्रु लिखा है[4] तथा उपवन का नाम सहस्राम्रवन लिखा है। अन्तकृद्दशांग में राजा का नाम विजय, रानी का नाम श्रीदेवी तथा उद्यान का नाम श्रीवन लिखा है।[5] हमारी दृष्टि से जितशत्रु, यह राजा का नाम न होकर विशेषण होना चाहिए। अनेक स्थलों पर 'जितशत्रु' इस नाम का उल्लेख हुआ है। अनेक राजाओं का एक ही नाम हो, यह कम सम्भव है। शत्रुओं पर विजय-वैजयन्ती फहराने के कारण उन्हें जितशत्रु के नाम से सम्बोधित करते रहे हों, अस्तु!

भगवान् के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे थे। अतिमुक्तक कुमार बाल-साथियों के साथ खेल रहा था। शान्त-दान्त, मंजुल मूर्ति गौतम को निहार कर अतिमुक्तक ने पूछा—आप क्यों घूम रहे हैं? गौतम ने मन्दस्मित के साथ कहा—हम भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे हैं। उस संस्कारी बालक ने गौतम की अंगुली पकड़ ली और अपने घर चलने के लिए आग्रह करने लगा। महारानी ने जब देखा तो उसका अंग-अंग प्रसन्नता से झूम उठा। अतिमुक्तक ने माता से कहा—इन्हें इतना भोजन दीजिए, जिससे इनको दूसरे घर न जाना पड़े। भिक्षा लेकर गौतम महावीर के समीप पहुँचे। बालक अतिमुक्तक भी साथ ही था। भगवान महावीर की अमृत-वाणी को सुनकर उसने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य अभयदेव ने लिखा है—उस समय अतिमुक्तक कुमार की उम्र छह वर्ष की थी।[6]

---

१. (क) सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, टीका सहित, श्रु० २, अ० ६, प० १३६
(ख) त्रिषष्टि० १०।७।१७७-१७९ (ग) पर्युषणाऽष्टाह्निका व्याख्यान, श्लो० ५, प० ३
(घ) डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने आर्द्रककुमार को ईरान के ऐतिहासिक सम्राट कुरुष्प [ई० पू० ५५८-५३०] का पुत्र माना है।
—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ६७-६८

२. (क) सूत्रकृतांग शीलांक वृत्ति पत्रांक ३८५ से ३८८ (ख) सूत्रकृतांगनिर्युक्ति गा० १८७, १९०, १९८, १९९

३. टीकाकार आचार्य शीलांक ने (२।६।४९) में इसे एकदण्डी कहा है। डा० हरमन जेकोबी ने अपने अंग्रेजी अनुवाद (S.B.E. Vol. XIV. P.417h. में) इसे वेदान्ती कहा है। प्रस्तुत मान्यता को देखते हुए डा० जेकोबी का अर्थ संगत प्रतीत होता है। टीकाकार ने भी अगली गाथा में यही अर्थ स्वीकार किया है।

४. उपासकदशांग, अध्ययन ७, सूत्र १ ५. अन्तकृद्दशांग, वर्ग ६, अध्ययन १५

६. (क) 'कुमार समणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात् आह च "छव्वरिसो पव्वइओ निग्गंथं रोइऊण पावयणं" ति, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।—भगवती सटीक, भाग १, श० ५, उ० ४, सू० १८८, पत्र २१९-२०

एक बार वर्षा हो चुकी थी। स्थविरों के साथ अतिमुक्तक मुनि विहार-भूमि को निकले। बहते हुए पानी को देखकर बचपन के संस्कार उभर आये। मिट्टी से पाल को बाँध कर उसमें अपना पात्र छोड़ दिया और आनन्द विभोर होकर "तिर मेरी नैया, तिर" इस प्रकार बोल उठे। शीतल मंद पवन चल रहा था। उनकी नैया थिरक रही थी। प्रकृति नटी मुस्करा रही थी। स्थविरों ने अतिमुक्तक मुनि को श्रमण-मर्यादा से विपरीत कार्य करते हुए देखा, उनका अन्तर् का रोष मुख पर झलकने लगा। अतिमुक्तक सम्भल गये। उन्हें अपने कृत्य पर ग्लानि हुई। अन्तर् के पश्चात्ताप से उसने अपने आपको पावन बना दिया। स्थविरों ने भगवान् से पूछा—यह कितने भव में मुक्त होगा? भगवान ने बताया—यह इसी भव में मुक्त होगा, तुम इसको निन्दा, गर्हा मत करो। भले ही यह देह से लघु है, पर इसकी अन्तरात्मा बहुत ही विराट् है। अतिमुक्तक कुमार ने उत्कृष्ट तप की आराधना कर मुक्ति को वरण किया।

श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्तक कुमार की आन्तरिक तेजस्विता को देखकर दीक्षा प्रदान की थी। जैनधर्म में कहीं पर भी बाल-दीक्षा का निषेध नहीं है, वहाँ अयोग्य दीक्षा का निषेध है। बालक भी उत्कृष्ट प्रतिभा का धनी हो सकता है और युवक तथा वृद्ध भी अयोग्य हो सकता है। जो भी योग्य हो, वह श्रमण-धर्म को स्वीकार कर अपने जीवन को साधना की आराधना से चमका सकता है।[१] निशीथभाष्य में बालकों को दीक्षा देने का जो निषेध है, वह अयोग्य बालकों के लिए है।[२] दीक्षा बुभुक्षु व्यक्ति नहीं, किन्तु मुमुक्षु व्यक्ति ग्रहण करता है।

अलक्ष राजा :

अलक्ष नरेश वाराणसी के अधिपति थे। श्रमण भगवान महावीर के पावन-प्रवचन को श्रवण कर अपने राज्य सिंहासन पर पुत्र को आसीन कर दीक्षा ग्रहण की तथा उत्कृष्ट तप की आराधना कर मोक्ष प्राप्त किया।

मेघकुमार श्रमण :

मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था। भगवान महावीर के उपदेश को सुनकर दीक्षित हुआ। सबसे लघु होने के कारण सोने के लिए उसे द्वार के पास स्थान मिला। श्रमणों के आने-जाने का मार्ग होने के कारण मेघमुनि के शरीर से सन्तों के पैर टकरा जाते थे। पैरों की धूल से उनके वस्त्र धूल से सन गये। उनको शान्ति से नींद भी नहीं आ सकी, जिससे आँखें लाल हो गईं और शरीर शिथिल हो गया। भगवान महावीर ने उन्हें उनका पूर्वभव सुनाकर साधना में स्थिर किया।

तुलना—नन्द के साथ

बौद्ध साहित्य में भी मेघकुमार की तरह सद्यः दीक्षित नन्द का उल्लेख है।[३] वह अपनी नव-विवाहिता पत्नी नन्दा का स्मरण कर विचलित हो जाता है। बुद्ध उसे एक बन्दरी दिखाकर उससे पूछते हैं—क्या तेरी पत्नी इससे अधिक सुन्दर है? उसने कहा—वह तो बहुत ही सुन्दर है। उसके पश्चात् बुद्ध उसे त्रायस्त्रिंश स्वर्ग की अप्सराओं को दिखाते हैं और पूछते हैं—क्या तेरी जनपदकल्याणी नन्दा इनसे अधिक सुन्दर है? नन्द निवेदन करता है—भगवन! इन अप्सराओं के सामने तो वह कुछ भी नहीं है। बुद्ध उसे प्रतिबोध देते हुए कहते हैं—फिर तुम उसके पीछे क्यों पागल बन रहे हो? तुम भी धर्म की साधना करो। इससे भी अधिक सुन्दर अप्सरायें प्राप्त होंगीं। नन्द पुनः श्रमण-धर्म की आराधना करने लगा, किन्तु उसका वैषयिक लक्ष्य मिटा नहीं। एक बार सारिपुत्र आदि अस्सी महाश्रावकों (भिक्षुओं) ने उसका उपहास करते हुए कहा—यह तो अप्सराओं के लिए साधना कर रहा है। यह सुनकर उसे अत्यन्त ग्लानि हुई और वह साधना में जुट गया।

मेघकुमार और नन्द दोनों साधना से विचलित हुए, पर घटना-क्रम में जरा सा अन्तर है। श्रमण भगवान महावीर ने पूर्वभव में भोगी हुई दारुण-वेदना का स्मरण कराया और मानव-जीवन की महत्ता बता कर उसे श्रमण-धर्म में स्थिर किया। तो तथागत बुद्ध ने नन्द को आगामी भवों के कमनीय सुखों को बता कर उसे संयम में स्थिर किया। संगामावचर जातक आदि से यह भी स्पष्ट है कि नन्द भी मेघकुमार की तरह प्राक्तन भवों में हाथी था।[४]

---

१. जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप, पृष्ठ ४४४ से ४४६.

२. (क) निशीथभाष्य ११, ३५३१/३२. (ख) तुलना कीजिए—महावग्ग, १-४१-९६, पृष्ठ ८०-८१.

३. (क) सुत्तनिपात—अट्ठकथा, पृष्ठ २७२. (ख) धम्मपद—अट्ठकथा, खण्ड १, पृ० ९६-१०५.
(ग) जातक सं० १८२. (घ) थेरगाथा १५७.

४. (क) संगामावचर जातक संख्या १८२ (हिन्दी अनुवाद) खण्ड २, पृष्ठ २४८-२५४.
(ख) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन (देवेन्द्रमुनि) पृष्ठ ४२० से ४२५.

मकाई और किंकम :

मकाई और किंकम ये दोनों राजगृह नगर के गाथापति थे। इन्होंने भगवान महावीर के त्याग-वैराग्य युक्त प्रवचन को श्रवण कर दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट संयम और तप की आराधना कर विपुलगिरि पर्वत पर मुक्त हुए।

अर्जुन मालाकार :

राजगृह में अर्जुन नाम का माली था। बन्धुमती उसकी पत्नी थी। पुष्पाराम उसका उद्यान था। उस उद्यान के समीप ही मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। अर्जुनमाली के पूर्वज उस यक्ष के उपासक थे। अर्जुनमाली भी बचपन से ही उसका उपासक था। राजगृह में "ललित" नामक एक मित्र-मण्डली थी, जो उच्छृंखल और स्वच्छन्द थी। उन्होंने बन्धुमती के साथ अमानवीय व्यवहार किया, जिससे अर्जुन मालाकार को अत्यधिक रोष आया, पर उसे पहले ही बाँध कर उन्होंने गिरा रखा था। अपनी पत्नी के साथ बीभत्स काण्ड करते हुए देखकर उसका खून खौल उठा, नसें फड़कने लगीं। उसने मन में राजा को भी धिक्कारा और अपने कुलदेव मुद्गरपाणि यक्ष पर भी उसे रोष आया कि उसकी मूर्ति के समक्ष उसकी पत्नी का शीलभंग किया जा रहा है। तू देवता होकर भी टुगर-मुगर देख रहा है। देव ने अपने भक्त की संतप्त आत्मा को देखा। तत्काल यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में प्रविष्ट हुआ। उसका अद्भुत पौरुष जाग उठा। तड़-तड़ कर सब बन्धन टूट गये। यक्ष का मुद्गर उठाकर एक ही प्रहार में अर्जुन मालाकार ने छहों मित्रों और अपनी पत्नी को मिट्टी का ढेर बना दिया, तथापि उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। क्रोध से आगबबूला हुआ हाथ में मुद्गर लेकर वह बगीची के बाहर घूमता। रास्ते से गुजरने वाले राहगीरों में से छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करके ही मुँह में अन्न-जल लेता। नगर में भयंकर आतंक छा गया। राजा ने नगर का द्वार बन्द करवा कर यह उद्घोषणा करवा दी, कोई भी नगर के बाहर न जाये। समूची राजगृह एक कैदखाना बन गई। उसमें बैठकर सभी के दम घुट रहे थे। पर किसी का साहस नहीं था।

भगवान महावीर का राजगृह में शुभागमन हुआ। जिस महानगरी में भगवान ने चौदह वर्षावास किये, जहाँ प्रभु के भक्तों की कोई कमी नहीं थी, पर किसी का भी साहस अर्जुनमाली से जूझने का नहीं हो रहा था। जब सुदर्शन ने भगवान के आगमन का संवाद सुना तो उसका शौर्य दीप्त हो उठा। वह पारिवारिक जन तथा अन्य व्यक्तियों के इन्कार होने पर भी भगवान के दर्शनार्थ चल पड़ा। नगर का द्वार खुला और तुरन्त बन्द कर दिया गया। कुछ दूर चलने पर अर्जुनमाली हाथ में मुद्गर घुमाता हुआ बेतहाशा दौड़ता हुआ सुदर्शन के सामने आ पहुँचा। उसकी रौद्र आकृति देखकर सामान्य व्यक्ति काँप जाता, पर सुदर्शन वहीं ध्यान-मुद्रा में खड़ा हो गया। उसने सुदर्शन पर प्रहार करने के लिए मुद्गर उठाया। उसका हाथ उठा ही रह गया। वह पीछे हटकर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ा, पर जैसे शरीर में लकवा मार गया हो। हतप्रभ-सा वह सोचने लगा—यह क्या हो गया? सुदर्शन के धैर्य और तेज के सामने यक्ष का तेज निस्तेज हो गया, वह सत्वहीन होकर भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। अर्जुन को लेकर सुदर्शन भगवान के चरणों में पहुँचा। भगवान का उपदेश सुनकर अर्जुन मालाकार उनके चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा—मेरा उद्धार करो। मैंने जीवन भर पाप किये हैं। निरपराध स्त्री-पुरुषों का खून किया है। मैं बड़ा पापी हूँ, अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। भगवान ने उसे दीक्षा दी। वह बेले-बेले की तपस्या करता और पारणे के लिए जब वह नगर में जाता तो लोग आक्रोशपूर्वक ढेले फेंकते, ताड़ना-तर्जना करते। किन्तु वह अपनी आत्मा को कसता और स्वर्ण की तरह उज्ज्वल बनाता। अन्त में कर्मों को नष्ट कर वह मुक्त बन गया। बड़ा अद्भुत और अनूठा है यह कथानक। एक क्रूर हत्यारा महापुरुष के सान्निध्य को पाकर पावन बन गया। पारस पुरुष का संस्पर्श लौह रूपी जीवन को एक क्षण में स्वर्ण बना देता है।

बौद्ध साहित्य में भी अंगुलिमाल डाकू का वर्णन आता है जो मानवों की अंगुलियों की माला बनाकर धारण करता था। जिसकी आँखों से खून टपकता था। तथागत बुद्ध को मारने के लिए वह लपका, पर बुद्ध के तेजस्वी व्यक्तित्व से वह हतप्रभ हो गया तथा अहिंसा का पुजारी बन गया। जो कार्य बड़े-बड़े तांत्रिक, यांत्रिक और मांत्रिक नहीं कर सकते वह कार्य एक सन्त कर सकता है।

काश्यप आदि श्रमण :

काश्यप, क्षेमक, धृतिधर, कैलाश, हरिनन्दन, वारत्तक, सुदर्शन, पूर्णभद्र, सुमनभद्र, सुप्रतिष्ठित, मेघकुमार ये सभी दीक्षा-पर्याय पालन कर विपुल पर्वत पर मुक्त हुए। इनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष सामग्री का अभाव है, केवल नगर, उद्यान और दीक्षा पर्याय का सूचन है।

जालि मयालि आदि कुमार :

जालि, मयालि, पुरुषसेण, उपजालि, वारिषेण, दीर्घदन्तकुमार, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस, अभय ये सभी कुमार सम्राट श्रेणिक के पुत्र थे। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर दीक्षित होते हैं तथा श्रमण बनकर गुणरत्नसंवत्सर आदि तप की आराधना कर अनुत्तर विमान में देव बनते हैं। इसी तरह दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन, पुण्यसेन ये राजकुमार भी श्रेणिक सम्राट के पुत्र थे। इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर विविध तपों की आराधना कर अनुत्तर विमान को प्राप्त किया। ये जो आख्यान इसमें दिये गये हैं, वे केवल संकेत मात्र हैं। पर ये सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक होने से बहुत से इतिहास के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालने में सक्षम हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं ने श्रेणिक के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। हम यथाप्रसंग इस पर चिन्तन करेंगे। पर यह स्पष्ट है कि श्रेणिक की छब्बीस महारानियों ने और उनके पुत्र तथा पौत्रों ने भगवान महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर साधना से अपने जीवन को पावन बनाया था। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रेणिक जैन था एवं भगवान् श्री महावीर का अनन्य भक्त भी।

धन्य अणगार :

धन्यकुमार काकन्दी की भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। अपार वैभव उसके पास था। भगवान् के उपदेश को श्रवण कर वीर सैनिक की तरह वह साधना के पवित्र पथ पर बढ़ता है। उसके तपोमय जीवन का जो शब्दचित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसे पढ़ कर भौतिकवाद के तार्किक युग में भी व्यक्ति का श्रद्धा से सिर नत हो जाता है। मज्झिमनिकाय के महासिंहनाद सुत्त में[1] वर्णन है—बुद्ध ने इसी प्रकार उत्कृष्ट तप की आराधना की थी। उन्होंने अपने साधना-काल में जो छः वर्ष तक उत्कृष्ट तप की आराधना की वह भी इससे मिलती-जुलती है। कवि कुलगुरु कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य में[2] पार्वती के तप का रोमांचकारी वर्णन किया है, पर धन्यकुमार के तप के समान उसमें सजीव वर्णन नहीं हो पाया है। धन्यकुमार के तप के वर्णन को पढ़कर अध्येता विस्मय से विमुग्ध बने बिना नहीं रहेगा। जैन तपःसाधना की यह विशेषता है कि वहाँ बाह्य तप के साथ आभ्यन्तर तप को भी महत्व दिया गया है, जिसमें देह-दमन के साथ चित्त-वृत्तियों का शोधन भी मुख्य रूप से रहा हुआ है। धन्य अणगार जितने अधिक दीर्घ तपस्वी थे उतने ही स्थिर ध्यानयोगी भी थे। ध्यान की निर्मल साधना से तप उनके लिए तापस्वरूप नहीं था। श्रमण साहित्य में ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में इस प्रकार का वर्णन दुर्लभ है।

सुनक्षत्र अणगार :

सुनक्षत्र अणगार का जन्म काकन्दी नगरी में हुआ था। वह भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। स्नेह के वातावरण में उसका पालन-पोषण हुआ। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर वे श्रमण बने और उत्कृष्ट तप की आराधना कर अनुत्तरविमान में उत्पन्न हुए।

सुबाहुकुमार आदि अन्य मुनि

हस्तिशीर्ष नगर का स्वामी अदीनशत्रु था। सुबाहुकुमार उसका पुत्र था। पाँच सौ कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। उनके साथ वह अपना जीवन यापन कर रहा था। एक बार भगवान् महावीर का शुभागमन हुआ। सुबाहुकुमार ने श्रावक व्रत का ग्रहण किये। उनके दिव्य रूप को निहार कर गौतम ने प्रभु से जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह दिव्य, कान्त और प्रिय रूप इन्हें कैसे प्राप्त हुआ ? इन्होंने पूर्वभव में ऐसा कौन सा दान दिया ? भगवान् ने सुबाहु का पूर्वभव सुनाते हुए कहा—हस्तिनापुर नगर में सुमुख नामक गाथापति था। सुदत्त अणगार, जो एक मास के उपवासी थे, उन्हें अत्यन्त उदार भावना से सुमुख गाथापति ने आहारदान दिया। उस दिव्य दान के फलस्वरूप इसे यह महान् ऋद्धि तथा अद्भुत सौन्दर्य प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत कथनक में सुख प्राप्ति का प्रधान कारण सुपात्रदान को बताया है। दान की अद्भुत शक्ति से दिव्य ऋद्धि और समृद्धि सहज ही उपलब्ध होती है। मानव समृद्धि तो चाहता है पर दान आदि देने से कतराता है। जिससे उसे विराट् वैभव की संप्राप्ति नहीं हो पाती। इसी तरह भद्रनन्दी, सुजातकुमार, सुवासवकुमार, जिनदास, धनपति, महाबल, भद्रनन्दीकुमार, महाचन्दकुमार और वरदत्तकुमार ये सभी राजकुमार थे। सभी ने भगवान् महावीर के उपदेशामृत को सुनकर दीक्षा ग्रहण की। सुबाहुकुमार आदि समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर देव बने और वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके कितने ही एक भव में और कितने ही राजकुमार पन्द्रह भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

---

१. बोधिराजकुमार सुत्त, दीघनिकाय कस्सप सिंहनाद सुत्त।
२. कुमारसम्भव पार्वती प्रकरण।

पद्मकुमार श्रमण आदि :

चम्पा नगरी में राजा कूणिक का राज्य था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। राजा श्रेणिक की एक रानी का नाम काली था। उसके काल नामक पुत्र हुआ। काल की पत्नी का नाम भी पद्मावती था। उसके पद्मकुमार नामक पुत्र हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर साधना के द्वारा जीवन को तपाया और सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जायेगा। इसी तरह महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, नलिनीगुल्म, आनन्द और नन्दन ये सभी श्रेणिक के पौत्र थे, इन्होंने प्रभु महावीर के पास श्रमण धर्म को ग्रहण कर जीवन को पावन बनाया। इन सभी के पिता काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह, रामकण्ह, पिउसेनकण्ह, महासेनकण्ह थे जो कषाय के वशीभूत होकर नरक में गये और उन्हीं के पुत्र सत्कर्म का आचरण कर देवलोक को प्राप्त करते हैं। उत्थान और पतन का दायित्व मानव के स्वयं के कर्मों पर आधृत है, मानव साधना से भगवान् भी बन सकता है और विराधना से भिखारी भी बन सकता है।

हरिकेशी मुनि :

पूर्वजन्म में जाति-अहंकार करने के कारण हरिकेशबल चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए। वे स्वभाव से ही नहीं, शरीर से भी अत्यन्त कुरूप थे। सभी उनसे घृणा करते थे। घृणा और उपेक्षा के कारण वे अधिक कठोर बन गये थे। एक बार वे उत्सव मे गये। साथी के अभाव में वे उस भीड़ में भी अकेले थे। कोई भी लड़का उनसे बोलना पसन्द नहीं करता था। इतने में एक सर्प निकला। उस सर्प को लोगों ने मार दिया। कुछ क्षणों के बाद गोह (अलसिया) निकला, किन्तु उसे किसी ने नहीं मारा। इस घटना से हरिकेशबल सोचने लगे—जो क्रूर होता है, वह मारा जाता है। किन्तु निर्विष प्राणी को कोई नहीं मारता। चिन्तन करते हुए उन्हें जातिस्मरण हुआ और वे मुनि बन गये। तप से उनका शरीर कृश हो गया। तिन्दुक वृक्ष निवासी यक्ष, मुनि के दिव्य तप से प्रभावित होकर उनकी सेवा में रहने लगा। एक बार हरिकेशमुनि यक्ष-मन्दिर में ध्यानस्थ थे। राजपुत्री भद्रा यक्ष की अर्चना के लिए वहाँ पर आई। मुनि की कुरूपता को देखकर उसका मन घृणा से भर गया और उसने मुनि पर थूक दिया। यक्ष मुनि के अपमान को सहन न कर सका। वह राजकुमारी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। अनेक उपचार करने पर भी वह स्वस्थ नहीं हुई। यक्ष ने प्रकट होकर कहा—इसने मुनि का अपमान किया है, इसे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। राजा ने अपराध की क्षमा माँगी और कन्या के साथ मुनि से विवाह की प्रार्थना की। मुनि ने कहा—मेरा कोई अपमान नहीं हुआ है। मैं किसी भी तरह विवाह नहीं कर सकता। राजा निराश हो गया। उसने ब्राह्मण रुद्रदेव को ऋषि समझकर राजकन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। यज्ञशाला में राजकुमारी के विवाह के निमित्त से भोजन बन रहा था। हरिकेशमुनि ने भोजन की याचना की। ब्राह्मणों ने उनको अपमानित कर निकालने का प्रयास किया। मुनि की सेवा में रहने वाला यक्ष ब्राह्मणों के व्यवहार से क्रुद्ध हो गया। उसने उन्हें प्रताड़ित किया। राजकुमारी ने ब्राह्मणों को समझाया—ये जितेन्द्रिय हैं, इनका अपमान मत करो। मुनि ने दान का अधिकारी, जातिवाद, यज्ञ का स्वरूप, जलस्नान आदि विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला। मुनि का यह संवाद अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

इसी तरह बौद्ध साहित्य के मातंग जातक में[1] एक प्रसंग है—वाराणसी के माण्डव्यकुमार का प्रतिदिन सोलह हजार ब्राह्मणों को भोजन देना ; हिमालय के आश्रम में मातंग पण्डित का भिक्षा लेने के लिए आना। उसके पुराने जीर्ण-शीर्ण, मलिन वस्त्रों को देखकर वहाँ से उसे हटाना, मातंग पण्डित का माण्डव्य को उपदेश देकर दान-क्षेत्र की यथार्थता का प्रतिपादन करना, माण्डव्य के साथी मातंग को पीटते हैं, नगर-देवताओं के द्वारा ब्राह्मणों की दुर्दशा करना, उस समय श्रेष्ठी की कन्या दीट्टमंगलिका का वहाँ पर आगमन और वहाँ की स्थिति को देखकर सारी बात जान लेना, स्वर्ण-कलश और प्याला लेकर मातंग मुनि के सन्निकट आना, और क्षमायाचना करना, मातंग पण्डित ने ब्राह्मणों को ठीक होने का उपाय किया तथा दीट्ठमंगलिका ने सभी ब्राह्मणों को दान-क्षेत्र की यथार्थता बताई। इस प्रकार दोनों कथाओं में समानता है।

डा० घाटगे की दृष्टि से बौद्ध परम्परा की कथा विस्तृत होने के साथ इसमें अनेक विचारों का सम्मिश्रण हुआ है, किन्तु जैन परम्परा की कथा सरल और संक्षिप्त है और वह बौद्ध कथावस्तु से प्राचीन है। मातंग जातक में ब्राह्मणों के प्रति अधिक कटु भावना व्यक्त की गई है पर जैन कथावस्तु में ऐसा नहीं है। उस युग में ब्राह्मण वर्ग जन्मना जाति के आधार पर अपने

---

१. मातंग जातक—चतुर्थ खण्ड ४९७, पृष्ठ ५८३-५९७.

तुब्भेत्थ भो भारधरा गिराणं,
अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए।
उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति,
ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥
के एत्थ खत्ता उवजोइया वा,
अज्झावया वा सह खण्डिएहिं।
एयं दण्डेण फलेण हन्ता,
कण्ठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं ॥१८॥
अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता,
उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव,
समागया तं इसि तालयन्ति ॥१९॥
गिरिं नहेहिं खणह,
अयं दन्तेहिं खायह।
जायतेयं पाएहि हणह,
जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥
अवहेडिय पिट्ठिसउत्तमंगे,
पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे।
निब्भेरियच्छे रुहिरं वमन्ते,
उड्ढंमुहे निग्गयजीहनेत्ते ॥२९॥
पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च,
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ।
जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति,
तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥३२॥
अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा,
तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो,
समागया सव्वजणेण अम्हे ॥३३॥

जाति मदो च अतिमानिता च,
लोभो च दोसो च मदो च मोहो।
एते अगुणा येसु न सन्ति सब्बे,
तानीध खेत्तानि सुपेसलानि ॥७॥

कत्थेव भट्ठा उपजोतियो च,
उपज्झायो अथवा भण्डकुच्छि।
इमस्स दण्डं च वधं च दत्वा
गले गहेत्वा खलयाथ जम्मं ॥८॥
गिरिं नखेन खणसि,
अयो दन्तेन खादसि।
जातवेदं पदहसि,
यो इसिं परिभाससि ॥९॥
आवेठितं पिट्ठितो उत्तमाङ्गं,
बाहुं पसारेति अकम्मनेय्यं।
सेतानि अक्खीनि कथा मतस्स,
को मे इयं पुत्तं अकासि एवं ॥११॥
तदेव हि एतरहि च मय्हं,
मनोपदोसो मम नत्थि कोचि।
पुत्तो च ते वेद मदेन मत्तो,
अत्थं न जानाति अधिच्च वेदे ॥१८॥
अद्धा हवे भिक्खु मुहुत्तकेन,
सम्मुय्हते व पुरिसस्स सञ्ञा।
एकापराधं खम भूरिपञ्ञ,
न पण्डिता क्रोध बला भवन्ति ॥१९॥

अनाथी महानिर्ग्रन्थ :

सम्राट श्रेणिक एक बार मण्डित कुक्षी उद्यान में पहुँचा। उद्यान की शोभा को देखते हुए उसकी आँखें एक ध्यानस्थ मुनि पर जा टिकीं। उस मुनि के अद्भुत रूप-लावण्य को देखकर वह विस्मित हुआ। उसने पूछा—आप तरुण हैं, भोग भोगने योग्य हैं, फिर आपने इस आयु में संन्यास क्यों ग्रहण किया? उत्तर में मुनि ने कहा—मैं अनाथ था, मेरा कोई भी नाथ नहीं था, इसीलिए मैं मुनि बना। राजा ने मुस्कराते हुए कहा—शरीर सम्पदा से आप ऐश्वर्यशाली प्रतीत होते हैं, फिर अनाथ कैसे? मैं आपका नाथ बनता हूँ। मेरे साथ चलें। सुखपूर्वक भोग भोगें।

मुनि ने कहा—तुम स्वयं अनाथ हो। मेरे नाथ कैसे बन सकोगे? राजा को यह वाक्य तीक्ष्ण शस्त्र की तरह चुभ गया। उसने कहा—आप झूठ बोलते हैं। मेरे पास विराट् सम्पदा है, मेरे आश्रय में हजारों व्यक्ति हैं। ऐसी अवस्था में मैं अनाथ कैसे? मुनि ने समाधान करते हुए कहा—तुम अनाथ का अर्थ नहीं जानते। मैं तुम्हें इसका रहस्य बताता हूँ। मैं गृहस्थाश्रम में कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता के पास विराट् वैभव था। मेरा विवाह उच्च कुल में हुआ था। मुझे एक बार असह्य अक्षि-रोग हुआ। सभी पारिवारिक जनों ने रोग दूर करने का खूब प्रयत्न किया, सभी ने मेरी वेदना पर आँसू बहाये, पर वे वेदना को बँटा नहीं सके। यह थी मेरी अनाथता! मैंने दृढ़ संकल्प किया यदि मैं वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो मैं मुनि बन जाऊँगा। उस संकल्प के साथ ही मैं

गया, ज्यों-ज्यों रात बीतती गई, मेरा रोग शान्त होता गया। सुबह होने पर मैंने अपने आपको पूर्ण रूप से स्वस्थ पाया। मैं श्रमण बनकर सभी त्रस एवं स्थावर प्राणियों का नाथ बन गया। मैंने आत्मा पर शासन किया और मैं विधिपूर्वक श्रमण-धर्म का परिपालन करता हूँ। यह मेरी सनाथता है। सम्राट श्रेणिक ने पहली बार ही सनाथ-अनाथ का विवेचन सुना। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये। सम्राट श्रेणिक ने कहा—वस्तुतः आप ही सनाथ हैं और सभी के सच्चे बान्धव हैं। मैं आपसे धर्म का अनुशासन चाहता हूँ। मुनि ने उसे धर्म का मर्म बताया, वह धर्म में अनुरक्त हो गया। इस कथानक में अनेक महत्त्वपूर्ण विषय चर्चित हैं। इसमें आई हुई अनेक गाथाओं की तुलना अन्य साहित्य से की जा सकती है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ कुछ गाथाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

उत्तराध्ययन, अ० २०	धम्मपद	गीता
अप्पा नई वेयरणी,	अत्ता हि अत्तनो नाथो,	उद्धरेदात्मनात्मानं,
अप्पा मे कूडसामली।	को हि नाथो परो सिया।	नात्मानमवसादयेत्।
अप्पा कामदुहा धेणू,	अत्तना व सुदन्तेन,	आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु
अप्पा मे नन्दणं वणं ॥३६॥	नाथं लभति दुल्लभं ॥४॥	रात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य,	अत्तना व कतं पापं,	बन्धुरात्मात्मनस्तस्य,
दुहाण य सुहाण य।	अत्तजं अत्तसम्भवं।	येनात्मैवात्मना जितः।
अप्पा मित्तममित्तं च,	अभिमन्थति दुम्मेधं,	अनात्मनस्तु शत्रुत्वे,
दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥३७॥	वजिरं वस्समयं मणि ॥ ५ ॥	वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥
	अत्तना व कतं पापं,	
	अत्तना संकिलिस्सति।	
	अत्तना अकतं पापं,	
	अत्तना व विसुज्झति ॥	
	सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं,	
	नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥ ६ ॥	
न तं अरी कण्ठछेत्ता करेइ,	दिसो दिसं यन्तं कयिरा,	
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।	वेरी वा पन वेरिनं।	
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते,	मिच्छापणिहितं चित्तं।	
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥ ४८॥	पापियो नं ततो करे ॥ १० ॥	
	मुण्डकोपनिषद्	
दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,	यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं	
निरंगणे सव्वओ विप्पमुक्के।	कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।	
तरित्ता समुद्दं व महाभवोघं,	तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय	
समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥	निरंजनं परमं साम्यमुपैति ॥३।१।३॥	

उपर्युक्त गाथाओं में भावों में तो एकरूपता है ही साथ ही विषय की दृष्टि से भी अत्यधिक समानता है।

समुद्रपालीय :

चम्पा नगरी में पालित नामक श्रमणोपासक था। उसका व्यापार दूर-दूर तक फैला हुआ था। एक वार सुपारी, सोना आदि वस्तुएँ लेकर वह सामुदिक यात्रा के लिए यान-पात्र पर आरूढ़ होकर प्रस्थित हुआ। वह समुद्र के किनारे 'पिहुण्ड' नगर में रुका। एक सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ किया। नवोढ़ा पत्नी गर्भवती हुई। समुद्र यात्रा के बीच ही उसने पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा। वह एक वार अपने भव्य प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगरश्री का अवलोकन कर रहा था। उसने देखा—राजपुरुष एक व्यक्ति को वध-भूमि की ओर ले जा रहे हैं। उसके वस्त्र लाल हैं और गले में कनेर की माला है। उसका मन संवेग से भर गया। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह दीक्षित बन गया। कर्मों को नष्ट कर वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

प्रस्तुत कथानक में समुद्र-यात्रा का उल्लेख हुआ है। उस युग में भारत के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यान-पात्र हुआ करते थे। वे एक स्थान से दूसरे स्थानों पर

माल लेकर जाते थे। नदियों के द्वारा भी माल आता था। नदी-तट पर उतरने के लिए स्थान बने हुए थे। निशीथभाष्य में चार प्रकार की नावों का उल्लेख मिलता है[1]—१. अनुलोमगामिनी २. प्रतिलोमगामिनी ३. तिरिच्छसंतारणी [एक तट से दूसरे तट पर सरल रूप से जाने वाली] और ४. समुद्रगामिनी। इनके अतिरिक्त उर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी, योजनवेलागामिनी एवं अर्ध-योजनवेलागामिनी इन चार नामों का भी उल्लेख है।[2] समुद्र यात्रा खतरों से खाली नहीं थी। कई बार इतने भयंकर उपद्रव आ जाते कि जहाज छह-छह महीने तक चक्कर काटते रहते।[3] देवी-देवताओं के उपद्रव से बचने के लिए उनकी मनौतियाँ भी की जाती थीं। जहाज फट जाने पर यात्रियों को बड़ी कठिनाई होती थी।[4] जहाज डूबने के वर्णन भी आगम-साहित्य में यत्र-तत्र आये हैं। जब प्रतिकूल पवन चलता, आकाश बादलों से आच्छन्न हो जाता, उस समय जहाज में बैठने वाले यात्रियों के प्राण संकट में पड़ जाते। उन्हें दिशाभ्रम हो जाता। वे उस विकट वेला में यह निर्णय नहीं ले पाते कि उन्हें क्या करना चाहिए। या तो ऐसे समय में जीने की आशा छोड़कर दीन भाव से बैठ जाते या समुद्र की उपासना करते।[5] अथवा वीतराग प्रभु की उपासना में संलग्न हो जाते। यहाँ पर प्रस्तुत कथानक में एक 'ववहार' शब्द आया है, जिसका संस्कृत रूप 'व्यवहार' है। आगम युग में यह शब्द क्रय-विक्रय, आयात और निर्यात के अर्थ में व्यवहृत हुआ है और 'वध्य मंडन शोभाक' शब्द दण्ड-विधान के अर्थ में प्रयुक्त था। तस्करों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उसे कनेर के फूलों की माला तथा लाल वस्त्र पहनाये जाते थे। उसके कुकृत्यों की विज्ञापना नगर के मुख्य मार्गों से वध-भूमि की ओर ले जाकर की जाती थी।

मृगापुत्र और बलश्री श्रमण :

सुग्रीव नगर में बलभद्र और मृगावती का पुत्र बलश्री था। पर वह 'मृगापुत्र' के नाम से प्रसिद्ध था। युवा होने पर उसका पाणिग्रहण हुआ। वह पत्नियों के साथ राजप्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर का अवलोकन कर रहा था, उसकी दृष्टि निर्ग्रन्थ मुनिराज पर गिरी। मुनि के तेजोदीप्त ललाट, चमकते हुए नेत्र, और तपस्या से अत्यन्त कृश शरीर को वह अपलक दृष्टि से देखता रहा। चिन्तन तीव्र हुआ मैंने ऐसा रूप पहले भी देखा है, उसे जातिस्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया—मैं पूर्वभव में श्रमण था। इस अनुभूति से मन वैराग्य से भर गया। माता-पिता से उसने निवेदन किया—मैं प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय और संक्लेशों का भाजन है। जिसे आज नहीं तो कल अवश्यमेव छोड़ना पड़ेगा। माता-पिता ने दुश्चरता और कठोरता का परिज्ञान कराया। तुम सुकोमल हो, तुम्हारे लिए श्रमण-जीवन का पालन करना कठिन है। श्रमण-जीवन यावज्जीवन का होता है। बालुका कवल की तरह निस्वाद और असिधारा की तरह दुश्चर है। श्रमण-धर्म स्वीकार करने पर रोग की चिकित्सा कौन करेगा? उत्तर में मृगापुत्र ने कहा—अरण्य में बसने वाले मृग आदि पशु-पक्षियों की कौन चिकित्सा करता है, कौन उन्हें और भक्तपान देता है? वैसे ही मृगचारिका से मैं अपना जीवन यापन करूँगा। अन्त में मुनि-धर्म स्वीकार कर मृगापुत्र श्रमण-धर्म का परिपालन कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

मृगापुत्र और माता-पिता का संवाद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है तथा साथ ही प्रेरणादायी भी है।

गर्दभाली और संजय राजा :

काम्पिल्य नगर का अधिपति राजा संजय शिकार के लिए केशर उद्यान में पहुँचा। उसने मृगों को मारा। उसकी दृष्टि एकाएक ध्यान-मुद्रा में अवस्थित गर्दभाली मुनि पर गिरी। वह भय से काँप उठा। मैंने मुनिराज के मृग को मारकर आशातना की है। वह घोड़े से नीचे उतरकर मुनि से क्षमा-याचना करने लगा। पर मुनि ध्यानस्थ थे। अतः राजा भय से और अधिक व्यथित हो गया कि मुनि यदि क्रुद्ध हो गये तो अपने दिव्य तेज से समूचे राज्य को नष्ट कर देंगे। अतः उसने पुनः मुनि से निवेदन किया। मुनि ने ध्यान से निवृत्त होकर उससे कहा—मैं तुझे अभय प्रदान करता हूँ। तुम भी सभी प्राणियों को अभय प्रदान करो। मुनि के त्याग वैराग्य से छलछलाते हुए उपदेश को श्रवण कर राजा संजय श्रमण बन गया। एक दिन एक क्षत्रिय मुनि संजय मुनि के पास आया और उसने पूछा—तुम्हारा नाम व गोत्र क्या है? तुम क्यों मुनि बने हो? किन आचार्यों की सेवा कर रहे हो? संजय मुनि ने कहा—मेरा नाम संजय है, गौतम गोत्र है, मेरे आचार्य गर्दभाली हैं। मैं मुक्ति के लिए श्रमण बना हूँ। आचार्य की आज्ञानुसार कार्य करता हूँ, इसीलिए विनीत हूँ।

---

१. निशीथभाष्य, पीठिका १८३.

२. (क) निशीथ सूत्र १८/१२-१३. (ख) महानिशीथ ८१/३५, (ग) गच्छाचार वृत्ति पृ० ५०.

३. उत्तराध्ययन टीका १८, पृ० २५२ अ.

४. ज्ञाताधर्मकथा ८/६ पृ० १२३.

५. (क) ज्ञाताधर्मकथा १७ पृ० २०१. (ख) कथासरित्सागर, पेन्ज़र, जिल्द ७, अ. १०१, पृ० १५८.

इस कथानक में भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, अर, कुन्थु, महापद्म, हरिषेण, जय, आदि चक्रवर्ती राजाओं के नाम हैं। दशार्णभद्र, नमि, करकण्डु, द्विमुख, नग्गति, उदायण, काशिराज, विजय, महाबल आदि राजाओं के नाम हैं। दशार्ण, कलिंग, पांचाल, विदेह, गान्धार, सौवीर, काशी आदि देशों के नाम हैं। क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद का भी उल्लेख हुआ है। इस तरह प्राग् ऐतिहासिक और ऐतिहासिक सामग्री का सुन्दर संकलन है।

इषुकार राजा :

प्रस्तुत कथानक के मुख्य छह पात्र है—(१) इषुकार महाराजा (२) महारानी कमलावती (३) भृगु पुरोहित (४) पुरोहित की पत्नी यशा (५) पुरोहित के दो पुत्र।

उत्तराध्ययननिर्युक्ति में[1] इन सभी पात्रों के पूर्वभव, वर्तमान भव और उनकी उत्पत्ति तथा निर्वाण प्राप्ति का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। हम विस्तार में न जाकर संक्षिप्त में यह बतायेंगे कि पुरोहित के दो पुत्र दीक्षा के लिए तैयार होते हैं। उनके माता-पिता उन्हें गृहस्थाश्रम में रहकर ब्राह्मण कृत्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। पर जहाँ वैराग्य का पयोधि उछालें मार रहा हो, वहाँ वह व्यक्ति संसार में कैसे रह सकता है? वे दोनों पुत्र माता-पिता को विविध रूपकों एवं अकाट्य तर्कों से संसार की असारता बताते हैं। पिता ब्राह्मण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर अपने तर्क प्रस्तुत करता है तो दोनों पुत्र श्रमण-संस्कृति का नेतृत्व करते हुए अपनी दलीलें रखते हैं। अन्त में भृगुपुरोहित को संसार की असारता और क्षणभंगुरता पर विश्वास पैदा हो जाता है, वह अपनी पत्नी को समझाता है। उसकी पत्नी भी दीक्षा के लिए तैयार हो गई, पुरोहित का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं था। राजा का मन उसकी विराट् सम्पत्ति को लेने के लिए ललचा रहा था। रानी कमलावती इषुकार राजा को कहती है—राजन्! वमन को खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करना चाहते हैं। वह वमन को पीने के सदृश है। रानी ने भोगों की असारता पर प्रकाश डाला। राजा का मन विरक्ति से भर गया। राजा और रानी दोनों भी प्रव्रजित हो जाते हैं।

बौद्ध साहित्य में :

प्रस्तुत कथानक की तरह बौद्ध साहित्य में भी यह कथा कुछ रूपान्तर के साथ आई है। वहाँ भी यह कथा बहुत ही विस्तार के साथ दी गई है। बौद्ध कथावस्तु में मुख्य पात्र आठ हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) राजा एसुकारी (२) पटरानी (३) पुरोहित (४) पुरोहित की पत्नी (५) पहला पुत्र हस्तिपाल (६) दूसरा पुत्र अश्वशाल (७) तीसरा पुत्र गोपाल (८) चौथा पुत्र अजपाल।

न्यग्रोध वृक्ष के अधिष्ठायक देव के वरदान से पुरोहित के चार पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं। पिता उन चारों की परीक्षा लेता है। पिता और पुत्रों में परस्पर संवाद होता है। चारों पुत्र क्रमशः अपने पिता के सामने जीवन की नश्वरता, संसार की असारता और कामभोगों की क्षणिकता का प्रतिपादन करते हैं। चारों ही प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। पुरोहित भी दीक्षा ग्रहण करता है। दूसरे दिन ब्राह्मणी प्रव्रजित हो जाती हैं तथा राजा-रानी भी प्रव्रज्या ले लेते हैं। सरपेण्टियर ने लिखा है—इषुकार के कथानक के साथ बौद्ध कथा-वस्तु की अत्यधिक समानता है। इषुकार की कथा बौद्ध कथा-वस्तु से प्राचीन होनी चाहिए।[2]

डा० घाटगे का अभिमत है कि जैन कथावस्तु व्यवस्थित, स्वाभाविक, यथार्थ और जातक से प्राचीन है। उन्होंने यह भी लिखा है—जातक की कथा, कथा-वस्तु की दृष्टि से पूर्ण है, उसमें पुरोहित के चारों पुत्रों का विस्तार से निरूपण है, जबकि जैन कथा में उसका अभाव है। द्वितीय अन्तर यह है कि जातक में पुरोहित के चार पुत्रों का उल्लेख है, जबकि उत्तराध्ययन में दो पुत्रों का ही वर्णन है। जैन कथा में राजा और पुरोहित के बीच सम्बन्ध नहीं बताया गया है, जबकि जातक में पुरोहित और राजा का सम्बन्ध है। पुरोहित पुत्रों की परीक्षा लेने के लिए राजा से परामर्श करता है और दोनों मिलकर पुत्रों की परीक्षा लेते हैं। जैन दृष्टि से जब पुरोहित सपरिवार दीक्षित हो जाता है तो राजा उस सम्पत्ति पर अपना अधिकार समझकर उस पर

---

१. उत्तराध्ययननिर्युक्ति, गाथा ३६३ से ३७३.

2. This legend certainly presents a rather striking resemblance to the prose introduction of the Jataka 509, and must consequently be old.

—The Uttaradhyayana Sutra, p. 332, Foot-note No. 2

स्वामित्व स्थापित करता है। इससे रानी का मन वैराग्य से भर जाता है। वह स्वयं दीक्षित होने के लिए प्रस्तुत होती है और साथ ही राजा को भी प्रेरणा देती है। यह बात बहुत ही स्वाभाविक और यथार्थ भी है, पर जातक कथा में ऐसी स्वाभाविकता नहीं है। जातक कथा-वस्तु में न्यग्रोध वृक्ष के देवता द्वारा चार पुत्रों का वरदान पुरोहित को प्राप्त होता है, जबकि राजा को पुत्र की अत्यधिक आवश्यकता होने पर भी उसे एक भी पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इससे यह स्पष्ट है कि यह कथा जैन कथा-वस्तु से बाद में लिखी गई है।[१]

महाभारत में :

प्रस्तुत कथा की तरह महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १७५ में भी और अध्याय २७७ में जो पिता-पुत्र के संवाद आये हैं, उन संवादों से सहज रूप से तुलना की जा सकती है। यद्यपि दोनों अध्यायों का प्रतिपाद्य विषय एक है, नामों में भी कोई अन्तर नहीं है, दोनों में सम्राट युधिष्ठिर भीष्मपितामह से कल्याण का मार्ग जानना चाहते हैं, समाधान प्रदान करते हुए भीष्मपितामह एक ब्राह्मण और उसके एक मेधावी पुत्र का संवाद जो प्राचीन इतिहास में आया है, वह उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं। उत्तराध्ययन में त्रेपन गाथाएँ हैं तो महाभारत में उनचालीस श्लोक हैं। अर्थ और शब्द साम्य दोनों ही पाठक को विस्मय में डाल देते हैं। जैन और बौद्ध कथा-वस्तु में पिता और पुत्र के साथ ही राजा एवं रानी का पूरा सम्बन्ध है तथा यह बताया गया है कि वे अन्त में प्रव्रजित होते हैं, जबकि महाभारत में पिता-पुत्र का ही मुख्य संवाद है। अन्त में पुत्र के उपदेश से वे सत्य-धर्म को ग्रहण करते हैं। महाभारत के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि पिता पुत्र को ब्राह्मण धर्म की बातें समझाता है, और उसे वह कहता है—वत्स ! वेदों का गहन अध्ययन करो, गृहस्थाश्रम को धारण करो। बिना पुत्र पैदा हुए पितरों की सद्गति नहीं होती, यज्ञ-याग करो। उसके पश्चात् वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण करो। पिता के तर्कों का पुत्र समाधान करते हुए कहता है—आपका कथन सत्य है, पर आप जरा चिन्तन करें, संन्यास के लिए काल की मर्यादा कोई आवश्यक नहीं है, धर्माचरण करने के लिए मध्यम वय अधिक उपयुक्त है। जो भी कर्म हैं, उनका फल अवश्य मिलता है। आपने यज्ञ के लिए कहा, पर हिंसा-युक्त जो यज्ञ है, वह तामस यज्ञ है और वह यज्ञ साधक के लिए करने योग्य नहीं है। त्याग-तप और सत्य ही सच्चा शान्ति का राजपथ है। इस विश्व में त्याग के समान सुख नहीं है। सन्तान संसार से पार नहीं उतार सकती। विराट् वैभव और परिजन त्राण-प्रदाता नहीं हैं, इसलिए आत्मा की अन्वेषणा करनी चाहिए। पुत्रों ने अपनी चर्चा में जो तथ्य दिये हैं, वे तथ्य श्रमण परम्परा के अधिक अनुकूल हैं। यहाँ तक कि महाभारत और हस्तिपाल जातक में जो श्लोक आये हैं, उन श्लोकों में तथा उत्तराध्ययन की प्रस्तुत कथा में जो गाथाएँ आई हैं, उनमें बहुत कुछ समानता है। हम यहाँ शोधार्थियों के लिए तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु गाथाएँ और श्लोक प्रस्तुत कर रहे हैं।

उत्तराध्ययन (अध्ययन १४)

जाई जरामच्चुभयाभिभूया,
बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥
अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं,
आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥९॥

महाभारत (शान्ति० अ० १७५)

मृत्युर्जरा च व्याधिश्च,
दुःखं चानेककारणम्।
अनुषक्तं यदा देहे,
किं स्वस्थ इव तिष्ठसि ॥२३॥
वेदानधीत्य ब्रह्मचर्येण पुत्र,
पुत्रानिच्छेत् पावनार्थं पितृणाम्।
अग्नीनाधाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याथ मुनिर्बुभूषेत् ॥६॥

हस्तिपाल जातक (सं० ५०९)

अधिच्च वेदे परियेस वित्तं,
पुत्ते गेहे तात पतिट्ठपेत्वा।
गन्धे रसे पच्चनुभुत्व सब्बं
अरञ्ञं साधु, मुनि सो पसत्थो ॥४॥

---

१. Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 17. [1935-36], 'A few Parallels in Jain and Buddhist Works', pp. 343-344.

उत्तराध्ययन

वेया अहीया न भवन्ति ताणं,
भुत्ता दिया निन्ति तमं तमेणं।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं,
को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥१२॥

महाभारत

मोहेन हि समाविष्टः
पुत्रदारार्थमुद्यतः ।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा,
पुष्टिमेषां प्रयच्छति ॥१७॥

तं पुत्रपशुसम्पन्नं,
व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं व्याघ्रो मृगमिव,
मृत्युरादाय गच्छति ॥१८॥

मृत्योर्वा मुखमेतद् वै,
या ग्रामे वसतो रतिः ।
देवानामेष वै गोष्ठो,
यदरण्यमिति श्रुतिः ॥२५॥

निबन्धनी रज्जुरेषा,
या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्वैतां सुकृतो यान्ति,
नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥२६॥

आत्मन्येवात्मना जात,
आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।
आत्मन्येव भविष्यामि,
न मां तारयति प्रजा ॥३६॥

हस्तिपाल जातक

वेदा न सच्चा न च वित्तलाभो,
न पुत्तलाभेन जरं विहन्ति ।
गन्धे रसे मुच्चनं आहुसन्तो,
सकम्मुना होति फलूपपत्ति ॥५॥

उत्तराध्ययन

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥१३॥

हस्तिपाल जातक

गवं न नट्ठं पुरिसो यथा वने,
परियेसति राज अपस्समानो ।
एवं नट्ठो एसुकारी मं अत्थो,
सो हं कथं न गवेस्सेय्य राज ॥११॥

उत्तराध्ययन

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कहं पमाए ? ॥१५॥

महाभारत

इदं कृतमिदं कार्य-
मिदमन्यत् कृताकृतम् ।
एवमीहासुखासक्तं
कृतान्तः कुरुते वशे ॥२०॥

कृतानां फलमप्राप्तं,
कर्मणां कर्मसंज्ञितम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तं,
मृत्युरादाय गच्छति ॥२१॥

उत्तराध्ययन

महाभारत

दुर्वलं वलवन्तं च,
शूर-भीरुं जडं कविम्।
अप्राप्त सर्वकामार्थान्,
मृत्युरादाय गच्छति ॥२२॥

हस्तिपाल जातक

हिय्यो ति हिय्यो ति,
पोसो परेति (परिहायति)।
अनागतं नेतं अत्थीतिजत्वा,
उपन्नछन्दं को नुपदेय्य धीरो ॥१२॥

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं,
सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो,
तं सव्व साहीणमिहेव तुब्भं ॥१६॥
धणेण किं धम्मधुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहि चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

महाभारत

नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं,
यथैकता समता सत्यता च।
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं,
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥३७॥
किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते,
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं,
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ॥३८॥

जहा वयं धम्ममजाणमाणा,
पावं पुरा कम्ममकासि मोहा।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियन्ता,
तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥२०॥

हस्तिपाल जातक

अयं पुरे लुद्दं अकासि कम्मं,
स्वायं गहीतो, न हि मोक्ख इतोमे।
ओरुंधिया नं परिरक्खिस्सामि,
मायं पुन लुद्दं अकासि कम्मं ॥१०॥

अब्भाहयंमि लोगंमि,
सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडन्तीहिं,
गिहंसि न रइं लभे ॥२१॥
केण अब्भाहओ लोगो ?
केण वा परिवारिओ ?
का वा अमोहा वुत्ता ?
जाया ! चिंतावरो हुमि ॥२२॥
मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो,
जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता,
एवं ताय ! वियाणह ॥२३॥

महाभारत

एवमभ्याहते लोके,
समन्तात् परिवारिते।
अमोघासु पतन्तीषु,
किं धीर इव भाषसे ॥७॥
कथमभ्याहतो लोकः,
केन वा परिवारितः।
अमोघाः का पतन्तीह,
किं नु भीषयसीव माम् ॥८॥
मृत्युनाभ्याहतो लोको,
जरया परिवारितः।
अहोरात्रा पतन्त्येते
ननु कस्मान्न बुध्यसे ॥९॥

उत्तराध्ययन

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स,
अफला जन्ति राइओ ॥२४॥
जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स,
सफला जन्ति राइओ ॥२५॥

महाभारत

अमोघा रात्रयश्चापि
नित्य—मायान्ति यान्ति च।
यदाहमेतज्जानामि,
न मृत्युस्तिष्ठतीति ह।
सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये,
जालेनापिहितश्चरन् ॥१०॥
रात्र्यां रात्र्यां व्यतीताया—
मायुरल्पतरं यदा।
गाधोदके मत्स्य इव,
सुखं विन्देत कस्तदा ॥११॥
तदैव वन्ध्यं दिवसमिति,
विद्याद् विचक्षणः।
अनवाप्तेषु कामेषु,
मृत्युरभ्येति मानवम् ॥१२॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं,
जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि,
सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

हस्तिपाल जातक

यस्स अस्स सक्खी मरणेन राज,
जराय मेत्ती नरविरियसेट्ठ।
यो चापि जञ्ञा स मरिस्सं कदाचि,
पस्सेय्यु तं वस्ससतं अरोगं ॥७॥

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि,
सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

महाभारत

श्व कार्यमद्य कुर्वीत,
पूर्वाह्ने चापराह्निकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः,
कृतमस्य न वा कृतम् ॥१५॥
को हि जानाति कस्याद्य,
मृत्युकालो भविष्यति।
अबुद्ध एवाक्रमते,
मीनान् मीनग्रहो यथा ॥१५॥

पुरोहियं तं ससुयं सदारं,
सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहायभोए।
कुडुम्ब सारं विउलुत्तमं तं,
रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

पुत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा,
यथा कार्षीत् पिता नृपः।
तथा त्वमपि वर्तस्व,
सत्यधर्म परायणः ॥३६॥

वन्तासी पुरिसो रायं,
न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं,
धणं आदाउमिच्छसि ॥३८॥

हस्तिपाल जातक

अवमी ब्राह्मणो कामे,
ते त्वं पच्चावमिस्ससि।
वन्तादो पुरिसो राज,
न सो होति पसंसियो ॥१८॥

उत्तराध्ययन	हस्तिपाल जातक
नागो व्व बन्धणं छित्ता,	इदं वत्वा महाराज,
अप्पणो वसहिं वए।	एसुकारी दिसम्पति।
एयं पत्थं महारायं!	रट्ठं हित्वान पब्बजि,
उसुयारि त्ति मे सुयं ॥४८॥	नागो छेत्वा व बंधनं ॥२०॥

सरपेन्टियर ने उत्तराध्ययन की ४४-४५ गाथा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि इन गाथाओं का प्रतिपाद्य जातक के अठारहवें श्लोक में प्रतिपादित कथा से जान सकते है। संक्षेप में कथा का सारांश इस प्रकार है—

पुरोहित का सम्पूर्ण परिवार प्रव्रजित हो गया। राजा ने उसकी विराट् सम्पत्ति अपने पास मंगवा ली। रानी को परिज्ञात होने पर वह समझाने का उपक्रम करने लगी। रानी ने कसाई के वहाँ से मांस मंगवाया और राजप्रासाद ने उसे बिखेर दिया। सीधे मार्ग को छोड़कर चारों ओर जाल लगवा दिया। मांस को निहार कर गिद्ध पक्षी आये, उन्होंने खूब मांस खाया। जो गिद्ध पक्षी बुद्धिमान् थे, उन्होंने जाल को देखा और चिन्तन करने लगे—हम मांस खा-खाकर बहुत ही भारी हो चुके है, जिससे हम सीधे आकाश में उड़ नहीं सकेंगे, उन्होंने खाये हुए मांस को वमन किया और हल्के होकर आकाश में उड़ गये। जो गिद्ध बुद्धहीन थे, उन्होंने वमन किये हुए मांस को भी खा लिया और अत्यन्त भारी हो गये, जिससे वे सीधे उड नहीं सकते थे। वे टेढ़े उड़ने लगे तथा जाल में फँस गये। एक गिद्ध को लाकर अनुचरों ने रानी को दिखाया। वह राजा के सन्निकट पहुँची और उसने झरोखा खोलकर राजा से कहा—आप भी जरा तमाशा देखें। आर्यपुत्र! जो गीध मांस खाकर पुनः वमन कर रहे है, वे गीध आकाश में उड़े चले जा रहे हैं और जो गीध मांस खाकर वमन नहीं कर रहे है, वे मेरे द्वारा लगाये गये जाल मे फंस रहे है।[1]

सरपेन्टियर ने प्रस्तुत कथानक में उनपचास से तरेपन तक की गाथा को मूल नहीं माना है। उनका अभिमत है कि ये पाँच गाथायें मूल-कथा से सम्बन्धित नहीं है। सम्भव है, जैन कथाकार ने बाद में निर्माण कर यहाँ रखा हो।[2] पर उत्तराध्ययन के व्याख्या साहित्य में इस सम्बन्ध में कहीं भी कोई संकेत नहीं है, अतः सरपेन्टियर का कथन केवल तर्क पर आधारित है, तथ्य पर नहीं।

पुराण साहित्य में :

मार्कण्डेय पुराण में प्रस्तुत प्रसंग से सम्बन्धित मधुर संवाद है। एक बार पक्षियों से जैमिनी ने प्राणियों के जन्म आदि से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं। उस जिज्ञासा के समाधान में उन्होंने पिता-पुत्र का एक संवाद प्रस्तुत किया। भार्गव नामक ब्राह्मण का पुत्र सुमति था। उसने धर्म तत्त्व को गहराई से समझा था। एकदिन भार्गव ने पुत्र से कहा—वत्स! प्रथम वेदों को पढ़कर तथा गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा कर, गृहस्थ जीवन सम्पन्न कर, यज्ञ-याग प्रभृति कृत्यों से निवृत्त होकर, पुत्रों को जन्म देकर उसके पश्चात संन्यास ग्रहण करना, पहले नहीं।[3]

सुमति ने निवेदन किया—जिन बातों के लिए आप मुझे संकेत कर रहे है। मैंने पूर्व भी उनका अनेक बार अभ्यास किया है। उसके अतिरिक्त विविध प्रकार के शास्त्र और शिल्पों को भी मैंने अनेक बार पढ़ा है, इसलिए मुझे यह ज्ञान हो चुका है कि वेदों से मुझे क्या प्रयोजन है।[4]

पूज्यवर! मैं इस विराट् संसार मे बहुत ही परिभ्रमण कर चुका हूं। मैंने अनेक बार माता-पिता के संयोग और वियोग का भी अनुभव किया। सुख और दुःख को भी सहन किया है, जन्म एवं मृत्यु के चक्र मे चक्कर लगाते हुए मुझे विशिष्ट ज्ञान हुआ है। मैं अपने लाखों पूर्वजन्मों को निहार रहा हूं। मुझे मोक्ष प्राप्त कराने वाला ज्ञान समुत्पन्न हो चुका है। इस विशिष्ट ज्ञान के

१. जातक संख्या ५०९, पाचवा खण्ड, पृष्ठ ७५.
२. The verses from 49 to the end of the chapter certainly do not belong to original legend, but must have been composed by the Jain author. —The Uttaradhyana Sutra p 335.
३. वेदानधीत्य सुमते! यथानुक्रम मादितः। गुरुशुश्रूषणेव्यग्रो, भैक्षान्नकृतभोजनः॥
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय [illegible] ॥ —मार्कण्डेय पुराण [illegible]
४. तातैतद् बहुशोऽभ्यस्तं, यत्त्वयाद्योपदिश्यते। तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च
............। उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम्॥ —मार्कण्डेय पुराण [illegible]

कारण ऋक्, यजु, साम, प्रभृति वेदों के क्रिया कलाप मुझे उचित ज्ञात नहीं होते हैं। मुझे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हो चुका है। मैं निरीह हूँ, वेदों से मुझे क्या प्रयोजन। इसी उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना और साधना से मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो जायेगी।[1]

पिता ने कहा—वत्स ! तू ऐसी बातें क्यों कर रहा है ? ऐसा प्रतीत होता है, किसी ऋषि या देव का शाप तुझे लगा है।[2] सुमति ने कहा—तात ! पूर्व जन्म में मैं एक ब्राह्मण था। परमात्मा के ध्यान में मैं सदा तल्लीन रहता था। आत्मविद्या के विचार मेरे में पूर्ण रूप से विकसित हो चुके थे। मैं साधना में सदा लगा रहता, मुझे लाखों जन्मों की स्मृति हो आई है। जाति-स्मरण ज्ञान की प्राप्ति धर्मत्रयी में रहे हुए मानव को होती है, मुझे यह ज्ञान पहले से ही प्राप्त है, अब मैं आत्ममुक्ति के लिए प्रयास करूंगा।[3]

पिता-पुत्र का संवाद आगे बढ़ा। पुत्र पिता के समक्ष मृत्यु-दर्शन उपस्थित करता है। यह संवाद प्रस्तुत कथानक में आये हुए जैन कथानक से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस संवाद में आत्मज्ञान और वेदज्ञान के तारतम्य को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

विन्टरनीट्ज का अभिमत है—मार्कण्डेय पुराण में आया हुआ यह संवाद बहुत कुछ सम्भव है बौद्ध या जैन परम्परा का रहा हो। उसके पश्चात् महाकाव्य या पौराणिक साहित्य में सम्मिलित कर लिया गया हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है—यह बहुत प्राचीन काल से प्रचलित श्रमण-साहित्य का अंश रहा होगा और उसी से जैन, बौद्ध, महाकाव्यकारों तथा पुराणकारों ने ग्रहण कर लिया होगा।[4]

आर्य स्कन्दक परिव्राजक :

वैदिक परम्परा का 'परिव्राजक' शब्द विशिष्ट अर्थ को लिये हुए हैं। निरुक्त में भिक्षा से आजीविका करने वाले साधु को 'परिव्राजक' माना है।[5] डा० राजबली पाण्डेय ने लिखा है—परिव्राजक चारों ओर भ्रमण करने वाला संन्यासी था। वह संसार से विरक्त तथा सामाजिक नियमों से अलग-थलग रहकर अपना सम्पूर्ण समय ध्यान, शिक्षण, चिन्तन आदि में व्यतीत करता था।[6]

जैन आगम-साहित्य में तथा उत्तरवर्ती साहित्य में तापस, परिव्राजक, संन्यासी आदि विविध प्रकार के साधकों का सविस्तृत वर्णन है। औपपातिक[7], सूत्रकृतांगनिर्युक्ति,[8] पिण्डनिर्युक्ति,[9] वृहत्कल्पभाष्य[10] निशीथसूत्र सभाष्य चूर्णि[11], भगवती[12], आवश्यकचूर्णि[13] धम्मपद अट्ठकथा[14], ललित विस्तर[15], आदि ग्रन्थों को निहारा जा सकता है। परिव्राजक श्रमण ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ठ धर्मसूत्र के उल्लेखानुसार परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना, एक वस्त्र व चर्मखण्ड धारण करना, गायों के लिए लाई हुई घास से अपने शरीर को आच्छादित करना और उसे जमीन पर शयन करना चाहिए।[16] मलालसेकर ने डिक्सनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स आदि में परिव्राजक की परिभाषा प्रस्तुत की है।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर कृतंगला नामक नगरी में पधारे और छत्रपलाश चैत्य में विराजे। भगवान् के प्रवचन को सुनने के लिए जनसमूह उमड़ पड़ा। कृतंगला नगरी के सन्निकट ही श्रावस्ती नामक नगर था। वहाँ 'कात्यायन' परिव्राजक का शिष्य 'स्कन्दक' परिव्राजक रहता था। वह चार वेद, इतिहास, निघंटु और षष्टितंत्र [कापिलीय शास्त्र] में निपुण था। साथ ही

---

१. एवं संसार चक्रेस्मिन्, भ्रमता तात ! संकटे। ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तं, मोक्षसम्प्राप्ति कारकम् ॥
विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुः सामसंहितः। क्रियाकलापो विगुणो, न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥
तस्मादुत्पन्नबोधस्य, वेदैः किं मे प्रयोजनम्। गुरुविज्ञानतृप्तस्य, निरीहस्य सदात्मनः ॥
—मार्कण्डेयपुराण, १०।२७, २८, २९

२. मार्कण्डेय पुराण, १०।३४, ३५
३. मार्कण्डेय पुराण, १०।३७, ४४
४. The Jainao in the history of Indian Literature, p. 7.
५. निरुक्त १।१४. वैदिक कोश
६. हिन्दू धर्मकोश, पृष्ठ ३९०-३९१.
७. औपपातिक सूत्र ३८, पृष्ठ १७२से १७६
८. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति ३।४।२, ३।४ पृष्ठ ९४-९५
९. पिण्डनिर्युक्ति गा० ३१४
१०. बृहत्कल्पभाष्य, भाग ४, पृष्ठ ११७०
११. निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि, भाग २
१२. भगवती सूत्र ११।९
१३. आवश्यकचूर्णि पृष्ठ २७८
१४. धम्मपद अट्ठकथा-२, पृष्ठ २०९
१५. दीघनिकाय अट्ठकथा-१, पृष्ठ २७०
१६. ललित विस्तर पृष्ठ-२४८
१७. (क) वशिष्ठ धर्मसूत्र-१०३-११
(ख) डिक्सनरी आव पाली प्रोपर नेम्स, जिल्द २, पृष्ठ १५९ आदि-मलालसेकर। (ग) महाभारत १२।१९०।३

गणितशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, ब्राह्मण, नीति शास्त्र व अन्य दर्शनों में पारंगत था। वहाँ पर 'पिंगल' नामक निर्ग्रन्थ श्रावक रहता था। उसने स्कन्दक परिव्राजक से आक्षेपात्मक भाषा में पूछा—

मागध ! यह लोक सान्त है या अनन्त है ?
जीव सान्त है या अनन्त है ?
सिद्धि सान्त है या अनन्त है ?
सिद्ध सान्त है या अनन्त है ?

किस प्रकार का मरण पाकर जीव संसार को घटाता और बढ़ाता है ? क्या तुम मेरे प्रश्नों का समाधान कर सकोगे ?

स्कन्दक परिव्राजक प्रश्नों को सुनते ही शंकाशील हो उठा। उसे समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दूँ। पिंगल ने पुनः पुनः उन प्रश्नों को दोहराया किन्तु उत्तर न आने से स्कन्दक सोचने लगा—इसका सही समाधान क्या हो सकता है ? उसी समय उसे ज्ञात हुआ—छत्रपलाश उद्यान में भगवान् महावीर का आगमन हुआ है, अतः स्कन्दक परिव्राजक त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षमाला, मृत्पात्र, आसन, पात्र प्रमार्जन का वस्त्र खण्ड, त्रिकाष्ठिका, अंकुश, कुश की मुद्रिका धारण कर कृतंगला की ओर प्रस्थित हुआ।

उस समय भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—तुम अपने पूर्व परिचित को देखोगे। गौतम की जिज्ञासा से भगवान् ने कहा—पिंगल निर्ग्रन्थ ने स्कन्दक से प्रश्न पूछे हैं, वह उनका उत्तर नहीं दे सका, अतः तापसी उपकरणों को धारण कर यहाँ आने के लिए प्रस्थित हो गया है।

गौतम ने पुनः पूछा—भगवन् ! क्या वह आपका शिष्य बनेगा ? भगवान् ने स्वीकृति सूचक संकेत किया। भगवान् और गौतम का वार्तालाप चल ही रहा था कि गौतम को दूर से आता हुआ स्कन्दक परिव्राजक दिखाई दिया। गौतम अपने स्थान से उठे और स्कन्दक के सामने गये और मधुर वाणी में बोले—स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, सुस्वागत है। अन्वागत है। हे मागध ! यह सत्य है कि पिंगल नामक निर्ग्रन्थ श्रावक ने आप से कुछ प्रश्न पूछे जिनके उत्तर आप नहीं दे सके। उसके उत्तर को लेने के लिए आपका यहाँ आगमन हुआ है।

गणधर गौतम के द्वारा अपने मन की बात को सुनकर स्कन्दक परिव्राजक को बहुत ही आश्चर्य हुआ। गौतम ने कहा—मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक भगवान् महावीर सर्वज्ञ हैं। आपके मानसिक विचारों से पूर्ण परिचित हैं। उन्होंने ही मुझे बताया कि आप किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं ? चलिए, उन्हें श्रद्धास्निग्ध हृदय से वन्दन-नमस्कार कीजिए। स्कन्दक ने भगवान् को वन्दन किया। प्रभु ने कहा—मागध ! श्रावस्ती में रहने वाले पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुम्हारे से 'लोक, जीव, मोक्ष, सिद्ध आदि सान्त हैं या अनन्त'। इस प्रकार प्रश्न पूछे थे न ?

स्कन्दक—हां, भगवन् ! पूछे थे।

महावीर—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य दृष्टि से एक और सान्त है, क्षेत्र दृष्टि से असंख्य कोटाकोटि योजन आयाम विष्कम्भ वाला है। इसकी परिधि असंख्य कोटाकोटि योजन है। काल की दृष्टि से किसी दिन नहीं होता है, ऐसा नहीं। किसी दिन नहीं था—ऐसा नहीं। किसी दिन नहीं रहेगा—ऐसा भी नहीं। यह तीनों कालों में रहेगा, यह ध्रुव, शाश्वत, नियत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। भाव दृष्टि से यह अनन्त वर्ण, गंध, रस, स्पर्शपर्याय रूप है।

स्कन्दक ! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से यह लोक सान्त है, काल और भाव की अपेक्षा से अनन्त है, इसलिए लोक सान्त भी है और अनन्त भी है।

जीव के सम्बन्ध में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ही समझा जाय। द्रव्य की अपेक्षा से जीव एक और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से वह असंख्यात प्रदेशी है और सान्त है। काल की अपेक्षा से वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः नित्य है, उसका कभी भी अन्त नहीं है। भाव की अपेक्षा से वह अनन्त ज्ञानपर्याय रूप है, अनन्त दर्शनपर्याय रूप है और अनन्त गुरु-लघु पर्यवरूप है। इसका अन्त नहीं है। इस प्रकार स्कन्दक ! द्रव्य व क्षेत्र की अपेक्षा से जीव अन्त-सहित है एवं काल और भाव की अपेक्षा से अन्त-रहित है।

इसी प्रकार मोक्ष भी सान्त और अनन्त है। द्रव्य की दृष्टि से मोक्ष एक और सान्त है। क्षेत्र की दृष्टि से [illegible] योजन आयाम विष्कम्भ वाला है। काल की दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि किसी दिन मोक्ष [illegible] नहीं रहेगा। भाव की दृष्टि से यह अन्त-रहित है। इस तरह द्रव्य और क्षेत्र की दृष्टि से मोक्ष अन्त-सहित है [illegible] की दृष्टि से अन्त-रहित है।

स्कन्दक ! इसी तरह सिद्ध के सम्बन्ध में भी तुम्हें समझना चाहिए। द्रव्य की दृष्टि से सिद्ध एक है और अन्त-युक्त है। क्षेत्र की दृष्टि से सिद्ध असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होने पर भी अन्त-युक्त है। काल की दृष्टि से सिद्ध की आदि तो है पर अन्त नहीं। भाव की दृष्टि से ज्ञान-दर्शन पर्यवरूप है और उसका अन्त नहीं।

मरण के सम्बन्ध में भी तुम्हारे अन्तर्मानस में विकल्प है कि किस मरण से संसार बढ़ता है तथा किस मरण से संसार घटता है। मरण के दो प्रकार हैं—बाल-मरण और पण्डित-मरण ! बाल-मरण के बारह प्रकार हैं तथा पण्डित-मरण के पादपोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान ये दो प्रकार हैं एवं अवान्तर भेद भी अनेक हैं। पण्डित-मरण से संसार घटता है और बाल-मरण से संसार बढ़ता है।

इस प्रकार सभी प्रश्नों के उत्तर सुनकर स्कन्दक परिव्राजक आल्हादित हुआ, उसने दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। प्रभु ने उसे जैनेश्वरी दीक्षा दी और ज्ञान-ध्यान की साधना से स्कन्दक परिव्राजक कर्मों को नष्ट कर मुक्त हुआ।

प्रस्तुत कथानक से यह ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के समय इस प्रकार के प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे। अनेक परिव्राजक, संन्यासी और श्रमण इन प्रश्नों पर चिन्तन-मनन करते किन्तु सही समाधान के अभाव में इधर-उधर मूर्धन्य मनीषियों से व धर्म-प्रवर्तकों से समाधान पाने के लिए घूमते रहते थे। तथागत बुद्ध के पास इस प्रकार के प्रश्न लेकर कोई जाता तो बुद्ध अव्याकृत कह कर उन्हें टालने का प्रयास करते थे।[1] किन्तु भगवान् महावीर ऐसे प्रश्नों पर कभी भी मौन नहीं होते, वे उसका सटीक उत्तर देते जिससे साधक यथार्थ सत्यतथ्य को जानकर साधना के पथ पर बढ़ जाता।

यहाँ एक प्रश्न चिन्तनीय है—स्कन्दक परिव्राजक वैदिक परम्परा का अनुयायी था फिर उसने धर्म-परिवर्तन क्यों किया ? उत्तर में निवेदन है—यह जाति-परिवर्तन नहीं किन्तु विचार-परिवर्तन है। भारतीय जाति में विचार-परिवर्तन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। स्कन्दक, अम्बड आदि अनेक परिव्राजक जो प्रभु महावीर के पास प्रव्रजित हुए थे यह परिवर्तन स्वयं के विचार एवं रुचि के अनुसार हुआ था। सम्भव है इसी तरह जैन, बौद्ध और आजीवक भी वैदिक धर्म में दीक्षित हुए हों। यह न तो जाति-परिवर्तन था और न राष्ट्रीय चेतना में ही परिवर्तन था। यह कार्य विचार-परिवर्तन एक ही सीमित था। इसीलिए सभी धर्म वाले इस परिवर्तन को बिना रोकटोक के स्वीकार करते थे। आज जो धर्म-परिवर्तन का दौर द्रुत गति से बढ़ रहा है। वह विचार-परिवर्तन नहीं किन्तु जाति-परिवर्तन है और अर्थतन्त्र पर आधृत है। जिससे पारस्परिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

पुद्गल परिव्राजक :

एक बार भगवान महावीर आलभिका नगरी के शंखवन उद्यान में पधारे। शंखवन उद्यान के पास 'पुद्गल परिव्राजक' रहता था। उसे विभंगज्ञान हुआ जिससे वह पांचवें ब्रह्म देवलोक में रहे हुए देवों की स्थिति जानने लगा 'मुझे अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है।' देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट दश सागरोपम की है। उसके आगे देव और देवलोक नहीं है। सारे नगर में यह चर्चा फैल गई। भगवान ने कहा—पुद्गल परिव्राजक का कथन असत्य है। मैं कहता हूँ—देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है एवं उत्कृष्टतम स्थिति तैंतीस सागरोपम की है। पुद्गल परिव्राजक ने आलभिका नगरी के निवासियों से यह बात सुनी। उसे अपने ज्ञान पर संशय हुआ जिससे उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया। वह अपने धर्मोपकरण लेकर भगवान महावीर के पास आया। महावीर ने शंकाओं का निवारण किया और समाधान होने पर वह श्रमण भगवान महावीर के शासन में प्रव्रजित हुआ तथा कर्मों का अन्त कर सिद्धि प्राप्त की।

धर्मकथानुयोग में 'मोग्गल परिव्वायगे' शब्द दिया है। पं० बेचरदास जी दोशी ने भी 'मोग्गल' शब्द का ही प्रयोग

---

१. तथागत बुद्ध ने जिन प्रश्नों को अव्याकृत कहा, वे ये है—

१. क्या लोक शाश्वत है ?
२. क्या लोक अनन्त है ?
३. क्या लोक अशाश्वत है ?
४. क्या जीव और शरीर एक है ?
५. क्या लोक अन्तवान है ?
६. क्या जीव और शरीर भिन्न है ?
७. क्या मरने के बाद तथागत नहीं होते ?
८. क्या मरने के बाद तथागत होते भी है और नहीं भी होते ?
९. क्या मरने के बाद तथागत न होते है और न नहीं होते है।

—मज्झिमनिकाय चूळमालुंक्य सुत्त ६३. दीघनिकाय पोट्ठपाद सुत्त १/९

किया है और 'पोग्गल' को उन्होंने पाठान्तर में दिया है। जबकि लैलाना संस्करण, जैन विश्वभारती-लाडनूं संस्करण इन में 'पोग्गल परिव्वायग' शब्द को ही प्रमुखता दी है।

शिव राजर्षि :

हस्तिनापुर नगर में 'शिव' नामक राजा था और उनकी 'धारिणी' पटरानी थी। रात्रि के तृतीय प्रहर में उसे यह अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि मेरा पुत्र बड़ा हो गया है, मैं उसे राज्य का कार्यभार सौंप कर 'दिशाप्रोक्षक' प्रव्रज्या ग्रहण करूं। तदनुसार उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और यह अभिग्रह ग्रहण किया—यावज्जीवन निरन्तर बेले-बेले की तपस्या द्वारा 'दिक चक्रवाल' तप कर्म से दोनों हाथ ऊँचे रखकर मुझे रहना कल्पता है। इस प्रकार उग्र अभिग्रह धारण कर प्रथम बेले की तपस्या के पारणे के दिन 'शिव राजर्षि' आतापना भूमि से नीचे उतरता है तथा वल्कल के वस्त्र धारण कर बांस की छबड़ी और कावड़ को लेकर पहले पूर्व दिशा के सोम महाराजा से आज्ञा लेता है और पूर्व दिशा में रहे हुए कन्द, मूल, फल, छाल, पत्र, पुष्प आदि वनस्पति ग्रहण करता है। पुनः कावड़ नीचे रखकर उसने वेदिका का परिमार्जन किया और लीप कर उसे शुद्ध किया। फिर डाभ और कलश हाथ में लेकर गंगा नदी पर आया, उसमें डुबकी लगाई फिर झोंपड़ी में आकर डाभ, कुश और बालुका से वेदिका का निर्माण किया। अरणी की लकड़ी को घिस कर अग्नि प्रज्वलित की, अग्नि के दाहिनी ओर सात वस्तुओं को रखा। सकथा (उपकरण विशेष) वल्कल, दीप, शय्या के उपकरण, कमंडल, दण्ड और स्वयं का शरीर। मधु, घृत, चावल द्वारा अग्नि में होम कर वैश्वदेव की अर्चना की। अतिथि की पूजा करके आहार ग्रहण किया। दूसरी बार इसी तरह दक्षिण, पश्चिम और उत्तर सभी लोकपालों की आज्ञा लेकर वह पारणा करता। दिक्चक्रवाल तप, आतापना, प्रकृति की भद्रता आदि से शिव राजर्षि को विभंगज्ञान हुआ जिससे वह सात द्वीप और सात समुद्र को देखने लगे। उन्होंने यह उद्घोषणा की—लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं।

भगवान् महावीर हस्तिनापुर नगरी के उद्यान में पधारे। इन्द्रभूति गौतम ने शिव राजर्षि की अतिशय ज्ञान की चर्चा सुनी, उन्होंने भगवान् महावीर से निवेदन किया—भगवन् ! सत्य क्या है ? प्रभु ने स्पष्ट शब्दों में कहा—शिव राजर्षि का कथन मिथ्या है। जम्बूद्वीप आदि सभी वृत्ताकार हैं। विस्तार में एक दूसरे से दुगुने हैं तथा असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। शिव राजर्षि ने भगवान् महावीर की वह बात सुनी, तो उसे अपने ज्ञान के प्रति संशय पैदा हुआ। वह भगवन् के पास पहुंच कर, सही समाधान पाकर प्रबुद्ध हुआ, उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर अंगों का अध्ययन किया। कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

स्कन्दक परिव्राजक, पुद्गल परिव्राजक तथा शिव राजर्षि ये तीनों वैदिक परम्परा के परिव्राजक श्रमण परम्परा को ग्रहण करते हैं और साथ ही उस युग के ज्वलन्त प्रश्न, जो जन-मानस में घूम रहे थे और सही समाधान नहीं होने से जन-मानस विक्षुब्ध बना हुआ था, उन प्रश्नों का सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्पष्ट रूप से समाधान करते हैं। कथा के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन को प्रस्तुत किया गया है। यही इन तीनों कथाओं की विशेषता है।

उदायन राजा :

नगर में आये हैं, अतः आपको सचेत हो जाना चाहिए, क्रुद्ध होकर राजा केशी ने यह उद्घोषणा करवा दी—मुनि को रहने के लिए स्थान न दें। राजर्षि को नगर में कहीं भी स्थान नहीं मिला। अन्त में एक कुम्भकार के वहाँ पर उन्होंने विश्राम लिया। राजा केशी ने राजर्षि को मरवाने के लिए आहार में जहर मिला दिया पर महारानी प्रभावती, जो देवी बनी हुई थी, उसने उनको उबार लिया। देवी की अनुपस्थिति में विष-मिश्रित आहार राजर्षि के पात्र में आ गया। उन्होंने अनासक्त भाव से उस आहार को ग्रहण किया, जिससे शरीर में विष फैल गया। राजर्षि ने अनशन किया, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति की।

राजर्षि के मोक्ष-गमन से देवी नागरिकों और राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई। उसने धूलि की वर्षा की, सारे नगर को धूल से आच्छादित कर दिया। केवल कुम्भकार बचा क्योंकि वह राजर्षि का शय्यातर था। देवी कुम्भकार को सिनपल्ली ले गई और उस स्थान का नाम 'कुम्भकारपक्खेव' रखा गया।[1]

बौद्ध साहित्य में उदायन :

बौद्ध साहित्य अवदान कल्पलता[2] व दिव्यावदान[3] में भी राजा उदायन का वर्णन है। चूर्णि साहित्य में उदायन का नाम 'उद्रायण' प्राप्त होता है।[4] वैसे ही अवदान कल्पलता में "उद्रायण" और दिव्यावदान में 'रुद्रायण' नाम प्राप्त होते हैं। दोनों ही परम्परा उसे सिंधु सौवीर देश का राजा मानती हैं पर राजधानी के नाम में अन्तर है। जैन साहित्य में राजधानी का नाम 'वीतभय' है तो बौद्ध साहित्य में उसका नाम "रोरुक" दिया है। दोनों ही परम्परा के अनुसार उसकी महारानी स्वर्ग से आकर उसे प्रतिबुद्ध करती है।

राजा उदायन का भगवान् महावीर तथा बुद्ध के सम्पर्क में आने का वर्णन पृथक्-पृथक् रूप से मिलता है। भगवान् महावीर स्वयं सिन्धु सौवीर देश में पधारते हैं और राजा को दीक्षा प्रदान करते हैं; जबकि तथागत बुद्ध उसे मगध में आने पर दीक्षा देते हैं। दोनों ही परम्पराओं के अनुसार मुनि उदायन जब अपनी राजधानी में जाते है, वहाँ पर दुष्ट अमात्य राजा को भ्रमित कर देते हैं और राजर्षि का वध करवा देते हैं। राजा दीक्षा लेने के पूर्व अपना राज्य जैन दृष्टि से अपने भानजे केशी को देता है तो बौद्ध दृष्टि से अपने पुत्र शिखण्डी को राज्य देता है। दोनों ही परम्पराओं की दृष्टि से राजा उदायन अर्हत् बनकर निर्वाण प्राप्त करते हैं और देवी-प्रकोप से नगर धूलिसात् हो जाता है।[5]

उदायन की कथा भगवती में विस्तार से प्राप्त है।[6] उत्तराध्ययन में भी उसका संक्षेप में उल्लेख हुआ है।[7] चूर्णि व अन्य टीका साहित्य में यह कथा आई है।[8] भगवती की दृष्टि से उदायन का पुत्र अभीचिकुमार निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक था। पिता के द्वारा राज्य न मिलने से उसके मन में विद्रोह की भावना पैदा हुई और वह असुरयोनि में उत्पन्न हुआ।[9]

बौद्ध साहित्य में प्रस्तुत कथानक जैन कथानक से बाद में आया है। क्योंकि रुद्रायणावदान प्रकरण पाली साहित्य में नहीं है और न हीनयान परम्परा के अन्य कथा साहित्य में ही है। अवदान कल्पलता और दिव्यावदान ये दोनों महायान परम्परा के ग्रन्थ हैं। ये संस्कृत में हैं और उत्तरकालीन है।[10] एक व्यक्ति दोनों ही परम्परा में दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करे, यह सम्भव नहीं है। सम्भव है जैन साहित्य में आई हुई प्रस्तुत कथा को बौद्ध साहित्यकारों ने अपनाया हो। क्योंकि राजा बिम्बिसार और उदायन का मैत्री-सम्बन्ध भी उसी तरह से कराया गया है जैसे जैन परम्परा में अभयकुमार और आर्द्रककुमार का।[11] हमारी दृष्टि से राजर्षि

---

१. (क) सिणवल्लीए कुम्भकारपक्खेवं नाम पट्टणं तस्स नामेणं जातं। —आवश्यकचूर्णि

(ख) सो य अवहरितो अणवराहि त्ति काउं सिणवल्लीए। कुंभकारक्खेवो नाम पट्टणं तस्स नामेणं कयं॥ —उत्तरा० अ० १८

(ग) शय्यातरं मुनेस्तस्य कुम्भकारं निरागसम्। सा सुरी सिनपल्यां प्राग् निन्ये हृत्वा ततः पुरम्॥
तस्य नाम्ना कुम्भकार कृतमित्याह्वयं पुरम्। तत्र सा विदधे किं वा दिव्य शक्तेर्न गोचरः॥
—उत्तरा० भावविजय की टीका, पत्र ३८७-२

२. अवदान ४०

३. दिव्यावदान ३७

४. उद्दायणं राया, तावसो भत्तो। —आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्ध, पत्र ३९९

५. बौद्ध साहित्य दिव्यावदान, रुद्रायणावदान ३७

६. भगवती शतक १३, उद्दे० ६

७. सोवीररायवसभो चइत्ताण मुणी चरे। उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं॥ —उत्तरा० १८।४८

८. आवश्यकचूर्णि पूर्वार्ध

९. भगवती शतक १३, उद्दे० ६

१०. दिव्यावदान—सम्पादक पी० एल० वैद्य- प्रस्तावना।

११. देखिए आर्द्रकुमार का प्रसंग।

उदायन जैन परम्परा का ही परम उपासक रहा। सम्भवतः उसके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बाद में बौद्ध साहित्यकारों ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हो।

जिनपालित और जिनरक्षित—

जिनपालित और जिनरक्षित माकंदी सार्थवाह के पुत्र थे और चम्पा के निवासी थे। उन्होंने अनेक वार समुद्र-यात्रा की। जब भी उनके अन्तर्मानस में यात्रा का विचार आता, वे चल पड़ते। उनकी यात्रा का उद्देश्य व्यापार था। निरन्तर सफलता प्राप्त होने से उनका साहस बढ़ गया। जब वे बारहवीं बार समुद्र यात्रा के लिए सन्नद्ध हुए तो माता-पिता ने इन्कार करते हुए कहा—हमारे पास इतना वैभव है कि सात पीढ़ी तक भी वह समाप्त नहीं हो सकता। अतः बारहवीं यात्रा स्थगित कर दो। जवानी के जोश में पुत्र नहीं माने और यात्रा के लिए चल पड़े। नौकाएँ समुद्र में आगे बढ़ रहीं थीं। आकाश में मेघों की भयंकर गर्जना होने लगी, बिजलियाँ कौंधने लगीं तथा भयंकर आँधी ने रौद्र रूप धारण किया। उन दोनों का यान उस आँधी में फँस कर छिन्न-भिन्न हो गया। माता-पिता की बात न मान कर अपने हठ पर कायम रहने का दुष्परिणाम वे भोग चुके थे। एक टूटे हुए पाटिया के सहारे वे समुद्र में तिर रहे थे। जिस प्रदेश में वे पहुँचे वह रत्नद्वीप था। रत्नदेवी उनके पास पहुँची और उनसे भोग की याचना की। कोई विकल्प नहीं होने से वे उसकी इच्छा तृप्त करने लगे। एक बार रत्नदेवी ने जाते हुए जिनपाल और जिनरक्षित को तीन दिशाओं के वनखण्डों में जाने की अनुमति दी किन्तु दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने का निषेध किया। देवी के मना करने पर भी वे उधर ही चल पड़े। उन्होंने वहाँ एक व्यक्ति को शूली पर छटपटाते हुए देखा। पूछने पर उसने अपनी करुण कहानी कही—देवी के कारण ही मेरी यह स्थिति हुई है। माकन्दीपुत्रों का हृदय काँप उठा। उस व्यक्ति ने शैलक यक्ष के पास जाने का संकेत किया। वे दोनों शैलक यक्ष के पास पहुँचे। पर उसने शर्त रखी—रत्नदेवी के प्रलोभन में तुम आ गये तो मैं तुम्हें समुद्र में गिरा दूंगा। जो प्रलोभन में नहीं आयेगा, उसे सकुशल पहुँचा दूंगा। रत्नदेवी अपने ज्ञान से जानकर वहाँ आई। जिनपालित अविचल रहा किन्तु जिनरक्षित उसके अनुराग में अनुरक्त हो गया। यक्ष ने उसे पीठ से गिरा दिया और रत्नदेवी ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिनपालित अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँच गया। इसी प्रकार जो साधक अपनी साधना से विचलित नहीं होता, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक से मिलता-जुलता कथानक बौद्ध साहित्य के 'वलाहस जातक' तथा 'दिव्यावदान' में भी है। तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों कथानकों में परम्परा के भेद से अन्तर अवश्य है पर कथानकों के मूल तत्त्व प्रायः मिलते-जुलते हैं। श्रमण भगवान महावीर के पावन उपदेश को श्रवण कर जिनपालित श्रमण धर्म को स्वीकार करता है और उत्कृष्ट तप-जप की आराधना द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए सौधर्म देवलोक में देव बनकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनता है।

कालास्यवेषि अणगार—

कालास्यवेषि अणगार भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के थे। भगवान महावीर के समय हजारों पार्श्वापत्य श्रमण विचरते थे। उसमें कालास्यवेषि पुत्र अणगार भी थे। उनके अन्तर्मानस में यह प्रश्न उद्बुद्ध हुआ कि हमारे में और भगवान महावीर के स्थविरों में क्या अन्तर है? उन्होंने सामायिक आदि के सम्बन्ध में स्थविरों से पूछा। उत्तर पाकर वे अत्यन्त संतुष्ट हुए और पार्श्वापत्य के चातुर्याम धर्म को छोड़कर भगवान महावीर के शासन को स्वीकार किया।

उदक पेढाल —

राजगृही का उपनगर नालन्दा था। वहाँ 'लेव' नामक श्रमणोपासक था। उसकी 'शेषद्रविका' उदकशाला थी। प्रोफेसर डॉ० हर्मन जैकोबी[१] ने तथा गोपालदास पटेल ने[२] उदकशाला का अर्थ 'स्नान गृह' किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रपा' (प्याऊ) अर्थ किया है[३]। शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज ने भी यही अर्थ किया।[४]

गौतम गणधर एक बार उदकशाला में ठहरे हुए थे। पार्श्वापत्तीय मेतार्य गोत्रीय पेढालपुत्र उदक नामक निर्ग्रन्थ भी

---

१. सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, वाल्यूम ४५. —प्रो० डा० हर्मन जेकोबी
२. 'महावीरनो संयमधर्म' (गुजराती) पृष्ठ १२७. —गोपालदास पटेल
३. अभिधान चिन्तामणि कोष, भूमिकाण्ड, श्लोक ६७. —आचार्य हेमचन्द्र
४. अर्धमागधी कोष, भाग २, पृष्ठ २१८. —शतावधानी रत्नचन्द्रजी म०

उन्हीं के सन्निकट ठहरे हुए थे। वे गणधर गौतम से विविध प्रश्नोत्तर करते हैं। उनके प्रश्नों के मुख्य दो उद्देश्य थे—(१) श्रमणोपासक द्वारा ग्रहण किया गया त्रस प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है क्योंकि उसका पालन सम्भव नहीं है। त्रस जीव स्थावर हो जाते हैं और स्थावर जीव त्रस हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में त्रस-स्थावर का निर्णय करना कठिन होता है, अतः त्रस के स्थान पर 'त्रसभूत' शब्द का प्रयोग होना चाहिए। त्रसभूत का अर्थ है—वर्तमान में जो जीव त्रस-पर्याय में है, उनकी हिंसा का प्रत्याख्यान करना। उनका दूसरा उद्देश्य था—सभी त्रस यदि कदाचित् स्थावर हो जायेंगे तो श्रमणोपासक का त्रस प्रत्याख्यान निरर्थक एवं निर्विषय हो जायेगा। गणधर गौतम ने अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों के द्वारा उदकपेढाल का समाधान किया। अन्त में उदक निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के चरणों में [illegible] धर्म स्वीकार करते हैं। इसका [illegible] वर्णन इस प्रकरण में है। प्रस्तुत प्रकरण से यह भी पता चलता है कि गणधर गौतम अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से जटिल समस्याओं का भी सरलतम समाधान करने में पूर्ण दक्ष थे।

नन्दीफल—

धन्य सार्थवाह चम्पा का एक धनी व्यापारी था। वह माल लेकर अहिच्छत्रा नगरी जाने का विचार करने लगा। [illegible]

[illegible]

[illegible]

धन्य सार्थवाह—

धन्य सार्थवाह की पुत्री सुषमा थी। उसकी देखभाल के लिए 'चिलात' दासी-पुत्र को नियुक्त किया गया। वह अत्यन्त उच्छृंखल था। श्रेष्ठी ने उसे निकाल दिया। वह व्यसनों का दास बन गया और तस्कराधिपति भी। बाल्यकाल से ही वह सुषमा को प्यार करता था, अतः उसने सुषमा का अपहरण किया। श्रेष्ठी और उसके पुत्रों ने उसका पीछा किया। अटवी में चिलात के द्वारा मारी गई सुषमा की मृत देह उन्हें प्राप्त हुई। वे कई दिनों से भूखे और प्यासे थे। अन्य कोई भी खाद्य पदार्थ उपलब्ध नहीं था, अतः उन्होंने उस मृत देह का भक्षण कर अपने प्राणों की रक्षा की। उन्हें उस आहार के प्रति किंचित् मात्र भी आसक्ति नहीं थी। वैसे ही श्रमण और श्रमणियां संयम निर्वाह के लिए आहार ग्रहण करते हैं। आहार का लक्ष्य संयम-साधना है।

बौद्ध त्रिपिटक साहित्य में भी इसीतरह मृत-कन्या का मांस-भक्षण कर जीवित रहने का उल्लेख है।[1]

विसुद्धिमग्ग और शिक्षा समुच्चय में भी बौद्ध श्रमणों को इस तरह आहार लेना चाहिए, यह बताया गया है। मनुस्मृति, आपस्तम्बधर्मसूत्र[2] वासिष्ठ[3] बोधायन धर्मसूत्र[4] आदि में संन्यासियों की आहार सम्बन्धी चर्चा भी इसी प्रकार मिलती जुलती है।

प्रस्तुत कथानक से यह भी परिज्ञात होता है कि महावीर युग में तस्करों के द्वारा ऐसी मंत्रशक्ति का प्रयोग किया जाता था, जिससे संगीन से संगीन ताले भी मंत्र शक्ति से खुल जाते थे।[5] इससे यह स्पष्ट है कि उस युग में ताले आदि का उपयोग धन आदि की रक्षा के लिए होता था। विदेशी यात्री 'मेगस्थनिज', ह्यू एनत्सांग अथवा युवानच्वाङ [६००—६४ ई०], फाहियान प्रभृति यात्रियों ने अपने यात्रा-विवरणों में लिखा है—भारत में कोई भी व्यक्ति ताले आदि का उपयोग नहीं करता था, पर आगम साहित्य में ताले आदि का जो वर्णन मिलता है, वह अनुसन्धित्सुओं के लिए अन्वेषणीय है।

कालोदायी अणगार—

राजगृही के गुणशीलक उद्यान के सन्निकट अन्यतीर्थी रहते थे। कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नरमोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ति गृहपति आदि। वे परस्पर वार्तालाप करने लगे। भगवान् महावीर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन पाँचों द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं और इन अस्तिकायों में से पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर शेष चार को अरूपी कहते हैं। उनका यह कथन किस प्रकार माना जा सकता है? उन्होंने गणधर गौतम को सन्निकट से जाते हुए देखा और गौतम से जिज्ञासा प्रस्तुत की। गौतम ने कहा—हम अस्तिभाव को अस्तिभाव कहते हैं और नास्तिभाव को नास्तिभाव। गौतम ने भगवान् महावीर से कहा। उधर कालोदायी प्रभु के समवसरण में पहुँचा। भगवान् ने कहा—तुझे अस्तिकाय सम्बन्धी शंका है। मैं धर्मास्तिकाय आदि की प्ररूपण करता हूँ।

कालोदायी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय इन अरूपी अजीव कायों पर क्या कोई बैठना, सोना, खड़े रहना आदि क्रियायें कर सकता है?

भगवान् ने स्पष्टीकरण किया—केवल पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीव है। उस पर बैठने, सोने आदि की क्रियायें की जा सकती हैं, शेष पर नहीं। पुनः कालोदायी ने जिज्ञासा की—रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय में क्या जीवों को अशुभ फल देने वाले पाप कर्म लगते हैं? भगवान् ने कहा—जीव ही पाप कर्म से युक्त होते हैं। समाधान पाकर कालोदायी ने स्कन्दक की तरह प्रभु के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

प्रस्तुत कथा में जैनदर्शन की महत्त्वपूर्ण चर्चा है। जीवद्रव्य अरूपी है। वह चेतनामय है और जिसमें चेतना गुण का अभाव है, वह अजीव है। अजीव द्रव्य रूपी और अरूपी दोनों प्रकार का है। पुद्गल रूपी है, शेष चार द्रव्य अरूपी। रूपी के लिए मूर्त और अरूपी के लिए अमूर्त शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

---

१. संयुक्तनिकाय २, पृष्ठ ९७।
२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र २·४·९·१३।
३. वासिष्ठ० ६ : २०.२१.
४. बोधायन धर्मसूत्र २·७·३१·३२।
५. 'तालुग्घाडणिविज्जं'—ज्ञातासूत्र, प्रथम श्रुत०, अध्ययन १८।

जैनदर्शन ने छह द्रव्यों में जीव और पुद्गल को गतिशील एवं स्थितिशील दोनों माना है। धर्मास्तिकाय गति में सहाय है तो अधर्मास्तिकाय स्थिति में। जैनदर्शन के अतिरिक्त भारत के अन्य किसी भी दर्शन में इन शब्दों का प्रयोग एवं चिन्तन न है। आधुनिक वैज्ञानिकों में सर्वप्रथम 'न्यूटन' ने गतितत्त्व [Medium of Motion] को माना है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'अल आइन्स्टीन' ने गति तत्व की स्थापना करते हुए कहा—लोक परिमित है तो अलोक भी परिमित है। लोक परिमित होने का मू कारण यह है कि शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस शक्ति का—द्रव्य का अभाव है, जो गति में सहाय है। वैज्ञानिकों ने जिसे 'ईथर'—गतितत्व कहा है, उसे ही जैन साहित्य में धर्मद्रव्य कहा है।[1]

यहाँ पर गति से तात्पर्य है—एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की क्रिया। धर्मद्रव्य इस प्रकार की क्रिया में सहाय होता है। जैसे—मछली स्वयं तैरती है तथापि उसकी क्रिया विना पानी के नहीं हो सकती। पानी उसके तैरने में सहायक है। ज मछली तैरना चाहती है तब उसे पानी की सहायता लेनी पड़ती है। यदि वह तैरना न चाहे तो पानी बल-प्रयोग नहीं करता। वै ही जीव और पुद्गल जब गति करते हैं तब धर्मद्रव्य सहायक होता है 'ईथर' आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शोध है। ईथर के सम्बन्ध में भौतिक विज्ञान वेत्ता डा० 'ए० एस० एडिंगटन'[3] ने लिखा है—

---

१. (क) उत्तराध्ययन ३६/४। (ख) समवायांग १४६।

2. I am quite sure that you have heard of Ether before now, but please do not confuse it with the liquid Ether used by surgeons, to render a patient unconscious for an operation. If you should ask me just what the Ether is, that is, the Ether that conveys electromagnetic-waves, I would answer that I cannot accurately describe it. Neither can anyone else. The best that anyone could do would be to say that Ether is invisible body and that through it electromagnetic-waves can be propagated.

But let us see from a practical standpoint the nature of the thing called "Ether". We are all quite familiar with the existence of solids, liquids and gases. Now suppose that inside a glass-vessel there are no solids, liquids or gases : that all of these things have been removed including the air as well.

If I were to ask you to describe the condition that now exist within the glass-vessel, you would promptly reply that nothing exists within it, that a vacuum has been created. But I shall have to correct you, and explain that within this vessel there does exist 'Ether', nothing else.

So we may say that 'Ether' is a 'something' that is not a solid, nor liquid, nor gaseous, nor any thing else which can be observed by us physically. Therefore, we may say that an absolute 'vacuum' or a void does not exist anywhere, for we know that an absolute vacuum can not be created for Ethr can not be removed.

We get our knowledge of Ether from experiments : by observing results and deducing eacts. For example, if within the glass-vessel, mentioned above, we place a bell and cause it to ring, no sound of any kind reaches our ears. Therefore, we deduce that in the absence of air, sound does not exist, and thus, that sound must be due to vibration in the air.

Now let us place a radio transmitter inside the enclosure that is void of air. We find that radio signals are sent out exactly the same as when the transmitter was exposed to the air. So we are right in deducing that electro-magnetic waves or Radio waves, do not depend on air for their propagation that they are propagated through or by means of "something" which remained inside the glass enclosure after the air had been exhausted. This some-thing has been named "Ether."

We believe that Ether exists throughout all space of the universe, in the most remote region of the stars, and at the same time within the earth, and in the seemingly impossible small space which exists between the atoms of all matter. That is to say, Ether is everywhere ; and that electromagnetic wave been can be propagated everywhere.

—Hollywood, R. and T. : Instruction Lesson No. 2. 'What is Ether ?'

3 This does not mean that the Ether is abolished. We need an Ether............in the last century it was widely believed that Ether was a kind of matter having properties such as mass, rigidity, motion like ordinary matter. It would be difficult to say when this view died out.........Now-a-days it is

"आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि ईथर भौतिक द्रव्य नहीं है, भौतिक की अपेक्षा उसकी प्रकृति भिन्न है, भूत में प्राप्त पिण्डत्व और घनत्व गुणों का ईथर में अभाव होगा, परन्तु उसके अपने नये और निश्चयात्मक गुण होंगे.............. ईथर का अभौतिक सागर'।"

अलवर्ट आइन्सटीन के अपेक्षावाद के सिद्धान्तानुसार 'ईथर अभौतिक, अपरिमाण्विक, अविभाज्य, अखण्ड, आकाश के समान व्यापक, अरूप, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप में स्थिर है'।[1]

अधर्मास्तिकाय अवस्थिति में सहायक है। कितने ही आधुनिक चिन्तक अधर्म द्रव्य की तुलना या समानता गुरुत्वाकर्षण और फील्ड से करते हैं। किन्तु डॉक्टर मोहनलाल जी मेहता का मन्तव्य है कि गुरुत्वाकर्षण [Gravitation] और फील्ड [Field] से अधर्म पृथक् और एक स्वतंत्र तत्व है।

एक बार कालोदायी अणगार ने भगवान महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! जीव अशुभ फल वाले कर्मों को स्वयं किस प्रकार करता है?

महावीर ने समाधान दिया—जैसे कोई मानव स्निग्ध, सुगन्धित, विषमिश्रित मादक पदार्थ का भोजन करता है, उसे वह भोजन अत्यन्त प्रिय लगता है, उस समय उससे होने वाली हानि को वह विस्मृत हो जाता है। किन्तु उस भोजन का खाने वाले के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि पापों का सेवन करते समय वे अत्यन्त मधुर लगते हैं, पर उससे जो पाप कर्म बँधता है, वह बड़ा अनिष्टकारक होता है तथा वह फल पाप कृत्य करने वालों को ही भोगना पड़ता है।

भगवन्! जीव शुभ कर्मों को किस प्रकार करता है?—कालोदायी ने पूछा।

महावीर—जैसे कोई मानव औषधिमिश्रित भोजन करता है। वह भोजन तीखा या कटुक होने पर भी बल और वीर्य वर्धक होता है, इसलिए लोग उसे खाते हैं। इसी तरह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अलोभ, आदि शुभ कर्मों की प्रवृत्तियाँ मन को मधुर नहीं लगतीं, पर उनका परिणाम अत्यन्त सुखकर होता है।

कालोदायी ने पुनः जिज्ञासा व्यक्त की—भगवन्! दो व्यक्ति हैं, उन दोनों के पास समान उपकरण हैं। एक अग्नि को प्रज्वलित करता है और दूसरा उसे बुझाता है। कृपया फरमाइये कि अग्नि प्रज्वलित करने वाला अधिक पाप का भागी होता है, या अग्नि बुझाने वाला?

भगवान् ने कहा—जो अग्नि को प्रज्वलित करता है, वह अधिक आरम्भ और कर्मबन्धन करता है, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति और त्रस की हिंसा वह अधिक करता है, और अग्नि की हिंसा कम करता है। जो अग्नि को बुझाता है, वह अग्नि का आरम्भ अधिक करता है और पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति और त्रस की हिंसा कम करता है। अग्नि से होने वाली हिंसा को वह घटाता है, इसीलिए आग जलाने वाला आरम्भ अधिक करता है और आग बुझाने वाला कम।

कालोदायी—भगवन्! क्या अचित्त पुद्गल प्रकाश या उद्योत करते हैं, वे किस प्रकार प्रकाशित होते हैं?

महावीर—अचित्त पुद्गल भी प्रकाश करते हैं। जब कोई तेजोलेश्याधारी मुनि तेजोलेश्या छोड़ता है, तब वे पुद्गल दूर-दूर तक गिरते हैं। वे दूर और समीप प्रकाश फैलाते हैं। पुद्गलों के अचित्त होते हुए भी प्रयोक्ता हिंसा करने वाला और प्रयोग हिंसाजनक होता है।

भगवान् के उत्तरों से कालोदायी अणगार का समाधान हो गया। उसने विविध तप की आराधना की। जीवन की सांध्य वेला में अनशन कर समाधिपूर्वक मोक्ष प्राप्त किया।

---

agreed that Ether is not a kind of matter, being non-material its properties are signeries [quite unique] characters such as mass and rigidity which we meet within matter will naturally be absent in Ether but the Ether will have new and definite characters of its own........—......non-material ocean of Ether.

—The Nature of the Physical World, p. 31.

1. Thus it is proved that Science and Jain Physics agree absolutely so far as they call Dharma [Ether] non-material, non-atomic, non-discrete, continuous, co-extensive with space, indivisible and as a necessary medium for motion and one which does not itself move.

प्रस्तुत कथानक में अनेक तलस्पर्शी दार्शनिक प्रश्नों का समाधान किया गया है। ये समाधान भगवान् महावीर के अतिशय ज्ञान के द्योतक हैं। सामान्य मानव इस प्रकार के उत्तर नहीं दे सकता।

पुण्डरीक और कण्डरीक—

पुष्कलावती विजय में महापद्म सम्राट था। वह श्रमण बना। उसका ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरीक राज्य का संचालन करने लगा और कण्डरीक युवराज बना। महापद्म सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। कुछ समय के पश्चात् दूसरे स्थविर का वहाँ आगमन हुआ। कण्डरीक को वैराग्य हुआ। राजा पुण्डरीक ने उसे बहुत कुछ समझाया पर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। कुछ समय के बाद कण्डरीक मुनि दाह-ज्वर से ग्रसित हो गये। महाराजा पुण्डरीक ने औषधोपचार कराया। स्वस्थ होने पर भी कण्डरीक मुनि वहीं जमे रहे। राजा ने नम्र निवेदन किया—श्रमण मर्यादा की दृष्टि से आपका विहार करना उचित है। मुनि ने विहार किया, किन्तु भोगों के प्रति आसक्त होने से वे पुनः कुछ समय के पश्चात् वहाँ आ गये। पुण्डरीक ने समझाने का प्रयत्न किया। जब वे न समझे तो उन्हें राज्य देकर स्वयं ने श्रमण-वेष धारण कर लिया। तीन दिन की साधना एवं आराधना से पुण्डरीक मुनि तैंतीस सागर की स्थिति का उपभोग करने वाला देव बना और कण्डरीक भोगों में आसक्त होकर तीन दिन की आयु भोग कर तैंतीस सागर की स्थिति वाला सातवीं नरक का मेहमान बना। जो साधक वर्षों तक उत्कृष्ट साधना कर बाद में साधना से च्युत हो जाते हैं उनकी दुर्गति होती र जो जीवन की सांध्य वेला में भी उत्कृष्ट साधना करता है, वह सद्गति को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक में उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्रण है।

स्थविरावली—

श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् अनेक स्थविर भगवन्तों ने शासन की सेवा की। उन स्थविर भगवन्तों का उल्लेख कल्पसूत्र और नन्दीसूत्र आदि में हैं। भगवान् महावीर के पश्चात् गणधर गौतम, आर्य सुधर्मा और जम्बू ये तीनों केवलज्ञानी हुए। प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रबाहु और स्थूलभद्र ये छह श्रुतकेवली हुए। महागिरि, सुहस्ति, गुणसुन्दर, कालकाचार्य, स्कन्दिलाचार्य, रेवतीमित्र, मंगू, धर्म, चन्द्रगुप्त, आर्यवज्र ये दशों आचार्य दश पूर्वधर थे। उसके पश्चात् धीरे-धीरे पूर्वों का ज्ञान न्यून होता चला गया। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण एक पूर्वधर आचार्य थे। जैनधर्म में अनेक प्रतिभासम्पन्न ज्योतिर्धर आचार्य हुए। उसकी संक्षिप्त सूचना इसमें दी गई है। इन ज्योतिर्धर आचार्यों के सम्बन्ध में विविध ग्रन्थों में विशिष्ट जानकारी है। पर विस्तार भय से हम उस सम्बन्ध में न लिखकर तत् सम्बन्धी मूल ग्रन्थों को देखने के लिए प्रबुद्ध पाठकों को निवेदन करते हैं।

इस प्रकार धर्मकथानुयोग के सम्बन्ध में तीर्थकरों के शासन में श्रमणों की कथाएँ पूर्ण होती हैं। तृतीय स्कन्ध में तीर्थंकरों के शासन में होने वाली श्रमणियों की कथाएँ दी गई हैं।

द्रौपदी—

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में द्रौपदी श्रमणी का उल्लेख है। द्रौपदी के पूर्वभवों का इसमें वर्णन है। द्रौपदी कई भव पूर्व नागश्री ब्राह्मणी थी। उसने तूम्बे का शाक बनाया, किन्तु जब उसने वह शाक चखा तो वह कटुक और विषाक्त था। उपालम्भ के भय से उसने उसे छिपाकर रख लिया। पारिवारिक जन भोजन से निवृत्त होकर चल दिये। धर्मरुचि अनगार भिक्षा के लिए आये। नागश्री मानवी के रूप में नागिन थी। उसने मुनि के पात्र में विषाक्त तूम्बे का शाक डाल दिया। मानव साधारण लाभ की इच्छा से भयंकर कुत्सित क्रूर कर्म कर बैठता है, उसका फल अत्यंत दारुण होता है। धर्मरुचि मुनि आहार लेकर गुरु के चरणों में पहुँचे। गुरुजी ने उसे चखा और वे उसे परठने का आदेश देते हैं। धर्मरुचि परठने जाते हैं। एक बूँद शाक डाल कर प्रतिक्रिया की वे प्रतीक्षा करते हैं। चींटियाँ आती हैं और प्राण गंवा बैठती हैं। मुनि का हृदय दहल उठा। उन्होंने जीवों की रक्षा के लिए वह विषाक्त शाक खाकर समाधिपूर्वक जीवन का अन्त किया। नागश्री का पाप छिपा न रह सका। उसे सर्वत्र ताड़ना-तर्जना मिली। उसके शरीर में सोलह महारोग पैदा हो गये और हाय-हाय करती हुई मरी। वह छठी नरक में पैदा हुई और अतिदीर्घकाल तक वह पुनः पुनः नरक एवं तिर्यंच योनि में जन्म लेती है। सुदीर्घकाल के बाद वह सुकुमालिका नाम से श्रेष्ठी की पुत्री बनती है, पर उस समय भी पाप के फल का अन्त नहीं हुआ। उसके शरीर का स्पर्श तलवार की धार की तरह तीक्ष्ण एवं अग्नि की तरह उष्ण था। इसलिए कोई भी उससे विवाह करने को प्रस्तुत नहीं था। यहाँ तक कि भिखारी भी रात्रि में उसे छोड़ कर भाग जाता है। वह उसका अंग-स्पर्श सहन नहीं कर सका। पिता ने दान-शाला खुलवाई। वहाँ जैन आर्यिकाओं का आगमन हुआ। उसने यंत्र-तंत्र की याचना की। आर्यिकाओं ने अपना धर्म समझाया और सुकुमालिका ने साध्वी-धर्म स्वीकार किया। पर उसके अन्तर्मानस की मलिनता साफ नहीं हुई थी। अतः वह पुनः शिथिलाचारिणी हो गई और एकाकिनी रहने लगी। एक बार एकान्त में वह

आतापना ले रही थी। उसने एक वेश्या को पाँच पुरुषों से घिरी हुई देखा। कोई उसका पैर दबा रहा था तो कोई चँवर ढुला रहा था। सुकुमालिका के मन में भोगों की लालसा पैदा हुई। उसने ऐसा संकल्प किया कि यदि मेरे तप का फल हो तो मैं भी इस प्रकार सुख भोगूं। वह मर कर देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई और वहाँ से राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी बनी। द्रौपदी के स्वयंवर का आयोजन हुआ। श्रीकृष्ण, पाण्डव आदि सभी उस स्वयंवर में उपस्थित हुए। निदानकृत होने से उसने पाँचों पांडवों का वरण किया।

एक बार नारद हस्तिनापुर आये। द्रौपदी ने उनका सम्मान नहीं किया जिससे नारद रुष्ट हो गये। वे धातकीखण्ड के अमरकंका के अधिपति परदारालम्पट पद्मनाभ के पास पहुँचे। द्रौपदी के रूप-लावण्य की अतिशय प्रशंसा की। उसने देव की सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। द्रौपदी से उसने भोगों की याचना की। वह पूर्ण पतिव्रता नारी थी। पाण्डवों को लेकर कृष्ण अमरकंका पहुँचे। पद्मनाभ को युद्ध में पराजित किया और राजधानी को तहस-नहस कर द्रौपदी का उद्धार किया। जीवन की सांध्य वेला में द्रौपदी के पुत्र पाण्डुसेन को राज्य देकर पाण्डवों ने तथा द्रौपदी श्रमण-धर्म स्वीकार किया।

प्रस्तुत कथानक में जो द्रौपदी का निरूपण हुआ है, वह जैन दृष्टि से है। वैदिक महाभारत में भी द्रौपदी का निरूपण हुआ है। वैदिक परम्परा में पंच भरतारी होने का एक ही कारण दिया है कि उसने पूर्वभव में पति की कामना से तपस्या की थी। शंकर ने सर्वगुणसम्पन्न पति की प्राप्ति हो, ऐसा पाँच बार वरदान दिया था, जिससे उसे पंच भरतारी बनना पड़ा। वैदिक महाभारत की दृष्टि से द्रुपद राजा द्रौपदी की उत्पत्ति यज्ञाग्नि से करते हैं और उसकी उत्पत्ति का कारण कुरुवंश का विनाश बताया है। जैनदृष्टि से कुरुवंश के विनाश का कारण पाण्डवों के प्रति दुर्योधन की ईर्ष्या, हठ और अभिमान है। दुर्योधन कपट द्यूत में जीतने के पश्चात् द्रौपदी को निर्वस्त्र करना चाहता है, श्रीकृष्ण अपनी अलौकिक शक्ति से चीर बढ़ाते हैं, जबकि जैन परम्परा में चीर बढ़ाने का कारण सती द्रौपदी के स्वयं के शील का प्रभाव है। द्रौपदी के शील से प्रभावित होकर ही शासनदेव सहायता करता है। जैन परम्परा में द्रौपदी कुरुवंश की मर्यादा रखने वाली, व्यवहार कुशल, कुशाग्र बुद्धिशालिनी, पति-परायणा, स्वाभिमानिनी नारी है।

प्रस्तुत कथानक में श्रीकृष्ण के नरसिंह रूप का भी वर्णन है। नरसिंहावतार की चर्चा श्रीमद्भागवत में है, जो विष्णु के अवतार थे। पर श्रीकृष्ण ने कभी नरसिंह का रूप धारण किया हो, ऐसा प्रसंग वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में देखने में नहीं आया, पर प्रस्तुत कथानक में इसका सजीव चित्रण है।

पद्मावती आदि श्रमणियाँ—

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे। कृष्ण महाराज भगवान् को वन्दन-नमस्कार करने गये। उपदेश सुनकर परिषद् लौट गई। कृष्ण महाराज ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—देवलोक सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश कैसे होगा? भगवान् ने कहा—मदिरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण द्वारिका नगरी का विनाश होगा।

कृष्ण चिन्तन करने लगे—जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वीरसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि, सत्यनेमि आदि राजकुमार धन्य हैं, जिन्होंने श्रमण धर्म ग्रहण किया है, पर मैं संसार का परित्याग नहीं कर पा रहा हूँ।

भगवान् ने कहा—कृष्ण! वासुदेव निदानकृत होने से प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकते। तुम चिन्तित मत बनो। आगामी उत्सर्पिणी काल में "अमम" नामक बारहवें तीर्थंकर बनोगे। श्रीकृष्ण ने नगर में उद्घोषणा करवाई कि जो भी अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेना चाहें, वे सहर्ष दीक्षित हो सकते हैं। दीक्षार्थी के जो आश्रित कुटुम्बी जन होंगे, उनकी व्यवस्था स्वयं कृष्ण करेंगे और दीक्षामहोत्सव भी कृष्ण करेंगे।

श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उनकी पट्टमहिषी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी इन आठों ने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा शाम्बकुमार की भार्या मूलश्री एवं मूलदत्ता ने भी यक्षिणी आर्या के पास प्रव्रज्या लेकर अपने जीवन को पावन बनाया।

प्रस्तुत कथानक में द्वारिका नगरी के विनाश की तथा श्रीकृष्ण के आगामी काल में तीर्थंकर होने की महत्वपूर्ण सूचना है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष मूल्य है।

पोट्टिल कथानक—

तेतलिपुर नगर के राजा कनकरथ का अमात्य 'तेतलिपुत्र' था। वहीं पर 'मूषिकादारक' की पुत्री 'पोट्टिला' थी। पोट्टिला के अद्भुत रूप को देखकर तेतलिपुत्र मुग्ध हो गया। दोनों का विवाह हुआ। उनमें परस्पर अत्यन्त अनुराग था। पर

दोनों में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि तेतलिपुत्र उसके नाम से घृणा करने लगा। एक दिन जिसे पोट्टिला के विना रहा नहीं जाता था, वही आज उसके नाम को पसन्द नहीं करता। उसने पोट्टिला को भोजन निर्माण तथा अतिथियों की सेवा का भार सम्हला दिया। एक दिन 'सुव्रता' नामक आर्या शिष्याओं के साथ तेतलिपुर में पधारीं। वे भिक्षा के लिए पोट्टिला के वहाँ पहुँचीं। उसने साध्वियों को आहारदान देने के बाद निवेदन किया कि मुझे ऐसा वशीकरण मंत्र दो, जिससे मेरा पति मेरे वश में हो जाये। साध्वियों ने कहा—हम ब्रह्मचारिणी साध्वियाँ इस प्रकार की बातें सुनना भी पसन्द नहीं करतीं। पोट्टिला ने श्राविका के व्रत ग्रहण किये। उसकी अन्तरात्मा प्रबुद्ध हो उठी। संयम ग्रहण करने के लिए उसने तेतलिपुत्र से आज्ञा मांगी। तेतलिपुत्र ने कहा—तुम संयम स्वीकार करोगी तो आगामी भव में देव बनोगी। वहाँ से आकर मुझे प्रतिवोध देना स्वीकार करो तो मैं दीक्षा लेने को अनुमति देता हूँ। वह दीक्षित हुई और देव बनी।

वचनवद्ध होने से पोट्टिल देव ने तेतलिपुत्र को प्रतिवुद्ध करने के अनेक उपाय किये, पर तेतलिपुत्र राजा द्वारा अत्यधिक सम्मानित होने से प्रतिवुद्ध नहीं हुआ। अन्त में देव ने राजा को उससे विरुद्ध किया। जब वह राजसभा में गया तो राजा ने मुँह फेर लिया और वात भी नहीं की। राजा के अभिनव व्यवहार से वह भयभीत हो उठा। वह वहाँ से घर पर आया, किन्तु परिजनों ने भी उसे आदर नहीं दिया। आत्मघात करने के लिए वह प्रस्तुत हुआ, उसने अनेक उपाय किये किन्तु कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ। अन्त में पोट्टिल देव ने प्रगट होकर सारपूर्ण शब्दों में प्रतिवोध दिया। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ कि मैं पूर्वजन्म में महाविदेह क्षेत्र में महापद्म नामक राजा था, वहाँ से महाशुक्र नामक देव बना। वहाँ से यहाँ जन्मा हूँ। तेतलिपुत्र को संसार निस्सार लगा। उसने स्वयं दीक्षित होकर उत्कृष्ट तप की आराधना की और अव्यावाध सुख को प्राप्त किया।

जव मानव सुख के सागर पर तैरता है, उस समय धर्मक्रिया के प्रति उसमें रुचि नहीं होती, जब दुःख की दावाग्नि में वह झुलसता है, तब धर्म के अभिमुख होता है। जब तेतलिपुत्र का जीवन सुखी था, उस समय वह धर्म से विमुख था और दुःख आने पर वह धर्म के सम्मुख हुआ।

इस कहानी में राजा कनकरथ की निष्ठुरता का निरूपण है। वह राज्य लोभी था। कहीं पुत्र उससे राज्य छीन न लें, इसीलिए वह उन्हें विकलांग वना देता था। राज्य के लोभ में मानव दानव बन जाता है, वह उचित और अनुचित का विवेक खो बैठता है।

पार्श्वनाथ के तीर्थ की आर्या काली—

महाव्रतों का विधिवत् सम्यक् पालन करने वाला साधक समस्त कर्मों को नष्ट कर निर्वाण प्राप्त करता है। यदि कर्म अवशेष रह जायें, तो वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है। पर महाव्रतों का जो विधिवत् पालन नहीं करता, वह कुशील, काय-क्लेश आदि बाह्य तपों की आराधना कर देवगति को तो प्राप्त करता है, पर वैमानिक जैसे उच्च देवत्व को नहीं। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क की पर्याय प्राप्त कर लेता है। यहाँ पर चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है। वह वर्णन मनुष्य पर्याय में जब वे साध्वियाँ वनीं और कुछ समय तक चारित्र की आराधना की और उसके बाद शरीर वकुशा वनकर चारित्र की विराधिका वनीं—उस समय का है। उन साध्वियों को उनकी गुरुणी ने बहुत कुछ समझाया, पर वे समझी नहीं, अतः उन्हें गच्छ से पृथक् कर दिया। विना दोषों की आलोचना किये उन्होंने शरीर का परित्याग किया और चमरेन्द्र असुरराज की अग्रमहिषियाँ वनीं।

भगवान् महावीर एक वार राजग्रह में विराज रहे थे। उस समय काली देवी एक हजार योजन विस्तृत दिव्य यान में बैठ कर भगवान् के दर्शन के लिए आई। वत्तीस प्रकार के नाट्य विधि दिखाकर लौट गई। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह दिव्य ऋद्धि इसे कैसे प्राप्त हुई। भगवान् ने उसका पूर्वभव वताते हुए कहा—आमलकप्पा नगरी में काल नामक गाथापति की पुत्री काली थी। इसके स्तन अत्यधिक लम्बे थे, जो नितम्ब भाग को स्पर्श करते थे, अतः उसका विवाह नहीं हुआ। भगवान् पार्श्व के उपदेश को श्रवण कर उसने आर्या पुष्पचूला के पास दीक्षा ग्रहण की, अंग साहित्य का अध्ययन किया, संयम की आराधना भी करने लगी, कुछ समय के बाद शरीर पर आसक्ति पैदा हुई। पुनः पुनः अंगों का प्रक्षालन करती तथा जहाँ स्वाध्याय करती, जल छिटकती। उसकी साध्वाचार से विपरीत प्रवृत्ति देखकर आर्या पुष्पचूला ने उसका गच्छ से सम्बन्ध तोड़ दिया। वह स्वच्छन्द हो गई, संयम की विराधिका बन गई। अन्तिम समय में पन्द्रह दिन का संथारा किया पर शिथिलाचार की आलोचना नहीं की। वही काली आर्या का जीव काली देवी बना। गौतम गणधर की जिज्ञासा पर भ० महावीर ने कहा—यह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगी और वहाँ से मुक्त होगी। इसी तरह रजनी, विद्युत, मेघा, शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा, मदना आदि ने भी भगवान् पार्श्वनाथ के पधारने पर प्रव्रज्या ग्रहण की किन्तु वे सभी विराधक वनकर देवियाँ वनतीं हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष सूचना नहीं है, केवल वे जहाँ की थीं, उस जन्मस्थली का संकेत किया गया है।

महावीर शासन में नन्दा आदि श्रमणियाँ—

नन्दा, नन्दवतीं, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका, मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुद्देवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमनाधिका और भूतदत्ता ये सभी श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं। इन सभी ने भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट तप-जप की आराधना कर मुक्ति को वरण किया।

काली आदि श्रमणियाँ—

काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पित्रसेनकृष्णा और महासेनकृष्णा ये दशों महाराजा श्रेणिक की रानियाँ थीं। तीर्थंकर महावीर के उपदेश को श्रवण कर ये सभी दीक्षा लेती हैं और रत्नावली, कनकावली, लघुसिंह निष्क्रीडित, महासिंह निष्क्रीडित, सप्त सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा, अष्ट अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा, नव नवमिका भिक्षु प्रतिमा, दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा, लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा, महत् सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रोत्तर प्रतिमा, मुक्तावली, आयम्बिल वर्धमान तप आदि उत्कृष्टतम तपों की आराधना कर वे सभी सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होती हैं। इस प्रकार सम्राट श्रेणिक की तेवीस महारानियां ने भगवान् महावीर के शासन में संयम ही नहीं लिया, अपितु इतने उत्कृष्ट तप की आराधना की, जिसे पढ़कर पाठक विस्मित हुए बिना नहीं रह सकता।

जयन्ती श्रमणोपासिका—

वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। वहाँ 'चन्द्रावतरण' चैत्य था। वहाँ जयन्ती श्राविका थी। जयन्ती श्राविका श्रमणों के लिए शय्यातर के रूप में विश्रुत थी। जो भी नवीन सन्त आते, वे जयन्ती के यहाँ वसति की याचना करते। भगवान् महावीर के पावन प्रवचन को सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने भगवान् से प्रश्न पूछे—भंते! जीव शीघ्र ही गुरुत्व को कैसे प्राप्त होता है?

महावीर—जयन्ती! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति-अरति, मायामृषावाद और मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह पापों के आसेवन से जीव गुरुत्व को प्राप्त होता है।

जयन्ती—भगवन्! आत्मा लघुत्व को कैसे प्राप्त होता है?

महावीर—प्राणातिपात आदि अठारह पापों के अनासेवन से आत्मा लघुत्व को प्राप्त होता है। प्राणातिपात आदि की प्रवृत्ति से आत्मा जिस प्रकार संसार को बढ़ाता है, प्रलम्ब करता है, संसार में भ्रमण करता है, उसी प्रकार उसकी निवृत्ति से संसार को घटाता है, ह्रस्व करता है, और उसका उल्लंघन भी कर देता है।

जयन्ती—भगवन्! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से?

महावीर—मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव में स्वभाव से होती है, परिणाम से नहीं?

जयन्ती—भन्ते! जीवों का सोना अच्छा है या जागना?

महावीर—कितने ही जीवों का सोना अच्छा है और कितने ही जीवों का जागना अच्छा है।

जयन्ती—भगवन्! यह कैसे?

महावीर—जयन्ते! जो जीव अधार्मिक हैं, अधर्म का अनुसरण करते हैं, अधर्ममें आसक्त हैं और अधर्म के द्वारा ही अपना जीविकोपार्जन करते हैं, उन जीवों का सोना ही अच्छा है। प्राण, भूत, जीव, सत्त्व समुदाय के शोक एवं परिताप का कारण नहीं बनेंगे, अतः अधार्मिक जीवों का सोना अच्छा है।

हे जयन्ती! जो जीव धार्मिक, धर्मानुरागी, धर्मप्रिय और धर्मजीवी हैं, उनका जागना अच्छा है। धार्मिक पुरुष जब तक जागते रहते हैं, तब तक प्राणियों के अदुःख और अपरिताप के लिए कार्य करते हैं। ऐसे पुरुष जागृत हों तो अपने और दूसरों के लिए धार्मिक कार्यों में निमित्त बनते हैं, अतः उनका जागते रहना श्रेयस्कर है।

जयन्ती—भन्ते! क्या सभी भवसिद्धिक आत्माएँ मोक्षगामिनी हैं?

महावीर—हाँ, जो भव-सिद्धिक हैं, वे सभी आत्माएँ मोक्षगामिनी हैं।

जयन्ती—भगवन्! यदि सभी भव-सिद्धिक जीव मुक्त हो जावेंगे तो क्या संसार उनसे खाली नहीं हो जायेगा?

महावीर—ऐसा नहीं। सादि तथा अनन्त व दोनों ओर से परिमित एवं दूसरी श्रेणियों से परिवृत सर्वाकाश की श्रेणी में

से एक-एक परमाणु पुद्गल प्रतिसमय निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो जायें तथापि वह श्रेणी रिक्त नहीं होती। इसी प्रकार भव-सिद्धिक जीवों के मुक्त होने पर यह संसार उनसे रिक्त नहीं होगा।

जयन्ती—जीवों को दुर्बलता अच्छी है या सबलता अच्छी है ?

महावीर—कितने ही जीवों की सबलता अच्छी है और कितने ही जीवों की दुर्बलता।

जयन्ती—वह कैसे ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक हैं, और अधर्म से जीविकोपार्जन करते हैं उनकी दुर्बलता अच्छी है क्योंकि उनकी वह दुर्बलता अन्य प्राणियों के लिए दुःख का निमित्त नहीं बनती। जो लोग धार्मिक हैं, उनका सबल होना अच्छा है।

जयन्ती—जीवों का दक्ष होना अच्छा है या आलसी ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक हैं, अधर्मानुसार विचरण करते हैं, उनका आलसी होना अच्छा। जो जीव धर्माचरण करते हैं, उनका दक्ष [उद्यमी] होना अच्छा है। क्योंकि वे [illegible] आचार्य, उपाध्याय आदि की सेवा करते हैं।

जयन्ती—इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीव क्या कर्म बांधता है ?

भगवान्—इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीव संसार में परिभ्रमण करता है।

श्रमणोपासिका जयन्ती प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों का समाधान पाकर अत्यन्त हर्षित हुई। जीवाजीवविभक्ति को जानकर उसने महावीर प्रभु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

प्रस्तुत कथानक में जीवन की गुरु गम्भीर ग्रन्थियाँ जयन्ती ने भगवान् महावीर के समक्ष प्रस्तुत कीं। प्रभु महावीर ने जिस सुगम रीति से समाधान किया, वह उनके अतिशय ज्ञान का द्योतक है।

पार्श्वनाथ तीर्थ : सोमिल ब्राह्मण—

श्रमण और श्रमणियों के कथानक के पश्चात् श्रमणोपासकों की कथायें दी गई हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के युग में वाराणसी में सोमिल ब्राह्मण था। वह वेदों का पारंगत पण्डित था। भगवान् पार्श्व 'अम्बसाल" उद्यान में पधारे। भगवान् के उपदेश को सुनकर वह श्रावक बना।

कालान्तर में सोमिल के विचारों में परिवर्तन हुआ और वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। उसके अन्तर्मानस में ये विचार उद्‌बुद्ध हुए—मैंने वेदों का अध्ययम किया, पत्नी के साथ विविध प्रकार के भोग भोगे, पुत्र भी उत्पन्न हुए। विराट् ऋद्धि का मैं अधिपति बना। मैंने यज्ञ किये, पशुओं का वध किया और अतिथियों की अर्चना की, इसलिए अब मेरा कर्त्तव्य है कि विविध वृक्षों वाला बगीचा लगाऊँ। उसने बगीचा लगाया। उसके पश्चात् उसे विचार आया—मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर मित्र और परिजनों की अनुमति प्राप्त कर तापसों के योग्य कड़ाही, कडछी, ताम्बे के पात्र लेकर गंगातट निवासी वानप्रस्थ तपस्वियों की भाँति विचरण करूँ। उसके पश्चात् दिशाप्रोक्षित तापसों से प्रव्रज्या लेकर छट्ठ-छट्ठ तप स्वीकार करता हुआ भुजाएँ ऊपर रखकर वह विचरने लगा। प्रथम छट्ठ पारणे के दिन वह आतापना भूमि से चलकर, वल्कल के वस्त्र धारण कर और टोकरी को लेकर पूर्व दिशा की ओर चला। उसने सोमदेव की पूजा की। कन्द-मूल, फल आदि से टोकरी को भर कर वह अपनी कुटिया में आया। वहाँ उसने वेदिका को लीप-पोतकर शुद्ध किया। फिर दर्भ और कलश को लेकर गंगा-स्नान के लिए गया। पानी का आचमन कर देवता और पितरों को श्रद्धांजलि दी। पुनः वह कुटिया पर आया। दर्भ, कुश और बालुका आदि से वेदिका का निर्माण किया, अरणी से अग्नि पैदा की और उसके दाहिनी ओर उसने सकथ [उपकरण विशेष], वल्कल, अग्निपात्र, शय्या, कमण्डल, दण्ड और स्वयं को स्थापित किया। उसके पश्चात् मधु, घृत, चावल से अग्नि में होम किया। 'वलि' पकाकर अग्नि देवता की पूजा की। बाद में अतिथियों को भोजन करा कर उसने स्वयं भोजन किया। इसी प्रकार उसने दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण और उत्तर में वैश्रमण की पूजा की।

एक दिन पुनः उसके मन में विचार उद्‌बुद्ध हुआ—मैं वल्कल वस्त्र धारण कर पात्र तथा टोकरी लेकर, काष्ठमुद्रा से मुँह को बाँधकर उत्तर दिशा की ओर महाप्रस्थान कर अभिग्रह धारण करूँगा। जल, थल, दुर्गम, विषम पर्वत, गर्त या गुफा से गिर कर या स्थित होकर पुनः न उठूंगा। यह चिन्तन कर वह अशोक वृक्ष के नीचे गया। वहाँ पर पात्र, टोकरी, एक ओर रखकर उसने वेदिका बनाई, स्नान किया। दर्भ आदि क्रियाओं का अनुष्ठान किया। एक देव ने अन्तरिक्ष में खड़े होकर सोमिल से कहा—तुम्हारे कार्य उचित नहीं हैं। उसने देव के कथन की उपेक्षा की, किन्तु देव के पुनः पुनः उद्‌बोधन से उसने श्रावक के पाँच अणुव्रत

ौर सात शिक्षाव्रत ग्रहण किये। उसके बाद वह विविध प्रकार के तप करता रहा। अन्त में अर्धमासिक संलेखना से आत्मा को ावित करता हुआ पूर्वकृत पाप कर्मों की आलोचना नहीं करके वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके शुक्र नामक महाग्रह में उत्पन्न हुआ। हाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि सोमिल नाम के दो श्रमणोपासकों का वर्णन आगम साहित्य में है। एक का वर्णन ुपिफया आगम में है तो दूसरे का वर्णन भगवती—शतक अठारहवें, उद्देशक दशवें में है। दोनों वर्ण से ब्राह्मण है। एक ने भगवान् हावीर से प्रश्न किये तो दूसरे ने भगवान् पार्श्व से। भगवान् पार्श्व से प्रश्न करने वाला सोमिल वाराणसी का था और महावीर भु से प्रश्न करने वाला सोमिल ब्राह्मण वाणिज्यग्राम का था। दोनों का काल पृथक् है। नाम साम्य होने से भ्रम न हो जाय, इस लिए प्रबुद्ध पाठक ध्यान रखें।

राजा प्रदेशी—

आमलकप्पा के अम्रसाल चैत्य में भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। उस समय सूर्याभदेव भगवान् के दर्शन के लिए आया। उसने बत्तीस प्रकार के नाट्य किये। बत्तीसवें नाटक में उसने भगवान् महावीर का च्यवन से लेकर परिनिर्वाण तक अभिनय किया। अभिनय के बाद सूर्याभ देव चला गया। गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह विशिष्ट देव ऋद्धि इन्हें कैसे प्राप्त हुई? भगवान् ने कहा—श्वेताम्बिका नगरी में राजा प्रदेशी था। उसकी रानी का नाम सूर्यकान्ता और पुत्र का नाम सूर्यकान्त था। चित्त नामक सारथी था, जो बहुत ही बुद्धिमान् था। एक दिन प्रदेशी ने चित्त सारथी को उपहार देकर श्रावस्ती के राजा जितशत्रु के पास भेजा। वहाँ उसने पार्श्वापत्य केशी श्रमण के दर्शन किये। प्रवचन को सुनकर उसने श्रावक-व्रत ग्रहण किये।

राजा जितशत्रु की ओर से उपहार लेकर चित्त सारथी पुनः श्वेताम्बिका की ओर प्रस्थान करने लगा। उसने केशी श्रमण से निवेदन किया—आप श्वेताम्बिका नगरी पधारें। केशी श्रमण ने कहा—राजा प्रदेशी अधार्मिक है, हम वहाँ कैसे आ सकते हैं? चित्त सरथी ने कहा—आप वहाँ पधारे, उन्हें उपदेश देकर कल्याण के मार्ग पर लगावें। उसकी प्रार्थना को सम्मान देकर केशी श्रमण श्वेताम्बिका नगरी के उद्यान में पधारें। चित्त सारथी घोड़ों की परीक्षा के बहाने राजा प्रदेशी को मृगवन उद्यान में लाया। राजा प्रदेशी केशी श्रमण के दिव्य-भव्य रूप को निहार कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। वह उनके सन्निकट आया। उसने पूछा—क्या आप जीव और शरीर को पृथक् मानते हैं।

केशी—हाँ! हम जीव और शरीर को पृथक् मानते हैं।

प्रदेशी ने तर्क दिया—मेरे दादा अधार्मिक थे। प्रजा का ठीक तरह से पालन नहीं करते थे। आपकी दृष्टि से वे मरकर नरक में गये हैं। उनका मेरा बहुत ही प्रेम था। वे मुझे आकर क्यों नहीं कहते कि मैं नरक में पैदा हुआ हूँ। वहाँ अपार कष्टों का अनुभव कर रहा हूँ।

केशी—तुम्हारी रानी के साथ कोई कामुक व्यक्ति विषय-सेवन की इच्छा करे तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे?

प्रदेशी—मैं उसके प्राण ले लूंगा।

केशी—वह व्यक्ति तुमसे निवेदन करे कि मैं अपने सम्बन्धियों को सूचित कर दूं कि मुझे दण्ड मिल रहा है, अतः तुम भी इस कृत्य से बचना। उस पुरुष को सूचना देने के लिए क्या तुम मुक्त करोगे?

प्रदेशी—नहीं, वह मेरा अपराधी है।

केशी—तुम्हारे दादा का स्नेह होने पर भी वे नरक से नहीं आ सकते। अतः जीव और शरीर भिन्न हैं।

प्रदेशी—मेरी दादी धर्मात्मा थी। आपकी दृष्टि से वह स्वर्ग में गई। उसे तो आकर मुझे कहना चाहिए।

केशी—स्नान व सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर तुम जा रहे हो, उस समय कोई व्यक्ति शौच गृह में बैठा हुआ तुम्हें वहाँ आकर बैठने के लिए कहे तो क्या तुम वहाँ बैठोगे और उसकी बात को सुनोगे?

प्रदेशी—मैं शौच गृह में नहीं जाऊँगा।

केशी—स्वर्ग में उत्पन्न हुआ देव मानव लोक में आना पसन्द नहीं करता। उसे यहाँ की गन्ध अप्रिय है।

प्रदेशी—एक तस्कर को मैंने कुम्भी में डालकर ढक्कन लगा दिया। कहीं पर भी छिद्र न रहे, अतः उसे लाहे और रांगे से बन्द कर दिया। विश्वस्त पहरेदार भी रखा। कुछ समय के बाद कुम्भी को खोलकर देखा, वह मरा हुआ था। इससे स्पष्ट है कि जीव और शरीर एक है।

केशी—एक व्यक्ति कूटागारशाला में द्वार बन्द कर भेरी बजाए तो बाहर बैठा हुआ व्यक्ति सुनता है न ? वैसे ही जीव पृथ्वी, शिला, पर्वत आदि को भेद कर बाहर आता है, अतः जीव और शरीर एक नहीं हैं ।

प्रदेशी—मैंने एक तस्कर को कुम्भी में बन्द किया । उसके मृत कलेवर में कीड़े कुलबुला रहे थे जबकि कुम्भी में कहीं भी छिद्र नहीं था । इससे भी स्पष्ट है कि जीव और शरीर भिन्न नहीं, एक है ।

केशी—तुमने लोहे को फूंकते हुए देखा है न ? वह लोहा अग्निमय हो जाता है । लोहे में अग्नि कैसे प्रविष्ट हुई, उसमें कहीं भी छिद्र नहीं, वैसे ही जीव अनिरुद्ध गति वाला है । इससे जीव और शरीर की पृथक्ता सिद्ध होती है ।

प्रदेशी—एक व्यक्ति धनुर्विद्या में निपुण है, पर वह व्यक्ति बाल्यावस्था में एक भी बाण नहीं छोड़ सकता था । बाल्यावस्था और युवावस्था में जीव एक होता तो मैं समझता जीव और शरीर भिन्न है ।

केशी—धनुर्विद्या निष्णात व्यक्ति शक्तिशाली है, पर उपकरणों के अभाव में अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकता । वैसे ही बाल्यावस्था में उपकरण बलवान न होने से वह अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं कर पाता । पर युवावस्था में उपकरण शक्तिमान होने से वह अपनी शक्ति बताता है ।

प्रदेशी—किसी तस्कर को पहले हम जीवित अवस्था में तौले और फिर मारकर तौलें तो वजन में कोई अन्तर नहीं होता, अतः जीव और शरीर में अभिन्नता है ।

केशी—जैसे खाली और हवा से भरी हुई मशक के वजन में (विशेष) अन्तर नहीं पड़ता, वैसे ही जीवित और मृत पुरुष के वजन में अन्तर नहीं पड़ता । जीव अमूर्त है । उसका अपना कोई वजन नहीं है ।

प्रदेशी—मैंने तस्कर के शरीर के प्रत्येक अंग-उपांग को काट कर देखा, कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया, इसलिए जीव का अभाव है ।

केशी—मुझे लगता है कि तुम मूढ़ हो । तुम्हारी प्रवृत्ति भी लकड़हारे की तरह है । कुछ लोग जंगल में लकड़ियाँ लेने पहुँचे । उनके साथ अग्नि थी । उन्होंने एक साथी से कहा—हम बहुत दूर जंगल में जा रहे हैं, तुम हमारे लिए भोजन तैयार करके रखना । यदि अग्नि बुझ जाय तो अरणि की लकड़ियों से आग प्रकट कर लेना । उसके साथी जंगल में चले गये, आग बुझ गई । उसने लकड़ियों को इधर-उधर उलट-पुलट कर देखा, पर आग दिखाई नहीं दी । लकड़ियों के चीर-चीर कर टुकड़े किये । वह हताश और निराश होकर सोचने लगा—मेरे साथियों ने मेरा उपहास किया है । वे यदि लकड़ियों में आग की बात नहीं कहते तो मैं अग्नि को सम्भालकर रखता । भूखे-प्यासे साथीगण लकड़ियाँ लेकर लौटे किन्तु भोजन तैयार नहीं था । एक साथी ने उन अरणि की लकड़ियों को घिस कर अग्नि तैयार की और सभी ने भोजन किया । वह लकड़हारा लकड़ी को चीर कर अग्नि पाना चाहता था, वैसे ही तुम भी शरीर को चीर कर जीव पाना चाहते हो । तुम भी उस मूर्ख लकड़हारे की तरह ही हो न ?

प्रदेशी—हथेली पर रखा हुआ आँवला स्पष्ट दिखाई देता है, उसी तरह क्या आप जीव को दिखा सकते हैं ?

केशी—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीरी जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द, गंध और वायु इन आठ पदार्थों को विशिष्ट ज्ञानी ही देख सकते हैं ।

प्रदेशी—क्या हाथी और चींटी में एक समान जीव होता है ?

केशी—एक समान जीव होता है । जैसे—कोई व्यक्ति कमरे में दीपक जलाए, सम्पूर्ण कमरा उससे प्रकाशित होता है । यदि उसे किसी बर्तन विशेष से ढँक दिया जाय तो वह बर्तन के भाग को ही प्रकाशित करेगा । दीपक दोनों स्थलों पर वही है । स्थान विशेष की दृष्टि से उसके प्रकाश में संकोच और विस्तार होता है, यही बात हाथी और चींटी के जीव के सम्बन्ध में है । संकोच और विस्तार दोनों ही अवस्थाओं में जीव की प्रदेश संख्या समान रहती है, उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती ।

केशीकुमार श्रमण के अकाट्य तर्कों को श्रवण कर प्रदेशी राजा की सभी शंकाओं का समाधान हो गया । उसने पुनः कहा—यह मेरा ही मन्तव्य नहीं है, किन्तु मेरे पिता भी जीव और शरीर को एक मानते थे । उनकी मान्यताओं को मैं कैसे ठुकरा सकता हूँ ?

केशी—तू भी लोहे के वजन को उठाने वाले व्यक्ति के समान मूढ़ है । जैसे कुछ व्यक्ति धन की अभिलाषा के लिए प्रस्थित हुए । कुछ दूर जाने पर उन्हें लोहे की खदान मिली । वे लोहे को लेकर आगे बढ़े । आगे ताम्बे की खान मिली । लोहा छोड़कर उन्होंने ताम्बा लिया । फिर चांदी की खदान मिली । ताम्बा छोड़कर चाँदी ली । आगे स्वर्ण की खदान मिली । चाँदी छोड़कर सोना

लिया। फिर रत्नों की खान मिली। सोना छोड़कर रत्न लिये। आगे वज्र रत्नों की खदान मिली। रत्न छोड़कर वज्र रत्न लिये। उनके साथ एक साथी लोहे को ढोकर चल रहा था। वह उनके अस्थिर मस्तिष्क का उपहास करने लगा। साथियों ने उसे समझाया —लोहा छोड़कर बहुमूल्य रत्न ले लो। तुम्हारी दरिद्रता सदा के लिए मिट जायेगी। पर वह न माना। उसने कहा—जिस लोहे को इतनी दूर से ढोकर लाया हूँ, उसे कैसे छोड़ूँ? वह लोहे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। जो रत्न लेकर गये, वे श्रीमन्त बन गये। वह उसी तरह भिखारी और दरिद्री बना रहा, वह अपने साथियों को श्रीसम्पन्न देखकर मन ही मन पश्चात्ताप करता, वैसे ही यदि तू केवलि-प्ररूपित धर्म को स्वीकार न करेगा तो तुझे भी पश्चात्ताप होगा।

प्रदेशी ने केशीश्रमण से श्रावक के व्रत ग्रहण किये। जिसके हाथ खून से रंगे थे, उसका जीवन परिवर्तित हो गया। वह आत्म-साधना में तल्लीन रहने लगा। महारानी सूर्यकान्ता राजा को उदासीन वृत्ति से खिन्न हो गई। वह राजा को विष प्रयोग से मारकर अपने पुत्र को राजगद्दी पर बैठाने का उपाय सोचने लगी। उसने एक दिन राजा के भोजन व वस्त्रों में विष मिला दिया। भोजन व वस्त्र धारण करते ही उसे अपार वेदना हुई। रानी की काली करतूत को समझकर भी उसके अन्तर्मानस में रोष पैदा नहीं हुआ। पौषधशाला में जाकर उसने समस्त पापकृत्यों की आलोचना की। वहाँ से सौधर्म स्वर्ग में यह सूर्याभ देव बना।

बौद्ध-ग्रन्थ दीघनिकाय में पायासिसुत्त एक प्रकरण है। उसमें राजा पायासि के प्रश्नोत्तर हैं। जो राजप्रश्नीय के प्रदेशी और केशी के प्रश्नोत्तर से मिलते-जुलते हैं। दीघनिकाय में पायासि को कौशल के राजा पसेनदि का वंशधर कहा है तथा चित्त सारथी के नाम के स्थान पर 'खत्ते' शब्द का प्रयोग हुआ है। खत्ते का पर्यायवाची संस्कृत में 'क्षत' और 'क्षता' होता है जिसका अर्थ सारथी है। नगरी का नाम 'सेयविया' के स्थान पर 'सेतव्या' प्रयुक्त हुआ है।[1] आधुनिक अनुसंधान-कर्त्ताओं ने श्रावस्ती [सहेट-महेट] को बलरामपुर से ७ मील की दूरी पर अवस्थित माना है।

प्रस्तुत कथानक में विमान, प्रेक्षागृह, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान, पीठिका, प्रेक्षा-मण्डप, वाद्य, नाट्य-विधि, जिसमें बत्तीस प्रकार के नाट्य आदि का वर्णन सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी तुलना भरत मुनि के नाट्य शास्त्र तथा महाभारत और रामायण आदि से कर सकते हैं।

तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक—

एक बार भगवान् महावीर तुंगिया नगरी के पुष्पवती चैत्य में विराजे। तुंगिया नगरी के श्रावक विराट् सम्पत्ति के अधिपति थे। उनके भव्य भवन थे। उनके यहाँ विपुल दास-दासियाँ थीं। साथ ही नव तत्त्वों के वे ज्ञाता थे। उन तत्त्वों में कौन हेय हैं; कौन ज्ञेय हैं और कौन उपादेय हैं इनका उन्हें सम्यक् परिज्ञान था। निर्ग्रन्थ प्रवचन पर उनकी दृढ़ आस्था थी। देव, दानव, मानव कोई भी उन्हें विचलित नहीं कर सकता था। उनके जीवन के कण-कण में, मन के अणु-अणु में निर्ग्रन्थ प्रवचन व्याप्त था। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही अर्थ वाला मानते थे और शेष सभी को अनर्थ वाला। वे इतने अधिक उदार थे कि उनके द्वार सदा-सर्वदा खुले रहते थे। उनका चरित्र इतना निर्मल था कि बिना रोकटोक के राजा के अन्तःपुर में भी वे प्रविष्ट हो सकते थे तथापि किसी को अप्रतीति नहीं होती थी। वे अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को पूर्ण पौषधोपवास करते थे। निर्ग्रन्थों को निर्दोष अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज—इन सभी का दान देते थे।

एक बार भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के स्थविर भगवन्त वहाँ पधारे। यह सुनकर तुंगिया नगरी के श्रावक प्रमुदित हुए। वे स्थविर भगवन्तों के पास पहुँचे। उन्होंने पाँच अभिगम किये—(१) सचित्त द्रव्य—फूल, ताम्बूल आदि का त्याग (२) अचित्त द्रव्य—वस्त्र आदि को मर्यादित करना (३) एक पट के (बिना सीये हुए) दुपट्टे का उत्तरासंग करना। (४) साधु-मुनिराज के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर लगाना (५) मन को एकाग्र करना।

इस प्रकार पाँच अभिगम करके वे स्थविर भगवन्तों के पास जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर पर्युपासना करने लगे। इसके पश्चात् स्थविर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों को चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। श्रमणोपासकों ने स्थविर भगवन्तों से पूछा—संयम और तप का फल क्या है? उन्होंने कहा—आस्रव से मुक्त होना। पुनः प्रश्न किया गया—यदि संयम और तप का फल अनास्रव है तो फिर संयमी साधक देवलोक में क्यों उत्पन्न होते हैं? स्थविरों ने समाधान दिया—संयम के साथ राग-द्वेष आदि कषाय विद्यमान हैं, उनके कारण वे देव बनते हैं अर्थात् सरागसंयम, संयमासंयम, बाल तपःकर्म और अकाम निर्जरा आदि कारणों

---

१. रायपसेणियसुत्त का सार, पृष्ठ ६६ पं० बेचरदास दोशी

से वे देव होते हैं। स्थविरों के उत्तर से श्रमणोपासक सन्तुष्ट हुए। इससे यह स्पष्ट है कि तुंगियानगरी के श्रावकों का जीवन एक आदर्श श्रावक का जीवन था। उनके जीवन में वे सभी सद्‌गुण मुखरित हुए हैं, जो एक श्रावक के जीवन में अपेक्षित हैं।

गणधर गौतम राजगृह में भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए, तुंगिया नगरी के श्रावकों ने पार्श्वापत्य स्थविरों से जो प्रश्न पूछे और जो उन्होंने उत्तर दिये, उसे सुना। उन्होंने भगवान् महावीर से पूछा—क्या स्थविरों का उत्तर यथार्थ है? भगवान् ने कहा—पूर्ण यथार्थ है। इससे यह सिद्ध है कि भगवान् महावीर और भगवान् पार्श्वनाथ की आचार-संहिता में तो भेद था, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टियों से दोनों परम्पराओं में मतभेद नहीं था। यहाँ तक कि सैद्धान्तिक दृष्टि से किसी भी तीर्थंकर के शासन में मत-भेद नहीं होता।

नन्द मणियार—

भगवान् महावीर का राजगृह में पदार्पण हुआ। दर्दुरावतंस विमान का वासी 'दर्दुर' नामक देव वहाँ आया। उसने बत्तीस प्रकार के नाटक किये। गणधर गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया। प्रभु ने कहा—राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार था। मेरा उपदेश श्रवण कर वह श्रमणोपासक बना, किन्तु चिरकाल तक साधु समागम नहीं होने से और मिथ्यात्वियों के निकट सम्पर्क में रहने से वह मिथ्यात्वी बन गया तथापि तप आदि क्रियायें पूर्ववत् ही चल रही थीं। एक दिन वह भीष्म-ग्रीष्म ऋतु में अष्टम भक्त तप की आराधना कर रहा था। उसे तीव्र भूख-प्यास सताने लगी। उसके मन में ऐसी भावना हुई—वापिका और बगीचे आदि का निर्माण करूँगा। दूसरे दिन पौषध आदि से निवृत्त होकर वह राजा के पास पहुँचा। अनुमति प्राप्त कर उसने सुन्दर वापिका बनवाई, बगीचे लगवाये, चित्रशाला, भोजनशाला, चिकित्सालय, अलंकारशाला आदि का निर्माण करवाया। उनका लोग उपयोग करने लगे और नन्द मणियार की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। वह प्रशंसा सुनकर हर्षित हुआ, उसकी उनके प्रति गहरी आसक्ति हो गई। नन्द मणियार के शरीर में सोलह महारोग पैदा हो गये। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्वास (२) कास—खांसी (३) ज्वर (४) दाह—जलन (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७) अर्श—बवासीर (८) अजीर्ण (९) नेत्रशूल (१०) मस्तक-शूल (११) भोजन विषयक अरुचि (१२) नेत्र वेदना (१३) कर्ण वेदना (१४) कंडू—खाज (१५) दकोदर—जलोदर (१६) कोढ़।

आचारांग में[1] १६ महारोगों के नाम दूसरे प्रकार से मिलते हैं। विपाक[2], निशीथभाष्य,[3] आदि में भी सोलह प्रकार की व्याधियों का उल्लेख है, पर नामों में पृथकता है। चरक संहिता में[4] भी आठ महारोगों का वर्णन है।

आसक्ति और आर्त्तध्यान में नन्द मणियार मृत्यु को वरण करता है और उसी वापी में 'दर्दुर' बनता है। कुछ समय के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के आगमन की बात को सुनकर उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो आता है और वह दर्दुर भगवान् को वन्दन के लिए चलता है। घोड़े की टाप से वह घायल हो गया, संथारा कर वह वहाँ से स्वर्ग का अधिकारी बना।

प्रस्तुत कथानक में इस बात पर बल दिया गया है कि सद्‌गुरु के समागम से आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है और आसक्ति से पतन होता है। आसक्ति आबाद जीवन को बर्बाद कर देती है।

आनन्द गाथापति—

श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों में आनन्द श्रमणोपासक का शीर्षस्थ स्थान है। वह लिच्छवियों की राजधानी 'वैशाली' के सन्निकट वाणिज्यग्राम में रहता था। उसके पास विराट वैभव था। आधुनिक युग की भाषा में वह अरबपति था। कृषि उसका मुख्य व्यवसाय था। उसके यहाँ दश-दश हजार गायों के चार गोकुल थे। आनन्द गाथापति की समाज में बहुत ही प्रतिष्ठा थी। सभी वर्ग के लोगों में उसका सन्माननीय स्थान था। विलक्षण प्रतिभा का धनी होने के कारण जन-मानस का उसके प्रति अत्यधिक विश्वास था, जिससे वे अपनी गोपनीय बात भी उसके सामने प्रकट कर देते थे। उसकी धर्मपत्नी का नाम 'शिवा-नन्दा' था। वह पतिपरायणा थी। भगवान् महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये। उसने

---

१. आचारांग ६—१—१७३.
२. विपाक १, पृष्ठ ७.
३. निशीथ भाष्य ११/३६४६.
४. वातव्याधिरपस्मारी, कुष्ठी शोफी तथोदरी। गुल्मी च मधुमेही च, राजयक्ष्मी च यो नरः॥

—चरक संहिता, इन्द्रिय स्थान ९.

शिवानन्दा को भी प्रेरणा दी। शिवानन्दा ने भी श्रावक-व्रत स्वीकार किये। धर्माराधना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में वह धर्मचिन्तन करते हुए सोचने लगा—मैं जिस सामाजिक स्थिति में हूँ, अनेक विशिष्ट उत्तरदायित्व मैंने ले रखे हैं। जिससे मैं अपने जीवन का अधिक समय धर्माराधना में नहीं लगा सकता। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को सामाजिक दायित्व सौंपा और स्वयं को कौटुम्बिक और समाजिक जीवन से पृथक् कर लिया। वह कोल्लाकसन्निवेश में स्थित पोषधशाला में धर्मोपासना करने लगा। उसने क्रमशः श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की। उग्र तपोमय जीवन व्यतीत करने से उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया। एक दिन पुनः धर्मचिन्तन करते हुए उसके मन में यह विचार आया—अब मेरा शरीर बहुत ही कृश हो गया है। मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि जीवन भर के लिए अन्न-जल का परित्याग कर शान्त चित्त से अपना अंतिम समय व्यतीत करूँ। तदनुसार वह आत्मचिन्तन में लीन हो गया। अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने से उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम में पधारे। गणधर गौतम ने भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए सुना कि आनन्द श्रावक को संथारे में अवधिज्ञान हुआ है। वे आनन्द के पास पहुँचे। आनन्द श्रावक का शरीर इतना क्षीण हो चुका था कि इधर से उधर होना भी उसके लिए शक्य नहीं था। गौतम से सन्निकट पधारने की प्रार्थना की, जिससे वह सविधि वन्दन कर सके। आनन्द ने सभक्ति वन्दन कर पूछा—क्या गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

हाँ! हो सकता है। गौतम ने उत्तर दिया।

भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। मैं उसके द्वारा पूर्व की ओर लवण समुद्र में ५०० योजन तक अधोलोक में लोलुयाच्युत नरक तक, उत्तर दिशा में चूलहेमवन्त वर्षधर पर्वत तक, उर्ध्वदिशा में सौधर्म कल्प—प्रथम देवलोक तक, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में पाँच-सौ, पाँच-सौ योजन तक का लवण समुद्र का क्षेत्र जानने लगा हूँ।

गौतम ने कहा—आनन्द! अवधिज्ञान तो हो सकता है, पर इतना विशाल नहीं। अतः तुम आलोचना कर प्रायश्चित्त लो।

आनन्द—जिनशासन में सत्य की भी आलोचना की जाती है?

गौतम—नहीं।

आनन्द—तो भगवन्! मैंने असत्य नहीं कहा है। गौतम भगवान् के चरणों में पहुँचे और सारा वृत्तान्त सुनाया।

भगवान् ने कहा—गौतम! आनन्द का कथन ठीक है। तुम आलोचना करो और आनन्द से क्षमायाचना भी।

गौतम सरलचेता साधक थे। उन्होंने अपने दोष की आलोचना की और जाकर आनन्द से क्षमायाचना की। जैन दर्शन का यह महान आदर्श है कि व्यक्ति बड़ा नहीं, सत्य बड़ा है। सत्य के प्रति हर किसी को अभिनत होना ही चाहिए। आनन्द उज्ज्वल परिणामों में उत्तरोत्तर दृढ़-दृढ़तर होते गये और सौधर्म देवलोक में देव बने।

प्रस्तुत कथानक में आनन्द श्रावक के उपासनामय जीवन का शब्दचित्र है। उस समय भारत की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। आनन्द के पास विशाल भूमि और बृहत् पशुधन था और स्वर्णमुद्राओं के भी अम्बार लगे हुए थे। वे आधुनिक धनवानों की तरह नहीं थे, जो बिना सुरक्षित पूंजी के भी अन्धाधुन्ध व्यापार करते हों। वे अपनी पूंजी का तृतीयांश भाग पहले से ही सुरक्षित रखते थे, जिससे तनाव की स्थिति पैदा न हो। जीवन की सान्ध्य वेला में वे अपना उत्तरदायित्व पुत्र को देकर पूर्णतया साधना में जुट जाते थे। उनकी साधना के लिए स्वतंत्र पौषधशालायें होती थीं। जहाँ जागरूक होकर साधनामय जीवन जीते हुए सहर्ष मृत्यु को वरण करते थे। आज के श्रावक उनके जीवन से पाठ ग्रहण करें तो जीवन में सुख और शान्ति का सरसब्ज बाग लहलहा सकता है।

कामदेव गाथापति—

कामदेव चम्पा नगरी का निवासी था, उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। उसके पास छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ स्थाई पूंजी के रूप थीं, छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ व्यापार में लगी हुई थीं और छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ घर आदि के कार्यों में लगी हुई थीं। दस-दस हजार गायों के छह गोकुल थे। उसका पारिवारिक जीवन सुखी था। राजकीय क्षेत्र में भी उसकी भारी प्रतिष्ठा थी। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर कामदेव ने व्रत ग्रहण किये और अन्त में पुत्र को गृहभार समर्पित कर स्वयं पौषधशाला में तन्मयता से साधना करने लगा। उसकी साधना में विघ्न डालने के लिए एक मिथ्यात्वीदेव आया। उसने पहले [illegible]

बनाकर कामदेव को भयभीत करने का प्रयास किया और स्पष्ट शब्दों में कहा—तुम उपासना को छोड़ दो। पर कामदेव अविचल रहा। शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने का भी प्रयास किया, उन्मत्त हाथी बनकर कामदेव को आकाश में उछाला, दांतों से बींधा और पैरों से रौंदा तथापि कामदेव अपनी साधना में अडिग रहा। फिर उसने उग्र विषधर का रूप धारण कर तीव्र डंक का प्रहार किया पर कामदेव चलित नहीं हुआ। वह देव कामदेव श्रावक के चरणों में गिर पड़ा। तुम धन्य हो! जैसा इन्द्र ने तुम्हारा गुणानुवाद किया, उससे भी तुम बढ़कर निकले। कामदेव ने उपसर्ग को समाप्त हुआ जानकर ध्यान आदि से निवृत्ति ली। उसने सुना—भगवान् महावीर का शुभागमन हुआ है। वह दर्शन के लिए पहुँचा। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने कहा—कामदेव! क्या देव ने तुम्हें इस प्रकार रात्रि को उपसर्ग दिये थे?

भन्ते! आपका कथन यथार्थ है।

भगवान् ने साधु-साध्वियों को सम्बोधित कर कहा—कामदेव गृहस्थ होते हुए भी इतना दृढ़ रहा, अतः तुम्हें भी इससे शिक्षा लेनी चाहिए। सारी सभा स्तम्भित हो गई। कामदेव उत्तरोत्तर साधना-पथ पर बढ़ता गया। बीस वर्ष तक श्रमणोपासक के व्रतों का पालन कर, अंतिम समय में संलेखना तथा अनशन कर वह सौधर्म देवलोक में देव बना।

प्रस्तुत कथानक का सार यही है कि उपसर्ग उपस्थित होने पर भी हिमालय की चट्टान की तरह व्रतों के पालन में सुदृढ़ रहना चाहिए, विघ्न साधना की कसौटी है। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि"—श्रेष्ठ कार्यों में बहुत से विघ्न आते हैं, पर जो उन बाधाओं को पार कर जाता है, वही महान् बनता है।

चुलनीपिता—

चुलनीपिता वाराणसी का गाथापति था। उसकी पत्नी श्यामा थी। चौबीस करोड़ स्वर्णमुद्रायें उसके पास थीं तथा दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल थे। जब भगवान् महावीर वाराणसी पधारे, तो उनके उपदेश को श्रवणकर चुलनीपिता ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। एक बार वह पौषधशाला में उपासनारत था। एक देव हाथ में चमचमाती हुई तलवार लिए वहाँ प्रगट हुआ और कहा—तुम व्रतों को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को लाकर तुम्हारे सामने ही टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। खौलते हुए पानी में उसका मांस पकाकर तुम्हारे शरीर पर छिटकूंगा। पुत्र के प्रति पिता की सहज ममता होती है, पर वह अविचल रहा। देव का क्रोध उबल पड़ा, उसने देवमाया से वैसा ही कर बताया। उस बीभत्स दृश्य से पत्थर का हृदय भी द्रवित हो जाता, पर चुलनीपिता अडिग रहे। दूसरी बार मझले पुत्र की भी वही स्थिति की तो भी वह साधना से चलित नहीं हुआ। तीसरी बार भी उस देव ने तीसरे पुत्र को समाप्त कर दिया तो भी चुलनीपिता मेरु की तरह अडिग रहा। चौथी बार देव ने उसकी ममतामयी माता की हत्या करनी चाही, तब उसके धैर्य का बाँध टूट गया। वह क्रुद्ध होकर उस देव को पकड़ने के लिए उठा। देव अन्तर्धान हो गया। उसके हाथ में खम्भा आया और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। भद्रा सार्थवाही उसकी आवाज को सुनकर चट से वहाँ पहुँची और कहा—वत्स! वह देव माया थी। तुमने क्रोध करके व्रत का भंग किया है, इसीलिए प्रायश्चित्त करके शुद्ध बनो। माँ की आज्ञा को शिरोधार्य कर चुलनीपिता ने प्रायश्चित्त किया।

साधक को प्रत्येक क्षण सावधान रहना चाहिए, यदि भूल हो जाये तो उसका परिष्कार करना चाहिए। चुलनीपिता ने उपासना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास किया और अन्तिम समय में संलेखना-समाधिपूर्वक अनशन कर सौधर्म देवलोक में देव बना।

प्रस्तुत कथानक में यह बताया गया है कि अध्यात्म की साधना माँ की ममता से भी बढ़कर है। जब साधक उस उच्च भूमिका पर पहुँच जाता है तो सांसारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।

सुरादेव—

सुरादेव भी वाराणसी का गाथापति था। उसके पास अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें थीं। उसकी पत्नी का नाम धन्या था। भगवान् महावीर के पावन-प्रवचन को श्रवण कर उसने व्रत ग्रहण किये। देव ने पाँच बार उसके पुत्रों को काटा, खौलते हुए पानी के कड़ाह में डाला और सुरादेव पर मांस छिड़का तो भी सुरादेव विचलित नहीं हुआ तब देव ने उसके शरीर में सोलह महारोग उत्पन्न करने की धमकी दी, जिससे सुरादेव विचलित हो उठा। उसने देव को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया, देव आकाश में लुप्त हो गया। सुरादेव की चिल्लाहट को सुनकर उसकी पत्नी वहाँ आई और उसने कहा—पतिदेव! यह देव उपसर्ग था। आप अपना व्रत खण्डित नहीं करें। उसने भूल का प्रायश्चित्त किया। बीस वर्ष तक श्रावक व्रतों का निरतिचार पालन कर सौधर्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

चुल्लशतक—

आलभिका नगरी में चुल्लशतक गाथापति था। उसके पास अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। दश-दश हजार गायों के छह गोकुल थे। एक बार भगवान् महावीर आलभिका पधारे। चुल्लशतक ने व्रत ग्रहण किये। एक दिन पौषधशाला में उसने पौषध व्रत स्वीकार कर रखा था। अर्धरात्रि में एक देव प्रगट हुआ। देव ने चुल्लशतक के तीनों पुत्रों के सात-सात टुकड़े कर दिये, पर वह व्रत से विचलित नहीं हुआ। अन्त में देव ने सोचा—धन ग्यारहवाँ प्राण है। अतः उसने कहा—यदि तुम व्रतों का भंग नहीं करोगे तो तुम्हारे सम्पूर्ण धन का अपहरण कर लूँगा। तुम दरिद्र बनकर दर-दर भटकोगे। तीन बार कहने पर चुल्लशतक के बिजली सी कौंध गई। वह घबड़ा गया। उसने उस पुरुष को पकड़ने के लिए हाथ आगे बढ़ाया, पर खम्भे के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगा। व्याकुलता के कारण वह जोर से चिल्ला उठा। पत्नी ने आकर कहा—आपको अपने व्रत में दृढ़ रहना चाहिए, आलोचना कर आत्म-शोधन करें। उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने शुद्धिकरण किया। बीस वर्ष तक श्रावक व्रतों का पालन कर एवं एकादश प्रतिमाओं की आराधना की। एक मास को संलेखना-संथारा कर सौधर्म देवलोक में देव बना।

कुण्डकौलिक—

काम्पिल्यपुर नगर में कुण्डकौलिक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम पूषा था। अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का वह अधिपति था। दश-दश हजार गायों के छह-गोकुल थे। भगवान् के उपदेश को सुनकर कुण्डकौलिक ने व्रत ग्रहण किये। वह एक दिन मध्याह्न में अशोक वाटिका में पहुँचा। उसने अपनी अंगूठी और उत्तरीय उतार कर पृथ्वीशिला पट्टक पर रखे; और धर्म-ध्यान में संलग्न हो गया। उस समय एक देव प्रकट हुआ। अंगूठी और उत्तरीय लेकर आकाश में स्थित हो गया। देव ने कहा—मंखलिपुत्र गोशालक का सिद्धान्त सुन्दर है। वहाँ पुरुषार्थ को स्थान नहीं है। वह नियतिवादी है। जो कुछ भी होगा, वह नियति के अनुसार ही होगा। इसलिए तुम उसके सिद्धान्त को स्वीकार करो।

कुण्डकौलिक—तुमने जो यह विराट ऋद्धि प्राप्त की है, वह पुरुषार्थ से प्राप्त की है या यों ही?

देव—मैंने यों ही प्राप्त की है।

कुण्डकौलिक—तो फिर प्रत्येक प्राणी जो पुरुषार्थ नहीं करते हैं, वे देव क्यों नहीं बने?

देव कुण्डकौलिक के तर्क का उत्तर नहीं दे सका। वह अंगूठी और उत्तरीय को शिलापट्ट पर रखकर चल दिया।

दूसरे दिन भगवान् महावीर का काम्पिल्यपुर नगर में पदार्पण हुआ। कुण्डकौलिक वन्दन के लिए गया। भगवान् ने देव-परीक्षा की बात कही और साधु-साध्वियों को प्रेरणा देते हुए कहा—कुण्डकौलिक कितना गहरा तत्त्ववेत्ता है। उसने अपनी युक्ति से देव को निरुत्तर कर दिया। कुण्डकौलिक की घटना को महत्त्व देने का यही कारण था कि साधकों को अपने सिद्धान्त का सम्यक् परिबोध होना चाहिए।

कुण्डकौलिक ने पन्द्रहवें वर्ष में एकादश प्रतिमाओं को ग्रहण किया। उसके पूर्व चौदह वर्ष तक वह व्रतों का पालन करता रहा था। अन्त में एक मास की संलेखना-संथारा द्वारा आयुष्य को पूर्ण करके वह सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

शकडालपुत्र—

पोलासपुर नगर में शकडालपुत्र नामक एक कुम्भकार था। उसके पास तीन करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं और दस हजार गायों का एक गोकुल था। उसका प्रमुख व्यवसाय था—मिट्टी के बर्तन तैयार करना और बेचना। पोलासपुर नगर के बाहर उसकी पाँच सौ कर्मशालाएँ थीं। वहाँ अनेक वैतनिक कर्मचारी काम करते थे। वे बर्तन तैयार करते और सार्वजनिक स्थानों पर उन्हें बेचते थे। शकडालपुत्र की पत्नी का नाम अग्निमित्रा था। वह गोशालक का प्रमुख अनुयायी था। एक बार शकडालपुत्र अशोकवाटिका में धर्माराधन कर रहा था। उस समय एक देव ने प्रकट होकर कहा—कल प्रातः महामहिम अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक त्रैलोक्यपूजित, अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आयेंगे। उनकी तुम पर्युपासना करना।

दूसरे दिन भगवान् महावीर सहस्राम्र उद्यान में पधारे। शकडालपुत्र दर्शन करने के लिए गया। [illegible] था कि भगवान् गोशालक पधारेंगे और उसी दृष्टि से वह वहाँ पर पहुँचा। भगवान् महावीर ने उसे [illegible] देव आया था [illegible] और उसने मेरे आगमन की सूचना दी थी [illegible] शकडालपुत्र भगवान् महावीर के [illegible] प्रभावित हुआ। उसने भगवान् से निवेदन किया—मेरी कर्मशाला में पधारें और आवश्यक सामग्री ग्रहण करें। भगवान् महावीर [illegible] दिन शकडालपुत्र बर्तनों को धूप दे रहा था। भगवान् ने पूछा—ये बर्तन कैसे बने? शकडालपुत्र ने निवेदन किया [illegible] थी, फिर उसे भिगोकर राख और गोबर मिलाया [illegible] बर्तन बनाये।

भगवान्—ये बर्तन पुरुषार्थ से बने हैं अथवा अपुरुषार्थ से ?

शकडालपुत्र—इसमें पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं। जो कुछ होना होता है, वह निश्चित है।

भगवान्—कल्पना करो, कोई व्यक्ति तुम्हारे बर्तनों को तोड़ दे, फोड़ दे अथवा तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ बलात्कार करे तो तुम क्या करोगे ?

शकडालपुत्र—मैं उसे फटकारूँगा, दण्ड दूँगा और अधिक करेगा तो उसकी जान ले लूँगा।

भगवान्—तुम ऐसा क्यों करते हो ? क्योंकि तुम्हारी दृष्टि से जो कुछ भी होने वाला है, वह नियत है। फिर उसे दोषी क्यों मानते हो ? यदि तुम यह मानते हो कि वह पुरुषार्थ करता है तो नियतिवाद का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है।

शकडालपुत्र भगवान् महावीर के सामने नत हो गया। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये और उसकी पत्नी अग्निमित्रा ने भी।

मंखलिपुत्र गोशालक ने जब यह सुना तो उसे दुःख हुआ क्योंकि वह उसका प्रमुख श्रावक था। वह आजीवकों के उपाश्रय में ठहरकर शकडालपुत्र के पास आया, पर शकडालपुत्र ने कोई आदरभाव प्रकट नहीं किया। गोशालक ने भगवान् महावीर की खूब स्तवना की। शकडालपुत्र ने अपने गुरु महावीर की स्तवना से प्रभावित होकर कहा—आप मेरी कर्मशाला में रुकें। गोशालक भी यही चाहता था। उसने विविध तर्क देकर उसे समझाने का प्रयास किया पर शकडालपुत्र की धर्मश्रद्धा विचलित नहीं हुई। निराश होकर गोशालक ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

श्रावक व्रतों की आराधना एवं साधना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो चुके थे, पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था। शकडालपुत्र रात्रि में धर्माराधना कर रहा था। एक देव आया। उस देव ने उसके तीनों पुत्रों को मारकर नौ-नौ मांसखण्ड किये। खौलते हुए पानी में उबालकर उसको शकडालपुत्र के ऊपर छींटा तो भी वह विचलित नहीं हुआ। देव ने सोचा—इसका अग्निमित्रा पत्नी पर अत्यधिक अनुराग है, अतः उसी तरह उसे भी मारने की धमकी दी। वह क्षुभित हो उठा, देव को पकड़ने के लिए ज्योंही हाथ आगे बढ़ाये त्योंही हाथ खम्भे से टकरा गये। उसकी चीत्कार को सुनकर अग्निमित्रा वहाँ आई और बोली—आपने व्रत को भंग कर दिया है, प्रायश्चित्त लेकर शुद्धिकरण करें। शकडालपुत्र ने वैसा ही किया। जीवन के अन्तिम क्षणों तक जागरूकता से उसकी साधना चलती रही। आयु पूर्ण कर वह अरुणभूत विमान में देव बना।

महाशतक—

राजगृह में महाशतक गाथापति था। उसके पास चौबीस करोड़ स्वर्णमुद्रायें थीं। दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल थे। उसके तेरह पत्नियाँ थीं। उनमें रेवती प्रमुख थी। रेवती अपने पीहर से आठ करोड़ स्वर्णमुद्रायें और दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल प्रीतिदान के रूप में लाई थी, अन्य बारह पत्नियाँ भी एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें और दश-दश हजार गायों का एक गोकुल प्रीतिदान के रूप में लाई थीं। उस युग में पुत्रियों को पीहर से विराट सम्पत्ति प्राप्त होती थी और उस पर उन पत्नियों का ही अधिकार रहता था। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर महाशतक ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

महाशतक की पत्नी रेवती के अन्तर्मानस में अर्थ और भोग के प्रति तीव्र अभिलाषा थी। एक बार उसके मन में विचार आया—मैं बारह ही सौतों को मार दूँ तो उनकी सारी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार हो जायेगा और मैं एकाकिनी विषय-भोगों का सेवन करूँगी। उसने अपनी सौतों को मरवा दिया। रेवती मांस और मदिरा का भी उपभोग करती थी। एक बार राजगृह में अमारि (प्राणी-वध-निषेध) की घोषणा कर दी गई। रेवती ने अपने गोकुल में से दो-दो बछड़े प्रतिदिन मारकर गुप्त रूप से लाने की व्यवस्था की। महाशतक के जीवन में नया मोड़ आ गया। श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए उसे चौदह वर्ष व्यतीत हो गये थे। अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सम्हला कर स्वयं पौषधशाला में धर्मोपासना करने लगा। रेवती मदिरा के नशे में उन्मत्त बनी हुई कामोद्दीपक हाव-भाव करने लगी तथा भोगों की अर्चना करने लगी। किन्तु महाशतक विचलित नहीं हुआ। रेवती अपना-सा मुँह लेकर लौट गई। महाशतक साधना में उत्तरोत्तर प्रगति करता रहा। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। रेवती वासना की ज्वाला में झुलस रही थी। वह पुनः-पुनः आकर कुचेष्टा करने लगी जिससे वह विक्षुब्ध हो उठा। उसने अवधिज्ञान से निहारकर कहा—रेवती ! तू अत्यन्त भयानक रोग से पीड़ित होकर रत्नप्रभा नामक पहली नरक में उत्पन्न होगी, जहाँ चौरासी हजार वर्ष तक भयंकर कष्टों को भोगेगी। वह भय से काँप उठी, उसके सामने मौत की काली छाया नाचने लगी। जैसा महाशतक ने कहा था, वैसा ही हुआ।

भगवान् महावीर का राजगृह में पदार्पण हुआ। उन्होंने गणधर गौतम को बताया—अन्तिम संलेखना स्वीकार कर महा-

शतक ने अप्रिय और अमनोज्ञ कथन कर भूल की है। तुम जाकर महाशतक को उसकी आलोचना कर प्रायश्चित्त करें, ऐसा सूचन करो। गौतम महाशतक के पास आये और भगवान का संदेश कहा। महाशतक ने भगवान के वचन को शिरोधार्य कर शुद्धि की। समाधिपूर्वक देह त्यागकर सौधर्मकल्प में देव बना।

नन्दिनीपिता—

श्रावस्ती नगरी में नन्दिनीपिता गाथापति था। उसके पास बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें थीं। दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे। उसकी पत्नी का नाम अश्विनी था। भगवान महावीर के उपदेश को सुनकर उसने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। व्रतों का पालन करते हुए जब चौदह वर्ष हो गये तो अपना उत्तरदायित्व ज्येष्ठ पुत्र को देकर वह साधना में जुट गया। उसकी साधना में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई। बीस वर्ष तक श्रावक धर्म की आराधना कर वह सौधर्म देवलोक में देव बना।

सालिहीपिता—

श्रावस्ती में सालिहीपिता गाथापति था। उसके पास बारह करोड़ स्वर्णमुद्रायें थीं। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था। उसके पास दस-दस हजार गायों के चार गोकुल थे। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर उसने व्रतों को ग्रहण किया। चौदह वर्ष तक श्रावक व्रतों का पालन करने के पश्चात् अपना उत्तरदायित्व ज्येष्ठ पुत्र को देकर स्वयं साधना में तल्लीन हो गया, ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की और समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

आनन्द गाथापति से लेकर सालिहीपिता तक इन दसों श्रमणोपासकों की परिगणना भगवान् महावीर के प्रमुखतम श्रावकों में की गई है। उपासकदशांग सूत्र में इनकी जीवन गाथायें हैं। दस उपासकों में से छह के जीवन में उपसर्ग उत्पन्न हुए थे। उनमें से चार उपासक विचलित हो गये किन्तु पुनः सम्भल गये। अपनी भूल का प्रायश्चित्त कर लिया। दो उपासक पूर्ण रूप से अविचल रहे और शेष चार उपासकों की साधना में किसी भी प्रकार के उपसर्ग नहीं आये। उपसर्ग साधक की कसौटी है। जो साधक उपसर्गों की कसौटी पर खरा उतरता है, उसका जीवन स्वर्ण की तरह निखर जाता है।

ऋषिभद्रपुत्र—

आलभिका नगरी में ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक था। उस नगर में अनेक श्रमणोपासक थे। जो जीवादि तत्त्वों के परिज्ञाता थे। अन्य श्रमणोपासकों ने ऋषिभद्रपुत्र से पूछा—देवों की कितनी स्थिति है? उसने कहा—जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट क्रमशः बढ़ती हुई तैंतीस सागरोपम की। अन्य श्रमणोपासकों को शंका हुई कि उसका कथन यथार्थ है अथवा नहीं? भगवान् महावीर आलभिका नगरी में पधारे। उनका उपदेश सुनने के बाद उस परिषद् ने भगवान् से पूछा—ऋषिभद्रपुत्र का कथन यथार्थ है या नहीं? प्रभु ने कहा—उसका कथन यथार्थ है। मैं भी ऐसा कहता हूं। यह सुनकर परिषद् प्रभावित हुई और ऋषिभद्रपुत्र से क्षमायाचना की।

गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—क्या ऋषिभद्रपुत्र श्रमण बनेगा? भगवान ने कहा—नहीं, वह श्रमणोपासक-जीवन व्यतीत करके आयु पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में देव बनेगा और वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

प्रस्तुत कथानक से यह स्पष्ट है कि भगवान् महावीर के श्रमणोपासक तत्त्वदर्शन के अच्छे ज्ञाता थे और भगवान् उस सत्य-तथ्य को स्वीकार कर उस पर अपनी मुद्रा लगा देते थे जिससे अन्य श्रावक भी तत्त्व-दर्शन की ओर आगे बढ़ सकें।

शंख-पुष्कली-

श्रावस्ती नगरी में शंख श्रावक था। उसकी पत्नी का नाम उत्पला था। पुष्कली नामक एक अन्य श्रमणोपासक भी वहीं रहता था। दोनों ही जैन दर्शन के पूर्ण ज्ञाता थे। भगवान् महावीर का वहां पदार्पण हुआ। भगवान् का उपदेश श्रवण कर उन्होंने अनेक जिज्ञासाएं प्रस्तुत कीं। उसके बाद शंख श्रमणोपासक ने श्रावस्ती के अन्य श्रमणोपासकों से कहा— पुष्कल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाओ और उसका आस्वादन करते हुए परस्पर खाते और खिलाते हुए पाक्षिक पौषध का [illegible] करते हुए रहेंगे। सभी श्रमणोपासकों ने शंख की बात को ध्यानपूर्वक सुना।

उसके पश्चात् शंख श्रमणोपासक के मन में विचार आया कि खाते हुए पौषध [illegible] कर लिया [illegible] मेरे लिये अकेले ही पौषध करना श्रेयस्कर है। ऐसा सोचकर वह [illegible] पौषधशाला में पौषध लेकर बैठ गया। उधर श्रावस्ती के श्रमणोपासकों ने [illegible] किन्तु शंख श्रमणोपासक नहीं आया [illegible] उसे बुलाने का विचार किया।

पुष्कली श्रावक उन सभी की ओर से उन्हें बुलाने गया। उत्पला से पूछा—शंख श्रावक कहाँ है? उसने कहा—वे पौषधशाला में पौषध करके बैठे हैं। पुष्कली ने शंख को नमस्कार किया और कहा—आपने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाया है, अतः आहार आदि को खाते-पीते पौषध करें। शंख ने कहा—मैंने पौषध कर लिया है, तुम अपनी इच्छानुसार खाते-पीते पौषध करो। उन श्रावकों ने वैसा ही किया।

रात्रि में धर्म जागरण करते हुए शंख ने सोचा—भगवान् महावीर के दर्शन करने के बाद ही मुझे पौषध पारना श्रेयस्कर है। सुबह होने पर शंख भगवान् की सेवा में पहुँचा। उधर पुष्कली आदि श्रावक भी भगवान् को वन्दन के लिए पहुँचे। उपदेश सुनने के बाद उन्होंने शंख को उपालम्भ दिया। प्रभु ने कहा—तुम शंख श्रावक की अवहेलना न करो, यह प्रियधर्मी एवं दृढ़धर्मी है। इसने प्रमाद और निद्रा का परित्याग कर सुदर्शन जागरिका जागृत की है।

गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—जागरिका कितने प्रकार की है? भगवान् ने उत्तर दिया—जागरिका तीन प्रकार की है—१. बुद्ध जागरिका २. अबुद्ध जागरिका और ३. सुदर्शन जागरिका। सर्वज्ञों की जागरिका बुद्ध जागरिका है, अणगार की जागरिका अबुद्ध जागरिका है और श्रावकों की जागरिका सुदर्शन जागरिका है।

शंख ने भगवान् महावीर से पूछा—क्रोध आदि कषाय के वशीभूत जीव कौन से कर्म बाँधता है अथवा चय-उपचय करता है? भगवान् ने कहा—वह सात या आठ कर्मों को बाँधता है, शिथिल कर्म प्रकृतियों को दृढ़ करता है। पुष्कली आदि सभी श्रावकों ने शंख से क्षमायाचना की। गौतम ने पूछा—क्या शंख प्रव्रज्या ग्रहण करेगा? भगवान् ने कहा—नहीं, वह श्रावकधर्म का ही पालन करेगा।

प्रस्तुत कथानक में पौषध का उल्लेख हुआ है। पौषध के १ आहार-पौषध, २ शरीर-पौषध ३ ब्रह्मचर्य-पौषध और ४ अव्यापार-पौषध—ये चार प्रकार हैं। शंख श्रावक ने प्रतिपूर्ण पौषध किया था। आवश्यकवृत्ति में पौषधोपवास का लक्षण इस प्रकार किया गया है—"धर्म और अध्यात्म को पुष्ट करने वाला विशेष नियम धारण करके उपवास सहित पौषध में रहना।"[1] पौषध शब्द संस्कृत के 'उपवसथः' शब्द से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—धर्माचार्य के समीप या धर्मस्थान में रहना। धर्मस्थान में निवास करते हुए उपवास करना पौषधोपवास है। दूसरे शब्दों में कहें तो पौषध व्रत का अर्थ पोषना, तृप्त करना है। शरीर को भोजन से तृप्त करते हैं वैसे ही आत्मा को व्रत से तृप्त करना। पौषध में आत्मचिन्तन, आत्मशोधन, आत्म-विकास का पुरुषार्थ किया जाता है। जब साधक आत्मचिन्तन करता है तो उसे अपने अन्तर् में रही हुई कमजोरियों का ज्ञान होता है और जिन शक्तियों की न्यूनता है, उनकी सम्पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है। व्यक्ति दूसरों को सुधार नहीं सकता पर अपने आपको वह सुधार सकता है। पौषध में साधक सांसारिक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर धर्म-जागरण और आत्म-जागरण करता है।

वरुणनागनप्तृक श्रमणोपासक—

वैशाली में वरुणनागनप्तृक श्रमणोपासक था। वह जीवादि तत्त्वों का परिज्ञाता था तथा व्रती था। छट्ठ-छट्ठ की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ रहता था। राजा के आदेश से उसे रथमूसल संग्राम में जाना पड़ा। उसने युद्ध में प्रवृत्त होते समय यह नियम लिया कि जो मुझ पर पहले वार करेगा, उसी को मुझे मारना योग्य है, दूसरे को नहीं। वह नियम लेकर संग्राम करने लगा। वरुणनागनप्तृक के सदृश ही एक व्यक्ति समान वय और आकृति वाला वहाँ आया और कहा—मेरे पर प्रहार करो। उसने कहा—जब तक कोई मेरे पर प्रहार नहीं करता, वहाँ तक मैं भी प्रहार नहीं करता हूं। उसने वरुणनागनप्तृक पर बाण का प्रहार किया जिससे वह घायल हो गया। उसके बाद ही वरुणनागनप्तृक ने उस व्यक्ति पर प्रहार किया जिससे वह भूमि पर लुढ़क पड़ा। पुनः उसने प्रहार किया जिससे वरुणनागनप्तृक के प्राण संकट में पड़ गये। जीवन की सांध्यवेला समझ-कर उसने रथ को एकान्त स्थान में ले जाने का आदेश दिया। रथ से उतरकर, दर्भ का आसन बिछाकर वरुणनागनप्तृक ने अरिहंतों को नमस्कार किया एवं जीवन पर्यन्त के लिए व्रतों को ग्रहण किया। कवच को खोला और शरीर में से बाण को बाहर निकाला तथा समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुआ।

वरुणनागनप्तृक का बाल मित्र युद्ध कर रहा था। वह भी घायल हुआ। वरुणनागनप्तृक के पीछे-पीछे आया और समाधि कर मृत्यु का वरण किया। सन्निकट में रहे हुए देवों ने सुगन्धित जल और पुष्पों की वर्षा की और गीत व गन्धर्व-नाद भी। लोगों ने समझा—जो संग्राम करते हुए मरते हैं, वे देवलोक को प्राप्त होते हैं, पर उन्हें यह पता नहीं कि कैसे व्यक्ति स्वर्ग में जाते हैं?

---

1. पोषं धत्ते इत्यन्यत्र पोषधोपवासः नियमविशेषाभिधानं चेदं पौषधोपवासः।

आवश्यकवृत्ति

गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! वरुणनागनप्तृक कहाँ गया ? भगवान् ने कहा—वह सौधर्म देवलोक में गया और उसका मित्र मानव बना। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

प्रस्तुत कथानक में, वैदिक परम्परा तथा लोक-धारणाओं में यह बात फैली हुई थी कि रण-क्षेत्र में मरने वाला व्यक्ति स्वर्ग का वरण करता है। इस दृष्टि से लोग युद्ध में मरने को श्रेयस्कर मानते थे।[1] इस मिथ्याधारणा का इसमें निरसन किया गया है। रणक्षेत्र में भी मरने वाला व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है बशर्ते वह पापों की आलोचना कर कषाय से मुक्त होकर समभाव में आयु पूर्ण करे। यदि कषाय की आग में सैनिक झुलस रहा है तो उसकी गति नरक एवं तिर्यंच की होगी। बबूल का पेड़ बोकर आम की आशा करना मिथ्या है। वैसे ही कषाय भाव में सद्गति सुलभ नहीं है।

सोमिल ब्राह्मण—

वाणिज्यग्राम में सोमिल ब्राह्मण था। वह वेदों का पारंगत विद्वान् था। उसके पांच सौ शिष्य थे। वहाँ पर भगवान् महावीर का आगमन हुआ। सोमिल ब्राह्मण ने सोचा—मैं अपने शिष्यों के साथ भगवान् के पास जाऊँ, यदि वे मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकेंगे तो मैं उन्हें निरुत्तर कर दूंगा। इस प्रकार विचार कर वह महावीर के पास आया और पूछा—भगवन् ! आपके यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार क्या हैं ? भगवान् ने कहा—हाँ हैं। वह तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान, और आवश्यक आदि योगों में मेरी जो यतना (प्रवृत्ति) है, वह मेरी यात्रा है। यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिय यापनीय और नोइन्द्रिय यापनीय। पाँचों इन्द्रियां निरुपहत (उपघात रहित) मेरे अधीन प्रवृत्ति करती हैं, यह मेरा इन्द्रिय यापनीय है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय मेरे पूर्ण रूप से नष्ट हो गये हैं, वे उदय में नहीं हैं, यह मेरा नोइन्द्रिय यापनीय है। मेरे वात, पित्त, कफ, और सन्निपात जन्य अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी दोष और रोगान्तक उपशान्त हो गये हैं, वे उदय में नहीं आते, यह मेरा अव्याबाध है। आराम, उद्यान, देवकुल सभा, प्रपा, विविध स्थानों में जो स्त्री, पशु, पंडक रहित वस्तियों में प्रासुक एषणीय पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि प्राप्त कर मैं विचरण करता हूँ, यह मेरे लिए प्रासुक विहार है।

सोमिल ने पुनः प्रश्न किया—सरिसव भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य ?

भगवान्—सोमिल ! ब्राह्मण ग्रन्थों में सरिसव दो प्रकार के बताये गये हैं—१. समान वय वाला सरिसव (सदृशवय)—मित्र २. धान्य सरिसव। जो मित्र सरिसव है वह सहजात, सहवर्धित और सहपांसुक्रीड़ित ये तीनों प्रकार के सरिसव श्रमणों के लिए अभक्ष्य है।

धान्य सरिसव दो प्रकार का है—१. शस्त्र-परिणत—अग्नि आदि से निर्जीव बना हुआ और २. अशस्त्र परिणत—निर्जीव नहीं बना हुआ। जो अशस्त्र परिणत है, वह अभक्ष्य है। शस्त्र परिणत भी दो प्रकार का है—एषणीय और अनेषणीय। एषणीय सरिसव भी दो प्रकार का है—याचित और अयाचित। अयाचित श्रमणों के लिए त्याज्य है। याचित भी दो प्रकार का है—लब्ध और अलब्ध। अलब्ध श्रमणों के लिए अभक्ष्य है और लब्ध श्रमणों के लिए भक्ष्य है। इसलिए सरिसव मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी।

सोमिल ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की—मास भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? महावीर ने कहा—ब्राह्मण ग्रन्थों में मास दो प्रकार का कहा गया है—द्रव्य मास और काल मास। जो काल मास है श्रावण, भाद्रपद आदि, वह श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है। द्रव्य मास दो प्रकार का है—अर्थ माष और धान्य माष। अर्थ माष दो प्रकार का है—स्वर्ण माष और रौप्य माष, ये श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है। धान्य माष दो प्रकार का है—शस्त्र परिणत माष और अशस्त्र परिणत माष। ये सभी मास, जो शस्त्र परिणत है वह सरिसव के समान भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

भगवन् ! कुलत्था भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य है ? भगवान् ने कहा—कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है। वह दो प्रकार का है—स्त्री कुलत्था और धान्य कुलत्था। स्त्री कुलत्था तीन प्रकार की है—कुलकन्या, कुलवधू, कुलमाता, ये श्रमणों के लिए अभक्ष्य है। धान्य कुलत्था के सम्बन्ध में धान्य सरिसव के समान समझना। कुलत्था भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी।

सोमिल ने पुनः पूछा—भगवन् ! आप एक हैं या अनेक हैं ? अक्षय, अव्यय, अवस्थित या भूतभाव भविक हैं ?

भगवान्—मैं एक भी हूँ और अनेक भी। मैं द्रव्य रूप से एक हूँ, ज्ञान और दर्शन से मैं दो भी हूँ। आत्मप्रदेशों से मैं अक्षय हूँ, अव्यय हूँ और अवस्थित भी। उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणामों का [illegible] अनेक रूपधारी भी हूँ।

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—[illegible] का कथन

सोमिल के अद्वैत, द्वैत, नित्यवाद और क्षणिकवाद जैसे गम्भीर प्रश्न जो लम्बे समय तक चर्चा करने पर भी सुलझ नहीं सकते थे, उन सभी प्रश्नों का भगवान् महावीर ने अनेकान्त दृष्टि से क्षण भर में समाधान कर दिया। सोमिल महावीर को शब्द जाल में फँसाना चाहता था, इसीलिए उसने श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया था, पर भगवान् तो केवलज्ञानी थे। अतः उनसे उसका वाक्छल किस प्रकार छिप सकता था? 'सरिसव' प्राकृत भाषा का श्लिष्ट शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया है—'सर्षप' और 'सदृशवया'। 'सर्षप' का अर्थ सरसों है और 'सदृशवया' का अर्थ समान उम्र है। 'मास' भी प्राकृत का श्लिष्ट शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया है—'माष' और 'मास'! 'माष' का अर्थ उड़द है और 'मास' का महीना है। 'कुलत्था' भी प्राकृत का श्लिष्ट शब्द है, जिसको संस्कृत छाया है—'कुलस्था' और 'कुलत्था'? 'कुलस्था' का अर्थ कुलीन स्त्री और 'कुलत्था' का अर्थ है—कुलथी—धान्य विशेष।

भगवान् महावीर के तार्किक उत्तरों से सोमिल अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने श्रद्धापूर्वक भगवान् के उपदेश को सुना और कहा—मैं श्रमणधर्म स्वीकार नहीं कर सकता, अतः श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहता हूँ। सोमिल ने भगवान् महावीर से श्रावक धर्म ग्रहण किया और समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग का अधिकारी बना।

कूणिक का भगवान महावीर के समवसरण में धर्मश्रवण

प्रस्तुत कथानक का प्रारम्भ चम्पानगरी में हुआ है। चम्पा का विस्तृत वर्णन किया गया है। जो सभी आगमों के नगरों के वर्णन का मूल आधार रहा है। वास्तुकला की दृष्टि से यह वर्णन बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्राचीन युग में नगरों का निर्माण किस प्रकार होता था, यह इस वर्णन से स्पष्ट है। नगर की शोभा गगनचुम्बी नव्य भव्य उच्च अट्टालिकाओं से ही नहीं होती वलिक सघन वृक्षों की हरियाली से होती है। हरियाली लहलहाती है पानी की अधिकता से। इसलिए चम्पा नगरी के साथ पूर्णभद्र चैत्य का भी उल्लेख किया गया है। वन-खण्ड में विविध प्रकार के वृक्ष थे, लताएँ थी और नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षियों का मधुर कलरव दर्शकों के दिल को लुभाता था। उन सभी वृक्षों में अशोक वृक्ष का स्थान अनूठा था। भारतीय साहित्य में अशोक वृक्ष का उल्लेख हजारों स्थलों पर हुआ है। जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं ने उसके सम्बन्ध में चिन्तन किया है। तीर्थंकर भी अशोक वृक्ष के नीचे विराजित होते हैं।[1]

चम्पा का अधिपति कूणिक सम्राट था। वह भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसकी भक्ति का जीता जागता चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है।[2] भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में शुभागमन होता है। उनका विराट समवसरण लगता है। सम्राट कूणिक भगवान को वन्दन के लिए पहुँचता है और उसकी सुभद्रा आदि देवियाँ भी। भगवान् धर्मोपदेश देते हैं। सम्राट कूणिक जैन था या बौद्ध? इस प्रश्न पर हमने अन्यत्र चिन्तन किया है, अतः विशेष जिज्ञासु वहाँ देखें।[3]

अम्बड परिव्राजक—

भगवती सूत्र में अम्बड परिव्राजक के सम्बन्ध में संक्षेप में उल्लेख है।[4] औपपातिक में विस्तार से निरूपण है। अम्बड परिव्राजक नामक एक अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख हुआ है[5] जो अगामी चौवीसी में तीर्थंकर होगा। औपपातिक में आये हुए अम्बड महाविदेह में मुक्त होंगे।[6] इसलिए दोनों अलग-अलग व्यक्ति होने चाहिए। अम्बड परिव्राजक के सात सौ शिष्य थे। वे कम्पिलपुर नगर से पुरिमताल नगर के लिए प्रस्थित हुए। भयानक जंगल में साथ का जल समाप्त हो गया, किन्तु वहाँ कोई भी व्यक्ति जल देने वाला न होने से उन्होंने शान्त चित्त से भगवान् महावीर को और अपने धर्माचार्य अम्बड परिव्राजक को नमस्कार किया। महाव्रतों को ग्रहण कर संलेखना सहित आयु पूर्ण किया। अम्बड-परिव्राजक को वीर्यलब्धि एवं वैक्रिय-लब्धि के साथ अवधि-ज्ञान-लब्धि भी प्राप्त थी। वह कम्पिलपुर के सौ घरों में आहार करता था। उसकी आचार-संहिता श्रमणाचार से मिलती-जुलती थी। यद्यपि कच्चे पानी आदि का उपयोग ऐसी बाते हैं, जो श्रमणाचार से मेल नहीं खातीं, इसीलिए अम्बड परिव्राजक को श्रमणोपासक

---

१. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०.
२. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०—२४.
३. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०—२४. सम्राट कूणिक : एक अनुचिन्तन
४. भगवती सूत्र, शतक १४, उद्देशक ८.
५. एस णं अज्जो! कण्हे वासुदेवे, रामे वलदेवे, उदये पेढालपुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावइ, दारुए नियंठे, सच्चइ नियंठीपुत्ते सावियं बुद्धे अंबडे परिव्वायए, अज्जा वि णं सुपासा पासावच्चिज्जा। आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवत्तित्ता सिज्झिहिंति जाव—अंतं काहिंति। —स्थानांग सूत्र ९ स्था०, सूत्र ६९२. मुनि कमल संपादित
६. यश्चौपपातिकोपांगे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति सम्भाव्यते। —स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४.

माना है। उसने श्रावक व्रत ग्रहण किये थे। अम्बड की भगवान् महावीर के प्रति अनन्य आस्था थी। अन्त में मासिक संलेखना के साथ आयु पूर्ण कर ब्रह्म देवलोक में पैदा हुआ और वहाँ से च्युत होकर महाविदेह में दृढ़प्रतिज्ञ कुमार होगा। वहाँ से सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

स्थानांग में जो अम्बड परिव्राजक है, उसने भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में धर्मोपदेश श्रवण किया। जब वह राजगृही की ओर प्रस्थित होने लगा तब भगवान् ने अम्बड से कहा—श्राविका सुलसा को कुशल समाचार कहना। अम्बड सोचने लगा—वह महान् पुण्यवती है, जिसे भगवान् स्वयं कुशल समाचार प्रेषित कर रहे हैं। सुलसा में ऐसा कौन सा गुण है? मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा लूंगा।

परिव्राजक के वेष में ही अम्बड सुलसा के वहाँ पहुँचा और बोला—आयुष्मती! मुझे आहार-दान दो। तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने कहा—किसको देने में धर्म है, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। अम्बड आकाश में पद्मासन की मुद्रा में स्थित होकर जन-जन के मानस को विस्मित करने लगा। लोगों ने भोजन के लिए उसे निमन्त्रण दिया। उसने किसी का भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और कहा—मैं सुलसा के यहाँ पर ही भोजन ग्रहण करूँगा। लोग हर्ष से विभोर होकर बधाइयाँ देने के लिए पहुँचे। सुलसा ने कहा—मुझे पाखण्डियों से कुछ भी लेना-देना नहीं है। लोगों ने सुलसा की बात अम्बड से कह दी। अम्बड ने कहा—वह विशुद्ध सम्यग्दर्शन की धारिका है, उसके अन्तर्मानस में किंचित् मात्र भी व्यामोह नहीं है। वह स्वयं सुलसा के वहाँ पर गया, सुलसा ने उसका स्वागत किया। उससे वह प्रतिबुद्ध हुआ।

दीघनिकाय के अम्बट्ठसुत्त में अम्बड नाम के एक पण्डित ब्राह्मण का वर्णन है। निशीथचूर्णि पीठिका में प्रसंग है—भगवान् महावीर अम्बड को धर्म में स्थिर करने के लिए राजगृह पधारे थे।[1]

मद्दुक श्रमणोपासक—

राजगृह के गुणशीलक उद्यान के सन्निकट कालोदायी, शैलोदायी आदि अन्यतीर्थी रहते थे। राजगृह में मद्दुक श्रमणोपासक था, जो जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था। भगवान् महावीर के आगमन को सुनकर वह उनको वन्दन करने के लिए जा रहा था। मार्ग में अन्यतीर्थिकों ने पूछा—तुम्हारे धर्माचार्य भगवान् महावीर पंचास्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं, पर उसे कैसे माना जाय?

मद्दुक—वस्तु के कार्य से उसका अस्तित्व जाना और देखा जा सकता है। बिना कार्य के कारण दिखाई नहीं देता।

अन्यतीर्थी—तू कैसा श्रमणोपासक है, जो पंचास्तिकाय को जानता, देखता नहीं; तथापि मानता है।

मद्दुक—पवन बहती है यह सत्य है न?

अन्यतीर्थी—हाँ, बहती है।

मद्दुक—बहती हुई पवन को तुम देखते हो?

अन्यतीर्थी—वह दिखाई नहीं देती।

मद्दुक—पवन में सुगन्ध और दुर्गंध दोनों का अनुभव होता है न? उन सुगन्ध और दुर्गंध वाले पुद्गलों को क्या तुम देखते हो?

अन्यतीर्थी—नहीं देखते।

मद्दुक—अरणि की लकड़ी में अग्नि रही हुई है, क्या उसे देखते हो?

अन्यतीर्थी—नहीं।

मद्दुक—समुद्र के पार नाव, नगर, जंगल आदि रहे हुए पदार्थ हैं, क्या उन्हें तुम देखते हो?

अन्यतीर्थी—नहीं।

मद्दुक—देवलोकों में विविध प्रकार के पदार्थ हैं, क्या उन्हें तुम देखते हो?

अन्यतीर्थी—नहीं।

मद्दुक ने [illegible] हुए कहा—जिन पदार्थों को तुम नहीं देखते हो, यदि [illegible] को नकारोगे तो तुम्हें [illegible] पदार्थों का अभाव हो जायेगा। [illegible] अन्यतीर्थी [illegible] को [illegible] दे सके, वे [illegible] मुँह [illegible] चल दिये।

१ निशीथचूर्णि पीठिका पृष्ठ [illegible]

मद्रुक भगवान् के समवसरण में पहुँचा। भगवान् ने मद्रुक को सम्बोधित कर कहा—तुमने अन्यतीर्थिकों को उचित उत्तर दिया है। यह सुनकर श्रमणोपासक मद्रुक अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने कहा—यह श्रमणोपासक रह करके ही जीवन के अन्त में संथारा कर अरुणाभ विमान में देव बनेगा।

प्रस्तुत कथानक में मद्रुक श्रमणोपासक का गम्भीर ज्ञान उजागर हुआ है। श्रमणोपासक बनना ही पर्याप्त नहीं है, श्रमणोपासकों को तत्त्वों का परिज्ञान होना भी आवश्यक है, जिससे वे अन्य दार्शनिकों के आक्षेपों का परिहार कर सकें। अन्य श्रमणोपासक भी इस दृष्टि से आगे बढ़ें, उन्हें भी प्रेरणा प्राप्त हो, इसलिए भगवान् महावीर ने अपनी भरी सभा में मद्रुक की प्रशंसा कर अन्य को प्रेरणा दी। आधुनिक युग के श्रमणोपासक भी मद्रुक के जीवन से प्रेरणा लें और वे तत्त्वदर्शन का गहन अभ्यास कर जैन धर्म की प्रबल प्रभावना करें।

प्रवचन निह्नव—

चतुर्थ स्कन्ध में भगवान् पार्श्व और महावीर के तीर्थ में होने वाले श्रमणोपासकों की कथाएँ दी गई हैं। वे सभी कथाएँ अपने आप में एक अभिनव प्रेरणा लिए हुए हैं। उसके बाद प्रवचन निह्नवों का उल्लेख है। स्थानांग सूत्र में प्रवचन निह्नव सात बताये हैं—१. जमालि २. तिष्यगुप्त ३. आषाढ़ ४. अश्वमित्र ५. गंग ६. रोहगुप्त और ७. गोष्ठामाहिल। इन सातों ने क्रमशः बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, समुच्छेदिक, द्वैक्रिय, त्रैराशिक और अबद्धिक मत की संस्थापना की थी।

सुदीर्घकालीन परम्परा में विचार-भेद होना अस्वाभाविक नहीं है। जैन परम्परा में भी इस प्रकार विचार-भेद के उल्लेख प्राप्त हैं। जिन श्रमणों ने जैन परम्परा का परित्याग कर अन्य धर्म को स्वीकार कर लिया, उन्हें निह्नव नहीं कहा है। निह्नव वे हैं, जिनका वर्तमान परम्परा के साथ मतभेद हुआ किन्तु उन्होंने किसी अन्य मत को स्वीकार नहीं किया। जैन शासन में रहकर ही किसी एक विषय का अपलाप करने वाले निह्नव की अभिधा से अभिहित किये गये हैं। सप्त निह्नवों में से दो निह्नव भगवान् महावीर को कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् हुए और शेष पाँच भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् हुए।[1] निह्नवों का अस्तित्व काल श्रमण भगवान् महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदहवें वर्ष से निर्वाण के पश्चात् पाँच सौ चौरासी वर्ष तक का है।[2]

जमालि निह्नव—

भगवान् महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती में बहुरतवाद की उत्पत्ति हुई।[3] इस मत के संस्थापक जमालि थे। वे कुण्डपुर के रहने वाले थे। भगवान् महावीर की बड़ी बहन सुदर्शना उनकी माँ थीं और भगवान् महावीर की पुत्री प्रियदर्शना के साथ जमालि का पाणिग्रहण हुआ था। जमालि ने पाँच सौ पुरुषों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की और उनकी पत्नी प्रियदर्शना भी हजार महिलाओं के साथ दीक्षित हुई। जमालि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। विविध प्रकार की वे तपस्यायें करने लगे। एक बार पृथक विहार की उन्होंने भगवान् से अनुमति मांगी किन्तु प्रभु मौन रहे। वे अपने पाँच सौ निर्ग्रन्थों के साथ पृथक विहार करने लगे। विहार करते हुए वे श्रावस्ती पहुँचे। तिन्दुक उद्यान के कोष्ठक चैत्य में विराजे। तप से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था तथा पित्त ज्वर से शरीर जलने लगा। वे बैठने में असमर्थ हो गये। एक दिन तीव्रतम वेदना से पीड़ित होकर उन्होंने श्रमणों को आदेश दिया—बिछौना करो। पितज्वर की वेदना से एक-एक पल उन्हें बहुत ही भारी लग रहा था। उन्होंने पूछा—बिछौना कर लिया है अथवा किया जा रहा है?[4] श्रमणों ने कहा—बिछौना किया नहीं, किया जा रहा है। यह सुनकर जमालि के मन में विचिकित्सा हुई—भगवान् महावीर क्रियमाण को कृत कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष

---

१. णाणुप्पत्तीय दुवे, उप्पण्णा णिव्वुए सेसा। —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८४

२. 'चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णिसया। अट्ठावीसा य दुवे, पंचेव सया उ चोयाला॥ पंचसया चुलसीया····
—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८३, ७८४.

३. चउदस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्सा। तो बहुरयाणदिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना। —आवश्यकभाष्य, गाथा १२५

४. आचार्य मलयगिरि ने घटनाक्रम और सिद्धान्त पक्ष का जो निरूपण किया है। वह भगवती के निरूपण से जरा पृथक है। उनकी दृष्टि से जमाली ने श्रमणों से पूछा—बिछौना किया या नहीं? श्रमणों ने कहा—कर लिया। जमालि ने उठकर देखा कि बिछौना अभी पूरा नहीं किया गया है, वह क्रुद्ध हो उठा। उसने चिन्तन किया—क्रियमाण को कृत कहना मिथ्या है। अर्द्धसंस्तृत संस्तारक असंस्तृत ही है। उसे संस्तृत नहीं माना जा सकता। —देखें, आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०२.

निहार रहा हूं—बिछौना किया जा रहा है, उसे कृत कैसे माना जाये ? तात्कालिक घटना के आधार पर उन्होंने निश्चय किया 'क्रियमाण को कृत नहीं कहा जा सकता'। जो कार्य सम्पन्न हो चुका है उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य की निष्पत्ति अन्तिम क्षणों में होती है, प्रथम, द्वितीय प्रभृति क्षणों में नहीं। उन्होंने अपने शिष्य समुदाय को बुलाकर कहा—भगवान् महावीर जो चलायमान है उसे चलित, जो उदीर्यमान है, उसे उदीरित और जो निर्जीर्यमान है उसे निर्जीर्ण कहते हैं, पर मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि यह धारणा मिथ्या है। बिछौना क्रियमाण है किन्तु कृत नहीं. संस्तीर्यमाण है किन्तु संस्तृत नहीं है।

कितने ही निर्ग्रन्थ श्रमण जमालि के कथन से सहमत हुए तो कितने ही निर्ग्रन्थ श्रमणों को उनका कथन उचित नहीं लगा। स्थविर निर्ग्रन्थों ने जमालि को समझाने का भी उपक्रम किया. और जब देखा कि वे किसी भी स्थिति में अपनी मिथ्या धारणा को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं तो वे जमालि को छोड़कर भगवान् महावीर की शरण में पहुंच गये।

महासती प्रियदर्शना श्रावस्ती में ही ढंक कुम्भकार के यहां ठहरी हुई थी। जब वह जमालि के दर्शनार्थ आई तो जमालि ने अपनी सारी बात उससे कही। अनुराग के कारण प्रियदर्शना को भी जमालि की बात सही प्रतीत हुई। उसने अन्य साध्वियों को भी जमालि का सिद्धान्त समझाया। प्रियदर्शना ने ढंक कुम्हार को भी जमालि के सिद्धान्त से परिचित कराया। ढंक ने कहा—जमालि वाला सिद्धान्त मुझे यथार्थ नहीं लगता; सर्वज्ञ. सर्वदर्शी प्रभु महावीर की वाणी सत्य है।

एक बार प्रियदर्शना स्वाध्याय में रत थी। ढंक ने एक अंगारा उन पर फेंका. उनकी संघाटी [साड़ी] का एक कोना जल गया। साध्वी ने कहा—ढंक ! तुमने मेरी संघाटी क्यों जलायी ? उसने कहा—संघाटी कहां जली, यह तो जल रही है। ढंक ने क्रियमाण कृत का रहस्य समझाया। प्रियदर्शना को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। उसने जमालि को समझाने का प्रयत्न किया। जब जमालि न समझा तो वह हजार साध्वियों के साथ भगवान् महावीर के संघ में चली गई।

जमालि एक बार चम्पा नगरी गये, वहीं पर भगवान् महावीर भी विराज रहे थे। वे भगवान् के सन्निकट पहुंचे और कहा—आपके अन्य शिष्य असर्वज्ञ दशा में ही आप से पृथक हुए हैं, पर मैं सर्वज्ञ होकर आपसे अलग हुआ हूं। प्रश्नोत्तर भी हुए किन्तु जमालि अपनी धारणा पर ही अडिग रहे। 'क्रियमाण कृत नहीं है,' इस सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। वे महावीर के संघ में सम्मिलित नहीं हुए।

बहुरतवादी द्रव्य की निष्पत्ति में दीर्घकाल की अपेक्षा स्वीकार करते हैं, किन्तु क्रियमाण को कृत नहीं मानते। कार्य निष्पन्न होने पर ही उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

जीवप्रादेशिकवाद के संस्थापक : "तिष्यगुप्त"—

भगवान् महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के सोलह वर्ष पश्चात् ऋषभपुर में जीव प्रादेशिकवाद की उत्पत्ति हुई। [illegible] का प्राचीन नाम ऋषभपुर था। एक बार आचार्य वसु राजगृह आये। वे चौदह पूर्व के ज्ञाता थे। उनके शिष्य तिष्यगुप्त थे। आत्मप्रवाद पूर्व का अध्ययन कर रहे थे। उसमें भगवान् महावीर और गौतम का संवाद था। गौतम ने कहा—भगवन् ! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्—नहीं ! दो, तीन यावत् संख्यात प्रदेश को भी जीव नहीं कह सकते [illegible] जीव नहीं कहा जा सकता। जीव अखण्ड चेतन द्रव्य है।

प्रदान की है। आपश्री अन्तिम प्रदेश का ही वास्तविक मानते हैं, दूसरे प्रदेशों को नहीं, इसलिए मैंने प्रत्येक पदार्थ का अन्तिम भाग आपको को दिया है।

तिष्यगुप्त को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। मित्रश्री ने अच्छी तरह से भिक्षा बहराई। तिष्यगुप्त पुनः भगवान् महावीर के शासन में सम्मिलित हो गया।[1]

जीव के असंख्य प्रदेश होते हैं। किन्तु जीवप्रादेशिकवाद के मतानुसार जीव के चरम प्रदेश को ही जीव माना जाता था, शेष प्रदेशों को नहीं।

अव्यक्तिकवाद के प्ररूपक : "आचार्य आषाढ़"—

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ चौदह वर्ष पश्चात् श्वेताम्बिका नगरी में 'अव्यक्तवाद' की उत्पत्ति हुई।[2] इस वाद के प्रवर्तक आचार्य आषाढ़ के शिष्य थे। एक बार श्वेताम्बिका नगरी के पोलास उद्यान में वे अपने शिष्यों को योगाभ्यास करा रहे थे। एकाएक आचार्य आषाढ़ को हृदयशूल उत्पन्न हुआ और वे उसी क्षण मर गये। सौधर्म कल्प में देव बने। अवधिज्ञान से अपने मृत कलेवर को और योग-साधना में लीन शिष्यों को देखा। योग-साधना में शिष्य इतने तल्लीन थे कि गुरु के मरने का भान भी उन्हें नहीं था। देव रूप आचार्य सोचने लगे—मेरे बिना शिष्यों को कौन वाचना देगा? अतः उन्होंने पुनः अपने मृत शरीर में प्रवेश किया। जब शिष्यों की योगसाधना का क्रम पूरा हो गया तो आचार्य आषाढ़ ने देव रूप में प्रकट होकर कहा—श्रमणो! मुझे क्षमा करना। मैं असंयती था तथापि संयतियों से नमस्कार करवाया। मृत्यु की सारी घटना उन्होंने शिष्यों के सामने रख दी। श्रमणों को यह सन्देह हो गया कि कौन श्रमण है और कौन देव है? यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, इसलिए सभी अव्यक्त है। स्थविरों ने समझाने का प्रयास किया, पर वे नहीं समझे।

एक बार वे विहार करते हुए राजगृह आये। वहाँ पर मौर्यवंशीय राजा बलभद्र श्रमणोपासक था। उसने उन शिष्यों के सम्बन्ध में सुन रखा था। उन्हें प्रतिबोध देने के लिए अपने चार व्यक्तियों को कहा—उन श्रमणों को यहाँ पर बुलाकर लाओ। जब श्रमण वहाँ पहुँचे तो राजा ने कहा—इन्हें कोड़े लगाओ। राजा के आदेश से कोड़े लगाये गये। उन श्रमणों ने कहा—हम तो तुम्हें श्रावक समझकर आये थे, पर तुम तो हमें पिटवा रहे हो। राजा ने कड़क कर कहा—तुम तस्कर हो या गुप्तचर हो या अन्य कुछ हो, यह कौन जानता है? उन श्रमणों ने कहा—हम तो साधु हैं। राजा ने कहा—तुम साधु हो या चारक हो, यह निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है? मैं श्रावक हूँ या नहीं हूँ, यह भी निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है?

श्रमणों को अपनी भूल का भान हुआ। उन्होंने अपने अज्ञान पर खेद जाहिर किया। राजा ने कहा—मैंने आपको प्रतिबोध देने हेतु ही यह उपक्रम किया था, अतः आप मुझे क्षमा करें। अव्यक्तवाद का यह अभिमत था कि सभी कुछ अनिश्चित है, अवक्तव्य है। निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। यह पूर्ण स्पष्ट है कि अव्यक्तवाद के प्रवर्तक आचार्य आषाढ़ नहीं थे। आचार्य आषाढ़ का देव रूप इस वाद का निमित्त बना था, इसीलिए वे इस वाद के प्रवर्तक रूप में विश्रुत हुए। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आचार्य आषाढ़ के शिष्यों ने अव्यक्तवाद का प्रचलन किया। जिस समय प्रस्तुत घटना या प्रस्तुत प्रसंग उट्टंकित किया गया, उस समय उन शिष्यों का नाम स्मरण न होने से सांकेतिक रूप में अभेदोपचार की दृष्टि से आचार्य आषाढ़ का नाम दिया गया। आचार्य अभयदेव का अभिमत है—आचार्य आषाढ़ अव्यक्त मत की संस्थापना करने वाले श्रमणों के आचार्य थे, इसीलिए वे अव्यक्तवाद के आचार्य के रूप में विश्रुत हुए।[3]

समुच्छेदवाद के प्ररूपक : "आचार्य अश्वमित्र"—

भगवान महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ बीस वर्ष पश्चात् मिथिलापुरी में 'समुच्छेदवाद' की उत्पत्ति हुई।[4] इसके प्रवर्तक आचार्य अश्वमित्र थे। एक बार मिथिला नगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य में आचार्य महागिरि अवस्थित थे। उनके शिष्य का नाम कौंडिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। दशवें अनुप्रवाद [विद्यानुप्रवाद] पूर्व के नैपुणिक वस्तु का अध्ययन चल रहा था। उसमें छिन्नछेद नय की दृष्टि से यह आलापक था, कि प्रथम समय में समुत्पन्न सभी नारक विच्छिन्न हो जायेंगे। द्वितीय-तृतीय आदि

---

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५, ४०६.

२. चउदस दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
अव्वत्तगाण दिट्ठी सेअविआए समुप्पन्ना॥ —आवश्यकभाष्य, गाथा १२६.

३. सोऽप्यव्यक्तमतधर्माचार्यो, न चायं तन्मतप्ररूपकत्वेन किन्तु प्रागवस्थायामिति। —स्थानांगवृत्ति, पत्र ३९१.

४. वीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
सामुच्छेइअदिट्ठी, मिहिलपुरीए समुप्पन्ना॥ —आवश्यकभाष्य, गाथा १३१.

समय में उत्पन्न नैरयिक भी विच्छिन्न हो जायेंगे। इसी तरह सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे। इस प्रकार पर्यायवाद के प्रकरण को श्रवण कर अश्वमित्र का मन शंकित हुआ। वह चिन्तन करने लगा—वर्तमान समय में समुत्पन्न सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत और दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा? उत्पन्न होने के पश्चात् सब की मृत्यु हो जायेगी।

महागिरि ने कहा—वत्स! ऐसा नहीं है। यह जो कथन किया गया है, एक नय की अपेक्षा से है, सर्व नयों की अपेक्षा से नहीं। निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वनय सापेक्ष है, इसीलिए शंका करना उचित नहीं। वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, पर एक पर्याय के नष्ट होने पर वस्तु नष्ट नहीं होती। आचार्य के समझाने पर भी जब वह नहीं समझा तो उन्होंने उसे संघ से पृथक् कर दिया।

एक बार अश्वमित्र कम्पिलपुर पहुँचा। वहाँ पर 'खण्डरक्षा' नाम श्रावक चुंगी अधिकारी था। उसे अश्वमित्र की विचार-धारा का परिज्ञान था, अतः उसने उसे पकड़ा और पिटाई की। अश्वमित्र ने कहा—मैंने सुना था कि तुम श्रावक हो। श्रावक होकर तुम साधुओं को पीटते हो, क्या यह उचित है?

श्रावक—आपके अभिमतानुसार वे श्रावक भी विच्छिन्न हो गये और जो प्रव्रजित श्रमण है वे भी विच्छिन्न हो गये। न हम श्रावक रहे और न आप साधु! लगता है आप चोर हैं।

अश्वमित्र समझ गया, उसे अपनी भूल का परिज्ञान हो गया। वह प्रतिबुद्ध होकर पुनः भगवान् महावीर के संघ में सम्मिलित हो गया।

समुच्छेदवादी प्रत्येक पदार्थ का सम्पूर्ण विनाश मानते थे। वे एकान्त समुच्छेद का निरूपण करने के कारण निह्नव कहलाये।[1]

द्विक्रियावाद के प्रवर्तक : "आचार्य गंग"—

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ अट्ठाईस वर्ष पश्चात् उल्लूकातीर नगर में 'द्विक्रियावाद' की उत्पत्ति हुई।[2] इसके प्रवर्तक आचार्य गंग थे। उल्लूका नदी के एक तट पर खेड़ा बसा हुआ था तो दूसरे तट पर उल्लूकातीर नामक नगर था। वहाँ पर आर्य महागिरि के शिष्य आर्य धनगुप्त थे। उनके शिष्य का नाम गंग था। जो खेड़े में ठहरा हुआ था, वह आचार्य को वन्दन करने के लिए चला। मार्ग में उल्लूका नदी थी। पैरों में पानी की ठण्डक का अनुभव हो रहा था तो सिर चिलचिलाती धूप से गरम हो रहा था। वह सोचने लगा—आगमों में वर्णन है—एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो क्रियाओं का नहीं। किन्तु मुझे दोनों क्रियाओं का साथ में वेदन हो रहा है। वह आचार्य देव के पास पहुँचा और अपनी बात कही। आचार्य ने कहा—वत्स! एक समय में एक क्रिया का वेदन होता है। मन का क्रम बहुत ही सूक्ष्म है। इसीलिए हमें उसकी पृथक्ता का अनुभव नहीं होता। विविध प्रकार से समझाने पर भी गंग नहीं माना तो आचार्य ने उसे संघ से पृथक् कर दिया। आचार्य गंग विचरण करता हुआ राजगृह पहुँचा। राजगृह में 'महातपतीरप्रभ' नमक एक झरना था। वहाँ 'मणिनाग' नामक नाग का चैत्य था। आचार्य गंग वहीं पर ठहरे। धर्म श्रवणार्थ परिषद उपस्थित हुई। आचार्य ने द्विक्रियावाद का अपने प्रवचन में समर्थन किया। मणिनाग ने गंग को समझाने के लिए कोई तर्क नहीं दिया। इसलिए वह पूर्वकथित अव्यक्तवाद, समुच्छेदवाद आदि के समान द्विक्रियावाद को किसी प्रबल तर्क द्वारा परास्त नहीं कर पाया। तब मणिनाग ने परिषद् को सम्बोधित करके कहा—यह कुशिष्य है क्योंकि यहाँ पर एक बार भगवान् महावीर ने स्पष्ट शब्दों मे कहा था—एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है। तो क्या यह प्रभु महावीर से अधिक ज्ञानी है? तू अपनी विपरीत प्ररूपणा का परित्याग कर! तभी तेरा कल्याण होगा। मणिनाग की बात को सुनकर गंग घबराया। अपने गुरु के सन्निकट आकर प्रायश्चित्त लिया तथा वे भगवान् महावीर के संघ में सम्मिलित हो गये।[3]

द्विक्रियावादी एक ही समय में दो क्रियाओं का अनुवेदन मानते थे।

त्रैराशिकवाद के प्रवर्तक : "आचार्य रोहगुप्त"—

श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के पाँच सौ चोमालीस वर्ष बाद अन्तरञ्जिका नगरी में 'त्रैराशिक' मत का प्रवर्तन

---

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०८, ४०९.

२. अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १३३.

३. (क) आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ४०९, ४१०.

(ख) मणिनागेणारद्धो भयोववत्ति पडिवोहितोवोत्तुं। इच्छामो गुरुमूलं गंतूण ततो पडिक्कंतो॥

—विशेष आवश्यकभाष्य, गाथा २४५०.

हुआ।[1] इसके प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त थे जिनका अपर नाम 'षडूलुक' भी था। अन्तरञ्जिका नगरी का राजा 'बलश्री' था। भूतगृह नामक चैत्य था। आचार्य श्रीगुप्त वहां पर ठहरे हुए थे। रोहगुप्त उनका संसारपक्षीय भाणेज था। वह एक बार आचार्य को वन्दन करने के लिए जा रहा था। उसे एक परिव्राजक मिला, जिसका नाम 'पोट्टशाल' था। उसने अपना पेट बांध रखा था और उसके हाथ में जम्बूवृक्ष की टहनी थी। उसने कहा—कहीं ज्ञान से पेट न फट जाय, इसीलिए मैंने इसे बांध रखा है। जम्बूद्वीप में मेरा कोई भी प्रतिवाद करने वाला नहीं है। अतः जम्बूवृक्ष की शाखा हाथ में घुमा रहा हूं। सभी धार्मिकों को मैं चुनौती देता हूं कि वे मुझे पराजित करें पर आज दिन तक किसी ने भी मेरी चुनौती को स्वीकार नहीं किया है। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया और आचार्य के पास पहुंचा। आचार्य से निवेदन किया—मैंने पोट्टशाल की चुनौती को स्वीकार किया है। आचार्य ने कहा—वत्स ! तेने बिना सोचे-समझे ही यह स्वीकृति दी है क्योंकि पोट्टशाल परिव्राजक वृश्चिक विद्या, सर्पविद्या, मूषकविद्या, मृगीविद्या, वराहीविद्या, काकविद्या, पोताकीविद्या इन सात विद्याओं में पारंगत है। इसीलिए वह तेरे से अधिक बलवान है।

रोहगुप्त भय से कांप उठा—भगवन् ! अब मैं क्या करूं ? क्या यहां से अन्यत्र भागकर चला जाऊं ?

आचार्य ने कहा—अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। मैं तुझे इन सातों विद्याओं की प्रतिपक्षी विद्या बता देता हूं। रोहगुप्त को मायूरी, नाकुली, बिडाली, व्याघ्री, सिंही, उलूकी और उलावकी ये सात विद्यायें सिखाईं। साथ ही रजोहरण को अभिमन्त्रित कर कहा—तू इन सात विद्याओं से उसको पराजित कर सकेगा। यदि इन विद्याओं के अतिरिक्त अन्य किसी विद्या की आवश्यकता हो तो रजोहरण को घुमाना, जिससे कोई भी शक्ति तुझे पराजित नहीं कर सके।

गुरुदेव के आशीर्वाद को लेकर रोहगुप्त राज-सभा में पहुंचा। पोट्टशाल भी उधर से आया। पोट्टशाल ने अपने पक्ष की संस्थापना करते हुए कहा—राशि दो हैं—जीव राशि और अजीव राशि। रोहगुप्त ने कहा—राशि तीन हैं—जीव, अजीव और नोजीव। घट-पट आदि अजीव हैं, मनुष्य, तिर्यंच, नारक आदि जीव हैं, छिपकली की कटी हुई पूंछ नोजीव है।

पोट्टशाल को विविध युक्तियों से उसने पराजित कर दिया।

रोहगुप्त से पराजित होकर पोट्टशाल अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, उसने विद्याओं का प्रयोग किया। प्रतिपक्षी विद्याओं से उसकी सारी विद्याएँ विफल हो गईं। अन्त में परिव्राजक ने गर्दभीविद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने आचार्य द्वारा दिये गये अभिमंत्रित रजोहरण से उस विद्या को भी निष्फल कर दिया। सभी सभासदों ने पोट्टशाल परिव्राजक को पराजित घोषित कर दिया।

विजय प्राप्त कर रोहगुप्त आचार्य के पास आया और सम्पूर्ण वृत्त से उन्हें परिचित किया। आचार्य ने उपालम्भ देते हुए कहा—तेने असत्य प्ररूपणा की है। राशि तीन नहीं, दो ही हैं। अभी भी समय है। राजसभा में जाकर अपनी भूल स्वीकार करो। पर रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसे तो अपनी प्रज्ञा पर अहंकार था। आचार्य ने विविध रूपकों के द्वारा उसे समझाया, पर जब वह बिलकुल ही अपनी मिथ्या बात को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ तो आचार्य को लगा—यह स्वयं तो भ्रष्ट हुआ ही है, दूसरों को भी भ्रष्ट करेगा। इसलिए राज-सभा में जाकर मैं इसका निग्रह करूं। आचार्य राजसभा में पहुँचे और राजा बलश्री से कहा—मेरे शिष्य रोहगुप्त ने विपरीत तथ्य की स्थापना की है। हम जैनी दो ही राशि मानते हैं। पर वह अहंकार से ग्रसित होकर इस सत्य को स्वीकार नहीं कर रहा है। आप उसे राजसभा में बुलायें। मैं उससे चर्चा करूंगा। राजा ने रोहगुप्त को राज-सभा में बुलाया। छह महीने तक चर्चा चलती रही। राजा बलश्री भी परेशान हो गया। उसने आचार्य देव से निवेदन किया—भगवन् ! इस चर्चा के कारण राजकार्य में बाधा आ रही है। आचार्य ने कहा—मैं आज ही इसका निग्रह करूंगा। वाद प्रारम्भ हुआ आचार्य ने कहा—यदि तीन राशि वाली बात सही है तो हम कुत्रिकापण चलें। राजा आदि सभी को लेकर आचार्य कुत्रिकापण पहुंचे। वहां अधिकारी देव से कहा—हमें जीव, अजीव और नोजीव के पदार्थ प्रदान करो। उस देव ने जीव, अजीव के पदार्थ लाकर दिये और कहा—नोजीव का पदार्थ इस विश्व में नहीं है। राजा को आचार्य के कथन की सत्यता प्रतीत हुई। आचार्य देव ने एक सौ चौमालीस प्रश्नों के द्वारा रोहगुप्त को निग्रह कर पराजित किया।[2]

---

१. पंच सया चोयाला तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठि उप्पन्ना॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १३५.

२. आवश्यक निर्युक्तिदीपिका में १४४ प्रश्नों का विवरण इस प्रकार प्राप्त है—

वैशेषिक षट् पदार्थ का निरूपण करते हैं—१. द्रव्य २. गुण ३. कर्म ४. सामान्य ५. विशेष ६. समवाय।

द्रव्य के नौ भेद हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा।

राजा बलश्री ने आचार्य का अत्यधिक सम्मान किया। रोहगुप्त का तिरस्कार हुआ। राजा ने आदेश दिया—मेरे राज्य से चला जा। आचार्य ने उसे संघ से पृथक् कर दिया। रोहगुप्त अपने मत का प्ररूपण करता रहा। उसके अनेक शिष्यों ने उसके तत्त्व का प्रचार किया जिससे "त्रैराशिक" मत प्रचलित हुआ।

अबद्धिकवाद के प्रवर्तक : "आचार्य गोष्ठामाहिल"—

श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के पाँच सौ चौरासी वर्ष पश्चात् दशपुर नगर में गोष्ठामाहिल ने "अबद्धिक मत" की संस्थापना की।[1]

दशपुर नगर में आर्यरक्षित ब्राह्मणपुत्र था। वह अनेक विद्याओं में पारंगत होकर घर लौटा। माता के द्वारा प्रेरित होकर वे आचार्य तोसलीपुत्र के पास दीक्षा ग्रहण कर दृष्टिवाद का अध्ययन करते हैं। उसके पश्चात् आर्य वज्र से नौ पूर्वों का अध्ययन कर दशवें पूर्व के चौवीस यविक ग्रहण किये। दुर्वलिका पुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल—ये आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे। दुर्वलिका पुष्यमित्र एक बार अर्थ की वाचना प्रदान कर रहे थे। विंध्य उनकी वाचना के पश्चात् उस पर चिन्तन एवं पुनरावृत्ति कर रहा था। विषय था—जीव के साथ कर्मों का बंध तीन प्रकार से होता है—१. स्पृष्ट—कितने ही कर्म जीव-प्रदेशों के साथ स्पर्श करते हैं और स्थिति का परिपाक होने पर वे उनसे अलग हो जाते हैं। उदाहरण के रूप में—दीवाल पर फैंकी गई धूल दीवाल का स्पर्श कर नीचे गिर जाती है। २. स्पृष्टबद्ध—कितने ही कर्म जीव प्रदेशों का स्पर्श कर बद्ध होते हैं और वे कुछ समय के पश्चात् पृथक् हो जाते हैं। दीवाल पर गीली मिट्टी फैंकने पर कितनी ही मिट्टी चिपक जाती है और कितनी ही नीचे गिर पड़ती है। ३. स्पृष्टबद्ध निकाचित—कितने ही कर्म जीवप्रदेशों के साथ गाढ़ रूप से बंध जाते हैं। वे कालान्तर में पृथक् हो जाते हैं।[2]

इस विवेचन को सुनकर गोष्ठामाहिल के मन में यह विचार पैदा हुआ—यदि कर्म को जीव के साथ बद्ध माना जायेगा तो मोक्ष का अभाव हो जायेगा। कर्म जीव के साथ स्पृष्ट होते हैं, बद्ध नहीं, वे कालान्तर में वियुक्त हो जाते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मक रूप से बद्ध नहीं हो सकता। विंध्य ने गोष्ठामाहिल से कहा—जैसा आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र ने मुझे बताया है वैसा ही मैं कह रहा हूँ, पर उसे समझ में नहीं आया।

नौवें पूर्व में प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में वाचना चल रही थी। गोष्ठामाहिल ने सोचा—अपरिमाण प्रत्याख्यान अच्छा है। परिमाण प्रत्याख्यान में वाञ्छा दोष उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति परिमाण प्रत्याख्यान की दृष्टि से पौरुषी, उपवास, आदि विविध प्रकार के तप करता है किन्तु ज्योंही कालमान पूर्ण होता है, उसमें आहार की इच्छा तीव्र हो जाती है। इसलिए वह दोष-युक्त है। गोष्ठामाहिल ने अपने विचार विंध्य को कहे। विंध्य ने उधर ध्यान नहीं दिया तब दुर्वलिका पुष्यमित्र से उसने कहा। दुर्बलिका पुष्यमित्र ने समाधान करते हुए कहा—अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त अनुचित है। अपरिमाण का अर्थ यावत् शक्ति है या भविष्यतकाल है? यदि तुम यावत् शक्ति अर्थ ग्रहण करते हो तो हमारे मत को ही स्वीकार करना है। यदि द्वितीय अर्थ स्वीकार करते हो तो व्यक्ति मरकर देवरूप में उत्पन्न होता है। उसमें सभी व्रतों के भंग का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा। इसीलिए अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त ठीक नहीं है। आचार्य ने गोष्ठामाहिल को विविध प्रकार से समझाया, पर वह अपने आग्रह पर दृढ़ रहा। उसने विभिन्न स्थविरों से यह पूछा, स्थविरों ने भी गोष्ठामाहिल को जिनेश्वर देव की आशातना न करने का संकेत किया। पर गोष्ठामाहिल अपने मत से किंचित् मात्र भी विचलित नहीं हुआ। स्थविरों ने संघ को एकत्रित किया और शासनदेव से कहा—

गुण के सतरह भेद हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

कर्म के पाँच भेद हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, प्रसारण, आकुञ्चन और गमन।

सत्ता के पांच भेद हैं—सत्ता, सामान्य, सामान्य विशेष, विशेष और समवाय।

इन भेदों का योग [९+१७+५+५]=३६ होता है। इनको पृथ्वी, अपृथ्वी, नो पृथ्वी, नो अपृथ्वी—इन विकल्पों से गुणित करने पर ३६×४=१४४ भेद प्राप्त होते हैं।

आचार्य ने इसी प्रकार के १४४ प्रश्नों के द्वारा रोहगुप्त को निरुत्तर कर उसका निग्रह किया।

—आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका पत्र १४५, १४६.

1. पंचसया चूलसीआ तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। अबद्धिगाण दिट्ठि दसपुरनयरे समुप्पन्ना॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १४१.

2. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति पत्र ४१६ में इनके स्थान पर बद्ध, बद्धस्पृष्ट, और बद्धस्पृष्ट निकाचित—ये शब्द दिये गये हैं।

सीमन्धर स्वामी से जाकर पूछो— गोष्ठामाहिल का कथन सत्य है अथवा दुर्बलिका पुष्यमित्र का ? देव ने तीर्थंकर से पूछा—किसका कथन सत्य है ? भगवान् ने कहा—दुर्बलिका पुष्यमित्र का । गोष्ठामाहिल ने देव के कथन की भी उपेक्षा की । आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र ने पुनः विचार करने के लिए कहा, पर वह तैयार नहीं हुआ । तब उसे संघ से पृथक् कर दिया ।[१]

अबद्धिक मतवादियों का मन्तव्य था—कर्म आत्मा का स्पर्श करते हैं पर वे आत्मा के साथ एकीभूत नहीं होते ।

सप्त निह्नवों में जमालि, रोहगुप्त, गोष्ठामाहिल ये तीन अन्त समय तक अलग रहे और शेष चार निह्नव पुनः जैन शासन में सम्मिलित हो गये । स्थानांग सूत्र में सप्त निह्नवों के नाम आदि का निर्देश है, पर वहाँ अन्य इतिवृत्त के सम्बन्ध में सूचन नहीं है । जमालि निह्नव का निरूपण भगवती सूत्र, शतक-९ और उद्देशक-३३ में विस्तार से आया है । पर अन्य निह्नवों के सम्बन्ध में मूल आगम साहित्य में वर्णन नहीं है । आवश्यकनिर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति में अन्य निह्नवों का निरूपण है । हमने प्रबुद्ध पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ पर इनकी चर्चा की है ।

आजीवक तीर्थंकर : गौशालक—

श्रमण भगवान् महावीर के जीवन में गौशालक एक प्रमुख चर्चास्पद व्यक्ति रहा है । भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में उसके जीवन की गाथायें दी गई हैं । आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति और मलयगिरिवृत्ति, महावीरचरियं में उसके जीवन के अनेक प्रसंग हैं । वह प्रारम्भ में भगवान् महावीर का शिष्य बना और बाद में प्रतिस्पर्धी और विद्रोही बना । आजीवक मत का आचार्य बनकर स्वयं को तीर्थंकर भी उसने घोषित किया ।

गौशालक के नाम और व्यवसाय के सम्बन्ध में विभिन्न व्याख्याएँ है । भगवती, उपासकदशांग, आदि आगम-साहित्य में 'गोसाले मंखलिपुत्ते' इस शब्द का प्रयोग हुआ है । गौशालक मंख कर्म करने वाला 'मंखलि' नामक व्यक्ति का पुत्र था । 'मंख' शब्द का अर्थ कहीं पर 'चित्रकार' और कहीं पर 'चित्रविक्रेता' किया है । नवांगी टीकाकर आचार्य अभयदेव ने लिखा है—'चित्रफलकं हस्तेगतं यस्य स तथा'—जो चित्रपट्टक हाथ में रखकर अपनी आजीविका चलाता है । हमारी अपनी दृष्टि से प्रस्तुत अर्थ विशेष संगत है । 'मंख' एक जाति विशेष थी । उस जाति के लोग शिव, ब्रह्मा या अन्य किसी देव का चित्रपट्ट हाथ में रखकर अपनी आजीविका चलाते थे । जिस प्रकार आज भी डाकोत जाति के लोग शनि देव की मूर्ति या चित्र रखकर अपनी आजीविका चलाते हैं ।

बौद्ध साहित्य में भी 'मक्खली गौशाल' को आजीवक नेता कहा है । इस सम्बन्ध में एक कथा है—गौशालक एक दास था । वह स्वामी के आगे तेल का घड़ा लेकर चल रहा था । कुछ दूर जाने पर ढलाऊ चिकनी भूमि आई । मक्खली के स्वामी ने कहा—"तात ! मा खलि, तात ! मा खलि"—अरे स्खलित मत होना, अरे स्खलित मत होना ! किन्तु गौशालक का पैर फिसल गया और तेल भूमि पर गिर पड़ा । मक्खली स्वामी के भय से भागने लगा, पर स्वामी ने भागते हुए का वस्त्र पकड़ लिया । वह वस्त्र छोड़कर नंगा ही भाग गया । इस प्रकार वह नग्न हो गया और लोग उसे 'मंखलि' कहने लगे ।[२]

प्रस्तुत कथा बौद्ध परम्परा में उत्तर कालीन साहित्य में आई है, इसलिए विज्ञों ने उसका अधिक महत्त्व नहीं माना है ।[३]

पाणिनी ने इसे 'मस्करी' शब्द माना है । 'मस्करी' शब्द का सामान्य अर्थ—परिव्राजक किया है ।[४] भाष्यकार पतंजलि ने लिखा है—'मस्करी' वह साधु नहीं है जो हाथ में मस्कर या बाँस की लाठी लेकर चलता है तथापि वह क्या है ? मस्करी वह है—जो उपदेश देता है, कर्म मत करो ! शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है ।[५] पाणिनी और पतंजलि ने गौशाल के नाम का निर्देश नहीं किया है, किन्तु उनका लक्ष्य वही है । 'कर्म मत करो'—यह व्याख्या उस समय प्रचलित हुई जब गौशालक एक धर्माचार्य के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था । जैन आगम व आगमेतर साहित्य में गौशलक को मंखलि का पुत्र तो माना ही है साथ ही उसे गौशाला में उत्पन्न भी माना है । जिसकी पुष्टि पाणिनी 'गौशालायां जातः गोशालः' [४/३/३५] की व्युत्पत्ति इस व्युत्पत्ति नियम से करते हैं । आचार्य बुद्धघोष ने सामञ्ञफलसुत्त की टीका में गौशालक का जन्म 'गौशाला' में हुआ, ऐसा माना है ।[६]

---

१. आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र ४१५-४१८
२. (क) धम्मपद, अट्ठकथा, आचार्य बुद्धघोष १/१४३
 (ख) मज्झिम निकाय—अट्ठकथा १/४२२
३. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ० ४१
४. मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः । —पाणिनी व्याकरण ६/१/१५४
५. न वै मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजकः किं तर्हि ? माकृत कर्माणि माकृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः ॥ —पातञ्जल महाभाष्य ६/१/१५४
६. सुमंगल विलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) पृ० १४३-४४

आधुनिक शोधकर्त्ताओं ने गौशालक और आजीवक मत के सम्बन्ध में नवीन स्थापना करने का प्रयास किया है। पर परिताप है नवीन स्थापना करते समय इतिहास और परम्परा की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जिससे उनकी स्थापना सही स्थापना न होकर मिथ्या स्थापना हो गई। श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार गौशालक के गुरु श्रमण भगवान् महावीर थे।[1] दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से गोशालक भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का एक श्रमण था। वह भगवान् महावीर की परम्परा में आकर गणधर बनना चाहता था, किन्तु जब उसे गणधर पद नहीं मिला तो वह पृथक् होकर श्रावस्ती में आया और अपने आपको 'तीर्थंकर' कहने लगा।[2]

डा० वेणीमाधव बरुवा ने लिखा है—यह तो कहा ही जा सकता है कि जैन और बौद्ध परम्परा में मिलने वाली जानकारी से यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि जैसे—जैन गौशालक को महावीर के दो ढोंगी शिष्यों में से एक शिष्य बताते हैं। प्रत्युत उन जानकारियों से विपरीत यह प्रमाणित होता है—उन दोनों में एक दूसरे का कोई ऋणी है तो वस्तुतः गुरु ही ऋणी है न कि जैनियों के द्वारा माना गया उनका ढोंगी शिष्य।[3] डा० बरुवा आगे लिखते हैं—भगवान् महावीर पहले पार्श्वनाथ की परम्परा में थे, किन्तु एक वर्ष के पश्चात् जब वे अचेलक हुए तब आजीवक पन्थ में चले गये।[4] गौशालक भगवान् महावीर से दो वर्ष पूर्व जिन पद प्राप्त कर चुके थे।[5] डा० बरुवा यह स्वीकार करते हैं कि ये सभी कल्पना के ही महान् प्रयोग कहे जा सकते हैं तथापि इन कल्पनाओं ने गोपालदास जीवाभाई पटेल[6], धर्मानन्द कौशाम्बी आदि को भी प्रभावित किया। इस मान्यता के मूल सर्जक डा० हरमन जैकोबी रहे हैं।[7] उसी का अनुसरण करते हुए डा० वाशम ने अपने महानिबन्ध 'आजीविकों का इतिहास और सिद्धान्त' में विस्तार से प्रकाश डाला है। इस मूल मनोवृत्ति का आधार — किसी भी पाश्चात्य विचारक ने जो कुछ भी लिख दिया है वही सही है, यह भ्रान्त धारणा है। जो भी मूर्धन्य मनीषी गौशालक के सम्बन्ध में लिखते हैं, उनका मूल आधार जैन और बौद्ध ग्रन्थ ही है। उनमें से कितनी ही बातों को सही और कितनी ही बातों को गलत मानना, यह ऐतिहासिक दृष्टि नहीं हो सकती। जो तथ्य जैन साहित्य में दिये गये हैं उन तथ्यों को बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों ने भी मान्य किया है। जहाँ पर उन्होंने आजीवक मत की आलोचना की वहाँ उसकी प्रशंसा के अन्दर उसे बारहवें देवलोक और मोक्षगामी कहा है। जो यह मानते हैं कि गौशालक महावीर का गुरु था, यह बिल्कुल ही निराधार और कपोल कल्पित बात है। गौशालक ने स्वयं यह स्वीकार किया—"गौशालक तुम्हारा शिष्य था, पर मैं वह नहीं हूँ। मैंने गौशालक के शरीर में प्रवेश किया है यह शरीर उस गौशालक का है, पर आत्मा भिन्न है।" इस प्रकार विरोधी प्रमाणों के अभाव में विद्वानों ने जो अर्थशून्य कल्पनाएँ की हैं, वे भ्रम में डालने वाली हैं। आधुनिक विद्वान् इस सम्बन्ध में जागरूक हो रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है।

एक बार गणधर गौतम भिक्षा के लिए श्रावस्ती में गये। उन्होंने नगरी में यह जन-प्रवाद सुना—श्रावस्ती में दो तीर्थंकर विचर रहे हैं—एक श्रमण भगवान् महावीर और दूसरे गौशालक। वे भगवान् के चरणों में पहुँचे और इस विषय मे सत्य-तथ्य जानना चाहा। भगवान् ने गौशालक का पूर्व परिचय दिया—इसके पिता का नाम 'मंखलि' था। माता का नाम 'भद्रा' था। चित्रपट्ट बनाकर आजीविका चलाता था। वह 'गौबहुल' ब्राह्मण की गौशाला में ठहरा हुआ था, वहाँ इसका जन्म हुआ। गौशाला में जन्म होने से इसका नाम 'गौशालक' रखा गया। मेरा द्वितीय वर्षावास राजगृह के तन्तुवायशाला में था। वहीं पर गौशालक भी दूसरा स्थान न मिलने से आकर ठहरा। मैं मासखमण के पारणे के लिए राजगृह के 'विजय गाथापति' के यहाँ पहुँचा। उसने उत्कृष्ट भावना से दान दिया। जिससे पाँच दिव्य प्रकट हुए—वसुधारा की वृष्टि, पाँच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि, ध्वजा और

---

१. भगवती १५वाँ शतक

२. मसयरि पूरणारिसिणो उप्पण्णो पासणाहतित्थम्मि। सिरिवीर समवसरणे अगहियझुणिया नियत्तेण॥
बहिणिग्गएण उत्तं मज्झं एयार सागंधारिस्स। णिग्गइ झुणीण अरुहो णिग्गय विस्सास सीसस्स॥
ण मुणइ जिणकहिय सुयं संपइदिक्खाय गहिय गोयमओ। विप्पो वेयब्भासी तम्हा मोक्खं ण णाणाओ॥
—भावसंग्रह गा. १७६-१७८

३ The Ajivikas, J. D. L. Vol. II, 1920, PP. 17-18

४ The Ajivikas, J. D. L. Vol. II, 1920, PP. 18.

५ The Ajivikas, J. D. L Vol. II, 1920, P. 21.

६ महावीर स्वामीनो संयमधर्म [सूत्रकृतांग का गुजराती अनुवाद, पृष्ठ ३५.]

७ S. B. E. Vol. XLV, Introduction PP. XXIX to XXXII.

वस्त्र की वृष्टि, देव दुन्दुभि और आकाश में 'अहोदानं—अहोदानं' की दिव्य ध्वनि। जन-मानस से यह बात सुनकर गौशालक वहाँ पहुँचा और वसुधारा आदि देखकर प्रभावित हुआ। मेरे को नमस्कार कर 'मैं धर्म शिष्य हूँ और आप मेरे धर्माचार्य हैं' इस प्रकार बोला। मैंने दूसरे मासखमण का पारणा 'आनन्द' गाथापति के वहां किया और तीसरे मासखमण,का पारणा 'सुनन्द' गाथापति के वहाँ किया। चतुर्थ मासखमण का पारणा कोल्लाक सन्निवेश में 'बहुल' ब्राह्मण के यहाँ हुआ। गौशालक ने मुझे तन्तुवायशाला में न देखा तो मेरी अन्वेषणा करता हुआ कोल्लाक सन्निवेश में आया। मैं उस समय मनोज्ञ भूमि में ध्यानस्थ था। गौशालक ने मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और 'मैं आपका शिष्य हूँ' इस प्रकार बोला। टीकाकार आचार्य अभयदेव ने 'अभ्युपगच्छामि' का अर्थ 'मैंने गौशालक को शिष्यत्व रूप में स्वीकार किया'—ऐसा किया है।[1] अब वह मेरे साथ ही रहने लगा। एक बार मैं सिद्धार्थ ग्राम से कूर्मग्राम जा रहा था। रास्ते में एक तिल का पौधा था। उसने मेरे से पूछा—तिल का पौधा निष्पन्न होगा या नहीं ? मैंने कहा—'होगा। ये सात तिल पुष्प के जीव इसी पौधे की एक फली में सात तिल रूप में उत्पन्न होंगे।' मेरी बात पर विश्वास न होने से पीछे रुककर उस पौधे को मिट्टी सहित उखाड़कर एक ओर फेंक दिया। उसी समय वर्षा हुई और वह पौधा जमीन में स्थिर हो गया। मेरे कथनानुसार वह पौधा पुनः सात तिलों के रूप में उत्पन्न हुआ।

एक बार गौशालक मेरे साथ कूर्मग्राम नगर आया। कूर्मग्राम के बाहर 'वैश्यायन' नामक बालतपस्वी छट्ठ-छट्ठ तप कर रहा था। दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य के सन्मुख खड़े होकर आतापना ले रहा था। उसके सिर से गर्मी के कारण जूँए नीचे गिर रही थीं और वह पुनः उठा-उठाकर उन्हें सिर में रख रहा था। गौशालक ने पीछे रहकर उससे कहा—तुम तत्त्वज्ञ मुनि हो या जूँओं के शय्यातर हो ? तीन बार कहने पर वैश्यायन कुपित हुआ और तेजो समुद्घात कर तेजोलेश्या बाहर निकाली तथा गौशालक पर प्रक्षिप्त की। गौशालक पर अनुकम्पा कर मैंने तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने के लिए शीतललेश्या निकाली। वैश्यायन ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाना यह आपका शिष्य है। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि यह आपका शिष्य है तो मैं यह नहीं करता। गौशालक तेजोलेश्या को देखकर प्रभावित हुआ।

गौशालक ने मेरे से पूछा—संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है ? मैंने कहा—'नख सहित बन्द की हुई मुट्ठी में जितने उड़द के बाकुले आवें उतने मात्र से तथा चुल्लु भर पानी से छट्ठ-छट्ठ की तपस्या के साथ दोनों हाथ ऊँचे रखकर आतापना लेने वाले पुरुष को छह माह के पश्चात् तेजोलेश्या प्राप्त होती है।

एक बार वह मेरे साथ पुनः कूर्मग्राम से सिद्धार्थ ग्राम की ओर जा रहा था, तब उसने कहा—आपने 'तिल पुष्प के जीव सात तिल के रूप में उत्पन्न होंगे'—यह कहा था सो वह बात पर मिथ्या हो गई। मैंने पौधे की ओर संकेत किया। उसे मेरी बात पर पर विश्वास नहीं था। अतः तिल-फली को तोडकर सात तिल बाहर निकाले और उसे यह विश्वास हुआ कि 'सभी जीव मर कर पुनः उसी योनि में पैदा होते हैं।' गौशालक मेरे से अलग हुआ और उसने तेजोलेश्या की साधना की। इसीलिए गौशालक जिन नहीं किन्तु जिन-प्रलापी है। यह बात श्रावस्ती में प्रसारित हो गई। मंखलिपुत्र गौशालक ने भी यह बात सुनी। उसे बहुत क्रोध आया। वह आतापना भूमि से कुम्भकारापण में आया और आजीवक संघ के साथ अत्यन्त अमर्ष से बैठा।

भगवान् महावीर के शिष्य आनन्द भिक्षा के लिए श्रावस्ती में गये हुए थे। वे भिक्षा लेकर लौट रहे थे। गौशालक ने आनन्द को अपने पास बुलाकर कहा—तुम जरा मेरी बात सुनकर जाओ। कुछ व्यापारी भयंकर अटवी में पहुँचे। वे अपने साथ जो पानी लाये थे, वह समाप्त हो गया। जंगल में आगे पहुँचने पर एक विशाल वल्मिक दिखाई दिया। उसमें चार शिखर थे। उन्होंने एक शिखर को तोड़ा। उसमें से बढ़िया मधुर जल प्राप्त हुआ। सभी तृप्त हो गये। दूसरा शिखर तोड़ा, उसमें से स्वर्ण-राशि प्राप्त हुई। उनकी लोभवृत्ति प्रबल हुई। उन्होंने तीसरा शिखर तोड़ा, उसमें से मणि-रत्न निकले। उन व्यापारियों ने सोचा—चौथा शिखर तोड़ने पर वज्र रत्न निकलेंगे। चतुर व्यापारी ने शिखर को तोड़ने का निषेध किया, किन्तु दूसरे व्यापारियों ने उसके कथन की उपेक्षा की। ज्यों ही शिखर तोड़ा, उसमें से भयंकर दृष्टिविष सर्प निकला। सारे व्यापारी जलकर भस्म हो गये। सर्प ने केवल एक व्यापारी को बचाया और उसे सम्मान सहित घर पहुँचा दिया। इसी तरह हे आनन्द ! मेरे सम्बन्ध में महावीर कुछ भी कहेंगे तो मैं उन्हें अपने तपस्तेज से भस्म कर दूंगा। उस हितैषी व्यक्ति की तरह तुझे बचा लूंगा। आनन्द अत्यधिक भयभीत हुआ। वह भगवान् महावीर के पास आया और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। क्या भगवान् ! वह भस्म कर सकता है ? भगवान् ने कहा—वह भस्म कर सकता है किन्तु अरिहन्त प्रभु को नहीं। वह जला तो नहीं सकता किन्तु परिताप अवश्य दे सकता है। अतः तुम जाओ और गौतम आदि निर्ग्रन्थों को कह दो कि गौशालक इधर आ रहा है, उसमें बहुत ही दुर्भावना है, इसीलिए उसकी बातों का कोई भी जवाब नहीं दें। आनन्द ने सभी मुनिवरों को सूचना दे दी।

---

१ भगवती सूत्र—पं० श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र"

— अ० भा० सा० जैन संस्कृति रक्षक संघ—सैलाना, शतक १५वां, पृ० २३८३.

गौशालक वहाँ आ पहुँचा। उसने कहा—अपका शिष्य गौशालक मर चुका है, मैं दूसरा हूँ। भगवान् ने कहा—अन्य न होते हुए भी तुम अपने को अन्य बता रहे हो, यह योग्य नहीं है। गौशालक ने क्रुद्ध होकर कहा—तू आज ही नष्ट हो जायेगा, तेरा जीवन नहीं रहेगा। भगवान् के सारे शिष्य चुप रहे। सर्वानुभूति अणगार, जिनका भगवान् पर अत्यधिक अनुराग था, उन्होंने कहा—भगवान् महावीर ने आपको शिक्षा और दीक्षा दी। उन धर्माचार्य के प्रति इस प्रकार के वचन कह रहे हो? यह सुनते ही गौशालक का चेहरा तमतमा उठा, उसने सर्वानुभूति अणगार को तेजोलेश्या के एक ही प्रहार से जलाकर भस्म कर दिया। वह पुनः प्रलाप करने लगा। सुनक्षत्र अणगार से भी न रहा गया, उन्होंने भी गौशालक को समझाने का प्रयत्न किया। गौशालक ने सुनक्षत्र अणगार को भी जलाकर भस्म कर दिया।

भगवान् महावीर ने गौशालक को समझाना चाहा। गौशालक का क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह सात-आठ कदम पीछे हटा। भगवान् महावीर को भस्म करने के लिए उसने तेजोलेश्या का प्रहार किया। पर प्रभु के अमित तेज से तेजोलेश्या उनको जला न सकी, वह प्रदक्षिणा कर पुनः गौशालक के शरीर को जलाती हुई उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई। गौशालक ने भगवान् से कहा—काश्यप! मेरी तेजोलेश्या से पराभूत व पीड़ित होकर तू छह मास की अवधि में मृत्यु को प्राप्त होगा। महावीर ने कहा—मैं तो सोलह वर्ष तक तीर्थंकर-पर्याय में विचरण करूँगा और तू अपनी तेजोलेश्या से पीड़ित होकर सात रात्रि के अन्दर हीं छद्मस्थ अवस्था में काल-धर्म को प्राप्त होगा।

अब गौशालक का तेज नष्ट हो चुका था। भगवान् महावीर के आदेश से स्थविरों ने विविध प्रकार के प्रश्न किये। गौशालक उत्तर नहीं दे सका। अन्य अनेक आजीवक स्थविर भगवान् महावीर के सघ मे सम्मिलित हो गये। सारे नगर में चर्चा फैल गई कि किसका कथन सत्य है और किसका असत्य? लब्ध प्रतिष्ठित लोगों ने कहा—भगवान् महावीर का कथन सत्य है।

गौशालक के शरीर में भयंकर वेदना हुई। विक्षिप्त सा इधर-उधर निश्वास छोड़ता हुआ वह कुम्भकारापण में पहुँचा। वह अपने दोष को छिपाने के लिए चार पानक पेय और चार अपानक अपेय प्ररूपित कर रहा था। वे चार पानक ये हैं—१. गाय के पृष्ठ भाग से गिरा हुआ २. हाथ से उलीचा हुआ ३. सूर्य-ताप से तपा हुआ ४. शिलाओं से गिरा हुआ। चार अपानक ये हैं, जो पीने के लिए ग्राह्य नहीं है किन्तु दाह आदि के उपशमन के लिए व्यवहार योग्य हैं जैसे १. स्थाल पानी से आर्द्र हुए ठण्डे छोटे-बड़े वर्तन—इन्हें हाथ से स्पर्श करे, किन्तु पानी न पीए। २. त्वचा पानी—आम, गुठली और बैर आदि कच्चे फल मुँह में चबाना परन्तु उसका रस नहीं पीना। ३. फलों का पानी—उड़द, मूँग, मटर आदि की कच्ची फलियाँ मुँह में लेकर चबाना परन्तु उसका रस नहीं पीना। ४. शुद्ध पानी।

श्रावस्ती में 'अयंपुल' आजीवकोपासक था। उसे 'हल्ला' वनस्पति के आकार के सम्बन्ध में जिज्ञासा हुई। वह रात्रि में ही गौशालक के पास पहुँचा। उस समय गौशालक मद्यपान किये हुए हँस रहा था और नाच रहा था। वह लज्जित होकर पुनः लौटने लगा। गौशालक ने स्थविरों को भेजकर उसे बुलाया और कहा—तुम मेरे पास आये हो, पर मेरी यह स्थिति देखकर लौटना चाहते थे किन्तु मेरे हाथ में कच्चा आम नहीं, आम की छाल है। निर्वाण के समय इसका पीना आवश्यक है। निर्वाण के समय नृत्य, गीत आदि भी आवश्यक हैं, अतः तुम भी वीणा वजाओ।

गौशालक को लगा कि अब मैं लम्बे समय का मेहमान नहीं हूँ, अतः उसने अपने स्थविरों को बुलाकर कहा—यदि मेरी मृत्यु आ जाय तो मेरे शरीर को सुगन्धित पानी से नहलाना, गेरुक वस्त्र से शरीर को पोंछना, गोशीर्ष चन्दन का लेप करना, बहुमूल्य श्वेत वस्त्र धारण करवाना और सभी प्रकार के अलंकारों से विभूपित करना! एक हजार व्यक्ति उठा सकें, ऐसी शिविका में बैठाकर यह उद्घोषणा करना—चौबीसवें तीर्थंकर मंखलिपुत्र गौशालक सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये हैं।

सातवीं रात्रि व्यतीत हो रही थी। उसका मिथ्यात्व नष्ट हुआ और सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई। गौशालक को अपने दुष्कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। मैं जिन नहीं हूँ किन्तु जिन होने का मैंने दावा किया। अपने धर्माचार्य से द्वेष किया और श्रमणों की हत्या की। यह मैंने भयंकर भूल की। उसी समय स्थविरों को बुलाकर गौशालक ने कहा—मेरी भयंकर भूलें हुई हैं, इसलिए मेरी मृत्यु के बाद मेरे बाँये पैर में रस्सी बाँधना और मेरे मुँह में तीन बार थूकना। श्रावस्ती के राजमार्गों पर से मुझे ले जाते हुए यह उद्घोषणा करना—गौशालक जिन नहीं, भगवान् महावीर ही जिन हैं। मरे हुए कुत्ते की तरह मुझे घसीट कर ले जाना। उसने स्थविरों का शपथ दिलाई और उसी रात्रि में गौशालक की मृत्यु हो गई।

स्थविरों ने सोचा—यदि हम गौशालक के कथनानुसार करेंगे तो हमारी और हमारे धर्माचार्य की प्रतिष्ठा धूल में मिल

जागेगी । यदि उसके कथन की उपेक्षा करेंगे तो गुरु-आज्ञा का भंग होगा । यह सोचकर उन्होंने कुम्भकारापण को बन्द कर आंगन में श्रावस्ती का चित्र बनाया तथा गोशालक के कथनानुसार सारा कार्य किया । उसके बाद गोशालक के प्रथम आदेश के अनुसार उसकी अर्चा की और धूमधाम से उसकी शवयात्रा निकाली तथा अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया ।

इस तरह हे गौतम ! मेरा कुशिष्य गौशालक जीवन के अन्तिम क्षणों में प्रशस्त भावना के कारण बारहवें देवलोक अच्युत कल्प में देव बना । वहाँ से च्युत होकर अनेक भवों में परिभ्रमण करते हुए इसे सम्यक्त्व की उपलब्धि होगी और दृढ़प्रतिज्ञ केवली बनकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा ।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक में गोशालक का व्यवस्थित जीवन-चरित्र दिया गया है ।

अनुसंधानकर्ताओं को इसमें विपुल सामग्री प्राप्त होगी ।

गौशालक निह्नव नहीं था, मिथ्यात्वी था । भगवती के अतिरिक्त आगम के व्याख्या साहित्य में उसके अमानवीय कृत्यों की लम्बी सूची दी गई है । गोशालक ने अपने लौकिक प्रभाव से जन-मानस को आकर्षित किया था । कितने ही महानुभाव यह शंका उपस्थित करते हैं—भगवान् महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में गौशालक की रक्षा की जबकि समवसरण में गौशालक ने तेजोलेश्या से सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि पर प्रहार किया, तब महावीर ने उन्हें क्यों नहीं बचाया ? टीकाकार ने स्पष्ट किया है—भगवान उस समय वीतरागी थे । वे जानते थे उसके निमित्त से मुनियों का मरण है । केवली अवस्था में लब्धि का प्रयोग नहीं करते । छद्मस्थ अवस्था में अनुकम्पा से उन्होंने गौशालक को बचाया था । कितने ही लोगों का यह भी मानना है कि गौशालक पर अनुकम्पा दिखाकर भगवान् महावीर ने भूल की । यदि भगवान ऐसा नहीं करते तो कुमत का प्रचार नहीं होता और न मुनि-हत्या ही होती । पर उन्हें यह सोचना चाहिए कि महापुरुष बिना भेद-भाव के सभी का उपकार करते हैं । प्रतिफल की कामना से वे कभी भी सौदेबाजी नहीं करते । भगवान ने छद्मस्थ अवस्था में ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिसमें प्रमाद और पाप-कर्म हों ।[1] भगवान् महावीर के द्वारा शीतललेश्या का प्रयोग एक परम कारुणिक भावना का निदर्शन है । जब सामने पंचेन्द्रिय प्राणी जल रहा हो और दूसरा व्यक्ति निरपेक्ष भाव से उसे निहारता रहे, उसके अन्तर्मानस में अनुकम्पा की लहर न उठे, यह कैसे सम्भव है ? आचार्य भीखणजी ने इस अनुकम्पा-प्रसंग को भगवान् महावीर की भूल बताई है । उन्होंने कहा—"छद्मस्थ चूक्या तिण समै"—अर्थात् महावीर ने गौशालक को बचाकर भूल की । हमारी दृष्टि से यह अहिंसा का एकान्तिक आग्रह या एकांगी चिन्तन है । भगवान् महावीर की अहिंसा नकारात्मक ही नहीं, क्रियात्मक भी थी । गौशालक की प्राण रक्षा कर भगवान् ने एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया ।

इस प्रकार पंचम खण्ड निह्नवों तथा गौशालक की चर्चा के साथ समाप्त हुआ । छठे स्कन्ध में प्रकीर्णक कथाएँ हैं ।

श्रमण-श्रमणियों का निदान—

पूर्व पृष्ठों में हमने अनाथी मुनि के द्वारा सम्राट श्रेणिक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ था, यह उल्लेख किया है । यहाँ पर भगवान् महावीर का साक्षात् सम्पर्क और उनके प्रति असाधारण श्रद्धा का प्रतिपादन किया है ।

महाराजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक (राजकर्मचारी) पुरुषों को बुलाकर यह आदेश दिया—राजगृह नगर के बाहर जितने भी आराम, उद्यान, शिल्प-शालायें, आयतन, देवकुल, सभायें, प्रपायें, उदकशालायें, पान्थशालायें, भोजनशालायें, चूने के भट्टे, व्यापार की मंडियाँ, लकड़ी आदि के ठेके, मूंज आदि के कारखाने आदि के जो अध्यक्ष हैं उनसे जाकर कहो—जब श्रमण भगवान् महावीर इस नगर में पधारें, तुम लोग स्थान, शयनासन, आदि ग्रहण करने की आज्ञा दो और उनके पधारने का संवाद मेरे तक पहुँचाओ । कौटुम्बिक पुरुषों ने ऐसा ही किया ।

भगवान् महावीर का जब राजगृह में पदार्पण हुआ, तब राजा श्रेणिक को सूचना दी । तब राजा श्रेणिक बहुत ही हर्षित हुआ तथा संवाददाताओं को पारितोषिक दिया । महाराणी चेलना के साथ स्नानादि से निवृत्त हो बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण कर राजा श्रेणिक भगवान् की धर्म-सभा में पहुँचा । भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश दिया । परिषद् विसर्जित हुई । श्रेणिक की दिव्य ऋद्धि को देखकर कितने ही श्रमणों के मन विचार में आया—धन्य है यह श्रेणिक बिम्बसार ! जो चेलना जैसी रानी और मगध जैसे राज्य का उपभोग कर रहा है । हमारी भी तपःसाधना का फल हो तो हम भी इसी प्रकार के मनोरम कामभोगों को प्राप्त करें । चेलना

---

१. 'छउमत्थोवि परक्कममाणो ण पमायं सइंपि कुव्वित्था' ।   —आचा०, श्रुत० १, अध्य० ९. उद्देशा ४, गा० १५,

की दिव्य ऋद्धि देखकर कितनी ही श्रमणियों के मन में यह विचार आया कि हम भी चेलना की तरह ही कामभोगों का उपभोग करें।

भगवान् महावीर से यह रहस्य कब छिप सकता था ? उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान-बल से श्रमण-श्रमणियों के निदान की बात जानी। उन्हें निदान के दुष्परिणाम से परिचित कराया। श्रमण-श्रमणियों ने अपने दुःसंकल्प की आलोचना की। प्रस्तुत कथानक से यह स्पष्ट है कि श्रेणिक की भगवान महावीर के प्रति अपूर्व भक्ति थी। साथ ही इस बात का भी संकेत मिलता है कि वह प्रथम बार भगवान् महावीर के पास गया था। जैन परम्परा की दृष्टि से श्रेणिक पहले अन्य धर्मावलम्वी था। चेलना तो पितृपक्ष में भी निर्ग्रन्थ धर्म को मानने वाली थी। उसके प्रयत्न से ही सम्राट श्रेणिक निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक एवं जैन बना था। सम्भव है, इसीलिए चेलना को आगे किया हो !

श्रमण और श्रमणियों ने जो निदान करने का सोचा, वह प्रथम सम्पर्क में ही सम्भव है। बार-बार मिलने के पश्चात् वह भावना नहीं हो सकती।

रथमूसल संग्राम—

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—रथमूसल संग्राम क्या है ? उसमें कौन जीता और कौन हारा ?

भगवान् महावीर ने समाधान करते हुए कहा—इस युद्ध में इन्द्र, असुरेन्द्र, असुरकुमार, चमरेन्द्र ये जीते थे और नौ मल्लवी, नौ लिच्छवी ये राजा-गण पराजित हुए थे। कोणिक भूतानन्द नामक पट्टहस्ती पर आसीन होकर रथमूसल संग्राम में आया था। उसके आगे देवराज शक्र थे, उसके पीछे असुरकुमारराज चमर थे। लोहे से निर्मित एक विशिष्ट प्रकार के कवच की विकुर्वणा की। इस युद्ध में देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र ये तीन इन्द्र एक साथ युद्ध कर रहे थे। गौतम ने पुनः जिज्ञासा की—भगवन् ! इस संग्राम को रथमूसल संग्राम क्यों कहा ? भगवान् ने उत्तर दिया—जिस समय यह संग्राम हो रहा था, उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित और मूसल सहित रथ अत्यन्त जन-संहार, जन-वध, जन-मर्दन और रक्त से भूम को रञ्जित करता हुआ चारों ओर दौड़ रहा था। इसीलिए उसे 'रथमूसल' संग्राम कहा है। उस संग्राम में छियानवें लाख योद्धा मारे गए। उनमें से दश हजार योद्धाओं के जीव एक मछली के उदर में पैदा हुए। उनमें से एक वरुणनागनप्तृक देवलोक में उत्पन्न हुआ। उसका बाल मित्र मनुष्य बना और अवशेष मानवों के जीव नरक और तिर्यंच योनि में पैदा हुए।

गणधर गौतम ने पुनः जिज्ञासा व्यक्त की—देवेन्द्र शक्र ने और असुरकुमार चमरेन्द्र ने कोणिक राजा को किस कारण से सहायता प्रदान की ? भगवान् के कहा—देवेन्द्र देवराज शक्र तो कोणिक राजा का 'कार्तिक' सेठ के भव में मित्र था और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर कोणिक राजा का 'पूरण' नामक तापस की अवस्था का साथी था। इसीलिए इन दोनों इन्द्रों ने कोणिक की सहायता की।

रथमूसल संग्राम में काल आदि कुमारों की मृत्यु—

राजगृह में राजा श्रेणिक का राज्य था। उसकी रानी चेलना से 'कूणिक' का जन्म हुआ। श्रेणिक की दूसरी रानी काली से 'काल' नामक राजकुमार का जन्म हुआ। एक बार काल कूणिक के साथ रथ-मूसल संग्राम में पहुँचा। उस समय भगवान् महावीर चम्पानगरी में पधारे। काली महारानी ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन् ! मेरे पुत्र काल की युद्ध में विजय होगी या पराजय ? महावीर ने कहा—तेरा पुत्र रथमूसल संग्राम में वैशाली के राजा चेटक के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा। तू उसे देख नहीं सकेगी।

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक का राज्य था। उसकी नन्दा रानी से 'अभयकुमार' का जन्म हुआ। श्रेणिक की रानी चेलना को अपने पति के उदर के मांस को खाने का दोहद पैदा हुआ। दोहद पूर्ण न होने से वह उदास रहने लगी। अंग परिचारिकाओं से राजा श्रेणिक को ज्ञात हुआ। अभयकुमार के पूछने पर राजा ने सारा वृत्तान्त सुनाया। अभयकुमार ने विश्वस्त अनुचर को भेज कर मांस और रुधिर मंगवाकर राजा श्रेणिक के उदर पर रखवा दिया। इस तरह वस्त्र से आच्छादित कर दिया कि जिससे ज्ञात नहीं हो सके। दूर प्रासाद में बैठी हुई महारानी चेलना सब देखती रही। अभयकुमार ने मांस को काटने का बहाना किया और राजा को मूर्च्छित स्थिति में बताकर महारानी चेलना का दोहद पूर्ण किया। बौद्ध परम्परा के अनुसार वैद्य ने राजा की बाहु का रक्त निकलवाकर दोहद की पूर्ति की। रानी को ज्योतिषी ने बताया कि यह पुत्र पिता को मारने वाला होगा। इसलिए रानी उसे नष्ट करने का प्रयत्न करती है। चेलना के मन में संतोष न था। वह मन ही मन में दुःखी हो रही थी कि इस बालक के गर्भ में आते ही पति का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ. अतः इस दुष्ट गर्भ को गिरा देना ही श्रेयस्कर

है। रानी ने गर्भपात के लिए अनेक प्रयोग किये किन्तु कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ। जन्म लेने पर नवजात शिशु को महारानी चेलना ने कूड़ी [रोड़ी] पर फिकवा दिया। जब राजा श्रेणिक को पता चला तो उन्होंने शिशु को मंगवाया। कूड़ी पर पड़े हुए शिशु की अंगुली में कुक्कुट की चोंच से चोट आ गई थी, जिससे उसकी अँगुली छोटी रह गई, अतः उसका नाम 'कूणिक' रखा गया।

कूणिक का नाम जैन और बौद्ध दोनों परम्परा में मिलता है। जैन परम्परा में उसे 'कोणिक' या 'कूणिक' कहा गया है तो बौद्ध परम्परा में उसे 'अजातशत्रु' लिखा है। कूणिक नाम 'कूणि' शब्द से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—अंगुली का घाव।[1] 'कूणिक' का अर्थ हुआ अंगुली के घाव वाला व्यक्ति। आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस बात को स्वीकार किया है।[2]

उपनिषद्[3] और पुराणों[4] में 'अजातशत्रु' नाम व्यवहृत हुआ है। यह अधिक सम्भव है 'कूणिक' उनका मूल नाम रहा होगा और 'अजातशत्रु' उपाधि विशेषण रहा होगा। मूल नाम से कभी-कभी उपाधि विशेष प्रचलित हो जाती है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में उसका 'अजातशत्रु' नाम विशेष रूप से व्यवहृत हुआ है। मथुरा के संग्रहालय में एक शिलालेख में उसका नाम 'अजातशत्रु कूणिक' उट्टंकित है।[5] 'अजातशत्रु' शब्द के दो अर्थ किये जा सकते हैं—(१) 'न जातः शत्रुर्यस्य' जिसका कोई शत्रु जन्मा ही नहीं हो।[6] (२) 'अजातोऽपि शत्रुः' अर्थात् जन्म से पूर्व ही (पिता का शत्रु) शत्रु।[7] द्वितीय अर्थ आचार्य बुद्धघोष ने किया है। यह अर्थ पूर्ण रूप से संगत भी है। अजातशत्रु प्रतापी नरेश था। उसके नाम से बड़े-बड़े वीर कांपते थे इसलिए यह नाम गर्हा का प्रतीक न होकर उसकी वीरता का प्रतीक है। जिनदास गणी महत्तर ने कूणिक को 'अशोकचन्द्र' भी लिखा है। कहते हैं—जब कूणिक को 'असोगवणिया' नाम के उद्यान में फेंक दिया गया तो वह उद्यान चमक उठा। इसलिए कूणिक का नाम 'अशोकचन्द्र' रखा गया।

कूणिक की अंगुली पक जाने से उसमें से मवाद निकलती और उससे वह चिल्लाता था। अपने पुत्र की वेदना को शान्त करने के लिए राजा श्रेणिक अंगुली को मुँह में रखकर चूसता जिससे बालक चुप हो जाता। बौद्ध परम्परा की दृष्टि से जन्मते ही बालक को राजा के कर्मचारी वहाँ से हटा देते हैं कि कहीं महारानी उसे मार न दें। कुछ समय के पश्चात् उस बालक को महारानी को सौंपते हैं। पुत्र-प्रेम से महारानी उसमें अनुरक्त हो जाती है। एक बार अजातशत्रु की अंगुली में फोड़ा हो जाता है, बालक रोने लगता है जिससे कर्मकर उसे राजसभा में ले जाते हैं। राजा उसकी अंगुली को मुंह में रख लेता है। फोड़ा फूट जाता है। पुत्र-प्रेम से पागल बना हुआ राजा उस रक्त और मवाद को थूकता नहीं, किन्तु निगल जाता है।

कूणिक के अन्तर्मानस में यह विचार पैदा हुआ कि राजा श्रेणिक के रहते हुए मैं राजा नहीं बन सकता। इसलिए वह अपने अन्य भ्राताओं को अपने साथ मिलाकर स्वयं राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है और राजा श्रेणिक को गिरफ्तार कर कारागृह में बन्द कर देता है। बौद्ध परम्परा की दृष्टि से अजातशत्रु जीवन के उषाकाल से ही महत्वाकांक्षी था। उसकी महत्वाकांक्षा को उभारने वाला देवदत्त था। जिसके कारण उसने पिता को धूमगृह (लौह-कर्म करने का घर) में डलवा दिया।

जैन दृष्टि से एक दिन कूणिक अपनी माँ को नमस्कार करने पहुँचा। माँ को चिन्तासागर में डुबकी लगाते हुए देखकर कूणिक ने कहा—माँ! क्यों चिन्तित हो रही हो? मैं तुम्हारा पुत्र राजा बन गया हूँ, फिर भी तुम चिन्तित हो? मुझे कारण बताना होगा। माँ ने श्रेणिक के प्रेम की घटना सुनाई और कहा—तुझे धिक्कार है। अपने महान् उपकारी पिता को तैंने कष्ट दिया है। कूणिक के मन में पिता के प्रति प्रेम जागृत हुआ। उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ और हाथ में परशु लेकर पितृ-मोचन

---

१. Apte's Sanskrit—English Dictionary, Vol. 1, p. 580.
२. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३०९.
३. Dialogues of Buddha, Vol. II, p. 78.
४. वायुपुराण, अ० ९९, श्लोक ३१९; मत्स्यपुराण, अ० २७१, श्लोक ९.
५. Journal of Bihar and Orissa Researeh Society, Vol. V, Part IV, Pp. 550-51.
६. Dialogues of Buddha, Vol. II, p. 78.
७. दीघनिकाय, अट्ठकथा—१, १३३

के लिए चल पड़ा। श्रेणिक ने दूर से देखा–कूणिक परशु हाथ में लेकर मुझे मारने के लिए आ रहा है। यह मुझे बुरी तरह से मारेगा इससे तो यही श्रेयस्कर है कि मैं स्वयं ही प्राणों का अन्त कर लूँ। श्रेणिक ने उसी समय तालपुट विष खाकर अपने प्राणों का अन्त किया।[1]

बौद्ध ग्रन्थों में बताया है—धूमगृह में कोशलदेवी के अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता था। अजातशत्रु अपने पिता को भूखा और प्यासा रखकर मरवाना चाहता था; क्योंकि देवदत्त ने अजातशत्रु को कहा था—पिता को शस्त्र से न मारें, किन्तु भूखे और प्यासे रखकर मारें। जब कोशलदेवी राजा से मिलने जाती तो उत्संग में भोजन छिपाकर ले जाती और राजा को दे देती। अजातशत्रु को ज्ञात होने पर उसने कर्मकरों से कहा—मेरी माता को उत्संग बाँध कर मत जाने दो। तब महारानी जूड़े में भोजन छिपाकर ले जाने लगी। उसका भी निषेध हुआ। तब वह स्वर्ण पादुका में छिपाकर भोजन ले जाने लगी। जब उसका भी निषेध किया गया तो महारानी गंदोदक से स्नान कर शरीर पर मधु का लेप कर राजा के पास जाने लगी। उसके शरीर को चाटकर राजा कुछ दिन तक जीवित रहा। अन्त में अजातशत्रु ने माता को भी धूमगृह में जाने का निषेध किया।

राजा श्रेणिक अब श्रोतापत्ति के सुख पर जीने लगा। अजातशत्रु ने देखा—राजा मर नहीं रहा है इसलिए नाई को बुलाकर कहा—मेरे पिता राजा के पैरों को तुम पहले शस्त्र से छील दो, उस पर नमक युक्त तेल का लेपन करो और फिर खैर के अंगारे से उस पर सिकताव करो? नापित ने वैसा ही किया, जिससे राजा मर गया।

जैन परम्परा की दृष्टि से माता से पिता के प्रेम की बात को सुनकर कूणिक के मन में पिता की मृत्यु से पूर्व ही पश्चात्ताप हो गया था। जब कूणिक ने देखा—पिता ने आत्महत्या करली है तो वह मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। कुछ समय के बाद जब उसे होश आया तो वह फूट-फूट कर रोने लगा—"मैं कितना पुण्यहीन हूँ, मैंने अपने पूज्य पिता को बन्धनों में बाँधा और मेरे निमित्त से ही पिता की मृत्यु हुई है।" वह पिता के शोक से संतप्त होकर राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी पहुँचा और उसे मगध की राजधानी बनाया।

बौद्ध दृष्टि से जिस जिन बिम्बिसार की मृत्यु हुई; उस दिन अजातशत्रु के पुत्र हुआ। संवादप्रदाताओं ने लिखित रूप से संवाद प्रदान किया। पुत्र-प्रेम से राजा हर्ष से नाच उठा। उसका रोम-रोम प्रसन्न हो उठा। उसे ध्यान आया—जब मैं जन्मा था, तब मेरे पिता को भी इसी तरह आह्लाद हुआ होगा। उसने कर्मकरों से कहा—पिता को मुक्त कर दो। संवाददाताओं ने राजा के हाथ में बिम्बिसार की मृत्यु का पत्र थमा दिया। पिता की मृत्यु का संवाद पढ़ते ही वह आँसू बहाने लगा और दौड़कर माँ के पास पहुँचा तथा माँ से पूछा—माँ! क्या मेरे पिता का भी मेरे प्रति प्रेम था? माँ ने अंगुली चूसने की बात कही। पिता के प्रेम की बात को सुनकर वह अधिक शोकाकुल हो गया और मन ही मन दुःखी होने लगा।

कूणिक का दोहद, अंगुली में व्रण, कारागृह आदि प्रसंगों का वर्णन जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में प्राप्त है। परम्परा में भेद होने के कारण कुछ निमित्त पृथक् हैं। जैन परम्परा की घटना 'निरयावलिका' की है, जिसका रचनाकाल पं० दलसुखभाई मालवणिया वि० सं० के पूर्व का मानते हैं।[2] बौद्ध परम्परा में यह घटना 'अट्ठकथाओं' में आई है। इसका रचनाकाल विक्रम की पाँचवी शताब्दी है।[3] जिस परम्परा को जो कथा का स्रोत मिला उसी के आधार पर वह ग्रन्थों में आई है।

जैन परम्परा में कूणिक की क्रूरता का चित्रण हुआ है। पर वह बौद्ध परम्परा की तरह स्पष्ट नहीं है। बौद्ध परम्परा में 'अजातशत्रु' अपने पिता के पैरों को छिलवाता है और उसमें नमक भरवा कर अग्नि से सेक करवाता है। यह उसका अमानवीय रूप बहुत ही स्पष्टता से उजागर हुआ है। जैन परम्परा में उसे (श्रेणिक को) कारागृह में डालने की बात तो कही है, पर पिता को बेरहमी से भूखे मारने की बात नहीं कही है। जैन दृष्टि से श्रेणिक की मृत्यु स्वयं ने की तो बौद्ध परम्परा की दृष्टि से 'अजातशत्रु' ने।

---

१. (क) जेणंतरेण ताला संपुडिज्जंति तेणंतरेण मारयतीति तालपुडं —दशवैकालिक चूर्णि ८, २९२.
(ख) छह प्रकार का विषपरिणाम बताया है—दृष्ट, भुक्त, निपतित, मांसानुसारी, शोणितानुसारी, सहस्रानुपाती।
—स्थानांग सूत्र, पृष्ठ ३५५ अ.

२. आगम-युग का जैन दर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९६६, पृष्ठ २९ —पं० दलसुख मालवणिया

३. आचार्य बुद्धघोष—महाबोधिसभा, सारनाथ, वाराणसी, १९५६

जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं में कूणिक की माता का नाम अलग-अलग मिलता है। जातक की दृष्टि से कोशलदेवी कौशल के अधिपति 'महाकौशल' की पुत्री थी और प्रसेनजित' की बहिन थी।[1] विवाह के सुनहरे अवसर पर काशी का एक ग्राम उसे दहेज के रूप में दिया गया था। किन्तु जब बिंबिसार का वध कूणिक के द्वारा किया गया तो प्रसेनजित ने वह ग्राम पुनः ले लिया। अजातशत्रु प्रसेनजित का भानजा था, इसलिए युद्ध के मैदान में उन्होंने उसको नहीं मारा तथा अपनी पुत्री 'वजिरा' का पाणिग्रहण अजातशत्रु के साथ कर दिया और ग्राम पुनः कन्यादान के रूप में अजातशत्रु को दे दिया।[2] संयुक्तनिकाय में अजातशत्रु को 'प्रसेनजित' का भानजा और 'विदेहीपुत्त' ये दोनों कहे गये हैं।[3] किन्तु गहराई से चिन्तन करने पर इन दोनों नामों में संगति का अभाव है। आचार्य बुद्धघोष ने 'विदेही' का अर्थ विदेह देश की राजकन्या न कर 'पण्डिता' किया है।[4] जैन दृष्टि से चेलना वैशाली गणतन्त्र के अध्यक्ष चेटक की कन्या थी, इसलिए वह 'वैदेही' थी।[5] सम्भव है, प्रसेनजित की बहिन कोशलदेवी अजातशत्रु की कोई विमाता रही हो। तिब्बती परम्परा[6] तथा 'अमितायुर्ध्यान सूत्र'[7] में 'वैदेही वासवी' यह उसकी माँ का नाम आया है और उसका कारण विदेह देश की राजकन्या बताया है।[8]

जैन आगम साहित्य में कूणिक के लिए 'विदेहपुत्र' शब्द व्यवहृत हुआ है।[9] 'राईस डेविड्स' के अभिमतानुसार बिंबसार राजा की दो रानियाँ थीं—एक प्रसेनजित की बहिन कोशलदेवी और दूसरी विदेहकन्या। विदेहकन्या का पुत्र 'अजातशत्रु' था।[10]

हम पूर्व बता चुके हैं कि राजा बिंबसार जब धूमगृह में था, उस समय 'अट्ठकथा' के अनुसार उसकी सेवा में रानी 'कोशला' थी। 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ बुद्धिज्म' में रानी का नाम 'खेमा' लिखा है और उसे कौशलदेश की राजकन्या लिखा है।[11] 'थेरीगाथा' के अनुसार वह 'मद्र' देश की थी।[12] 'अमितायुर्ध्यानसूत्र' के अनुसार रानी का नाम 'वैदेही वासवी' था। डा० राधाकुमुद मुखर्जी का अभिमत है—वैदेही वासवी सम्भव है—चेलना थी।[13]

कूणिक राजगृह को छोड़कर चम्पा में आकर बस गया। कूणिक के दो लघुभ्राता थे—हल्ल और विहल्ल। निरयावलिका की टीका, भगवती की टीका और भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति में हल्ल और विहल्ल ये दो नाम आये हैं। अनुत्तरौपपातिक में 'विहल्ल' और 'वेहायस' चेलना के पुत्र बताये हैं और हल्ल को धारिणी का पुत्र लिखा है। निरयावलिकावृत्ति और भगवतीवृत्ति में 'हल्ल' और 'विहल्ल' दोनों चेलना के पुत्र कहे हैं। शोधार्थियों के लिए यह विषय अन्वेषणीय है।

राजा श्रेणिक ने अपनी प्रसन्नता से 'सेचनक' हस्ती और देव द्वारा दिया गया 'अठारहसरा' हार हल्ल और विहल्ल को दे दिये। उत्तराध्ययनचूर्णि,[14] आवश्यकचूर्णि[15] आदि में इनकी उत्पत्ति की रोचक घटना है। आवश्यकचूर्णि के अनुसार इन दोनों वस्तुओं का मूल्य श्रेणिक के सम्पूर्ण राज्य के बराबर था।

विहल्लकुमार 'सेचनक' हस्ति पर आरूढ़ होकर अपने अन्तःपुर के साथ गंगा तट पर जाता और हाथी सूंड पर लेकर कभी रानी को उछालता तो कभी विहल्ल को। कभी दाँतों पर लेकर सूंड से जल की वर्षा करता। इस प्रकार उनकी विविध क्रीड़ाओं को देखकर नगर में यह चर्चा होने लगी कि राजश्री का सच्चा उपभोग विहल्लकुमार कर रहा है। कूणिक की पत्नी पद्मावती ने सुना। उसने कूणिक से कहा—मेरे पास दोनों अमूल्य वस्तुएं नहीं है। कूणिक ने उसे कहा—पिताश्री ने पहले से ही उनको सौंप दी हैं। किन्तु रानी के अत्याग्रह से कूणिक ने हल्ल और विहल्ल कुमारों को बुलाकर कहा—हार और हाथी मुझे सौंप दो। उत्तर में उन्होंने निवेदन किया—पूज्य पिताश्री ने हमें दोनों वस्तुएँ दी हैं। हम आपको कैसे दे सकते हैं? इस उत्तर को सुनकर कूणिक रुष्ट हो गया। समय देखकर वे अपने अन्तःपुर के साथ वैशाली चेटक राजा के पास पहुँच गये। कूणिक को ज्ञात होने पर चेटक को दूत भेजकर

---

१. Jataka, Ed by Fausboll, Vol. III, p. 121

२. जातक अट्ठकथा, सं० २४६, २८३।

३. संयुक्तनिकाय, ३-२-४।

४. वेदेहिपुत्तो ति वेदेहीति पण्डिताधिवचनं एतं, पण्डितित्थियापुत्तो ति अत्थो।' —संयुक्तनिकाय, अट्ठकथा—१, १२०

५. आवश्यकचूर्णि, भाग २, पत्र १६४

६. Rockhill : Life of Buddha, p. 63

७. S. B. E. Vol. XLIX, p. 166

८. Rockhill : Life of Buddha, p. 63

९. भगवती सूत्र, शतक ७, उद्देशक ६, पृष्ठ ५७६

१०. Buddhist India, p. 3

११. Encyclopaedia of Buddhism, p. 316

१२. थेरीगाथा, अट्ठकथा, १३६-४३।

१३. हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ १८३

१४. उत्तराध्ययनचूर्णि

१५. आवश्यक चूर्णि—उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

१६. आवश्यकचूर्णि—उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

हार और हाथी, हल्ल तथा विहल्ल को चम्पा भेजने के लिए कहलाया। चेटक ने सूचन किया—आधा राज हल्ल तथा विहल्ल को दे दो तो मैं हार और हाथी भिजवा दूंगा। कूणिक ने पुनः कहलवाया—हल्ल और विहल्ल मेरी बिना आज्ञा के हार तथा हाथी ले गये हैं, वह मगध की सम्पत्ति है। अतः आप लौटा दें अथवा युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ।

दूत के अभद्र व्यवहार से और पत्र को पढ़कर चेटक भी उत्तेजित हो गये। उन्हों गलहत्था देकर उसे निकाल दिया और कहा—मैं अन्याय सहन नहीं कर सकता। शरणागत की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। यदि वह युद्ध के लिए तैयार है तो मैं भी पीछे हटने वाला नहीं हूं।

कूणिक ने अपने काल आदि भाइयों को बुलाकर युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दिया और वे सभी वैशाली पहुंचे। इधर राजा चेटक ने भी काशी के नौ मल्लवी और कौशल के नौ लिच्छवी इस प्रकार अठारह गण-राजाओं को बुलाकर मंत्रणा की। सभी ने यही कहा—हार और हाथी को लौटाना उचित नहीं। शरणागत की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। कूणिक ने 'गरुड़व्यूह' रचा तो राजा चेटक ने 'शकटव्यूह' की रचना की। राजा चेटक भगवान महावीर का परम उपासक था। उसका यह अभिग्रह था—मैं एक दिन में एक से अधिक बाण नहीं चलाऊँगा। उसका वाण अमोघ था। पहले दिन कूणिक की ओर से कालकुमार सेनापति बनकर आया। वह चेटक के वाण से धराशायी हो गया। दूसरे दिन सुकालकुमार तीसरे दिन महाकाल, चौथे दिन कण्ह, पाँचवें दिन सुकण्ह, छठे दिन महाकण्ह, सातवें दिन वीरकण्ह, आठवें दिन रामकण्ह, नौवें दिन पिउसेणकण्ह और दसवें दिन महासेणकण्ह की क्रमशः राजा चेटक के हाथ से मृत्यु हुई। उस समय भगवान् महावीर चम्पा नगरी में विराज रहे थे। दशों राजकुमारों की माताओं ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—कालकुमार आदि जीवित रहेंगे या मृत्यु का वरण करेंगे? भगवान् ने प्रत्युत्तर में कहा—वे सभी मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं। दशों रानियों ने दीक्षा ग्रहण की।

महाशिलाकंटक संग्राम—

महाशिलाकंटक-संग्राम का निरूपण भगवती में हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ 'दीघनिकाय' के महापरिनिव्वाणसुत्त तथा उसकी 'अट्ठकथा' में 'वज्जी-विजय' कहा है। युद्ध का कारण, उसकी प्रक्रिया और उसकी निष्पत्ति परम्परा की पृथकता से भिन्न-भिन्न रूप में मिलती है। पर यह स्पष्ट है कि मगध की वैशाली गणतन्त्र पर विजय हुई थी। इस युद्ध के समय भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध ये दोनों विद्यमान थे। दोनों से युद्ध के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये। दोनों ने उनके उत्तर दिये। इस युद्ध के वर्णन से उस समय की राजनैतिक स्थितियों का भी परिज्ञान होता है।

यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं—राजा कूणिक के सेनापति राजा चेटक के अमोघ बाण से मर रहे थे। राजा कूणिक को लगा—अब मेरी पराजय निश्चित है। उसने तीन दिन का उपवास करके शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। वे दोनों इन्द्र प्रकट हुए। उनके सहयोग से पहले दिन महाशिलाकंटक संग्राम की योजना हुई। शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित अभेद्य वज्र रूप कवच को कूणिक ने धारण किया, जिससे राजा चेटक का अमोघ वाण उसे मार न सका। परस्पर भयंकर युद्ध हुआ। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक की सेना पर कंकड़, तृण, पत्र आदि जो कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता।[1] उस प्रथम दिन के युद्ध में ही चौरासी लाख मानव मारे गये। द्वितीय दिन रथमूसल संग्राम की विकुर्वणा हुई। देव निर्मित रथ पर चमरेन्द्र स्वयं आसीन हुआ तथा मूसल से चारों ओर प्रहार करने लगा।[2] दूसरे दिन में छियानवे लाख मानवों का संहार हुआ। इस प्रकार दो दिन के संग्राम में 'एक करोड़ अस्सी लाख' मानवों का विनाश हुआ। चेटक तथा नौ मल्लवी और लिच्छवी—इन अठारह काशी-कौशल के गणराजाओं की पराजय हुई और कूणिक की विजय हुई।[3]

राजा चेटक पराजित होकर वैशाली में चला गया। नगर के द्वार बन्द कर दिये गये। कूणिक ने प्राकार तोड़ने का बहुत प्रयास किया पर सफल न हो सका। उसने वैशाली के बाहर सेना का घेरा डाल दिया।

एक दिन उसे आकाशवाणी सुनाई दी—श्रमण कूलवालक[4] जब मागधिका वेश्या में अनुरक्त होगा तब कूणिक

---

१. भगवती सूत्र, सटीक, सूत्र २९९, पत्र ५७८ २. भगवती सूत्र, सटीक, शतक ७, उद्दे० ९, सूत्र ३००, पृ० ५८४

२. भगवती, शतक ७, उद्देशक ९, सूत्र ३०१

३. 'कूलवालुक' तपस्वी नदी के कूल के समीप आतापना लेता था। उसके तपःप्रभाव से नदी का प्रवाह थोड़ा मुड़ गया। उससे उसका नाम 'कूलवालुक' हुआ।

—उत्तराध्ययन सूत्र, लक्ष्मीवल्लभ कृत वृत्ति, (गुजराती अनुवाद सहित), अहमदाबाद, १९३५, प्रथम खंड, पत्र ८

(अशोकचन्द्र) वैशाली नगरी का अधिग्रहण करेगा ।[१] कूणिक ने कुलबालक की खोज की। मागधिका वेश्या को बुलाया गया। मागधिका ने कपट से श्राविका का रूप बनाकर कूलबालक को अपने में अनुरक्त किया। कूलबालक नैमित्तिक वेष को धारण कर किसी तरह वैशाली पहुँचा। उसे ज्ञात था कि मुनिसुव्रतस्वामी के स्तूप के कारण ही यह नगरी बची हुई है। नागरिकों ने नैमित्तिक समझकर उससे उपाय पूछा। नैमित्तिक वेशधारी कूलबालक ने नागरिकों को बताया—स्तूप के कारण ही शत्रु तुम्हें परेशान कर रहे हैं। यदि स्तूप टूट जायेगा तो शत्रु यहाँ से भाग जायेंगे। लोगों ने स्तूप तोड़ना प्रारम्भ किया। कूलबालक के संकेतानुसार कूणिक की सेना पीछे हटी और जब स्तूप पूर्ण रूप से टूट गया तो कूणिक ने एकाएक आक्रमण कर वैशाली के प्राकार को नष्ट कर दिया।[२]

शत्रु से बचने के लिए हल्ल और विहल्ल कुमार हार तथा हाथी को लेकर चले, किन्तु खाई में प्रच्छन्न रूप से आग थी। सेचनक हाथी को विभंगज्ञान से आग का पता लग गया था, अतः वह आगे नहीं बढ़ रहा था। उसको बलात् आगे बढ़ने के लिए उत्प्रेरित किया गया तो उसने अपनी सूँड़ से हल्ल और विहल्ल को नीचे उतार दिया और स्वयं अग्नि में प्रवेश हो गया। हाथी शुभ अध्यवसाय में आयु पूर्ण कर देव बना। देवप्रदत्त हार को देव उठाकर चल दिया। शासनदेव हल्ल और विहल्ल को महावीर के पास ले गये और वहाँ वे दोनों दीक्षित हुए।[३]

राजा चेटक ने आमरण अनशन कर सद्गति प्राप्त की।[४]

बौद्ध परम्परा में मगध विजय का प्रसंग इस प्रकार है—गंगा के एक पट्टन के सन्निकट पर्वत में रत्नों की खान थी।[५] 'अजातशत्रु' और लिच्छवियों में यह समझौता हुआ था कि आधे-आधे रत्न परस्पर ले लेंगे। अजातशत्रु ढीला था। आज या कल करते हुए वह समय पर नहीं पहुँचता। लिच्छवी सभी रत्न लेकर चले जाते। अनेक बार ऐसा होने से उसे बहुत ही क्रोध आया पर गणतन्त्र के साथ युद्ध कैसे किया जाय? उनके बाण निष्फल नहीं जाते।[६] यह सोचकर वह हर बार युद्ध का विचार स्थगित करता रहा, पर जब वह अत्यधिक परेशान हो गया, तब उसने मन ही मन निश्चय किया कि मैं वज्जियों का अवश्य ही विनाश करूँगा। उसने अपने महामन्त्री 'वस्सकार' को बुलाकर तथागत बुद्ध के पास भेजा।[७]

तथागत बुद्ध ने कहा—वज्जियों में सात बातें हैं—१. सन्निपात-बहुल हैं अर्थात् वे अधिवेशन में सभी उपस्थित रहते हैं।

२. उनमें एकमत है। जब सन्निपात भेरी बजती है तब वे चाहे जिस स्थिति में हों, सभी एक हो जाते हैं।

३. वज्जी अप्रज्ञप्त (अवैधानिक) बात को स्वीकार नहीं करते और वैधानिक बात का उच्छेद नहीं करते।

४. वज्जी वृद्ध व गुरुजनों का सत्कार-सम्मान करते हैं।

५. वज्जी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों के साथ न तो बलात्कार करते हैं और न बलपूर्वक विवाह करते हैं।

६. वज्जो अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते।

७. वज्जी अर्हतों के नियमों का पालन करते हैं, इसलिए अर्हत् उनके वहाँ पर आते रहते हैं।

ये सात नियम जब तक वज्जियों में हैं और रहेंगे, वहाँ तक कोई भी शक्ति उन्हें पराजित नहीं कर सकती।[८]

प्रधान अमात्य 'वस्सकार' ने आकर अजातशत्रु को कहा—और कोई उपाय नहीं है, जब तक उनमें भेद नहीं पड़ता, वहाँ तक उनको कोई भी शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती। वस्सकार के संकेत से अजातशत्रु ने राजसभा में 'वस्सकार' को इस आरोप से निकाल दिया कि यह वज्जियों का पक्ष लेता है। वस्सकार को निकालने की सूचना वज्जियों को प्राप्त हुई। कुछ अनुभवियों ने कहा—उसे अपने यहाँ स्थान न दिया जाये। कुछ लोगों ने कहा—नहीं, वह मगधों का शत्रु है इसलिए वह हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्होंने 'वस्सकार' को अपने पास बुलाया और उसे 'अमात्य' पद दे दिया। वस्सकार ने अपने बुद्धि-बल

---

१. समणे जइ कूलवालए, मागहिअं गणिअं रमिस्सए। राया अ असोगचंदए, वेसालिं नगरी गहिस्सए ॥ —वही, पत्र १०

२. उत्तराध्ययन सूत्र, लक्ष्मीवल्लभ कृत वृत्ति, पत्र ११

३. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र १००-१०१

४. आचार्य भिक्षु, भिक्षु-ग्रन्थ रत्नाकर, खण्ड २, पृष्ठ ८८

५. बुद्धचर्या (पृष्ठ ४८४) के अनुसार "पर्वत के पास बहुमूल्य सुगन्ध वाला माल उतरता था।"

६. दीघनिकाय अट्ठकथा (सुमंगल विलासिनी), खण्ड २, पृष्ठ ५२६; Dr. B. C. Law: *Buddhaghosa*, p. 111, हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ १८८

७. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाणसुत्त, २/३ (१६)

८. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाणसुत्त, २/३ (१६)

से वज्जियों पर अपना प्रभाव जमाया। जब वज्जी गण एकत्रित होते, तब किसी एक को वस्सकार अपने पास बुलाता और उसके कान में पूछता—क्या तुम खेत जोतते हो ? वह उत्तर देता—हाँ, जोतता हूँ। महामात्य का दूसरा प्रश्न होता—दो बैल से जोतते हो अथवा एक बैल से ?

दूसरे लिच्छवी उस व्यक्ति को पूछते—बताओ, महामात्य ने तुम्हारे को एकान्त में ले जाकर क्या बात कही ? वह सारी बात कह देता पर वे कहते—तुम सत्य को छिपा रहे हो। वह कहता—यदि तुम्हें मेरे पर विश्वास नहीं है तो मैं क्या कहूँ ? इस प्रकार एक-दूसरे में अविश्वास की भावना पैदा की गई और एक दिन उन सभी में इतना मनोमालिन्य हो गया कि एक लिच्छवी दूसरे लिच्छवी से बोलना भी पसन्द नहीं करता। सन्निपात भेरी बजाई गई, किन्तु कोई भी नहीं आया। 'वस्सकार' ने अजातशत्रु को प्रच्छन्न रूप से सूचना भेज दी। उसने ससैन्य आक्रमण किया। भेरी बजायी गयी पर कोई भी तैयार नहीं हुआ। अजातशत्रु ने नगर में प्रवेश किया और वैशाली का सर्वनाश कर दिया।[1]

इस प्रकार जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने मगध विजय और वैशाली नष्ट होने का विवरण प्रस्तुत किया है। जैन दृष्टि से चेटक अठारह गण देशों का नायक था। बौद्ध परम्परा उसे केवल प्रतिपक्षी ही मानती है। जैन दृष्टि से कूणिक के पास तैंतीस करोड़ सेना थी तो चेटक के पास सत्तावन करोड़ सेना थी। और दोनों ही युद्धों में एक करोड़ अस्सी लाख मानवों का संहार हुआ। बौद्ध दृष्टि से युद्ध का निमित्त है—रत्न राशि ! जैन परम्परा में जैसे चेटक का प्रहार अमोघ बताया है, वैसे ही बौद्ध ग्रन्थों की दृष्टि से वज्जी लोगों के प्रहार अचूक थे। नगर की रक्षा का मूल आधार जैन दृष्टि से स्तूप को माना है तो बौद्ध दृष्टि से पारस्परिक एकता, गुरुजनों का सम्मान आदि बताया गया है। जितना व्यवस्थित वर्णन जैन परम्परा में है, उतना बौद्ध परम्परा में नहीं हो पाया है। वैशाली की पराजय में दोनों ही परम्पराओं में छद्म भाव का उपयोग हुआ है। वैशाली का युद्ध कितने समय तक चला ? इस सम्बन्ध में जैन दृष्टि से एक पक्ष तक तो प्रत्यक्ष युद्ध हुआ और कुछ समय प्राकार-भंग में लगा। बौद्ध दृष्टि से 'वस्सकार' तीन वर्ष तक वैशाली में रहा और लिच्छवियों में भेद उत्पन्न करता रहा। डा० राधाकुमुद मुखर्जी के अभिमतानुसार युद्ध की अवधि कम से कम सोलह वर्ष तक की है।[2]

विजय तस्कर—

साधना की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है—पर-पदार्थों के प्रति आसक्ति ! और जब तक आसक्ति है, तब तक आत्मानन्द का अनुभव नहीं होता। जब इन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेष का विष मिल जाता है, तब समाधिभाव नष्ट हो जाता है। श्रमण अपने शरीर पर भी ममत्व न रखे। वह आहार और पानी के द्वारा शरीर का संपोषण किस प्रकार करता है ? यह दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार बताया है—

राजगृह में धन्ना सार्थवाह था। उसकी पत्नी भद्रा थी। अनेक मनौतियों के पश्चात् उसके पुत्र हुआ। उसका नाम 'देवदत्त' रखा। एक बार पंथक देवदत्त को बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर खेलने के लिए ले जा रहा था। देवदत्त बालकों के साथ खेलने लगा। उधर से 'विजय' नामक तस्कर चोर आया और देवदत्त को उठाकर चल दिया। उसने आभूषण उतार लिये और देवदत्त को कुएँ में फेंक दिया, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। पंथक अनुचर को तो ध्यान ही नहीं रहा। जब उसे ध्यान आया तो बालक नदारद था। उसने बहुत ढूंढ़ा, जब वह नहीं मिला तो रोता-रोता घर पर आया। धन्ना सार्थवाह ने नगर-रक्षकों को सूचना दी। खोजने पर उन्हें अन्धकूप में बालक का शव मिला। पैरों के चिह्नों को निहारते हुए वे सघन झाड़ियों में छिपे हुए विजय चोर के पास पहुँचे और उसे पकड़कर खूब मारा तथा कारागृह में बन्द कर दिया।

साधारण से अपराध के लिए धन्ना सार्थवाह को भी एक दिन कारागृह में बन्द कर दिया गया। विजय तस्कर और धन्ना सार्थवाह दोनों एक ही बेड़ी में बद्ध थे। धन्ना सार्थवाह की पत्नी भद्रा ने बढ़िया भोजन कारागृह में भेजा। धन्ना सार्थवाह जब भोजन करने बैठा तो विजय तस्कर ने उस भोजन में से कुछ पदार्थ खाने के लिए मांगे। धन्ना सार्थवाह अपने पुत्र-घातक को उसमें से भोजन कैसे दे सकता था ? उसने इन्कार कर दिया। जब धन्ना सार्थवाह को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उपस्थित हुई तो उन्होंने विजय तस्कर को कहा। क्योंकि वे दोनों एक ही बेड़ी में आबद्ध थे। वे एक दूसरे के बिना जा नहीं सकते थे, अतः विजय चोर ने कहा—मैं तो भूखा-प्यासा हूँ। तुम्हें जाना हो तो जाओ। कुछ समय तक वह मल-मूत्र रोकने का प्रयास करता रहा पर कब तक रोकता ? अन्त में

१. दीघनिकाय अट्ठकथा, खण्ड १, पृष्ठ ५२३

२. हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ १८६

विवश होकर धन्ना सार्थवाह ने विजय चोर को आहार-पानी देने का वचन दिया, तब वह साथ में जाने लगा। आहार-पानी लाने का कार्य पंथक अनुचर का था। उसने सेठ को आहार देते हुए देखकर विचार किया—यह कैसा सेठ है ? जो अपने पुत्र के हत्यारे को आहार दे रहा है। उसने सेठानी को कहा। सेठानी को अत्यधिक क्रोध आया कि सेठ पुत्र के हत्यारे का पोषण कर रहे हैं। कुछ समय के बाद सेठ को कारागृह से मुक्ति मिली। वह घर पर पहुँचा किन्तु सेठानी की मुद्रा को देखकर सेठ ने कहा—क्या तुझे मेरा कारागृह से मुक्त होना अच्छा नहीं लगा ? भद्रा सार्थवाही ने कहा—आपने मेरे लाड़ले लाल के हत्यारे विजय चोर को आहार आदि दिया। यही मेरे कोप का कारण है। श्रेष्ठी ने कहा—कर्तव्य, धर्म या प्रत्युपकार की दृष्टि से नहीं, अपितु मल-मूत्रविसर्जन में सहायक होने की दृष्टि से आहारादि दिया था। यह सुनकर भद्रा को सन्तोष हुआ।

प्रस्तुत कथा-प्रसंग को देकर शास्त्रकार ने कहा—सेठ को विवशता से पुत्र-घातक को भोजन देना पड़ा, वैसे ही साधक को संयम निर्वाह के लिए आहार आदि शरीर को देना पड़ता है। श्रेष्ठी ने तस्कर को अपना परम हितैषी समझ कर भोजन नहीं दिया, पर कार्य-सिद्धि के लिए दिया, वैसे ही श्रमण भी ज्ञान, दर्शन की सिद्धि के लिए आहार ग्रहण करता है। आगम साहित्य में श्रमण के आहार ग्रहण करने के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। उस गुरुतम रहस्य को यहाँ कथा के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

मयूरी के अण्डे

आध्यात्मिक समुत्कर्ष के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। गीता में 'श्रद्धावान् लभते ज्ञान' कहा है। इस विश्व में ज्ञान सबसे महान् है। वह ज्ञान श्रद्धा से प्राप्त होता है। भगवान् महावीर ने श्रद्धा को दुर्लभ ही नहीं, किन्तु परम दुर्लभ कहा है। अतः साधक को यह प्रेरणा दी है—"तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।" जिसका चित्त चंचल है, मन डांवाडोल है, वह सिद्धि को वरण नहीं कर सकता। सफलता के लिए श्रद्धा अनिवार्य है।

चम्पानगरी में जिनदत्त-पुत्र और सागरदत्त-पुत्र ये दो सार्थवाह-पुत्र थे। दोनों अभिन्न मित्र थे। वे धूप-छाया की तरह साथ रहते थे। पर दोनों की वृत्ति एक दूसरे से विपरीत थी। एक बार वे गणिका देवदत्ता के साथ सुरभि उद्यान में पहुँचे। स्नान, भोजन, संगीत, नृत्य का आनन्द लेते हुए वे सघन झाड़ियों में बने हुए 'मालूकाकच्छ' में गये। उन्हें यकायक निहार कर एक मयूरी घबराहट से केकारव करती हुई वृक्ष की शाखा पर जा बैठी। सार्थवाहपुत्रों को वहाँ पर दो अण्डे दिखाई दिये। दोनों ने एक-एक अण्डा उठा लिया। सागरदत्त-पुत्र का मन शंकालु था, वह पुनः पुनः अण्डे को उलट-पुलट कर देखता कि कब अण्डे में से बच्चा बाहर निकलेगा। बार-बार हिलाने से अण्डा निर्जीव हो गया। जिनदत्त-पुत्र ने वह अण्डा मयूर-पालकों को सौंप दिया। बच्चा हुआ। उसे विविध प्रकार की नृत्यकलायें सिखाईं। सारे नगर में उसकी प्रसिद्धि हो गई।

प्रस्तुत रूपक के माध्यम से यह बताया है कि "संशयात्मा विनश्यति" और जो श्रद्धाशील होता है, वह सिद्धि का वरण करता है। इसी तरह चाहें श्रमण हो, चाहें श्रमणी हो, उन्हें श्रद्धानिष्ठ होकर साधना करनी चाहिए। जो श्रद्धा के साथ साधना करता है, वह सफलता को सम्प्राप्त होता है।

इस कथा के वर्णन से यह भी परिज्ञात होता है कि उस युग में भी मानव आज की तरह पशु-पक्षियों को प्रशिक्षण देता था। प्रशिक्षण देने पर पशु-पक्षी गण ऐसी कला प्रदर्शित करते, जिससे दर्शक मन्त्रमुग्ध हो जाते। पशु-पक्षी, जिनका जीवन विकल है, वे भी प्रशिक्षण से कलावान बन सकते हैं। यदि मानव शिक्षण के क्षेत्र में आगे बढ़े तो वह स्व और पर दोनों के जीवन का कल्याण कर सकता है।

कूर्म कथानक—

वाराणसी के बाहर मृतगंगा तीर नामक द्रह (तालाब) था जिसमें रंग-बिरंगे कमल के फूल खिल रहे थे। अनेक प्रकार के मच्छ, कच्छप, मगर, ग्राह, प्रभृति जलचर प्राणी उस तालाब में थे। एक समय दो कूर्म तालाब में से बाहर निकले और आसपास आहार की खोज में घूमने लगे। उसी समय दो सियार वहाँ आ पहुँचे। सियारों को देखकर कूर्म भयभीत हुए। उन्होंने अपने पैर, गर्दन और शरीर को छिपा लिया। सियारों की दृष्टि उन कछुओं पर पड़ी। वे उन पर झपटे। छेदन-भेदन करने का बहुत कुछ प्रयास किया, पर वे सफल न हो सके। सियार बहुत ही चालाक जानवर होता है। सियारों ने सोचा—जब तक ये अपने अंगों का गोपन किये हुए रहेंगे तब तक हम इनका बाल भी बांका नहीं कर सकेंगे। अतः हमें चालाकी से काम लेना चाहिए। वे दोनों सियार कूर्मों के पास से हट गये और झाड़ी में छिप गये। उन दोनों में से एक कूर्म चंचल प्रकृति का था। उसने धीरे-धीरे अपने अवयव बाहर निकाले। सियार उस पर झपटे और उसे मारकर खा गये। दूसरे कूर्म ने दीर्घकाल तक अपने अंगों को गोपन करके

रखा। जब सियार चले गये तब वह शीघ्रता से तालाब में पहुँच गया। सियार उस कूर्म का बाल भी बाँका नहीं कर सके। इसी तरह जो साधक अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में रखता है, उसकी किंचित् भी क्षति नहीं होती। सूत्रकृतांग[1] में भी अत्यन्त संक्षेप में कूर्म के रूपक को साधक के जीवन के साथ निरूपित किया है। श्रीमद् भगवतगीता में भी श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कछुए का दृष्टान्त दिया है।[2] तथागत बुद्ध ने भी साधक के जीवन के लिए कूर्म का रूपक प्रस्तुत किया है। इस तरह कूर्म का रूपक जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में इन्द्रियनिग्रह के लिए दिया गया है। कथा के माध्यम से देने के कारण यह रूपक अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है।

रोहिणीज्ञात—

राजगृह नगर में धन्य सार्थवाह के धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित—ये चार पुत्र थे। उनकी उज्झिका, भोगवती रक्षिका और रोहिणी—ये चारों क्रमशः पत्नियाँ थीं। धन्य सार्थवाह अत्यन्त दूरदर्शी था। जब वह वृद्धावस्था से ग्रसित हो गया तो उसे अपने कुटुम्ब की सुव्यवस्था की चिन्ता हुई। चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा के लिए उसने एक समारोह में पाँच-पाँच शालि के दाने उन्हें दिये और कहा—जब भी मैं माँगू तब मुझे पुनः देना। प्रथम पुत्रवधू ने सोचा—श्वसुरजी की बुद्धि मारी गई है, यही कारण है कि इतना बड़ा समारोह करके केवल पाँच दाने दिये हैं और उस पर भी पुनः लौटाने की बात ! यहाँ दानों की क्या कमी है, वे जब भी मागेंगे उस समय मैं इन्हें दे दूंगी। यह सोचकर उन दानों को उसने फेंक दिया। द्वितीय पुत्रवधू ने सोचा—यद्यपि दानों का मूल्य नहीं है तथापि पूज्य श्वसुर का यह दिव्य प्रसाद है, यह सोचकर उसने वे दाने खा लिये। तृतीय पुत्रवधू ने सोचा—किसी विशिष्ट अभिप्राय से ये दाने दिये गये हैं, अतः इन्हें सम्भाल कर रखना उपयुक्त है। चतुर्थ पुत्रवधू बुद्धिमती थी। उसने सोचा—कोई न कोई गूढ़ रहस्य इसमें छिपा हुआ है। उसने पाँचों दाने मायके भेज दिये। उसकी सूचना के अनुसार वे दाने खेत में बो दिये गये। पाँच वर्षों में दानों के अम्बार लग गये। पाँच वर्ष के पश्चात् श्रेष्ठी ने दाने मांगे। सभी ने सत्य कह दिया। पहली पुत्रवधू को घर की सफाई का कार्य सौंपा। द्वितीय पुत्रवधू को भोजनशाला का कार्य दिया गया क्योंकि वह खाने में दक्ष थी। तृतीय पुत्रवधू को कोषाध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। चतुर्थ पुत्रवधू ने पाँच दाने माँगने पर जब अनाज का ढेर लगा दिया तो उसे गृहस्वामिनी के पद पर आसीन किया और कहा—तू वस्तुतः यशस्विनी पुत्रवधू है। तेरे कारण ही यह घर फलेगा-फूलेगा।

प्रस्तुत रूपक के माध्यम से शास्त्रकार ने कहा—जो साधक प्रथमपुत्रवधू की भाँति महाव्रतों को ग्रहण करके फेंक (छोड़)देते हैं, वे इस भव और परभव में सर्वत्र अवहेलना के भाजन होते हैं। जो महाव्रतों को ग्रहण कर सांसारिक उपभोगों में लग जाते हैं, वे भी निन्दा के पात्र हैं। जो साधक रक्षिता की भाँति महाव्रतों की सुरक्षा करते हैं वे प्रशंसा के पात्र होते हैं और जो साधक रोहिणी की भाँति सद्गुणों की अभिवृद्धि करता है, वह परमानन्द का भागी बनता है।

प्रोफेसर टाइमन ने अपनी जर्मन पुस्तक "बुद्ध और महावीर" में बाइबिल की मैथ्यू और लूक की कथा के साथ इस कथा की तुलना की है। वहाँ पर शालि के दानों के स्थान पर 'टेलेन्ट'[3] शब्द का प्रयोग किया है। टेलेन्ट उस युग का सिक्का विशेष था। एक व्यक्ति ने विदेश जाते समय अपने तीन पुत्रों को दश-दश टेलेन्ट दिये थे। एक ने व्यापार के द्वारा उनकी अत्यधिक वृद्धि की, दूसरे पुत्र ने उन्हें जमीन में गाड़ दिये और तीसरे ने खर्च कर दिये। लौटने पर पिता प्रथम पुत्र पर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

आकर्ण : उत्तम जाति का अश्व—

जो साधक इन्द्रियों के वशवर्ती होकर अनुकूल विषयों की उपलब्धि होने पर उसमें लुब्ध हो जाते हैं, वे रागवृत्ति के कारण भव-भ्रमण करते हैं। उन्हें अनेक प्रकार की व्यथायें भी सहन करनी पड़ती हैं और जो उनमें आसक्त नहीं होते, वे सांसारिक यातनाओं से बच जाते हैं। जैसे—हस्तिशीर्ष नगर के कुछ व्यापारी नौका में बैठकर जा रहे थे। एकाएक तूफान से नौका डगमगाने लगी। निर्यामक को भी यह भान नहीं रहा कि नौकाएँ कहाँ जा रही है ? कुछ समय के पश्चात् तूफान शान्त हुआ। निर्यामक ने देखा—नौकाएँ कालिक द्वीप के किनारे जा लगी हैं। वहाँ उन्होंने हीरे-पन्ने, स्वर्ण और चाँदी की खदानें देखीं। उन्होंने वहाँ बढ़िया घोड़े भी देखे। उन्हें घोड़ों से कोई प्रयोजन नहीं था। अतः पर्याप्त धन लेकर वे अपने नगर लौट आये। जब व्यापारीगण राजा कनककेतु के पास बहुमूल्य उपहार लेकर पहुँचे तो राजा ने पूछा—तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या ? उन्होंने कालिक द्वीप के घोड़ों की

---

१ जहा कुम्मेसअंगाई, सए देहे समाहरे। एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे॥ —सूत्रकृतांग, प्र० श्रुत०, अ० ८, गाथा ४२६

२ यदा संहरते चायं कूर्मोंगानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ —श्रीमद् भगवद्गीता २.५८

३. टेलेन्ट (talent) शब्द का वास्तविक अर्थ बुद्धि तथा मानसिक विशिष्ट शक्ति होता है।

बात कही। राजा के आदेश से व्यापारी पुनः कालिक द्वीप पहुँचे। उन्होंने सुगन्धित और सुस्वादु पदार्थ चारों ओर बिखेर दिये। इन्द्रियों के वशीभूत होकर कुछ घोड़े उन पदार्थों का उपभोग करने के लिए उधर आये और वे उनके जाल में फँस गये। जो घोड़े उन पदार्थों के प्रति आकर्षित नहीं हुए वे अपने आपको मुक्त रख सके। इसी तरह जो साधक इन्द्रियों के अधीन हो जाता है, वह पथभ्रष्ट हो जाता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि व्यापारी अश्वों को पकड़ने के लिए जब गये तब वल्लकी, भ्रामरी, कच्छभी, वम्भा, षट्भ्रमरी, आदि विविध प्रकार की वीणायें, विविध प्रकार के चित्र, सुगन्धित पदार्थ, गुड़िया-मतस्यंडिका शक्कर, मत्स्यंडिका पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर प्रकार की शर्कराएँ और विविध प्रकार के वस्त्र लेकर पहुँचे थे। इससे यह स्पष्ट है कि भारत में विविध प्रकार की कलायें तथा साधन-सामग्री उपलब्ध थीं जो यहाँ की संस्कृति की उन्नति का सहज प्रतीक हैं।

मृगापुत्र—

जैन साहित्य में कर्म-सिद्धान्त का बहुत ही विस्तारपूर्वक सांगोपांग वर्णन किया गया है। वह वर्णन जिज्ञासुओं के लिए रसप्रद होने पर भी सहज सुगम नहीं है। प्रस्तुत कथानक में कथा के द्वारा इस विषय को बहुत ही सुगम और सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है तथा कर्म-विपाक की प्ररूपणा की है। मृगापुत्र प्रकृष्ट पापकर्म के उदय से जब रानी के गर्भ में आया तो रानी राजा की अप्रिय हो गई। राजा उसे देखना भी पसन्द नहीं करता। रानी सोचने लगी—मैं राजा की इतनी अधिक प्रिय-पात्र थी कि मुझे बिना निहारे राजा को चैन नहीं पड़ती थी। एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया? सम्भव है, गर्भ ने अपना प्रभाव दिखाया हो! बच्चे का जन्म हुआ। वह अन्धा, बहरा, लूला, लंगड़ा और हुण्डक संस्थानी था। उसके शरीर में हाथ, पैर, कान, नाक आदि अवयवों का अभाव था। केवल उनके चिह्न मात्र थे। मृगादेवी ने उसे घूरे पर फिकवाना चाहा, पर राजा के समझाने से उसने उस बालक को गुप्त रूप से भू-गृह में रख दिया। उस नगरी में एक जन्मान्ध भिखारी था। उसे निहार कर गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! क्या किसी स्त्री के कोई बच्चा जन्म से ही अन्धा होता है? भगवान् ने मृगापुत्र की बात बताते हुए कहा—वह लूला, लँगड़ा, अन्धा और बहरा है। प्रभु की आज्ञा से गौतम उसे देखने के लिए पहुंचे। उसके शरीर में से मृत सर्प की तरह भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। वह जो भी आहार करता, रक्त और मवाद बनाकर बाहर निकलता और उसे वह पुनः खा जाता। उसको देखते ही गणधर गौतम को नारकीय दृश्य स्मरण हो आया। भगवान् ने उसके पूर्वभव का वर्णन करते हुए कहा—इस जीव ने पूर्वभव में अनेक पापकृत्य किये थे। जिसके फलस्वरूप उसे उस जन्म में सोलह महारोग हुए। वहाँ से मरकर यह नरक में गया। नरक से निकलकर यह 'मृगापुत्र' हुआ है। यहाँ भी यह पाप-फल भोग रहा है। इसके पश्चात् भी अनेक जन्मों तक यह पाप का फल भोगेगा।

प्रस्तुत कथा में यह बताया है—शासन या सत्ता प्राप्त होने पर जो उसका दुरुपयोग करता है, प्रजा पर अनुचित कर लादता है, रिश्वत लेता है, उसे इस पाप का फल इस प्रकार भोगना पड़ता है। आधुनिक वातावरण में पले-पुसे सत्ता के लोभी शासकों के लिए यह कथा सर्चलाइट की तरह उपयोगी है।

उज्झितक कथानक—

गौ-मांसभक्षण, मद्यपान और विषयासक्ति के दुःखद फलों को बताने के लिए 'उज्झितक' कुमार की कथा दी गई है। 'उज्झितक' वाणिज्यग्राम के विजयमित्र सार्थवाह का पुत्र था। गौतम गणधर वाणिज्यग्राम में भिक्षा के लिए पधारे। उन्होंने अत्यधिक कोलाहल सुना। उन्हें मालूम हुआ कि राजा के अधिकारी गण किसी व्यक्ति को बाँधकर मारते-पीटते हुए ले जा रहे हैं। गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया—इसे इतना कष्ट क्यों दिया जा रहा है? भगवान् ने उत्तर में कहा—हस्तिनापुर में 'भीम' नामक एक कूटग्राह अर्थात् पशुओं का तस्कर रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'उत्पला' था। जब वह गर्भवती हुई तब उसे गाय, बैल आदि के मांस खाने की इच्छा हुई। उसकी पूर्ति की गई। गायों को त्रास देने के कारण उसका नाम 'गौत्रास' रखा गया। वह जीवन भर गौ-माँस का उपयोग करता रहा। वहाँ से मरकर वाणिज्यग्राम में 'विजयमित्र' के यहाँ पर यह 'उज्झितक' नाम का पुत्र हुआ। जब यह बड़ा हुआ तब इसके माता-पिता का देहान्त हो गया। नगर-रक्षक ने इसे घर से निकाल दिया। कुसंगति में पड़ने से द्यूतगृह, वेश्यागृह, मद्यगृह आदि में घूमने लगा। वाणिज्यग्राम में 'कामध्वजा' वेश्या थी। वह अत्यन्त रूपवती और कलाओं में दक्ष थी। उनके अनुपम सौन्दर्य पर उज्झितक आसक्त हो गया।। कामध्वजा वेश्या राजा को भी प्रिय थी। अतः राजा ने अपने अनुचरों से उसे पकड़वाया और उसकी खूब मरम्मत की। उसे शूली पर चढ़ाया गया। पाप कर्म के कारण यह नरक आदि गतियों में परिभ्रमण करेगा। यह विषयासक्ति का कटु परिणाम है।

प्रस्तुत कथानक में यह बात प्रतिपादित की गई है कि हँसते हुए व्यक्ति पाप कृत्य करता है, उसका फल जब प्राप्त होता है तब रो-रोकर भुगतने पर भी वह छूटता नहीं है।

अभग्नसेन—

पाप की दारुण कथा का इसमें चित्रण हुआ है। पुरिमतालशालाटवी चोरपल्ली में 'विजय' नाम का एक तस्कर अधिपति रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'खंदसिरी' था। उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'अभग्नसेन' रखा गया। गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने उनका पूर्वभव सुनाते हुए कहा—अभग्नसेन पूर्वभव में 'निन्नअ' नामक अण्डों का व्यापारी था। वह कबूतरी, मुर्गी, मोरनी आदि के अण्डों को स्वयं एकत्रित करता, दूसरों से करवाता, फिर उन अण्डों को आग पर तलता, भूनता और उन्हें बेचकर अपना जीविकोपार्जन करता तथा स्वयं अण्डों का भक्षण भी करता था, जिसके फलस्वरूप वह तृतीय नरक में उत्पन्न हुआ और वहाँ से आयु पूर्ण होने पर 'अभग्नसेन' तस्कर हुआ है। इसने प्रजा के तन, धन, जन का अपहरण कर उन्हें विविध यातनाएँ दीं जिससे राजा ने क्रुद्ध होकर पकड़ने के लिए अनेक प्रयास किये, पर वह सफल न हो सका। एक बार विराट उत्सव का आयोजन कर उसे आमंत्रित किया गया। अनेक प्रकार की यातनाएँ देकर उसे शूली पर चढ़ाया गया। पाप का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

शकट—

'शकट' साहंजनी ग्राम के 'सुभद्र' नामक सार्थवाह का पुत्र था। गणधर गौतम ने देखा—राजपथ पर अनेक व्यक्तियों से घिरा हुआ एक व्यक्ति खड़ा है और उसके पीछे एक महिला भी। उन दोनों के नाक कटे हुए थे तथा गाढ़ बन्धनों में वे जकड़े हुए भी थे। उच्च स्वर से वे पुकार रहे थे—हम अपने पाप का फल भोग रहे हैं। गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—ये कौन हैं? और इन्होंने ऐसा कौन सा पापकृत्य किया है जिसका ये फल भोग रहे हैं? भगवान् ने समाधान करते हुए कहा–'छगलपुर' नगर में 'छन्निक' नामक कसाई था। वह विविध प्रकार के पशुओं का मांस बेचता था। इस पाप के फलस्वरूप वह मरकर चतुर्थ नरक में गया और वहाँ से निकलकर वैश्य सुभद्र की पत्नी 'भद्रा' की कुक्षि से पैदा हुआ तथा सप्त कुव्यसनों का सेवन करने लगा। 'सुदर्शना' नामक वेश्या से वह प्रेम करता था। प्रधान-अमात्य 'सुषेण' भी उस वेश्या पर अनुरक्त था। सुषेण ने एक बार वेश्या के साथ उसे देखा और उस पर कुपित हो गया। सुषेण की आज्ञा से एवं पूर्वकृत पाप कर्मों के कारण इन दोनों की यह स्थिति हुई है। इस प्रकार हिंसकवृत्ति व दुराचार के कारण यह अनेक जन्मों में दुःख पायेगा।

यह सत्य है कि किये हुए कर्मों को भोगना पड़ता है। यद्यपि नास्तिक या भौतिकवादी व्यक्तियों को यह विश्वास नहीं होता। "कृतस्य कर्मणो नूनं, परिणामो भविष्यति" व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु फल भोगने में परतंत्र है। यदि उसे यह ध्यान हो जाये कि मुझे कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा तो वह कर्म बाँधने से अपने आपको बचाने का प्रयास करेगा।

प्रस्तुत कथानक में यही रहस्य व्यक्त किया गया है।

बृहस्पतिदत्त—

बृहस्पतिदत्त कोशाम्बी के 'सोमदत्त' पुरोहित का पुत्र था। वह पूर्वभव में 'महेश्वरदत्त' नाम का राजपुरोहित था। वह राजा की बलवृद्धि और स्वास्थ्य लाभ के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के बालकों को मारकर नरमेध यज्ञ करता था। जिस पाप के फलस्वरूप वहाँ से मरकर वह पाँचवीं नरक में गया और वहाँ से निकलकर यह 'बृहस्पतिदत्त' हुआ है। राजकुमार का 'बृहस्पतिदत्त' पर अत्यधिक स्नेह था। अतः राजा की मृत्यु के बाद यह राजपुरोहित बना। महारानी पर अनुरक्त हो जाने से राजा ने इसे मृत्यु दण्ड दिया। इस प्रकार पूर्वकृत कर्मों के कारण यह विविध योनियों में परिभ्रमण करता रहेगा।

इस कथा में भी हिंसा और व्यभिचार के कटु परिणामों को व्यक्त किया गया है।

नन्दीवर्द्धन कुमार—

नन्दीवर्द्धन 'श्रीदाम' राजा का पुत्र था। वह पूर्वभव में किसी राजा के यहाँ कोतवाल था। अपराधियों को अत्यधिक क्रूर दण्ड देकर वह आनन्द की अनुभूति करता था। जिस पाप के फलस्वरूप वह मरकर छठी नरक में गया। नरक से निकलकर राजा का पुत्र 'नन्दीवर्द्धन' हुआ। उसने अपने पिता को मारकर स्वयं राज्य लेना चाहा और उस षड्यन्त्र में उसने एक नाई का सहयोग लिया। समय के पूर्व ही रहस्य खुल जाने से राजा ने अपने हत्यारे पुत्र नन्दीवर्द्धन को प्राणदण्ड दिया। पूर्वकृत कर्मों के

कारण इसे अनेक जन्मों तक भयंकर दुःख भोगना पड़ेगा। कथा का सार यह है कि अपराधी व्यक्ति को भी निर्दयता से दण्ड नहीं देना चाहिए और दण्ड देकर आह्लादित नहीं होना चाहिए।

उम्बरदत्त—

उम्बरदत्त 'सागरदत्त' सार्थवाह का पुत्र था। पूर्वभव में वह एक कुशल वैद्य था तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा में निष्णात था। वह रुग्ण व्यक्तियों को मद्य, मांस, मत्स्य भक्षण का उपदेश देता और कहता—इससे तुम्हें शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होगा। इस पाप के फलस्वरूप वह छठी नरक में पैदा हुआ और वहाँ से मरकर यह 'उम्बरदत्त' हुआ है। दुराचार के सेवन से और पूर्वकृत पाप कर्मों के कारण इसके शरीर में सोलह महारोग पैदा हुए। यहाँ से मरकर यह अनेक जन्मों में दुःख प्राप्त करेगा। इस प्रकार पूर्व में कृत पाप कर्मों का फल प्रत्येक जीव को भोगना ही पड़ता है—यह बात कथा के माध्यम से स्पष्ट की गई है।

शौरिकदत्त—

शौरिकदत्त समुद्रगुप्त नामक एक धीवर का पुत्र था। शौरिकदत्त पूर्वभव में किसी राजा के यहाँ भोजन निर्माण का कार्य करता था। वह भोजन में विविध प्रकार के पशु-पक्षी व मत्स्य के मांस को तैयार कर स्वयं भी खाता और राजा को भी खिलाकर आनन्दित होता था जिसके फलस्वरूप वह मरकर छठी नरक में पैदा हुआ और वहाँ से निकल कर यह 'शौरिकदत्त' हुआ। यह एक दिन मछली को भूनकर खा रहा था कि मछली का काँटा इसके गले में चुभ गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह कांटा नहीं निकला। भयंकर वेदना से कष्ट पाकर इसने आयु पूर्ण किया और मरकर नरक आदि गतियों में परिभ्रमण करेगा। प्रस्तुत कथानक में भी पाप के फल का ही चित्रण किया गया है और यह सन्देश दिया गया है कि पाप के कार्यों से बचा जाय।

देवदत्ता

देवदत्ता 'दत्त' नामके गृहपति की कन्या थी। 'वैश्रमणदत्त' राजा के पुत्र 'कुशनन्दी' के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। कुशनन्दी माता का परम भक्त था। वह तेल आदि से माता का मर्दन करता। उसकी हर प्रकार की सुख-सुविधा का ध्यान रखता पर देवदत्ता को यह बात पसन्द नहीं थी, इसीलिए रात्रि में सोती हुई सास को देवदत्ता ने मार दिया। राजा को ज्ञात होने पर उसने देवदत्ता के वध की आज्ञा दो। इस प्रकार वह पूर्वकृत पाप के कर्मों के कारण अनेक जन्मों तक दारुण वेदना का अनुभव करती रहेगी।

अंजू कथानक

अंजू 'धनदेव' सार्थवाह की कन्या थी। 'विजय' नामक राजा के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। गुह्य स्थान पर भयंकर शूल रोग पैदा होने से अंजू को अपार कष्ट हुआ। नाना प्रकार के उपचार करवाये, किन्तु रोग शान्त नहीं हुआ। जिससे उसके शरीर की कान्ति नष्ट हो गई। एक बार गणधर गौतम ने उसकी अस्थि-पंजरसम काया देखी तो भगवान् से जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवान् महावीर ने उसके पूर्वजन्म का वर्णन करते हुए कहा—यह पूर्वभव में वेश्या थी। उस पाप के कारण ही इस जन्म में इसे कष्ट भोगना पड़ रहा है। इसके पश्चात् भी इसे अनेक जन्मों तक कष्ट भोगने पड़ेंगे।

इस प्रकार 'मृगापुत्र' से लेकर 'अंजू' कथानक तक दश कथायें दी गई है। इनका मूल आधार विपाक सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध है। इन दशों कथाओं के सभी पात्र ऐतिहासिक ही हों, यह बात नहीं है। किन्तु पौराणिक और प्राग् ऐतिहासिक काल के पात्र हैं। इन सभी कथाओं में हिंसा, स्तेय और अब्रह्म के कटुक परिणाम प्रतिपादित किये गये हैं, पर असत्य और महापरिग्रह के परिणामों की चर्चा नहीं हुई है। शास्त्रकार का मूल उद्देश्य यही है कि साधक पाप से निवृत्त हों और शुभ भावों में परिणति करें तथा शुद्धता की ओर अग्रसर हों।

इसी दृष्टि से गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान महावीर ने विविध प्रसंग बताकर जीवन का महान तथ्य उजागर किया।

पूरण बाल तपस्वी—

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर को दिव्य देव ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई ? भगवान् ने कहा—बेभेल सन्निवेश में 'पूरण' गृहपति था। उसने तामली तापस की तरह अपने ज्येष्ठ पुत्र को गृहभार सम्भलाकर 'दानामा' प्रव्रज्या ग्रहण की। वेले के पारणे में चार खण्ड वाला लकड़ी का पात्र लेकर वह भिक्षा के लिए निकलता।

प्रथम खण्ड में आने वाली भिक्षा पथिकों को देता, दूसरे खण्ड की भिक्षा कौवे और कुत्तों को खिलाता, तीसरे खण्ड की भिक्षा मछलियों और कछुओं को खिलाता और चतुर्थ खण्ड की भिक्षा स्वयं ग्रहण करता। इस प्रव्रज्या में दान की प्रधानता होने से यह प्रव्रज्या 'दानामा' कहलाती थी। क्योंकि वह तीन खण्डों में से तो दान दे देता तथा केवल एक खण्ड का ही आहार करता और वह भी दो दिन के बाद में। जब 'पूरण' बालतपस्वी का शरीर अत्यन्त कृश हो गया, उसे यह अनुभव हुआ कि अब मैं साधना करने में समर्थ नहीं हूँ तब उसने पादपोपगमन संथारे के द्वारा अपनी आत्मा को भावित किया। भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—हे गौतम! मैं उस समय छद्मस्थ अवस्था में था। मुझे दीक्षा ग्रहण किये हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। ग्रामानुग्राम विचरता हुआ मैं 'सुषमापुर' नगर के अशोक वनखण्ड में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर अट्ठम तप कर और एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर कर तथा एक रात्रि की महाप्रतिमा को धरण कर ध्यानस्थ था। उस समय 'पूरण' बालतपस्वी साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर 'चमरचंचा' राजधानी में इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उसने सौधर्म कल्प में शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते हुए अवधिज्ञान से देखा। चमरेन्द्र के मन में आक्रोश पैदा हुआ कि यह कौन है? सामानिक देवों ने कहा—वे शक्रेन्द्र हैं। चमरेन्द्र ने कहा—वह दुरात्मा मेरे सिर पर बैठा हुआ है? सामानिक देवों ने निवेदन किया—शक्रेन्द्र ने पूर्व अर्जित पुण्यों के प्रभाव से यह विपुल ऋद्धि और अतुल पराक्रम प्राप्त किया है। इतना सुनते ही चमरेन्द्र का क्रोध अति प्रबल हो उठा। वह युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुआ। सभी देवों ने ऐसा न करने के लिए आग्रह किया, पर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा।

चमरेन्द्र ने सोचा—शक्रेन्द्र महान् पराक्रमी है तो मैं पराजित होकर किसकी शरण लूंगा? वह मेरे पास आया और कहने लगा—मैं अपकी शरण से शक्रेन्द्र को जीत लूंगा। अतः उसने एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाया और अपने शस्त्र को घुमाता हुआ तथा गम्भीर गर्जना से देवों को भयभीत करता हुआ सौधर्मेन्द्र पर लपका। उसने एक पैर सौधर्मावतंसक विमान की वेदिका पर रखा और दूसरा पैर सुधर्मा सभा पर। उसने शस्त्र से इन्द्रकील पर तीन बार प्रहार किया और सौधर्मेन्द्र को अपशब्द कहे।

सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से सब कुछ जान लिया। उसने चमरेन्द्र पर प्रहार करने के लिए वज्र को फैंका। चमरेन्द्र भय से भयभीत बना हुआ अपने शरीर का संकोच करता है और "आपकी शरण है—आपकी शरण है" इस प्रकार चिल्लाता हुआ अपना सूक्ष्म रूप बनाकर मेरे पैरों में छिप गया। शक्रेन्द्र ने देखा—बिना अरिहन्त की शरण के असुर यहाँ आ नहीं सकता। यह भगवान् महावीर की शरण लेकर यहाँ आया और पुनः उनकी शरण में पहुँच गया है। वज्र भगवान् के अत्यन्त निकट पहुँच चुका है, केवल चार अंगुल दूर रहने पर शक्रेन्द्र ने उसका संहरण कर लिया। शक्रेन्द्र ने भगवान् को वन्दन कर चमरेन्द्र से कहा—तुम भगवान् महावीर की असीम कृपा से बच गये हो। अब भयभीत मत बनो। यह कहकर शक्रेन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

गणधर गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया—देव, जो दिव्य शक्ति का धनी है, वह किसी पुद्गल को पहले फेंककर फिर उस पुद्गल को पीछे से जाकर पकड़ने में समर्थ है या नहीं? भगवान् ने कहा—वह समर्थ है, क्योंकि जो पुद्गल प्रक्षिप्त किया जाता है उसकी गति पहले शीघ्र होती है तथा बाद में मन्द हो जाती है किन्तु दिव्य ऋद्धि वाले देव की गति पहले भी शीघ्र होती है और बाद में भी।

गौतम ने दूसरी जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! यदि देव पीछे से पुद्गल को पकड़ने में समर्थ है तो शक्र असुरेन्द्र को क्यों नहीं पकड़ सका? भगवान् ने फरमाया—असुरेन्द्र की नीचे जाने की गति तीव्र होती है और ऊपर जाने की गति मन्द और मन्दतर होती है। वैमानिक देवों की ऊर्ध्व गति तीव्र होती है और अधोगति मन्द होती है। असुरेन्द्र एक समय में जितने क्षेत्र नीचे जा सकता है उतने क्षेत्र नीचे जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं और वज्र को तीन समय लगते हैं। इस कारण से शक्रेन्द्र असुरेन्द्र को पकड़ने में समर्थ नहीं है।

असुरेन्द्र अपने स्थान पर पहुँचा। उसने सोचा—मैंने ठीक नहीं किया। शक्रेन्द्र ने मेरा भयंकर अपमान किया है। सामानिक देवों ने कहा—आप चिन्तामुक्त हों। असुरेन्द्र ने कहा—जिन महाप्रभु भगवान् महावीर की शरण लेकर मैं बच सका हूँ उनका मेरे पर महान् उपकार है, अतः हम सब वहाँ चलें। वह अपनी दिव्य ऋद्धि के साथ भगवान् महावीर के पास आया और बत्तीस प्रकार के नाट्य दिखाकर स्व-स्थान को लौट गया। गौतम ने पूछा—भगवन्! क्या असुरेन्द्र मुक्त होंगे? भगवान् ने उत्तर दिया—हाँ, यह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्त होंगे।

स्थानांग में दश आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी होने वाली विशेष घटना! सामान्य रूप से जो घटना नहीं होती पर अनन्त काल के पश्चात् स्थिति विशेष से जो घटना होती है, उसे आश्चर्य की संज्ञा दी गई है। चमर कभी सौधर्म सभा में जाते नहीं और वे गये, यह आश्चर्य है।

महाशुक्र देवों का आगमन—

एक बार महाशुक्र देवलोक से दो देव आये और भगवान् महावीर को वन्दना करके बोले—भगवन् ! आपके कितने शिष्य सिद्ध गति को प्राप्त करेंगे ? महाप्रभु महावीर ने उत्तर दिया—मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे । यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे ।

गणधर गौतम ने प्रथम ध्यान समाप्त कर द्वितीय ध्यान में प्रवेश करने के पूर्व यह सोचा—ये दो महाऋद्धि और महा प्रभावशाली देव कौन आये हैं ? मैं उन्हें नहीं जानता । ये किस विमान से और किसलिये आये हैं ? भगवान् महावीर ने गौतम के अन्तर्मानस की बात बताते हुए कहा—तेरे मन में इस प्रकार के विचार उद्बुद्ध हुए थे, अतः तू उन्हीं देवों से पूछ । गौतम ज्योंही देवों के सामने जाने लगे, देवों ने उठकर गौतम को वन्दन किया और कहा—भगवन् ! हम महाशुक्र नामक सातवें स्वर्ग से आये हैं । हमने भगवान् से प्रश्न किया—आपके कितने शिष्य सर्व दुःखों का अन्त कर मुक्त होंगे ? भगवान् ने मन से ही उत्तर दिया—मेरे सात सौ शिष्य सिद्धि को वरण करेंगे । गणधर गौतम तथा अन्य शिष्यों को भगवान् के दिव्य ज्ञान पर आश्चर्य हुआ । इस लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी से छिपा हो, वे हस्तामलकवत् सभी पदार्थों को स्पष्ट रूप से जानते देखते हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य में से एक सौ चौदह कथाओं का प्रस्तुथ ग्रन्थ मे संकलन हुआ है । चक्रवर्ती षट्खण्डों पर विजय पताका फहराता है, वैसे ही इस ग्रन्थ में भी छह खण्ड हैं जो साधक के अन्तर्जीवन पर विजय वैजयन्ती फहराने के लिए हैं । इन खण्डों में निम्न आगमों से कथाएँ उट्टंकित की गई हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरौपपातिक, विपाक, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिया, कल्पावतंसिका, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वृष्णिदशा, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, दशाश्रुतस्कंध, कल्पसूत्र । आगम साहित्य में जहाँ भी कथायें प्राप्त हुई हैं या उस सम्बन्धी स्रोत उपलब्ध हुए हैं, उन सभी का यह श्रेष्ठ आकलन-संकलन है । प्राचीन आगमों की सूचियों के अनुसार आगमों में कथाओं का अक्षय कोष था । ज्ञातासूत्र में ही हजारों आख्यायिकाए थीं ।

ज्ञाताधर्मकथा के दो श्रुतस्कन्ध हैं । प्रथम श्रुतस्कंध में उन्नीस कथाएँ हैं ।

[१] उत्क्षिप्त ज्ञात—मेघकुमार [२] संघाट [३] अण्डक [४] कूर्म [५] शैलक [६] रोहिणी [७] मल्ली [८] माकंदी [९] चन्द्र [१०] दावद्रववृक्ष [११] तुम्ब [१२] उदक [१३] मंडूक [१४] तेतलीपुत्र [१५] नन्दीफल [१६] अमरकंका (द्रौपदी) [१७] आकीर्ण [१८] सुषमा [१९] पुण्डरीक-कण्डरीक ।

दूसरे श्रुतस्कंध में अनेक कथायें हैं, वे इस प्रकार हैं:—

[१] काली [२] राजी [३) रजनी [४] विद्युता [५] मेघा [६] शुंभ [७] निसुंभा [८] रंभा [९] निरंभा [१०] मदणा [११] ईला [१२] सतेरा [१३] सौदामिनी [१४] इन्द्रा [१५] घना [१६] विद्युता [१७] रुचा [१८] सुरुचा [१९] रुचांशा [२०] रुचकावती [२१] रुचकान्ता [२२] रुचप्रभा [२३] कमला [२४] कमलप्रभा [२५] उत्पला [२६] सुदर्शना [२७] रूपवती [२८] बहुरूपा [२९] सुरूपा [३०] सुभगा [३१] पूर्णा [३२] बहुपुत्रिका [३३] उत्तमा [३४] भारिका [३५] पद्मा [३६] वसुमती [३७] कनका [३८] कनकप्रभा [३९] अवतंसा [४०] केतुमती [४१] वज्रसेना [४२] रतिप्रिया [४३] राहिणी [४४] नवमिका [४५] ह्री [४६] पुष्पवती [४७] भुजगा [४८] भुजंगवती [४९] महाकच्छा [५०] अपराजिता [५१] सुघोषा [५२] विमला [५३] सुस्वरा [५४] सरस्वती [५५] सूर्यप्रभा [५६] आतपा [५७] अर्चिमाली [५८] प्रभंकरा [५९] चन्द्रप्रभा [६०] दोषीनाभा [६१] अर्चिमाली [६२] प्रभंकरा [६३] पद्मा [६४] शिवा [६५] सती [६६] अंजू [६७] रोहिणी [६८] नवमिका [६९] अचला [७०] अप्सरा [७१] कृष्णा [७२] कृष्णरानी [७३] रामा [७४] रामरक्षिता [७५] वसु [७६] वसुगुप्ता [७७] वसुमित्रा [७८] वसुन्धरा ।

इस प्रकार सम्प्रति कुल ९७ कथाएँ हैं । उनमें कितनी ही कथाएँ तो केवल नाम मात्र की है । उन कथाओं में सूचनाओं के अतिरिक्त घटनाओं का अभाव है ।

भाषा की दृष्टि से इन कथाओं में कितनी ही कथाओं की भाषा तो इतनी लालित्यपूर्ण है कि पाठक को सहसा संस्कृत के कादम्बरी ग्रन्थ का स्मरण हो आता है । इन कथाओं की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है । इन कथाओं का मूल उद्देश्य अहिंसा, सत्य,

अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, श्रद्धा, इन्द्रियविजय आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का सरल शैली में निरूपण करना है। इन कथाओं मे धर्म और वैराग्य का ही विशेष रूप से उपदेश दिया गया है।

समस्त कथाओं का आलोड़न करने पर यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि कथाओं में विभिन्नता होने पर भी कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, जो विभिन्नता में भी समानता बनाये हुए हैं। हम स्थूल रूप से उन प्रवृत्तियों को निम्न रूप से विभक्त कर सकते हैं—

१. शील, सदाचार और संयम का विश्लेपण।

२. आत्मा के प्रति निष्ठा और उसके विशोधन के विभिन्न उपाय।

३. मानवता की पुण्य प्रतिष्ठा के लिए जातिभेद और वर्गभेद की निस्सारता का निरूपण करना।

४. उच्च गति की प्राप्ति के लिए अहार-विहार की विशुद्धि और स्वयं के पापों की आलोचना।

५. आत्म-संशुद्धि के लिए आलोचना-प्रतिक्रमण के साथ ही प्रायश्चित्त और विविध प्रकार के तपों का निरूपण।

६. साधना मार्ग के स्वरूप को समझाने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र का विश्लेपण।

७. आचार की विशुद्धि अहिंसा से और विचार की विशुद्धि अनेकान्त—स्याद्वाद से ही सम्भव है। अतः उन सिद्धान्तों की प्ररूपणा।

८. भौतिकवाद की मृग-मरीचिका अध्यात्मवाद की वास्तविकता से ही मिट सकती है। इस बात का अनेक दृष्टियों मे निरूपण किया गया है। दया, ममता, करुणा आदि सद्गुणों के उद्घाटन से मानवता की प्रतिष्ठा हो सकती है। राग, द्वेष आदि के संस्कार अनात्म भाव के प्रतीक है। मानव स्वयं का भाग्य विधाता है। वह परोक्ष शक्ति का पल्ला छोड़कर अपने पुरुषार्थ में विश्वास करता है।

९. हिंसामूलक वैदिक क्रियाकाण्डों का वैचारिक विरोध है।

१०. यात्रा सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी।

११. कर्मवाद की गुरु ग्रन्थियों को कथाओं के द्वारा सुगम रीति से व्यक्त किया गया है। पुण्य और पाप का सफल चित्रण भी इसमें विवेचित है।

१२. शोषित और शोषक में समता लाने हेतु अपरिग्रह एवं संयम का निरूपण।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के सांस्कृतिक इतिहास के विकास में इस आगमिक कथा साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। उस युग की उदात्त संस्कृति का इन कथाओं में यत्र-तत्र निरूपण हुआ है। इन कथाओं में कितने ही पात्र प्राग् ऐतिहासिक काल के है तो कितने ही पात्र ऐतिहासिक काल के है। और कितने ही पात्र पौराणिक और काल्पनिक भी हैं।

इन कथाओं में तात्कालिक सामाजिक और सांस्कृतिक जन-जीवन का पता चलता है। आर्य और अनार्य के रूप में दो मुख्य जातियाँ थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे। जैन दृष्टि से जो व्यक्ति सदाचारी है, वह आर्य है। यदि ब्राह्मण भी सदाचार रहित है तो वह अनार्य है। जातिमद में उन्मत्त बने हुए ब्राह्मणों का विरोध करते हुए स्पष्ट कहा—'कर्म से व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होता है।' केवल सिर मुंडा लेने से श्रमण नही होता, ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नही होता, जगल में रहने मात्र से मुनि नही होता, कुश और चीवर को धारण करने से तपस्वी नही होता; अपितु समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है। इस तरह जातिवाद एवं वर्णवाद का खण्डन कर कर्म को महत्त्व दिया गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए उच्च कुलोत्पन्न शब्द व्यवहृत हुआ है। वैश्य का मुख्य कार्य व्यापार था, इसलिए इनके लिए 'वणिक' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। शूद्रों की स्थिति शोचनीय थी, किन्तु भगवान् महावीर ने शूद्रों को साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने का अधिकार दिया। 'हरिकेशबल' चाण्डाल कुल मे उत्पन्न हुए थे किन्तु उन्होंने उच्च पद प्राप्त किया। पारिवारिक जीवन में मुख्य रूप से पुरुष ही शासक होता था। अपवाद रूप से स्त्रियां भी शासन कर्त्ता थी, जैसे—थावच्चापुत्र की माता। ग्रन्थ में नारी के सभी रूप प्रकट हुए है—माता, पत्नी, बहन, वधू, पुत्री, पुत्रवधू, वेश्या आदि। नारी के पतित और आदर्श ये दोनों रूप बताये गये हैं। नारी जहां वासना के दलदल मे फँसती है, वहा वह स्वयं भी पतित होती है और दूसरों को भी पतित करती है और जब नारी अपने स्वरूप को पहचानती है तो वह पुरुषों को सन्मार्ग पर लाती है, जैसे—रथनेमि को राजमती ने, इषुकार राजा को

रानी कमलावती ने प्रतिबुद्ध किया। उस युग में पशुधन पर्याप्त था। पशु विविध कार्यों में उपयोगी थे, हाथी और घोड़ों का उपयोग युद्ध में होता था। हाथियों में 'गंधहस्ती' सर्वश्रेष्ठ था और घोड़ों में कम्बोज देशोत्पन्न घोड़े सुशिक्षित, युद्धोपयोगी और श्रेष्ठ माने जाते थे। कालिकद्वीप के अश्व भी उत्तम नस्ल के माने जाते थे। आनन्द आदि श्रावकों के पास हजारों गायों के गोकुल थे। पशुओं को शिक्षण भी दिया जाता था। शिक्षित पशु-पक्षी जन-जन का मनोरंजन भी करते थे। व्यापार सुदूर प्रदेशों में भी चलता था। समुद्र यात्रायें भी होती थीं पर आज की तरह उस युग में समुद्र यात्रा सरल नहीं थी। कई बार संचालक मार्ग भूलकर दिशाभ्रमित हो जाता था। तूफान आने पर रक्षा के लिए समुचित साधन नहीं थे। मुख्य रूप से उस समय सोलह महारोग प्रचलित थे। बहुत से चिकित्सक भी थे, जो वमन, विरेचन, औषधि सेवन, धूम्रप्रदान, नेत्रस्नान, सर्वोपधिस्नान, मन्त्र विद्या आदि के द्वारा चिकित्सा करते थे। उस युग में मंत्र-तंत्र, शक्ति तथा शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले तन्त्रों में भी विश्वास था। समाज में सुख-शांति बनाये रखने के लिए शासन व्यवस्था थी। शासन करने वाला राजा कहलाता था। वे प्रायः एक देश के स्वामी होते थे। वे अपने देश की उन्नति के लिए प्रयत्न करते थे। सभी देशों पर एकछत्र राज्य करने वाला 'चक्रवर्ती' कहलाता था। सभी राजागण चक्रवर्ती को नमस्कार करते थे। लावारिस सम्पत्ति का अधिकारी राजा होता था। राजागण अपनी कोषवृद्धि के लिए जागरूक रहते थे। चोर आदि को दण्ड दिया जाता था। भयंकर अपराध होने पर मृत्युदण्ड का भी विधान था। वधस्थान पर ले जाते समय अपराधी की एक निश्चित वेशभूषा थी। उसे शहर में घुमाया जाता, जिससे अन्य लोग वैसा कार्य न करें। शरणागत की रक्षा के लिए प्राणों की भी बाजी लगाई जाती थी। नाट्यकला, स्थापत्यकला, संगीतकला, चित्रकला आदि कलाओं के विकास में राजा और श्रेष्ठियों का योगदान होता था। जन-मानस की प्रवृत्ति भोगविलास की ओर अधिक थी। उस प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करने के लिये साधुगण कठिन परीषह सहन कर ग्रामानुग्राम विचरण करते और अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को त्यागमार्ग का पावन उपदेश प्रदान करते थे। इस प्रकार प्रस्तुत धर्मकथानुयोग में उस युग के समाज और संस्कृति का परिचय मिलता है। किसी एक काल विशेष की रचना न होने से इसमें चित्रित समाज और संस्कृति को एक कालविशेष का पूर्ण चित्र नहीं कह सकते तथापि तात्कालिक समाज और संस्कृति की झलक विभिन्न प्रसंगों में अवश्य मिलती है।

पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' स्थानकवासी समाज के प्रकृष्ट प्रतिभासम्पन्न, आगम साहित्य के मर्मज्ञ और धुन के धनी सन्त हैं। उन्होंने कठिन श्रम कर बत्तीस आगमों में आये हुए अनुयोगों का पृथक्करण किया। यह कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य है। जहां तक मुझे स्मरण है संन् १९५३ से भी पूर्व वे इस कार्य में लगे हुए हैं। उन्होंने अनेक बार प्रेस-कापियाँ तैयार कीं, किन्तु लगा कि यह क्रम ठीक नहीं है। इसमें इस प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए। जिस किसी भी मूर्धन्य मनीषी ने उनको सुझाव दिया, उसके सुझाव को स्वीकार कर पूर्व योजना को स्थगित कर नवीन रूप से वर्गीकरण में जुट जाते रहे हैं। इस प्रकार भागीरथ प्रयत्न के पश्चात् गणितानुयोग के बाद वे धर्मकथानुयोग को प्रस्तुत कर रहे हैं।

धर्मकथानुयोग ग्रन्थ में स्वयं मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' का अपनी ओर से कुछ भी नहीं है पर इसमें उनका अथक श्रम है। वर्षों तक आगम साहित्य का मंथन कर जो अमृत निकाला है, वह प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। मंथन में जो श्रम होता है, वह अनुभवी ही जान सकता है और वही उसका मूल्यांकन कर सकता है। वस्तुतः मुनिश्री का यह मंथन समुद्र के मंथन की तरह ही कठिन रहा है, पर आह्लाद है कि उन्होंने अमृत सर्वजनों के लिए सुलभ कर दिया। यह सही है कि इस मंथन में उन्होंने अपने स्वास्थ्य का भोग दिया। कठिन श्रम से स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है, किन्तु उसकी उपेक्षा कर वे दिन-रात इस कार्य में लगे रहे जिसका सुफल धर्मकथानुयोग है।

पं० मुनिश्री के प्रेम भरे आग्रह को सन्मान देकर मैंने प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति दी। मेरी परमादरणीया, साध्वीरत्न, मातेश्वरी, महासती श्री प्रभावती जी का संथारे के साथ खैरोदा ग्राम में अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। मेरा स्वयं का स्वास्थ्य भी ज्वर, आदि के कारण काफी अस्वस्थ रहा। इसलिए मैं जिस रूप में और जिस विस्तार के साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था, स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण नहीं लिख पाया तथापि जो कुछ लिख गया हूँ, वह पाठकों को धर्मकथानुयोग को समझने में पूर्ण सहायक होगा, ऐसा मेरा स्पष्ट मत है।

मेरी दृष्टि से जैन कथा साहित्य का वैदिक और बौद्ध साहित्य के साथ तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन होना चाहिए। उस अध्ययन में बहुत कुछ नये तथ्य प्रकट हो सकते हैं। आज आवश्यकता है—शोधार्थियों को व्यापक दृष्टि से अनुसंधान करने की। मैंने अपनी प्रस्तावना में कुछ कथाओं का इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। इस कार्य को अधिक व्यापक रूप देने की आवश्यकता है।

धर्मकथानुयोग के प्रस्तुत संस्करण में केवल मूल आगमानुसारी कथायें दी जा रही हैं, इसलिए प्रत्येक पाठक कथा के हार्द को समझ सके इस दृष्टि से मैंने प्रत्येक कथा का सारांश फलितार्थ प्रस्तावना में देने का प्रयास किया है और जहाँ भी मुझे लगा, वहाँ विषय को स्पष्ट किया है। प्रस्तावना के पृष्ठों की भी एक सीमा है, उस दृष्टि से चाहते हुए भी अनेक विषयों की चर्चाएँ मैंने नहीं की है। जैसे—भौगोलिक दृष्टि से नगरियों का परिचय, वर्तमान में उनकी अवस्थिति आदि। जिज्ञासु पाठक मेरे अन्य ग्रन्थों में उस सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। परम श्रद्धेय, सद्गुरुवर्य, राजस्थान केसरी, अध्यात्मयोगी, उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म० जो 'कमल' मुनिजी के अनन्य सहयोगी व स्नेही साथी रहे हैं, उन्हीं के मार्गदर्शन में मैं कुछ लिख गया हूं। आशा ही नहीं विश्वास है कि यह शानदार कृति भारती के भण्डार की शोभा में चार चांद लगायेगी।

सुज्ञेषु किं बहुना !

विजयादशमी — देवेन्द्रमुनि "शास्त्री"

२७ अक्टूबर, १९८२

सिंहपोल, जैनस्थानक, जोधपुर (राज०)

धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ। धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ। पवयणपभावे णं जीवे आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबन्धइ।

—उत्तरा० २९/२४

—भन्ते ! धर्मकथा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

धर्मकथा से निर्जरा होती है। जिन प्रवचन की प्रभावना करता है। प्रवचन की प्रभावना करने वाला जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने वाले कर्मों का अर्जन करता है।

धर्मकथानुयोग की सांकेतिक शब्दसूचि

अ०	अध्ययन
अणु०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र
अणुत्त०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र
आया०	आचारांगसूत्र
आया० सु०	आचारांग श्रुतस्कन्ध
आव०	आवश्यक सूत्र
उ०	उद्देशक
उत्त०	उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तर०	उत्तराध्यर्यन सूत्र
उवा०	उपासकदृशांग सूत्र
उवं०	उपांग
ओव०	औपपातिक सूत्र
अंत०	अन्तकृद्दशा सूत्र
अंत० व०	अन्तकृतंद्दशा वर्ग
कप्प	कल्पसूत्र
कप्पव०	कल्पावतंसिका (कप्पवडंसिया)
गा०	गाथा
चु०	चूर्णि०
जीवा०	जीवाभिगमसूत्र
जम्बु०	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
जम्बु० व०	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार
ठा०	स्थानांग सूत्र
ठाणं०	स्थानांग सूत्र
णाया०	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
दस०	दशवैकालिक सूत्र
दसा सुय०	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र,
द्वा०	द्वार
नि०	निर्युक्ति
निर०	निरयावलिका सूत्र
प०	पद, पर्व
पडि०	प्रतिपत्ति
पण्ण०	प्रज्ञापना
पण्ण० प०	प्रज्ञापना पद
पा०	पाहुड (प्राभृत)
पुप्फि०	पुप्फिया (पुष्पिका)
प्रव०	प्रवचनसारोद्धार
भा०	भाग
भग०	भगवती सूत्र
भग० स०	भगवती सूत्र शतक
महा० प०	महावीरचरियं पर्व
रायप०	राजप्रश्नीय सूत्र
व०	वर्ग, वक्षस्कार
वण्हि०	वण्हिदशा सूत्र
विवाग सु०	विपाक सूत्र श्रुतस्कन्ध
विशे०	विशेपावश्यक भाष्य
श०	शतक
स०	समवाय, शतक
सम०	समवायांग सूत्र
सु०	सुयखन्ध (श्रुतस्कन्ध), सुत्त (सूत्र)
सम० स०	समवायांग समवाय
सत्त० स्था०	सप्ततिशतस्थानप्रकरणम्
सप्त० स्था०	" " "
संव०	संवरद्वार
सूय० सु०	सूत्रकृतांग श्रुतस्कन्ध
सूरि०	सूर्यप्रज्ञप्ति
ज्ञाता०	ज्ञाताधर्मकथांग

□□□□

विषय-सूची

धर्मकथानुयोग–प्रथमस्कन्ध–विषय-सूची

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

सूत्रांक



धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची — सूत्रांक

१. सूत्रांक नहीं है।

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

१. इसी सूत्र के अन्तर्गत है

२. सूत्रांक पृष्ठ ११४ पर दिया है; किन्तु इस शीर्षक के नीचे देना उचित था। (संशोधन करें)

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची		सूत्रांक
१३	तदनन्तर असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा मानने लगे	२७४
१४	ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह में सिद्धी	२७५
१८	**आर्द्रक का अन्यतीर्थिक के साथ वाद**	**२७६-२८३**
१	भ. महावीर की जीवनचर्या के सम्बन्ध में गोशालक का आक्षेप	२७६
२	आर्द्रक का उत्तर	—
३	गोशालक ने कहा-शीतोदग आदि के सेवन में पाप नहीं है	२७७
४	आर्द्रक का उत्तर	—
५	वाद करने वालों की परस्पर (एक दूसरे की) निन्दा करते हो। गोशालक का आक्षेप	२७८
६	आर्द्रक का उत्तर	—
७	मेधावी पुरुषों के प्रश्नों के भय से महावीर आरामगृह में नहीं ठहरता है।	—
	गोशालक का आक्षेप	२७९
८	आर्द्रक का उत्तर	—
९	महावीर वणिक जैसा है—गोशालक का आक्षेप[1]	—
१०	आर्द्रक का उत्तर	—
११	बुद्ध भिक्षुओं की हिंसा-अहिंसा के विषय में शाक्यवादियों का मत	२८०
१२	आर्द्रक का उत्तर	
१३	स्नातकों को भोजन कराने से पुण्यार्जन होता है—यह वेदवादियों का मत है	२८१
१४	आर्द्रक का उत्तर	
१५	सांख्य परिव्राजकों के अव्यक्त पुरुष-सम्बन्धि मन्तव्य	२८२
१६	आर्द्रक का उत्तर	
१७	हस्तितापसों के अभिप्राय का निरूपण	२८३
१८	आर्द्रक का उत्तर	
१९	**भ. महावीर के तीर्थ में अतिमुक्तकुमार श्रमण**	**२८४-२८९**
१	पोलासपुर के राजा का पुत्र अतिमुक्तकुमार	२८४
२	गौतम की भिक्षाचर्या	२८५
३	गौतम और अतिमुक्त कुमार का संवाद	२८६
४	अतिमुक्त कुमार की प्रव्रज्या	२८७
५	अतिमुक्त कुमार श्रमण की क्रीड़ा	२८८-२८९
२०	**भ. महावीर के तीर्थ में अलक्षराजर्षि**	
१	अलक्षराजा की प्रव्रज्या	२९०
२२	**भ. महावीर के तीर्थ में मेघकुमार श्रमण**	**२९१-३७६**
१	राजगृह में श्रेणिक राजा	२९१
२	श्रेणिक-भार्या धारिणी	२९२
३	धारिणी का स्वप्न-दर्शन	२९३
४	श्रेणिक को स्वप्न-निवेदन	२९४
५	श्रेणिक ने स्वप्न की महिमा कही	२९५
६	धारिणी की स्वप्न-जागरणा	२९६
७	स्वप्नपाठकों को निमंत्रण दिया	२९७
८	श्रेणिक ने स्वप्न-फल पूछा	२९८
९	स्वप्न-फल कथन	२९९

१. सूत्रांक लगाना छूट गया है।

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची | सूत्रांक

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

---

१. अध्ययन का क्रमांक और अध्ययन का शीर्षक लिखना छूट गया है।
यहाँ केवल अध्ययन का शीर्षक दिया है।

२. शीर्षक छूट गया है।

धर्मकथानुयोगः द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची — सूत्रांक

१ शीर्षक छूट गया है
२ शीर्षक छूट गया है

१ सूत्रांक देना छूट गया है।

पृष्ठांक	धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

१ शीर्षक छूट गया है.

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

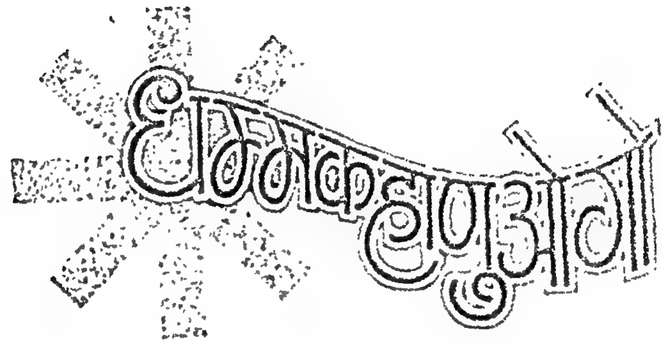
1 मुद्रित पृष्ठ ३१९ में क्रमांक ४४ को ४३ मानकर पढ़ें तथा आगे भी संशोधन करलेवें

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

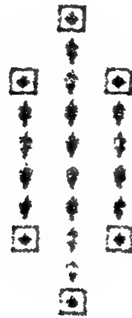
[1] धन्यसार्थवाह के कथानक से यह सूत्र सर्वथा भिन्न है। [illegible]

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

□ □



[धर्मकथानुयोग]



पढमो खंधो

[प्रथम स्कन्ध]

धम्मकहाणुओगो

(धर्मकथानुयोग)

प्राथमिक

- जैन आगमों मे वर्णित चरित्र-कथाओं का संकलन प्रस्तुत धर्मकथानुयोग में किया गया है।
- प्रथम स्कंध में उत्तम पुरुषों के जीवन-चरित्रों से सम्बन्धित वर्णन संकलित है।
- संसार में जो पूज्य, श्रेष्ठ या सम्माननीय माने जाते हैं, उन्हें 'उत्तम पुरुष' कहा जाता है। जैन परिभाषा में इन्हें 'शलाका-पुरुष' भी कहा गया है। शलाका-पुरुष का भी अर्थ यही है—वे विशिष्ट प्रशंसनीय पुरुष, जिनकी गणना अंगुलियों पर की जाती है।
- २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव तथा ९ प्रतिवासुदेव—इस प्रकार श्रेसठ शलाका पुरुष या उत्तम पुरुष बताये गये हैं।
- 'कुछ आचार्यों ने ९ प्रतिवासुदेव को उत्तम पुरुष नहीं माना है। उनकी गणना में 'चौपन महापुरुष' का ही उल्लेख है।
- प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से पूर्व कुलकर व्यवस्था थी। वैसे तृतीय आरे के अन्तिम (तृतीय) भाग में कुलकर व्यवस्था प्रारम्भ होती है। कुलकर का अर्थ है—मानवसमूह कुल की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष। इन्हें मानव कुलका नेता भी कह सकते हैं। वृक्षों से मनुष्यों की आवश्यकता-पूर्ति होती रहती है, अतः युगल काल में वृक्षों का सर्वाधिक महत्व है, इसलिए दस प्रकार के वृक्षों का वर्णन भी उनके वर्णन में अन्तर्निहित है।
- इस प्रकार प्रथम स्कंध में कुलकर तथा उनके पश्चात् तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, भगवती मल्ली, अर्हत् अरिष्टनेमि, पुरुषादानी पार्श्वनाथ, श्रमण भगवान महावीर, महापद्म तीर्थंकर (आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले श्रेणिक जीव—) आदि का वर्णन है। तीर्थंकर सामान्य में तीर्थंकरों की संख्या, अवगाहना, आगारवास, श्रमण-श्रमणी आदि का वर्णन संकलित है। इसके पश्चात् चक्रवर्ती भरत, तथा अन्य चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि उत्तम पुरुषों का वर्णन संग्रहीत है।
- यह वर्णन किसी एक ही आगम (सूत्र) में नहीं है, आगमों में प्रसंगानुसार यत्र-तत्र विकीर्ण है। इसलिए इसमें प्रवाहबद्धता नहीं मिलेगी। फिर भी समग्रता व सर्वांगता लाने का प्रयत्न किया गया है, और इस समग्रता में प्रवाह-बद्धता भी माला में सूत्र की भाँति अनुस्यूत है।

पढमो खंधो

प्रथम स्कंध

उत्तमपुरिसकहाणगाणि

उत्तमपुरुषकथानक

अज्झयणा	अध्ययन
मंगलसुत्ताणि	मंगलसूत्र
१. कुलगरा	१. कुलकर
२. उसह-चरियं	२. ऋषभ-चरित्र
३. मल्लि-चरियं	३. मल्लि-चरित्र
४. अरिट्ठनेमि-चरियं	४. अरिष्टनेमि-चरित्र
५. पास-चरियं	५. पार्श्व-चरित्र
६. महावीर-चरियं	६. महावीर-चरित्र
७. महापउम-चरियं	७. पद्म-चरित्र
८. तित्थयर-सामण्णं	८. तीर्थंकर-सामान्य
९. भरहचक्कवट्टि-चरियं	९. भरत चक्रवर्ती-चरित्र
१०. चक्कवट्टि-सामण्णं	१०. चक्रवर्ती-सामान्य
११. बलदेव-वासुदेव-सामण्णं	११. बलदेव वासुदेव-सामान्य

मंगलसुत्ताणि

१. णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ॥[1]

—भग० स० १, उ० १, सु० १।

गाहा—एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥[2]

—आव० नि० गा० १०१८।

२. (१) अरिहंता मंगलं, (२) सिद्धा मंगलं, (३) साहू मंगलं, (४) केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं।

३. (१) अरिहंता लोगुत्तमा, (१) सिद्धा लोगुत्तमा, (३) साहू लोगुत्तमा, (४) केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

४. (१) अरिहंते सरणं पवज्जामि, (२) सिद्धे सरणं पवज्जामि (३) साहू सरणं पवज्जामि, (४) केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

—आव० अ० ४, सु० १२, १३, १४।

मंगल-सूत्र

१. अरिहंतों को नमस्कार हो।
सिद्धों को नमस्कार हो।
आचार्यों को नमस्कार हो।
उपाध्यायों को नमस्कार हो।
लोक में स्थित सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

यह पंच नमस्कार सर्व पापों का नाश करने वाला और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है।

२. (१) अरिहंत मंगलरूप है (२) सिद्ध मंगलरूप है (३) साधु मंगलरूप है (४) केवलि-प्ररूपित धर्म मंगलरूप है।

३. (१) अरिहंत लोक में उत्तम है (२) सिद्ध लोक में उत्तम है (३) साधु लोक में उत्तम है (४) केवलिप्ररूपित धर्म लोक में उत्तम है।

४. (१) अरिहंतों की शरण लेता हूँ (२) सिद्धों की शरण लेता हूँ (३) साधुओं की शरण लेता हूँ (४) केवलि-प्ररूपित धर्म की शरण लेता हूँ।

१. कुलगरा—

५. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—गाहा—

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

—ठाणं० अ०७, सु० ५५६ सम० सु० १५७।

६. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा होत्था तं जहा—गाहा—

सयंजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अमितसेणे य।
तक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ॥१॥
दढरहे, दसरहे, सयरहे ॥

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७। सम० सु० १५७।

१. कुलकर—

५. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर[3] हुए थे; यथा—गाथा—

१. मित्रदाम, २. सुदाम, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष।

६. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर हुए थे, यथा—गाथा—

१. शतंजल, २. शतायु, ३. अनन्तसेन, ४. अमितसेन, ५. तर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढ़रथ, ९. दशरथ, १०. शतरथ।

---

१. सूरि० पा० १, सु० १। आव० अ० १, सु० १।
२. विसे० गा० ३६२५।
३. मानव समूह (कुल) की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष। समूह का नेता।

७. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति, तं जहा—गाहा—
मित्तवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे।
दत्ते, सुहुमे, सुबंधू य, आगमेस्साण होक्खति ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ । सम० सु० १५८ ।

७. जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे, यथा—
१. मित्रवाहन, २. सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबन्धु ।

८. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—
सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू ॥
—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७ ।

८. जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. सीमंकर, २. सीमंधर, ३. क्षेमंकर, ४. क्षेमंधर, ५. विमलवाहन, ६. सम्मूर्ति, ७. प्रतिश्रुत, ८. दृढधनु, ९. दशधनु, १०. शतधनु ।

९. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्सति, तं जहा—गाहा—
विमलवाहणे, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे,
दढधणू, दसधणू, सयधण, पडिसुई, संमुइ त्ति ॥१॥
—सम० सु० १५८ ।

९. जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. विमलवाहन, २. सीमंकर, ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढधनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति, १० सुमति ।

१०. विमलवाहणे णं कुलकरे णवधणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था ॥
—ठाणं० अ० ९ सु० ६९६ ।

१०. विमलवाहन कुलकर (शरीर की अवगाहना से) नौ सौ धनुष ऊँचे थे ।

११. विमलवाहणे णं कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिसु, तं जहा—गाहा—
मत्तंगया य भिंगा, चित्तंगा चेव होंति चित्तरसा,
मणियंगा य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ॥१॥[1]
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ ।

११. विमलवाहन कुलकर के समय में सात प्रकार के वृक्ष उपभोग के लिए उपलब्ध हुए थे, यथा—
१. मत्तांगक, २. भृंग, ३. चित्रांग, ४. चित्ररस, ५. मण्यंग, ६. अनग्न, ७. कल्पवृक्ष ।

१२. अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥
—ठाणं० अ० ६, सु० ५१८ । सम० सु० १०६, ५ ।

१२. अभिचन्द्र कुलकर छः सौ धनुष ऊँचे थे ।

१३. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—गाहा—
पढमेत्थ विमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव णाभी य ॥१॥

१४. एएसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ होत्था, तं जहा—गाहा—चंदजसा चंदकंता, सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलगरपत्तीण णामाइं ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ । सम० सु० १५७ ।

१५. तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्ठभागावसेसे, एत्थ णं इमे पन्नरस कुलगरा समुप्पज्जित्था, तं जहा—

१. ठाणं० अ० १०, सु० [illegible]

मंगलसुत्ताणि

१. णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ॥[1]

—भग० स० १, उ० १, सु० १।

गाहा—एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥[2]

—आव० नि० गा० १०१८।

२. (१) अरिहंता मंगलं, (२) सिद्धा मंगलं, (३) साहू मंगलं, (४) केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं।

३. (१) अरिहंता लोगुत्तमा, (१) सिद्धा लोगुत्तमा, (३) साहू लोगुत्तमा, (४) केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

४. (१) अरिहंते सरणं पवज्जामि, (२) सिद्धे सरणं पवज्जामि (३) साहू सरणं पवज्जामि, (४) केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

—आव० अ० ४, सु० १२, १३, १४।

मंगल-सूत्र

१. अरिहंतों को नमस्कार हो।
सिद्धों को नमस्कार हो।
आचार्यों को नमस्कार हो।
उपाध्यायों को नमस्कार हो।
लोक में स्थित सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

यह पंच नमस्कार सर्व पापों का नाश करने वाला और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है।

२. (१) अरिहंत मंगलरूप है (२) सिद्ध मंगलरूप है (३) साधु मंगलरूप है (४) केवलि-प्ररूपित धर्म मंगलरूप है।

३. (१) अरिहंत लोक में उत्तम है (२) सिद्ध लोक में उत्तम है (३) साधु लोक में उत्तम है (४) केवलिप्ररूपित धर्म लोक में उत्तम है।

४. (१) अरिहंतों की शरण लेता हूँ (२) सिद्धों की शरण लेता हूँ (३) साधुओं की शरण लेता हूँ (४) केवलि-प्ररूपित धर्म की शरण लेता हूँ।

१. कुलगरा—

५. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—गाहा—

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

—ठाणं० अ०७, सु० ५५६ सम० सु० १५७।

६. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा होत्था तं जहा—गाहा—

सयंजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अमितसेणे य।
तक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ॥१॥
दढरहे, दसरहे, सयरहे ॥

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७। सम० सु० १५७।

१. कुलकर—

५. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर[3] हुए थे; यथा—गाथा—

१. मित्रदाम, २. सुदाम, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष।

६. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर हुए थे, यथा—गाथा—

१. शतंजल, २. शतायु, ३. अनन्तसेन, ४. अमितसेन, ५. तर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढ़रथ, ९. दशरथ, १०. शतरथ।

---

१. सूरि० पा० १, सु० १। आव० अ० १, सु० १।
२. विसे० गा० ३९२५।
३. मानव समूह (कुल) की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष। समूह का नेता।

७. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति, तं जहा—गाहा—
मित्तवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे।
दत्ते, सुहुमे, सुबंधू य, आगमेस्साण होक्खति ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६। सम० सु० १५८।

७. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे, यथा—
१. मित्रवाहन, २, सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबंधु।

८. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—
सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू ॥
—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७।

८. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. सीमंकर, २. सीमंधर, ३. क्षेमंकर, ४. क्षेमंधर, ५. विमल वाहन, ६ संभूति, ७ प्रतिश्रुत, ८. दृढ़धनु, ९. दशधनु, १०. शतधनु।

९. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—गाहा—
विमलवाहणे, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे,
दढधणू, दसधणू, सयधण, पडिसूई, संमुइ त्ति ॥१॥
—सम० सु० १५८।

९. जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. विमलवाहन, २. सीमंकर ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढ़धनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति, १० सुमति।

१०. विमलवाहणे णं कुलकरे णवधणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था ॥
—ठाणं० अ० ९ सु० ६९६।

१०. विमलवाहन कुलकर (शरीर अवगाहना की दृष्टि से) नौ सौ धनुष ऊँचे थे।

११. विमलवाहणे णं कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिसु, तं जहा—गाहा—
मत्तंगया य भिंगा, चित्तंगा चेव होंति चित्तरसा,
मणियंगा य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ॥१॥[1]
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६।

११. विमलवाहन कुलकर के समय में सात प्रकार के वृक्ष उपभोग के लिए उपलब्ध हुए थे, यथा—
१. मत्तांगक, २. भृङ्ग, ३. चित्रांग ४. चित्ररसांग, ५. मण्यंग, ६. अनग्न, ७. कल्पवृक्ष।

१२. अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥
—ठाणं० अ०६, सु० ५१८। सम० सु० १०६, ५।

१२. अभिचन्द्र कुलकर छ सौ धनुष ऊँचे थे।

१३. जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—गाहा—
पढमेत्थ विमलवाहण[2], चक्खुमं जसमं चउत्थमभिचंदे।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव नाभी य ॥१॥

१३. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हो चुके हैं, यथा—
१. विमलवाहन, २. चक्षुष्मान, ३. यशस्वी, ४. अभिचंद्र, ५. प्रसेनजित, ६. मरुदेव, ७. नाभि।

१४. एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ होत्था, तं जहा-
गाहा—चंदजसा चंदकंता, सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलगरइत्थीण णामाइं ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६। सम० सु० १५७।

१४. इन सात कुलकरों की सात भार्यायेंथी, वे इस प्रकार हैं—
१. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकांता, ३. सुरूपा, ४. प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्कांता, ६. श्रीकांता, ७. मरुदेवी।

१५. तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्ठभागावसेसे एत्थ णं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था तं जहा—

१५. उस समय में पश्चिम त्रिभाग में पल्योपम के आठ भाग शेष रहने पर (तीसरे आरे सुषम-दुषम के अन्तिम त्रिभाग की समाप्ति होने में पल्योपम का आठवां भाग मात्र समय शेष रहता है, तब) पन्द्रह कुलकर उत्पन्न हुए थे, उनके नाम ये हैं—

---

१. ठाणं० अ० १०, सु० ७६६।

२. इस अवसर्पिणी काल के प्रथम कुलकर।

१. सुमई २. पडिस्सुई ३. सीमंकरे ४. सीमंधरे ५. खेमंकरे ६. खेमंधरे ७. विमलवाहणे ८. चक्खुमं ९. जसमं १०. अभिचंदे ११. चंदाभे १२. पसेणई १३. मरुदेवे १४. णाभी १५. उसभे त्ति ॥ —जंबु० व०२ सु० २८।

यथा—१. सुमति, २. प्रतिश्रुति, ३. सीमंकर, ४. सीमंधर ५. क्षेमंकर, ६. क्षेमंधर. ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान ९. जसम, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. प्रसेनजित, १३. मरुदेव, १४. नाभि, १५. ऋषभ।

१६. सत्तविधा दंडनीति पण्णत्ता, तं जहा—
हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मंडलबंधे, चारए, छविच्छेदे ॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५७।

१६. सात प्रकार की दंडनीति कही गई है, यथा—
१. हक्कार, २. मक्कार, ३. धिक्कार, ४. परिभाषण, ५. मंडलबंध, ६. चारक, ७. छविच्छेद।

१७. तत्थ णं सुमइ-पडिस्सुइ-सीमंकर-सीमंधर-खेमंकराणं एएसिं पंचण्हं कुलगराणं हक्कारे नामं दंडणीई होत्था—
ते णं मणुआ हक्कारेणं दंडेणं हया समाणा लज्जिया विलज्जिया वेड्ढा भीया तुसिणीया विणओणया चिट्ठंति।

तत्थ णं खेमंधर-विमलवाहण-चक्खुमं-जसमं-अभिचंदाणं-एएसिं णं पंचण्हं कुलगराणं मक्कारे णामं दंडणीई होत्था—
ते णं मणुया मक्कारेणं दंडेणं हया समाणा-जाव-चिट्ठंति।

तत्थ णं चंदाभ-पसेणइ-मरुदेव-नाभि-उसभाणं एएसिं णं पंचण्हं कुलगराणं धिक्कारे णामं दंडणीई होत्था—
ते णं मणुआ धिक्कारेणं दंडेणं हया समाणा-जाव-चिट्ठंति ॥
—जंबु० व० २ सु० २९।

१७. उनमें सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमंधर, क्षेमंकर—इन पांच कुलकरों की 'हाकार' नामक दण्ड-नीति थी।
उस काल में मनुष्य हाकार दण्ड-नीति से शासित होने पर लज्जित, विशेष लज्जित, कंपित भयभीत और चुप हो जाते थे तथा विनय से नीचा मुँह करके खड़े रह जाते थे।

उनमें क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, जसम, अभिचंद्र—इन पांच कुलकरों की 'माकार' नामक दंडनीति थी।
उस काल में मनुष्य माकार (मत करो) दंड से शासित होने पर (लज्जित) यावत खड़े रह जाते थे।

उनमें चन्द्राभ, प्रसेनजित, मरुदेव, नाभि, ऋषभ—इन पांच कुलकरों की 'धिक्कार' नामक दण्ड नीति थी।
उस काल में मनुष्य धिक्कार दण्ड से शासित होने पर (लज्जित)—यावत्—खड़े रह जाते थे।

२. उसह-चरियं

कल्लाणग-नक्खत्ताइं—

१८. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसहे णं अरहा कोसलिए चउ-उत्तरासाढे अभीइ-पंचमे होत्था, तं जहा[1]—
१. उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते,
२. उत्तरासाढाहिं जाए,

२. ऋषभ-चरित्र

कल्याणक नक्षत्र

उस काल और उस समय में (कौशलिक कौशल देश में जनमे) अर्हत् ऋषभ के चार कल्याणक उत्तराषाढ़ नक्षत्र में और पांचवां अभिजित नक्षत्र में हुआ था, यथा—
१. उत्तराषाढ़ नक्षत्र में च्यवन हुआ और च्यवकर गर्भ में आये।
२. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म लिया।

---

१. उसभे णं अरहा कोसलिए पंचउत्तरासाढे अभीइछट्ठे होत्था, तं जहा—
१. उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते,
२. उत्तरासाढाहिं जाए,
३. उत्तरासाढाहिं रायाभिसेयं पत्ते,
४. उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,
५. उत्तरासाढाहिं अणंते-जाव-केवल-वर-नाणदंसणे समुप्पन्ने,
६. अभिइणा परिणिव्वुए। —जंबु० वक्ष० २ सु० ३२।

३. उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,
४. उत्तरासाढाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने,
५. अभिइणा परिणिव्वुए। —कप्प० सु० १९०।

३. उत्तराषाढ़ नक्षत्र में मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार की।
४. उत्तराषाढ़ नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर अनाबाध, निरावरण समग्र, प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ।
५. अभिजित नक्षत्र में निर्वाण को प्राप्त हुए।

गब्भवक्कंती—

१९. णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुच्छिंसि एत्थ णं उसभे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढमकेवली पढमतित्थयरे पढमधम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था।[1]

—जंबु० व० २ सु० ३०।

गर्भावतरण—

१९. यहां पर नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवी की कुक्षि में प्रथम राजा, प्रथमजिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर, प्रथम धर्मवर चातुरंत चक्रवर्ती और कौशलिक अर्हंत ऋषभ समुत्पन्न हुए।

जम्म-कल्लाणयं—

२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं-जाव-आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया।[2]

—कप्प० सु० १९३।

जन्म कल्याणक—

२०. उस काल और उस समय में ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास में, प्रथम पक्ष में अर्थात् चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर-यावत्—आषाढा नक्षत्र के योग में स्वस्थ माताने आरोग्य पूर्वक स्वस्थ कौशलिक अर्हत् ऋषभ को जन्म दिया।

अहोलोगीय-दिसाकुमारी-कय-जम्म-महिमा—

२१. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडेंसएहिं, पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइ-वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ महया हय-णट्ट-गीय-

अधोलोकवासी दिशाकुमारियों द्वारा कृत जन्ममहोत्सव—

२१. उस काल और उस समय में अधोलोक में निवास करने वाली आठ प्रमुख दिशाकुमारियां अपने कूटों पर अपने अपने भवनों में अपने अपने प्रसादावतंसों में प्रत्येक चार हजार सामानिक देवों, चार सपरिवार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों, (सेनापतियों) सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे अनेक भवनपति वाणव्यंतर देव-देवियों से घिरी हुई सुमधुर नाट्य-गीत-वाद्य आदि की कर्णप्रिय ध्वनियों से-यावत्-

---

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे आसाढबहुले तस्स णं आसाढ़बहुलस्स चउत्थी पक्खेणं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीससागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहारवक्कंतीए-जाव-गब्भत्ताए वक्कंते॥ —कप्प० सु० १९१॥

उसभे णं अरहा कोसलिए तिन्नाणोवगए होत्था तं जहा—चइस्सामि त्ति जाणइ-जाव-सुमिणे पासइ, तं जहा—गाहा—
गय उसह्-जाव-सिहिं च।
सव्वं तहेव, नवरं सुविणपाढगा णत्थि। नाभी कुलगरो वागरेइ॥—कप्प० सु० १९२॥
उसभे णं अरहा कोसलिए कासवगुत्तेणं, तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—
उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खाचरे इ वा, पढमजिणे इ वा, पढमतित्थकरे इ वा॥ कप्प० सु० १९४॥

२. तं चेव-सव्वं-जाव-देवा देवीओ य वसुहारवासं वासिंसु सेसं तहेव चारगसोहणं, माणुम्माणवड्ढणं, उस्सुक्कमाईयं, ठिइपडियवज्जं सव्वं भाणियव्वं॥ —कप्प० सु० १९३॥

वाइय-जाव-भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, तं जहा—
गाहा-
भोगंकरा, भोगवई, सुभोगा, भोगमालिणी।
तोयधारा, विचित्ता य, पुप्फमाला, अणिंदिया[1] ॥१॥

भोगोपभोग भोगने में रत थी, उनके नाम इस प्रकार हैं—
गाथार्थ—
१. भोगंकरा २. भोगवती ३. सुभोगा ४. भोगमालिनी ५. तोयधारा ६. विचित्रा ७. पुष्पमाला ८. अनिन्दिता ॥१॥

२२. तए णं तासिं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति।

तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरियाओ पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलियाइं पासन्ति, पासित्ता ओहिं पउंजंति, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अण्णमण्णं सद्दाविंति, सद्दावित्ता, एवं वयासी—

"उप्पण्णे खलु भो! जम्बुद्दीवे दीवे भयवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करेत्तए,

तं गच्छामो णं अम्हे वि भगवओ जम्मणमहिमं करेमो" त्ति कट्टु एवं वयंति, एवं वइत्ता पत्तेयं पत्तेयं आभिओगिए देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखम्भसय-सण्णिविट्ठे लीलट्ठियसालभंजिआकलिए एवं विमाणवण्णओ भाणियव्वो-जाव-जोयणविच्छिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह" त्ति।

२२. उस समय उन अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिक्कुमारिकाओं के आसन चलायमान (कंपित) हुए।

उस समय उन अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिक्कुमारिकाओं ने अपने-अपने आसन चलायमान होते हुए देखे, आसनों को कंपायमान होते देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त किया, प्रयुक्त करके अवधिज्ञान के द्वारा भगवान तीर्थंकर को देखती है, दर्शन करके परस्पर एक दूसरे को बुलाती है और बुलाकर ऐसा कहती है—

हे दिक्कुमारिकाओ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भगवान तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं, तो भूत, भविष्य और वर्तमान काल की अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिशाकुमारियों का यह परंपरागत आचार (जीतकल्प) है कि वे भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करें।'

तो चलो, हम भी भगवान का जन्म महोत्सव करें" ऐसा कहकर प्रत्येक अपने अपने आभियोगिक (सेवक) देवों को बुलाती हैं बुलाकर इस प्रकार कहती हैं—

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही, जिसमें सैकड़ों खंभे हों और उन पर क्रीड़ा करती हुई अनेक पुतलियाँ बनी हुई हों आदि विमानों का वर्णन कहना चाहिए, यावत् जो एक योजन विस्तार वाला हो, ऐसे दिव्ययान विमान की विकुर्वणा करो, करके आज्ञा पूर्ति हो जाने की हमें सूचना दो।'

२३. तए णं ते आभियोगा देवा अणेगखम्भसय-सण्णिविट्ठे-जाव-पच्चप्पिणंति,

तए णं ताओ अहेलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदियाओ-जाव-पायपीढाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं-जाव-अण्णेहिं बहूहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाणविमाणे दुरुहंति,

२३. उसके बाद वे अभियोगिक देव सैकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट यावत् (पूर्वानुसार) सूचित करते हैं।

तब वे अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिशाकुमारियां हर्षित तुष्ट और चित्त में आनन्दित होकर यावत्-पादपीठिकाओं (सीड़ियों) से चढ़ती हैं चढ़कर प्रत्येक अपने अपने चार हजार सामानिक देवों, चार महत्तरिकाओं—यावत्—और दूसरे अनेक बहुत से देव-देवियों से घिरी हुई उस दिव्य विमान में बैठती हैं।

---

१. अट्ठ अहोलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—
गाहा—भोगंकरा भोगवई सुभोगा भोगमालिणी ॥ सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहगा ॥१॥
—ठाणं० अ० ८, सु० ६४३।

दुरुहित्ता सव्वड्ढीए सव्वजुईए घण-मुइंग-पणव-पवाइय-रवेणं ताए उक्किट्ठाए—जाव—देवगईए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-णगरे जेणेव तित्थयरस्स जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छन्ति,

(यान—विमान में) बैठकर सर्वऋद्धि सर्वद्युति सहित एवं ढोल-मृदंग आदि वाद्यों को बजाती हुई, गाती हुई अपनी उत्कृष्ट गति—यावत्—देवगति से जहाँ तीर्थंकर भगवान का जन्म-नगर है जहाँ तीर्थंकर का जन्म-भवन है वहाँ आती हैं,

उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणियतले ते दिव्वे जाणविमाणे ठवेंति,

वहाँ आकर तीर्थंकर भगवान के जन्म-भवन के (चारों ओर) उन दिव्य देव विमानों से तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा—दाएँ से बाएँ प्रदक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा करके, उत्तर-पूर्व दिशिभाग (ईशानकोण) में पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर अधर दिव्य यान विमान को खड़ा करती हैं (ठहराती हैं)

ठवित्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसहस्सेहिं—जाव—सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाणविमाणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता सव्वड्ढीए—जाव—दुंदुहि-निग्घोस-णाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

(विमान को) ठहराकर प्रत्येक अपने चार हजार सामानिक देवों से यावत्—(संपूर्ण पूर्वकथन)संपरिवृत्त दिव्ययान विमान से उतरती हैं, उतरकर सर्वऋद्धि—यावत्—दुन्दुभि-निर्घोष-निनाद से दिशाओं को (गुंजायमान करती हुई) जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता है वहाँ आकर भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर माता की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करती हैं। आदक्षिण प्रदक्षिणा करके प्रत्येक अपने अपने हाथों की अंजलि बनाकर मस्तक पर घुमाकर और नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगीं—

२४. "णमोऽत्थु ते रयणकुच्छिधारिए जगप्पईवदाईए सव्वजग-मंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजग-जीव-वच्छलस्स हिय-कारगमग्ग-देसिय-वागिद्धि-विभु-पभुस्स जिणस्स णाणिस्स णायगस्स बुहस्स बोहगस्स सव्वलोग-णाहस्स सव्वजग-मंगलस्स-णिम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खत्तियस्स जं सि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णा सि तं पुण्णा सि कयत्था सि।

२४. हे रत्नकुक्षिधारिणी ! जगत को प्रदीपदायिनी ! आपको नमस्कार है, समस्त जगत को मंगलरूप, मुक्ताभिलाषियों को नेत्र के समान, समस्त जगत् के जीवों के वत्सल, हितकारी, मार्गदर्शक, वागृद्धि-विभु, प्रभु, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, संपूर्ण लोक के नाथ, समस्त जगत के लिए मंगलरूप, निर्मल, उत्तमकुल में उत्पन्न, जाति से क्षत्रिय, एवं लोकोत्तम पुत्र की जननी—आप धन्य हैं ! आप पुण्यशालिनी है ! कृतार्थ हैं !

"अम्हे णं देवाणुप्पिए ! अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसा-कुमारीमहत्तरियाओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो। तण्णं तुब्भेहिं ण भाइयव्वं" ति कट्टु उत्तर-पुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति।

हे देवानुप्रिये ! हम अधोलोकवासिनी आठ प्रधान दिशा-कुमारियाँ भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेंगी। अतएव आप भयभीत न हों,' ऐसा कहकर वे ईशानकोण में गयीं।

२५. अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं डंडं णिसिरंति, तं जहा—रयणाणं—जाव—संवट्टगवाए विउव्वंति, विउव्वित्ता तेणं सिवेणं मउ-एणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितलविमलकरणेणं मणहरेणं सव्वोउय-सुरहि-कुसुम-गंधाणुवासिएणं पिण्डिम-णीहारिमेणं गंधुद्धुएणं तिरियं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमण्डलं,

२५. वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात किया समुद्घात करके संख्यात योजन लंबा दंड निकालती है, यथा वह दण्ड रत्नों का था—यावत्—संवर्तक वायु की विकुर्वणा की। वह वायु शिव (कल्याणकर) मृदु, अनुद्धत—नीचे की ओर चलने वाला भूमितल को निर्मल करने वाला, मनोहर, सभी ऋतुओं के पुष्पों की सुरभि से सुगन्धित, घनीभूत गंध से सर्वत्र सुगन्ध फैलाने वाला एवं तिरछा बहते हुए (चलते हुए) भगवान तीर्थंकर के जन्म भवन के चारों ओर योजन पर्यन्त सफाई करने वाला था।

से जहा णामए—कम्मगरदारए सिया—जाव—तहेव जं तत्थ तणं वा, पत्तं वा, कट्ठं वा, कयवरं वा, असुइमचोक्खं पूइयं दुब्भि-गंधं तं सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेंति, एडित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयर-मायाए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११२ ।

जिस प्रकार एक कर्मकरदारक—सेवकपुत्र हो—यावत्—उसी तरह उस वायु ने वहाँ जो तृण, पत्ते, काष्ठ तथा कचरा एवं अशुचि, अपवित्र, सड़ा-गला पदार्थ था उस सब को उड़ाकर एकान्त स्थान में डाल दिया (फेंक दिया), उसको डालकर वे दिशाकुमारियाँ जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थीं वहाँ आईं, वहाँ आकर भगवान तीर्थंकर और माता से न तो अति दूर और न अति पास अपने उचित स्थान पर गीत गाती हुई खड़ी हो गईं ।

उड्ढलोगीय-दिसाकुमारी-कय-जम्म-महिमा—

२६. तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडेंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णियं—जाव—विहरंति तं जहा—गाहा—

मेहंकरा, मेहवई, सुमेहा, मेहमालिणी ।
सुवच्छा, वच्छमित्ता य, वारिसेणा, बलाहगा[1] ॥१॥

ऊर्ध्वलोकवासी दिशाकुमारियों कृत जन्ममहोत्सव—

२६. उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ प्रधान दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों (पर्वत-शिखरों) पर अपने-अपने भवनों में अपने-अपने प्रासादावतंसकों में प्रत्येक अपने-अपने चार हजार, सामानिक देवों इत्यादि पूर्व में किये गये वर्णनानुरूप रहती है, उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ मेघंकरा २ मेघवती ३ सुमेघा ४ मेघमालिनी
५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ वारिषेणा ८ बलाहका ।

२७. तए णं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलन्ति, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं—जाव—अम्हे णं देवाणुप्पिए ! उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरियाओ जेणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भाइयव्वं त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता—जाव—अब्भवद्दलए विउव्वन्ति, विउव्वित्ता—जाव—तं णिहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति ।

२७. उस समय उन ऊर्ध्वलोकवासिनी आठ मुख्य दिशाकुमारियों के आसन चलायमान हुए । यहाँ भी पूर्वोक्त वर्णन कहना चाहिए—यावत्—हे देवानुप्रिये ! हम ऊर्ध्वलोकवासिनी आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ हैं, हम भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेंगी, इसलिये आप भयभीत न हों, इस प्रकार कहकर वे ईशानकोण में चली गईं । वहाँ जाकर—यावत्—उन्होंने आकाश में मेघों की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके यावत्—रज-धूलि को बिठा दिया, धूलि को नष्ट कर दिया, धूलि को दूर कर दिया, प्रशांत-उपशांत कर दिया, ऐसा करने से धूलि शीघ्र ही शांत हो जाती है ।

एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति, वासित्ता—जाव—कालागरुपवर—जाव—सुरवराभिगमणजोग्गं करेंति, करित्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता—जाव—आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११३ ।

इसी प्रकार पुष्प वर्षा करने वाले बादलों से पुष्पों की वर्षा की । पुष्प वर्षा करके यावत् काले अगरु की उत्तम धूप द्वारा सुगन्धित करके—यावत्—उत्तम देवों के आगमन योग्य बना देती है, बनाकर जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थीं, वहाँ आई, वहाँ आकर—यावत्—मंद-मंद मधुर स्वर में गीत गाती हुई खड़ी हो गईं ।

---

१ अट्ठ उड्ढलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहा—
मेघंकरा मेघवई सुमेघा मेघमालिणी । तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिया ॥१॥

—ठाणं अ० ८, सु० ६४३ ।

रुयगवासि-दिसाकुमारी-कय-जम्म-महिमा—

२८. तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिम-रुयग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

णंदुत्तरा य, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा।
विजया य, वेजयंती, जयंती, अपराजिया ॥१॥

सेसं तं चेव—जाव—तुब्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पुरित्थिमेणं आयंस-हत्थ-गयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति।

रुचकवासिनी दिशाकुमारियों-कृत जन्म-महिमा—

२८. उस काल उस समय में पूर्व दिग्वर्ती रुचक पर्वतवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर पूर्ववत्—यावत्—रहती हैं। उनके नाम यह हैं—गाथा—

१ नन्दोत्तरा २ नन्दा ३ आनन्दा ४ नन्दिवर्धना।
५ विजया ६ वैजयन्ती ७ जयन्ती ८ अपराजिता।

शेष पूर्ववत्—यावत्—आप डरें नहीं, कहकर भगवान तीर्थंकर एवं तीर्थंकर-माता के सामने (पूर्व तरफ) हाथ में दर्पण लेकर मंद-मंद स्वर में मंगल गीत गाती हुई खड़ी हो गई।

२९. तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिण-रुयग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसा-कुमारीमहत्तरियाओ तहेव—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

समाहारा, सुप्पइण्णा, सुप्पबुद्धा, जसोहरा,
लच्छिमई, सेसवई, चित्तगुत्ता, वसुन्धरा ॥१॥

तहेव—जाव—तुब्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति।

२९. उस काल उस समय दक्षिण रुचकवासिनी आठ दिशा-कुमारियाँ पूर्वोक्त वर्णनानुसार—यावत्—रहती हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ समाहारा २ सुप्रतिज्ञा ३ सुप्रबुद्धा ४ यशोधरा
५ लक्ष्मीमति ६ शेषवती ७ चित्रगुप्ता ८ वसुन्धरा।

शेष पूर्ववत्—यावत्—आप भयभीत न हों, कहकर भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर-माता की दक्षिण तरफ हाथ में झारी लेकर गीत गाती हुई खड़ी होती हैं।

३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिम-रुयग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

इलादेवी, सुरादेवी, पुहवी, पउमावई।
एगणासा, णवमिया, भद्दा, सीया य अट्ठमा[1] ॥१॥

सेसं तहेव—जाव—तुब्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु—जाव—भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य पच्चत्थिमेणं तालियंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति।

३०. उस काल उस समय में पश्चिम दिशावर्ती रुचक पर्वत पर रहनेवाली आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों (पर्वत-शिखर) पर—यावत्—रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ इलादेवी २ सुरादेवी ३ पृथ्वी ४ पद्मावती।
५ एकनासा ६ नवलिका ७ भद्रा और ८ सीता।

शेष पूर्ववत् (कथन)—यावत्—आप डरें नहीं, यह कहकर भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता के पीछे हाथ में पंखा लेकर गीत गाती हुई खड़ी हो जाती हैं।

३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्ल-रुयग-वत्थव्वाओ—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

अलंबुसा, मिस्सकेसी, पुण्डरीया य वारुणी।
हासा, सव्वप्पभा, चेव सिरि, हिरि, चेव उत्तरओ[2] ॥१॥

३१. उस काल उस समय में उत्तरदिशा के रुचक पर्वत पर निवास करने वाली आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ—यावत्—रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ अलंबुसा २ मिश्रकेशी ३ पुण्डरीका ४ वारुणी।
५ हासा ६ सर्वप्रभा ७ ह्री और ८ श्री।

---

१. ठाणं० अ० ८, सु० ६४३।

२. तत्थ णं अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ—जाव—पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तं जहा—गाहा—
अलंबुसा मितकेसी पोंडरि गीयवारुणी। आसा य सव्वगा चेव, सिरि हिरी चेव उत्तरओ ॥१॥
—ठाणं० अ० ८, सु० ६४३

तहेव—जाव—वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

शेष पूर्व की तरह—यावत्—भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर माता के समीप उत्तर दिशा में हाथ में चामर लेकर, मन्द-मन्द मधुर स्वर में गीत गाती हुई खड़ी हो गईं ।

३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसि रुयग-वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरियाओ—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

चित्ता य, चित्तकणगा, सतेरा, य सोदामिणी[1] ।

तहेव—जाव—ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य चउसु विदिसासु दीविया-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति त्ति ।

३२. उस काल उस समय में विदिशाओं के रुचक पर्वत पर रहने वाली चार प्रमुख दिशाकुमारियाँ—यावत्—रहती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ चित्रा २ चित्रकनका ३ शेतरा ४ सौदामिनी ।

शेष वर्णन पूर्वकथानुसार समझना चाहिये—यावत्—भयभीत न हों, ऐसा कहकर भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर-माता के समीप चार विदिशाओं में दीपक हाथ में लेकर सुमधुर स्वर में गीत गाती हुई खड़ी हो जाती हैं ।

मज्झिम-रुयगवासि-दिसाकुमारी-महत्तरिया-कय-णाभिणालकत्तणं—

मध्यवर्ती रुचकवासी दिशाकुमारी-महत्तरिकाओं-कृत नाभिनाल-कर्तन—

३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिम-रुयग-वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव—जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

रूया, रूआसिया, चेव, सुरूआ, रुयगावई[2] ।

तहेव—जाव—तुब्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभि-णालं कप्पन्ति, कप्पेत्ता वियरगं खणन्ति खणित्ता वियरगे णाभिं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य, वइराण य पूरेंति, पुरित्ता हरियालियाए पेढं बंधंति, बंधित्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति ।

३३. उस काल उस समय में मध्य रुचक पर्वत पर रहने वाली चार महत्तरा दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर पूर्ववत—यावत्—रहती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ रूपा, २ रूपाश्रिता, ३ सुरूपा, और ४ रूपकावती ।

शेष पहले कहे अनुसार—यावत्—आप भयभीत न हों, ऐसा कहकर तीर्थंकर भगवान (बाल) की नाभिनाल को चार अंगुल छोड़कर काटती हैं। काटकर गड्ढा खोदती हैं, खोदकर खड्ढे में नाभिनाल को दबा देती हैं, दबाकर उस गड्ढे को रत्नों से और वज्ररत्नों से पूर देती हैं, पूर कर उस पर हरी-हरी दूर्वा से पीठिका बनाती हैं, पीठिका बनाकर उसके तीन दिशाओं में एक-एक कदलीगृह की विकुर्वणा करती हैं ।

तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चाउस्सालए विउव्वंति,
तए णं तेसिं चाउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वंति,

अनन्तर उन प्रत्येक कदलीगृहों के ठीक मध्य भाग में वे चतुःशालाओं की विकुर्वणा करती है ।
तदनन्तर उन चतुःशालाओं के बीचोबीच सिंहासन बनाती हैं ।

१. इमाइं चत्तारि नामाइं ठाणंगे चउत्थे ठाणे पढमे उद्देसे विज्जुकुमारिमहत्तरियाणं संति,
चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—१ चित्ता, २ चित्तकणगा, ३ सएरा, ४ सोयामणी ।।
—ठाणं० अ० ४, उ० १, सु० २५९ ।।

२ छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१ रूवा, २ रूवंसा, ३ सुरूवा, ४ रूववई, ५ रूवकंता, ६ रूवप्पभा ।।
—ठाणं० अ० ६, सु० ५०७ ।

तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते। सव्वो वण्णगो भाणियव्वो ।। —जंबु० व० ५, सु० ११८।

इन सिंहासनों का जो वर्ण-गंध वताया है, वह सब वर्णन पहले कहे हुए वर्णन के अनुसार कहना चाहिये।

दिसाकुमारी-कय-माया-पुत्ताणं मज्जणाइ-किच्चं—

दिशाकुमारियों कृत माता-पुत्र के स्नानादि कार्य—

३४. तए णं ताओ मज्झ-रुयग-वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तराओ जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं करयल-संपुडेणं गिण्हन्ति। तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता सयपाग-सहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं, उव्वट्टेंति, उव्वट्टित्ता भगवं तित्थयरं करयलसपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहासु गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए, जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति

३४. उसके पश्चात् वे मध्य रुचक पर्वतवासिनी चारों महत्तरा दिशाकुमारियाँ जहाँ भगवान तीर्थंकर एवं तीर्थंकर की माता थीं वहाँ आई, वहाँ आकर भगवान तीर्थंकर को करसंपुट (हथेलियों) में लेती हैं और तीर्थंकर की माता को हाथ का सहारा देकर उठाती हैं। सहारा देकर जहाँ दक्षिण दिशावर्ती कदली मंडप है उसमें जहाँ चतुःशाला है और उसमें भी जहाँ सिंहासन है, वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान् तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं, बैठाकर शतपाक-सहस्रपाक तेल से उनका अंगमर्दन (मालिश) करती हैं, मालिश करके सुगंधित उवटन (पीठी) से उवटन करती हैं, उवटन करके भगवान तीर्थंकर को हथेलियों में लेती हैं और तीर्थंकर की माता को हाथ का सहारा देकर जहाँ पूर्व दिशावर्ती कदली मंडप है। उसमें जहाँ चतुःशाला है और चतुःशाला में जहाँ सिंहासन है, वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान् तीर्थंकर तथा तीर्थंकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं।

णिसियावेत्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति, तं जहा— १ गन्धोदएणं, २ पुप्फोदएणं, ३ सुद्धोदएणं।

बैठाकर तीन प्रकार के जल जैसे—१ गंधोदक (सुगंधित जल), २ पुष्पोदक (पुष्पमिश्रित जल), ३ शुद्ध जल से स्नान कराती हैं।

मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता आभिओगे देवे सद्दाविन्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

स्नान कराके सभी प्रकार के आभूषण-अलंकारों से विभूषित (शृंगार) करती हैं, विभूषित करके भगवान तीर्थंकर को हथेलियों में लेती हैं और तीर्थंकर की माता की बाहें पकड़ती हैं, बाजुओं को पकड़कर जहाँ उत्तरदिशावर्ती कदलीमंडप है, जहाँ चतुःशाला है और उसमें भी जहाँ सिंहासन है वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं, सिंहासन पर उन्हें बैठाकर आभियोगिक देवों को बुलाती हैं और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहती हैं—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह।"

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही क्षुद्र हिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत से गोशीर्ष चंदन काष्ठ लेकर आओ।'

तए णं ते आभिओगा देवा ताहिं मज्झरुयगवत्थव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारीमहत्तरियाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ—जाव—विणएणं वयणं पडिच्छन्ति, पडिच्छित्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचन्दणकट्ठाइं साहरन्ति।

तदनन्तर वे आभियोगिक देव उन मध्यवर्ती रुचक पर्वतवासिनी चार प्रधान दिशाकुमारियों की आज्ञा सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुए—यावत्—विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके शीघ्र ही क्षुद्र हिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत से सरस गोशीर्ष चन्दन काष्ठ को लेकर आते हैं।

तए णं ताओ मज्झिम-रुयग-वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सरगं करेन्ति, करित्ता अरणिं घडेंति घडित्ता सरएणं अरणिं महिंति महित्ता अग्गिं पाडेंति, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खंति, संधुक्खित्ता गोसीसचन्दणकट्ठे पक्खिवन्ति, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालंति, उज्जालित्ता, समिहाकट्ठाइं पक्खिवंति, पक्खिवित्ता, अग्गिहोमं, करेंति, करित्ता भूइकम्मं,[1] करेंति, करित्ता रक्खा[2]-पोट्टलियं[3] बंधन्ति, बंधित्ता णाणा-मणि-रयण-भत्तिचित्ते दुविहे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टियाविन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए पव्वयाउए।

इसके पश्चात् वे चारों मध्य रुचक पर्वतवासिनी प्रधान दिशाकुमारियाँ शरक (अग्नि को उत्पन्न करने वाला काष्ठ-विशेष—चकमक) तैयार करती हैं, तैयार करके अरणि से उसे घिसती हैं, संयोजित करती हैं, शरक और अरणि की रगड़ से आग की चिनगारी पैदा करती हैं, अग्नि की चिनगारी पैदा करके धौंकती हैं, धौंककर उसमें गोशीर्ष चन्दनकाष्ठ डालती हैं, काष्ठ डालकर अग्नि को प्रज्वलित करती हैं, प्रज्वलित करके समिधा काष्ठों[4] को डालती हैं, समिधाकाष्ठों का प्रक्षेप करके अग्निहोम करती है, अग्निहोम करके भूतिकर्म (राख) करती हैं, भूतिकर्म करके उसकी रक्षा-पोटली (तावीज) बनाकर बाँधती है, बाँधने के अनन्तर अनेक प्रकार की मणि-रत्नों से चित्र-विचित्र दो गोल वटकियों (गोलियों) को हाथ में लेकर भगवान् तीर्थंकर के कानों के पास ले जाकर टिक-टिक ध्वनि करके 'हे भगवन् ! आप पर्वत के समान आयु वाले हों। पर्वत के समान सुदीर्घजीवी हों'—आशीर्वाद दिया।

३५. तए णं ताओ मज्झ-रुयग-वत्थव्वाओ चत्तारिदिसाकुमारी-महत्तरियाओ भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हिन्ति, 'गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीयाविंति, णिसीयावित्ता भयवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ती त्ति॥

—जंबु व० ५, सु० ११४।

३५. इसके बाद ये चारों मुख्य दिशाकुमारियाँ भगवान तीर्थंकर को करसंपुट में लेकर और तीर्थंकर-माता की बाजुओं को पकड़कर जहाँ तीर्थंकर भगवान् का जन्म-भवन है, वहाँ आती हैं, आकर तीर्थंकर की माता को बैठा देती हैं। बैठाकर भगवान तीर्थंकर को माता के पास सुलाकर मंगल गीत गाती हुई खड़ी हो गई।

देविन्द-सक्कस्स तित्थयर-जम्मनगरे गमणं—

देवेन्द्र शक्र का तीर्थंकर के जन्म-नगर में गमन—

३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के णामं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिण-ड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणावासासय-सहस्साहिवई एरावण-वाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइय-मालमउडे णवहेम-चारु-चित्त-चंचलकुण्डल-विलिहिज्जमाणगंडे

३६. उस काल उस समय में वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, शक्र[5] नामक देवेन्द्र देवराज जो दक्षिणार्धलोक का अधिपति हैं। बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है, ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, सुरेन्द्र है, आकाशवत् निर्मल स्वच्छ श्वेत वस्त्रों को जिसने धारण किया है, झूमकों वाले मुकुट से जिसका मस्तक शोभित हो रहा है, हेम (दीप्तमान) सुवर्ण से बने हुए सुन्दर, चित्त के समान चंचल और गालों को स्पर्श करने वाले कुण्डल कानों में शोभित हो रहे हैं,

---

१ जेण कम्मेण कट्ठाइं भस्सरूवाइं भवंति तं तारिमं।
२ भस्सेति वा भप्पेति वा भूईति वा रक्खाति वा एगट्ठा।
३ जीयंति काऊण बंधिज्जंती भस्सपोट्टलिया तं।
४ यज्ञ, होम आदि के उपयोग में आने वाली छोटी-छोटी लकड़ियाँ।
५ इन्द्र के ये लोक प्रसिद्ध सात नाम हैं।

मालुरबोंदी पलम्बवणमाले महिड्ढीए महज्जुईए महाबले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मेकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि—

जिसका शरीर कांतिमान है, जिसके गले में मालायें लटक रही हैं, जो अतिशय वैभवशाली कांतिमान, बलिष्ठ यशस्वी, सौभाग्यशाली, सुख संपन्न है, जो सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मा नामक सभा में शक्र नाम के सिंहासन पर बैठता है।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं, सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीणं आयरक्ख-देव-साहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मकप्प-वासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महया हय-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुपडह-वाइय-रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

ऐसा वह शक्र बत्तीस लाख विमानवासियों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, आठ सपरिवार पटरानियों, तीन परिषदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, चतुर्गुणित चौरासी हजार (८४००० × ४ = ३३६०००) आत्मरक्षक देवों का तथा और भी अनेक वैमानिक देव-देवियों का अधिपति, अग्रेसर (प्रमुख), स्वामी, भर्ता, महत्तर, आज्ञादाता, सेनापति है, उनका पालन-पोषण एवं शासनकर्ता है, सुमधुर नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, तल, ताल, त्रुटित, मृदंग, ढोल, नगाड़ों आदि की ध्वनिपूर्वक दिव्य भोगोपभोगों को भोगने में निमग्न था।

३७ तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ।

३७. उस समय उस देवेन्द्र देवराज शक्र का आसन कंपायमान होता है।

तए णं से सक्के—जाव—आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएई, आभोइत्ता हट्ठ-तुट्ठ-चित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहय-कयंब-कुसुम-चंचुमालइय-ऊसविय-रोमकूवे वियसिय-वर-कमल-णयणवयणे पयलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउडे, कुण्डलहार-विरायंत वच्छे, पालम्ब-पलम्ब-माण-घोलंत-भूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता, पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलिय-वरिट्ठ-रिट्ठ-अंजण-णिउ-णोविय-मिसिमिसिंत-मणि-रयण-मंडियाओ पाउआओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंग करेइ, करित्ता अंजलि-मउयिग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ,-अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेई, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणीयलंसि साहट्टु

उस समय, वह शक्र—यावत्—आसन को चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान का प्रयोग करता है, प्रयुक्त करके भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान (दर्शन) द्वारा देखता है, दर्शन करके हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, प्रसन्नमन वाला होता है, हर्षातिरेक से उसका हृदय उछलने लगता है, मेघवर्षा होने पर जैसे कदम्ब पुष्प ऊपर की ओर मुख वाले (विकस्वर) हो जाते हैं, वैसे ही उसके रोम-रोम विकसित होकर ऊर्ध्वमुखी हो गये, सुन्दर कमल जैसे नेत्र और मुख विकसित हो उठे, शरीर की थिरकन से पहने हुए श्रेष्ठ कटक-केयूर, त्रुटित (बाजूबंद) मुकुट चंचल हो उठे, जिनके वक्षस्थल पर हार और कानों में कुण्डल शोभित हो रहे हैं और लटकते हुए झुमकों से गले में पहने हुए आभूषण-हार आदि टकरा रहे हैं, ऐसा वह देवेन्द्र देवराज शक्र उत्सुकतापूर्वक चपलता से अपने सिंहासन से खड़ा हो जाता है, खड़े होकर पादपीठ से नीचे उतरता है, उतरकर चमचमाते वैडूर्य-वरिष्ट-रिष्ट-अंजन रत्न विशेषों से खचित पादुकाओं को उतारता है, उतारकर ओढ़े हुए उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) का उत्तरासंग बनाकर दोनों हाथों की अंजलि बनाकर तीर्थंकर की अभिमुख दिशा में सात-आठ डग भरे, डग भरकर बायें घुटने को मोड़कर ऊपर उठाया और दाहिने घुटने को जमीन पर टिकाकर

तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ताकडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

तीन वार मस्तक को नमाकरधरती पर रखता है, रखकर सहज ऊँचा होता है, ऊँचा होकर कटक और त्रुटित से स्तम्भित अपनी भुजाओं को संभालकर फिर हाथों की अंजलि बनाई और मस्तक पर घुमाकर इस प्रकार कहता है—

३८ "णमोऽत्थु णं अरहन्ताणं, भगवन्ताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं,

पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवरगन्धहत्थीणं,

लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं,

अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं, बोहिदयाणं,

धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं

दीवो ताणं सरणं-गई-पइट्ठा अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणं वियट्टछउमाणं,

जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं, सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं,

सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जियभयाणं।

णमोऽत्थु णं भगवओ तित्थगरस्स आइगरस्स-जाव-संपाविउकामस्स।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भयवं! तत्थगए इहगयं"

ति कट्टु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

३८. नमस्कार हो अरिहंत भगवन्तों को, धर्म के आदि संस्थापक को, तीर्थंकर को, स्वयंसंबुद्ध को,

पुरुषोत्तम को, पुरुषसिंह को, पुरुषवर पुण्डरीक (कमल) को, गंधहस्तीवत् पुरुषों में उत्तम को,

लोकोत्तम को, लोक के नाथ को, लोकहितकारी को, लोकप्रदीप को, लोकप्रद्योतक को,

अभयदाता को, दृष्टिदाता को, मार्गदर्शक को, शरणदाता को, जीवनदाता को, ज्ञान (बोधि) दाता को,

धर्मदाता को, धर्मोपदेशक को, धर्मनायक को, धर्मसारथी को, सार्वभौम धर्मचक्रवर्ती को।

जो दीपक रूप है, जो त्राणरूप है, शरणागत को आश्रयरूप है, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले हैं, छद्मों (घातिकर्मों) का क्षय करने वाले हैं,

जिन है, दूसरों को जीतने का उपाय बताने वाले हैं, स्वयं संसार सागर से तिरनेवाले—पार होने वाले हैं और दूसरों को भी पार कराने वाले हैं, बुद्ध हैं, बोधक हैं, मुक्त हैं, मुक्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, तथा—

जो शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति वाली (पुनः जन्म न धारण करनेरूप) सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वाले हैं, ऐसे जीतभय (भयविजेता जिन) को नमस्कार है।

इसीप्रकार तीर्थंकर भगवान को, आद्य धर्मसंस्थापक को —यावत्—(मोक्ष) प्राप्त करने के आकांक्षीको नमस्कार है।

यहाँ रहा हुआ मैं तत्र विराजित भगवान् तीर्थंकर की वन्दना करता हूँ; वहाँ विराजमान हे भगवन्! यहाँ रहे हुए (अवस्थित विद्यमान) मुझे देखें।

इस प्रकार कहकर वह वन्दन करता है, नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया।

३९ तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो य अयमेयारूवे—जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था।

उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीय पच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देव राईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करेत्तए।

३९. तत्पश्चात् उस देवेन्द्र देवराज शक्र के मन में इस प्रकार का—यावत्— संकल्प उत्पन्न होता है—

अहो जम्बूद्वीप में भगवान तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं, तो भूत भविष्य और वर्तमान काल के देवेन्द्र देवराज शक्र का ऐसा परम्परागत आचार है कि तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करें,

तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमि त्ति कट्टु एवं संपेहेई, संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुरयर-सद्दं जोयणपरिमण्डलं सुघोसं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—

"आणवेइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्दीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करित्तए, तं तुब्भे वि णं देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वोवरोहेहिं सव्व-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्व-दिव्व-तुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णियय-परियाल-संपरिवुडा सयाइं सयाइं जाणविमाण-वाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स-जाव-अंतियं पाउब्भवह ।"

इसलिये मैं भी भगवान् तीर्थंकर की जन्म-महिमा करूँ, इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके पदाति-सेना के अधिपति हरिणैगमेषी नामक देव को बुलाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रिय ! सुधर्मा सभा में जो मेघ समूह की गर्जना सदृश गम्भीर और सुमधुर ध्वनि करने वाली, एक योजन परिधि वाली सुन्दर स्वर वाली सुघोषा नामक घंटा है, उसे तीन बार बजा-बजाकर उच्च स्वर में घोषणा करते हुए तुम इस प्रकार आज्ञा प्रसारित करो—

'देवेन्द्र देवराज शक्र यह आज्ञा देते हैं कि देवेन्द्र देवराज शक्र जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करने जा रहे हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम सभी अपनी-अपनी समस्त ऋद्धि, कांति, बल, समुदाय, सम्मान, विभूति, विभूषा (आडम्बर) नर्तकों, नाटकों से सज-धजकर अन्तःपुर और अलंकारों के साथ सब प्रकार के पुष्प, गन्ध, माला अलंकारों से विभूषित होकर सर्व दिव्य त्रुटित कटक केयूर आदि एवं वाद्यों की तुमुल ध्वनि के साथ सब प्रकार की बाधाओं पर ध्यान न देकर—यावत्-अपने-अपने परिवार के साथ, अपने-अपने यानविमानों, वाहनों पर आरूढ़ होकर, क्षण मात्र का भी विलम्ब न करके शक्र के सामने उपस्थित हो जाओ ।

४०. तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा -जाव- एवं वुत्ते समाणे हट्ठ तुट्ठ -जाव- एवं देवो त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघ-रसिय-गम्भीर-महुरयरसद्दा जोयण-परिमण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं मेघोघ-रसिय-गम्भीर-महुरयर-सद्दं जोयण-परिमण्डलं सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ ।

तए णं तीसे मेघोघ-रसिय-गम्भीर-महुरयर-सद्दाए जोयण-परिमण्डलाए सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीस-विमाणावास-सयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसं घण्टा-सय-सहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति ।

तए णं सोहम्मे कप्पे पासाय-विमाण-णिक्खुडावडिय-सद्द-समुट्ठिय-घण्टा-पडिसुय-सय-सहस्ससंकुले जाए यावि होत्था इति ।

४०. उसके बाद इस प्रकार देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा आज्ञापित-पदाति-अनीकाधिपति हरिणैगमेषी देव हृष्ट-तुष्ट होकर जैसी देव की आज्ञा कहकर, सविनय आज्ञा वचनों को स्वीकार करता है, स्वीकार करके देवेन्द्र देवराज शक्र के पास से विदा होता है, वहाँ से निकल कर जहाँ सुधर्मा सभा में मेघ समूह की गर्जना जैसी गम्भीर और सुमधुर आवाज वाली, एक योजन विस्तार वाली, सुघोषा नामक घंटा है, वहाँ आता है, वहाँ आकर वह मेघ समूह की गर्जना सदृश गम्भीर और सुमधुर आवाज वाली सुघोषा घंटा को तीन बार बजाता है ।

तब मेघसमूह की गर्जना सदृश गम्भीर मधुरस्वर आवाज करने वाली और एक योजन विस्तार वाली सुघोषा घंटा को तीन बार बजाने पर सौधर्मकल्प के एक कम बत्तीस लाख विमानावासों में एक कम बत्तीस लाख घंटियां एक साथ टनटनाहट करने लगीं, टनटना उठीं ।

इस प्रकार प्रासादों-विमानों के निष्कुट प्रदेशों में से होने वाली घंटारवों की लाखों प्रतिध्वनियों से वह सौधर्म कल्प व्याप्त (संकुल) हो गया ।

४१. तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्त-रइ-पसत्तणिच्च-प्पमत्त-विसय-सुह-मुच्छियाणं सूसर-घण्टारसिय-विउल-बोल-पूरिय-चवल-पडिबोहणे कए समाणे घोसण-कोऊहल-दिण्ण-कण्ण-एगग्ग-चित्त-उवउत्त-माणसाणं से पायत्ताणीयाहिवई देवे तंसि घण्टारवंसि णिसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—

"हन्त ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणियदेवा देवीओ य सोहम्मकप्पवइणो, इणमो वयणं हियसुहत्थं आणावइ णं भो ! सक्के तं चेव-जाव-अंतियं पाउब्भवह त्ति।"

४१. उस समय इस सौधर्मकल्प में रहने वाले अनेकानेक वैमानिक देव-देवियों को, जो कि केवल विषय सुख में आसक्त और नित्य प्रमत्त एवं मूर्च्छित रहते थे, इन घंटाओं की सुमधुर टनटनाहटों से उत्पन्न कोलाहल द्वारा यकायक जगाया गया, तब उन्होंने घोषणा सुनने की ओर अपने चित्त को एकाग्र किया, उनके एकाग्रचित्त होने और घंटिकाओं की ध्वनि शान्त होने पर पदाति-अनीकाधिपति देव ने धीर गम्भीर स्वर में घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—

'हे सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देव-देवियो ! आप सौधर्मकल्प के अधिपति की यह हितकर एवं सुखकर आज्ञा सुनो—यावत्—आप सब शीघ्र ही शक्र के सामने उपस्थित हो जायें।

४२. तए णं ते देवा देवीओ य एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ - जाव-हियया अप्पेगइया वन्दणवत्तियं, णमंसणवत्तिय एवं पूअणवत्तियं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं, दंसणवत्तियं जिणभत्तिरागेणं। अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्टमाणा, अप्पेगइया अण्णमण्णमणुयत्तमाणा। अप्पेगइया तं जीयमेयं एवमाइ त्ति कट्टु -जाव- पाउब्भवंति त्ति।

४२. तदनन्तर इस घोषणा को सुनकर वे देव-देवियाँ हृदय में हृष्ट-तुष्ट प्रसन्न हृदय हो गई और उनमें से अनेक (कुछ-एक) वन्दना करने के अभिप्राय से, अनेक नमस्कार करने के अभिप्राय से, अनेक पूजा सत्कार करने के अभिप्राय से, अनेक सम्मान करने के अभिप्राय से, अनेक देखने के अभिप्राय से, जिनभक्ति के अनुराग से, अनेक शक्र की आज्ञा पालन करने के अभिप्राय से, अनेक परस्पर एक-दूसरे की देखा-देखी के अभिप्राय से, अनेक यह हमारा परम्परागत आचार है, इत्यादि के अभिप्राय से शक्र के समक्ष उपस्थित हो गये।

४३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते वेमाणिए देवे देवीओ य अकालपरिहीणं चेव अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ पासइत्ता हट्ठे पालयं णामं आभिओगियं देवं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेग-खम्भ-सय-सण्णिविट्ठं लीलट्ठिय-सालभंजियाकलियं ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं खंभुग्गय-वइर-वेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहर-जमल-जुयल-जंत-जुत्तं-पि व अच्ची-सहस्स मालिणीयं रुवग-सहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं घण्टावलि-चलिय-महुर-मणहर-सरं सुहं कन्तं दरिसणिज्जं णिउणोविय-मिसिमिसित-मणि-रयण-घंटिया-जाल-परिक्खित्तं जोयण-सहस्स-वित्थिण्णं पंच-जोयण-सयमुव्विद्धं सिग्घं तुरियं जइणणिव्वाहिदिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।"

—जंबु० व० ५, सु० ११५।

४३. देवेन्द्र देवराज शक्र क्षण मात्र का भी विलम्ब न करके अपने आप समक्ष हाजर हुए देव-देवियों को देखता है, देखकर हर्षित होकर पालक नाम के आभियोगिक देव को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही एक सैकड़ों खंभों से युक्त, जिन पर लीला करती हुई पुतलियाँ बनी हों, ईहामृग, वृषभ, घोड़े, मनुष्य, मगर, पक्षी, व्याल (सर्प), किन्नर, रुरू (मृग विशेष), सरभ (अष्टापद) चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रों की रचना हो, प्रत्येक खंभे की वज्र की वेदिका हो, जिस पर विद्याधर युगलों की ऐसी पुतलियाँ हों, जो यन्त्रों से जुड़ी हुई-सी दिखती हों, जो सहस्ररश्मि सूर्य की तरह चमचमाहट करने वाला हो, जो हजारों रूपकों वाला हो, जो अतिशय देदीप्यमान हो, जो आँखों को सुहावना और आकर्षित करने वाला हो, जिसका स्पर्श सुखद हो, शोभा सम्पन्न हो, जिसकी घंटावलि के स्वर मधुर और मनोहर हों, जो शुभ-कान्त-दर्शनीय नियमोपेत हो, जिसके चारों तरफ चमचमाते मणिरत्नों से जड़ी हुई घंटियों की माला गुँथी हुई हो, जो एक हजार योजन लम्बा और पांच सौ योजन ऊँचा हो, शीघ्र त्वरित गति वाला हो, ऐसे दिव्ययान

विमान का विकुर्वणा शक्ति से निर्माण करके आज्ञा पूर्ति होने की मुझे सूचना दो।

४४. तए णं से पालयदेवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ -जाव- वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता तहेव करेइ त्ति।

४४. तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र की आज्ञा को सुनकर वह पालक देव हर्षित, तुष्ट आदि होकर वैक्रिय समुद्घात करके वैसे यान का निर्माण करता है।

४५. तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाण-पडिरूवगा वण्णओ,

४५. उस दिव्य यान विमान की तीन दिशाओं में तीन सोपान प्रतिरूपकों का वर्णन समझ लेना चाहिए।

४६. तेसिं णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा वण्णओ -जाव-पडिरूवा।

४६. उन तीन सोपान प्रतिरूपकों में से प्रत्येक के सामने तोरण-द्वारों का—यावत्—प्रतिरूप पद तक का वर्णन करना चाहिए।

४७. तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे। से जहा णामए आलिंग-पुक्खरे इ वा - जाव- दीविय-चम्मे इ वा अणेग-संकु-कीलग-सहस्स-वियए आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि-सुत्थिय-सोवत्थिय-वद्धमाण-पूसमाणव-मच्छंडग-मगरं-डग-जार-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागरतरंग-वसंतलय-पउ-मलय-भत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणावहि-पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए उवसोभिए।

४७. उस यान विमान के अन्दर का भूमिप्रदेश बहुत समतल, रमणीय था। वह मृदंग के अथवा ढोलक के मुख भाग जैसा यावत्-चीते की खाल (चमड़ा) जैसा था, उसके तल में हजारों शंकु और कीलियाँ जड़ी गई थीं और उनमें सुघड़ता से जड़े हुए (खचित) रंग-बिरंगे विविध प्रकार के मणि-माणिकों में से कितने ही आवर्त-प्रत्यावर्त वाले (चढ़ाव उतार के) श्रेणी प्रश्रेणी वाले, सुरेख स्वस्तिक शराव-संपुट, मंगल-पाठक, मछली के अंडे और मगर के अंडे जैसे थे, कितनों में पुष्पवेल, कमलवेल, सागरतरंग, वसन्तलता और पद्मलता आदि जैसे बहुत से दूसरे, सुन्दर चित्र अंकित किये गये हों, जैसे दिखते थे, इस प्रकार उस भू-भाग में जड़ी हुई चमचमा-हट वाली उत्कृष्ट प्रभावशाली मणियों से वह शोभित हो रहा था।

४८. तेसि णं मणीणं वण्णे गन्धे फासे य भाणियव्वे। जहा रायपसेणइज्जे।

४८. उन मणियों के वर्ण, गन्ध और स्पर्श का वर्णन करना चाहिए। जैसा राजप्रश्नीय सूत्र में कहा है।

४९. तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पेच्छाघरमण्डवे अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे, वण्णओ -जाव- पडिरूवे।

४९. उस भूमि भाग के मध्य भाग में (बीचोंबीच) सैकड़ों स्तम्भों से युक्त प्रेक्षागृह मण्डप था—यावत्—प्रतिरूप पद तक उसका वर्णन पूर्ववत् यहाँ भी करना चाहिए।

५०. तस्स उल्लोए पउमलय-भत्तिचित्ते -जाव- सव्व-तवणिज्ज-मए -जाव- पडिरूवे।

५०. उस प्रेक्षागृह मंडप में बांधे गये चंदोवे में पद्मलता आदि के चित्र बने हुए थे—यावत्—पूरी तरह से चमचमाते हुए सोनेरी तारों से गुंथा हुआ था—यावत्—प्रतिरूप अत्यन्त सुन्दर था।

५१. तस्स णं मण्डवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेस भागंसि महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई वण्णओ।

५१. उस मंडप के अत्यन्त समतल और रमणीय भूमि प्रदेश के बीचोंबीच एक आठ योजन लम्बी-चौड़ी और चार योजन ऊंची (मोटी) सर्वात्मना मणिमय मणिपीठिका थी, जिसका वर्णन पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार कर लेना चाहिए।

५२. तीए उवरिं महं एगे सीहासणे वण्णओ।

५२. उस पर एक विशाल सिंहासन था, उसका वर्णन भी यहाँ कर लेना चाहिए।

५३. तस्सुवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ।

५३. उसके ऊपर रत्नजटित एक विजयदूष्य का वर्णन भी यहाँ कर लेना चाहिये।

५४. तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे। एत्थ णं महं एगे कुम्भिक्के मुत्तादामे, से णं अण्णेहिं तदद्धुच्चत्त-प्पमाण-मित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते।

ते णं दामा तवणिज्ज-लंबूसगा सुवण्ण-पयरग-मण्डिया णाणा-मणि-रयण-विविह-हारद्धहार-उवसोभिया समुदया ईसिं अण्ण-मण्णमसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं मन्दं एइज्जमाणा एइज्जमाणा-जाव-निव्वुइकरेणं सद्दे णं ते पएसे आपूरेमाणा आपूरेमाणा -जाव- अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति त्ति।

५४. उसके बीचोंबीच वज्रमणि से निर्मित अंकुश था। उसमें घड़े जितने बड़े मोतियों की एक बड़ी माला लटकती थी, उसके आसपास चारों तरफ और ऊँचाई में उससे आधी एवं अर्धकुम्भ प्रमाणवाली चार मोतियों की मालायें लटक रही थीं।

ये मालायें सुवर्ण निर्मित गेंद जैसे आभरण विशेषों से युक्त थीं, सुवर्ण के पतरों से मंडित थी, विविध मणिरत्नों के अनेक हारों और अर्ध हारों से उपशोभित एवं समुदय-वाली थी (सुन्दर रीति से घड़ी गई थीं) और एक दूसरे से बहुत पास-पास नहीं थी, एक दूसरे से थोड़ी-थोड़ी दूर थी, पुरवाई हवा से मन्द-मन्द हिल रही थी—यावत्—इनके आपस में टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि कानों को बड़ी प्रिय-सुहावनी लगती थी—यावत्—इस प्रकार शोभायमान हो रही थीं।

५५. तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीए सामाणिय-साहस्सीणं चउरासीइ-भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं।

एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणेणं मज्झिमाए चउदसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं ति।

तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं।

एवमाई विभासियव्वं सूरियाभगमेणं-जाव-पच्चप्पि-णन्ति त्ति।

—जंबु० व० ५, सु० ११६।

५५. उस सिंहासन के वायव्यकोण में (पश्चिमोत्तर दिशा में) उत्तर में और उत्तर पूर्व दिशा में (ईशानकोण) में देवेन्द्र देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देवों के चौरासी हजार भद्रासन, पूर्वदिशा में आठ पटरानियों के भद्रा-सन थे।

इसी प्रकार दक्षिण पूर्व दिशा में आभ्यन्तर परिषदा के बारह हजार देवों के, दक्षिण दिशा में मध्यम परिषदा के चौदह हजार देवों के, दक्षिण पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) में बाह्य परिषदा के सोलह हजार देवों के और पश्चिम में सात सेनापतियों के भद्रासन थे।

उसके अतिरिक्त उस सिंहासन की चारों दिशाओं में चौरासी-चौरासी हजार आत्म-रक्षक देवों के भद्रासन थे।

इत्यादिरूप से यह सब वर्णन सूर्याभदेव के आगमन प्रमाण के पाठानुसार 'प्रत्यर्पयन्ति' क्रिया पद तक कर लेना चाहिए।

५६. तए णं से सक्के -जाव- हट्ठ-हियए दिव्वं जिणेंदाभिगमण-जुग्गं सव्वालंकार-विभूसियं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएण गन्धव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरुहइ, दुरुहित्ता-जाव-सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे त्ति।

५६. तदन्तर वह शक्र हृष्ट-तुष्ट इत्यादि होकर जिनेन्द्र भगवान के सम्मुख जाने के योग्य सर्व अलंकारों से विभूषित दिव्य उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा करता है, विकुर्वणा करके अपनी आठ सपरिवार पटरानियों के साथ नर्तक वृन्द और गंधर्ववृन्द के साथ उस विमान की प्रदक्षिणा करते-करते पूर्व दिशा के तीन सोपानों से होकर उसमें चढ़ता है, चढ़कर—यावत्—पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है।

५७. एवं चेव सामाणिया वि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहंति दुरूहित्ता पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

अवसेसा य देवा देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहंति दुरूहित्ता तहेव -जाव- णिसीयंति।

५८. तए णं तस्स सक्कसस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

५९. तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसण-रइय-आलोय-दरिसणिज्जा वाउद्धुय-विजयवेजयन्ती य समूसिया गगणतलमणुलिहंति पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

६०. तयणन्तरं च णं छत्तभिंगारं।

६१. तयणंतरं च णं वइरामयवट्ट-लट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवरपंचवण्णकुडभी-सहस्स-परिमण्डियाभिरामे वाउद्धुय-विजय-वेजयन्ती-पडागा-छत्ताइच्छत्त-कलिए तुंगे गयण-तलमणुलिहंत-सिहरे जोयण-सहस्समूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए त्ति।

६२. तयणन्तरं च णं सरूव-णेवत्थ-परियच्छिय-सुसज्जा सव्वालंकारविभूसिया पंच अणिया पंच अणियाहिवइणो -जाव- संपट्ठिया।

६३. तयणन्तरं च णं बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं -जाव- णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ य मग्गओ य पासओ अ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए त्ति।

तयणन्तरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए-जाव-दुरूढा समाणा मग्गओ य -जाव- संपट्ठिया।

६४. तए णं से सक्के तेणं पंचाणियपरिक्खित्तेणं जाव-महिंदज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिय-जाव-परिवुडे। सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झं मज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढिं-जाव-उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाण-मग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जोयणसयसाहस्सिएहिं

५७. इसी प्रकार सामानिक देव भी उत्तर दिशा के तीन सोपानों पर होकर चढ़े और चढ़कर प्रत्येक उसी प्रकार पहले से रखे गये अपने-अपने भद्रासनों पर बैठते हैं।

अवशिष्ट देव और देवियां भी दक्षिण दिशावर्ती तीन सोपानों से होकर चढ़ती हैं और चढ़कर पूर्ववत्—यावत्—बैठ गईं।

५८. इसके बाद शक्र के उस विमान पर चढ़ते ही आठ-आठ मंगल द्रव्य यथाक्रम से आगे चलने लगे।

५९. तत्पश्चात् पूर्णकलश, भृंगारक (झारी), चामर सहित दिव्य छत्र पताका और फहराहट के कारण दर्शनीय एवं प्रिय-दर्शना, अपनी ऊँचाई से आकाश को छूने वाली और वायु से लहराती हुई विजय वैजयन्ती पताका (ध्वजा) अनुक्रम से आगे चलने लगी।

६०. तदनन्तर छत्र और झारी भी।

६१. उसके पश्चात् अनुक्रम से वज्ररत्न से बना हुआ गोल सुन्दर सुस्थित, सुश्लिष्ट परिमार्जित, रमणीय, सुप्रतिष्ठित, विशिष्ट हजारों पंचरंगी छोटी-छोटी ध्वजाओं से सजाया होने से नयनाभिराम, हवा से लहलहाती विजय वैजयन्तीमाला पताकाओं से युक्त छत्रातिछत्रों से कलित गगनतल के शिखर को स्पर्श करे उतना ऊँचा, हजार योजन ऊँचा, महान् इन्द्र-ध्वज आगे चलने लगा।

६२. उसके पीछे अनुक्रम से अपने अपने गणवेश को पहने हुए सुसज्जित और सर्व अलंकारों से विभूषित पांच सेनायें पांच सेनापति आगे चलने लगे।

६३. तत्पश्चात् अनुक्रम से अनेक आभियोगिक देव और देवियां अपने-अपने रूपों-यावत्-नियोगों से देवेन्द्र देवराज शक्र के आगे और पीछे आजू-बाजू से चलते हैं।

इसके बाद अनेक सौधर्मकल्पवासी देव और देवियां अपनी-अपनी समस्त ऋद्धि-वैभव आदि के साथ विमानों में आरूढ़ होकर आगे पीछे इत्यादि चलने लगे।

६४. तत्पश्चात् वह शक्र पांच प्रकार की सेनाओं से घिरा हुआ —यावत्—जिसके आगे-आगे इन्द्रध्वज [illegible] चौरासी हजार सामानिक देवों से [illegible] वैभव—यावत्—ध्वनि के साथ सौधर्मकल्प [illegible] होकर अपनी इस दिव्य देव ऋद्धि को [illegible] सौधर्मकल्प के [illegible]

विग्गहेहिं ओवयमाणे ओवयमाणे ताए उक्किट्ठाए -जाव- देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव णंदीसरवरे दीवे जेणेव दाहिण-पुरत्थिमिल्ले रइकरग-पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया। णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो इति, -जाव- तं दिव्वं देविड्ढिं -जाव- दिव्वं जाण विमाणं पडिसाहरमाणे पडिसाहरमाणे -जाव- जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-णगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणस्स उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभागे चउरंगुलमसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ ठवित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ।

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति,

अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाण-विमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति त्ति।

वहाँ आता है, वहाँ आकर एक लाख योजन प्रमाण डगों को भरता-भरता अपनी उत्कृष्ट देवगति से गमन करते हुए तिर्यग्लोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ पर नन्दीश्वर द्वीप था, जहाँ उसके आग्नेयकोण में रतिकर (रुचक) पर्वत था, वहाँ आता है, वहाँ आकर इसके बाद सूर्याभदेव के आगमन के वर्णनानुसार कहना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि सूर्याभदेव के स्थान पर शक्र का नाम जोड़कर कथन करना चाहिये और दिव्य देव ऋद्धि—यावत—दिव्ययान विमान का प्रतिसंहरण-संकोचन करके—यावत्—जहाँ भगवान तीर्थंकर का जन्म नगर है, जहाँ तीर्थंकर भगवान का जन्म भवन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर उस दिव्ययान विमान द्वारा भगवान तीर्थंकर के जन्म भवन की तीन बार प्रदक्षिणा कीं, प्रदक्षिणा करके भगवान तीर्थंकर के जन्म भवन के उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में जमीन से चार अंगुल ऊपर अधर उस दिव्य यान विमान को खड़ा करता है, खड़ा करके आठ पटरानियों, दो सेनाओं और नर्तकवृन्द एवं गन्धर्ववृन्द के साथ उस दिव्य यान विमान में से पूर्व दिशावर्ती तीन सोपानों से होकर नीचे उतरता है। तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव दिव्ययान विमान के उत्तर दिशावर्ती तीन सोपानों से होकर नीचे उतरते हैं।

शेष रहे हुए देव और देवियाँ उस दिव्ययान विमान के दक्षिण दिशावर्ती तीन सोपानों से नीचे उतरे।

६५. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए सामाणिय-साहस्सिएहिं-जाव-सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-णिग्घोसणाइय-रवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आलोए चेव पणामं करेइ, करित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करयल -जाव- एवं वयासी-

"णमोऽत्थु ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसा-कुमारीओ -जाव- धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थाऽसि,

"अहण्णं देवाणुप्पिए! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि, तं णं तुब्भाहिं ण भाइयव्वं"-

६५. इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों आदि से संपरिवृत एवं सर्वऋद्धि आदि से सज-धजकर—यावत्—दुन्दुभि की घोष ध्वनिपूर्वक, जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थी वहाँ आता है, प्रणाम करके भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता को तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके अंजलि आदि रचकर इस प्रकार कहता है—

'हे रत्नकुक्षिधारिणी! तुम्हें मेरा नमस्कार है आदि पहले जैसा दिक्कुमारियों के प्रसंग में वर्णन किया गया, वैसा ही यहाँ भी कहना चाहिए—यावत्—आप धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं, कृतार्थ हैं'।

'हे देवानुप्रिये! मैं शक्र नामक देवेन्द्र देवराज तीर्थंकर भगवान का जन्म महोत्सव करूँगा इसलिए आप भयभीत न हों'।

ति कट्टु ओसोवणि दलयइ, दलयित्ता तित्थयर-पडिरूवगं विउव्वइ, विउव्वित्ता तित्थयरमाउयाए पासे ठवेइ, ठवित्ता पंच सक्के विउव्वइ।

ऐसा कहकर अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग करता है, करके उसने माता को मायामयी निद्रा में सुला दिया, सुला-कर तीर्थंकर सदृश प्रतिरूप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके तीर्थंकर माता के पास उस प्रतिरूप शिशु को रखता है, रख-कर फिर पांच शक्रों की विकुर्वणा की।

विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ। एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ। दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति। एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइ त्ति।

विकुर्वित शक्रों में से एक भगवान तीर्थंकर को करसंपुट में लेता है एक शक्र पीछे से छत्र तानता है, दो शक्र दोनों बाजुओं में खडे होकर चामर ढोलते हैं, एक शक्र हाथ में वज्रदंड लेकर आगे आगे चलता है।

६६. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइ-वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठाए-जाव-वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव मन्दरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे त्ति॥

—जंबु० व० ५, सु० ११७।

६६. इसके पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र अन्य अनेक भवनपति, वाणव्यंतर ज्योतिष्क और वैमानिक देव-देवियों के साथ सर्व ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभिनाद के साथ अपनी उत्कृष्ट देवगति से—यावत—गमन करता करता जहां मन्दराचल पर्वत (मेरुपर्वत) है जहा पंडक वन है, जहां अभिषेक शिला है और उस शिला पर जहां अभिषेक सिंहासन है, वहां आता है, आकार पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है।

इसाणाइ-इंद-कय-जम्म-महिमा—

ईशानेन्द्र आदि इन्द्रों द्वारा कृत जन्म महोत्सव—

६७ तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविन्दे देवराया सूल-पाणी वसभवाहणे सुरिन्दे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस-विमाणावास-सयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के।

इमं णाणत्तं-महाघोसा घण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणि-याहिवई, पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणे निज्जाणमग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरगपव्वओ मन्दरे समोसरिओ -जाव-पज्जुवासइ त्ति।

६७. उस काल उस समय में शूलपाणि वृषभवाहन देवेन्द्र देवराज ईशान नामक सुरेन्द्र जो उत्तर लोकार्ध का अधिपति है अट्ठाईस लाख विमानों का स्वामी है और आकाश के समान निर्मल वस्त्र धारण करता है इत्यादि शक्र के वर्णन की तरह यहां भी वर्णन करना लेकिन; दोनों के वर्णन में इतना अन्तर है कि महाघोषा नामक घंटा है, लघु पराक्रम नामक पदाति-सेनापति है, पुष्पक नामक विमान है, [illegible] मार्ग दक्षिण दिशा में है, उत्तर-पूर्व दिशा के ([illegible] में) रतिकर पर्वत है, मन्दराचल पर्वत पर आता—यावत—पर्युपासना करता है।

६८. एवं अवसिट्ठा वि इंदा भाणियव्वा -जाव- अच्चुओ त्ति। इमं णाणत्तं - गाहा—

चउरासीइ असीई, बावत्तरि, सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा वीसा दस सहस्सा॥ १ ॥

६८. इसी प्रकार अच्युतेन्द्र तक के शेष सभी इन्द्रों के आगमन का वर्णन करना चाहिये।

इनके वर्णन में जो अन्तर है, वह इस प्रकार [illegible] चाहिये—गाथा—

चौरासी, अस्सी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], तीस, बीस, दस [illegible]

६९. एए सामाणियाणं :—गाहा—

चत्तासट्ठावीसा, बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे॥ १ ॥

६९. इस वर्णन में सामानिकों [illegible]

[illegible]

७०. आणय-पाणयकप्पे चत्तारिसयाऽऽरणच्चुए तिण्णि ।

७०. आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ और आरण-अच्युत कल्पों में तीन सौ विमान हैं ।

७१. एए विमाणाणं इमे जाणविमाणकारी देवा, तंजहा -
गाहा—
पालय, पुप्फे, य सोमणसे, सिरिवच्छे य, णंदियावत्ते ।
कामगमे,पीइगमे, मणोरमे, विमल, सव्वओभद्दे ॥ १ ॥

७१. यान विमान के निर्माणकर्त्ता देव क्रमशः इस प्रकार हैं—
गाथा—
१ पालक २ पुष्पक ३ सौमनस ४ श्रीवत्स ५ नन्दावर्त
६ कामगम ७ प्रीतिगम ८ मनोरम ९ विमल १० सर्वतोभद्र

७२. सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोयगाणं महासुक्कयाणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घण्टा, हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई, उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमि, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरग-पव्वए ।

७२. सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशक्र और प्राणत के इन्द्रों की घंटा का नाम सुघोषा, पदातिसेना के अधिपति का नाम हरिणैगमेषी, बाहर निकलने का मार्ग उत्तरदिशा में और रतिकर पर्वत दक्षिण पूर्वदिशा (आग्नेयकोण) में हैं ।

७३. ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सार-अच्चुयगाणं य इंदाणं महाघोसा घण्टा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए ।

सेसं तं चेव परिसा णं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणियचउग्गुणा, सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसयसहस्सवित्थिण्णा उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा, महिंदज्झया सव्वेसिं जोयणसाहस्सिया, सक्कवज्जा मन्दरे समोयरंति-जाव-पज्जुवासंति त्ति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११८ ।

७३. ईशान, माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और अच्युत इन्द्रों की घंटा का नाम महाघोषा, पदाति-अनीकाधिपति का नाम लघु पराक्रम, बाहर निकलने का मार्ग दक्षिण दिशा में और रतिकर पर्वत उत्तर पूर्व दिशा (ईशानकोण) में हैं ।

इनके अतिरिक्त परिषदाओं में आत्मरक्षक देवों की संख्या उनके सामानिक देवों की संख्या से चार गुणी समझनी चाहिये, इन सब इन्द्रों के यान-विमानों का विस्तार एक लाख योजन का और ऊँचाई अपने-अपने विमान प्रमाण होती है, सबका इन्द्रध्वज एक हजार योजन ऊँचा है और शक्रेन्द्र के सिवाय शेष इन्द्र मन्दर पर्वत पर उतरते हैं और पर्युपासना करते हैं ।

असुरिंद-चमर-कय-जम्म-महिमा—

७४. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिन्दे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं, चउहिं लोगपालेहिं, पचहिं अग्गमहिसीहिं, सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खदेव-साहस्सीहिं, अण्णेहि य जहा सक्के ।

णवरं-इमं णाणत्तं-दुमो पायत्ताणीयाहिवई, ओघस्सरा घण्टा, विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइं, महिन्दज्झओ पंचजोयणसयाइं, विमाणकारी आभिओगिओ देवो, अवसिट्ठं तं चेव-जाव-मन्दरे समोसरइ पज्जुवासइ त्ति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११९ ।

असुरेन्द्र चमरकृत जन्म-महोत्सव—

७४. उस काल उस समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर अपनी चमरचंचा नाम की राजधानी में, सुधर्मा नामक सभा में, चमर नामक सिंहासन पर चौसठ हजार सामानिक देवों, चार लोकपालों, परिवार सहित पाँच पटरानियों, तीन परिषदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, चतुर्गुणित चौसठ हजार ६४००० × ४ = २५६००० आत्मरक्षक देवोंसे और अनेक शक्र की तरह, लेकिन अन्तर इस प्रकार है कि—

इसके पदाति—अनीकाधिपति का नाम द्रुम, घंटा का नाम ओघस्वरा, विमान का विस्तार पचास हजार योजना का, इन्द्र ध्वज की ऊँचाई पांच सौ योजन की, विमान निर्माता आभियोगिक देव—शेष और सब वर्णन शक्र के अधिकार में किये गये वर्णन के अनुसार समझना चाहिए—यावत—मंदर पर्वत पर आता है और पर्युपासना करता है ।

असुरिंदबली-आइ-कय-जम्म-महिमा—

७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिन्दे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणियसाहस्सीओ, चउगुणा आयरक्खा,

असुरेन्द्रबली आदि कृत—जन्म-महोत्सव—

७५. उस काल उस समय में बली नामक असुरेन्द्र असुरराज भी इसी प्रकार परन्तु, जो अन्तर है, वह इस प्रकार है कि

महादुमो पायत्ताणीयाहिवई, महाओहस्सरा घण्टा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे इति।

इसके साठ हजार सामानिक देव है, आत्मरक्षक देवों की संख्या इससे चौगुनी अर्थात् सामानिक देवों की संख्या से चौगुनी है, पदाति सेना के अधिपति का नाम महाद्रुम है, घंटा का नाम महाओघस्वरा है, शेष परिषदा आदि का वर्णन [illegible] में किये गये वर्णनानुसार समझना चाहिए।

७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव।

७६. उस काल उस समय में धरण नामक असुरेन्द्र था। शेष वर्णन पूर्ववत समझना चाहिए।

७७. णाणत्तं- छ सामाणियसाहस्सीओ, छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घण्टा, भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई, विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं, महिंदज्झओ, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं। एवमसुरिन्दवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं। णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा, दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणियाणं णंदिघोसा।

७७. लेकिन अंतर यह है कि—इनके सामानिक देव छह हजार, पटरानियां छह, आत्मरक्षक देव सामानिक देवों से चौगुने है, घंटा का नाम मेघस्वरा है, पदातिसेना के अधिपति का नाम भद्रसेन, विमान का विस्तार पच्चीस हजार योजन का, इन्द्रध्वज की ऊंचाई अढाई सौ योजन की है। इसीप्रकार असुरेन्द्र के सिवाय दूसरे सभी भवनवासी इन्द्रों से संबन्धित वक्तव्यता समझना चाहिए। अन्तर केवल इतना है—असुरकुमारों की घंटा का नाम ओघस्वरा, नागकुमारों की घंटा का नाम मेघस्वरा, सुवर्णकुमारों की घंटा का नाम हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों की घंटा का नाम क्रौंचस्वरा, अग्निकुमारों की घंटा का नाम मंजुस्वरा, दिक्कुमारों की घंटा का नाम मंजुघोसा, उदधिकुमारों की घंटा का नाम सुस्वरा, द्वीपकुमारों की घंटा का नाम मधुरस्वरा, वायुकुमारों की घंटा का नाम नंदिस्वरा और स्तनितकुमारों की घंटा का नाम नंदिघोषा है।

गाहा—

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ १ ॥

गाथार्थ :—

असुर के अतिरिक्त शेष भवनवासी इन्द्रों के सामानिक देवों की संख्या क्रमशः चौसठ, साठ और छह हजार है और आत्मरक्षक देवों की संख्या अपने अपने सामानिक देवों से चौगुनी है।

७८. दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई भद्दसेणो, उत्तरिल्लाणं दक्खो त्ति।

७८. इसी प्रकार दक्षिण दिशावर्ती इन्द्रों के पदाति-सेनाधिपति का नाम भद्रसेन और उत्तर दिशावर्ती इन्द्रों के सेनाधिपति का नाम दक्ष है।

७९. वाणमन्तर-जोइसिया णेयव्वा एवं चेव।
णवरं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्खसहस्सा, विमाणा सहस्सं, महिन्दज्झया पणवीसं जोयणसयं, घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीयाहिवई विमाणकारी य आभिओगा देवा। जोइसियाणं सुस्सरा-सुस्सरणिग्घोसाओ घण्टाओ, मन्दरे समोसरणं-जाव-पज्जुवासंति त्ति ॥

—जंबु० व० ५, सु० ११६।

७९. पूर्वोक्त [illegible] ज्योतिष्क देवों के बारे में [illegible] हजार सामानिक देव, चार पटरानियां, [illegible] ऊंचाई [illegible] मंजुस्वरा और [illegible] मंजुघोसा है। [illegible]

चन्द्र की घंटा का नाम सुस्वरा और सूर्य की घंटा का नाम स्वर निर्घोषा है, ये सभी मन्दर-पर्वत पर आते हैं—यावत-पर्युपासना करते हैं।

अच्चुय-देविंद-कय-तित्थयराभिसेओ—

८०. तए णं से अच्चुए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह।"

८१. तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठ-तुट्ठ-जाव-पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं-जाव-समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियकलसाणं,

एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चन्दणकलसाणं।

एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं वायकरगाणं पुप्फचंगेरीणं एवं जहा सूरिआभस्स सव्व चंगेरिओ सव्व पडलगाइं विसेसियतराइं भाणियव्वाइं।

सीहासण-छत्त-चामर-तेल्लसमुग्ग-जाव-सरिसव-समुग्गा तालिअंटा-जाव-अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति विउव्वित्ता साहाविए वेउव्विए य कलसे- जाव -कडुच्छुए य गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं-जाव-सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति,

एवं पुक्खरोदाओ-जाव-भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं मट्टियं च गिण्हन्ति।

एवं गंगाईणं महाणईणं-जाव-चुल्लहिमवन्ताओ सव्वतुवरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले-जाव- सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हन्ति, गिण्हित्ता पउमद्दहाओ दहोदगं उप्पलाईणि य।

अच्युत—देवेन्द्रकृत तीर्थंकराभिषेक—

८०. तत्पश्चात् उपस्थित सब देव-देवेन्द्रों में लब्ध प्रतिष्ठित अच्युत नामक देवेन्द्र देवराज आभियोगिक देवों को बुलाता है और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रिय ! तुम अतिसार्थक महा मूल्यवान, महोत्सव के योग्य विशाल ऐसे तीर्थंकराभिषेक की शीघ्र ही तैयारी करो।

८१. अनन्तर वे अभियोगिक देव स्वामी की आज्ञा सुनकर हर्षित, तुष्ट होकर ईशानकोण की ओर जाते हैं, वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात-यावत-करके वे एक हजार आठ सुर्वण कलशों की—

इसीप्रकार रूप्यमय, मणिमय, सुवर्णरूप्यमय, सुवर्णमणिमय, रूप्यमणिमय, सुवर्णरूप्यमणिमय कलशों की एक हजार आठ मिट्टी के कलशों की, एक हजार आठ चंदन के कलशों की—

एवं झारियों की, दर्पणों की, थालों की, पात्रियों की, सुप्रतिष्ठकों की, चित्रों की, रत्नकरण्डकों की, पूजा के योग्य जलपात्रों (कलशियों) की, पुष्प-चंगेरिकाओं (फूलों को रखने की छोटी-छोटी टोकनियों, डलियों) की उसके अतिरिक्त जिस तरह सूर्याभदेव की वक्तव्यता में विशिष्ट समस्त चंगेरिकाओं की, समस्त पुष्प पटलों आदि की विकुर्वणा कही गई, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये।

इसी तरह सिंहासन, छत्र, चामर, तेलसमुद्गकों (तेल की कुप्पी) -यावत-सरसों के डिब्बों पंखों-यावत-एक हजार आठ धूपदानों की विकुर्वणा करते हैं, विकुर्वणा करके वे स्वाभाविक एवं विक्रिया से बनाये गये कलशों से लेकर धूपदानों पर्यन्त सभी चीजों को लेकर जहाँ क्षीरोदक-समुद्र है, वहाँ आकर क्षीरोदक लेते हैं, लेकर वहीं जो उत्पल, पद्म-यावत-सहस्रपत्र हैं उनको लेते हैं। इसी प्रकार पुष्करोदक-यावत-भरत एरावतवर्षों मागध आदि तीर्थों का जल और मिट्टी लेते हैं।

इसी तरह गंगा आदि महानदियों-यावत्-क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से समस्त कषैले पदार्थों, सभी फूलों, सभी सुगंधित द्रव्यों, सभी माल्य-यावत्-सभी औषधियों और सफेद सरसों को लेते हैं, लेकर पद्म द्रह का जल व उत्पल आदि लेते हैं।

८२. एवं सव्वकुल-पव्वएसु वट्टवेयड्ढेसु सव्वमहद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्क-वट्टिविजएसु वक्खार-पव्वएसु अंतर-णईसु विभासिज्जा-जाव-उत्तरकुरुसु-जाव-सुदंसण-भद्दसालवणे सव्व-तुवरे-जाव-सिद्धत्थए य गिण्हन्ति ।

८२. इसी प्रकार समस्त कुल पर्वतों, वृत्तवैताढ्यों, सभी महाद्रहों, समस्त वर्षों, सभी चक्रवर्ती विजयों वक्षस्कार पर्वतों, अंतर नदियों में से जल आदि को लेकर-यावत-उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों-यावत-सुदर्शन-भद्रशालवन में से सभी [illegible] यावत-सरसों लेते हैं ।

८३. एवं णंदणवणाओ सव्वतुवरे-जाव-सिद्धत्थए य सरसं गोसीसचन्दणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हंति ।

८३. इसीतरह नन्दनवन में से समस्त [illegible]-यावत-सरसों और सरस गोशीर्ष चन्दन और दिव्य पुष्प मालाओं को लेते हैं ।

एवं सोमणस-पंडगवणाओ य सव्वतुवरे-जाव-सुमणदामं दद्दर-मलय-सुगन्धे य गिण्हंति गिण्हित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता महत्थं-जाव-तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेंति त्ति ।

—जंबु० व० ५, सु० १२० ।

इसी तरह सोमनस-पंडकवन में से सभी [illegible] -यावत-सरसों और पुष्पमाला सघनमलय सुगन्ध [illegible] लेते हैं, लेकर वे एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, एकत्रित [illegible] जहाँ उनके स्वामी थे वहाँ आते हैं, [illegible] सार्थक-यावत- तीर्थंकर के अभिषेक की तैयारी [illegible] ।

८४. तए णं से अच्चुए देविन्दे दसहिं सामाणियसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं वेउव्विएहिं य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चन्दण-कयचच्चाएहिं आविद्धकण्ठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयलसुकुमालपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव-अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं-जाव-सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं-जाव-सव्वोसहि-सिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए-जाव- रवेणं महया महया तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचइ ।

८४. तब (अभिषेक योग्य सामग्री की प्राप्ति और तैयारी हो जाने के बाद) वह देवेन्द्र अच्युत दस हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, तीन परिषदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, चालीस हजार आत्मरक्षक देवों से परिवृत होकर उन स्वाभाविक एवं [illegible] द्वारा निर्मित, उत्तम कमलों पर स्थापित श्रेष्ठ सुगन्धित [illegible] भरे हुए चन्दन से चर्चित, कंठ में पंचरंग सूत्र से (मौली) [illegible] हुए, पद्म और उत्पल से ढँके हुए सुकुमार [illegible] आठ हजार सुवर्ण कलशों-यावत-आठ हजार मिट्टी के कलशों द्वारा-यावत-सभी प्रकार के जल द्वारा, सभी प्रकार की मिट्टी द्वारा—सभी प्रकार के [illegible] सभी प्रकार की औषधियों तथा सरसों द्वारा [illegible] वाद्य ध्वनियों और [illegible] प्रभु का अभिषेक करता है ।

८५. तए णं सामिस्स महया महया अभिसेयंसि वट्टमाणंसि इंदाइया देवा छत्त-चामर-धूव-कडुच्छुअ-पुप्फ-गंध-जाव-कलस-हत्थगया हट्ठ-तुट्ठ-जाव-वज्जसूलपाणीपुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा इति ।

एवं विजयाणुसारेणं -जाव-अप्पेगइया देवा आसिय-संमज्जिओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेन्ति-जाव-गन्धवट्टिभूयं ति ।

अप्पेगइया हिरण्णवासं वासिंति ।

एवं सुवण्ण-रयण-वइर-आभरण-पत्त-पुप्फ-फल-बीय-

मल्ल-गन्ध-वण्ण जाव चुण्णवासं वासति ।

आभूषण पत्र, पुष्प, फल, बीज माला, सुगंधित पदार्थ-यावत-सुगन्धित चूर्ण की वर्षा करते हैं।

अप्पेगइया हिरण्णविहिं भाइंति ।

कितने ही देव सोने-चाँदी से मार्गों को सजाते हैं।

एवं-जाव-चुण्णविहिं भाइंति ।

इसी प्रकार कितने ही देव सुगन्धित चूर्णों इत्यादि से रास्तों का शृंगार करते हैं।

८६. अप्पेगइया चउव्विहं वज्जं वाएन्ति, तं जहा—
१ ततं, २ विततं, ३ घणं, ४ झुसिरं ।

८६. कितने ही देव चार प्रकार के बाजे बजाते हैं—
१. तत २. वितत ३. घन ४. शुषिर ।

८७ अप्पेगइया चउव्विहं गेयं गायन्ति, तं जहा—
१ उक्खित्तं, २. पायत्तं, ३ मन्दाइयं, ४ रोइयावसाणं ।

८७. कितने ही देव चार प्रकार के गीत गाते हैं—
१. उत्क्षिप्त २. पादान्त ३. मंदायित ४. रोचितावसान ।

८८. अप्पेगइया चउव्विहं णट्टं णच्चन्ति, तं जहा—
१ अंचियं, २ दुयं, ३ आरभडं, ४ भसोलं ।

८८. कितने ही देव चार प्रकार के नृत्य करते हैं—
१. अंचित २. द्रुत ३. आरभट ४. भसोल ।

अप्पेगइया चउव्विहं अभिणयं अभिणयंति, तं जहा—
१ दिट्ठंतियं, १ पाडिस्सुइयं, ३ सामण्णोवणिवाइयं, ४ लोग-मज्झावसाणियं ।

कितने ही देव चार प्रकार का अभिनय करते हैं—
१. दार्ष्टान्तिक २. प्रतिश्रुतिक ३. सामान्यतो विनिपातिक ४. लोकमध्यावसानिक ।

अप्पेगइया बत्तीसइविहं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेन्ति ।

कितने ही देव बत्तीस प्रकार की दिव्यनाट्य विधियों का प्रदर्शन करते हैं।

अप्पेगइया उप्पयनिवयं निवयउप्पयं संकुचियपसारियं -जाव-भन्तसंभन्तणामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंतीति ।

कितने ही देवों ने उत्पतन-निपतन,—निपतन-उत्पतन संकुचित-प्रसारित—यावत्—भ्रान्त-संभ्रान्त नामक नाट्य विधियों का प्रदर्शन किया ।

८९. अप्पेगइया तंडवेंति, अप्पेगइया लासेन्ति, अप्पेगइया पीणेन्ति एवं बुक्कारेन्ति, अप्फोडेन्ति, वग्गन्ति, सीहणायं णदन्ति, अप्पेगइया सव्वाइं करेन्ति,

८९. कितने ही देव तांडव नृत्य करते हैं, कितने ही रास-लीला करते हैं। कितने ही देवों ने हर्ष-उल्लास उत्पन्न करने वाला अभिनय कर, गर्जना की। कितने ही तालियां बजाकर या मल्ल की तरह ताल ठोककर फट-फट ध्वनि करते हैं, कितने ही आपस में एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर झूमने लगते हैं, सिंहगर्जना करते हैं तो कितने ही यह सब करते हैं।

९०. अप्पेगइया हयहेसियं । एवं हत्थिगुलुगुलाइयं, रहघणघणाइयं अप्पेगइया तिण्णि वि, अप्पेगइया उच्छोलन्ति, अप्पेगइया पच्छोलन्ति अप्पेगइया तिवइं छिंदन्ति, पायदद्दरयं करेन्ति, भूमिचवेडे दलयन्ति, अप्पेगइया महया महया सद्देणं रावेंति। एवं संजोगा विभासियव्वा ।

९०. कितने क देव घोड़ों की तरह हिनहिनाहट करते हैं। इसी प्रकार कितने ही हाथी की तरह चिंघाड़ते हैं, रथ की तरह घनघनाहट करते हैं और कितने ही देव इन तीनों बातों को करते हैं, कितने ही सामने से रंग गुलाल उछालने लगे, कितने ही पीछे से उछालते हैं, कितने ही चुटियां लेते हैं जमीन पर पैर पटकते हैं भूमि पर थाप मारते हैं, कितने ही जोर-जोर से चिल्लाते हैं। इसी प्रकार और भी बातों को समझ लेना चाहिये।

अप्पेगइया हक्कारेन्ति । एवं पुक्कारेन्ति थक्कारेन्ति ओवयंति उप्पयंति परिवयंति जलन्ति तवंति पतवंति गज्जंति विज्जुयायंति वासिंति अप्पेगइया देवुक्कलियं करेंति । एवं देवकहकहगं करेंति, अप्पेगइया दुहुदुहुगं करेंति ।

कितने ही देव हा-हू करते हैं। इसी प्रकार कितने ही देव मुंह से फू-फू, था-था आवाज निकालते हैं, नीचे आते हैं, ऊँचे उछलते हैं, चक्कर लगाते हैं, जलते हैं, तपते हैं, धकधकाते हैं, मेघ की तरह गर्जना करते हैं, बिजली की तरह चमचमाहट करते हैं, कितने ही देवों को एक लाइन

में खड़ा करते हैं, कह कहे लगाते हैं कितने ही दुह दुहाट करते हैं।

९१. अप्पेगइया विकियभूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति।

९१. कितने ही अनेक रूपों की विकुर्वणा करके नाचते हैं।

९२. एवमाइ विभासेज्जा जहा विजयस्स -जाव- सव्वओ समन्ता आधावेंति परिधावेंति त्ति।

—जंबु० व० ५, सु० १२१।

९२. इसी प्रकार शेष वर्णन भी विजयदेव के वर्णन के अनुसार चारों तरफ, सर्वत्र दौड़ भाग करते हैं तक समझना चाहिये।

९३. तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं-जाव-मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता ताहिं इट्ठाहिं-जाव-जयजयसद्दं पउंजइ, पउंजित्ता- जाव -पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गन्धकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता—

९३. उस समय अपने परिवार सहित अच्युतेन्द्र महान अभिषेक द्वार प्रभु का अभिषेक करता है अभिषेक करके हाथों की अंजलि करके—यावत्—नतमस्तक हो नमस्कार करके जय हो! विजय हो! शब्दों द्वारा बधाता है,बधाई देकर इष्ट-मिष्ट इत्यादि वाणी से जय जयकार करते है, जय-जयकार करके—यावत्—कमल जैसे सुकोमल, सुगंधित, गंधकाषायिक वस्त्र (तौलिया) से शरीर को पोंछता है पोंछकर—

९४. एवं- जाव -कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेइ, करित्ता - जाव - णट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसतण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तं जहा :

गाहा—

दप्पण, भद्दासण, वद्धमाण, वरकलस, मच्छ, सिरिवच्छा।
सोत्थिअ, णन्दावत्ता, लिहिआ अट्ठट्ठमंगलगा॥ १॥

९४. फिर कल्पवृक्ष की तरह अलंकृत और विभूषित करता है, विभूषित करके—यावत्—नाट्य प्रयोग दिखाता है, दिखाने के पश्चात् स्वच्छ, स्निग्ध, चांदी के सदृश श्वेत, अक्षरस (सरस-सुन्दर अक्षत) तंदुलों (चावलों) से तीर्थंकर प्रभु के सन्मुख आठ-आठ मंगल द्रव्यों का आलेखन करता है। उनके नाम हैं—(गाथार्थ—)
१. दर्पण २. भद्रासन ३. वर्धमान ४. कलस ५. मत्स्य-युगल ६. श्रीवत्स ७. स्वस्तिक ८. नन्दावर्त। इन आठ मंगलों का आलेखन किया।

९५. लिहिऊण करेइ उवगारं, किं ते? पाडल-मल्लिअ-चंपग-असोग-पुन्नाग-चूअमंजरि-णवमालिअ-वउल-तिलय-कणवीर-कुन्द-कुज्जक-कोरंटक-पत्त-दमणग-वर-सुरभिगंध-गंधिअस्स कयग्गाहगहिअ-करयल-पब्भट्ठ-विप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमणिअरस्स तत्थ चित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं करेत्ता चंदप्पभ-रयण-वइर-वेरुलिय-विमलदण्डं, कंचण-मणि-रयण-भत्तिचित्तं, कालागुरुपवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-गंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयत्तेणं धूवं दाऊण जिणवरिंदस्स सत्तट्ठपयाइं ओसरित्ता दसंगुलियं अंजलिं करिय मत्थयंमि पयओ अट्ठसयविसुद्धगन्धजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ।

९५. मंगलों का आलेखन करके वह भगवान की पूजा करता है, किसरीति से? तो पाटल (गुलाब), मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, आम्रमंजरी, नवमल्लिका, बकुल, तिलक कनेर, कुन्द, कुब्जक, कोरंटक पत्र (मरवा) दमनक पुष्पों की श्रेष्ठ सुगन्ध से वासित हाथ में से नीचे गिर जाने वाले पुष्पों का त्याग कर शेष रहे उन चित्र विचित्र पचरंगी पुष्पों से एक जानु (घुटने) जितना ऊँचाई का ढेर बनाता है, बनाकर चंद्रकांत कर्केतनादिरत्न-वज्र-वैडूर्यमणि से निर्मित विमल दंड (हत्था) वाली सुवर्ण मणि-रत्न आदि से रचित चित्र विचित्र विविध चित्रों से युक्त, कृष्णागुरु, कुन्दरूक, तुरुष्क जैसी उत्तम सुगंधवाली धूपों की सुगंध की लहरियों को फैलाने वाली धूपदानी में धूपक्षेप करता है, धूपक्षेप करके जिनेन्द्र भगवान से सात-आठ डग दूर खिसक कर दसों अंगुलियों को जोड़कर बनाई गई अंजलि को मस्तक से लगाकर एक सौ आठ विशुद्ध ग्रन्थों (पाठों) से युक्त उत्तम छन्दों में रचित, अर्थ समृद्ध अपुनरुक्त स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता है।

९६. संथुणित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता - जाव करयल-परिग्गहियं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"णमोऽत्थु ते सिद्ध-बुद्ध णीरय समण समाहिय समत्त समजोगि सल्लगत्तण णिब्भय णीरागदोस णिम्मम णिस्संग णीसल्ल माणमूरण गुणरयण सीलसागरमणंतमप्पमेय भविय धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टी !

"णमोऽत्थु ते अरहओ त्ति" कट्टु एवं वन्दइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे-जाव -पज्जुवासइ।

—जंबु० व० ५, सु० १२२।

९६. स्तुति करके बायाँ घुटना मोड़कर ऊँचा करता है ऊँचा करके—यावत—दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर अंजलि-रूप करके इस प्रकार कहता है—

'हे सिद्ध, बुद्ध, नीरज, श्रमण, समाहित (संकल्प-विकल्प से रहित, समाधियुक्त, अनाकुल चित्तवाले) समाप्त (अवि-संवादि वचनवाले) समयोगी शल्यों का उन्मूलन करने वाले, निर्भय, रागद्वेष से मुक्त, निर्मम (मोहरहित) निस्संग, निःशल्य, मानमर्दक, गुण-रत्नों के भंडार, शील के सागर अनन्त अप्रमेय भव्य धर्मराज्य के सार्वभौम चक्रवर्ती ! आपको नमस्कार है।'

'नमस्कार हो अरिहन्त को' इस प्रकार कहकर वह प्रभु की वन्दना करता है, नमस्कार करता है वंदना-नमस्कार करके न तो अतिनिकट और न अतिदूर यथोचित स्थान पर खड़े होकर सेवा-भक्ति करके—यावत—उपासना करता है।

ईसाणाइ-कय-तित्थयराभिसेओ—

९७. एवं जहा अच्चुयस्स तहा - जाव - ईसाणस्स भाणियव्वं।

९८. एवं भवणवइ-वाणमन्तर-जोइसिया य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेयं पत्तेयं अभिसिंचंति।

९९. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पंच ईसाणे विउव्वइ, विउव्वित्ता—

एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयल-संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ।

दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति।

एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ।

—जंबु० व० ५ सु० १२२।

ईशानादि—कृत—तीर्थंकराभिषेक—

९७. इसी प्रकार जिस तरह अच्युतेन्द्र के सम्बन्ध में कहा उसी तरह ईशानेन्द्र द्वारा किये गये अभिषेककृत्य के बारे में कहना चाहिये।

९८. इसी प्रकार भवनपति वाणव्यतर और सूर्य तक के ज्योतिष्क देव अपने-अपने परिवार के साथ प्रत्येक अभिषेक करते हैं।

९९. इसके पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र पाँच ईशानेन्द्र की विकुर्वणा करता है, विकुर्वणा करके—

एक ईशानेन्द्र भगवान तीर्थंकर को अपने करतलसंपुट (हथेलियों) में लेता है, लेकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है।

एक ईशानेन्द्र पीछे खड़ा होकर छत्र तानता है।

दो ईशानेन्द्र दोनों बाजुओं में खड़े होकर चामर ढोरते हैं।

एक ईशानेन्द्र हाथ में शूल धारण करके सन्मुख खड़ा होता है।

देविंदसक्क-कय-तित्थयराभिसेओ—

१००. तए णं सक्के देविन्दे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एसो वि तह चेव अभिसेयाणत्तिं देइ, तेऽवि तह चेव उवणेन्ति।

१०१. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवल-वसभे विउव्वेइ सेए संखदल-

देवेन्द्र शक्रकृत—तीर्थंकराभिषेक—

१००. इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर ये भी उसी प्रकार (पूर्ववत्) अभिषेक सामग्री आदि लाने की आज्ञा देता है वे भी उसी तरह लेकर आते हैं।

१०१. तत्पश्चात् देवराज शक्र भगवान तीर्थंकर की चार दिशाओं में चार धवल (श्वेत) वृषभों (बैलों) की विकुर्वणा करता

विमल-णिम्मल-दधि-घण-गोखीर-फेण-रययणिगर-प्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

है, ये वृषभ शंखदल (शंखों के समूह) के सदृश विमल दहि के समान निर्मल, गाय के दूध के फैन और चाँदी के ढेर जैसे प्रकाशमान श्वेत, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, सुरूपवान् एवं सुन्दर थे।

तए णं तेसिं चउण्हं धवल-वसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोअधाराओ णिग्गच्छंति।

इन चारों श्वेत वृषभों के आठ सींगो में से आठ जलधारायें निकलती हैं।

तए णं ताओ अट्ठ तोयधाराओ उड्ढं वेहासं उप्पयन्ति, उप्पइत्ता एगओ मिलायन्ति, मिलाइत्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि णिवयंति।

ये आठों जलधारायें ऊपर आकाश में उछलती हैं, उछलकर एकत्रित होती हैं, एकत्रित होकर फिर वे भगवान तीर्थंकर के मस्तक पर पड़ती हैं।

१०२. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीईए सामाणिय-साहस्सीहिं एयस्स वि तहेव अभिसेओ भाणियव्वो - जाव - णमोऽत्थु ते अरहओ त्ति कट्टु वन्दइ णमंसइ - जाव - पज्जुवासइ।

—जंबु० व० ५, सु० १२२।

१०२. उस समय वह देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ इसका अभिषेक कार्य भी पूर्व की तरह कहना चाहिये—यावत्—नमस्कार हो अर्हन्त प्रभु को ऐसा कहकर वंदना करता है, नमस्कार करता है—यावत्—पर्युपासना करता है।

१०३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंच सक्के विउव्वइ, विउव्वित्ता—

एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ।

एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ।

दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति।

एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पकड्ढइ।

१०३. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र पांच शक्रों की विकुर्वणा करता है, विकुर्वणा करके—

एक शक्र भगवान तीर्थंकर को अपने करसंपुट में लेता है।

एक शक्र पीछे खड़ा होकर छत्र तानता है।

दो शक्र दोनों बाजुओं में खड़े होकर चामर ढोरते हैं।

एक शक्र हाथ में वज्र लेकर सन्मुख खड़ा रहता है।

१०४. तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं- जाव -अण्णेहि य भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए - जाव - णाइय-रवेणं ताए उक्किट्ठाए दिव्वाए देवगईए अइवयमाणे अइवयमाणे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-णयरे जेणेव जम्मण-भवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवा-गच्छइ उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ, ठवित्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता एगं महं खोम-जुअलं कुण्डलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ, ठवित्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं णाणामणि-रयण-विविह-हारद्धहार-

१०४. उसके बाद वह शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों—यावत—अन्य दूसरे भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव और देवियों से घिरा हुआ अपनी पूर्ण ऋद्धि-वैभव के साथ—यावत—वाद्यों के निर्घोष पूर्वक अपनी उत्कृष्ट दिव्य देव गतिसे चलते-चलते जहाँ भगवान तीर्थंकर का जन्म नगर है, जहाँ जन्म भवन है, जहाँ तीर्थंकर माता है, वहाँ आ पहुँचता है, पहुँचकर भगवान तीर्थंकर को माता के पास रखता है, रखकर तीर्थंकर की प्रतिकृति का प्रतिसंहरण (लोप) करता है, लोप करके अवस्वापिनी (मायामयी निद्रा) को वापस समेट लेता है, समेटकर एक महामूल्यवान क्षौमयुगल (रेशमी कपड़े का जोड़ा) और कुण्डलयुगल को भगवान तीर्थंकर के सिरहाने (उसीका की तरफ) रखता है रखकर सोने के झूमकों वाला सोने के पतरे से मंडित, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों और छोटी-मोटी मालाओं के समूह से सुशोभित, सुन्दर घड़ावट वाला एक श्रीदामगंड

उप्पिंछिन्नछुत्तं भगवओ तित्थयरस्स उल्लंबेति णिक्खिवइ। तए णं से [illegible] तित्थयरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे देहमाणे सुहंसुहेणं अभिरममाणे अभिरममाणे चिट्ठइ।

१०५. तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्ण-कोडीओ, बत्तीसं सुवण्णकोडीओ, बत्तीसं णंदाइं, बत्तीसं भद्दाइं सुभगे सुभग-रूव-जुव्वण-लावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणंसि साहराहि साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।"

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं [illegible] एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठ [illegible] जम्भए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बत्तीसं हिरण्ण-कोडीओ [illegible] भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणंसि साहरह, साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ [illegible] बत्तीसं हिरण्णकोडीओ [illegible] तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति, साहरित्ता जेणेव [illegible] देवे तेणेव [illegible] पच्चप्पिणंति।

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया [illegible] पच्चप्पिणइ।

१०६. [illegible]

[illegible]

(सुशोभित मालाओं का चक्राकार समूह) भगवान तीर्थंकर के ऊपर आकाश में चन्द्रवे में लटकाता है (तदनन्तर) भगवान तीर्थंकर को निरखते हुए अनिमेष (अपलक) नेत्रों से देखता-देखता हर्षित होता हुआ खड़ा रहता है।

१०५. इसके बाद वह देवेन्द्र देवराज शक्र वैश्रमण देव को बुलाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहता है—"हे देवानुप्रिय! बत्तीस करोड़ हिरण्य बत्तीस करोड़ स्वर्ण सुभग, सुरूप और लावण्य युक्त बत्तीस नन्दासन, बत्तीस भद्रासनों को भगवान तीर्थंकर के जन्म-भवन में शीघ्र ही यथास्थान सजावट के साथ स्थापित करो ऐसा करके आज्ञानुरूप कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।"

वह वैश्रमण देव शक्र के आज्ञा वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार करता है, स्वीकार करके जृम्भक देव को बुलाता है, बुलाकर उससे कहता है—

"हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही बत्तीस हिरण्य कोटियाँ—इत्यादि भगवान तीर्थंकर के, जन्म-भवन में स्थापित करो, करके मुझे कार्य सम्पन्न होने की सूचना दो।"

[illegible]

[illegible]

देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-णगरंसि सिंघाडग-जाव- एवं वयासी-

"हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ -जाव- जे णं देवाणुप्पिया! तित्थयरस्स-जाव-फुट्टिही" ति कट्टु घोसणगं घोसेंति, घोसित्ता, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

स्वीकार करके देवेन्द्र देवराज शक्र के पास से बाहर आते हैं, बाहर आकर शीघ्र ही भगवान तीर्थंकर के जन्म नगर के शृंगाटकों में यावत-इस प्रकार घोषणा करते हैं:—

'अरे ओ! अनेकानेक भवनपति इत्यादि—हे देवानुप्रियो! जो कोई तीर्थंकर—यावत—टुकड़ा-टुकड़ा हो जाएगा? इस प्रकार घोषणा करते हैं, घोषणा करके आदेशानुसार कार्य होने की सूचना देते हैं।

१०७. तए णं ते बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करेंति, करित्ता जेणेव नंदिस्सरे दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

—जंबु० व० ५, सु० १२३।

१०७. तत्पश्चात वे अनेकानेक भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करते हैं, करके जहाँ नन्दीश्वर द्वीप था वहाँ आते हैं, वहाँ आकर आष्टान्हिक महा महोत्सव करते हैं और महोत्सव करके फिर वे जिस-जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापिस लौट गए।

उसहेण लेहाइ-उवएसो—

१०८. तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महाराय-वासमज्झे वसइ,

तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसमाणे लेहाइ-याओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ[1] चोसट्ठिं महिलागुणे[2] सिप्पसयं च[3] कम्माणं तिण्णि[4] वि पयाहियाए उवदिसइ, त्ति।

ऋषभ द्वारा लेखनादि कला का उपदेश

१०८. उसके बाद कौशलिक अर्हत् ऋषभ बीस लाख पूर्व तक कुमार-अवस्था में रहे, और इस कुमारावस्था में रहने के पश्चात त्रेसठ लाख पूर्व पर्यन्त महाराजा रूप में रहे।

त्रेसठ लाखपूर्व पर्यन्त महाराजा पद पर रहते हुए उन्होंने जिनमें गणित प्रथम है और शकुन-रुत अन्तिम है, ऐसी लेखन आदि बहत्तर पुरुष कलाओं, चौसठ स्त्री कलाओं और सौ शिल्पकर्मों—इन तीनों का लोकहितार्थ उपदेश दिया।

उसहस्स पव्वज्जा—

१०९. उवदिसित्ता पुत्तसयं[5] रज्जसए[6] अभिसिंचइ,

अभिसिंचित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ,

वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे, पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं, चइत्ता सुवण्णं, चइत्ता कोसं, चइत्ता कोट्ठागारं, चइत्ता बलं, चइत्ता वाहणं, चइत्ता पुरं, चइत्ता अंतेउरं, चइत्ता जणवयं, चइत्ता विउल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-संतसार-सावइज्जं विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता, दायं दाइया णं परिभाएत्ता सुदंसणाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्म माणमग्गे संखिय-चक्किय-णंगलिय-मुहमंगलिय-पूसमाणग-वद्धमाणग-आइक्खग-लंख-मंख-घंटिय-गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं गंभीराहिं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अट्ठसइ-

ऋषभ की प्रव्रज्या—

१०९. उपदेश देने के पश्चात उन्होंने अपने सौ पुत्रों का पृथक-पृथक सौ राज्यों में राज्याभिषेक किया, अभिषेक करके तेरासी लाख पूर्व पर्यन्त वे महाराजा पद पर रहे, महाराजा पद पर रहते हुए जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष, अर्थात चैत्र मास का कृष्ण पक्ष, उस पक्ष की नवमी तिथि के दिन का पिछला भाग (अन्तिम प्रहर) आया तब हिरण्य (चांदी) त्यागकर, सुवर्ण त्याग-कर, कोष त्यागकर, कोष्ठागार (धान्य-भंडार) त्यागकर, सेना त्यागकर, वाहन त्यागकर, नगर त्याग कर, अन्तःपुर त्यागकर, देश त्यागकर, विपुल धन, सुवर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, माणिक तथा उत्तम साररूप द्रव्य त्यागकर तथा ये सब घृणा योग्य है, निन्दनीय हैं, ऐसा विचार करके और संबंधित स्वजनों में उन्हें बाँटकर सुदर्शना नामक रमणीय शिविका (पालखी) में बैठे, उसके पीछे-पीछे देव, असुर और मनुष्यों की परिषद चल रही थी, साथ में चल रहे शंखवादक, चक्रधारी, हलधारी, मुख से मंगलवचन बोलने वाले, मंगल पाठक बधाई गाने

---

१. सम० स० ७२, सु० ७।
२. जंबु० व० २, सु० ३०, टीका।
३. जंबु० व० २, सु० ३० टीका।
४. जीवाभि० पडि० ३, उ० ३ सु० १११
५. जंबु० व० २ सु० ३०, टीका।
६. जंबु० व० २, सु० ३०, टीका।

याहिं अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी—

"जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भय-भेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ," त्ति कट्टु अभिणंदंति य अभिथुणंति य।

वाले कथक, रज्जु पर नाचने वाले चित्रपट दिखाने वाले, घंटा बजाने वाले, अपनी इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनहर, उदार, कल्याणकर, शिवंकर, धन्य, मांगलिक, सश्रीक हृदयगम—हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाली, गंभीर, कर्ण और मन को सुखद अर्थपूर्ण (सार्थक) अपुनरुक्त (पुनरुक्ति दोष से रहित) मुन्दर वाणी से अविच्छिन्नरूप से अभिनन्दन और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे (बोले)। 'जय-जय नन्दा ! जय-जय भद्रा (हे आनन्ददायिन् ! हे भद्र कल्याणशालिन् ! आप जयशाली हों), धर्माराधना में परिषह और उपसर्गों मे भयभीत न होने वाले ! भीषण भयों को क्षमाभाव से सहन करने वाले ! आपकी धर्मसाधना निर्विघ्न सम्पन्न हो', इस प्रकार वे भगवान का अभिनन्दन करते हैं, स्तुति करते हैं।

११०. तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं-जाव-णिग्गच्छइ, जहा उववाइए -जाव-आउलबोलबहुलं णभं करेंते विणीयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ।

११०. उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ बारंबार हजारों नेत्रों से देखे जाते हुए—यावत—निकलते हैं। यहाँ औपपातिक सूत्र के वर्णनानुसार सर्व कथन समझना चाहिए—यावत्—जहाँ का गगन मंडल जनसमूह के कोलाहल से गुंजायमान हो रहा है, उस विनीता राजधानी के बीचों बीच निकलते हैं।

१११. आसिय-सम्मज्जिय-सित्त-सुइक-पुप्फोवयार-कलियं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हय-गय-रह-पहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं मंदं उद्धयरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ।

ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ,

पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुयइ,

ओमुइत्ता सयमेव चउहिं अट्टाहिं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेण जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धि एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—जंबु० व० २, सू० ३०।

१११. उस समय सिद्धार्थवन नामक उद्यान को जाने वाले मार्ग पानी से सींचे गए थे, साफ स्वच्छ किये गये थे, पुनः सुगंधित जल से छिड़काव किया गया था, पुष्पों से सजाए गये थे और जिन पर हाथी, घोड़े, रथों और पैदल चलने वाले लोगों के कारण धीमे-धीमे रज उड़ रही थी, इस प्रकार के मार्गों से होते हुए जहाँ सिद्धार्थवन था, जहाँ अशोक तरुवर था, वहाँ आते हैं, वहाँ पहुँचकर अशोक वृक्ष के नीचे शिविका खड़ी करते हैं। खड़ी करके शिविका में से नीचे उतरते हैं, उतरकर अपने हाथों से आभरण और अलंकारों को उतार देते हैं, उतारकर अपने हाथों से चारमुष्टि लोच करते हैं, लोच करके निर्जल षष्ठ-भक्त (उपवास) पूर्वक आषाढ़ नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने के समय में चार हजार उग्र, भोग और राजन्य वंशीय क्षत्रियों के साथ केवल एक देवदूष्य को लेकर, मुंडित होकर गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार कर ली।

उसहस्स अचेलयत्तं उवसग्गसहणं य—

११२. उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छर - साहियं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए।

११३. जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा - दिव्वा वा - जाव -पडिलोमा वा अणुलोमा वा तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा - जाव - कसेण वा काए आउट्टेज्जा, अणुलोमा वंदेज्ज वा - जाव -पज्जुवासेज्ज वा।

ऋषभ का अचेलकत्व एवं उपसर्ग सहन—

११२. कौशलिक अर्हत ऋषभ एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वस्त्रधारी रहे बाद में वे अचेलक हो गये थे।

११३. जब से कौशलिक अर्हत ऋषभ मुंडित होकर गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हो गये थे, तब से कौशलिक अर्हत ऋषभ ने शरीर की शुश्रुषा करना छोड़ दिया था, देह का ममत्व छोड़ दिया था, जो कोई उपसर्ग आते जैसे कि देवकृत—यावत—प्रतिकूल या अनुकूल। उनमें बेंत—यावत्—चाबुक से शरीर पर प्रहार ये प्रतिकूल उपसर्ग, वंदन यावत्——पर्युपासना करना, ये अनुकूल उपसर्ग।

ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे अणाइले अव्वहिते अद्दीण-माणसे तिविहमण-वयण-कायगुत्ते सम्मं सहइ-जाव-अहियासेइ।

समुत्पन्न इन सभी उपसर्गों को उन्होंने समभाव पूर्वक, कलुषित मना होकर (निर्मल), दुखी हुए विना, अक्षुब्ध भाव से मन, वचन, काया को संयमित रखकर शांतिपूर्वक अच्छी तरह सहन किया—यावत्—अविचल—अडिग रहे।

उसहस्स अणगार-सरूवं—

११४. तए णं से भगवं समणे जाए इरियासमिए - जाव-पारिट्ठावणिआसमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते - जाव - गुत्तबंभयारी अकोहे - जाव -अलोहे। संते पसंते उवसंते परिणिव्वुडे छिण्णसोए निरुवलेवे।

—जंबु० व० २, सू० ३१।

१. सुविमल-वर-कंस-भायणं व मुक्कतोए[1]

२. संखे विव निरंजणे विगय-राग-दोस-मोहे,

३. कुम्मो इव इंदिएसु गुत्ते,

ऋषभ का अनगार-स्वरूप—

११४. जब से भगवान श्रमण हुए, वे ईर्या समिति—यावत्—परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचनसमिति, कायसमिति से समित थे, मनोगुप्ति—युक्त-यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखना) थे, क्रोध रहित—यावत्—लोभ रहित थे। शांत, प्रशांत, उपशांत परिनिवृत शोकरहित और अलिप्त थे।

१. अतिनिर्मल उत्तम कांसे का वर्तन जैसे पानी के संपर्क से मुक्त रहता है वैसे ही आसक्ति पूर्ण सम्बन्ध से मुक्त।

२. शंख की तरह रागादि अंजन की कालिमा से रहित तथा राग-द्वेष और मोह से विरक्त।

३. कछुए के समान इन्द्रियों का गोपन करने वाले।

---

१ समणस्सोवमाकमे उवमासंखासु य एगरूवया नत्थि। एत्थ दट्ठव्वा पण्हावागरण —संव० ५, सु० १। उववाइय सु० १०७।

(क) १ संखमिव निरंजणे,
२ जच्चकणगंव जायरूवे,
३ आदरिसपडिभागे इव पागडभावे,
४ कुम्मोइव गुत्तिंदिए,
५ पुक्खरपत्तमिव निरुवलेवे,
६ गगणमिव निरालंवणे,
७ अणिले इव णिरालए,
८ चंदो इव सोमदंसणे,
९ सूरो इव तेअंसी,
१० विहग इव अपडिबद्धगामी,
११ सागरो इव गंभीरे,
१२ मंदरो इव अकंपे,
१३ पुढवीविव सव्वफासविसहे,
१४ जीवो इव अप्पडिहयगइत्ति।

—जंबु० वक्ख० २ सु० ३१

(ख) १ कंसपातीव मुक्कतोआ,
२ संख इव निरंगणा,
३ जीवो इव अप्पडिहयगइ,
४ जच्चकणगं पिव जातरूवा,
५ आदरिसफलगाविव पागडभावा,
६ कुम्मो इव गुत्तिंदिया,
७ पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा,
८ गगणमिव निरालंवणा,
९ अणिलो इव निरालया,
१० चंद इव सोमलेस्सा,
११ सूर इव दित्ततेआ,
१२ सागरो इव गंभीरा,
१३ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का,
१४ मंदरइव अप्पकंपा,
१५ सारयसलिलं व सुद्धहियया,
१६ खग्गिविसाणं व एगजाया,
१७ भारंडपक्खी व अप्पमत्ता,
१८ कुंजरो इव सोंडीरा,
१९ वसभो इव जायत्थामा,
२० सीहो इव दुद्धरिसा,
२१ वसुन्धरा इव सव्वफासविसहा,
२२ सुहुअहुआसणे इव तेअसा जलंता।

—उव० सु० १७।

४. जच्चकंचणगं व जायरूवे,
५. पोक्खरपत्तं व निरुवलेवे,
६. चंदो इव सोमभावयाए,
७. सूरो व्व दित्ततेए,
८. अचले जह मंदरे गिरिवरे,
९. अक्खोभे सागरो व्व थिमिए,
१०. पुढवी व सव्वफासविसहे,
११. तवसा वि य भासरासिछन्नि व्व जाततेए,
१२. जलियहुयासणो विव तेयसा जलंते,
१३. गोसीसचंदणं पिव सीयले, सुगंधे य
१४. हरयो विव समियभावे,
१५ उग्घोसिय सुनिम्मल व आयंसमंडलतलं व पागडभावेण सुद्धभावे,
१६. सोंडीरे कुंजरोव्व,
१७. वसभेव्व जायथामे,
१८. सीहे वा जहा मिगाहिवे होति दुप्पधरिसे,
१९. सारयसलिलं व सुद्धहियए,
२०. भारंडे चेव अप्पमत्ते,
२१. खग्गिविसाणं व एगजाते,
२२. खाणुं चेव उड्ढकाए,
२३. सुन्नागारे व्व अप्पडिकम्मे,
२४. सुन्नागारावणस्संतो निवाय-सरणप्पदीपज्झाणमिव निप्पकंपे,
२५. जहा खुरो चेव एगधारे,
२६. जहा अही चेव एगदिट्ठी,
२७. गगणमिव निरालंबे,
२८. विहग इव सव्वओ विप्पमुक्के,
२९. कय-परनिलए जहा चेव उरए,
३०. अनिलो व्व अप्पडिबद्धे,
३१. जोवो व्व अप्पडिहय-गई त्ति ।

—पण्हावागरण, संवर० ५ सूत्र १ ।

४. शुद्ध सुवर्ण के समान शुद्ध आत्मस्वरूप की शोभा को प्राप्त करने वाले ।
५. कमल के पत्ते की तरह निर्लेप ।
६. चन्द्रमा के समान सौम्य स्वभाव वाले ।
७. सूर्य की तरह तेज से दैदीप्यमान ।
८. पर्वतों में प्रधान मेरू पर्वत की तरह अचल ।
९. समुद्र के समान क्षोभ रहित एवं स्थिर ।
१०. पृथ्वी की तरह सर्व प्रकार के स्पर्शों को सहन करने वाले ।
११. तप के कारण भस्मराशि से ढकी हुई अग्नि की तरह ।
१२. प्रज्वलित अग्नि की तरह तेज से जाज्वल्यमान ।
१३. गोशीर्ष चंदन की तरह शीतल एवं सुगंधित ।
१४. ह्रद—सरोवर के समान शांत स्वभावी ।
१५. अच्छी तरह घिसकर चमकाए हुए निर्मल दर्पण मंडल के तल के समान सहज स्वभाव से शुद्ध परिणाम वाले,
१६. हाथी के समान शूरवीर ।
१७. वृषभ की तरह बलिष्ठ—समर्थ ।
१८. मृगाधिपति सिंह की तरह दुर्द्धर्ष—अजेय ।
१९. शरदऋतु के जल के समान शुद्ध हृदय ।
२०. भारंडपक्षी की तरह प्रमाद रहित—अप्रमत्त ।
२१. गेंडे के सिंग की तरह एकाकी ।
२२. स्थाणु (ठूंठ) की तरह ऊर्ध्वकाय ।
२३. सूने घर के समान श्रृंगार शोभा से रहित ।
२४. सूने घर के अन्दर पवन रहित स्थान में रखे हुए दीपक की लौ की तरह निष्कंप ।
२५. जैसे छुरे की एक सरीखी धार होती है वैसे ही ध्यान की एकाग्र धार वाले ।
२६. सर्प की तरह स्थिर दृष्टि वाले ।
२७. आकाश की तरह आलंबन रहित ।
२८. पक्षी की तरह सर्वत्र मुक्तविहारी अथवा पक्षी की तरह सब प्रकार से परिग्रह से मुक्त ।
२९. सर्प के समान दूसरे के बनाये स्थान (आवास घर) में निवास करने वाले ।
३०. वायु की तरह प्रतिबन्ध से रहित ।
३१. जीव की तरह अप्रतिहत गति वाले ।

उसहस्स पडिबंधाभावो—

११५. णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे । से पडिबंधे, चउव्विहे भवइ तं जहा—

१ दव्वओ, २ खित्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ ।

ऋषभ का प्रतिबंधाभाव—

११५. उन भगवान को किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था । वह प्रतिबंध चार प्रकार का होता है—

१. द्रव्य-निमित्तक २. क्षेत्र-निमित्तक ३. काल-निमित्तक ४. भाव-निमित्तक ।

दव्वओ—इह खलु माया मे, पिया मे, भाया मे, भगिणी मे,-जाव-संगंथसंथुआ मे, हिरण्णं मे, सुवण्णं मे-जाव-उवगरणं मे

अहवा—समासओ सच्चित्ते वा, अचित्ते वा, मीसए वा दव्वजाए—एवं तस्स ण भवइ।

खित्तओ—गामे वा, णयरे वा, अरण्णे वा, खेत्ते वा, खले वा, गेहे वा, अंगणे वा—एवं तस्स ण भवइ।

कालओ—समए वा, आवलियाए वा, आणापाणुए वा, थोवे वा लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरत्ते वा, पक्खे वा, मासे वा, उऊए वा, अयणे वा, संवच्छरे वा, अन्नयरे वा दीहकाले पडिबंधे—एवं तस्स ण भवइ।

भावओ—कोहे वा-जाव-लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ।

द्रव्य प्रतिबंध—यह मेरी माता है, यह मेरे पिता है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बहन है—यावत्—यह मेरे स्वजन, संबंधी परिचित है, यह मेरा हिरण्य है, यह मेरा सुवर्ण है—यावत्—उपकरण है। अथवा संक्षेप में इसका वर्णन करते हैं—यह सचित्त, अचित्त या मिश्रद्रव्य मेरे हैं—ये संकल्प उनको नहीं होते थे।

क्षेत्र प्रतिबंध—गांव अथवा नगर, अथवा अरण्य, अथवा खेत, अथवा खलिहान, अथवा घर, अथवा आंगन—मेरा है, ऐसा उनको ममत्व नहीं था।

काल प्रतिबंध—समय, आवली, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा उससे भी दीर्घ काल में उनको प्रतिबंध—ममत्व भाव नहीं था।

भाव प्रतिबन्ध—क्रोध—यावत्—लोभ, भय, हास्य आदि—इन सब के बारे में उन्हें कोई प्रतिबन्ध—ममत्व भाव नहीं था।

उसहस्स विहारो—

११६. से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंतगिम्हासु गामे एगराइए, णयरे पंचराइए ववगय-हास-सोग-अरइ-भय-परित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुम्मि कंचणम्मि य समे इहलोए परलोए य अपडिबद्धे जीविय-मरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ।

ऋषभ का विहार—

११६. वे भगवान वर्षावास के अतिरिक्त हेमन्त और ग्रीष्मऋतु में एक रात और नगर में पांच रात रहते थे, वे हास्य, शोक, अरति, भय, त्रास से मुक्त होकर, निर्मम (ममत्व रहित) निरहंकार, लघुभूत (हल्के-निर्लोभी) परिग्रह रहित रंदे से छीलने वाले के प्रति द्वेष रहित और चन्दन का लेप करने वाले के प्रति राग-रहित, मिट्टी के ढेले या कंचन में समभावी। इहलोक और परलोक के बंधन से रहित, जीवन और मरण के प्रति निःस्पृह, संसार पार-गामी (संसार से पार होने वाले) और कर्म सम्बन्ध का नाश करने के लिए उद्यत होकर विहार करते थे।

उसहस्स केवलनाणं—

११७. तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वास-सहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे झाणंतरियाए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं णाणेणं -जाव-अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं अणुत्तराए भावणाए खंतीए, गुत्तीए, मुत्तीए, तुट्ठीए अणुत्तरेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सुचरियसोवचिय-फल-निव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।

ऋषभ को केवलज्ञान—

११७. इस तरह विहार करते हुए एक हजार वर्ष बीत जाने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख उद्यान में श्रेष्ठ वट वृक्ष के नीचे ध्यानान्तरिका में लीन रहते हुए फाल्गुन कृष्णा एकादशी के पूर्वाह्नकाल में जब उन्होंने निर्जल अष्टमभक्त किया हुआ था उस समय उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग हो गया था तब सर्वोत्कृष्ट ज्ञान—यावत्—सर्वोत्कृष्ट चारित्र की साधना करते हुए सर्वोत्कृष्ट तप, बल, वीर्य, निर्दोष वसतिका में विहार करते सर्वोत्कृष्ट भावना, क्षमा, गुप्ति, इन्द्रिय निग्रह मुक्ति—निष्पृहता-तुष्टि—सन्तोष, सर्वोत्कृष्ट आर्जव, मार्दव और लाघव के साथ सुचरित एवं सुपुष्ट फल वाले निर्वाण मार्ग की साधना करते हुए आत्मचिन्तन में लीन हो रहे थे, उस समय भगवान को अनन्त, अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) आवरण रहित, अखंड, प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवल ज्ञान—केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

११८. जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी

सणेरइय-तिरिय-नरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तं जहा—

११८. वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए।

वे नरक लोक, तिर्यग् लोक, मनुष्य लोक और देवलोक के समस्त पदार्थों के स्वरूपों को जानने—देखने लगे। यथा—

आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं तं तं कालं मण-वय-काए जोगे एवमादी।

जीवाण वि सव्वभावे अजीवाण वि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हिय-सुह-णिस्सेयसकरे सव्वदुक्ख-विमोक्खणे परमसुहसमाणणे भविस्सइ[1]

किसी का आगमन, गमन, स्थिति, च्यवन, उत्पत्ति, भोजन, क्रिया, सेवन, प्रकट किए हुए कर्म, गुप्त रूप से किए हुए कर्म, उस समय के मन, वचन और काया के सभी व्यापारों आदि को।

जीवों के सभी भावों, अजीवों के सभी भावों तथा 'यह मोक्षमार्ग मेरे लिए तथा अन्य जीवों के लिए हितकर, सुखकर, कल्याणकर, सर्व दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला और परम सुखरूप होगा।' इस प्रकार मोक्षमार्ग के विशुद्धतर भावों को जानने-देखने लगे।

उसहेण तित्थपवत्तणं—

११९. तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य पंच महव्वयाइं सभावणगाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसेमाणे विहरइ, तं जहा—

पुढवीकाइए भावणागमेणं पंच महव्वयाइं सभावणगाइं भाणियव्वाइं[2] ति।

—जंबु० व० २ सू० ३१।

उसभेणं अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं वीइक्कंताहिं तित्थे पवत्तिते॥

—ठाणं अ० ९, सु० ६९७।

ऋषभ का तीर्थ प्रवर्तन—

११९. तब वे भगवान श्रमण निर्ग्रन्थों को और निर्ग्रन्थियों को भावना सहित पांच महाव्रतों का तथा छह जीवनिकाय की रक्षारूप धर्म का उपदेश देते हुए विचरने लगे, यथा—

यहाँ पृथ्वीकायिक आदि छहजीवनिकायों एवं भावना सहित पांच महाव्रतों का स्वरूप वर्णन (आचारांग के अनुसार) करना चाहिए।

कौशलिक अर्हत ऋषभ ने इस अवसर्पिणी में नौ सागरोपम कोटाकोटि वर्ष बीतने के पश्चात् तीर्थ प्रवर्तन किया।

उसहस्स गणहराइसंपया—

१२०. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासी गणा गणहरा होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण-पामोक्खाओ चुलसीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी-सुंदरी-पामोक्खाओ तिण्ण अज्जियासयसाहस्सीओ अज्जियासंपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जंस-पामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभद्दा-पामोक्खाओ पंच समणोवासिया सयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया संपया होत्था।

१२१. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-संनिवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि

ऋषभ की गणधरादि संख्या—

१२०. कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के ब्राह्मी, सुन्दरी प्रमुख तीन लाख आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पांच हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के सुभद्रा प्रमुख पांच लाख चौपन हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका संपदा थी।

१२१. कौशलिक अर्हत ऋषभ के संघ में चार हजार सात सौ पचास जिन नहीं पर जिन सदृश सर्वाक्षर संयोगवेदी, जिन

---

१ उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्सं निच्चं वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा -जाव-अप्पाणं भावेमाणस्स एक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुलस्स तस्स णं फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते- जाव -जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कप्प० सु० १९६॥

२ आया० सु० २ अ० १५, सु० ७३३-७९२।

चउद्दसपुव्वीसहस्सा अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिया चउद्दसपुव्वीसंपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स णव ओहिणाणि-सहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणिसंपया होत्था।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं जिणसहस्सा,

वीसं वेउव्विय-सहस्सा छच्च सया उक्कोसिया जिणसंपया वेउव्वियसंपया होत्था।

बारस विउलमइ-सहस्सा छच्च सया पण्णासा,

बारस वाइसहस्सा छच्च सया पण्णासा।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं बावीसं अणुत्तरोव-वाइयाणं सहस्सा णव य सया उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था।

भगवान की तरह यथार्थ प्रतिपादन करने वाले चौदह-पूर्व के ज्ञाताओं की उत्कृष्ट शिष्य संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के नौ हजार अवधिज्ञानी मुनियों की उत्कृष्ट संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के वीस हजार जिन और वीस हजार छह सौ वैक्रिय लब्धिधारी शिष्यों की उत्कृष्ट संपदा थी।

इसी प्रकार बारह हजार छह सौ पचास विपुलमति मनः पर्यायज्ञानियों और बारह हजार छह सौ पचास वाद-कला में निपुण शिष्यों की संपदा थी।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के कल्याणकारी गति और स्थिति वाले तथा जिनका भविष्य भद्र है और आगामी भव में अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले हैं ऐसे शिष्यों की उत्कृष्ट संपदा बाईस हजार नौ सौ थी।

उसहकाले सिद्धा—

१२२. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा,

चत्तालीसं अज्जियासहस्सा सिद्धा,

सट्ठि अंतेवासिसहस्सा सिद्धा।

ऋषभ के काल में सिद्ध—

१२२. कौशलिक अर्हत ऋषभ के वीस हजार श्रमण शिष्य सिद्ध हुए थे।

चालीस हजार आर्यिकायें सिद्ध हुई थी।

साठहजार शिष्य सिद्ध हुए थे।

उसह-अणगाराण वण्णओ—

१२३. अरहओ णं उसभस्स बहवे अंतेवासी अणगारा भगवंतो अप्पेगइया मासपरियाया—जहा उववाइए सव्वो अण-गारवण्णओ जाव-उद्धं जाणू अहो सिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।[1]

ऋषभ के अनगारों का वर्णन—

१२३. ऋषभ अर्हत के अनेकानेक अनगार शिष्यों में से कितने ही एक मास की दीक्षा-पर्यायवाले थे—यावत्—(औपपातिक सूत्र के अनुसार वर्णन) वे सभी शिष्य ऊर्ध्वजानु, मस्तक झुकाये हुए, ध्यान रूपी कोठ में प्रविष्ट होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

अंतकरभूमि—

१२४. अरहओ णं उसभस्स दुविहा अंतकरभूमी होत्था तं जहा—

१ जुगंतकरभूमी य, २ परियाअंतकरभूमी य।

जुगंतकरभूमी-जाव-असंखेज्जाइं पुरिसजुगाइं।

परियाअंतकरभूमी अंतोमुहुत्तपरियाए अंतमकासी।[2]

—जंबू० व० २, सूत्र ३१।

अन्तकर भूमि—

१२४. ऋषभ अर्हत की दो प्रकार की अन्तकर भूमि थी, वे इस प्रकार—

१—युगान्तकरभूमि २—पर्यायान्तकरभूमि।

युगान्तकर भूमि असंख्य पुरुष युग तक चलती रही।

पर्यायान्तकर भूमि काःअन्तर्मुहूर्त में अंत आया।

उसहस्स संघयणाइं कुमारवासाइं णिव्वाणं च—

१२५. उसभे णं अरहा कोसलिए वज्जरिसहनारायसंघयणे समचउरंस-संठाणसंठिए पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था।[3]

ऋषभ का संहननादि कुमारवास एवं निर्वाण—

१२५. कौशलिक अर्हत ऋषभ का वज्रऋषभनाराच संहनन था, समचतुरस्रसंस्थान था और पाँच सौ धनुष की उनकी ऊँचाई थी।

१२६. उसभेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता तेसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारज्जवासमज्झे वसित्ता[4]

१२६. ऋषभ अर्हत बीस लाख पूर्व तक कुमार-वय में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष महाराजा रूप में रहे, इस प्रकार तेरासी लाख

---

१ कप्प० सु० १९७।

२ कप्प० सु० १९८।

३ ठाणं अ० ५, उ० २, सु० ४३५। सम० स० ५०० सु० ३।

४ सम० स० ६३, सु० १।

तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए[1]

उसभे णं अरहा एगं वाससहस्सं छउमत्थ-परियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वास-सहस्सूणं केवलिपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता[2]—

जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसी पक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावय-सेलसिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलियंक-निसण्णे पुव्वण्हकाल-समयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसम-दूसमाए समाए एगूण-णवउइईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।[3]

सक्काइदेविंद-कय-निव्वाणमहिमा—

१२७. जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगएवीइक्कंते समुज्जाए छिण्ण-जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता एवं वयासी—

"परिणिव्वुए खलु जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए—तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिमं करेत्तए ।

तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाण-महिमं करेमि त्ति" कट्टु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं - जाव - चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सोहम्मकप्प-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए- जाव- तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विमणे णिराणंदे अंसुपुण्ण-णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे - जाव - पज्जुवासइ ।

पूर्व वर्ष गृहवास में रहकर मुंडित हुए और गृह को त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए ।

ऋषभ अर्हत एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व वर्ष पर्यन्त केवली पर्याय में रहे, इस प्रकार समग्ररूप से चौरासी लाख पूर्व का पूर्ण आयुष्य भोग करके—

जब हेमन्त ऋतु का तीसरा मास, पाँचवां पक्ष अर्थात् माघ मास का कृष्ण पक्ष आया, उस माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन पूर्वान्ह में दस हजार अनगारों के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर चौदह भक्त (६ उपवास) का तप करते हुए चन्द्र का अभिजित नक्षत्र के साथ योग होते ही सुषम-दुषम काल के नवासी पक्ष शेष थे तब कालधर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

शक्रादि देवेन्द्र-कृत निर्वाण महोत्सव—

१२७. जिस समय कौशलिक ऋषभ अर्हत काल धर्म को प्राप्त हुए, उनके जन्म, जरा, मरण के बंधन छिन्न हुए, सिद्ध, बुद्ध हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए, उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र का आसन चलित हुआ ।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र अपना आसन चलायमान होता हुआ देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त करता है, प्रयोग करके अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थंकर के दर्शन करता है, दर्शन करके इस प्रकार कहता है—

'जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरतवर्ष में कौशलिक ऋषभ अर्हत निर्वाण को प्राप्त हुए हैं; तो भूत, वर्तमान और भविष्य काल के देवेन्द्र देवराज शक्रों का ऐसा परंपरागत आचार है कि तीर्थंकर का निर्वाण महोत्सव करें तो मैं भी भगवान तीर्थंकर का निर्वाण महोत्सव करने जाऊँ—ऐसा सोचकर वह वंदना करता है नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों—यावत्—चतुर्गुणित (८४००० × ४ = ३,३६,०००) चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे अनेकानेक सौधर्म कल्पवासी वैमानिक देव और देवियों के साथ उत्कृष्ट गति से—यावत्—तिर्यक्लोक के असंख्य द्वीप समुद्रों के ठीकमध्य भाग में होकर जहाँ अष्टापद पर्वत है, जहाँ तीर्थंकर भगवान का शरीर है, वहाँ आया; वहाँ आकर विपण्णमन, निरानन्द अश्रुपूरितनेत्रों से तीर्थंकर शरीर की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके न अतिदूर और न अति समीप बैठकर शुश्रूषा—यावत्—पर्युपासना करने लगा ।

---

१ सम० स० ८३, सु०४ ।

२ सम० स० ८६, सु० १ । कप्प० सु० १९९ ।

२ सम० स० ८४, सु० [illegible] ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तर-ड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस-विमाण-सयसहस्साहिवई सूलपाणी वसहवाहणे सुरिंदे अरयंबर-वत्थधरे-जाव-विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

उस काल उस समय में ईशान देवेन्द्र देवराज जो उत्तरार्ध-लोक का अधिपति, अट्ठाईस लाख हजार विमानों का स्वामी, जिसके हाथ में शूल था, वृषभ जिसका वाहन था, रजरहित आकाश जैसे निर्मल वस्त्र पहने हुए था—यावत्—विपुल भोगों को भोगता हुआ रह रहा था।

१२८. तए णं तस्स ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ,

१२८ उस समय उस देवेन्द्र देवराज ईशान का आसन चलायमान हुआ।

तए णं से ईसाणे -जाव -देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थगरं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता जहा सक्के नियगपरिवारेणं भाणेयव्वो - जाव - पज्जुवासइ।

तब ईशान देवेन्द्र देवराज अपना आसन चलायमान होता हुआ देखकर अवधिज्ञान का प्रयोग करता है, प्रयोग करके तीर्थंकर भगवान को अवधिज्ञान से देखता है, देखकर जैसे शक्र अपने परिवार के साथ आया आदि कहा है उसीप्रकार यहाँ भी वर्णन करना चाहिए—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

१२९. एवं सव्वे देविंदा - जाव - अच्चुए णियग-परिवारेणं आणेयव्वा, एवं-जाव-भवणवासीणं वीस इंदा, वाणमंतराणं सोलस, जोइसियाणं दोण्णि, णियग-परिवारा णेयव्वा!

१२९. इसी प्रकार सभी इन्द्र—यावत्—अच्युतेन्द्र पर्यन्त अपने परिवार सहित आये। इसी प्रकार भवनवासी देवों के वीस इन्द्र, वाणव्यंतर देवों के सोलह इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के दो इन्द्र, अपने परिवार सहित आये; ऐसा जानना चाहिये।

१३०. तए णं सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिए देवे एवं वयासी—

१३०. उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र उन अनेक भवनपति वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों को इस प्रकार कहता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरह, साहरित्ता तओ चिइगाओ रएह-१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही नन्दनवन से सरस श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन के काष्ठ लाओ, लाकर चितायें बनाओ—१. एक तीर्थंकर भगवान की, २. एक गणधरों की, ३. एक शेष अनगारों की।'

तए णं ते भवणवइ -जाव -वेमाणिया देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीस-वर-चदणकट्ठाइं साहरंति, साहरित्ता तओ चिइगाओ रएंति, १ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

तब वे भवनपति यावत्-वैमानिक देव, नन्दनवन से सरस श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन काट लाते हैं, लाकर तीन चिताएँ रचते हैं, १. एक भगवान तीर्थंकर की, २. एक गणधरों की, ३. एक शेष अनगारों की।

१३१. तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

१३१. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह।"

'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक लाओ।

तए णं ते आभिओगा देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरंति।

तब वे आभियोगिक देव क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक लेकर आते हैं।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेणं गोसीस-वर-चंदणेणं अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता हंसलक्खणं पडसाडयं णियंसई, णियंसित्ता सव्वालंकार-विभूसियं करेइ।

इसके बाद वह देवेन्द्र देवराज शक्र तीर्थंकर के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराता है, स्नान कराके सरस श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन से लेप करता है, लेप करके हंस समान श्वेत वस्त्र पहिनाता है और सर्व अलंकारों से विभूषित करता है।

तए णं ते भवणवइ - जाव - वेमाणिया-गणहर-सरीरगाइं अणगार सरीरगाइं पि खीरोदगेणं ण्हावेंति. ण्हावित्ता सरसेणं गोसीस-वर-चंदणेणं अणुलिंपंति अणुलिंपित्ता अहयाइं दिव्वाइं

तब भवनपति यावत् वैमानिक देव गणधरों एवं अनगारों के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराते हैं, स्नान कराकर सरस गोशीर्ष चन्दन से लेप करते हैं, लेप करके संपूर्ण दिव्य देव दूष्य

देवदूसजुयलाइं णियंसेंति, णियंसित्ता सव्वालंकारविभूसियाइंकरेंति।

युगल (जोडी) वस्त्र पहिनाते हैं, पहिनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित करते हैं ।

१३२. तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ -जाव- वेमाणिए देवे एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ईहामिग-उसभ-तुरय-जाव- वणलय-भत्तिचित्ताओ तओ सिवियाओ विउव्वह,

"१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं ।"

तए णं ते बहवे भवणवई- जाव -वेमाणिया तओ सिवियाओ विउव्वंति—

१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं ।

१३२. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र उन अनेक भवनपति— यावत् – वैमानिक देवों को इस प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही ईहामृग, वृषभ, तुरंग—यावत्— वनलता आदि के चित्रोंवाली ऐसी तीन शिविकायें बनाओ—

एक भगवान तीर्थंकर के लिये, दूसरी गणधरों के लिये और तीसरी शेष अनगारों के लिये ।'

तब वे अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव तीन शिविकाओं की विकुर्वणा करते हैं—

१. एक भगवान तीर्थंकर के लिए, २. एक गणधरों के लिए, ३. एक अवशेष अनगारों के लिए ।

१३३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणंदे अंसुपुण्ण-णयणे भगवओ तित्थगरस्स विणट्ठ-जम्म-जरा-मरणस्स सरीरगं सीयं आरुहेइ, आरुहित्ता चिइगाए ठवेइ ।

तए णं ते बहवे भवणवइ- जाव -वेमाणिया देवा गणहराणं, अणगाराणं य विणट्ठ-जम्म-जरा-मरणाणं सरीरगाइं सीयं आरुहेंति, आरुहित्ता चिइगाए ठवेंति ।

१३३. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र उदास, आनन्द रहित और अश्रु पूरित नयनों से जिनके जन्म, जरा, मरण नष्ट हो गये हैं ऐसे तीर्थंकर भगवान के शरीर को शिविका में रखता है रखकर चिता में स्थापित करता है ।

उसी प्रकार वे अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव जिनके जन्म, जरा और मरण नष्ट को हो चुके हैं ऐसे गणधरों और अनगारों के शरीरों को शिविकाओं में रखते है और रखकर चिता में स्थापित करते हैं।

१३४. तए णं से सक्के देविंदे देवराया अग्गिकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव- अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वह, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं ते अग्गिकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वंति ।

१३४. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र अग्निकुमार देवों को बुलाता हैं, बुलाकर इस प्रकार कहता हैं—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तीर्थंकर की चिता हैं—यावत्— अनगारों की चिताओं में विकुर्वणा शक्ति से अग्नि प्रकट करो प्रकट करके मुझे सूचित करो ।'

तब वे अग्निकुमार देव विषण्णमन, निरानन्द चित्त— अश्रुपूरितनयनवाले होकर तीर्थंकर की चिता— यावत्—अनगारों की चिताओं में अग्निकाय की विकुर्वणा करते हैं ।

१३५. तए णं से सक्के देविंदे देवराया वाउकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव- अणगारचिइगाए अ वाउक्कायं विउव्वह, विउव्वहइत्ता अगणिकायं उज्जालेह, तित्थगरसरीरगं गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइं च झामेह ।"

तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा णिराणंदा असुपुण्ण-णयणा तित्थगरचिइगाए-जाव-विउव्वंति अगणिकायं उज्जालेंति तित्थगरसरीरगं-जाव-अणगारसरीरगाणि अ झामेंति ।

१३५. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र वायुकुमार देवों को बुलाता हैं, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही तीर्थंकर की चिता में— यावत्—अनगारों की चिताओं में वायुकाय की विकुर्वणा करो, विकुर्वणा करके अग्नि को प्रज्वलित करो और तीर्थंकर के शरीर को, गणधरों के शरीरों को और अनगारों के शरीरों को जलाओ ।

तब वे वायुकुमार देव विमना—खिन्न मना, निरानंद और साश्रुनयन होकर तीर्थंकर चिता में —यावत्—विकुर्वणा करके अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और तीर्थंकर शरीर को यावत्—अनगारों के शरीरों को जलाते हैं ।

१३६. तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवई-जाव-वेमाणिए देवे एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अगुरु-तुरुक्क-घय-मधुं च कुंभग्गसो भारग्गसो अ साहरह ।"

तए णं ते भवणवइ-जाव-तित्थगर-जाव-भारग्गसो अ साहरंति ।

१३६. तदनन्तर उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों को इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तीर्थंकर की चिता में —यावत्—अनगारों की चिताओं में अगुरु, तुरुष्क, घृत, मधु को अनेक कुम्भ प्रमाण और भार प्रमाण लेकर डालो ।'

तब वे भवनपति—यावत्—तीर्थंकर की चिता में—यावत्—भार प्रमाण डालते हैं ।

१३७. तए णं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगं-जाव-अणगारचिइगं च खीरोदगेणं णिव्वावेह ।"

तए णं ते मेहकुमारा देवा तित्थगरचिइगं-जाव-णिव्वावेंति ।

१३७. इसके बाद वह देवेन्द्र देवराज शक्र मेघकुमार देवों को बुलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही तीर्थंकर की चिता को यावत्—अनगारों की चिता को क्षीरोदक से बुझा दो, शत कर दो ।'

तब वे मेघकुमार देव तीर्थंकर की चिता को—यावत् बुझा देते हैं, ठंडा कर देते हैं ।

१३८. तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोअणिंदे वइरोअणराया हिट्ठिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ- -जाव-वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तीए केइ जीअमेअं ति कट्टु केइ धम्मो त्ति कट्टु गेण्हंति ।

१३८. तदनन्तर उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने तीर्थंकर भगवान की ऊपर की दाहिनी दाढ ग्रहण की, ईशान देवेन्द्र देवराज ने उपर की वायी दाढा ग्रहण की, चमर असुरेन्द्र असुरराज ने निचली दाहिनी वाजू की दाढ ग्रहण की, वलि नामक वैरोचनेन्द्र ने नीचे की वांयी दाढा ग्रहण की और शेष भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों में से कोइ जिनभक्ति से, कोई यह हमारा परंपरागत आचार है के विचार से, कोई हमारा धर्म है इस अभिप्राय से यथा योग्य अवशिष्ट अंगोपांगो की अस्थियां लेते हैं।

१३९ तए णं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ-जाव-वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइअथूभे करेह, एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एगं गणहरचिइगाए, एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए ।"

तए णं ते बहवे-जाव-करेंति ।

१३९. इसके वाद उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने अनेक भवनपति-यावत्—वैमानिक देवों को यथायोग्य इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो । तुम शीघ्र ही समग्ररूप से रत्नमय दर्शनीय महा-आलय वाले तीन चैत्यस्तूपों को बनाओ, इनमें से एक तीर्थंकर भगवान की चिता पर, दूसरा गणधरों की चिता पर और तीसरा अवशेष अनगारों की चिता पर ।

तब वे अनेकानेक-स्तूप यावत्-निर्माण करते हैं ।

१४०. तए णं ते बहवे भवणवइ-जाव-वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव नंदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति ।

१४०. तदनन्तर वे अनेकानेक भवनपति-यावत्-वैमानिकदेव तीर्थंकर का परिनिर्वाण महोत्सव करते हैं, महोत्सव करके जहां नंदीश्वर द्वीप था, वहाँ आते हैं ।

१४१. तए णं से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्ठाहिअं महामहिमं करेति ।

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्ठाहियं करेंति, ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्ठाहिअं, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहगेसु अट्ठाहिअं, चमरो अ दाहिणिल्ले अंजणगे, तस्स लोगपाला, दहिमुहगपव्वएसु, बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे, तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु ।

१४१. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र पूर्व दिशा के अंजनक पर्वत पर आठ दिन का महोत्सव करता है ।

उस शक्र देवेन्द्र देवराज के चार लोकपाल चार दधिमुख पर्वतों पर आठ दिन का महोत्सव करते हैं, ईशान देवेन्द्र देवराज ने उत्तर दिशा के अंजनक पर्वत पर, आठ दिन का महोत्सव किया, उसके लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर चमरने दक्षिण दिशा के अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर, वलि ने पश्चिम दिशा के अंजनक पर्वत पर और उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर आठ दिन का महोत्सव किया ।

तए णं ते बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जाव-अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जेणेव साइं साइं विमाणाइं, जेणेव, साइं साइं भवणाइं, जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ, जेणेव सगा सगा, माणवगा चेइअखंभा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण-सकहाओ पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि अ मल्लेहि अ अच्चेंति, अच्चित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।
—जंबु० व० २ सु० ३३

। इइ उसह-जिण-चरियं ।



इसके बाद वे अनेक भवनपति वाणव्यंतर आदि आठ दिन का महोत्सव करते हैं, महोत्सव करके जहाँ अपने-अपने विमान हैं, जहाँ अपने-अपने भवन हैं, जहाँ अपनी-अपनी सुधर्मा सभायें हैं, जहाँ अपने-अपने माणवक चैत्यस्तभ हैं वहाँ आते हैं, आकर वज्र रत्नों से निर्मित गोल डिब्बों में जिन भगवान की अस्थियों को रखते हैं, रखकर उत्तम और उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थों एवं मालाओं से उनकी अर्चना करते हैं, अर्चना करके विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करते हैं।

। ऋषभ-जिन-चरित्र समाप्त ।





३. मल्ली-जिण-चरियं

महब्बले राया तस्स य छ बालवयंसा—

१४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, निसढस्स वासहर-पव्वयस्स उत्तरेणं, सीओदाए महानदीए दाहिणेणं, सुहावहस्स वक्खार-पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सलिलावई नामं विजए पण्णत्ते।

तत्थ णं सलिलावईविजए वीयसोगा नामं रायहाणी पन्नत्ता, नव- जोयण-विच्छिण्णा-जाव-पच्चक्खं देवलोगभूया। तीसे णं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए इंदकुंभे नामं उज्जाणे। तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए बले नामं राया। तस्स धारिणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्था।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा-जाव-महब्बले दारए जाए उम्मुक्क-बालभावे-जाव-भोग-समत्थे।

तए णं तं महब्बलं अम्मा-पियरो सरिसियाणं कमलसिरि-पामोक्खाणं पंचण्हं रायवर-कन्ना-सयाणं एग-दिवसेणं पाणि गेण्हावेंति। पंच पासाय-सया पंच-सओ दाओ-जाव-माणुस्सए काम-भोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

१४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। बलो वि निग्गओ। धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

३. मल्ली-जिन-चरित्र

महाबल राजा और उसके छह बालमित्र—

१४२. उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप में महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) में मंदर पर्वत की पश्चिम दिशा में, वर्षधर निषध पर्वत की उत्तरदिशा में, सीतोदा महानदी की दक्षिणदिशा में सुखावह वक्षस्कार पर्वत की पश्चिम दिशा में, पश्चिम लवणसमुद्र की पूर्व दिशा में सलिलावती नामक विजय था।

उस सलिलावती विजय में नौ योजन विस्तार-वाली-यावत्-प्रत्यक्ष में देवलोक के समान प्रतीत होने वाली वीतशोका नामक राजधानी हैं। उस वीतशोका राजधानी की उत्तर-पूर्व दिशा-ईशानकोण—में इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान है। उस वीतशोका राजधानी में बल नामक राजा हैं। धारिणी आदि एक हजार रानियों का उसकाअन्तःपुर हैं।

किसी एक समय सिंह का स्वप्न देखकर वह धारिणी रानी जाग गई—यावत्—महाबल नामक पुत्र को जन्म दिया जो को बाल्यावस्था पूर्णकर-यावत्-भोग भोगने में समर्थ हुआ।

तदनन्तर माता-पिता ने उस महाबल का एकही दिन, समान कुल-वयवाली कमलश्री आदि पाँच सौ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण कर दिया। पांच सौ प्रासाद, पांच सौ प्रमाण दाय-दहेज प्राप्त हुआ-यावत्-मनुष्य भव सम्बन्धि काम-भोगों का भोगो-पभोग करते हुए समय-यापन करने लगे।

१४३. उस काल एवं उस समय में इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविरों का पदार्पण हुआ। परिषदा (धर्म सुनने को) निकली। बल राजा भी निकला। धर्म का श्रवण एवं ग्रहण कर हृष्ट-तुष्ट होकर स्थविरों को तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना-नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जं-नवरं महब्बलं कुमारं ठावेमि। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि

'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ-यावत्-यहाँ इतना विशेष कि महावल कुमार का राज्याभिषेक करूंगा। तत्पश्चात् आप देवानुप्रियों के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगारत्व स्वीकार करूंगा।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया'! -जाव-एक्कारसंग-वी। वहूणि वासाणि, सामण्णपरियायं पाउणित्ता, जेणेव चारु-पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मासिएणं भत्तेणं सिद्धे।

'हे देवानुप्रिय !' जैसा अनुकूल हो-यावत्-एकादश अंगविज्ञ हो एवं अनेकावर्षो की श्रमण पर्याय का पालनकर जहाँ चारु पर्वत था, वहाँ आया, वहाँ आकर एकमास के भक्त-प्रत्याख्यान पूर्वक सिद्ध हुआ।

१४४. तए णं सा कमलसिरी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा-जाव-बलभद्दो कुमारो जाओ। जुवराया यावि होत्था।

१४४. उसके बाद किसी एक समय वह कमल श्री स्वप्न में सिंह को देखकर जागी-यावत्-उसने वलभद्र नामक कुमार को जन्म दिया जो युवराज भी हो गया।

१४५. तस्स णं महाब्बलस्स रण्णो इमे छ-प्पिय बाल-वयंसगा रायाणो होत्था, तं जहा—

१४५. उस महावल राजा के ये छह प्रिय वालमित्र (वचपन के मित्र) राजा थे —

१ अयले, २ धरणे, ३ पूरणे, ४ वसू ५ वेसमणे ६ अभिचंदे। सह-जायया, सह-वड्ढियया, सह-पंसुकीलियया, सह-दार-दरिसी, अण्णमण्णमणुरत्तया, अण्णमण्णमणुव्वयया, अण्णमण्ण-च्छंदाणुवत्तया, अण्णमण्ण-हियइच्छिय-कारया, अण्णमण्णेसु रज्जेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

१ अचल २ धरण ३ पूरण ४ वसु ५ वैश्रमण और ६ अभिचन्द्र। जो साथ-साथ पैदा हुए, साथ साथ बड़े हुए, साथ-साथ धूलि में खेले-कूदे-लौटे, साथ-साथ विवाहित एवं वाल-बच्चे वाले हुए, परस्पर में अनुरक्त थे, एक दूसरे का अनुसरण करने वाले थे, समान विषय-भोग—रुचि—इच्छा वृत्तिवाले थे, एक दूसरे के हिताकांक्षी थे, एकदूसरे के प्रेमी थे और अपने-अपने कर्त्तव्य योग्य कार्यो को करते हुए समय व्यतीत करते थे।

तए णं तेसिं रायाणं अण्णया कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं, सण्णिसण्णाणं, सण्णिविट्ठाणं इमेयारूवे मिहो-कहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था-'जण्णं देवाणुप्पिया ! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पवज्जा वा विदेस-गमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अम्मेहिं एगयओ समेच्चा नित्थरियव्वे त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति।

इस प्रकार से कालयापन करते हुए वे सभी राजा किसी एक समय एक स्थान पर एकत्रित हुए तो परस्पर में उन्होंने ऐसा विचार किया कि—'हे देवानुप्रिय ! चाहे हमारा सुख का कार्य हो, दुःख का कार्य हो, हमें प्रव्रज्या लेना हो या परदेश जाना हो इत्यादि किसी भी प्रकार का कार्य हो तो हम सब एक साथ मिलकर उस कार्य को करेंगे।" इस प्रकार का निश्चय करके वे सब आपस में वचनवद्ध हो गये अर्थात् अपने निर्णय को उन्होंने स्वीकार किया।

महब्बलादीणं पव्वज्जा—

महावलादि की प्रव्रज्या—

१४६. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। महब्बले णं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठे। जं नवरं-छ-प्पिय बाल-वयंसए आपुच्छामि, वलभद्दं च कुमारं रज्जे ठावेमि, -जाव-ते छ-प्पिय वालवयंसए आपुच्छइ।

१४६. उस काल और उस समय इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविरों का पदार्पण हुआ। परिषदा निकली। महावल भी धर्म को श्रवण, ग्रहणकर हृष्ट-तुष्ट हुआ। इतना अन्तर है कि छहों वालमित्रों से पूछ लूँ और वलभद्र कुमार का राज्याभिषेक कर दूँ—यावत्—वह छहों वालवयस्क मित्रों से पूछता है।

तए णं ते छ-प्पिय बाल-वयंसगा महब्बलं रायं एवं वयासी-'जइ णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे पव्वयह, अम्हं के अण्णे आहारे वा आलंबे वा ? अम्हे वि य णं पव्वयामो।

तव उन छहों वालमित्रों ने महावल राजा से ऐसा कहा—'हे देवानुप्रिय ! यदि तुम दीक्षा लेना चाहते हो तो फिर कौन दूसरा हमारा आधार एवं अवलंबन होगा। हम भी प्रव्रज्या स्वीकार करेंगे।'

तए णं से महब्बले राया ते छ-प्पिय वाल-वयंसए एवं वयासी-

तब वह महाबल राजा उन छहों बाल वयस्कों से इस प्रकार कहता है—

'जइ णं तुब्भे मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह, जेट्ठ-पुत्ते सएहिं-सएहिं रज्जेहिं ठावेह, पुरिससहस्स-वाहिणीओ सीयाओ दुरुढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह ।

'यदि तुम भी मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो अपने-अपने राज्य में जाओ और अपने-अपने राज्यों का अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राजा बनाकर, तत्पश्चात् पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं में आरूढ़ होकर मेरे पास आओ।

तेवि तहेव पाउब्भवंति ।

तए णं से महब्बले राया छ-प्पिय वाल-वयंसए पाउब्भूए पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठे कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ—जाव-बलभद्दस्स अभिसेओ । -जाव-बलभद्दं रायं आपुच्छइ ।

वे सभी कथनानुसार कार्य करके महाबल के पास आये ।

महाबल राजा मित्रों को देखता है, देखकर हृष्ट-तुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है—यावत्—बलभद्र कुमार का राज्याभिषेक करता है । —यावत्—बलभद्रराजा से पूछता है ।

तए णं से महब्बले छहिं बाल-वयंसगेहिं सद्धिं महया इड्ढीए पव्वइए। एक्कारसंग-वी । बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मास-खमणेहि अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तदनन्तर वह महाबल अपने छहों बाल मित्रों के साथ महान ऋद्धि युक्त उत्सव आदि समारोह पूर्वक दीक्षित हुआ। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अनेक चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम द्वादश, मास, अर्धमास आदि विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता हैं ।

महब्बलस्स तवविसये माया—

१४७. तए णं तेसिं महब्बल-पामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो-कहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—

महाबल की तपविषयक माया—

१४७. इसके बाद एक स्थान पर एकत्रित हुए उन महाबल आदि सातों अनगारों को किसी एक समय आपस में वार्तालाप करते हुए इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ—

'जण्णं अम्हं देवाणुप्पिया ! एगे तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तण्णं अम्हेहिं सव्वेहिं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

'हे देवानुप्रियो ! यदि हममें से जो भी कोई जिस तपःकर्म को अंगीकार करेगा तो हम सभी उसी तप की साधना करेगें। इस प्रकार का निश्चय करके परस्पर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया। स्वीकार करके वे सभी चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास, अर्धमास आदि विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थि-नाम-गोयं कम्मं निव्वत्तिंसु—जइ णं ते महब्बल-वज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । जइ णं ते महब्बल-वज्जा छ अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । एवं—अह अट्ठमं, तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसमं ।

तदनन्तर महाबल अनगार के अलावा यदि शेष वे छह अनगार चतुर्थभक्त की तपस्या करते तो महाबल अनगार षष्ठ भक्त तपस्या करता। यदि उस महाबल अनगार के अतिरिक्त शेष छह अनगार षष्ठभक्त तप की साधना करते तो वह महाबल अनगार अष्टमभक्त तपस्या करता। इस प्रकार यदि अष्टम तो दशम, दशम तो द्वादश इत्यादि। परिणाम स्वरूप उक्त वक्ष्यमाण कारण (माया सेवन) से महाबल अनगार ने स्त्री—नाम—गोत्र कर्म का उपार्जन किया।

तित्थयरनामकम्मनिव्वत्तणं—

१४८. इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेविय-बहुलीकएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु—

तीर्थंकर नामकर्म-निर्वतन—

१४८. (स्त्री-नाम-गोत्र-कर्म के उपार्जन के अतिरिक्त : शुद्धि होने के पश्चात्) निम्नलिखित बीस स्थानों की बारंबार साधना, आसेवना करने से तीर्थंकर गोत्र कर्म का भी उपार्जन किया—

तं जहा-संगहणी-गाहा—

अरहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख नाणोवओगे य ॥ १ ॥

दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो ।
खण-लव-तवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥ २ ॥

अपुव्वनाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पहावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीओ ॥ ३ ॥

जैसे—संग्रहणी गाथा—

अरिहन्त; सिद्ध; 'प्रवचन; 'गुरुस्थविर, बहुश्रुत और तपस्वी के प्रति वात्सल्य भाव रखना, भक्ति भाव प्रदर्शित करना, गुणोत्कीर्तन करना, और निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना । १ ।

दर्शन विशुद्धि रखना, विनयसंपन्नता, आवश्यक क्रियाओं को करना, निरतिचार शील व व्रतों का पालन करना, क्षण मात्र के लिए तपः साधना से विरत न होना, वैयावृत्य करना, समाधि में लीन रहना । २ ।

अपूर्वत्साह पूर्वक ज्ञानाभ्यास करना, श्रुत भक्ति, एवं प्रवचन–प्रभावना करना । इन-इन स्थानों की आराधना करने से जीव तीर्थंकरत्व (नाम—गोत्र—कर्म) का उपार्जन करता है । । ३ ।

महब्बलादीणं विविह-तवचरणं—

महाबलादि की विविध तपश्चर्या—

१४९. तए णं ते महब्बल-पामोक्खा सत्त अणगारा मासियं भिक्खु-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति-जाव—एगराइयं ।

१४९. तत्पश्चात् वे महाबल आदि सातों अनगार एक मासिक भिक्षुप्रतिमा—यावत्—एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा की उपासना करते हुए विचरते हैं ।

तए णं ते महब्बल-पामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं 'सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति ।

तब वे महाबल प्रमुख सातों अनगार क्षुल्लकसिंह निष्क्रीडित तपोकर्म स्वीकार कर विचरने लगे ।

तए णं ते महब्बल-पामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं दोहिं संवच्छरेहिं अट्ठवीसाए अहोरत्तेहिं अहा-सुत्तं - जाव - आणाए आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामो णं भंते ! महालयं सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

इसके बाद वे महाबल प्रमुख सातों अनगार दो वर्ष और अट्ठाईस दिन में पूर्ण होने वाले क्षुल्लक (लघु) सिंह निष्क्रीडित तप की यथासूत्र—यावत्—आज्ञा प्रमाण आराधना करके जहाँ स्थविर भगवन्त विराजमान थे, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर स्थविर भगवान की वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वंदना—नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करते हैं—'हे भदन्त ! हम महासिंह निष्क्रीड़ित तपोकर्म करने की भावना करते हैं ।'

तए णं ते महब्बल-पामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सीहनिक्कीलियं अहा-सुत्तं-जाव- आराहित्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

तब वे महाबल आदि सातों अनगार महासिंहनिष्क्रीड़ित तप को सूत्रानुसार—यावत्—आराधना करके जहां स्थविर भगवान थे, वहाँ आये, वहां आकर स्थविर भगवान को वंदना नमस्कार करते हैं; वंदना-नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास, अर्धमास की तपःसाधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

तए णं ते महब्बल-पामोक्खा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं तवोकम्मेणं सुक्का, भुक्खा, निम्मंसा, किडिकिडियाभूया, अट्ठिचम्मावणद्धा, किसा, धमणिसंतया जाया या वि होत्था । जहा खंदओ नवरं—थेरे आपुच्छित्ता चारु-पव्वयं सणियं सणियं दुरुहंति -जाव-दो- मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सवीसं भत्त-सयं अणसणाए छेएत्ता, चतुरासीइं वास-सय सहस्साइं सामण्ण-परियागं पाउणित्ता, चुलसीइं पुव्व-सय-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववण्णा ।

उक्त प्रकार की उग्र तपःसाधना करने के फलस्वरूप महाबल आदि सातों अनगार शरीर से शुष्क व बुभुक्षित हो गये; शरीर मांस विहीन जैसा कड़कड़ाहट ध्वनि वाले, अस्थिचर्मावरण मात्र कृश, लोहार की धौंकनी सदृश हो गये थे । जैसे स्कन्धक अनगार; लेकिन इतना विशेष है—स्थविरों से आज्ञा प्राप्त करके शनैः शनैः चारु नामक पर्वत पर चढ़ते हैं, चढ़कर—यावत्—दो मास की संलेखना द्वारा आत्मा को तपाते हुए, एक सौ बीस भक्तों (भोजन, आहार) का अनशन के द्वारा छेदन करके चौरासी लाख वर्ष की श्रामण्यपर्याय का पालन कर और चौरासी लाख पूर्व वर्ष की समस्त आयु भोगकर जयन्त विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं महब्बल-वज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। तत्थणं महब्बलस्स देवस्स य पडिपुण्णाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिइ।

वहां कितनेक देवों की बत्तीस सागर प्रमाण स्थिति होती है। वहां महाबल के अतिरिक्त शेष छःहों देवों की कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई और महाबल देव की परिपूर्ण बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई।

महब्बलादीण पच्चायाति—

१५०. तए णं ते महब्बल-वज्जा छप्पि य देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, ठिति-क्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विसुद्ध-पिइ-माइ-वंसेसु रायकुलेसु पत्तेयं-पत्तेयं कुमारत्ताए पच्चायाया, तं जहा—

१ पडिबुद्धी इक्खागराया, २ चंदच्छाए अंगराया,
३ संखे कासिराया, ४ रुप्पी कुणालाहिवइ,
५ अदीणसत्तू कुरुराया, ६ जियसत्तू पंचालाहिवई।

महाबलादिकों की प्रत्यायाति—

१५०. इसके बाद महाबल को छोडकर वे छहों देव आयुक्षय भवक्षय एवं स्थितिक्षय होने के अनन्तर जयन्त देव लोक से च्यवित होकर इसी जम्बुद्वीप के भारतवर्ष में विशुद्ध मातृ—पितृ वंशवाले राजकुलों में प्रत्येक पृथक्-पृथक् पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, यथा—

१ इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्ध २ अंगराज चन्द्रछाया
३ काशीराज संख। ४ कुणालाधिपति रूपी
५ कुरुराज अदीनशत्रु ६ पंचालाधिपति जितशत्रु।

मल्लिस्स गब्भावक्कमणं—

१५१. तए णं से महब्बले देवे तिहिं नाणेहिं समग्गे उच्च-ट्ठाण-ट्ठिएसु गहेसु, सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु, जइएसु सउणेसु, पयाहि णाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवायंसि, निप्फण्ण-सस्स-मेइणीयंसि कालंसि, पमुइय-पक्कीलिएसु जणवएसु अद्धरत्त-काल-समयंसि, अस्सिणी-नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, जे से हेमंताणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे, तस्स णं फग्गुणसुद्धे चउत्थी-पक्खेणं जयंताओ विमाणाओ बत्तीसं सागरोवमठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए रायहाणीए, कुम्भगस्स रण्णो पभावतीए देवीए कुच्छिंसि आहार-वक्कंतीए, भववक्कंतीए, सरीरवक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।

मल्लि का गर्भावतरण—

१५१. इसके पश्चात् जब सूर्यादि ग्रह उच्चस्थान में थे दिशायें शांत-प्रशांत सौम्य, अंधकारविहीन विशुद्ध थीं, पक्षियों द्वारा जयसूचक शब्दारव हो रहा था, वायु पृथ्वी को स्पर्श करते हुए अनुकूल होकर वह रही थी, खड़ी फसल से पृथ्वी हरी भरी हो रही थी, जिससे प्रजाजन आनन्दमग्न होकर विविध प्रकार की क्रीडाओं में रत थे, तब अर्धरात्री के समय, अश्विनीनक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर हेमन्त ऋतु के चतुर्थ मास आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुण शुक्ला चतुर्थी के दिन जयन्त विमान की समग्र बत्तीस सागरोपम आयु भोग लेने के अनन्तर (आहार, भव एवं शरीर स्थिति का अंत होने से, इसी जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में मिथिला राजधानी में कुम्भकराजा की भार्या प्रभावती रानी की कुक्षि में वह महाबल राजा का जीव देव तीन ज्ञानों के साथ गर्भरूप से उत्पन्न हुआ।

१५२. जं रयणिं च णं महब्बले देवे पभावतीए देवीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तं रयणिं च णं सा पभावती देवी चोद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा भत्तार-कहणं। सुमिणपाढग-पुच्छा-जाव - विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

१५२. जिस रात्रि में वह महाबल देव प्रभावती देवी की कुक्षि में गर्भरूप से अवक्रमित हुआ, उस रात्रि में वह प्रभावती देवी चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी। पति से कहा। स्वप्न पाठकों से पूछा—यावत्—विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करती हैं।

१५३. तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं-मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं इमेयारूवे-डोहले पाउब्भूए—

'धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जल-थलय-भासर-प्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्थुय-पच्चत्थुयंसि सयणिज्जंसि

१५३. इसके बाद उस प्रभावती देवी के तीन मास जब सुख-पूर्वक पूर्ण हो चुके तब उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—

धन्य हैं वे मातायें, जो जल एवं थल में उत्पन्न, विकसित, रंगविरंगे प्रभूत पुष्पों और उनकी मालाओं से अच्छी तरह से आच्छादित, सजीसजाई शैया पर बैठती हैं, सुखपूर्वक शयन

सण्णिसण्णाओ, सन्निवण्णाओ य विहरंति, एगं च महं सिरि-दाम-गंडं पाडल-मल्लिय-चंपग असोग-पुन्नाग-नाग-मरुयग-दमणग-अणोज्जकोज्जय-पउरं, परम-सुह-फासं, दरिसणिज्जं, महया गंधद्धणि मुयंतं अग्घायमाणीओ डोहलं विणेंति।

करती है, एवं परमसुखदायक स्पर्शवाले, दर्शनीय तृप्तिकारक महा सुरभिगंध गुणवाले पुद्गलों को फैलाने वाले गुलाब, मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, नाग, मरवा, दमनक और सुन्दर अनवद्य निर्मल कुब्जक पुष्पों के द्वारा निर्मित एक अद्वितीय श्रीदामकांड को सूंघती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती हैं।

तए णं तीसे पभावईए देवीए इमं एयारूवं डोहलं पाउब्भूयं पासित्ता अहा-सण्णिहिया वाणमंतरा देवा खिप्पामेव जल-थलय-भासर-प्पभूयं दसद्ध-वण्णं मल्लं कुंभग्गसो य भारग्गसो य कुंभगस्स रण्णो भवणंसि साहरंति, एगं च णं महं सिरि-दाम-गंडं - जाव - गंधद्धणिं मुयंतं उवणेंति।

तदनन्तर उस प्रभावती देवी के इस प्रकार के उत्पन्न दोहद को जानकर निकट में रहने वाले वाणव्यंतर देवों ने शीघ्र ही जल और थल में उत्पन्न पंचवर्णों के पुष्प कुम्भ प्रमाण और भार प्रमाण अर्थात् बहुत अधिक परिमाण में लाकर कुम्भ राजा के भवन में रख दिये, इसके साथ ही एक बहुत बड़ा भारी—यावत्—सुरभिगंध से युक्त श्रीदामकांड को रखते हैं।

तए णं सा पभावई देवी जल-थलय-भासर-प्पभूएणं, दसद्ध-वण्णेणं मल्लेणं दोहलं विणेइ। तए णं सा पभावई देवी पसत्थ-दोहला, सम्माणिय-दोहला, विणीय-दोहला, संपुण्ण-दोहला संपत्त-दोहला विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ।

तत्पश्चात् उस प्रभावती देवी ने जल-थल-के विकसित पंचवर्णी प्रभूत पुष्पों के द्वारा अपने दोहद की पूर्ति की और उसके बाद वह प्रशस्त दोहलेवाली, संमाननीय दोहले वाली, संपन्न दोहलेवाली, संपूर्ण दोहलेवाली, संप्राप्त दोहलेवाली, प्रभावती देवी मनुष्य योग्य विपुल भोगों को भोगती हुई समय बिताने लगी।

मल्ली-तित्थयर-जम्मणं—

मल्लि—तीर्थंकर—जन्म—

१५४. तए णं सा पभावई देवी नवण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं, जे से हेमंताणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे मग्गसिरसुद्धे, तस्स णं मग्गसिरसुद्धस्स एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्त-काल-समयंसि अस्सिणी-नक्खत्तेणं, जोगमुवागएणं, उच्चट्ठाण ट्ठिएसु गहेसु-जाव - पमुइय-पक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोयं एगूणवीसइमं तित्थयरं पयाया।

१५४. इसके बाद सुखपूर्वक नौ मास और साढे सात रात्रि दिन का समय व्यतीत हो गया एवं हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, दूसरा पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष आया तब उस मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन मध्यरात्रि में अश्विनी नक्षत्र का योग प्राप्त होने पर, ग्रहों के उच्च स्थान में स्थित होने—यावत्—प्रजाजनों के प्रमुदित होकर आमोद-प्रमोद में निमग्न होने के समय में आरोग्यवती उस प्रभावती देवी ने आरोग्यपूर्वक नीरोग उन्नीसवें तीर्थंकर को जन्म दिया।

१५५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ - जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं-उसहस्स जम्मणुस्सवं नवरं—मिहिलाए कुम्भयस पभावईए अभिलाओ संजोएयव्वो - जाव नंदीसरवरदीवे महिमा।

१५५. उस काल उस समय में अधोलोकवासिनी आठ प्रधान दिक्कुमारिकाओं आदि ने ऋषभ भगवान के जन्मोत्सव की तरह जन्मोत्सव किया। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति से समस्त वर्णन जानना चाहिए। उसमें और इसमें अन्तर यह है कि यहां मिथिला नगरी, कुम्भकराजा और प्रभावती के नामों का उल्लेख करना चाहिए—यावत्—नंदीश्वर द्वीप में महोत्सव किया।

१५६. तया णं कुंभए राया बहूहिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयर-जम्मणाभिसेय-महिमाए कयाए समाणीए, पच्चूस-काल-समयंसि नगर-गुत्तिए सद्दावेइ, जायकम्मं - जाव - नामकरणं—'जम्हा णं अम्हं इमीसे दारियाए माऊए मल्ल-सयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउ णं अम्हं दारिया नामेणं मल्ली।

१५६. अनेक भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के द्वारा जन्मोत्सव संपन्न हो जाने के पश्चात् कुम्भकराजा ने प्रातःकाल होने पर नगररक्षक को बुलाया, जातकर्म किया—यावत्—नामकरण किया—'क्योंकि गर्भ में रहने पर इस पुत्री की माता को पुष्पों की मालाओं से आच्छादित शैया पर सोने आदि का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसलिये हमारी इस पुत्री का नाम मल्ली हो।'

१५७. तए णं सा मल्ली पंचधाईपरिक्खित्ता - जाव - सुहंसुहेणं परिवड्ढई। जहा महाबले नाम-जाव - - परिवड्ढिया,

सा वद्धती भगवती दियलोयचुता अणोवमसिरीया।
दासी-दासपरिवुडा परिकिन्ना पीढमद्देहिं ॥ १ ॥

असिय-सिरया सुनयणा बिंबोट्ठी धवलदंतपंतीया।
वरकमलकोमलंगी　　फुल्लुप्पलगंधनीसासा ॥२॥

तए णं सा मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना उम्मुक्क-बालभावा विण्णाय-परिणय-मेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य अईव-अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठ-सरीरा जाया यावि होत्था।

१५७. इसके बाद वह मल्लि पांच धायमाताओं द्वारा लालित-पालित होकर—यावत्—सुखपूर्वक बढ़ने लगी। जैसे महाबल का वर्णन है, उसी प्रकार उसकी वृद्धि जानना। गाथार्थ—

देव लोक से आई हुई, उत्तम शोभा वाली वह भोगवदातस-दासी एवं पीठ मर्दक आदि से घिरी हुई वृद्धि को प्राप्त हो रही थी ॥१॥

उसके बाल काले, आँखें सुन्दर ओष्ठ बिम्ब फल की तरह लाल दांतों की पंक्ति उज्ज्वल थी। कमल पुष्प की तरह उसका शरीर अत्यन्त कोमल तथा पुष्पगंध की तरह उसके श्वास-निश्वास से महक आती थी ॥२॥

तब वह विदेहवर राजकन्या मल्लि बाल्यावस्था को व्यतीत करने के बाद योग्य कलाओं से सुशिक्षित हो, युवावस्था को प्राप्त कर शनैः शनैः यौवन एवं लावण्य से युक्त सर्वोत्कृष्ट शरीर संपदा संपन्न हो गई।

मल्लिणा मोहणघर—निम्माणं—

मल्लि के द्वारा मोहनगृह—निर्माण—

१५८. तए णं सा मल्ली देसूण-वास-सय-जाया ते छ-प्पिय रायाणो विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी-आभोएमाणी विहरइ, तंजहा-पडिबुद्धिं इक्खागरायं, चंदच्छायं अंगरायं, संखं कासिरायं, रुप्पिं कुणालाहिवइं, अदीणसत्तुं कुरुरायं, जियसत्तुं पंचालाहिवइं।

१५८. कुछ कम सौ वर्ष की आयु हो जाने पर राजकन्या मल्लि ने अवधिज्ञान से जाना कि वे छहों बालमित्र राजा इक्ष्वाकुराज, प्रतिबुद्ध, अंगराज चन्द्रछाय, काशीराज संख, कुणालाधिपति रुक्मी, कुरुराज अदीनशत्रु, पंचालाधिपति जितशत्रु के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

१५९. तए णं सा मल्ली कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एगं महं मोहण-घरं करेह अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठं। तस्स णं मोहण-घरस्स बहु-मज्झ-देसभाए छ गब्भ-घरए करेह। तेसिं णं गब्भ-घरगाणं बहु-मज्झ-देस-भाए जाल-घरयं करेह। तस्स णं जाल-घरयस्स बहु-मज्झ-देस-भाए मणि-पेढियं करेह; करेत्ता एयमाणत्तियं पच्च-प्पिणह।' तेवि तहेव-जाव-पच्चप्पिणंति।

१५९. इसके बाद मल्लि ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—

'हे देवानुप्रियो! अशोक वाटिका में तुम सैकड़ों खंभों से शोभायमान एक भव्य मोहनगृह का निर्माण करो। उस मोहनगृह के ठीक बीच में छह गर्भगृह बनाओ। उन गर्भगृहों के भी बीचो बीच जालगृह बनाओ। उन जालगृहों के अति मध्य भाग में (बीचोबीच) मणिमय पीठिका बनाओ और यह कार्य संपन्न होने के अनन्तर मुझे सूचना दो। वे आज्ञा अनुसार कार्य करने के बाद सूचित करते हैं।

१६०. तए णं सा मल्ली मणिपेढियाए उवरिं अप्पणो सरिसियं, सरि-त्तयं, सरि-व्वयं, सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं, कणगामइं, मत्थय-च्छिड्डं-पउमुप्पल-पिहाणं पडिमं करेइ, करेत्ता जं विउलं असण-पाण-खाइमं-साइमं आहारेइ, तओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ कल्लाकल्लिं एगमेगं पिंडं गहाय तीसे कणगामईए, मत्थय-छिड्डाए, पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए मत्थयंसि पक्खिवमाणी-पक्खिवमाणी विहरइ।

तए णं तीसे कणगामईए, मत्थय-छिड्डाए, पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए एगमेगंसि पिंडे पक्खिप्पमाणे-पक्खिप्पमाणे तओ गंधे पाउब्भवेइ।

१६०. तत्पश्चात् उस मणिपीठिका पर मल्लि ने अपनी जैसी, समवयवाली, स्वशरीर सदृश लावण्य, रूप, यौवन आदि गुणोपेत पद्म एवं उत्पलों से आच्छादित सछिद्र मस्तकवाली एक सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाई, प्रतिमा बनकर तैयार हो जाने के बाद विपुल मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य स्वाद्य करती, उस मनोज्ञ अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आहार में से प्रतिदिन एक-एक ग्रास को लेकर उस पद्म उत्पल से आच्छादित सच्छिद्र मस्तक वाली कनकमयी पुत्तलिका के उस मस्तक के उपरि भागवर्ती छेद में डालती हैं।

इस प्रकार पद्म—उत्पल से आच्छादित सछिद्र मस्तकवाली कनकमयी प्रतिमा में एक-एक ग्रास डालने पर उससे दुर्गन्ध उत्पन्न होती हैं।

से जहा णामए-अहि-मडे इ वा, गो-मडे इ वा सुणह-मडे इ वा, मज्जार-मडे इ वा, मणुस्स-मडे इ वा, महिस-मडे इ वा, मूसग-मडेइ वा, आस-मडे इ वा हत्थि-मडे इ वा, सीह-मडे इ वा, वग्घ-मडे इ वा, विग-मडे इ वा दीविग-मडे इ वा, । मय-कुहिय-विणट्ठ-दुरभिवावण्ण-दुब्भिगंधे किमि- जालाउल-संसत्ते असुइ-विलीण-विगय-बीभच्छ-दरिसणिज्जे भवेयारूवे सिया ? नो इणट्ठे समट्ठे । एत्तो वि अणिट्ठतराए चेव अकततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव ।

वह दुर्गन्ध ऐसी थी—मरे हुए सर्प जैसी, या मृत गाय जैसी, या मरे हुए कुत्ते जैसी, या मरी बिल्ली जैसी, या मृत मनुष्य जैसी, या मरे हुए भैंसा जैसी, या मरे हुए चूहे जैसी, या मरे हुए घोडे जैसी, या मृत हाथी जैसी, या मृत सिंह जैसी, या मृत वाघ जैसी, या मृत चीते जैसी आदि । मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ों से व्याप्त और जानवरों द्वारा खाए हुए किसी मृतकलेवर के समान दुर्गन्ध वाली थी, कृमियों के समूह से परिपूर्ण थी अशुचि विकृत, विरस और क्या देखने में वीभत्स डरावनी थी, क्या वह ऐसे रूपवाली थी ? इससे भी अधिक अनिष्टत अरमणिय, अप्रिय अमनोज्ञ और अमन आमतर थी ।

पडिवुद्धिरण्णो पउमावईए देवीए नाग-जण्णए—

प्रतिवुद्ध राजा की पद्मावती रानी का नागयज्ञ(यात्रा)—

१६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसला नामं जणवए । तत्थ णं सागेए नामं नयरे । तस्स णं उत्तरपुरत्थिमे दिसी-भाए, एत्थ णं महं एगे नाग-घरए होत्था-दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिय-पाडिहेरे । तत्थ णं सागेए नयरे पडिवुद्धी नामं इक्खागुराया परिवसइ । पउमावई देवी । सुबुद्धी अमच्चे साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-नीति-सुपउत्त-नय-विहण्णू विहरई ।

१६१. उस काल एवं उस समय में कौशल नामक जनपद था । उसमें साकेत नाम का नगर था । उसके उत्तरपूर्व दिग्भाग—ईशान कोण में दिव्य, कामनापूर्ण करने वाला अतिशययुक्त एक विशाल नागगृह था । उस साकेत नगर में प्रतिवुद्धि नामक इक्ष्वाकुराज रहता था । उसी भार्या का नाम पद्मावती था । साम, दंड, भेद आदि राजनीतियों में कुशल, नयविज्ञ सुबुद्धि नामक अमात्य था ।

१६२. तए णं पउमावईए देवीए अण्णया कयाइ नाग-जण्णए यावि होत्था ।

१६२. किसी एक समय उस पद्मावती रानी का नागयज्ञ (नाग-यात्रा) हुआ था ।

तए णं सा पउमावई देवी नाग-जण्णमुवट्ठियं जाणित्ता जेणेव पडिबुद्धी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विज-एणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु सामी ! मम कल्लं नाग-जण्णए भविस्सइ । तं इच्छामि णं सामी ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी नाग-जण्णयं गमित्तए । तुब्भे वि णं सामी ! मम नाग-जण्णयंसि समोसरह ।

तए णं पडिवुद्धी पउमावईए एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

तए णं पउमावई पडिवुद्धिणा रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी, हट्ठ-तुट्ठा कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्त एवं वयासी—

नागयज्ञ होने के दिन को जानकर वह पद्मावती देवी जहां प्रतिवुद्धि राजा था वहाँ आई, वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक को स्पर्श करके नमस्कार किया, जय-विजय शब्दों से वधाया और वधाकर इस प्रकार बोली—

'हे स्वामिन् ! कल मेरा नागमहोत्सव होगा । मैं भी उसको मनाना चाहती हूँ । अतः आप यदि आज्ञा दें तो नाग महोत्सव मनाने के लिए जाऊँ । हे स्वामिन् ! आप भी मेरे नागयज्ञ (यात्रा) में पधारें ।'

प्रतिवुद्धि राजा ने पद्मावती की बात को सुना ।

इसके बाद प्रतिवुद्धि राजा द्वारा अपनी प्रार्थना को स्वीकार कर लिये जाने पर हृष्ट तुष्ट हुई । पद्मावती देवी कोटुम्बिक पुरुष को बुलाती है—बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम कल्लं नाग-जण्णए भविस्सइ, तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वदाह—"एवं खलु पउमावईए देवीए कल्ल नाग-जण्णए भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! जल-थलय-भासरप्पभूयं दसद्ध-वण्णं मल्लं नाग-घरयंसि साहरह, एगं च णं महं सिरि-दाम-गंडं उवणेह ।"

'हे देवानुप्रियो ! कल मेरा नाग-महोत्सव होगा, तो तुम मालाकारों को बुलाओ और बुलाकर ऐसा कहो—'कल पद्मावती देवी का नागयज्ञ होगा तो हे देवानुप्रियो ! जल-थल में उत्पन्न विकसित पंचवर्णों के पुष्पों और उनकी मालाएँ नागगृह में पहुंचाओ और साथ में एक महाशोभा संपन्न श्रीदामकांड भी लाना ।'

तए णं जल-थलय-भासर-प्पभूएणं दसद्ध-वण्णेणं मल्लेणं णाणाविह-भत्ति-सुविरइयं, हंस-मिय-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाय-

तत्पश्चात् जल-थलोत्पन्न सुविकसित पंचवर्ण पुष्पों से द्वारा बनाये गये हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक,

मयणसाल-कोइल-कुलोववेयं, ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्तं, महग्घं, महरिहं, विउलं, पुप्फ-मंडवं विरएह।

तस्स णं बहु-मज्झ-देस-भाए एगं महं सिरि-दाम-गंडं-जाव-गंधद्धणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलंबेह, ओलंबित्ता पउमावइं देविं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह।"

तए णं ते कोडुंबिया-जाव-पउमावतिं देविं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठंति।

कोकिल, ईहामृग, वृषभ-तुरग, नर, मकर, विहग, व्याल, किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि आदि के आश्चर्यजनक चित्रों से शोभायमान, लौकिक वैभवशाली, महर्घ महापुरुषों के योग्य, विशाल पुष्प मंडप बनाये।

उसके बीचोबीच चंदेवा में एक महनीय—यावत्—अपनी सुरभिगंध से वातावरण को सुगंध मय बनाने वाला श्रीदाम काण्ड लटकाया और लटकाकर पद्मावती देवी की प्रतीक्षा करते हुए वहां बैठे।

इसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—पद्मावती देवी की प्रतीक्षा करते हुए बैठते हैं।

१६३ तए णं सा पउमावई देवी कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, -जाव - उट्ठियम्मि सूरे, सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते, कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सागेयं नयरं सब्भितर-बाहिरियं आसिय-सम्मज्जि ओवलित्तं - जाव - गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह य, करेत्ता, कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

ते वि तहेव - जाव - पच्चप्पिणंति।

तए णं सा पउमावई देवी दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! खिप्पामेव लहु-करण-जुत्तं - जाव - धम्मियं जाण-प्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह।" तए णं ते वि तहेव उवट्ठवेंति।

१६३. उसके बाद रात्रि के अंधकार से आच्छादित प्रभावाले—यावत्—सहस्त्ररश्मि दिनकर तेज से दीप्तमान सूर्य के उदित होने पर वह पद्मावती देवी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाती हैं; बुलाकर ऐसा कहती हैं—

'हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही अन्दर बाहर सुगंधित जल का सिंचन कर, बुहारकर, लीपकर साकेत नगर को—यावत्—सुगंध की डिबिया या वर्तिका जैसा कर दो, करवाओ और यह कार्य करने-कराने के बाद आज्ञापूर्ति होने की मुझे सूचना दो।

वे वैसा करके सूचना देते हैं।

उसके बाद पद्मावती देवी पुनः दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाती है बुलाकर उनसे इस प्रकार कहती है—

'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही तेजी से चलनेवाले—यावत्—योग्य श्रेष्ठ रथ को लाओ।' वे भी वैसा ही रथ लाते हैं।

१६४. तए णं सा पउमावई देवी अंतो अंतेउरंसि ण्हाया - जाव - धम्मियं जाणं दुरूढा।

तए णं सा पउमावई देवी नियग-परियाल-संपरिवुडा सागेयं नयरं मज्झंमज्झेणं निज्जाइ, निज्जाइत्ता जेणेव पोक्खरणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोक्खरणिं ओगाहति, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ - जाव - परम-सुइब्भूया उल्ल-पड-साडया, जाइं तत्थ उप्पलाइं - जाव-ताइं गेण्हइ, जेणेव नाग-घरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं पउमावईए देवीए दासचेडीओ बहूओ पुप्फपडलग-हत्थगयाओ, धूवकडच्छुय-हत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति।

तए णं पउमावई देवी सव्विड्ढीए जेणेव नाग-घरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाग-घरयं अणुप्पविसइ, अणुपविसित्ता लोमहत्थगं परामुसइ - जाव - धूवं डहइ, डहित्ता पडिबुद्धिं पडिवालेमाणी-पडिवालेमाणी चिट्ठइ।

१६४. इसके बाद पद्मावती देवी ने अन्तःपुर के अन्दर स्नान किया—यावत्—सजे सजाये रथ पर बैठी।

तत्पश्चात् अपने परिवार के साथ वह पद्मावती देवी साकेत नगर के मध्यातिमध्यभाग से होती हुई जहाँ पुष्करिणी थी वहाँ आती है वहाँ आकर पुष्करिणी में घुसती है घुसकर स्नान करती है—यावत्—परमशुचिभूत होकर गीली साड़ी पहने पुष्करिणी में उत्पन्न कमलों को चुनती है और उसके बाद फिर जहाँ नागगृह था उस ओर चल दी।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी की दास-चेटिकायें बहुत से पुष्पकरंड के धूपदानों को लेकर उसके पीछे-पीछे चलती हैं।

तत्पश्चात् वह पद्मावती देवी सर्व ऋद्धि—वैभव के साथ जहाँ नागगृह था वहाँ आती है, वहाँ आकर नागगृह में प्रविष्ट होती है, मयूर पंखों से बनी मार्जनी (बुहारी) से परिमार्जित करती है—यावत्— धूप जलाती है, प्रतिबुद्धि (राजा) की प्रतीक्षा करती हुई बैठती हैं।

१६५. तए णं पडिबुद्धी ण्हाए हत्थि-खंध-वर-गए स-कोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेय-वर-चामरांहि विइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंद-परिक्खित्ते सागेयं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ. निग्गच्छित्ता जेणेव नाग-घरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि-खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ, करेत्ता पुप्फ-मंडवं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पासइ तं एगं महं सिरि-दाम-गंडं ।

१६५. इसके बाद प्रतिबुद्धि ने स्नान किया और श्रेष्ठ हाथी पर बैठा तब छत्रधारियों ने कोरंट पुष्पों की मालाओं से शोभित छत्र को तान दिया । चामरधारियों ने श्वेत धवल श्रेष्ठ चामरों को ढ़ोरना प्रारंभ कर दिया एवं अश्व-गज-रथ, शूरवीर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना तथा बहुत से सुभटों, विदूषकों, रथ, पैदल चलने वालों आदि के समूह के साथ साकेत नगर के बीचो-बीच में से गुजरता है, गुजरकर जहां नागगृह था वहां पहुंचता है वहाँ पहुँचकर हाथी से नीचे उतरता है, उतरकर प्रणाम करता है, प्रणाम करके पुष्प मंडप में प्रविष्ट होता है और प्रविष्ट होकर उस महान श्रीदामकाण्ड को देखता है ।

मल्लीए सिरिदामगंडस्स पसंसा—

मल्लि के श्रीदामकांड की प्रशंसा—

१६६. तए णं पडिबुद्धी तं सिरि-दाम-गंडं सुचिरं कालं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता तंसि सिरि-दाम-गंडंसि जाय-विम्हए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी–'तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम दोच्चेणं बहूणि गामगार-जाव-सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर-जाव-सत्थवाह-पभिईणं गिहाइं अणुप्पविससि, तं अत्थि णं तुमे कहिंचि एरिसए सिरि-दाम-गंडे दिट्ठ-पुव्वे, जारिसए णं इमे पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे ?'

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धि रायं एवं वयासी–

"एवं खलु सामी ! अहं अण्णया कयाइ तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणिं गए । तत्थ णं मए कुंभयस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए संवच्छर-पडिलेहणगंसि दिव्वे सिरि-दाम-गंडे दिट्ठ-पुव्वे । तस्स णं सिरि-दाम-गंडस्स इमे पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे सय-सहस्सइमं पि कलं न अग्घइ ।'

१६६. तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि उस श्रीदामकांड का बहुत समय तक सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता है । अनन्तर उस श्रीदामकांड से आश्चर्य चकित होकर, सुबुद्धि अमात्य से कहता है—

'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दूत बनकर बहुत से ग्रामों आकरों—यावत्—सन्निवेशों में घूमते हो, अनेक राजाओं, ईश्वरों—यावत्—सार्थवाहों इत्यादि के घरों में भी जाते हो तो इससे पूर्व तुमने कहीं ऐसा श्रीदानकाण्ड देखा है जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकांड है ?'

तब सुबद्धी मंत्री प्रतिबुद्धि राजा से बोला—

'हाँ स्वामिन् ! देखा है, किसी एक समय में आपका दूत बनकर मिथिला राजधानी में गया था । वहाँ मैंने कुम्भ राजा की पुत्री प्रभावती देवी की आत्मजा मल्लि की वर्ष गांठ पर दिव्य श्रीदामकांड को पहले देखा है । उस श्रीदामकांड के सामने तो पद्मावती देवी का यह श्रीदामकांड लाखवें अंश के बराबर भी नहीं हैं ।'

मल्ली-रूव-पसंसा—

मल्लि-रूप—प्रशंसा—

१६७. तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी–

'केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! मल्ली विदेहराय-वर-कन्ना, जस्स णं संवच्छरपडिलेहणयंसि सिरि-दाम-गंडस्स पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे सय-सहस्सइमंपि कलं न अग्घइ ?

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिं इक्खागुरायं एवं वयासी–

'एवं खलु सामी ! मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना सुपइट्ठिय-कुम्मुण्णय-चारुचरणा - जाव - पडिरूवा वन्नओ ।'

तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म सिरि-दाम-गंड-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

'गच्छाहि ण तुमं देवाणुप्पिया ! मिहिलं रायहाणिं । तत्थ णं

१६७. सुबुद्धि अमात्य की यह बात सुनकर प्रतिबुद्धि ने उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! कैसी है वह विदेहवर राजकन्या मल्लि जिनकी वर्ष गांठ पर बनाये गये श्रीदामकांड की पद्मावती देवी का श्रीदामकांड लाखवां अंश भी बराबरी नहीं करता है ?'

तब सुबुद्धि ने इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामी ! विदेहवर राजकन्या मल्लि सुप्रतिष्ठित कूर्म—पृष्ठ के सदृश रमणीय चरण—यावत्—प्रतिरूप [illegible] है ।' [illegible] वर्णक कहता है ।

सुबुद्धि अमात्य की इस बात को सुनकर [illegible] से हर्षित हुआ प्रतिबुद्धि [illegible] दूत को बुलाता है और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी जाओ और [illegible]

कुंभगस्स रण्णो धूयं पभावईए अत्तयं-मल्लिं विदेह-राय वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि जइ वि य णं सा सयं रज्ज-सुंका।

भी जिसके लिये न्यौछावर किया जा सकता है, ऐसी (महान दुर्लभ) कुम्भ राजा की पुत्री प्रभावती की आत्मजा विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो।

पडिबुद्धि-रण्णो दूयस्स मिहिलागमणं—

१६८. तए ण से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे, हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव चाउग्घंटे आस-रहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चाउ-ग्घंटं आस-रहं पडिकप्पावेइ, पडिकप्पावेत्ता दुरूढे हय-गय-रह-पवर-जोह कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भड-चडगरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव विदेह-जणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

प्रतिबुद्धि राजा के दूत का मिथिलागमन—

१६८. तदनंतर दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस अभिप्राय को हृष्ट-तुष्ट होकर सुना, सुनकर जहाँ अपना घर था, जहाँ चार घंटों से सज्जित अश्व-रथ था, वहाँ आया वहाँ, आकर चार घंटों वाले अश्व-रथ को सुसज्जित करवाया, सुसज्जित करवा कर बैठा और हाथी, घोड़े, रथ, सुभटों आदि से युक्त सेना को साथ में लेकर बहुत से भांड़ों, विदूषकों आदि के साथ निकलता है, निकलकर जहाँ विदेह राज्य था, जहाँ मिथिला राजधानी थी, उस ओर चल पड़ा।

अरहण्णग-वाणियगस्स समुद्द-जत्ता—

१६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं अंगा-नामं जण होत्था। तत्थ णं चंपा नामं नयरी होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए अरहण्णग-पामोक्खा बहवे संजत्ता नावा-वाणियगा परिवसंति-अड्ढा- जाव- बहुजणस्स अपरिभूया। तए णं से अरहण्णगे समणोवासए या वि होत्था—अहिगयजीवाजीवे—वण्णओ।

अर्हन्नक वणिक की समुद्रयात्रा—

१६९. उस काल उस समय अंगनामक जनपद राज्य था। उसमें चंपा नाम की नगरी थी। उस चंपानगरी में चन्द्रछाय नामक अंगराज था। उस चंपानगरी में अर्हन्नक आदि साथ-साथ व्यापार के निमित्त समुद्रयात्रा करने वाले अनेक पोतवणिक वसते थे। वे धन धान्य से सम्पन्न थे—यावत्—दूसरे अनेक लोगों के द्वारा भी पराजित किया जाना अशक्य था। उनमें अर्हन्नक श्रमणोपासक-श्रावक था, जो जीवाजीव स्वरूप का ज्ञाता था। आदि पूरा वर्णन करना चाहिए।

१७०. तए णं तेसिं अरहण्णग-पामोक्खाणं संजत्ता नावा-वाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो-कहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—

"सेयं खलु अम्हं गणिमं च, धरिमं च, मेज्जं च परिच्छेज्जं च। भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडी-सागडयं सज्जेंति, सज्जेत्ता गणिमस्स, धरिमस्स, मेज्जस्स, पारिच्छेज्जस्स य भंडगस्स सगडी-सागडियं भरेंति, भरेत्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं भोयणवेलाए भुंजावेंति, भुंजावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं आपुच्छंति, आपुच्छित्ता सगडी-सागडियं जोयंति, जोइत्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव गंभीरए पोय-पट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडी-सागडियं मोयंति, पोय-वहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता य गणिमस्स धरिमस्स मेज्जस्स पारिच्छेज्जस य भंडगस्स भरेंति, तंदुलाण य, समियस्स य, तेलस्स य, घयस्स

१७०. किसी एक दिन एकत्रित हुए उन अर्हन्नक आदि पोतवणिकों का आपस में बात-चीत करते हुए यह विचार उत्पन्न हुआ—

यह श्रेय है कि हम गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य आदि वस्तुओं को लेकर पोतवाहनों से लवणसमुद्र को पार करें। इस बात को सभी ने सुना और स्वीकार किया, स्वीकार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य वस्तुओं को लेते हैं लेकर गाड़िओं-गाड़ों को सजाते हैं, सजाकर गणिम, धरिम, मेय, और परिच्छेद्य वस्तुओं को गाड़ी-गाड़ों में भरते हैं, भरकर शुभ तिथी, करण, नक्षत्र, मुहूर्त आदि देखकर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों को तैयार करवाते हैं, तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजी सम्बन्धी, परिजनों आदि को आमंत्रित कर भोजन करवाते हैं, भोजन करवाकर मित्रों, जाति, निजी सम्बन्धियों और परिचित आदि जनों से पूछते हैं, पूछकर गाड़ी-गाड़ों को जोतते हैं जोतकर चंपानगरी के बीचोबीच होकर निकलते हैं, निकलकर जहाँ गंभीरक पोतपट्टन (बंदरगाह) था वहाँ आते हैं, वहाँ आकर गाड़ी-गाड़ों को छोड़ते हैं, पोत वाहन को सजाते हैं सजाकर गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य पदार्थों को भरते हैं इनके साथ ही चावल, गेहूँ, तेल, घी, गुड़,

य, गुलस्स य, गोरसस्स य, उदगस्स य भायणाण य, ओसहाण य, भेसज्जाण य, तणस्स य, कट्ठस्स य, आवरणाण य पहरणाण य अण्णेसिं च बहूणं पोय-वहण-पाउग्गाणं दव्वाणं पोय-वहण भरेंति।

सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउल असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडवेंति उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं भोयणवेलाए भुंजावेंति, भुंजावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आपुच्छंति, जेणेव पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति।

१७१. तए णं तेसिं अरहण्णग-पामोक्खाणं बहूण संजत्ता नावा-वाणियगाणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणा तारिसाहिं इट्ठाहिं, कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं, मणामाहिं ओरालाहिं, अभिनंदंता य अभिसंथुणमाणा य एवं वयासी—

'अज्ज ! ताय ! भाय ! माउल ! भाइणेज्ज ! भगवया समुद्देणं अभिरक्खिज्जमाणा अभिरक्खिज्जमाणा चिरं जीवह, भद्दं च भे, पुणरवि लद्धट्ठे, कयकज्जे, अणहसमग्गे नियग घर हव्वमागए पासामो'त्ति कट्टु ताहिं सोमाहिं, निद्धाहिं दीहाहिं, सप्पिवासाहिं, पप्पुयाहिं दिट्ठीहिं निरिक्खमाणा मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठंति।

तओ समाणिएसु पुप्फ वलि-कम्मेसु, दिन्नेसु सरस-रत्त-चंदण-दद्दर-पंचंगुलि-तलेसु अणुक्खित्तंसि धूवंसि, पूइएसु समुद्द-वाएसु, संसारियासु वलयबाहासु ऊसिएसु सिएसु झयग्गेसु, पडुप्पवाइएसु तूरेसु, जइएसु सव्वसउणेसु, गहिएसु रायवरसासणेसु, महया उक्किट्ठ-सीहनाय-बोल कलकल-रवेण पक्खुभिय-महासमुद्द-रव-भूयं पिव मेइणिं करेमाणा, एगदिसिं एगाभिमुहा अरहण्णग-पामोक्खा संजत्ता नावा-वाणियगा नवाए दुरूढा।

तओ पुस्स-माणवो वक्कमुदाहु—'हं भो ! सव्वेसिमेव भे अत्थसिद्धी। उवट्ठियाइं कल्लाणाइं, पडिहयाइं सव्व-पावाइं जुत्तो पूसो, विजओ मुहुत्तो अयं देसकालो,

तओ पुस्समाणवेणं वक्कमुदाहिए हट्ठतुट्ठा कण्णधार-कुच्छिधार गब्भिज्ज-संजत्ता-नावा-वाणियगा वावारिंसु, तं नावं पुण्णुच्छंगं पुण्णमुहिं बंधणेहिंतो मुंचंति।

तए णं सा नावा विमुक्क-बंधणा पवण-बल-समाहया ऊसिय-सिया, वितत-पक्खा इव गरुल-जुवई, गंगा-सलिल-तिक्ख-सोय-

गोरस, पानी, वर्तन, औषधि, भेषज, घास, काष्ठ, आवरण (चांदनी आदि) पहनने के वस्त्र आदि और भी अनेक जीवनोपयोगी तथा पोतवाहन के योग्य पदार्थों को पोतवाहन में रखते हैं।

शुभ तिथी करण-नक्षत्र-मुहूर्त को देखकर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों को बनवाते हैं, बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, संबन्धियों, परिजनों आदि को भोजन कराते हैं, भोजन कराने के पश्चात् मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, संबन्धियों, परिचितों आदि से विदा लेकर जहां पोत स्थान है वहां आते हैं।

१७१. तब वे अर्हन्नक आदि पोतवणिकों के मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन संबन्धि, परिजन आदि उनका वैसे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, उदार शब्दों में अभिनन्दन और अभिवादन करते हुए शुभकामनायें व्यक्त करते हैं कि—'हे आर्य ! तात ! भाई ! मामा ! भानजा ! आप इस समुद्र भगवान से सुरक्षित होते हुए चिरंजीव हो, आपका कल्याण हो ! आपको अर्थ लाभ सहित, कृतकृत्य, रोग बाधाओं से रहित निरोग अपने घर आया हुआ, अपने बीच देखें'—इस प्रकार कहकर वे वहां सौम्य स्निग्ध प्रेमभरी दृष्टि से युक्त, दर्शन की उत्सुकता पूर्वक, साश्रु नयनों से देखते हुए एक मुहूर्त पर्यंत बैठते हैं।

तदनन्तर जब पुष्प क्षेपण, बलिकर्म-पूजा याचकों को दान आदि कार्य करने के बाद सरस रक्त चंदन-दर्दर के हाथे लगाकर धूप प्रक्षेप आदि के द्वारा समुद्र वायु की पूजा कर, लम्बे काष्ट वाले पतवारों को यथास्थान स्थापित कर मस्तूल पर श्वेत ध्वजायें फहराकर, मांगलिक वाद्यों का निनादकर, जय-विजय सूचक पक्षीरव को सुनकर राजाज्ञा को प्राप्त कर, उत्कृष्ट सिंहनाद जैसी ध्वनि घोषों से प्रक्षुब्ध महासागर की ध्वनि के समान दिग्मंडल को व्याप्त करके वे अर्हन्नक आदि पोतवणिक एक ही दिशा की ओर मुख करके नौकाओं पर बैठे।

तब पुष्पमाणवकों (चारणों) ने मंगलवचनों का उच्चारण करते हुए कहा—'हे पोतवणिकों ! आप सब को अर्थ सिद्धि हो, कल्याण सदा आपके समक्ष उपस्थित हो, आपकी [illegible] यात्रा में सब प्रकार के विघ्नों का विनाश हो, ऐसा यह पुष्य नक्षत्र का योग है, विजय मुहूर्त है, प्रस्थानयोग्य देश काल है।'

चारणों (मंगलपाठकों) के इन [illegible] वचनों [illegible] हृष्ट-तुष्ट हुए कर्णधार कुक्षिधार [illegible]—([illegible]) नाविकों ने [illegible] [illegible] [illegible] और विविध प्रकार की वस्तुओं से भरी हुई और [illegible] नौका के [illegible] [illegible]

[illegible]

वेगेहिं संखुब्भमाणी संखुब्भमाणी उम्मी-तरंग-माला-सहस्साइं समइच्छमाणी समइच्छमाणी कइवएहिं अहोरत्तेहिं लवण-समुद्दं अणेगाइं जोयण-सयाइं ओगाढा ।

हुई अपने ऊपर वायु संग्रहार्थ बांधे गये श्वेत पालों से पांखों को पसार कर आकाश में उड़ती हुई गरुड़; युवती की तरह हजारों और तरंगमाला उर्मियों को पार करती हुई कई दिनों तक चलते चलते लवणसमुद्र में अनेक योजनों तक पहुँच गई ।

तालपिसायादीणं उप्पायाणं पाउब्भावो—

१७२. तए णं तेसिं अरहण्णग-पामोक्खाणं संजत्ता-नावा-वाणियगाणं लवण-समुद्दं अणेगाइं जोयण-सयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइय-सयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—

अकाले गज्जिए, अकाले विज्जुए, अकाले थणियसद्दे, अभिक्खणं-अभिक्खणं आगासे देवयाओ नच्चंति ।[1]

तए णं ते अरहण्णग- वज्जा संजत्ता-नावा-वाणियगा एगं च णं महं ताल-पिसायं पासंति—ताल-जंघं, दिवंगयाहिं बाहाहिं फुट्ट-सिरं, भमर-निगर-वरमासरासि-महिस-कालगं, भरिय-मेह वण्णं, सुप्प-णहं, फाल-सरिस-जीहं, लंबोट्ठं, धवलवट्ट असिलिट्ठ-तिक्ख-थिर-पीण-कुडिल-दाढोवगूढ-वयणं, विकोसिय-धारासिजुयल-सम-सरिस-तणुय-चंचल-गलंतरस -लोल-चवल-फुरुफुरेंत निल्लालियग्ग-जीहं,

तालपिशाचादि के उत्पातों का प्रादुर्भाव—

१७२ तदनन्तर अर्हन्नक आदि सांयात्रिक पोतवणिक जब सैकड़ों योजन तक लवण समुद्र को पार कर चुके तब बहुत से सैकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत होने लगे, यथा—

अकाल में मेघगर्जना, अकाल में बिजली चमकना, अकाल में मेघों की गड़गड़ाहट, बारंबार आकाश में देवता नाचते हुए दिखलाई देना ।

तब अर्हन्नक को छोड़कर शेष सांयात्रिक पोतवणिक एक विशाल काय पिशाच को देखते हैं—जिसकी जंघायें तालवृक्ष के समान लंबी थीं, दोनों हाथ आकाश को छूते थे, बिखरे हुए बालों से युक्त बेडोल सिर था, भँवरों के समूह, व अतिकृष्ण वर्ण वाली काजल की राशि के समान, भैंस के रंग जैसा, मेघघटाओं से भी अधिक कृष्ण शरीर वाला था, सूप जैसा नख वाला था, जिसकी जीभ फाल के समान लंबी थी, ओठ लंबे थे, मुख गोल मटोल, तलवार के समान नुकीली—मजबूत—मोटी और टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ों से युक्त था, उसकी जीभ का अग्रभाग म्यान से निकली हुई तलवार के समान तीक्ष्ण पैनी, पतली चंचल थी और विषय रस को ग्रहण करने के लिये अत्यन्त लोलुप एवं आतुर होने से जिससे लार टपक रही थी, चपलता के कारण फर-फराहट कर रही थी और मुख से बाहर लटक रही थी;

---

१ अत्र द्वयोर्वाचनयोः संमिश्रण जातमिति प्रतिभाति । पाठान्तर इत्थमस्ति—एगं च णं महं पिसायरूवं पासंति—'तालजंघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मसिमूसगमहिसकालगं भरियमेहवन्नं लंबोट्ठं निग्गयग्गदंतं निल्लालिय-जमलजुयलजीहं आऊसियवयण-गंडदेसं चीणचिपिटनासियं विगयभुग्ग भग्गभुमयं खज्जोयगदित्तचक्खुरागं उत्तासणगं विसालवच्छं विसालकुच्छि पलंबकुच्छि पहसियपयलियपयडियगत्तं पणच्चमाणं अप्फोडंतं अभिवयंतं अभिगज्जंतं बहुसो बहुसो अट्टट्टहासे विणिम्मुयंतं नीलुप्पलगवलगुलिय अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति ।

—तब एक महान् पिशाचरूप को देखते हैं—वह पिशाच ताड़ के समान लंबी जांघों वाला था, उसकी बाहु—भुजाएँ आकाश को छू रही थी । वह काजल, काले चूहे और भैंसे व जल भरे मेघ के समान अत्यन्त काला लग रहा था । उसके होठ लंबे और दांत बाहर निकले हुए थे । उसने अपनी एक-सी दोनों जीभें मुँह से बाहर निकाल रखी थीं, उसके गाल जबड़े भीतर धंसे हुए थे । नाक छोटी और चिपटी थी । उसकी भृकुटि डरावनी और अत्यन्त वक्र थी । आँखें जुगनू के समान लाल-लाल चमक रही थी. जो देखने वाले को त्रासदायक थी । उसकी छाती चौड़ी, कुक्षि विशाल और लंबी थी । हँसते और चलते समय उसके शरीर के अवयव ढीले—लटकते हुए दिखाई देते थे । वह नाचता हुआ मानो आकाश को फोड़ रहा था—सामने आ रहा था, गर्जना कर रहा था, बार-बार अट्टहास कर रहा था । उस काले कमल, भैंस के सींग व नील अलसी पुष्प के समान काली तथा छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर सामने आते हुए पिशाच को देखते हैं ।

अवयत्थिय-महल्ल-विगय- बीभच्छ - लालपगलंत -रत्ततालुयं, हिंगुलय-सगब्भ-कंदर-विलं व अंजण-गिरिस्स अग्गिज्जालुग्गिलंत-वयणं,

बारंबार मुख के फाड़ने पर दिखने वाला तालु महाविकराल बीभत्स—भयावना, लार से गीला और लाल वर्ण का था, मुख अंजनगिरि (कृष्ण-पर्वत) में हिंगलुक से भरी हुई कंदरा—गुफारूप बिल के समान था, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों अंजन-गिरि से अग्नि की ज्वालायें ही निकल रही हों।

आऊसिय-अक्खचम्म-उइट्ठ-गंडदेसं, चीण-चिमिढ-वंक-भग्ग-नासं, रोसागय-धमधमेंत मारुय-निट्ठुर-खर-फरुस-झुसिरं ओभुग्ग नासियपुडं - धाडुब्भड-रइय-भीसण-मुहं, उद्ध-मुह-कण्ण-सक्कुलिय महंत-विगय-लोम-संखालग-लंबंत-चलिय-कण्णं, पिंगल-दिप्पंत-लोयण, भिउडि-तडि-निडालं, नर-सिर-माल-परिणद्धचिंधं, विचित्तगोणस-सुबद्धपरिकरं, अवहोलंत-फुप्फुयायंत-सप्प-विच्छुय-गोधुंदुर-नउल-सरड-विरइय-विचित्त-वेयच्छ-मालियागं, भोग-कूर-कण्हसप्प-धमधमेंत-लंबंत-कण्णपूरं,

दोनों गाल सूखे हुए चरस (पानी निकालने का चमड़े का पात्र) की तरह अन्दर धंसे हुए थे, नाक छोटी टेढ़ी-मेढ़ी और चपटी थी और उस नासिका के छेदों से निकलने वाली श्वासोच्छ्वास ऐसी प्रतीत होती थी कि क्रोध के कारण फूंफाड़ कर रही हो, जिससे श्वास लेते समय धौंकनी के जैसा धमधम शब्द होता था, वह शब्द-ध्वनि अति तीव्र कर्कश, कठोर एवं दुःसह थी, उसके दोनों कान शुष्कुली के समान ऊंचे फूले हुए थे, उन पर लंबे-लंबे बाल उग रहे थे, महाविकराल थे, आंखों तक फैले हुए होने से बड़े लंबे और चंचल थे, आंखें बिल्ली के समान पिंगल—(भूरी) और चमकीली थीं, ललाट की भृकुटिया बिजली के समान वक्र थीं, गले में परिचय-चिन्ह के रूप में नरमुण्डों की माला पहन रखी थी, कवच के रूप में अनेक वर्णवाले महाविषधर सर्प शरीर से लिपटे हुए थे, कंधों पर इधर उधर सरकते हुए, फूत्कार करते हुए सर्पों, बिच्छुओं, गोहों, चूहों, नकुलों, सरटों की रंग-बिरंगी मालायें धारण कर रखी थीं, कुण्डलों के स्थान पर महाभयंकर फण वाले और फूत्कार करते हुए काले नागों को कान में पहना है।

मज्जार-सियाल-लइय-खंधं, दित्त-घुघुयंत-घूय-कय-कुंतल-सिरं, घंटारवेणं भीमं-भयंकरं, कायर-जण-हियय-फोडणं दित्तं अट्टट्ट-हासं विणिम्मुयंतं, वसा-रुहिर-पूय-मंस-मल-मलिण-पोच्चड-तणुं, उत्तासणयं,

कन्धों पर बिल्लियां और सियार उछल-कूद कर रहे हैं, जोर-जोर से घू-घू करने वाले उल्लुओं को मुकुट के रूप में मस्तक पर धारण किया है, बारम्बार महाभयंकर घंटा बज रहा था, कायरजनों के हृदय को दहला देनेवाला महाभयंकर अट्टहास कर रहा था, जिनका शरीर चर्बी, रुधिर, पीव, मांस एवं मल से लिपटा हुआ और दबाने पर पचपच शब्द जिससे निकलता था, देखते ही कंपकंपी छूट जाती थी।

विसाल-वच्छं, पेच्छंता भिन्न-नख-मुह-नयण-कण्ण-वर-वग्घ-चित्त-कत्ती णियंसणं, सरस-रुहिर-गयचम्म-वियय-ऊसविय-बाहुजुयलं ताहि य खर-फरुस-असिणिद्ध-दित्त-अणिट्ठ-दित्त-असुभ-अप्पिय-अकंत वग्गूहि य तज्जयंतं तं तालपिसाय-रूवं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता भीया, तत्था, तसिया, उव्विग्गा, संजायभया अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा-समतुरंगेमाणा।

उनका वक्षस्थल बहुत विशाल था, उसने जो पोशाक पहन रखी थी उसमें स्पष्ट रूप से व्याघ्र के [illegible] नख, रोम, मुख, नयन और कान दृष्टिगत हो रहे थे, ऊंचे उठाए हुए दोनों हाथों में खून से लथ-पथ एक विशाल हाथी के चमड़े को ले रखा था, ऐसे उस विशाल एवं भयंकर [illegible], अनिष्ट, अशुभ, अप्रिय, अमनोज्ञ वाणी से [illegible] और आते हुए देखते हैं, देखकर वे सब भयभीत हो गये, [illegible] गये, उद्विग्न हो गये और भयभीत होकर एक-दूसरे के [illegible] चिपक-चिपककर बैठ गये।

बहूणं इंदाण य, खंदाण य, रुद्दाण य, सिवाण य, वेसमणाण य, नागाण य, भूयाण य, जक्खाण य अज्ज-कोट्टकिरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि उवाइमाणा चिट्ठंति।

बहुत से इन्द्र की, स्कन्द की, रुद्र की, शिव की, [illegible] की, वैश्रमण की, नाग की, भूत की, यक्ष की और [illegible] स्वभाववाली देवियों की सैकड़ों [illegible]

१७३. तए णं अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसाय-रूवं एज्जमाणं पासइ. पासित्ता अभीए, अतत्थे, अचलिए, असंभंते, अणाउले, अणुव्विग्गे, अभिण्ण-मुह-राग-नयन-वण्णे, अदीण-विमण-माणसे, पोय-वहणस्स एगदेसंसि वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता ठाणं ठाइ, ठाइत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासि—

'नमोऽत्थु णं अरहंताणं-भगवंताणं—जाव—सिद्धि-गइ-नामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं।

जइ णं हं एत्तो उवसग्गाओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे' त्ति कट्टु सागारं भत्तं पच्चक्खाइ।

१७३. इसके बाद अर्हन्नक श्रमणोपासक उस दिव्य (देव सम्बन्धी) पिशाचरूप को अपनी ओर आते हुए देखता है, देखकर वह भय-भीत नहीं हुआ, उद्विग्न नहीं हुआ, मुख और आँखों का रंग फीका नहीं पड़ा, मन में दीनता और उदासीनता नहीं आई, किन्तु पोतवाहन—नौका के एक योग्य स्थान पर वसनांचल से भूमि को साफ करता है, साफ करके बैठता है, बैठकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक को झुकाकर अंजलि करके इस प्रकार कहता है—

'अरहंत भगवन्तों को नमस्कार है—यावत्—सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को।

यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊं, तब तक का प्रत्याख्यान करता हूँ और यदि इस उपसर्ग से नहीं बचा तो यावज्जीवन का प्रत्याख्यान करता हूँ।' ऐसा कहकर सागार भक्त प्रत्याख्यान करता है।

अरहण्णगस्स पिसाय-बाहा—

१७४. तए णं से पिसाय-रूवे-जेणेव अरहण्णगे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहण्णगं एवं वयासी—

'हंभो अरहण्णगा! अपत्थिय-पत्थया! दुरंत-पंत-लक्खणा! हीण-पुण्ण-चाउद्दसिया! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! नो खलु कप्पइ तव सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं चालित्तए वा, खोभित्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा।

तं जइ णं तुमं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं न चालेसि, खोभेसि, न खंडेसि, न भंजेसि, न उज्झसि; न परिच्चयसि, तो ते अहं एयं पोय-वहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हामि, गेण्हित्ता-सत्तट्ठ-तल-प्पमाण-मेत्ताइं उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता अंतोजलंसि निव्वोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

अर्हन्नक को पिशाच-बाधा—

१७४. तदनन्तर वह पिशाचरूप जहाँ अर्हन्नक श्रमणोपासक था, उस ओर आता है, वहाँ आकर इस प्रकार कहता है—'अरे अर्हन्नक! अरे अकाल मौत को चाहने वाले! हे दुरंत पंत लक्षण! हे अभागे चतुर्दशी को जन्म लेने वाले! श्री, ह्री, धृति, कीर्ति परिवर्जित! यदि तुम शीलव्रत, गुणव्रत, त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध, आवश्यक आदि से चलायमान नहीं होओगे, क्षुभित नहीं होओगे, खंडित नहीं करोगे, भंग नहीं करोगे, त्याग-परित्याग नहीं करोगे तो मैं इस पोतवाहन को दो अंगुलियों से पकड़कर सात आठ ताल प्रमाण ऊपर आकाश में ले जाऊँगा, ले जाकर (वहाँ से पटककर) गहरे जल में डुबो दूँगा, जिससे तुम आर्त-रौद्र-ध्यान के वशवर्ती होकर असमाधि को प्राप्त कर अकाल मौत से मरकर जीवन-रहित हो जाओगे।'

अरहण्णगस्स दढधम्मत्तं—

१७५. तए णं से अरहण्णगे समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी—

'अहं णं देवाणुप्पिया! अरहण्णए नामं समणोवासए अहिगय-जीवाजीवे। नो खलु अहं सक्के केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, जक्खेण वा, रक्खसेण वा, किन्नरेण वा, किंपुरिसेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा। तुमं णं जा सद्धा तं करेहि' त्ति कट्टु अभीए,—जाव—अभिन्न-मुह-राग-नयण-वण्णे अदीण-विमण-माणसे, निच्चले, निप्फंदे, तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहण्णगं समणोवासगं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—

'हंभो अरहण्णगा!—जाव—धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

अर्हन्नक की धर्मदृढ़ता—

१७५. इसके बाद अर्हन्नक श्रमणोपासक ने अपने मन में ही उस देव से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! जीवाजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता मैं अर्हन्नक श्रमणोपासक हूँ। किसी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग या गंधर्व की यह ताकत नहीं जो मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित करदे, क्षुभित करदे, विपरिणामी—उन्मुख कर सके। अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा तुम करो।' ऐसा कहकर निर्भय—यावत्—मुख और नेत्रों की कांति में किंचिन्मात्र भी परिवर्तन न करके, अदीन निरपेक्षमना होकर निश्चल, निष्कंप, निःशब्द, और शांतिपूर्वक धर्मध्यान में स्थिर रहता है।

इसके बाद वह दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार तीसरी बार भी इस प्रकार कहता है—

'हे अर्हन्नक!—यावत्' वह धर्मध्यान में स्थिर रहता है।

१७६. तए णं से दिव्वे पिसाय-रूवे अरहण्णगं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासित्ता बलियतरागं आसुरत्ते तं पोय-वहणं दोहिं अंगुलियाहिं गेण्हइ, गेण्हित्ता सत्तट्ठ-तल-प्पमाण-मेत्ताइं उड्ढं वेहासं उव्विहइ, उव्विहित्ता अरहण्णगं एवं वयासी—

'हंभो अरहण्णगा ! अपत्थिय-पत्थया ! नो खलु कप्पइ तव-सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं चालित्तए वा, खोभित्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा ।

तं जइ णं तुमं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं न चालेसि, न खोभेसि, न खंडेसि, न भंजेसि, न उज्झसि, न परिच्चयसि तो ते अहं एयं पोय-वहणं अंतो-जलंसि निव्वोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे असमाहि-पत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से अरहण्णगे समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी—

'अहं णं देवाणुप्पिया ! अरहण्णए नामं समणोवासए—अहिगय-जीवाजीवे नो खलु अहं सक्के केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, जक्खेण वा, रक्खसेणवा, किन्नरेण वा, किंपुरिसेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा । तुमं णं जा सद्धा तं करेहि' त्ति कट्टु अभीए, —जाव-अभिन्न-मुह-राग-नयन-वण्णे, अदीण-विमण-माणसे, निच्चले, निप्फंते, तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।

देवस्स पिसाय-रूव-साहरणं स-वुत्तंत-कहणं—

१७७. तए णं से पिसायरूवे अरहण्णगं जाहे नो संचाएइ निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा, ताहे उवसंते, तंते, परितंते, निव्विण्णे तं पोयवहणं सणियं सणियं उवरिं जलस्स ठवेइ, ठवेत्ता तं दिव्वं पिसाय-रूवं पडिसाहरेइ, पडिसाहरेत्ता दिव्वं देव रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता अंतलिक्ख-पडिवन्ने सखिंखिणीयाइं सुद्ध-वण्णाइं दसद्धवण्णाइं पवर-परिहिए अरहण्णगं समणोवासगं एवं वयासी—

'हं भो अरहण्णगा ! धन्नोसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! पुण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयलक्खणेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्म-जीविय-फले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया ।

१७६. तदनन्तर भी जब दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक को धर्मध्यान में लीन देखता है तब वह अत्यन्त क्रोधाविष्ट होकर उस पोतयान को दो अंगुलियों से पकड़ता है पकड़कर सात-आठ तल प्रमाण आकाश में उठाता है और उठाकर अर्हन्नक से इस प्रकार कहता है—

'अरे अर्हन्नक ! हे अप्रार्थित प्रार्थित ! यह मेरे लिए योग्य नहीं होगा कि मैं तुम्हें तप, शील, व्रत, गुण, हिंसादि त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध, आवश्यक आदि से चलायमान करूँ, क्षुभित करूँ, खंडित करूँ, भंजित करूँ और परिचालित करूँ ।

'इसलिए अच्छा यही होगा कि यदि तुम स्वयं ही शील, व्रत, गुण, हिंसादि त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध, आवश्यक आदि से चलित नहीं होओगे, क्षुभित नहीं होओगे, उन्हें खंडित नहीं करोगे, भंजित नहीं करोगे, त्याग नहीं करोगे, उनसे विचलित नहीं होओगे तो मैं इस पोत-वाहन को अगाध जल में डुबो दूँगा, जिससे तुम असमाधि को प्राप्तकर आर्त-रौद्र ध्यान के वशवर्ती होकर अकाल मरण को प्राप्तकर जीवन का नाश कर दोगे ।'

तब उस अर्हन्नक श्रमणोपासक ने अपने मन में उस देव से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! जीवाजीव के ज्ञाता इस अर्हन्नक श्रमणोपासक को कोई देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गंधर्व निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित करने में, क्षुभित करने में, विपरिणामित करने में समर्थ नहीं है । जैसे तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो ।' ऐसा कहकर निर्भय—यावत्—अपरिवर्तित मुख राग (मुँह का रंग) एवं नयनवर्णवाला, अदीन, [illegible], निश्चल, निष्कंप और शांत होकर धर्मध्यान में स्थिर रहता है ।

देव का पिशाचरूप संहरण; स्ववृत्तान्त कथन—

१७७. तत्पश्चात् जब वह पिशाचरूप देव अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान करने में, क्षुभित करने में, विपरिणामित [illegible] करने में समर्थ नहीं हुआ तब वह [illegible] शांत एवं मन में खेदखिन्न हो गया और उस पोतवाहन को शनैः शनैः उतारकर जल पर रखता है, रखकर उस दिव्य पिशाचरूप का संहरण करता है, संहरण करके दिव्य देवरूप की विकुर्वणा करता है एवं आकाश में अधर स्थित होकर [illegible] की ध्वनि से युक्त [illegible] करके अर्हन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार [illegible]—

'हे अर्हन्नक ! हे श्रमणोपासक ! हे देवानुप्रिय तुम [illegible] हे देवानुप्रिय ! तुम पुण्यशाली हो ! हे देवानुप्रिय ! तुम [illegible] हे देवानुप्रिय ! [illegible] हो तुम ! [illegible] अच्छी तरह से प्राप्त कर लिया [illegible] हे देवानुप्रिय ! [illegible] निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की [illegible] है, उपार्जित की है [illegible] की है ।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के, देविंदे, देवराया सोहम्मे कप्पे, सोहम्म-वडिसए विमाणे, सभाए सुहम्माए, बहूणं देवाणं मज्झगए, महया-महया सद्देणं एव आइक्खइ, एव भासेइ, एवं पण्णवेइ, एव परूवेइ—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे, भारहेवासे, चंपाए नयरीए, अरहण्णए समणोवासए अभिगय-जीवाजीवे। नो खलु सक्के केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, जक्खेण वा, रक्खसेण वा, किन्नरेण वा, किंपुरिसेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा।"

हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र देवराज शक्र ने सौधर्म कल्प में, सौधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में बहुत से देवों के बीच उच्चस्वर से भाषण देकर इस प्रकार कहा और भाषण, सम्बोधित किया—

'हे देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चम्पानगरी में जीवाजीव का ज्ञाता अर्हन्नक श्रमणोपासक है। उसे किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग या गंधर्व द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान नहीं किया जा सकता है।'

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! सक्कस्स, देविंदस्स, देवरण्णो नो एयमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

तब हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र देवराज शक्र की इस बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ, प्रतीति नहीं हुई और न रुचिकर लगी। तब मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ, मैंने चिन्तन किया और मन में संकल्प पैदा हुआ—

"गच्छामि णं अहं अरहण्णगस्स अंतियं पाउब्भवामि, जाणामि ताव अहं अरहण्णग—किं पियधम्मे, नो पियधम्मे ? दढधम्मे, नो दढधम्मे ? सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं किं चालेइ, नो चालेइ ? खोभेइ, नो खोभेइ ? खंडेइ, नो खंडेइ ? भंजेइ, नो भंजेइ ? उज्झइ, नो उज्झइ ? परिच्चयइ, नो परिच्चयइ ?" त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता ओहिं पउंजामि, पउंजित्ता देवाणुप्पियं ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमामि उत्तर-वेउव्विय रूवं विउव्वामि, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए जेणेव लवणसमुद्दे, जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवाणुप्पियस्स उवसग्गं करेमि, नो चेव णं देवाणुप्पिया, भीया वा तत्था वा, चलिया वा, संभंता वा, आउला वा, उव्विगा वा भिण्ण-मुह-राग-नयण-वयणा, दीण-विमण-माणसे जाया।

'मैं अर्हन्नक के समीप जाऊँ और जानूँ कि अर्हन्नक को धर्म प्रिय है अथवा धर्म प्रिय नहीं है ? शील, व्रत, गुण, विरमण त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध, आवश्यक आदि से चलायमान होता है अथवा चलित नहीं होता है, क्षुब्ध होता है या शांत रहता है, व्रतों को खंडित करता है या खंडित नहीं करता है, भंजन करता है या नहीं करता है, आंशिक रूप से छोड़ता है या नहीं छोड़ता है, पूर्ण रूपेण त्यागता है या नहीं त्यागता है ?' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके अवधिज्ञान उपयोग लगाया, उपयोग लगाकर आप देवानुप्रिय को देखा-जाना; देख-जानकर उत्तर-पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में जाकर उत्तरवैक्रिय शरीर की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके उत्कृष्ट देवगति से जिस ओर लवणसमुद्र था जहाँ आप देवानुप्रिय थे, वहाँ आया और वहाँ आकर आप देवानुप्रिय पर उपसर्ग किये फिर भी आप देवानुप्रिय उस उपसर्ग से भीत, त्रस्त, चलित, संभ्रांत, व्यग्र, उद्विग्न, भिन्नमुखराग नयन वर्ण वाले, दीन, विमनस्क नहीं हुए।

तं जं णं सक्के, देविंदे, देवराया एवं वयइ, सच्चे णं ! एसमट्ठे। तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियस्स इड्ढी, जुई, जसो, बलं, वीरियं पुरिसकार-परक्कमे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमेसु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहसि णं देवाणुप्पिया ! नाइ भुज्जो-भुज्जो एवं करणयाए' त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, खामेत्ता अरहण्णगस्स य दुवे कुण्डलजुयले दलयइ, दलइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

अतएव देवेन्द्र देवराज शक्र ने जो कहा था वह सब कथन सत्य सिद्ध हुआ, मैंने आपको वैसा ही देखा, पाया। मैंने देखा है कि आप देवानुप्रिय को ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उन्हें अभिसमन्वित किया है। देवानुप्रिय ! मैं खमाता हूँ। आप देवानुप्रिय ! मुझे क्षमा करें। हे देवानुप्रिय आप क्षमा देने के योग्य हैं। मैं अब पुनः ऐसा नहीं करूँगा। इस प्रकार कहकर अंजलिपूर्वक चरणों में नमस्कार करके सविनय अपने अपराध की पुनः पुनः क्षमायाचना करता है और क्षमायाचना करके भेंटस्वरूप अर्हन्नक को कुण्डलों की जोड़ी अर्पित करता है, भेंट करके जिस दिशा में प्रगट हुआ था उसी दिशा में लौट गया।

तए णं से अरहण्णए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ।

तदनन्तर उपसर्ग दूर हो गया है, ऐसा जानकर अर्हन्नक अपनी प्रतिमा (सागारी संथारे) को पारता है।

अरहण्णगस्स मिहिला-आगमणं—

१७८. तए णं ते अरहण्णग-पामोक्खा-संजत्ता-नावा-वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोय-पट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति, लंबेत्ता सगडि-सागडं सज्जेंति-सज्जेत्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेज्जं च सगडि-सागडं संकामेंति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डलजुयलं च गेण्हंति, गेण्हित्ता मिहिलाए रायहाणीए अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव कुम्भए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डल-जुयलं च उवणेंति।

तए णं कुम्भए राया तेसिं संजत्ता-नावा-वाणियगाणं तं महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डल-जुयलं च पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लिं विदेह-वर-राय-कन्नं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं मल्लीए विदेहवरराय-कन्नगाए पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं से कुम्भए राया ते अरहण्णग-पामोक्खे संजत्ता-नावा-वाणियगे विपुलेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता; सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता रायमग्गमोगाढे य आवासे वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ।

अर्हन्नक का मिथिला-आगमन—

१७८. तदनन्तर वे अर्हन्नक आदि नायाधिक पोतवणिक दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन के कारण जहाँ गंभीर नामक पोतपट्टन (बन्दरगाह) था वहाँ आते हैं। वहाँ आकर पोत का लंगर डालते हैं, लंगर डालकर गाड़ी-गाड़ों को तैयार करते हैं, तैयार करके उनमें गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य व्यापार योग्य वस्तुओं के भाण्डों को रखते हैं रखकर गाड़ी गाड़ों को जोतते हैं, जोतकर जहाँ मिथिला थी वहाँ आते हैं, वहाँ आकर मिथिला राजधानी के बाहर अग्रउद्यान में गाड़ी गाड़ों को खोलते हैं, छोड़ते हैं, छोड़कर महार्थक, महा-मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, विपुल परिमाण में राजा के योग्य भेंट और कुण्डल युगल को लिया, लेकर मिथिला राजधानी में प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर हाथ जोड़ नमस्कार करके महार्थक, महामूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, राजा के योग्य विपुल भेंट एवं कुण्डल युगल सामने रखते हैं।

तत्पश्चात् कुम्भराजा उन नायाधिक पोतवणिकों की उस महार्थक, मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, विपुल राजा के योग्य भेंट और दिव्य कुण्डल युगल को स्वीकार करता है, स्वीकार करके विदेहवर राजकन्या मल्लि को बुलाया, बुलाकर उस दिव्य कुण्डल युगल को विदेहवर राजकन्या मल्लि को पहनाता है, पहनाकर विदा करता है।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने उन अर्हन्नक आदि नायाधिक पोत वणिकों का विपुल वस्त्र, माला, अलंकार से सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके उनके माल पर शुल्क माफ कर दिया, शुल्क माफ करके राजमार्ग पर उनके ठहरने का प्रबन्ध किया और प्रबन्ध करके उन्हें विदा किया।

अरहण्णगस्स चंपाए आगमणं—

१७९. तए णं अरहण्णग-पामोक्खा संजत्ता-नावा-वाणियगा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेंति, पडिभंडे गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडी-सागडं भरेंति, भरेत्ता जेणेव गंभीरए पोय-पट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोय-वहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता भंडं संकामेंति, संका-मेत्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव चंपाए पोय-ट्ठाणे तेणेव उवा-गच्छंति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति लंबेत्ता सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तं गणिमं, धरिमं, मेज्जं, परिच्छेज्जं च सगडी-सागडं संकामेंति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव चंपा-नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चंपाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं, महग्घं,

अर्हन्नक का चंपा में आगमन—

महरिहं, विउलं रायारिहं पाहुडं, दिव्वं च कुण्डल-जुयलं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं, पाहुडं, दिव्वं च कुण्डल-जुयलं उवणेंति।

के योग्य, विपुल राजाओं के योग्य भेंट और दिव्य कुण्डल युगल को लेते हैं, लेकर जहाँ अंगराज चन्द्रच्छाया था वहाँ आए, वहाँ आकर उस महार्थक, महार्घ, महान पुरुषों के लायक विपुल राजा के योग्य भेंट एवं दिव्य कुण्डल-युगल को सामने रखते हैं।

१८०. तए णं चंदच्छाए अंगराया तं महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुण्डलजुयलं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते अरहण्णग-पामोक्खे एवं वयासी—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर-जाव-सण्णिवेसाइं आहिंडह, लवण-समुद्दं च अभिक्खणं-अभिक्खणं पोय-वहणेहिं ओगाहेह तं अत्थि याइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे।

१८०. तदनन्तर चन्द्रच्छाया अंगराज उस महार्थक भेंट एवं दिव्य-कुण्डल को स्वीकार करता है, स्वीकार करके उसने अर्हन्नक आदि से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! आप लोग बहुत से ग्रामों में, आकरों में—यावत्—संनिवेशों आदि में परिभ्रमण करते हो और बार-बार पोतवाहन से लवण समुद्र भी जाते हो तो आपने कहीं किसी जगह कोई भी आश्चर्य पहले देखा है ?'

मल्ली रूव-पसंसा—

१८१. तए णं ते अरहण्णग-पामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी—

'एवं खलु सामी! अम्हे इहेव चंपाए नयरीए अरहण्णग-पामोक्खा बहवे संजत्तगा-नावा-वाणियगा परिवसामो। तए णं अम्हे अण्णया कयाइ गणिमं च, धरिमं च, मेज्जं च, परिच्छेज्जं च गेण्हामो, तहेव अहीणं-अइरित्तं-जाव-कुम्भगस्स रण्णो उवणेमो। तए णं से कुम्भए मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिविसज्जेइ। तं एस णं सामी! अम्हेहिं कुम्भगराय-भवणंसि मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना अच्छेरए दिट्ठे। तं नो खलु अण्णा का वि तारिसिया देव-कन्ना वा, असुर कन्ना वा, नागकन्ना वा, जक्ख-कन्ना वा, गंधव्व-कन्ना वा, राय-कन्ना वा, जारिसिया णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना।'

तए णं चंदच्छाए अरहण्णग-पामोक्खे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ।

मल्लिरूप-प्रशंसा—

१८१. तब उन अर्हन्नक आदि ने चंद्रच्छाया अंगराज से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन्! हम अर्हन्नक आदि बहुत से सांयात्रिक पोत-वणिक इसी चंपानगरी में निवास करते हैं। हम लोग किसी एक समय गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य आदि पूर्ववत न न्यून और न अधिक—यावत्—कुम्भ राजा के पास पहुंचे तब उस कुम्भ राजा ने विदेहवर राजकन्या को वे दिव्यकुण्डल युगल पहनाये, पहनाकर विदा किया। तो हे स्वामिन्! हमने कुम्भ राजा के भवन में विदेहवर राजकन्या मल्लि को आश्चर्य के रूप में देखा है। इससे पहले कभी भी वैसी दूसरी देवकन्या, या असुरकन्या, या नागकन्या, या यक्षकन्या, या गन्धर्वकन्या या राजकन्या नहीं देखी है जैसी विदेहवर राजकन्या मल्लि है।'

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाया ने अर्हन्नक आदि का सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके कर-मुक्त कर दिया और शुल्क मुक्त करके विदा किया।

चन्दच्छाय-रण्णो दूयस्स मिहिला-गमणं—

१८२. तए णं चंदच्छाए वाणियग-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया-जाव-मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका'

तए णं से दूए चंदच्छाएणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-पहारेत्थ गमणाए।

चन्द्रच्छाया राजा के दूत का मिथिला गमन—

१८२. तदनन्तर वणिकों के कथन से हर्षविभोर हुए चन्द्रच्छाया ने दूत को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो, यदि उसके लिये सारे राज्य को शुल्क के रूप में देना पड़े तो भी स्वीकार करना।

तब वह दूत चन्द्रच्छाया के इस वृत्तान्त को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होकर—यावत्—चल दिया।

रुप्पी राया—

१८३. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुणाला नाम जणवए होत्था। तत्थ णं सावत्थी नाम नयरी होत्था। तत्थ णं रुप्पी कुणालाहिवई नाम राया होत्था। तस्स णं रुप्पिस्स धूया धारिणीए देवीए

रुक्मि राजा—

१८३. उस काल उस समय में कुणाल नामक जनपद था। उसमें श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उस नगरी में कुणालाधिपति रुक्मि नाम का राजा था। उस रुक्मि राजा की पुत्री, धारिणी रानी

अत्तया सुबाहू नाम दारिया होत्था सुकुमाल-पाणिपाया रूवेण य, जोव्वणेण य, लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

की अंगजा सुबाहु नामक कन्या थी, जिसके हाथ-पैर आदि सर्वांग सुकोमल थे एवं जो रूप से, यौवन से, लावण्य से उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी।

सुबाहुए मज्जणए—

सुबाहु का मज्जनक—

१८४. तीसे णं सुबाहुए दारियाए अण्णया चाउम्मासिय-मज्जणए जाए यावि होत्था। तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहुए दारियाए चाउम्मासिय-मज्जणयं उवट्ठियं जाणइ, जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! सुबाहुए दारियाए कल्लं चाउम्मासिय-मज्जणए भविस्सइ, तं कल्लं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि चउक्कंसि जल-थलय-दसद्धवण्णं मल्लं साहरह-जाव-एगं महं सिरि-दाम-गंडं गंधद्धणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलएह।

ते वि तहेव ओलयंति।

तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगार-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायमग्गमोगाढंसि पुप्फ-मंडवंसि नाणाविह-पंचवण्णेहिं तंदुलेहिं नगरं आलिहह, तस्स बहु-मज्झदेस-भाए पट्टयं रएह, रएत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।'

ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।

१८४. उस सुबाहु बालिका का किसी समय चातुर्मासिक स्नान (जलक्रीड़ा) का उत्सव आया। तब उस कुणालाधिपति रुक्मि ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया जाना, जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! कल सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा, इसलिए तुम कल राजमार्ग के मध्य में चौक में जल और थल में उत्पन्न पंचवर्णों के फूलों को लाओ—यावत्—एक महान सुगन्ध से भरपूर श्री दामकाण्ड लटकाओ।'

वे भी उसी प्रकार लटकाते हैं।

तत्पश्चात् वह कुणालाधिपति रुक्मि सुवर्णकार श्रेणी (समूह) को बुलाता है, बुलाकर उसने इस प्रकार कहा :—

'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजमार्ग के मध्य में पुष्प मण्डप में अनेक प्रकार पंचरंगे चावलों से नगर का आलेखन करो उसके ठीक बीच में एक पाट रखो, आदेश पूर्ति होने की वापस सूचना दो।'

वे भी वैसा करके आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं।

१८५. तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हत्थि-खंध-वरगए चाउरंगिणीए सेणाए महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंद-परिखित्ते अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे, सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु, जेणेव रायमग्गे, जेणेव पुप्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि-खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पुप्फ-मंडवे अणुप्पविसइ, अणुप्पविसत्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

१८५. तत्पश्चात् वह कुणालाधिपति रुक्मि श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठकर चतुरंगिणी सेना, बड़े-बड़े योद्धाओं एवं रथों के समूह से घिरा हुआ और अन्तःपुर परिवार के साथ, सुबाहु बालिका को आगे करके जहां राजमार्ग था, जहां पुष्पमण्डप था वहीं आता है, वहां आकर हस्तिस्कन्ध से नीचे उतरा, उतरकर पुष्पमण्डप में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

तए णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरुहेंति, दुरुहेत्ता सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति, ण्हाणेत्ता सव्वालंकार-विभूसियं करेंति, करेत्ता पिउणो पाय-वंदियं उवणेंति। तए णं सुबाहू दारिया जेणेव रुप्पी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पाय-ग्गहणं करेइ।

मल्ली-मज्जणग-पसंसा—

१८६. तए णं से रुप्पी राया सुबाहुं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता सुबाहुए दारियाए रूवेण य, जोव्वणेण य, लावण्णेण य, जायविम्हए वरिसधरं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम दोच्चे णं बहूणि गामागार-नगर-जाव-सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर-जाव-सत्थवाहपभिईणं गिहाणि अणुप्पविससि, तं अत्थि याइं तं कस्सइ रण्णो वा, ईसरस्स वा कहिंचि एयारिसए मज्जणए दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमीसे सुबाहूए दारियाए मज्जणए ?'

'हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दौत्यकार्य से अनेक ग्रामों, आकरों, नगरों—यावत्—सन्निवेशों में परिभ्रमण करते हो और बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति के गृहों में प्रवेश करते हो, तो तुमने कहीं पर किसी राजा या ईश्वर के यहाँ भी ऐसा मज्जनक पूर्व में देखा है। जैसा इस सुबाहु बालिका का मज्जनक है ?'

तए णं से वरिसधरे रुप्पिं रायं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

'एवं खलु सामी ! अहं अण्णया तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं गए। तत्थ णं मए कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नगाए मज्जणए दिट्ठे। तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुबाहूए दारियाए मज्जणए सय-सहस्सइमं पि कलं न अग्घइ।'

तब उस वर्षधर ने दोनों हाथ जोड़ एवं नतमस्तक हो अंजलि करके रुक्मि राजा से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! मैं किसी एक समय आपके दौत्यकार्यवश मिथिला गया था। वहाँ पर मैंने कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की अंगजा विदेहवर राजकन्या मल्लि का मज्जनक (स्नान महोत्सव) देखा था। उस मज्जनक को यह सुबाहु बालिका का मज्जनक लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता है।'

रुप्पिरण्णो दूयस्स मिहिला-गमणं—

रुक्मिराजा के दूत का मिथिला-गमन—

१८७. तए णं से रुप्पी राया वरिसधरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म मज्जणग-जणिय-हासे, दूयं सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

१८७. तदनन्तर वर्षधर की इस बात को सुनकर और विचार करके तथा मज्जनक के वृत्तान्त से आश्चर्यचकित हुए रुक्मिराजा ने दूत को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया !-जाव-मल्लिं विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।'

'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो, यदि उसके लिये राज्य भी देना पड़े तो तो भी स्वीकार करना।'

तए णं से दूए रुप्पिणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तब वह दूत रुक्मि की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो—यावत्—जिस ओर मिथिला नगरी थी, उस ओर चल दिया।

संख-राया—

शंख राजा—

१८८. तेणं कालेणं तेणं समएणं कासी नामं जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं संखे नामं कासीराया होत्था।

१८८. उस काल उस समय काशी नामक जनपद था। उसमें वाराणसी नाम की एक नगरी थी। उसमें शंख नाम का काशी-राज था।

मल्लीए कुण्डल-जुयलस्स संधिविघडणं—

मल्लि के कुण्डल युगल का संधि विघटन—

१८९. तए णं तीसे मल्लीए विदेह-वर-राय-कन्नाए अण्णया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था।

१८९. तदनन्तर अन्य किसी एक समय उस विदेहवर राजकन्या मल्लि के उस दिव्य कुण्डल युगल की संधि का विघटन हो गया अर्थात् उनका जोड़ खुल गया।

तए णं से कुम्भए राया सुवण्णगार-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तब कुम्भराजा ने सुवर्णकार श्रेणी को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इमस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स संधिं संघाडेह।"

'हे देवानुप्रियो ! इस दिव्य कुण्डल युगल के जोड़ को सांध दो।'

तए णं सा सुवण्णगार-सेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगार-भिसियाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवण्णगार-भिसियासु निवेसेइ, निवेसेत्ता बहूहिं आएहि य, उवाएहि य,

तत्पश्चात् उस सुवर्णकार श्रेणी ने तथास्तु कहकर कुण्डल युगल की संधि को सांधने रूप अर्थ (आदेश) को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस कुण्डल युगल को लेते हैं, लेकर जहाँ सुवर्णकारों के बैठने के स्थान हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर सुवर्णकारों के स्थानों पर बैठते हैं, बैठकर अनेक साधनों से, उपायों से और

उप्पत्तियाहि य, वेणइयाहि य, कम्मयाहि य, पारिणामियाहि य बुद्धीहि परिणामेमाणा इच्छंति तस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स संधिं घडित्तए, नो चेव णं संचाएइ घडित्तए।

तए णं सा सुव्वण्णगार-सेणी जेणेव कुम्भए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु सामी! अज्ज तुम्हे अम्हे सद्दावेह, -जाव-संधिं संघाडेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

तए णं अम्हे तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं गेण्हामो, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगार-भिसियाओ तेणेव उवागच्छामो-जाव- नो संचाएमो संधिं संघाडेत्तए।

तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स अण्णं सरिसयं कुण्डल-जुयलं घडेमो।"

सुवण्णगारसेणीए निव्विसय-करणं—

१६० तए णं से कुम्भए राया तीसे सुव्वण्णगार-सेणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते, रुट्ठे, कुविए, चंडिक्किए, मिसि-मिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी—

'केस णं तुब्भे कलायाणं भवह, जे णं तुब्भे इमस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स नो संचाएह संधिं संघाडित्तए?' ते सुवण्णगारे निव्विसए आणवेइ।

सुवण्णगारसेणीए वाणारसीए आगमणं—

१६१. तए णं ते सुवण्णगारा कुम्भगेणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सभंडमत्तोवगरण-मायाए मिहिलाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निक्खमंति, निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं निक्खमंति, निक्खमित्ता जेणेव कासी जणवए जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अग्गुज्जाणंसि सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं-जाव-पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता वाणारसीए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव संखे कासीराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता पाहुडं उवणेंति, उवणेत्ता एवं वयासी—

"अम्हे णं सामी! मिहिलाओ कुम्भएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इह हव्वमागया। तं इच्छामो णं सामी! तुब्भं बाहुच्छाया-परिग्गहिया निब्भया, निरुव्विग्गा, सुहंसुहेणं परिवसिउं।"

औत्पात्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, पारिणामिकी बुद्धियों से उस दिव्य कुण्डल युगल की संधि को जोड़ने का प्रयत्न किया किन्तु यथोचित रूप से जोड़ने में सफल नहीं हुए।

तब वह सुवर्णकार श्रेणी जहां कुम्भराजा था, वहां आयी, वहां आकर दो हाथ जोड़ और सिर पर आवर्त करके मस्तक पर अंजलि करके एवं जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन्! आज आपने हमें बुलाया था—यावत्—आदेश दिया था कि कुण्डल युगल की संधि को जोड़कर मेरी आज्ञा को वापस लौटाओ।

तब हमने उस दिव्य कुण्डल युगल को ले लिया था, लेकर जहां सुवर्णकारों के बैठने का स्थान था, वहां गये—यावत्—संधि को जोड़ने में सफल नहीं हो सके।

अतः हे स्वामिन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम इस दिव्य-कुण्डल युगल के समान दूसरा कुण्डल युगल बना देते हैं।'

सुवर्णकार श्रेणी का निर्वासनकरण—

१६०. तदनन्तर सुवर्णकार श्रेणी की इस बात को सुनकर और विचार कर कुम्भराजा शीघ्र ही क्रोधित, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् हो गया और मिसमिसाते हुए ललाट में तीन सलवटें डाल, भृकुटि चढ़ाकर इस प्रकार बोला—

'तुम कैसे सुवर्णकार हो, जब तुम इस दिव्य कुण्डल युगल की संधि को सांधने में समर्थ नहीं हो सके हो?' इस प्रकार कहकर सुवर्णकारों को देश-निर्वासन की आज्ञा दी।

सुवर्णकार श्रेणी का वाराणसी में आगमन—

१६१. तत्पश्चात् कुम्भराजा के द्वारा दी गई देश निर्वासन की आज्ञा को सुनकर वे सुवर्णकार जहां अपने-अपने घर थे, वहां आये, वहां आकर अपने-अपने भाण्डोपकरण [illegible] मिथिला राजधानी के बीचोंबीच होकर निकले, [illegible] के मध्य में होते हुए जहां [illegible] था [illegible] वाराणसी नगरी थी, वहां आये, [illegible]

[illegible]

'हे स्वामिन्! कुम्भराजा के द्वारा [illegible]

[illegible]

तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी–

'किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कुम्भएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता ?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी–

"एवं खलु सामी ! कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए कुण्डल-जुयलस्स संधी विसंघडिए। तए णं से कुम्भए राया सुवण्णगारसेणि सद्दावेइ-जाव-निव्विसया आणत्ता। तं एएणं कारणेणं सामी ! अम्हे कुम्भएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता।"

तए णं से संखे कासीराया सुवण्णगारे एवं वयासी–

केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! कुम्भगस्स रण्णो धूया पभावई-देवीए अत्तया मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना ?'

तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से ऐसा पूछा—

'हे देवानुप्रियो ! किस कारण कुम्भराजा ने तुम लोगों को देश त्याग करने की आज्ञा दी ?'

तब उन सुवर्णकारों ने काशीराजा शंख से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की आत्मजा विदेहवर राजकन्या मल्लि के कुण्डल युगल का जोड़ खुल गया था। तब कुम्भराजा ने स्वर्णकार श्रेणी को बुलाया—यावत्—देश त्याग करने की आज्ञा दी। बस इसी कारण हे स्वामिन् ! कुम्भ-राजा ने हम लोगों को देश-त्याग करने की आज्ञा दे दी।'

तदनन्तर काशीराज शंख ने सुवर्णकारों से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की आत्मजा, विदेहवर राजकन्या मल्लि कैसी है ?'

मल्ली-रूव-पसंसा संखदूयस्स मिहिला-गमणं—

१६२. तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी—

नो खलु सामी ! अण्णा का वि तारिसिया देव-कन्ना वा, असुरकन्ना वा, नाग-कन्ना वा, जक्ख-कन्ना वा, गंधव्व-कन्ना वा, राय-कन्ना वा जारिसिया णं मल्ली विदेह-वर-राय-कन्ना।"

तए णं से संखे कासीराया कुण्डल-जुयल-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया ! —जाव-मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका।"

मल्लिरूप प्रशंसा, शंख के दूत का मिथिला-गमन—

१६२. तब उन सुवर्णकारों ने काशीराज शंख से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! जैसी विदेहवर राजकन्या मल्लि है, वैसी न तो कोई देवकन्या है, अथवा असुरकन्या है, अथवा नागकन्या है, अथवा यक्षकन्या है, अथवा गंधर्वकन्या या राजकन्या है।'

इसके बाद कुण्डलजनित हर्ष से आश्चर्यचकित हुआ काशी-राज शंख ने दूत को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ–यावत्–विदेहवर राजकन्या-मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो। यदि उसके शुल्क के रूप में राज्य भी देना पड़े तो दे देना।'

१६३. तए णं से दूए संखेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे-जाव-जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

१६३. तत्पश्चात् शंख की इस बात को सुनकर दूत हृष्ट तुष्ट होता हुआ—यावत्—जहाँ मिथिला नगरी थी उस ओर चल दिया।

अदीणसत्तु-राया—

१६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुरुनामं जणवए होत्था। तत्थ णं हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था। तत्थ णं अदीणसत्तू नामं राया होत्था-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

अदीनशत्रु राजा—

१६४. उस काल, उस समय में कुरु नामक जनपद था। वहां हस्तिनापुर नामक नगर था। उसमें अदीनशत्रु नामक राजा था–यावत्—जो राज्य शासन करता था।

मल्लदिन्न चित्त-सभा-कारवणं—

१६५. तत्थ णं मिहिलाए कुम्भगस्स रण्णो पुत्ते पभावईए देवीए अत्तए मल्लीए अणुमग्ग-जायए मल्लदिन्ने नामं कुमारे सुकुमाल-पाणि-पाए-जाव-जुवराया यावि होत्था।

१६६. तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

'गच्छह णं तुब्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्त-सभं करेह अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठं—एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह'।

मल्लदिन्न द्वारा चित्रसभा कार्यान्वयन—

१६५. उस मिथिला में कुम्भराजा का पुत्र, प्रभावती देवी का आत्मज, मल्लि का अनुज सुकुमाल पाणिपाद वाला मल्लदिन्न नामक राजकुमार—यावत्—युवराज था।

१६६. उस समय किसी एक दिन मल्लदिन्नकुमार ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'तुम लोग जाओ और मेरे प्रमदवन में अनेक खंभों से युक्त एक विशाल चित्रसभा का निर्माण करो—आदेश पूर्ति होने की सूचना दो।'

ते वि तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगर-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! चित्त-सभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलिएहिं रूवेहिं चित्तेह, चित्तेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं सा चित्तगर-सेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तूलियाओ वण्णए य गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव चित्त-सभा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता भूमि-भागे विरचंति, विरचित्ता भूमिं सज्जेइ, सज्जेत्ता चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलिएहिं रूवेहिं चित्तेउं पयत्ता यावि होत्था ।

ये भी वैसा करके सूचना देते हैं ।

तत्पश्चात् वह मल्लदिन्नकुमार चित्रकार श्रेणी को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

'हे देवानुप्रियो ! तुम चित्रसभा को हाव, भाव, विलास बिब्वोक से युक्त रूपों से चित्रित करो, चित्रित करके इस [illegible] को वापस लौटाओ ।'

तत्पश्चात् वह चित्रकार श्रेणी तथा—बहुत [illegible] कुमार की आज्ञा को स्वीकार करती है, स्वीकार करके [illegible] अपने घर से वहाँ आती है, वहाँ आकर तूलिकायें और [illegible] ले लेती है, ले करके जहाँ चित्रसभा थी वहाँ (आती है, आकर चित्रसभा में) प्रवेश करती है, प्रवेश करके चित्र रचना के स्थान को रेखाओं आदि से अंकित किया, अंकित करके स्थान को सजाया, चित्रसभा को सजाकर हाव, भाव, विलास-बिब्बोक से युक्त चित्रों को चित्रित करने में प्रवृत्त हो गये ।

चित्तगरेण मल्ली-पडिरूव-निव्वत्तणं—

चित्रकार द्वारा मल्लि प्रतिरूप निवर्तन—

१९७. तए णं एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगर-लद्धी लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया—'जस्स णं दुपयस्स वा, चउप्पयस्स वा, अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं निव्वत्तेइ ।'

तए णं से चित्तगरे मल्लीए जवणियंतरियाए जालंतरेण पायंगुट्ठं पासइ । तए णं तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था 'सेयं खलु ममं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं सरित्तयं सरिव्वयं सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए'—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता भूमि-भागं सज्जेइ, सज्जेत्ता मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं-जाव-रूवं निव्वत्तेइ ।

१९७. उन चित्रकारों में से एक चित्रकार को ऐसी चित्रकार लब्धि (योग्यता) लब्ध थी, प्राप्त थी, सम्यक् प्रकार से [illegible] की थी कि 'जिस किसी भी द्विपद का या चतुष्पद का अथवा अपद का एकदेश भी देख लेता था, तो उस एकदेशानुसार [illegible] पूरा रूप (चित्र) बना सकता था ।

उस चित्रकार ने यवनिका के अन्दर बैठी हुई मल्लि के पैर के अंगूठे को जाली (छिद्र) में से देखा । तब उस चित्रकार के मन में इस प्रकार का विचार किया—यावत्-विचार उत्पन्न हुआ कि [illegible] लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं विदेहवर राजकन्या मल्लि के पादांगुष्ठ के अनुसार उसका सदृश, समान, सदृशवय, सदृशलावण्य, रूप, यौवन, गुणोपेत चित्र बनाऊँ—उसने इस प्रकार का विचार किया और विचार के अनुसार भूमिभाग को सजाकर सजाकर पादांगुष्ठ के अनुसार विदेहवर राजकन्या मल्लि का [illegible] का वैसा गुणोपेत—यावत्—चित्र बनाया ।

१९८. तए णं सा चित्तगर-सेणी चित्त-सभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलिएहिं रूवेहिं चित्तेइ, चित्तेत्ता जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगर-सेणिं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे ण्हाए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे अम्म-धाईए सद्धिं जेणेव चित्त-सभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलियाइं रूवाइं पासमाणे पासमाणे जेणेव मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

१९८. तत्पश्चात् उस चित्रकार श्रेणी ने चित्रसभा को हाव, भाव, विलास, बिब्बोक युक्त रूपों—चित्रों से चित्रित [illegible] चित्रित करके जहाँ मल्लदिन्न कुमार था, वहाँ आई, [illegible] आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी ।

[illegible]

[illegible]

१९९. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे मल्लीए-विदेह-राय-वर-कन्नाए तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए -जाव-समुप्पज्जित्था—'एस ण मल्ली, विदेह-राय-वर-कन्न' त्ति कट्टु लज्जिए विलिए, वेड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ।

१९९. तदनन्तर वह मल्लदिन्न कुमार विदेहवर राजकन्या मल्लि के अनुरूप बने चित्र को देखता है, चित्र को देखने पर उसके मन में इस प्रकार का संकल्प आया—यावत्—उत्पन्न हुआ कि यह तो विदेहवर राजकन्या मल्लि ही है, ऐसा विचार कर लज्जित हुआ, विशेष लज्जित हुआ, दुःखित होकर शनैः-शनैः वहां से चल दिया।

तए णं तं मल्लदिन्नं कुमारं अम्म-धाई सणियं सणियं पच्चोसक्कंत पासित्ता एवं वयासी—

तब मल्लदिन्न कुमार को शनैःशनैः जाते देखकर धायमाता इस प्रकार बोली—

'किण्णं तुमं पुत्ता! लज्जिए, विलिए, वेड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कसि?'

'हे पुत्र! किस कारण तुम लज्जित, पीड़ित और व्यथित होकर धीरे-धीरे चले जा रहे हो?'

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्म-धाइं एव वयासी—

'जुत्तं णं अम्मो! मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवय-भूयाए-लज्जणिज्जाए मम चित्तसभं अणुपविसित्तए?'

तब मल्लदिन्न कुमार ने धाया माता से इस प्रकार कहा—

'हे माता! मुझे इस चित्रसभा में प्रवेश करना क्या उचित था, जहाँ गुरु और देवता के समान एवं जिनके सामने जाने में मुझे लज्जित होना चाहिये; मेरी ज्येष्ठ भगिनी बैठी हुई है?'

तए णं अम्म-धाई मल्लदिन्नं कुमारं एवं वयासी—

'नो खलु पुत्ता! एस मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना। एस णं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए चित्तगरएणं तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए'।

तब धायमाता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा—

'हे पुत्र! निश्चय ही यह साक्षात् विदेहवर राजकन्या मल्लि नहीं है। यह तो चित्रकार के द्वारा विदेहवर राजकन्या मल्लि का बनाया गया तदनुरूप चित्र है।'

चित्तगरस्स निव्विसयकरणं—

चित्रकार का निर्वासनकरण—

२००. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्म-धाईए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते एवं वयासी—

'केस णं भो! से चित्तयरए अपत्थिय-पत्थए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीण-पुण्ण-चाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवय-भूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्त-सभाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए' त्ति कट्टु तं चित्तगरं वज्झं आणवेइ।

२००. तब धायमाता की इस बात को सुनकर और विचार करके मल्लदिन्नकुमार क्रुद्ध होकर इस प्रकार बोला—

'कौन ऐसा अप्रार्थित प्रार्थित (अकालमरण का इच्छुक) दुरन्त-पन्त लक्षण, हीन पुण्य चातुर्दशिक, श्री, ह्री, धृति, कीर्ति से विहीन चित्रकार है, जिसने गुरुदेवभूत और जिसके समक्ष जाने पर मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ ऐसी मेरी ज्येष्ठ भगिनी का मेरी चित्रसभा में तदनुरूप चित्र बनाया है', इस प्रकार कहकर उस चित्रकार के वध की आज्ञा दे दी।

तए णं सा चित्तगर-सेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् चित्रकार श्रेणी को इस कथन के समाचार ज्ञात हुए तब जहाँ मल्लदिन्नकुमार था वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़ सिर नमा और मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से वधाया, वधाकर इस प्रकार बोली—

'एवं खलु सामी! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगर-लद्धी लद्धा, पत्ता अभिसमण्णागया—जस्स णं दुपयस्स वा, चउप्पयस्स वा, अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तेइ। तं मा णं सामी! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह। तं तुब्भे णं सामी! तस्स चित्तगरस्स अण्णं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह।'

'हे स्वामिन्! उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकार लब्धि लब्ध हुई है, प्राप्त हुई, अधिगत हुई है, कि जिस किसी भी द्विपद अथवा चतुष्पद अथवा अपद का एकदेश भी देख लेता है उस एकदेश के अनुसार तदनुरूप चित्र को चित्रित कर देता है। इसलिये हे स्वामिन्! आप उस चित्रकार को मारने की आज्ञा मत दीजिये, किन्तु स्वामिन्! आप उस चित्रकार को दूसरा कोई योग्य दण्ड दीजिये।'

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ, छिंदावेत्ता निव्विसयं आणवेइ।

तब मल्लदिन्न कुमार ने उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेदन करवा दिया और छेदन करवा के देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी।

चित्तगरस्स हत्थिणाउरे आगमणं—

२०१. तए णं से चित्तगरे मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ निक्खमइ, निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कुरु-जणवए जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भंड-निक्खेवं करेइ, करेत्ता चित्त-फलगं सज्जेइ, सज्जेत्ता मल्लीए विदेह-रायवर-कन्नाए पायंगुट्ठाणुसारेण रूवं निव्वत्तेइ, निव्वत्तेत्ता कक्खंतरंसि छुब्भइ, छुब्भित्ता महत्थं-जाव-पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता हत्थिणाउरस्स नयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ. उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु अहं सामी ! मिहिलाओ रायहाणीओ कुम्भगस्स रण्णो पुत्तेण पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते समाणे इहं हव्वमागए । तं इच्छामि णं सामी ! तुब्भं बाहुच्छाया-परिग्गहिए निब्भए, निरुव्विग्गे, सुहं सुहेणं परिवसित्तए ।

तए णं से अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी—
'किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते ?

तए णं से चित्तगरे अदीणसत्तुं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु सामी ! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ चित्तगर-सेणिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम चित्तसभं हाव-भाव-विलास-बिब्बोय-कलिएहिं रूवेहिं चित्तेह' तं चेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-मम संडासगं छिंदावेइ, छिंदावेत्ता निव्विसयं आणवेइ । एवं खलु अहं सामी ! मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते ।"

अदीणसत्तुणो मल्ली-पडिरूव-दरिसणं—

२०२. तए णं अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी—

'से केरिसए णं देवाणुप्पिया ! तुमे मल्लीए विदेह-रायवर-कन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए ?'

तए णं से चित्तगरे कक्खंतराओ चित्तफलगं णीणेइ, णीणेत्ता अदीणसत्तुस्स उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी—

'एस णं सामी ! मल्लीए विदेह-रायवर-कन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगार-भाव-पडोयारे निव्वत्तिए । नो खलु सक्का केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, जक्खेण वा, रक्खसेण वा, किन्नरेण वा, किंपुरिसेण वा, महोरगेण वा, गंधव्वेण वा, मल्लीए विदेह-रायवर-कन्नाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए ।'

चित्रकार का हस्तिनापुर में आगमन—

२०१. उसके बाद मल्लदिन्न कुमार के द्वारा [illegible] आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भाण्डोपकरण [illegible] मिथिला नगरी से निकला, निकलकर विदेह जनपद के [illegible] होकर जहाँ कुरु जनपद था, [illegible] वहाँ आकर भाण्डोपकरण [illegible] सजाया, सजाकर पादांगुष्ठानुसार [illegible] चित्र बनाया, बनाकर [illegible] भेंट ली, भेंट लेकर हस्तिनापुर [illegible] अदीनशत्रु राजा था, वहाँ आया, वहाँ [illegible] मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय [illegible] बधाकर भेंट सामने रखी, भेंट रखकर इस प्रकार [illegible]

"हे स्वामिन् ! कुम्भराजा के पुत्र, प्रभावती [illegible] मल्लदिन्न कुमार द्वारा निर्वासित किया गया [illegible] मैं यहाँ आया हूँ । अब हे स्वामिन् ! आपकी बाहुछाया [illegible] लेकर निर्भय, उद्वेगरहित होकर सुखपूर्वक [illegible] चाहता हूँ ।

तब उस अदीनशत्रु राजा ने [illegible]—

'हे देवानुप्रिय ! मल्लदिन्न कुमार ने [illegible] निर्वासन की आज्ञा दी ?'

तब वह चित्रकार अदीनशत्रु राजा से इस प्रकार [illegible]

'हे स्वामिन् ! किसी एक दिन मल्लदिन्न कुमार [illegible] श्रेणी को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार [illegible] तुम लोग मेरी चित्र सभा [illegible] चित्रों को चित्रित करो' इत्यादि [illegible] मेरा संडासक का छेदन करवा दिया, [illegible] की आज्ञा दी । इस प्रकार हे स्वामिन् ! [illegible] द्वारा देश निर्वासन की आज्ञा दिया गया ।'

अदीनशत्रु [illegible]

२०२. उसके बाद अदीनशत्रु राजा [illegible]

[illegible]

अदीणसत्तुणो दूयस्स मिहिलागमणं—

२०३. तए णं से अदीणसत्तू पडिरूव-जणिय-हासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया ! -जाव-मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जुसुंका ।'

अदीनशत्रु के दूत का मिथिला-गमन—

२०३. उसके बाद प्रतिरूपजनित अनुराग से आश्चर्यचकित हुए अदीनशत्रु ने दूत को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहराजवरकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में याचना करो और यदि उसके मूल्य के रूप में राज्य की मांग की जाये तो यह बात भी स्वीकार कर लेना ।

२०४. तए णं से दूए अदीणसत्तूणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

२०४. तदनन्तर अदीनशत्रु की इस बात को सुनकर दूत हृष्ट तुष्ट होकर—यावत्—मिथिला नगरी की ओर जाने के लिये प्रवृत्त हो गया ।

जियसत्तू राया—

२०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं पंचाले जणवए । कंपिल्लपुरे नयरे । जियसत्तू नामं राया पंचालाहिवई । तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्था ।

जितशत्रु राजा—

२०५. उस काल में और उस समय में पांचाल जनपद था । कंपिलपुर नगर था । उसमें पंचालाधिपति जितशत्रु नामक राजा था । उस जितशत्रु के अन्तःपुर में धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं ।

चोक्खा परिव्वाइया—

२०६. तत्थ णं मिहिलाए चोक्खा नामं परिव्वाइया–रिउव्वेय-यजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहास-पंचमाणं निघंटु-छट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेदाणं सारगा-जाव-बंभण्णएसु य सत्थेसु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था । तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर-जाव-सत्थवाह-पभिईणं पुरओ दाण-धम्मं च, सोय-धम्मं च, तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पण्णवेमाणी परूवेमाणी, उवदंसेमाणी विहरइ ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया अण्णया कयाइं तिदंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य गेण्हइ गेण्हित्ता परिव्वाइगावसहाओ पडिनिक्खमइ,पडिनिक्खमित्ता पविरल-परिव्वाइया-सद्धिं संपरिवुडा मिहिलं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं जेणेव कुम्भगस्स रण्णो भवणे, जेणेव कन्नंतेउरे, जेणेव मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदय-परिफासियाए दब्भोवरि-पच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए पुरओ दाण-धम्मं च सोय-धम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पण्णवेमाणी, परूवेमाणी, उवदंसेमाणी विहरइ ।

चोक्खा परिव्राजिका—

२०६. उस मिथिला नगरी में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, निघंटु आदि वेद वेदांगों के रहस्यों की ज्ञाता—यावत्—ब्राह्मण शास्त्रों की जानकर चोक्खा नाम की परिव्राजिका रहती थी । वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरी में अनेक राजेश्वरों—यावत्—सार्थवाह आदि के सामने दानधर्म, शौच-धर्म और तीर्थाभिषेक का कथन करती, समझाती, प्ररूपणा करती, उपदेश देती थी ।

किसी एक समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड और कमण्डल—यावत्—गेरुए वस्त्रों को लेकर परिव्राजिकाओं के साथ निकली, निकलकर कुछ एक परिव्राजिकाओं सहित मिथिला राजधानी के मध्य में होती हुई जहाँ कुम्भराजा का भवन था, जहां कन्या-अन्तःपुर था, जहां विदेहराजवर कन्या मल्लि थी, वहां आई, वहां आकर भूमि को जल से सिंचित किया, दर्भ को बिछाया और आसन रखकर बैठ गई, बैठकर विदेहराजवर कन्या मल्लि के सामने दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थाभिषेक धर्म का कथन करती है, समझाती है, प्ररूपणा करती है, उपदेश करती है ।

मल्लीए चोक्खामय-निरासो—

२०७. तए णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी—

'तुब्भण्णं चोक्खे ! किं मूलए धम्मे पण्णत्ते ?'

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं एवं वयासी—

मल्लि के द्वारा चोक्खा का मत-निरास—

२०७. इसके बाद विदेहराजवर कन्या मल्लि ने चोक्खा परिव्राजिका से इस प्रकार कहा—

'हे चोक्खा ! तुम्हारे यहाँ धर्म का मूल क्या बताया है ?'

तब वह चोक्खा परिव्राजिका विदेहराजवर कन्या मल्लि से इस प्रकार बोली—

'अम्हं णं देवाणुप्पिए ! सोय मूलए धम्मे पण्णत्ते । जं णं अम्हं किंचि असुई भवइ तं णं उदएण य, मट्टियाए य सुई भवइ । एवं खलु अम्हे जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सग्गं गच्छामो ।

हे देवानुप्रिय ! शौचमूलक धर्म कहा गया है । [illegible] जब कभी हमारी कोई वस्तु अशुद्ध हो जाती है तब [illegible] जल से, मिट्टी से शुद्ध कर लेते हैं । इस प्रकार [illegible] पवित्र होकर हम लोग निर्विघ्न स्वर्ग जाते हैं ।

तए णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी—

तदनन्तर विदेहराजवर कन्या मल्ली ने [illegible] ने इस प्रकार कहा—

'चोक्खे ! से जहा नामए केइ पुरिसे रुहिर-कयं वत्थं रुहिरेणं चेव धोवेज्जा, अत्थि णं चोक्खे ! तस्स रुहिर-कयस्स वत्थस्स रुहिरेणं धोव्वमाणस्स काइ सोही ?'

हे चोक्षे ! जैसे [illegible] वस्त्र को रुधिर से ही धोये तो हे चोक्षे ! क्या [illegible] वस्त्र की रुधिर से धोये जाने पर कुछ शुद्धि होती है ?

'नो इणट्ठे समट्ठे ।'

'यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् [illegible] ।

'एवामेव चोक्खे ! तुब्भण्णं पाणाइवाएणं-जाव-मिच्छादंसण-सल्लेणं नत्थि काइ सोही, जहा तस्स रुहिर-कयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव धोव्वमाणस्स ।'

'इसी प्रकार हे चोक्षे ! जैसे [illegible] रुधिर से धोने पर भी शुद्धि नहीं होती है, वैसे ही [illegible] यावत्—मिथ्यादर्शन शल्य से तुम्हारी शुद्धि नहीं [illegible] ।

२०८. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए एवं वुत्ता समाणी, संकिया, कंखिया, वितिगिच्छिया, भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था, मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए नो संचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीया संचिट्ठइ ।

२०८. विदेहराजवर कन्या मल्ली के [illegible] चोक्षा परिव्राजिका [illegible] युक्त, विचिकित्सायुक्त [illegible] गई । विदेहराजवर कन्या मल्ली के प्रश्न का कुछ भी उत्तर न दे सकी और चुपचाप मौन रह गई ।

तए णं तं चोक्खं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए बहूओ दास-चेडीओ हीलेंति, निंदंति, खिसंति, गरिहंति, अप्पेगइयाओ हेरुया-लेंति, अप्पेगइयाओ मुहमक्कडियाओ करेंति, अप्पेगइयाओ वग्घाडियाओ करेंति, अप्पेगइयाओ तज्जेमाणीओ, तालेमाणीओ निच्छुहंति ।

तत्पश्चात् जब विदेहराजवर कन्या मल्ली की [illegible] ने चोक्षा की यह हालत देखी तो उन्होंने [illegible] करने लगीं, निन्दा करने लगीं, खिंसा [illegible] करने लगीं, गर्हा—दोष प्रकट करने लगीं, [illegible], कितनीक मुँह मटकाने लगीं, कितनीक [illegible] उपहास करने लगीं, कितनीक [illegible] और [illegible] ने [illegible] देते हुए अन्तःपुर से बाहर निकाल दिया ।

चोक्खाए कंपिल्लपुरे आगमणं

२०९. तए णं सा चोक्खा मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए दास-चेडियाहिं हीलिज्जमाणी, निंदिज्जमाणी, खिंसिज्जमाणी, गरहिज्जमाणी, आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणी, मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नयाए पओसमावज्जइ, भिसियं गेण्हइ, गेण्हित्ता कन्नंतेउराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता मिहिलाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता, परिव्वाइया-संपरिवुडा जेणेव पंचाल-जणवए, जेणेव कंपिल्लपुरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, बहूणं राईसर-जाव-सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पण्णवेमाणी, परूवेमाणी, उवदंसेमाणी विहरइ ।

चोक्षा का कंपिलपुर में आगमन—

२०९. [illegible]

२१०. तए णं से जियसत्तू अन्नया कयाइ अंतो अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ । तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया-संपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रन्नो

२१०. [illegible]

भवणे जेणेव, जियसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जियसत्तुं जएणं विजएणं वद्धावेइ।

तए णं से जियसत्तू चोक्खं परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता चोक्खं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता आसणेणं उवनिमंतेइ।

तए णं सा चोक्खा उदग-परिफासियाए दब्भोवरि पच्चत्थुयाए भिसियाए निविसइ, निविसित्ता जियसत्तुं रायं रज्जे य, रट्ठे य, कोसे य, कोट्ठागारे य, बले य, वाहणे य, पुरे य, अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ।

तए णं सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाण-धम्मं च, सोय-धम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पण्णवेमाणी, परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।

चोक्खा कहिओ अगडदद्दुर दिट्ठंतो—

२११. तए णं जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जाय-विम्हए चोक्खं एवं वयासी—

'तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर-जाव-सण्णिवेसंसि आहिंडसि, बहूण य राईसर-सत्थवाह-प्पभिईणं गिहाइं-अणुप्पविससि, तं अत्थि याइं ते कस्सइ रण्णो वा, ईसरस्स वा कहिंचि एरिसए ओरोहे दिट्ठ-पुव्वे, जारिसए णं इमे मम ओरोहे ?'

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुणा एवं वुत्ता समाणी ईसिं विहसियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

'सरिसए णं तुमं देवाणुप्पिया ! तस्स अगड-दद्दुरस्स।

'के णं देवाणुप्पिए ! से अगड-दद्दुरे ?'

"जियसत्तू ! से जहा-नामए अगड-दद्दुरे सिया। णं से तत्थ जाए, तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा, तलागं वा, दहं वा, सरं वा, सागरं वा अपासमाणे चेवं मण्णइ—"अयं चेव अगडे वा, तलागे वा, दहे वा, सरे वा, सागरे वा।"

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए।

तए णं से कूव-दद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी—"से के तुमं देवाणुप्पिया ! कत्तो वा इह हव्वमागए ?"

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूव-दद्दुरं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सामुद्दए दद्दुरे।"

जहां जितशत्रु राजा था, वहां आई, वहाँ आकर भीतर प्रविष्ट हुई, प्रवेश कर जय-विजय शब्दों से जितशत्रु को बधाया।

तब जितशत्रु ने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा, देखकर सिंहासन से उठा, उठकर चोक्खा का सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके आसन पर बैठने का निमत्रण दिया।

तदनन्तर चोक्खा ने जल से भूमि को सींचा, दूर्वासन को बिछाया, और फिर आसन पर बैठ गई, बैठकर जितशत्रु राजा से राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, सेना, वाहन, नगर और अन्तः-पुर की कुशल-क्षेम पूछी।

इसके बाद चोक्खा ने जितशत्रु राजा को दानधर्म, शौच-धर्म, तीर्थाभिषेक धर्म का कथन किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, उपदेश दिया।

चोक्खा कथित अगड़ दर्दुर दृष्टान्त—

२११. इसके बाद अपने अन्तःपुर से हर्षोन्मत्त हुए जितशत्रु ने चोक्खा से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिये ! तुम बहुत से ग्राम-आकर-यावत्-सन्निवेशों में परिभ्रमण करती हो, अनेकों राजा, ईश्वर, सार्थवाह आदि के गृहों में प्रवेश करती हो, तो किसी राजा का अथवा ईश्वर का अथवा अन्य किसी का ऐसा अन्तःपुर पूर्व में देखा है, जैसा कि मेरा यह अन्तःपुर है ?'

तब वह चोक्खा परिव्राजिका जितशत्रु की इस बात को सुन कर कुछ मुस्कराई, मुस्कराकर इस प्रकार बोली—

'हे देवानुप्रिय ! तुम तो अगड़ दर्दुर (कूपमंडूक) के समान हो।'

'हे देवानुप्रिये ! अगड़ दर्दुर के समान कैसे ? अथवा कूप-मंडूक कैसा होता है ?'

'हे जितशत्रु ! (मैं तुम्हें इसका अर्थ समझाती हूँ कि) जैसे कोई एक कुए का मेंढक था, जो कि उसी में उत्पन्न हुआ था, उसी में पल-पुसकर बड़ा हुआ, वह जैसे अपने कुए के सिवाय और किसी कुए को, तालाव को, सरोवर को, द्रह को, समुद्र को नहीं देखने के कारण यही मानता है कि मेरा यही कुआ, तालाव है, द्रह है, सरोवर है अथवा समुद्र है, इसके सिवाय और दूसरा कुछ भी नहीं है।'

इसके बाद उस कुए में एक समुद्रवासी मेंढक आया।

तब उस कुए के मेंढक ने समुद्र के मेंढक से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? और यहाँ कहां से आये हो ?'

तब वह समुद्र का मेंढक उस कुए के मेंढक से इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेंढक हूँ।'

करेंति करेत्ता मिहिलं रायहाणिं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव कुम्भए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पत्तेयं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु साणं-साणं राईणं वयणाइं निवेदेंति।

में प्रत्येक ने अपने-अपने स्कंधावार (तम्बू गाड़कर ठहरने योग्य स्थान) बनाये, बनाकर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ कुम्भ राजा था वहाँ आये, आकर प्रत्येक ने हाथ जोड़ अंजलि कर नतमस्तक हो अपने-अपने राजा के संदेश का निवेदन किया।

कुम्भएण दूयाणं असक्कारे—

२१५. तए णं से कुम्भए तेसिं दूयाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते, रुट्ठे, कुविए, चंडिक्किए, मिसिमिसेमाणे, तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी—

'न देमि णं अहं तुब्भं मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं' ति कट्टु ते छप्पि दूए असक्कारिय, असम्माणिय, अवद्दारेणं निच्छुभावेइ। तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया कुम्भएणं रण्णा असक्कारिया, असम्माणिया अवद्दारेणं निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा-सगा जणवया, जेणेव सयाइं-सयाइं नगराइं, जेणेव सया-सया रायाणो, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

'एवं खलु सामी! अम्हे जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमग-समगं चेव जेणेव मिहिला, तेणेव उवागया,-जाव-अवद्दारेणं निच्छुभावेइ। तं न देइ णं सामी! कुम्भए मल्लिं विदेह-राय-वर-कन्नं। साणं-साणं राईणं एयमट्ठं निवेदेंति।

कुम्भ द्वारा दूतों का असत्कार—

२१५. तत्पश्चात् उन दूतों के संदेशों को सुनकर कुम्भ क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंडिका रूप हो गया और क्रोध से मिसमिसाते हुए ललाट में तीन सल डालकर, भृकुटि को टेढ़ी करके इस प्रकार बोला—

'मैं तुममें से किसी को भी विदेहराजवरकन्या मल्लि को नहीं दूंगा'—ऐसा कहकर उन छहों दूतों का असत्कार कर, असम्मानकर, पीछे के द्वार से निकाल दिया, (इसके बाद) कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और पिछले द्वार से निष्कासित जितशत्रु आदि छहों राजाओं के दूत जहाँ-जहाँ अपने जनपद थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, जहाँ अपने-अपने राजा थे वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ और अंजलिपूर्वक नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

'हे स्वामिन्! हम जितशत्रु आदि छहों राजाओं के दूत एक ही समय में जहाँ मिथिला थी वहाँ पहुँचे—यावत्—अपद्वार (पिछले द्वार) से निकाल दिये गये। तो 'हे स्वामिन्! कुम्भ विदेहराज वरकन्या मल्लि को नहीं देगा'—अपने-अपने राजा से यह वृत्तान्त निवेदन किया।

जियसत्तु-पामोक्खाणं कुम्भएणं जुज्झं—

२१६. तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म आसुरुत्ता, रुट्ठा, कुविया, चंडिक्किया, मिसिमिसेमाणा, अण्णमण्णस्स दूय-संपेसणं करेंति, करेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमग-समगं चेव मिहिला तेणेव उवागया - जाव-अवद्दारेणं निच्छूढा। तं सेयं खलु देवाणुप्पियां! अम्हं कुम्भगस्स जत्तं गेण्हित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ण्हाया, सण्णद्धा हत्थि-खंध-वर-गया, सकोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेयं-वर-चामराहिं वीइज्जमाणा, महया हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपुरिवुडा, सव्विड्ढीए - जाव - दुंदुभि-नाइय-रवेणं सएहिंतो - सएहिंतो नगरेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता एगयओ मिलायंति, जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

जितशत्रु आदि का कुम्भ से युद्ध—

२१६. तदनन्तर वे जितशत्रु आदि छहों राजा उन दूतों के वृत्तान्त को सुनकर और विचारकर एकदम क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंडिका रूप हो उठे, क्रोधाभिभूत होकर मिसमिसाते हुए एक-दूसरे के पास अपने दूतों को भेजते हैं, भेजकर यह सन्देश कहलाया—

'हे देवानुप्रिय! हम छहों राजाओं के दूत एक साथ जहाँ मिथिला थी, वहाँ पहुँचे—यावत्—अपद्वार (पिछले द्वार) से निकाल दिये गये। अतएव हे देवानुप्रिय! अब हमें कुम्भ के साथ युद्ध करना योग्य है,' इस प्रकार कहकर एक-दूसरे के विचार को सुनकर निश्चय किया, निश्चय करके स्नान किया, शस्त्रसज्जित होकर हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ हुए, कोरंट पुष्प की माला वाला छत्र धारण किया, श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोरे जाने लगे, बड़े-बड़े हाथी, घोड़ों, रथों और प्रवर योद्धाओं से शोभित चतुरंगिणी सेना से परावृत होकर सर्व ऋद्धि के साथ—यावत्—दुन्दुभिनाद की ध्वनि सहित अपने-अपने नगरों से निकलते हैं, निकलकर एक स्थान पर एकत्रित होते हैं और मिलकर जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ जाने के लिए तत्पर हुए।

'एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेत्ता चिट्ठामो ।'

'हे देवानुप्रिये ! इस अशुभ गंध से अभिभूत होकर घबराकर अपने अपने उत्तरीय से मुख को ढककर विमुख हो गये हैं ।'

२२४. तए णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना ते जियसत्तु-पामोक्खे एवं वयासी—

२२४. उनकी इस बात को सुनने के पश्चात् विदेहराजवर-कन्या मल्लि ने उन जितशत्रु प्रभृति से इस प्रकार कहा—

'जइ ता देवाणुप्पिया ! इमीसे कणगमईए, मत्थय-छिड्डाए, पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए-कल्लाकल्लिं ताओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे-पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोग्गल-परिणामे, इमस्स पुण ओरालिय-सरीरस्स, खेलासवस्स, वंतासवस्स, पित्तासवस्स, सुक्कासवस्स, सोणिय-पूयासवस्स, दुरूव-ऊसास-नीसासस्स, दुरूव-मुत्त-पूइय-पुरीस-पुण्णस्स, सडण-पडण-छेयण-विद्धंसण-धम्मस्स केरिसए य परिणामे भविस्सइ ? तं मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! माणुस्सएसु काम-भोगेसु सज्जह, रज्जह, गिज्झह, मुज्झह, अज्झोववज्जह । एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे, अवर-विदेह-वासे, सलिलावतिंसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए, महब्बल-पामोक्खा सत्त वि य बाल-वयंसया रायाणो होत्था—सहजाया-जाव-पव्वइया ।

'यदि ऐसा है तो हे देवानुप्रियो ! जब सछिद्र मस्तकवाली और जो पद्मोत्पल से ढकी ऐसी कनकमयी प्रतिमा में प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार में से डाला गया एक-एक ग्रास इस प्रकार का मनोविकृतिजनक अशुभ पुद्गल परिणामस्वरूप हो गया तो फिर कफ के आश्रयभूत, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित, पीव के आश्रयभूत एवं जिसके श्वास-उश्वास दुरूप-अनिष्टतर गंधवाले हैं तथा जो सदा जुगुप्सा—घृणाजनक मूत्र, पीव, पुरीष (विष्ठा, मल) से भरा रहता है, सड़न-गलन-विध्वंसन धर्म वाले इस औदारिक शरीर का परिणमन कैसा होगा ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग इस मनुष्य संबंधी कामभोगों में फँसो मत, राग मत करो, गृद्धि मत करो, मोहित मत होओ और उनका विचार भी मत करो । हे देवानुप्रियो ! तुम और मैं इससे पहले के तीसरे भव में पश्चिम विदेह क्षेत्र में, सलिलावती नामक विजय में, वीतशोका नामक राजधानी में महाबल प्रभृति सात बालवयस्क-मित्र—राजा थे—जो एक साथ जन्मे थे—यावत्—दीक्षित हुए थे ।

२२५. तए णं अहं देवाणुप्पिया ! इमेणं कारणेणं इत्थी-नाम-गोयं कम्मं निव्वत्तेमि—जइ णं तुब्भे चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरह, तए णं अहं छट्ठं उपसंपज्जित्ता णं विहरामि सेसं तहेव सव्वं । तए णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! काल-मासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा । तत्थ णं तुब्भं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई । तए णं तुब्भे ताओ देव-लोगाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे-जाव-साइं-साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह । तए णं अहं देवाणुप्पिया ! ताओ देव-लोगाओ आउक्खएणं-जाव-दारियत्ताए पच्चायाया ।

२२५. तदनन्तर हे देवानुप्रियो ! उस भव में मैंने इस कारण स्त्री नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया था कि यदि तुम लोग चतुर्थभक्त तप करते तो मैं षष्ठभक्त तप की आराधना करता हुआ विचरण करता था, शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् । इसके बाद देवानुप्रियो ! आप लोग यथासमय काल करके जयन्त विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ तुम्हारी कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई । तत्पश्चात् आप उस देवलोक से च्यवित होकर इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में—यावत्—अपना-अपना राज्य शासन करते हुए विचर रहे हो । हे देवानुप्रिय ! तत्पश्चात् मैं भी उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर—यावत्—कन्यारूप में उत्पन्न हुआ ।

गाहा—

किं थ तयं पम्हुट्ठं, जं थ तया भो ! जयंत-पवरम्मि ।
वुत्था समय-णिबद्धं देवा तं संभरह जाइं ॥

गाथार्थ—क्या आप लोग उस पूर्वभव को भूल गये हो ? जब हम सब जयंत नामक विमान में वास करते थे । समय आने पर हम परस्पर एक दूसरे को प्रतिबोधित करेंगे, वहाँ इस प्रकार की प्रतिज्ञा से बद्ध हुए थे । अतः आप उस देवभव का स्मरण करो ।

जियसत्तु पामोक्खाणं जाइसरणं—

जितशत्रु आदि को जातिस्मरण—

२२६. तए णं तेसिं जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेणं अज्झवसाणेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं,

२२६. इसके बाद विदेहराज वरकन्या मल्लि से इस पूर्वभव के वृत्तान्त को सुन और समझकर शुभ परिणामों से, प्रशस्त अध्यवसायों से विशुद्ध लेश्याओं तथा तदावरण कर्मों के क्षयोप-

तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं, ईहापूहमग्गण-गवेसणं करेमाणाणं सण्णिजाइस्सरणे समुप्पण्णे, एयमट्ठं सम्मं अभिसमागच्छंति।

शम से, ईहा, अपोह, मार्गण और गवेषण करने से उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं को संज्ञी जीवों को उत्पन्न होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उन्होंने इस बात को सम्यक् प्रकार से समझ लिया।

२२७. तए णं मल्ली अरहा जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्ण-जाइसरणे जाणित्ता गब्भ-घराणं दाराइं विहाडावेइ।

२२७. तत्पश्चात् जब मल्लि अर्हन्त ने यह जाना कि जितशत्रु आदि छहों राजाओं को जातिस्मरणज्ञान समुत्पन्न हो गया तो गर्भगृह के द्वार खुलवा दिये।

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मल्ली अरहा, तेणेव उवागच्छंति। तए णं महब्बल-पामोक्खा सत्त वि य बाल-वयंसा एगयओ अभिसमण्णागया वि होत्था।

तब वे जितशत्रु आदि छहों राजा जहाँ मल्लि अर्हन्त थे, वहाँ आये। उस समय तब महाबल प्रभृति वे सातों बालमित्र एक स्थान पर एकत्रित हो गये।

मल्लीए जियसत्तुपामोक्खाणं रण्णं य पव्वज्जासंकप्पो—

मल्लि और जितशत्रु आदि राजाओं का प्रव्रज्या संकल्प—

२२८. तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी—

'एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! संसार-भउव्विग्गा-जाव-पव्वयामि। तं तुब्भे णं किं करेह? किं ववसह? किं वा भे हियसामत्थे?'

२२८. इसके पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! संसार से उद्विग्न मैं तो—यावत्—प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ। तो आप क्या करेंगे? क्या कैसे रहेंगे? क्या आप में अपना हित करने की सामर्थ्य है?'

तए णं जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लिं अरहं एवं वयासी—

तब जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्लि अर्हन्त से इस प्रकार कहा—

'जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिए! संसार-भउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, अम्हं णं देवाणुप्पिए! के अण्णे आलंबणे वा, आहारे वा, पडिबंधे वा? जह चेव णं देवाणुप्पिया तुब्भे अम्हं इओ तच्चे भवग्गहणे बहूसु कज्जेसु य मेढी पमाणं-जाव-धम्म-धुरा होत्था, तह चेव णं देवाणुप्पिया इण्हिं पि-जाव-धम्म-धुरा भविस्सह। अम्हे वि णं देवाणुप्पिए! संसार-भउव्विग्गा,—जाव-भीया जम्मण-मरणाणं देवाणुप्पिया णं सद्धिं मुण्डा भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामो।'

'हे देवानुप्रिये! यदि संसार भय से उद्विग्न होकर—यावत्—आप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हैं तो हे देवानुप्रिय! फिर हमारे लिये अन्य दूसरा कौन अवलंबन अथवा आधार अथवा प्रतिबंध होगा? हे देवानुप्रिये! जैसे आज से पूर्व तीसरे भव में अनेक कार्यों में आप मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत—यावत्—धर्मधुरी—धर्मोपदेशक—रूप थीं, उसी प्रकार हे देवानुप्रिये! इस भव में भी—यावत्—धर्मधुरीण होवें। हे देवानुप्रिय! संसार से उद्विग्न जन्म-मरण से भयभीत हम भी देवानुप्रिय के साथ मुंडित होकर गृहवास त्यागकर अनागारिक प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे।'

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी—

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने जितशत्रु आदि छहों राजाओं से इस प्रकार कहा—

'जइ णं तुब्भे संसार-भउव्विग्गा-जाव-मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सएहिं-सएहिं रज्जेहिं जेट्ठ-पुत्ते रज्जे ठावेह, ठावेत्ता पुरिस-सहस्स-वाहिणीओ सीयाओ दुरुहह दुरुढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह।'

'यदि आप भी संसार-भय से उद्विग्न हैं—यावत्—मेरे साथ दीक्षित होने के आकांक्षी हैं तो हे देवानुप्रियो! आप अपने-अपने राज्यों में जाकर ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करो, प्रतिष्ठित करके पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं (पालकी) पर आरूढ़ होकर मेरे पास आओ।'

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लिस्स अरहओ एयमट्ठं पडिसुणेंति।

तब उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्लि अर्हन्त की इस बात को—विचार को स्वीकार किया।

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो गहाय जेणेव कुम्भए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुम्भगस्स पाएसु पाडेइ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को साथ लेकर जहाँ कुम्भ था, वहाँ आई, आकर कुम्भ के चरणों में नमस्कार करना करवाई।

तए णं कुम्भए ते जियसत्तु-पामोक्खे विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तब कुम्भ ने उन जितशत्रु आदि का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन से तथा पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके विदा किया।

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो कुम्भएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं-साइं रज्जाइं जेणेव साइं-साइं नगराइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगाइं-सगाइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।

इसके बाद कुम्भराजा के द्वारा विदा किये गये वे जितशत्रु आदि छहों राजा जहाँ अपने-अपने राज्य थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर अपने-अपने राज्यों का शासन करते हुए विचरने लगे।

मल्लीए निक्खमणमहोच्छवो—

२२९. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरावसाणे निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्कस्स आसणं चलइ। तए णं से सक्के, देविंदे, देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता मल्लिं अरहं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे समुप्पज्जित्था—

'एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए नयरीए, कुम्भगस्स रण्णो धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ। तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं अरहंताणं भगवंताणं निक्खममाणाणं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलइत्तए, तं जहा—संगहणी-गाहा—

तिण्णेव य कोडि-सया, अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असिइं च सय-सहस्सा, इंदा दलयंति अरहाणं ॥१॥

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता वेसमणं एवं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए रायहाणीए, कुम्भगस्स रण्णो धूया, पभावईए देवीए अत्तया मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ-जाव-इंदा दलयंति अरहाणं। तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवं दीवं, भारहं वासं, मिहिलं रायहाणिं, कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि इमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहराहि, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।'

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदे, देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे करयल-परिग्गहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु—'एवं देवो! तहत्ति' आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जंभए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

मल्लि का निष्क्रमण महोत्सव—

२२९. तत्पश्चात् एक वर्ष के बाद मैं निष्क्रमण करूंगी, दीक्षा लूंगी इस प्रकार मल्लि अर्हन्त ने मन में निश्चय किया।

उस काल, उस समय शक्र का आसन चलायमान हुआ। तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र अपने आसन को चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त किया, प्रयुक्त करके अवधिज्ञान से मल्लि अर्हन्त को देखा, देखकर उसके मन में इस प्रकार का प्रशस्त संकल्प, विचार उत्पन्न हुआ—

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में, मिथिला नगरी में कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावतीदेवी की आत्मजा मल्लि अर्हन्त इस प्रकार का मन में विचार कर रही हैं कि मैं दीक्षा लूँगी। तो अतीत, वर्तमान और अनागत शक्रों का, देवेन्द्रों तथा देवराजाओं का यह परंपरागत आचार है कि दीक्षा के लिये समुद्यत अर्हन्त भगवन्तों के घर पर इतने परिमाण में अर्थ संपत्ति प्रदान करें, यथा—

(गाथार्थ)—इन्द्र तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख द्रव्य (स्वर्णमुद्रा) अर्हन्त को प्रदान करते हैं।'

ऐसा विचार किया, विचार कर वैश्रमणदेव (कुबेर) को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावतीदेवी की आत्मजा मल्लि अरिहन्त ने दीक्षा लूंगी इस प्रकार का मन में विचार कर लिया है—यावत्—इन्द्र अर्हन्तों को देते हैं। तो हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुम्भराजा के भवन में इस परिमाण में अर्थ संपत्ति का संहरण करो—यह संपत्ति पहुँचाओ, संहरण करके शीघ्र ही मेरी आज्ञा को वापस सौंपो अर्थात् आज्ञापूर्ति की मुझे सूचना दो।'

इसके बाद उस वैश्रमणदेव ने देवेन्द्र देवराज शक्र की इस बात को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो दोनों हाथों को जोड़ सिर झुकाकर और मस्तक पर अंजलि करके–हे देव! तथास्तु—ऐसा ही होगा, विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके जृम्भक देवों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवं दीवं, भारहं वासं, मिहिलं रायहाणिं, कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णि कोडिसया अट्ठासीइं च कोडीओ असीइं सय-सहस्साइं-इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं साहरह, साहरित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।'

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुम्भराजा के भवन में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सीलाख—इस प्रकार की अर्थ संपत्ति का संहरण करो—इतनी संपत्ति वहाँ पहुँचाओ, संहरण करके मेरी आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ ।'

२३०. तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा-जाव-पडिसुणेत्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, -जाव-उत्तर-वेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-देवगईए वीईवयमाणा-वीईवयमाणा, जेणेव जंबुद्दीवे, दीवे, भारहे वासे, जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुम्भगस्स रण्णो भवणे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णि कोडिसया-जाव-साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

२३०. तत्पश्चात् वे जृम्भकदेव वैश्रमणदेव के इस वृत्त को सुनकर—यावत्—उत्तर पूर्व दिशा भाग में गये, जाकर वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन प्रमाण का दंड निकाला—यावत्—उत्तर वैक्रियरूपों की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके फिर वे उत्कृष्ट—यावत्—देवगति से चलते हुए जहाँ जम्बूद्वीप था, भरतक्षेत्र था, जहाँ मिथिला राजधानी थी, जहाँ कुम्भराजा का भवन था, वहाँ आये, वहाँ आकर कुम्भराजा के भवन में तीन सौ करोड़—यावत्—संहरण किया, संहरण करके जहाँ वैश्रमणदेव था, वहाँ आये, आकर दोनों हाथों को जोड़ नतमस्तक हो मस्तक पर अंजलि करके उसकी आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे, देवराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तब वह वैश्रमणदेव जहाँ शक्र देवेन्द्र देवराज था, वहाँ आया आकर दोनों करतलों को जोड़—यावत्—उसकी आज्ञा को प्रत्यावर्तित किया ।

२३१. तए णं मल्ली अरहा कल्लाकल्लिं-जाव-मागहओ पायरासो त्ति बहूणं सणाहाण य, अणाहाण य, पंथियाण य, पहियाण य, करोडियाण य, कप्पडियाण य, एगमेगं हिरण्ण-कोडिं अट्ठ य अणूणाइं सय-सहस्साइं-इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं दलयइ । तए णं से कुम्भए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्थ-तत्थ, तहिं-तहिं, देसे-देसे बहूओ महाणस-सालाओ करेइ । तत्थ णं बहवे मणुया दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेंति, उवक्खडेंत्ता । जे जहा आगच्छंति, तं जहा—पंथिया वा, पहिया वा, करोडिया वा, कप्पडिया वा, पासंडत्था वा, गिहत्था वा, तस्स य तहा आसत्थस्स, वीसत्थस्स, सुहासण-वर-गयस्स तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं परिभाएमाणा, परिवेसेमाणा विहरंति ।

२३१. तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त प्रतिदिन—यावत्—मागधिक-मगध देश के प्रातराश (प्रातः से लेकर दोपहर का भोजनकाल) के समय तक बहुत से सनाथों को, अनाथों को, पंथिकों (भिखमंगों) को, राहगीरों को, करोटिकों (खप्परधारियों) को और कार्पाटिकों (कंथा, कोपीन, कषायवस्त्रधारियों) को एक करोड़ आठ लाख—इस प्रकार अर्थसंपत्ति देती हैं । इनके बाद कुम्भराजा ने मिथिला राजधानी में जहाँ तहाँ अर्थात् बहुत से स्थानों में भोजनशालायें खुलवा दीं । उन भोजनशालाओं में बहुत से मनुष्य जिनको भोजन और वेतन मिलता था, प्रतिदिन विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे । भोजन बनाकर वहाँ जो जैसे आते जैसे कि पंथिक अथवा पथिक अथवा करोटिक अथवा कार्पाटिक अथवा पाखंडी अथवा गृहस्थ उन्हें आश्वासन देकर, विश्राम देकर, सुखद आसन पर बैठाकर वह विपुल अशन पान, खादिम, स्वादिम भोजन दिया जाता था, परोसा जाता था ।

तए णं मिहिलाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहु-जणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि सव्व-काम गुणियं, किमिच्छियं, विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं बहूणं समणाण य, माहणाण य, सणाहाण य, अणाहाण य, पंथियाण

तत्पश्चात् मिथिला नगरी में शृंगाटक (चौक), त्रिक (तिराहा), चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग, मार्ग आदि स्थानों पर जहाँ भी अनेक व्यक्ति-लोग मिलते, वे एक दूसरे से कहने लगते—हे देवानुप्रिय ! कुम्भराजा के भवन में सर्वकामगुणित अर्थात् सब प्रकार से सुखकारी और रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से सुन्दर मनोज्ञ सुखकारी विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन बहुत से श्रमणों को, माहणों को, सनाथों को, अनाथों

य, पहियाण य, करोडियाण य, कप्पडियाण य, परिभाइज्जइ, परिवेसिज्जइ। संगहणी-गाहा—

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छियं दिज्जए बहुविहीयं।
सुर-असुर-देव-दाणव-नरिंद-महियाण निक्खमणे ॥१॥

पंथिकों को, पथिकों को, करोटिकों को, कार्पाटिकों को खिलाया जाता है, दिया जाता है।

(गाथार्थ)—सुर, असुर, देव, दानव और नरेन्द्रों द्वारा पूजित तीर्थंकरों के अभिनिष्क्रमण के अवसर पर बारंबार यह घोषणा कराई जाती है कि मांगो, जो जिसकी इच्छा हो वह मांगो, इस प्रकार किमिच्छक (इच्छानुसार) दान दिया जाता है ॥१॥

२३२. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिण्णि कोडि-सया अट्ठासीइं च कोडीओ असीइं च सय-सहस्साइं-इमेयारूवं अत्थ-संपयाणं दलइत्ता निक्खमामि त्ति मणं पहारेइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे, रिट्ठे विमाण-पत्थडे, सएहिं-सएहिं विमाणेहिं, सएहिं-सएहिं पासाय-वडिंसएहिं पत्तेयं-पत्तेयं चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्ख-देव-साहस्सीहिं, अण्णेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महायाऽऽहय नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-प्पवाइय-रवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, तं जहा—

संगहणी-गाहा—

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥१॥

२३२. तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने वर्षीदान के रूप में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख जितनी अर्थ संपदा देकर मैं स्वीकार करूँ, यह मन में निश्चय किया।

उस काल उस समय में ब्रह्मलोककल्प के अरिष्ट विमान प्रतर (मंजिल, पाथड़े) में निवास करने वाले लोकान्तिक देव अपने-अपने विमानों में अपने-अपने प्रासादावतंसकों में, प्रत्येक अपने-अपने चार हजार सामानिक देवों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों और दूसरे भी अनेक लोकान्तिक देवों तथा देवियों से परिवृत होकर जोर-जोर से बजाये जाने वाले नृत्य, गीत, वाद्य, तंत्री, ताल, त्रुटित, घन, मृदंग, पटह, नगारों आदि की ध्वनियों के साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए विचरते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(गाथार्थ) १—सारस्वत २—आदित्य ३—वन्हि ४—वरुण ५—गर्दतोय ६—तुषित ७—अव्याबाध ८—आग्नेय—ये आठों लोकान्तिक अरिष्ट प्रतर मे रहते हैं।

२३३. तए णं तेसिं लोगंतियाणं देवाणं पत्तेयं-पत्तेयं आसणाइं चलंति तहेव-जाव-तं जीयमेयं लोगंतियाणं देवाणं अरहंताण भगवंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करित्तए त्ति। तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमो त्ति कट्टु एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, एवं-जहा-जंभगा-जाव-जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुम्भगस्स रण्णो भवणे, जेणेव मल्ली अरहा, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणियाइं दसद्ध-वण्णाइं वत्थाइं पवर-परिहिया, करयल-परिग्गहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं, मणामाहिं, वग्गूहिं एवं वयासी—

'बुज्झाहि भगवं लोग-णाहा! पवत्तेहि धम्मीतत्थं, जीवाणं हिय-सुह-निस्सेयस-करं भविस्सइ' त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयंति, वइत्ता मल्लिं अरहं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।

२३३. तत्पश्चात् उन लोकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए इत्यादि पूर्ववत्—यावत्—अभिनिष्क्रमण के इच्छुक अरिहन्त भगवन्तों को संबोधित करना यह लोकान्तिक देवों का जीत कल्प है। अतएव हम जायें और मल्लि अर्हन्त को सम्बोधित करें, यह विचार किया, विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग में गये, जाकर वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन प्रमाण का दंड निकाला और शेष कथन जृम्भक देवों की तरह—यावत्—जहाँ मिथिला राजधानी, जहाँ कुम्भराजा का भवन, जहाँ मल्लि अर्हन्त, वहाँ आये, आकर घुंघरुओं से युक्त पंचरंगी वस्त्राभूषणों को धारण करके अन्तरिक्ष में अधर खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो अंजलि करके इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर स्वरों से इस प्रकार बोले—

"हे भगवन्! हे लोकनाथ! बोध पाओ, भव्य जीवों को सम्बोधित करो, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो जो जीवों को हित-सुख निःश्रेयस्कर होगा।" इस प्रकार कहकर दूसरी बार तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा, कहकर मल्लि अर्हंत की वंदना की, नमस्कार किया वंदना; नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये।

२३४. तए णं मल्ली अरहा तेहिं लोगंतिएहिं देवेहिं संबोहिए समाणे, जेणेव अम्मापियरो, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–

'इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।'

२३४. तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों द्वारा संबोधित हुए मल्लि अर्हन्त जहाँ माता पिता थे, वहाँ आये, आकर दोनों करतलों को जोड़ नतमस्तक हो अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोले—

'हे अम्ब, हे तात ! मैं आपकी आज्ञा लेकर मुंडित हो गृहवास त्यागकर अनगारत्व स्वीकार करने को इच्छुक हूं।'

इस बात को सुनकर उन्होंने कहा—'जैसा सुखकर प्रतीत हो वैसा करो, हे देवानुप्रिय विलम्ब मत करो।'

तए णं कुम्भए राया कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठ-सहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव-अट्ठ-सहस्सं भोमेज्जाणं कलसाणं अण्णं च महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह। ते वि-जाव-उवट्ठवेंति।

इसके बाद कुम्भराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक हजार आठ सुवर्ण कलशों—यावत्—एक हजार आठ मिट्टी के कलशों को तथा अन्य महार्थक, महर्घ, महापुरुषों के योग्य विपुल तीर्थंकर के अभिषेक योग्य सामग्री को शीघ्र ही उपस्थित करो।' वे भी—यावत्—उपस्थित करते हैं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे-जाव-अच्चुय-पज्जवसाणा आगया।

तए णं सक्के देविंदे, देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव-अण्णं च महत्थं, महग्घं, महरिह, विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह।' ते वि-जाव-उवट्ठवेंति। ते वि कलसा 'ते चेव कलसे' अणुपविट्ठा।

उस काल उस समय में चमरेन्द्र असुरेन्द्र यावत् अच्युत कल्प तक के इन्द्र अभिषेक महोत्सव करने के लिये आये।

तब वह शक्र देवेन्द्र, देवराज आभियोगिक देवों को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक हजार आठ स्वर्णकलशों यावत्–एक हजार आठ मिट्टी के कलशों को तथा अन्य महार्थक, महामूल्य वाले, महापुरुषों के लिए योग्य विपुल, तीर्थंकर के अभिषेक को उपयुक्त सामग्री उपस्थित करो। वे दिव्यकलश भी कुम्भराजा के द्वारा उपस्थित कलशों के साथ एक स्थान पर मिलाकर रख दिये गये।

तए णं से सक्के, देविंदे, देवराया, कुम्भए य राया मल्लिं अरहं सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहं निवेसेंति, अट्ठ-सहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव- तित्थयराभिसेयं अभिसिंचंति।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुम्भराजा ने मल्लि अर्हन्त को पूर्वाभिमुख करके सिंहासन पर बैठाया, बैठाकर एक हजार आठ सुवर्णमयी कलशों से—यावत्—तीर्थंकर का अभिषेक किया।

तए णं मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सब्भिंतर-बाहिरियं जाव-सव्वओ समंता आधावंति परिधावंति।

इस प्रकार जब मल्लि अर्हन्त का अभिषेक हो रहा था तो कितने ही देव मिथिला के अंदर-बाहर—यावत्—चारों ओर इधर-उधर दौड़ने लगे, फिरने लगे, उछल-कूद मचाने लगे।

२३५. तए णं कुम्भए राया दोच्चंपि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेइ, -जाव-सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मणोरमं सीयं उवट्ठवेह।' ते वि उवट्ठवेंति।

तए णं सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठ-जाव-मणोरमं सीयं उवट्ठवेह, ते वि-जाव-उवट्ठवेंति। सा वि सीया तं चेव सीयं अणुप्पविट्ठा।

२३५. इसके बाद कुम्भ राजा ने दूसरी बार उत्तराभिमुख करके मल्लि अर्हन्त को सिंहासन पर बैठाया—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मनोरमा शिबिका लाओ।' वे भी लाते हैं।

तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया, बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही अनेक सैकड़ों खंभों से सन्निविष्ट—यावत्—मनोरमा शिबिका लाओ।' वे भी—यावत्—लाते हैं। वह शिबिका भी उस शिबिका में समा गई।

तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव मणोरमा सीया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणीकरेमाणे मणोरमं सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

इसके बाद मल्लि अर्हन्त सिंहासन से उठी, उठकर जहाँ मनोरमा शिविका थी, वहाँ आई, आकर मनोरमा शिविका की प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान हुई ।

तए णं कुम्भए अट्ठारस सेणि-प्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया-जाव-सव्वालंकारविभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह ।' ते वि-जाव-परिवहंति ।

तब कुम्भ राजा ने अठारह श्रेणियों—प्रश्रेणियों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग स्नान करके—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्लि- कुमारी की शिविका वहन करो ।' वे भी—यावत्—वहन करते हैं ।

तए णं सक्के देविंदे देवराया मणोरमाए सीयाए दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, चमरे दाहिणिल्लं हेट्ठिल्लं, बली उत्तरिल्लं हेट्ठिल्लं, अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने मनोरमा शिविका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की, ईशानेन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपरी बाहा ग्रहण की, चमर ने दक्षिण तरफ की निचली, बली ने उत्तर तरफ की निचली बाहा ग्रहण की, शेष देवों ने यथायोग्य मनोरमा शिविका को वहन किया ।

संगहणी-गाहा—

पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं तोहट्ठ,रोम-कूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंद-सुरिंद-नागिंदा ॥१॥
चल-चवल-कुण्डल-धरा, सच्छंद-विउव्वियाभरण-धारी ।
देविंद-दाणविंदा, वहंति सीयं जिणिंदस्स ॥२॥

(गाथार्थ) हर्ष के कारण जिनके रोम कूप विकस्वर हो रहे हैं ऐसे मनुष्यों ने सर्वप्रथम शिविका को उठाया, उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र, नागेन्द्र शिविका को वहन करते है ॥१॥

चलायमान चपल कुण्डलों को धारण करने वाले, स्वेच्छानुसार विकुर्वीत आभूषणों को धारण करने वाले देवेन्द्र दानवेन्द्र जिनेन्द्र भगवान की शिविका वहन करते हैं ॥२॥

तए णं मल्लिस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरुढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ-मंगला पुरओ अहाणुपुव्वीयए संपत्थिया—एवं निग्गमो जहा जमालिस्स ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त जब मनोरमा शिविका में बैठ चुके तब उनके सामने अनुक्रम से यह आठ—आठ मंगल द्रव्य चलने लगे । जमाली के निर्गमन की तरह यहाँ भी वर्णन करना चाहिये ।

तए णं मल्लिस्स अरहओ निक्खममाणस्स अप्पेगइया देवा मिहिलं रायहाणिं अब्भिंतर-बहिरं आसियं संमज्जिय संमट्ठ-सुइ रत्थंतरावण-वीहियं करेंति-जाव-परिधावंति ॥

तत्पश्चात् जब मल्लि अर्हन्त का निष्क्रमण हो रहा था तब कितने ही देवों ने मिथिला राजधानी को अन्दर बाहर जल से सिंचित कर दिया, साफ कर दिया, चुना कलई आदि से पोत दिया—यावत्—वे इधर उधर दौड़-भाग, उछलकूद करने लगे ।

२३६. तए णं मल्ली अरहा जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव असोग-वर-पायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आभरणालंकारं ओमुयइ ।

तए णं पभावई हंस-लक्खणेणं पडसाडएणं आभारणलंकारं पडिच्छइ ।

२३६. इसके बाद मल्लि अर्हन्त जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ आये, वहाँ आकर शिविका से नीचे उतरे, आभरण अलंकारों को त्याग किया ।

तब प्रभावती से हँस लक्षण (हंस जैसे श्वेत) पटशाटक (वस्त्र) में आभरणालंकारों को रख लिया ।

तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ ।

तए णं सक्के, देविंदे, देवराया, मल्लिस्स केसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता खीरोदग-समुद्दे पक्खिवइ ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया—

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने मल्लि के केशों को ग्रहण किया ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र में प्रक्षिप्त कर दिया ।

तए णं मल्ली अरहा 'नमोत्थु णं सिद्धाणं' ति कट्टु समाइय-चरित्तं पडिवज्जइ । जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइय-चरित्तं पडिवज्जइ, तं समयं च णं देवाण माणुसाण य

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने 'सिद्धों को नमस्कार हो' यह कहकर सामायिक चारित्र स्वीकार किया । जिस समय मल्लि अर्हन्त ने सामायिक चारित्र स्वीकार किया, उस समय

पडिगया। कुम्भए समणोवासए-जाए-जाव-पडिगए, पभावई य। तए णं जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी—

'आलित्तए णं भंते ! लोए, पलित्तए णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्तए णं भंते ! लोए जराए, मरणेण य -जाव-पव्वइया-जाव-चोद्दसपुव्विणो। अणंते वर-नाण-दंसणे केवले समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा।

गई। कुम्भ श्रमणोपासक हुआ—यावत्—लौट गया, और प्रभावती श्रमणोपासिका हुई, वह भी लौट गई। तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं ने धर्म श्रवण कर और समझकर इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! यह लोक आलिप्त है, प्रलिप्त है, आलिप्त-प्रलिप्त है, जरा-मरण से व्याप्त है—यावत्—दीक्षित हो गये—यावत्—चौदह पूर्वों के ज्ञाता हुए। उत्तम अनन्त केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त करके बाद में वे सिद्ध हुए।

मल्लिजिणस्स सिस्स-संपदा—

२४०. तए णं मल्ली अरहा सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

मल्लिस्स णं अरहओ भिसग-पामोक्खा अट्ठावीसं गणा, अट्ठावी संगणहरा होत्था।

मल्लिस्स णं अरहओ चत्तालीसं समण-साहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपया होत्था, बंधुमइ-पामोक्खाओ पणपन्नं अज्जिया-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।

सावयाणं एगा सय-साहस्सी चुलसीइं सहस्सा, सावियाणं तण्णि सय-साहस्सीओ पण्णट्ठिं च सहस्सा, छस्सया, चोद्दसपुव्वीणं, वीसं सया ओहिनाणीणं, बत्तीसं सया केवल-नाणीणं, पणतीसं सया वेउव्वियाणं अट्ठ-सया मणपज्जव-नाणीणं चोद्दस-सया वाईणं, वीसं सया अणुत्तरोववाइयाणं।

मल्लिस्स णं अरहओ दुविहा अंतकर-भूमि होत्था, तं जहा—जुगंतकर-भूमी परियायंतकर-भूमी य-जाव-वीसइमाओ पुरिस-जुगाओ जुगंतकर-भूमी दुवास-परियाए अंतमकासी।

मल्लिजिन की शिष्य संपदा—

२४०. इसके बाद मल्लि अर्हन्त सहस्राम्रवन उद्यान से बाहर निकले, बाहर निकलकर जनपद में विहार करने लगे।

मल्लि अर्हन्त के भिषक आदि अट्ठाईस गण और अट्ठाईस गणधर थे।

मल्लि अर्हन्त की चवालीस हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण-संपदा थी। बंधुमती आदि पचपन हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका संपदा थी।

एक लाख चौरासी हजार श्रावकों की, तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाओं की, छहसौ चौदह पूर्वधारियों की, दो हजार अवधिज्ञानियों की, बत्तीस सौ केवल-ज्ञानियों की, पैंतीस सौ वैक्रिय लब्धिधारियों की, आठ सौ मन-पर्यवज्ञानियों की, चौदह सौ वादियों की, बीस सौ अनुत्तरोप-पातिकों की उत्कृष्ट शिष्यसंपदा थी।

मल्लि अर्हन्त की दो प्रकार की अन्तकर भूमि हुई यथा—युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि—यावत्—युगान्तकर भूमि बीस पुरुष युग प्रमाण हुई अर्थात् बीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की और पर्यायान्तकर भूमि का दो वर्ष के बाद अन्त हुआ अर्थात मल्लि अर्हन्त को केवलज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत होने पर भवपर्याय का अन्त करने वाले-मोक्ष जाने वाले साधु हुए यानी दो वर्ष बाद मोक्ष जाने का क्रम चालू हुआ।

मल्लिजिणस्स निव्वाणं—

२४१. मल्ली णं अरहा पणुवीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णेणं पियंगु-सामे, सम-चउरंस-संठाणे, वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणे मज्झदेसे, सुहंसुहेणं विहरित्ता जेणेव सम्मेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सम्मेय-सेल-सिहरे पाओवगमणं-णुवन्ने।

मल्ली णं अरहा एगं वास-सयं अगार-वासं, पणपण्णं वास-सहस्साइं वास-सयऊणाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, पणपण्णं वास-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, जे से गिम्हाणं पढमे मासे, दोच्चे पक्खे, चेत्तसुद्धे, तस्स णं चेत्त-सुद्धस्स चउत्थीए पक्खेणं, भरणीए नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अद्धरत्त-काल-समयंसि, पंचहिं

मल्लिजिन का निर्वाण—

२४१. मल्लि अर्हन्त पच्चीस धनुष ऊँचे थे, शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था, समचतुरस्र सस्थान एवं वज्रऋषभनाराच संहनन वाले थे, मध्यदेश में सुखपूर्वक विचरण करके जहाँ सम्मेदशिखर पर्वत था, वहाँ आये, वहाँ आकर सम्मेदशैल के शिखर पर पाद-पोगमन संथारा अंगीकार किया।

मल्लि अर्हन्त एक सौ वर्ष गृहवास में रहे, सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवली पर्याय पालकर, इस प्रकार पचपन हजार वर्ष की सर्व आयु का भोगकर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष, अर्थात चैत्र शुद्ध (सुदी, शुक्ल) पक्ष और उस चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर अर्धरात्रि के समय पाँच सौ आर्यिकाओं की

अज्जिया-सएहिं—अब्भितरियाए परिसाए, पंचहिं अणगार-सएहिं—बाहिरियाए परिसाए, मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं, वग्घारियपाणी खीणे वेयणिज्जे, आउए, नाम-गोए, सिद्धे। एवं परिनिव्वाण-महिमा भाणियव्वा जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए (उसहस्सतित्थयरस्स) नंदीसरे अट्ठाहियाओ पडिगयाओ।[1]

—णाया० सु० १, अ० ८, सु० ६४-७८

॥ इइ मल्लि-जिण चरियं ॥

आभ्यन्तर परिषद और पांच सौ अनगारों की बाह्य परिषद के साथ निर्जल एक मास के अनशन तपपूर्वक वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर सिद्ध हुए। इस प्रकार परिनिर्वाण महोत्सव का यहां वर्णन करना चाहिए जिस प्रकार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में ऋषभ तीर्थंकर के प्रकरण में किया गया है नन्दीश्वर द्वीप में आष्टान्हिक महोत्सव किया और बाद में अपने-अपने स्थान पर चले गये।

मल्लि-जिन-चरित्र समाप्त



४. अरिट्ठनेमि चरियं

कल्लाणगाणि—

२४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते होत्था, तं जहा—

चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, तहेव उक्खेवो-जाव-चित्ताहिं परिनिव्वुए[2]।

गब्भवक्कंती सुमिणदंसणाइं यं—

२४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे, सत्तमे पक्खे, कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसीपक्खेणं[3] अपराजियाओ महाविमाणाओ बत्तीसं सागरोवमट्ठितीयाओ[4] अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नगरे[5] समुद्दविजयस्स रन्नो[6] भारियाए सिवाए देवीए[7] पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि-जाव-चित्ताहिं गब्भत्ताए वक्कंते[8], सव्वं तहेव, सुमिण-दंसण-दविण-संहरणाइयं एत्थं भणियव्वं[9]॥

—कप्प० सु० १६२

जम्माइं—

२४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी[10] जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स

४. अरिष्टनेमि चरित्र

कल्याणक—

२४२. उस काल उस समय में अर्हंत अरिष्टनेमि पांच चित्रा-युक्त थे, यथा—

चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में आये—उसी प्रकार सब कथन करना—यावत्—चित्रा नक्षत्र में वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

गर्भावतरण और स्वप्नदर्शन आदि—

२४३. उस काल उस समय में अर्हंत अरिष्टनेमि जब वर्षा ऋतु का चतुर्थ मास, सातवां पक्ष अर्थात् कार्तिकमास के कृष्ण पक्ष का समय आया, तब कार्तिककृष्णा द्वादशी के दिन, बत्तीस सागरोपम की आयुष्य मर्यादा वाले अपराजित नामक महा-विमान से च्यवकर इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष के सोरियपुर नामक नगर में समुद्रविजय राजा की पत्नी शिवादेवी की कुक्षि में, रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धि-वेला में, अर्थात् मध्य-रात्रि में चित्रा नक्षत्र का योग होने पर गर्भ रूप में उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् का सभी वर्णन पूर्ववत् स्वप्नदर्शन धन-धान्य की वृद्धि इत्यादि के समान यहां पर भी कहना चाहिए।

जन्मादि—

२४४. उस काल उस समय में वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष, अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, उस

1. वृत्तिकृता उद्धृता निगमनगाथा—
उग्गतवसंजमवओ, पगिट्ठफलसाहगस्स वि जियस्स। धम्मविसए वि सुहुमा वि, होइ माया अणत्थाय ॥१॥
जह मल्लिस्स महाबल-भवम्मि तित्थयरनामबंधे वि। तव-विसय-थेवमाया जाया जुवइत्त-हेउत्ति ॥२॥

2. ठाणं० अ० ५ उ० १, सु० ४११।
3. कप्प० स्था० १४, गा० ६२।
4. कप्प० स्था० १६, गा० ५८।
5. कप्प० स्था० १८, गा० ६४।
6. कप्प० स्था० २०, गा० ६८।
7. कप्प० स्था० २६, गा० ६६।
8. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
9. कप्प० सु० १६३-६४।
10. कप्प० स्था० २१, गा० ८१।

पंचमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं-जाव-चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[1] अरोगा आरोगं पयाया। जम्मणं समुद्दविजया-भिलावेणं नेतव्वं-जाव[2] -तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥ —कप्प० सु० १६३

समय श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नौ मास—यावत्—चित्रा-नक्षत्र का योग होते ही आरोग्य युक्त माता ने आरोग्यपूर्वक अर्हत् अरिष्टनेमि को जन्म दिया। जन्म का वृत्तान्त 'समुद्र-विजय' इस पाठ के साथ पूर्ववत् समझ लेना चाहिये—यावत्—इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि हो इत्यादि सभी कथन करना चाहिये।

पव्वज्जा—

२४५. अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे-जाव-विणीए तिन्नि वाससयाइं कुमारे अगारवासमज्झे वसित्ता[3] णं पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-दायं दाइयाणं परिभाएत्ता[4]

प्रव्रज्या—

२४५. अर्हत अरिष्टनेमि दक्ष थे—यावत्—वे तीन सौ वर्ष तक कुमार अवस्था में गृहवास में रहे। उसके पश्चात् जिनके कहने का आचार है ऐसे लोकान्तिक देवों ने आकर के उनसे प्रार्थना की, इत्यादि पूर्व में जो कथन आया है वैसा ही यहाँ पर भी कहना—यावत्—अभिनिष्क्रमण के पूर्व एक वर्ष तक दान दिया।

जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावण-सुद्धस्स[5] छट्ठीपक्खेणं[6] पुव्वण्हकालसमयंसि[7] उत्तरकुराए सीयाए[8] सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे -जाव-बारवईए नगरीए[9] मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयउज्जाणे[10] तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावइ, सीयं ठावित्ता सीयाए पच्चोरुहइ, सीयाए पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं[11] चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[12] एगं देवदूसमादाय[13] एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।[14] —कप्प० सु० १६४

जब वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष, अर्थात् श्रावण-मास का शुक्ल पक्ष आया, उस श्रावणशुक्ला छट्ठ के दिन, पूर्वान्ह के समय जिनके पीछे देव, मानव और असुरों की मंडली चल रही है, ऐसे अरिष्टनेमि उत्तराकुरा नामक शिविका में बैठकर—यावत्—द्वारिका नगरी के मध्य-मध्य में होकर निकलते हैं। निकलकर जिस तरफ रैवत नामक उद्यान है, वहाँ आते हैं, आकर के उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, शिविका को खड़ी रखते हैं। खड़ी रखकर शिविका से उतरते हैं, उतर कर अपने ही हाथों से आभरण, मालायें और अलंकारों को उतारते हैं। उतार कर अपने ही हाथों से पंचमुष्टि लोच करते हैं, लोच करके, पानी रहित, षष्ठभक्त करके चित्रा नक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर हजार पुरुषों के साथ मुंडित होकर गृहवास को त्यागकर अनगारत्व को स्वीकार करते हैं।

केवलनाणं—

२४६. अरहा णं अरिट्ठनेमी चउप्पन्नं राइंदियाइं[15] निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे तं चेव सव्वं-जाव[16] -पणपन्नइमस्स

केवलज्ञान—

२४६. अर्हत् अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिन ध्यान में रहे। उन्होंने शरीर के लक्ष्य को छोड़ दिया। शारीरिक वासना त्याग

1. सप्त० स्था० २२, गा० ८२।
2. कप्प० सु० ९३-१०३।
3. कप्प० सु० ११०।
4. कप्प० सु० ११०-१११।
5. सप्त० स्था० ५९, गा० १४५।
6. सप्त० स्था० ५९, गा० १४७।
7. सप्त० स्था० ७१ गा० १५७।
8. सम० स० १५७, सु० १०।
9. सप्त० स्था० ६७, गा० १५६।
10. सम० स० १५७, सु० १४।
11. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
12. सप्त० स्था० ७२, ७३, गा० १५८।
13. सप्त० स्था० ६५, गा० १५३।
14. सप्त० स्था० ८४, गा० १७३।

राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे, जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे अस्सोयबहुले तस्स णं अस्सोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं[1] दिवसस्स पच्छिमे भागे[2] उप्पिं उज्जितसेलसिहरे[3] वडपायवस्स अहे[4] छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं[5] चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[6] झाणंतरियाए वट्टमाणस्स-जाव-अणंते अणुत्तरे-जाव-सव्वलोए सव्वजीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कप्प० सु० १६५

दी थी। इत्यादि पूर्व में जो वर्णन आ चुका है, यहाँ भी समझ लेना चाहिये, इस प्रकार रहते हुए जब वे चपन रात्रि-दिन में वर्तमान थे तब वर्षा ऋतु का तृतीय मास, पांचवां पक्ष, अर्थात् आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन अपराह्न में उज्जयन्त शैल शिखर पर बेंत के वृक्ष के नीचे पानी रहित अष्टम भक्त तप किये हुए थे, इसी समय चित्रा नक्षत्र का योग प्राप्त होने पर ध्यानान्तरिका में लीन रहे हुए उन्हें अनन्त—यावत्—उत्तम केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। अब वे समस्त लोक और सब जीवों के भावों को जानते-देखते हुए विचरने लगे।

गणहराइसंपया—

२४७. अरहो णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा गणहरा होत्था।

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स वरदत्त-पामोक्खाओ अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपया होत्था[7]।

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अज्ज-जक्खिणि-पामोक्खाओ चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया-संपया होत्था[8]।

अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नंद-पामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणत्तरिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था[9]।

अरहओ अरिट्ठनेमिस्स महासुव्वया-पामोक्खाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ छत्तीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था[10]।

२४८. अरहओ अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-जाव-होत्था[11]।

पण्णरस-सया ओहिनाणीणं[12], पन्नरस-सया केवलनाणीणं[13]।

२४९. पन्नरस-सया वेउव्वियाणं[14], दस-सया विउलमतीणं[15], अट्ठ-सया वाईणं[16]।

२५०. सोलस-सया अणुत्तरोववाइयाणं[16], पन्नरस समणसया सिद्धा, तीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं।

—कप्प० सु० १६६

गणधरादि संपदा—

२४७. अर्हत् अरिष्टनेमि के तीर्थ में अठारह गण और अठारह गणधर थे।

अर्हत अरिष्टनेमि के समुदाय में वरदत्त आदि अठारह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी।

अर्हत् अरिष्टनेमि के संघ में आर्या—यक्षिणी आदि चालीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-संपदा थी।

अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में 'नन्द' आदि एक लाख उनहत्तर हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी।

अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में महासुव्रता आदि तीन लाख छत्तीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका संपदा थी।

२४८. अर्हत् अरिष्टनेमि के संघ में जिन नहीं, किन्तु जिन के समान तथा सभी अक्षरों के संयोग को यथार्थ जानने वाले ऐसे चार सौ चौदह पूर्वधारियों की संपदा थी।

इसी प्रकार पन्द्रह सौ अवधिज्ञानियों की, पन्द्रह सौ केवलज्ञानियों की।

२४९. पन्द्रह सौ वैक्रियलब्धिधारियों की, एक हजार विपुलमति मनःपर्यवज्ञानियों की, आठ सौ वादकला में निपुणों की।

२५०. सोलह सौ अनुत्तरोपपातिकों की—उत्कृष्ट संपदा थी। श्रमण समुदाय में से पन्द्रह सौ श्रमण सिद्ध हुए, तीन हजार श्रमणियाँ सिद्ध हुईं।

अंतकडभूमी—

२५१. अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा—

१. जुगंतकडभूमी य, २. परियायंतकडभूमी य-जाव-अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, दुवासपरियाए अंतमकासी[1]।

—कप्प० सु० १६७।

अन्तकृत भूमि—

२५१. अर्हत् अरिष्टनेमि की अन्तकृतभूमिका दो प्रकार की थी, यथा—

१—युगान्तकरभूमि　२—पर्यायान्तकरभूमि—यावत्—युगान्तकरभूमि आठवें पुरुष तक चलती रही और दूसरी पर्यायान्तकर भूमि का दो वर्ष के पश्चात् अन्त आया।

कुमारवासाइं निव्वाणं य—

२५२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी तिन्नि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता[2], चउप्पन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता[3], देसूणाइं सत्त वाससयाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता[4], पडिपुन्नाइं सत्त वाससयाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता, एगं वाससहस्सं सव्वाउयं पालइत्ता[5], खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पि उज्जितसेलसिहरंसि पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सिद्धिं मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि नेसज्जिए कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ॥

—कप्प० सु० १६८

॥ इइ अरिट्ठनेमि चरियं ॥

कुमारवासादि और निर्वाण—

२५२. उस काल उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे। चौपन-रात-दिन छद्मस्थ पर्याय में रहे। कुछ कम सात सौ वर्ष तक केवलज्ञानी अवस्था में रहे। यों पूर्ण सात सौ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके और कुल एक हजार वर्ष का आयुष्य भोग करके, वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नामकर्म और गोत्रकर्म इन चारों अघाती कर्मों को पूर्णतया क्षीण करके, दुःषमा-सुषमा नामक अवसर्पिणी काल के बहुत से बीत जाने पर जब ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास का आठवां पक्ष, अर्थात् आसाढ़ मास का शुक्ल पक्ष आया, तब आसाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन उज्जित (उज्जयंत) शैल शिखर पर दूसरे पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ उन्होंने निर्जल मासिक तप किया। उस समय चित्रा नक्षत्र का योग आने पर रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धिवेला में, अर्थात् मध्यरात्रि को निषद्या में रहे हुए, (बैठे-बैठे) अर्हत्-अरिष्टनेमि कालगत हुए—यावत्—सभी दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए।

॥ अरिष्टनेमि चरित्र समाप्त ॥



५. पास-चरियं

कल्लाणगाणि—

२५३. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे होत्था, तं जहा—

१. विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते,

२. विसाहाहिं जाए,

३. विसाहाहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,

५. पार्श्व-चरित्र

कल्याणक—

२५३. उस काल उस समय पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्व पंच विशाखा वाले थे। यथा—

१—(पार्श्व अरहन्त) विशाखा नक्षत्र में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में आये।

२—विशाखा नक्षत्र में जन्म ग्रहण किया।

३—विशाखा नक्षत्र में मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगारत्व ग्रहण किया।

---

१ सप्त० स्था० १२३ गा० २६९।

२ (क) ठाणं० अ० ८, सु० ६२०।

(ख) सप्त० स्था० १५८, ५९ गा० ३२३, ३२४।

३ सप्त० स० ३० सु० २।

४ सम० स० ५४, सु० २।

५ सम० स० ७०० सु० ४।

६ सम० स० १०००, सु० ७।

४. विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने,

५. विसाहाहिं परिनिव्वुए[१]।

—कप्प० सु० १४८

४—विशाखा नक्षत्र में उन्हें अनन्त, उत्तमोत्तम, व्याघात-रहित, आवरणरहित, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए।

५—भगवान् पार्श्व विशाखा नक्षत्र में ही निर्वाण को प्राप्त हुए।

गब्भवक्कन्ती—

२५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं[२] पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठितीयाओ[३] अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए[४] आससेणस्स रन्नो वम्माए देवीए[५] पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[६] आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते।

—कप्प० सु० १४९

गर्भावतरण—

२५४. उस काल उस समय में पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व, जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष था, उस चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन बीस सागरोपम की आयु वाले प्राणत नामक कल्प से आयुष्य पूर्ण कर दिव्य आहार, दिव्य जन्म और दिव्य शरीर छूटते ही शीघ्र च्यवन करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की रानी वामादेवी की कुक्षि में, जब रात्रि का पूर्वभाग समाप्त हो रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उस सन्धिवेला में—मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र का योग होते ही गर्भ रूप में उत्पन्न हुए।

२५५. पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिण्णाणोवगए यावि होत्था। चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुए मि त्ति जाणइ, तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं-जाव-नियगं गिहं अणुप्पविट्ठा-जाव-सुहं सुहेणं त गब्भं परिवहइ[७]।

—कप्प० सु० १५०।

२५५. पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् तीन ज्ञान से युक्त थे। मैं यहाँ से च्युत होऊँगा यह जानते थे, वर्तमान में च्यवमान हूँ यह नहीं जानते थे और च्युत हो गया हूँ—यह जानते थे। यहाँ से लेकर स्वप्न दर्शन आदि से सम्बन्धित सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। —यावत्—माता अपने घर में प्रवेश करती है और सुखपूर्वक गर्भ को धारण करती है।

जम्माइं—

२५६. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले, तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[८] अरोगा अरोगं पयाया।

जन्मादि—

२५६. उस काल उस समय हेमन्त ऋतु का द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पौष मास के कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन, नौ मास पूर्ण होने पर और साढ़े सात रात-दिन व्यतीत होने पर रात्रि का पूर्व भाग समाप्त होने जा रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उस सन्धि-वेला में, अर्थात् मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र का योग होते ही, आरोग्य वाली माता ने आरोग्य-पूर्वक पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व नामक पुत्र को जन्म दिया।

जम्मणं सव्वं पासाभिलावेण भाणियव्वं—जाव-तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं।

—कप्प० सु० १५१।

जन्म सम्बन्धी अन्य समस्त विवरण पार्श्व के नामोल्लेख पूर्वक पूर्वोक्त वृत्तान्त के समान यहां भी समझना चाहिए—यावत्—इस कुमार का नाम 'पार्श्व' हो।

पव्वज्जा—

२५७. पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता[९] [illegible]

प्रव्रज्या—

२५७. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञा वाले थे, उत्तम रूप वाले, सर्व गुणों से युक्त भद्र व विनीत थे। [illegible]

१. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
२. [illegible] स्था० १८, गा० ३३।
३. [illegible] स्था० १२, गा० ५५, ५८।
४. [illegible] स्था० [illegible], गा० [illegible]।
५. (क) [illegible] स्था० ३६, [illegible] गा० [illegible]।

(ख) सम० सु० १५७, सु० [illegible]।
६. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
७. कप्प० सु० ३, [illegible]।
८. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११।
९. [illegible] सु० [illegible]।

पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-एवं वयासी–

जय जय नंदा, जय जय भद्दा, भद्दं ते—जाव-जय जय सद्दं पउंजंति ।

—कप्प० सु० १५२

२५८. पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए तं चेव सव्वं-जाव-दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले, तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकाल समयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव सव्वं । नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता, जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं[1] विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं[2] एगं देवदूसमायाय[3] तिहिं पुरससएहिं सद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए[4] ।

—कप्प० सु० १५३

वर्ष तक गृहवास में रहे । उसके पश्चात् अपनी परम्परा का पालन करते हुए लोकांतिक देवों ने आकर के इष्टवाणी के द्वारा इस प्रकार कहा—

'हे नन्द ! (आनन्दकारी) तुम्हारी जय हो, विजय हो ! हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो ! —यावत्—इस प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग करते हैं ।

२५८. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म से पहले (गृहवास में) भी उत्तम आभोगिकज्ञान (अवधिज्ञान) था। वह सारा वर्णन पूर्व वर्णन के समान यहाँ समझना चाहिये—यावत्—वर्षी दान दे करके हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पोष मास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व भाग के समय विशाला शिविका में बैठकर देव, मानव और असुरों के विराट् समूह के साथ (पूर्वोक्त वर्णन के समान) वाराणसी नगरी के मध्य में होकर निकलते हैं । निकलकर जिस ओर आश्रमपद नामक उद्यान है, जहाँ पर अशोक का उत्तम वृक्ष है, उसके निकट जाते हैं । निकट जाकर के शिविका को खड़ी रखवाते हैं । शिविका खड़ी रखवाकर के शिविका के नीचे उतरते हैं । नीचे उतरकर, अपने ही हाथों से आभूषण, मालायें, और अलंकार उतारते हैं । अलंकार आदि उतारकर, स्वयं के हाथ से पंच-मुष्टि लोच करते हैं । लोच करके निर्जल अष्टम भक्त पूर्वक विशाखा नक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर दूसरे तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहवास से निकलकर अनगार अवस्था को स्वीकार करते हैं ।

उवसग्गसहणं—

२५९. पासे ण अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा– दिव्वा वा, माणुस्सा वा, तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा, पडिलोमा वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे-जाव-सम्मं सहइ तितिक्खइ खमइ अहियासेइ ।

—कप्प० सु० १५४ ।

उपसर्ग सहन—

२५९. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी दिन तक नित्य शरीर की ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किए हुए थे । अर्थात् उन्होंने शरीर को त्याग दिया हो इस प्रकार रहे, इस साधनाकाल में जो कोई भी उपसर्ग हुए, जैसे देव अथवा मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आते, उनको सम्यक् प्रकार से सहन करते, तितिक्षा पूर्वक, (सहिष्णुता से अन्य किसी की अपेक्षा के विना) क्रोधरहित, मन को स्थिर कर सहन करते ।

केवलनाणं—

२६०. तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायति-पायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स

केवलज्ञान—

२६०. इसके पश्चात् भगवान् पार्श्व अनगार हुए,—यावत्—ईर्यासमिति से युक्त हुए और इस प्रकार आत्मा को भावित करते-करते तिरासी रात्रि-दिन व्यतीत हो गये । चौरासीवां दिन चल रहा था । ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आया, उस चैत्र की चतुर्थी को, पूर्वाह्न में आंवले (धातकी) के वृक्ष के नीचे षष्ठ तप किये हुए, शुक्लध्यान

1. सम० स० १५७, सु० १४ ।
2. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११ ।
3. सम० स० १५७, सु० ११ ।
4. सम० स० १५७, सु० १३ ।

अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे-जाव-केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने-जाव-जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कप्प० सु० १५५।

मे लीन थे। उस समय विशाखा नक्षत्र का योग आने पर उन्हें उत्तमोत्तम केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ—यावत्—वे सम्पूर्ण लोकालोक के भावों को देखते हुए विचरने लगे।

गणहराइसंपया—

२६१. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—गाहा—

सुभे य अज्जघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य[1]।—कप्प० सु० १५६

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्ण-पामोक्खाओ सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था[2]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूला-पामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था[3]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंद-पामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था[4]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदा-पामोक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था[5]।

२६२. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-जाव-चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था[6]।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दस सया ओहिनाणीणं[7]।

दस सया केवलनाणीणं[8]।

२६३. एक्कारस सया वेउव्वियाणं[9], अद्धट्ठमसया विउलमईणं[10], छसया वाईणं[11], छ सया रिउमईणं[12],

२६४. बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था[13]।

—कप्प० सु० १५७

गणधरादि (शिष्य) संपदा—

२६१. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में आठ गणधर थे। वे इस प्रकार हैं—

गाथार्थ १—शुभ, २—आर्यघोष, ३—वशिष्ठ, ४—ब्रह्मचारी, ५—सोम, ६—श्रीधर, ७—वीरभद्र ८—यश।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में आर्यदत्त (आर्यदिन्न) आदि सोलह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में पुष्पचूला आदि अड़तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्द आदि एक लाख चौंसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक—सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्ताईस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका—सम्पदा थी।

२६२. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में साढ़े तीन सौ जिन नहीं, किन्तु जिनके सदृश सर्वाक्षर संयोगों के ज्ञाता थे—यावत्—चौदह—पूर्वधारियों की सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में चौदह सौ अवधिज्ञानियों की सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में एक हजार केवलज्ञानियों की सम्पदा थी।

२६३. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिधारकों की तथा छह सौ ऋजुमति ज्ञान वालों की सम्पदा थी। साढ़े सात सौ विपुलमतियों की (विपुलमति मनः पर्यव ज्ञान वालों की) (सम्पदा थी)

२६४. छह सौ वादियों की और बारह सौ अनुत्तरौपपातिकों की अर्थात् अनुत्तर विमान में जाने वालों की सम्पदा थी।